आर्थिक और वाणिज्य भूगोल

(*Economic and Commercial Geography*)

[बी. ए., कॉम और एम. ए. (भूगोल) परिक्षाओं के निमित्त]

लेखक

चतुर्भुज मामोरिया, एम. ए. (भूगोल)., एम. कॉम.

रिसर्च-स्कॉलर-इन-ज्याग्रॉफी

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

एवं

प्राध्यापक, वाणिज्य-भूगोल

महाराणा भूपाल कॉलेज, उदयपुर (राजस्थान)

प्राक्कथन लेखक

रामलोचनसिंह, एम. ए., पी-एच. डी. (लन्दन).,

अध्यक्ष, भूगोल विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

गयाप्रसाद एण्ड सन्स

आगरा, कानपुर, ग्वालियर, जयपुर

प्रथम संस्करण १९५७

मूल्य १५)

प्रकाशक
गयाप्रसाद एण्ड सन्स
बाँके विलास,
आगरा

प्रथम संस्करण
जुलाई, १९५७

मूल्य
पन्द्रह रुपये

मुद्रक
जगदीशप्रसाद अग्रवाल एम० ए०,
एज्यूकेशनल प्रेस,
आगरा

प्राक्कथन

श्री चतुर्भुज मामोरिया का "आर्थिक और वाणिज्य भूगोल" नामक पुस्तक प्रस्तुत करने का प्रयास स्तुत्य प्रतीत होता है। हिंदी भाषा में विश्व-विद्यालयों की कक्षाओं के लिये लगभग १२०० पृष्ठों की भूगोल की यह पहली पुस्तक है। मैंने इसे रुचि से पढ़ा है। इसमें लेखक ने आर्थिक एवं वाणिज्य भूगोल के सभी तत्वों पर विशद रूप से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। पुस्तक में नवीनतम आंकड़े भी दिये गये हैं, यह इस विषय की पुस्तक के लिये नितान्त आवश्यक है। पुस्तक की भाषा सरल और सुबोध है। इस रचना के लिये लेखक धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे विश्वास है विद्यार्थी समाज इस कृति से लाभ उठायेगा।

२४-७-१९५७

रामलोचन सिंह
एम. ए., पी. एच-डी० (लंदन)
अध्यक्ष भूगोल विभाग
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी-५

दो शब्द

भूगोल के शिक्षक और विद्यार्थी होने के नाते मेरी यह प्रबल इच्छा रही है कि यदि भूगोल शास्त्र के विभिन्न अंगों पर उच्च कक्षाओं के निमित्त प्रामाणिक पाठ्य और सहायक पुस्तकें हिन्दी भापा में लिखी जायें तो देश के भावी नागरिकों के ज्ञान की अभिवृद्धि इस विपय में भलीभाँति हो सकती है। किन्तु दुर्भाग्यवश इस ओर भारतीय भूगोल शास्त्रियों और विद्वानों का इस अभाव की पूर्ति हेतु कोई विशेप प्रयत्न हुआ हो ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता। यही कारण है कि जहाँ अमेरिका और यूरोप में डा० रसल, डा० फिलीप्स, बेंग्स्टन, जोन्स, जिमरमैन, व्हिटवैक, फिंच, विलम, डा० स्टाम्प, श्री चिशोल्म, श्री हंटिंग्टन, श्री ट्रिवाथा, श्री टेलर, श्री ब्रून्स, श्री वाई डैला ब्लैचे, डा० सैम्पल, श्री ह्वाइट और रैनर, श्री डेविस आदि विद्वानों ने भूगोल की विभिन्न शाखाओं पर अँग्रेजी भाषा में अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं वहाँ भारत में कुछ ही विद्वानों को छोड़कर किसी ने भी इस सम्बन्ध में कोई प्रयास नहीं किया। अस्तु, उच्च परीक्षाओं के विद्यार्थियों को अध्ययन के लिए विदेशी विद्वानों की कृतियों का सहारा लेना पड़ता है जो न केवल कीमती ही होती हैं वरन् भाषा की दृष्टि से भी उनके लिए अग्राह्य होती हैं। इसी कठिनाई से प्रेरित होकर मैंने यह प्रयास करने की धृष्टता की है। सम्भवतः बी० ए० और एम० ए० की भूगोल कक्षाओं के लिए 'आर्थिक और वाणिज्य भूगोल' के पाठ्य-क्रमानुसार यही पहली पुस्तक है जो हिन्दी भाषा में प्रकाशित हो रही है। यह पुस्तक न केवल इन कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए ही लाभदायक होगी वरन् माध्यमिक कक्षाओं के अध्यापक बन्धुओं एवं विशेष रुचि वाले विद्यार्थियों के लिए भी यह सन्दर्भ ग्रन्थ का काम देगी। इस प्रयास में मुझे कितनी सफलता मिली है इसका निर्णय मैं विषय के विद्वानों और पाठकों के हाथ में ही छोड़ता हूँ।

मुख्यतः इस पुस्तक का प्रणयन उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के हेतु ही किया गया है। अतः यह आवश्यक ही था कि इसकी रचना में उच्च कोटि के विदेशी ग्रन्थों का अवलम्बन लिया जाय। इसकी दृष्टि से यथासम्भव मैंने उन सभी ग्रन्थों से सामग्री चयन करने का प्रयत्न किया है जो इस विषय में सभी प्रकार से प्रामाणिक माने जाते हैं। अतः यदि यह कहा जाय कि यह पुस्तक किसी ग्रन्थ विशेष का शाब्दिक अनुवाद मात्र न होकर अनेक पुस्तकों का निचोड़ है तो कोई अत्योक्ति नहीं होगी। ऐसी सभी पुस्तकों की विस्तृत सूची पुस्तक के अन्त में दी गई है। मैं उनके लेखकों, सम्पादकों एवं प्रकाशकों का हार्दिक आभार मानता हूँ। सच तो यह है कि इन पुस्तकों के अध्ययन के विना इस पुस्तक की रचना ही न हो पाती।

यथासम्भव इसमें नवीनतम आँकड़े और सूचनायें देने का प्रयत्न किया गया है जिससे विषय-सामग्री की उपादेयता और भी बढ़ गई है।

इस पुस्तक में आर्थिक और वाणिज्य भूगोल के मुख्य तत्वों एवं सिद्धान्तों का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया गया है। अस्तु, मानव का वातावरण और उसकी विभिन्न क्रियायें, भूमण्डल, जलमण्डल, वायुमण्डल तथा प्राकृतिक वनस्पति, प्राकृतिक प्रदेश, व्यवसाय आदि से लगाकर खनिज पदार्थ, शक्ति के श्रोत औद्योगिक व्यवसायों के विकास तत्व तथा विभिन्न उद्योग, स्थल, जल, एवं वायु यातायात, जनसंख्या का वितरण, नगरों और बन्दरगाहों का विकास और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी विशद सामग्री प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुत पुस्तक में भारत-सम्बन्धी सामग्री भी विस्तृत रूप से दी गई है इससे यह पुस्तक और भी महत्वपूर्ण बन गई है। यद्यपि विषय सामग्री के कारण पुस्तक का कलेवर काफी बढ़ गया है किन्तु इससे उच्च कक्षाओं के परीक्षार्थियों का लाभ ही होगा। सम्पूर्ण पुस्तक में असंख्य मानचित्र एवं चित्र आदि दिये गये हैं जिससे पुस्तक की उपादेयता में अधिक वृद्धि हुई है, ऐसी मेरी मान्यता है।

इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में मुझे जो सहयोग श्री राधेकृष्ण रावत, श्री रामकृष्ण रावत, श्री प्रतापसिंह भटनागर, श्री शेषमल जैन से मिली है उसके लिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। मेरे प्रकाशक श्री जगदीशप्रसाद अग्रवाल ने इस वृहद् ग्रन्थ के प्रकाशन में जो सौहार्द्र और धैर्यता का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है। उनकी इतनी लग्न और रुचि के बिना पुस्तक का इतने उत्तम रूप में प्रकाशित होना असम्भव-सा ही था। इसके लिए उन्हें भी हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता। श्रीमती विमला मामोरिया ने मुझे गृह-कार्यों से मुक्त कर इस पुस्तक के शीघ्र समाप्त करने में जो अपरोक्ष रूप से सहयोग दिया है उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना भी मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ अन्यथा उनके असहयोग में पुस्तक और भी न जाने कितने समय तक अधूरी ही पड़ी रहती।

अन्त में यदि इस पुस्तक से उच्च परीक्षाओं के विद्यार्थियों को समुचित लाभ पहुँच सका और उनमें इस विषय के प्रति रुचि उत्पन्न हो सकी तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा और भविष्य में उनके सम्मुख 'भूगोल के भौतिक आधार' और 'मानव भूगोल' के सिद्धांतों पर भी इसी श्रेणी की पुस्तकें प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगा।

पुस्तक को अधिक पूर्ण एवं उपादेय बनाने हेतु जो सज्जन अपने अमूल्य सुझावों से मुझे अवगत करेंगे, उसके लिए मैं उनका आभारी होऊँगा।

आषाढ़ शुक्ला तृतीया,
वि० सं० २०१४

चतुर्भुज मामोरिया

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१.	आर्थिक भूगोल का क्षेत्र और उसकी शाखायें ...	१
२.	मनुष्य और उसका वातावरण (Man & His Environment)	१०
३.	भूमण्डल और जलमण्डल (Lithosphere & Hydrosphere)	५०
४.	वायुमण्डल (Atmosphere)	६८
५.	प्राकृतिक वनस्पति (Natural Vegetation) ...	९६
६.	प्राकृतिक प्रदेश (Major Natural Regions) ...	१२९
७.	उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (Tropical Regions) ...	१३९
८,	पश्चिमी उष्ण शीतोष्ण प्रदेश (Western Warm Temperate Regions)	१६७
९	शीत-शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (Cool Temperate Regions)	१८८
१०.	शीत कटिबन्धीय प्रदेश (Cold Regions) ...	२०२.
११.	मिट्टियाँ और खाद (Soils and Manures) ...	२१४
१२.	मुख्य व्यवसाय (Occupations)	२४३
१३.	मछली पकड़ने का धन्धा (Fishing)	२४८
१४.	लकड़ी काटने का व्यवसाय (Lumbering) ...	२७२
१५.	पशु-पालन का धन्धा (Pastoral Farming) ...	३०१
१६.	कृषि के रूप (Forms of Agriculture) ...	३२६
१७.	भोज्य-पदार्थ (Food Crops)	३५८
१८.	पेय पदार्थ (Beverages)	४०३
१९	फल, तिलहन, मसाले (Fruits and Spices etc.,) ...	४४४
२०.	व्यवसायिक फसलें (Commercial Crops) ...	४६८
२१.	खनिज पदार्थ (Mineral Resources)	५२३
२२.	खनिज पदार्थ (क्रमशः)	५३४
२३.	खनिज पदार्थ (क्रमशः)	५५५
२४.	खनिज खाद और इमारती पत्थर (Mineral Fertilizers & Building Materials)	५७७

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२५.	शक्ति के स्रोत (Sources of Power)	५९४
२६.	शक्ति के श्रोत (क्रमशः)—खनिज तेल (Mineral oil)	६३९
२७.	शक्ति के श्रोत (क्रमशः)—जलविद्युत् शक्ति (Hydroelectric Power)	६८६
२८.	प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र (Great Manufactural Regions)	७१७
२९.	लोहे, स्पात और उससे सम्बन्धित उद्योग (Iron, Steel & Allied Industries)	७४५
३०.	वस्त्र उद्योग (Textile Industry)	७९८
३१.	अन्य उद्योग (Miscellaneous Industries) ...	८५२
३२.	भारत के अन्य उद्योग (Indian other Industries) ...	८९७
३३.	यातायात के साधन (Means of Transport) ...	९२२
३४.	यातायात के साधन (क्रमशः) जल-यातायात (Water Transport)	९८०
३५.	यातायात के साधन (क्रमशः) हवाई यातायात (Air Transport)	१०३७
३६.	बन्दरगाह (Ports)	१०५६
३७.	जनसंख्या (Population)	१०८४
३८.	जनसंख्या (क्रमशः) (४) जनसंख्या का आवास-प्रवास (Population Movements)	११३६
३९.	नगरों की उत्पत्ति और विकास (Growth and Development of Towns)	११७१
४०—	सहायक ग्रन्थ-सूची (Bibliography) ...	११९५

आर्थिक और वाणिज्य भूगोल

अध्याय १

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र और उसकी शाखायें

(Economic Geography—Its Scope and Branches)

भूगोल के शाब्दिक अर्थ हैं 'गोल पृथ्वी'। किन्तु अंग्रेजी के 'Geography' शब्द का विश्लेषण इस प्रकार किया जाता है। 'Geo' = Earth, and 'Graphy' = to write. अर्थात् पृथ्वी का वर्णन करना। आधुनिक भूगोल के अन्तर्गत हम "क्यों" और "कैसे" के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। आज भी साधारण व्यक्ति केवल पहाड़, नदियों, मैदानों, सागरों, नगरों अथवा राजनैतिक सीमाओं के अध्ययन को ही भूगोल समझता है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं। वर्तमान भूगोल जीता-जागता वह विषय है जिसके अन्तर्गत मनुष्य के आचार-विचार, रहन-सहन तथा उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, औद्योगिक और व्यापारिक कार्यों के कारण और परिणाम का विस्तृत विवेचन किया जाता है।

प्रो० स्टेमब्रिज (Stembridge) के अनुसार, "भूगोल धरातल की ऊँचाई, चट्टानों की बनावट और पृथ्वी का जलवायु तथा इनका सम्मिलित प्रभाव जो प्राकृतिक वनस्पति, उपज और विशेष रूप से मनुष्यों के कार्यों पर पड़ता है उसकी विवेचना करता है।"

वर्तमान भूगोल समस्त विज्ञानों का सार है क्योंकि इसका ठीक-ठीक अध्ययन करने के लिए हमें अन्य विज्ञानों—गणित, प्राणी शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, भौतिक शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, विज्ञान, अंक शास्त्र, वाणिज्य शास्त्र आदि द्वारा प्रेषित तत्वों का अध्ययन कर अपने लिए 'क्यों' और 'कैसे' का उत्तर ढूँढ़ना पड़ता है। भूगोल द्वारा वातावरण सम्बन्धी बातों का आन्तरिक अन्वेषण किया जाता है और साथ ही साथ मनुष्य को स्वयं उन वातावरण सम्बन्धी बातों के बीच का पारस्परिक सम्बन्ध भी ज्ञात हो जाता है। इसका विशेष दृष्टिकोण मनुष्य है जो अपने वातावरण से पूर्णतया सम्बन्धित रहता है। भूगोल

का उद्देश्य एकीकरण है—अन्वेषण, पैमाइश, मानचित्र खींचना, पृथ्वी के पपड़े का क्रमिक विकास, जलवायु का अध्ययन, पौधों, पशु और मानव जाति का वातावरण के अनुसार सम्बन्ध मानव तथा संसार के वास्तविक दिग्दर्शन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अस्तु; **"भूगोल वह विज्ञान है जो पृथ्वी को मानव समाज का गृह मानकर व्यवहार करता है।"** (Geography is the study of Earth as a home of man, of the Physical environment of the human species)।

श्री फेअरग्रीव (Fairgrieve) के अनुसार भूगोल का मुख्य उद्देश्य भावी नागरिकों को वृहद् विश्व क्षेत्र की दशाओं की सच्ची कल्पना करने में शिक्षित करना है और इस प्रकार दुनिया में होने वाली राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं के बारे में निष्पक्ष होकर विचार करने में सहायता देना है।

आधुनिक भूगोल में मनुष्य और वातावरण के पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाया जाता है। इस सम्बन्ध में श्री ब्रूंस (Brunhes) ने लिखा है, "यह अब कोई वर्णनों की सूची नहीं, किन्तु यह इतिहास है। यह अब केवल स्थान-मात्रों की गिनती नहीं रही, किन्तु यह एक व्यवस्थित क्रम-बद्ध विषय है। इसका दुहरा उद्देश्य है। कार्यशील तथ्यों के सीधे प्रभाव को वर्गीकृत करना, उनको समझाना और इन सभी तथ्यों का सम्मिलित प्रभाव क्या होगा यह निर्देशन करना।"[१] अस्तु; भूगोल वह क्रम-बद्ध विज्ञान है जिसका अध्ययन क्षेत्र पृथ्वी तथा मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र उन्हीं तथ्यों तक सीमित है जिनका मनुष्य से सम्बन्ध है, जिन्होंने उसे प्राचीन-काल से प्रभावित किया है, जो आज भी प्रभावित कर रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे। इसके अतिरिक्त इसके अन्तर्गत वे तथ्य भी आते हैं जिनकी उत्पत्ति मनुष्य और पृथ्वी के पारस्परिक सम्बन्धों के फलस्वरूप हुई है जैसे—जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन, आवागमन के साधन, ग्राम, नगर, धर्म, शासन-प्रणालियाँ आदि। किन्तु यह स्मरणीय है कि "जिस प्रकार अर्थ-शास्त्र का मूल मंत्र 'मूल्य' है, भूगर्भ विभाग चट्टानों से सम्बन्धित है, वनस्पति-विज्ञान पेड़-पौधों से, इतिहास समय से और नृशंसविज्ञान मानव की उत्पत्ति, विकास, और उसकी जातियों से लगाव रखता है उसी तरह भूगोल भी 'स्थान' से सम्बन्धित है। 'क्यों' और 'कैसे' और 'कहाँ' आदि प्रश्नों का उत्तर देना भूगोल का वास्तविक अध्ययन करते समय आवश्यक है।"

फिंच और ट्रिवार्था (Finch and Trewartha) ने भूगोल की परिभाषा इस प्रकार की है "Geography is the science of earth's surface. It consists of a systematic description and interpretation of the distribution pattern and the regional associations of things on the surface of the earth."[२]

१—J. Brunhes: Human Geography.
२—Finch and Trewartha: Elements of Geography.

भूगोल की विभिन्न शाखायें[1]

आधुनिक भूगोल के निम्न विभाग किये जा सकते हैं:—

भूगोल

(i)	(ii)	(iii)	(iv)
भौतिक भूगोल	मानव भूगोल	राजनैतिक भूगोल	ऐतिहासिक भूगोल
(१) भूगर्भ शास्त्र	मानव भूगोल		सामरिक भूगोल
(२) जलवायु शास्त्र	आर्थिक भूगोल		
(३) मृतिका विज्ञान	कृषि भूगोल		
(४) जीव विज्ञान	औद्योगिक भूगोल		
(५) गणित सम्बन्धी भूगोल	सामाजिक भूगोल		
	समाज शास्त्र		
	नृशंस शास्त्र		

(i) भौतिक भूगोल (Physical Geography)

इसके अन्तर्गत पृथ्वी के धरातल पर पाये जाने वाले प्राकृतिक वातावरण की विभिन्न दशाओं, भूमि, वायु और जल का विस्तृत अध्ययन किया जाता है और इसमें मनुष्य का सम्बन्ध भूमि के विभिन्न आकारों, जल भण्डारों और वायु आदि के साथ स्थापित किया जाता है। ये तीनों अंग आपस में अविभाज्य और साथ ही साथ ये एक दूसरे से भिन्न और अलग भी हैं। भौतिक भूगोल में हम इन्हीं विज्ञानों का समविधित रूप में अध्ययन करते हैं।

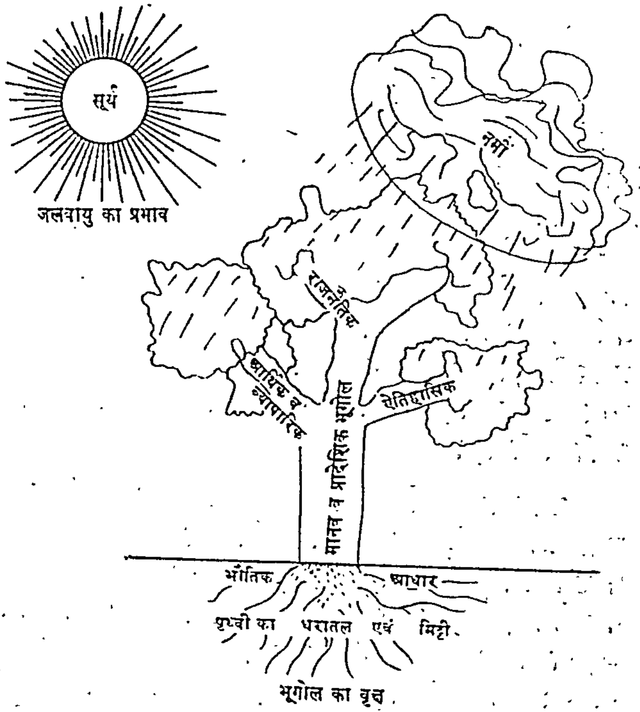

चित्र १

१—विस्तृत विवरण के लिये देखिये लेखक का "आधुनिक भूगोल की विभिन्न शाखायें और अध्ययन,"—समाज शास्त्र, वर्ष १ संख्या २, पृ० १८–३६।

(ii) मानव भूगोल (Human Geography)

मानव भूगोल के अन्तर्गत हम मानव की भिन्न-भिन्न आर्थिक और सांस्कृतिक क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन का मूल मंत्र यह होता है कि मानव की सभी क्रियाओं पर वातावरण का अविच्छिन्न प्रभाव पड़ता है। किन्तु साथ ही साथ यह भी निश्चित है कि मनुष्य की क्रियाएँ एकदम ही प्रकृति द्वारा निर्देशित नहीं होतीं। मनुष्य अपने जीवन को भौतिक आवश्यकताओं के अनुसार ढाल लेता है और अपनी शक्ति के अनुसार इच्छानुकूल वातावरण में भी परिवर्तन कर लेता है। उदाहरण के लिये एलपाईन घाटी के किसानों, यूक्रेन के कृषकों, शेम्पेन के बागवान और लारेंस कोल-क्षेत्र के मजदूरों आदि ने अपने वातावरण के अनुसार ही अपने रहन-सहन को ढाला है। इसी प्रकार मध्य यूरोप में पतझड़ वाले जंगलों को साफ कर खेती करने, नीदरलैंड में समुद्र गत भूमि को बाँध बनाकर उपयोगी बना देने तथा चिली के शुष्क उच्च प्रदेशों में शोरा निकालने और मंचूरिया में लोहा खोदने तथा आलपस में सुरंगें बनाकर रेल-मार्ग निकालने आदि ऐसे उदाहरण हैं जो मानव द्वारा पृथ्वी के धरातल पर किये गये परिवर्तनों की कहानी को व्यक्त करते हैं। आर्थिक भूगोल, औद्योगिक, वाणिज्य भूगोल तथा सामाजिक भूगोल का भी मानव भूगोल के अन्तर्गत ही अध्ययन किया जाता है।

(iii) राजनैतिक भूगोल (Political Geography)

इसका मूल उद्देश्य विभिन्न राज्यों की प्रकृति, उनकी व्यवस्था और उनके आपसी सम्बन्धों पर पड़ने वाले भौगोलिक अवस्था के प्रभावों की खोज करना है। इस प्रकार राजनैतिक भूगोल का अध्ययन सांस्कृतिक शास्त्रों के क्षेत्र में (जो कि मानवता का अध्ययन करता है) अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। आज इस बात में कोई भी दो राय नहीं रह गई हैं कि एक देश का विस्तार प्राकृतिक दशा, नैसर्गिक साधन, भूमि की उर्वरता, आबादी का घनत्व और उसमें जातियों का स्थान तथा उसका आपसी प्रदेशों से सम्बन्ध और समुद्र से लगाव आदि ये ऐसे भौगोलिक तथ्य हैं जो उसके राजनैतिक ढाँचे, सरकार के रूप और उसके पड़ौसी देशों के सम्बन्धों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते रहते हैं।

उदाहरण के लिए ब्रिटेन की निश्चित सामुद्रिक स्थिति, आबादी का भार तथा उसके लोहे और कोयले के विशाल भण्डार आदि भौगोलिक महत्व के तथ्यों ने उसे मजबूर किया कि वह अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए बाहर हाथ-पैर फैलाए और अन्य देशों पर अपना स्वामित्व स्थापित करे। इस प्रकार की उसकी साम्राज्यवादी नीति उसकी प्राकृतिक आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति मात्र ही है। जर्मनी की घनी आबादी, सामुद्रिक सीमा की परिमितता और अपने प्रदेश के विकास की क्षीण आशा ने समस्त जर्मन राष्ट्र के अन्दर भारी राजनैतिक अशान्ति को पैदा कर दिया और इसकी प्रतिक्रिया ने उसे दुनिया में शक्तिशाली व्यापारिक प्रतिद्वन्दी बना दिया।

(iv) ऐतिहासिक भूगोल (Historical Geography)

ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि एक राष्ट्र की उन्नति में इतिहास सम्बन्धी भूगोल का कहाँ तक हाथ रहता है। धरातल, स्थिति, प्राकृतिक रुकावटें, भौगोलिक एकान्तता और उस प्रदेश का विस्तार आदि ऐसी भौगोलिक अवस्थाएँ हैं जो एक राष्ट्र के ऐतिहासिक भाग्य को निर्धारित करने में निश्चित रूप से काम करती हैं। उदाहरण के लिये यदि यूरेशिया महाद्वीप के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि किस प्रकार उसकी भौगोलिक अवस्थाओं ने उसके सम्पूर्ण ऐतिहासिक मार्ग को निर्धारित किया है। यूरेशिया महाद्वीप का इतिहास नीलघाटी की सभ्यता से प्रारम्भ होता है। इसके बाद क्रमागत रूप से धीरे-धीरे अरब की मरु भूमि प्रदेश में सैरेसिन साम्राज्य का उदय, हैलेनिक साम्राज्य का एक महान भूमध्य सागरीय समुद्र शक्ति के रूप में उत्थान और पतन, चार्लेमिगनी के साम्राज्य का बनना, नोमर्न लोगों की इङ्गलैंड पर विजय और योरोप में नेपोलियन साम्राज्य के बनने तथा बिगड़ने आदि समस्त ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे निश्चित ही एक भौगोलिक तथ्य का दर्शन किया जा सकता है।

आर्थिक भूगोल (Economic Geography)

आर्थिक भूगोल, मानव भूगोल की ही एक शाखा है। जिसका एक मात्र सम्बन्ध मनुष्य के भोजन, विश्राम, कपड़े और आराम की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये मनुष्य द्वारा किये गये उत्पादक प्रयत्नों से ही है। पृथ्वी के ऊपर प्राकृतिक साधनों का 'क्यों ?', 'कैसे' और 'कहाँ ?' उपयोग होता है इसका विश्लेषणात्मक अध्ययन ही आर्थिक भूगोल का मूल मंत्र है। विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में मानव समुदाय अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न जीविकोपार्जन के साधनों—लकड़ी काटना, मछली पकड़ना, शिकार करना, खेती करना, भोज्य पदार्थ एकत्रित करना, खानें खोदना, उद्योग-धंधे चलाना, व्यापार करना और नौकरी आदि व्यवसाय में लगे रहना—में लग्न रहता है। उसके इन आर्थिक प्रयत्नों पर मिट्टी, भूमि की बनावट, जलवायु, वनस्पति, खनिज साधन, भौगोलिक स्थिति, यातायात की सुविधा, आबादी का घनत्व आदि वातावरण के विभिन्न अंगों का प्रभाव पड़ता है। एक आर्थिक भूगोलवेत्ता का मुख्य उद्देश्य मानव प्रयत्नों पर पड़ने वाले इस वातावरण के प्रभाव का अंकन कर उसका विश्लेषण करना ही है। इसके साथ ही साथ आर्थिक विकास की संतुलित अवस्था को प्राप्त करने के लिये कृषि और औद्योगिक दृष्टि से पृथ्वी के विभिन्न भागों में प्राकृतिक साधनों की सुरक्षा का अध्ययन और आर्थिक उपयोग के लिए उनकी जाँच करना ही आर्थिक भूगोल का मुख्य प्रश्न है।

वास्तव में आर्थिक भूगोल के दो कार्य होते हैं। प्रथम तो यह कि वह पृथ्वी के आर्थिक साधनों का ठीक-ठीक विवरण देता है। और दूसरे वह यह भी बताता है कि मानव ने अपने लाभ के लिए इन साधनों का किस प्रकार उपयोग किया है।

भिन्न-भिन्न विद्वानों ने आर्थिक भूगोल की निम्न प्रकार से परिभाषाएँ दी हैं:—

(१) "आर्थिक भूगोल में हम मनुष्य की भौगोलिक और भौतिक परिस्थितियों का उसके आर्थिक प्रयत्नों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं।"

—मैकफर लेन

(२) "आर्थिक भूगोल मानव भूगोल की वह शाखा है जिसमें मानव के आर्थिक प्रयत्नों का उसके निवास स्थान के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं।" —प्रो० बुकानन

(३) "आर्थिक भूगोल, भूगोल की वह शाखा है जिसमें प्राकृतिक वातावरण (जड़ और चेतन) के मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन होता है।"

—रडमस ब्राऊन

(४) "आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उन सब भौगोलिक परिस्थितियों का विवरण आता है जो वस्तुओं की उत्पत्ति, उनके चलन तथा क्रय-विक्रय पर प्रभाव डालती हैं।"

—जी० चिशौल्म्

(५) "आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उन सब प्रकार के पदार्थों, साधनों, क्रियाओं, समुदायों, रीति-रिवाजों और मानव शक्तियों का विवरण आता है जो जीविकोपार्जन में सहायक होते हैं। कृषि, उद्योग-धन्धे और व्यापार जीविकोपार्जन के तीन प्रमुख ढंग हैं। अतः आर्थिक भूगोल में तीनों ही रूप मिलते हैं। इसकी प्रमुख समस्या उन ढंगों की खोज होती है जिसमें भौतिक दशाओं के वितरण का प्रभाव मनुष्य के उन ढंगों के वितरण पर, जिनसे लोगों के भोजन, वस्त्र, घर, औजार और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, पड़ता है।"

—प्रो० हन्टिंगटन

(६) "मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर प्राकृतिक परिस्थितियों के प्रभाव का अध्ययन ही आर्थिक भूगोल का विषय है। इसके अन्तर्गत हम यह अध्ययन करते हैं कि मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों—वस्तुओं के उत्पादन, यातायात और वितरण तथा वाणिज्य—पर उसकी स्थिति, जलवायु और वनस्पति आदि प्राकृतिक परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ता है।" —प्रो० दासगुप्ता

अस्तु; साधारण शब्दों में हम आर्थिक भूगोल की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं—"यह भूगोल का वह अंग है जिसमें मनुष्य के वातावरण का उसके आर्थिक प्रयत्नों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।"

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र :

वर्तमान शताब्दी में आर्थिक भूगोल की बहुत उन्नति हुई है। इसकी निम्नलिखित शाखाएँ की जा सकती हैं:—

(क) कृषि भूगोल (Agricultural Geography)

इसके अन्तर्गत उन परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है जो खेती की भिन्न-भिन्न पैदावारों की उत्पत्ति और उनके वितरण से सम्बन्धित हैं। अस्तु; एक

सफल किसान के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपने खेत में पैदा की जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन सम्बन्धी अवस्थाओं—मिट्टी के उपजाऊपन, जल की मात्रा, सूर्य-प्रकाश और फसलों के बोने और काटने के समय—का ज्ञान प्राप्त करे। इस प्रकार की सूचनाएँ कृषि सम्बन्धी भूगोल के अध्ययन से ही प्राप्त की जा सकती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और इंगलैंड जैसे देशों में आर्थिक भूगोल की इस शाखा का बहुत विकास हुआ है।

(ख) औद्योगिक भूगोल (Industrial Geography)

इसके अन्तर्गत भूमि से प्राप्त खनिज पदार्थों का वितरण, उत्पादन की समस्याओं तथा उत्पादित वस्तुओं की विक्रय सम्बन्धी समस्याओं का उनकी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के साथ भौगोलिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है। इस शाखा के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार किसी देश के भौगोलिक वातावरण में वहाँ के औद्योगिक साधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सकता है। एक देश की कच्ची धातुओं व शक्ति के साधनों के उपयोग और वितरण सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करना ही औद्योगिक भूगोल का कार्य है।

(ग) वाणिज्य भूगोल (Commercial Geography)

इस भूगोल के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न देशों के व्यापार, यातायात के साधनों और व्यापारिक केन्द्रों के विकास और उन्नति के कारणों का अध्ययन किया जाता है। वास्तव में इस भूगोल का अस्तित्व पृथक् नहीं है क्योंकि किसी भी देश का व्यापार उस देश के कृषि पदार्थों, कच्ची धातुओं तथा औद्योगिक वस्तुओं के आधार पर ही होता है। अतएव किसी भी आर्थिक भूगोल में इन तीनों ही शाखाओं का सम्मिलित अध्ययन किया जाता है।

आर्थिक भूगोल के अध्ययन से लाभ—

पिछले कुछ समय से आर्थिक भूगोल का विकास बहुत हो चुका है। इसके अध्ययन से हमको निम्नलिखित लाभ होते हैं:—

(१) यह हमें उन प्राकृतिक साधनों की स्थिति और वितरण आदि से परिचित कराता है जिनके द्वारा वर्त्तमान समय में किसी देश की आर्थिक उन्नति हो सकती है। आज के इस युग में—जब कि सभी उन्नत राष्ट्र प्रगति की दौड़ में आगे बढ़ रहे हैं—यह जानना कि उस देश की उन्नति के लिए कृषि वस्तुओं और खनिज पदार्थों के उचित मात्रा में प्राप्त होने के क्षेत्र कौन-कौन से हैं, बहुत ही आवश्यक है। इन वस्तुओं के उत्पत्ति क्षेत्रों की जानकारी हमें आर्थिक भूगोल द्वारा ही हो सकती है।

(२) किसी देश में पाई जाने वाली प्राकृतिक सम्पत्ति—वन्य पदार्थ, कृषि पदार्थ और खनिज पदार्थ—का किन साधनों द्वारा कहाँ पर और किस मात्रा में तथा किस कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिये

किसी भी देश में वन सम्पत्ति उन्हीं क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ वर्ष के अधिकांश भागों में पर्याप्त गर्मी और वर्षा होती है। वनों से प्राप्त कच्चे माल और इमारती लकड़ी का उपयोग औद्योगिक और व्यापारिक नगरों में ही हो सकता है। मछलियाँ देश के भीतर छिछले जलाशयों में अथवा उन छिछले समुद्री किनारों पर, जो बहुत कटे फटे हों, पकड़ी जा सकती हैं। इसी तरह कृषि कर्म के लिए समतल, उपयुक्त जलवायु वाले मैदान ही (जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेनटाइना, सिंधु-गंगा का मैदान अथवा ह्वाँगो प्रदेश) अधिक उपयुक्त होते हैं। कोयला और मिट्टी का तेल मिलने वाले भागों में अन्य धातुओं का अभाव रहता है, और जल-विद्युत शक्ति उन्हीं स्थानों में विकसित की जा सकती है जहाँ का धरातल ऊँचा-नीचा हो और जो पर्याप्त वर्षा और घनी आबादी के क्षेत्र के निकट होते हैं। इन सब बातों का परिचय आर्थिक भूगोल के अध्ययन से ही हो सकता है।

(३) पृथ्वी के गर्भ में कौन से पदार्थ छिपे पड़े हैं, इसका पता बताकर तथा यह पदार्थ मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किस प्रकार सहायक हो सकते हैं—इसका ज्ञान कराकर आर्थिक भूगोल का अध्ययन इस बात की ओर संकेत करता है कि किन स्थानों पर कोई उद्योग-विशेष स्थापित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए लोहे और इस्पात का उद्योग कोयले की खानों के निकट तथा सूती वस्त्रों के उद्योग घनी जनसंख्या के केन्द्रों के निकट ही स्थापित किये जाते हैं। अन्य उद्योग भी यथासम्भव कच्चे माल अथवा शक्ति के साधनों के निकट ही स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार उद्योगपतियों के लिए भी आर्थिक भूगोल का विषय बड़ा उपयोगी है।

(४) आर्थिक भूगोल के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि किसी देश की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए कच्चा माल या भोज्य पदार्थ या यंत्र आदि कहाँ से प्राप्त किये जा सकते हैं—तथा इन वस्तुओं के लाने के लिए किस-किस प्रकार के यातायात के साधनों का सहारा लेना पड़ेगा। यदि भारत को अपनी जनसंख्या के लिए अनाज की आवश्यकता है तो निस्सन्देह वह उसे चीन, ब्रह्मा, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य या कनाडा से मँगवाकर पूरी करेगा। अस्तु, व्यापारियों के लिए भी इसका अध्ययन लाभदायक है।

(५) विश्व के विभिन्न भागों में मानव समुदाय किस प्रकार अपनी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी करता है। उसका रहन-सहन, उसका खान-पान, वेष-भूषा कैसी है, अथवा उसने अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अपने प्राकृतिक साधनों का किस प्रकार उपयोग किया है—यह सब बातें हमें आर्थिक भूगोल के अध्ययन से अपने घर बैठे ही ज्ञात हो सकती हैं। किसी देश विशेष ने किस प्रकार इतनी आर्थिक उन्नति की अथवा कोई अन्य देश क्यों इतना पिछड़ा है यह भी आर्थिक भूगोल के अध्ययन द्वारा ज्ञात हो सकता है।

आज के युग में भिन्न-भिन्न देशों के बीच क्रान्ति की जो ज्वाला भड़क रही है, उसको शान्त कर विश्व-शान्ति के प्रश्न को हल करने के लिए जो भगीरथ

प्रयत्न वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों और भूगोलवेत्ताओं द्वारा किये जा रहे हैं उन सबके पीछे भौगोलिक पृष्ठभूमि अवश्य कार्य कर रही है। अस्तु, यदि आर्थिक भूगोल का उचित रूप से अध्ययन किया जाय तो सभी समस्याएँ सरलतापूर्वक हल हो सकती हैं।

(६) प्रत्येक देश में विद्वानों को देश के लिए सुव्यवस्थित योजना बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि वे देश के भिन्न-भिन्न भागों में उत्पन्न होने वाले पदार्थों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें। वे सरलता से यह निर्णय कर सकते हैं कि देश की प्राकृतिक सम्पत्ति का किस प्रकार तथा श्रेष्ठ उपयोग किया जाय, देश में कौन-कौन से उद्योग-धन्धों को पनपाया जाय, कृषि का उत्पादन कैसे बढ़ाया जाय और बेकारी आदि की समस्याओं को कैसे दूर किया जाय। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि वह व्यक्ति आर्थिक भूगोल का अध्ययन करें।

इस प्रकार हम श्री क्लिम, स्टार्के तथा हाल के शब्दों में कह सकते हैं कि "आर्थिक भूगोल वह यंत्र है जो पृथ्वी की प्राकृतिक सम्पति का न्यूनतम क्षति पर अधिकतम उपयोग करने की रीति बतलाता है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य, अमेरिका में और कनाडा में और भारत में भी लार्ड डलहौजी द्वारा रेलें अथवा सड़कें देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए बनाई गई थीं। टेलीफोन कम्पनियाँ अपने बाजार के भूगोल का अध्ययन करने के उपरान्त ही तार आदि बिछाती हैं और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार ही वे अपनी भावी योजनाओं का निर्माण करती हैं। आर्थिक भूगोल केवल व्यापारिक समुदाय के लिए ही उपयोगी विषय नहीं है—वरन् कला एवं विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले अनेक विद्यार्थियों तथा अनुसंधानकर्ताओं के लिये भी इसका ज्ञान लाभदायक है। जीवन के अन्य विविध क्षेत्रों में भी आर्थिक भूगोल के अध्ययन का विशेष महत्व है।"[१]

प्रश्न

१. वाणिज्य भूगोल के अध्ययन का क्षेत्र क्या है? एक व्यापारी और उद्योगपति को इसके अध्ययन से क्या लाभ है? (यू० पी० १९४६, रा० वि० १९४८)

२. पिछले कुछ समय से व्यापारिक और आर्थिक भूगोल के अध्ययन का महत्त्व किस प्रकार बढ़ गया है? इसके अध्ययन से क्या लाभ है? (यू० पी० १९४२, १९४६, १९४९)

३. भूगोल विज्ञान की आधुनिक परिभाषा देते हुए बताइये कि वर्तमान काल में इसका इतना अधिक महत्त्व क्यों बढ़ गया है? भूगोल विज्ञान की मुख्य-मुख्य शाखाओं का वर्णन करते हुए उनका महत्त्व बताइये।

१—Klimm, Starkey and Hall : Introductory Economic Geography.

अध्याय २

मनुष्य और उसका वातावरण
(Man and his Environment)

"मानव अपनी परिस्थितियों का जीव है।" यह कथन सत्य प्रतीत होता है। मिस सेम्पल का कथन है कि "मानव पृथ्वी के धरातल की उपज है। इसका केवल यही तात्पर्य नहीं है कि वह पृथ्वी का शिशु है, उसकी धूल की धूल है, बल्कि सत्य तो यह है कि उसी ने उसका लालन-पालन किया है, उसको खिलाया है, उसको कार्य करना सिखाया है, उसके विचार तथा भाव आदि उत्पन्न किये हैं, उसके सम्मुख कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं जिसके कारण उसके शरीर तथा मस्तिष्क का विकास हो। कुछ ऐसी सिंचाई व नौका संचालन आदि की समस्यायें सामने रखीं हैं जो बहुत जटिल हैं किन्तु इनके साथ ही इन समस्याओं को हल करने का ज्ञान भी उसे दे दिया है। वास्तव में सच तो यह है कि वह उसकी हड्डी-पसलियों, स्नायुओं, मस्तिष्क और आत्मा में रम गई हैं।"[1]

पहाड़ी भागों के रहने वालों को प्रकृति ने लोहे के समान मजबूत जाँघें इसलिये दी हैं कि वे ऊँचे-ऊँचे भागों पर चढ़ सकें, किन्तु समुद्र-तटीय भागों में रहने वाले व्यक्ति दुबले-पतले होते हैं, लेकिन उनके चौड़े वक्ष-स्थल और कठोर भुजायें उनको नावें आदि चलाने के लिए उपयुक्त बना देती हैं। इसी प्रकार नदियों के प्रवाह प्रदेश में रहने वाले न केवल आराम-तलब और एक स्थान पर टिक कर रहने वाले होते हैं किन्तु वे बड़े मिलनसार भी होते हैं। घास के मैदान अथवा मरु-भूमियों में रहने वालों को सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना पड़ता है। सदैव कठिनाइयाँ झेलना तथा भोजन के लिए एक दूसरे समुदाय के बीच में झगड़े होते रहना उन लोगों में 'ईश्वर एक है' इस विश्वास को स्थान देता है। यह सब बातें इस ओर निर्देश करती हैं कि भिन्न क्षेत्र में रहने वालों का जीवन, उनका रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज तथा उद्योग-धन्धे उनकी परिस्थितियों के अनुसार ही होते हैं। इसके अतिरिक्त यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि भौगोलिक परिस्थितियाँ मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों पर केवल प्रभाव ही डालती हैं, उनको नियंत्रित नहीं करतीं क्योंकि मानव ईश्वरदत्त बुद्धि के द्वारा कई स्थानों पर अपनी आवश्यकतानुसार परिस्थितियों में परिवर्तन भी करता रहता है। उदाहरण के लिए विश्व के न्यून वर्षा वाले भागों में आज उसने अपनी बल-बुद्धि के सहारे पाताल-तोड़ कुएँ अथवा नहरों द्वारा सिंचाई करने के साधन अपनालिए हैं। सूखे प्रदेशों में विज्ञान द्वारा

१—देखिये E. Sample : Influence of Geographic Environment. P. 1.

वायु में नमी उत्पन्न कर वहाँ की जलवायु को सूती-वस्त्र के धन्धों के लिए उपयुक्त बना दिया है। इसी प्रकार प्रतिकूल वातावरण में कृत्रिम रूप से तापक्रम बना कर रेशम के कीड़े पाले हैं। किन्तु इतना सब होने पर भी वह प्रकृति को पूर्ण रूप से विजय नहीं कर सका है। आज भी वह मरुस्थलों में अनाज पैदा नहीं कर सका। मैदानों में सोने की खानें उत्पन्न नहीं कर सका, अथवा टुन्ड्रा में चावल या गेहूँ उत्पन्न नहीं कर सका। अतः, यह मानना ही पड़ेगा कि वह कुछ सीमा तक प्रकृति के अधीन है।

भौगोलिक परिस्थिति की कोई सुलझी हुई परिभाषा नहीं है। किन्तु कुछ ऐसे भौगोलिक तत्व अवश्य हैं जिनके अध्ययन से हम इसका अर्थ समझ सकते हैं। भौगोलिक वातावरण[1] अथवा परिस्थिति से हमारा अभिप्राय "मानव के निवास-स्थान के चारों ओर के भौतिक स्वरूपों (परिस्थितियों) से है जिनका

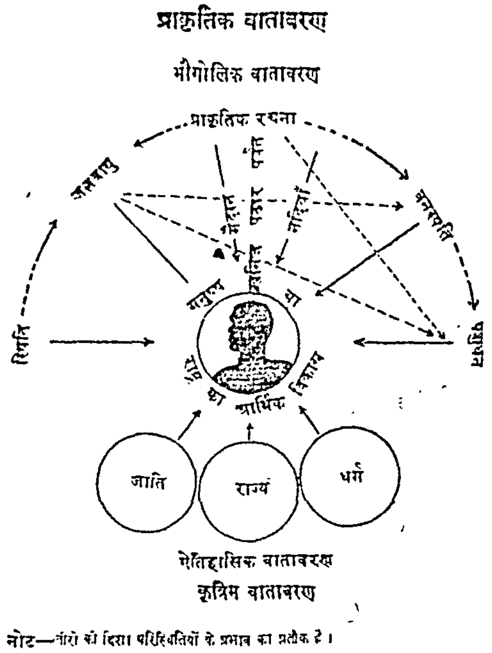

चित्र २—मानव और उसका वातावरण

प्रभाव उसके कार्यों को निर्धारित करने में पड़ता है। ऐसे स्वरूपों के अंतर्गत भूमि की रचना और उसके विभिन्न स्वरूप—पहाड़, मैदान, पठार, जलविस्तार, मिट्टी का स्वभाव (उर्वरा शक्ति या अनउपजाऊपन), क्षेत्र विशेष की स्थिति, उसकी जलवायु, वनस्पति, जीव-जन्तु, खनिज-पदार्थ और सभी सौर शक्तियों का अध्ययन किया जाता है।"

१—The term "Geographical Environment," in relation to man covers all those features of the land in which he lives, in respect of their effects upon his habit of life in whatever

प्रत्येक परिस्थिति के दो भाग किये जा सकते हैं : (क) प्राकृतिक या भौतिक परिस्थितियाँ (Physical Environment), (ख) सांस्कृतिक या मानव द्वारा निर्मित परिस्थितियाँ (Non-Physical or Cultural Environment)।

भौतिक परिस्थिति में स्थल की विशेषतायें जैसे भौगोलिक स्थिति, सीमान्त रेखायें, तट रेखा, नदी, पहाड़, पठार, चट्टानें, जलवायु के विभिन्न अंग और वनस्पति तथा जल का विस्तार आदि सम्मिलित किये जाते हैं। यह सभी साधन प्रकृति-दत्त होते हैं और इनमें सरलता से परिवर्तन नहीं किया जा सकता। किन्तु मानव इन साधनों से अपना जीवन निर्वाह करने के लिए सामंजस्य स्थापित कर लेता है।

सांस्कृतिक परिस्थिति में मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुएँ जैसे नहर, पुल, यातायात के मार्ग, खेत, नगर आदि का निर्माण, उसकी जातियाँ, धर्म, और शासन प्रणाली आदि का अध्ययन किया जाता है।

परिस्थिति के इन विभिन्न अंगों को अगले पृष्ठ के चार्ट में दिखाया जा सकता है : (चार्ट १)।

यहाँ पर विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि दोनों प्रकार की परिस्थितियाँ प्रगतिशील (Dynamic) हैं, जीवित हैं, स्थायी या मृत (Static) नहीं, अर्थात् उनमें सर्वदा परिवर्तन होता रहता है—घड़ी-घड़ी, मिनट-मिनट उनका रूप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष बदलता रहता है। नदी के किनारे आज जो हम कण देखते हैं कल वह वहाँ नहीं रहेगा। पेड़ की जिस पत्ती को आज हम हरी देखते हैं कल उसमें कुछ परिवर्तन हो जायगा। इसी भाँति जहाँ हम मरु-स्थल देखते हैं वहाँ पर सौ या दो सौ वर्ष उपरान्त बड़े-बड़े हवाई अड्डे बन सकते हैं जिनके चारों ओर पाताल-तोड़ कुओं के जल से हरे-भरे पेड़ शीतल सुन्दरता का आनन्द दे रहे हों। पाँच सौ वर्ष पहले कौन यह कह सकता था कि बीकानेर की मरु-भूमि में नहर की सिंचाई से लहलहाते खेत बन सकेंगे।

प्रो० हंटिंगटन प्राकृतिक दशाओं के मानव और उनकी क्रियाओं पर पड़ने वाले प्रभाव को इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं : (चार्ट २)।

---

connection. Such features include the surface of the land, with all its physical and natural resources ; the nature of the soil, whether fertile or infertile, well watered or dry; its position, whether insular or continental, and if continental whether coastal or island; its relation to other lands surrounding it; its climate, vegetation and mineral wealth; the distribution of land and water, mountains and plains, plants and animals and all the cosmic forces—gravitational, electric, rediational that play upon the earth and affect the life of man."

—Davis : Man and Earth.

चार्ट १—परिस्थिति या वातावरण

- भौतिक परिस्थिति
  - (१)
    - (i) स्थिति
      - (क) महाद्वीपीय
      - (ख) तटवर्ती
      - (ग) द्वीपीय
      - (घ) प्रायद्वीपीय
    - (ii) तटरेखा
      - (क) सपाट
      - (ख) कटी-फटी
    - (iii) आकार-विस्तार
      - (क) सघनाकार
      - (ख) छिन्नाकार
      - (ग) लम्बाकार
  - (२)
    - (i) भूमि के आकार
      - (क) पहाड़
      - (ख) पठार
      - (ग) मैदान
    - (ii) मिट्टी—
      - (क) रेतीली
      - (ख) दुमट
      - (ग) चिकनी
    - (iii) खनिज-पदार्थ
      - (क) धातु
      - (ख) अधातु पदार्थ
  - (३) जल विस्तार
    - (क) नदियाँ
    - (ख) झीलें
    - (ग) सागर
    - (घ) महासागर
  - (४) जलवायु और वर्षा
  - (५)
    - (i) वनस्पति
      - (क) सदावहार वन
      - (ख) पतझड़ वन
      - (ग) घास के मैदान
      - (घ) मरुस्थल
    - (ii) पशु
      - (क) मित्र पशु
      - (ख) शत्रु पशु
  - (६) सीमान्त रेखायें
    - (क) प्राकृतिक
    - (ख) कृत्रिम
- सांस्कृतिक परिस्थिति
  - (१)
    - (i) मनुष्य की जातियाँ
      - (क) पीत वर्ण
      - (ख) कृष्ण-वर्ण (या श्याम)
      - (ग) गौर वर्ण (या श्वेत)
      - (घ) ताम्र वर्ण (या लाल)
  - (२) धर्म
    - (क) बौद्ध
    - (ख) इस्लाम
    - (ग) हिन्दू
    - (घ) ईसाई
  - (३) शासन प्रणाली
  - (४) यातायात के साधन
    - (क) सड़कें
    - (ख) रेल-मार्ग
    - (ग) वायु-मार्ग
    - (घ) जल-मार्ग
    - (ङ) रेडियो आदि
  - (५) मनुष्य के कार्य
  - (६) जनसंख्या व नगरों की उत्पत्ति आदि

चार्ट २

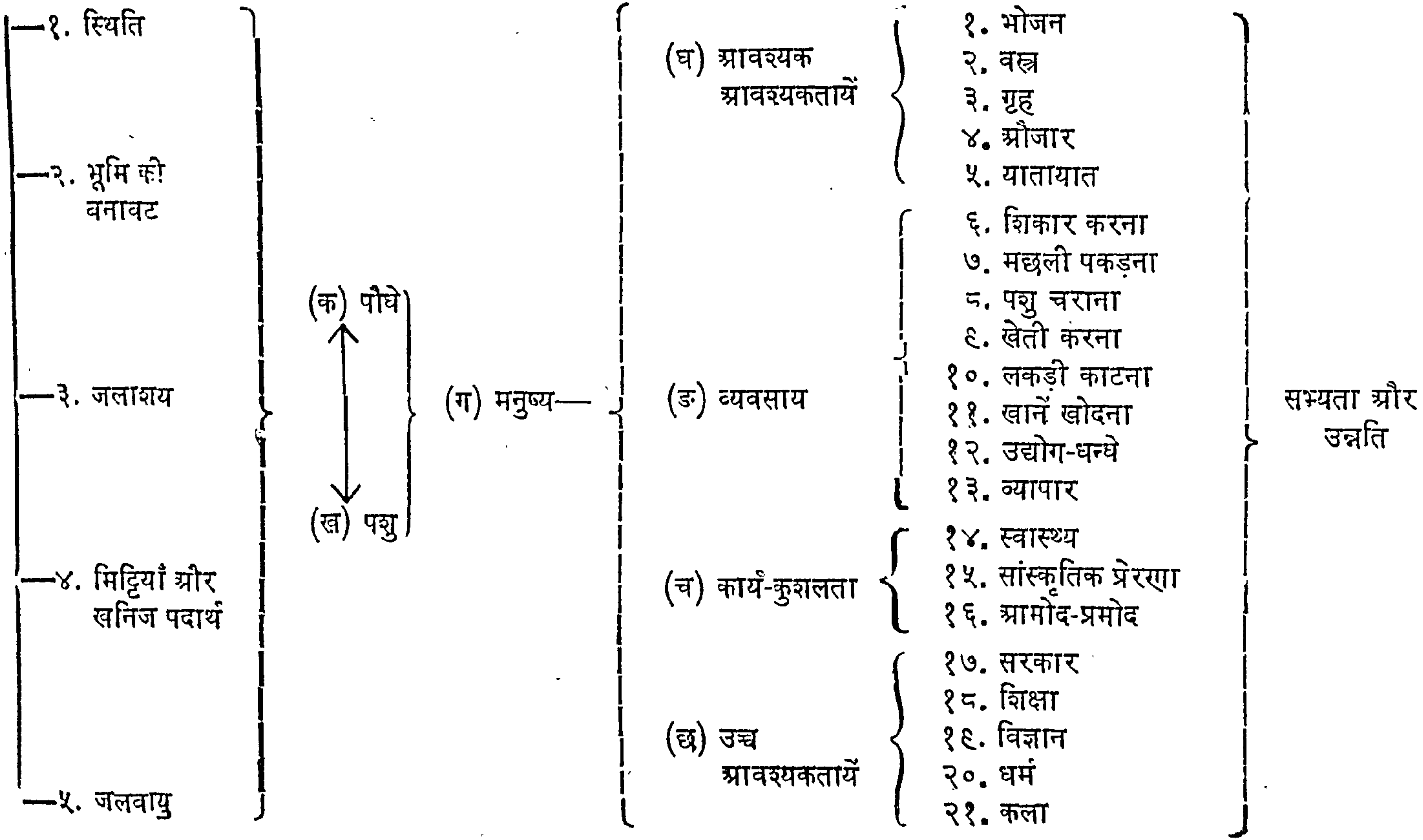
१. स्थिति
२. भूमि की बनावट
३. जलाशय
४. मिट्टियाँ और खनिज पदार्थ
५. जलवायु
(क) पौधे
(ख) पशु
(ग) मनुष्य—
(घ) आवश्यक आवश्यकतायें
१. भोजन
२. वस्त्र
३. गृह
४. औजार
५. यातायात
(ङ) व्यवसाय
६. शिकार करना
७. मछली पकड़ना
८. पशु चराना
९. खेती करना
१०. लकड़ी काटना
११. खानें खोदना
१२. उद्योग-धन्धे
१३. व्यापार
(च) कार्य-कुशलता
१४. स्वास्थ्य
१५. सांस्कृतिक प्रेरणा
१६. आमोद-प्रमोद
(छ) उच्च आवश्यकतायें
१७. सरकार
१८. शिक्षा
१९. विज्ञान
२०. धर्म
२१. कला
सभ्यता और उन्नति

(क) भौतिक वातावरण (Physical Environment)

(i) स्थिति (Geographical Location)—प्रो० हन्टिंगटन के शब्दों में "पृथ्वी के गोले पर स्थिति ही भूगोल की वास्तविक कुंजी है।"[1] पृथ्वी पर किसी भी भाग की स्थिति तब ही अनुकूल और महत्वपूर्ण समझी जा सकती है, जब कि अन्य घने बसे देशों से वह स्थान सरलता से पहुँचने योग्य हो और वहाँ की सीमान्त रेखायें प्राकृतिक हों तथा वहाँ मानव और पदार्थों के यातायात की समस्त सुविधायें वर्तमान हों और वहाँ का जलवायु सम हो अन्यथा उस क्षेत्र की स्थिति प्रतिकूल ही कही जायगी। भौगोलिक दृष्टिकोण से किसी स्थान की स्थिति मध्यवर्ती होनी चाहिये अर्थात् उस स्थान में अन्य स्थानों से पहुँचा जा सके जिससे मनुष्यों के भाव और विचारों में पारस्परिक परिवर्तन हो सके, विभिन्न जातियाँ या देश आपस में घुल-मिल जायँ तथा भाषा में परिवर्तन हो, वाणिज्य तथा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हों, सामाजिक उन्नति हो तथा राजनैतिक शक्ति का पूर्ण विकास हो।

एक क्षेत्र विशेष की स्थिति किसी भी प्रकार की हो सकती है। यदि कोई देश व्यापारिक-मार्गों से बहुत दूर महाद्वीपों के मध्य में स्थित है तो उसकी स्थिति, महाद्वीपीय (Continental) कही जायगी। रूस, पौलैंड, जेकोस्लावेकिया और बोलिविया आदि देश इस प्रकार की स्थिति के मुख्य उदाहरण हैं। ये देश संसार के प्रमुख व्यापारिक देशों से बहुत दूर हैं अतः इनकी स्थिति अनुकूल नहीं कही जा सकती। यदि कोई देश समुद्र-तट के निकट फैला हुआ है तो वहाँ की स्थिति तटवर्तीय (Coastal or Littoral) स्थिति कहलायगी। डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडेन और बाल्टिक सागर की रियासतें इस प्रकार की स्थिति के मुख्य उदाहरण हैं। नार्वे के निवासी न केवल अच्छे मल्लाह ही हैं बल्कि वे चतुर मछियारे भी हैं। इन देशों का सम्बन्ध व्यापारिक मार्गों के कारण विश्व के प्रमुख राष्ट्रों से है। इस उत्तम स्थिति के कारण ही यहाँ घी-दूध का धन्धा तथा मिश्रित खेती बहुत उन्नति कर गये हैं क्योंकि इंग्लेंड, फ्रांस, जर्मनी आदि घने बसे हुए देश इनके निकट पड़ते हैं जबकि न्यूजीलेंड तथा चिली की स्थिति उनके मार्ग में आज भी बाधा बनी हुई है। इसी प्रकार पेन्सिलवेनिया में कोयले की खानें, पश्चिमी जर्मनी में पोटाश की खानें होने के कारण न केवल यहाँ औद्योगिक केन्द्र ही पाये जाते हैं बल्कि यह भाग यातायात के साधनों द्वारा अन्य भागों से भी मिले हैं।

जो देश चारों ओर सागरों अथवा महासागरों से घिरे होते हैं उनकी स्थिति द्वीपीय स्थिति (Insular or Liner) अथवा प्रायद्वीपीय (Peninsular) कही जाती है। प्रथम प्रकार के उदाहरण ब्रिटिश-द्वीप-समूह, जापान, न्यू फाउन्डलेंड, लंका, हवाई द्वीप अथवा न्यूजीलेंड हैं। इनके चारों ओर जल है और ये देश संसार के अन्य उन्नतिशील देशों के पड़ौस में स्थित हैं। उदाहरण के लिए इङ्गलेंड के पूर्व में जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम आदि देश और पश्चिम में अमेरिका है। यह सब देश बड़े औद्योगिक और प्रगतिशील हैं। इन देशों के बीच में रहकर इंग्लैंड काफी

१—देखिये Huntington and Cushing: Principles of Human Geography, P. 3.

प्रोत्साहन व साहस प्राप्त करता है। ये देश संसार के व्यापारिक मार्गों के भी समीप हैं। यहाँ की जलवायु भी सम है जिससे यहाँ के निवासी वर्ष भर कठोर परिश्रम कर सकते हैं। अपनी उत्तम सामुद्रिक स्थिति के कारण ही इंग्लैंड के उपनिवेश दुनिया के अधिकांश भागों में पाये जाते हैं। द्वितीय प्रकार के उदाहरण इटली और भारतवर्ष हैं। मलाया, अरब, फ्रांसीसी हिन्दचीन आदि भी हैं। प्रायद्वीपीय देशों में भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। यह पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य में हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित है जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम को जाने वाले व्यापारिक-मार्ग निकलते हैं। यहाँ पूर्व और दक्षिण-पूर्व को सामुद्रिक-मार्ग चीन, जापान, इंडोनेशिया, और आस्ट्रेलिया को, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में संयुक्त-राज्य अमेरिका, यूरोप और अफ्रीका को तथा दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में लंका और दक्षिणी अफ्रीका को जाते हैं। इस प्रकार भारत पश्चिमी कला-कौशल-प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिए एक कड़ी का काम करता है। वायु-मार्गों की दृष्टि से भी भारत की स्थिति बड़ी उत्तम है। फ्रांस, इंग्लैंड, हालैंड आदि से सुदूर-पूर्व जाने वाले वायुयान सभी भारत भूमि में होकर निकलते हैं। अतः, भारत का व्यापारिक सम्बन्ध विश्व के सभी प्रमुख देशों से है।

स्थिति का प्रभाव किसी देश की जलवायु पर भी बहुत पड़ता है। जो देश निम्न अक्षांशों में फैले होते हैं उनका जलवायु विषुवत् रेखा अथवा ध्रुवों की निकटता की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है। इनकी जलवायु न अधिक गर्म, न अधिक ठण्डी तथा न अधिक सूखी और न अधिक तर होती है। अतः आधुनिक काल की सभ्यता भी इन्हीं अक्षांशों में पाई जाती है। जलवायु की उत्तमता के फलस्वरूप यहाँ के निवासियों की कार्य-क्षमता और उत्पादन शक्ति बहुत होती है। यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका और साइबेरिया के कुछ भाग आज भी सभ्यता में बढ़े-चढ़े हैं। भिन्न-भिन्न सभ्यताओं के आपसी सम्पर्क के कारण ही मानव का विकास होता है। अतः एक देश का दूसरे देश के साथ आवागमन के साधनों द्वारा सम्पर्क हो जाने के कारण न केवल उन देशों की सभ्यता में ही वृद्धि होती है, बल्कि उनका व्यापार भी बढ़ जाता है। रूस, इङ्गलैंड अथवा यूरोप के अन्य देश जिनका सम्बन्ध निकटवर्ती देशों से है वे सब उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच चुके हैं। जब कि आस्ट्रेलिया अथवा न्यूजीलैंड का सम्पर्क अन्य देशों से ठीक प्रकार न होने के कारण आज भी वहाँ पूरी तरह आर्थिक विकास नहीं होने पाया है।

उत्तम स्थिति और यातायात के साधनों के पूर्ण विकास के कारण ही उपयुक्त जलवायु वाले देशों में विभिन्न प्रकार के फल आदि पैदा किये जा सकते हैं। जैसे कैलिफोर्निया, फ्लोरिडा और दक्षिणी आस्ट्रेलिया में नारंगियाँ, मध्य अमेरिका में केले, ब्राजील में कहवा और उत्तरी-पूर्वी संयुक्त-राज्य में सेब अधिक पैदा किये जाते हैं। मध्य अक्षांशों में उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना और रूस के विस्तृत घास के मैदानों में जो खेती की जाने लगी है उसका मुख्य कारण आवागमन के साधनों की सुविधा के साथ-साथ इन मैदानों की उत्तम स्थिति है।

उत्तम स्थिति के कारण ही जिन स्थानों की प्रसिद्धि पहले नहीं हो सकी थी वे ही स्थान अब आमोद-प्रमोद के स्वास्थ्य-वर्धक स्थान बन गये हैं। उदाहरण के लिए फ्रांस में अटलांटिक सिटी और बियारिच, अर्जेन्टाइना में माइडेल पलारा, वेल्जियम में आस्टेंड और इङ्गलैंड में ब्राइटन तथा भारत में पुरी समुद्र-तट के किनारे प्रमुख आमोद-प्रमोद के स्थान बन गये हैं। उष्ण भागों में इसी प्रकार पहाड़ी स्थान हवाखोरी के क्षेत्र बन गये हैं।

किसी देश के व्यापार पर भी उस देश की स्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो देश विश्व के प्रमुख बाजारों से दूर होते हैं उनका न तो पूरा आर्थिक विकास ही होता है और न उनका व्यापार ही बढ़ पाता है। न्यूजीलैंड, अलास्का और चिली ऐसे ही देशों के उदाहरण हैं। स्वेज नहर के बन जाने के पश्चात् दक्षिणी-अफ्रीका यूरोप और एशिया के बीच के व्यापारिक मार्गों से बहुत दूर पड़ गया है। इसी कारण केपटाउन का महत्व भी बहुत कम हो गया है किन्तु पोर्ट सईद स्वेज नहर के कारण बहुत उन्नति कर गया है।

वास्तव में कुमारी एलेन के शब्दों में "स्थिति की तुलना उस तराजू से की जा सकती है जिसका एक पलड़ा जलवायु और उससे सम्बन्धित वनस्पति प्रदर्शित करता है, तथा दूसरा पलड़ा उस देश की राजनैतिक स्थिति एवं सभ्यता को बताता है।"[१]

(ii) तट रेखा (Coast Line)—संसार के विभिन्न देशों के व्यापार और वहाँ के मनुष्यों के चरित्रों पर तट-रेखा का भी प्रभाव पड़ता है। अफगानिस्तान, आस्ट्रिया, हंगरी, जेकोस्लावेकिया, बोलिविया, स्वीट्जरलैण्ड, नैपाल, भूटान आदि ऐसे देश हैं जिनकी अपनी तट-रेखा नहीं है। अतः इन देशों को अपने व्यापार के लिए तटवर्ती देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। तट-रेखा पर स्थित बन्दरगाहों को प्राप्त करने के लिए शताब्दियों से रूस और जापान अपने निकटवर्ती देशों से युद्ध करते रहे हैं। तट-रेखा का किसी देश की आर्थिक उन्नति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जिन देशों के तट अधिक कटे-फटे हैं वहाँ समुद्र देश के भीतरी भागों तक चला जाता है इससे न केवल देश का जलवायु ही समान हो जाता है और देश के अधिक से अधिक भागों में वर्षा होती है, बल्कि इन कटे-फटे तटों में समुद्री-तरंगों का वेग मन्द रहने के कारण प्राकृतिक पोताश्रयों का आधिक्य हो जाता है जिससे वहाँ बड़े-बड़े जहाज आकर ठहरते हैं और उस देश का वैदेशिक व्यापार भी बढ़ जाता है और बन्दरगाह की पृष्ठ-भूमि में उद्योग-धन्धों की प्रगति होती है। यही नहीं, समुद्री किनारे के कटे-फटे होने के कारण देश के विभिन्न भाग एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन और जापान का कोई भी भाग समुद्र-तट से २०० मील से अधिक दूर नहीं है अतः निर्यात् की जाने वाली वस्तुएँ कम व्यय में ही बन्दरगाह तक ले जाई जाती हैं और आयात की हुई वस्तुएँ जहाजों द्वारा देश के भीतरी भागों में सरलतापूर्वक भेजी जा सकती हैं। इङ्गलैण्ड, नार्वे, डेन्मार्क, हालैण्ड,

---

१—E. Sample: I bid, p. 131.

बेल्जियम, स्पेन, पुर्तगाल, चिली का दक्षिणी भाग इसी प्रकार के देश हैं जिनका सामुद्रिक-तट बहुत कटा-फटा है। अतः निरन्तर समुद्र के सम्पर्क में रहने के कारण इन देशों के निवासी न केवल निर्भीक, उत्साही और अच्छे नाविक तथा मछुए ही बन गये हैं बल्कि यहाँ के निवासियों ने नई दुनिया की भी खोज की और अपने उपनिवेश भी स्थापित किये। इनका विदेशी व्यापार भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। भारत की तट-रेखा देश के विस्तार के अनुपात में बहुत ही कम कटी-फटी है। भारत के समुद्र-तट की लम्बाई ३,५०० मील है अर्थात् यहाँ प्रति ३०० वर्गमील पीछे १ मील की तट-रेखा है। भारत का तट बहुत ही कम कटा-फटा छिलका व बालुका मंडित है जहाँ उत्ताल तरंगें नृत्य किया करती हैं। अतः देश के समुद्र-तट के निकट बड़ी-बड़ी खाड़ियाँ, उपकूलों (lagoons) अथवा प्राकृतिक बन्दरगाहों की नितान्त कमी है। पश्चिम में खंभात व कच्छ की खाड़ी और कोचीन तथा मलाबार के उपकूल, दक्षिण में मलार की छिछली खाड़ी और पूर्व में बंगाल की खाड़ी के ऊपर हुगली का मुहाना है। केवल बम्बई के बन्दरगाह को छोड़कर शेष सभी बन्दरगाह—मद्रास, विशाखापट्टनम, कलकत्ता, ओखा, कांडला और कोजीखोड़ सभी—बनावटी हैं, अतः जहाजों को तट से दूर खड़ा रहना पड़ता है। इसी तरह ब्रह्मा, बलूचिस्तान, कनाडा और रूस का उत्तरी भाग अधिक कटा-फटा होते हुए भी इन देशों के आर्थिक विकास में कोई सहयोग नहीं दे सका, क्योंकि या तो तटों के पीछे के भाग पहाड़ी अथवा मरुस्थलीय हैं अथवा वहाँ वर्ष के अधिकांश भागों में बर्फ जमी रहती है।

(iii) आकार और विस्तार (Extent)—पृथ्वी के धरातल पर जितने भी देश हैं वे सब भिन्न-भिन्न आकार और विस्तार के हैं। आकार और विस्तार का किसी देश के आर्थिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आकार तीन प्रकार का हो सकता है:—(१) सघनाकार (Compact), (२) छितरा हुआ (Scattered) अथवा (३) लंबाकार (Longitudinal)। प्रथम प्रकार का आकार भारतवर्ष, रूस, संयुक्त-राज्य अमेरिका अथवा रूमानिया देश का है। सघनाकार देशों में यातायात की सुविधा रहती है। ऐसा आकार राजनैतिक एकता में भी सहायक होता है। इन देशों में खनिज पदार्थों की उपलब्धि के कारण औद्योगिक विकास भी अच्छा होता है। द्वितीय प्रकार का आकार यूनान देश का है। इस प्रकार के आकार वाले देशों में माल के वितरण तथा यातायात के साधनों की कठिनाई रहती है। तृतीय प्रकार का आकार चिली, डेन्मार्क और नार्वे देश का है। इन देशों में कृषि-कार्य कठिन हो जाता है क्योंकि अधिक लम्बाई के कारण जलवायु में विषमता उत्पन्न हो जाती है।

किसी भी देश का आकार-विस्तार छोटा अथवा बड़ा हो सकता है, किन्तु विस्तार का प्रभाव जन-संख्या पर अवश्य पड़ता है। छोटे देश जिनकी जन-संख्या बहुत तीव्र गति से बढ़ती है वे उसके भरण-पोषण के लिए केवल कृषि पर ही निर्भर नहीं रह सकते, क्योंकि वहाँ कृषि योग्य भूमि का अभाव होता है। वहाँ चाहे गहरी खेती की जाय, रासायनिक खाद और अच्छे बीजों का

प्रयोग किया जाय अथवा यंत्रों द्वारा खेती की जाय किन्तु भूमि की उर्वरा-शक्ति एक निश्चित सीमा के पश्चात् बढ़ाई नहीं जा सकती। अतः बाध्य होकर ऐसे देशों को अन्य उद्योगों की ओर झुकना पड़ता है। जैसे—जापान और इङ्गलैंड में कृषि के अतिरिक्त मछलियाँ पकड़ना, खानें खोदना, कल-कारखाने चलाना भी आवश्यक रूप से किया जाता है। इसी प्रकार स्विट्जरलैंड में छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों की उन्नति बहुत हुई है। इन सभी देशों का वैदेशिक व्यापार भी बढ़ा है। छोटे देशों की जन-संख्या में वृद्धि होने के कारण विदेश गमन आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि १९वीं शताब्दी से ही न केवल योरोप के देशों से किन्तु चीन, जापान, और भारत से भी मनुष्यों का अन्य देशों में जाकर बसना प्रारम्भ हो गया। जिसके फलस्वरूप कनाडा, संयुक्त-राज्य अमेरिका, नोवास्कोशिया, दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, पूर्वी द्वीप समूह और लंका में विदेशियों के उपनिवेश स्थापित हो गये हैं। इन उपनिवेशों में चरागाहों और कृषि योग्य भूमि की अधिकता पाई जाती है किन्तु जन-संख्या कम है। अतः यहाँ माध्यमिक उद्योग-धन्धों की उन्नति न होकर केवल खेती अथवा पशु-पालन ही अधिक किया जाता है। अनुकूल परिस्थितियों के फलस्वरूप कहीं-कहीं पर उद्योग-धन्धे भी स्थापित किये गये हैं।

भूमि का आकार (Land Forms)

भूमि के विभिन्न आकारमानव-जीवन पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। इन आकारों के अन्तर्गत पहाड़, पठार और मैदान आते हैं। धरातल की बनावट मनुष्य के शरीर तथा उसके स्वास्थ्य और कार्य-शक्ति पर भी प्रभाव डालती है।

(क) पर्वत-प्रदेशों में मानव-जीवन—पर्वतों के निवासी सरल, हृष्ट-पुष्ट तथा परिश्रमी किन्तु मैदानों के निवासी कमजोर तथा थोड़े से परिश्रम से ही अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने वाले होते हैं। पहाड़ मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव डालते हैं। पहाड़ी क्षेत्र में भरण-पोषण के साधन बहुत ही सीमित होते हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में समतल भूमि का अभाव होता है। अतः खेती के लिये पर्याप्त भूमि हीं मिलती। किन्तु कई भागों में इन क्षेत्रों में भोज्य-पदार्थों की कमी और जनसंख्या की अधिकता के कारण पहाड़ों के ढालों पर सीढ़ीदार छोटे-छोटे क्षेत्र बनाकर कृषि की जाती है। इस प्रकार की कृषि में परिश्रम बहुत करना पड़ता है, क्योंकि पानी नीचे के भागों से पम्पों द्वारा इन स्थानों को पहुँचाया जाता है। इस प्रकार की खेती स्विट्जरलैंड, काश्मीर, नैपाल, जावा, चीन, लंका, इंडोनेशिया और जापान तथा उत्तरी इटली में की जाती है। पहाड़ी भागों में ऊँची-नीची भूमि होने, पतली और पथरीली मिट्टी की अधिकता और मिट्टी के तीव्र गति से कटकर बहते रहने के कारण खेती करने में बहुत कठिनाई पड़ती है। पहाड़ी ढाल चाय, कहवा आदि पैदावारों के लिये उपयुक्त होते हैं क्योंकि अतिरिक्त पानी बहकर चले जाने से इन पौधों की जड़ों में पानी जमने नहीं पाता और वे नष्ट नहीं हो सकते।

पहाड़ और वनस्पति—पहाड़ विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के

जन्मदाता होते हैं। साधारणतया ऊँची चोटियों पर बर्फ पड़ने के कारण किसी प्रकार की वनस्पति नहीं पाई जाती। किन्तु ज्यों-ज्यों चोटियों से नीचे जाते हैं हल्की वर्षा होने के कारण चरागाह पाये जाते हैं जिनमें भेड़-बकरियाँ पलती हैं। इनसे नीचे के भागों में घनी वर्षा हो जाने से हरे-भरे घने जंगल पाये जाते हैं जिनसे मनुष्य के लिए उत्तम प्रकार की इमारती लकड़ी मिलती है। पहाड़ों के सबसे निचले ढालों पर पतझड़ वाले वन और घास पैदा होती है जिनमें असंख्य भेड़ व बकरियाँ और गायें आदि चराई जाती हैं। यही कारण है कि पहाड़ी भागों में पशु-पालन का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। आल्पस पर्वत में स्विट्जरलैंड और नार्वे, काश्मीर, भूटान आदि में ग्रीष्म-कालीन चरागाह पाये जाने के कारण वहाँ दूध-दही का धन्धा बहुत मुख्य हो गया है। मध्य एशिया में भी पहाड़ी भागों में पशु बहुत चराये जाते हैं। आल्प्स पर्वत पर केवल ६ या ७ सप्ताह तक ग्रीष्म-कालीन चरागाह उपयोग में आ सकते हैं। किन्तु नार्वे में पशु-चारण दो महीने तक हो सकता है।[1] शीतकाल में पशु पहाड़ी चरागाहों द्वारा घाटियों में ले जाये जाते हैं। पहाड़ों के दक्षिणी ढाल उत्तरी ढालों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इन्हीं ढालों पर सूर्य की पर्याप्त किरणें और वर्षा गिरती है अतः मानव की आर्थिक क्रियाएँ इन्हीं भागों में होती हैं। उत्तरी ढाल प्रायः निर्जन ही होते हैं।

पहाड़ और जलवायु—पहाड़ किसी देश के जलवायु पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। पहाड़ों के कारण किसी देश का जलवायु न केवल ठंडा ही हो जाता है किन्तु वहाँ वर्षा भी बहुत होती है, क्योंकि जो भाप भरी हवाएँ पहाड़ों के निकट आती हैं उन्हें इन्हें पार करने के लिए विवशतः ऊँचा उठना पड़ता है और इस क्रिया में हवा नम होकर अपनी सारी तरी वर्षा के रूप में वहाँ छोड़ देती है। कहा जाता है कि भारत में हिमालय पर्वत न होता तो सारा उत्तरी भारत सहारा की तरह मरुस्थल होता। पहाड़ों के वायु-मार्गों की दिशा (windward) में उसकी विपरीत दिशा (lee-ward) की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है तथा जो भाग पहाड़ों के निकट होते हैं वहाँ पहाड़ों से दूर होने वाले स्थानों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

ग्रीष्म-काल में अधिक ठण्डे होने के कारण पहाड़ी भागों में कई उत्तम हवा-ख़ोरी के स्थान बन गये हैं। भारत में इस प्रकार के स्थानों की अधिकता है जहाँ प्रतिवर्ष मैदानों के निवासी गर्मी में प्रचण्ड और तीव्र गर्मी से बचने के लिये इन स्थानों को चले जाते हैं।

पहाड़ न केवल वर्षा ही देते हैं, बल्कि वे किसी देश को ठण्डी हवाओं से भी बचाते हैं। उत्तरी रूस की ओर से आने वाली ठण्डी हवाएँ हिमालय पर्वत के कारण भारत में नहीं जा सकतीं और इसलिये भारत एक गर्म देश रह जाता है। जब कि उत्तरी कनाडा से आने वाली ठण्डी हवाएँ दक्षिणी संयुक्त-राज्य अमेरिका तक शीतकाल में चली जाती हैं इसलिए वहाँ का तापक्रम बहुत नीचा हो जाता

१—देखिये, B. Winchester : The Swiss Republic, p. 307.

है। अगर रॉकी और एन्डीज पर्वत बजाय उत्तर से दक्षिण होने के, पूर्व से पश्चिम की ओर फैले होते तो उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका का जलवायु भी भारत ही की तरह सुन्दर होता।

पहाड़ देश को बाहरी आक्रमण से भी बचाते हैं। भारत के उत्तरी और पूर्वी भागों पर अवेध्य पर्वतों के कारण विदेशी भारत में न आ सके। परन्तु, उत्तरी-पश्चिमी भागों में खैबर, बोलन आदि दर्रों के कारण सदैव ही मुस्लिम आक्रमणकारी भारत में आते रहे।

पहाड़ मैदानों की अपेक्षा कम बसे होते हैं। विश्व के बहुत ही थोड़े नगर पहाड़ी भागों में बसे हैं। यही कारण है कि उच्च हिमालय, आल्पस, रॉकी या एण्डीज पर्वत अथवा मध्य एशिया के पहाड़ी भाग मानव से शून्य हैं जब कि गङ्गा, राईन अथवा सेंट लारेंस के मैदान मानव-निवास से परिपूर्ण हैं। दक्षिणी नार्वे का धरातल पहाड़ी होने के कारण समुद्री जलवायु के होते हुए भी बहुत ही कम आबाद है। यहाँ प्रति वर्ग मील २१ से भी कम व्यक्ति निवास करते हैं। अतः प्रत्यक्ष रूप से धरातल की बनावट किसी प्रदेश की आर्थिक उन्नति की सीमा को निर्धारित करती है। ऊँचे पहाड़ों से भरे हुए प्रदेश की आर्थिक उन्नति अधिक नहीं हो सकती क्योंकि उपजाऊ भूमि के अभाव, पथरीली ढालू भूमि और प्रतिकूल जलवायु के कारण न तो यहाँ खेती-बारी ही अधिक हो सकती है और न उद्योग-धन्धों की ही उन्नति हो सकती है और न मार्गों की ही सुविधा है। यही कारण है कि ऐसे प्रदेशों में आबादी घनी नहीं होती। हिमालय के कांगड़ा, कुमायूँ और गढ़वाल जिलों में गाँवों का रूप बहुत छितरा हुआ होता है। ये गाँव अधिकतर घाटियों में पाये जाते हैं क्योंकि वहाँ थोड़ी भी समतल भूमि मिल जाने पर उसमें सिचाई कर खेती की जा सकती है।[1] चीन और तिब्बत में इस प्रकार के छितरे हुए गाँव बहुत पाये जाते हैं। जापान में जन-संख्या अधिक होने के कारण पहाड़ों के ढालों पर खेती की जाती है—क्योंकि कुल भूमि का केवल १५·७% भाग खेती के योग्य है।[2] साधारणतया जन-संख्या का जमाव सँकरी घाटियों अथवा नदियों के किनारे होता है। पहाड़ी प्रदेशों के निवासियों के मुख्य धन्धे पशु-पालन, खान खोदना, लकड़ी चीरना आदि हैं जिन पर अधिक आबादी निर्भर नहीं रह सकती।

पहाड़ी क्षेत्र मनुष्यों को अपनी शरण में भी लेते हैं क्योंकि आने-जाने के मार्गों की कठिनाइयों तथा पहाड़ों में बने मार्गों और पगडंडियों से विदेशियों के अपरिचित होने के कारण पहाड़ों के भीतरी भागों तक पहुँचना बहुत असम्भव है। अतः पहाड़ी निवासियों के जीवन पर न तो बाहरी आक्रमणों का कोई प्रभाव ही पड़ता है और न उनके रीति-रिवाज और भाषा आदि पर ही कोई प्रभाव पड़ता है। इसलिए आज भी पहाड़ी क्षेत्रों में अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, विदेशियों के प्रति अविश्वास की भावना और तीव्र धर्मान्धता और अपने निवास

१—Baden Powell : The Indian Village Community, p. 57-58.
२—A Stead : Japan by Japanese, p. 425.

स्थान और परिवार के प्रति अटूट प्रेम पाया जाता है। निरन्तर परिस्थितियों से लड़ते रहने के कारण वे बड़े वीर, साहसी, परिश्रमी, उद्योगी, ईमानदार और मितव्ययी होते हैं।[1] इनके पुट्ठे और पाँव बड़े मजबूत, छाती चौड़ी और सुन्दर स्वास्थ्य होता है। इनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य "To have and to hold" रहता है। वास्तव में सभ्य समाज से विलग होने के कारण तथा आधुनिक परिस्थितियों से अपरिचित रहने के कारण वे बड़े अज्ञानी और अपढ़ रह जाते हैं। फलतः न तो उनमें किसी प्रकार की उन्नति ही हो सकती है और न क्षेत्रों का व्यापार अथवा वाणिज्य ही बढ़ सकता है।

पहाड़ और खनिज-पदार्थ—पहाड़ों का सबसे अधिक लाभ इस बात में है कि उनकी चट्टानों में अनेक प्रकार के बहुमूल्य खनिज-पदार्थ प्राप्त होते हैं। अतः पहाड़ी भागों में बहुत समय से खानें खोदना एक मुख्य व्यवसाय हो गया है। भारत के दक्षिणी पठार पर मैंगनीज, लोहा, सोना आदि पदार्थ; दक्षिणी अफ्रीका और ब्राजील में सोना तथा हीरा और बिहार-उड़ीसा में कोयला आदि पाये जाते हैं। इन पदार्थों से औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिलता है तथा देश का व्यापार बढ़ता है। शीतोष्ण प्रदेशों में पहाड़ों से निकलने वाले झरनों से जल-विद्युत शक्ति का विकास भी किया जाता है। नार्वे, स्वीडेन, स्पेन, स्विट्ज़रलैंड, इटली तथा दक्षिणी भारत में ऐसे ही अनेक जल-प्रपातों से जल-विद्युत शक्ति प्राप्त की गई है जिससे लकड़ी चीरने, लुब्दी व कागज बनाने, एल्यूमीनियम तथा हवा से नाइट्रोजन प्राप्त करने का उद्योग, सूती, रेशमी व ऊनी कपड़ों के कारखाने चलाये जाते हैं।

पहाड़ और उद्योग—यातायात के मार्गों की असुविधा के कारण पहाड़ी भागों में उद्योग और व्यवसाय का पूर्ण विकास नहीं होता। पहाड़ी जातियाँ केवल ऐसा सामान तैयार करती हैं जो मूल्य में अधिक परन्तु वजन में हल्का होता है। यही कारण है कि स्विट्जरलैंड के निवासी घड़ियाँ बनाने, फीता बनाने, लकड़ी पर खुदाई का काम करने और लोहे और ताँबे पर नक्काशी का कार्य करने, दवाइयाँ और बिजली का सामान बनाने में बड़े चतुर हो गये हैं।[2] काश्मीर में शाल-दुशाले, पश्मीने और अन्य ऊनी माल तथा लकड़ी पर खुदाई का काम अच्छा होता है। नार्वे और स्वीडेन में भी लकड़ी की खुदाई का काम अच्छा किया जाता है।

पहाड़ और यातायात के साधन—पर्वत यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों के विकास में बाधा डालते हैं क्योंकि समतल भूमि के अभाव में सड़कें अथवा रेलें आदि नहीं बनाई जा सकतीं और यदि बनाई भी जायँ तो उनके निर्माण में बड़ा व्यय पड़ता है। अतः यह प्रदेश उद्योग और व्यापार के विकास में अति सीमित और पिछड़े हुए होते हैं। माल ढोने के लिए हिमालय पर्वतों में बैल, यॉक, बकरियाँ, खच्चर, गदहे; एंडीज और रॉकी पर्वतों पर लामा और

१—E. Sample : I bid, p. 601.

२—E. F. Knight : Where Three Empires Meet, p. 40.

अल्पाका अथवा कई क्षेत्रों में मनुष्यों को ही बोझा ढोने में हाथ बँटाना पड़ता है। फिर भी मनुष्य ने पहाड़ों द्वारा प्रस्तुत की गई बाधाओं को पार करके उनमें सुरंगें खोदकर रेल-मार्ग और मोटर मार्ग निकाल लिए हैं। इटली के आल्पस पर्वत में होकर स्विट्जरलैंड को जाने के लिए ६ बड़ी-बड़ी सुरंगें हैं यथा सिम्पलन, सेंटगोथार्ड, वर्नार्ड, ब्रैनर और माउंट सेनिस जिनमें होकर बिजली की रेलें दौड़ा करती हैं। इन्हीं रेल-मार्गों द्वारा स्विट्जरलैंड की इतनी उन्नति हुई है। इसी प्रकार पूर्वी संयुक्त-राज्य को जाने के लिए पश्चिमी रॉकी पर्वत में किंकिंग हार्स पास और कैलगरी दर्रों में होकर रेल-मार्ग निकाले गये हैं। भारत में भी पश्चिमी घाट में थालघाट और भोरघाट दर्रों द्वारा उत्तर और दक्षिण तथा उदयपुर और जोधपुर डिवीजन के बीच पीपलीघाट के दर्रों में होकर रेल-मार्ग बनाये गये हैं जिनसे आना-जाना सुलभ हो गया है।

(ख) पठारों का मानव-जीवन पर प्रभाव—पठारों पर वर्षा अच्छी होती है। पानी का बहना असुविधाजनक होता है। जलवायु ठंडा और नम होता है। ऐसे पठार मनुष्यों के लिए सुविधाजनक रूप से बसने के अयोग्य होते हैं।

पुराने पठार सख्त चट्टानों के बने होते हैं। ऋतु परिवर्तन से उनके धरातल पर कमजोर मिट्टी मिलती है। ऐसी ऊँचाई पर पठार खेती के अयोग्य मिट्टी वाले तथा मनुष्यों के कार्य करने के अयोग्य होते हैं। लेकिन ऐसे पठार जहाँ ज्वाला-मुखियों के उद्गार से लावा नाम की उपजाऊ मिट्टी बिछा दी गई है वे पठार खेती तथा मानव जीवन के उपयोगी बन गये हैं। ऐसे पठारों में फ्रांस का मध्य पठार और दक्षिणी भारत के पठार की उपजाऊ और काली मिट्टी रुई उपजाने के लिये उपयोगी है।

कभी-कभी अधिक छिन्न-भिन्न क्षत-विक्षत पठार मनुष्यों को किसी भी प्रकार का कार्य करने में हतोत्साह बना देते हैं। कई पठार तो इतने अधिक ऊँचे होते हैं कि मनुष्य वहाँ रह कर कोई काम नहीं कर सकते जैसे तिब्बत का पठार या बोलिविया का पठार। किन्तु कभी-कभी पठारों की साधारण ऊँचाई भी उनकी उन्नति का कारण होती है जैसे उष्ण-प्रदेशों में ये पठार आस-पास के मैदानों की अपेक्षा ठंडे होते हैं। पूर्वी अफ्रीका के पठार और दक्षिणी अफ्रीका के वैल्ड के पठार उनके ठंडे होने के कारण गोरों के बसने योग्य बने हैं। उष्ण-कटिबन्धों के पठारों पर घास के मैदान होने से आशा की जाती है कि यहाँ भविष्य में अच्छे खाद्य-पदार्थ एवं दूध-सम्बन्धी पदार्थों का निर्माण किया जा सकेगा।

पुराने पठारों में अच्छे खनिज-पदार्थ पाए जाते हैं—जैसे मध्य भारत; पश्चिमी अफ्रीका और ब्राजील में मैंगनीज; कनाडा और पश्चिमी आस्ट्रेलिया में सोना; दक्षिणी अफ्रीका में ताँबा और हीरे। यूरोप के पठारी भाग में भी सोना और कोयला जैसे उपयोगी खनिज पाये जाते हैं जिनसे उनके पास अच्छे कल-कारखाने स्थापित किये गये हैं।

मैदान और यातायात के साधन—मैदानी भू-भागों में समतल भूमि और मुलायम धरातल होने के यातायात के साधनों के बनाने में बड़ी सुविधा होती है। मैदानों में न केवल रेलें और सड़कें ही सुगमता से बनाई जा सकती हैं बल्कि नदियाँ भी धीमी बहने के कारण उत्तम जलमार्ग प्रदान करती हैं। भारत की गंगा और ब्रह्मपुत्र, पाकिस्तान की सिंधु, चीन की यांगटीसीक्यांग, यूरोप की राइन, रोन, डेन्यूब और वाल्गा में तथा अमेरिका की सेंट लारेंस और मिसीसिपी तथा दक्षिणी अमेरिका की अमेज़न नदियों में जहाज चलाये जाते हैं। चीन, रूस, ब्राजील और कोलम्बिया तथा मध्यवर्ती अफ्रीका में रेल-मार्गों की कमी के कारण यातायात का कार्य नदियों पर ही निर्भर है। मैदानों में जैसे झील-प्रदेश, फ्रांस, जर्मनी या इङ्गलेंड और रूस में नहरों द्वारा भी यातायात की सुविधा होती है। सपाट भूमि होने के कारण वायुयान के ठहरने के स्थान भी मैदानों में ही बनाये जाते हैं।

मिट्टी (Soil)

प्राकृतिक साधनों में मिट्टी का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि मानव की आवश्यकताओं की सभी वस्तुएँ—भोजन, वस्त्र, आश्रय—मिट्टी द्वारा ही प्राप्त होते हैं। जिन देशों अथवा क्षेत्रों की मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है वहाँ मानव का मुख्य व्यवसाय खेती करना होता है और फलतः वहाँ जन-संख्या भी सघन होती है। भूमि की उर्वरा शक्ति के कारण ही आज संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, चीन और भारत विश्व के प्रमुख कृषि-प्रधान देश हो गये हैं। किन्तु, रेतीली अनउपजाऊ मिट्टी के कारण पश्चिमी संयुक्त-राज्य, सहारा तथा थार के मरु-स्थलों में अब तक खेती नहीं की जा सकी है और इसी कारण यह प्रदेश विश्व के उजाड़ और निर्जन स्थानों में गिने जाते हैं। किसी स्थान के मिट्टी का प्रकार यह भी निश्चित करता है कि वहाँ किस प्रकार की वनस्पति पाई जायगी। उदाहरण के लिए उन देशों में जहाँ भूमि अच्छी होती है, सघन वन पाये जाते हैं, किन्तु रेतीली भूमि में केवल यत्र-तत्र काँटेदार झाड़ियाँ ही पैदा हो सकती हैं।

खनिज पदार्थ (Mineral Resources)

किसी देश की भूगर्भिक रचना का उसके प्राकृतिक धरातल पर बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि भूगर्भिक सम्पत्ति ही यह निश्चित करती है कि किन देशों में उनसे सम्बन्धित उद्योग हो सकते हैं और कौन से देश इसके अभाव में निर्धन रह जाते हैं। बहुधा जिन देशों में पुरानी कठोर चट्टानें पाई जाती हैं, वहाँ खेती का उद्योग भूमि की अनउर्वरता के कारण नहीं किया जा सकता, किन्तु यह चट्टानें धातु पदार्थों में बड़ी धनी होती हैं। इस प्रकार की चट्टानों के क्षेत्र मुख्यतः ब्राजील के पठार, गायना की उच्च सम-भूमि, अफ्रीका का अधिकांश दक्षिणी भाग, अरब, प्रायद्वीपीय भारत, इंडोचीन, आस्ट्रेलिया का पठार, मध्य साइबेरिया, स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप, स्काटलैंड के पहाड़, उत्तरी-पश्चिमी आयरलैंड, कनाडा की लारेंस शील्ड और रूस का मध्यवर्ती भाग आदि हैं। इन सभी भागों में धातु पदार्थों का बाहुल्य पाया जाता है जब कि नवीन मुलायम चट्टानों वाले क्षेत्र खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त होते हैं अथवा इन क्षेत्रों में कोयला और मिट्टी

का तेल बहुत पाया जाता है। इस प्रकार के मुख्य क्षेत्र उत्तरी अमेरिका के मध्यवर्ती मैदान, दक्षिणी अमेरिका, ओरीनीको, अमेजन और पीरेग्वे नदियों के मैदान और आस्ट्रेलिया के मध्यवर्ती मैदान आदि हैं। इन सभी मैदानों में बड़ी विस्तृत मात्रा में खेती की जाती है। कई भाग मिट्टी के तेल और कोयले में धनी हैं। खनिज-पदार्थों का किसी स्थान पर पाया जाना वहाँ मनुष्य को रहने में आकर्षित करता है। पूर्वी आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और अलास्का इसके प्रमुख उदाहरण हैं। पश्चिमी आस्ट्रेलिया पूर्णत. मरुस्थल होते हुए भी अपनी कालगूर्ली और कूलगार्डी की सोने की खानों के कारण अंग्रेजों को विषम जलवायु होते हुए भी रहने के लिए आकर्षित कर सका है। इसी प्रकार अलास्का में सोने और दक्षिणी अफ्रीका में सोना, पन्ना और हीरा आदि की खानों के निकट अंग्रेज अधिक मात्रा में जाकर बस गये हैं। भारत में भी खनिज-पदार्थों की उपलब्धता के कारण छोटा नागपुर का पठार आकर्षण का केन्द्र हो गया है।

यह सच है कि भौतिक रचना की अपेक्षा भूगर्भिक रचना के प्रभाव पर मानव ने पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नहीं की तथापि भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने के लिए वह रासायनिक खादों का प्रयोग कर सका है। फ्रांस के लैन्डस और राजस्थान के मरुस्थल के बढ़ते हुए टीलों को रोकने के लिए उसने वृक्षारोपण कर कुछ सीमा तक सफलता प्राप्त कर ली है अथवा दलदली भूमि को सुखा कर (जैसे हालैंड अथवा तराई में) नवीन भूमि प्राप्त कर ली है अथवा वर्षा की कमी पर नहरें बनाकर विजय प्राप्त कर ली है, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि इन सब कार्यों में उसे आंशिक रूप से ही सफलता प्राप्त हुई है। क्योंकि इतना सब करने पर भी आज वह उन स्थानों में सोना या कोयला उत्पन्न नहीं कर सका है, जहाँ भूगर्भ में उनके अस्तित्व का कोई चिन्ह नहीं पाया जाता।

जल-विस्तार (Water Bodies)

जलाशय के अंतर्गत झीलें, सागर और महासागर आते हैं—इन सब का स्थलवासियों के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। सूर्य की गर्मी से जो भाप बनती है वही बादल के रूप में होकर पानी बरसाती है जिसके फलस्वरूप पहाड़ियों से नदियाँ निकलती हैं—इनके द्वारा देश में सिंचाई होती है। वर्षा होने पर कई प्रकार की वनस्पति पैदा होती है जिस पर मनुष्यों और पशुओं का जीवन निर्भर है। शीतोष्ण कटिबन्ध के समुद्रों में असंख्य प्रकार की मछलियाँ रहती हैं, जो मनुष्यों का मुख्य भोजन है। ग्रेट ब्रिटेन, नार्वे, न्यूफाउन्डलैंड, ब्रिटिश कोलंबिया और जापान तथा न्यूजीलैंड में मछली पकड़ना राष्ट्रीय उद्योग बन गया है। गहरे समुद्र में मछली पकड़ने के जहाज संचालन की शिक्षा भी मिलती है। यही कारण है कि इन देशों के निवासी साहसी व सामुद्रिक व्यवसाय में कुशल बन गये हैं। समुद्र व्यापार के लिए भी बड़े उपयोगी हैं। प्राचीन समय में जब नौ विद्या (Shipping) की उन्नति नहीं हुई थी तब समुद्रों के कारण एक देश दूसरे देश से बिल्कुल अलग था। किन्तु आजकल सबसे अधिकतम व्यापारिक मार्ग समुद्र ही है। इनके द्वारा एक दूसरे देश से सुगमतापूर्वक व्यापार कर सकते हैं।

झीलों से हमें बहुत से लाभ प्राप्त होते हैं—

(१) एक साथ कई झीलें मिल कर किसी नदी द्वारा संयुक्त होकर छोटी-छोटी नहरों द्वारा मिलकर व्यापारिक जल मार्ग प्रदान करती हैं। उत्तरी अमेरिका में सेन्ट लारेन्स नदी द्वारा संयुक्त बड़ी झीलों में जहाज चलाये जाते हैं। इन झीलों में होकर बहुत बड़ी मात्रा में गेहूँ, कच्चा लोहा, तांबा और कोयला बाहर भेजा जाता है। शिकागो और टोरेन्टो नगर बड़ी झील पर स्थित होने के कारण ही तो इतने प्रसिद्ध हैं।

(२) यदि झीलें बड़ी हुई तो समुद्र की तरह वे भी जलवायु पर प्रभाव डालती हैं। ग्रीष्म ऋतु में उनके कारण निकटवर्ती स्थान ठन्डे और शीत में गरम रहते हैं। कनाडा की झीलों का प्रायद्वीप (Lake Peninsula) ह्यूरन, इरी और ओन्टेरिया झीलों के बीच में है इससे इसका जलवायु बहुत मौतदिल (सम) रहता है। अतः वहाँ कई प्रकार के फल उत्पन्न किये गये हैं।

(३) पर्वतीय झीलें अपने स्वच्छ और निर्मल गहरे जल, सुन्दर वृक्षों और प्राकृतिक दृश्यों के कारण आसपास के भूभाग को ग्रीष्मावास के उपयुक्त बनाती हैं। स्विट्जरलैन्ड की जिनेवा, कांसटेंस, लुसर्न झीलें; इटली की गार्डो, मैंग्वायर तथा कोमों; इंगलैन्ड की लेक डिस्ट्रक्ट की विडरमियर, थर्लमियर आदि दूसरी झीलें तथा काश्मीर की डल, ऊलर और नैनीताल तथा कोडेकनाल झीलें प्रतिवर्ष सैकड़ों व्यक्तियों को स्वास्थ्य लाभ करने के लिये आमंत्रित करती हैं।

(४) नदियों के बीच पड़ने वाली झीलें नदी के बहाव को नियमित बनाकर वर्षा ऋतु में आने वाली भयंकर बाढ़ों को रोकती हैं और नदी में जल की मात्रा भी वर्ष भर नियमित ही रहती है। जिनेवा झील, रोन नदी, तानल सेप मिनांग नदी और मध्य स्विटजरलैन्ड की झीलें पो नदी की शाखाओं में बाढ़ आने से रोकती हैं। यही नहीं, ऐसी नदियों वाली झीलें जल पथ, पीने का जल तथा आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई के साधन भी प्रदान करती हैं।

(५) झीलें जल के प्राकृतिक भंडार हैं। विश्व के अधिकांश भाग में बड़े-बड़े शहरों में पीने का पानी पहाड़ी झीलों से ही प्राप्त किया जाता है। ग्लासगो नगर में पीने का पानी लॉक कैट्रीन (Lock Katrine) से, लिवर पुल में वेल्स की विर्निवी (Vyrnyway) झील से, मैन्चेस्टर में थर्लमियर (Thirlmere) से और न्यूयार्क में कैट्सकिल्स (Catskills) झीलों से आता है।

(६) बड़ी-बड़ी झीलों—बेकाल, ग्रेट लेक्स और जयसमुद्र आदि से मछलियाँ और घोंघे आदि रखने की वस्तुयें भी मिलती हैं।

(७) पृथ्वी की खारे पानी की झीलों से भिन्न-भिन्न प्रकार के नमक तथा रासायनिक द्रव्य प्राप्त होते हैं। साधारण खाने का नमक (Common Salt) भारत में सांभर, पचभद्रा, लूनकरनसर झीलों से और एशिया की मृतक सागर से; सुहागा (Borax) तिब्बत और बोलिविया की झीलों से; सोडियम कार्बोनेट

(Sodium Carbonate) केनिया की मागडी सोडा झील (Magdi Soda Lake) से तथा जवाखार (Potassium Salts) मृतक सागर से प्राप्त होते हैं।

(८) प्राचीन शुष्क झीलों की तहें सुन्दर उपजाऊ मैदान प्रदान करती हैं। कैस्पीयन सागर के उत्तर में ऐसा ही उपजाऊ मैदान बन रहा है। प्राचीन काल की अगसीज़ (Agassiz) झीलों के सूख जाने से कनाडा और बोनविले (Bonville) झीलों के सूख जाने से संयुक्त राज्य में २०,००,००० वर्ग मील क्षेत्रफल का उपजाऊ मैदान है। काश्मीर की सुन्दर घाटी भी उसमें स्थित ३५० झीलों के सूख जाने से ही बनी है।

(९) पहाड़ी स्थानों के निकट झीलों के जल से जल-विद्युत प्राप्त की जाती है। संयुक्त राज्य में कोलोराडो नदी पर बोलडर बाँध (Boulder dam) और कूली बाँध, पश्चिमी घाट में वाइटिंग और फाइफ झीलों से बिजली उत्पन्न की जाती है।

समुद्री धारायें भी समुद्र के किनारों के रहने वाले लोगों के जीवन पर कई तरह से प्रभाव डालती हैं। उनमें से प्रधान ये हैं—

(१) धारायें समुद्र के व्यापारिक मार्गों पर प्रभाव डालती हैं। इनका महत्व प्राचीन समय के हवा द्वारा चलने वाले जहाजों के लिये अधिक था। जिस समय पुर्तगाल के मल्लाह भारत आते थे तो वे आते समय दक्षिणी-पश्चिमी मानसून धाराओं और लौटते समय उत्तरी-पूर्वी मानसून धाराओं से सहायता लिया करते थे।

(२) धारायें अपने किनारे के देश के जलवायु पर भी प्रभाव डालती हैं। जब ठन्डी धारायें किसी महाद्वीप के किनारे पर पहुँचती हैं तो उस प्रदेश को ठन्डा तथा जब गर्म धारा किसी महाद्वीप के किनारे पहुँचती हैं तो उसको गर्म बना दिया करती हैं। उदाहरण के लिये लेब्रोडोर और इङ्गलैन्ड एक ही अक्षांशों में स्थित हैं फिर भी ठन्डी धारा के प्रभाव से लेब्रोडोर ठन्डा और गर्म धारा के प्रभाव से इङ्गलैन्ड गर्म रहता है।

(३) जब कोई ठन्डी धारा गर्म धारा से मिलती है तो वहाँ कोहरा उठा करता है और वे स्थान मछलियाँ पकड़ने के उत्तम क्षेत्र बन जाते हैं। ऐसे स्थानों में न्यूफाउन्डलैन्ड और जापान द्वीप समूह के पास के प्रदेशों की गिनती की जा सकती है।

(४) धारायें समुद्र के किनारे पर नदियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ पदार्थ बहा ले जाती हैं और किनारों को उथला होने से बचा कर अच्छे बन्दरगाह बनाने में सहायता करती हैं।

(५) धाराओं से समुद्र के पानी में गति होती रहती है, इस तरह वे स्थिर समुद्रों की भाँति उनको जमने से बचाती हैं। समुद्रों के खुले रहने से उन समुद्रों के पास के प्रदेशों का व्यापार बढ़ता है।

ज्वार-भाटा से निम्नलिखित लाभ होते हैं:—

(१) ज्वार-भाटा मनुष्य के लिये परम उपयोगी सिद्ध हुआ है। आधुनिक काल में ज्वार-भाटा का उपयोग अधिकतर सामुद्रिक जहाजों को बन्दरगाहों में जल बढ़ जाने से तट तक लाने में किया जाता है। उथले समुद्रों, खाड़ियों और मुहाने पर बसे हुये बन्दरगाहों के लिये ज्वार-भाटा बड़े काम का होता है। ज्वार आने पर पानी इतना गहरा हो जाता है कि बड़े-बड़े जहाज सुगमता पूर्वक अन्दर आ सकते हैं और भाटा होता है तो लौटते पानी के साथ बन्दरगाह से बाहर निकल सकते हैं। भूमध्य सागर जैसे बन्द सागर में ज्वार-भाटा नहीं आने के कारण ही नील, पो और रोन नदियों के मुहाने पर उत्तम बन्दरगाह नहीं पाये जाते। इसके विपरीत टेम्स, राइन, ऐल्ब, राइन, गंगा, ईरावदी, सैवर्न, दजला आदि नदियों के मुहाने पर उत्तम बन्दरगाह है क्योंकि उनमें ज्वार-भाटा आते हैं।

(२) समशीतोष्ण कटिबन्ध के पोताश्रयों तथा बन्दरगाहों को ज्वार-भाटा हिम-मुक्त रखता है क्योंकि ज्वार-भाटा के कारण जल में निरन्तर हलचल होती रहती है तथा नदी के स्वच्छ जल के साथ समुद्र का खारा जल मिलकर बर्फ को गलाने में सहायक होता है।

(३) ज्वार-भाटा नदियों द्वारा लाई मिट्टी और कीचड़ तथा कूड़ा-करकट को समुद्र में बहा ले जाता है जिनसे नदियों के मुहाने स्वच्छ और व्यापार के लिये जलयात्रा के योग्य बने रहते हैं।

(४) ज्वार का जल सागर तट की नरम चट्टानों को निरन्तर रगड़कर तट की आकृति को परिवर्तित करता रहता है। यह चट्टानों के छोटे-छोटे टुकड़ों को तट पर जमा करके रॉक-बीच (Rock Beach) तथा इन खंडों को भी अधिक सूक्ष्म रेतीले पदार्थों में चूर्ण करके तथा तट पर जमा करके सैंड-बीच (Sand Beach) का निर्माण करता है। कहीं-कहीं बड़ी चट्टानों से आवृत नरम चट्टानों का निचला अंश ज्वार के जल द्वारा रगड़ खाकर बह जाता है तथा कन्दरायें (Caves) और महराव (Arches) बन जाते हैं।

(५) अब तो ज्वार-भाटे से शक्ति भी उत्पन्न की जाने लगी है।

जलवायु (Climate)

प्रो० केस और बर्गस्मार्क के अनुसार जलवायु हमारे भौतिक वातावरण का अनिश्चित उपकरण है।[1] इसका प्रभाव मानव की प्रत्येक क्रियाओं पर पड़ता है। यहाँ हम जलवायु के प्रभाव का विस्तृत विवेचन करेंगे।

जलवायु और सभ्यता—मनुष्य की सभ्यता पर जलवायु का बहुत बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे ही हुआ क्योंकि नदियों के पानी ने खेती के कार्य और मनुष्य के निवास

१—Case and Bergsmark : College Geography, 1954, p. 37.

को बहुत सरल बना दिया था। उदाहरण के लिये नील नदी की घाटी में मिश्र की सभ्यता, फरात नदी की घाटी में बेबीलोनियाँ की सभ्यता, सिन्धु नदी की घाटी में हिन्दुओं की मोहनजोदड़ो की सभ्यता और ह्वाँगहो की घाटी में चीन की सभ्यता फली-फूली। इन सब घाटियों में लगभग एक-सी जलवायु पाये जाने के कारण इनकी सभ्यता में भी समानता थी। इसके पश्चात् रूमसागरीय सभ्यता का विकास हुआ और यह अधिक जलवृष्टि वाले प्रदेशों में फैली। इस प्रकार जब अधिक वर्षा का होना भी बन्द हो गया तो इस सभ्यता का भी अन्त हो गया। इसमें कोई शक नहीं कि मध्य एशिया के लुटेरों के हमले यूरोप के देशों पर इसलिये होते थे कि उनके प्रदेशों में जल वृष्टि के अभाव के कारण कोई वस्तु पैदा नहीं हो सकती थी।

यह सच है कि मनुष्यों ने गर्म भागों में जन्म लिया, किन्तु उनकी वृद्धि शीतोष्ण प्रदेशों में हुई। गरम प्रदेशों में पिछड़े हुये मानव ने अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति बिना किसी परिश्रम के ही की क्योंकि इन प्रदेशों में प्रकृति इतनी उदार है कि उसे अपने भोजन और वस्त्र प्राप्त करने के लिये अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इसलिये इन प्रदेशों में निवासी साधारणतया बहुत ही सुस्त और असभ्य रह गये हैं। इसका मुख्य उदाहरण हमें पूर्वी द्वीप समूह, काँगो और अमेजन की घाटियों के निवासियों के जीवन से मिलता है। इन्हें प्रकृति द्वारा बिना किसी प्रयत्न के ही केले, फल, मछलियाँ अथवा पशु भोजन के लिये मिल जाते हैं। उष्ण तथा तर जलवायु के कारण वस्त्रों की आवश्यकता नहीं रहती। अस्तु ये प्रायः नंगे ही रहते हैं। किन्तु ध्रुव प्रदेशों में रहने वाले एस्किमों और लैप्स को (जिन्हें बहुत ही कठोर शीत में रहना पड़ता है) पिगमियों, पेपुओं अथवा अमेजन के लोगों की अपेक्षा वस्त्र और भोजन के लिये अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

जलवायु का मानव की कार्य शक्ति पर प्रभाव—जलवायु का कार्य शक्ति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भूगोल के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० हन्टिंगटन ने बड़े परिश्रम के बाद अपने तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर (जो उन्होंने डेन्मार्क और संयुक्त राज्य के विद्यार्थियों और मजदूरों के विषय में किये हैं) यह सिद्ध किया है कि ६०° से ६५° डिग्री फारेनहीट औसत तापक्रम में मनुष्यों में शारीरिक स्फूर्ति उच्चतम सीमा तक पहुँच जाती है। उसके अनुसार सदा एक-सा तापक्रम रहना भी—जैसे आमेजन, कांगो व पूर्वी द्वीप समूह में रहता है—मानव को शिथिल, क्षीण और अकर्मण्य बना देता है। इसी प्रकार तापक्रम का जल्दी-जल्दी और यकायक बदलने अथवा अधिक कुहरा या अधिक तापक्रम की दशा में कार्य करने से कार्य-क्षमता कम हो जाती है। हवा में नमी होने से कार्य वृद्धि होती है।

प्रो० हन्टिंगटन के अनुसार यदि कोई कारखाना अच्छे से अच्छा सामान तैयार करना चाहता है तो उसे शीतकाल में मशीन की गति धीमी कर देनी चाहिये और ग्रीष्म में फिर कुछ धीमी कर देना चाहिये, किंतु पतझड़ में अधिक से अधिक तेज कर देनी चाहिये इसलिये कि शीतोष्ण चक्रवात न केवल स्फूर्ति प्रदान

करते हैं बल्कि कार्य-क्षमता को भी बढ़ाते हैं। इसी कारण ब्रिटिश द्वीप समूह व पूर्वी संयुक्त राज्य स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत अच्छे समझे जाते हैं।[1] यही नहीं, किसी स्थान की जलवायु यह भी निर्धारित करती है कि किन क्षेत्रों में मानव बिना थकान अनुभव किये कार्य कर सकता है और किन स्थानों में थोड़ी ही देर बाद उसे थकान महसूस होने लगती है। सच तो यह है कि शीतल जलवायु में मानव को प्रेरणा मिलती है जब कि उष्ण जलवायु न केवल उसकी स्नायुओं को ही शिथिल बना देती है किन्तु उसको कई रोगों का—विशेषकर मलेरिया, पेचिश तथा अन्य प्रकार के रोगों का—शिकार भी बना देती है। शीतल जलवायु के कारण ही अमेरिका और इङ्गलैन्ड में बहुत से विचारक और उत्तम नेता पैदा हुये हैं। अधिक गर्मी के कारण हमारे यहाँ चार महीनों तक पूरी तरह कार्य नहीं हो सकता। भारतीय मजदूर की अकुशलता का मुख्य कारण देश की जलवायु है। उष्ण जलवायु के कारण अफ्रीका के मध्यवर्ती भागों में मानव शरीर में गुर्दे, तिल्ली, अथवा प्रजनन अंगों में कई प्रकार की बीमारियाँ लग जाती हैं। यही कारण है बहुत समय से ही गिनी तट को अंग्रजों की कब्र (White men's grave) कहा गया है क्योंकि इस गर्म जलवायु में अंग्रेज स्वस्थ नहीं रह सकते। अधिक ठन्डे भागों में भी कठोर शीत के कारण कार्य बिल्कुल नहीं हो सकता। इसी प्रकार कोहरे वाली जलवायु भी मनुष्य को काल्पनिक और निराशावादी बना देती है जैसे कि स्केन्डेनेविया के निवासी। इसी प्रकार गर्म जलवायु के कारण ही भारतीय रोगी, निराशावादी और भाग्य पर विश्वास करने वाले होते हैं। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों का स्वभाव उस देश के जलवायु के अनुसार ही बनता है। यदि अंग्रेज अधिक प्रसन्न मुख और खेल-कूद पसन्द करने वाले हैं तो उसका मुख्य कारण वहाँ का मेघाच्छन्न आकाश है जो सदैव ही उनको घरों से बाहर जाकर आनन्द मनाने के लिये उत्साहित करता है। पूर्वी देशों के लोगों में जो उदासीनता और पश्चिमी देशों में जो चंचलता, गम्भीरता और असीम धैर्य पाया जाता है उसका मुख्य कारण जलवायु ही है। मिस्र के निवासी बहुत अच्छे ज्योतिषी और गणितज्ञ माने जाते हैं, उसका मुख्य कारण वहाँ की जलवायु ही है। वहाँ आकाश सदा साफ रहता है और वहाँ के मरुस्थल में तारे ही मुसाफिरों को रात्रि में मार्ग का ज्ञान कराते हैं। ब्रिटिश द्वीप समूह में वर्ष के अधिकांश भाग में जलवायु आर्द्र रहता है। इस कारण वहाँ पक्के रंग का बनना मुश्किल है, इसलिये वहाँ के निवासी हल्के रंग पसन्द करते हैं, किन्तु भारत जैसे गर्म देश में गहरे रंगों का रिवाज है। भूमध्य सागरीय देशों में तेज धूप पड़ने के कारण चमकीले वस्त्र पहनना पसन्द किया जाता है। भारत के बारे में यह कहा जा सकता है कि मई से अगस्त तक के चार महीनों को छोड़ कर शेष महीनों में जलवायु मनुष्य को फुर्तीला और शरीर को सशक्त बनाने वाली है। शारीरिक कार्य करने के लिये पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान देहली प्रदेश और काश्मीर उत्तम हैं किन्तु मानसिक कार्यों के लिये बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र की जलवायु उत्तम है।

१—Videl de la Blache : Principles of Human Geography.

जलवायु और जनसंख्या—जनसंख्या के वितरण में जलवायु का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मनुष्य उन्हीं भागों में रहना पसन्द करता है जहाँ की जलवायु उसके स्वास्थ्य के लिये तथा उद्योग के लिये अनुकूल होती है। यही कारण है कि सबसे पहले मानव का विकास कर्क रेखा और ४०° उत्तरी अक्षांशों के बीच के भागों में हुआ जो न तो अधिक गर्म ही हैं और न अधिक ठन्डे ही, जहाँ न अधिक वर्षा ही होती है और न सूखा ही पड़ता है तथा कार्य करने के लिये तापक्रम सदैव ही उपयुक्त रहा करता है।[1] किन्तु इसके विपरीत उष्ण कटिबंधीय जंगलों—आमेजन अथवा काँगो नदी के बेसिनों में, पूर्वी द्वीप समूह आदि में—तीव्र गर्मी व सदा वर्षा होने के कारण प्रति वर्ग मील १० से भी कम व्यक्ति रहते हैं। आर्कटिक अथवा ऐंटार्कटिक महाद्वीप में तो अत्यधिक शीत के कारण प्रति वर्ग मील १ से भी कम मनुष्य रहते हैं। इन प्रदेशों की जलवायु या तो बहुत गर्म और नम है जिसके कारण मानव की कार्यशक्ति पर बड़ा अहितकर प्रभाव पड़ता है अथवा बहुत ही ठंडी है जिसके कारण एक निश्चित समय तक कोई भी कार्य करना असम्भव हो जाता है। इसके विपरीत अर्द्ध उष्ण कटिबन्धीय भागों में जहाँ जलवायु साधारणतया गर्म और पर्याप्त वर्षा (४-५ महीनों तक) वाला होता है और जहाँ वर्षा में दो फसलें सुगमतापूर्वक पैदा की जा सकती हैं वहाँ जनसंख्या का जमाव शीघ्र बढ़ता जाता है। सिन्ध और गंगा का मैदान शताब्दियों से उत्तम जलवायु के कारण घना बसा है। इसी प्रकार शीतोष्ण सामुद्रिक जलवायु वाले प्रदेश—उत्तरी पश्चिमी यूरोप, उत्तरी संयुक्त राज्य अमेरिका आदि—अपनी उत्तम जलवायु के कारण ही (जिसका कार्यशीलता और मस्तिष्क पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ता है) विश्व के घने बसे हुये भागों में गिने जाते हैं। अस्तु, प्रति वर्ग मील पीछे बेल्जियम में ७०० और इङ्गलैन्ड में ५०० से भी अधिक व्यक्ति रहते हैं।

जलवायु और निवास गृह—किसी देश के निवासियों के रहने के लिये किस प्रकार के मकान होंगे इस पर उस देश की जलवायु का प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिये कनाडा और रूस के उत्तरी भागों में जहाँ कठोर सर्दी पड़ती है, वहाँ न तो लकड़ी ही पैदा हो सकती है और भूमि पर सदैव बर्फ जमे रहने के कारण पत्थर या मिट्टी आदि भी प्राप्त नहीं हो सकते। अतः एस्कीमों, समोयडी, लैप्स और फिन आदि के मकान बर्फ के ही बनाये जाते हैं। इनका आकार गुम्बजनुमा और छोटा होता है। इनके भीतर जाने के लिये एक सँकड़ी गली-सी होती है। मकानों में खिड़कियाँ बिल्कुल नहीं रखी जातीं। केवल धुआँ निकलने के लिये छोटा-सा सूराख ऊपर की तरफ बना दिया जाता है। अधिक बड़ी खिड़कियाँ, दरवाजे वहाँ इसलिये नहीं रखे जाते क्योंकि वहाँ लगातार बर्फ गिरती रहती है। इसके विपरीत शुष्क और गर्म जलवायु के कारण मरुस्थलों में या तो तम्बू आदि बनाये जाते हैं, अथवा मरूद्यानों के निकट जहाँ मिट्टी, पानी, लकड़ी व पत्थर मिल जाते हैं पक्के मकान बनाये जाते हैं। किन्तु इनमें भी खिड़कियाँ नहीं रखी जातीं, क्योंकि मरुस्थलों में तेज बालू की आँधियाँ

१ Vidal de la Blache : Principles of Human Geography, p. 75.

चलती रहती हैं। वर्षा कम होने के कारण मकानों की छतें चौरस बनाई जाती हैं, जिससे वर्षा का जल उन पर इकट्ठा न हो सके। उत्तर के शीतोष्ण वनों में अथवा घास के मैदानों में पत्थर के अभाव में मकान लकड़ी के लट्ठों के अथवा घास-फूस के बनाये जाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में निम्न तापक्रम और अधिक वर्षा से बचने के लिए मकान अधिकतर ईंटों, पत्थर अथवा सीमेन्ट के बनाये जाते हैं जिनकी छतें इसलिये ढालू रखी जाती हैं कि अधिक वर्षा का पानी अथवा बर्फ उन पर से नीचे फिसल जायँ। अधिक शीत से बचने के लिये कमरों में बिजली द्वारा गर्मी भी पहुँचाई जाती है। चूँकि आकाश सदा मेघाच्छादित रहता है इसलिये कमरों को पूरी तरह प्रकाश पहुँचाने के लिये काँच की खिड़कियाँ रखी जाती हैं। इसके विपरीत भूमध्य सागरीय प्रदेशों में चौरस छतों वाले मकान, जिनमें प्रत्येक में खिड़कियाँ और आँगन होते हैं, बनाये जाते हैं। भारत जैसे गरम देश में कड़ी धूप से बचने के लिये मकान के बाहर बरामदे बनाना और सूर्य प्रकाश की प्राप्ति के लिये मकानों में छोटी-छोटी खिड़कियाँ अथवा रोशनदान बनाना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त गर्म देशों में ठंडे देशों की अपेक्षा सड़कें भी बहुत सँकरी बनानी पड़ती हैं।

जलवायु और भोजन—मानव के भोजन पर भी जलवायु का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये गर्म देशों में हलके और कम मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है, किन्तु ठण्डे देशों में शरीर में गर्मी और शक्ति बनाये रखने के लिये अधिक मात्रा में भोजन की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि शीतोष्ण-कटिबन्धों के देशों में माँस, मदिरा, अंडे, मक्खन और मछली आदि अधिक व्यवहार में लाये जाते हैं, जबकि भारत जैसे देश में अधिकांश जनसंख्या निरामिष भोजी (Vegetarian) है।

जलवायु और वस्त्र—उष्ण देशों में जलवायु गर्म होने के कारण वर्ष भर में बहुत ही कम वस्त्र की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिये भारत में प्रति व्यक्ति पीछे कपड़े की वार्षिक खपत १६ गज है। गर्म देशों में हलके सूती वस्त्र ही अधिक पहने जाते हैं, जो काफी ढीले-ढाले भी होते हैं। किन्तु ठण्डे देशों में प्रायः साल भर ही ऊनी वस्त्र, समूर के बाल या मछलियों की खालों के ऐसे वस्त्र पहनने पड़ते हैं जो साधारणतया बहुत ही तंग और चुस्त होते हैं।

प्राकृतिक परिस्थिति में जलवायु ही एक ऐसी शक्ति है, जिसमें मनुष्य अपने लाभ के लिये बहुत कम परिवर्तन कर सकता है। यह सत्य है कि थोड़ी मात्रा में मनुष्य आजकल 'एयर कंडीशन' करके वायु के ताप को घटा-बढ़ा सकता है, परन्तु इसका लाभ अभी तक जनसाधारण के लिये नहीं है और यदि ऐसा हो भी जाय तो भी इसका लाभ मनुष्य के निवासस्थान तक ही सीमित रहेगा, बाहरी क्षेत्रों में उसका कार्य जलवायु पर निर्भर रहेगा। मनुष्य के शरीर पर जलवायु का बड़ा मार्मिक प्रभाव पड़ता है। उसका स्वास्थ्य, उसकी कार्यशक्ति, उसके वस्त्र, उसका निवासस्थान तथा उसका भोजन इत्यादि इसी के फल हैं। मनुष्य के शरीर का तापक्रम लगभग ९८·४° फा० रहा करता है। इस ताप को बनाये

रखने के लिये मनुष्य के शरीर से सदा एक प्रकार की गर्मी निकलती रहती है। जब मनुष्य चुपचाप बैठा रहता है, उस समय उसके शरीर के प्रति वर्ग सेन्टीमीटर से प्रति सेकिन्ड १ मिली कैलोरी गर्मी जाती रहती है। परन्तु यदि वह काम करने लगे तो कार्य के अनुसार निकल जाने वाली गर्मी ७ मिली कैलोरी तक बढ़ जाती है। इस मात्रा से कम गर्मी निकलने पर शरीर को अधिक गर्मी लगने लगती है और उससे अधिक निकलने पर शरीर को ठण्ड लगने लगती है। शरीर को इन दोनों दशाओं से सुरक्षित रखने के लिये मनुष्य वस्त्र का प्रयोग करता है। पृथ्वी के उन भागों में जहाँ जलवायु का ताप अधिक होता है और इसलिये मनुष्य के शरीर से कम गर्मी निकल पाती है, बहुत ही कम वस्त्र पहने जाते हैं। अफ्रीका के मध्य भाग में अथवा हमारे देश के दक्षिण प्रदेश में इसका उदाहरण मिलता है। परन्तु जहाँ जलवायु का ताप कम होता है और इसलिये शरीर से अधिक गर्मी निकल जाती है वहाँ अधिक तथा गर्मी रोकने वाले वस्त्र पहनने की प्रथा है। इसका उदाहरण यूरोप के ठण्डे देशों में मिलता है। ऋतु परिवर्तन का प्रभाव भी इसी प्रकार होता है।

संसार को वस्त्र के अनुसार तीन भागों में बाँटा जाता है। पहला वह भाग है जहाँ पूरे वर्ष भर इतनी गर्मी पड़ती है कि न्यूनतम वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। दूसरे वे भाग जहाँ जाड़े और गर्मी में अधिक अन्तर पड़ जाने के कारण ऋतु के अनुसार वस्त्र बदलने पड़ते हैं; और तीसरे वे भाग जहाँ वर्ष भर कठोर सर्दी पड़ती है और इसलिये केवल गर्म वस्त्रों का ही प्रयोग किया जाता है। अधिक उष्णतर जंगलों में तो मानव आज भी बिल्कुल ही नंगे रहते हैं या कमर में पेड़ों की छाल या घास आदि लपेटते हैं।

जलवायु और प्रवास—संसार के विभिन्न प्रदेशों में एक-सी जलवायु पाई जाती है। अतः यदि किसी देश में जनसंख्या उस देश की भरण-पोषण की शक्ति से अधिक होती है तो वह अपने समान जलवायु वाले देशों में जाकर बस जाती है। अंग्रेज इसी कारण न केवल कनाडा और दक्षिणी अफ्रीका में ही पहुँचे, किन्तु आस्ट्रेलिया में भी जा पहुँचे। जापानी पूर्वी एशिया के देशों और भारतवासी लंका, पूर्वी अफ्रीका और उत्तरी दक्षिणी अमेरिका में जाकर रहने लगे हैं। जब अँग्रेज भारत में थे तो यहाँ की तेज धूप से बचने के लिये ग्रीष्म काल में शिमला, नैनीताल, डलहौजी, उटकमंड, पंचमढ़ी, दार्जिलिंग अथवा आबू पर चले जाते थे क्योंकि इस समय वहाँ की जलवायु शीतल होती थी।

जलवायु और उद्योग-धन्धे—भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु में भिन्न-भिन्न प्रकार के धन्धे किये जाते हैं। उदाहरण के लिये उष्ण प्रदेशों में बहुधा जंगली पशुओं का शिकार किया जाता है, जब कि मरुस्थलों में शुष्क जलवायु के कारण कोई चीज पैदा नहीं होती, अतः वहाँ के लोग प्रायः लूट-मार, चोरी करने आदि के लिये प्रसिद्ध होते हैं। शीत और शीतोष्ण कटिबन्धों में मछलियों और बालदार पशुओं का शिकार करना तथा लकड़ी काटना ही मनुष्य का मुख्य धंधा

होता है। वास्तव में यह कहना बिल्कुल उपयुक्त है कि प्राथमिक धन्धों पर ही नहीं बल्कि माध्यमिक धन्धों पर भी जलवायु का गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये सूती वस्त्र व्यवसाय के लिये तर जलवायु की आवश्यकता होती है क्योंकि शुष्क जलवायु में सूत का धागा बार-बार टूट जाता है और वह अधिक लम्बा भी नहीं काता जा सकता। तर जलवायु के कारण ही मैनचेस्टर, ओसाका, बम्बई व अहमदाबाद में सूती वस्त्रों के कारखाने पाये जाते हैं। इसके विपरीत इंगलैंड में पिनाइन पर्वत के पूर्व में स्थित यार्कशायर अपेक्षाकृत सूखा है, इसलिये वहाँ सूती कपड़े के कारखाने नहीं पाये जाते। आटा पीसने के व्यवसाय के लिये सूखे जलवायु की आवश्यकता होती है; इसलिये क़रांची, सेंट पाल, बूडापेस्ट और मिनियापालिस में आटा पीसने की कई बड़ी-बड़ी चक्कियाँ स्थापित की गई हैं। सिनेमा व्यवसाय के लिये स्वच्छ आकाश और उज्ज्वल प्रकाश तथा पर्याप्त धूप की आवश्यकता होती है जिससे कि फोटो साफ आ सकें। इसी कारण केलीफोर्निया, इटली और भारत में बंबई के निकट तथा फ्रांन्स में सिनेमा की फिल्म बनाने का व्यवसाय बहुत उन्नति कर गया है। रस्सी बनाना, कागज बनाना और छपाई के धन्धों के लिये भी उपयुक्त जलवायु की आवश्यकता होती है।

जलवायु और वनस्पति—किसी देश की प्राकृतिक वनस्पति न केवल भूमि के धरातल, मिट्टी के गुण आदि पर ही निर्भर रहती है, बल्कि वहाँ के तापक्रम और वर्षा का भी उस पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि प्रत्येक पौधे के लिये वर्षा, गर्मी, प्रकाश और वायु की आवश्यकता पड़ती है। भूमध्य रेखीय प्रदेशों में निरन्तर तेज धूप, कड़ी गर्मी और अधिक वर्षा के कारण ऐसे वृक्ष पैदा होते हैं, जिनकी पत्तियाँ घनी, ऊँचाई बहुत और लकड़ी कठोर होती है। इसके अतिरिक्त वृक्षों के नीचे झाड़ियों और घास का भी गहरा जाल-सा बिछा रहता है। किन्तु गर्म रेगिस्तानों में कड़ी गर्मी पड़ने पर भी वर्षा के नितान्त अभाव में केवल ऐसी झाड़ियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से उनकी वाष्प या नमी उड़ न सके; जैसे कुछ झाड़ियों में काँटे होते हैं, तथा जड़ें बहुत लम्बी होती है, कुछ के पत्ते मोटे और तनों पर बाल होते हैं। इन सब युक्तियों के कारण वे साल भर हरी-भरी रहती हैं। सूडान और प्रेरी प्रदेशों में वर्षा की कमी के कारण केवल लम्बी-लम्बी घास तो उगती है, किन्तु बड़े-बड़े वृक्षों का वहाँ अभाव-सा रहता है। इसके विपरीत ठंडे प्रदेशों में कठोर सर्दी पड़ने के कारण सदैव बर्फ जमा रहता है इसलिये केवल काई अथवा छोटी-छोटी हल्की झाड़ियों के अतिरिक्त और कोई वृक्ष पैदा नहीं होता। यही कारण है कि यहाँ के निवासी लकड़ियों के दर्शन करने को भी तरसते हैं। मानसूनी जलवायु के प्रदेशों में जहाँ साल के आठ महीने सूखे बीतते हैं, ऐसे वृक्ष पैदा होते हैं कि जिनकी पत्तियाँ गर्मी के आरम्भ में ही सूख जाती हैं। शीतोष्ण कटिबन्धों में तीव्र सर्दियों के कारण कोमल लकड़ियों वाले ऐसे वृक्ष पैदा होते हैं जिनकी पत्तियाँ नुकीली होती हैं। ये वृक्ष बर्फ का भार आसानी से सह सकते हैं। अस्तु, जिन भागों में वन पाये जाते हैं वहाँ के निवासियों का मुख्य व्यवसाय लकड़ी काटना होता है और साधारण वर्षा

वाले भागों में कृषि और उससे सम्बन्धित उद्योगों का विकास होता है। नीचे के चित्रों द्वारा स्पष्ट ज्ञात होगा कि जलवायु के अनुसार ही भूमंडल पर वनस्पति के खण्ड पाये जाते हैं।

जलवायु और कृषि कार्य—संसार के विभिन्न देशों में जलवायु की विभिन्नता के कारण खेती करने के तरीके भी भिन्न होते हैं। जिन देशों में पर्याप्त वर्षा (२०" से अधिक) और उच्च तापक्रम पाये जाते हैं वहाँ खेती सिंचाई की सहायता के बिना ही की जाती है। ऐसी खेती आर्द्र खेती कहलाती है। इस प्रकार की खेती के अंतर्गत चावल, गन्ना दालें आदि अधिक पैदा किये जाते हैं। भारत में बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मद्रास के कुछ भागों तथा विश्व के

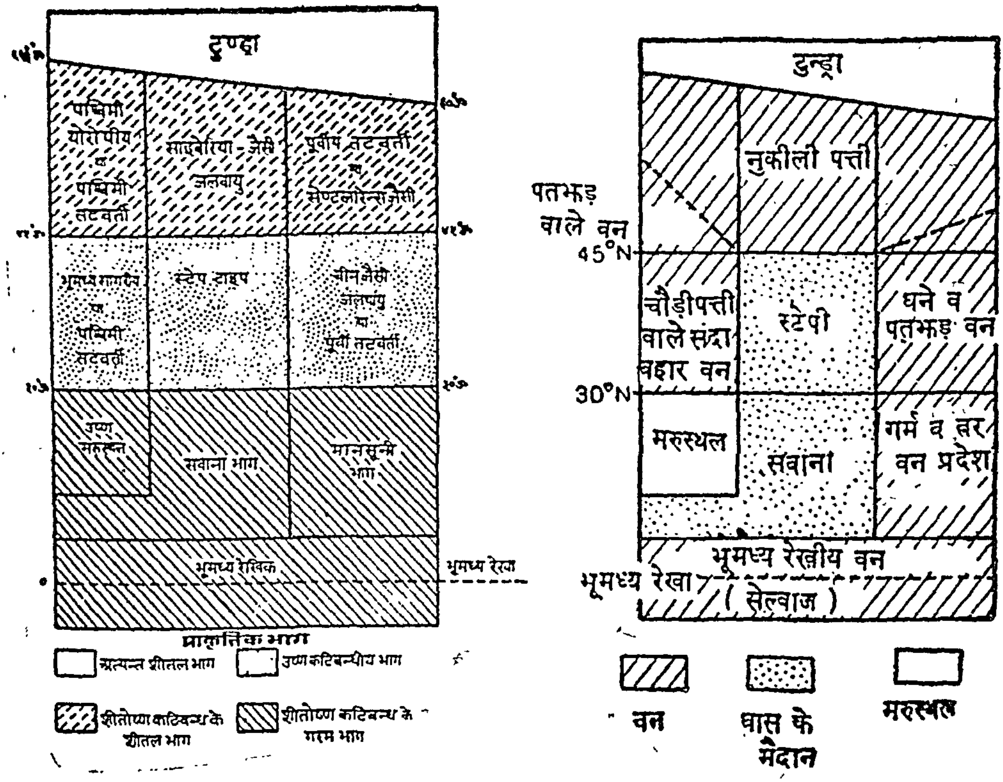

चित्र ३ —जलवायु और वनस्पति खण्ड

अधिक वर्षा वाले भागों में इसी प्रकार की खेती की जाती है। संसार के अर्द्ध शुष्क प्रदेशों—सं० रा० अमेरिका के पश्चिमी भागों, आस्ट्रेलिया, द० अफ्रीका और पश्चिमी एशिया तथा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, बम्बई आदि—में वर्षा के अभाव के कारण फसलें सूखी खेती की सहायता से की जाती हैं। इस प्रकार के ढंग से गेहूँ, जौ चना आदि बोये जाते हैं, किन्तु इस ढंग की खेती बड़ी महंगी पड़ती है। उन प्रदेशों में जहाँ मिट्टी उपजाऊ होती है और वर्षा की कमी होती है वहाँ पानी के अभाव की पूर्ति सिंचाई के साधनों द्वारा की जाती है। इस प्रकार की सिंचित

खेती के सहारे सं० रा० अमेरिका, रूस, चीन, मिश्र, फारस और भारत में गेहूँ चावल, गन्ना, कपास आदि फसलें पैदा की जाती हैं।

जलवायु का सबसे अधिक प्रभाव खेती पर पड़ता है, क्योंकि सभी देशों में एक-सी पैदावार उत्पन्न नहीं की जा सकती। किस देश में कौनसी फसल पैदा की जायगी इसका निर्धारण तापक्रम और वर्षा करते हैं। यह ठीक है कि गेहूँ की पैदावार विश्व के सभी भागों में थोड़ी-बहुत मात्रा में अवश्य की जा सकती है। किन्तु यह कहा जा सकता है कि जिन देशों में तापक्रम ५७ डिग्री से कम और वर्षा १०" से कम और ४०" से अधिक होती है वहाँ इसकी पैदावार कम होती है। विभिन्न प्रकार की जलवायु वाले प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की फसलें पैदा की जा सकती हैं; जैसे उष्ण प्रदेशों में चावल, गन्ना, चाय, काफ़ी, रबड़, महोगनी, सागोन, साल, गर्म मसाले, सिनकोना, केले, अनन्नास, नारियल आदि खूब होते हैं क्योंकि इन प्रदेशों में इन फसलों के लिये उपयुक्त जलवायु मिलती है। ठंडे देशों में गेहूँ, जौ, राई, चुकन्दर, सेव और नास्पाती आदि फल पैदा किये जाते हैं। भूमध्य सागरीय जलवायु में तेज धूप और सर्दी में वर्षा होने के कारण नीबू, नारंगी, जैतून, अंजीर, आदि रसदार फल बहुत पैदा किये जाते हैं। इसी प्रकार मानसूनी जलवायु का मुख्य फल आम है और गर्म रेगिस्तानों का खजूर। उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों में कपास, मकई, कहवा तथा प्रेरीज, पेम्पाज और स्टेप्स में गेहूँ अधिक पैदा किये जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि संसार के भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलें व फल पैदा किये जाते हैं।

अगले पृष्ठ पर की तालिका से स्पष्ट ज्ञात होगा कि कृषि की विभिन्न उपजों के लिए किस प्रकार की जलवायु की आवश्यकता पड़ती है:—

उपज	सीमा रेखा	जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताएँ		जलवायु
		तापक्रम	वर्षा	
गेहूँ	२०–६०° उ० व दक्षिण अक्षांश	३९–६८° फा०	२०– ४०″	ठण्डी और तर
चावल	४०° उ० व दक्षिण अक्षांश	७५ –९०° फा०	६०–१००″	गर्म, तर
मकई	४०–४५° उ० व दक्षिण अक्षांश	५५ –८३° फा०	४०– ८०″	गर्म, तर
जई		२८°–६८° फा०	२०– ४०″	ठण्डी और आर्द्र
कपास	३०–४०° उ० व दक्षिण अक्षांश	६८°–८७° फा०	२०– ४०″	गर्म, तर, आर्द्र
गन्ना	३०° उ० व दक्षिण अक्षांश	६५°–८८° फा०	६०– ८०″	गर्म, तर
चाय	५°–३५° उ० व दक्षिण अक्षांश	७५ –८५° फा०	६०–१००″	गर्म, तर
कहवा	२८–३८° उ० व दक्षिण अक्षांश	६० –७५° फा०	६०–१००″	गर्म, तर
रबड़	विषुवत् रेखा के ५° उ० व द०	७५ –८०° फा०	८०–१००″	गर्म, तर
कोको	विषुवत् रेखा के १५° उ० व द०	७५ –८०° फा०	७५–१००″	गर्म, तर

जलवायु और व्यापार—जलवायु किसी देश के व्यापार और माल के लाने-ले जाने में भी अपना प्रभाव डालती है क्योंकि न केवल कृषि पदार्थ ही बल्कि पशु पदार्थ भी अपने भौगोलिक परिस्थिति के लिये जलवायु पर ही निर्भर रहते हैं। यदि पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब और राजस्थान में गेहूँ, पश्चिमी बंगाल में चावल, उत्तर प्रदेश में शक्कर और दक्षिणी भारत में तिलहन का अधिक व्यापार होता है तो उसका मुख्य कारण यही है कि इन भागों में उपयुक्त जलवायु के कारण ये वस्तुयें अधिक मात्रा में उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार गंगा की निचली घाटी में जूट और मध्यप्रदेश में कपास के व्यापार की वृद्धि का मुख्य कारण जलवायु ही है। उष्ण भागों में (जो अधिकतर यूरेशिया व अमेरिका के उपनिवेश हैं) विदेशी पूंजी, विदेशी प्रवन्ध एवम् निरीक्षण में व्यापारिक पैमाने पर विशेष रूप से बिक्री के लिये मूल्यवान ऊँचे दर्जे की फसलें—शक्कर, चाय, रबड़, कोको, केला, नारियल, लौंग आदि पैदा की जाती हैं। इन्हीं पदार्थों पर शीतोष्ण कटिबन्धों के देशों के कई व्यवसाय निर्भर रहते हैं। पूर्वी देशों के मार्ग का पता लगाने का एक मात्र कारण इन देशों में पैदा होने वाली उपरोक्त वस्तुएँ थीं। इसी प्रकार पशु पदार्थ के व्यापार पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये शीतोष्ण-प्रदेशों में उत्तम जलवायु के कारण ही दूध-दही के धन्धे के लिये चौपाये अधिक पाले जाते हैं। इसी कारण भूमध्य सागरीय प्रदेशों में ऊन तथा चीन और जापान में रेशम का व्यापार बहुत होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में शिकागो में विश्व की सबसे बड़ी माँस की मन्डी है तथा भारत में कानपुर, मद्रास और आगरा में जो चमड़े का व्यापार अधिक होता है उसका एक मात्र कारण इनके पृष्ठ-प्रदेशों में अधिक जानवरों का पाला जाना है।

जलवायु और व्यापारिक मार्ग—व्यापारिक मार्गों को निर्धारण करने में भी जलवायु का वड़ा हाथ रहता है। उदाहरण के लिये पहाड़ी क्षेत्रों में शीतकाल में बर्फ पड़ने के कारण रेल-मार्ग कुछ समय के लिये वन्द हो जाते हैं, तथा निम्न भागों में अधिक वर्षा के कारण रेल की पटरियाँ पुल आदि नष्ट हो जाते हैं। रेगिस्तान में बालू के टीलों के कारण न तो सड़कें ही बनाई जासकती है और न रेल मार्ग ही। शीत प्रधान देशों में वर्फ पड़ने के कारण नदियाँ जम जाती हैं, (जैसा कि उत्तरी रूस, साइवेरिया व कनाडा में होता है।) अतः वे शीतकाल में व्यापार के काम की नहीं रहतीं। इसी प्रकार वाल्टिक सागर जाड़ों में व्यापार के अयोग्य हो जाता है तथा शीतकाल में भारत और तिब्बत के बीच में होने वाला व्यापार भी ठप्प हो जाता है। प्राचीन काल में जहाज वायु से ही अपनी यात्रा करते थे। अफ्रीका का चक्कर लगाकर भारत में आने वाले जहाज वर्षा में अरब सागर को पार करते थे क्योंकि उस समय हवायें दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्वी भाग की ओर चलती थीं किन्तु शीत ऋतु में और ग्रीष्म ऋतु में लौटते हुए जहाज अफ्रीका का चक्कर लगा कर जाते थे। किन्तु अब आधुनिक जलयानों पर उन हवाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वे यन्त्र शक्ति से चलाये जाते हैं। अब भी बहुत से जहाज लिवरपूल से आस्ट्रेलिया जाने के लिये केप-मार्ग का अनुसरण करते हैं क्योंकि पछुआ हवायें अनुकूल पड़ती हैं, और

स्वेज मार्ग से लौटते हैं ताकि पछुआ हवाओं की प्रतिकूलता से बचते रहें। जिन भागों में सघन कुहरा घिर जाता है वहाँ जहाजों के टकराने की आशंका रहती है, अतः ऐसे मार्गों से बचने का प्रयत्न किया जाता है। उत्तरी अटलांटिक जल-मार्ग न्यूफाउन्डलैंड से बचकर जाता है। ग्रीनलैन्ड टापू के निकट समुद्र में बड़े-बड़े हिम-पिंड तैरते रहते हैं; इसलिए यूरोप से अमेरिका जाने वाला समुद्री मार्ग ग्रीनलैंड से बचकर दक्षिण की ओर को जाता है। वायुयानों के मार्गों पर भी जलवायु का बड़ा प्रभाव पड़ता है। ऊपरी आकाश में अधिक ठन्ड होने के कारण, गहरे बादल तथा वर्फ व बालू की आँधियों और तेज हवा के कारण हवाई जहाज नष्ट होकर गिर पड़ते हैं। शीतकाल में कोहरा होने के कारण भी हवाई जहाजों को बड़ी हानि होती है। बर्फीले प्रदेशों में वर्फ पर फिसलने वाली बिना पहिये की गाड़ियाँ तथा गर्म प्रदेशों में पहियों वाली गाड़ियाँ और रेगिस्तान में ऊँट की सवारी आदि का होना जलवायु के ही परिणाम हैं।

(५) वनस्पति (Vegetation)

वन सम्पति का मानव जीवन के रहन-सहन और उद्योग-धन्धों पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये नॉर्वे, स्वेडन, कनाडा, साइबेरिया आदि देशों में व्यापारिक वन सम्पति के कारण ही इन देशों के निवासियों का मुख्य उद्योग लकड़ी काटना हो गया है। शीत जलवायु के रूप में प्रकृति भी नदियों आदि में वर्फ जमा कर लकड़ियों को वन प्रदेशों से औद्योगिक केन्द्रों तक पहुँचाने में सहयोग देती है। यही कारण है कि इन देशों में लकड़ी चीरने, नावें बनाने, कागज बनाने, लुग्दी, दियासलाई और फर्नीचर आदि तैयार करने के कारखाने स्थापित हो चुके हैं। वनों से कई प्रकार के कच्चे सामान भी प्राप्त होते हैं। किन्तु सबसे बड़ा लाभ इनके द्वारा जलवायु को सम बनाने तथा अधिक मात्रा में वर्षा देने और मिट्टी के कटाव को रोकने में होता है। वनस्पति भौतिक परिस्थितियों तथा जलवायु के आपसी प्रभाव का सूचक है क्योंकि विभिन्न जलवायु प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। जिन भागों में मानव ने अपने भोजन के लिये प्राकृतिक वनस्पति को नष्ट कर दिया है वहाँ उस क्षेत्र की प्राकृतिक रचना और जलवायु के अनुसार ही विशेष प्रकार के खाद्यान्न अथवा अन्य फसलें पैदा की जाने लगी हैं। उदाहरण के लिये रबड़, कहवा, चावल, शक्कर अथवा केले शीत या शीतोष्ण जलवायु में पैदा नहीं किये जा सकते—और न अंगूर व सेव ही विषुवत् रेखीय जलवायु में पैदा की जा सकती है।

(ii) **पशु सम्पत्ति**—किसी स्थान पर पाये जाने वाली पशु सम्पत्ति अधिकांशतः वहाँ की वनस्पति पर ही निर्भर रहती है। उष्ण कटिबन्धीय जङ्गलों में बन्दर, चिमगादड़, छिपकली, शेर, चीते, भालू, जहरीले जानवर, सर्प, कीड़े-मकोड़े तथा घनी वनस्पति के कारण भयानक और विषैले जीव-जन्तु जो प्रायः वृक्षों पर ही रहते हैं, पाये जाते हैं। मरुस्थलों में कटीली झाड़ियाँ, अथवा खजूर व मोटे अनाज पर निर्वाह करने वाले ऊँट और बकरियाँ आदि पाई जाती हैं जहाँ मकई, जौ, चुकन्दर आदि पैदा किये जाते हैं। घास के मैदानों में चौपाये और टुंड्रा

के शीत भागों में श्वेत लोमड़ी अथवा भालू अधिक पाये जाते हैं। मानव ने अपनी बुद्धि और श्रम द्वारा बहुत से पशुओं को पालतू बना कर अपने दैनिक भोजन, वस्त्र, औजार आदि की आवश्यकता पूरी की है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में घोड़ों, तिब्बत में याक, एण्डीज में लामा और भारत में व चीन में बैलों के बिना खेती करना प्रायः असम्भव है। टंड्रा में सील, वालरस आदि मछलियाँ वहाँ के निवासियों के लिये मांस, चर्बी, तेल, खालें आदि प्रदान करती हैं। समुद्रों की मछलियाँ आज के सभ्य जगत की सबसे मूल्यवान सम्पत्ति मोती के रूप में देती हैं। किन्तु यह विचारणीय है कि अमुक पशु अमुक वातावरण में ही रह सकते हैं। उदाहरण के लिये मोती देने वाली मछलियाँ केवल गहरे समुद्रों और शहद की मक्खियाँ बकवीट (Buckwheat) अनाज वाले स्थानों में ही पाली जा सकती हैं। चूहे तथा खरगोश आदि पशु खेती की फसलों आदि को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। इसी प्रकार टन्ड्रा आदि दलदली भागों में मच्छर, मध्य अफ्रीका में टिसीटिसी (Tse Tse) मक्खियाँ तथा मलाया, दक्षिणी अमेरिका, भारत, हिन्द, चीन, आदि भागों में टिड्डी दल द्वारा भी अपरिमित हानि होती है। किन्तु अब मानव ने विज्ञान की सहायता से इन कीड़ों मकोड़ों पर—जैसे अमेरिका में कपास का शत्रु बोलवील (Boll weevil) और फ्रान्स में अंगूरों का शत्रु 'फाइलोक्सरा' (Phyloxerra) आदि पर पूर्णतया विजय प्राप्त करली है। किन्तु क्षेत्र विशेषों में मनुष्य पशुओं के बिना (जैसे एण्डीज और रॉकी पर लामा और अलपाका अथवा तिब्बत के पठारों पर याक अथवा ब्रह्मा में हाथी, मरुस्थलों में ऊँट और टन्ड्रा में रेन्डियर) नहीं रह सकता, क्योंकि इन पशुओं द्वारा भोजन, वस्त्र अथवा यातायात के साधनों में सुविधा होती है। अस्तु, हम कह सकते हैं कि पशु दो प्रकार के होते हैं—मित्र पशु जिनके द्वारा मानव जाति का हित होता है, और शत्रु पशु जिनके द्वारा मानव जाति का अहित होता है।

(६) सीमान्त रेखायें (Boundry lines)

किसी देश की सीमान्त रेखायें दो प्रकार की होती हैं—प्राकृतिक अथवा कृत्रिम। किन्हीं भी दो देशों के बीच में सागर, पर्वत, मरुभूमि, दलदल अथवा नदियाँ सीमायें बना सकती हैं। इस प्रकार की सीमायें प्राकृतिक सीमायें कहलाती हैं। इनसे शत्रु के आक्रमण के प्रति निश्चिन्तता और स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिये चारों ओर समुद्र से घिरे रहने के कारण ब्रिटिश द्वीप समूह पर आक्रमण करना विदेशियों के लिये प्रायः असम्भव-सा है। इसी प्रकार भारत पर भी जितने भी आक्रमण हुये वे सब उत्तर की ओर से न होकर केवल उत्तर-पश्चिमी भागों से ही हुये हैं क्योंकि उत्तर की ओर से हिमालय जैसे दुर्भेद्य पर्वतों को पार करना प्रायः असम्भव सा ही रहा है। यूरोप के कुछ देशों में नदियों द्वारा ही प्राकृतिक सीमा बनाई गई है। इस प्रकार जर्मनी और फ्रांन्स के मध्य राइन नदी, हंगरी और जेकोस्लोवेकिया के बीच में मध्य डेन्यूब, हंगरी और यूगोस्लेविया के बीच में ड्रेव नदी इस प्रकार की सीमा बनाती है। प्राकृतिक सीमाओं के अतिरिक्त मानव द्वारा निर्मित कृत्रिम सीमायें भी हैं। परिस्थितियों, सन्धियों, युद्धों आदि द्वारा इनका निर्धारण होता है। पोलेंड, जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया,

रूमानियाँ आदि की सीमायें ऐसी ही हैं; अतः इन पर राजनैतिक परिवर्तनों का प्रभाव भी पड़ता है। उदाहरण के लिये द्वितीय महायुद्ध से लगाकर उसके अन्त तक जर्मनी, पोलेंड, रूस और इटली आदि की सीमाओं में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण कई वार परिवर्तन हुआ है। द्वितीय महा-युद्ध के फलस्वरूप पोलेण्ड का ७० हजार वर्गमील पूर्वी प्रदेश रूस में और ३९ हजार वर्ग मील पश्चिमी प्रदेश जर्मनी में मिला दिया गया। जर्मनी को प्राप्त होने वाला यह प्रदेश खनिज पदार्थों, कृषि साधनों एवं औद्योगिक उन्नति में काफी धनवान है। अतः यह निश्चय है कि पोलैण्ड के इस भाग की आर्थिक उन्नति जर्मनी द्वारा अवश्य होगी। इसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् रूस ने उत्तर पश्चिमी वाल्टिक राज्य और पूर्वी एशिया के अधिकांश देशों पर तथा सन्धियों द्वारा पोलैण्ड, फिनलेंड तथा जेकोस्लोवेकिया के अधिकृत क्षेत्रों को अपने अधिकार में लेकर अपनी सीमाओं को वहुत बढ़ा लिया हैं। जिसके फलस्वरूप रूस के विभिन्न भागों में आर्थिक हलचल बहुत अधिक हुई है।

उत्तरी अमरीका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के कुछ भागों में कुछ निश्चित अक्षांशों को ही सीमायें माना गया है। ४९° उत्तरी अक्षांश कनाडा व संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बीच में सीमा बनाती है। कनाडा और अलास्का के बीच की सीमा १४७° पश्चिमी देशान्तर बनाती है। मिश्र और ऐंग्लो मिश्र सूडान के बीच २२° उत्तरी अक्षांश रेखा सीमा बनाती है।

सांस्कृतिक परिस्थिति (Cultural Environment)

संसार के मानव जीवन को अध्ययन करने से हमको पता चलता है कि मनुष्य जाति की आवश्यकताओं की उत्पत्ति का प्रमुख कारण जलवायु अथवा सभ्यता अर्थात् समाज की रीति-नीति ही हैं। शरीर को सुरक्षित रखनेवाली आवश्यकतायें जलवायु के कारण उठती हैं। परन्तु शरीर को एक विशेष रूप से सुरक्षित रखने के लिये जो आवश्यकतायें होती हैं वे सामाजिक अथवा सांस्कृतिक हैं। जिस प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न भागों में जलवायु की भिन्नता के कारण विशेष प्रकार के वस्त्र, भोजन, निवासस्थान इत्यादि की आवश्यकता होती है उसी प्रकार सामाजिक संगठन तथा सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न आवश्यकतायें होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति में सारा संसार आज लगा हुआ है। मनुष्य की ये आवश्यकतायें तथा उनकी पूर्ति भौगोलिक परिस्थिति के ही प्रभाव हैं।

संसार में मनुष्य जाति की उन्नति का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकती हैं। मनुष्य पर इन दोनों परिस्थितियों का प्रभाव सम्मिलित रूप से होता है। किन्तु मनुष्य का इन विशेषताओं के कारण जिनका वर्णन ऊपर किया गया है इस प्रभाव को नापना असम्भव है। किसी भी देश के आर्थिक विकास में सांस्कृतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक वातावरण उन भूखण्डों का मिश्रण है जो मनुष्य की क्रियाओं का प्रदर्शन करते हैं। इनमें

जो तत्व सम्मिलित हैं उनमें विस्तृत खेत, सिंचाई के साधन, मकान यातायात व संवाद, संचार के साधन और मनुष्य स्वयं है। सांस्कृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत निम्न बातों का विवेचन किया जाता है :—

(१) मनुष्य की जातियाँ (Races of Man)—किसी भी देश की आर्थिक एवं व्यापारिक स्थिति पर उस देश के निवासियों की जाति का गहरा प्रभाव पड़ता है। विश्व में मुख्यतः चार प्रकार की जातियाँ पाई जाती हैं—पीत वर्ण, कृष्ण वर्ण, गौर वर्ण और लाल वर्ण।

(क) पीत वर्ण (Yellow Race) वाले मनुष्यों का रंग पीला, बाल सीधे, चपटी नाक, उभरी हुई गाल की हड्डियाँ, गोल खोपड़ी, आँखें छोटी और तिरछी होती हैं। ये दो भागों में बँटे हुये हैं। (१) उत्तर में मंगोलिया तथा बैरिंग सागर से लगाकर कैस्पीयन सागर तक फैले हुये हैं जो मंगोलिया में मंगोल, ऐशिया माइनर और तुर्किस्तान में तुर्क, उत्तरी यूरोप में फिन और लैप, हंगरी में मैगयार, उत्तरी पूर्वी ऐशिया में साइबेरियन, जापान में जापानी तथा कोरिया में कोरियन लोग कहलाते हैं। (२) दक्षिण में पीत वर्ण वाले ये मनुष्य चीन में चीनी, ब्रह्मा में ब्रह्मी, श्याम में श्यामी तथा तिब्बत में तिब्बती कहलाते हैं। पीत वर्ण के लोगों की सभ्यता बड़ी ऊँची है और ये लोग विशेषकर व्यापारशील हैं। इसका कारण इनके देशों में पाये जाने वाले खनिज पदार्थ और आवागमन के मार्गों की सुविधा है। इनकी उन्नति का श्रेय मुख्यतया गौर वर्ण की जाति को है।

(ख) कृष्ण वर्ण (Black Race) जाति के मनुष्यों का रंग काला या गहरा भूरा, बाल घुंघराले, नाक चपटी और गालों की हड्डियाँ उभरी हुई और चौड़े होठ, मोटे और भद्दे जबड़े बाहर निकले हुये, तंग और लम्बी खोपड़ी तथा कद ठिगना होता है। ये भी मुख्यतया दो भागों में बँटे हैं। (१) पूर्वी भाग के लोग जिन्हें आस्ट्रेलिया तथा मलाया द्वीप समूह में निग्रीटो (Negrito) कहते हैं। (२) पश्चिमी भाग के लोग, जिनमें विशेपकर अफ्रीका के आदिम निवासी हैं। सूडान और भूमध्यवर्ती अफ्रीका में इनको सूडानी, मध्य और दक्षिणी अफ्रीका में बंटू, दक्षिणी अफ्रीका में होटेंटो और कांगो नदी के बेसिन और अंडमान द्वीपों में पिग्मी तथा लंका में वेद्द (Vedh) कहते हैं। यह प्राणी बिलकुल ही नग्नावस्था में रहते हैं। कृष्ण वर्ण की जाति के लोग सबसे कम सभ्य और व्यापार की दृष्टि से बहुत ही पिछड़े हुये हैं क्योंकि उष्ण प्रदेशों की गर्मतर जलवायु और खाद्य पदार्थों की बाहुल्यता ने इनको आलसी, अकर्मण्य और निरुत्साही बना दिया है जिसके फलस्वरूप इनका आर्थिक विकास बहुत कम हो पाया है।

(ग) गौर वर्ण (White Race) के लोगों का रंग श्वेत, कद लम्बा, बाल भूरे, जबड़े छोटे, नाक सीधी और गढ़ी हुई, ओठ अच्छी प्रकार से बने हुये तथा आँखें नीली होती हैं। इस जाति के दो भाग हैं—(१) वे लोग जो भूमध्य सागर के निकटवर्ती देशों में रहते हैं। इसके अन्तर्गत मिश्री, तुरेग (Taureg), सुमाली, बरबर, इथ्रीसीयन, फैलेन आदि हैं। इन सबको हैमाइट कहते हैं। इसकी एक

शाखा—जिसे सैमाइट कहते हैं—के लोग एवीसीनियन, अरब, असीरियन और फोनीशियन कहलाते हैं। (२) वे लोग हैं जो विशेषकर भारत तथा ब्रिटिश द्वीप समूह में रहते हैं। इस शाखा के लोगों को भारत में हिन्दू, दक्षिण में द्रविड़, फारस, ईरान और आर्मेनियाँ में ईरानी, यूनान में यूनानी, कैल्ट्स में आयरिश तथा अन्य स्थानों में स्काच, वेल्स, ब्रिटेन्स, स्पेनिश, फ्रांसीसी, रूमानियन, इटैलियन, स्लोवेनिक रूसी जेवस, पोल, बलगेरियन, सर्वीयन, जर्मन, डच, अंग्रेज तथा स्कैन्डेनेविडयन्स, इंडोनेशियन-मावरी-समाँह आदि कहते है। इन लोगों की सभ्यता विश्व में सबसे बढ़ी-चढ़ी है। वर्तमान काल में वाणिज्य, व्यापार और राजनैतिक विषयों में इन लोगों ने बड़ी प्रगति की है। इसका मुख्य कारण इनके निवास स्थान की उत्तम जलवायु है। इसी कारण से ये लोग मेहनती, उत्साही और धैर्यवान तथा अच्छे आविष्कारक हैं। उद्योग-धंधों और विज्ञान की उन्नति में इन्होंने काफी प्रभाव डाला है।

(घ) लाल वर्ण (Red Race) की विशेषता पीत वर्ण जातियों से मिलती-जुलती है। इनके बाल काले व सीधे, इनका रंग ताम्रयुक्त, नाक बड़ी किन्तु सँकरी, आँखें सीधी व बड़ी तथा कद लम्बा होता है। ये तीन श्रेणियों में विभक्त पाये जाते हैं। (१) उत्तर में एलास्का प्रांत, लैब्रेडोर तथा उत्तरी पूर्वी भागों में (अमरीका के) एस्कीमों, उत्तरी अमेरिका के मध्यवर्ती मैदानों में रैड इंडियन; (२) मध्य अमेरिका में मैक्सिकन और (३) आमेजन बेसिन में अमेजोनियन, दक्षिणी भागों में उवाको और पेटेगोनियन कहलाते हैं। ये विश्व के सबसे अधिक पिछड़े हुये लोग हैं, जिनका विकास बिल्कुल नहीं हो पाया है।

(२) धर्म (Religion)—पृथ्वी पर निवास करने वाली सभी जातियों और समुदायों के रहन-सहन, आचार-विचार और खान-पान पर भिन्न-भिन्न धर्म प्रणालियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न समुदायों की गतिविधि उनके धर्म के अनुसार ही हो जाती है। धर्म प्रणालियाँ किसी कार्य विशेष को निषेधात्मक बता कर और कुछ पर विशेष प्रतिबन्ध लगा कर विभिन्न समुदायों के कार्यों को निर्धारित करती हैं। इसका प्रभाव उनके आर्थिक विकास पर भी पड़ता है।

विश्व में मुख्यतया चार प्रकार के धर्म पाये जाते हैं: (१) हिन्दू धर्म, (२) इस्लाम धर्म, (३) बौद्ध धर्म, और (४) ईसाई धर्म।

हिन्दू धर्म के अनुयायी विशेषतः भारत में पाये जाते हैं जिनकी अनुमानित संख्या लगभग २५ करोड़ है। इस धर्म के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न जातियाँ पाई जाती हैं जिनके प्रत्येक के कर्तव्य धर्म के द्वारा ही निर्धारित किये गये हैं। जाति विशेष के व्यक्ति अपने धंधों को छोड़ कर दूसरे धंधे नहीं कर सकते जिसके फलस्वरूप उस जाति के व्यक्तियों का पूर्ण रूप से बौद्धिक और आर्थिक विकास नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त क्योंकि एक जाति ही एक धन्धे को कर सकती है अतः जातियों की संख्या अधिक होने के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं किया जा सकता। किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमी विचारों

और व्यक्तियों के संसर्ग से तथा आवागमन के साधनों की उन्नति और शिक्षा का प्रचार होने के कारण जातियों की धर्म सम्बन्धी भावनायें प्रायः विलुप्त होती जा रही हैं। यह अधिकतर अहिंसा को मानते हैं, अतः इनका भोजन भी विशेषतः केवल शाकाहारी होता है।

इस्लाम धर्म के अनुयायी विशेषकर पुरानी दुनियाँ के देशों में यथा—उत्तरी अफ्रीका के मिश्र, सहारा, मरक्को, अरब, ईरान, सीरिया, टर्की, पेलेस्टाइन, बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, पूर्वी अफ्रीका और मध्यवर्ती ऐशिया के राज्यों में तथा उत्तरी चीन, रूस, डच गायना, पूर्वी अफ्रीका आदि देशों में फैले हुये हैं। ये ३० करोड़ से भी अधिक हैं। इस धर्म में 'मद्य पान' करना और सूअर का माँस खाना धर्म के विरुद्ध माना जाता है। अतः भूमध्य सागर के पूर्वी तटीय मुस्लिम देशों में अंगूर के लिये उपयुक्त जलवायु होने पर भी अंगूर से शराब बनाने का धन्धा बिल्कुल नहीं किया जाता है। किन्तु इन देशों में कहवा पीने का अधिक प्रचार होने के कारण वह अवश्य पिया जाता है। अरब की मोचा काफी तो विश्व में सबसे अच्छी समझी जाती है। मुस्लिम धर्म अपने अनुयायियों को पूंजी पर ब्याज लेने से मनाई करता है। अतः मुस्लिम प्रदेशों में आधुनिक अथवा देशी बैंकिंग प्रणाली का बहुत थोड़ा विकास हो पाया है।

बौद्ध धर्म के अनुयायी प्रायः दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में चीन, जापान, हिन्द, एशिया, ब्रह्मा और लंका में पाये जाते हैं। यह धर्म अहिंसा सिखाता है। अतः इन देशों में मांस तथा ऊन व्यवसाय के लिये पशु-पालन का धन्धा नहीं किया जाता।

ईसाई धर्म विशेषतः पश्चिमी यूरोप के देशों में और अमेरिका में पाया जाता है। इस धर्म के तीन भेद किये जाते हैं—रोमन केथौलिक, प्रोटेस्टेन्ट और यूनानी अपोस्टोलिक। इसमें से सबसे ज्यादा अनुयायी रोमन केथोलिक मत के हैं जो विशेषकर पश्चिमी, दक्षिणी-पश्चिम यूरोप, संयुक्त राज्य अमरीका, मैक्सिको और दक्षिणी अमेरिका में पाये जाते हैं। इन लोगों के अपने धर्म में किसी प्रकार की मनाही न होने के कारण ये लोग मांस भी खाते हैं और शराब भी पीते हैं। इन देशों में शराब व्यवसाय व पशु पालन की विशेष उन्नति हुई है। औद्योगिक दृष्टि से भी इन लोगों ने विश्व में सबसे ज्यादा उन्नति की है।

(३) शासन प्रणाली—किसी देश के व्यापार पर अथवा वहाँ के आर्थिक विकास पर शासन प्रणालियों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जिन देशों में शासन प्रबन्ध अच्छा नहीं होता अथवा जहाँ मनुष्यों को अपने जान और माल का सदैव डर बना रहता है वहाँ न तो उद्योग-धन्धे ही पनप सकते और न देश का आर्थिक विकास ही हो सकता है। बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान मैक्सिको इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन देशों की शासन प्रणाली दोषपूर्ण होने के कारण वहाँ सदैव लूट-मार तथा आन्तरिक गृह युद्ध होते रहते हैं और इसलिये ये देश आज तक उन्नति नहीं कर सके हैं। प्राकृतिक सम्पत्ति में धनी

होने पर भी चीन शक्तिशाली शासन के अभाव में अब तक एक निर्धन देश रह गया है। किन्तु जापान की सरकारी नीति के ही कारण (जो देश में उद्योग-धन्धों के पूर्ण विकास के लिये दृढ़ संकल्प थी) ही आज जापान एशिया का सबसे महत्व पूर्ण औद्योगिक देश हो गया है। ईस्ट इन्डिया कम्पनी की व्यापारिक नीति (भारत से कच्चा माल इंगलैंड को भेजना और वहाँ से तैयार माल भारत के बाजारों में बेचने) के कारण ही बहुत समय तक भारत के उद्योग-धन्धे विकसित न हो सके और वह बहुत काल तक एक कृषि प्रधान देश ही रह गया।

(४) जनसंख्या (Population)—किसी देश की जनसंख्या के आकार और सघनता का वहाँ के वाणिज्य और व्यापार पर भी बहुत प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या का घनत्व स्वास्थ्यकर जलवायु, विस्तृत मैदान अथवा नदी घाटियों की उपलब्धता, भूमि की उर्वराशक्ति अथवा जीवन निर्वाह के साधनों और आवागमन के साधनों (मार्गों) की सुविधा पर निर्भर करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय संघ के अनुमानानुसार (सन् १९५४) सम्पूर्ण विश्व में २६,५२० लाख व्यक्ति निवास करते हैं जिनमें से १४,५१० लाख (लगभग ५५%) एशिया में (रूस को छोड़कर), ४०४० लाख यूरोप में; ३५७० लाख अमरीका में, २१४० लाख रूस में, २१०० लाख अफ्रीका में और १४४ लाख ओसिनीया में रहते हैं। चीन विश्व का सबसे घना बसा देश है जहाँ ५८३० लाख व्यक्ति रहते हैं। इसके बाद भारत का स्थान आता है (३७७० लाख) । इन दोनों देशों के बाद विश्व के प्रमुख देशों में सोवियत रूस (२१४० लाख), संयुक्त राज्य अमेरिका (१६२० लाख), जापान (८८० लाख), जर्मनी, इङ्गलैण्ड, इटली और फ्रान्स का नम्बर आता है। विश्व की $\frac{3}{4}$ जनसंख्या केवल तीन बड़े-बड़े क्षेत्रों में ही केन्द्रित है—(१) दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मानसूनी प्रदेशों में चीन, जापान, जावा, भारत आदि हैं; (२) पश्चिमी और मध्य यूरोप; (३) पूर्वी और मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका। प्रथम देशों की जनसंख्या का अधिक भाग कृषि पर ही निर्भर है। भूमि की पर्याप्त मात्रा, उर्वरा शक्ति गर्मी और वर्षा की उपलब्धता तथा परिश्रमी मनुष्यों के कारण ही यहाँ जनसंख्या अधिक है। द्वितीय और तृतीय श्रेणी के देशों में खनिज पदार्थों की अधिकता तथा कला-कौशल में उन्नति हो जाने के फलस्वरूप जनसंख्या का जमाव विशेषकर खनिज अथवा औद्योगिक केन्द्रों में ही है। इसी कारण एशिया के मानसूनी देशों की अपेक्षा यहाँ व्यापार और उद्योग भी अधिक होता है और इसीलिये यहाँ बड़े-बड़े नगरों की संख्या भी अधिक है। इन भागों में ग्रामीण जनता का प्रतिशत बिल्कुल ही कम है जब कि एशियाई देशों में शहरों की रहने वाली जनसंख्या बहुत कम है।

इन अधिक जनसंख्या वाले देशों के विपरीत भूमण्डल के कुछ भाग बिल्कुल ही निर्जन हैं। ऐसे विस्तृत भू-भाग आर्कटिक महासागर के निकट फैले हुए हैं जहाँ तीव्र शीतकाल होने के कारण फसलें पैदा नहीं की जा सकतीं और ग्रीष्म ऋतु में भी पाला पड़ने का डर रहता है तथा मिट्टी भी अनउपजाऊ है। दूसरा जनसंख्याविहीन भाग भूमध्य रेखा के गर्म-तर प्रान्तों में स्थित है। केवल जावा

ही इसका अपवाद है । इन भागों में तीव्र गर्मी, अधिक वर्षा, अस्वास्थ्यकर जलवायु तथा बीमारियों के कारण बहुत ही कम जंगली लोग यहाँ रहते हैं

सांस्कृतिक परिस्थिति में सबसे अधिक महत्वशाली अंग आवागमन है । रेल, तार, रेडियो वायुयान इत्यादि आवागमन के मुख्य सूत्र हैं। आवागमन का प्रभाव मनुष्य के सभी प्रकार के सामाजिक जीवन पर पड़ता है । आवागमन मनुष्य की गति का ही एक रूप है जिसका वर्णन ऊपर दिया गया है। मनुष्य का संसर्ग, उसका वाणिज्य तथा उसके उद्योग-धन्धे आवागमन पर निर्भर हैं । पृथ्वी के जिन भागों में आवागमन की अधिक तथा सुचारु रूप से उन्नति की गई है, वे भाग आजकल की सभ्यता में सबसे आगे बढ़े हुए हैं । संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप इस बात के उदाहरण हैं । जिन भागों में आवागमन की उन्नति विशेष है वहाँ पर मनुष्य जाति में एक ऐसी विशेषता आ जाती है जो संसार के अन्य भागों में नहीं पाई जाती । यह है वहाँ का भौतिकवाद (Materialism) । परन्तु भौतिकवाद के साथ ही साथ वहाँ पर मनुष्य का मानसिक विकास भी अधिक मात्रा में देखा जाता है । जिन भागों में आवागमन की कमी होती है वहाँ पर लोग प्रायः अन्धविश्वासी तथा रूढ़ि पन्थी होते हैं क्योंकि संसर्ग की कमी के कारण उनकी विचारधारा संकुचित रहती है । संसार में बहुत ऐसे भाग हैं जहाँ पर इसका उदाहरण देखा जा सकता है । ज्ञान और सभ्यता की उन्नति के साथ ही साथ आवागमन का सबसे महान् कार्य संसार को एक कर देने में है । रेडियो की सहायता से बर्फ से घिरे हुए सैकड़ों मील दूर स्थित ऐंटार्कटिक महाद्वीप में बैठे हुए वैज्ञानिक लोग भी यह जान सकते हैं कि दुनिया में इस समय क्या हो रहा है । वायुयान तथा कैमरा की सहायता से संसार के किसी भी कोने का फ़ोटो आज हम प्राप्त कर सकते हैं । आवागमन के इन सूत्रों द्वारा आज सारे संसार की समस्यायें मनुष्य जाति की समस्यायें बन गई हैं । यही कारण है कि आजकल का भूगोल प्राचीन समय का सा भूगोल नहीं रहा है जब कि पृथ्वी के कुछ थोड़े से भागों का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त था । आजकल भूगोल एक बहुत बृहत् विद्या, एक विज्ञान, बन गया है जिसका कुछ ज्ञान साधारण मनुष्य को भी आवश्यक है । बिना इस ज्ञान के कोई भी शिक्षा पूर्ण शिक्षा नहीं कही जा सकती क्योंकि आज का संसार एक संघर्ष है । इस संसार के रहने वालों का संसर्ग तथा संघर्ष सार्वभौमिक हो गया है । संसार का कोई भी रहने वाला बृहत् संसार की धारा से अपने को अलग नहीं रख सकता है । जैसा कि पिछले युद्ध ने सिद्ध कर दिया आजकल संसार के एक कोने के रहने वालों को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। ऐसी दशा में यदि हमको संसार के विभिन्न कोनों का कुछ भी ज्ञान नहीं है तो हम केवल कूप मण्डूक ही हैं जो अपने संकुचित ज्ञानरूपी कुंए में उछल-कूद मचा रहे हैं ।

प्रश्न

१. "मनुष्य अपनी परिस्थितियों का जीव है ।" इस कथन की पुष्टि करिये ।
(म० भारत आई. कॉम., १९५१)

२. 'प्राकृतिक वातावरण' से किन-किन भौगोलिक तत्वों का आशय होता है ? क्या मनुष्य

उनमें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकता है ? प्राकृतिक परिस्थितियों द्वारा प्रस्तुत असुविधाओं को दूर करने के लिए मनुष्य ने कौन-कौन से कृत्रिम साधन निकाले हैं ?
(म० भारत आई. कॉम. १९५३)

३. "जिन भौगोलिक दशाओं के अंतर्गत मनुष्य रहता है, उनके ही अनुसार उसका चरित्र और व्यवसाय बन जाता है।" भारत और इंगलैंड के निवासियों के उदाहरण से इसे समझाइये। (अजमेर बोर्ड १९४५, १९४७; रा० वि० आई. कॉम. १९५३)

४. जीव-जन्तु तथा वनस्पति पर जलवायु का क्या प्रभाव पड़ता है ? इसमें मानवीय प्रयत्न द्वारा कहाँ तक परिवर्तन हुआ है ? (अ. बो. १९४४)

५. किसी देश के व्यापार और वाणिज्य पर वहाँ की प्राकृतिक परिस्थिति और जलवायु का क्या प्रभाव पड़ता है ? (यू० पी० आई. कॉम. १९५१)

६. "मनुष्य न केवल अपने वातावरण की उपज ही है; बल्कि वह उसका निर्माता भी है।" इस कथन की पुष्टि करिये (आगरा, एम. ए.)

७. "परिवर्तनशील मानव स्थिर वातावरण में नहीं रहता, यद्यपि भौतिक वातावरण में उसके द्वारा किया गया परिवर्तन बहुत ही धीमा होता है।" इसकी विवेचना करिये।
(आगरा, एम. ए.)

८. "वातावरण के विभिन्न अंगों में से जलवायु का ही मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर अधिक प्रभाव पड़ता है।" इसे समझाइये। (आगरा, एम. ए.)

अध्याय ३

भूमण्डल और जलमण्डल

(Lithosphere & Hydrosphere)

भूपटल मंडल की उत्पत्ति—यह अनुमान किया जाता है कि अपनी उत्पत्ति के समय हमारी पृथ्वी एक भीषण ज्वालापूर्ण द्रव के प्रज्वलित गोले के रूप में थी जो निरन्तर सूर्य की परिक्रमा करती रहती थी। अनेक युगों के उपरान्त इस ज्वलन्त गोले की ऊपरी परत ठंडी होकर कड़ी होने लगी। यह कड़ी ऊपरी परत हमारी ठोस पृथ्वी का प्रथम आवरण है जिसे भूपटल मंडल कहते हैं।

भूपटल मंडल का महत्व—ग्लोब पर मनुष्यों के विचार से भूपटल मंडल का स्थान अधिक महत्व का है क्योंकि इसी भूपटल मंडल पर मनुष्य अपना निवास स्थान (गृह) बनाता है और इसी से अपने भोजन, वस्त्र तथा अनेक जीवनोपयोगी पदार्थ प्राप्त करता है। केवल मनुष्य ही के लिए नहीं वरन् समस्त सजीव चर तथा अचर प्राणियों के जीवन के लिए भूपटल की उपस्थिति परम आवश्यक है क्योंकि वृक्ष, लता, तृण आदि भूपटल पर ही उत्पन्न होते हैं। समस्त पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीट-पतंग अधिकांश भूपटल पर अपना जीवन निर्वाह करते है। वायु में उड़ने वाले पक्षियों को भी इसी भूपटल के वृक्षों पर अपना घोंसला बनाना पड़ता है। जल-जन्तुओं को भी अपने जीवन के लिए भूपटल द्वारा ही प्रदत्त स्वच्छ मीठे जल तथा महीन मिट्टी और कीचड़ पर निर्भर रहना पड़ता है। इन्हीं कारणों से ग्लोब पर भूपटल को अधिकतम महत्वपूर्ण माना गया है।

पृथ्वी के धरातल की बनावट—आधुनिक पृथ्वी के धरातल पर यदि हम ध्यानपूर्वक दृष्टि डालें तो हमें यह सर्वत्र समान दिखाई नहीं देगा। इस पर हमें बड़ी विशेषताएँ दिखाई देंगी। हम देखेंगे कि ऊपरी भूपटल पर कहीं ऊँची कहीं नीची भूमि है। कहीं पर्वत है तो कहीं पठार या पहाड़ियाँ हैं जिनके बीच-बीच में घाटियाँ विद्यमान हैं, कहीं बड़े खण्ड तथा कहीं अच्छे गर्त मिलेंगे। कहीं ज्वालामुखी पर्वत मिलेंगे तो कहीं विस्तृत मरुस्थल या समतल क्षेत्र मिलेंगे। इन भिन्न-भिन्न विस्तृत स्थल खंडों के बीच में झीलें, नदियाँ, झरने, हिमप्रपात, हिमसरिताएँ, प्राकृतिक क्षेत्र इत्यादि विद्यमान पाए जावेंगे तथा इनके बाहर महासागरों तथा सागरों की विशाल तथा विस्तृत जलराशि मिलेगी। इसके बीच में भिन्न-भिन्न प्रकार के द्वीप मिलेंगे। यदि हम कुछ काल तक इनका निरीक्षण करते रहें तो देखेंगे कि इनकी आकृति स्थिर नहीं रहती। उसमें

भी निरन्तर परिवर्त्तन होता रहता है। ये सभी विशेपताएँ प्राकृतिक शक्तियों की क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती हैं।

चट्टानें (Rocks)

पृथ्वी का ऊपरी तह ८,००० मील व्यास वाली पृथ्वी पर केवल ५० या ६० मील मोटा परत है। यह भूपृष्ठ पृथ्वी के भीतरी भाग वाले पदार्थ की अपेक्षा हल्का होता है। यह सिलीकन और एल्यूमीनियम से निर्मित होता है। इसे स्यॉल (Sial) भी कहते हैं। भूपटल जिस पदार्थ से बना है उसे **चट्टान** (Rock) कहते हैं। अस्तु, प्रत्येक प्रकार का पत्थर चाहे वह सख्त हो या नरम—चट्टान कहलाता है। बालू, कोयला, चूने का पत्थर, ग्रेनाइट आदि सभी चट्टानें हैं। चट्टानें या शिलायें कई प्रकार के खनिजों के संयोग से बनती हैं। कई चट्टानें एक ही खनिज से बनी होती हैं और कई चट्टानें कई प्रकार के खनिजों के योग से बनती हैं। ये खनिज भी कई प्रकार के मूल तत्वों के रासायनिक संयोग के मिलने से बने हैं। कुछ खनिज एक ही मूल तत्व के बने होते हैं जैसे सोना, ताँवा, कोयला आदि। किन्तु अधिकांश खनिज एक से अधिक मूल्यवान तत्वों के योग से बनते हैं। अभी तक ९३ रासायनिक तत्वों का पता चला है। भूपटल के अधिकांश भाग का निर्माण इनमें से केवल १६ तत्वों द्वारा ही हुआ हैं। विद्वानों का अनुमान है कि भूपटल, जल तथा वायु मंडल का ९८% भाग केवल इन आठ तत्वों से बना है—**आक्सीजन** (Oxygen) ४६·६८%; **सिलीकन** (Silican) २७·६०%; **कैलशियम** (Calcium) ३·६३%; **सोडियम** (Sodium) २·७२%; **एल्यूमीनियम** (Aluminium) ८·०५%; **लोहा** (Iron) ५·०३%; **पोटेशियम** (Potassium) २·५६%; और **मैगनेशियम** (Magnesium) २·०७%। अन्य आठ तत्व टाइटेनियम, फास्फोरस, कार्बन, हाइड्रोजन, मैंगनीज, गंधक, क्लोरीन और बेरियम १·५५% भाग का निर्माण करते हैं। ताँवा, सीसा, जस्ता, टीन, सोना, चाँदी आदि तत्वों का मिश्रण बहुत ही कम है।*

जैसा कि ऊपर कहा गया है चट्टानें खनिज के समूहों के एकत्रित होने से बनी हैं। चट्टानों के बनने की विधि के अनुसार उनको तीन मुख्य वर्गों में बाँटा जाता है:—

(१) प्रारम्भिक या आग्नेय चट्टानें (Primary or Igneous Rocks)।

---

*(१) आक्सीजन प्रधान खनिज—स्फटिक और लोहे के आक्साइड, लाल गेरू पीला गेरू आदि।

(२) सिलिकन प्रधान खनिज—फेल्सपार, नेफलीन, अभ्रक, क्लोराइड, आगाईट, हार्नब्लैंड, एसबेस्टास, जहरमोहरा, क्योलिन (चीनी मिट्टी) आदि।

(३) कार्बोनेट खनिज—मैग्नेसाइट, कैल्साइट, डोलोमाइट आदि।

(४) अन्य खनिज—सोनामाखी, रूपामाखी, हरसौंठ आदि।

(२) गौण, प्रस्तरीभूत या पर्तदार चट्टानें (Secondary or Sedimentary or stratified Rocks)।

(३) रूपान्तरित चट्टानें (Metamorphic Rocks)।

(१) आग्नेय चट्टानें—यह चट्टानें पृथ्वी के भीतर से निकले हुए लावा जैसे द्रव पदार्थ के शीतल होने से बनती हैं। यह चट्टानें पृथ्वी के धरातल पर सबसे पहले बनीं। इन चट्टानों के ठंडे होने के स्थान तथा उनके बनने के समय के आधार पर दो भाग किये जा सकते हैं—**आंतरिक अथवा पातालो चट्टानें अथवा डाइक चट्टानें** (Intrusive or Plutonic Rocks or Dyke Rocks) **और बाहरी अथवा बाह्य** (External or volcanic Rocks) **चट्टानें**।

पृथ्वी के गर्भ से निकलने वाला गर्म द्रव लावा धरातल तक नहीं आ पाता किन्तु अत्यन्त गहरे स्थानों पर रह कर ही धीरे-धीरे ठंडा होता रहता है। अत्यन्त गहराई पर ठंडा होने में इसे बहुत समय लगता है। अतः इसमें बड़े-बड़े रवे मिलते हैं। ऊपर की चट्टानों के घिसकर टूट जाने पर यह भीतरी चट्टानें धरातल पर पहुँच जाती हैं। बिल्लौर, फाल्सपर और अभ्रक मोटे दानों वाले चट्टानों के मुख्य उदाहरण हैं। भीतरी चट्टानों का मुख्य उदाहरण ग्रेनाइट और डोलोमाइट हैं। यह अधिकतर मकान बनाने और लोहे को साफ करने के लिये काम में लाई जाती हैं। इन शिलाओं पर जल का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है और इनमें जल भी बहुत कम प्रविष्ट होता है किन्तु यह शिलाएँ परतहीन और बहुत कड़ी होती हैं जिनसे इनके काटने-छाटने में बड़ी मेहनत पड़ती है। ग्रेनाइट पत्थर विशेषकर इङ्गलैंड, स्वेडन, फ्रान्स, कनाडा और भारत में मद्रास तथा मैसूर में पाया जाता है।

बाहरी चट्टानें ज्वालामुखी के उद्गार से निकले लावा के धरातल पर जम कर ठंडे होने से बनती हैं। लावा के शीघ्र ही ठंडे हो जाने के कारण इन चट्टानों में छोटे-छोटे रवे पाये जाते हैं। इस प्रकार की चट्टानों के मुख्य उदाहरण बेसाल्ट हैं। यह चट्टानें महासागरीय ज्वालामुखियों और द्वीपों में अधिक मिलती हैं। इनमें क्षार की मात्रा कम होती है किन्तु लोहा, चूना और मैग्नेशियम अधिक मात्रा में मिलते हैं। यह चट्टानें ग्रेनाइट चट्टानों की अपेक्षा ऊँचे तापक्रम पर पिघलती हैं किन्तु उनकी अपेक्षा पतली होती हैं और इन पर मौसमी क्षति का प्रभाव बड़ी जल्दी पड़ता है। भारत में इस प्रकार की चट्टानें दक्षिण के पठार पर पाई जाती हैं।

आग्नेय चट्टानें बड़े महत्व की मानी जाती हैं क्योंकि संसार के अधिकतर खनिज पदार्थ इन्हीं चट्टानों में पाये जाते हैं।

(२) प्रस्तरीभूत चट्टानें—यह चट्टानें धरातल पर अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। विद्वानों का अनुमान है कि पृथ्वी के तीन चौथाई भाग पर यह चट्टानें बिछी हुई पाई जाती हैं। यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर यह चट्टानें इतनी विस्तृत हैं किन्तु भूपटल के निर्माण में इनका केवल पांच प्रतिशत भाग ही है। शेष ९५

प्रतिशत भाग में आग्नेय और रूपान्तरित चट्टानें भरी पड़ी हैं। इन शिलाओं का निर्माण वर्तमान चट्टानों के घिसे हुए अंश से ही होता है और इनका संचय बिखरे हुए रूप में होता है किन्तु सतह रासायनिक पदार्थ के द्वारा आपस में जुड़ जाती है। परतदार शिलाएँ पृथ्वी के तह के ऊपर झीलों अथवा छिछले सागरों की तलहटी में जल के द्वारा लाई गई बालू, मिट्टी और कंकड़ आदि के जम जाने से बनती हैं। निरन्तर जमते रहने के कारण ऊपरी परतों के दबाव और पानी में घुल कर आये हुए चूना या अन्य पदार्थों के मिलने से परत जम कर सख्त चट्टानें बन जाती हैं। पृथ्वी के धरातल पर उथल-पुथल होने के कारण पानी के भीतर बनी हुई यह चट्टानें बाहर निकल आती हैं। इन चट्टानों में कई परतें एक दूसरे के ऊपर जमी रहती है। इन चट्टानों में समुद्र में रहने वाले जीवधारियों के अवशेष भी मिले रहते हैं। इन चट्टानों में स्फटिक मिट्टी और चूने की अधिकता होती है।

चट्टानों के बनने के अनुसार यह चट्टानें तीन प्रकार की हो सकती हैं। (१) चट्टानों के चूर्ण से बनी हुई चट्टानें—इस प्रकार की बनी हुई चट्टानों में बालू और चिकनी मिट्टी की अधिकता के कारण क्रमशः इन्हें बालू का पत्थर (Arnaceous Rocks) या चिकनी मिट्टी का पत्थर (Agrillaceous Rocks) कहते हैं। बालू का पत्थर इमारती पत्थरों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह न तो ग्रेनाइट जैसा कड़ा और न चूने के पत्थर जैसा नरम और शीघ्र क्षय होने वाला होता है। बालू का पत्थर तहदार भी होता है। बालू के पत्थर की चट्टानें भारत में मध्यभारत, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और विन्ध्याचल पर्वत में अधिक पाई जाती हैं। इनका प्रयोग इमारतें बनाने के लिए किया जाता है। बालू की चट्टानें छिद्रदार चट्टानें होती हैं, अतः इनमें पानी भरा रहता है। इसको कुँए खोदकर निकाला जा सकता है। जिन चट्टानों में चिकनी मिट्टी अधिक पाई जाती है उनमें छिद्र बहुत कम पाये जाते हैं। इस कारण आग्नेय चट्टानों को बेध कर पानी नीचे नहीं जाने पाता। किन्तु जब यह चट्टानें धरातल पर आ जाती हैं तो उनमें कटाव बड़ी जल्दी होने लगता है। इसीलिए इन चट्टानों का प्रयोग मकान बनाने में नहीं किया जाता। इस प्रकार की चट्टानों का मुख्य उदाहरण शेल और कंकड़ हैं। भारत में कंकड़ अधिकतर उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब में पाया जाता है।

(२) विलीन रसायनों से निर्मित प्रस्तरीभूत चट्टानें प्रायः बहते हुए जल के साथ घुलनशील तत्वों के मिले रहने के कारण बनती हैं। इस प्रकार से बनी चट्टानों के मुख्य उदाहरण हरसोंठ, चट्टानी नमक, पोटेशियम नमक, स्टेलकटाइट और ओलाइट हैं। हरसोंठ शुष्क प्रदेशों के खारी झीलों में जमा हुआ होता है। भारत में यह राजस्थान के जैसलमेर, बीकानेर और जोधपुर डिवीजन में प्राप्त होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारत में हरसोंठ का ७४० लाख टन का जमाव है जिसमें से ५०६ लाख टन राजस्थान में, १६३ लाख टन मद्रास में, सौराष्ट्र में ४४ लाख, कच्छ में २० लाख, हिमाचल प्रदेश में ३ लाख और उत्तर प्रदेश में २० हजार टन है। इसका प्रयोग रासायनिक खाद बनाने तथा चूना मिला कर प्लास्टर आफ पेरिस, रंग, पालिश और द्रव भरने वाले पदार्थों के बनाने में किया जाता है।

के मध्य में पामीर के पठार से निकलकर चार भागों में बँट गई हैं : (१) पहली शाखा अफगानिस्तान, फारस, टर्की होती हुई दक्षिणी यूरोप में फैल गई है। इसमें हिन्दू-कुश, सुलेमान, जैग्रास, टारस, पाँन्टिक, काकेशस और एलबुर्ज पर्वत मुख्य हैं। दक्षिणी यूरोप की पर्वत माला में कार्पेथियन, आल्पस और पिरेनीज मुख्य हैं। इनकी सबसे ऊँची चोटी माउन्ट ब्लेक १७,५८२ फीट है। (२) दूसरी शाखा जो कम ऊँची और टूटी हुई है अरब और एबीसीनिया के पठारों पर होती हुई दक्षिणी अफ्रीका में चली गई है। इसमें मध्य अफ्रीका के पर्वत ही मुख्य हैं। इनकी सबसे ऊँची चोटी किलमांजरो १९,३२० फीट है। (३) तीसरी शाखा हिमाचल पर्वत, अराकान और पीगूयोमा के नाम से भारत में होती हुई मलाया प्रायद्वीप तथा पूर्वी द्वीप समूह में होकर आस्ट्रेलिया तक चली गई है। इस भाग की सबसे ऊँची चोटी माउन्ट एवरेस्ट २९,१४१ फीट है। यही विश्व की सबसे ऊँची चोटी है। (४) चौथी शाखा चीन तथा साइबेरिया में होती हुई बेरिंग जल संयोजक तक चली गई है।

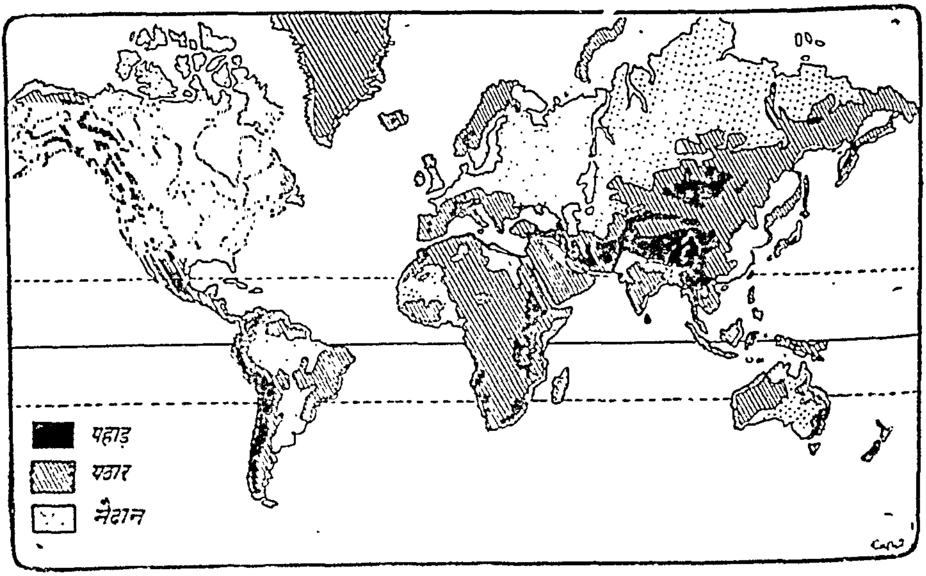

चित्र ४—धरातल के प्रमुख आकार

पश्चिमी गोलार्द्ध की पर्वत माला उत्तरी अमेरिका के अलास्का प्रांत से शुरू होकर दक्षिणी अमेरिका के हार्न अंतरीप तक चली गई है। राकी पर्वत और एंडीज पर्वत इस शाखा के मुख्य अंग हैं जिनकी ऊँची चोटियाँ क्रमशः माउन्ट मेकिनले २०,३०० फीट तथा माउन्ट ऐकैन कैगुआ २३,००० फीट हैं। (चित्र ५)

इन पर्वत मालाओं के अतिरिक्त कुछ फुटकर बिखरे हुए पहाड़ भी हैं जैसे—उत्तरी पश्चिमी यूरोप के पहाड़ अथवा उत्तरी अमेरिका के एपेलेशियन और ब्राजील के पहाड़, यूरोप और रूस के बीच में यूराल का पर्वत (किन्तु यह अधिक ऊँचा नहीं है)।

बनावट के अनुसार पर्वतों का विभाजन—बनावट के अनुसार दुनिया की पर्वत मालाओं का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

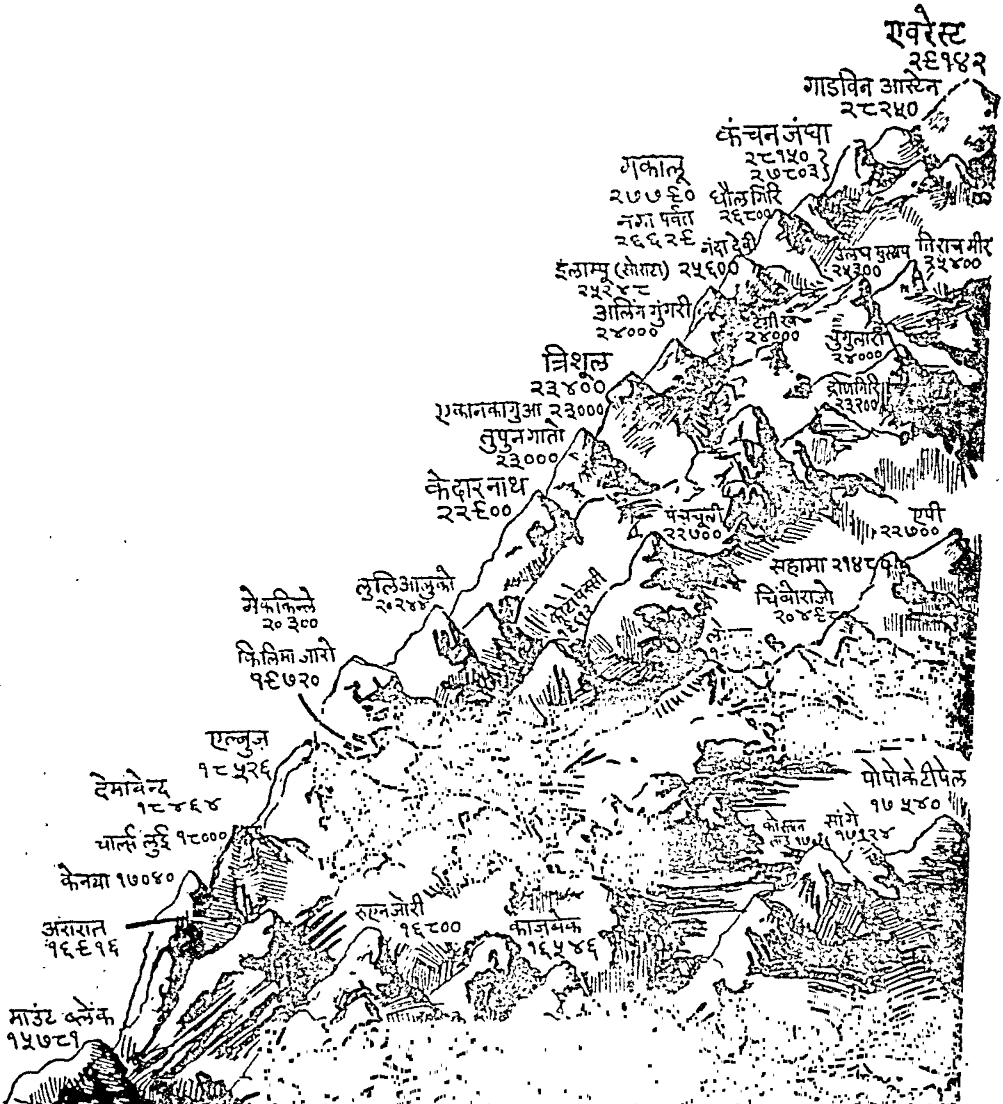

चित्र ५—प्रमुख पर्वतों की चोटियों की तुलनात्मक ऊँचाई

(१) पुटीकृत या मोड़दार पर्वत मालाएँ (Folded Mountains)—इनमें नई और पुरानी सभी पुटीकृत पर्वत मालाएँ सम्मिलित हैं। नई पुटीकृत पर्वत मालाओं में आल्पस और हिमालय मुख्य हैं तथा पुरानी पुटीकृत पर्वत मालाओं में पिनाइन्स (इङ्गलैंड), एपलेशियन, जूरा (फ्रान्स), अल्टाई (मध्य एशिया) पर्वत मालाएँ हैं। इनमें केलेडियन पर्वत मालाएँ भी सम्मिलित

की जा सकती हैं कारण कि उनमें भी पर्तों का पता लगा है। इस प्रकार पुटीकृत पर्वत दो प्रकार के होते हैं—(१) नये पुटीकृत, और (२) पुराने पुटीकृत।[1]

(२) एकाकी पर्वत मालायें (Block Mountains)—भूकम्प के प्रभाव से पृथ्वी की पपड़ी पर दरारें पड़कर कुछ हिस्सा उठा हुआ रह जाता है और शेष नीचे धँसकर छिन्न-भिन्न होकर समुद्र में डूब जाता है। ऐसे पर्वतों को एकाकी पर्वत (Block table या Horst Mountain) कहते हैं। यूरोप के वॉसैजेस और ब्लेक फोरेस्ट ऐसे ही पर्वत हैं। इनके किनारों का ढाल बहुधा खड़ा होता है और इनकी चोटी मेज की भाँति होती है। दो एकाकी पर्वतों के बीच जो भूमि नीचे से धँस जाती है उसे दरार घाटी (Rift Valley) कहते हैं।

(३) क्षत-विक्षत पर्वत मालायें (Mountains of Denudation)-ये पर्वत मालाएँ किसी समय ऊँची थीं, लेकिन कालान्तर में क्षयात्मक क्रियाओं द्वारा नीची होगई हैं। ये पर्वत मालाएँ नीचे पहाड़ों, पेनीप्लेन या पठारों के रूप में देखी जाती हैं। स्काटलैंड की पहाड़ियाँ और स्पेन के सियरा गाडियाना और सियरा मोरेना इसी प्रकार की श्रेणियाँ हैं।

(४) ज्वालामुखी पर्वत (Volcanic Mountains)—ये पर्वत ज्वालामुखी पर्वतों से निकले पदार्थों के बनते हैं। ज्वालामुखी पर्वतों से जो लावा आदि पदार्थ निकलता है वह मुख के चारों ओर शंकु (conical) के आकार में लगातार ऊँचा उठा करता है। शंकु की आकृति वाले इसी टीले तथा तरल पदार्थ को निकालने वाले छिद्र को ज्वालामुखी कहते हैं।

(ख) पठार (Plateaux)

इन पर्वत मालाओं से जुड़े हुए भू भाग पठार होते हैं। पठार भूमि से उठे हुए वह भाग हैं जो चोटी पर काफी चौड़े किन्तु एक तरफ या उससे अधिक ओर अपने घिरे हुए भू भागों से ऊँचे होते हैं। पठारों की ऊँचाई ६०० फीट से लेकर २,३०० फीट तक मानी गई है। किन्तु हिमालय के उत्तर में तिब्बत के पठार की ऊँचाई १५,००० फीट है। दक्षिणी अमेरिका में बोलेविया की ऊँचाई १०,००० से १२,००० फीट; उत्तरी अमेरिका में ग्रेट बेसिन कोलंबिया के पठार ६,००० से ८,००० फीट तक ऊँचे हैं और भारत के दक्षिणी पठार की ऊँचाई १,००० से लेकर ४,००० फीट तक है।

दुनिया के मुख्य पठार एशिया में तिब्बत, एशिया माइनर, मंगोलिया, ईरान, अरब, दक्षिणी भारत के पठार; उत्तरी अमेरिका में मेक्सीको तथा लेबरेडोर का पठार; दक्षिणी अमेरिका में बोलेविया और ब्राजील का पठार; अफ्रीका में एबीसीनिया और सहारा के दक्षिणी भाग का बड़ा मध्यवर्ती पठार; यूरोप में यूनान और बोलेविया का पठार और आस्ट्रेलिया में पश्चिमी रेगिस्तान के पठार हैं।

---

१. विशेष वर्णन के लिये देखिये लेखक का "भौतिक भूगोल के आधार" (प्रेस में)।

पठार निम्न प्रकार के होते हैं —

(१) पर्वतों से घिरे पठार (Intermont Plateaux)—जो पठार सब ओर से ऊँची पर्वत श्रेणियों द्वारा घिरा हो तो उसे (Intermont Plateau) कहते हैं। कभी २ ये पठार इतने पूर्णतः घिरे होते हैं कि नदियाँ भी समुद्र तक पहुँचने का मार्ग नहीं पातीं। इन पठारों का ढाल भीतर की ओर होता है और इनकी नदियाँ अन्दर को बहती हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य का 'साल्ट लेक प्लेटो' और बिलोचिस्तान का पठार इत्यादि।

(२) पीडमाँट पठार (Piedmont Plateaux)—जो पठार किसी ऊँचे पर्वत के सहारे-सहारे फैला हो उसे पीडमाँट पठार कहते हैं। उदाहरणार्थ उत्तरी इटली के पश्चिम का पठार तथा अपलेशियन पर्वत के पूर्व का पठार। ऐसे पठारों की चट्टानें लेटी हुई पड़ी रहती हैं और नदियाँ इनमें गहरे खड्ड बनाती हैं। कोलोराडो नदी का खड्ड कई मील तक गहरा है।

(३) कटावदार पठार (Dissected Plateaux)—जिन पठारों पर अधिक वर्षा होती है वहाँ तेज बहने वाली नदियाँ बहती हैं। उनके बहाव से गहरी और तंग घाटियाँ बन जाती हैं जिससे पठार कई भागों में बँट जाता है। छोटे-छोटे पठारों को मेसा (Mesa) कहते हैं। ऐसे कटे-फटे पठारों को कटावदार पठार कहते हैं; उदाहरणार्थ स्काटलैन्ड तथा वेल्स के पठार।

(४) शुष्क प्रदेशों के पठार—ये पठार प्रायः समतल होते हैं। इनकी स्थिति, रचना तथा आकार कटावदार पर्वतों के सदृश होते हैं। इन प्रदेशों में बहुत कम वर्षा होने से वर्षा के जल अथवा नदियों के प्रवाह द्वारा धरातल में क्षय नहीं हो पाता, इसलिये सतह समतल रहती है। वायु द्वारा उड़ाकर लाई गई मिट्टी से सब गड्ढे भर जाते हैं जैसे अरब का पठार।

(५) प्राचीन पठार—इस कोटि में अत्यन्त प्राचीन पठार शामिल हैं। संसार में तीन महान् चबूतरे जैसे प्रदेश मिलते हैं—

(अ) लारेंशियन ढाल (Laurantian Shield)—अथवा कनाडा का पठार।

(ब) बाल्टिक ढाल (Baltic Shield)—अथवा स्केन्डिनेविया का पठार।

(स) अंगारा शील्ड (Angara Shield)—अथवा साइबेरिया का पठार। उच्च अक्षांशों में होने के कारण इनका धरातल हिम-नदियों द्वारा कट-फट गया है। इनकी सीमाओं के समीप खाड़ियाँ तथा झीलें स्थित हैं। इन पठारों को हिम-पठार (Ice Plateaux) भी कहते हैं।

प्राचीन गोंडवानालैंड (Gondwanaland) के अंग भी इसी प्रकार के पठारों में गिने जाते हैं। आस्ट्रेलिया के पश्चिमी पठार, दक्षिण का पठार,

अरब का पठार, अफ्रीका का पठार तथा ब्राजील का पठार इसी गोंडवानालैंड के ही अवशिष्ट अंग हैं।

(ग) मैदान (Plains)

मैदान पृथ्वी के धरातल के समतल, नीचे और बहुत कम ढाल वाले भू-भाग होते हैं। पृथ्वी के धरातल पर पहाड़ों और पठारों के सम्मिलित क्षेत्रफल से भी अधिक क्षेत्रफल मैदानों का है। संसार के सबसे बड़े मैदान अधिकतर नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बने हैं यद्यपि हिमानियों और समुद्र की लहरों का भी उनमें से कुछ के बनने में बहुत कुछ हाथ रहा है। संसार के लगभग सब मैदान ६६० फीट से नीचे हैं। ये लगभग समतल और अत्यन्त उपजाऊ हैं। मैदानों में पहाड़ों और पठारों की अपेक्षा आवागमन के मार्ग बनाने में बड़ी सुविधा रहती है और जो नदियाँ मैदानों में बहती हैं वे भी व्यापार के लिए सुविधाजनक जलमार्ग बनाती हैं। इसी कारण मैदान ही पृथ्वी के सबसे घने बसे हुए भाग हैं जैसे—उत्तरी-पश्चिमी यूरोप, दक्षिणी रूस, चीन, भारत और संयुक्त राष्ट्र के मैदान विश्व के अत्यन्त घने बसे हुए देश हैं। किन्तु कुछ मैदान अत्यधिक शीत के कारण जनसंख्या से शून्य हैं; जैसे साइबेरिया और उत्तरी कनाडा के मैदान। जल की कमी भी मैदानों को निर्जन बनाने में बड़ी सहायक होती है जैसे सहारा, अरब और आस्ट्रेलिया तथा थार के विस्तीर्ण मरुस्थल।

पृथ्वी के मुख्य मैदान एशिया में साइबेरिया का मैदान, गंगा-सिन्ध का बड़ा मैदान, दजला और फरात नदियों के मैदान, ह्वांगहो और यांग्टीसीक्यांग नदियों के मैदान; यूरोप में भी सीन, ल्वायर, एल्ब, ओडर, राइन, पो और डेन्यूब नदियों के मैदान; अफ्रीका में नील नदी का मैदान; उत्तरी अमेरिका में सैन्टलारेन्स, मिसीसिपी तथा मिसौरी नदियों के मैदान; दक्षिणी अमेरिका में लाप्लाटा, अमेजन और ओरिनीको नदियों के मैदान तथा आस्ट्रेलिया में मरे-डार्लिङ्ग का मैदान मुख्य हैं।

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी के स्थल भाग का ३०% ही इतना समतल, गरम और नरम है कि उस पर खेती की जा सकती है। कुमारी सैम्पल के अनुसार पृथ्वी पर मैदान ही उद्योग-धन्धों, कृषि, संस्कृति और राजनीति की उन्नति के स्थान हैं। इन्हीं स्थानों में संसार के बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक नगर बसे हैं तथा ये मैदान ही प्राचीन काल से विश्व की प्रमुख सभ्यताओं और संस्कृति के आदि स्रोत रहे हैं। मैदानों का निर्माण या तो रचनात्मक क्रियाओं द्वारा होता है जैसे ज्वालामुखियों, हिमागार, नदियों या समुद्रों के उथले होकर नए धरातल बनने से बने हुए मैदान या क्षयात्मक क्रियाओं द्वारा जैसे पठारों को पेनी प्लेन मैदानों में परिवर्तन करना।

मैदानों का निम्नलिखित विभाजन किया जा सकता है—

(१) तटीय मैदान (Coast[illegible] उथले समुद्रों के तटीय भागों के जल से ऊपर निकलने या[illegible] मिट्टी के द्वारा

समुद्र तल से नये मैदानों का निर्माण होने से बनते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दक्षिण-पूर्व के मैदान या दक्षिणी भारत के दक्षिण-पूर्व के त्रावनकोर कोचीन के तटीय मैदान इस प्रकार के मैदानों के उदाहरण हैं।

(२) झीलों के मैदान (Lacastrine Plains)—ऐसे मैदान झीलों के तल के सूखने से बनते हैं। झीलों के सूखने का कार्य दो प्रकार से होता है--या तो उनका तल ऊपर उठने से या मिट्टी भर जाने से। उत्तरी अमेरिका के प्रेरी के मैदान भी एक पुरानी झील एगैसिज (Aggasiz) के भर जाने से बने हुए बताए जाते हैं। हंगरी के मैदान भी इसी प्रकार बने हैं।

(३) नदियों के मैदान (River Plains)—ऐसे मैदानों को कछारी मैदान भी कहते हैं। यह कछारी मिट्टी नदियां द्वारा लाई जाती है। संसार के बड़े-बड़े मैदान इसी प्रकार के हैं। गङ्गा-सिन्धु का मैदान और ह्वांगहो के मैदान इसी प्रकार के उदाहरण हैं। इनमें से कुछ नदियाँ बहुत-सी मिट्टी प्रति वर्ष समुद्र में डालकर डेल्टे के रूप में नई भूमि का निर्माण किया करती हैं।

(४) हिमावरण मैदान (Glacial Plains)—हिमावरण या हिमानियों के पिघलकर उनमें मिले कंकड़ पत्थर (Morraine) आदि के जम जाने से इस प्रकार के मैदानों की रचना होती है। यूरोप के उत्तर का बड़ा मैदान या कनाडा का मध्य मैदान इसी प्रकार के मैदानों के उदाहरण है। इन मैदानों में असंख्य छोटी-छोटी झीलें पाई जाती हैं।

(५) ज्वालामुखी मैदान (Lava Plains)—ज्वालामुखियों के उद्गार के समय निकली हुई राख (Ash) या लावा आसपास के धरातल को समतल बनाकर ऐसे मैदान बनाते हैं, जैसे विसूवियस ज्वालामुखी ने नेपल्स के पास ऐसे मैदान का निर्माण किया है। लावा के मैदान दक्षिणी पठार और सं० रा० के वाशिंगटन क्षेत्र में भी हैं। ये बड़े विस्तृत और उपजाऊ होते हैं।

(६) रचनात्मक मैदान (Structural Plains)—ऐसे मैदान चट्टानों के समतल बिछौने की तरह बिछने से बनते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का मध्य का मैदान तथा रूस का बड़ा मैदान इस प्रकार के मैदानों के उदाहरण हैं।

(७) पेनी प्लेन (Peni Plains)—ये मैदान क्षयात्मक क्रियाओं द्वारा बने हुए होते हैं। ऐसे मैदान पहाड़ों के छिन्न-भिन्न होकर नीचे होने से बनते हैं। समुद्री किनारों पर लहरें भी ऐसे मैदानों का निर्माण करती हैं। कभी-कभी किसी पेनी प्लेन में बहुत कुछ टीले रह जाते हैं इन्हें Monadonacks कहते हैं। पेनी प्लेन के उदाहरण मध्य रूस, पूर्वी इंग्लैंड, अरावली पर्वत का मैदान तथा पेरिस का बेसीन है।

जलमंडल

भूमण्डल पर सभी जगह जल ही जल या भूमि ही भूमि नहीं है किन्तु कहीं जल और कहीं भूमि है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि समस्त

पृथ्वी के धरातल पर जिसका क्षेत्रफल लगभग २० करोड़ वर्गमील है, तीन चौथाई भाग में जल (जिसकी औसत गहराई १२,००० फीट है) तथा एक चौथाई भाग में भूमि है। इस प्रकार पृथ्वी के धरातल पर ७१ प्रतिशत जल और २६ प्रतिशत स्थल है। विद्वानों का कथन है कि यदि समस्त पृथ्वी के धरातल को समतल वना दिया जाय तो पृथ्वी पर दो मील की ऊँचाई तक जल भर जायगा। स्थल का सबसे बड़ा भाग उत्तरी गोलार्द्ध में है पर दक्षिणी अक्षांश (४०°) के दक्षिण में कुछ भागों को छोड़ कर सभी जगह जल है। जल और स्थल के विस्तार में अधिकता के कारण पृथ्वी को जल गोलार्द्ध (Water Hemisphere) और स्थल गोलार्द्ध (Land Hemisphere) में विभाजित करते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दक्षिणी गोलार्द्ध में ८१ प्रतिशत जल और १६ प्रतिशत स्थल तथा उत्तरी गोलार्द्ध में ४० प्रतिशत जल और ६० प्रतिशत स्थल है।

जल स्थल का विस्तार—पृथ्वी के गोले पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि हमारी पृथ्वी का ढाँचा चतुष्फलक (Tetrahedron) है जिस पर जल और स्थल का विस्तार इस प्रकार है:—

(१) उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल और दक्षिणी गोलार्द्ध में जल की अधिकता है।

(२) जल और स्थल प्रायः दोनों ही विषम त्रिभुजाकार हैं। स्थल त्रिभुजों के आधार उत्तर की ओर हैं और वे दक्षिण की ओर पतले होते-होते नुकीले हो गये हैं। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका और भारत इसके उदाहरण हैं। इसके विपरीत प्रशान्त महासागर, भूमध्यसागर, अरबसागर और बंगाल की खाड़ी आदि जल-खंडों का आधार दक्षिण की ओर तथा शीर्ष उत्तर की ओर है।

(३) संसार के स्थल-प्रदेश उत्तरी गोलार्द्ध में आर्कटिक महासागर के चारों ओर हैं जिनके दक्षिणी भाग अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका और एशिया तथा आस्ट्रेलिया के रूप में दक्षिण की ओर लटके हुए हैं।

(४) पृथ्वी के गोले पर जो स्थान एक दूसरे के ठीक विपरीत ओर स्थित होते हैं वे एक दूसरे के कुद्लांतर (Antipodes) कहलाते हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर जल और स्थल कुदलांतर बनते हैं। आस्ट्रेलिया उत्तरी अटलांटिक का कुदलांतर है। अफ्रीका और यूरोप मध्य प्रशान्त महासागर के कुदलांतर हैं। इसी प्रकार उत्तरी अमेरिका हिन्द महासागर का और एशिया अटलांटिक महासागर का तथा अन्टार्कटिक का स्थल-समूह आर्कटिक महासागर का कुदलांतर है।

सर जान मुरे के अनुसार पृथ्वी के धरातल पर विभिन्न गहराई व ऊँचाई के जल स्थल का विस्तार इस प्रकार है—

ऊँचाई फीटों में	क्षेत्रफल (दस लाख वर्ग मीलों में)	समस्त गोले का प्रतिशत
स्थल खण्ड—		
१२००० फी० से ऊपर	२	१
६००० से १२००० फीट तक	४	२
३००० से ६००० ,, ,,	१०	५
६०० से ३००० ,, ,,	२६	१३
० से ६०० ,, ,,	१५	८
	५७	२९
जल खण्ड—		
० से ६०० फीट गहरा	१०	५
६०० से ३००० ,, ,,	७	३
३००० से ६००० ,, ,,	५	२
६००० से १२००० ,, ,,	२७	१५
१२००० से १८००० ,, ,,	८१	४१
१८००० से अधिक गहरा	१०	५
	१४०	७१

महासागरों का धरातल (Surface of Oceans)

जैसा कि ऊपर कहा गया है पृथ्वी पर स्थल की अपेक्षा जल का भाग अधिक है। परन्तु जल तरल है और स्थल की भाँति ठोस नहीं है, इसलिए इसमें उस प्रकार का परिवर्तन नहीं होता जिस प्रकार का स्थल भाग में होता है। तरल होने के कारण बिना टूटे-फूटे ही यह अपने को नई-नई परिस्थितियों में बदल लेता है। यही कारण है कि जल का धरातल साधारणतया समतल रहता है, परन्तु जल के धरातल के नीचे उसी प्रकार की असमानता पाई जाती है जिस प्रकार की भूपटल पर। प्रायः सागर और महासागर के तल में उसी प्रकार के पहाड़ और घाटियाँ पाई जाती हैं जिस प्रकार की भूपटल पर।

समुद्र के धरातल को गहराई के हिसाब से चार भागों में बाँटा जा सकता है :—

उड़ता है। इसके अतिरिक्त थल के ऊपर का बर्फ पिघलने से इन समुद्रों में पर्याप्त मात्रा में मीठा जल मिलता है। यहाँ खारापन ३४%० होता है।

स्थल से घिरे सागरों में जल कम आता है और भाप अधिक बनती है। इस कारण लाल सागर में नमक की मात्रा अधिक पाई जाती है क्योंकि यहाँ गिरने वाली नदियाँ अपने साथ कम पानी लाती हैं जो लगातार गरमी पड़ने के कारण शीघ्र ही भाप बन कर उड़ जाता है। किन्तु इसके विपरीत बाल्टिक और उत्तरी सागर में एक तो ठंड की अधिकता के कारण भाप बन कर पानी कम उड़ता है और दूसरे गरमी की ऋतु में इसमें गिरने वाली सैकड़ों छोटी-छोटी नदियाँ बरफ के पिघले हुए पानी को समुद्र में गिराती रहती हैं। कैस्पियन सागर (१४%० से १७०%०), मृतक सागर (२३७.५%०) और साल्ट लेक तो बहुत ही खारे हैं (२२०%०)

समुद्र का तापक्रम (Temperature of Oceans)—समुद्र के ऊपरी धरातल के पानी का तापक्रम अक्षांश के अनुसार होता है। भूमध्य रेखा के पास ऊपरी पानी का तापक्रम प्रायः ८०° फा० रहता है, पर ध्रुवों के पास धरातल के पानी का तापक्रम २८° फा० हो जाता है। इस तापक्रम में प्रचलित हवाओं, सामुद्रिक धारा और भूभागों के बीच में आ जाने का प्रभाव पड़ता है। उष्ण कटिबन्धु में जो जल भाग भूमि से घिरे रहते हैं उनका तापक्रम खुले सागरों के तापक्रम से अधिक रहता है। फारस की खाड़ी में यह तापक्रम ९४° फा० और लाल सागर में ९६° फा० तक पहुँच जाता है। समुद्र के धरातल के तापक्रम में दैनिक तथा ऋतुओं के अनुसार अन्तर पड़ता है। विषुवत रेखा पर समुद्री धरातल का दैनिक तापान्तर १° फा० रहता है। शीतोष्ण कटिबन्ध में ऋतुओं के अनुसार २०° फा० तक तापक्रम भेद हो जाता है।

जिस प्रकार पहाड़ों पर चढ़ने से तापक्रम गिरता जाता है, उसी प्रकार समुद्र में अधिकाधिक गहराई पर तापक्रम कम होता जाता है। तीन-चार मील की गहराई पर तो पानी का तापक्रम हिमाँक बिन्दु से कुछ ही ऊपर होता है। इसका कारण यह है कि तली का ठंडा पानी एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक धीरे-धीरे चलता रहता है। पर कुछ ऐसे समुद्र हैं जिनमें डूबी हुई पहाड़ियों की रुकावट के कारण महासागर का ऊपरी गरम पानी ही प्रवेश करता है इसलिए उनकी तली वाले पानी का तापक्रम ऊँचा हो जाता है। अटलांटिक और भूमध्य सागर के ऊपरी धरातल के पानी का तापक्रम एकसा (६५° फा०) रहता है। पर जिब्राल्टर प्रणाली के पास एक निमग्न पहाड़ी स्थित होने के कारण दो मील की गहराई पर अटलांटिक का तापक्रम ४०° फा० हो जाता है, लेकिन इसी गहराई पर भूमध्य सागर का तापक्रम ६५° फा० से कम नहीं होता। इसी प्रकार बाबुलमंदप की रुकावट के कारण दो फर्लाङ्ग की गहराई के बाद हिन्दमहासागर और लालसागर के तापक्रम में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। लालसागर का तापक्रम ७०° फा० से कहीं कम नहीं होता किन्तु हिन्दमहासागर

का तापक्रम बराबर कम होता जाता है। लेकिन दोनों के धरातल का तापक्रम प्रायः समान (८५° फा०) होता है।

प्रश्न

१. पृथ्वी के धरातल पर पाये जाने वाली भिन्न-भिन्न प्रकार की चट्टानों का वर्णन करते हुए उनका आर्थिक महत्त्व बताइये। (आगरा बी० कॉम०, १९४८)
२. भूतल पर मुख्य मुख्य मैदानों और पठारों का वर्णन करते हुए बताइये कि आर्थिक विकास पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है।
३. भिन्न-भिन्न प्रकार के मैदानों का वर्णन करिये। इनके बनने के कारणों पर भी प्रकाश डालिये। (आगरा, बी० कॉम, १९४३)
४. महासागरों के विभिन्न खण्डों पर अपने विचार प्रकट करिये।
५. चट्टानें क्या हैं ? उनका वर्गीकरण करते हुए विभिन्न प्रकार की चट्टानों की विशेषतायें बताइये। ग्रेनाइट, बैसाल्ट, चूने का पत्थर तथा संगमरमर को किस प्रकार की चट्टानों के अन्तर्गत रखेंगे ? (आगरा बी० कॉम० १९५३)

अध्याय ४

वायुमंडल (Atmosphere)

वायु मण्डल की बनावट—जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसके चारों ओर लगभग ६०० मील की ऊँचाई तक हवा का एक खोल-सा चढ़ा है। इसी खोल को "वायु मण्डल" कहते हैं। पृथ्वी के साथ-साथ वायु मण्डल भी घूमता है। यह वायु मंडल न केवल जल और स्थल को घेरे है बल्कि दोनों के भीतर भी व्याप्त है। वायु के बिना जगत का कोई भी जीवधारी जीवित नहीं रह सकता। प्रो० हम्फ्रीज के अनुसार वायु मंडल कई प्रकार की गैसों से बना है जिनमें मुख्य अवयव ये हैं—

नेत्रजन	(Nitrogen)	७७·१४	प्रतिशत
ओषजन	(Oxygen)	२०·६६	,,
जलवाष्प		१·२२	,,
आॅर्गन	(Organ)	०·९३	,,
कार्बन-डाइ-आक्साइड		०·०१	,,
हाइड्रोजन	(Hydrogen)	०·०१	,,
योग		१००·००	प्रतिशत

इन गैसों के अतिरिक्त वायु मण्डल में धूल के कण तथा हीलियम और नियोन जैसी हल्की गैसें भी पाई जाती हैं। वायु मण्डल नीचे के भाग में

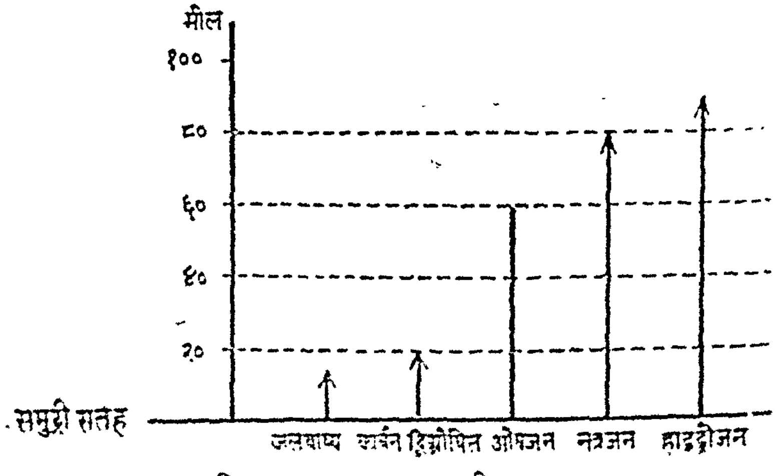

चित्र ७—वायु-मण्डल की बनावट

ही घना है, किन्तु ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों वह हल्का और पतला होता जाता है यहाँ तक कि एक सीमा के बाद साँस लेना भी दुष्कर हो जाता है। वायुमण्डल की पूर्ण गहराई तक अभी मानव की पहुँच नहीं हो सकी है। अनुमान लगाया गया है कि ६८ मील के बाद ओषजन का अभाव रहता है तथा ८० मील की ऊँचाई तक नेत्रजन मिलती है किन्तु अधिक भारी होने के कारण कार्बन द्विओषित प्रायः १२ मील की ऊँचाई तक ही मिलता है। वायु मण्डल में वाष्प ७-८ मील की ऊंचाई तक ही मिलती है, किन्तु हाइड्रोजन ८० मील के ऊपर तक पाई जाती है तथा धूल के कण अदृश्य रूप से वायु मण्डल के बहुत बड़े भाग को घेरे हुए हैं। ये अधिक से अधिक २०,००० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

वायु-मण्डल के सम्बन्ध में जो मुख्य बात ध्यान रखने योग्य है वह यह है कि वायु को हल्केपन के कारण इधर-उधर जाने में बड़ी सुविधा रहती है। वह जल और स्थल के बीच में सदा घनिष्ट सम्बन्ध बनाए रखती है क्योंकि वह स्थल से जल की ओर और जल की ओर से स्थल की ओर सदैव आया-जाया करती है। इस बात का प्रभाव पृथ्वी के जीवन पर बहुत पड़ा है क्योंकि इसी से किसी स्थान की जलवायु निर्धारित की जाती है। इसके अतिरिक्त वायु के बेरोक-टोक इधर-उधर आने-जाने से सदैव नई वायु के ओषजन से मनुष्य का स्वास्थ्य बना रहता है और पेड़ों को भी इससे मिली हुई नेत्रजन से लाभ पहुँचता है।

वायु-मण्डल का ताप (Temperature of Air)

हवा से जो गरमी प्राप्त होती है उसे हवा का तापक्रम कहते हैं। यह गरमी कहीं अधिक और कहीं कम मात्रा में मिलती है। एक ही समय में सम्पूर्ण विश्व का तापक्रम एकसा नहीं रहता जैसे ग्रीष्म ऋतु उष्ण रहती है तथा सुबह की हवा का तापक्रम दोपहर की हवा के तापक्रम से भिन्न रहता है अथवा ग्रीष्म ऋतु के एक दिन का तापक्रम शरद ऋतु के एक दिन के तापक्रम से भिन्न रहता है। हवा का तापक्रम एक स्थान पर दिन अथवा वर्ष के विभिन्न समयों में बदलता रहता है। इसका कारण यह है कि सूर्य के सामने पृथ्वी की दशा सर्वदा एकसी नहीं रहती और इसीलिए मध्यान्ह के समय सूर्य की ऊँचाई भी बदलती रहती है। जून के महीने में सूर्य की गर्मी और प्रकाश दोनों दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्द्ध में अधिक मिलते हैं जबकि दिसम्बर के महीने में विपरीत दशा हो जाती है। इसलिए वर्ष के विभिन्न समय एक ही स्थान में, चाहे वह उत्तरी गोलार्द्ध में हो या दक्षिणी गोलार्द्ध में, एक सी गर्मी और रोशनी नहीं रहती। यहाँ तक कि एक दिन के विभिन्न समयों में भी सूर्य की गर्मी एकसी नहीं रहती।

मध्याह्न-काल में जब सूर्य की किरणें सबसे ज्यादा लम्बाकार पड़ती हैं तो सूर्य की ऊँचाई सबसे कम रहती है जबकि सुबह व संध्या के समय सूर्य की किरणें तिरछी गिरती हैं और सूर्य की ऊँचाई अधिक होती है। अतः मध्याह्न के समय सूर्य की किरणें वायु-मण्डल को कम पार करती हैं जबकि सुबह व शाम के समय सूर्य की किरणें अधिक वायु-मण्डल में होकर गुजरती है। यही कारण

है कि मध्याह्न के समय सुबह व शाम की अपेक्षा अधिक गर्मी पड़ती है और एक स्थान पर दिन के भिन्न समय में एकसी गर्मी नहीं पड़ती।

किसी स्थान का तापक्रम नीचे लिखी बातों पर निर्भर रहता है:—

(१) अक्षांश (Latitude)—ज्यों-ज्यों हम विषुवत् रेखा के उत्तर और दक्षिण में बहुत दूर जाते हैं, त्यों-त्यों कम गर्मी पाई जाती है क्योंकि भूमध्यरेखा पर सारे वर्ष सूर्य की किरणें थोड़ी-बहुत सीधी ही गिरती हैं; जैसे कोलम्बो में लन्दन की अपेक्षा अधिक गर्मी पड़ती है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—(क) हवा विषुवत् रेखा पर ध्रुवों की अपेक्षा कम वायु-मण्डल पार करती है। अतः इसकी गर्मी वायु-मण्डल में कम क्षीण होती है।

(ख) सूर्य की किरणें विषुवत रेखा पर ध्रुवों की अपेक्षा पृथ्वी पर कम स्थान घेरती हैं (सीधे पड़ने के कारण)। अतः विषुवत् रेखा पर पृथ्वी ध्रुवों की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाती है और वायु का तापक्रम अधिक होता है।

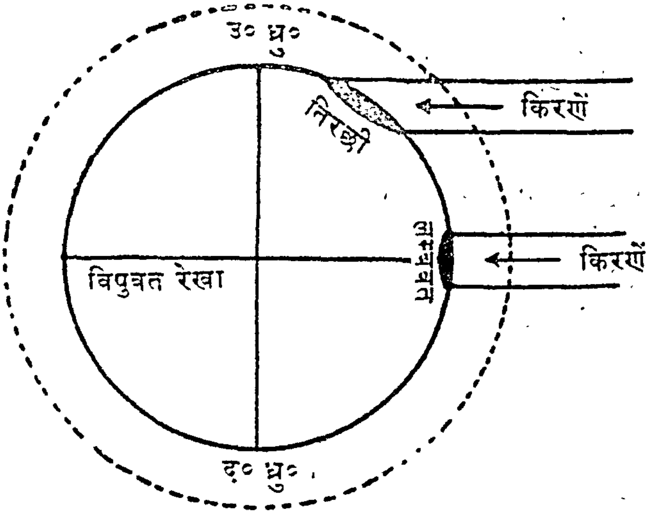

चित्र ८—लम्बरूप और तिरछी किरणें

(२) समुद्रतल से ऊँचाई—ऊँचे स्थानों में दिन से रात अधिक शीतल होती है क्योंकि उस समय सूर्य ताप की प्राप्ति नहीं होती और ताप का विसर्जन अधिक होता है। ऐसे स्थानों पर दिन-रात के तापों का अन्तर (Range of Temperature) अत्यन्त अधिक होता है। निम्न स्थानों में यद्यपि रात दिन से शीतल होती है किन्तु तापक्रम का अन्तर अधिक नहीं होता है। इसका कारण यह है कि निम्न स्थानों में ताप का विसर्जन बहुत कम होता है। इन बातों से पता चलता है कि किसी स्थान का तापक्रम ताप संचय और विसर्जन के अन्तर पर निर्भर रहता है।

(३) समुद्र की निकटता (Distance from the Sea)—जल

स्थल की अपेक्षा अधिक समय में गर्म होता है और वह अधिक काल के उपरांत गर्मी निकालता है। समुद्र शीत ऋतु में पास के थल की अपेक्षा गर्म होता है, वहाँ से तट के मैदानों की ओर से जो हवायें चलती हैं वे वहाँ की जलवायु को गर्म बना देती हैं। गर्मी की ऋतु में समुद्र थल की अपेक्षा अधिक ठंडा होता है और जो ठंडी हवायें वहाँ से चलती हैं वे तट के मैदानों की जलवायु को ठंडा बना देती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समुद्र के निकट के स्थान भीतरी स्थानों की अपेक्षा गर्मियों में कम गर्म और जाड़े में बहुत कम ठंडे होते हैं। जो स्थान समुद्र के निकटतम होते हैं उनकी जलवायु **समुद्री जलवायु** (Maritime climate) कहलाती है। समुद्र से दूर के स्थानों की जलवायु **स्थलीय जलवायु** (Continental climate) कहलाती है। लाहौर जो समुद्र से बहुत दूर है गर्मियों में बहुत गर्म और जाड़े में ठंडा रहता है; किन्तु बम्बई जो समुद्र के तट पर है न तो गर्मियों में अधिक गर्म और न सर्दियों में अधिक ठंडा रहता है।

(४) वायु प्रवाह की दिशा का प्रभाव (Direction of prevailing wind)—हवाओं की दिशा का प्रभाव भी तापक्रम को ऊँचा या नीचा करने में होता है। जाड़े में शीतल अफगानिस्तान के पठार से आने वाली हवायें पंजाब को उससे अधिक शीतल बना देती हैं जितना यह होना चाहिए था। पश्चिमी यूरोप की पश्चिमी हवायें जो अटलांटिक महासागर पर होकर आती हैं यूरोप के पश्चिमी भाग को एशिया के पूर्वी भाग की अपेक्षा (जहाँ पर शीतल वायु आती है) अधिक गर्म बना देती हैं। इसी प्रकार जिन स्थानों पर गर्म देशों से गर्म वायु आती हैं वहाँ का तापक्रम बढ़ जाता है। राजस्थान के मरुस्थल से आने वाली गर्म हवाओं से उत्तर प्रदेश का तापक्रम गर्मियों में बढ़ जाता है।

(५) मिट्टी की प्रकृति का प्रभाव (Nature of the soil)—आर्द्र भूमि की अपेक्षा रेतीली शुष्क भूमि शीघ्र गरम और रात को अधिक ठंडी हो जाती है। बंगाल, जहाँ मिट्टी तर रहती है, दिन में अधिक गर्म नहीं होता और न रात को ही अधिक ठंडा होता है।

(६) उद्भिज का प्रभाव (Vegetation)—वनों से ढके हुए स्थान बिना वनों वाले स्थानों से गर्मी में अधिक शीतल रहते हैं और अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं।

(७) सामुद्रिक धाराएँ (Ocean currents)—तापक्रम पर सामुद्रिक धारायें भी अपना प्रभाव डालती हैं। गर्म धारा पर बहने वाला वायु जाड़े में गर्म होता है। किन्तु गर्मियों में गर्म धारा के जलवायु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि पृथ्वी पहले से ही उससे अधिक गर्म होती है; जैसे इंगलैण्ड का जलवायु जाड़े में **गल्फस्ट्रीम** के कारण कुछ गर्म हो जाता है, किन्तु गर्मी में **गल्फस्ट्रीम** का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार जापान में **क्यूरोसिवो** गर्मधारा जाड़े में भी कोई प्रभाव नहीं डालती क्योंकि जाड़े में साइबेरिया और चीन से हवा आती है।

(५) उष्ण कटिबन्ध की पेटी ऋतुओं के अनुसार बदलती है। यह जुलाई में उत्तर की ओर और जनवरी में दक्षिण की ओर खिसक जाती है।

(६) दक्षिणी गोलार्द्ध में जल भाग का विस्तार उत्तरी गोलार्द्ध से अधिक होने के कारण वहाँ का तापक्रम अंतर बहुत ही कम रहता है।

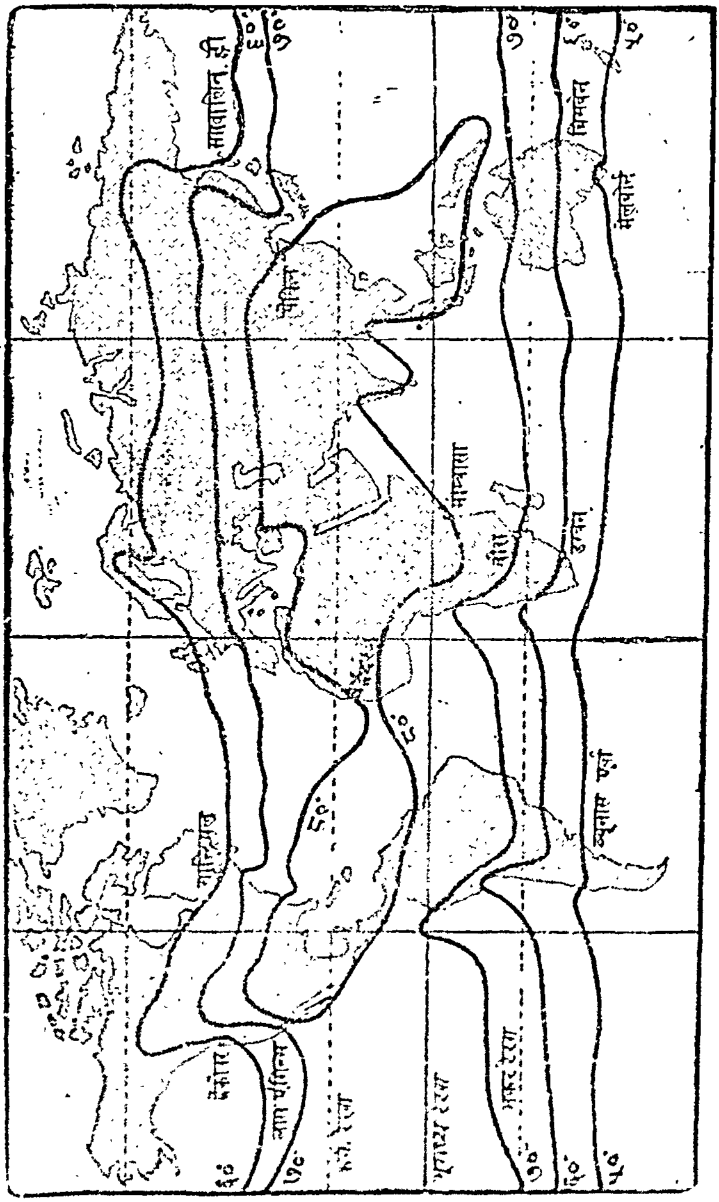

चित्र १०—जुलाई की समताप रेखायें

इन मानचित्रों को देखने से विदित होगा कि दो क्षेत्रों में ८०° फा० से तापक्रम कभी कम नहीं होता। इनमें से मुख्य भाग वह है जो अरब से लेकर

न्यूगिनी तक फैला है। ज्यों-ज्यों हम इस क्षेत्र के उत्तर की ओर जाते हैं त्यों-त्यों तापक्रम कम होता जाता है, यहाँ तक कि साइबेरिया, ग्रीनलैंड और उत्तरी-पश्चिमी कनाडा तो बहुत ही शीतल रहते हैं। किन्तु दक्षिण गोलार्द्ध का तापक्रम इतना नीचा नहीं जाता। सबसे अधिक तापक्रम निचले अक्षांशों के महाद्वीपों के भीतरी भागों में पाया जाता है। सबसे अधिक तापक्रम के क्षेत्र अफ्रीका, अरब, उत्तरी-पश्चिमी भारत, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी उत्तरी अमेरिका और अर्जेन्टाइना हैं।

वायु भार (Atmospheric Pressure)

हमारा भूमण्डल हवा के खोल से ढका है जो ६०० मील की ऊँचाई तक फैला हुआ माना जाता है। किसी अमुक स्थान पर जितनी अधिक गर्मी पड़ती है वहाँ का वायु का दबाव उतना ही कम होता है। तापक्रम के अतिरिक्त हवा का दबाव समुद्र तट की ऊँचाई के विचार से भी भिन्न होता है। जो स्थान जितना ऊँचा होता है वहाँ वायु का भार उतना ही कम होता है। इस प्रकार यदि १८,००० फुट की ऊँचाई तक पहुँच जायँ तो वायु के सम्पूर्ण भार का ५०% से अधिक हमारे नीचे होगा। ९५,००० फुट की ऊँचाई पर यह ९५% से भी अधिक होगा। इसलिए ऊपर चढ़ने वाले अपने साथ ऑक्सीजन के थैले ले जाते हैं। हवा का दबाव मीलीबार (१०००mb = २९·५३" या ३०" = १०१५·९mb) में नापा जाता है। तल का दबाव लगभग १००० मीलीबार माना गया है। यह दबाव इंचों में भी बताया जा सकता है।

मानचित्र में कम या अधिक भार वाले भागों को समझने के लिए सम वायु-भार (Isobars) रेखाएँ खींची जाती हैं। ये वे रेखाएँ हैं जो पृथ्वी के धरातल पर एक से भार वाले स्थानों को मिलाती है। जब चाप रेखाएँ एक दूसरे के निकट होती हैं तो प्रकट होता है कि चाप का ढाल अधिक है। लेकिन जब ये रेखाएँ एक दूसरे से दूर व अधिक फासले पर होती हैं और देरी से बदलती हैं तो हम कहते हैं कि चाप का ढाल कम (Light-Gradient) है।

वायु भार की पेटियाँ (Pressure Belts)

भूमध्य रेखा के आस-पास निरन्तर अधिक गर्मी होने के कारण निम्न भार पाया जाता है। यहाँ सूर्य की तीव्र गर्मी के कारण वायु अधिक गर्म हो जाती है और फैल कर (Expand) ऊपर उठती है। इस वायु की जगह को घेरने के लिए भूमध्य रेखा के दक्षिणी और उत्तरी भागों से ठंडी (अधिक बोझ वाली) हवायें आती हैं। ऊपर उठी हुई यह वायु अधिक ऊँचाई पर पहुँच कर शीतल हो जाती है और सिकुड़ने लगती है जिसके कारण उसमें बोझ आ जाता है; इसलिए वह फिर नीचे गिरने लगती है; लेकिन जिस जगह से उठी थी ठीक उसी जगह पर न गिर कर उससे कुछ दूर विषुवत रेखा के दोनों ओर गिरती है। उस जगह की वायु का बोझ इसके दबाव के कारण और भी बढ़ जाता है। अतः भूमध्य रेखा के दोनों ओर कर्क और मकर रेखाओं के लगभग जहाँ वायु नीचे उतरती है उसका बोझ अपनी दोनों दिशाओं की अपेक्षा अधिक हो जाता है। इसलिए इसे

भाग में विषुवत् रेखा और ध्रुवों की ओर हवायें चलने लगती हैं। ध्रुवों पर अत्यन्त शीत होने के कारण वायु भार सदा उच्च रहता है। परन्तु ध्रुवों से कुछ दूर पृथ्वी की दैनिक गति के कारण वायु भार कम हो जाता है क्योंकि वहाँ से हवायें विषुवत् रेखा की ओर चला करती हैं। भूमंडल पर विषुवत् रेखा और उप-ध्रुवीय भागों में निम्न भार तथा ध्रुवों और अयनवृत्तीय भागों में उच्च भार पाया जाता है। निम्न भार की पेटियाँ तापक्रम के प्रभाव से बनी हैं। अतः इन्हें ताप-रचित पेटियाँ (Thermally induced Belts) कहते हैं। शेष अधिक भार की पेटियाँ पृथ्वी के परिभ्रमण का परिणाम हैं। इन्हें गति-रचित पेटियाँ (Dynamically induced Belts) कहते हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर निम्नलिखित भार की पेटियाँ पाई जाती हैं:—

(१) विषुवत् रेखा के निम्नभार के क्षेत्र (Equatorial Low Pressure Belts)—जो भूमध्य रेखा के दोनों ओर ५° तक फैले हुए हैं। यहाँ अधिक गर्मी के कारण कम भार पाया जाता है। यहाँ की हवायें ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर और दोनों ओर की आई हुई हवा में फैलती रहती है। इस क्षेत्र में हवायें पृथ्वी के समानान्तर नहीं चलतीं। ऐसे स्थानों को शांत खण्ड (Doldrums) कहते हैं क्योंकि वायु यहाँ शांत रहती है।

(२) ध्रुवों के उच्चभार के क्षेत्र (Polar High Pressure Belts)—ध्रुवों पर अधिक ठंडक होने के कारण अधिक भार पाया जाता है। दक्षिण ध्रुव एक ऊँचे और सदा बर्फ से ढके रहने वाले महाद्वीप एंन्टार्कटिक पर स्थित होने के कारण अधिक भार की पेटी में है। इसी प्रकार उत्तरी ध्रुव पर भी, एक बर्फ से ढके महासागर आर्कटिक से घिरा होने से, अधिक दबाव पाया जाता है। यहाँ हवायें ध्रुवों की ओर से उप-ध्रुववृतीय भागों की ओर चलती हैं।

(३) उपध्रुवीय निम्नभार क्षेत्र (Sub-Polar Low Pressure Belts)—ध्रुवों से कुछ दूर पृथ्वी की दैनिक गति के कारण वायु का निम्न भार पाया जाता है क्योंकि हवाएँ यहाँ से भूमध्य रेखा की ओर चलती हैं। यह निम्न भार उत्तरी गोलार्द्ध में अधिकतर समुद्र पर ही—उत्तरी अटलांटिक महासागर में आइसलैण्ड (Iceland) और उत्तरी पैसिफिक में एल्यूशियन द्वीपों के चारों ओर—और दक्षिणी गोलार्द्ध में एन्टार्कटिक के चारों ओर पाया जाता है।

(४) अयन रेखाओं के उच्च वायु भार क्षेत्र—(Tropical High Pressure Belts) कर्क और मकर रेखाओं के निकट ३०° से ४०° के बीच में विषुवत् रेखा के दोनों ओर अधिक भार की पेटियाँ पाई जाती हैं। इन भागों में हवा शान्त रहती है। इन अक्षांशों को घोड़ों की अक्षांश (Horse Latitudes) भी कहते हैं। यह नाम पड़ने का कारण यह है कि प्राचीन समय में जब घोड़ों के व्यापारियों के जहाज इस शान्त खण्ड (Belts of Calm) में फँस जाते थे तो वे अपना बोझ हल्का करने के लिए घोड़ों को समुद्र में फेंक दिया करते थे। चूँकि हवाएँ सदा ऊपर के दोनों ओर के भागों से नीचे के गर्म भागों में उतरती हैं इसलिए हवा का तापक्रम बढ़ जाता है जिससे हवाएँ पानी नहीं बरसा

सकतीं। इसी कारण पृथ्वी के सभी मरुस्थल इन शान्त खण्डों में पाये जाते हैं। (१) कर्क रेखा के शान्त खण्डों में—राजपूताना, अरब, ईरान, सहारा और केलिफोर्निया के मरुस्थल हैं। (२) मकर रेखा के शान्त खण्डों में विक्टोरिया, कालाहारी, एटकामा के मरुस्थल है

कटिबन्ध (Zones)

पृथ्वी के ताप को दो प्रकार से विभाजित किया जाता है—क्षैतिज (Horizontal) और लंबवत् (Vertical)। प्रथम प्रकार यह है जिसमें ताप कटिबन्धों का विभाजन सूर्य की किरणों के कोणों अर्थात् अक्षांश रेखाओं के आधार पर ही किया जाता है। इस प्रकार के कटिबन्धों की सीमाएँ यूनानी विद्वानों के मतानुसार निम्नलिखित हैं जो भूमध्य रेखा के दोनों ओर पाई जाती हैं।

(१) **उष्ण कटिबन्ध (Torrid Zone)**—भूमध्य रेखा के दोनों ओर २३½° तक है। इसकी सीमान्तक रेखा को उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा (Tropic of Cancer) और दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा (Tropic of Capri-Corn) कहते हैं।

(२) **शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone)**—जो उष्ण कटिबन्ध के बाद ६६½° उत्तर और इतने ही अंश के दक्षिणी अक्षांश में है। इसकी सीमान्त रेखा को उत्तरी गोलार्द्ध में आर्कटिकवृत (Arctic Circle) और दक्षिणी गोलार्द्ध में अन्टार्कटिक वृत (Antarctic Circle) कहते हैं।

(३) **शीत कटिबन्ध (Frigid Zone)**—उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्धों में ६६½° अक्षांश से ध्रुवों तक फैला है।

ताप कटिबन्ध के विभाजन का द्वितीय प्रकार वह है जिसमें अक्षांश रेखाओं को सीमा न मान कर समताप रेखाओं को ही सीमा रेखाएँ मान लेते हैं। इस प्रणाली का जन्मदाता प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता सूपान (Supan) था।

(१) **उष्ण कटिबन्ध** की सीमा ६८° फा० की वार्षिक समताप रेखा तक दोनों गोलार्द्धों में है।

(२) **शीतोष्ण कटिबन्ध** की सीमा ५०° फा० की गरमी की समताप रेखा तक उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध में है।

उष्ण कटिबन्ध की विशेषता यह है कि यहाँ पर गर्मी और जाड़ों के तापक्रमों में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि पूरे साल भर तक एकसा ही तापक्रम बना रहता है। यहाँ जाड़े और गरमी की अपेक्षा दिन और रात के तापक्रमों में अधिक अन्तर होता है। किसी भी महीने में तापक्रम ६८° फा०से कम नहीं जाता। यहाँ मध्यान्ह सूर्य कर्क रेखाओं के परे कभी नहीं चमकता लेकिन इस कटिबन्ध के उन भागों में जो भूमध्य रेखा से दूर हैं अर्थात् अर्द्ध-उष्ण (Sub-tropical) भागों में अवस्था बदलने लगती है और जाड़े तथा गरमी के तापों में अन्तर पड़ने लग जाता है।

चूँकि व्यापारिक हवायें उत्तर-पूर्व से आती हैं इसलिए वह सब नमी (जो ये लाती हैं) महाद्वीपों के पूर्वी भागों में बरसा देती हैं, किन्तु पश्चिमी भाग बिल्कुल सूखे रह जाते हैं जिसके फलस्वरूप महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में ही मरुस्थल पाये जाते हैं।

व्यापारिक हवाओं का अधिक प्रसार दक्षिणी अटलांटिक और हिन्द महासागर के दक्षिणी भागों में ही अधिक है। इन सब भागों में वहाँ गर्मी की अपेक्षा सर्दी अधिक चुस्त रहती है। इन हवाओं का साधारण वेग १० से २० मील होता है, किन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थल की कम रुकावट होने के कारण इनका वेग कुछ अधिक होता है।

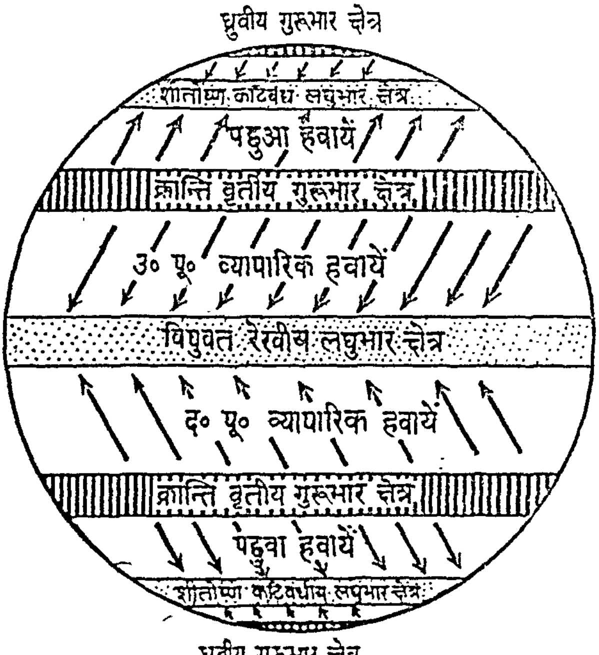

चित्र १२—स्थायी हवाएँ

(ख) पछुआ हवाएँ (Westerlies)—ये हवाएँ अयन रेखाओं से अधिक भार वाले स्थानों की ओर चलती हैं। ये ३५° अक्षांश से ध्रुव-वृत्तों तक दोनों गोलार्द्धों में चलती है। निर्दिष्ट स्थान से बहुत आगे निकल जाती हैं और ऐसा मालूम होता है मानो वे दक्षिण-पश्चिम अथवा पश्चिम से आती हैं। पछुआ हवाएँ कभी बहुत ही धीमे और कभी बहुत ही तेज वेग से चलती हैं। पछुआ हवाओं का प्रदेश व्यापारिक हवाओं के प्रदेश से कहीं अधिक बड़ा है। ये प्रायः शीतोष्ण कटिबन्ध और शीत कटिबन्ध में चला करती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में ४० और ५०° अक्षांशों के बीच में समुद्र की अधिकता होने और इनके मार्ग में कोई रुकावट न होने के कारण इतनी प्रबल वेग से चलती हैं कि इनको गरजने वाली चालीसा या वीर पवनें (Roaring forties or Brave West-winds) कहते हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में ५०° के दक्षिण में भयानक पचासा (Furious fifties) पुकारी जाती हैं।

पश्चिमी पवनें गर्म प्रदेश से आने के कारण गर्म होती हैं। ये अपने साथ बहुत नमी लाती हैं। इसलिए इन हवाओं से उष्ण कटिबन्ध के बाहर पश्चिमी तटों पर (पश्चिमी यूरोप, पश्चिमी कनाडा, दक्षिणी-पश्चिमी चिली आदि) अधिक वर्षा होती है, किन्तु पूर्वी तट सूखे रहते हैं।

(ग) ध्रुवी हवाएँ (Polar winds)—ये हवाएँ ध्रुवों के शीतल प्रदेशों से शीतोष्ण प्रदेशों की ओर ७०° या ८०° अक्षांश तक चली जाती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में नारइस्टर (Nor-easter) नामी तूफान हवा बड़े वेग से चलती है और बहुत ठण्डी होती है। लेकिन ये कभी-कभी चलती हैं, हमेशा नहीं।

ये हवाएँ प्राय निश्चित अक्षांशों में ही चला करती हैं और इनका क्षेत्र सूर्य की प्रत्यक्ष गति से बराबर सम्बन्ध रखता है। जब सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में चमकता है तो इनका क्षेत्र कुछ उत्तर की ओर खिसक जाता है और जब सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में चमकता है तो इनका क्षेत्र कुछ दक्षिण की ओर खिसक जाता है। इस उत्तर और दक्षिण की ओर खिसकने के कारण पछुआ हवाओं और व्यापारिक हवाओं के सीमान्तक प्रान्त गर्मियों में तो व्यापारिक पवनों के क्षेत्र में रहते हैं और जाड़ों में पछुआ हवाओं के। इन क्षेत्रों को **अस्थायी पवन क्षेत्र** (Transition Belts) कहते हैं।

इन पवनों को **स्थायी पवनें** (Permanent winds) कहते हैं। लेकिन इनका प्रवाह यथासमय वायु के भार में अन्तर पड़ने से अक्सर टूट जाया करता है। तापक्रम में असाधारण अन्तर के पड़ जाने से ही ऐसा होता है। यह असाधारण अन्तर स्थल की प्रधानता के कारण पूरे एशिया महाद्वीप में अधिक देखा जाता है। इसी कारण उत्तरी गोलार्द्ध में पवन धारा (Wind systems) दक्षिणी गोलार्ध की पवन धारा की अपेक्षा कम स्थिर (Steady) होती है।

(२) सामयिक या अस्थायी हवायें (Periodic Winds)

(क) स्थलीय और समुद्री पवनें (Land and Sea Breezes)—दिन के समय जब सूरज चमकता है तो स्थल पानी की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाता है जिससे उसके पास की हवा गर्म होकर फैल जाती है और उसका दबाव कम हो जाता है। लेकिन समुद्र इस समय अपेक्षतः ठंडा रहता है, इसके

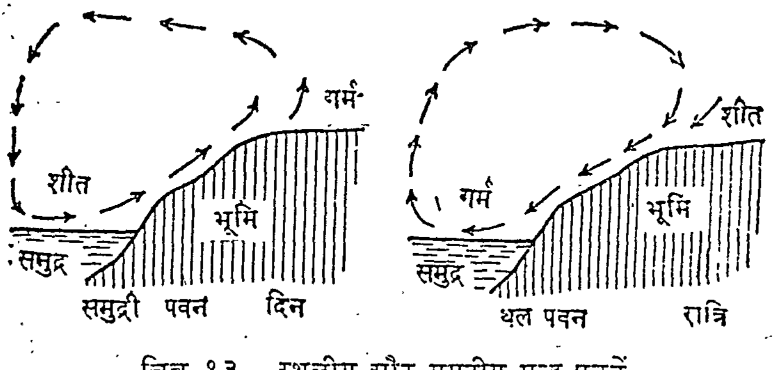

चित्र १३—स्थलीय और समुद्रीय मन्द पवनें

ऊपर की हवा ठंडी और भारी होती है। अतः पानी पर के अधिक भार वाले स्थानों की ओर से ठन्डी और भारी हवा भूमि पर के कम दबाव वाले स्थानों की ओर चलती है। इन हवाओं को समुद्री पवन (Sea Breeze) कहते हैं। ये हवायें

दिन में सुबह दस बजे से लेकर सूर्यास्त तक चलती हैं। यह हवायें कभी-कभी जमीन के बीस-पचीस मील भीतरी भाग तक घुस जाती हैं। अयन रेखाओं में शीतोष्ण कटिबन्ध की अपेक्षा जल और स्थलीय हवायें ज्यादा चलती हैं। दैनिक मौसमी अवस्थाओं पर इन पवनों का खूब असर पड़ता है—कभी-कभी तो इनके कारण दैनिक तापक्रम कई अंशों तक कम हो जाता है।

रात के समय जमीन समुद्र की अपेक्षा ठंडी हो जाती है तो उसके पास की हवा समुद्र की हवा की अपेक्षा अधिक ठंडी और भारी हो जाती है। इसलिए रात के समय हवा स्थल से समुद्र की ओर चलती है। इन पवनों को स्थलीय पवनें (Land Breeze) कहते हैं। यह हवायें सूर्यास्त से लगाकर प्रातः ८ बजे तक चलती रहती हैं।

(ख) स्थानीय पवनें (Local Winds)—स्थानीय पवनें अधिक प्रसिद्ध हैं क्योंकि जिन स्थानों पर यह चलती हैं वहाँ के निवासियों के जीवन और व्यवसाय पर बड़ा प्रभाव डालती हैं। कुछ मुख्य स्थानीय पवनें इस प्रकार हैं—सिमूम (Simoom) नाम की गर्म और तेज पवनें सहारा मरुस्थल में चलती हैं। ये अपने साथ इतनी मिट्टी और बालू ले आती हैं कि यात्रियों की आँखों, नाक और मुँह में घुस जाती हैं। सिरक्को (Sirroco) नाम की गर्म और नम हवायें भूमध्य सागर के इटली प्रदेश में चलती हैं। इन्हीं प्रदेशों में कभी-कभी उत्तर की ओर से ठंडी पवनें चलती हैं जो एड्रियाटिक प्रदेश में बोरा (Bora) कहलाती हैं। स्पेन में इन्हें सोलानो (Solano); रोन की घाटी और दक्षिण फ्रांस में मिस्ट्रल (Mistral); उत्तरी आल्पस में फोन (Fohn) कहते हैं। पूर्व की ओर चलने वाली गर्म हवाओं को मिश्र में खमसीन (Khamsin); अरब में सिमूम (Simoom) और पश्चिम की ओर सूडान में हरमाटन (Harmaton) कहते हैं। उत्तरी अमेरिका में राकी पहाड़ से मैदान में चलने वाली गर्म हवा को चिनूक कहते हैं। यह मैदान के बर्फ को बहुत जल्दी पिघला देती है और गेहूँ के पकने में बड़ी मदद देती है। यूरोप में इस गर्म और शुष्क हवा को 'फोहन' कहते हैं।

(ग) मौसमी हवायें (Monsoons)—मानसून एक 'अरबी' शब्द है, जिसका अर्थ मौसम है। ये वे हवायें हैं जो साल के छः महीने समुद्र से स्थल की ओर और दूसरे ६ महीने स्थल से समुद्र की ओर चलती हैं। वास्तव में ये स्थलीय और जलीय पवनों के बड़े रूप हैं। इन हवाओं के चलने के कारण पृथ्वी पर पाए जानेवाले स्थल और जल के गर्म होने की अलग-अलग तासीर का होना है। मई, जून और जुलाई के महीने में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर सीधी पड़ती हैं, इसलिये उत्तरी भारत, चीन आदि के मैदान बहुत गर्म हो जाते हैं। अस्तु यहाँ कम दबाव पाया जाता है। इस समय हिन्द महासागर का वह भाग जो तनिक विषुवत् रेखा के दक्षिण में है अपेक्षतः ठंडा होता है। अतः उसकी हवा भारी और ठंडी होती है, इसलिए यहाँ अधिक भार पाया जाता है। अतः यहाँ गर्म भाप से भरी हवायें दक्षिण-पश्चिम से भारतवर्ष, लंका, ब्रह्मा और

मलाया प्रायद्वीप में तथा दक्षिण पूर्व से चीन, जापान, इंडोचीन और स्याम में प्रवेश करती हैं। कहीं-कहीं मार्ग में ऊँची भूमि या पहाड़ों की रुकावट पड़ने से उनको पार करने के लिए ये ऊपर उठती है और ठंडी होकर इन भागों में खूब पानी बरसाती हैं। यह ग्रीष्म ऋतु का मानसून (Summer monsoon) कहलाता है और मई से अक्टूबर तक चलता है।

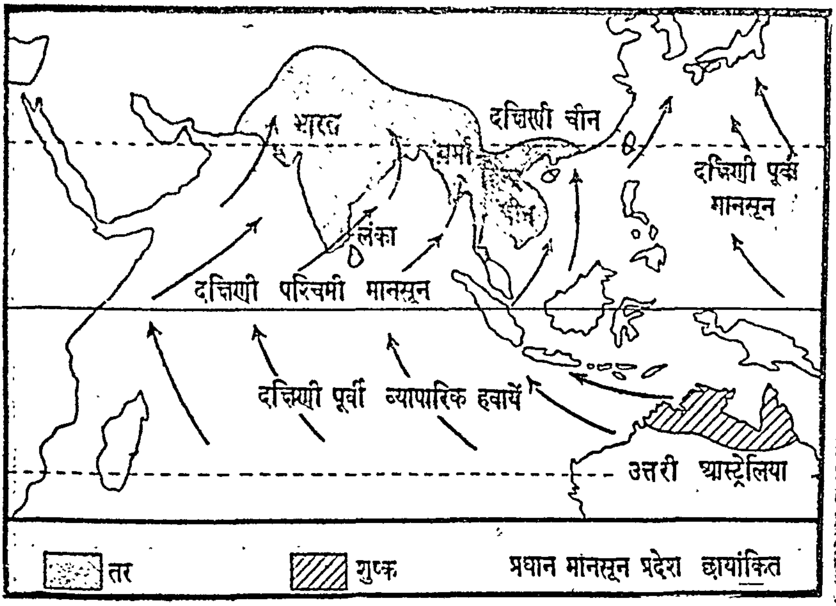

चित्र १४—ग्रीष्म ऋतु का मानसून

जाड़े की ऋतु में सूर्य की किरणें उत्तरी भारत के मैदानों पर तिरछी पड़ने लगती हैं, अतः यह मैदान शीघ्र ठंडे हो जाते हैं। इनकी हवायें ठंडी होकर भारी हो जाती हैं। अतः इन भागों में इस समय अधिक दबाव पाया जाता है। किन्तु इस समय भूमध्य रेखा के पास स्थल से कहीं अधिक तापक्रम और कम दबाव पाया जाता है। अतः ग्रीष्म का मानसून स्थल से समुद्र की ओर लौटने लगता है। इसे शरद ऋतु का मानसून (Winter monsoon) कहते हैं। इस शरद मानसून के मार्ग में अधिकतर स्थल होता है जहाँ भाप की सामग्री बहुत कम होती है। अतः इस मानसून में भाप की कमी रहती है। स्थल से समुद्र की ओर लौटने के कारण इस मानसून को ऊँचे प्रदेश से नीचे प्रदेश को उतरना पड़ता है इसलिए इसमें जो कुछ भाप होती है इसको पानी में बदलने का अवसर नहीं मिलता है। अस्तु ये उत्तरी पूर्वी मानसून बहुत थोड़े प्रदेश में और थोड़ी मात्रा में पानी बरसाते हैं। बंगाल की खाड़ी से भाप मिल जाने पर यह मानसून लंका की पहाड़ियों और दक्षिणी पूर्वी भारत में कुछ पानी बरसा देती हैं। उत्तरी आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी और पूर्वी द्वीपसमूह के कुछ द्वीपों में भी इस समय वर्षा होती है। मानसूनी हवाओं का महत्व भारत के लिए बहुत अधिक है क्योंकि—

(१) भारत की सम्पूर्ण वर्षा का लगभग ८०% ग्रीष्म ऋतु में दक्षिणी पश्चिमी मानसूनी हवाओं द्वारा प्राप्त होता है। शीतकाल के मानसून बहुत ही कम वर्षा लाते हैं जो अधिकतर मद्रास प्रदेश तक ही सीमित रहती हैं।

(२) अनेक स्थानों में वर्षा का वितरण असमान है। कहीं वर्षा अत्यधिक होती है जिससे फसलें नष्ट हो जाती हैं और कहीं सूखा पड़ने के कारण अकाल पड़ जाते हैं जिससे लाखों नर-नारी काल के ग्रास बन जाते हैं।

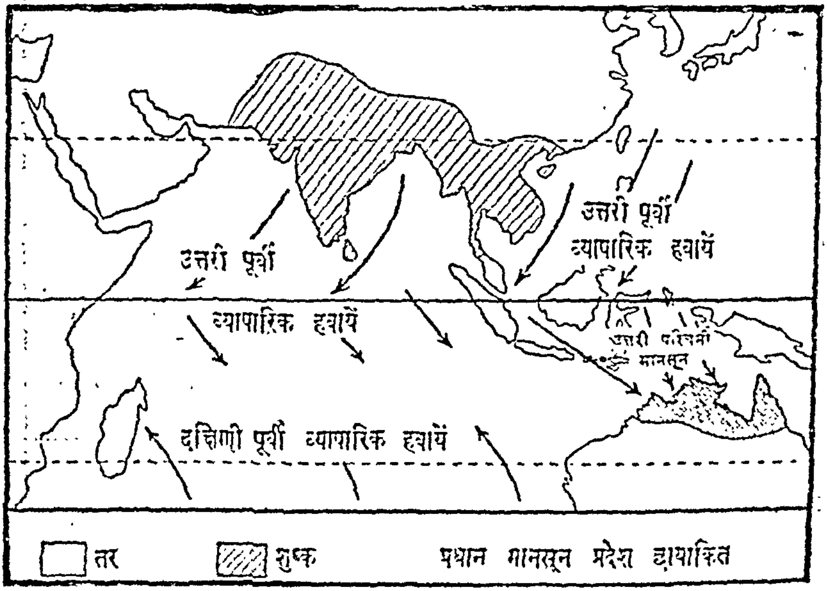

चित्र १५—शीतऋतु का मानसून

(३) अनिश्चित वर्षा के प्रदेश में मानसून विश्वासजनक नहीं होते। नियमित समय पर वर्षा न होने से लोगों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जब वर्षा नियत समय पर तथा अच्छी होती है तो फसल भी अच्छी होती है। देश के व्यापार में वृद्धि होती है और सरकारी खजाने भरे रहते हैं। किन्तु जब मानसून विश्वासघात करते हैं तो न केवल सारी खेती ही सूख जाती है, बल्कि उद्योग-धन्धे भी फीके पड़ जाते हैं और सरकारी आय-व्यय को संतुलित करना भी कठिन हो जाता है। सच तो यह है कि आर्थिक जगत के तीन मुख्य क्षेत्र—भोजन, वस्त्र और आश्रय—सभी मानसून द्वारा प्रभावित होते हैं। इसीलिए कहते हैं कि "भारतीय कृषि अथवा भारत सरकार की आय मानसून का जुआ है"[1]।

(४) मानसून द्वारा वर्षा लगातार नहीं होती। कभी-कभी तो वर्षा का

1. "Indian Agriculture or Indian Budget is a gamble in rains."

अन्तर बहुत लम्बा हो जाता है जिससे फसलों को सूखे समय में पानी देने का प्रबन्ध करना पड़ता है। भारत में सिंचाई का कारण वर्षा का अनिश्चित, अनियमित और अपर्याप्त होना ही है।

(५) मानसूनों द्वारा किन्हीं भागों में मूसलाधार वर्षा होती है और किन्हीं में बौछारें ही पड़ती हैं। लंदन की २४" वार्षिक वर्षा १६१ दिनों में हल्की फुहारों के रूप में होती है जबकि बम्बई की ७२" वर्षा केवल ७५ दिन में ही हो जाती है। जब वर्षा तेजी से गिरती है तो भूमि का कटाव अधिक होता है। अधिकांश जल का प्रयोग नहीं हो पाता और वह व्यर्थ में ही समुद्र में बहकर चला जाता है।

(६) मानसून उठते समय समुद्र में बड़े तूफान आते हैं। इनके द्वारा समुद्र की लहरें किनारों तक मीलों फैल जाती हैं और धन-जन दोनों की अपार हानि करती हैं। अक्टूबर १९४२ के भीषण तूफ़ान से बंगाल के मिदनापुर जिले में लगभग १० हजार और चौबीस परगने में १ हजार व्यक्ति मरे और ७५% जानवरों की क्षति हुई। १८७६ की बाकरगंज तूफान से मेघना के कछार में लगभग १ लाख व्यक्ति डूब गये।

(७) वास्तव में सच तो यह है कि भारत के लिए मानसून का वही महत्व है जो मिश्र देश के लिए नील नदी का है। भारत की आर्थिक सम्पन्नता बहुत कुछ मानसून पर ही निर्भर रहती है। इसीलिए यह कहा भी जाता है कि "संभवत: भारतीय मानसून की भाँति चमत्कारिक प्रभाव वाली अन्य कोई वस्तु नहीं है।"[१]

(घ) अनियमित हवायें (Variable Winds)—हवाके असाधारण तापक्रम के फलस्वरूप वायु-मण्डल में जो गड़बड़ी पैदा हो जाती है उसी से तूफान उठते हैं। ये तूफान पानी के भँवर की भाँति वायु की भँवरें हैं। ये तूफान दो प्रकार के होते हैं—एक तो पवन भँवर के केन्द्र की ओर के असाधारण फैलाव (Low Pressure) के कारण बड़े वेग से दौड़ती है और दूसरे असाधारण दबाव (High Pressure) के कारण केन्द्र से दूर बाहर की ओर सवेग जाती हैं। इसमें पहले को चक्रवात और दूसरे को प्रति-चक्रवात कहते हैं। इन तूफानों से सम्बन्ध रखने वाली पवनें सदा पहिए की भांति चक्कर लगाती हैं, इसलिए धीरे-धीरे उसका मुख प्रत्येक दिशा की ओर बदलता रहता है।

(i) चक्रवात (Cyclones)—का व्यास १० मील से लेकर २००-३०० मील तक का होता है। इन गोलों के बीच में हवा का दबाव सबसे कम होता है और अधिक दबाव बाहर की ओर होता है। अतः बाहर की ओर से हवा भीतर आती है और बाई बैलट के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की उल्टी दिशा में (Anti-clockwise) और दक्षिणी गोलार्द्ध में

---

१. "Probably there is no other single group of weather phenomenon, so far-reaching in its effect, as the Indian monsoons."

उठती है तो ऊपर जाकर उसकी भाप के द्रवीभूत हो जाने से वर्षा होती है। ऐसी वर्षा को संवाहनिक वर्षा (Convectional Rains) कहते हैं। ऐसी वर्षा कम दवाव वाले विषुवतीय प्रदेशों में दोपहर के समय अधिक होती है। ऐसी वर्षा बड़ी तेज गिरती है लेकिन वर्षा थोड़ी देर के लिए होती है।

(३) जब वायु किसी पर्वत को पार करने के लिए ऊपर उठती है तो वह ऊपर उठने से ठन्डी हो जाती है और पानी बरसता हैं। ऐसी वर्षा को पार्वत्य वर्षा (Relief Rains) कहते हैं। हवाएँ पहाड़ों के पवनमुखी ढाल (Windward) ढाल पर अधिक वर्षा करती हैं जब कि पवनविमुखी (Lee-ward Side) बिल्कुल सूखी रह जाती है। ऐसे भागों को वृष्टि-छाया प्रदेश (Rain Shadow area) कहते हैं। हिमालय के दक्षिणी ढाल और पश्चिमी घाटों पर इसी प्रकार की वर्षा होती है।

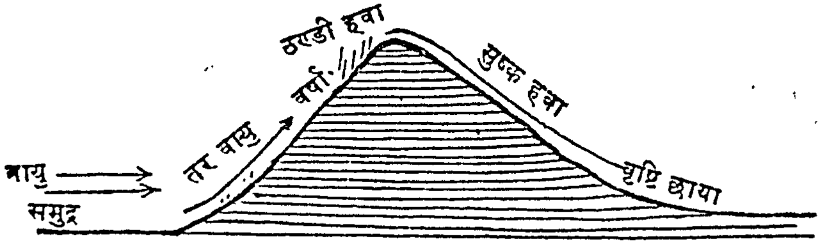

चित्र १८—पार्वत्य वर्षा

वर्षा का वितरण (Distribution of Rainfall)

अगले पृष्ठ के वर्षा के विन्यास के मानचित्र का अध्ययन करने से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं:—

(१) ज्यों-ज्यों हम विषुवत रेखा के उत्तर या दक्षिण की ओर जाते हैं वर्षा कम होती जाती है। ध्रुवों पर अधिक सर्दी पड़ने के कारण हवा में भाप नहीं रहती, अतः वर्षा कम होती है।

(२) पहाड़ों के हवादार ढालों पर उन ढालों की अपेक्षा जो समुद्री हवाओं के रास्ते में नहीं पड़ते अधिक वर्षा होती है।

(३) समुद्र से ज्यों-ज्यों दूर जाते हैं वर्षा में कमी होती जाती है। महाद्वीप के भीतरी भागों (उदाहरणार्थ, गोवी का रेगिस्तान, मध्य एशिया, आस्ट्रेलिया और उत्तरी अमेरिका आदि) में समुद्र से दूर होने के कारण वर्षा बहुत कम होती है।

(४) ४०° उत्तरी और ३५° दक्षिणी अक्षांशों के बीच में व्यापारिक हवाओं के चलने के कारण महाद्वीप के पूर्वी भागों पर (जापान, दक्षिणी, पूर्वी एशिया, चीन) में अधिक वर्षा होती है। ५०° और ६५° अक्षांशों के बीच में पछुआ हवाओं के कारण महाद्वीपों के पश्चिमी भागों (पश्चिमी द्वीप समूह,

पश्चिमी यूरोप आदि में) पर अधिक वर्षा होती है। शीतोष्ण कटिबन्धों के चक्र-वायुओं द्वारा उत्तरी और मध्य यूरोप तथा अमेरिका में भी कुछ वर्षा हो जाती है।

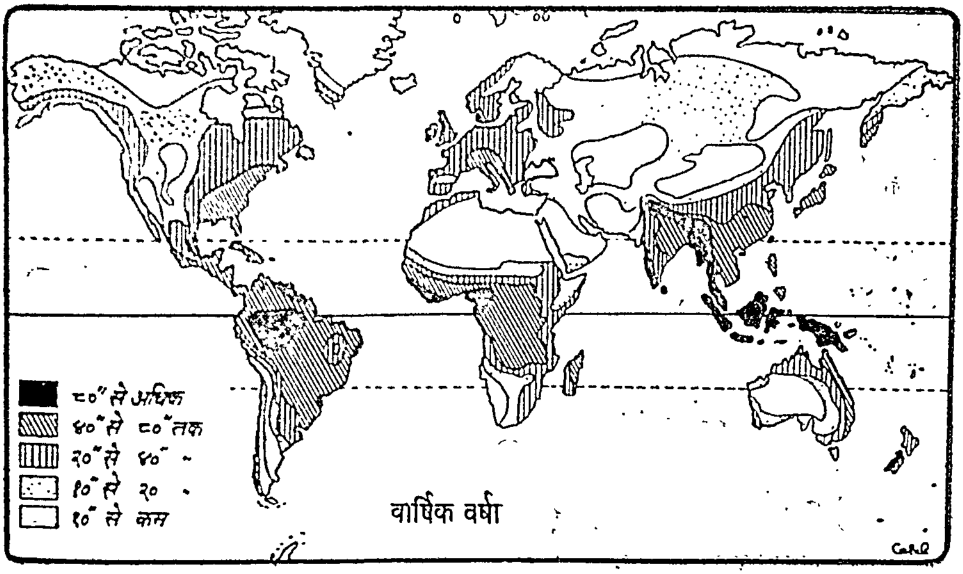

चित्र १९—वार्षिक वर्षा का वितरण

(५) भूमध्य सागर के किनारे, दक्षिणी आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका ग्रीष्म में व्यापारी हवाओं के मार्ग में होने के कारण सूखे रहते हैं, किन्तु सर्दी में

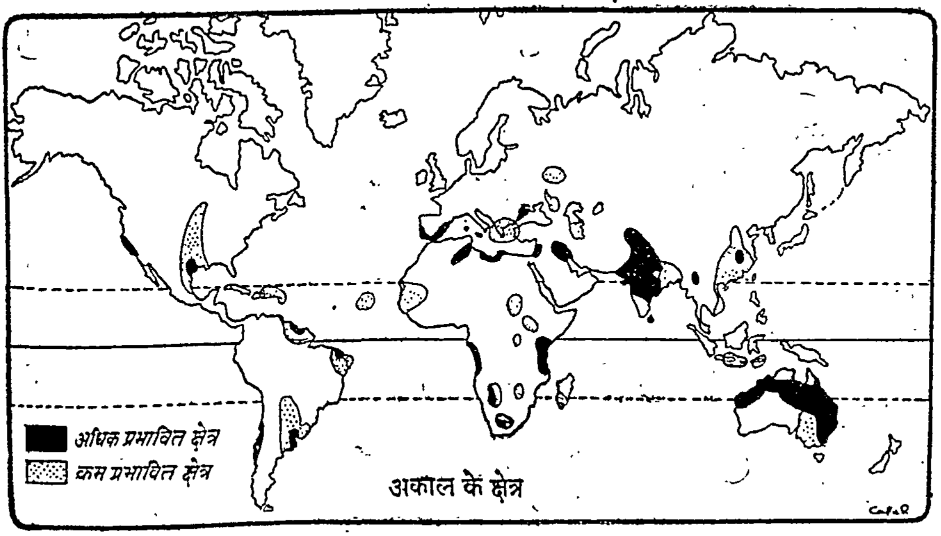

चित्र २०—अकाल के क्षेत्र

ये प्रदेश पछुआ हवाओं के रुख में होने के कारण शीतकालीन वर्षा का उपभोग करते हैं।

(६) भूमध्य रेखा पर संवाहनिक वर्षा होती है किन्तु शीतोष्ण: कटिबन्ध के अक्षांशों में प्राय: चक्रवातिक वर्षा होती है।

(७) ग्रीष्म में समुद्र से अधिक भार वाले स्थानों से आने वाली हवाओं द्वारा भारत, चीन, जापान, इण्डोचीन में वर्षा होती है। इन भागों में वर्षा की कमी के कारण अकाल पड़ जाते हैं। संसार के प्रमुख अकाल क्षेत्र पिछले पृष्ठ के चित्र में (चित्र सं० २०[1]) बताये गये हैं।

(८) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवायुओं द्वारा हिन्द महासागर के तटीय भागों पर भी, जिनका प्रभाव फिलीपाइन द्वीपों और जापान तक पहुँचता है, वर्षा होती है।

जलवायु खंड (Climatic Regions)

पृथ्वी के धरातल पर तीन प्रकार के जलवायु प्रदेश पाये जाते हैं; यथा—

(१) उष्ण कटिबन्धीय जलवायु प्रदेश।

(२) शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु प्रदेश।

(३) शीत कटिबन्धीय प्रदेश।

(१) उष्ण कटिबन्धीय जलवायु (Tropical Climate)—उष्ण कटिबन्धीय और अर्द्ध उष्ण कटिबन्धीय (Sub-Tropical) भू-भागों का जलवायु लगभग वर्ष भर समान रहता है और थोड़े बहुत जो भी परिवर्तन होते हैं (केवल उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों को छोड़कर) वे भी निश्चित अन्तर से ही होते हैं। ये भाग विषुवत् रेखा के अत्यन्त निकटवर्ती हैं अतः अधिक गर्म रहते हैं। शीत ऋतु साधारणतया ठण्डी और ग्रीष्म-ऋतु अधिक गर्म होती है। इन भागों में समुद्र का प्रभाव भी अधिक पड़ता है। अतः कई भू-भागों की जलवायु सामुद्रिक कही जा सकती है जहाँ वार्षिक तापान्तर भेद ५° से १०° फा० तक ही रहता है। किन्तु ऊँचे पहाड़ी स्थानों में तो ५०° फा० से भी कम तापक्रम पाया जाता है। वैसे सभी स्थानों का तापक्रम ७५° से १००° फा० तक रहना तो साधारण सी बात है। कई स्थानों पर दैनिक औसत तापक्रम भेद वार्षिक औसत तापक्रम भेद से भी अधिक रहता है। इन भागों में जलवायु में अन्तर पड़ जाने का मुख्य कारण यहाँ चलने वाली हवाएँ और वर्षा है। अर्द्ध-उष्ण-कटिबन्धीय भू-भागों में जलवायु में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। ग्रीष्म में अधिक गर्मी और सर्दी में अधिक

है।

अधिकांश भागों में व्यापारिक हवाओं का प्रभाव बहुत
निश्चित एकरूपता से चलती है। ये हवाएँ
इनमें वाष्प अधिक भर जाती है और
पहाड़ को पार करने के लिए
जाती है। इसी कारण
में पूर्वी ढालों पर

अत्यधिक वर्षा होती है किन्तु नीचे भाग अथवा पर्वतीय भाग के पश्चिमी ढाल शुष्क रह जाते हैं। यही कारण है कि दुनिया के अधिकांश मरुस्थल व्यापारिक हवाओं की पेटी में पश्चिम की ओर ही फैले हैं।

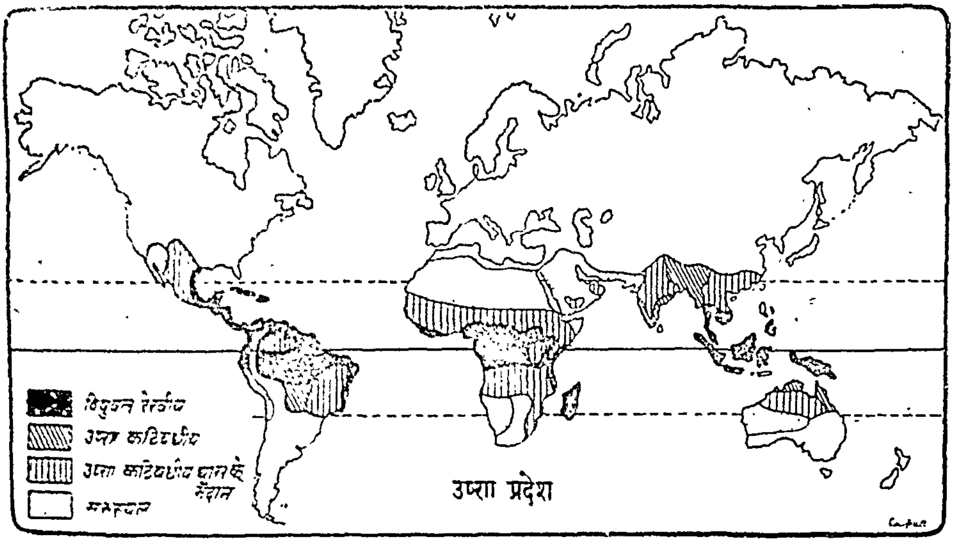

चित्र २१—उष्ण जलवायु खण्ड

इन भागों की वर्षा में भी बहुत अन्तर हुआ करता है। कहीं पर इतनी कम वर्षा होती है कि सफलतापूर्वक खेती भी नहीं की जा सकती और कहीं ४००" से भी अधिक वर्षा हो जाती है। सबसे अधिक वर्षा ग्रीष्म में ही होती है। केवल भूमध्य रेखा के निकटवर्ती भाग को छोड़ कर जहाँ बिजली की कड़क के साथ संवाहनिक वर्षा होती रहती है प्रायः प्रतिदिन ही दोपहर के बाद वर्षा हो जाती है। अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय भागों में मानसून हवाएँ जलवायु पर बड़ा असर डालती हैं। मानसूनों से वर्षा तभी होती है जब वे किसी ऊँचे स्थान को पार करने के लिए ऊँची उठती हैं। यह वर्षा ग्रीष्म-काल में ही अधिक होती है; शीतकाल तो प्रायः सूखा ही बीतता है।

उष्ण-कटिबन्धीय देशों में चक्रवातों का प्रभाव और इससे धन-जन की हानि भी बहुत होती है। इनका जन्म भूमध्य रेखा के शान्त खण्डों (Doldrums) से होता है। इनका मार्ग अधिकतर उत्तर-पश्चिम की ओर ही रहता है। ये केवल गर्मी में ही भीतरी देशों में प्रवेश करते हैं और अपना प्रभाव दिखाते हैं। ये चक्रवात शीतोष्ण-कटिबन्धीय चक्रवातों से कई बातों में भिन्न होते हैं। इनका क्षेत्र सीमित तथा चाल-ढाल तेज होती है और इनसे वर्षा भी अधिक होती है, किन्तु ये बड़े विनाशकारी होते हैं।[1]

अगले पृष्ठ की तालिका में उष्ण-कटिबन्धों में स्थित भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर पाये जाने वाले सर्वोच्च और सर्वन्यून तापक्रम, वर्षा तथा आर्द्रता की मात्रा बताई गई है।[2] :—

१—देखिए P. Lake: Physical Geography. (1952) p. 133
२— „ C. E. Brooks : Climate. P. 115

उत्तरी और दक्षिणी अक्षांश	सर्वोच्च तापक्रम	एवं सर्वन्यून (फा० में)	मेघाच्छन्नता (प्रतिशत)	वर्षा (इञ्चों में)
०°—१०°	६७°	६५°	५२%	६८″
१०°—२०°	६६°	६५°	४०%	४०″
२०°—३०°	१०२°	४५°	३४%	२५″
३०°—४०°	६८°	२७°	४०%	२४″

उष्ण कटिवन्ध में निम्न जलवायु प्रदेश मिलते हैं :—

(१) भूमध्य रेखावर्तीय प्रदेश।

(२) सूडान जलवायु प्रदेश।

(३) मानसूनी जलवायु प्रदेश।

(४) गर्म मरुस्थलीय जलवायु प्रदेश।

(२) शीतोष्ण कटिवन्धीय जलवायु (Temperate Zone Climate)—शीतोष्ण प्रदेशों के अंतर्गत वे सभी क्षेत्र आ जाते हैं जो पछुवा हवाओं के मार्ग में पड़ते हैं। चूंकि ये हवायें सदैव ही निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर चलती रहती हैं अतः निरन्तर ठंडी होती रहती हैं। इनके कारण महासागरों के पूर्वी तट सदा वर्षा प्राप्त करते हैं और इनका जलवायु भी वहुत अच्छा होता है। इन वायु प्रवाहों की गति और दिशा पर स्थानीय तापक्रम और दवाव का वड़ा प्रभाव पड़ता है। उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्धों में इस जलवायु में मौसमी परिवर्तन अधिक ध्यान देने योग्य है। इन प्रदेशों में कभी-कभी तो उष्ण कटिवन्धीय प्रदेशों से भी अधिक तापक्रम भेद पाये जाते हैं। महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में सर्दियाँ विशेष ठंडी और गर्मियाँ गर्म होती हैं, किन्तु पश्चिमी भाग का जलवायु समुद्र के निकट होने के कारण वड़ा समान (Equable) और स्वास्थ्यवर्धक होता है जिनमें पछुवा हवाओं द्वारा पर्याप्त वर्षा हो जाती है। पूर्वी भागों में ग्रीष्म-काल में स्थल की ओर से हवायें चलने के कारण वर्षा नहीं होतीं और सर्दियाँ अधिक ठण्डी तथा गर्मियाँ साधारण रूप से ठण्डी रहती हैं।

समुद्र की निकटवर्ती स्थिति इस जलवायु पर अपना प्रभाव अमिट रूप से डालती है। गल्फ स्ट्रीम और क्यूरोसिवो की गर्म धाराओं और लैब्रोडोर तथा साखालिन की ठण्डी धाराओं के फलस्वरूप उनके निकटवर्ती तटों के जलवायु पर वड़ा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि एक ही अक्षांशों में स्थित पश्चिमी यूरोप शीतकाल में भी अधिक ठंडा नहीं हो पाता जव कि उत्तर-पूर्वी कनाडा

और लेब्रोडोर के पठार बर्फ से जमे रहते हैं। समुद्र की ओर से चलने वाली हवायें जब महाद्वीपों के भीतरी भागों में पहुँचती है तो पश्चिमी और पूर्वी भागों की जलवायु में काफी अन्तर डाल देती है। उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में जल के अधिक विस्तार के कारण तापक्रम-भेद कम रहता है और इसी कारण यहाँ गर्मियाँ भी साधारणतया ठंडी ही होती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध के जलवायु पर चक्रवातों और प्रति-चक्रवातों से सम्बन्धित अवस्थाओं का भी जलवायु पर काफी असर पड़ता है। इन्हीं के कारण मौसम बड़ा अस्थिर सा रहता है। कोहरा सदैव ही छाया रहता है किन्तु ये चक्रवात उष्ण-कटिबन्धीय चक्रवातों की भाँति उतने विनाशकारी नहीं होते। दक्षिणी गोलार्द्ध में चक्रवातों और प्रति-चक्रवातों का उतना प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु यहाँ का स्थल विस्तार कम होने के कारण गर्जने वाला चालीसा वेरो-कटोक तीव्र गति से चलता है।

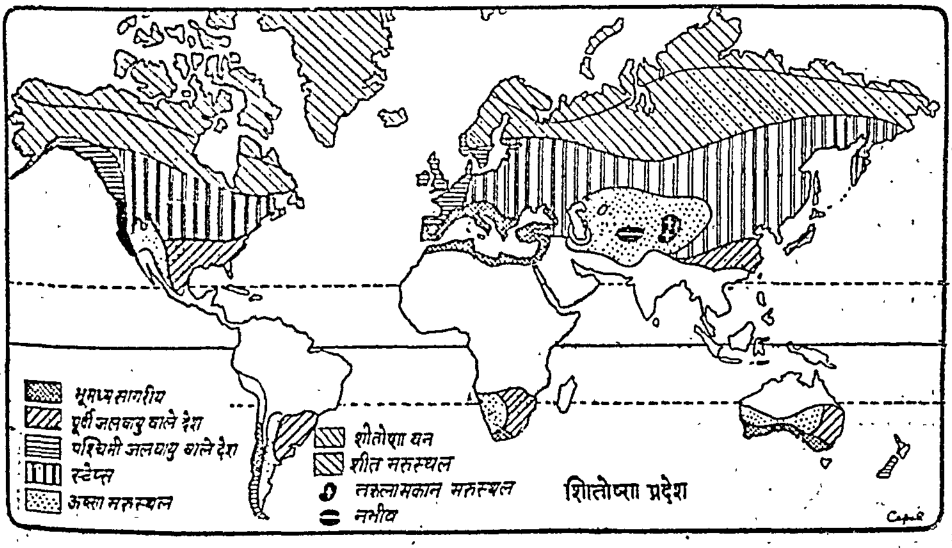

चित्र २२—शीतोष्ण जलवायु खण्ड

शीतोष्ण कटिबन्ध ६८° फा० वार्षिक और ५०° फा० ग्रीष्म ऋतु की समताप रेखाओं के मध्य में स्थित है और अक्षांशों के विचार से ३०° और ४५° के बीच फैला है। इस प्रदेश का विस्तार अधिक होने के कारण इसको श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है अर्थात् ३०° से ४५° तक गर्म प्रदेश, जिन्हें उष्ण शीतोष्ण-प्रदेश (Warm Temperate Regions) कहते हैं; और ४५° से ७०° तक ठण्डे प्रदेश, जिन्हें ठंडे शीतोष्ण प्रदेश (Cool Temperate Regions) कहते हैं। इन ठंडे प्रदेशों में वर्ष भर ही पश्चिमी हवायें चलती हैं। अतः वर्षा साल भर ही होती है और जलवायु भी बड़ा स्वास्थ्यकर रहता है। किन्तु गर्म प्रदेशों में पश्चिमी हवायें साल के केवल ६ महीनों तक ही चलती हैं और शेष ६ महीने यह प्रदेश मध्य के उच्च भार कटिबन्ध में आ जाता है जहाँ व्यापारिक हवाओं का साम्राज्य रहता है। इन दोनों प्रदेशों को अलग-अलग पूर्वी और पश्चिमी भागों में विभाजित किया गया है।

उष्ण-शीतोष्ण-प्रदेश की जलवायु के अन्तर्गत निम्न प्रकार के जलवायु विभाग हैं :—

(१) भूमध्य सागरीय जलवायु (पश्चिमी प्रदेश)
(२) चीनी जलवायु (पूर्वी प्रदेश)
(३) तूरान जलवायु प्रदेश (मध्य के प्रदेश)
(४) शीतोष्ण मरुस्थलीय प्रदेश (ईरानी-प्रदेश)

ठण्डे शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश स्थूल रूप से ध्रुवों की ओर ४०° से ६०° अक्षाशों के बीच स्थित है। इस कटिबन्ध में वर्ष भर पश्चिमी हवाएँ प्रवाहित होती रहती हैं। चूंकि ये निचले अक्षांशों और समुद्र से आती हैं अतः ये अपने साथ अधिक आर्द्रता एवं उष्णता लाती हैं; इसलिए महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर वर्ष भर वर्षा होती है। वर्षा पूर्व की ओर कम हो जाती है। इन समुद्री हवाओं और उष्ण समुद्री धाराओं के कारण पश्चिमी किनारों की जलवायु अत्यन्त ही नम रहती है। वर्षा की कमी के साथ आन्तरिक प्रदेशों की जलवायु तीव्र और विषम होती जाती है। महाद्वीपों के पूर्वी भागों में जाड़े की ऋतु में हवा बाहर की ओर प्रवाहित होती है तथा जाड़े में ठंडक पड़ती है। ग्रीष्म-काल में मामूली मानसूनी प्रकार की हवाएँ समुद्र से धरातल की ओर चलती हैं। ये किनारे के भागों को ठण्डा रखती हैं और उन्हें वर्षा देती हैं। परन्तु पश्चिमी भाग की अपेक्षा ग्रीष्मकाल अधिक उष्ण होता है। इसलिए पूर्वी किनारों में न तो पश्चिमी भागों की भाँति समुद्री जलवायु ही होता है और न इस प्रदेश के मध्य क्षेत्र के जलवायु की भाँति महाद्वीपीय जलवायु ही। अतः

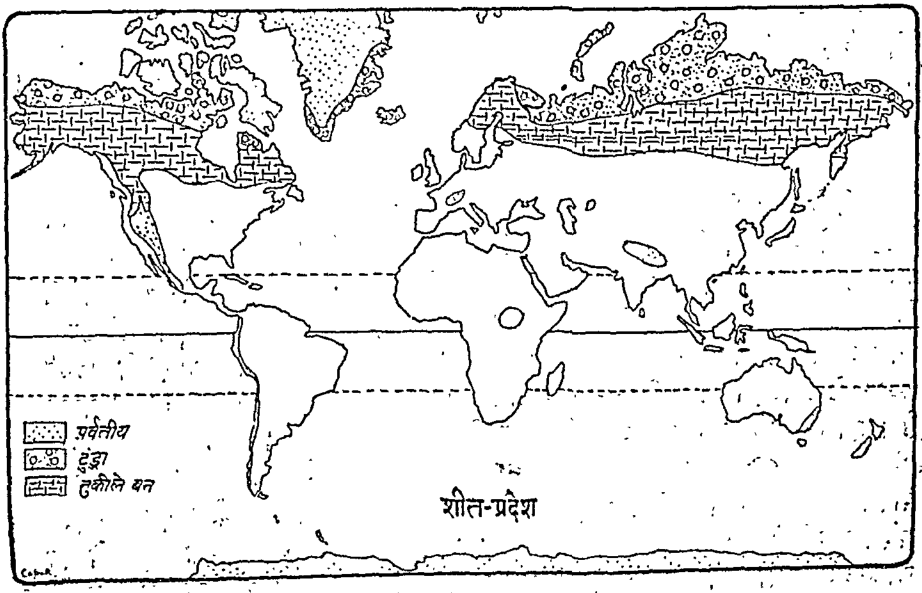

चित्र २३—शीत जलवायु खण्ड

इस शीत शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश को तीन प्रकार की जलवायु की पेटियों में बाँटा जा सकता है:—

(१) पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी यूरोप के प्रकार की जलवायु।
(२) मध्य में साइबेरिया के प्रकार की जलवायु।
(३) पूर्वी किनारे पर सेंट लारेंस के प्रकार की जलवायु।
(४) अल्टाई जलवायु प्रदेश।

(३) शीत कटिबन्धीय जलवायु—शीत जलवायु प्रदेश ६०° से ९०° अक्षांशों के बीच स्थित हैं। यहाँ सदैव सर्दी पड़ती है तथा तापक्रम हिमांक विन्दु से भी नीचे रहते हैं—प्रायः ९ महीने के लिए। इस जलवायु खण्ड के दो भाग हैं—एक वह जहाँ वर्फ कभी नहीं पिघलती—(१) अटल वर्फ वाले प्रदेश—और दूसरा वह जहाँ गर्मी की ऋतु में थोड़े समय के लिये वर्फ पिघल जाती है—(२) टुण्डा प्रदेश।

प्रश्न

१. दैनिक और वार्षिक तापक्रम पर प्रभाव डालने वाले कारणों को वताइये। (आगरा, बी० कॉम० १९४३)
२. उन अवस्थाओं का वर्णन करिये, जिनके कारण मानसूनी हवाएँ उत्पन्न होती हैं। इन हवाओं का क्या प्रभाव पड़ता है? (आगरा, बी० कॉम० १९४३)
३. चक्रवायु से आप क्या समझते हैं? इनमें किस प्रकार का मौसम पाया जाता है? (आगरा, बी० कॉम० १९४५)
४. "किन्हीं भी मौसम सम्बन्धी अवस्थाओं का इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि भारतीय मानसून का"। इसे समझाइये। (आगरा, बी० कॉम० १९४९)
५. पृथ्वी के धरातल पर पाई जाने वाली वायु-प्रणालियों का वर्णन करिये और इनके उत्पन्न करने वाले कारणों पर प्रकाश डालिये। (आगरा, बी० कॉम० १९५१)
६. मानसून और चक्रवातों की उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालते हुए वताइये कि आर्थिक अवस्थाओं पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है। (आगरा बी० कॉम० १९५२)
७. पृथ्वी के धरातल पर सूर्य ताप के वितरण का वर्णन करिये। (आगरा, बी० कॉम० १९५३)

अध्याय ५

प्राकृतिक वनस्पति

(Natural Vegetation)

पृथ्वी के सभी भागों में किसी न किसी प्रकार की वनस्पति अवश्य पाई जाती है यहाँ तक कि मरुभूमि में भी एक प्रकार की घास मिलती है। यही वनस्पति सारे संसार के जीवों का आधार है। प्रत्येक जीव का भोजन किसी न किसी रूप में इसी वनस्पति से निकलता है। जो जीव जन्तु मांसाहारी (Carnivorous) होते हैं वे अपने भोजन के लिए प्रायः ऐसे जीवों का शिकार किया करते हैं जो घासाहारी (Herbivorous) होते हैं। शेर और चीते जंगलों में हिरनों का शिकार करके अपना जीवन बिताते हैं किन्तु ये हिरण घास और पत्तों से ही पलते हैं। मछलियाँ एक दूसरे को खाकर रहती हैं किन्तु इनमें भी सबसे छोटी मछली, जिससे बड़ी मछली का भोजन चलता है, जल में पैदा होने वाली प्लैंक्टन (Plankton) नामक वनस्पति पर ही रहती है। इस प्रकार घुमा-फिराकर हम सबका जीवन वनस्पति के द्वारा प्राप्त हुए भोजन पर ही निर्भर है।

वनस्पति मनुष्य की परिस्थिति का एक मुख्य अंग है। भोजन के अतिरिक्त बहुत सी ऐसी आवश्यकताएँ हैं—जैसे मकान और वस्त्र इत्यादि—जिनमें मनुष्य को वनस्पति से अधिक सहायता मिलती है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वनस्पति का भी अपना एक जीवन है जो अपनी निजी परिस्थिति के अनुसार, जिस पर मनुष्य का भी प्रभाव पड़ता है, उन्नति किया करता है। इस प्रकार वनस्पति को पृथ्वी का सजीव अंग समझना चाहिए।

जलवायु और मिट्टी के अन्तर्सम्बन्ध से वनस्पतियाँ उगती हैं। जलवायु की मुख्य बातें, जिनका प्रभाव इन पर पड़ता है, निम्नलिखित हैं:—

(१) ताप (Temperature)
(२) जल (Water)
(३) प्रकाश (Light)
(४) पवन (Wind)
(५) मिट्टी (Soil)

(१) ताप—ताप और वनस्पति के बीच में बहुत गहरा सम्बन्ध है। वनस्पति की भिन्न-भिन्न जातियाँ (Types of Vegetation) ताप पर ही निर्भर हैं। सहारा इत्यादि की मरुभूमि में अधिक ऊँचे तापक्रम के होने के कारण

वनस्पति की एक ऐसी जाति होती है जिसमें जड़ का ही अधिक विकास होता है। इन स्थानों की वनस्पतियों में पत्तियां तो कम तथा छोटी रहती हैं अथवा बिल्कुल ही नहीं होतीं, परन्तु जड़ें बहुत लम्बी और दूर तक फैलने वाली होने के अलावा प्रायः मोटी ही होती हैं अर्थात् इन स्थानों में अधिकतर वनस्पतियाँ भूमि के नीचे छिपी रहती हैं। किन्तु टुन्ड्रा जैसे प्रदेशों में जहाँ भूमि बर्फ से ढकी रहती है और ताप बहुत कम होता है वनस्पति की एक ऐसी जाति होती है जिसका विकास मुख्यतया भूमि के ऊपर ही अधिक होता है। यहाँ की वनस्पतियों में जड़ तो नहीं किन्तु पत्तियों की प्रधानता होती है। इन वनस्पतियों की जड़ें बहुत ही छोटी और पतली होती हैं और अधिकतर भूमि के ऊपर ही फैलती हैं क्योंकि इन स्थानों में बर्फ का ऊपरी भाग ही पिघलता है। नीचे के भाग में बर्फ बराबर जमी रहती है जिससे उसमें जड़ें नहीं घुस सकतीं। मोस और लिचेन—(Moss & Lichen) एक प्रकार की वनस्पति इस प्रकार की वनस्पतियों के मुख्य उदाहरण हैं।

इसी प्रकार अत्युष्ण कटिबन्ध के चौड़ी पत्तियों वाले तथा शीतोष्ण कटिबन्ध के नुकीली पत्तियों वाले पेड़ों की भिन्नता भी न्यूनाधिक ताप ही के कारण होती है। वनस्पतियों के जीवन में ताप का महत्व इस बात से भी जाना जाता है कि पृथ्वी के अधिकांश भागों में वनस्पतियाँ गर्मी में ही अर्थात् उस समय में ही जब ताप काफी होता है बढ़ती हैं। जिस समय जाड़ा आ जाता है अर्थात् ताप काफी नहीं रहता, उस समय ये नहीं बढ़तीं। सुप्तावस्था में यूरोप के ठण्डे देशों में जाड़ों के दिनों में घास नहीं उगती है परन्तु आमेजन और कांगो की घाटियों में, जहाँ कभी जाड़ा नहीं पड़ता, घास और पेड़ सदा बढ़ते रहते हैं। जिन पौधों का वानस्पतिक भाग कभी लुप्त नहीं होता उन्हें 'बारहमासी' (Perennials) कहते हैं।

(२) जल—ताप के साथ जल भी वनस्पतियों के जीवन का मुख्य साधन है। ताप के द्वारा तो वनस्पतियों की भिन्न-भिन्न जातियाँ निश्चित होती हैं और जल के द्वारा उनकी न्यूनता या अधिकता (Luxuriance) का निश्चय होता है। जल की सहायता से वनस्पतियाँ मिट्टी से अपना भोजन ग्रहण करती हैं। मिट्टी में मिला हुआ वनस्पतियों का भोजन जल के द्वारा घुल कर उनकी जड़ों में होता हुआ वनस्पतियों के प्रत्येक अङ्ग में पहुँच जाता है। इस प्रकार जहाँ जल की मात्रा अधिक होती है वहाँ वनस्पतियों को अधिक भोजन मिलता है और इसलिए वहाँ पर वनस्पतियों की मात्रा भी अधिक होती है। ऐसे स्थानों पर बड़े-बड़े पत्तों से लहलहाते हुए पेड़ों और हरी-हरी घासों की प्रधानता रहती है। कांगो तथा आमेजन की घाटी में जहाँ जल बहुत बरसता है वनस्पतियों की अधिकता होने के कारण पैर रखने की जगह भी कठिनाई से मिलती है। अत्यधिक नम भागों में पाये जाने वाले पौधों को **'नम भूमि के पौधे'** (Hydrophytes) कहते हैं। ऐसे पौधों के तने लम्बे और पतले, जड़ें छोटी, पत्तियाँ चौड़ी और पतली होती हैं और उनमें लकड़ीदार रेशे बहुत कम होते हैं। लेकिन सहारा जैसी भूमि में, जहाँ जल की कमी रहती है और जिसके कारण वनस्पतियाँ

अपना भोजन आसानी से नहीं पा सकतीं, इनकी कमी सबको अखरती है। परन्तु मरुभूमि में जहाँ कहीं जल अर्थात् मरूद्यान (oasis) होते हैं वहाँ काफी घास और पेड़ होते हैं। शुष्क जलवायु के पौधों को Xerophytes कहते हैं। इनकी जड़ें बहुत लम्बी होती हैं। कनाडा के कोलम्बिया प्रान्त में वर्षा के अधिक होने के कारण उगने वाले पेड़ पूर्वीय प्रान्तों के पेड़ों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं। वहाँ के डगलसफर नामक पेड़ संसार के सबसे बड़े पेड़ों में से हैं।

(३) प्रकाश—जल की तरह प्रकाश भी वनस्पतियों के भोजन का साधन है। जहाँ कहीं प्रकाश कम रहता है वहाँ भोजन में कमी हो जाने के कारण वनस्पतियाँ कम पाई जाती हैं। पत्तियों में जो हरा रंग होता है वह इसी प्रकाश के कारण है। यह हरे रंग वाला पदार्थ वायु में मिली हुई कॉर्बन-डाइ-आक्साइड गैस तथा प्रकाश के द्वारा बनता है। इसी से पेड़ को शक्कर भी मिलती है। जब किसी पेड़ को प्रकाश कम मिलने लगता है तब उसकी पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं क्योंकि उस हालत में हरा रंग (Chlorophyl) कम बनता है।

प्रकाश सूर्य की किरणों से उत्पन्न होता है; अतएव जल और, जिस समय प्रकाश अधिक रहता है वहाँ उस समय, अधिक देर तक सूर्य की किरणों के रहने से ताप की मात्रा भी अधिक हो जाती है। इस अधिक प्रकाश और उसके साथ ही अधिक ताप के होने के कारण ही गरमी में ध्रुवों के बहुत निकट तक भी काफी वनस्पतियाँ उग आती हैं।

(४) पवन—पवन भी वनस्पतियों के लिए एक उपयोगी वस्तु है। ऊपर कहा जा चुका है कि वायु में रहने वाली एक गैस विशेष से ही वनस्पतियों को एक प्रकार का भोजन मिलता है। इसके अतिरिक्त पवन वर्षा का कारण है जिससे वनस्पतियों को जल मिलता है। किन्तु सहायता मिलने की अपेक्षा कभी-कभी पवन से वनस्पतियों को हानि भी होती है। यह हानि पेड़ों को तोड़ डालने तथा उसके जल को सुखा डालने से होती है। पवन का मुख्य प्रभाव वनस्पतियों में उपस्थित जल की मात्रा को कम करना है। पेड़ों के जल को पवन उनकी पत्तियों द्वारा उड़ा ले जाता है। जितनी ही अधिक सूखी और गरम पवन होती है उतना ही अधिक जल वह पेड़ों से सोख लेती है। उसी तरह जितनी ही बड़ी पत्ती होती है उससे उतना ही अधिक जल पवन उड़ा सकती है। लेकिन जहाँ वायु में जल अधिक रहता है अथवा पत्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं वहाँ पवन पेड़ों से बहुत कम जल उड़ा सकती है। यही कारण है कि अत्युष्ण कटिबन्ध में जहाँ पर वायु और पेड़ों में जल की मात्रा अधिक रहती है पेड़ों की पत्तियाँ बहुत चौड़ी होती हैं, जिससे पेड़ का काफी जल वायु में उड़ जाता है। लेकिन शीतोष्ण कटिबन्ध में जहाँ वायु और पेड़ों दोनों में जल की मात्रा कम रहती है पेड़ों की पत्तियाँ नुकीली होती हैं और कम चौड़ी होती हैं जिससे पेड़ों से अधिक जल हवा में नहीं आ सकता। लेकिन शीतोष्ण कटिबन्ध में ही जहाँ कहीं चिकनी मिट्टी या पेड़ होते हैं वहाँ उन पेड़ों की पत्तियाँ चौड़ी होती हैं क्योंकि चिकनी मिट्टी पर पानी की मात्रा अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं स्थायी पवन अधिक वेग से चला करती है वहाँ ऊँचे पेड़ नहीं उग सकते हैं।

आरकनी द्वीप के पश्चिमी भागों में पवन के ही कारण पेड़ नहीं पाये जाते। वायु से पेड़ साँस भी लेते हैं।

(५) मिट्टी—वनस्पतियों पर ताप और जल का जो प्रभाव पड़ता है उसे मिट्टी का प्रभाव कम कर देता है। मिट्टी ही से वनस्पतियों को भोजन मिलता है। मिट्टी में मिले हुए अनेक प्रकार के नमक-पानी में घुलकर वनस्पतियों के भोजन का काम देते हैं। लेकिन इनमें से किसी भी नमक की मात्रा ज्यादा हो जाय तो वही नमक पेड़ के लिए विष का काम करता है। इसी से मिट्टी में जहाँ नमक अधिक होते हैं वनस्पतियाँ नहीं उग सकतीं।

कणों के अनुसार मिट्टी में जल की मात्रा कम या अधिक होती है। छोटे कणों वाली अर्थात् चिकनी मिट्टी में तो जल की मात्रा अधिक रहती है लेकिन यदि मिट्टी के कण मोटे होते हैं तो उस मिट्टी में जल बहुत ही कम रहता है। इस प्रकार मिट्टी की बनावट पेड़ों को मिलने वाली जल की मात्रा का निश्चय करती है। यदि मिट्टी चिकनी होती है तो उससे पेड़ों को जल अधिक मिलता है, किन्तु यदि मिट्टी मोटी अर्थात् बालूमय है तो उससे पेड़ों को जल बहुत ही कम मिलता है। इसी बनावट पर मिट्टी में मिली हुई वायु की मात्रा भी निर्भर रहती है। चिकनी मिट्टी में परमाणुओं के पास-पास होने के कारण वायु तो कम किन्तु जल अधिक रहता है, किन्तु मोटी मिट्टी के परमाणुओं के बिखरे रहने के कारण वायु अधिक किन्तु जल कम रहता है। जल और वायु वनस्पतियों के लिए आवश्यक हैं, इसलिए उनके लिए उपयोगी मिट्टी वही है जो न तो बहुत मोटी ही हो और न चिकनी ही हो, अर्थात् जिसमें वनस्पतियों की जड़ें साँस भी ले सकें और जल के द्वारा भोजन भी पा सकें।

मोटी मिट्टी में जो जल पड़ता है वह शीघ्र ही नीचे सोख जाता है, और प्रायः जड़ों की पहुँच से बाहर हो जाता है। साथ ही ऐसी मिट्टी में ताप भी अधिक दूर तक प्रवेश कर जाता है जिससे यह मिट्टी चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक गरम हो जाती है। चिकनी मिट्टी की प्रकृति ठीक इससे उल्टी है। इसमें कणों के एक दूसरे के अधिक निकट होने के कारण पानी और ताप अधिक दूर तक अन्दर नहीं जा सकते। वनस्पतियों के सीधे खड़े रहने का सहारा भी मिट्टी की इसी बनावट पर निर्भर है। बारीक मिट्टी के पेड़ों की जड़ें भीतर घुसकर उसे खूब अच्छी तरह पकड़ लेती हैं, जिससे पेड़ हवा के तेज से तेज झोंके को भी अच्छी तरह सहन कर सकता है। मोटी मिट्टी के पेड़ों की जड़ों को इतने सहारे का मिलना कठिन हो जाता है।

वनस्पति के प्रकार (Types of Vegetation)

जलवायु और मिट्टी की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के कारण पृथ्वी पर अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इन सब प्रकारों में से बहुत से तो ऐसे हैं जिनमें कुछ पारस्परिक समानता भी पाई जाती है। इसी समानता को ध्यान में रखते हुए वनस्पतियों के आधार पर पृथ्वी के कई खण्ड किये गए हैं। ये खण्ड इस प्रकार हैं :—

(१) वन खण्ड (Forests)।

(२) घास के मैदान (Grasslands)।

(३) मरु-भूमि (Deserts)।

इन खण्डों को निर्धारित करने में वनस्पतियों की मात्राओं और उनके आकारों पर ही ध्यान रखा गया है। वन खण्डों में वनस्पतियों की बहुतायत का पता पेड़ों की सघनता तथा उनके आकारों से लगता है। घास के मैदानों में वनस्पतियों की कमी प्रायः पेड़ों की अनुपस्थिति से ही लग जाती है। मरु-भूमि में तो जहाँ-तहाँ ही वनस्पतियाँ दिखाई पड़ती हैं और उनकी मात्रा भी बहुत कम होती है।

(१) वन-खण्ड (Forests)

वन अधिकतर संसार के उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा साल भर होती ही रहती है अथवा वर्ष की किसी ऋतु में घनी हो जाती है अथवा जिनकी मिट्टी पर जाड़े की गिरी हुई बर्फ पिघल कर यथेष्ट नमी प्रदान कर देती है। अतः सघन वनों की उत्पत्ति के निमित्त ऊँचा तापक्रम और घनी वर्षा का होना आवश्यक है। इन अवस्थाओं के अनुसार संसार में तीन प्रकार के वन पाये जाते हैं जो क्रमशः उष्ण कटिबन्ध, अर्ध-उष्ण कटिबन्ध और शीतोष्ण कटिबन्ध में फैले हैं :—

(क) सदा हरे-भरे रहने वाले अत्यन्त गर्म और तर वन।

(ख) पतझड़ वाले वन।

(ग) नुकीली पत्तियों वाले वन।

(क) सदा हरे भरे रहने वाले वन (Tropical Evergreen Forests)—उष्ण कटिबन्ध में अधिक वर्षा होने और लगातार गर्मी पड़ने के कारण भूमध्य रेखीय भागों में वनस्पतियाँ बड़ी आसानी से उग आती हैं जो बहुत ही सघन होती हैं। इन स्थानों में जाड़ों और गर्मी के तापों में कुछ भी अंतर नहीं होता, अतः पेड़ों के पतझड़ का कोई नियत समय नहीं होता। बहुधा देखा जाता है एक ही पेड़ पर एक डाल में पतझड़ हो रहा है और उसी समय उसी पेड़ की दूसरी डाल पर नई पत्तियाँ निकल रही हैं। इसी कारण इन वनों को सदाबहार वन कहते हैं। इन वनों का सबसे अधिक विस्तार भूमध्य रेखा पर ५° उत्तर और ५° दक्षिणी अक्षांशों के बीच में है। यह वन अमेजन व कांगो नदी की घाटी में, गिनी तट, पूर्वी द्वीप समूह में पाये जाते हैं। ऐसे सघन वनों को अमेजन की घाटी में सेल्वाज (Selvas) कहते हैं। इन वनों की सघनता के कारण वृक्षों के ऊपरी भाग को ही प्रकाश प्राप्त होता है। अतः प्रकाश प्राप्त करने की होड़ में ये वृक्ष अधिकाधिक ऊँचे होते रहते हैं। इन वृक्षों की औसत ऊँचाई २०० से ३०० फीट तक होती है। इनके शिखर छतरीनुमा होते हैं। इनके नीचे भी झाड़-झंखाड़ों और लताओं आदि के कारण सदैव अंधकार छाया रहता है। इन वनों में थोड़े से ही क्षेत्र में भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधे उग

आते हैं, अतः किसी विशेष प्रकार की लकड़ी का वनों से हटाया जाना नितान्त कठिन होता है। प्रो० पीरा के अनुसार इन सघन वनों में केवल २–३ ही प्रकार के वृक्ष पाये जा सकते हैं। प्रो० रगल का विश्वास है कि इन वनों के १०० वर्ग गज के क्षेत्र में जितनी प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं उतनी प्रकार के वृक्ष कनाडा के वन प्रदेशों के १०० वर्ग मील क्षेत्र में भी नहीं पाये जाते। इन पेड़ों

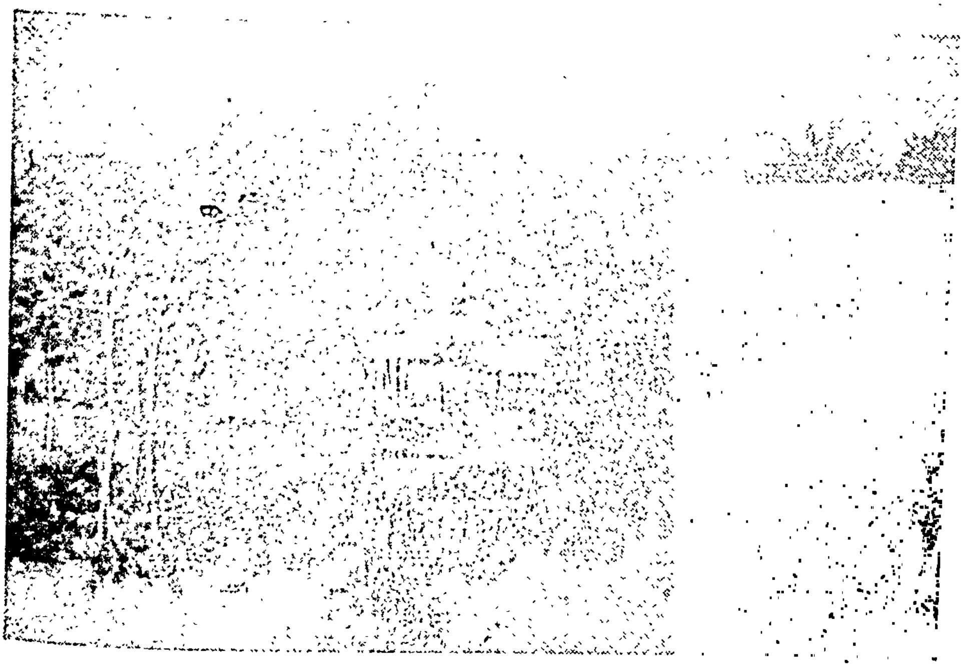

चित्र २४—उष्ण कटिबन्धीय वन

की लकड़ियाँ अधिक गर्मी पड़ने के कारण बड़ी कठोर होती हैं अतः उन्हें काटने में बड़ी असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। फिर यदि लकड़ियाँ किसी प्रकार काट भी ली जायँ तो वनों से बाहर ले जाना—भूमि पर सघन वन-सम्पत्ति और कीचड़ के कारण—और भी दुष्कर होता है। अतः प्रायः बहुमूल्य लकड़ियाँ वनों में ही नष्ट हो जाती हैं और उनका कोई उपयोग नहीं होने पाता।

इन सघन वनों के कुछ बहुमूल्य वृक्ष ये हैं:—आबनूस, महोगनी, बाँस, रोजवुड, लॉगवुड, ब्राजील-वुड, रबड़, आयरन-वुड, मेनिग्रॉक, नारियल, केला, ग्रीन हार्ट, सैगो, सिंकोना, बेंत, ब्रेड-फ्रूट आदि।

अर्द्ध-उष्ण कटिबन्ध के वन (Sub-Tropical Forests)—जिन भागों में वर्षा की मात्रा कम होती है अथवा पतझड़ की ऋतु होती है अथवा जहाँ केवल ग्रीष्म में ही वर्षा होती है वहाँ सदा हरे-भरे रहने वाले जंगलों के स्थान पर मानसूनी वनों की बहुतायत होती है। इस प्रकार के वन भारत, मलय-प्रदेश, इंडोचीन आदि देशों में—जहाँ मानसूनी जलवायु मिलता है—पाये जाते हैं। इन प्रान्तों में पेड़ों की पत्तियाँ प्रचण्ड ग्रीष्म-काल के आरम्भ में झड़

जाती हैं। केवल गर्मी में ही वर्षा होने के कारण इन जंगलों में बड़ी-बड़ी डालियों वाले बड़े छतनार वृक्ष पैदा होते हैं जो वर्षा और शीत में तो हरे रहते हैं किन्तु शुष्क तथा अति उष्ण-ग्रीष्म काल के आरम्भ होते ही वाष्पीभवन द्वारा पत्तियों से भीतरी जल का विनाश रोकने के लिए अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। इसके अतिरिक्त इन भागों में घास-फूस, लतादि की उतनी बहुतायत नहीं रहती जितनी भूमध्य-रेखीय प्रान्तों में होती है। इसके अतिरिक्त जो कुछ घास वर्षा ऋतु में उग आती है वह अन्य समयों पर वर्षा न होने के कारण सूख जाती है। कम वर्षा वाले भागों में बड़े छतनार वृक्षों के स्थान पर छोटी पत्तियों वाले कटीले वृक्ष तथा काँटेदार झाड़ियाँ पैदा हो जाती हैं। घास-फूस का विरलापन और पतझड़ का निश्चित समय पर ही होना इन दोनों बातों को छोड़कर लगभग और सब बातें भूमध्य-रेखीय वनों और मानसूनी वनों में एक-सी ही मिलती हैं।

इन वनों के सबसे प्रसिद्ध पेड़ सागवान (Teak), बाँस, साल, ताड़, चंदन, शीशम, देवदार, महोगनी, बेंत तथा फलों के वृक्ष—आम, जामुन, नारियल आदि हैं।

दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील में भी कम वर्षा के कारण भूमध्य रेखीय सघन वनों के स्थान पर कटिंगा (Catinga) नामक झाड़ियाँ ही अधिक पैदा होती हैं जिनकी पत्तियाँ शुष्क-ऋतु में झड़ जाती हैं।

(ख) पतझड़ वाले वन (Deciduous Forests)—ये वन-प्रदेश साधारण शीत-प्रधान, समशीतोष्ण या पश्चिमी यूरोपीय जलवायु वाले प्रदेशों में पाये जाते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में इनका विस्तार भीतरी शुष्क भागों के पूर्व में ४०° और ६०° अक्षांशों के बीच में है, किन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में पूर्वी तटीय भागों में २५° से और पश्चिमी तटीय भागों में ४०° अक्षांशों से धुर दक्षिण तक फैले हैं।

ग्रीष्म में अत्यन्त साधारण गर्मी, शीतकाल की कड़ी सर्दी और बारह महीनों अच्छी वर्षा हो जाने के कारण यहाँ अच्छी, कड़ी और पुष्ट लकड़ियों के वन पाये जाते हैं जिनके चौड़े पत्तों वाले वृक्षों की पत्तियाँ कड़ी सर्दी से बचने के लिए शीतकाल में ही झड़ जाती हैं। इन वनों में झाड़-झंखाड़ नहीं होते, अतः इन वनों में आने-जाने और लकड़ी आदि काटकर लाने में बड़ी सुविधा होती है। इन वनों में मुख्य पेड़ ओक (Oak), मैपिल (Maple), बीच (Beech), एम (Elm), हैमलोक (Hemlok), अखरोट (Walnut), चेस्टनट (Chestnut), पोपलर (Poplar), एश (Ash), चेरी (Cherry), हिकौरी (Hickory) और बर्च आदि हैं। ये वृक्ष मकान तथा फर्नीचर बनाने की सुन्दर और पुष्ट लकड़ियाँ प्रदान करते हैं। ये वन प्रायः ऐसे स्थानों पर पाये जाते हैं जहाँ खेती के लिए बहुत-सी उपयोगी बातें मिलती हैं। अतः बहुधा मनुष्यों ने इन वनों को काटकर खेती योग्य भूमि निकाल ली है।

अधिक उच्च तथा भीतरी भागों में जहाँ शीतकाल में बर्फ गिरती है चिर-हरित नुकीली पत्ती वाले वृक्ष भी पाये जाते हैं। अतः पतझड़ वाले वनों को प्रायः मिश्रित वन (Mixed Forests) भी कहते हैं।

भूमध्यसागरीय वनस्पति—गर्म मरुस्थलों से ध्रुवों की ओर बढ़ने पर मार्ग में भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश पड़ते हैं। इस प्रदेश की वनस्पतियों को मुख्य-

चित्र २५—चौड़ी पत्ती के वन

कर दो कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है—एक तो जाड़े में शीत का और दूसरे गर्मी में जल के अभाव का। इसलिए यहाँ की वनस्पतियों की प्रायः दो सुप्तावस्थाएँ होती हैं—एक जाड़े में और दूसरी गर्मी में। केवल वसन्त ऋतु में ही यहाँ की वनस्पतियाँ भली प्रकार बढ़ सकती हैं।

इन प्रदेशों में प्राकृतिक वनस्पति में खुले, सूखे किन्तु सदा हरे-भरे रहने वाले वन मिलते हैं जो कम वर्षा तथा अनुपजाऊ मिट्टी वाले स्थानों में कटीली झाड़ियों में बदल गए हैं। यूरोप में इस प्रकार की झाड़ियों को मैक्वीस (Maquis) और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में चैपरेल (Chapperal) कहते हैं। इन प्रदेशों के वन सदा ही हरे-भरे रहते हैं क्योंकि शीतकाल में नमी के साथ साधारण सर्दी पड़ती है जिससे पत्तियाँ झड़तीं नहीं और ग्रीष्मकाल की गर्मी तथा शुष्कता से बचने के लिए यहाँ के वृक्षों में कई विशेषताएँ होती हैं। इन वृक्षों की जड़ें लम्बी तथा मोटी और तने मोटे और खुरदरी छाल वाले होते हैं जिनमें यथेष्ट जल भरा रहता है। पत्तियाँ भी मोटी, चिकनी तथा प्रायः मोमी होती हैं—कई पत्तियों पर तो रुएँ भी होते हैं जिससे इनका जल वाष्प बन कर नहीं उड़ने पाता। जलवायु की इन विशेषताओं के कारण इन प्रदेशों में घास के अभाव का होना एक मुख्य स्वाभाविक बात है।

इन वनों के मुख्य वृक्ष—चौड़ी पत्तियों वाले—ओक, जैतून, अंजीर पाइन, फर, साइप्रस, कौरीगम, यूकलीप्टस, चेस्टनट, लारेल, शहतूत, वालनट आदि हैं। सूर्य के प्रकाश की प्रधानता के कारण ये प्रदेश फल वाले पेड़ों की उत्पत्ति के लिए विशेष उपयुक्त हैं। अतः यहाँ नीबू, नारंगी, अंगूर, अनार, नाशपाती, शहतूत तथा शफ्तालू आदि रसदार फल खूब होते हैं।

(ग) नुकीली पत्तियों वाले वन (Coniferous Forests)—इस प्रकार के वनों का विस्तार उत्तरी अमेरिका और यूरेशिया के उत्तरी भागों में है। इन सबमें से रूस के साइबेरिया के वन, जिन्हें टैगा (Taiga या Boreal Forests) कहते हैं, बहुत विस्तृत हैं। एशिया में इस वन प्रदेश की दक्षिणी सीमा ५५° अक्षांश तक है। उत्तर-पश्चिमी यूरोप में यह ६०° अक्षांश तक फैले हैं और उत्तरी अमेरिका के पूर्व में ४५° अक्षांश तक ये वन मिलते हैं। अलास्का और मैकेंजी नदियों के बेसिनों में तो इन वनों का विस्तार आर्कटिक वृत्त के भी ३०० मील उत्तर और पूर्वी कनाडा में इसके ५०० मील दक्षिण तक है। किन्तु दक्षिणी-गोलार्द्ध में ये वन इतने विस्तृत नहीं हैं।

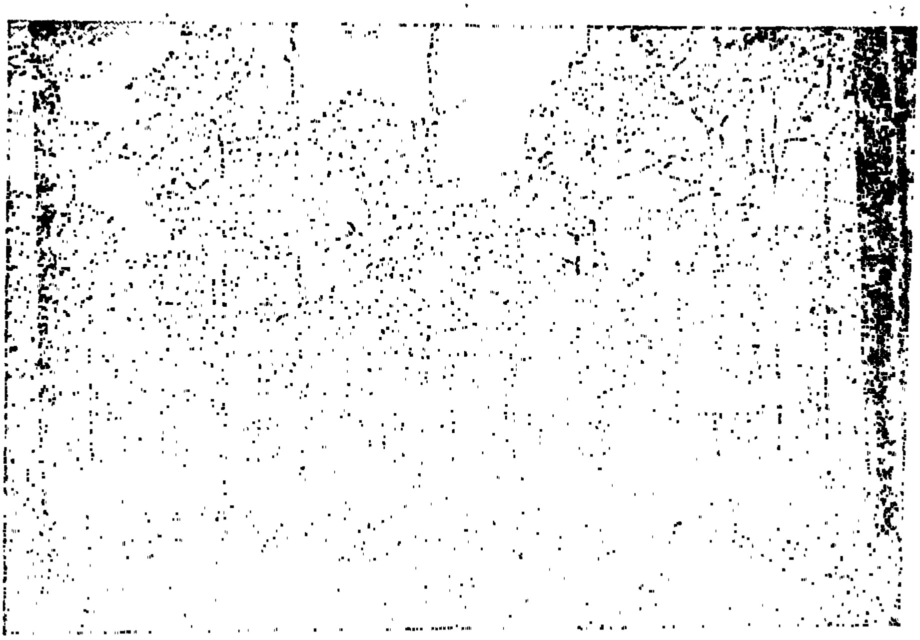

चित्र २६—नुकीली पत्तियों वाले वन

इस प्रकार ये वन उत्तरी गोलार्द्ध में शीतोष्ण कटिबन्ध के उत्तरी भागों में, जहाँ जाड़ा बहुत ही कठिन होता है और ग्रीष्मकाल छोटा और साधारण गर्मी वाला होता है तथा जहाँ पिघली हुई बर्फ से वनस्पतियों के उगने के लिए काफी जल मिल जाता है, पाये जाते हैं। इन भागों में जल की कमी होने के कारण पेड़ों की पत्तियाँ नुकीली होती हैं जिससे उन पत्तियों के द्वारा हवा के साथ

अधिक जल वाष्प बनकर नहीं उड़ पाता। दक्षिणी गोलार्द्ध में ये पेड़ पहाड़ों को छोड़कर और जगहों में बहुत कम मिलते हैं क्योंकि वहाँ समुद्र की निकटता के कारण अधिक कठिन जाड़े नहीं पड़ते। इन वनों में झाड़-झंखाड़ बिल्कुल नहीं मिलते और इस कारण इनमें आना-जाना भी सरलतापूर्वक हो सकता है। पेड़ों के निचले भागों में डालें कम होती हैं और तनों की लम्बाई काफी रहती है।

इन वनों की लकड़ी बहुत ही मुलायम और बहुमूल्य होती है जिससे वह कागज बनाने, दियासलाई की सींकें, चौखट, पेटियाँ आदि बनाने के अधिक उपयुक्त होती है। इन वनों के मुख्य वृक्ष चीड़, स्प्रूस, हैमलोक, फर (Fir), लार्च (Larch), सीडर (Cedar), साइप्रस (Cypress) आदि हैं। ये वृक्ष सदा हरे-भरे रहते हैं। इनकी ऊपरी पर्त मोटी और चिकनी होती है जिससे वे हिम, पाला और कठोर शीत से अपनी रक्षा कर सकें। शीत जलवायु के कारण लकड़ी बहुत कम नष्ट हो पाती है। सूखी ऋतु में तो प्रायः इन वनों में आग लग जाया करती है जिससे मीलों तक यह वन जल कर भूमि को काली बना देते हैं।

इन वनों के पश्चिमी भागों में, जो समुद्र के निकट हैं और जहाँ वर्षा की तो अधिकता है किन्तु जाड़े कम कठिन होते हैं, पेड़ बहुत बड़े-बड़े होते हैं। इन पेड़ों की लकड़ी भी कड़ी होती है। ब्रिटिश कोलंबिया में डगलस फर (Douglas fir) नामक पेड़ बहुत बड़ा और ऊँचा होता है। इसका तना लगभग २०० फुट से ऊँचा और ८० फुट गोल होता है। संसार के सबसे पुराने और बड़े-बड़े वृक्ष इसी भाग में उपलब्ध होते हैं।

पृथ्वी पर वन-प्रदेशों का विस्तार (Extent of forests)

ऐसा अनुमान किया गया है कि पृथ्वी के जितने क्षेत्रफल पर वन-प्रदेश हैं उसके आधे भाग के लगभग (४६%) सदा हरे-भरे रहने वाले उष्ण कटिबन्ध के वनों से आच्छादित हैं। लगभग ३५% क्षेत्रफल पर शीतोष्ण कटिबन्ध के नुकीली पत्ती वाले वन खड़े हैं और शेष १५% पर पतझड़ वाले वन खड़े हैं। नीचे की तालिका में पृथ्वी पर वनों का विस्तार बतलाया गया है—[1]

महाद्वीप	लाख एकड़ों में	समस्त भूमि की तुलना में प्रतिशत के लगभग	समस्त वन-प्रदेश का प्रतिशत
१. एशिया	२०६६	२२ ,,	२८%
२. दक्षिणी अमेरिका	२०६२	४४ ,,	२८%
३. उत्तरी अमेरिका	१४४३	२७ ,,	१६%
४. अफ्रीका	८७६	११ ,,	११%
५. यूरोप	८७४	३१ ,,	१०%
६. आस्ट्रेलिया	२८३	१५ ,,	४%

१—देखिए Zon और Sparhawk कृत "Forest Resources of the World"

पृथ्वी के समस्त भिन्न-भिन्न वनों का विस्तार इस प्रकार है :—

महाद्वीप	नुकीले वन	पतझड़ वन	उष्ण कटिबन्धीय कठोर लकड़ी के वन
	(लाख एकड़ों में)		
यूरोप	५७९०	१९५०	नहीं हैं
एशिया	८८१०	५७२०	६३५०
अफ्रीका	७०	१७०	७७३०
आस्ट्रेलिया	१५०	१५०	२५३०
उत्तरी अमेरिका	१०४६०	२९०	१०८०
दक्षिणी अमेरिका	१०९०	११५	१८६९
पृथ्वी	२६४५०	८,३९५	१९५५९

उपरोक्त तालिका का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि यद्यपि उष्ण-कटिबन्धीय वनों का विस्तार अधिक है किन्तु व्यापारिक दृष्टि से उनका महत्व बहुत कम है। व्यापारिक दृष्टि से तो नुकीली पत्ती वाले वन ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वनों से प्राप्त होने वाले पदार्थों का ८०% इन जंगलों से मिलता है। पतझड़ वाले वनों में केवल फर्नीचर के लिए लकड़ी मिलती है। ये वन सब वनों से मिलने वाली लकड़ी का १८% उत्पन्न करते हैं और उष्ण-कटिबन्ध के वन केवल २% लकड़ी उत्पन्न करते हैं।

अगले पृष्ठ की तालिका में संसार के कुछ प्रमुख देशों में प्रति १००० व्यक्तियों के पीछे वन-क्षेत्रफल तथा प्रति व्यक्ति पीछे लकड़ी का उपयोग बताया गया है इससे ज्ञात होगा कि भारत की स्थिति इस सम्बन्ध में कितनी असन्तोष-जनक है।[1]

[1] देखिये—Hailey की Economics of Forestry पृ० १८–३१।

देश	प्रति १००० व्यक्ति पीछे वन-क्षेत्रफल (एकड़ों में)	प्रति व्यक्ति के पीछे लकड़ी का उपभोग (घन फुटों में)
कनाडा	७,७५७	२५०
फिनलैंड	१,४७०	२६६
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	४३०	२००
स्वीडेन	६६०	१२६
नार्वे	६५०	११८
रूस	४४०	६६
फ्रांस	६०	२६
जर्मनी	५०	२७
ब्रिटेन	१०	१५
बेल्जियम	२०	२४
नीदरलैण्ड	१०	१६
भारतवर्ष	२६	१५

(२) घास के मैदान (Grass lands)

भूमध्य रेखीय प्रान्तों और मानसूनी वनों से ज्यों-ज्यों उत्तर या दक्षिण की ओर दूर जाते है ज्यों-त्यों वर्षा द्वारा प्राप्त जल की मात्रा भी कम होती जाती है और इसी कारण जंगल भी कम घने पाये जाते हैं, यहाँ तक कि नदियों की

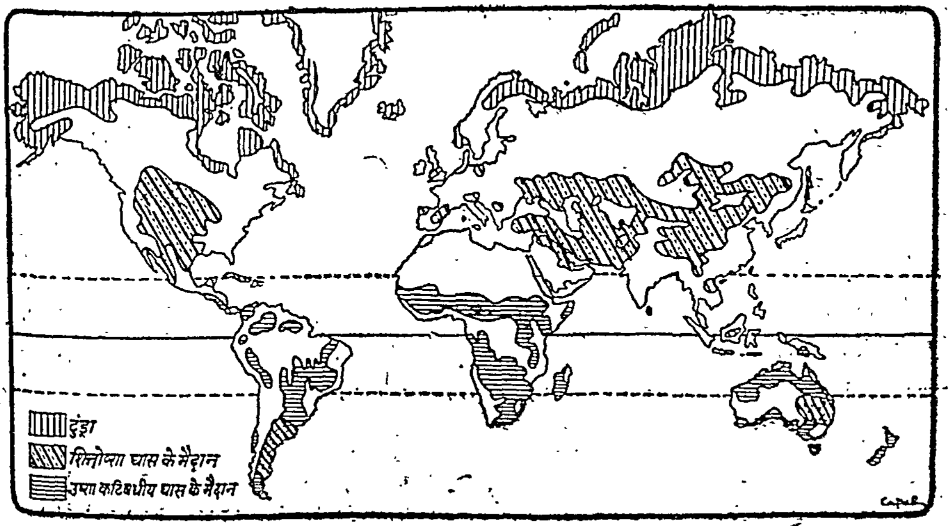

चित्र २७—घास के मैदान

घाटियों को छोड़कर अन्य किसी भी स्थान पर जल की मात्रा पेड़ों के उगने के लिए पर्याप्त नहीं होती। इन प्रान्तों में वर्षा विशेषकर गर्मी में होती है तथा यहाँ वर्षा के पर्याप्त मात्रा में होने से और इस ऋतु में आर्द्रता के भाप रूप में अधिक नष्ट होने से वृक्ष नहीं उग सकते। जो कुछ थोड़ी बहुत वर्षा होती है वह इतनी नहीं होती कि दूर तक मिट्टी में सोख जाय, इसलिए मिट्टी का थोड़ा सा भाग ही तर हो पाता है जिनका लाभ केवल छिछली जड़ों वाली घास ही उठा सकती है। अतः इन भागों में घास के विस्तृत मैदान पाये जाते हैं। ये मैदान दो प्रकार के होते हैं:—

(क) उष्ण-कटिबंधीय घास के मैदान।

(ख) शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान।

(क) उष्ण-कटिबन्धीय घास के मैदान (Tropical Grasslands or Savannahs)—ये घास के मैदान सूडान जलवायु वाले प्रदेशों में मिलते हैं। ये घास के मैदान उत्तरी गोलार्द्ध में ३०° उत्तर अक्षांश और दक्षिण गोलार्द्ध में ३०° दक्षिण अक्षांश तक पाये जाते हैं। इनका सब से अधिक विस्तार सूडान, वेनीजुएला, जम्बेजी नदी के बेसिन, ब्राजील के दक्षिणी भाग

चित्र २८—सवन्ना वन

और आस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग में है। विषुवत् रेखीय वन-प्रदेशों की दीर्घ कालीन शुष्क ऋतु तथा केवल ग्रीष्म कालीन वर्षा के कारण यहाँ बहुत ऊँची (५ से १५ फुट) तर-घास उत्पन्न होती है जिसके बीच में कहीं-कहीं छाते की आकृति के

छोटी-छोटी पत्तियों या काँटे वाले वृक्ष पाये जाते हैं; जैसे खेजड़ा, इमली, ताड़, बबूल, छुई-मुई (mimosa) आदि। वर्षा में घास हरी रहती है किन्तु शुष्क शरद, शीत तथा वसन्त काल में सूख जाती है, फिर चारों ओर बादामी रंग का सूखा ही सूखा दृश्य दिखाई पड़ता है। केवल नदियों के तटों पर सदैव पर्याप्त जल मिलने के कारण पेड़ अधिक संख्या में मिलते हैं किन्तु नदियों के तटों से दूर होते ही पुनः सूखी घास के मैदान आ जाते हैं। कहीं-कहीं पार्कों की तरह पेड़ों और झाड़ियों के होने के कारण इन घास के मैदानों को पार्कलेंड (Parkland) भी कहते हैं।

अफ्रीका, एशिया तथा आस्ट्रेलिया में घास के इन मैदानों को, जहाँ घास की पत्तियाँ कड़ी लम्बी और चौड़ी होती हैं सवन्ना (Savannah) अमेजन नदी के उत्तर में ओरीनीको नदी के संग्रहण क्षेत्र में लैनास (Llanos) और अमेजन के दक्षिण में ब्राजील के भूभाग पर कम्पास (Campos) और अफ्रीका में पार्कलैंड (Parkland) कहते हैं। इन घास के मैदानों में मांसाहारी और शाकाहारी जीवों का प्राधान्य है।

(ख) शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान (Temperate Grass-lands)—शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान उन स्थानों में, जो समुद्र से दूर हैं और जहाँ वर्षा अधिक नहीं होती, पाये जाते हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों की घास उष्ण-प्रदेशों की अपेक्षा अधिकतर छोटी, कोमल और कम घनी होती है। इन प्रदेशों के ऐसे विस्तार हैं जिनमें एक भी पेड़ नहीं मिलता। इन घास के मैदानों को भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। एशिया (जहाँ इनका विस्तार वालकश झील के निकटवर्ती भागों तथा मंचूरिया और ओरडोल के मरु-स्थल में है) और यूरोप में (काले सागर के निकट के भागों में) इन घास के मैदानों को स्टेप्स (Steppes), उत्तरी अमेरिका में प्रेरीज (Praries), दक्षिणी अमेरिका में पम्पास (Pampas) आस्ट्रेलिया में डाउनलैंड्स (Downlands) तथा दक्षिण अफ्रीका में वेल्ड (Veld) कहते हैं। इन मैदानों में सर्वत्र अत्यधिक समानता है।

इन मैदानों में ग्रीष्म-काल अत्यन्त उष्ण तथा शुष्क, शीतकाल हिमाच्छादित तथा वसंत वर्षा काल होता है। बसंत ऋतु में वर्फ पिघलने और थोड़ी बहुत वर्षा हो जाने के कारण जमीन आर्द्र हो जाती है और सम्पूर्ण भूमि हरी घास और अनेक प्रकार के फूलों से परिपूर्ण हो जाती है। ग्रीष्म काल के पहले भाग तक जब तक वर्षा होती रहती है यह घास हरी रहती है। किन्तु ग्रीष्मकाल के अत्यधिक उष्ण हो जाने पर यह झुलस जाती है और सारा देश भूरा (Parched) हो जाता है। शीतकाल में घास के मैदान प्रायः बर्फ से ढके रहते हैं। ग्रीष्म में मामूली बौछारों और तीव्र गर्मी के कारण आर्द्रता के अधिकांश भाग का वाष्पीकरण हो जाता है। अतः जल पृथ्वी की सतह के नीचे अधिक गहराई तक नहीं जाने पाता और इसलिए इन प्रदेशों में पेड़ नहीं उग सकते। वृक्ष केवल नदियों के किनारे ही दृष्टिगोचर होते हैं। इन घास के मैदानों में तेज दौड़ने वाले तथा

घास खाने वाले जानवर मिलते हैं; जैसे शुतुर्मुर्ग, घोड़े आदि। ग्रीष्म में इन मैदानों में गेहूँ की खेती अधिक की जाती है और पशु चराए जाते हैं। प्रेरी के मैदानों में तो इतना अधिक गेहूँ पैदा किया जाता है कि उन्हें विश्व के खाद्यान्न भंडार (Granaries of the World) कहा जाता है।

(३) मरु-भूमि (Deserts)

मानसूनी प्रदेशों से पश्चिम की ओर जाने में वर्षा की कमी के कारण वन क्षीण होते जाते हैं तथा आगे चलकर कटीली झाड़ियों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी प्रकार उष्ण घास के मैदानों से ध्रुवों की ओर बढ़ने पर घास कम होती जाती है और अन्त में ये मैदान भी मरुस्थल हो जाते हैं। ये मरुस्थल क्रमशः उष्ण-मरुस्थल (Hot Deserts) और शीत-मरुस्थल (Cold Deserts of Tundra) कहलाते हैं। पहले मरुस्थलों में वर्षा की कमी और द्वितीय प्रकार के मरुस्थलों में तापक्रम की कमी के कारण वनस्पति नगण्य सी होती है।

(क) उष्ण मरुस्थलीय वनस्पतियाँ (Hot Deserts, Vegetation)—इन मरुस्थलों में केवल वही पेड़ पौधे होते हैं जिनका जल एकत्र करने का ढंग बड़ा निराला होता है। इनमें से कुछ की जड़ें बहुत ही लम्बी और मोटी होती हैं जिससे मिट्टी की निम्नतम गहराई से भीतरी जल चूँस सकें और उसे अपने मोटे भागों में संचित कर सकें। कुछ पौधों की पत्तियाँ तथा तने बहुत मोटे और इस प्रकार प्राकृतिक रूप से सुरक्षित रहते हैं कि उनमें से पानी बाहर न जा सके और शुष्क जलवायु से उनकी रक्षा करने के लिए उन्हीं में जमा रहे। कुछ वृक्षों की पत्तियों पर एक प्रकार का मोमी आवरण रहता है जो पत्तियों द्वारा वाष्पीभवन की क्रिया को रोकता है। कुछ के तनों पर नुकीले काँटे होते हैं जो उन्हें जानवरों द्वारा खाने से बचाते हैं। कुछ पर मोटा गुद्दा होता है। इन मरुस्थलों की झाड़ियाँ Xerophytes कहलाती हैं।

उष्ण-मरुस्थलों की वनस्पति मुख्यतः चार भागों में बाँटी जा सकती है। (१) शुष्क घास के मैदान उन भू-भागों में पाये जाते हैं जहाँ उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान समाप्त होते हैं और मरुस्थल प्रारम्भ होते हैं। इन पर कुशा या सरपत जैसी घास उगती है। (२) कटीली झाड़ियाँ उन स्थलों पर मिलती हैं जहाँ मरुस्थल समाप्त होकर भूमध्य सागरीय प्रदेश आरम्भ होते हैं। ये झाड़ियाँ इन मरुस्थलों को केवल चारा प्रदान करती हैं। (३) काँटेदार वृक्ष—जैसे बबूल, कैर, खेजड़ा, आदि मरुस्थल के मध्य भाग में इधर-उधर छिटके रहते हैं। (४) मरूद्यानों के उपजाऊ भाग—मरुस्थलों के आस-पास के पर्वतों का जल पर्वतों की तलहटियों में समाकर नीचे-नीचे किसी कड़ी ‑ ट्टान तक पहुँचकर मरुस्थल के मध्य भाग में यहाँ-वहाँ प्राकृतिक स्रोतों (‍. tural Springs) के रूप में निकल आता है। इन मरूद्यानों के चारों ओर ‍र और ताड़ आदि के वृक्ष खूब पैदा होते हैं। दुनिया में सबसे बड़े नखलिस्तान Oasis) अफ्रीका में नील नदी की घाटी में मिलते हैं।

(ख) शीत मरुस्थलीय वनस्पति (Vegetation of Tundras)—इस प्रकार की वनस्पति यूरेशिया और कनाडा के धुर उत्तरी भागों में पाई जाती है। इन शीत-मरुस्थलों में कड़ी सर्दी और छोटी ग्रीष्म-ऋतु के कारण वनस्पति का प्रायः अभाव-सा रहता है। शीत-ऋतु में भूमि बर्फ से आच्छादित रहती है, अतः कोई पेड़-पौधे नहीं उगते। किन्तु ग्रीष्म-काल में बर्फ के ऊपरी भाग के पिघल जाने से कई प्रकार की शीघ्रतापूर्वक बढ़ने वाली छोटी घासें उग आती हैं जिनमें रंग-बिरंगे कई किस्म के फूल खिल आते हैं। लेकिन इन घासों का जीवन केवल थोड़े ही दिनों तक रहता है। गर्मी के अन्त होने के साथ-साथ इन घासों का भी अन्त हो जाता है। घास के अतिरिक्त एक प्रकार की काई (Lichen or moss) भी यहाँ पाई जाती है तथा कुछ छोटी-छोटी झाड़ियाँ जैसे क्रानबेरी, काउबैरी, हार्टलबैरी, विल्लो, सेज (Sedge), सेवार (Moss), बिलबैरी, ब्ल्यूबैरी आदि। यहाँ की वनस्पति अल्पकाल में ही अपना जीवन-चक्र पूरा कर लेती है। प्रो० शिम्पर (Prof. Schimper) के अनुसार यहाँ के अधिकांश पौधे केवल ३ सप्ताह के अल्प काल में ही उगते, बढ़ते और वृद्ध होकर मर जाते हैं।

संसार के वनस्पतीय कटिबन्ध (Vegetation Zones of the world)

जलवायु और प्राकृतिक वनस्पति का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि संसार को प्राकृतिक वनस्पति के अनुसार उन्हीं भागों में विभाजित किया गया है जिनमें जलवायु के अनुसार। सन् १८७४ ई० में ए० डी० कैंडिल महाशय ने पृथ्वी पर पाई जाने वाली वनस्पति को तापक्रम और वर्षा के अनुसार निम्न पाँच खण्डों में विभाजित किया था—

(१) ऐसी वनस्पति जिसे उगने के लिए सदैव उच्च तापक्रम और भारी वर्षा का आवश्यकता होती है (Megatherms)। इस प्रकार की वनस्पति के अन्तर्गत उष्ण-कटिबन्धीय हरे-भरे जंगल आते हैं जहाँ निरन्तर वर्षा होती रहती है तथा ठंडे महीने का तापक्रम भी ६४·५° फा० से ऊपर रहता है।

(२) ऐसी वनस्पति जो शुष्क जलवायु और तीव्र तापक्रम चाहती है (Xerophytes)। इस प्रकार की वनस्पति उष्ण-मरुस्थलों और शीतोष्ण कटिबन्ध के गर्म भागों में मिलती है। इनके पत्ते प्रायः शुष्क ऋतु में झड़ जाते हैं।

(३) ऐसी वनस्पति जिसे न तो अधिक वर्षा और न अधिक तापक्रम ही की आवश्यकता रहती है (Mesotherms)। किन्तु कुछ को ग्रीष्म-कालीन तीव्र तापक्रम की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार की वनस्पति २२° से ४५° उत्तर और ८०° दक्षिण अक्षांशों के मध्य में मिलती है। जहाँ ग्रीष्म का तापक्रम ७२° फा० और शीत में तापक्रम ४३° फा० से ऊपर रहता है। भूमध्य सागरीय वनस्पति इसका मुख्य उदाहरण है।

(४) ऐसी वनस्पति जो कम गर्मी किन्तु कठोर शीत चाहती है (Microtherm) और जहाँ ग्रीष्म में तापक्रम ५०° फा० और शीतकाल में ४३° फा० से

भारत में प्राकृतिक वनस्पति

प्राचीन काल में भारत का अधिकांश भाग प्राकृतिक जंगलों से ढका था। किन्तु जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण अधिकाधिक भूमि की आवश्यकता पड़ती गई और यह कमी जंगलों को काटकर पूरी की जाने लगी। अब भी देश के ऊँचे भागों में हमें प्राकृतिक वनस्पति देखने को मिलती हैं। देश में जंगलों की अब भी कमी नहीं है, किन्तु इतने बड़े क्षेत्रफल और इतनी अधिक जनसंख्या की तुलना में इन जंगलों का अस्तित्व नहीं के बराबर है। समस्त देश के क्षेत्रफल के केवल २२·३ प्रतिशत भाग में वन फैले हुए हैं। किन्तु इन वनों का विस्तार सभी जगह समान नहीं है। उदाहरण के लिए पश्चिमी बंगाल के जंगलों का क्षेत्रफल सम्पूर्ण क्षेत्रफल का १३·५ प्रतिशत है जबकि उत्तर प्रदेश में १५ प्रतिशत, उड़ीसा में ३६ प्रतिशत, मद्रास में २० प्रतिशत, पूर्वी पंजाब में १४ प्रतिशत, मध्य प्रदेश में ४८ प्रतिशत, बिहार में १६ बम्बई में १८ प्रतिशत, तथा आसाम में ३१ प्रतिशत, अजमेर में २४·५६, और अंडमान में ७७·७ प्रतिशत भूमि में जंगल पाये जाते हैं।[1] सम्पूर्ण देश के जंगलों का केवल १२ प्रतिशत ही काम में आने लायक लकड़ियाँ प्रदान करता है। संसार के अन्य देशों की तुलना में हमारे यहाँ बहुत ही कम जंगल पाये जाते हैं। अन्य देशों में तो न्यून से न्यून भी २० से २५ प्रतिशत भूमि पर जंगल हैं। स्वीडेन में ५६·५ प्रतिशत, रूस में ४४ प्रतिशत, नार्वे में २० प्रतिशत, कनाडा में ३३ प्रतिशत, संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ३३ प्रतिशत, फ़िनलैंड में ७१ प्रतिशत, आस्ट्रिया में ४० प्रतिशत, ब्राजील में ५७%, ब्रह्मा में ३८%, लंका में ५६%, थाइलैंड में ७७% और जापान में ६२% भूमि पर वन फैले हुए हैं।

भारत में २६५,६३२ वर्ग मील भूमि पर जंगल फैले हैं जिनमें से २०५,२७२ वर्ग मील के जंगल जंगलात के अधिकार में हैं, ८५० वर्ग मील सहकारी संस्थाओं और शेष ५६,८१० वर्ग मील व्यक्तिगत अधिकार में हैं। समस्त वन क्षेत्रफल का केवल १५५,१३६ वर्ग मील क्षेत्र व्यापारिक महत्व का है। ५४,३५३ वर्गमील क्षेत्र अप्राप्य है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारत की १४७,७०५ हजार एकड़ भूमि पर वन-प्रदेश फैले हैं। जिनका प्रादेशिक वितरण इस प्रकार है:—

क्षेत्र	वन प्रदेश (हजार एकड़ में)	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
पूर्वी क्षेत्र	३४,६१०	२०·६३
उ० प० क्षेत्र	२६,८७४	१०·७०
मध्यवर्ती क्षेत्र	३६,६६२	२६·६२
दक्षिणी क्षेत्र	४३,५२६	१८·८२
योग	१४७,७०५	१८·२२

१. देखिये National Forest Policy of India (1952) पृष्ठ 3 और Agricultural Situation India, Sept. 1955.

भारत में पाई जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति को हम निम्न भागों में बाँट सकते हैं:—

(१) सदा हरे रहने वाले जंगल (Evergreen Forests)— उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा प्रतिवर्ष ८० इंच तक होती है। ये भाग क्रमशः दक्षिण में पश्चिमी घाट के ढाल पर बम्बई से लगाकर उत्तरी व दक्षिणी कनारा, तिन्नावेली, मैसूर, कुर्ग, कोयम्बटूर, ट्रावनकोर और अंडमान तक फैले हैं और उत्तर में हिमालय की तराई, पूर्वी हिमालय और आसाम तक फैले हैं। यहाँ के वन सदा हरे भरे रहते हैं और इनके पेड़ों की ऊँचाई भी १५० फुट से भी अधिक होती है। इन वृक्षों की

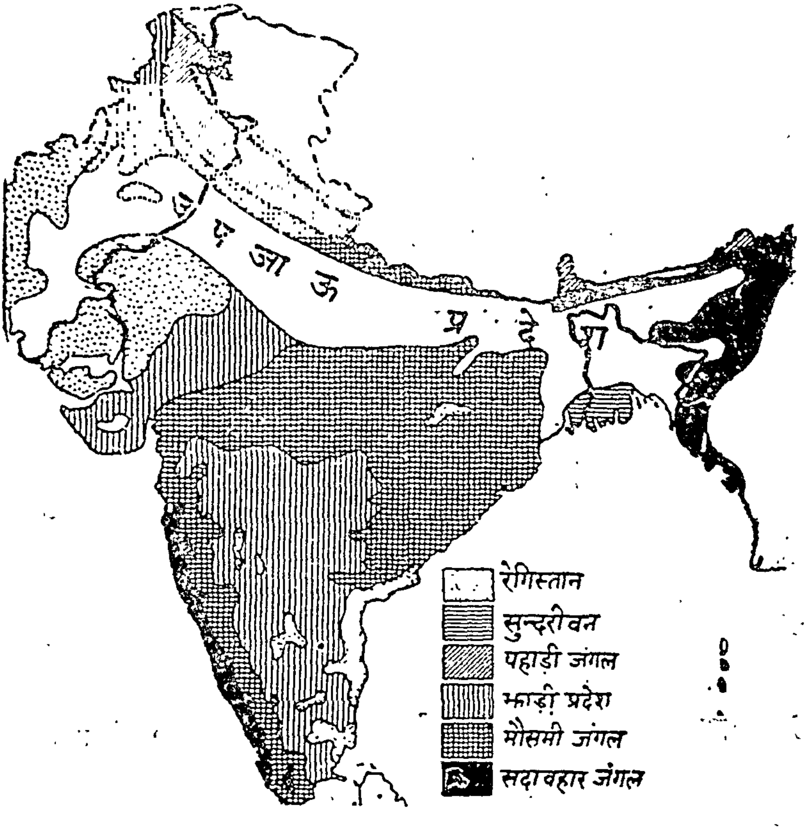

चित्र ३०—भारत के वनस्पति विभाग

लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है। इसको काटना बड़ा कठिन होता है। तरह-तरह की बेलों और छोटे-छोटे पौधों की अधिकता से ये वन प्रायः दुगर्म होते हैं। यद्यपि इन जंगलों में कई प्रकार की बहुमूल्य लकड़ियाँ मिलती हैं किन्तु यातायात के साधनों की कठिनाई के कारण व्यवसाय की दृष्टि से उनका महत्व अधिक नहीं है। इन वनों में अधिकतर रबर, महोगनी, एबोनी, लौहकाष्ठ, जंगली आम, तून, ताड़, बाँस और कई प्रकार की लताएँ अधिक उगती हैं।

(२) पतझड़ वाले वन या मानसूनी जंगल (Monsoon Forests)—ये जंगल अधिकतर उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा प्रायः ४०" से ८०" तक होती है। ग्रीष्म ऋतु के आते ही इन जंगलों के पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं जिससे इनकी नमी भाप बन कर उड़ सके। इन भागों में ऊँचे (१०० से १२० फुट) और मजबूत पेड़ों के लिये तो काफी पानी बरस जाता है किन्तु वर्षा की इतनी अधिकता नहीं होती कि वह दुगर्म हो जावें। इस प्रकार के वन पूर्वी पंजाब से आसाम तक हिमालय के बाहरी व निचले ढालों पर मिलते हैं और उत्तर की इसी सीमा से लेकर उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, पश्चिमी घाट के पूर्व से लगाकर मध्य प्रदेश, बम्बई, मद्रास, कुर्ग, मैसूर, कोचीन के सूखे भागों में और दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक मिलते हैं। इन जंगलों में बहुमूल्य लकड़ियाँ जैसे टीक, साल, साखू, सागवान, लाल चन्दन, चन्दन आदि होती हैं। यहाँ शहतूत, बाँस, कत्था, पैडूक, आम, इमली, शीशम और आँवला के भी वृक्ष पाये जाते हैं। इन जंगलों में सागौन के जंगल—जो मध्य प्रदेश में बाँदा, उत्तरी कनारा, वैनाड़ और अनामलाई की पहाड़ियों पर मिलते हैं—मुख्य हैं। व्यावसायिक दृष्टि से ये जंगल बड़े लाभदायक हैं। ये जंगल अधिकतर सरकार द्वारा सुरक्षित रखे गये हैं ताकि उनका बेकार प्रयोग न किया जा सके।

(३) कटीले जंगल (Scrub Forests)—पश्चिमी राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी पूर्वी पंजाब, मध्य भारत और दक्षिण के शुष्क भागों में मैसूर, हैदराबाद, बरार आदि स्थानों में जहाँ ४० इंच से भी कम वर्षा होती है वर्षा की कमी के कारण पेड़ भली भाँति नहीं उग सकते। इन जंगलों में ऐसी छोटी-छोटी झाड़ियाँ पाई जाती हैं जिनमें पानी की कमी के कारण पत्तियाँ कम या बिलकुल ही नहीं निकलतीं किन्तु काँटे ज्यादा होते हैं. अतः इन काँटों के कारण सूरज की किरणें काँटों की नोक के द्वारा पानी की बहुत ही कम मात्रा हवा में उड़ा पाती हैं और दूसरे इन काँटों के कारण वह जानवरों से भी बचे रहते हैं। इन जंगलों में नागफनी, खजूर, बबूल, खेजड़ा और केर आदि के वृक्ष खूब पैदा होते हैं।

(४) ज्वार प्रदेश के जंगल (Tidal or Mangrove Forests)—इस प्रकार के जङ्गल उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ कि मिट्टी बार-बार ज्वार-भाटा आने के कारण उपजाऊ हो गई है। इन जङ्गलों में घास बिलकुल ही नहीं उगती क्योंकि सदैव जाड़ों में पानी भरे रहने के कारण घास का उगना प्रायः असंभव ही होता है। बंगाल के गङ्गा के डेल्टा के सुन्दर वन और मद्रास के उत्तरी तट के जिलों में ये अधिकता से पाये जाते हैं। महानदी, कृष्णा, गोदावरी और ब्रह्मपुत्रा नदी के डेल्टा में भी इस प्रकार के जङ्गल पाये जाते हैं। सुन्दरी यहाँ का मुख्य पेड़ है। इसकी विशेषता यह होती है कि पृथ्वी के नीचे जड़ों से बहुत-सी जड़ें बाहर की ओर निकलती हैं। इस्चुरी के निकट ताड़ और नारियल के वृक्ष अधिक होते हैं।

(५) नदी तट के जंगल (Riverain Forests)—बरसात के

मौसम में नदियों की बाढ़ का पानी जितने भागों में फैल जाता है वहाँ तक पेड़ उग आते हैं। इन पेड़ों में जो नदियों के पास होते हैं वह अपनी लम्बी-लम्बी जड़ों द्वारा नदी के पानी को खींच-खींच कर बड़े ऊँचे और मजबूत बन जाते हैं, किन्तु जो पेड़ नदी तट से दूर होते हैं वह अक्सर छोटे और कमजोर ही रह जाते हैं। इन जंगलों में बबूल, पीपल, शीशम आदि बहुत पाये जाते हैं। चूँकि नदियों के किनारे की भूमि में खेती भी अधिक होती है—अतः किसान अपनी आवश्यकतानुसार इन्हीं जगलों से लकड़ी काटते रहते हैं—अतः यह जंगल ज्यादा घने नहीं पाये जाते हैं। पंजाब से लगा कर आसाम तक इसी प्रकार के जंगल मिलते हैं।

(६) पहाड़ों के जंगल (Alpine Forests)—पहाड़ों की ऊँचाई के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। हिमालय प्रदेश के पूर्वी भागों में जहाँ वर्षा घनी है पश्चिमी भागों की अपेक्षा जहाँ वर्षा कम होती है घने और विविध प्रकार के जंगल पाये जाते हैं। हिमालय के जंगलों को दो भागों में बाँटा जा सकता है:—

(i) पूर्वी हिमालय की वनस्पति—पहाड़ की तलहटी से ७,००० फीट तक सेमल, तून और रबर के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त घास, ताड़, बाँस, बेंत और मगनोलिया तथा लताएँ भी बहुत पैदा होती हैं। ७,००० से १३,००० फीट तक मगनोलिया, सफेद ओक, लारेल, मेपल, भोजपत्र, लार्च, और साईप्रस आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। १३,००० से १६,००० फीट तक की ऊँचाई पर भोजपत्र, देवदार, लिचन, रोडोडेन्ड्रन्स, सिल्वर फर, ब्लूपाइन तथा जूनीपर के वृक्ष होते है और १६,००० फीट से अधिक ऊँचाई पर हिम रेखा आ जाती है।

(ii) पश्चिमी हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली वनस्पति अधिक घनी नहीं है। पहाड़ के नीचे से ६,००० फीट की ऊंचाई तक सेमल, पलाश, चीड़, झाऊ, शीशम, ताड़, बाँस, अनार और देवदार के वृक्ष अधिक पाए जाते हैं। ६,००० से १२,००० फीट की ऊंचाई तक ओक, लारेल, मेपल, चीड़, साईप्रस, जूनीपर, बर्च, एल्डर आलु बुखारा, अंगूर आदि के पेड़ अधिक होते हैं। कुछ जूनीपर, घास और दवाई की जड़ी-बूटियाँ भी पाई जाती हैं। इससे ऊपर हिम रेखा आरम्भ हो जाती है।

वनों के संरक्षण के लिये सरकार के जंगल विभाग ने उनको भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बाँट रखा है: (१) जो जंगल जलवायु की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं उन्हें **सुरक्षित** वन (Reserved forests) कहते हैं। इनमें न तो लकड़ियाँ ही काटी जाती हैं और न पशु ही चराने दिये जाते हैं। इस प्रकार के जंगलों का क्षेत्रफल १३४ हजार वर्गमील है। (२) दूसरे प्रकार के जंगलों को **रक्षित वन** (Protected forests) कहते हैं। इनमें मनुष्यों को अपने पशुओं को चराने तथा लकड़ी काटने की तो सुविधा दी जाती है, किन्तु उन पर कड़ी देखभाल की जाती है जिससे जंगलों को नुकसान न पहुँचे। इस प्रकार के वनों का क्षेत्रफल ५३ हजार वर्ग मील है। (३) शेष जंगलों को **स्वतन्त्र वन** (Unclassed

forests) कहते हैं। इनमें लकड़ी काटने और पशुओं के चराने पर कोई रोक-थाम नहीं है। सरकार इसके लिए कुछ शुल्क लेती है। इस प्रकार के जंगलों का क्षेत्रफल ९३ हजार वर्गमील है।

भारतीय वनों की मुख्य उपज

वनों से हमें कई प्रकार की लकड़ियाँ जैसे शीशम, सागवान, देवदार, चीड़, साल, आबनूस, चन्दन, बबूल आदि मिलती हैं। इनसे हमारे मकान का फर्नीचर आदि बनता है। अन्य उपयोगी- लकड़ियाँ बबूल, आम आदि हैं जो प्रायः भारत के सभी भागों में उपलब्ध होती है। भारत में १३,९८३ वर्गमील भूमि पर चीड़ के वन; ४०,९३२ वर्गमील भूमि पर साल; १६,८७४ वर्गमील भूमि पर सागवान और शेष १४७,८९८ वर्गमील भूमि पर अन्य प्रकार के वन फैले हैं। नीचे की तालिका में भारत के वनों से प्राप्त हुई प्रमुख प्रकार की लकड़ियों का व्यौरा दिया गया है—भारत के वनों की गौण उपज का वार्षिक मूल्य ३०३ लाख रुपया कूता गया है।[1]

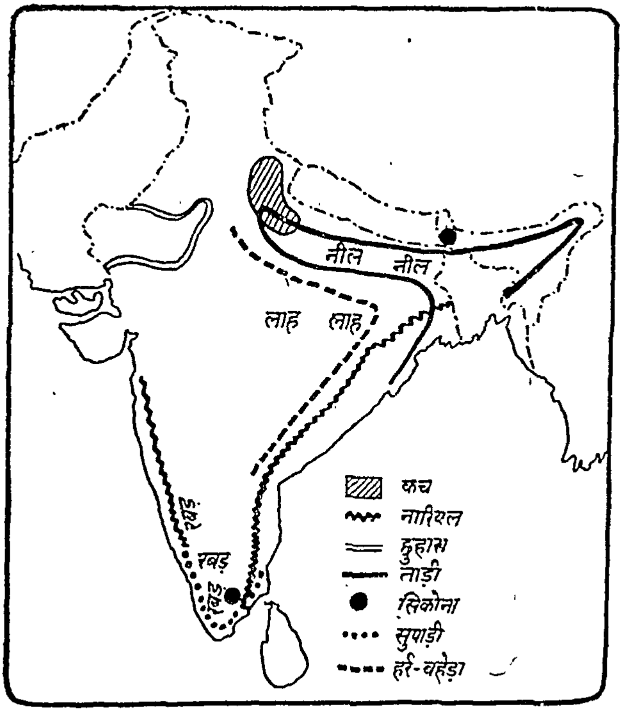

चित्र ३१—भारत के वनों की गौण उपज

भारतीय वनों की मुख्य उपज—१९५२-५३

टिम्बर	१०३,३१९	हजार घनफुट
राउन्डवुड	१३,३६१	,,
लुब्दी बनाने की लकड़ी	९०३	,,
ईंधन	३२६,०२२	,,
कोयला (लकड़ी का)	७,८७१	,,
योग	४५१,४७६	

1. India, 1955, p. 178.

(१) लाख (Lac)—एक कीड़े की उपज है जो वृक्ष विशेष के रस को चूसकर लाख उत्पन्न करते हैं। यह कीड़ा ढाक, पलाश, बेर, पीपल, बरगद, गूलर, कुसुम, फालसा, बबूल आदि वृक्षों पर अधिक निर्भर रहता है। लाख की सबसे अधिक उत्पत्ति मध्यप्रदेश के बिलासपुर, बंगाल के संथाल परगना, सिंह भूमि तथा उड़ीसा के मयूरभंज जिलों में होती है। यह प्रदेश समस्त भारत की ८५% लाख उत्पन्न करते हैं। लाख का प्रयोग चूड़ी आदि बनाने में होता है। १९५०-५१ में भारत से सभी प्रकार का लाख ११·८७ करोड़ रुपयों का निर्यात किया गया।

(२) कत्था और कच (Catechu)—भारत में खैर का वृक्ष शुष्क पहाड़ी चट्टानों, नवीन नदियों के कंकड़ों और तराई के जंगलों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी से कत्था और कच (रंग) तैयार किया जाता है। कत्था का प्रयोग पान के साथ किया जाता है तथा कच अधिकतर खाकी या बादामी रंग बनाने के उपयोग में लिया जाता है। अधिकांश कच विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है।

(३) चमड़ा कमाने के पदार्थ (Tanning Material)—भारतीय वनों में ऐसे बहुत से वृक्ष हैं जिनकी छाल या फल चमड़ा कमाने के काम आते हैं। हर्ड़ बहेड़ा और आँवला इनमें मुख्य हैं—१९५०-५१ में भारतीय वनों से १·३२ करोड़ रुपयों का हर्ड़ बहेड़ा विदेशों को निर्यात किया गया। इनके अतिरिक्त आँवला, टीमरू, बबूल और तुखद वृक्षों की छाल चमड़ा कमाने के लिए विशेष उपयोगी हैं। बबूल भारत के सूखे प्रदेशों और तुखद दक्षिण और पश्चिमी भारत में पाया जाता है।

(४) कागज की लुब्दी (Wood-pulp)—कागज बनाने के लिए प्रयोग की जाने वाली लुब्दी भिन्न-भिन्न प्रकार की नरम लकड़ियों (स्प्रूस, चीड़ आदि), घासों (सवाई भावर, बँब और हाथी घास) तथा अन्य वन पदार्थों से तैयार की जाती है। हाथी घास विशेषकर बंगाल, आसाम और उत्तर प्रदेश में और अन्य उपरोक्त घास छोटा नागपुर, उड़ीसा, नैपाल, उत्तर प्रदेश और तराई, पूर्वी पंजाब व बाँस भारत में बिहार, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में मिलता है।

(५) दियासलाई की लकड़ी—दियासलाई बनाने के लिये सेमल की लकड़ी काम में लाई जाती है। यह वृक्ष उत्तर भारत के वनों में बहुत पाया जाता है।

(६) गोंद की राल—यह उन वृक्षों से प्राप्त होती है जो सभी शुष्क उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसका वृक्ष बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, आसाम आदि में खूब होता है।

भारत के कई भागों में कुछ सुगन्धित घासें पाई जाती हैं। इनसे दवाइयों के काम का तेल प्राप्त किया जाता है। रोशा तेल की घास (Rosha grass) बम्बई, दक्षिणी भारत और मध्य प्रदेश में बड़े महत्व की होती है। संतरे के तेल की घास

भागों में रोपवे (Rope-way) जो मुख्यतः आकर्षण शक्ति द्वारा कार्यान्वित होते हैं आदि भी व्यवहृत किये जाते हैं।

(४) देश में लोगों के रहन-सहन का दर्जा बहुत ही नीचा है, अतः हमारे यहाँ उत्तम लकड़ी की आवश्यकता भी अभी तक नहीं हुई है। यहाँ के निवासी बहुत ही कम फर्नीचर काम में लाते हैं। अशिक्षा के कारण लकड़ी का प्रयोग कागज बनाने में भी कम होता है। जहाँ कनाडा में २५० घन फुट लकड़ी का उपयोग प्रति व्यक्ति पीछे होता है वहाँ फिनलैंड में २९९ घन फुट, स० रा० अमेरिका में २०० घन फुट, स्वीडन में, १२९ घन फुट, नार्वे में ११८ घन फुट, रूस में ६६ घन फुट, जर्मनी में २७ घन फुट, फ्रांस में २६ घन फुट, और इंगलेंड में १५ घन फुट लकड़ी प्रति व्यक्ति के काम में आती है,[१] किन्तु भारत में केवल १·५ घन फुट लकड़ी ही। डा० ग्लेजिंगर के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष २५ पौंड औद्योगिक लकड़ी का उपयोग होता है जबकि यूरोप में यह १,००० पौंड और संयुक्त राज्य में २,५०० है। लुग्दी का उपभोग भारत में प्रति व्यक्ति पीछे प्रति वर्ष लगभग २ पौंड, इंगलेंड में ६० पौंड और उत्तरी अमेरिका में २२५ पौंड है।

(५) भारत में एक ही प्रकार के वृक्ष विशाल क्षेत्र में इकट्ठे नहीं मिलते, बल्कि एक ही प्रकार के वृक्ष काफी छितराये हुए मिलते हैं। अतः अमुक प्रकार के वृक्ष की लकड़ी को एकत्रित करने में समय भी अधिक लगता है और खर्चा भी खूब पड़ता है।

(६) हमारे यहाँ लकड़ी काटने के तरीके भी पुराने ही हैं, इससे बहुत सी लकड़ी तो व्यर्थ में ही नष्ट हो जाती है।

वनों से अप्रत्यक्ष लाभ

जंगलों द्वारा नमी की रक्षा—(१) वन वायु में ठंडक पैदा करते हैं। इससे वाष्प घनीभूत (Condense) होकर वर्षा हो जाती है। प्रायः देखने में आता है कि वनों वाले भागों में बिना वनों वाले भागों की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है क्योंकि वहाँ भाप को घनीभूत करने के लिए कुछ नहीं रहता। जहाँ जंगल होता है वर्षा मात्रा में अधिक होती है और समय में भी निश्चित रूप से होती है। उदाहरण के लिए नील के डेल्टा में वनों के न होने के कारण वर्षा के दिनों का औसत ६ दिन था, किन्तु अब वहाँ बड़े परिमाण में वृक्ष लग जाने से वर्ष भर में वर्षा का औसत बढ़ कर ४० दिन हो गया है। कांगो और अमेजन नदियों की घाटियों में घने वनों के कारण ही वर्षा अधिक होती है। वृक्षों की छाया भूमि को सूर्य की किरणों के सुखा देने वाले प्रभाव से बहुत कुछ बचाये रखती है। **डाक्टर पार्क्स** कहते हैं कि, "वृक्षों द्वारा जमीन पर सूर्य की तेज किरणें नहीं पड़ने पातीं। साथ ही वे वाष्पीकरण क्रिया से जमीन में आर्द्रता को कायम रखने

१. Hailey : Economics of Forestry, p. 18–31.

में भी सहायता देते हैं।" पंजाब तथा मध्य-प्रदेश में जिन-जिन भागों में जंगल लगाए गए हैं वहाँ पहले की अपेक्षा अधिक वर्षा होने लगी है। उत्तर-प्रदेश के इटावा जिले में जंगल लगाये जाने ही के कारण वर्षा की मात्रा बढ़ गई है। वृक्षों के कट जाने से अनेकों स्थानों में वर्षा का कम होना देखा गया है। राबटसन महाशय के मतानुसार मद्रास में खेती बढ़ाने अथवा जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता के कारण जब बहुत सा जंगल काट डाला गया तो वहाँ वर्षा भी कम हो गई। जंगलों के कम हो जाने से जलवायु में अन्तर पड़ जाता है। सर रिचार्ड टेम्पवैल का कहना है, "दक्षिण भारत में जंगलों का काटना बढ़ता ही जाता है। वहाँ तो जंगल के वृक्ष काटने के साथ ही साथ लताएँ, झाड़ियाँ आदि भी साफ की जा रही हैं। कहीं-कहीं नदियों के किनारे बहुत दूर तक वृक्ष भी काट डाले गये हैं। यदि यही बात जारी रही तो कुछ दिनों बाद नदियों के उद्गम स्थानों तक सब वृक्ष काट डाले जायँगे और उसका परिणाम यह होगा कि वर्षा की कमी के कारण नदियों में पानी भी नहीं रहेगा।" दक्षिण और मध्य-भारत में वनों के नष्ट होने से जो हानि हो रही है वे अब लोगों को भली-भाँति विदित हो रही हैं। उत्तर-प्रदेश के आगरा, इलाहाबाद तथा अवध के जिलों में जो नुकसान हुआ है वह भी किसी से छिपा नहीं है। इलाहाबाद में तो लगभग २०% भूमि कृषि के अयोग्य हो गई है।

(२) पहाड़ों की ढाल पर जंगलों की रक्षा करना बड़ा आवश्यक है। नदी, झरने आदि जो पानी बहाकर लाते हैं वह कुछ तो झाड़ों में आकर अटक जाता है और कुछ मैदान में जमा हो जाता है। पहाड़ों के ढालों से जो पानी आता है उसे ढाल पर के जंगलों के कारण पास की नदियों अथवा झरनों की ओर ही वह आना पड़ता है। पानी जब बरसता है तो वह झाड़ों पर ही सबसे पहले गिरता है और बाद में धीरे-धीरे टपक-टपक कर बह जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पृथ्वी पानी को अधिक जमा कर रख सकती है। चीन के शांगटुङ्ग (Shantung) प्रान्त में जो पहाड़ियाँ हैं वहाँ की झाड़ी करीब-करीब समाप्त हो गई हैं। मनुष्यों को लकड़ी जलाने की इतनी अधिक आवश्यकता पड़ी कि उन्होंने वृक्षों की जड़ों को भी खोद डाला और वहाँ के वृक्षों का नाश कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उस जमीन में जो पानी रोक सकने की शक्ति थी वह जाती रही और साथ ही उत्पादन शक्ति भी कम हो गई। किनारों पर के झाड़ियों अथवा वृक्षों के कट जाने से झरनों, नालों अथवा नदियों का पानी शीघ्रता से बह जाता है। जिन प्रदेशों में वन-प्रदेश अन्धा-धुन्ध काट डाले गये हैं वहाँ पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है और जब नदी के उद्गम स्थानों के पास के जंगल नष्ट कर दिये जाते हैं तो नदी के ऊपरी भाग में नावें नहीं चलाई जा सकतीं और उसमें पूर (Floods) भी अधिक आने लगते हैं। यह बाढ़ इतने जोरों से आती हैं कि यह अपने किनारे के गाँवों, सड़कों, पुलों, रेलों आदि को बहा-कर ले जाती हैं। भारत में प्रतिवर्ष ही नदियों में पूर आ जाने से बहुत नुकसान होता है। पहाड़ों पर ढोरों को लगातार चराने से वहाँ पर वृक्षों का उगना कम हो जाता है जिससे कि वहाँ पर बरसने वाला पानी बड़े वेग के साथ नीचे

के कारण न तो बहुत अधिक वर्षा हो पाती है और न वर्षा की कमी ही रह पाती है। पानी काफी बरसने वाले जंगल वाले इलाकों को न तो अधिक वर्षा से हानि उठानी पड़ती है और न कम वर्षा होने से भूखों मरना पड़ता है।

(१२) वन प्रतिदिन हवा में जल देते रहते हैं जिससे गर्मियों में आस-पास का प्रदेश ठंडा रहता है। जंगली इलाकों की आबहवा न तो अधिक गर्म होती है और न बहुत ठंडी ही रहती है। वृक्षों से गर्म लू तथा ठंडी हवा के झोंके कम पड़ जाते हैं। हर समय तरावट बनी रहती है और हवा सूखने नहीं पाती जिसके फलस्वरूप जलवायु हमेशा समशीतोष्ण रहती है। हवा को शुद्ध करने में भी वृक्ष बहुत उपयोगी होते हैं। जितनी गंदी वायु होती है उसको वृक्ष शुद्ध कर देते हैं और इस प्रकार वन हमें रोगों से बचाते हैं क्योंकि वृक्ष शुद्ध वायु छोड़ते हैं जिस पर हमारा जीवन निर्भर है और हमारी छोड़ी हुई विषैली गैस को स्वयं ग्रहण करते हैं और उसे शुद्ध कर फिर से हमें देते हैं। इस प्रकार वन हमें प्राण-दान भी देते हैं।

(१३) प्राचीन काल के कारबनयुग के जंगलों द्वारा ही आज हमें शक्ति का मुख्य साधन कोयला प्राप्त होता है। फ्रांस, इटली, जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में जो नये आविष्कार किए गए हैं उनसे ज्ञात हुआ है कि जंगलों से प्राप्त होने वाली सख्त लकड़ियों से बहुत अधिक शक्ति और गर्मी प्राप्त होती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि लगभग १० पौंड लकड़ी के कोयले (Charcoal) अथवा २० पौंड सख्त लकड़ी अथवा लगभग ३–४ गैलन मिट्टी के तेल से उतनी ही गर्मी प्राप्त होती है जितनी कि १ गैलन शुद्ध पेट्रोल से।

(१४) कई देशों में मनुष्य अपने भरण-पोषण के निमित्त वनों पर ही निर्भर रहते हैं। अब भी अर्द्ध सभ्य और असभ्य मानव प्रकृति-दत्त वनों में जंगली पशुओं का शिकार कर कंद-मूल-फल एकत्रित करके अपना पेट भरता है। बेल्जियन कांगो के इतूरी वनों के बौने, लूजन के पर्वतीय भागों के नीग्रो, न्यूगिनी के पैपुआँ, लंका के वेद्दा, राजस्थान के भील, मध्य भारत के गोंड आज भी वनों में रह कर ही अपनी जीविका चलाते हैं। वनों के किनारों पर अधिक सभ्य मानव भूमि साफ कर अपने लिए अनाज पैदा करते हैं।

इस प्रकार वन-सम्पदा किसी देश की आर्थिक उन्नति के लिए सभी प्रकार से लाभदायक होती है। श्री चटबरक के शब्दों में "वन राष्ट्रीय-संपत्ति है। आधुनिक सभ्यता को इनकी बड़ी आवश्यकता है। ये केवल जलाने की लकड़ी ही नहीं देते प्रत्युत हमारे उद्योग-धन्धों के लिए कच्चा माल और पशुओं के लिए चारा भी प्रदान करते हैं। किन्तु इनका अप्रत्यक्ष महत्व सबसे अधिक है।"[1]

१—वनों का महत्व मत्स्यपुराण में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—
"Digging of 10 wells is equal to digging of one pond, digging of 10 ponds is equal to digging a lake. Digging of 10 lakes is as meritorious as begetting a virtuous son, but begetting of 10 virtuous sons has the same effect as that of planting a tree."

F. A. O. की पुस्तक "वृक्षों का त्यौहार" में वनों की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा गया है, "सभ्यता का ह्रास वनों के अविवेक पूर्ण विदोहन से हुआ है। महत्वाकांक्षी और सबल साम्राज्यों का पतन किसी बढ़ती हुई आक्रमणकारियों की सेनाओं द्वारा नहीं किन्तु जंगलों के अविवेकपूर्ण काटे जाने से हुआ जिसके फलस्वरूप मिट्टी और जल का विनाश हो गया जो मानव को जीवनदान देती थीं।"

वनों का संरक्षण (Conservation of Forests)

आजकल प्रत्येक देश में लकड़ी का उपभोग वहाँ के उत्पादन से अधिक ही होता है। अनुमान लगाया गया है कि विश्व के ४०,००० लाख हैक्टेअर भूमि पर वन-भूमि पाई जाती है जिनमें से केवल ३,००० लाख की ही उत्तम प्रकार देख-भाल की जाती है, १०,००० लाख हैक्टेअर जङ्गलों का विदोहन किया जा रहा है और शेष ५,००० लाख हैक्टेअर जङ्गल इस प्रकार नष्ट हो गए हैं कि उनका कोई महत्व नहीं रह गया है और वास्तव में कृषि के लिए वे बड़े खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। २०,००० लाख हैक्टेअर जङ्गल अब भी अछूते पड़े हैं और उनकी हिफाजत करना आवश्यक है।[1] संसार में वनों की कटाई का वार्षिक औसत नए लगाये गये वृक्षों से ३०% अधिक है। इसीलिए आधुनिक काल में यूरोप और अमरीका तथा रूस की राष्ट्रीय सरकारें वनों के संरक्षण के प्रश्न को इतना महत्व दे रही हैं। इन देशों में केवल तैयार वृक्षों को ही काटा जाता है। छोटे और बीज वाले वृक्षों को यथाशक्ति बढ़ने दिया जाता है। कनाडा की सरकार वृक्षों के बगीचों को प्रोत्साहन देती है क्योंकि वहाँ के लकड़ी चीरने के कारखाने तथा कागज बनाने वाली मिलों का काम केवल वनों के वृक्षों से ही नहीं चल सकता। भारत में भी १९५० से राष्ट्रीय सरकार के आदेशानुसार देश के सभी भागों में जुलाई-अगस्त मास में वनमहोत्सव मनाया जाने लगा है। इसके फलस्वरूप अब देश में कई करोड़ वृक्ष बोये जा चुके हैं। अनुमान लगाया गया है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति वर्ष भर में दो वृक्ष बोये तो सारे भारत में ५ वर्ष की अवधि में २९,७०० लाख नए वृक्ष पैदा हो सकते हैं।[2] विश्व के लगभग ५० से ऊपर देशों में वर्ष के किसी न किसी दिन अथवा सप्ताह में वृक्षारोपण उत्सव मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र, फिलीपाइन्स और कम्बोडिया में इस दिन को 'Arber Day'; जापान में 'Green-Week'; इसराईल में 'New Year's Day of Trees'; आइसलैंड में 'The Students' Afforestation Day' तथा भारत में 'Vanmahotsava' कहते हैं।

यद्यपि लकड़ी का उपभोग वृक्षों के उत्पादन से अधिक है किन्तु अभी भी विश्व के कई देशों में विशेषतः दक्षिणी अमरीका, मध्य अफ्रीका, द० पू० एशिया और इण्डोनेशिया में विशाल वन सम्पति वर्तमान है जिसे छुआ भी नहीं गया है। इन क्षेत्रों में जलवायु की अनुकूलता से वृक्ष बहुत जल्दी उग आते हैं, किन्तु यातायात के साधनों की असुविधाओं के कारण इन वनों का पूर्णतः लाभ

१—देखिए भारत सरकार द्वारा प्रकाशित : Our Forests; Chapter VII.
२—Ibid.

नहीं उठाया जा सका है। यद्यपि विश्वस्त आंकड़ों के अभाव में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पृथ्वी के कितने भाग में वन वर्तमान हैं फिर भी जो कुछ सूचनाएँ उपलब्ध हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि लकड़ियों के वनों का क्षेत्रफल उत्तरी अमेरिका के आकार से तीन गुना है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् से संसार के वनों से प्राप्त लकड़ियों की मात्रा में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है। १९४६ में वनों की गोल लकड़ी की उपज का अनुमान १४१,००० घन मीट्रिक था और उनका वजन १०,००० लाख मैट्रिक टन था। इस समस्त उपज का मूल्य ७१,००० लाख डालर था। इसके महत्व का अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि लकड़ी का यह मूल्य कोयले के वार्षिक उत्पादन के मूल्य से तिगुना है।[1]

प्रश्न

१. उष्ण कटिबन्धीय और शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों के वनों का वर्णन करिये और यह बताइये कि इन प्रदेशों से वाणिज्य की क्या वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।
(यू० पी०, आई० कॉम० १९३४)

२. "वन किसी देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं और सभ्यता को उनकी बहुत आवश्यकता है।" इस कथन की पुष्टि करिए और जलवायु, वर्षा तथा उद्योग-धन्धों पर पड़ने वाले इनके प्रभाव को बताइए। (यू० पी०, आई० कॉम० १९३७)

३. विश्व में शीतोष्ण कटिबन्ध के प्रमुख वन कहाँ स्थित हैं? इनसे वाणिज्य की क्या वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और कौन से उद्योग-धन्धे इन पर आधारित रहते हैं?
(यू० पी०, आई० कॉम० १९४०, १९५१)

४. विभिन्न प्रकार के वन प्रदेशों का वर्णन करते हुए उनके बीच के अन्तर को बताइये और प्रत्येक की उपज भी बताइये। (अ० बो०, आई० कॉम० १९४३)

५. "यदि कृषि के हेतु समस्त जङ्गलों को काट डाला जाय तो एक दिन भारत की नदियाँ सूख जायँगी।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (म० बोर्ड, आई० कॉम० १९५३)

६. "शीतोष्ण वनों की अपेक्षा उष्ण कटिबन्ध के वनों में अधिक लकड़ियाँ पाई जाती हैं, किंतु विश्व के वाणिज्य में इनका महत्व अधिक नहीं है।" इस कथन की पुष्टि करते हुए बताइये कि इन वनों के विदोहन न होने के क्या कारण हैं? (आगरा, एम० ए० १९५०)

७. उष्ण कटिबन्धीय और शीतोष्ण कटिबन्धीय वनों की तुलनात्मक व्याख्या करते हुए बताइये कि इनसे क्या-क्या वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और उनका व्यापार में क्या महत्व है।
(आगरा, एम० ए० १९५३)

---

१. देखिए; F. A. O: Yearbook of Forest Products Statistics.

अध्याय ६

प्राकृतिक प्रदेश

(Major Natural Regions)

पृथ्वी के विभिन्न भाग कभी एक समान नहीं होते। यद्यपि कई भाग एक दूसरे से सटे हुए इस प्रकार आपस में आबद्ध हैं कि उनमें भेद करना ठीक नहीं मालूम देता किन्तु वे जलवायु, वनस्पति और अन्य प्राकृतिक साधनों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। पृथ्वी पर जलवायु (जैसा कि हम अपने अनुभव से जानते हैं) सब जगह एक ही समान नहीं है। विषुवत् रेखा के समीपीय देशों में जलवायु गर्म और तर रहता है, किन्तु मध्य देशान्तर रेखाओं वाले देश शुष्क और ध्रुव प्रदेश नितान्त ही ठंडे और शुष्क रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। उदाहरणतः ग्रेट ब्रिटेन की जलवायु भारतीय जलवायु से एक दम भिन्न है। वहाँ की वनस्पति व अन्य प्राकृतिक साधन हमारे देश से कभी मेल नहीं खाते। इतना ही नहीं, हम यह भिन्नता एक ही देश के विभिन्न प्रदेशों में भी पाते हैं जैसे सिन्ध या राजस्थान इस माने में बंगाल व आसाम से बिलकुल भिन्न हैं। हम यह अच्छी प्रकार जानते हैं कि पृथ्वी के बहुत से भाग एक दूसरे से दूर स्थित होते हुए भी कई बातों में इतने समान होते हैं कि वे एक-से लगते हैं। भूमध्यसागरीय देशों की जलवायु उत्तरी अमरीका स्थित केलिफोर्नियाँ और आस्ट्रेलिया के कुछ पच्छिमी तथा दक्षिणी भागों के बहुत ही समान है और इस प्रकार जलवायु की दृष्टि से हम इन दूर-दूर स्थित प्रदेशों में किसी प्रकार का भेद नहीं कर सकते और चूंकि जलवायु का मिट्टी और वनस्पति पर अद्भुत प्रभाव होता है इसलिए वे भाग जिनमें जलवायु की समान दशायें मौजूद हैं वनस्पति तथा मिट्टी की दृष्टि से भी एक दूसरे के समान ही होते हैं। अगर हम मानवीय दृष्टिकोण से विचारें तो यह बिलकुल स्पष्ट है कि खेतिहर तरीके जो इनमें से एक भाग के लिए उपयुक्त और सही हैं वह निश्चय ही दूसरे प्रदेशों के लिए भी सही होते हैं। किन्तु यहाँ पर यह समझ लेना आवश्यक है कि यह बात केवल तब सत्य होती है जबकि इन सब भागों की आर्थिक तथा अन्य दशायें भी समान हों। अगर एक भाग दूसरे भाग से आर्थिक दशा में पिछड़ा है या उसकी विकास की गति में अन्तर है तो उनमें भिन्नता आना स्वाभाविक ही होगा। परन्तु उपरोक्त बातें अगर सही हैं तो फिर जो वस्तुएँ एक भाग में पैदा होती हैं वही दूसरे भाग में भी अच्छी प्रकार पैदा होंगी। उदाहरणतः नारंगियाँ स्पेन, केलिफोर्निया, दक्षिणी अफ्रीका के केप प्रान्त और आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों में भली प्रकार पैदा होती हैं। इन्हीं सब समानताओं के

कारण प्राकृतिक वातावरणों के मुख्य प्राकृतिक प्रदेशों का मन्तव्य स्थिर हुआ है।[1] अब हम इन्हीं मन्तव्यों को लेकर आगे बढ़ेंगे और यह समझने की कोशिश करेंगे कि प्राकृतिक प्रदेश क्या हैं। स्पष्ट परिभाषा के रूप में प्राकृतिक प्रदेश "पृथ्वी के वे प्रदेश जिनमें सम्पूर्ण प्राकृतिक दशाएँ—प्राकृतिक बनावट व रूपरेखा, जलवायु और वानस्पतिक तथा पशु-जीवन—साधारणतः समान हों प्राकृतिक प्रदेश कहलाते हैं।" भूगोल शास्त्र के क्षेत्र में प्राकृतिक प्रदेश का यह मन्तव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक भूगोल के कई मन्तव्यों से यह अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। इस मन्तव्य के प्रणेता प्रसिद्ध भूगोलशास्त्रज्ञ और विचारक प्रो० ए० जे० हर्बर्टसन हैं। उनके शब्दों में प्राकृतिक प्रदेश "पृथ्वी के धरातल का वह भाग है जो निश्चय ही उन तमाम दशाओं में समानता रखता है जिनका मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है।"[2]

सम्पूर्ण पृथ्वी के धरातल को कई प्राकृतिक विभागों में बाँटा जा सकता है। पृथ्वी का यह विभाजन जलवायु तथा वनस्पति किसी के भी आधार पर किया जा सकता है। लेकिन यहाँ हमारे लिये यह समझ लेना अति आवश्यक है कि ये भाग किसी भी तरह पृथ्वी के बारह अलग-अलग स्पष्ट खण्डों के रूप में नहीं हैं। किसी भी वस्तु के समान इनका ठीक बारह भागों में वर्गीकरण नहीं हो सकता। इन प्रदेशों की सीमायें बहुत ही अस्पष्ट हैं क्योंकि एक प्रदेश की प्राकृतिक दशायें जो कि उसमें पाई जाती हैं दूसरे प्रदेश की दशाओं से अपने आप को एक दम सीमित नहीं कर लेतीं। या यों कहिये कि जहाँ एक प्रदेश की सीमा समाप्त होती है वहीं पर उस प्रदेश की प्रचलित जलवायु दशाएँ समाप्त नहीं होतीं और जहाँ दूसरा प्रदेश आरम्भ होता है वहीं पर अचानक उस प्रदेश की जलवायु दशाएँ अपना प्रभाव नहीं दिखाने लगतीं। जलवायु की ये दशायें एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में धीमे-धीमे समाप्त होती हैं। अतः हम एक प्राकृतिक प्रदेश से दूसरे को निश्चित करने के लिए कोई ऐसी रेखा उनके बीच में नहीं बना सकते जो उनमें भेद कर सके। एक प्रदेश में जो दूसरे प्रदेश से अन्तर बढ़ता है वह अत्यन्त साधारण और क्रमशः होता है। इस कारण दो प्रदेशों के बीच का बहुत सारा भाग सही रूप में अन्तरिम क्षेत्र (Transition Belt) ही समझा जा सकता है और फिर चूँकि दो भिन्न प्रदेशों की प्राकृतिक परिस्थिति में कभी एकता नहीं होती और वहाँ की स्थिति तथा प्राकृतिक बनावट स्थानीय जलवायु पर पूर्ण प्रभाव डालती है इसलिए एक ही प्राकृतिक प्रदेश के भागों में भी कई स्थानीय भेद होते हैं। अतः प्राकृतिक प्रदेशों का जलवायु के आधार पर यह वर्गीकरण अंशतः ही सत्य होता है। इस कारण भिन्न-भिन्न प्रदेशों को एक निश्चित किस्म में बताने का मतलब केवलमात्र यही है कि उनमें भिन्नता होने के बदले समानताएँ अधिक हैं। भूगोलवेत्ता इन प्रदेशों का नामकरण करने में मुख्यतः वहाँ के जलवायु के लक्षणों का अधिक ध्यान रखते हैं। किन्तु चूँकि

---

१. L. D. Stamp : A Commercial Geography, p. 11.
२. A. J. Herbertson : "Major Natural Regions : An Essay in Systematic Geography," Geographical Journal, Vol. XXV, p. 300.

जलवायु का वनस्पति पर बहुत ही गहरा प्रभाव होता है इस कारण कभी-कभी कोई विशेप प्रदेश वहाँ की वनस्पति के आधार पर भी पुकारा जाता है। इस प्रकार हम उन प्रदेशों को जहाँ पर कि शीतोष्ण महाद्वीपीय जलवायु पाई जाती है शीतोष्ण घास के मैदान या प्रेरीज के नाम से भी वर्गीकरण करते हैं। कभी-कभी प्राकृतिक प्रदेश का नामकरण उस स्थान के नाम के आधार पर भी होता है जैसे कुछ प्रदेश चीनी जलवायु तथा सूडान की तरह की जलवायु से भी समझे जाते हैं। लेकिन हमें यह न भूलना चाहिए कि हमेशा जलवायु ही प्रधान वस्तु होती है जगह गौण। और वनस्पति यद्यपि महत्त्वपूर्ण है पर वह भी जलवायु पर ही आधारित होती है। इसलिए हमेशा जलवायु के अनुरूप नामकरण करना ही अधिक उपयुक्त होता है।

प्रमुख प्राकृतिक खण्ड

जलवायु के आधार पर संसार को निम्न प्रमुख प्राकृतिक प्रदेशों में विभाजित किया गया है। इन प्रदेशों की जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, खेती तथा मनुष्य के काम-काजों में विभिन्नता की अपेक्षा समता अधिक रहती है। संसार के प्रमुख प्राकृतिक प्रदेश ये हैं:—

(क) उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (Tropical or Hot Regions)—

(१) भूमध्य रेखीय निम्न भूमि के प्रदेश या अमेजन किस्म के क्षेत्र (Equatorial Low Lands or Amazon Type)

(२) सवन्ना या सूडान प्रदेश (Savanna, Sudan or Tropical Grass-lands)

(३) मानसूनी प्रदेश (Monsoon Lands)

(४) उष्ण मरुस्थल या सहारा किस्म के प्रदेश (Hot Desert or Sahara Type Regions)

(ख) उष्ण-शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (Warm Temperate Regions)—

(५) शीतोष्ण मरुभूमि या गोवी या इरान जलवायु प्रदेश (Temperate Deserts or Gobi and Iran Type)

(६) भूमध्य सागरीय प्रदेश (Mediterranean or Western Margin Type)

(७) सम शीतोष्ण वन प्रदेश या चीनी जलवायु प्रदेश (Warm Temperate Lands or China Type or Eastern Margin Type)

(ग) शीत-शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (Cool Temperate Regions)—

(८) शीतल-शीतोष्ण पूर्वी प्रदेश या सेंटलोरेंस प्रदेश (St. Lawrence or Eastern Margin Type)

(९) शीतोष्ण वन प्रदेश या पश्चिमी यूरोपीय जलवायु प्रदेश (Cool Temperate West Margin or West European Type)

(१०) मध्य यूरोपीय प्रदेश (Central European Type)

(११) प्रेरी जलवायु प्रदेश या शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान (Prairie or Temperate Grassland Type)

(१२) साइबेरिया या वन प्रदेश (Siberian or Interior Lowland Type)

(घ) ध्रुवीय प्रदेश (Polar Regions)—

(१३) टंड्रा जलवायु प्रदेश (Tundra Type)

(१४) पहाड़ी या ध्रुव प्रदेश (High land or Ice-Cap Type)

कुछ प्रदेश प्राकृतिक साधनों में दरिद्र होते है और कुछ बहुत ही सम्पन्न, और इस दृष्टि से प्रादेशिक भिन्नता सत्य है। किन्तु इस भिन्नता का दूसरा पहलू भी है। कभी-कभी अच्छे सम्पन्न प्रदेश भी शक्ति तथा आर्थिक विकास में समान नहीं होते। कुछ प्रदेश प्राकृतिक साधनों में दरिद्र हुए होते हुए भी घने आबाद और उन्नत देखे जाते हैं लेकिन कुछ प्रदेशों का हाल विल्कुल ही उल्टा है। प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता होते हुए भी वे पिछड़े रहते हैं। इसका एक मात्र कारण यही है कि साधन-सम्पन्नता होते हुए भी उन्नति करने के सब जगह समान अवसर नहीं होते। इसलिए लोग कुछ ऐसे प्रदेशों से तो दौड़ में आगे वढ़ जाते हैं और कुछ से पीछे रह जाते हैं। इसी प्रकार लोगों में सांस्कृतिक भेद भी प्रदेश के अवसर लाभ और उनकी सीमितता पर निर्भर करते हैं। हम संसार के मुख्य-मुख्य प्रदेशों का यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे।

(अ) बाहुल्यता वाले प्रदेश (Regions of Bounty)—इन प्रदेशों में विषुवत् रेखीय निम्न प्रदेश और पठार अर्थात् मलाया, पूर्वीद्वीप समूह, सिंहलद्वीप, भारत के दक्षिणी-पश्चिमी समुद्री किनारे, पश्चिमी अफ्रीका, अमेजन तथा कांगो वेसिन के कुछ भाग और उत्तरी-पूर्वी दक्षिणी अमेरिका सम्मिलित हैं। इन प्रदेशों में प्रकृति दयावान और दानशील होती है। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रचुर साधन उपहारस्वरूप देती है। यहाँ पर लोग अपनी आवश्यकताओं की चीजें स्वयं पैदा करने का कष्ट नहीं करते। प्रकृति उनके लिए सब कुछ कर देती है। वे केवलमात्र उनको इकट्ठा कर उपयोग में लाते हैं। अतिवृष्टि और ऊँचा तापक्रम यहाँ के मुख्य लक्षण हैं जो वनस्पति और पशु जीवन के पूर्ण विकास के लिए वरदानस्वरूप सिद्ध हुए हैं। किन्तु प्रकृति का यह वरदान यहाँ के मानव जीवन के लिए किसी ऋषि द्वारा दिये गये शाप से कम नहीं है। पग-पग पर उन्हें अड़चनों का सामना कर आगे वढ़ना पड़ता है। यद्यपि प्रकृति लोगों के लिए जीवन-मान के साधन जुटाती है किन्तु उन्हें विकास नहीं करने देती। वह लोगों से आज्ञा पालन चाहती है, स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र कार्य

से उसे चिढ़ है; इसलिए वह लोगों पर एक तानाशाह के रूप में राज्य करती है। निम्न प्रदेश या उच्च प्रदेश सब जगह लोगों को जीवन युद्ध की प्रचंड ज्वाला में परीक्षा देनी पड़ती है। प्रकृति के पट्ट वनस्पति और पशु जीवन के बढ़ते हुए प्रभाव के सन्मुख मानव को हताश होकर हार स्वीकार करनी पड़ती है क्योंकि प्रकृति जो उनके पीछे है। यहाँ की जलवायु मानव जीवन के विकास में सहायक न होकर रास्ते में रोड़े अटकाती है। अस्वास्थ्यकर जलवायु मनुष्यों की शक्ति को क्षीण कर उनके सामाजिक और आर्थिक विकास के रास्तों को वन्द कर देती है। किन्तु जहाँ तक वहुमूल्य साधनों का प्रश्न है ये प्रदेश सवसे अधिक धनी माने गये हैं और आज संसार के व्यापार में एक मुख्य स्थान रखते हैं। इन प्रदेशों के मुख्य लक्षण ये हैं:—

(१) यहाँ अगणित प्रकार के वानस्पतिक पदार्थ मिलते हैं क्योंकि वर्षा अधिक होने से उसकी वढ़वार भी द्रुतगति से होती है।

(२) मुख्य-मुख्य वस्तुएँ जंगलों तथा पौधों से प्राप्त होती हैं। खेती व पशु साधन व्यापारिक दृष्टि से वहुत कम महत्व के हैं।

(३) यद्यपि यहाँ पर अच्छी संख्या में अनेक प्रकार के पशु पाये जाते हैं किन्तु पालतू पशु वहुत ही कम और कमजोर होते हैं।

(४) चूँकि यहाँ अति वृष्टि और तापक्रम ऊँचा रहता है इस कारण भूमि जल्द ही नष्ट हो जाती है। अतः खेती की फसलें पैदावार और भोजन तत्त्व की दृष्टि से वहुत निम्न रहती हैं।

(५) सामान्यतः यहाँ खनिज पदार्थ वहुत कम पाये जाते हैं और जो कुछ भी पाये जाते हैं तापक्रम और नमी की अधिकता के कारण उनका उपभोग केवल नहीं के वरावर होता है।

(६) इनके विपरीत वृत्तीय वीमारियाँ, आवागमन के साधनों और मजदूरों की कमी आदि कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिससे यहाँ के प्राकृतिक साधनों का उचित रूप से उपयोग कठिन ही नहीं असंभव भी होता है।

(व) उन्नत प्रदेश (Regions of Increment)—साधारणतौर पर देखने से तो यह मालूम होता है कि ये प्रदेश भी उपरोक्त प्रदेशों से वहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। परन्तु वात ऐसी नहीं है। दोनों जगह यद्यपि अति वृष्टि और ऊँचा तापक्रम रहता है, किन्तु भेद इतना सा है कि इन प्रदेशों में वर्षा सामयिक होती है। इसलिए यहाँ की जलवायु ग्रीष्म में गर्म और तर व सर्दी में शीतल और शुष्क रहती है। ऐसे प्रदेशों में मुख्यतः मानसूनी देश आते हैं। इन देशों में तापक्रम तथा वर्षा की भिन्नता और साथ ही सामयिक मौसम परिवर्तन आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं जो वनस्पति तथा पशु जीवन के सफल विकास के लिए वहुत ही अनुकूल होती हैं। इसी कारण मानसून प्रदेश जंगल, पौधे, पशु तथा अन्य साधनों में वहुत सम्पन्न होते हैं। खेती यहाँ का सफल और उत्पादक उद्योग है। इन प्रदेशों में लोगों को अपने श्रम के अनुपात

(४) चूँकि खनिज उद्योग के लिए जलवायु अनुकूल है इस कारण जहाँ कहीं यह उद्योग सम्भव है बहुत ही बढ़ा-चढ़ा और अच्छी अवस्था में है।

(५) शक्ति के सम्पूर्ण साधन कोयला, तेल व जल-शक्ति सर्वत्र सन्तोषजनक स्थिति में पाये जाते हैं और उनका उचित उपयोग भी किया जाता है।

(६) प्राकृतिक साधनों की शीघ्र और लाभ पूर्ण उन्नति होने से अच्छे मजदूरों की कमी नहीं है।

(७) वानस्पतिक भोज्य पदार्थों तथा कच्चे माल की कमी होने से यहाँ के निवासी परम्परा से अच्छे व्यापारी हुए हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वानस्पतिक सभ्यता के शान्ति प्रिय लोगों के प्रति हमेशा इनका आक्रमणकारी रुख रहा है।

(द) पिछड़े हुए प्रदेश (Regions of Arrested Development)—ये प्रदेश पृथ्वी के वे भाग हैं जिन पर प्रकृति कम दयावान है। सर्वत्र प्रतिकूल भौगोलिक अवस्थाएँ पाई जाती हैं, इस कारण मनुष्य अपनी शक्ति भर प्रयत्न करने पर भी बड़ी कठिनाई से पेट भर पाता है। उसे अपनी मेहनत का उचित पुरस्कार नहीं मिलता। इसलिए यहाँ की आर्थिक प्रगति धीमी और प्रायः रुकी हुई है। लेकिन इन प्रदेशों को उन्नत करने की बड़ी आवश्यकता है। आज प्रत्येक देश की जनसंख्या बढ़ रही है इसलिए उसके सामने बढ़ती हुई जन-संख्या के पेट भरने का प्रश्न है। यह तब हल हो सकती है जब इन प्रदेशों की ओर उचित ध्यान देकर हर साधन का उचित उपयोग किया जाय और अन्य साधनों द्वारा इनको उन्नतिशील किया जाय। इन प्रदेशों को यह नाम इसलिए दिया जाता है कि यहाँ के साधनों के उपयोग की उच्चतम स्थिति बहुत शीघ्र पहुँच जाती है और अगर इसके अनन्तर भी प्रयत्न किये जाते हैं तो उनके अनुपात में फल नहीं मिलता। इसलिए इन प्रदेशों में लोगों का किसी धन्धे को शुरू करना तथा उसे छोड़ना जनसंख्या के घटने और बढ़ने पर निर्भर करता है। ये प्रदेश विषुवत रेखा के समीपीय भाग, मरुस्थलों के किनारों के भाग, शीत प्रधान शीतोष्ण जलवायु तथा महाद्वीपीय जलवायु के भाग, शुष्क पहाड़ तथा पठार और वृत्तीय डेल्टों के दलदल वाले भागों में फैले हुए हैं। यद्यपि आज मनुष्य विज्ञान के बल से सूखे प्रदेशों में खेती कर सकता है, वृतीय जंगलों व दलदलों को साफ कर सकता है और पहाड़ी ढालों को सीढ़ीदार खेतों में परिणत कर सकता है किन्तु इतना सब होते हुए भी वह शक्तिशाली भौगोलिक दशाओं को अपने वश में करने में असफल रहा है। यहाँ उसकी सम्पूर्ण बुद्धि और विचार शक्ति नत हो जाते हैं। इन प्रदेशों के मुख्य लक्षण ये हैं—

(१) यहाँ प्राकृतिक वनस्पति बहुत ही कम पाई जाती है इसलिए वानस्पतिक साधनों की यहाँ सामान्यतः कमी है।

(२) खेती यहाँ का असफल धन्धा है। मुख्य धन्धे ढोर पालना और घास

उगाना है और जहाँ कहीं सम्भव होता है लकड़ी चीरने तथा मछली मारने का काम किया जाता है।

(३) वानस्पतिक भोज्य पदार्थ मोटे और कम मात्रा में होते हैं जैसे जौ, राई, ज्वार, बाजरा और आलू। कच्चे माल में लकड़ी और रेशे वाले पदार्थ मुख्य हैं। पशु साधन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। लेकिन बहुत कम ऐसी चीजें बच रहती हैं जिनका दूसरी चीजों के बदले में उपयोग किया जा सके। मछली मारना और लकड़ी चीरना तुलनात्मक दृष्टि से अधिक लाभप्रद हैं और यही व्यापार में मुख्य स्थान रखते हैं।

(४) ये प्रदेश खनिज पदार्थों के भंडार हैं। यहाँ कई प्रकार के धातु सम्बन्धी और अधातु सम्बन्धी खनिज पाये जाते हैं जो केवल उन स्थानों पर खोदे जाते हैं जहाँ पर अच्छी सुविधा होती है। ये यहाँ के अमूल्य साधन हैं।

(५) इन प्रदेशों में कोयले तथा तेल की कमी जल शक्ति पूरा कर देती है। स्केन्डिनेविया और एल्पाईन देशों में इसका औद्योगिक कारखानों में उपयोग किया जाता है।

(६) यहाँ के निवासी शारीरिक दृष्टि से मजबूत होते हैं किन्तु सभ्यता की दृष्टि से पिछड़े हैं। खाद्य पदार्थों की कमी और कच्चे माल की कठिनाई इनके विकास में ऐसे रोड़े हैं जो इनको आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में सब तरफ आगे बढ़ने से रोकते हैं। ऐसी हालत में यहाँ के लोग निम्न भौतिक सुख और क्षीण सामाजिक व्यवस्था से ही प्रसन्न रहते हैं।

(य) सतत कठिनाइयों वाले प्रदेश (Regions of Lasting Difficulties)—इन प्रदेशों में ठंडे और गरम मरुस्थल, विषुवत रेखीय वन प्रदेश, अमेजन और काँगो के भीतरी भाग और पूर्वी द्वीप समूह तथा पश्चिमी अफ्रीका के गायना तट के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इन प्रदेशों में भौगोलिक शक्तियाँ निरन्तर लोगों की आशाओं और प्रयत्नों को विफल करती रहती हैं। ऐसी हालत में लोग बड़ी कठिनाई से अपना काम चला पाते हैं। उनका जीवन युद्धमय और बड़ा कठिन तथा भयंकर होता हैं। उनके आर्थिक जीवन की कहानी उनके त्याग, दुःख और उत्सर्गपूर्ण जीवन की कहानी है। अभी ये प्रदेश आर्थिक दृष्टि से बहुत ही गिरे हुए हैं। लेकिन जहाँ पर धातुएँ पाई जाती हैं—जैसे यूकान में सोना, स्पिटवर्जन द्वीप में कोयला, मेकेन्जी घाटी में तेल मिलता है—वहाँ हालत कुछ अच्छी है। कई प्रदेशों को आर्थिक दबाव के कारण हजारों कठिनाइयों का सामना कर साफ किया गया लेकिन जब कार्य शक्ति कम हो गई तो वे जल्दी ही आस-पास के प्रभाव के कारण दब गये। इस कारण इन प्रदेशों में स्थायी जनसंख्या और सुगठित आर्थिक दशा अब तक भी संभव नहीं हो पाई है। यहाँ के प्राकृतिक साधन बहुत ही निम्न कोटि के हैं और सामान्यतः एक ही प्रकार के पाये जाते हैं। साधारणतः यहाँ के साधन अभी तक उपयोग में नहीं लाये गये हैं क्योंकि यहाँ की विशेष जलवायु इसमें बाधक

होती है। ठंडे रेगिस्तानों में भूमि हमेशा बर्फ से पटी रहती है। अतः यहाँ की भूमि बिल्कुल बंजर है और जीवन निर्वाह के योग्य नहीं है। समुद्र अवश्य इस दृष्टि से धनी हैं और बहुत ही बड़ी मात्रा में मछलियाँ प्रदान करते हैं। इनके अलावा चिड़ियाँ, रीछ और लोमड़ियाँ बहुत होती हैं। किनारों पर ग्रीष्म ऋतु में बर्फ हट जाता है; इस कारण कुछ घास उग आती है और उस पर रेनडियर निर्वाह करते हैं। यहाँ के निवासी घुमक्कड़ और शिकारी होते हैं जो अधिकांश रूप में जानवरों, मछलियों और चिड़ियों पर निर्वाह करते हैं।

गर्म रेगिस्तानों में वर्षा का अभाव तथा रात-दिन और ग्रीष्म व सर्दी के तापक्रम में अन्तर एक विशेष प्रकार की वनस्पति तथा पशु जीवन को जन्म देता है। शुष्क घास के मैदानों पर भेड़-बकरियाँ निर्वाह करती हैं। ऊँट यहाँ के आवागमन का मुख्य साधन है। ठंडे रेगिस्तानों के विपरीत यहाँ पर मूल खाद्य पदार्थ व कच्चा माल वानस्पतिक साधनों से प्राप्त किया जाता है। वृत्तीय जंगलों तथा निम्न प्रदेशों में वर्षा और तापक्रम दोनों ऊँचे रहते हैं जो वातावरण को बहुत ही क्रूर बना देते हैं। क्रूर जलवायु के फलस्वरूप यहाँ के लोग कद में छोटे और मानसिक रूप से अविकसित रहते हैं। इन प्रदेशों के मुख्य लक्षण ये हैं :—

(१) प्राकृतिक साधनों की कमी और समानता लोगों के लिए सन्तोषप्रद नहीं होती।

(२) प्राकृतिक दशाएँ निरन्तर आर्थिक विकास में अड़चनें पैदा करती हैं।

(३) शक्ति के साधनों की कमी होने से औद्योगिक उन्नति सम्भव नहीं होती।

(४) यहाँ ऐसे कोई साधन बच नहीं रहते जिनका व्यापारिक दृष्टि से उपयोग किया जा सके। जहाँ कहीं बच रहते है वे इतने निम्न कोटि के होते हैं कि उनसे बहुत कम लाभ होता है।

(५) यहाँ की जीवन दशाएँ इतनी निकृष्ट और भयंकर हैं कि यहाँ किसी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं हो पाती। उपनिवेश बसाने वाले भी यहाँ से पीछे हटते हैं। इस कारण ये प्रदेश संसार के सब से पिछड़े हुए भाग हैं।

आगामी अध्यायों में हम इन प्राकृतिक खण्डों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

अध्याय ७

उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश

(Tropical Regions)

(१) भूमध्य रेखावर्ती प्रदेश (Equatorial Regions)

ऐसे प्रदेश पृथ्वी के अधिकांश उस भाग में पाये जाते हैं जो भूमध्य रेखा के ५° उत्तर और ५° दक्षिण के बीच में स्थित हैं। कहीं-कहीं यह प्रदेश १०° अक्षांश तक भी पाये जाते हैं। इस प्रदेश में अमेजन और कांगो नदी की घाटियाँ, गिनी तट, उत्तरी गायनालैंड, पूर्वी द्वीपसमूह, मलाया और उत्तरी आस्ट्रेलिया का कुछ भाग सम्मिलित हैं। इस प्रदेश को विषुवत् रेखीय निम्न प्रदेश (Regions of Equatorial Low Lands) भी कहते हैं।

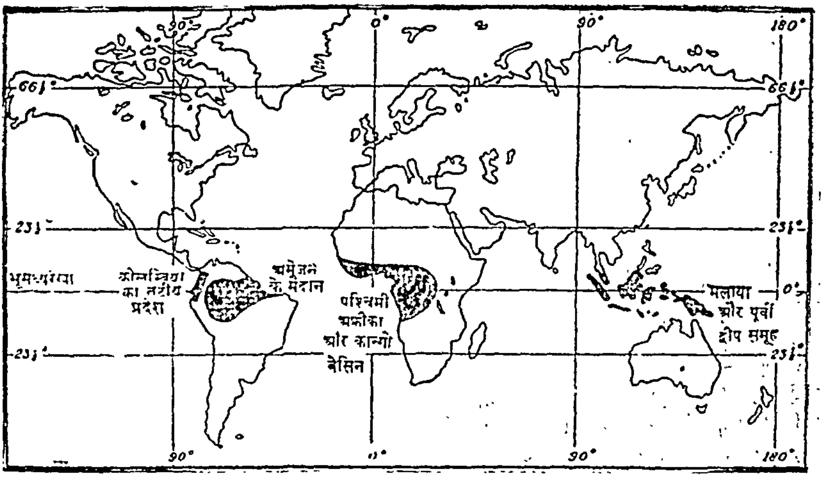

चित्र ३२—भूमध्यरेखीय प्रदेश

जलवायु—यहाँ साल भर ही तापक्रम विशेष रहता है क्योंकि लगभग सूर्य नित्य ही सिर पर चमकता है। परन्तु बादल भी प्रतिदिन छाये रहते हैं और वर्षा भी नित्य ही प्रचुर मात्रा में हो जाती है इससे तापक्रम बहुत अधिक नहीं बढ़ने पाता और परिणामतः अधिक से अधिक तापक्रम ८०° फ़ा० और न्यून तापक्रम ७०° फा० तक रहता है। वार्षिक तापक्रम भेद कभी-कभी तो ५०° फा० से भी कम हो जाता है परन्तु दिन और रात के तापक्रम भेद की तुलना में अधिक अन्तर रहता है फिर भी २०° फा० से अधिक यह अन्तर नहीं होता।

इस कारण धातुओं में कोई विभिन्नता नहीं रहती। फलतः यहाँ का दिन ग्रीष्म ऋतु और रात जाड़े की ऋतु समझी जा सकती है। इस भाग में १२ घंटे

की रात होती है। गोधूलि सूर्य की लम्बाकार किरणों के कारण अधिक समय तक नहीं रहती। चूँकि सूर्य की सीधी किरणें कर्क और मकर रेखाओं के बीच में वर्ष में एक बार चक्कर लगाती हैं अतः बीच के अक्षांशों में सीधी किरणें वर्ष में दो बार गिरती हैं। अतः वर्ष में दो बार अधिकतम (Two Maxima) एवं न्यूनतम (Two Minima) तापक्रम होता है। यहाँ पवन बहुत कम चलती है और जो भी चलती है वह पृथ्वी के धरातल के समानान्तर नहीं चलती किंतु सदैव ऊपर से नीचे की ओर चला करती है।

वर्षा भी प्रायः साल भर ही होती रहती है क्योंकि इस भाग की वर्षा सूर्य की लम्बाकार किरणों पर निर्भर रहती है। अतः साल में दो बार अधिक और दो बार कम वर्षा होती है। इन प्रदेशों में वसन्त और शरद सम्पातों में अधिक वर्षा होती है किन्तु जून और दिसम्बर में (जब सूर्य भूमध्य रेखा से दूर रहता है) वर्षा कम हो जाती है। यद्यपि सवेरे के समय आकाश स्वच्छ और निर्मल रहता है किन्तु सूर्य की ऊँचाई के बढ़ने के साथ-साथ गर्मी भी बढ़ती जाती है। प्रायः प्रतिदिन ही दोपहर के पश्चात् यह गर्म हवा पृथ्वी के धरातल से ऊपर उठती रहती है और ऊँचाई पर पहुँच कर ठंडी हो जाने के कारण मूसलाधार वाहनिक वर्षा कर देती है। बिजली की कड़कड़ाहट और तेज तूफानों के साथ आई हुई यह वर्षा थोड़े ही समय के लिए ठहरती है। आकाश में बादलों की मात्रा भी अत्यधिक रहती है। लगभग ६०% दिनों में बादल छाये रहते हैं। हवा में सापेक्षिक आर्द्रता भी रहती है और कोहरा तथा भारी ओस भी खूब बनती है। वर्षा का वार्षिक औसत ९०″ से १००″ तक होता है। बहुत से स्थानों में तो वर्षा इससे भी अधिक हो जाती है।

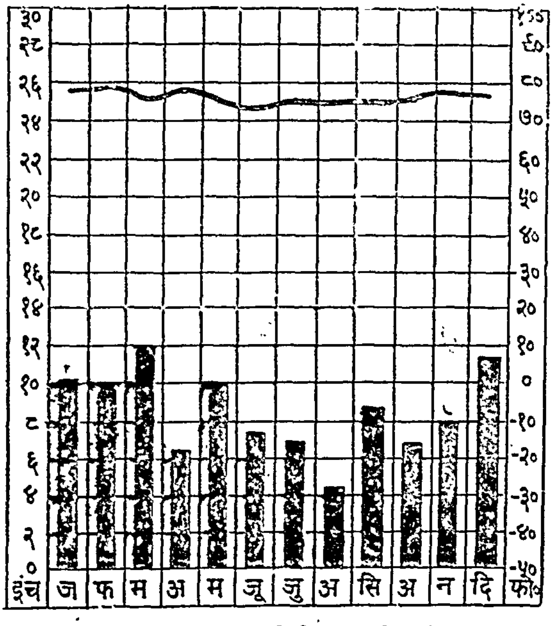

चित्र ३३—इक्वीटोस (पीरू)

इस प्रकार यहाँ का जलवायु गर्म, तर और अस्वास्थ्यकर है। अतः इन भागों में मनुष्य किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता। इसी कारण इन प्रदेशों को निरक्ष अथवा क्षीणकारक प्रदेश (Regions of Debilitation) कहते हैं।

अगले पृष्ठ की तालिका में इस जलवायु प्रदेश के कुछ स्थानों के तापक्रम और वर्षा सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं :—

तापक्रम (फारेनहीट में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. पारा (द० अमेरिका)	३३′	७८	७७	७८	७८	७९	७९	७८	७९	७९	७९	८०	७९	७८	२·७°
२. लैगोस (अफ्रीका)	२५′	८०	८१	८२	८१	८०	७६	७६	७७	७७	७८	८०	८०	७९	६°
३. बटाविया (पूर्वी-द्वीप समूह	६६′	७८	७८	७९	७९	८०	७९	७९	७९	८०	८०	७९	७८	७९	२°
४. सिंगापुर	१०′	७८	७९	८०	८१	८१·५	८१	८१	८१	८०	८०	७९	७९	८०	३·२°

वर्षा (इञ्चों में)

१. पारा	१२·५	१४·१	१४·१	१२·६	१०·२	६·७	५·९	४·५	२·५	३·४	२·६	६·१	९६·२″
२. लैगोस	१·१	२·०	३·७	६·३	१०·१	१९·२	१०·२	२·४	५·३	८·६	२·४	०·९	७२·२″
३. बटाविया	१३·०	१३·६	७·८	४·८	३·७	३·६	२·६	१·३	२·६	४·१	५·०	८·७	७०·९″
४. सिंगापुर	८·५	३·१	६·५	६·९	७·२	६·७	६·८	८·५	७·१	८·८	१०·४	१०·४	९२·९″

प्राकृतिक वनस्पति—अधिक तापक्रम और घनी वर्षा के कारण इन प्रदेशों में वनस्पति प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। यह सदा हरी-भरी रहती हैं। यहाँ के वृक्षों में पतझड़ नहीं होता। सच बात तो यह है कि वर्ष भर ही लगातार गर्मी पड़ने और वर्षा होने के कारण यह वृक्ष सदैव ही फलते-फूलते रहते हैं। इन वृक्षों की औसत ऊँचाई १०० से २०० फुट तक होती है। इन वृक्षों में टहनियाँ कम होती हैं, केवल चोटी पर सदा हरी रहने वाली पत्तियों का गहरा गुच्छा होता है जो सूर्य से गर्मी, प्रकाश और कार्बन गैस प्राप्त करता है। इनको पाने के लिये वृक्षों में प्रतिस्पर्द्धा होती रहती है और इसीलिए वे एक दूसरे से ऊँचे बढ़ते रहते हैं। वृक्षों की चोटियाँ एक दूसरे से इतनी अधिक गुथी रहती हैं कि सूर्य का प्रकाश भी उनको पार कर पृथ्वी पर नहीं पहुँच पाता। इसके अतिरिक्त इन वृक्षों के नीचे सदैव ही कीचड़ और दलदल रहता है, इसलिए घनी वनस्पति पैदा नहीं हो सकती। किन्तु जहाँ जङ्गल कम घने हैं और जहाँ सूर्य का प्रकाश धरातल तक पहुँच जाता है वहाँ छोटे-छोटे वृक्ष और कई प्रकार की लतायें अधिकता से उग आती हैं। वृक्ष इतने घने औरअभेद्य होते हैं कि उनको साफ कर मार्ग बनाना बड़ा कठिन और असम्भव-सा होता है। इन वृक्षों की लकड़ियाँ बहुत कठोर होती हैं, किन्तु उष्ण जलवायु, आवागमन के मार्गों की असुविधा, पिछड़ी जातियों का असभ्य होना आदि कारणों से इन लकड़ियों का अभी तक उपयोग नहीं हो पाया है। इन वनों को अमेजन की घाटी में सेलवाज (Selvas) कहते हैं।

इन वनों में आवनूस, महोगनी, बाँस, ताड़, रोजवुड, लागवुड, आइवरी, ब्राजिलवुड तथा रबर के वृक्ष बहुतायत से पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त सिंकोना (जिसकी छाल से कुनेन बनाया जाता है), मेनीओक (जिससे अरारोट प्राप्त किया जाताहै), टेपिओका, साबूदाना, गटापार्चा, नारियल और चन्दन के वृक्ष भी बहुत पैदा होते हैं। जिन भागों में जङ्गलों को साफ कर दिया गया है वहाँ केला, अनन्नास, कहवा, काफी आदि पैदा किये जाते हैं। खुले हुए भागों में—जहाँ वृक्षों की न्यूनता है—उष्ण कटिबन्ध की पैदावार चावल, गन्ना, तम्बाकू और गर्म मसाले अधिक मात्रा में पैदा किये जाते हैं।

जीव-जन्तु—वनस्पति की विविधता के अनुरूप ही यहाँ अनेक प्रकार के जीव-जन्तु मिलते हैं। इन वनों में जो पशु मिलते हैं उन्हें तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम प्रकार के पशु वे हैं जो पेड़ों की टहनियों पर ही रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं, जहाँ उन्हें पर्याप्त सूर्य की रोशनी और गर्मी प्राप्त होती है। पूँछ के बल लटकने वाले बन्दर, कई प्रकार की रंग-बिरंगी चिड़ियाएँ, चिमगादड़, कीड़े-मकोड़े, छिपकली, गिरगिट, अन्य प्रकार के रंग-बिरंगे पक्षी, मेंढक और अजगर आदि इस प्रकार के मुख्य पशु हैं। द्वितीय प्रकार के पशु वे हैं जिनका शरीर बहुत भारी और मोटा होता है और जो घनी वनस्पति में होकर अपना मार्ग निकाल सकते हैं। हाथी, गेंडा, जङ्गली सुअर, जिराफ, दरियाई घोड़ा आदि इनके मुख्य उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त भूमि पर मांसाहारी पशु जैसे जगुआर, स्लोथ, प्यूमा शेर और चीते भी मिलते है। तृतीय प्रकार के पशु जल

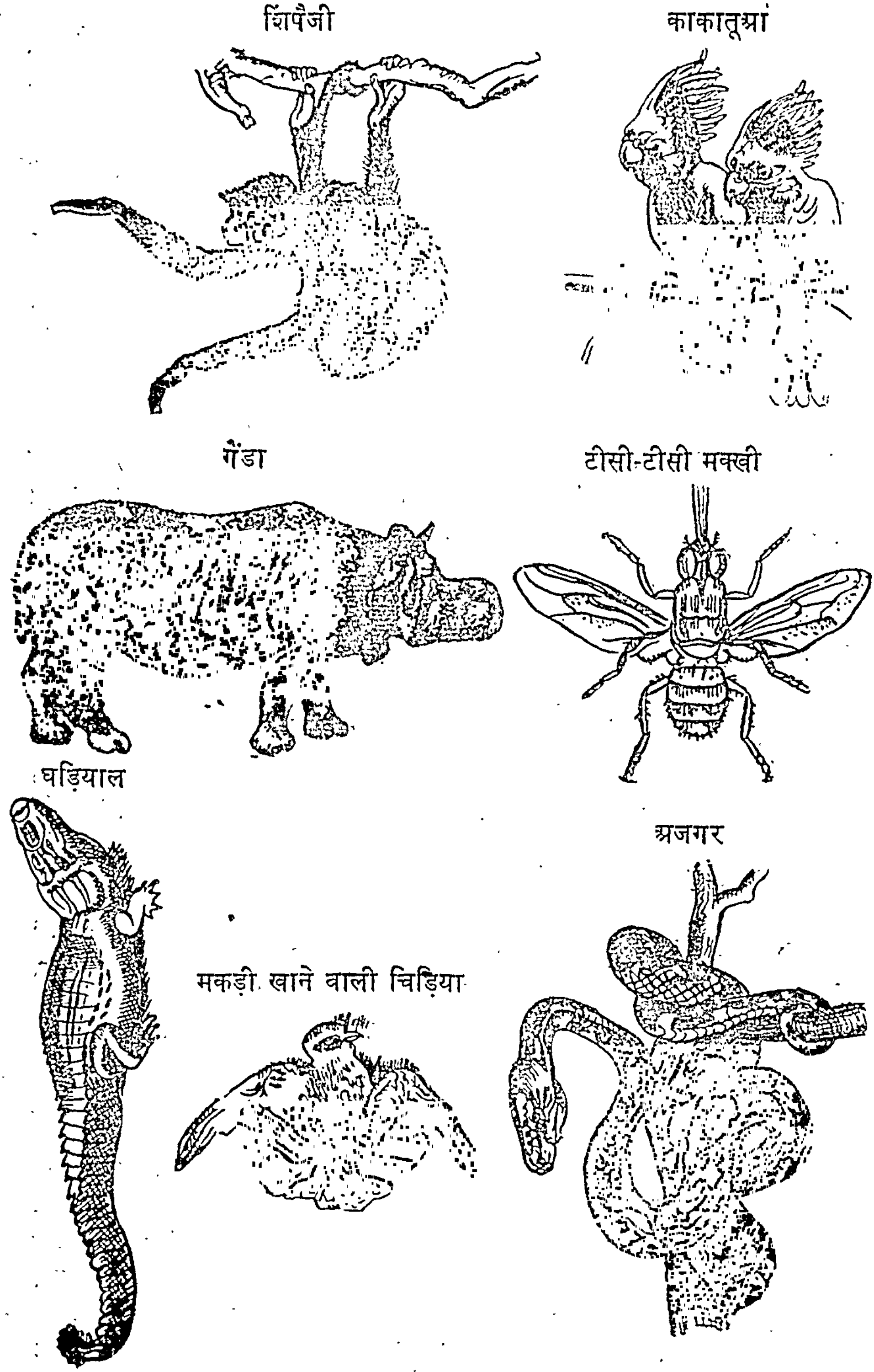

चित्र ३४—कुछ प्रमुख जीव-जन्तु

में निवास करते हैं; जैसे मगर, दरियाई घोड़े, जहरीली मछलियाँ, मेंढक, केकड़े, घड़ियाल और जलसर्प। इनके अतिरिक्त कीड़ों-मकोड़ों, मच्छरों आदि की तो भरमार ही रहती है।

आर्थिक विकास—इन प्रदेशों में गर्म और नम जलवायु होने के कारण मानव विकास बहुत ही निम्नतर श्रेणी का पाया जाता है क्योंकि यहाँ की निरन्तर गर्मी और आर्द्र जलवायु मनुष्य के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अत्यन्त ही हानिकर होती है तथा कुछ भागों में अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैली रहती हैं। उदाहरण के लिए कांगो बेसिन में टीसी-टीसी नाम की मक्खी के कारण नींद की बीमारी, मच्छरों के कारण मलेरिया और पीला बुखार आदि फैले रहते हैं। इनके कारण ही मनुष्य पूर्ण रूप से स्वस्थ रहकर परिश्रम नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त यहाँ के निवासियों की आवश्यकताएँ बहुत ही सीमित और सीधी-सादी होती हैं जो उष्ण कटिबन्धीय बहुतायत के कारण सरलता से पूरी हो जाती हैं। अतः ये लोग सभ्यता में बहुत ही पिछड़े हुए हैं। जनसंख्या भी यहाँ बहुत ही कम और छितरी हुई पाई जाती है।

इन जङ्गलों में रहने वाले विशेषतः दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। पहले वे जो अमेजन नदी की घाटी, कांगो नदी की घाटी और लंका के घने वनों में रहते हैं। ये लोग क्रमशः रेड इंडियन, बौने और वेद्दा कहलाते हैं। ये बहुत असभ्य होते हैं। ये प्रायः नंगे रहते हैं और इनका मुख्य धन्धा मछली पकड़ना, शिकार करना और वनों की उपज इकट्ठी करना है। द्वितीय प्रकार के लोग कम घने जङ्गलों में रहते हैं। इनको फ्रांसीसी भूमध्य रैखिक प्रान्तों में गबून, कांगो बेसनि में बकुआ, अनाम में मुई तथा बोर्नियो में डयाक और पूनन कहते हैं। ये लोग कम असभ्य होते हैं। इनके जीविकोपार्जन का मुख्य साधन पुराने तरीकों से खेती करना (चावल, ज्वार, बाजरा आदि) और शिकार करना है। ये लोग एक स्थान पर टिक कर खेती नहीं करते, बल्कि नई भूमि को साफ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर खेती किया करते हैं। इस प्रकार की खेती को सरकने वाली खेती (Milpa or Shifting or Fang Cultivation) कहते हैं।

शीतोष्ण कटिबन्ध के लोगों ने अपनी उष्ण कटिबन्धीय वस्तुओं की आवश्यकताओं के लिए इस प्रदेश के कई भागों में अपनी पूँजी, व्यवस्था, कुशलता और देशी श्रम की सहायता से उपवन खेती (Plantation Agriculture) करना आरम्भ किया है। इस प्रकार की खेती के अन्तर्गत नारियल, रबर, केले, चाय और कहवा के बड़े-बड़े उपवन इन प्रदेशों में पाये जाते हैं। रबर के उपवन दक्षिणी पूर्वी एशिया के मलाया, जावा, सुमात्रा, लंका, ब्रह्मा, भारत के दक्षिणी-पश्चिमी भाग, इण्डोनेशिया और बोर्नियो में हैं। केले की खेती पश्चिमी द्वीप समूह के जमेका, हांडुरास, मेक्सिको, मध्य अफ्रीका के पश्चिमी तट, कनारी द्वीप, कोलम्बिया, ग्वाटेमाला, पनामा, कोस्टारीका और ब्राजील के पूर्वी तट पर की जाती है। चाय के बाग विशेषकर आसाम जावा और लंका में; कोको की पौध वाली खेती अफ्रीका में गोल्डकोस्ट, नाइजीरिया, दक्षिणी

अमेरिका में दक्षिणी पूर्वी ब्राजील, इक्वेडोर, वेनेज्वेला और ट्रिनिडाड में अधिक की जाती है। नारियल के उपवन फिलिपाइन, पूर्वी द्वीप समूह, लंका, पश्चिमी भारत, मलाया, न्यूगिनी, फिजी, मोजम्बिक और जेंजीवार द्वीपों में हैं। ताड़ के वृक्ष विशेषकर अफ्रीका में फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका, नाइजीरिया, सियरालियोन, बेल्जियन कांगो और केमरुन तथा पूर्वी द्वीप समूह में मिलते हैं। दक्षिणी पूर्वी एशिया व अफरीका में अनन्नास भी पैदा होता है। ये प्रदेश खनिज पदार्थों में धनी नहीं हैं। केवल मलाया में टीन, राँगा; जावा और सुमात्रा में मिट्टी का तेल; अफ्रीका में करंगा प्रान्त में ताँबा, रेडियम, शीशा और चाँदी तथा गोल्डकास्ट में सोना और मैडेगास्कर में ग्रैफाइट मिलता है।

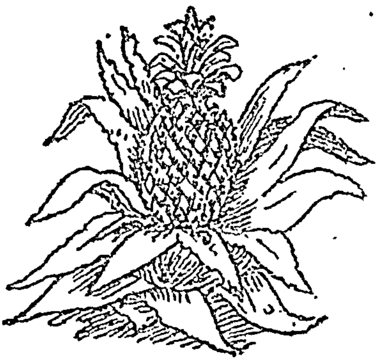

चित्र ३५—अनन्नास

इन प्रदेशों में सभी जगह प्रायः एक सी ही पैदावार होती है। इसलिए यहाँ का देशी व्यापार अधिक उन्नत नहीं। किन्तु इन प्रदेशों की उपज शीतोष्ण कटिबन्ध वाले देशों को अधिक निर्यात की जाती है। मलाया से रबर और टीन तथा अनन्नास; लंका से चाय और रबर; मध्य अफ्रीका से रबर और गोंद, ताड़ का तेल, कोको, हाथी दाँत और दक्षिणी अमेरिका से शक्कर तथा कहवा अमेरिका और यूरोप के देशों को निर्यात किया जाता है।

मानव-जीवन (Human Life)—विपरीत भौगोलिक वातावरण यहाँ मनुष्य को भ्रमणकारी जीवन विताने के लिए बाध्य करते हैं। इन्हें जंगलों में इधर-उधर घूम-घूमकर जंगली वृक्षों, झाड़ियों और लताओं के फल-फूल, पत्तियाँ तथा जड़ इत्यादि का संग्रह, पशुओं तथा पक्षियों आदि का शिकार और नदियों से मछलियाँ मार कर अपना भोजन प्राप्त करना पड़ता है। उष्णता की सर्वदा अधिकता के कारण इन्हें अधिक वस्त्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल अपने अंगों को ढांकने के लिए ये वृक्षों की छाल के वस्त्र बना लेते हैं। दलदली और प्रायः प्रकाशहीन भूमि पर गृह बनाना असम्भव पाकर इन मनुष्यों को भी पशु-पक्षियों की भाँति बाध्य हो कर वृक्षों की चोटियों ही पर गृह-निर्माण करना पड़ता है तथा इसके उपयुक्त गृह-निर्माण सामग्री जंगली वृक्षों से ही प्राप्त करनी पड़ती है। एक वृक्ष की चोटी से बहुत दूर स्थित दूसरे वृक्ष की चोटी तक यहाँ के लोग लम्बे-लम्बे (१०० से २०० फीट तक) लट्ठों को फैला देते हैं और उनके नीचे लट्ठों ही के खम्बे गाढ़ देते हैं। फिर लट्ठों को चीर कर दीवालें बनाते हैं और उन्हें बाँसों तथा पत्तियों से छाकर बड़े लम्बे-लम्बे घर बनाते हैं जिनमें प्रत्येक में सौ से भी अधिक प्राणी रह सकते हैं। इन घरों तक पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ बना लेते हैं और पशुओं से बचाने के लिए घरों में लकड़ी के ही द्वार और खिड़कियाँ लगा लेते हैं। वृक्षों की छालों से रस्सियाँ बनाते हैं तथा लकड़ियों के टुकड़ों से काँटे बनाते हैं। लट्ठों के ही द्वारा एक घर

से दूसरे घर में जाने के लिए पुल बना लेते हैं। इन्हीं जंगली वृक्षों की कठोर और पुष्ट लकड़ियों से ये शिकार करने के लिए तथा वृक्षों को काटने के लिए भाले, डण्डे, कुल्हाड़ियाँ तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र बनाते हैं। मोटे-मोटे तनों को खोखला करके पशुओं की खाल मढ़कर ढोल और डफ बनाते हैं। इसी प्रकार बड़े-बड़े, मोटे-मोटे तनों को बीच-बीच में जलाकर गड्ढे बनाकर नदियों में चलने के लिए छोटी-छोटी नावें भी बना लेते हैं। झाऊ अथवा अन्य पौधों की खोखली नलियों द्वारा बन्दूक बनाते हैं जिनसे तीर मारे जा सकते हैं। ताड़ जाति के वृक्षों की लकड़ियों के प्याले, थालियाँ, कठौते तथा गिलास बनाते हैं। आधुनिक व्यापार के युग में इन प्रदेशों में बाहरी व्यापारियों ने घुसकर इन प्राचीन निवासियों को रबर, सिन्कोना, मैनीग्रॉक, ताड़ का तेल, गट्टापार्चा, गोंद तथा हाथी दाँत आदि इकट्ठा करना सिखा दिया है और ये इनके विनिमय से भोजन, पीने तथा वस्त्र की कुछ सामग्रियाँ प्राप्त कर लेते हैं। बाहरी सभ्य जातियों ने जहाँ सम्भव हो सका है वहाँ जंगल साफ करके कृषि द्वारा चावल, गन्ना, नारियल, केला, साबूदाना तथा भिन्न-भिन्न प्रकार का मसाला—लोंग, मिर्च, दालचीनी, जावित्री, जायफल, तेजपात इत्यादि—पैदा करना आरम्भ कर दिया है। इन्हीं की देखा-देखी यहाँ के निवासी भी कहीं-कहीं जंगलों को जलाकर थोड़ा बहुत अपने खाने भर के लिए उत्पन्न करने लगे हैं। दो-तीन साल इस प्रकार एक भूमि से कुछ उत्पन्न कर लेने पर जब वह भूमि दुर्बल पड़ जाती है तब अन्यत्र वैसी ही भूमि बना लेते हैं।

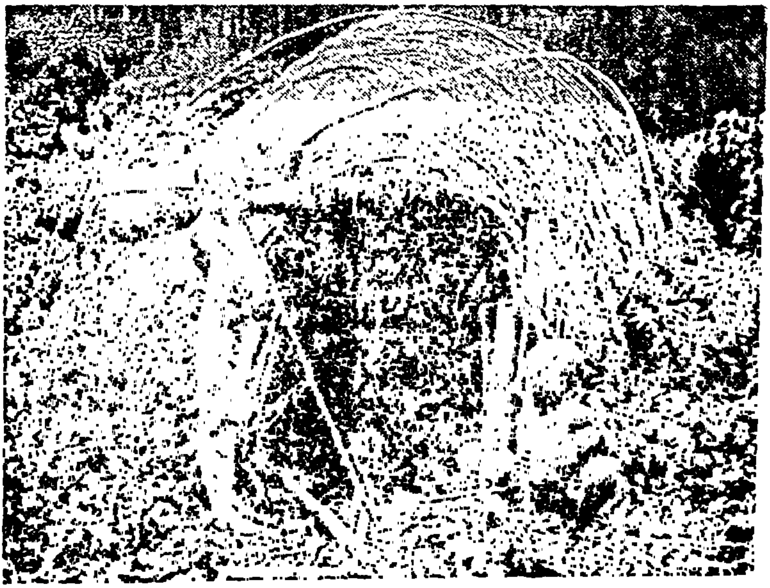

चित्र ३६—भूमध्यरेखीय वनों के निवास-गृह

मूल निवासियों में पिग्मियों की डील-डौल प्रायः छोटी होती है और रंग प्रायः

भूरा और काला होता है। इनके प्रदेश की जलवायु बड़ी अस्वास्थ्यकर होती है तथा ये मलेरिया के मच्छरों के जन्म-स्थान हैं। इनके जीवन से यह सिद्ध हो जाता है कि भौगोलिक अवस्थाएँ किस प्रकार इन पर अपना पूर्ण अधिकार रखती हैं। ये "प्रकृति के अत्यन्त समीप" रहने के लिए बाध्य होते हैं। इन वनों में प्रचण्ड गर्मी, निरन्तर वर्षा और वृक्षों की प्रचुरता तथा सघनता के कारण किसी प्रकार की उन्नति न करके मनुष्यों को पिछड़े ही हुआ रहना पड़ता है। इन मनुष्यों का प्राचीन काल में भूतल के अन्य प्रदेशों के लोगों से मिलना-जुलना भी प्रायः असम्भव था जिससे इनकी विशेष उन्नति न हो सकी और ये पिछड़े ही रह गये। घने जंगलों से चारों ओर से घिरे रहने के कारण वे अब तक भी एकान्त में पड़े रह गये हैं। इनका मानसिक विकास भी पिछड़ा ही रह गया। ये भाँति-भाँति के भूत-प्रेत, पिशाचों में विश्वास रखते हैं तथा उनकी पूजा करते हैं। यदि इन पर कोई आपत्ति आ जाती है तो वे इन्हीं को उसका कारण समझते हैं। इनके यहाँ जादू विद्या चलती है तथा इस विषय में निपुण व्यक्ति से सब डरते हैं। यह लोग मनुष्य के सिर का शिकार करते हैं। शिकार अधिकतर विष-बुझे तीरों से किया जाता है। इन्हें कृषि और पालतू जानवरों का कोई ज्ञान नहीं होता। समय-समय पर ये विदेशी मनुष्यों का माँस भक्षण भी अच्छा समझते हैं। इन प्रदेशों को "दुर्बलताकारी देश" (Regions of Debilitation) कहते हैं।

(२) सूडान जलवायु-प्रदेश
(Sudan or Summer Rain Type Regions)

यह प्रदेश भूमध्य रेखीय प्रदेशों के दोनों ओर उत्तर दक्षिण में १०° से ३०° अक्षांशों तक फैले हैं। इन प्रदेशों में सूडान, बेंग्वेला, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका, मोजेम्बिक, रोडेशिया, अंगोला, दक्षिणी अमेरिका में ओरीनीको नदी का बेसीन, गायना का पठार, दक्षिणी ब्राजील तथा आस्ट्रेलिया के पश्चिमी और उत्तरी प्रान्त के भीतरी घास के मैदान सम्मिलित हैं।

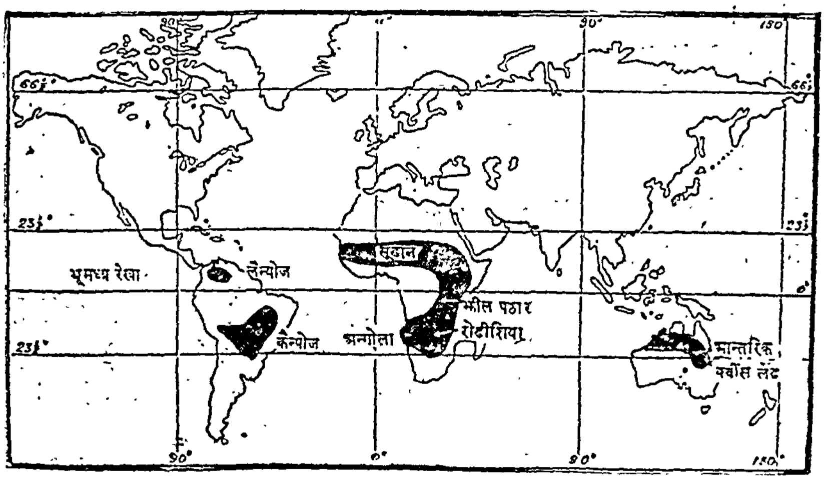

चित्र ३७—सवन्ना या सूडान प्रदेश

जलवायु—जलवायु के दृष्टिकोण से यह प्रदेश विशेष प्रकार का परिवर्तनशील क्षेत्र है जो भूमध्य रेखा के निम्न भागों और मरुस्थलों के बीच में स्थित है। ज्यों-ज्यों विषुवत् रेखा के उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों जलवायु उत्तरोत्तर शुष्क होता जाता है। वर्षा भी वर्ष के उस भाग में अधिकतम होती है जब सूर्य की किरणें अपेक्षाकृत अधिक लम्ब रूप से पृथ्वी पर गिरती हैं। ग्रीष्म में सूर्य के लम्ब रूप से चमकने के कारण तापक्रम काफी ऊँचा हो जाता है और तभी वर्षा भी काफी होती है। किन्तु शीत में जब सूर्य पर्याप्त नीचा रहता है तो सर्दी पड़ने लगती है, तथा हवाएँ भू-भाग से बाहर की ओर जाने लगती है अतः शुष्कता रहती है। इस प्रकार इस प्रदेश में दो स्पष्ट ऋतुएँ होती हैं—वर्षा के साथ ग्रीष्म-ऋतु और खुश्की के साथ शीत ऋतु। गर्मी के दिनों में तापक्रम लगभग ८०° फा० के हो जाता है और दिन बड़े तथा रातें कुछ छोटी होती हैं। किन्तु सर्दी में तापक्रम ७०° फा० तक हो जाता है तथा दिन छोटे तथा रातें बड़ी होती हैं। आर्द्र भागों में तापक्रम भेद १०° फा० से भी कम रहता है, किन्तु शुष्क भागों में इससे अधिक हो जाता है।

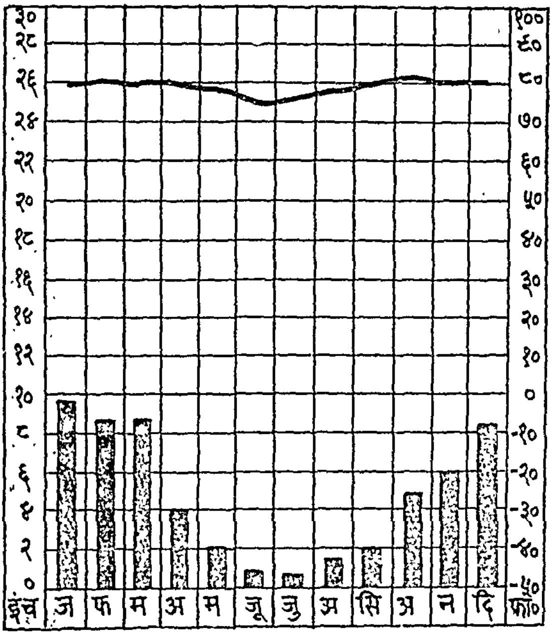

चित्र ३८—क्यूबा (ब्राजील) वर्षा व तापक्रम

इन प्रदेशों में वर्षा ग्रीष्म में अधिक होती है किन्तु वर्षा की मात्रा सभी जगह समान नहीं है। वर्षा का वार्षिक औसत मरुस्थलीय देशों में १०" से १५" तक होता है, किन्तु भूमध्य रेखीय प्रदेशों के निकट यह औसत ७०" से ८०" तक पहुँच जाता है। वास्तव में वर्षा सूर्य के साथ चलती है। अफ्रीका के पश्चिमी भागों में टोरेन्डो चक्रवातों द्वारा भी थोड़ी वर्षा होती है। वर्षा का समय और मात्रा अनिश्चित होने के कारण बहुधा अकाल पड़ते हैं।

इस प्रदेश की जलवायु गर्मी में अधिक गर्म और तर तथा सर्दी में शुष्क और गर्म होती है। इस जलवायु को अवस्थान्तर (Transitional) जलवायु कहते हैं। अगले पृष्ठ पर कुछ मुख्य स्थानों के जलवायु-सूचक अंक दिए गए हैं।

वनस्पति—इन प्रदेशों में प्रचण्ड गर्मी और अनिश्चित वर्षा के कारण बहुत ऊँची-ऊँची घास पैदा होती है जो ५ से १५ फीट तक ऊँची होती है। यह घास गुच्छों (Tufts) में उत्पन्न होती है। किन्तु नदियों के किनारे वृक्ष भी पाये

तापक्रम (फा०)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. टिम्बकट्ट (अफ्रीका)	८२०′	७१	७४	८३	९२	९४	९४	८९	८६	८९	८९	८१	७१	८४·४	२३°
२. बुलावेयो (,,)	४४७०′	७१	७०	८६	६६	६१	५७	५७	६२	७१	७१	७२	६२	६६	१५°
३. परानाम्बूको (द०अ०)	९८′	८१	८१	८१	८०	७८	७७	७५	७६	७९	७९	८०	८१	७९	५°
४. डेली वाटर्स (आ०)	७००′	८७	८६	८४	८०	७५	७०	६९	७३	८६	८६	८८	८९	८०·४	१९·७°

वर्षा (इञ्चों में)

स्थान	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. टिम्बकट्ट	०	०	०·१	०	०·३	०·९	३·५	२·८	१·४	०·४	०	०	९·०″	
२. बुलावेयो	५·९	३·१	२·८	०·८	०·२	०·१	०	०·१	०·६	१·०	३·३	५·१	२३·७″	
३. परानाम्बूको	३·०	३·४	६·९	१०·८	१२·५	१३·९	१४·०	७·७	३·४	१·१	०·९	१·३	७९·९″	
४. डेलीवाटर्स	६·१	६·७	५·०	१·०	०·२	०·३	०·१	०·१	०·३	०·८	१·२	४·१	२६·९″	

जाते हैं। ये वृक्ष सख्त काँटेदार, तिरछे, बहुत कम पत्तियों वाले और छत्तरी के आकृति के होते हैं। जाड़े के सूखे दिनों में खड़े रहने के लिए उनमें कोई न कोई सुरक्षा विधि अवश्य होती है। ये पेड़ जाड़े के आरम्भ में ही अपनी पत्तियाँ झाड़ देते हैं। ज्यों-ज्यों नदी तटों से दूर होते जाते हैं, वृक्षों की मात्रा कम होती जाती है, यहाँ तक कि मरुस्थलीय प्रदेशों के समीप यह बिलकुल छोटी झाड़ियों के रूप में रह जाते हैं। घास के बीच में भी युकलिप्टस, बबूल, इमली और ताड़ आदि वृक्ष उगते हैं। यहाँ की मुख्य वनस्पति केवल घास ही है जो ग्रीष्मकाल में सूख जाती है, किन्तु शीतकाल में हरी रहती है। घास के इन मैदानों का अफ्रीका में पार्कलैंड, एशिया और आस्ट्रेलिया में सवन्ना, दक्षिणी अमेरिका में ओरिनको नदी के बेसिन में लिआनोस और ब्राजील में कम्पास कहते हैं।

पशु—उष्ण कटिबन्धीय इन घास के मैदानों में प्रायः तीन प्रकार के पशु पाये जाते हैं। (i) माँसाहारी पशु जैसे शेर, चीता, तेन्दुआ, भेड़िया और लकड़बग्घा जो घास खाने वाले जानवरों का शिकार करके जीवित रहते हैं। (ii) घास खाने वाले जानवर जैसे हिरन, बारहसिंघा, नील गाय, भैंसा, हाथी, जेबरा, जिर्राफ, एन्टीलोप, गैंडा और गोझल पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इन मैदानों में तेज दौड़ने वाले पशु अफ्रीका में शुतुर्मुर्ग आस्ट्रेलिया में एमू और केशोवरी तथा दक्षिणी अमेरिका में री आदि पाये जाते हैं। (iii) यहाँ की नदियों में तथा दलदली भागों में मगर, दरयाई घोडे और गेंडे पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ कई प्रकार के सर्प रंग-बिरंगे कीड़े-मकोड़े और मच्छर तथा चिड़ियाएँ भी बहुत पाई जाती हैं। इस प्रदेश के पशु-पक्षियों की मुख्य विशेषता यह है कि इन्होंने अपने आपको जलवायु सम्बन्धी अवस्थाओं के अनुकूल बना लिया है, इसीलिए जब वर्षा की कमी के कारण घास की मात्रा में कमी हो जाती है तो अधिकांश पशु-पक्षी दूसरे स्थानों में जाकर रहने लग जाते हैं।

बारहसिंघा

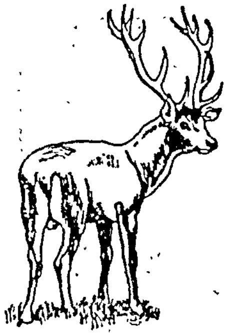

जेबरा

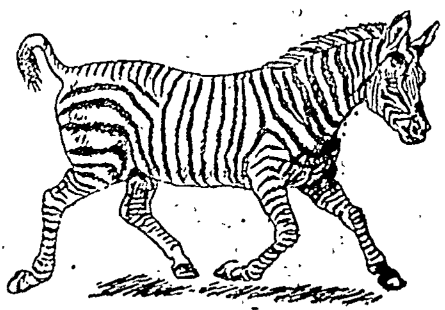

चित्र ३९

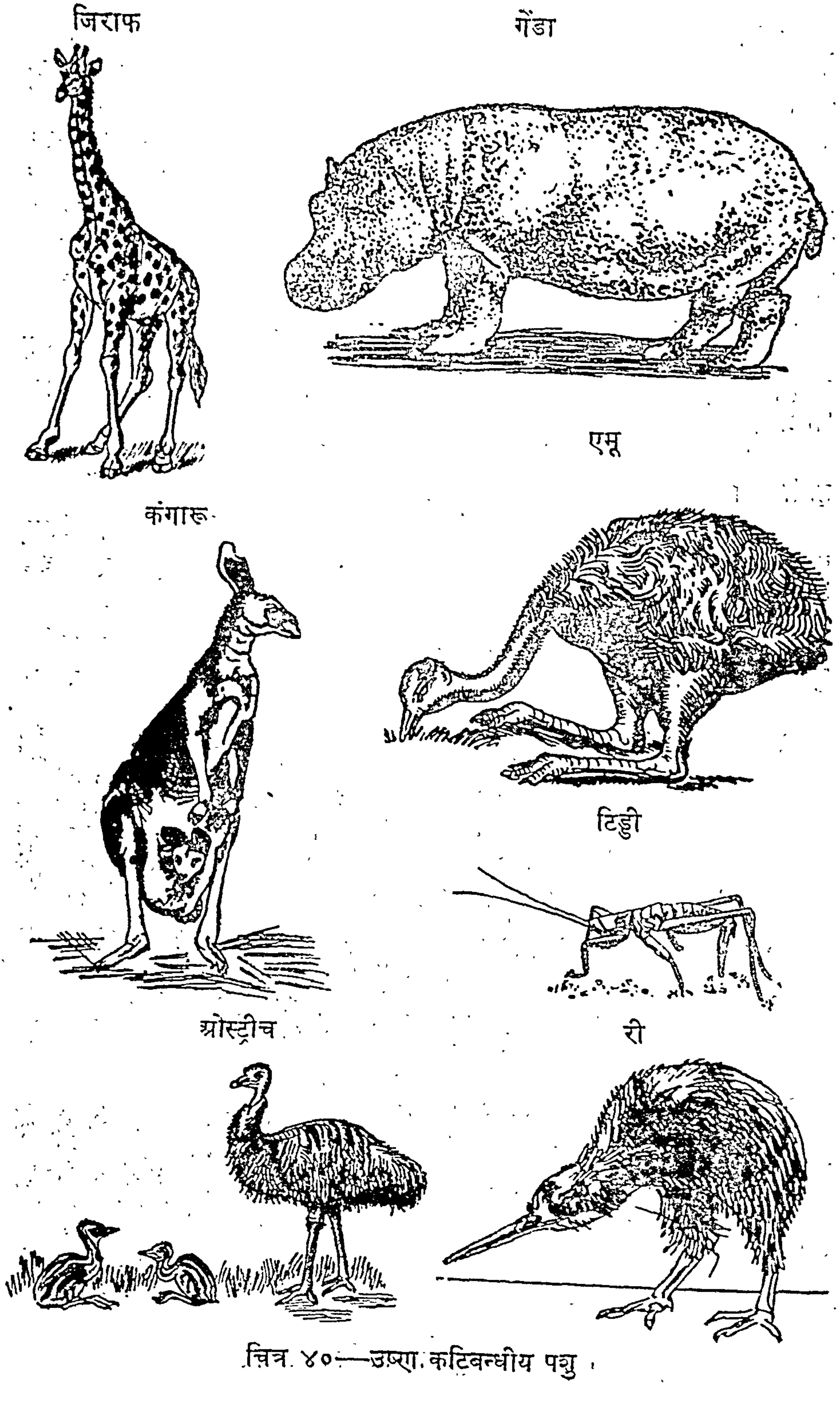

चित्र ४०—उष्ण कटिबन्धीय पशु

हवाओं और वर्षा के आधार पर उत्तरी चीन, कोरिया और जापान को भी इस जलवायु प्रदेश में सम्मिलित किया जाता है; परन्तु यहाँ सर्दी की ऋतु अधिक ठंडी होती है और प्रायः बर्फ पड़ा करती है, अतः इन प्रदेशों को शीतोष्ण मानसून प्रदेश कहते हैं।

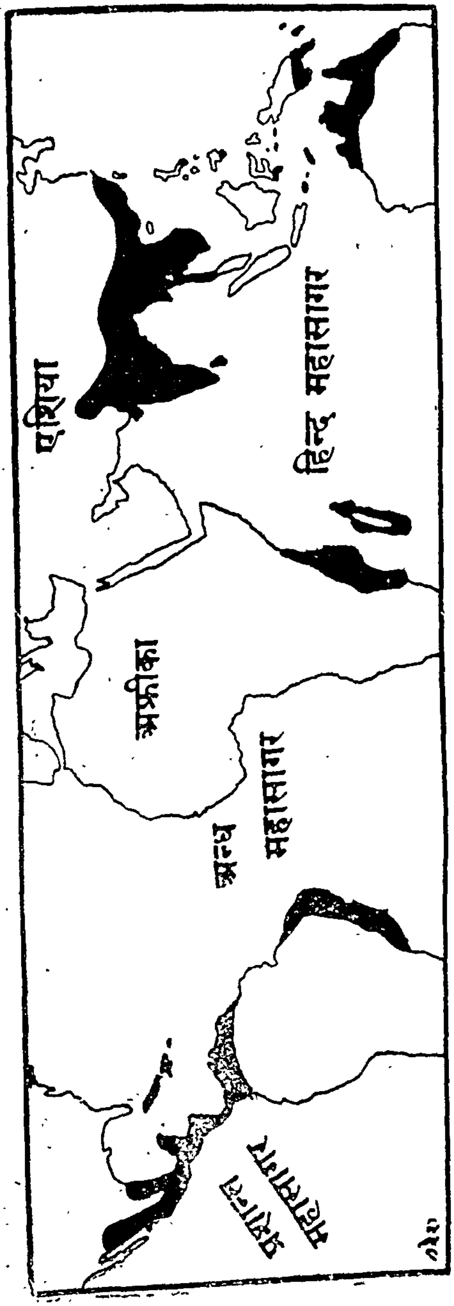

चित्र ४२—मानसूनी जलवायु प्रदेश

जलवायु के दृष्टिकोण से मानसून वाले देश सूडानी देशों के बहुत ही निकटवर्ती समानान्तर ठहरते हैं। दोनों प्रदेशों में ग्रीष्म और शीत दो ही ऋतुएँ होती हैं और दोनों ही में ग्रीष्म-काल में ही वर्षा होती है। परन्तु इन दोनों में प्रधान अन्तर वर्षा के परिमाण में हवाओं की व्यवस्था में है जिसके कारण वर्षा होती है। मानसूनी प्रदेशों में ग्रीष्म में समुद्र से दूर के स्थानों में तापक्रम १००° फा० से भी अधिक हो जाता है किन्तु तटीय स्थानों में ७५°–८०° फा० के लगभग होता है। गर्मी और जाड़े के तापक्रम में अधिक अन्तर नहीं होता। तटीय स्थानों में यह अन्तर १०°–१५° फा० और मध्य के स्थानों में ३०°-३५° फा० तक होता है।

यह प्रदेश मानसूनी हवाओं के प्रभाव में रहते हैं जो वर्ष के ६ महीने

समुद्र से स्थल की ओर और दूसरे ६ महीने इसके विपरीत दिशा में चलती हैं। इन हवाओं से वर्षा तभी होती है जब ये किसी पर्वत को पार करने के निमित्त ऊँची उठती हैं। यह वर्षा प्रायः पार्वत्य वर्षा होती है।[1] अधिकांश वर्षा ग्रीष्म में दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनों से ही होती है। सर्दी की ऋतु प्रायः कुछ भागों को छोड़कर सूखी ही रहती है। वर्षा का वार्षिक औसत ८०" है किन्तु संसार भर में सबसे अधिक वर्षा इस प्रकार के जलवायु वाले प्रदेश में ही होती है। इसके साथ ही साथ यहाँ की वर्षा में अनिश्चितता भी इतनी अधिक रहती है कि कभी तो बहुत ही अधिक पानी बरस जाता है और कभी-कभी बड़े-बड़े दुर्भिक्ष पड़ जाते हैं।

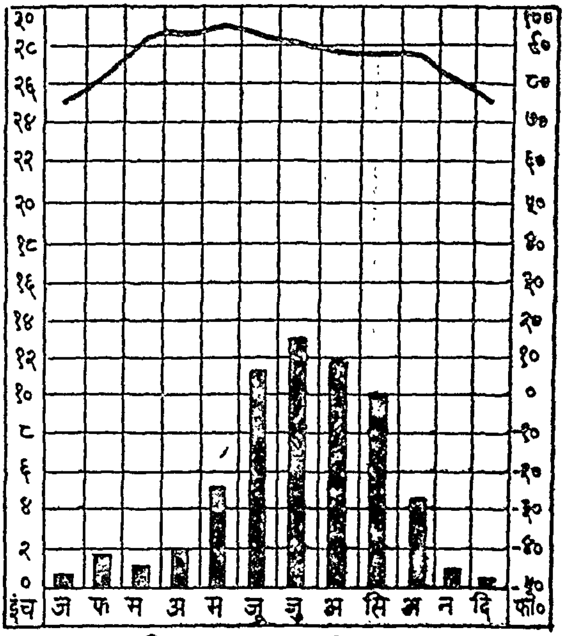

चित्र ४३—बम्बई
तापक्रम और वर्षा

इस प्रकार मानसून प्रदेश की मुख्य विशेषता यही है कि यहाँ गर्मी में अधिक गर्मी और वर्षा तथा सर्दी में ठंड और शुष्कता रहती है। वर्षा काल का निश्चित महीनों में होना ही इस जलवायु की प्रधान विशेषता है। नीचे की तालिका में मानसूनी-प्रदेशों के कुछ स्थानों के तापक्रम और वर्षा के अंक दिए गये हैं—

(१) इन प्रदेशों में सर्दी की वर्षा प्रायः चक्रवातों की प्रतिक्रिया द्वारा ही होती है। ये चक्रवात तूफान पश्चिमी द्वीपसमूह में हरीकेन (Hurricane), चीन महासागर में टाइफून (Typhoon), फिलीपाइन द्वीपों में बागीज (Baguious) तथा उ० प० आस्ट्रेलिया में विली-विली (Willi-Willies) कहलाते हैं।

तापक्रम (फा०)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम-भेद
१. बम्बई (भारत)	३७′	७५	७५	७८	८२	८५	८२	७९	७९	७९	८१	७९	७६	८०°	१०°
२. मद्रास (,,)	२२′	७५	७७	८०	८४	८९	८८	८६	८५	८४	८१	८०	७६	८२°	१३°
३. कलकत्ता (,,)	२१′	६८	७०	८०	७५	८६	८५	८३	८२	८३	८०	७२	६५	७८°	२१°
४. हांगकांग (चीन)	१०८′	६०	५८	६३	७०	७७	८१	८८	७९	८०	७६	६९	६३	७२°	२४°
५. डारविन आस्ट्रेलिया	९७′	८४	८३	८४	८४	८२	७९	७७	७९	८३	८५	८६	८५	८४°	९°

वर्षा (इञ्चों में)

स्थान	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत
१. बम्बई	०·१	०	०·१	०	०·७	२०·६	२७·३	१६·०	११·८	२·४	०·४	०	७९·४″
२. मद्रास	१·१	०·३	०·३	०·६	१·८	२·०	३·८	४·५	४·९	११·२	१३·६	५·४	४९·६″
३. कलकत्ता	०·४	१·१	१·४	२·०	५·०	११·२	१२·१	११·५	९·०	४·३	०·५	०·२	५८·८″
४. हांगकांग	१·४	२·१	२·६	५·५	१०·२	१५·१	११·४	१४·०	११·५	४·५	१·६	१·३	८०·१″
५. डारविन	१५·३	१३·०	९·७	४·५	०·२	०·२	०·१	०·१	०·५	२·१	५·२	१०·३	६१·७″

वनस्पति—मानसूनी जलवायु के प्रदेशों में जहाँ सामयिक रूप से मौसम परिवर्तन होता है, वनस्पति का वितरण मुख्यतया वर्षा के वितरण पर आधारित रहता है। अस्तु, (१) जिन भागों में ८०" से अधिक वर्षा होती है वहाँ घने जंगल पाये जाते हैं। किन्तु ये जंगल भूमध्य रेखीय प्रान्तों के वनों की भाँति न तो उतने ऊँचे ही और न उतने घने ही पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इन वृक्षों के नीचे घना घास-फूंस भी उग आता है। इन वनों से महोगनी, देवदार, ताड़ और लॉगवुड प्राप्त होती है। (२) जिन भागों में वर्षा की मात्रा ४०" से ८०" होती है वहाँ विशेषतः चौड़ी पत्ती वाले मानसूनी वृक्ष पाये जाते हैं। तेज गर्मी और अधिक वर्षा के कारण इन वनों में बड़ी-बड़ी डालियों वाले वृक्ष पाये जाते हैं जो वर्षा और शीतकाल में तो हरे-भरे रहते हैं किन्तु शुष्क ग्रीष्मकाल में जब वाष्पीभवन द्वारा पत्तियों से वृक्षों के भीतर का जल उड़ने लगता है तब इस जल को रोकने के लिए अपनी पत्तियाँ झाड़ देते हैं। सागवान, शीशम, चन्दन, नीम आदि इन जंगलों के मुख्य वृक्ष हैं। व्यापारिक रूप से इन लकड़ियों का बड़ा महत्व है क्योंकि यह कठोर होते हुए भी मजबूत और टिकाऊ होती हैं तथा इनका उपयोग रेल की पटरियों से लगाकर रेल के डिब्बे, जहाज और फर्नीचर आदि बनाने तक में होता है। (३) जिन प्रदेशों में वर्षा की मात्रा २०" या उससे कम होती है वहाँ वृक्ष छोटे और कँटीली झाड़ियों वाले होते हैं; बबूल, खैर आदि ऐसे वृक्ष हैं। यह भी वाणिज्य में कत्था तथा रंग बनाने के लिए उपयुक्त होते हैं। (४) बहुत ही कम वर्षा वाले स्थानों में छोटी-छोटी और बहुत दूर-दूर कँटीली झाड़ियाँ पाई जाती हैं तथा रेतीली मिट्टी की अधिकता होती है।

आर्थिक विकास—आदिकाल से ही उत्तम जलवायु, अधिक वर्षा, उपजाऊ भूमि और परिश्रमी मनुष्यों के कारण ये प्रदेश सभ्यता में सदैव ही अग्रणी रहे हैं। यद्यपि इन प्रदेशों में खेती के ढंग बहुत ही साधारण और पुराने हैं किन्तु फिर भी भूमि के प्रत्येक उपजाऊ भाग में खेती की जाती है। चीन में तो सीढ़ीदार खेतों पर भी खेती की जाने लगी है जिसके कारण खेती के क्षेत्र में वृद्धि होने के साथ-साथ उत्पादन में भी सन्तोषजनक वृद्धि हुई है। उपजाऊ भूमि तथा उत्तम जलवायु के कारण इन प्रदेशों में थोड़े ही श्रम से पर्याप्त उपज मिल जाती है। इसलिये इन प्रदेशों को उन्नतिशील प्रदेश (Regions of Increment) कहते हैं। इन प्रदेशों की जनसंख्या बहुत ही घनी है, और इनकी सभ्यता भी बहुत ऊँची है।

इन प्रदेशों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। जिन भागों में वनों को साफ कर लिया गया है वहाँ उपयुक्त भूमि मिल जाने पर चावल, जूट, गेहूँ, जौ, गन्ना, कपास, तम्बाकू, दालें, तिलहन, नील आदि पैदा की जाती हैं। समुद्रतटीय भागों में नारियल, खजूर, ताड़, सुपारी, केले और गर्म मसाले पैदा किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त आम, जामुन, कटहल, आँवला, नीबू, अमरूद आदि भी खूब पैदा किये जाते हैं। सब्जियाँ तो प्रायः सभी प्रकार की होती हैं। यदि यह कहा जाय कि इन प्रदेशों में खेती का विशेषीकरण हुआ है तो कोई अत्युक्ति न होगी।

उदाहरण के लिए दक्षिणी पूर्वी एशिया, दक्षिणी-पूर्वी अफ्रीका और मैडागास्कर द्वीप में चावल; अबीसीनिया और ब्राजील में कहवा; मेक्सिको में मक्का; पश्चिमी पाकिस्तान और उत्तरी भारत में गेहूँ; पूर्वी बंगाल में जूट; फिलिपाइन्स द्वीप में चपड़ा; मनीला में सन और नारियल; पूर्वी भारत में चाय; दक्षिणी भारत में कपास और तिलहन तथा क्यूबा और उत्तर-प्रदेश में गन्ना अधिक पैदा किया जाता है।

घास के मैदानों की कमी के कारण घी-दूध का धंधा व्यावसायिक रूप से बड़ी मात्रा में नहीं किया जाता किन्तु गाय-बैल दूध और मांस के लिए अधिक पाले जाते हैं। विश्व में सबसे अधिक चौपाये भारत में पाये जाते हैं। इन चौपायों के अतिरिक्त भेड़, बकरी, घोड़ा, सुअर भी अधिक पाले जाते हैं। इन भागों में शेर, चीते, लोमड़ी, भेड़िया आदि माँसाहारी पशु तथा हाथी, बन्दर' नीलगाय आदि शाकाहारी पशु तथा रंग-बिरंगी चिड़ियाएँ, विषैले सर्प और नदियों में कई प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं।

यह प्रदेश खनिज पदार्थों में साधारणतया धनी हैं। ब्राजील में लोहा और सोना, हीरा और मैंगनीज मिलते हैं। ब्रह्मा और बेनीजुएला में मिट्टी का तेल, थाईलैंड में टीन, मेडागास्कर में ग्रेफाइट पाया जाता है। आस्ट्रेलिया के क्वींसलैंड प्रान्त से सोना, चाँदी और टीन बहुत प्राप्त होते हैं। भारत में लोहा, कोयला, मैंगनीज, अभरक और नमक तथा मिट्टी का तेल पाया जाता है। पाकिस्तान में नमक और मिट्टी का तेल मिलता है।

यह प्रदेश अपनी उत्तम जलवायु और उपजाऊ भूमि के कारण न केवल अधिक मात्रा में भोज्य पदार्थ ही पैदा करते हैं, बल्कि विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों के लिए कच्चा माल भी बहुत बड़ी मात्रा में पैदा करते हैं। यद्यपि यह प्रदेश प्रधानतः कृषि-प्रधान देश है, किन्तु अब इन देशों में औद्योगिक प्रगति भी बहुत हो गई है।

(४) गर्म मरुस्थलीय प्रदेश (Hot Desert Regions)

यह प्रदेश उष्ण-कटिबन्धीय देशों के पश्चिम में स्थित हैं। ये पूर्व की ओर से आने वाली व्यापारिक हवाओं की पेटी में पड़ते हैं। इन प्रदेशों के अन्तर्गत एशिया में थार, अरब, ईरान का दस्ते-कबीर; अफ्रीका में सहारा और कालाहारी; दक्षिणी अमेरिका में अटकामा; उत्तरी अमेरिका में कोलोरोडो और आस्ट्रेलिया में विक्टोरिया मरुस्थल हैं—ये सभी कर्क और मकर रेखाओं पर पाये जाते हैं।

यह प्रदेश व्यापारिक हवाओं के क्षेत्र में पड़ते हैं। पूर्व से आने वाली व्यापारिक हवाएँ पूर्वी किनारों पर तो पर्याप्त वर्षा कर देती हैं किन्तु पश्चिमी भागों की ओर पहुँचते-पहुँचते ये शुष्क हो जाती हैं। ये प्रदेश अधिकांशतः उष्ण-कटिबन्धीय अधिक दबाव वाले भागों में पड़ते हैं, अतः यहाँ हवाएँ विषुवत् रेखीय प्रदेशों के विपरीत ऊपर से नीचे की ओर उतरती हैं अतः वे गर्म हो जाती हैं और वाष्पीकरण होने लगता है इसलिए धरातल की शुष्कता बढ़ती जाती है और कालान्तर में जाकर मरुस्थलीय दशा हो जाती है। इन भागों में

वर्षा की मात्रा से भी २० गुना वाष्पीकरण होता है । वर्षा बहुत ही कम होती है। सदैव आकाश मेघ-रहित होते हैं, किन्तु कभी-कभी तो बड़ी तेज बिजली

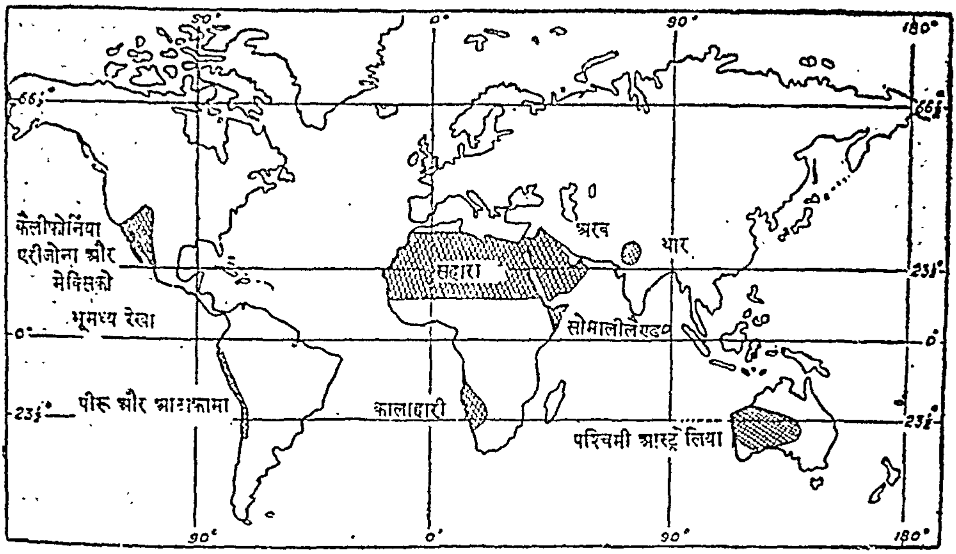

चित्र ४४—उष्ण मरुस्थल

और गड़गड़ाहट के साथ एक दम तेजी से कुछ वर्षा आ जाती है जिससे घाटियों में बाढ़ आ जाती है, किन्तु ऐसी शुष्क वर्षा एक आध घन्टे तक ही रहती है। वार्षिक वर्षा का औसत ५" से भी कम होता है।

आकाश स्वच्छ रहने और वायु के शुष्क होने के कारण सूर्य से प्राप्त गर्मी शीघ्र ही धरातल को उत्तप्त कर देती है। गर्मी के दिनों में और दिन के समय तो तापक्रम १००° फा० से भी अधिक हो जाता है और रात्रि के समय तापक्रम हिमांक विन्दु से भी नीचे हो जाता है। संसार में सबसे अधिक तापक्रम ट्रिपोली से लगभग २५ मील दूर दक्षिण में अजीजिया (Azizia)

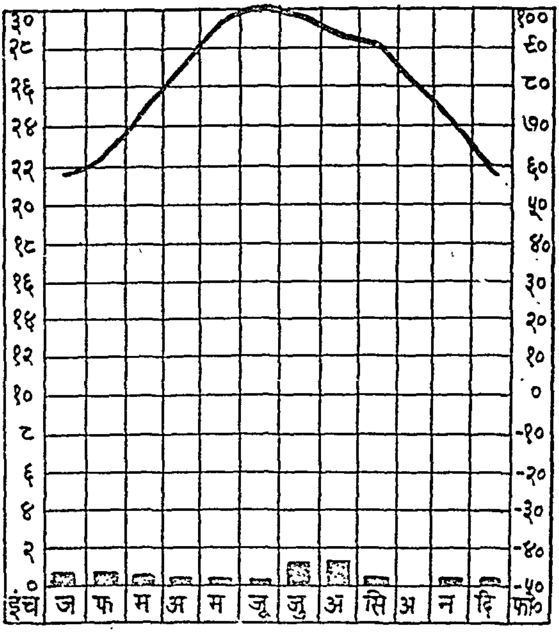

चित्र ४५—जकोवावाद (पाकिस्तान) वर्षा और तापक्रम

में १३६'४° फा० पाया गया है। इसी प्रकार कैलिफोर्निया में भी मृत्यु की घाटी (Death Valley) में १३४° फा० का तापक्रम पाया गया है। इस प्रकार यहाँ दिन में तो अधिक गर्मी पड़ती है, किन्तु दोपहर के बाद विसर्जन क्रिया के द्वारा शीघ्र ही वायु की गर्मी निकल जाती है और प्रातःकाल जिस तेजी से तापक्रम में वृद्धि होती है उसी तेजी से सायंकाल में वह निकल भी जाती है। अतः इससे न केवल मौसमी तापक्रम का प्रत्युत दैनिक तापक्रम-भेद भी बहुत हो जाता है। रात के समय पाला भी पड़ता है। वार्षिक तापक्रम-भेद ३०° फा० के निकट होता है, किन्तु दैनिक तापक्रम भेद भी २४° से ३०° फा० तक पहुँच जाता है।

प्रतिदिन तीसरे पहर और संध्या समय बालूमय आँधियाँ आती हैं जिनकी गति में प्रचण्डता व्याप्त रहती है और असह्य गर्मी होती है। इन आँधियों को धूल-दानव (Dust Devils) कहते हैं। सिमूम नामक गर्म हवाएँ यहाँ बहुत चलती हैं जिससे सारा आकाश भर जाता है और सभी ओर अंधकार छा जाने के कारण कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

मरुस्थल की परिस्थितियाँ, सभी ओर बालू का विस्तार और निर्जनता तथा शुष्कता अनेक मानवीय विशेषताओं की जननी है। यहाँ के निवासी निर्भय, स्वतन्त्रता-प्रिय, आत्म-विश्वासी, दृढ़-चरित्र और प्रमत्त होते हैं। मरुस्थलीय एक-रसता (Monotony) इन लोगों को दार्शनिक बना देती है और यही कारण है कि पथ-प्रदर्शन के लिए आकाश के तारों के आवश्यक ज्ञान ने इन लोगों को उत्तम गणितज्ञ और ज्योतिषी बना दिया है।[1] इन-प्रदेशों की विषम जलवायु एवं परिस्थिति के कारण मानवीय जीवन बड़ा ही कठोर होता है, अतः ये भाग सतत कठिनाइयों वाले प्रदेश (Regions of Everlasting Difficulties) कहलाते हैं।

इन प्रदेशों की जलवायु वास्तव में महाद्वीपीय है जहाँ सदा गर्मी एवं शुष्क हवा का साम्राज्य रहता है तथा जहाँ दैनिक और वार्षिक तापक्रम में भेद बहुत अधिक होता है।[2] आगे की सारिणी में इस प्रदेश के जलवायु संबंधी आँकड़े दिए गए हैं:—

---

१ देखिए —Miller : Climatology. p. 256

२ वही, पृष्ठ 257

तापक्रम (फा० में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापभेद
१. इंसाला (सहारा)	१२८०′	५४	५७	६६	७७	८५	९४	९८	८५	९०	८०	६८	५७	७७°	४४°
२. जकोबाबाद (थार)	१७६′	५७	६२	७४	८४	९४	९८	९५	८२	९८	७०	६७	५९	७९°	४१°
३. अदन (अरब)	९४′	७५	७६	७९	८१	८६	८९	८८	६६	८७	८२	७९	७७	८२°	१३°
४. लीमा (अटकामा)	५१८′	८१	७३	६३	७०	५६	६२	६१	६१	५१	६२	६६	७०	६७°	१३°

वर्षा (इञ्चों में)

१. इंसाला	०·३	०·३	०·३	०·३	०·१	०·२	१·०	१·१	०·३	०	०·१	०·१	४·०″
२. जकोबाबाद	०·२	०·२	०·७	०·३	०·२	०	०	०·१	०·२	०	०·१	०·१	२·३″
३. अदन	०·०३	०	०	०·०३	०·०३	०·३	०·३	०·५	०·५	०·१	०·०३	०·०३	१·८″
४. लीमा	०·५	३·२	०·५	०	०	०	०	०	०	०	०·१	०	४·४″

वनस्पति—कहा जाता है कि मरुस्थलों में किसी प्रकार की वनस्पति उत्पन्न नहीं होती। भूतल के यह मरुस्थलीय भाग नितांत ही अनउपजाऊ और ऊसर हैं। किन्तु यह केवल भ्रान्तिपूर्ण धारणा है। मरुस्थलों में ऐसे वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ उग सकती हैं जिनमें कुछ प्राकृतिक विशेषताएँ मौजूद हों।

मरुस्थलों की शुष्क जलवायु में उगने वाले पौधों की जड़ें बहुत ही लम्बी और मोटी होती हैं जिससे वे मिट्टी की निम्नतम गहराई से भूतल का भीतरी

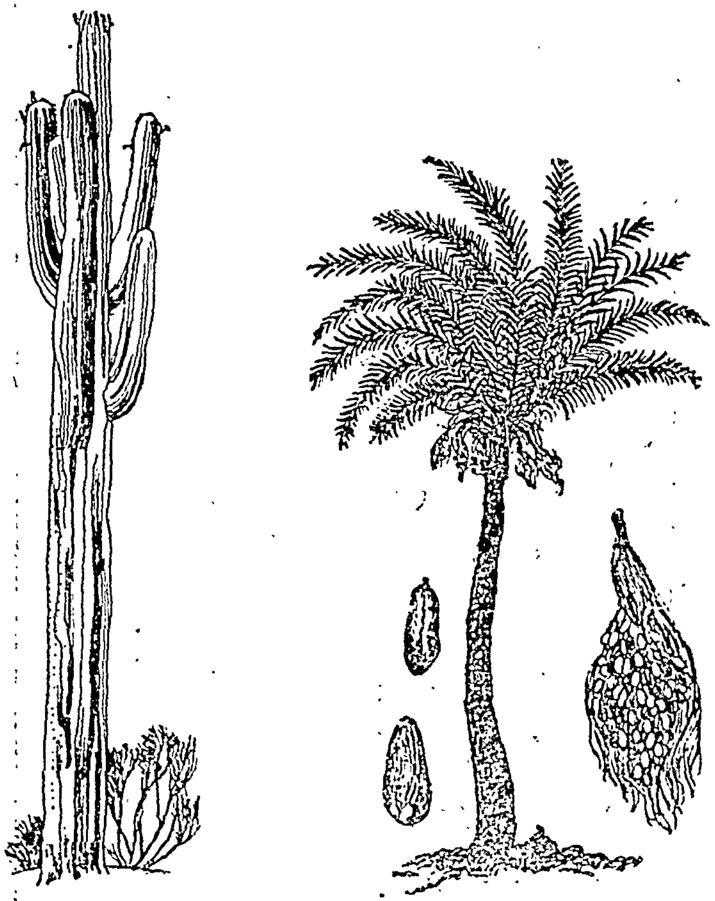

चित्र ४६—कैक्टस और खजूर के वृक्ष

जल चूस सकें और उन्हें अपने मोटे भागों में संचित रख सकें। कुछ पौधों की पत्तियाँ और तने बहुत मोटे तथा इस प्रकार प्राकृतिक रूप से सुरक्षित रहते हैं कि उनमें से पानी बाहर न जा सके और शुष्क जलवायु से उनकी रक्षा करने के लिये उन्हीं में जमा रहे। कुछ वृक्षों की पत्तियों पर एक प्रकार का मोमी आवरण रहता है जो पत्तियों द्वारा वाष्पीभवन की क्रिया को रोकता है। कुछ वृक्षों के तनों पर काँटे रहते हैं जिससे पशुओं द्वारा उनकी विशेष हानि नहीं होती।

उष्ण मरुस्थलों की वनस्पतियों को चार भागों में बाँटा जा सकता है :
(१) शुष्क तृण क्षेत्र उन भागों में पाये जाते है जहाँ उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान समाप्त होते हैं और मरुस्थल प्रारम्भ होते हैं। इनमें कुशा या सर्पत्र जैसी घास पैदा होती है जो चटाइयाँ बनाने अथवा झोंपड़ियों को छाने के काम में आती हैं। (२) कँटीली झाड़ियाँ उन भागों में पाई जाती हैं, जहाँ मरुस्थल समाप्त होकर भूमध्य सागरीय प्रदेश आरम्भ होते हैं। यह झाड़ियाँ ऊँटों के लिए मुख्य भोजन का काम देती हैं। (३) काँटेदार वृक्ष और बबूल और लोबान तथा गोंद देने वाले वृक्ष मरुस्थल में बिखरे हुए रूप में मिलते हैं। (४) मरूद्यानों के उपजाऊ भागों में जहाँ आस-पास के पर्वतों का जल तलहटियों में समाकर श्रोतों के रूप में निकल आता है खजूर, ताड़, चावल, गन्ना, कपास, मक्का, ज्वार, बाजरा, तम्बाकू, अंगूर, खरबूजा, टमाटर तथा अन्य सब्जियाँ पैदा की जाती हैं।

पशु—इन प्रदेशों में ऊँट और भेड़-बकरियाँ अधिक पाई जाती हैं। ऊँट को जो कई दिनों तक बिना खाये-पीये रह सकता है रेगिस्तान का जहाज कहते हैं। इसके पाँव गद्देदार होते हैं जिससे ये बालू में नहीं धँसते और नथनों के द्वारा मिट्टी मुँह में भी नहीं पहुँचती। अरब के मरूद्यानों में घोड़े, गधे और खच्चर तथा सहारा के दक्षिणी भागों में शुतुर्मुर्ग भी मिलते हैं।

आर्थिक विकास—इन प्रदेशों में जल के अभाव के कारण कृषि करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अतः खेती वहीं की जा सकती है जहाँ जल की

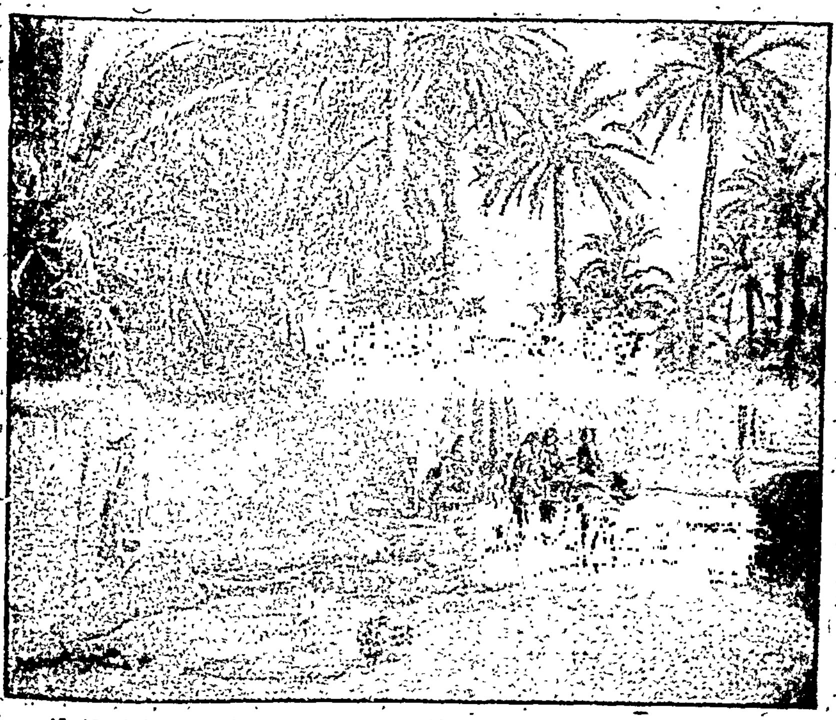

चित्र ४७—रेगिस्तान में एक मरूद्यान

प्राप्ति हो जाती है। कई भागों में आधुनिक काल में सिंचाई की सहायता से कई प्रकार के अनाज पैदा किये जाने लगे हैं। ऐसे स्थान केवल मरूद्यान (Oasis) ही होते हैं। इन मरूद्यानों का विकास मरुस्थल के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक होता है। विश्व के घने आबाद और विकसित मरूद्यान अफ्रीका में नील नदी की घाटी और सहारा में टिम्बकटू का मरूद्यान, एशिया में दजला फरात की घाटियाँ और पाकिस्तान में सिंध की निचली घाटी है। प्राचीन काल में यह मरूद्यान सभ्यता के केन्द्र रहे हैं। मिश्र, फिलिस्तीन और बेबीलोनिया की सभ्यता बहुत ऊँची थी।

इन मरुस्थलों में कुछ भागों में कई प्रकार के खनिज पदार्थ भी पाये जाते हैं; उदाहरण के लिए नमकीन झीलों से वाष्पीकरण की क्रिया द्वारा नमक प्राप्त किया जाता है। भारत में थार मरुस्थल की साँभर, पचभद्रा, लूनकरनसर, डीडवाना झीलें; सहारा की चाड; संयुक्त राष्ट्र की साल्टलेक और दक्षिणी अमेरिका में अटकामा की टीटीकाका झील से बहुत अधिक मात्रा में नमक प्राप्त किया जाता है। चिली के उत्तरी भाग में शोरा बहुत मिलता है जिसका उपयोग यूरोप में रासायनिक खाद बनाने में होता है। चिली में लोहा, चाँदी, ताँबा और सुहागा भी मिलता है। संयुक्त राष्ट्र में कालोराडो और ऐरीजोना तथा आस्ट्रेलिया में सोना, चाँदी और ताँबा और दक्षिणी अफ्रीका में कालाहारी में ताँबा और हीरा प्राप्त होते हैं। अरब, इराक और सं० रा० के मरुस्थलों में मिट्टी का तेल भी बहुत पाया जाता है।

पानी की कमी, उच्चतापक्रम, बालू की अधिकता और प्रचण्ड आँधियों के कारण इन प्रदेशों में आधुनिक आवागमन के मार्ग नहीं बनाये जा सकते। केवल पगडंडियाँ ही मार्गों का काम देती हैं।

प्राचीन काल में मिश्र और अरब के निवासी बहुत बड़े दार्शनिक, ज्योतिषी और गणितज्ञ हुए हैं। रात्रि के समय तारों द्वारा ही इन व्यक्तियों को मार्ग प्रदर्शन मिला है।

मरुस्थल के निवासियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है; पहले वे जो बंजारों की भाँति अपने ऊँटों के काफिलों को लेकर एक मरूद्यान से दूसरे मरूद्यान तक घूमते-फिरते हैं। दूसरे वे जो बहुत ही असभ्य हैं और अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थल में रहते हैं और तीसरे वे जो मरूद्यानों के निकट स्थायी रूप से निवास करते हैं। यही सब से अधिक सभ्य होते हैं। यहाँ हम केवल बद्दू लोगों के जीवन का वर्णन करेंगे।

बद्दू (The Beduoins)—दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में अरब तथा उत्तरी अफ्रीका में सहारा के अति उष्ण मरुस्थलों के भ्रमणकारी निवासी हैं। 'बद्दू' शब्द का अर्थ ही होता है मरुस्थल वासी। इन मरुस्थलों में दीर्घकालीन ग्रीष्म काल में प्रचण्ड गर्मी पड़ती है और तापक्रम प्रायः १२०° फा० से भी अधिक बढ़ जाता है। अल्पकालीन शीतकाल में ६०° फा० तक तापक्रम उतर कर साधारण ठण्डक उत्पन्न कर देता है। दिन तथा रात में तापक्रमों में भी प्रायः ऐसा ही अन्तर रहता है। शान्त-खण्डों तथा सूखी हवाओं की पेटियों में पड़ने के

कारण वर्षा प्रायः नहीं के बराबर होती है और सारा वर्ष सूखा ही बीतता है जिससे भूतल बालुकामय बना रहता है। धरातल तथा जलवायु की ये प्रतिकूल अवस्थाएँ कृषिकार्य अथवा पशु-चारण के अनुकूल नहीं होतीं। जहाँ-तहाँ कुछ कँटीली झाड़ियाँ या काँटेदार छोटे-छोटे वृक्ष, बबूल, झाऊ आदि तथा मोटी खुरखुरी घास के छोटे-छोटे छिटके हुए तृण-क्षेत्र ही यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति हैं जो बालुकामय विस्तृत क्षेत्रों के एक मात्र पशु ऊँट को चारा प्रदान करती हैं।

चित्र ४८—सहारा में यात्रा का साधन

इन मरुस्थलों के भौगोलिक वातावरण स्थिर जीवन के विरोधी बनकर बद्दुओं को भ्रमणकारी जीवन के लिए बाध्य करते हैं। ये अधिकांश कुछ ऊँट तथा खच्चर और भेड़ तथा बकरी भी रखते हैं, जो मरुस्थल की कँटीली तथा सूक्ष्म वनस्पति पर अपना जीवन बिता सकते हैं; किन्तु बद्दुओं को अपने इन पशुओं के चारे की खोज में शीतकाल में निम्न मरुस्थल के एक भाग से दूसरे भाग तक घूमते-फिरते रहना पड़ता है। इन यात्राओं में ये किरमिच के तम्बुओं में रहते हैं। *प्रचण्ड ग्रीष्म काल में इन्हें अपने तम्बुओं और थोड़े आवश्यक पदार्थों* को ऊँटों पर लादकर किसी पहाड़ी प्रदेश की ठण्डी घाटी में चला जाना पड़ता है। प्राचीन काल के बद्दू का अधिकांश व्यवसाय शिकार तथा लूटपाट करना

और पशु चराना था तथा माँस, दूध और मरुस्थलों का छुहारा और खजूर ही इसका मुख्य भोजन था। कालान्तर में मरूद्यानों के पास बस जाने वालों ने प्राकृतिक श्रोतों से सिंचाई करके मक्का, चावल, ज्वार-बाजरा, कपास, तम्बाकू के पत्ते, छुहारा, आलू, टमाटर, प्याज आदि पैदा करना शुरू किया और वे मिट्टी की दीवारों के छोटे घरों पर ताड़ और खजूर की शहतीर रखकर उन्हीं की पत्तियों से छाकर उन पर मिट्टी की चपटी छतें बनाकर रहने लगे। मरूद्यानों में कुछ आगे बढ़े हुए बद्दुओं के बस जाने पर शेष पिछड़े हुए बद्दू भी इन बसे हुए लोगों के खेतों से बीन कर कुछ अन्न इकट्ठा करके अपने भोजन में परिवर्तन करने लगे और मरूद्यानों के पास से खजूर, मरुस्थलों की नमकीन झीलों से नमक, कँटीले वृक्षों से गोंद और लोबान इकट्ठा करके तथा ऊँट, भेड़ और बकरियों के ऊन से कम्बल, कालीन, नमदे; चमड़े से मशक, ढोल, प्यालियाँ; खजूर के पत्तों से चटाइयाँ और टोकरियाँ; तनों से गिलास, प्याले, सन्दूक, कुर्सी, बेत तथा मिट्टी के बर्तन इत्यादि बनाकर अपने ऊँटों पर लादकर एक मरूद्यान से दूसरे मरूद्यान तथा एक समुद्र-तट से दूसरे समुद्र-तट तक यात्रा करके व्यापार और वस्तुओं के विनिमय द्वारा अपने तम्बुओं के लिए किरमिच, रस्सियाँ तथा अपने खाने-पीने और पहनने का सामान लेकर सुख का जीवन बिताना प्रारम्भ किया।

बद्दू का डील-डौल औसत किन्तु स्वस्थ तथा पुष्ट होता है। धूप तथा गरमी के कारण इनका रंग काला हो जाता है। इनकी प्रकृति सहनशील तथा सन्तोषी होती है। ये अधिकांश यात्राएँ रात्रि में आकाश के तारों के सहारे करते हैं। इसलिए ये अच्छे नक्षत्र-ज्ञानी बन गये हैं। दिन में अपने तम्बुओं में बेकार पड़े रहकर ये बड़े विचारशील बन गये हैं और गणित, ज्यामिति तथा भूविज्ञान आदि विषयों में बड़े निपुण हो गये हैं। ये लोग स्वभाव से ही डाकू और लुटेरे होते हैं। कुमारी सेम्पल के शब्दों में, "बद्दू आर्थिक दृष्टिकोण से पशु पालने वाला, राजनैतिक दृष्टि से देश विजयी और ऐतिहासिक दृष्टि से युद्ध करने वाला है।" संसार के ऐसे अन्य मरुस्थलों में आजकल बहुमूल्य खनिज द्रव्यों ने विदेशियों को भी मरुस्थलों की ओर आकर्षित करके मरुस्थलों का रूप बदलने में बड़ी सहायता प्रदान की है।

तुरेग (Tauregs) सहारा तथा **बुशैमन** (Bushman) और **होटैन्टॉट** (Hottenttos) दक्षिणी अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थल के प्राचीन बंजारे हैं। इनका जीवन भी बद्दू की ही भाँति है। किन्तु ये हीरे और सोने की खानों में भी काम करते हैं।

अध्याय ८

(१) पश्चिमी उष्ण शीतोष्ण प्रदेश या भूमध्य सागरीय जलवायु के प्रदेश

(Western Warm Temperate or Mediterranean Regions)

स्थिति——यह जलवायु प्रदेश प्रायः ३०° से ४५° उत्तर अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर पाये जाते हैं। इन प्रदेशों का अधिकतर विस्तार भूमध्य सागर के निकटवर्ती देशों में है अतः इन प्रदेशों को भूमध्य सागरीय जलवायु के प्रदेश भी कहते हैं। यह प्रदेश उन देशों के बीच के परिवर्तनकारी क्षेत्र (Transition Belt) हैं जिनमें उग्र व्यापारिक हवाएँ चलती

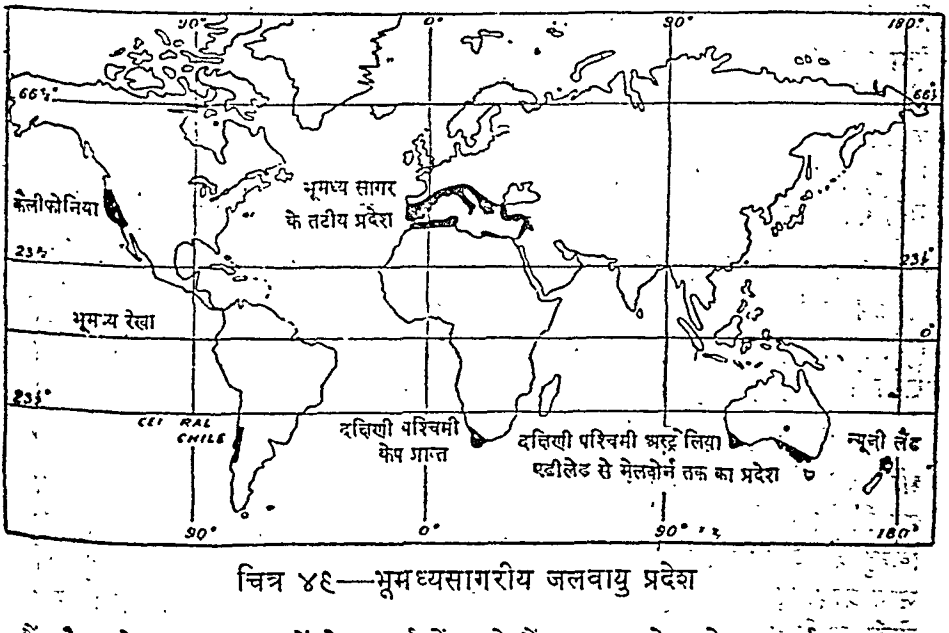

चित्र ४६—भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश

हैं और जो पछुवा हवाओं के मार्ग में पड़ते हैं। इस प्रदेश के अन्तर्गत भूमध्य सागर के निकटवर्ती देश—इटली, पूर्वी स्पेन, दक्षिणी फ्रांस, अलबेनिया, यूगोस्लाविया, यूनान, बलगेरिया, एशिया माइनर, पैलेस्टाइन, सीरिया तथा उत्तरी अफ्रीका के निकटवर्ती भाग—और कैलिफोर्निया, मध्य चिली, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका, दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी-पश्चिमी आस्ट्रेलिया का दक्षिणी भाग और न्यूजीलैंड का उत्तरी द्वीप हैं।

इन प्रदेशों की दो बड़ी विशेषताएँ हैं—इनका विशेष प्रकार का जलवायु और घनी जनसंख्या वाले देशों के पश्चिमी तटों पर इनकी स्थिति।

भूमध्य सागरीय प्रदेशों की स्थिति ऐसी है कि ग्रीष्म-काल में जलवायु भार और हवा की पेटियाँ तापक्रम-रेखा (Heat Equator) के साथ उत्तर या दक्षिण की ओर खिसक जाती हैं तब इन पश्चिमी भू-भागों पर स्थल की ओर से सूखी व्यापारिक हवाएँ आती हैं जिनके कारण ये प्रदेश पूर्णतः शुष्क रहते हैं। इस प्रकार शुष्क वायु के साथ प्रायः उच्च तापक्रम ग्रीष्म काल को अत्यन्त उष्ण बना देता है। ग्रीष्म-ऋतु में तापक्रम ७०° फा० से ८०° फा० तक बढ़ जाता है। कहीं-कहीं यह १००° फा० तक पहुँच जाता है। गर्मी के मौसम में आकाश स्वच्छ रहता है और वर्षा बिल्कुल नहीं होती। सर्वोच्च तापक्रम अटलांटिक महासागर से दूर अवस्थित पूर्वी भागों में पाया जाता है। ग्रीष्मकाल में दैनिक औसत तापक्रम भेद १५° और २०° फा० के लगभग हो जाता है।

किन्तु शीतकाल में जब सूर्य इन भूभागों से दूर चला जाता है तो ये प्रदेश महासागरों से आने वाली वाष्पपूर्ण पछुवा हवाओं के क्षेत्र में आ जाते हैं जिससे यहाँ काफी वर्षा हो जाती है। यह वर्षा प्रायः जोर से होती है। कभी-कभी तो कई दिनों अथवा घण्टों तक तेज बौछारें गिरती रहती हैं किन्तु गर्जन और बिजली बिल्कुल नहीं चमकती। चिली देश में तो बिजली की कड़क उतना ही भय पैदा कर देती है जितना भूकम्प आने से होता है और कैलिफोर्निया में तो शायद ही कभी बिजली चमकती है।[1] शीतकाल में औसत तापक्रम ५०° फा० तक रहता है और दैनिक औसत तापक्रम भेद १०° से १५° फा० तक। जाड़े के मौसम का कुछ गर्म होने का कारण यह है कि इस मौसम में पश्चिमी हवाएँ जाड़े की सर्दी को और भी कम कर देती हैं।

इन प्रदेशों में, पहाड़ी भागों को छोड़ कर, सर्वत्र ही वर्ष में २,००० घंटों से कम के लिए सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता। शीत ऋतु में कभी-कभी हल्का तुषार भी पड़ता है परन्तु ऐसा नहीं कि जिससे फसलें ही नष्ट हो जावें। फलों की खेती के लिए ऐसा तुषार लाभप्रद होता है, अतः यहाँ रसदार फल अधिक होते हैं।

वर्षा का वार्षिक औसत साधारण होता है। सूखे प्रदेशों में १५"–२०" और तर प्रदेशों में ३०"–४०" वर्षा हो जाती है जो स्थानीय प्राकृतिक रचना पर निर्भर रहती है। यह वर्षा प्रायः पार्वत्य वर्षा ही होती है। वर्षा क्षणिक किन्तु जोरदार झड़ी के रूप में होती है। पश्चिमी भाग अधिक तर किन्तु पूर्वी भाग प्रायः सूखे रहते हैं तथा ज्यों-ज्यों समुद्र से दूर होते हैं वर्षा की मात्रा कम होती जाती है।

जाड़े के मौसम में इन प्रदेशों में चक्रवातों के कारण उष्ण मरुस्थलों से गर्म हवाएँ यहाँ तक पहुँच जाती हैं अतः यहाँ का तापक्रम कुछ ऊँचा हो जाता

---

१. देखिये Jones & Whittlesey : Economic Geography.

है। दूसरी विशेष बात यह है कि गर्म होने के अतिरिक्त ये हवाएँ धूल से भरी रहती हैं। इस प्रकार के धूलमय तूफान अधिकांशतः वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में आते हैं। भिन्न-भिन्न देशों में इन तूफानों के भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं; जैसे उत्तरी अफ्रीका इटली और सिसली में सिरोको (Siroco) और कैलिफोर्निया में सैंटा अन्ना (Santa Ana)। मिश्र में इन्हें 'खमशीन', स्पेन में 'लेविशे', ट्यूनिस में 'चिली', लिबिया में 'गिबली' तथा दक्षिण पूर्वी आस्ट्रेलिया में 'ब्रिकफील्डर' कहते हैं। यूरोप के कुछ भूमध्य सागरीय भागों में उत्तर की ओर से सूखी और ठंडी हवाएँ भी चलती हैं जिनके कारण तापक्रम कुछ नीचा हो जाता है। ऐसी शुष्क और ठंडी हवाओं को फ्रांस में मिस्ट्रल (Mistral) और डैलमेशिया में बोरा (Bora) कहते हैं।

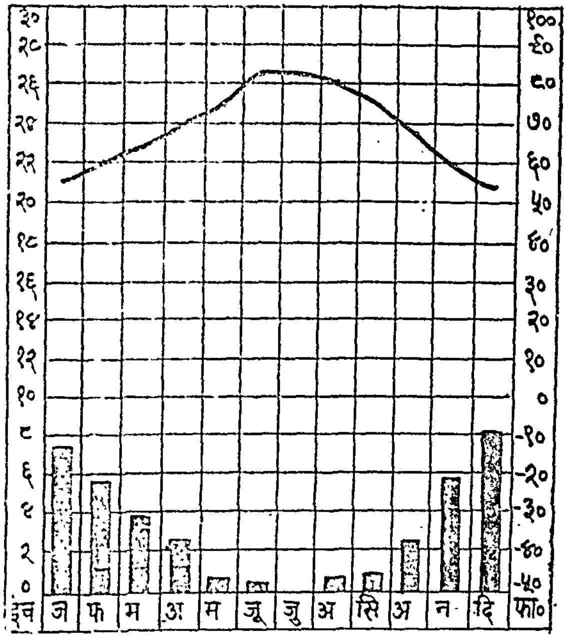

चित्र ५०—बैरूट (सीरिया)
वर्षा व तापक्रम

इस प्रकार इस जलवायु की मुख्य विशेषता सूखी गर्मी और आर्द्र जाड़ा है। शीत और ग्रीष्म ऋतु दोनों में ही आकाश स्वच्छ और नीला रहता है तथा सूर्य प्रकाश की बहुतायत रहती है। अगले पृष्ठ की तालिका में इस जलवायु प्रदेश सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं।

वनस्पति—इन प्रदेशों की वनस्पति को दो प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है—एक तो जाड़े में शीत और दूसरे गर्मियों में जल के अभाव का। इसीलिये यहाँ की वनस्पतियों की प्रायः दो सुप्तावस्था होती हैं—एक जाड़े में, दूसरी गर्मी में। केवल बसन्त ऋतु में ही यहाँ की वनस्पतियाँ भली प्रकार बढ़ सकती हैं। इन प्रदेशों में प्राकृतिक वनस्पति में खुले, किन्तु सदा हरे-भरे रहने वाले, वन मिलते हैं जो कम वर्षा तथा अनउपजाऊ मिट्टी वाले स्थानों में कँटीली झाड़ियों में बदल जाते हैं। इन झाड़ियों को यूरोप में 'मैक्वीस', संयुक्त राज्य अमेरिका में 'चेपरैल' तथा आस्ट्रेलिया में 'माली' कहते हैं। इन झाड़ियों के अतिरिक्त यत्र-तत्र लेवेन्डर, थोर, हॉली और लारेल तथा छोटे ताड़ आदि की झाड़ियाँ भी मिलती हैं। इन प्रदेशों में वन सदा ही हरे-भरे रहते

तापक्रम (फा० में)

स्थान	ऊँचाई (फु.में)	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. मार्सेलीज (फ्रांस)	२४६'	४३	५५	४९	५५	६१	६८	७२	७१	६६	५८	५०	४४	५७°	२९°
२. रोम (इटली)	१६४'	४४	४७	५१	५७	६४	७१	७७	६६	७०	६२	५२	४६	६०°	३३°
३. एथेन्स (यूनान)	३५१'	२५	४७	५२	६८	६८	७६	८१	८०	७४	३६	५७	५०	६३°	५६°
४. सैन्फ्रांसिसको	२०७'	४०	५१	५३	५४	५५	५७	५७	५२	५९	५८	५५	५१	५५°	१९°
५. केपटाउन	४०'	६९	७०	६८	६३	५९	५६	६५	५६	५७'	६१	६४	६७	६२°	१४°
६. एडीलेड (आ०)	१४०'	७४	६४	७०	६४	५८	५३	५२	५४	५७	६२	६७	७१	६३°	२२°

वर्षा (इंचों में)

१. मार्सेलीज	१.९	१.४	१.६	१.७	१.९	१.०	०.६	०.९	२.५	४.०	३.१	२.०	२२.६"
२. रोम	६.२	२.४	२.७	३.६	२.२	१.५	०.७	१.१	२.९	४.५	५.४	३.६	३१.७"
३. एथेन्स	२.०	१.५	१.३	०.८	०.७	०.६	०.३	०.४	०.६	१.७	३.०	२.४	१५.४"
४. सैन्फ्रांसिसको	४.८	३.६	३.३	१.७	०.७	०	०	०	०.३	१.०	२.६	४.७	२२.७"
५. केपटाउन	०.७	०.६	०.९	१.८	३.९	४.४	३.५	३.३	२.२	१.६	१.१	०.८	२४.८"
६. एडीलेड	०.८	०.६	१.१	१.८	२.८	४.०	२.६	२.४	१.८	१.८	१.०	०.८	२०.६"

हैं क्योंकि शीतकाल में नमी के साथ साधारण सर्दी पड़ती है जिससे पत्तियाँ झड़ती नहीं। ग्रीष्म काल की गर्मी तथा शुष्कता से बचने के लिए यहाँ के वृक्षों की कई विशेषताएँ होती हैं, जैसे : (i) कुछ वृक्षों की जड़ें बहुत लम्बी और मोटी होती हैं जिससे वे भूतल के नीचे से पानी खींच सकें, जैसे अंगूर की बेल और चेस्टनट; (ii) कुछ के पत्ते मोटे और चिकने होते हैं जिससे सूर्य द्वारा भाप बनकर इनका जल नहीं उड़ सकता, जैसे नीबू, नारंगी और संतरा; (iii) कुछ वृक्षों के तने मोटे और खुरदरी छाल वाले होते हैं जिनमें यथेष्ट जल भरा रहता है; (iv) कुछ पौधों की पत्तियों से रस निकल कर तनों पर जमा हो जाता है जिससे उसके सारे छेद बंद हो जाते है और पत्तियों का जल भाप बनकर नहीं उड़ पाता; (v) कुछ की पत्तियों पर काँटे होते हैं और कुछ से बहुत बुरी बदबू निकलती है। अतः हानि पहुँचाने वाले जन्तु इनसे दूर रहते हैं।

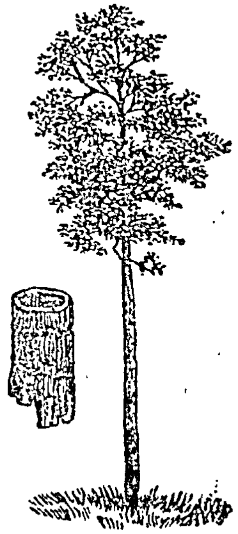

चित्र ५१—कार्क वृक्ष

इस प्रदेश के मुख्य वृक्ष जैतून, शाहबलूत, अंजीर, नीबू, नारंगी, अंगूर और शहतूत हैं। जलवायु की विशेषता के कारण ही शाहबलूत के पेड़ में मोटी छाल, जैतून में बड़े-बड़े बाल और मोटा तना, नारंगी में चिकनी और मोटी तह, अंगूर की बेल की लम्बी जड़ें और थोर के पेड़ में काँटे तथा मेंहदी में छोटी-छोटी पत्तियाँ होती हैं। इस प्रदेश में अनुकूल जलवायु वाले भागों में नुकीली पत्ती वाले वृक्ष—चीड़, फर, सीडर, साईप्रस, देवदार और जूनीपर आदि तथा ठंडे और नम भागों में अखरोट, हिकोरी, वालनट और बलूत के वृक्ष भी पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त चिली प्रदेश में पीनीयन अथवा चिलीपाईन और ऐस्पीनों, पश्चिमी आस्ट्रेलिया में जर्रा, कोरी और यूकलिप्टस के वृक्ष पाये जाते हैं। इस प्रदेश में तीव्र गर्मी पड़ने के कारण घास के मैदानों का अभाव पाया जाता है और इस कारण पशु चारण कम होता है। तथा दूध देने वाले चौपाये केवल पहाड़ी ढालों पर ही पाले जाते हैं।

आर्थिक विकास—आदि काल से ही यह प्रदेश मानव के विकास के लिए बहुत अनुकूल रहे हैं क्योंकि यहाँ उत्तम जलवायु, उपजाऊ भूमि, अनेक प्रकार की प्राकृतिक सम्पत्ति और विकास के साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सरलता से जीविका प्राप्ति के साधन उपलब्ध हो जाने के कारण ही इन प्रदेशों में अनेक देश प्राचीन काल की सभ्यताओं के केन्द्र रहे हैं। यूनान, रोम, मिश्र, सीरिया आदि देशों ने कला, विज्ञान, शासन प्रबन्ध में बहुत योग दिया है। इन प्रदेशों को 'उन्नतिशील प्रदेश' कहा गया है क्योंकि मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य को थोड़े से ही प्रयास से अत्यन्त सन्तोषजनक पुरस्कार मिल जाता है। इन प्रदेशों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। यही कारण है कि पुर्तगाल, स्पेन और इटली में लगभग ६०%, यूनान में ४५% तथा अल्जीरिया में ७०% व्यक्ति खेती करते हैं। यहाँ के निवासी

तीन प्रकार की फसलें पैदा करते हैं : (i) गेहूँ और राई जैसी फसलें जो ठंडी, छोटी और हल्की वर्षा वाली सर्दियों में पैदा हो जाती हैं ; (ii) जैतून, अंजीर, अखरोट और अंगूर आदि की फसलें जो लम्बी और शुष्क गर्मियों में पक जाती हैं और जिन्हें भूमि से ही जल प्राप्त हो जाता है; तथा (iii) तीसरे प्रकार की वे फसलें हैं जिनके लिए वैज्ञानिक तरीकों द्वारा सिंचाई की जाती है। यहाँ की मुख्य फसलें गेहूँ, जौ, मक्का, तम्बाकू और तरकारियाँ हैं। खेती से संबंधित, आटा पीसने, चीनी बनाने के धंधे भी यहाँ किये जाते हैं।

गर्मियों में तेज धूप और सर्दियों में वर्षा तथा पाले के अभाव के कारण रसदार फल बहुत पैदा किये जाते हैं जिनमें मुख्य नीबू, नारंगी, संतरा, अंगूर, बेर, सेव, नासपाती, जैतून, अंजीर, आड़ू, खूबानी, शहतूत, बादाम और अखरोट आदि हैं।

कृषि के अतिरिक्त यहाँ माँस और दूध के लिए भेड़, बकरियाँ और गाय आदि भी बहुत पाली जाती हैं। गायें पालने वाले लोग ग्रीष्म काल में भेड़, बकरियों और गायों को लेकर पहाड़ों पर चले जाते हैं जहाँ बर्फ के पिघलने से उत्तम घास पैदा हो जाती है। यहाँ दूध से पनीर और मक्खन बनाया जाता है। आस्ट्रेलिया में लायर पक्षी खूब मिलते हैं।

चित्र ५२—लायर पक्षी

इन प्रदेशों में खानें खोदने का काम भी किया जाता है क्योंकि कई भागों में बहुमूल्य खनिज पदार्थ मिलते हैं। चिली में कोयला और ताँबा; दक्षिणी स्पेन में पारा; इटली में गन्धक, पारा और संगमरमर; उत्तरी अमेरिका में केलीफोर्निया में फास्फेट, सोना और मिट्टी का तेल; स्पेन में जस्ता, लोहा और सीसा, आस्ट्रेलिया में तांबा तथा न्यूजीलैंड में सोना आदि मिलते हैं।

यह प्रदेश सभ्य देशों में गिने जाते हैं। अतएव यहाँ अन्य उद्योग-धंधों का भी बड़ा विकास हुआ है। शुष्क ग्रीष्म काल होने के कारण यहाँ रसदार फलों को धूप में सुखाकर सुरक्षित रखने और डिब्बों में बंद कर बाहर भेजने का धंधा भी बहुत उन्नति कर गया है। यूनान से मुनक्का, सीरिया से संतरे, फ्रांस और इटली से किसमिस और बादाम तथा अन्य सूखे फल विदेशों में भेजे जाते हैं। फ्रांस और स्पेन तथा पुर्तगाल में अंगूरों से शराब बनाई जाती है। स्पेन और पुर्तगाल की बरगंडी, पोर्टवाइन, क्लैरेट, शेम्पेन आदि शराब मुख्य हैं। इटली में जैतून के तेल से साबुन और फलों से शरबत तथा फूलों से रंग और सुगन्धित इत्र तथा सिरका आदि

बनाए जाते हैं। पुर्तगाल-स्पेन में शाहबलूत के वृक्ष से शीशियों के कार्क तथा अफ्रीका और स्पेन में एलफाफा घास से कागज, टोकरियाँ और रस्से आदि बनाए जाते है। उन प्रदेशों में सभी जगह शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। अतः फ्रांस, स्पेन और इटली में रेशमी कपड़े बनाने का व्यवसाय बड़ा उन्नति कर गया है। आस्ट्रेलिया में लकड़ी चीरने का धंधा बहुत उन्नति कर गया है। कैलीफोर्निया और इटली में स्वच्छ आकाश, चमकीली धूप आदि के कारण ही फिल्में अधिक बनाई जाती हैं।

(२) चीनी जलवायु प्रदेश (China Type or Warm Temperate Oceanic or Marine Climate)

इस प्रकार के जलवायु प्रदेश पूर्वी समुद्र तट पर लगभग उन्हीं अक्षांशों में पाये जाते हैं जिनमें पश्चिमी तटों पर भूमध्य सागरीय जलवायु मिलती है। जलवायु के विचार से यह रूम-सागरीय प्रदेश के विरुद्ध है किन्तु मानसूनी हवाओं के प्रदेश के अनूकूल है अर्थात् यहाँ गर्मी में अधिक वर्षा होती है और जाड़े की

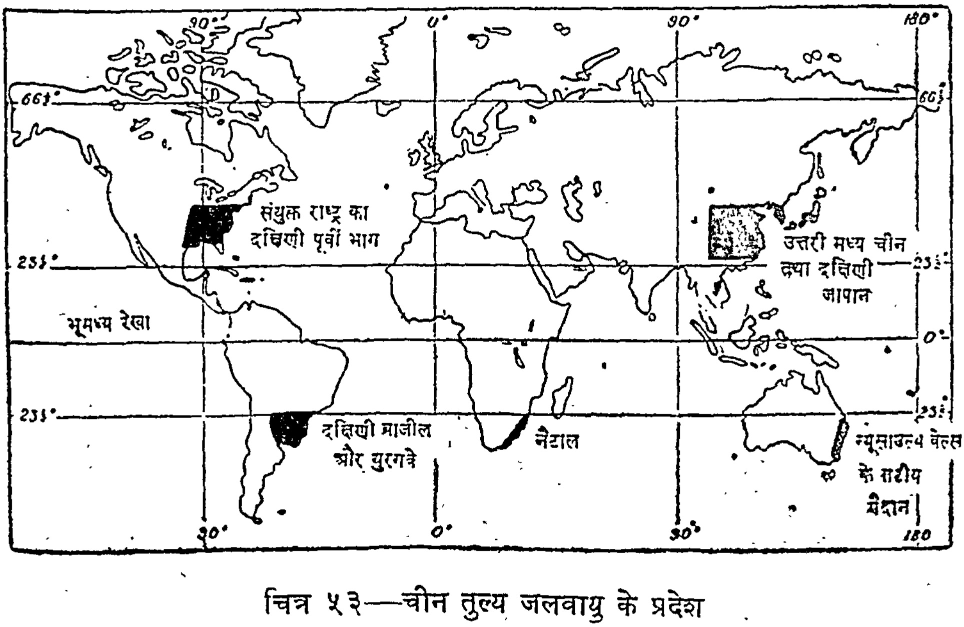

चित्र ५३—चीन तुल्य जलवायु के प्रदेश

ऋतु प्रायः सूखी रहती है। अन्तर केवल यह है कि मानसूनी हवाओं के प्रदेश की तुलना में यहाँ गर्मी कुछ कम और सर्दी अधिक पड़ती है। इसी कारण इसे शीतोष्ण कटिबन्ध की मानसूनी हवाओं का प्रदेश (Regions of Temperate Monsoon Climate) कहते हैं। इस प्रकार का जलवायु मुख्यतः चीन के उत्तरी और मध्यवर्ती भागों में पाया जाता है, अतः इसे चीन देश जैसे जलवायु वाला प्रदेश भी कहते हैं। इस प्रदेश के अन्तर्गत उत्तरी चीन, पश्चिमी कोरिया, दक्षिणी जापान, दक्षिणी पूर्वी संयुक्त-राज्य अमेरिका, दक्षिणी-पूर्वी ब्राजील,

यूरेग्वे, पैरेग्वे, दक्षिणी-पूर्वी अफ्रीका और दक्षिणी-पूर्वी आस्ट्रेलिया आदि देश आते हैं।

जलवायु—इस प्रदेश का जलवायु विषम रहता है। तापक्रम में अचानक और निश्चित परिवर्तन बहुधा होते रहते हैं। ग्रीष्मकाल अत्यन्त गर्म होता है। इस समय औसत तापक्रम ७०° फा० से ७५° तक हो जाता है। भीतरी स्थानों में समुद्र से दूर पड़ने के कारण तापक्रम ९०° फा० से भी ऊँचा हो जाता है और वायु-मण्डल की सापेक्षिक आर्द्रता भी ऊँची रहती है। ग्रीष्मकाल में आस्ट्रेलिया में ब्रिक-फील्डर (Brick-Fielder), अर्जैनटाइना में जोंडा (Zonda) और दक्षिणी अफ्रीका तथा द० चीन में फोन नामक गर्म हवाओं से तापक्रम बढ़ जाता है।

शीतकाल में यहाँ कड़ाके के जाड़े पड़ते हैं क्योंकि पूर्वी तट पर होने के कारण जाड़े में जो हवाएँ ध्रुवों पर होती हुई पश्चिम की ओर से आती हैं उनसे बर्फ पड़ती है जिससे सर्दी और भी अधिक बढ़ जाती है। इसके कारण तापक्रम ३०° से ४०° फा० तक हो जाता है। इस प्रकार की ठण्डी ध्रुवी हवाओं को अर्जैनटाइना में 'पेम्पैरो' (Pampero), न्यू साऊथवेल्स में 'सदर्ली बर्स्टर' (Southerly Burster) और अटलांटिक के खाड़ी के प्रदेशों में 'नर्दर' (Norther) कहते हैं।

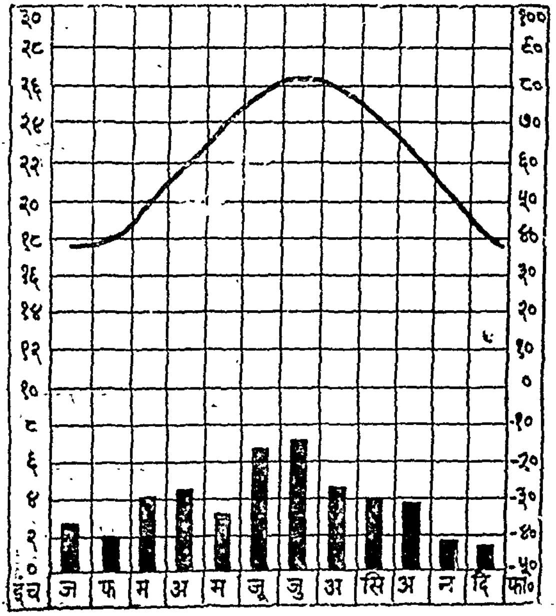

चित्र ५४—शंघाई
वर्षा और तापक्रम

यहाँ तापक्रम-भेद मध्यम रहता है। अधिकांश वर्षा ग्रीष्म-ऋतु में होती है। यह वर्षा उन मानसूनी हवाओं से होती है जो प्रशान्त महासागर से स्थल की ओर बढ़ती हैं। ग्रीष्म की वर्षा बहुत जोरों से एवं आँधी के साथ होती है—यहाँ तक कि कभी-कभी तो एक ही दिन में ८" तक पानी बरस जाता है। सं० राज्य स्थित इस प्रदेश में ६० से ९० तक विद्युत आँधियाँ चलती हैं। मूसलाधार वर्षा होने के कारण इसका बहुत सा भाग बह कर नष्ट हो जाता है। किन्तु जाड़े की वर्षा हल्की (बौछारों के रूप में) और देर तक रहती है, अतः

इसका पानी भूमि में भली-भाँति सोख जाता है। किन्तु सर्दी की यह वर्षा बहुत ही थोड़ी होती है। शीतकाल में वर्फ भी गिरती है। वार्षिक वर्षा का औसत २०" से ४५" तक होता है। इन प्रदेशों में वर्षा प्रायः साल भर ही होती रहती है। यह वर्षा भीतरी भागों की अपेक्षा तटीय भागों में अधिक होती है।

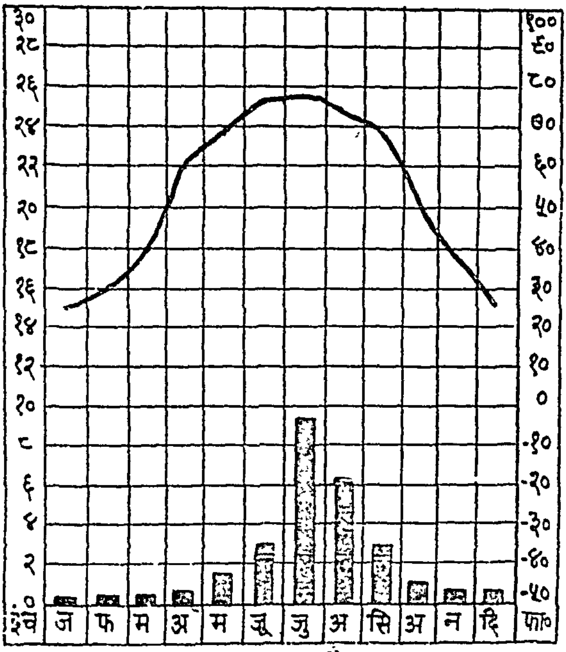

चित्र ५५—पाईपिंग
वर्षा और तापक्रम

इस प्रकार इस जलवायु की मुख्य विशेषता सूखे ऋतु का न होना और जाड़े की कठिनता का होना है। समुद्र तटों पर तूफान भी बहुत आया करते हैं। खाड़ी के प्रदेशों में हरीकेन (Hurricanes) और चीनी समुद्र में टाइफून (Typhoon) आँधियाँ बड़ी विनाशकारी होती हैं। अगले पृष्ठ पर इस प्रदेश के जलवायु सम्बन्धी आँकड़े दिए गये हैं।

वनस्पति—इन प्रदेशों में मामूली गर्मी और हल्की सर्दी पड़ने के कारण प्राकृतिक वनस्पति प्रायः चौड़े पत्ते वाले सदाबहार वन हैं। किन्तु यह वन विषुवतरेखीय वनों की भाँति उतने सघन नहीं होते। इन पेड़ों की पत्तियाँ वर्ष के किसी खास मौसम में नहीं गिरतीं, किन्तु साल भर ही एक-सी जलवायु रहने के कारण पत्तियाँ एक साथ फलतीं-फूलती हैं और यह वृक्ष सदैव हरे-भरे रहते हैं। यहाँ चौड़ी पत्ती वाले वनों में ओक, लारेल, मेप्ल, अखरोट, कपूर, हिकोरी, मगनोलियां, वीच आदि के वृक्ष मुख्यतः पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जंगलों में बाँस, ताड़, शहतूत, सिंकोना, सीडर के वृक्ष तथा चाय और काफी की झाड़ियाँ भी काफी उगती हैं। आस्ट्रेलिया में यूकलिप्टस और चीन में कपूर, यूरेग्वे में यरवामेट (जिसे चाय को तरह पीने के काम में लिया जाता है) आदि विशेष रूप से पैदा होते हैं। दक्षिणी ब्राजील में हल्की चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष पाये जाते हैं। ऊँचे पठारी भागों (द० अप्लेशियन, द० ब्राजील, ब्ल्यू पर्वत तथा द० अफ्रीका के पर्वतों पर) में देवदार, चीड़, इत्यादि के जंगल मिलते हैं।

आर्थिक विकास—इन प्रदेशों को 'उन्नति के प्रदेश' कहा गया है क्योंकि यहाँ जीविकोपार्जन के साधन बहुत सरल हैं। इन प्रदेशों में चीन और जापान में बहुत घनी जनसंख्या पाई जाती है। आस्ट्रेलिया के तटीय भागों में और नेटाल

तापक्रम (फा० में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. हैंको (चीन)	११८'	४०	४३	५०	६२	७१	८०	८६	८६	७७	६७	५२	४५	६०·३°	४६°
२. न्यू आर्लियन्स	५१'	५४	५७	६३	६९	७५	८०	८२	८१	७८	६९	६१	५५	६८°	२८°
३. ब्रिस्बेन	१३७'	७७	७६	७४	७०	६४	६०	५८	६१	६५	७०	७३	७६	६७°	१९°
४. डरबन	२६०'	७७	७७	७६	७२	६८	६५	६२	६६	६८	७०	७३	७५	७१°	१५°

वर्षा (इंचों में)

१. हैंको	१·८	१·९	३·८	६·०	६·५	९·५	७·१	३·८	२·८	३·२	१·९	१·१	४९·४"
२. न्यू आर्लियन्स	४·५	४·३	४·६	४·५	४·१	५·४	६·५	५·७	४·५	३·२	३·८	४·५	५५·६"
३. ब्रिस्बेन	६·७	६·७	६·१	३·७	३·१	२·६	२·३	२·४	२·१	२·७	३·७	५·१	४७·१"
४. डरबन	४·६	४·५	४·६	३·०	२·०	०·७	०·८	२·०	३·७	४·९	४·४	४·५	३९·७"

प्रांत में भी जनसंख्या का घनत्व बहुत है। चीन की सभ्यता तो बहुत ही पुरानी मानी जाती है। यह सभ्यता ह्वांगो नदी की घाटी में उत्पन्न हुई और यांगटिसीक्यांग तथा सीक्यांग नदी की घाटियों में फली-फूली। चीनी लोगों ने ही सबसे पहले छपाई की कला तथा स्याही बनाने का आविष्कार किया। इनके कठिन परिश्रम और अध्यवसाय का परिचय हमें चीन की बड़ी दीवाल के रूप में मिलता है जिसे इन लोगों ने मंगोल लोगों के आक्रमणों से बचने के लिए बनाया था।

चीन को बहुधा 'अकाल का देश' (Land of famines) कहा जाता है क्योंकि न केवल यहाँ वर्षा की मात्रा ही अपर्याप्त होती है बल्कि बहुधा नदियों में बाढ़ आजाने से खेती भी नष्ट हो जाती है और देश में अनाज की कमी पड़ जाती है।

इन प्रदेशों में चावल, कपास, तम्बाकू, चाय, गन्ना, मक्का, सन, सोयाफली और सब्जियाँ अधिक पैदा की जाती हैं। चीन आज भी विश्व का सबसे प्रमुख खेतिहर देश माना जाता है। अधिक जनसंख्या के कारण चीन में उपजाऊ भूमि का महत्त्व बहुत अधिक है और इसीलिए खेती के लिए भूमि का छोटे से छोटा टुकड़ा भी काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त पहाड़ी ढालों पर सीढ़ी के आकार के खेत भी बहुत बनाए गये हैं। चीन में विश्व में सबसे अधिक चावल पैदा किया जाता है। कपास, नील, अफीम, तम्बाकू, सोयाफली आदि भी काफी मात्रा में बोई जाती है। पहाड़ी भागों में चाय और शहतूत के वृक्ष बहुत उगाये जाते हैं। ब्राजील में तम्बाकू, गन्ना, चावल और चाय, कहवा उगाये जाते हैं। आस्ट्रेलिया में न्यू साउथ वेल्स और क्वीन्सलेंड में गन्ना, गेहूँ और मक्का अधिक मात्रा में पैदा की जाती है। नैटाल में भी चावल, गन्ना और चाय पैदा होते हैं। पैरेग्वे में कपास, तम्बाकू और गेहूँ होता है।

इन प्रदेशों में अधिक जनसंख्या के कारण प्रायः सभी प्राप्य उपजाऊ भूमि पर खेती की जाती है, अतः यहाँ घास के मैदान नहीं मिलते है और इसीलिये चीन में गाय-बैल बहुत कम पाले जाते हैं। किन्तु ऐसे पशु जो जूठन अथवा विष्ठा पर जीवित रह सकते हैं (जैसे सूअर और मुर्गियाँ) बहुत पाले जाते हैं। इसके अतिरिक्त चीन में यांगटिसीक्यांग की घाटी में शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं। विश्व में सबसे अच्छा कच्चा रेशम चीन में ही उत्पन्न किया जाता है। दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया के तटीय भागों में पशु पालने का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। ब्राजील और यूरेग्वे में भी पशु पाले जाते हैं। जापान के तटीय भागों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

इस प्रदेश में कोयला और मिट्टी का तेल पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कोयला चीन में शाँसी और शेंसी प्रांतों में तथा संयुक्त राज्य में खाड़ी तट के निकट, आस्ट्रेलिया में सिडनी और न्यूकेसिल तथा नेटाल में मिलता है। मिट्टी का तेल संयुक्त राज्य में तथा टीन और तांबा चीन के यूनान प्रांत में, लोहा ऊपे प्रांत में और सुरमा तथा टंगस्टन हूनन प्रांत में मिलता है। जापान के दक्षिणी भाग में लोहे और कोयले की विस्तृत खानें पाई जाती हैं।

दक्षिणी पूर्वी संयुक्त राज्य, नैटाल, यूरेग्वे, दक्षिणी क्वींसलैंड और न्यूसाउथ वेल्स की उन्नति गोरी जातियों के लोगों द्वारा हुई है।

(३) तूरान जलवायु प्रदेश या शीतोष्ण स्थलीय जलवायु प्रदेश (Turan Region or Temperate Continental Climate)

इस जलवायु के प्रदेश प्राय: ४५° से ६०° उत्तर और दक्षिण अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के केवल भीतरी भागों में पाये जाते हैं। इस प्रदेश में एशियाई तुर्किस्तान, उत्तरी-पश्चिमी अर्जेन्टाइना, मरे और डार्लिंग नदियों के मैदान, रूस के दक्षिणी भाग का बेसिन, पोलैंड और डैन्यूब नदी के मैदान, दक्षिणी कनाडा और उत्तरी संयुक्त-राज्य अमेरिका के मध्यवर्ती भाग और द० अफ्रीका सम्मिलित हैं। एशिया महाद्वीप में तूरान देश में इसका विस्तार अधिक होने के कारण इसको तूरान जलवायु का प्रदेश भी कहते हैं।

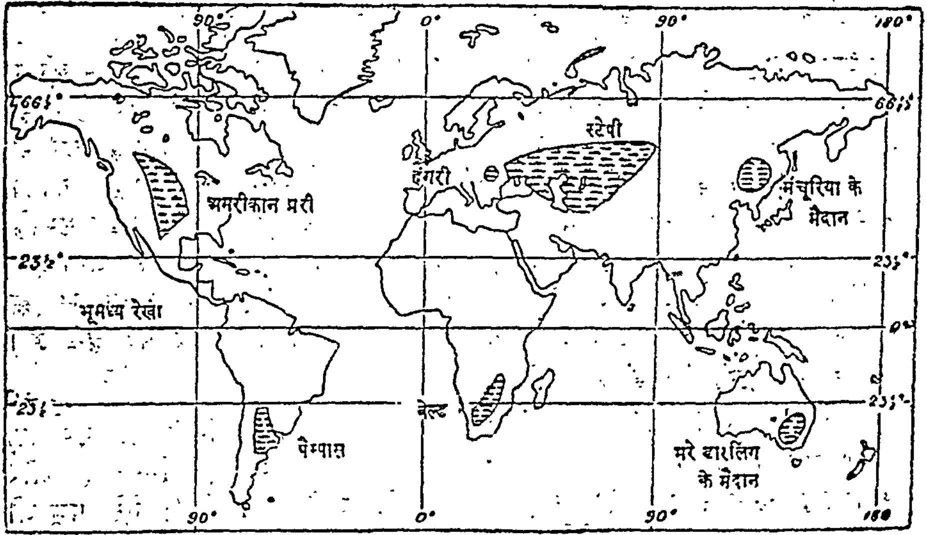

चित्र ५६—तूरानी प्रदेश

जलवायु—समुद्र से बहुत दूर और महाद्वीपों के भीतरी भागों में स्थित होने के कारण इन प्रदेशों का जलवायु साधारणतः विषम तापमान और कम वर्षा वाला होता है। कुछ भागों का जलवायु तो लगभग अर्द्ध मरुस्थलीय अथवा मरुस्थलीय ही होता है। समुद्र से दूर होने के कारण इन प्रदेशों में गर्मी में अधिक गर्मी पड़ती है और औसत तापक्रम ७०° से ७५° फा० तक पहुँच जाता है। हवा में शुष्कता की अधिकता के कारण कभी-कभी तो तापक्रम ११०° फा० तक पहुँच जाता है तथा शीत में कड़ाके के जाड़े पड़ते हैं यहाँ तक कि न्यूनतम तापक्रम २५° से ४०° फा० तक उतर जाता है और ध्रुव वृत्तों की ओर से आने वाली ठण्डी शुष्क हवाएँ यहाँ और भी ठण्डक पैदा कर देती हैं। सर्दी में बर्फ भी गिर जाता है जो ग्रीष्म के आरम्भ से पिघलने लगता है। इन प्रदेशों का दैनिक और वार्षिक तापक्रम भेद बहुत अधिक रहता है।

यहाँ की वर्षा की मात्रा अधिक नहीं होती। जो कुछ भी वर्षा होती है वह ग्रीष्म-काल के आरम्भ में ही होती है। वार्षिक वर्षा का औसत १०" से १२" तक होता है। ग्रीष्मकाल में ये प्रदेश निम्न वायु भार में रहते हैं अतः समुद्र से आने वाली भाप भरी हवाएँ यहाँ वाहनिक वर्षा करती हैं, किन्तु शीतकाल में यही प्रदेश उच्च वायु भार क्षेत्रों के अन्तर्गत हो जाते हैं अतः वायु इन भागों से बाहर की ओर जाने लगती है। यह स्वभावतः शुष्क होती है इसलिए वर्षा बिल्कुल नहीं करती। इस प्रकार इस जलवायु प्रदेश की मुख्य विशेषता उनके जाड़े और गर्मी के तापक्रम के बीच में असाधारण अन्तर का होना है। वर्षा भी कम ही होती है। इस जलवायु प्रदेश के कुछ स्थानों के जलवायु सम्बन्धी आँकड़े पृष्ठ १८० की तालिका में दिए गए हैं।

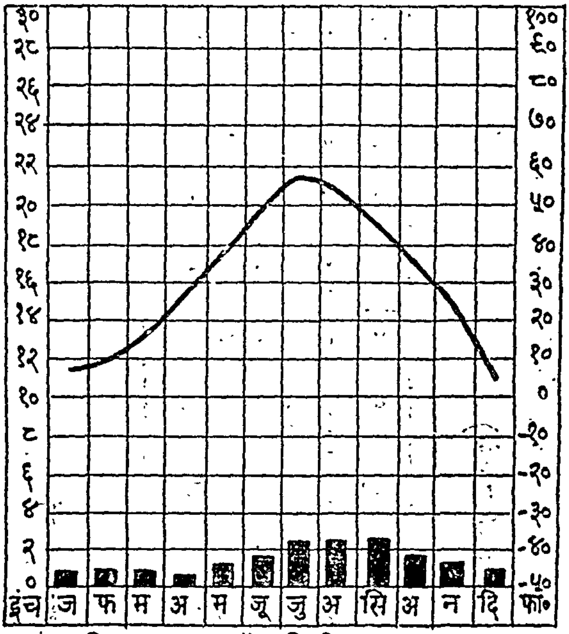

चित्र ५७—डॉज सिटी—कन्सास
(वर्षा और तापक्रम)

वनस्पति—इन प्रदेशों में कम वर्षा और कम तापक्रम के कारण पेड़ नहीं उग पाते, केवल छोटी-छोटी घास और कँटीली झाड़ियाँ उग सकती हैं जिनके बीच में रेत के बड़े-बड़े ढेर पाए जाते हैं। एशिया में तूरान में तो किसी प्रकार की वनस्पति मिलती ही नहीं। यूरेशिया के दक्षिणी भाग, अमेरिका के प्रेरीज के दक्षिणी भाग, दक्षिणी अमेरिका के कम्पास और आस्ट्रेलिया के डार्लिंग डाउन्स में छोटी-छोटी घास और कँटीली झाड़ियाँ ही पाई जाती हैं। पानी के स्थानों के समीप विलो, पोपलर और एडलर के पौधे उग आते हैं। यहां की घास छोटी जड़ों वाली, सख्त भूरी और बिना गूदे की होती है।

आर्थिक विकास—इन प्रदेशों में वर्षा बहुत कम होती है अतएव सिचाई की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए जिन भागों में सिचाई के साधन उपलब्ध हैं वहाँ गेहूँ और मक्का अधिक पैदा किये जाते हैं। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में तो गेहूँ और मक्का बहुत बड़ी मात्रा में पैदा किये जाते हैं। मध्य एशिया के स्टेप्स प्रदेश में नदियों की घाटियों में सिचाई द्वारा कपास, मक्का, तम्बाकू, गेहूँ और दालें पैदा की जाती हैं। अर्जेनटाइना में सन, गेहूँ और मक्का बहुत पैदा किया जाता है। यहाँ पशु भी बहुत पाले जाते हैं। आस्ट्रेलिया में गेहूँ की खेती बहुत बड़ी मात्रा में की जाती है तथा भेड़ें भी बहुत पाली जाती हैं।

तापक्रम (फा० में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम-भेद
१. ओमाहा (सं०रा०)	११०३′	२०	२४	३६	५०	६२	७२	७६	७४	६६	५४	३८	२७	५०°	५६°
२. बाहिया (द० अ०)	४९′	७१	७०	६६	५९	५२	४६	४५	४७	५३	५७	६३	६७	६०°	२६°
३. सैमीपलैसिंक	५९०′	०·५	२	१४	३८	५७	४८	७२	६७	५५	३८	२०	६	३७°	७१·५°
४. विन्नीपेग	१४९२′	-३·५	-०·५	१५	३९	५२	६३	६६	६३	५४	४२	२२	७	३५°	७०°
५. आस्ट्राखान	५०′	·५	२१	३२	४९	६४	७३	७८	७५	६४	५०	३८	२६	४९°	५९°
६. विलकैनिया	२६७′	८१	८०	७४	६५	५८	५२	५०	५४	६०	६८	७५	८०	६६°	३१°

वर्षा (इञ्चों में)

१. ओमाहा	०·६	०·८	१·३	१·६	२·२	३·३	३·२	२·२	१·९	१·४	१·०	०·९	२०·९″
२. बाहिया	१·७	२·१	२·७	२·१	१·२	१·१	१·०	१·१	१·५	२·२	२·२	१·९	२०·३″
३. सैमीपलैसिंक	०·५	०·२	०·४	०·४	०·८	०·९	१·१	०·४	०·६	०·६	०·६	०·८	७·३″
४. विन्नीपेग	०·८	०·७	१·२	१·५	२·१	३·०	३·२	२·४	२·१	१·४	१·०	०·९	२०·२″
५. आस्ट्राखान	०·५	०·३	०·४	०·५	०·६	०·७	०·५	०·५	०·५	०·४	०·४	०·५	५·९″
६. विलकैनिया	१·०	०·८	१·१	०·७	१·०	१·१	०·	०·८	०·७	०·९	०·७	०·८	१०·२″

इन प्रदेशों का आर्थिक विकास बहुत ही कम हो पाया है, क्योंकि यहाँ के निवासी अधिकतर खानाबदोश हैं। इन्हें स्टेप्स में 'खिरगीज' और 'कज़ाक', अफ्रीका में 'हॉटेनटाट', पम्पास में 'ग्वाको' और ग्रेट बेसिन में 'रेड इंडियन' कहते हैं।

खिरगीज (The Khirghiz)—एशिया के अति शीतोष्ण तृण-क्षेत्रों या स्टेप्स, कैस्पियन सागर और अल्टाई पर्वतों के बीच के निम्न भू-भागों के प्राचीन भ्रमणकारी निवासी हैं। इस प्रदेश में ग्रीष्म काल में कड़ी गरमी, शीतकाल में कड़ी सर्दी तथा केवल वसन्त काल में अल्प वर्षा होती है जिससे यहाँ प्रचुर घास उत्पन्न हो जाती है जो खिरगीज की गायों, बैलों, भैंसों, घोड़ों, ऊँटों, भेड़ों, बकरियों और सुअरों को चारा प्रदान करती है। यहाँ की प्रायः शुष्क जलवायु में वृक्ष नहीं उग सकते और यदि कहीं कोई वृक्ष उगता भी है तो उसे यहाँ के पशु बाल्यकाल में ही समाप्त कर देते हैं। उपयुक्त पालतू पशुओं के अतिरिक्त यहाँ हिरन, खरगोश और कुत्ते भी इधर-उधर घूमा करते हैं। इन तृण क्षेत्रों में वृक्षों के अभाव के कारण केवल ऐसे ही पक्षी पाए जाते हैं जिनके उड़ने के पंख नहीं होते। ये शुतुर्मुग की जाति के होते हैं। यहाँ मुर्गियाँ भी पाली जाती हैं।

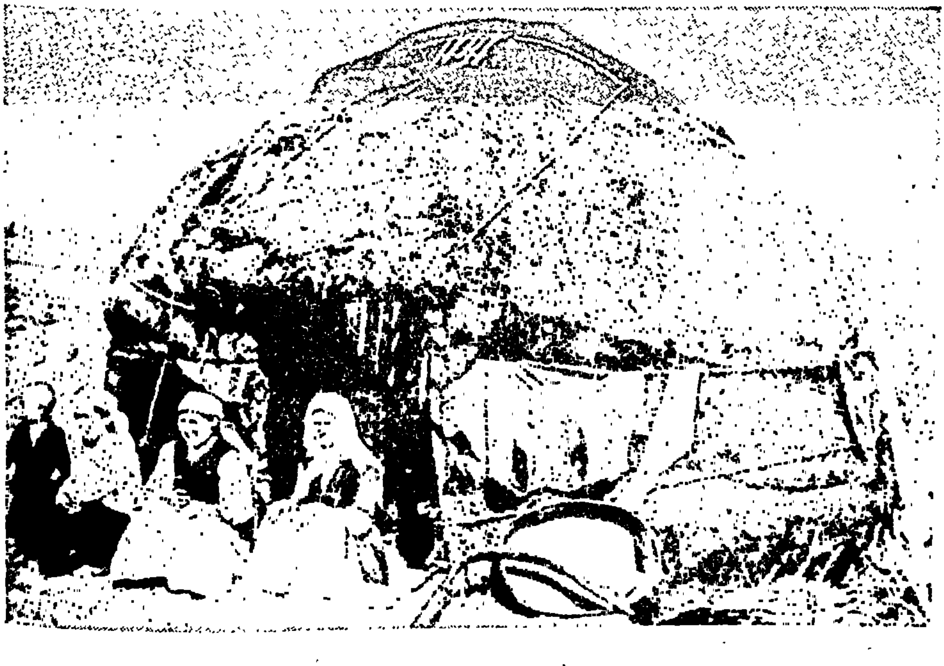

चित्र ५८—स्टेप्स के निवासी

खिरगीज के प्रदेश के भौगोलिक वातावरण इन्हें स्थिरतापूर्वक नहीं रहने देते। इनके प्रदेश की भूमि शीतकाल में हिमाच्छादित हो जाती है, इसलिए उस समय इन्हें अपने पशुओं के साथ सुरक्षित घाटियों की खोज में इधर-उधर भ्रमण-

करना पड़ता है। ग्रीष्म काल में कड़ी गरमी के कारण जब तृण-क्षेत्र सूखने लगते हैं तब इन्हें अपने ढोरों तथा पशुओं के लिए हरी घास की खोज में पुनः भ्रमण करना पड़ता है और जमाए हुए ऊन के नमदों के गोल तम्बू डाल कर रहना पड़ता है। इन तम्बूओं को यूर्त (Yurt) कहते हैं। इन तम्बुओं में यह चमड़े और नमदे का बिस्तर बनाते हैं। ये अपने पशुओं द्वारा ही भोजन, वस्त्र, डेरा तथा सवारी प्राप्त कर सकते हैं। गाय और भैंस का दूध पीते हैं। दूध जमाकर खाने के लिए पनीर बनाते हैं। दूध मथकर मक्खन निकालते हैं। खट्टे दूध को सड़ाकर क्यूमिस (Koumiss) नाम की शराब बनाते हैं। पशुओं का माँस भी खाते हैं। चरबी के लिए सूअर भी पालते हैं। भेड़ों की ऊन को जमाकर तम्बुओं के लिए नमदे तथा बुनकर पहनने के लिए कपड़े बनाते हैं। पशुओं के चमड़े से जूते, टोपियाँ, ढाल, पेटियाँ, प्यालियाँ, टोकरियाँ तथा पानी भरने की मश्कें बनाते हैं। पशुओं की हड्डियों से खूँटे, काँटे तथा सुइयाँ बनाते हैं और नसों तथा चमड़ों के धागे बनाते हैं; सींगों से बटन तथा तुरही नाम के बाजे बनाते हैं। घोड़ों से सवारी का तथा बैलों और ऊँटों से माल (खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने तथा तम्बुओं के सामान) ढोने का काम लेते हैं। पक्षियों से खाने के लिए अंडे भी प्राप्त करते हैं।

खिरगीज़ का डील-डौल छोटा किन्तु स्वस्थ होता है। भ्रमणकारी जीवन के कारण ये कुशल घुड़सवार बन जाते हैं और आधुनिक युग में ये अच्छे सिपाहियों का काम भी देते हैं। इनकी सम्पत्ति इनके पशुओं की संख्या से जानी जाती है। इनका कुटुम्ब जितना ही बड़ा होगा उनके पास उतने ही अधिक पशु होंगे। इनके कुटुम्ब के सरदार को 'पिसा' कहा जाता है। परिवार की वृद्धि के लिए ये एक से अधिक शादियाँ करते हैं जिनसे बहुत से बच्चे पैदा हो जाते हैं। इनकी औरतें घर का सब काम करती हैं। इनका जीवन वैसा ही कठिन, शुष्क तथा नीरस होता है जैसे इनके भौगोलिक वातावरण होते हैं। ये बड़े संकीर्ण तथा परिवर्तन विरोधी या दकियानूसी विचार के होते हैं और अपने जीवन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहते हैं। इनकी प्रकृति आलसी तथा घमण्डी होती है और अपनी कठिनाइयों का उपाय न सोचकर ये केवल भाग्य पर भरोसा रखते हैं। कभी-कभी ये लोग आस-पास के देशों पर आक्रमण भी किया करते हैं। खिरगीज़ के भ्रमणकारी तथा अस्थिर जीवन के कारण इनके शीतोष्ण तृण-क्षेत्रों को "अस्थिर भ्रमणकारियों का देश" (Region of Wandering and Restlessness) कहा जाता है।

आधुनिक काल में ये प्रदेश गेहूँ की खेती के लिए उपयुक्त बनाए गए हैं तथा सभ्य किसानों ने यहाँ के प्राचीन निवासियों को पर्वतीय या अधिक सूखे तथा अनउपजाऊ भागों में भगा कर यहाँ कृषि तथा पशु पालन की उन्नति करके इन्हें घनी जन-संख्याओं से परिपूर्ण कर दिया है तथा इन्हें संसार के गेहूँ, दूध, मक्खन, पनीर, माँस, ऊन, चमड़ों, हड्डियों, सींगों, अण्डों तथा सुन्दर, स्वस्थ और पुष्ट जीवित पशुओं के बड़े भण्डारों में परिणत कर दिया है। इन तृण-

क्षेत्रों के बीच से संसार के सबसे बड़े रेल मार्ग ट्रांस साईबेरियन, कैनेडियन पैसेफिक और ट्रांस ऐंडीयन निकाले गए हैं।

एशिया के मंगोलिया में मंगोल (Mangols), तुर्कोमान (Turkoman) तुर्किस्तान में, करसाक (Cossacks) यूरोप में दक्षिणी-पश्चिमी रूस, दक्षिणी अमेरिका के शीतोष्ण तृण-देशों के भ्रमणकारी निवासी हैं। इनका जीवन भी प्रायः खिरगीज़ के जीवन की भाँति ही होता है।

(४) ईरान की जलवायु के प्रदेश या शीतोष्ण मरुस्थलीय प्रदेश (Iran or Temperate Desert Type Regions)

ये प्रदेश महाद्वीपों के आंतरिक भागों में पाये जाते हैं। ये अधिकांशत: ३०° से ४५° अक्षांशों के मध्य में स्थित है, यद्यपि इन अक्षांशों के अतिरिक्त कहीं-कहीं ये भूमध्य रेखा या ध्रुवों के निकट तक चले गए हैं। ये विशेषतः पश्चिम में भूमध्य सागरीय प्रदेशों और पूर्व में चीन के प्रदेशों के बीच में स्थित हैं। इस प्रदेश के अन्तर्गत संसार की बड़ी बड़ी उच्चतम भूमियाँ सम्मिलित हैं--ईरान का पठार, मैक्सिको, पश्चिमी संयुक्त-राज्य, दक्षिण अफ्रीका के बचूनालैंड और केप कोलोनी का उत्तरी भाग व मंगोलिया, मध्य एशिया के तारिम बेसिन, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान अरमीनिया, कुर्दिस्तान और एशिया माइनर के पठार आदि हैं।

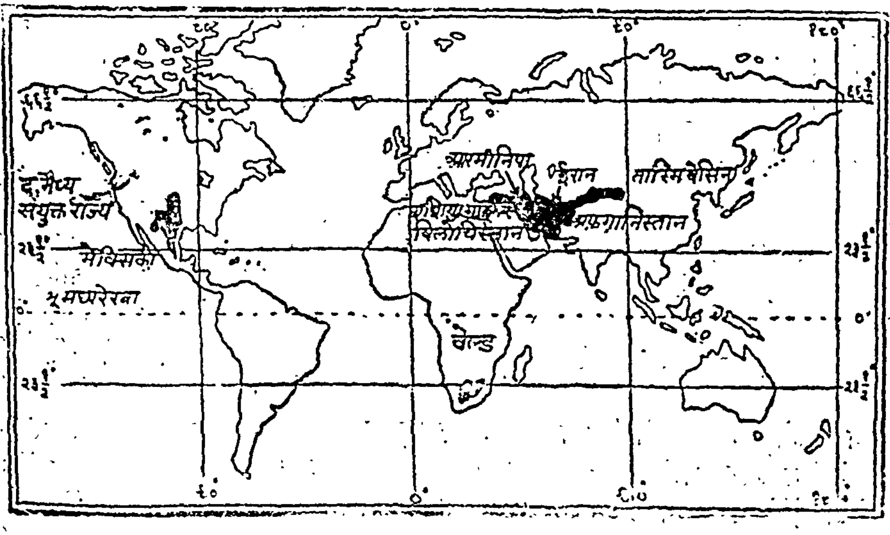

चित्र ५६—ईरान जलवायु प्रदेश

जलवायु—यह सब प्रदेश उन पठारों पर स्थित हैं जो पर्वत शृङ्खलाओं से घिरे हैं और समुद्र से दूर हैं। इनमें तापक्रम का अन्तर अधिक और वर्षा अत्यन्त ही कम होती है। ये शीतकाल में अधिक भार के विस्तृत क्षेत्र का निर्माण करते हैं और ग्रीष्म में भीतर की ओर प्रवाहित होने वाली हवाओं के न्यून भार के क्षेत्र

का। इसलिए जो भी थोड़ी बहुत वर्षा होती है वह अधिकांशतः ग्रीष्मकाल में ही होती है केवल फारस के समान प्रदेशों को छोड़कर जो भूमध्य-सागरीय प्रदेशों की सीमा पर स्थित हैं और जहाँ शीतकाल के चक्रवातों द्वारा वर्षा होती है।

अधिक ऊँचाई पर स्थित प्रदेशों में—जैसे तिब्बत और बोलेविया में—वायु इतनी कम है कि दिन में सूर्य की प्रखर किरणों के कारण कुछ स्थानों में धरती का तापक्रम १००° फा० से भी अधिक हो जाता है किन्तु रात्रि में गर्मी का इतनी शीघ्रता से विसर्जन हो जाता है कि तापक्रम हिमांक बिन्दु से भी नीचे पहुँच जाता है। ग्रीष्म ऋतु में तापक्रम ७६° से ८०° फा० तक रहता है। दैनिक तापक्रमान्तर भी बहुत रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत १५" से अधिक नहीं होता। उच्च प्रदेशों में बर्फ भी गिरती है। दैनिक और वार्षिक तापक्रम भेद ५०° फा०से भी अधिक रहता है।

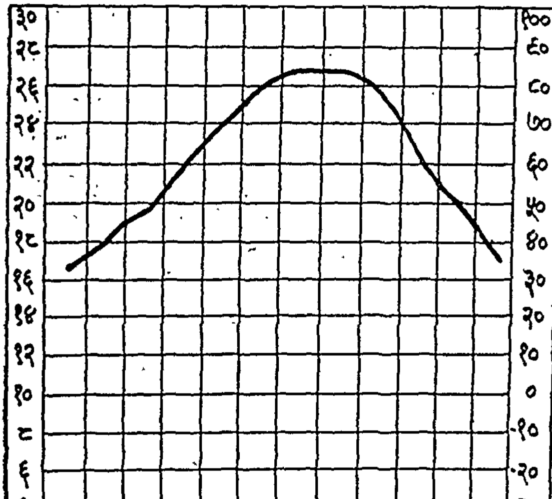

चित्र नं० ६०

इस जलवायु की मुख्य विशेषता ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी और शीत में कड़ी सर्दी तथा कम वर्षा का होना है। कुछ स्थानों के जलवायु सूचक अंक अगले पृष्ठ पर दिए गये हैं।

वनस्पति—इन प्रदेशों में प्राकृतिक वनस्पति में घास के अतिरिक्त और कोई वनस्पति पैदा नहीं होती। वर्षा की कमी के कारण वृक्ष भी नहीं उग सकते, केवल कंटीली झाड़ियाँ अधिकतर उगती हैं। एशिया माइनर, तारिम के बेसिन और मैक्सिको के पठार पर यह अधिक पाई जाती है। मैदानों में छोटी-छोटी घास भी उग आती है। ईरान के पठार के उत्तरी भाग में अधिक वर्षा होने के कारण तथा कैस्पियन सागर के तटवर्ती पहाड़ी ढालों पर वन भी पाये जाते हैं।

आर्थिक विकास—इस प्रदेश में अपर्याप्त वर्षा और अनउपजाऊ भूमि के कारण कृषि उद्योग का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। केवल नदियों की घाटियों में सिंचाई के सहारे गेहूँ, कपास और तम्बाकू पैदा किया जाता है। सं० राज्य की साल्टलेक घाटी में चुकन्दर, कपास; दजला-फरात की घाटी में गेहूँ, मक्का, चावल,

तापक्रम (फारेनहीट में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. साल्ट लेक सिटी (सं० रा०)	४,३६६′	२९	३३	४१	५०	५७	६७	७५	७४	६४	५२	४१	३२	५१°	४६°
२. काशगर (एशिया)	४,२५५′	२२	३४	४६	६१	७०	७७	८०	७६	६९	५५	४०	२६	५५°	५८°
३. तेहरान	४,००२′	३४	४२	४८	६१	७१	८०	८५	८३	७७	६६	५१	४२	६२°	५१°
४. उरगा	३,८००′	−१५	−४	१३	३४	४७	५९	६३	५९	४७	२९	−८	−७	२८°	७८°

वर्षा (इञ्चों में)

स्थान	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक
१. साल्ट लेक सिटी	१·३	१·५	२·०	२·१	२·२	०·८	०·५	०·८	०·९	१·४	१·४	१·४	१६·३″
२. काशगर	०·३	०	०·२	०·२	०·८	०·४	०·२	०·७	०·३	०	०	०·२	३·५″
३. तेहरान	१·२	०·९	२·४	०·९	०·०४	०	०·४	०	०·०१	१·१	१·२	१·३	८·९″
४. उरगा				अ	प्रा	प्य							

तम्बाकू और कपास की खेती की जाती है। कहीं-कहीं अंगूर, जर्दा, अंजीर, सेव, अनार, शहतूत शफ्तालू आदि फल और बादाम, अखरोट, छुहारे व किशमिश आदि मेवे भी पैदा किये जाते हैं।

इन प्रदेशों में ऊँट, घोड़े और भेड़-बकरियाँ अधिक पाली जाती हैं। एशिया माइनर में अंगोरा बकरी, ईरान में मेरीनो भेड़ और दक्षिणी अफ्रीका में भेड़ें अधिक पाली जाती हैं। इनके बालों से गलीचे, कालीन, कम्बल और नमदे बनाये जाते है।

इन प्रदेशों में खनिज पदार्थ बहुत निकलते हैं। ईरान में मिट्टी का तेल, लोहा, कोयला और तांबा; दक्षिणी अफ्रीका में किम्बरले के निकट हीरा और विटवार्टसरेंड के निकट सोना; ट्रांसवाल में कोयला; मैक्सिको में चांदी और सीसा और ताँबा; तथा संयुक्त राज्य के दक्षिणी भाग में कोयला, लोहा, ताँबा, सीसा आदि पाये जाते हैं।

निवासी—यहाँ के निवासी अधिकतर खानाबदोशी की जिन्दगी बसर करते हैं क्योंकि जब एक स्थान का घास समाप्त हो जाता है तो यह अपने पशुओं को लेकर अन्य स्थानों को चले जाते हैं। नीचे अफगान और बलूची लोगों के जीवन के बारे में कुछ वर्णन दिया गया है :—

अफगान (The Afghans)—अफगानिस्तान के प्राचीन भ्रमणकारी निवासी हैं। अफगानिस्तान ईरान के पठारों का एक देश है जहाँ अति शीतोष्ण मरुस्थलीय जलवायु पाई जाती है। इस देश के पठार का धरातल बड़ा ऊबड़-खाबड़, ऊँची-नीची पहाड़ियों से परिपूर्ण है। यहाँ ग्रीष्मकाल में कड़ी गर्मी तथा शीतकाल में कड़ी सर्दी पड़ती है और अत्यन्त कम वर्षा होती है जिससे औसत जलवायु प्रायः वर्ष भर ही शुष्क रहती है। भूतल तथा जलवायु की ये अवस्थाएँ कृषि-कार्य के अनुकूल नहीं होतीं। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पतियों में केवल छोटी-छोटी घास वाले छिटके हुए तृण-क्षेत्र तथा कँटीली झाड़ियाँ हैं जो यहाँ के पशुओं—गायों, बैलों, घोड़ों, ऊँटों, भेड़ों और बकरियों—को चारा प्रदान करती हैं।

इस प्रदेश के भौगोलिक वातावरण के स्थिर जीवन के प्रतिकूल होने के कारण अफगानों को भ्रमणकारी जीवन बिताने के लिए वाध्य होना पड़ता है। ये अपने पशुओं को लेकर इधर-उधर चारे की खोज में घूमा करते हैं तथा चमड़े और ऊन के नमदों के तम्बूओं में रहते हैं। जाड़ों की हिम-वर्षा से बचने के लिए ये सुरक्षित घाटियों में चले जाते हैं। इनके पशु इन्हें खान-पान, वस्त्र, गृह तथा सवारी प्रदान करते हैं। इन पठारों की भेड़ों और बकरियों से अत्यन्त सुन्दर तथा नर्म ऊन मिलता है जिससे कालीन तथा कम्बल बनाये जाते हैं। ऊँटों के रोओं को जमाकर तम्बूओं और बिस्तरों के लिए नमदे बनाते हैं। आधुनिक काल में इन देशों में सिंचाई के अच्छे साधन प्राप्त किये गये हैं जिनकी सहायता से उपजाऊ घाटियों में गेहूँ, जौ, मक्का, कपास, तम्बाकू

के पत्ते, अफीम के लिए पोस्ता का दाना, खजूर और भूमध्य-सागरीय फल उत्पन्न किये जाते हैं। आजकल ये लोग अच्छे व्यापारी भी बन गये हैं। इनकी डील-डौल प्राय: लम्बी तथा स्वस्थ होती है। प्रकृति प्रायः कड़ी और झगड़ालू होती है। ये अच्छे सिपाही भी बन सकते हैं। इनको सदा प्रकृति से संग्राम करना पड़ता है इसलिए इनके जीवन को 'चिर संघर्ष का जीवन' (*Life of* Constant Struggle) कहते हैं।

बलूची (Baluchis)—बलूचिस्तान तथा कुर्द (Kurd) कुर्दिस्तान के अति शीतोष्ण मरुस्थलों के प्राचीन भ्रमणकारी निवासी हैं। इनका जीवन भी प्रायः अफगानों के जीवन के समान ही होता है।

तुर्क (The Turks or Ottomans)—भूमध्यसागरीय जलवायु वाले एशिया माइनर के भीतरी पठारी भाग के प्राचीन भ्रमणकारी निवासी हैं। इस पठार पर तटीय भाग की भाँति शीतकालीन वर्षा नहीं होती है और बहुत कड़ी सर्दी पड़ती है। गर्मी में भी कड़ी गर्मी और सूखा ही रहता है। धरातल और जलवायु की ये अवस्थाएँ यहाँ छोटी-छोटी घास के तृण-क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य वनस्पति उत्पन्न नहीं होने देतीं। इसलिए तुर्क को बाध्य होकर केवल पशुओं, ऊँटों, घोड़ों, भेड़ों तथा बकरियों के सहारे ही अपना जीवन बिताना पड़ता है तथा इन्हीं पशुओं को चराने के लिए पठार पर इधर-उधर घूमना पड़ता है।

ऐसे भौगोलिक वातावरण में स्थिरता के साथ कृषि अथवा अन्य उपाय से जीवन का साधन न पाकर ही इन्हें बाध्य होकर भ्रमणकारी चरवाहा बनना पड़ता है तथा अपना खान-पान, वस्त्र, गृह और सवारी अपने पशुओं से ही प्राप्त करनी पड़ती है। इस पठार पर अंगोरा नाम की बकरी तथा मेरिनो नाम की भेड़ का ऊन बड़ा नरम तथा सुन्दर होता है और बहुमूल्य पतले तथा चिकने कालीन और महीन ऊनी वस्त्रों के बनाने में काम आता है।

तुर्क या ओटोमान की डील-डौल प्राय: लम्बी तथा स्वस्थ होती है, किन्तु रंग प्राय: काला होता है। ये खालों के तम्बुओं में रहते हैं। ये बड़े परिश्रमी तथा सहनशील होते हैं। ये युद्धों के लिए अच्छे तथा वीर सिपाही बन सकते हैं।

अध्याय ६

शीत-शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश
(Cool Temperate Regions)

(१) पश्चिमी यूरोपीय जलवायु के प्रदेश (Western European Type Regions)

स्थिति—ठंडे प्रदेशों को शीत-शीतोष्ण महासागरीय जलवायु (Cool Temperate Oceanic Regions) के प्रदेश भी कहते हैं। यह प्रदेश उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध में ४५° और ६०° अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पश्चिमी तट पर स्थित हैं। इन प्रदेशों में यूरोप में उत्तरी-पश्चिमी नार्वे, डेनमार्क, उत्तरी-पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम, ब्रिटिश द्वीपसमूह, उत्तरी-पश्चिमी और मध्य फ्रांस, उत्तरी-पश्चिमी स्पेन; उत्तरी अमेरिका में ब्रिटिश कोलम्बिया और उत्तरी संयुक्त-राज्य अमेरिका; दक्षिणी अमेरिका में दक्षिणी चिली तथा आस्ट्रेलिया मे टस्मानिया

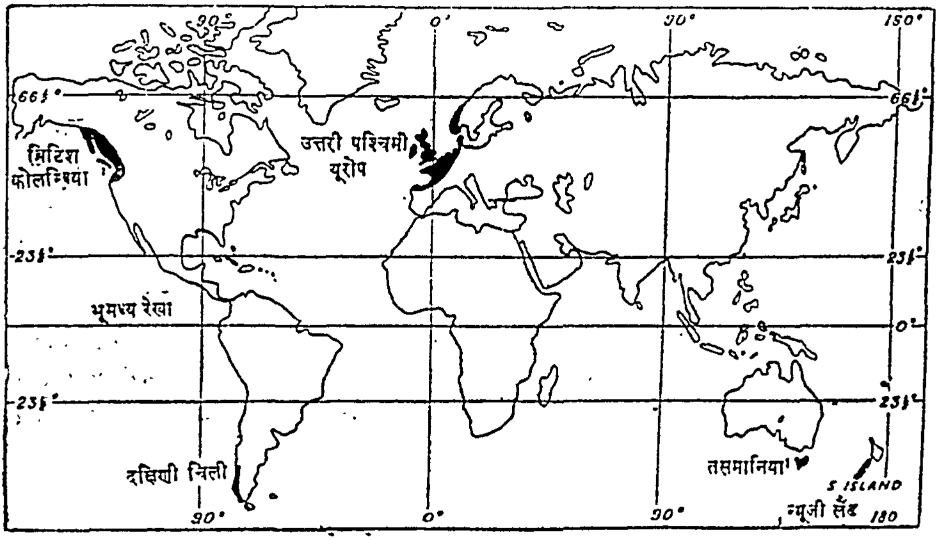

चित्र ६१—पश्चिमी यूरोपीय जलवायु वाले प्रदेश

और न्यूजीलैंड के दक्षिणी द्वीप में इस प्रकार की जलवायु ही मिलती है। उत्तरी अमेरिका की अपेक्षा यूरोप में यह प्रदेश अधिक दूर और उत्तर की ओर चले गए हैं। इसका कारण यह है कि यूरोप के पश्चिमी तट के साथ-साथ पश्चिमी हवाएँ और उष्ण सामुद्रिक हवाएँ दूर तक चली गई है।

जलवायु—ये प्रदेश निरन्तर पश्चिमी हवाओं की पेटी में पड़ते हैं और

इसलिए ये वर्ष भर समुद्र से प्रवाहित होने वाली शीतल जल-पूर्ण हवाओं के प्रभाव के अन्दर हैं। इस प्रदेश के अक्षांशों में स्थित महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर उष्ण सामुद्रिक धाराएँ (यूरोप के निकट गल्फस्ट्रीम और पश्चिमी कनाडा के तट पर क्यूरोसीवो धारा) बहती हैं, अतः पश्चिमी किनारे जाड़े के दिनों में हवाओं और धाराओं दोनों द्वारा गर्म रहते हैं जिसके परिणाम-स्वरूप इनके बन्दरगाह नहीं जम पाते। ग्रीष्म में ये ठंडी धाराओं के प्रभाव में ठण्डे रहते हैं। जाड़े में समुद्र-तट के निकट कोहरा भी पड़ता है जो प्रचलित वायु द्वारा महाद्वीपों के भीतरी भागों तक चला जाता है।

इस प्रदेश में शीतकाल में साधारण शीत की प्रधानता के साथ वर्ष भर प्रायः समशीतोष्ण अवस्था रहती है तथा वर्षा भी सर्दी भर होती रहती है। शीत ऋतु में औसत तापक्रम ४५° से ५०° फा० तक रहता है और ग्रीष्म में भी यह ६०° से ६५° फा० से अधिक नहीं बढ़ता अतः दैनिक और वार्षिक तापक्रम भेद भी १५° से २०° फा० से अधिक नहीं बढ़ता। वर्ष भर ही मौसम बड़ा सुहावना रहता है। महासागरों की वाष्पपूर्ण पछुवा हवाओं के प्रभाव से प्रायः वर्ष भर ही वर्षा होती रहती है किन्तु लगभग ¾ वर्षा सर्दी में होती है। वार्षिक वर्षा का औसत ६०" से ८०" तक पहुँच जाता है। कुछ भागों में तो १००" से भी अधिक वर्षा हो जाती है। पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ने पर वर्षा की मात्रा में भी कमी होने लगती है। वर्षा साधारण बौछारों के रूप में होती है। शीतकाल में चक्रवात भी चलते हैं। पश्चिमी हवाएँ निरन्तर नहीं चलतीं बल्कि चक्रवात और प्रति-चक्रवात के अनुकूल प्रवाहित होती हैं। चक्रवातों के कारण यहाँ के मौसम में कभी-कभी बड़ी अस्थिरता आ जाती है। ये चक्रवात अटलांटिक महासागर से उठ कर पूर्व की ओर बढ़ते चले जाते हैं। इनके समय हवा आर्द्र और नम रहती है और आकाश बादलों से आच्छादित रहता है और वर्षा होती है। पश्चिमी इंग्लैंड में ७०" से २००" तक, ब्रिटिश कोलंबिया में ८०", दक्षिणी चिली में ८०", टसमानिया में ४०" और न्यूजीलैंड में ७०" से भी अधिक वर्षा हो जाती है।

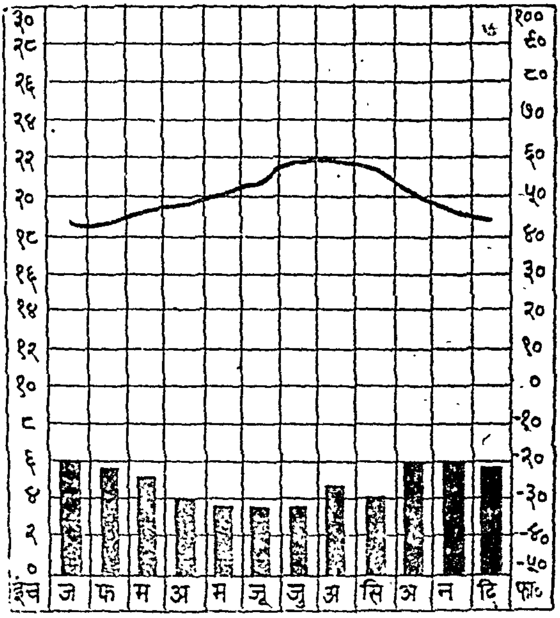

चित्र ६२—वैलेंशिया (आयरलैंड) वर्षा व तापक्रम

इस प्रकार के प्रदेश,

विशेषतः ग्रेट ब्रिटेन, सूर्य की धूप का पूरा उपयोग नहीं कर पाते। बेन नेविस (Ben Nevis) में यूरोप में सबसे कम समय के लिए सूर्य का प्रकाश प्राप्त होता है (प्रतिदिन २ घन्टे के लिए)। लन्दन में तो दिसम्बर में सूर्य का प्रकाश केवल १५ मिनिट के लिए ही मिलता है जब कि आक्सफोर्ड में १०० मि० तक सूर्य की धूप प्राप्त होती है।

इस प्रदेश की जलवायु की दो मुख्य विशेषतायें हैं : (१) तापक्रम में अल्प अन्तर के साथ सम जलवायु, (२) वर्ष के हर एक भाग में (विशेषतः शीत में) वर्षा का होना।

अगले पृष्ठ की तालिका में कुछ मुख्य स्थानों के जलवायु सम्बन्धी आँकड़े दिए गए हैं।

वनस्पति—ग्रीष्म-काल में अत्यन्त साधारण गर्मी और शीतकाल की कड़ी सर्दी तथा साल भर अधिक वर्षा के कारण यहाँ कठोर लकड़ियों के जंगल पाये जाते हैं, जिनके चौड़े पत्ते सर्दी से बचने के लिए शीत काल में झड़ जाते हैं। इन वृक्षों की पत्तियाँ चौड़ी, पतली और कोमल होती हैं। इन भागों में ओक, बीच, मेपल, एश, बर्च, एल्म आदि वृक्ष पैदा होते हैं। इन प्रदेशों में ध्रुवी किनारों पर मिश्रित वन पाये जाते हैं, जिनमें चौड़ी पत्ती और नुकीली पत्तियों दोनों प्रकार के पेड़ मिलते हैं। अधिक ऊँचे भागों तथा भीतरी भागों में जहाँ शीतकाल में बर्फ गिरती है, सदा हरे-भरे रहने वाले नुकीली पत्ती के वन पाये जाते हैं, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से इन वृक्षों को काटकर खेती के लिए भूमि साफ करली गई है। अतः ये वन अब पर्वतीय भागों पर ही पाये जाते हैं। उत्तरी अमेरिका के पर्वतीय भागों में चीड़, फर, हेमलाक, स्प्रूस, लार्च आदि नुकीली पत्ती वाले वृक्ष और आस्ट्रेलिया में यूक्लिप्टस के वृक्ष अधिक मिलते हैं।

आर्थिक विकास—जंगलों में भेड़िए, भालू, लोमड़ियाँ, ऊदबिलाव, नेवले और बीवर आदि पशु पाये जाते हैं। पर्वतीय भागों के निचले ढालों पर अच्छी नर्म घास के मैदान पाये जाने के कारण यहाँ गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी और सूअर चराये जाते हैं जिनसे प्रचुर मात्रा में मक्खन, पनीर दूध, मांस, ऊन और चमड़ा प्राप्त होता है। अंडों के लिए मुर्गियाँ, बतक और कबूतर भी बहुत पाले जाते हैं। डेन्मार्क में पशुपालन तथा दूध और मक्खन बनाने का धन्धा बहुत ही विकसित है। इंग्लैंड में दूध के लिए पशु बहुत पाले जाते हैं। स्काटलैंड, दक्षिणी चिली, टस्मानिया और न्यूजीलैंड में भेड़ पालने तथा ऊन और माँस का व्यवसाय बहुत होता है।

इन प्रदेशों के तटवर्त्तीय समुद्रों में महाद्वीपीय ढाल छिछले होने के कारण मछलियाँ पकड़ने के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। नार्वे, इंग्लैंड, डेन्मार्क और फ्रांस इत्यादि देशों में प्रति वर्ष काड, हेरिंग और स्टर्जन मछलियाँ बहुत पकड़ी जाती हैं। कोलम्बिया में सलमन अधिक पकड़ी जाती है। इन सभी देशों मे मछलियाँ बर्फ में बन्द कर विदेशों को भेजी जाती हैं।

तापक्रम (फा० में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम-भेद
१. वैलैंशिया	३०′	४५	४४	४५	४८	५२	५७	५६	५६	५७	५१	४८	४५	५१°	१५°
२. लंदन	१८′	३६	४०	४३	४७	५३	५६	६३	६२	५७	४६	४४	३६	४६°	२४°
३. बर्लिन	१६४′	३१	३२	३७	४६	५५	६२	६५	६३	५७	४८	३८	३३	४७°	३४°
४. बर्गेन	६६′	३४	३४	३५	४२	४६	५५	५८	५८	५३	४५	३६	३५	४५°	२४°
५. विक्टोरिया	८५′	३६	४०	४३	४८	५३	५७	६०	६०	५६	५०	४५	४२	४६°	२१°
६. हावर्ट	१६०′	६२	६२	५६	५५	५६	५४	४६	४८	५१	५४	५७	६०	५४°	१७°

वर्षा (इञ्चों में)

स्थान	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक
१. वैलैंशिया	५.६	४.६	४.१	३.६	३.१	३.५	३.७	५.१	४.६	५.५	५.५	६.५	५६.०″
२. लंदन	१.८	१.७	१.७	१.७	१.८	२.३	२.६	२.४	२.०	२.७	२.३	२.१	२५.१″
३. बर्लिन	१.५	१.५	१.६	१.४	१.७	२.५	२.७	२.२	१.७	२.०	१.६	१.६	२२.६″
४. बर्गेन	८.५	६.४	५.६	४.१	४.५	३.८	५.८	७.५	८.७	८.६	८.३	८.५	८१.०″
५. विक्टोरिया	४.५	३.५	२.५	१.७	१.३	०.६	०.४	०.६	२.०	२.५	६.६	५.६	३२.५″
६. हावर्ट	१.५	१.५	१.६	१.८	१.६	२.२	२.१	१.८	२.१	२.२	२.५	१.६	२३.६″

जिन स्थानों में वन साफ कर दिये गये हैं वहाँ वैज्ञानिक तरीकों से गेहूँ, जौ, जई, राई, चुकन्दर, मक्का, आलू, सन और सेव तथा टमाटर अधिक पैदा किये जाते हैं। टसमानियाँ द्वीप में सेव, नारंगियाँ तथा नासपाती बहुत अधिक पैदा की जाती हैं। फ्रांस में अंगूरों के बाग अधिक पाये जाते हैं। इनसे शराब बनाई जाती है।

यह प्रदेश खनिज सम्पत्ति में बहुत धनी हैं। कोयला संयुक्त राज्य, इंगलैंड, जर्मनी और टस्मानिया में; लोहा जर्मनी, फ्रांस, स्वीडेन और संयुक्त राज्य में; जस्ता संयुक्त राज्य और बेलजियम; एलूमीनियम और तांवा जर्मनी और संयुक्त राज्य में; सोना न्यूजीलैंड और कोलवियाँ तथा चांदी जर्मनी और कोलंविया में निकाली जाती है। इन्हीं खनिज पदार्थों के कारण ये विश्व के प्रमुख औद्योगिक और व्यवसायी देश बन गये हैं। ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य में कपड़ा बनाने का धन्धा; फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य में लोहे और फौलाद का धन्धा; स्वीडेन और नार्वे तथा कनाडा में कागज और दियासलाई बनाने का धन्धा तथा जर्मनी और फ्रांस में चुकन्दर से शक्कर बनाने का धन्धा विशेष रूप से किया जाता है।

इन प्रदेशों की इतनी अधिक आर्थिक उन्नति होने का मुख्य कारण यहाँ का उत्तम जलवायु, खनिज पदार्थों की प्रचुरता, यातायात के साधनों की सुगमता, परिश्रमी निवासियों और चरागाहों का अधिक मात्रा में पाया जाना है। प्रो० हटिंगटन के अनुसार यहाँ की जलवायु मानव के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए बड़ी अनुकूल है। अतः यहाँ के निवासी प्रचीनकाल से वाणिज्य, उद्योग और कलाकौशल में चतुर हो गये हैं। इन प्रदेशों को "उन्नति या प्रयास प्रदेश" (Regions of Efforts) कहते हैं।

(२) सैंटलारैंस जलवायु प्रदेश—(St. Lawrence or Eastern Temperate Regions)

ये प्रदेश उत्तरी महाद्वीपों के पूर्वी किनारों पर उन्हीं अक्षांशों पर स्थित हैं जिनमें यूरोप की जलवायु वाले प्रदेश पश्चिमी किनारों पर स्थित हैं। इस प्रदेश में दक्षिणी पूर्वी कनाडा (न्यूफाउंडलैंड), लैब्रोडोर का पठार, न्यूइंगलैंड स्टेट), उत्तरी-पूर्वी संयुक्त-राज्य, पूर्वी कोरिया, पूर्वी मंचूरिया और दक्षिणी अर्जेन्टाइना सम्मिलित हैं। इस प्रदेश का सबसे अधिक विस्तार उत्तरी अमेरिका में सैन्टलॉरेंस के प्रदेश में और एशिया में मंचूरिया में है। अतः इस प्रदेश को 'सैंटलारैंस जलवायु प्रदेश' अथवा 'मंचूरिया जलवायु प्रदेश' भी कहते हैं।

जलवायु—पश्चिमी किनारों की अपेक्षा यहाँ शीतकाल अधिक ठंडा होता है। इस ऋतु में तापक्रम हिमांक विन्दु से भी नीचे पहुँच जाता है। उत्तरी अमेरिका में उत्तरी पश्चिमी भागों से आने वाली ठंडी चिनूक हवाएँ तापक्रम को और भी कम कर देती हैं; अतः बहुत से बन्दरगाह वर्फ से जम जाते हैं तथा ग्रीष्म ऋतु थोड़ा अधिक गर्म रहता है क्योंकि पूर्वी किनारों पर पश्चिमी हवाएँ वाहर की ओर प्रवाहित होती हैं। इसलिए गर्मी में तापक्रम ६०° फा० तक पहुँच जाता है। इन प्रदेशों में वार्षिक तापक्रम भेद (४५° से ६०° फा) अधिक रहता है।

तट के निकट गर्म (क्यूराइल धारा) और ठंडी धाराओं (लैब्रेडर धारा) के मिलने से कुहरा भी काफी उठता है । यहाँ सर्दी के दिनों में काफी सर्दी और बर्फ पड़ती है और ग्रीष्म में गर्मी भी बहुत पड़ती है ।

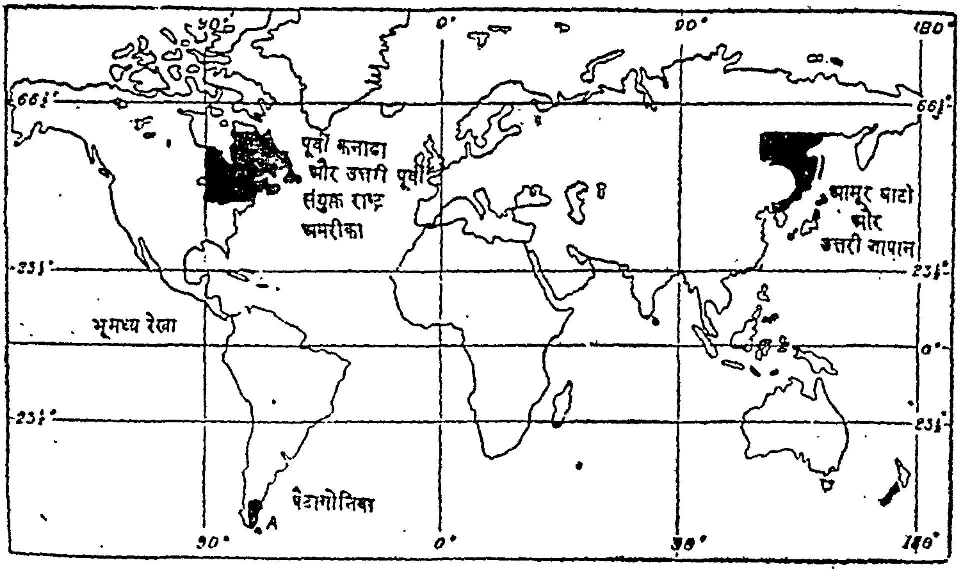

चित्र ६३—सेन्ट लारेन्स अथवा मंचूरिया जलवायु प्रदेश

ग्रीष्म में यहाँ तापक्रम के अधिक बढ़ जाने और वायु भार की पेटियों के भूमध्य-रेखा के साथ क्रमशः उत्तर और दक्षिण खिसकने के कारण इन भू-भागों पर निम्न भार क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है जो क्रमशः दक्षिणी (उत्तरी गोलार्द्ध में) और उत्तरी (दक्षिणी गोलार्द्ध में) सागरों से वाष्प भरी हवाओं को इन अक्षांशों तक खींच लेता है, अतः ग्रीष्म में यहाँ वर्षा हो जाती है। यह प्रदेश पछुआ हवाओं के प्रभाव में रहते हैं। इनसे पश्चिमी तटों पर अधिक वर्षा और भीतरी भागों में कम वर्षा होती है। जाड़े के मौसम में चक्रवातों से भी मामूली वर्षा हो जाती

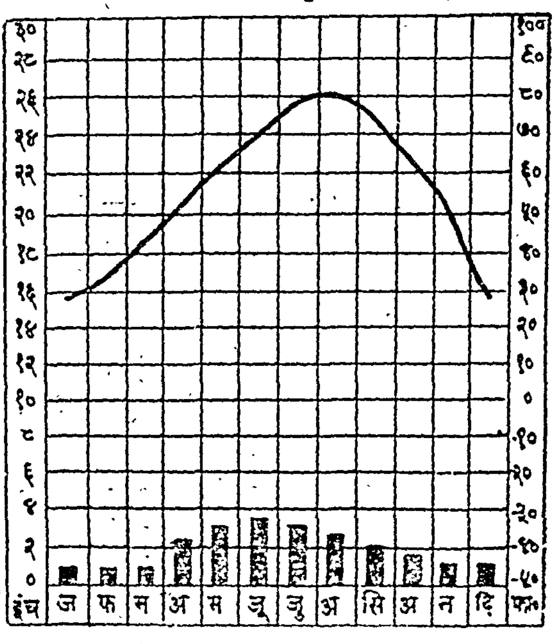

चित्र ६४—व्लाडीवोस्टक
(वर्षा और तापक्रम)

है। अधिकांश वर्षा गर्मी में ही होती है। वर्षा का वार्षिक औसत १५" से २०" होता है।

इस प्रकार इस जलवायु की विशेषता कड़ी सर्दी, थोड़ी गर्मी तथा मामूली वर्षा का होना है। अगले पृष्ठ पर कुछ स्थानों के तापक्रम तथा वर्षा के अंक दिए गए हैं।

वनस्पति—इन प्रदेशों में प्रायः चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के वन पाये जाते हैं जिनके पत्ते शीत ऋतु के पहिले ही झड़ जाते हैं। इस प्रकार के मुख्य वृक्ष ओक, बीच, बर्च, एश, एल्म, मेप्ल और अखरोट हैं। उत्तर की ओर के भागों में चीड़, फर और स्प्रूस आदि नुकीली पत्ती के जंगल पाये जाते हैं। दक्षिणी अमेरिका में वर्षा की कमी के कारण घास और झाड़ियाँ पैदा होती हैं।

आर्थिक विकास—इन वनों में जंगल अधिक पाये जाने के कारण लकड़ी काटना यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय है। कनाडा, जापान और मंचूरिया में लकड़ी काटने का कार्य अधिक किया जाता है। कनाडा में लकड़ी की लुब्दी भी बहुत बनाई जाती है। पूर्वी मंचूरिया, पूर्वी कोरिया और आमूर की घाटी में लकड़ी काटने और चीरने का धंधा खूब होता है।

एशिया और उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तटों पर मछली पकड़ने का व्यवसाय बहुत उन्नति कर गया है। न्यूफाउन्डलैंड के निकट ३०० मील के घेरे में विस्तृत ग्रान्ड बैंक्स में कॉड, हेरिंग, मेकरेल, आयस्टर और हेक तथा जापान के समुद्र तटों में कॉड, हेरिंग, सलमन और सरडाइन अधिक मात्रा में पकड़ी जाती हैं। मछली के व्यवसाय में प्रगति होने का मुख्य कारण समुद्रतट के निकट जल का छिछला होना और ठंडी तथा गर्म धाराओं का मिलना है। मछलियों को सुखाकर तथा टीन के डिब्बों में बंद करना और कॉड मछली का तेल निकालना न्यूफाउंडलैंड के मुख्य उद्यम है।

इन प्रदेशों में समूर वाले जानवरों का शिकार भी किया जाता है। कनाडा और संयुक्त राज्य में पशु और जापान में रेशम के कीड़े पालने का धंधा भी किया जाता है। कनाडा और संयुक्तराष्ट्र में गाय, भेड़, सूअर और मुर्गियाँ अधिक पाली जाती हैं। कनाडा व संयुक्त राष्ट्र में डेयरीफार्म और दुग्धशालायें बहुत पाई जाती हैं। किन्तु जापान में चरागाहों के अभाव और माँस खाने पर निषेध होने के कारण पशु नहीं पाले जाते। दक्षिणी अमेरिका में भेड़ें अधिक पाली जाती हैं।

खेती का धंधा भी यहाँ बहुत उन्नति कर गया है। मंचूरिया में मक्का, गेहूँ, मोटे अनाज, चावल, चाय और सोयाफली बहुत पैदा की जाती है। दक्षिणी अमेरिका में भूमि के अनउपजाऊ होने के कारण कृषिकार्य बहुत ही सीमित मात्रा में होता है। कनाडा में गेहूँ, फल, राई, जौ, सेव, सुगन्धित पुष्प, रुई तथा आलू अधिक पैदा किये जाते हैं। जापान में गेहूँ और जौ और शहतूत के वृक्ष बोये जाते हैं।

तापक्रम (फा० में)

स्थान	ऊँचाई (फीट में)	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. हैलीफैक्स	८८′	२४	२४	३१	४०	४९	५८	६५	६५	५९	४९	४०	२९	४५°	४१°
२. व्लाडीवोस्टक	५०′	५	१२	२६	३९	४९	५७	६६	६९	६१	४९	३०	१३	४०°	६४°
३. हारबिन	५२५′	−२	५	२४	४२	५६	६६	७२	६९	५८	४०	२१	३	३८°	७४°

वर्षा (इंचों में)

१. हैलीफैक्स	६·०	४·७	५·१	४·६	३·८	३·७	३·७	४·६	४·१	५·५	५·९	५·५	५७·२″
२. व्लाडीवोस्टक	०·१	०·२	०·३	१·२	१·३	१·५	२·२	३·५	२·४	१·६	०·५	०·२	१४·१०″
३. हारबिन	०·२	०·२	०·६	१·०	२·४	३·२	६·७	४·३	२·६	१·७	०·५	०·२	२३·५″

इन प्रदेशों में खनिज पदार्थ भी मिलते हैं। उत्तरी अमेरिका में झीलों के प्रान्त में कोयला, मिट्टी का तेल, सोना और तांबा पाया जाता है। संयुक्तराष्ट्र के अपेलेशियन क्षेत्र में लोहा, कोयला और तांबे का बड़ा भंडार भरा है। जापान में ज्वालामुखी पर्वतों के निकट के भू-भागों में गंधक बहुत मिलता है, अतः यहाँ दियासलाई बनाने का धंधा बहुत उन्नति कर गया है। यहाँ तांबा, कोयला और लोहा भी पाया जाता है। जापान और कनाडा में जल-विद्युत शक्ति का भी बहुत विकास हुआ है। दक्षिणी अमेरिका में थोड़ा सा सोना भी पाया जाता है।

इस प्रदेश में जापान और संयुक्तराष्ट्र बहुत ही उन्नतिशील देश हैं, जिनमें उद्योग धन्धे और व्यापार काफी उन्नति कर गये हैं। जलवायु की कठोरता के कारण इन प्रदेशों को 'संघर्ष के प्रदेश' (Regions of Efforts) कहते हैं।

(३) मध्य पहाड़ी प्रदेश या अल्टाई जलवायु प्रदेश (Interior Highlands or Altai Type Regions)

ये प्रदेश महाद्वीपों के मध्य में ऊँचे स्थानों पर स्थित हैं, अतः मध्य मैदानी प्रदेशों से भिन्न हैं। यूरेशिया में अल्टाई पर्वतीय प्रदेश मध्य के मैदानों के पूर्व की ओर तथा अमेरिका में पहाड़ी प्रदेश मध्य के मैदानों के पश्चिम की ओर स्थित हैं। इस प्रदेश में संसार भर के शीतोष्ण कटिबन्ध के उच्च पर्वतीय प्रदेश जो मध्य एशिया, मध्य यूरोप तथा उत्तरी और दक्षिणी अमरीका में पाये जाते हैं सम्मिलित हैं।

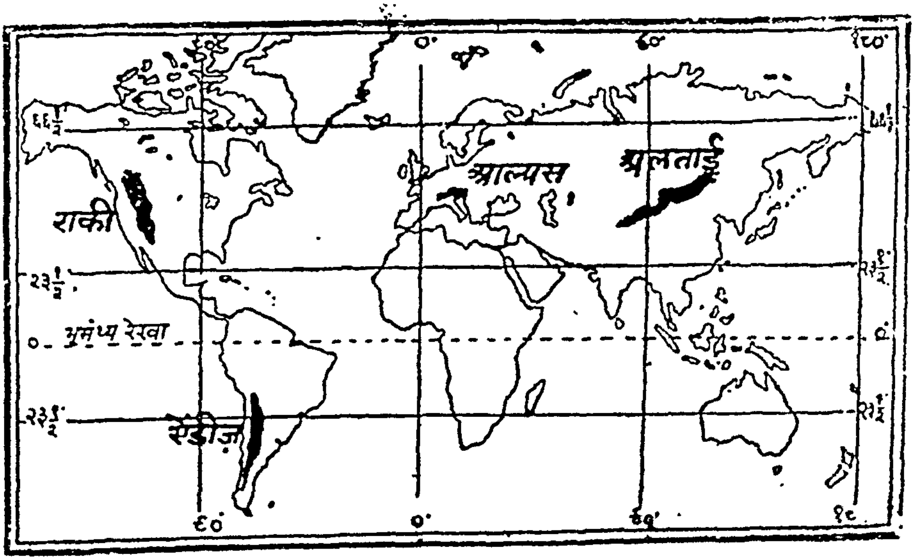

चित्र ६५—अल्टाई जलवायु प्रदेश

जलवायु—समुद्र से दूर होने के कारण इस प्रदेश की जलवायु स्थलीय है।

भूमध्यरेखा से दूर और सामुद्रिक धरातल से ऊँचा होने के कारण सर्दी अधिक पड़ती है और तापक्रम हिमांक बिन्दु से भी कम हो जाता है। पहाड़ बर्फ से ढके रहते हैं। गर्मी की ऋतु छोटी होती है और तापक्रम शायद ही ४०° फा० से ऊँचा हो पाता है। अतः इन प्रदेशों में सालभर ही सर्दी पड़ती है। दिन के समय भी तापक्रम में वृद्धि नहीं होती यद्यपि धूप तेज पड़ती है क्योंकि पर्वतीय भागों पर हवा हल्की और साफ होती है और सूर्य की किरणें बिना रोक-टोक जमीन पर गिरती हैं। अमेरिका की अपेक्षा एशिया के इस भाग में सर्दी अधिक पड़ती है क्योंकि ये भाग अधिक दूर रहने के कारण समुद्री प्रभाव से वंचित रहते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तरी ध्रुव से आने वाली ठन्डी हवाएँ इसको और भी ठन्डा कर देती हैं। अमेरिका की अपेक्षा एशिया में वर्षा अधिक होती है। वर्षा प्रायः उत्तर से दक्षिण की ओर घटती जाती है। वर्षा इन पहाड़ों के उत्तरी ढालों पर अधिक और दक्षिणी पर कम होती है। किन्तु अमेरिका में चूंकि वर्षा पश्चिमी हवाओं से होती है अतः पश्चिम से पूर्व की ओर कम हो जाती है। अधिकतर वर्षा ग्रीष्म ऋतु में होती है। वार्षिक वर्षा का औसत सर्वत्र २०" से कम रहता है; कुछ स्थानों में तो १३–१४ इंच ही होता है।

अगले पृष्ठ की तालिका में इस जलवायु प्रदेश के कुछ आँकड़े दिए गए हैं।

वनस्पति—इन ऊँचे प्रदेशों में प्राकृतिक वनस्पति का क्रम विस्तार वही पाया जाता है जो भूमध्य रेखा से ध्रुवों तक जाने में मिलता है। इस प्रदेश में चौड़ी पत्ती वाले बीच, वर्च, ओक आदि वृक्ष पाये जाते हैं। इनके ऊपर नुकीली पत्ती के जंगल मिलते हैं। ऊँचे भागों में घास, काई और लीचन पैदा होती है, किन्तु अधिक ऊँचे भागों पर केवल वर्फ जमा रहता है।

इन प्रदेशों में पहाड़ी भूमि होने के कारण कृषि का विकास नहीं हो पाया है। किन्तु नदियों की घाटियों में अथवा निचले ढालों पर गेहूँ, जौ, जई, राई और आलू पैदा किये जाते हैं।

इन प्रदेशों में पशुपालन का धन्धा शीतकाल में घाटियों में और गर्मियों में पहाड़ों के ढालों पर किया जाता है जहाँ उत्तम घास मिल जाता है।

लकड़ी काटना और वनों से छोटी-मोटी वस्तुएँ प्राप्त करना भी यहाँ का मुख्य धंधा है।

इस प्रदेश में खनिज पदार्थ बहुत मिलते हैं। अल्टाई पर्वत में सोना, चांदी, ताँवा, जस्ता और शीशा; यूरोप में कोयला और लोहा; राकी पर्वत में कोयला और सोना तथा अपेलेशियन पर्वत में सोना और कोयला पाया जाता है। इन पर्वतों में जल विद्युत शक्ति का विकास भी हुआ है।

अधिक सर्दी पड़ने के कारण यहाँ वहुधा घरेलू उद्योग-धन्धों का ही विकास हुआ है।

अल्टाई जलवायु-प्रदेश के कुछ आँकड़े—तापक्रम (फारेनहीट में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	स०	अ०	न०	दि०	वार्षिक औसत	तापक्रम भेद
१. इरकुटस्क	१६१०′	-५·४	०·६	१७	३५	४८	५६	६५	६०	४८	३३	१३	०·७	१·३°	७०·५°
२. कैलगरी	३३७६′	११	१५	२५	४०	४६	५६	६१	५६	५१	४२	२६	२१	३८°	४६·७°

वर्षा (इंचों में)

	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	
१. इरकुटस्क	०·६	०·५	०·४	०·६	१·२	२·३	२·६	३·४	१·६	०·७	०·६	०·८	१४·५″
२. कैलगरी	०·५	०·६	०·७	०·७	२·४	३·२	२·६	२·६	१·८	०·६	०·७	०·५	१६·६″

इन पर्वतीय प्रदेशों का मुख्य का जीवन अनेक कठिनाइयों से भरा है अतः जीविकोपार्जन में इन्हें पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है। इसी से ये लोग हृष्ट-पुष्ट हैं। ऊँचाई अधिक होने के कारण जनसंख्या का घनत्व कम है।

(४) तिब्बत-तुल्य प्रदेश (Tibet Type Regions)

यह प्रदेश गर्म शीतोष्ण कटिबंध में स्थित है, किन्तु ऊंचाई के कारण इसकी जलवायु शीत-शीतोष्ण प्रदेशों जैसी है। इसके अंतर्गत एशिया में तिब्बत का पठार और पामीर का पठार तथा दक्षिणी अमेरिका में पीरू और बोलिविया के पठार हैं। ये सभी पठार समुद्री सतह से १२००० फुट से अधिक ऊँचे हैं और सब ओर से ऊँचे पर्वतों द्वारा घिरे हैं।

जलवायु—इस प्रदेश का दैनिक तथा वार्षिक तापान्तर बहुत अधिक होता है। रात को बहुत ठंडी हवाएँ चलती हैं और बहुत पाला पड़ता है जबकि दिन में कड़ी धूप और गर्म हवायें चलती हैं। प्रातः व सायं के तापक्रम में तथा धूप और छाया के तापक्रम में भी पर्याप्त अंतर रहता है। दिन में धूप वाले स्थानों का तापक्रम ६००° से १३०° फा० तक हो जाता है और उसी समय छाया में तापक्रम हिम विन्दु से भी नीचे पहुँच जाता है। तापक्रम के इस प्रकार बढ़ने-घटने से चट्टानों में टूट-फूट अधिक होती है। तिब्बत के पठार पर गर्मियों की ऋतु छोटी तथा गर्म होती है। इस ऋतु में प्रायः रोज कुहरा छाया रहता है। यहाँ के जाड़े बहुत ठंडे हैं और औसत तापक्रम ४०° फा० होता है। पाला प्रायः रोजाना पड़ता है। दक्षिणी अमेरिका वाले इन भूभागों में जलवायु इतनी कड़ी नहीं होती जितनी तिब्बत में क्योंकि ये प्रदेश भूमध्यरेखा के अपेक्षाकृत निकट हैं और इन अक्षांशों में दक्षिणी अमेरिका का विस्तार कम है। यहाँ का वार्षिक तापान्तर भी अपेक्षाकृत कम है।

तिब्बत का पठार प्रायः शुष्क रहता है, केवल दक्षिणी पूर्वी भाग में गर्मी में मानसून द्वारा वर्षा हो जाती है। उदाहरणार्थ लासा नगर में ४" के लगभग वर्षा होती है। इसके पश्चिमी भाग में भी शीतकालीन चक्रवातों द्वारा कुछ वर्षा हो जाती है। पीरू और बोलीविया के पठारों पर तिब्बत की अपेक्षा कुछ अधिक वर्षा होती है। यहाँ प्रायः गर्मियों में वर्षा होती है और अधिकांश वाहनिक वर्षा होती है।

प्राकृतिक वनस्पति—इन प्रदेशों में पानी का निकास अच्छा नहीं है

नगर	ऊंचाई	जनवरी तापक्रम	जुलाई तापक्रम	वर्षा	वर्षा की ऋतु
लेह	११५०३'	१७° फा०	६३° फा०	३·२"	गर्मी में
लापाज (दक्षिणी अमेरिका)	१२१००'	५१·६ फा०	१४·६°फा०	२१·२"	गर्मी में

अध्याय १०

शीत कटिबन्धीय प्रदेश
(Cold Regions)

शीत कटिबन्धीय प्रदेशों की विशेषता वहाँ की बर्फ ही है। यह बर्फीला प्रदेश तीन भागों में विभाजित किया गया है :—

१—साइबेरिया अथवा टैगा प्रदेश
२—टुंड्रा या शीत मरुस्थल
३—ध्रुव प्रान्त के अटल बर्फ वाले प्रदेश

(१) साइबेरिया प्रकार की जलवायु या भीतरी निचले प्रदेश
(Siberian Type or Interior Lowland Regions)

यह प्रदेश लगभग ६०° और ६५° उत्तरी अक्षांशों के बीच में फैले हैं। यह कोणधारी वनों का प्रदेश है जो एक विस्तृत पेटी की भाँति उत्तरी अमेरिका, उत्तरी यूरोप और एशिया में स्थित हैं। इन प्रदेशों में कनाडा, न्यूफाउण्डलैंड, अलास्का, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, उत्तरी रूस और उत्तरी साइबेरिया सम्मिलित हैं।

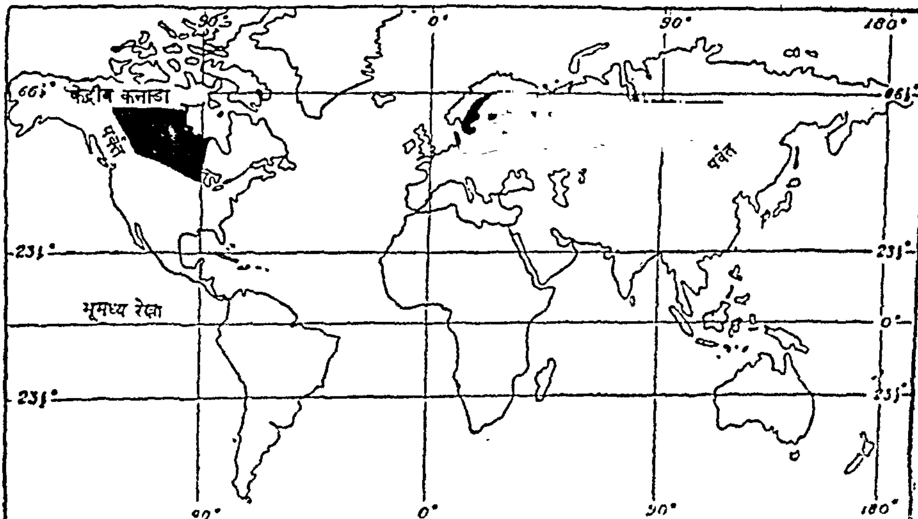

चित्र ६७—साइबेरिया तुल्य जलवायु के प्रदेश

जलवायु—ऊँचे अक्षांशों में स्थित होने के कारण इस पेटी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ गर्मी की ऋतु छोटी होती है तथा जाड़े की ऋतु छोटी (केवल २½-३ महीने) होती है तथा जाड़े के दिन बहुत छोटे एवं गरमी के दिन बहुत ही बड़े होते हैं। अतः दिन के समय ताप भी बहुत बढ़

जाता है। यह अनुमानतः ६०° फा० तक होता है। भूमध्य रेखा से दूर होने के कारण वर्ष भर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं। जाड़े में सूर्य थोड़ी देर के लिए क्षितिज के निकट दिखाई देता है और फिर अस्त हो जाता है; इस कारण जाड़े की ऋतु बहुत ठण्डी होती है। अधिकांश क्षेत्रों में जाड़े का तापक्रम हिमांक बिंदु से भी कम हो जाता है। उत्तरी साइबेरिया में शीतकाल का तापक्रम – ५९° फा० तक गिर जाता है। परन्तु गरमी की छोटी ऋतु दिनों के लम्बे होने के कारण आश्चर्यजनक रूप से उष्ण हो जाती है। अतः समुद्र के किनारे स्थित कुछ मैदानों को छोड़कर गर्मी और जाड़े की ऋतु में तापक्रम भेद बहुत अधिक रहता है। कभी-कभी तो उत्तरी-पूर्वी साइबेरिया के कुछ भागों में यह तापक्रम भेद १२०° फा० से भी अधिक रहता है। दुनियाँ भर में सबसे अधिक भयंकर ठण्ड का तापक्रम-भेद बरख्योनास्क में – ९४° फा० है।

समुद्र के निकट के प्रदेशों को छोड़कर वार्षिक वर्षा कहीं भी २०" से अधिक नहीं होती। वर्षा अधिकतर बर्फ की होती है जो जाड़े में पृथ्वी पर पड़ा रहता है। यही बर्फ ग्रीष्म के आने पर पिघल जाता है। ग्रीष्म-ऋतु सूखी होती है। इसके अतिरिक्त न्यून तापक्रम के कारण वाष्पीकरण कम होता है, इसलिए वर्ष में ९" से भी कम होने वाली वर्षा वृक्षों के उगने के लिए पर्याप्त होती है। समुद्र के निकट के स्थानों में वर्षा कुछ अधिक हो जाती है—ट्रांढीम में ५" और ओटावा में ३२"।

इस प्रकार इस जलवायु की विशेषता छोटी गर्मी तथा लम्बी और कड़ाके की शीत ऋतुओं का होना और वर्षा का बर्फ के रूप में गिरना ही है। अगले पृष्ठ की तालिका में इस प्रदेश की जलवायु सम्बन्धी सूचना दी गई है।

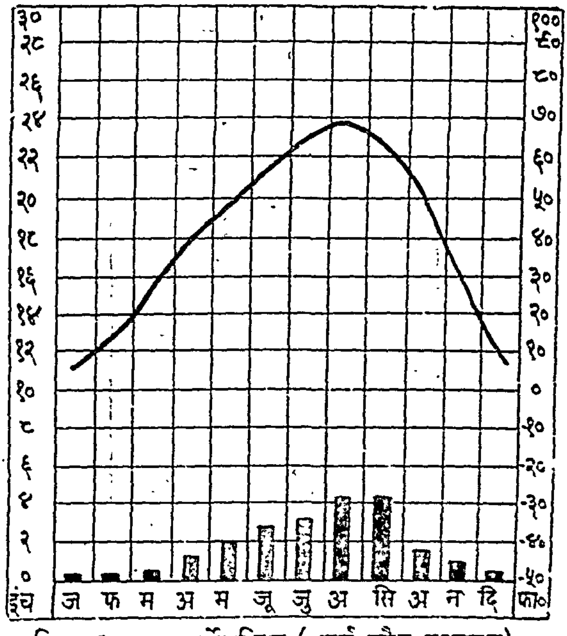

चित्र ६८—आर्केनजिल (वर्षा और तापक्रम)

वनस्पति—इन प्रदेशों में अल्पकालीन ग्रीष्म काल की अत्यन्त साधारण गर्मी और कड़े शीतकाल की बर्फ की वर्षा के कारण नुकीली पत्ती वाले सदा हरे-भरे रहने वाले वृक्ष पाये जाते हैं। इन वनों को यूरेशिया में टैगा (Taiga) कहते हैं। स्प्रूस, चीड़, लार्च, फर, सीडर, हेम्लॉक आदि कोमल लकड़ियों वाले वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। इन वृक्षों की कई विशेषताएँ हैं—(i) इन वृक्षों की पत्तियाँ नुकीली

तापक्रम (फा० में)

स्थान	ऊँचाई	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	तापक्रम भेद
१. लैनिनग्राड	३०′	१५	१७	२३	३६	४८	५८	६४	६१	५७	४०	२९	२०	३९°
२. वरख्योनास्क	३३०′	−५८	−४७	−२४	७	३५	५४	६०	५०	३६	५	−३४	−५३	३°
३. याकूटस्क	३३०′	−४६	−३५	−१०	१६	४१	५९	६६	६०	४२	१६	−२१	−४१	११२·१°
४. डोसन सिटी	१२००′	−२४	−१४	३	२८	४८	५५	६०	५५	४२	२७	−०·७	−१०	४३°
५. ओटावा	२९४′	१२	−२४	२४	४३	५६	६५	७०	६७	५९	४७	३२	१७	४३°
६. आर्केनजिल		८	९	१८	३०	४१	५३	६०	५६	४६	३४	२२	१२	५२°

वर्षा (इंचों में)

स्थान		ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	
१. लैनिनग्राड		०·९	०·८	०·९	०·८	१·७	१·८	२·७	२·७	२·०	१·७	१·४	१·२	१८·८″
२. वरख्योनारक		० २	०·१	०·७	०·१	०·२	०·५	१·२	०·८	०·२	०·२	०·२	०·२	३·९″
३. याकूटस्क		०·९	०·२	०·४	०·६	१·१	२·१	१·७	२·६	१·८	१·४	०·६	०·९	१३·७″
४. डोसन		१·०	०·७	०·६	०·७	१·०	१·१	१·८	१·६	१·९	१·३	१·२	१·१	१४·०″
५. ओटावा		३·०	२·६	२·६	१·९	२·७	३·५	४·०	२·१	०·६	२·३	२·५	२·७	३२·५″
६. आर्केनजिल		०·९	०·७	०·८	०·७	१·२	१·८	२·४	२·४	२·२	१·६	१·२	०·९	१६·८″

होती हैं जिससे वर्फ और ठंडक से उनकी रक्षा हो सके। (ii) इन वृक्षों की पत्तियाँ मोटी और चिकनी होती हैं जिससे उनकी नमी वाहर

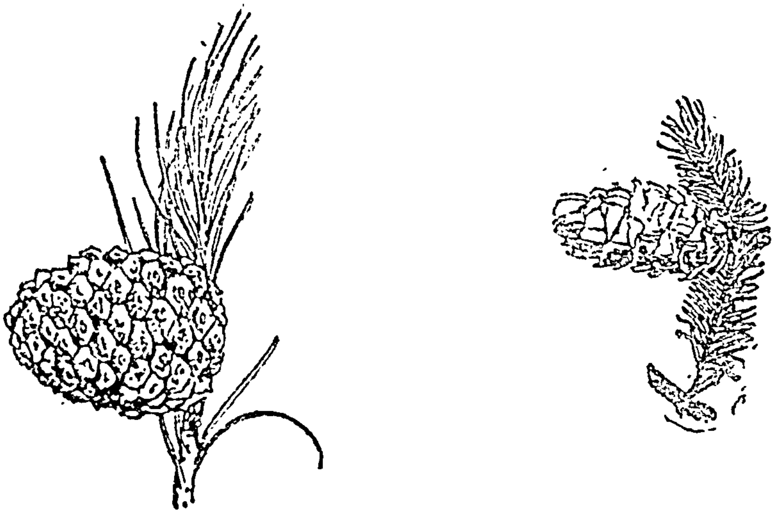

चित्र ६९—(अ) टेगा प्रदेश के फल

नहीं निकल सके। (iii) इनकी शाखाओं का फैलाव नीचे की ओर ढलवाँ होता है जिससे वर्फ पिघल कर नीचे गिर जाता है। (iv) इन वृक्षों

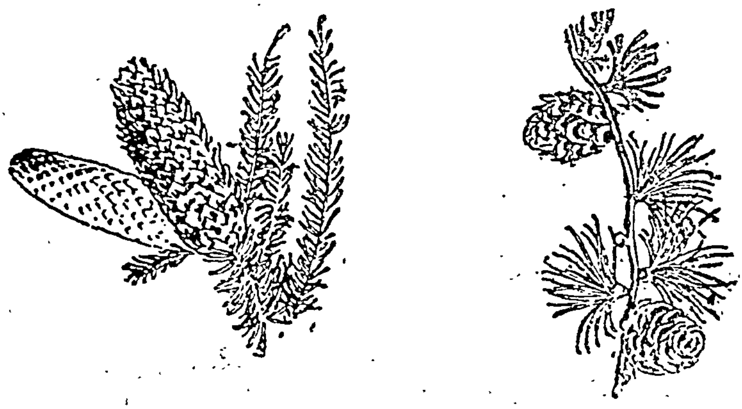

चित्र ६९ (ब)—टेगा प्रदेश के फल

के तने मोटे और ऊपरी भाग नुकीले होते हैं जिससे तीव्र वायु के झोंकों में भी यह वृक्ष सुरक्षित खड़े रह सकते हैं। नुकीली पत्ती के वनों के वीच में कहीं-कहीं मेपल, ओक, बीच आदि चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष भी पाये जाते हैं।

आर्थिक विकास—इन प्रदेशों में जीवन की आवश्यकताएँ कठिनाई से पूरी होती हैं। अतः इन प्रदेशों को प्रायः 'संघर्ष वाले प्रदेश' कहते हैं। इन प्रदेशों में लकड़ी काटने का व्यवसाय सवसे अधिक किया जाता है। वृक्षों की लकड़ियाँ

बहुत ही मुलायम और वाणिज्य के लिए बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। उत्तरी कनाडा, रूस, स्वीडेन और नार्वे विश्व के प्रमुख मुलायम लकड़ी के भंडार हैं। इन प्रदेशों में लकड़ियाँ काट कर नदियों के किनारे इकट्ठी करली जाती हैं और वसन्त ऋतु में नदियों में बाढ़ आने पर उनमें बहा दी जाती हैं तथा कारखानों में उन्हें निकाल कर जल-विद्युत शक्ति की सहायता से चीरा जाता है। इन लकड़ियों से तारपीन का तेल, गन्धा विरोजा, कागज की लुब्दी, रासायनिक द्रव्य, टार, दियासलाई के लिए लकड़ियाँ, एलकोहल आदि प्राप्त किये जाते हैं। नार्वे, स्वीडेन तथा कनाडा में लकड़ी चीरने तथा कागज और कगज की लुब्दी और और दियासलाई बनाने के सैकड़ों कारखाने पाये जाते हैं।

इन प्रदेशों में सफेद बाल वाले समूरदार जानवर बहुत मिलते हैं, इसलिये जानवरों का शिकार करना भी यहाँ के निवासियों का एक प्रमुख धन्धा हो गया है। यहाँ रंग-बिरंगे समूर वाले लोमड़ी, खरगोश, भालू, सेबिल, नेवला, गिलहरियाँ, बीवर, मिंक, अरमाईन, मार्टिन आदि पशुओं का शिकार कर उनसे बहुमूल्य समूर प्राप्त किये जाते हैं। फोर्ट नैल्सन और चर्चिलनगर इस व्यवसाय केन्द्र हैं।

जिन भागों में, विशेषकर कनाडा और रूस में वन साफ कर लिये गये हैं वहाँ जौ, गेहूँ, जई, आलू और राई की पैदावार की जाती है। किन्तु अधिक उत्तरी भागों में वर्ष के दस महीने तक बर्फ जमी रहने के कारण खेती नहीं की जा सकती।

चित्र ७०—बीवर

आवागमन की असुविधाओं के कारण लोहा, चाँदी, ताँवा और सोना होते हुए भी खानें नहीं खोदी जा सकतीं।

(२) टुंड्रा या शीत मरु-स्थलीय जलवायु प्रदेश
(Tundra or Cold Desert Type Regions)

संसार के टुन्ड्रा या शीत मरु-स्थल प्रदेश कोणधारी वन-प्रदेशों से ध्रुवों की ओर यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका के सबसे उत्तरी भागों में स्थित हैं। इन प्रदेशों को यूरेशिया में टुण्ड्रा और उत्तरी अमेरिका में बन्जर भूमि (Barren land) कहते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में इन्हीं अक्षांशों में भूमि का विस्तार न होने के कारण ये प्रदेश नहीं मिलते।

जलवायु—अधिक ऊँचे स्थानों में स्थित होने के कारण यहाँ शीतकाल अत्यधिक लम्बा और बड़ा कठिन होता है। इस ऋतु में रातें बहुत बड़ी और दिन

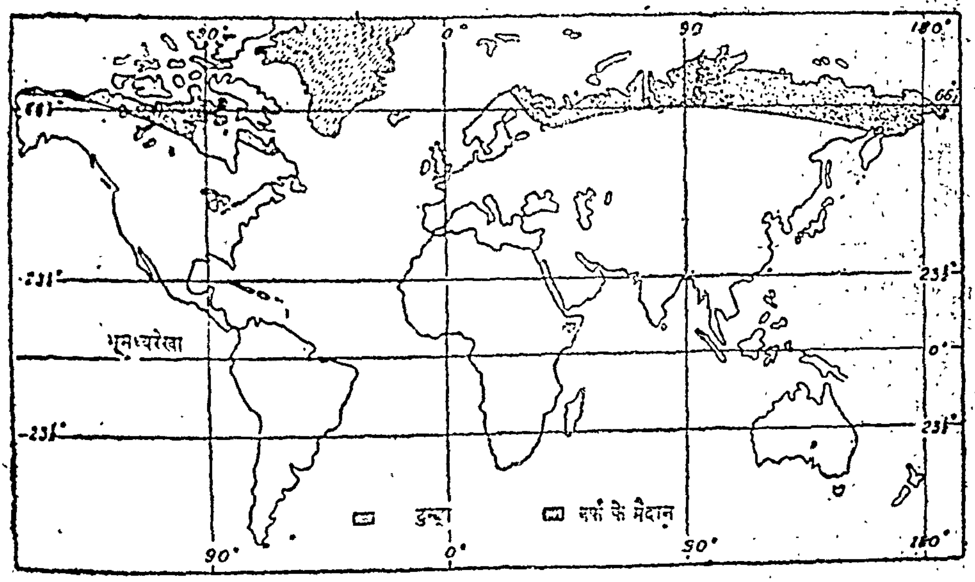

चित्र ७१—शीत मरुस्थल प्रदेश अथवा टुण्ड्रा

बहुत छोटे होते हैं जब सूर्य वहाँ दिखाई नहीं पड़ता और लगातार रात रहती है। शीत ऋतु में लगभग ८ महीने तक कड़ाके का जाड़ा पड़ता है और बर्फ भी गिरती है। तापक्रम हिमांक विन्दु से भी नीचे हो जाता है। उदाहरण के लिए मैकेंजी नदी के मुख पर हरशेल द्वीप में जनवरी में तापक्रम -२०° फा०, अपरनिविक में ८° फा० और बैरो पाइन्ट में -१६° फा० तक रहता है। बरख्योनास्क में भूमि वर्फ से जमी रहती है। इस प्रकार यहाँ की सर्दी लम्बी, भयंकर और थका देने वाली होती है जिसमें दिन का प्रकाश बहुत कम होता है। इस समय यहाँ अत्यन्त ठंडी पूरगा (Purga) और बुरान (Buran) नामक हवायें हिमकणों की बौछार करती हुई चलती रहती हैं।

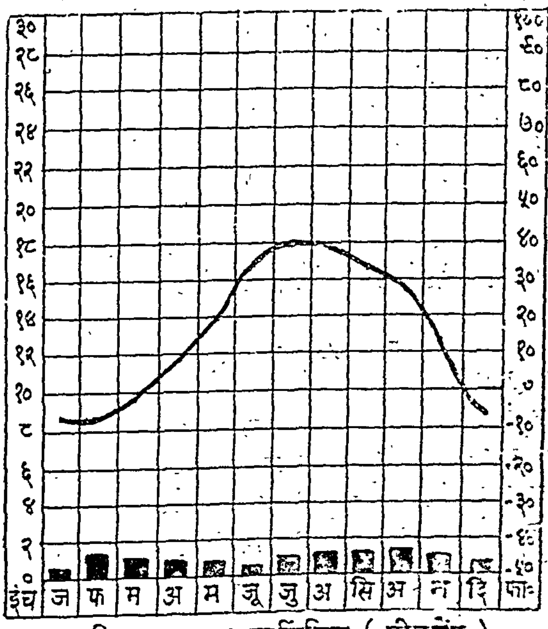

चित्र ७२—अपरनिविक (ग्रीनलैंड)
(तापक्रम और वर्षा)

यहाँ ग्रीष्म काल अल्पकालीन एवं छोटा होता है—केवल ४ महीने का जिसमें लगातार अथवा निरन्तर सूर्य का प्रकाश मिलता है परन्तु गर्मी बहुत ही कम तीक्ष्ण होती है क्योंकि इस ऋतु में सूर्य क्षितिज से

अधिक ऊँचा। नहीं रहता। इस ऋतु में यहाँ औसत तापक्रम ४०° फा० तक रहता है। इसी गर्मी के कारण धरातल का बर्फ पिघल कर दलदल बन जाती है। इस ऋतु में हरशेल द्वीप का जुलाई का तापक्रम ४४° फा०, अपरनिविक का ४२° फा० और बेरोपाइंट का ३८° फा० रहता है। इन स्थानों का वार्षिक ताप-क्रम भेद क्रमशः ६४° फा०, ५०° फा० और ५७° फा० रहता है।

इस प्रदेश में वर्षा बहुत ही कम होती है और जो कुछ भी वर्षा होती है वह बर्फ के रूप में ही। वर्षा की मात्रा ८"-१०" से अधिक नहीं होती, कारण यहाँ की गर्मी का ताप अधिकतर भागों के जाड़ों के ताप से भी कम रहता है। इसके अतिरिक्त वायु ऊपर से नीचे उतरती है अतः वाष्पीभवन क्रिया भी नहीं हो पाती।

वनस्पति—इन प्रदेशों में अल्प ग्रीष्म ऋतु और दीर्घ शीत ऋतु के कारण भूमि पर सदैव बर्फ जमी रहती है, किन्तु ग्रीष्म-काल में जब बर्फ पिघल कर दलदल बन जाते हैं, तो छोटी-छोटी घास तथा फूल देने वाली झाड़ियाँ जिनकी ऊँचाई २-३ फुट से अधिक नहीं होती, उग आती हैं। हॉन्टलबरी, विलो, एल्डर आदि इस प्रकार की झाड़ियाँ हैं। शीतकाल में यह झाड़ियाँ पुनः समाप्त हो जाती हैं और उस समय केवल काई, सेज या लिचन के अतिरिक्त और कोई चीज पैदा नहीं होती।

इन प्रदेशों में इस प्रकार के पशु अधिक मिलते हैं जिन्हें तीव्र सर्दी से बचने के लिए प्रकृति उनके शरीर पर लम्बे-लम्बे बालों को प्रदान करती है—जैसे सफेद रीछ, सफेद लोमड़ी, भेड़िया, खरगोश, कस्तूरी बैल, कैरीबो, बारहसिंघा, आदि। समुद्र में सील, वालरस आदि मछलियाँ अधिक पाई जाती हैं। ग्रीष्म-ऋतु में अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी चिड़ियाएँ, बतख, हंस, सारस, कीड़े-मकोड़े मच्छर और भी दृष्टि-गोचर होने लगते हैं। शीतकाल में ये अधिक दक्षिण की ओर चले जाते हैं।

इन प्रदेशों का आर्थिक जीवन बहुत ही अविकसित है, इनमें प्रायः अविकसित और असभ्य जातियाँ रहती हैं।

एस्कीमो (Eskimoes)—उत्तरी कनाडा के टुन्ड्रा प्रदेश के प्राचीन भ्रमणकारी निवासी हैं। इस प्रदेश में दस मास कड़ी सर्दी पड़ती है और शीत-काल में तो भूमि पर कई फीट मोटी बरफ जम जाती है। अन्य ऋतुओं—शरद तथा बसन्त—में भी भूमि बरफ से ढकी रहती है। केवल दो मास के ग्रीष्म-काल में यद्यपि दिन बहुत ही लम्बे होते हैं (प्रायः २३ घन्टे के) तथापि सूर्य के क्षितिज से अधिक ऊँचाई तक न उठने के कारण तिरछी किरणों में गर्मी प्रदान करने की बहुत कम शक्ति रहती है जिसके फलस्वरूप बहुत ही कम गर्मी महसूस होती है जिससे बर्फ की ऊपरी तह कुछ पिघल जाती है। भूतल की

प्रकृति तथा जलवायु की इन भौगोलिक अवस्थाओं तथा परिस्थितियों के कारण यहाँ न कोई वनस्पति ही उत्पन्न हो सकती है न लाभदायक पालतू पशु ही पाये जा सकते हैं। इसलिए एस्कीमो के लिए किसान या चरवाहे की भाँति स्थिर जीवन बिताना कठिन ही नहीं असम्भव है। इन लोगों को अपने परिवर्तनशील तथा प्रतिकूल भौगोलिक वातावरणों के अनुसार अपने जीवन के ढंगों को गढ़ लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

प्रायः वर्ष भर ही मोटी बर्फ के जमे रहने के कारण ये अपने रहने के लिए बर्फ की गोल झोपड़ियाँ बनाते हैं जिनके मुख पर लम्बी सुरंग बना कर प्रायः झुक या लेटकर भीतर

श्वेत भालू

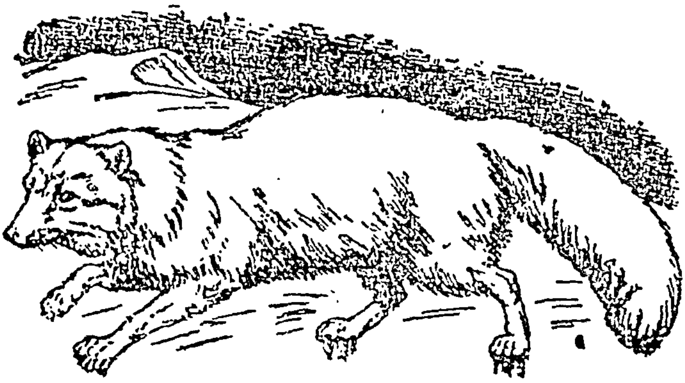

लोमड़ी

वालरस

चित्र ७३—टुंड्रा प्रदेश के पशु

जाने का मार्ग रहता है। भीतरी दीवालों को बारहसिंघा, सील और सफेद रीछ के चमड़े से ढाँक देते हैं और चमड़े को दीवार में ठोकने के लिए पशुओं की हड्डियों के काँटों को काम में लाते हैं। चूल्हे इत्यादि की गरमी से जो बर्फ पिघलती है उसका जल दीवारों के नीचे बनी नालियों से बाहर निकल जाता है। किन्तु इस हिम-गृह के बाहरी भाग पर भयंकर ठण्ड के कारण सदा बर्फ जमी रहती है।

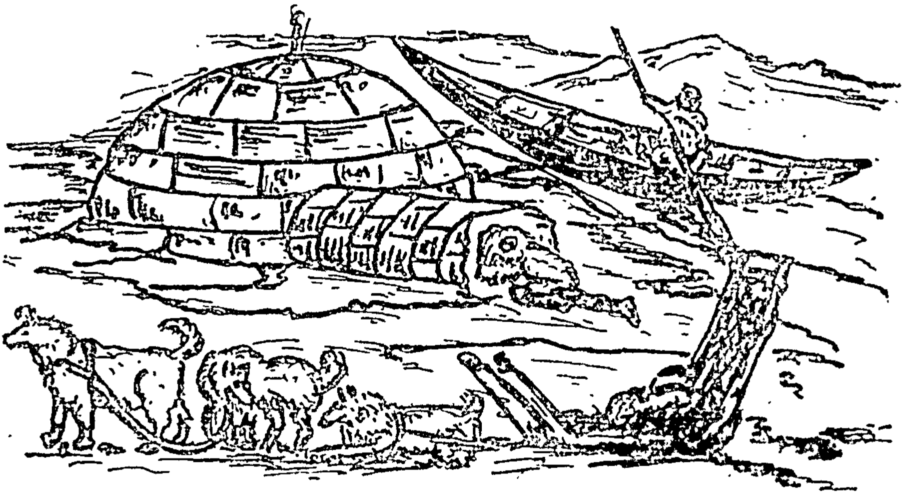

चित्र ७४—इगलू और स्लेज गाड़ी

ये बारहसिंघों के सींगों तथा हड्डियों द्वारा भाले बनाकर सील, वालरस और ह्वेल मछलियों का शिकार करते हैं। इन्हीं के माँस को हिम-गृहों में इन्हीं की चर्बी के तेल में नसों की बत्ती द्वारा चमड़े के दीपकों के चूल्हे पर पकाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं। सील की हड्डियों से सुइयाँ बनाकर इनकी नसों या चमड़े के धागे से बारहसिंघे, सील, ह्वेल और सफेद रीछ के चमड़े सीकर वस्त्र तथा जूते बनाते हैं। इन प्रदेशों का मुख्य पशु बारहसिंघा है जो एस्कीमो को खान-पान, वस्त्र तथा गृह-निर्माण की सामग्रियाँ प्रदान करते हैं और इनकी बे-पहिये की स्लेज (Sledge) गाड़ियों को भी खींचते हैं। इसी से बारहसिंघे को Camel of the Arctic कहा जाता है। इन पशुओं के अतिरिक्त यहाँ श्वेत भालू, कस्तूरी बैल तथा बड़े समूर वाले श्वेत कुत्ते भी पाये जाते हैं। इन कुत्तों को भी गाड़ियों में जोता जाता है। अल्प-कालीन ग्रीष्म-काल में जब बर्फ के पिघलने के कारण इनके बर्फ के गृह रहने योग्य नहीं रह जाते तब ये दक्षिण की ओर चले जाते हैं और बारहसिंघा तथा सील की खालों का तम्बू बनाकर रहते हैं। इन प्रदेशों में केवल काई तथा लिचन की वनस्पति पैदा होती है जो बारहसिंघों को भोजन प्रदान करती है। इन प्रदेशों के नुकीली जंगलों के निकटवर्ती दक्षिणी भागों में कुछ कँटीली झाड़ियाँ तथा इधर-उधर छिटके हुए तृण-क्षेत्र पाये जाते हैं जिन पर इनके पशु

चराये जा सकते हैं। ग्रीष्म-काल में यहाँ नाना प्रकार के रंग-बिरंगे फूल भी निकल आते हैं।

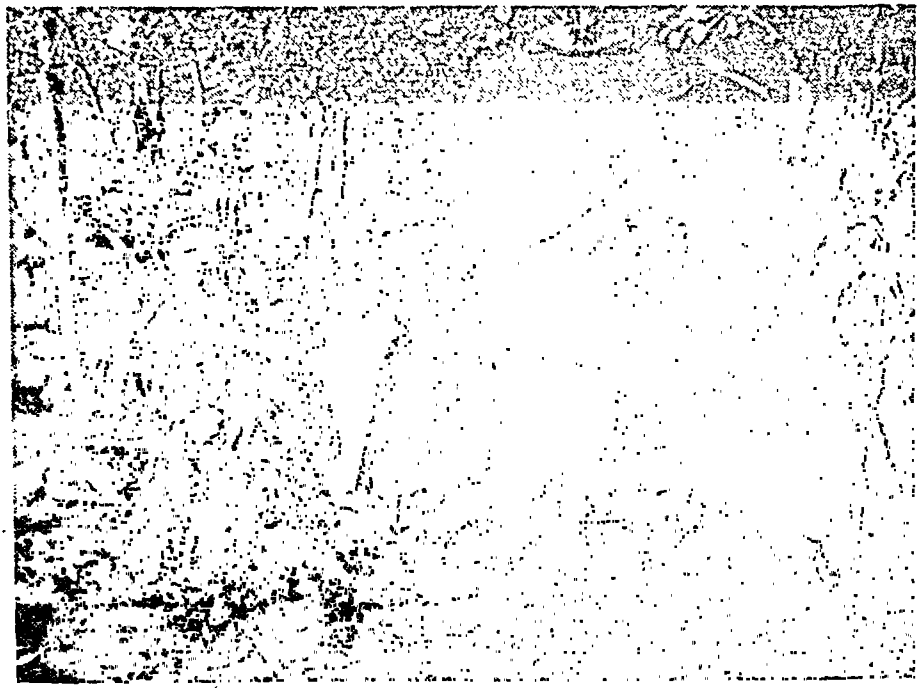

चित्र ७५—एस्कीमो

एस्कीमो का डील-डौल छोटा तथा स्वस्थ होता है। ये स्थिरता का जीवन नहीं बिता सकते। इनको अपने निज के तथा अपने बारहसिंघों के ढोरों के लिए भोजन की खोज में इधर-उधर भ्रमण करना पड़ता है। मछलियों तथा पशुओं का शिकार करने के लिए इन्हें जाड़ों में भी कुत्तों की गाड़ियों में चढ़कर नुकीली पत्ती वाले जंगलों के निकट शिकार करना पड़ता है तथा वहीं ये अपने बारहसिंघों के ढोरों को चराते भी हैं। पशुओं तथा मछलियों को मारते-मारते इनकी प्रकृति भी बड़ी कठोर हो जाती है तथा इन्हें प्राकृतिक कठिनाइयों और कष्टों को सहन करने का अभ्यास पड़ जाता है। कठिन तथा प्रतिकूल भौगोलिक वातावरण इन्हें किसी प्रकार की जीवनन्नोति नहीं करने देते और इन्हें वाध्य होकर "प्रकृति के बहुत समीप" रहना पड़ता है और उसी के अनुसार अपने जीवन को गढ़ डालना पड़ता है। इन्हीं कारणों से इनके प्रदेश को "क्षुधा तथा कष्टप्रद असाध्य अभावों का प्रदेश" (Region of Hunger and Privation) कहते हैं। एस्कीमो का जीवन सजीव भौगोलिक अधिकारों का सजीव चित्र प्रदान करताहै।

समोयडीज (Samoyedes)—एशिया के टुन्ड्रा में ओबी नदी, ओस्टाक, यनीसो नदी और याकूत लीना नदी के किनारे के प्राचीन भ्रमणकारी निवासी हैं। इनका जीवन भी प्रायः एस्कीमो की भाँति ही होता है।

लेप्स (Laps) और फिन्स (Finns)—यूरोप में लैपलैंड और फिनलैण्ड के प्राचीन भ्रमणकारी निवासी हैं। आधुनिक काल में ये कुछ कृषि द्वारा मोटे अन्न—जई और राई पैदा कर लेते हैं। आस-पास के जंगलों से लकड़ियाँ भी काट लेते हैं और तीव्र वाहिनी नदियों द्वारा "जल-विद्युत" उत्पन्न करके कागज के कारखाने चला लेते हैं। इधर-उधर छिटके हुए आस-पास के तृण-क्षेत्रों पर कुछ गाय, बैल, भेड़, बकरी और सुअर भी चरा लेते हैं और इनका दूध, माँस, ऊन और चमड़ा काम में लाते हैं। फिनलैण्ड में कुछ लोहा भी पाया जाता है जो जहाज बनाने के काम में आता है। इन बातों के कारण लैप्स और फिन लोग एस्कीमो इत्यादि से अधिक उन्नत अवस्था में हैं।

(३ ध्रुव प्रान्त के अटल बर्फ वाले प्रदेश
(Ice Cape Type Regions)

यह वे प्रदेश हैं जो ध्रुवों आदि अधिक ऊंचे स्थानों में स्थित होने के कारण हमेशा बर्फ से ढके रहते हैं। इस प्रदेश में एण्टार्कटिक महाद्वीप, ग्रीनलैंड का अधिकांश भाग और कनाडा में स्थित द्वीपों का बड़ा भाग सम्मिलित है। इन प्रदेशों में लगातार बर्फ गिरने से बर्फ की ठोस चट्टानें बनकर अधिक कड़ी हो गई हैं। अपने स्वयं के बोझ से दब कर इन चट्टानों के समूह के समूह पहाड़ों के ढालों से नीचे की ओर खिसकने लगते हैं और समुद्र के किनारे टूट कर उसमें बहने लग जाते हैं।

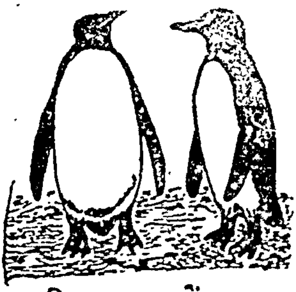

चित्र ७६—पेंगुएन

यहाँ सर्दी बहुत अधिक पड़ती है जो वर्ष भर ही रहती है। तापक्रम सदैव ही हिमांक बिन्दु से नीचे रहता है। ग्रीष्म तो नहीं के बराबर ही है। मौसम बदलने के कारण लगभग गर्मी में ६ महीने का दिन और जाड़े में लगातार ६ महीने की रात होती है। यहाँ अधिक सर्दी के कारण उच्च भार रहता है अतः वर्षा बिल्कुल नहीं होती। सम्पूर्ण पृथ्वी बर्फ से ढकी रहती है।

इन प्रदेशों में सदैव ही हिमका अखण्ड साम्राज्य रहता है; अतः यहाँ केवल काई, लीचन और समुद्री घास के अतिरिक्त कोई चीज पैदा नहीं होती। इस प्रदेश में थोड़ी बहुत चिड़ियाएँ, कीड़े-मकोड़े और सील, ह्वेल नामक मछलियाँ, तथा पेंगुएन नामक चिड़िया पाई जाती हैं।

अधिक सर्दी के कारण यह प्रदेश आर्थिक विकास के लिये बिल्कुल ही अनुपयुक्त है।

प्रश्न

१. विश्व के कुछ क्षेत्रों को 'प्रयत्नशील प्रदेश' (Regions of Efforts) और कुछ को 'सीमित विकास के क्षेत्र' (Regions of Arrested Development) कहते हैं। ये कौन से क्षेत्र हैं? किन भौगोलिक कारणों से इनका विकास नहीं हुआ है?
(यू० पी० १९३६; अ० बो० १९५३; आगरा बो० कॉम० १९५०)

२. 'भूमध्यसागरीय' जलवायु से आप क्या समझते हैं ? इसकी तुलना 'मानसूनी जलवायु वाले प्रदेशों' से कीजिए। विश्व में इन प्रदेशों का वितरण बताइये। इन क्षेत्रों में मानव का आर्थिक विकास कैसा है ? (अजमेर बोर्ड १९४२-१९५२; रा० वि० १९४९)।

३. विश्व के कितने प्राकृतिक खण्ड किये जा सकते हैं (जलवायु और वनस्पति के लिहाज से) ? उनमें से किसी एक की प्राकृतिक सम्पति और आर्थिक विकास का वर्णन करिये। (रा० वि० १९५२ ; आगरा बी० कॉम० १९४६)

४. सैंटलारेन्स तुल्य प्रदेश की जलवायु और वनस्पति का वर्णन करो और बताओ कि इनका वहाँ के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ?
(अ० बो० १९४८-५०; यू० पी० १९४१; रा० वि० १९४८)

५. भूमध्य सागरीय जलवायु की विशेषता बताते हुए वहाँ की पैदावार और आर्थिक विकास का वर्णन करिए। (यू० पी० १९३१; आगरा बी० कॉम० १९४६,१९४८,१९५२)

६. उष्णकटिबन्धीय जलवायु की विशेषता क्या है ? विश्व के किन देशों में इसका विस्तार पाया जाता है ? यहाँ की पैदावार तथा आर्थिक विकास के बारे में आप क्या समझते हैं ?
(यू० पी० १९४२,४९)

७. पश्चिमी यूरोपीय जलवायु वाले प्रदेशों की मुख्य विशेषता क्या है ?
(आगरा बी० कॉम० १९५३)

८. विषुवतरेखीय जलवायु वाले प्रदेशों की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ? इनका विश्व वितरण बताइये और यह भी बताइये कि इस जलवायु का इन प्रदेशों के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है ? (यू० पी० १९४४; आगरा बी० कॉम० १९४४, १९४७)

९. शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों के जलवायु, वनस्पति और आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालिये। (आगरा बी० कॉम० १९४४, १९४७)

१०. पृथ्वी के किन भागों में उष्ण और ठंडे रेगिस्तान पाये जाते हैं ? इनके पाये जाने के क्या कारण हैं ? इनकी परिस्थितियों का वहाँ के निवासियों के चरित्र और व्यवसाय पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (आगरा बी० कॉम० १९४७)

११. पृथ्वी के धरातल पर अधिक वर्षा वाले जंगल पाये जाने के क्या कारण हैं ? उनके उपयोग पर प्रकाश डालिए। (आगरा बी० कॉम० १९४८)

१२. संसार के विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों के उदाहरणों द्वारा बताइये कि इन प्रदेशों में किस प्रकार का पशु जीवन पाया जाता है। (आगरा बी० कॉम० १९४९)

१३. स्टेप्स, सवन्ना और पतझड़ वाले वनों में रहने वाले निवासियों के मुख्य धन्धे क्या हैं ? वहाँ की भौगोलिक और जलवायु सम्बन्धी अवस्थाओं का मनुष्यों के धन्धों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (आगरा बी० कॉम० १९५१)

अध्याय ११

मिट्टियाँ और खाद

(Soils & Manures)

मिट्टी का महत्व—यदि पृथ्वी का कोई भाग मनुष्य के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण है तो वह है मिट्टी। मिट्टी का प्रश्न कृषिकर्ताओं, बागवानों और वन-पदाधिकारियों सभी के लिये महत्व रखता है। वन-पदाधिकारियों (Forest Officers) को नये वन उपजाने तथा वर्तमान वनों की देख-भाल का काम करना पड़ता है। मिट्टी की जानकारी रखना उनके लिये अनिवार्य है। जब तक मिट्टी की प्रकृति के विषय में समुचित ज्ञान प्राप्त न किया गया हो उससे अधिक उपज उपलब्ध होना सम्भव नहीं।

मिट्टी पर ही मनुष्य अपने लिये अथवा दूसरों के लिये भोजन उत्पन्न करता है। फल और अनाज मिट्टी से ही उपजते हैं। मिट्टी से घास उगती है, चारा उगाया जाता है। घास व चारा पशुओं को खिला कर हम उनके दूध की वस्तुएँ तथा अपने पहनने का सामान प्राप्त करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी जीव-जन्तु चाहे वे मनुष्य हों, चाहे पशु और चाहे चिड़िया, वे मिट्टी से उत्पन्न होने वाले ही किसी न किसी पदार्थ पर निर्भर रहते हैं।

श्री ह्यू बैनेट के अनुसार "मिट्टी भूतल पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों का वह ऊपरी पर्त है जो मूल चट्टानों तथा वनस्पति अंश के योग से बनता है।"[1] अतः स्पष्ट है कि मिट्टी न केवल मूल चट्टानों का चूर्ण ही है वरन् वनस्पति के सड़े-गले अंश भी उसमें सम्मिलित होते हैं।

मिट्टी का निर्माण—मिट्टी तीन प्रकार से बनती है। ये क्रियायें निम्नलिखित हैं:—

(१) रासायनिक कटाव (Chemical Weathering)—जमीन को काटने वाली शक्तियाँ, जैसे जल इत्यादि चट्टानों को घोल-घोलकर काट डालती है। चट्टानों के अन्दर पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थ घुलकर बह जाते हैं। अतः उसमें रासायनिक परिवर्तन हो जाता है। ऐसी चट्टानों का मुलायम चूरा मिट्टी बन जाता है। यह क्रिया आर्द्र भागों में होती है।

---

१. "Soil is a layer of unconsolidated materials at the earth's surface which has been derived from rocks and organic matter through agencies of decay and disintegration."

—Hugh Bannett.

(२) भौतिक कटाव (Physical Weathering)—जमीन को काटने वाली शक्तियाँ अपना सीधा आक्रमण चट्टानों पर ही करती हैं और उसका बहुत महीन चूरा बना डालती हैं। उदाहरणतः रेगिस्तान की चट्टानें दिन में सूर्य की तेज गरमी से फैल जाती हैं और रात को हवा का तापक्रम कम हो जाने से सिकुड़ने लगती हैं। एक बार फैलने और दूसरी बार सिकुड़ने से तथा बार-बार ऐसा ही होते रहने से चट्टानें टूटने लगती हैं। उनके इस प्रकार के टूटने में कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं होता। यह उनका प्राकृतिक कटाव हुआ।

(३) जीवधारियों द्वारा कटाव (Biological Weathering)—पेड़ों की जड़ें, जानवरों के बनाये हुए गड्ढे व बिल चट्टानों में रासायनिक व प्राकृतिक परिवर्तन कर देते हैं जिनके फलस्वरूप मिट्टी का जन्म होता है।

मिट्टी जमीन के कटाव की ही एक उपज है। अतः उसको बनाने में किसी प्रदेश की तीन बातों का प्रभाव होता है। वे ये हैं—(अ) जलवायु, (ब) वनस्पति, तथा (स) वह चट्टान जिसके टूटने से वह मिट्टी बनी है। इस कथन का वास्तविक अभिप्राय समझने के लिये हम मिट्टी के दो भेद करते हैं—पहला भेद उन मिट्टियों का जिनके गुणों पर जलवायु तथा वनस्पति का अधिक प्रभाव पड़ा है और जननी चट्टान (Parent Rock) का कम (जैसे प्रेरी प्रदेश की मिट्टियाँ)। दूसरे भेद में वे मिट्टियाँ आती हैं जिनके गुण नीचे वाली चट्टान पर आश्रित हैं अर्थात् जिनके बनने में जलवायु तथा वनस्पति का प्रभाव अपेक्षाकृत कम पड़ा है (जैसे दक्षिणी भारत अथवा वाशिंगटन राज्य की काली लावा मिट्टियाँ)।

रूसी वैज्ञानिकों का मत है कि मिट्टी बनने में सबसे बड़ा हाथ जलवायु का ही रहता है। एक सी जलवायु वाले प्रदेशों में एक सी गुण वाली ही मिट्टियाँ मिलती हैं चाहे वे भिन्न-भिन्न चट्टानों से ही क्यों न उत्पन्न हुई हों। पुरानी मिट्टियाँ अपनी कुछ विशेषतायें रखती हैं क्योंकि उनमें कुछ तत्व तो अधिक मात्रा में इकट्ठा हो जाते हैं और अन्य तत्व कम हो जाते हैं। एक-सी जलवायु वाले दूर-दूर के प्रदेशों की पुरानी मिट्टियों को अध्ययन करने से यही मालूम होगा कि उनकी विशेषताओं में बहुत कुछ समानता पाई जाती है, यद्यपि यह बहुत अधिक सम्भव है कि वे चट्टानों से ही बनी होंगी। रूसी स्टेप में कई प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं, जैसे—ग्रेनाइट, बैसाल्ट और बोल्डर क्ले (Boulder clay)। परन्तु सर्वत्र एक सी जलवायु होने के कारण इन सबके ऊपर लगभग वैसी ही काली मिट्टी मिलती है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिट्टी के अन्दर पाये जाने वाले गुण उस प्रदेश की जलवायु के ही परिणामस्वरूप होते हैं।

एक और उदाहरण लीजिये। एक ही चट्टान भिन्न-भिन्न जलवायु में विभिन्न प्रकार की मिट्टियों को जन्म देती है। ग्रेनाइट नाम की चट्टान को ले लीजिये। शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में इससे भूरी पॉडसोल (Podsol) मिट्टी, स्टेप

प्रदेशों में काली मिट्टी (जिसे चर्नोजम भी कहते हैं) और उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में लाल मिट्टी (Laterite) बनती है। भारत के दक्षिणी ट्रैप की काली मिट्टी (जो लावा के बहाव के द्वारा बनी है) चूना, पोटाश और सोडा आदि से बनी है। यह अर्द्ध-शुष्क भागों में ही पाई जाती है। इसके विपरीत बंगाल और बिहार में (जहाँ औसत वर्षा ५०″ से ८०″ तक होती है) मिट्टी चिकनी दोमट है किन्तु पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब में बलुई दोमट (Sandy loam)। अतः हम देखते हैं कि मिट्टियों के रंग जलवायु बदलने के साथ-साथ बदलते हैं क्योंकि कम या अधिक वर्षा होने से लोहे की मात्रा भी कम या अधिक होती है। इसी विभिन्नता के कारण पूर्वी बंगाल की मिट्टी चावल और जूट, दकन के पठार की कपास तथा पंजाब और उत्तर प्रदेश की मिट्टी गेहूँ के उत्पादन के लिए उपयोगी है।

मिट्टी के गुण (Properties of Soils)

पौधों की वृद्धि के लिये मिट्टी की उपयोगिता उसके दो गुणों पर निर्भर रहती है—(क) भौतिक (Physical), व (ख) रासायनिक (Chemical)।

(क) भौतिक गुणों के अन्तर्गत मिट्टी का रंग और मिट्टी में पानी और वायु की मात्रा आदि का विचार किया जाता है।

मिट्टी का आकार

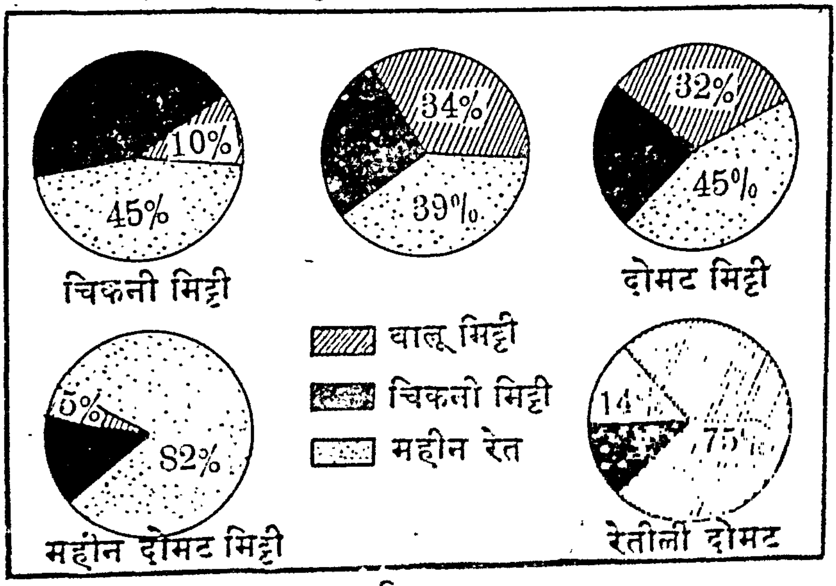

चित्र ७७

(१) मिट्टी के कणों का आकार (Soil Texture)—एक स्थान की मिट्टी दूसरे स्थान की मिट्टी से उसके कणों के आकार में बहुत कुछ भिन्न होती है—

जिसे 'मिट्टी का आकार' कहते हैं। आकार के अनुसार मिट्टी कई भागों में बाँटी जा सकती है—जैसे बालू, महीन रेत और चिकनी मिट्टी। पत्थरों और बजरी के कणों का व्यास दो मिली मीटर से अधिक; महीन रेत का ०.५० से २ मिली मीटर; महीन रेत का ०.०००२ से ०.०५ मिली मीटर और चिकनी मिट्टी के कणों का आकार ०.०००२ मिली मीटर से भी कम होता है। प्रत्येक प्रकार की मिट्टी में विभिन्न प्रकार के कण मिले रहते हैं। बिल्कुल रेतीली (Sand) अथवा बिल्कुल चिकनी मिट्टियाँ (Clay) पौधों की वृद्धि के लिये अच्छी नहीं मानी जातीं क्योंकि रेतीली मिट्टियों में कण बड़े-बड़े होने के कारण उनका पानी शीघ्र भाप बनकर उड़ जाता है और इसलिये फसलें बड़ी जल्दी सूख जाती हैं। ऐसी मिट्टी में केवल वही फसलें पैदा हो सकती हैं जो जल के अभाव को सह सकती हैं। बिल्कुल चिकनी मिट्टियों में कण बिलकुल ठोस होते हैं अतः उनमें पौधों की जड़ें कठिनता से फैल पाती हैं। ऐसी मिट्टियों में खेती करना बहुत ही कठिन होता है क्योंकि उनमें पौधों के लिये आवश्यक भोजन नहीं मिल पाता किन्तु चिकनी और रेतीली मिट्टियों के मेल से बनी हुई दोमट मिट्टी (Loam) खेती के लिए बहुत ही अच्छी मानी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी प्रायः नदियों के डेल्टों में मिलती है और उसमें चावल, गन्ना, जूट आदि फसलें पैदा की जाती हैं।

(२) **मिट्टी का रंग (Colour of the Soil)**—मिट्टी के रंग से मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों का ज्ञान हो जाता है। मिट्टी का रंग कई प्रकार का होता है—लाल, पीला, भूरा या काला। लाल और भूरी मिट्टियों का रंग यह बताता है कि मिट्टी में लोहे का अंश मौजूद है। मिट्टी में वनस्पति के सड़े-गले अंश अथवा पशुओं के अस्थि-पंजर मिले रहने के कारण उसका रंग काला होता है। इस प्रकार की मिट्टियाँ गेहूँ और कपास के उत्पादन के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है। सूखे भागों से जल की कमी के कारण मिट्टियों का रंग ललाई लिये हुए रहता है जिनमें पैदावार नहीं हो सकती। शीतोष्ण प्रदेशों में हल्के रंग की मिट्टियाँ पाई जाती हैं किन्तु आर्द्र भागों की मिट्टियाँ गहरे रंग की होती हैं और अधिक गर्म होती हैं। यह पानी को व सूर्य की किरणों को आसानी से सोख लेती हैं। साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि गहरे रंग की मिट्टियाँ उपजाऊ मानी जाती हैं और हल्के रंग की अनउपजाऊ। जब मिट्टी में से खनिज पदार्थ घुल कर निकल जाते हैं तो उसका रंग पीला हो जाता है।

(३) **मिट्टी में वायु और जल की मात्रा**—किसी भी फसल के पैदा करने के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में वायु और पानी का मिला रहना आवश्यक है। पौधों को प्रायः सारा ही पानी मिट्टी के द्वारा ही प्राप्त होता है। विभिन्न कणों वाली मिट्टियाँ यह बताती हैं कि कौनसी मिट्टियाँ सरलता से पानी को अपने में रोक सकती हैं और कौन सी शीघ्र ही पानी को बहा देती हैं। जब पानी की एक पतली-सी तह कणों पर चिपकी रहती है तो उसे 'चादरी पानी' (Hygroscopic Water) कहते हैं। यह नम भागों के छोटे कणों वाली मिट्टी में अधिक होता है। यह पानी एक ही स्थान पर रहता है और भाप बन कर नहीं

उड़ पाता। जब अधिक वर्षा के कारण पानी कणों के धरातलीय खिचाव से ऊपर आ जाता है तो उसे 'नालीय पानी' (Capellary Water) कहते हैं। जब लगातार वर्षा होने के कारण पानी मिट्टी में आवश्यकता से अधिक जमा हो जाता है तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से वह नीचे चला जाता है। इस पानी को 'आकर्षणीय पानी' (Gravitational Water) कहते हैं। मिट्टी में वायु का मिला रहना इसलिये आवश्यक माना जाता है कि उसके द्वारा पौधे की वृद्धि होती है और उसके द्वारा पौधे को उपयुक्त भोजन मिलता है। अतः यह आवश्यक है कि मिट्टी में जल और वायु दोनों ही पर्याप्त मात्रा में मिले रहने चाहिये।

(ख) मिट्टी में कुछ रासायनिक गुण भी मिले रहते हैं। इन्हीं रासायनिक पदार्थों के कारण मिट्टी में उपजाऊपन पाया जाता है। साधारणतया मिट्टी में सिलीकण, एल्युमिनियम, मेगनेशियम, लोहा, पोटाश, फासफोरस, सोडियम और केल्शियम मिला रहता है। जब यह पदार्थ जल में अच्छी तरह घुल जाते हैं तो मिट्टी को उपजाऊ बना कर पौधों की जड़ों द्वारा पहुँच कर उनकी वृद्धि करते हैं। यही घोल पौधों में स्टार्च, शक्कर, प्रोटीन और चर्बी पैदा करता है। इनके अतिरिक्त मिट्टी में खनिज पदार्थों के कण, सड़ी गली वनस्पतियों के अंश, जीवित कीड़े-मकोड़े तथा नाइट्रोजन भी मिले रहते हैं। मिट्टी में समाया हुआ पानी रासायनिक पदार्थों और ह्यूमस के मिलने से एक प्रकार के हल्के तेजाब के समान हो जाता है। जिस मिट्टी में यह पानी अधिक होता

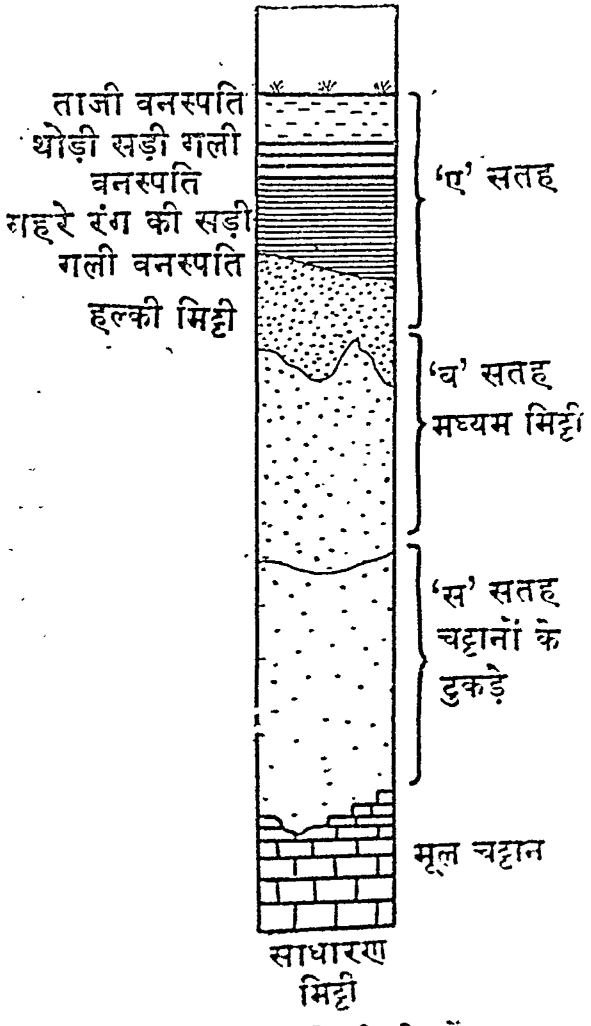

चित्र ७८—मिट्टी की तहें

है वह मिट्टी तेजाबी मिट्टी (Acidic Soil) कहलाती है। इसमें खेती बड़ी कठिनाई से होती है। सूखे भागों में क्षार के कण एकत्रित हो जाते हैं जिससे वहाँ की मिट्टी उपजाऊ हो जाती है। ऐसी मिट्टी को 'क्षारीय मिट्टी' (Alkaline Soil) कहते हैं।

मिट्टी की तहें (Soil Profile)—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है मिट्टी चट्टानों के कटने, टूटने उनके क्षय होने और पौधों तथा जानवरों के सड़ने व गलने से बनती है, अतः अपने उत्पत्ति-काल में मिट्टी इस प्रकार की नहीं थी जिस प्रकार कि हम उसे आज देखते हैं। तब से अब तक इसके भौतिक और रासायनिक दोनों रूप बदल गये हैं। मिट्टी कई मुलायम तत्वों से मिलकर बनी है। यह मुलायम तत्व कई परतों में मिलते हैं। सबसे मुलायम और समान रूप पदार्थ से बना हुआ पर्त ऊपर होता है। उसके नीचे कुछ कठोर पर्त होता है जिसमें असमान आकार के कण मिलते हैं और सबसे नीचे की पर्त में धरातल की चट्टानों के मोटे-मोटे टुकड़े ही अधिक मिलते हैं। इन परतों को 'मिट्टी की तहें' या 'मिट्टी की क्षितिज' (soil horizon) कहते हैं। जब मिट्टी पुरानी हो जाती है तो उसमें प्रायः तीन तहें अथवा परिधियाँ दिखाई पड़ने लगती हैं जिनमें विभिन्न भौतिक और रासायनिक गुण मिलते हैं। मृतिका विज्ञान के शास्त्रियों ने की मिट्टी तीन तहें की हैं—

(१) A तह (A horizon)—ऊपरी तह होती हैं जिनमें वनस्पति और पशुओं के सड़े-गले अंश अधिकता से पाये जाते हैं। आर्द्र देशों में इस तह का उपजाऊपन अधिक पानी में घुल जाने के कारण बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। किन्तु A तह पौधों की वृद्धि के लिए सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है।

(२) B तह (B horizon)—यह शुष्क प्रदेशों में हल्के रंग और कम उपजाऊपन की तह होती है किन्तु आर्द्र देशों में ऊपरी तह का उपजाऊपन अधिक वर्षा के कारण बह कर नष्ट हो जाता है इसलिए यह तह इन प्रदेशों में बड़ी उपजाऊ होती है।

(३) C तह (C horizon)—यह मिट्टी की सबसे निचली तह होती है जिसमें नीचे की चट्टानों का अंश अपने कुछ परिवर्तित रूप में मिला रहता है।

मिट्टियों का प्रकार—खेती-बाड़ी के दृष्टिकोण से मिट्टी एक जड़ पदार्थ न होकर मनुष्य, पौधों और पशुओं की भाँति प्रगतिशील (Dynamic) है। अतः मिट्टी की विशेषतायें उसके बनने के समय पर निर्भर करती है। रूस की चरनोजम और दक्षिणी भारत की काली-ट्रैप मिट्टी सहस्रों वर्षों से बनती रही है। अतः इन पर वनस्पति, जलवायु और निचली चट्टानों का पूर्ण प्रभाव पड़ चुका है। इस प्रकार की मिट्टियों को 'पूर्ण या प्राचीन मिट्टी' (Mature Soil) कहते हैं। जिन मिट्टियों पर इन बातों का प्रभाव नहीं पड़ा है वे 'नवीन या अपूर्ण मिट्टियाँ' (Immature Soils) कहलाती हैं। प्राचीन मिट्टियाँ नई मिट्टियों की अपेक्षा उपजाऊ होती हैं।

विभिन्न प्रकृति खण्डों की जलवायु और वनस्पति की अलग-अलग विशेपतायें

होती हैं। अतः विभिन्न प्राकृतिक खण्डों की मिट्टियाँ भी एक दूसरे से पृथक् होती हैं। जो मिट्टियाँ केवल एक प्राकृतिक खण्ड में पाई जाती हैं उन्हें 'खण्डीय मिट्टियाँ' (Zonal Soils) कहते हैं—जैसे चरनोजम की काली मिट्टी। जो मिट्टियाँ एक से अधिक प्राकृतिक खण्डों में पाई जाती हैं उन्हें 'बहुखण्डीय मिट्टियाँ' (Intro-Zonal Soils) कहते हैं—जैसे स्टेपीय भूरी मिट्टी।

ग्लिनका (Glinka) नामक एक रूसी वैज्ञानिक ने भी मिट्टी के दो मुख्य भेद बताये हैं। पहला वह जिसमें मिट्टी के मुख्य गुण बाहरी कारणों द्वारा उत्पन्न होते है, जैसे जलवायु अथवा वनस्पति आदि के प्रभाव से। दूसरा भेद वह है जिसमें मिट्टी के मुख्य गुण उसकी पैत्रिक चट्टान से मिलते हैं। इस प्रकार की मिट्टियों को क्रमशः 'इक्टोडिनैमोमॉरफिक'[1] और 'इन्डोडिनैमोमॉरफिक'[2] कहते हैं।

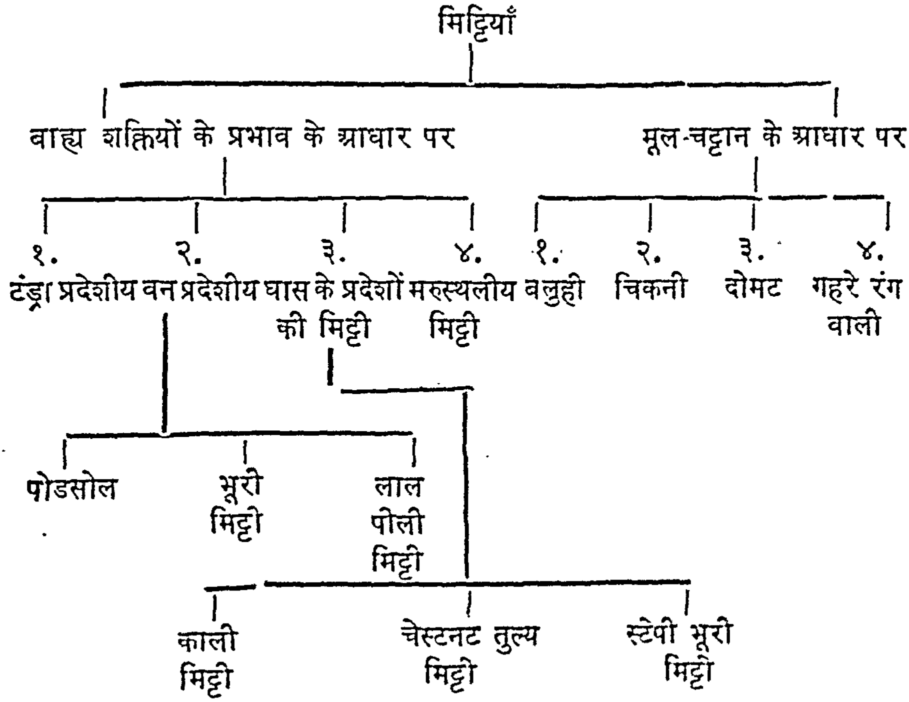

जिन मिट्टियों के निर्माण में मूल चट्टान की अपेक्षा बाह्य प्राकृतिक शक्तियों का अधिकयोग होता है उन्हें निम्न प्रकारों में बाँटा जाता है—

(१) टुन्ड्रा प्रदेशीय मिट्टी (२) वन प्रदेशीय मिट्टी
(३) घास के प्रदेशों की मिट्टी (४) मरुस्थलीय मिट्टी

1. 'Ektodynamomorphic' Soil.
2. 'Endodynamomorphic' Soil.

(१) टन्ड्रा प्रदेशीय मिट्टी (Tundra Soils)—यह नीले भूरे रंग की होती है। शीतकाल में बर्फ से ढकी रहती है, किन्तु ग्रीष्म काल में कुछ समय के लिये बर्फ पिघल जाती है और दलदल बन जाता है। इस मिट्टी में वनस्पति अंश की बहुत कमी होती है। यह उत्तरी कनाडा, ग्रीनलेंड तट, उत्तरी रूस, उत्तरी साइबेरिया तथा दक्षिणी चिली में मिलती है।

(२) वन प्रदेशीय मिट्टी (Forest Soils)—इस प्रकार की मिट्टियाँ नम प्राकृतिक प्रदेशों में पाई जाती हैं। इन खण्डों में वह मिट्टियाँ एक स्थायी वनस्पति की चादर के नीचे तैयार होती हैं। इन प्रदेशों की मिट्टी में चूना तथा अन्य घुलनशील लवण और वनस्पति अंश की कमी होती है, किन्तु लोहे का अंश काफी होता है। तेजाब की भी मात्रा पर्याप्त होती है। नाइट्रोजन तथा फासफेट की कमी रहती है। ये वन प्रदेशीय मिट्टियाँ जलवायु भेद से मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं—

(अ) गहरी भूमि मिट्टी (Podsols or Grey Soil)—यह मिट्टी उत्तरी गोलार्द्ध में शीत-शीतोष्ण कटिबन्ध के वनों में मिलती है जहाँ नुकीली पत्ती वाले जंगल उगे हैं। इस मिट्टी में वनस्पति अंश की कमी होती है क्योंकि पेड़ों से झड़ी हुई पत्तियों का ओषजनीकरण (Oxidization) होता रहता है जिससे उनसे वनस्पति अंश बहुत कम प्राप्त हो पाता है। जड़ों के द्वारा ऊपरी पर्त में वनस्पति अंश की वृद्धि इसलिये नहीं हो पाती क्योंकि जड़ें मिट्टी की निचली तहों तक समाई रहती है। वनस्पति अंश की कमी तथा अधिक

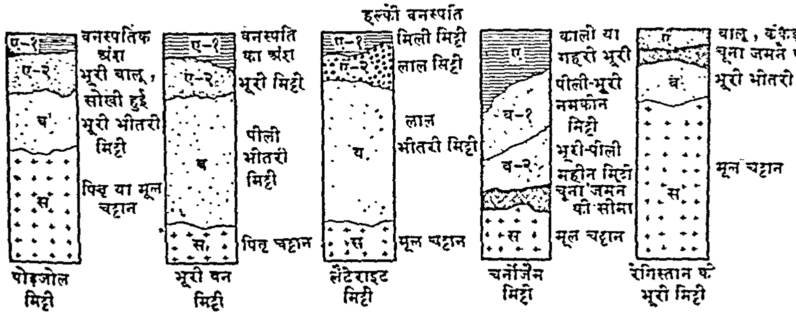

चित्र ७६—विभिन्न प्रकार की मिट्टियों की तहें

ओषजनीकरण के फलस्वरूप इस प्रदेश की मिट्टी का रंग गहरा भूरा होता है। इसी के साथ पेड़-पौधे, पत्तियों और वहीं रहने वाले जानवरों के सड़ने और सड़े-गले पदार्थों का धरातल की मिट्टी से मिलने के कारण यह मिट्टियाँ अधिक तेजाबी (acidy) हो जाती हैं, अतः खेती के लिये अनुपयुक्त होती हैं। इन्हें उपजाऊ बनाने के लिये निरन्तर खाद देने की आवश्यकता होती है। इस मिट्टी में जहाँ वन साफ कर लिये गये हैं खेती की जाती है; किन्तु उगने की ऋतु छोटी होने के कारण तथा जाड़ों में वर्फ अधिक पड़ने के कारण फसल पनप नहीं पाती। यह मिट्टी कृषि की दृष्टि से महत्व की नहीं है। केवल निजी उपभोग के

लिए कृषक जई, जौ, आलू, राई और कुछ साग-सब्जी पैदा कर लेते हैं। मिट्टी की अनुपयुक्तता के कारण ही यहाँ लकड़ी काटना, मछली पकड़ना और शिकार करने का धन्धा किया जाता है।

(ब) भूरी मिट्टी (Brown Soil)—यह मिट्टी शीतोष्ण प्रदेश के नम प्रदेशों में मिलती है जिनमें चौड़ी पत्तियों के वन मिलते हैं। इसमें वनस्पति अंश होता है और गहरी भूरी मिट्टी से अपेक्षाकृत अधिक उपजाऊ होती है। इस प्रकार की मिट्टी उत्तरी-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र, मध्य यूरोप के पश्चिमी भाग, उत्तरी चीन, कोरिया तथा मध्य व दक्षिणी जापान में मिलती है। इन प्रदेशों में वर्षा की कमी से उपजाऊ पदार्थ कम बह पाते हैं। अतः इसमें तेजाब का अंश कम होता है। इसमें लोहा, चूना, पोटाश तथा अन्य खनिज अंश अधिक पाये जाते हैं। इसमें लगभग ३" की गहराई तक वनस्पति के कण मिले रहते हैं। इस मिट्टी की मुख्य विशेषता यह है कि इस पर कई प्रकार की खेती की जा सकती है।

(स) लाल-पीली मिट्टी (Red-Yellow Soil)—इस प्रकार की मिट्टी उष्ण तथा उष्ण कटिबन्धीय भागों के प्रदेशों में मिलती है। अधिक वर्षा तथा लम्बे ग्रीष्मकाल के फलस्वरूप इन प्रदेशों में पानी मिट्टी की निचली सतहों तक सोख जाता है और उपजाऊ तत्वों को अपने साथ नीचे ले जाता है जिससे यह मिट्टी अनुपजाऊ हो जाती है। लोहे के छोटे-छोटे कणों के मिले होने के कारण इनका रंग लाल होता है। इन मिट्टियों में फासफोरस, वनस्पति का सड़ा-गला अंश, नोषजन तथा अन्य खनिज पदार्थों की कमी रहती है। इन मिट्टियों का दाना महीन होने और पानी रोकने की शक्ति होने के कारण निरन्तर खाद

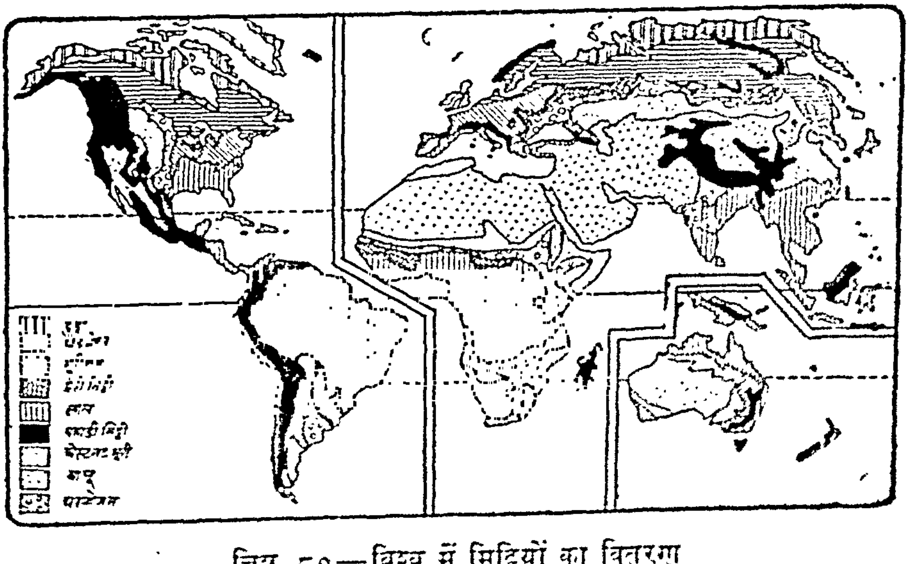

चित्र ८०—विश्व में मिट्टियों का वितरण

प्राप्त होने पर बहुत उपजाऊ हो जाती हैं। इनकी ऊपरी तह में भूरी, भुरभुरी, चीका और दोमट के कण मिले रहते हैं किन्तु निचली तह यथेष्ट गहराई तक

संगठित रूप से पाई जाती है। मैदानों में यह मिट्टियाँ गहरी और उपजाऊ तथा पठारों पर हल्की, पतली और बंजरीली होती हैं। यह मिट्टी दक्षिणी-पूर्वी एशिया (द० चीन और प्रायद्वीपीय भारत), उत्तरी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी फ्रांस, दक्षिणी संयुक्त राज्य, मध्य अमेरिका, अमेजन बेसिन, कांगो बेसिन इत्यादि में मिलती है। यह बलुही होती है और इसमें वनस्पति अंश कम होता है। इसी मिट्टी के क्षेत्र में जहाँ-तहाँ लेटराइट मिट्टी भी मिलती है जो बहुत अनुपजाऊ होती है।

(३) घास के प्रदेशों की मिट्टी (Grassland Soils)—इस प्रकार की मिट्टी का विस्तार वन प्रदेशीय मिट्टियों की अपेक्षा बहुत कम है। इस मिट्टी में वनस्पति अंश काफी मिलता है क्योंकि भूमि की ऊपरी सतह में घास की जड़ों का जाल-सा बिछा रहता है जिसके गल-सड़ जाने पर वनस्पति अंश (humus) की प्राप्ति हो जाती है। इस मिट्टी के उपजाऊ तत्वों की हानि पानी के निचले पर्तों तक सोखे जाने से नहीं हो पाती क्योंकि इन प्रदेशों में अधिक वर्षा नहीं होती। वनस्पति का अंश अधिक और गहरा प्रभाव होने के कारण इनका रंग काला या गहरा भूरा होता है। घास के प्रदेशों का खेती के काम में लाया जाना आसान है और इनकी मिट्टी भी उपजाऊ होती है। इसलिये इन प्रदेशों का महत्व कृषि की दृष्टि से बहुत अधिक है। रंग भेद से भी यह मिट्टी तीन प्रकार की होती है :—

(अ) काली मिट्टी (Black Soil)—कुछ खास प्रदेशों में काली मिट्टी मिलती है। यह उन प्रदेशों में पाई जाती है जहाँ अपेक्षाकृत अच्छी वर्षा हो जाती है। इसलिये लम्बी-लम्बी सघन घास उग आती है जिसके गलने से भूमि में वनस्पति अंश की प्रचुरता हो जाती है। वनस्पति अंश की अधिकता के कारण ही इस मिट्टी का रंग काला होता है। वर्षा कम होने से इसके उपजाऊ पदार्थ बह नहीं सकते अतः इसमें चूना और खारे पदार्थों की प्रचुरता होती है। इसमें चीका भी पाया जाता है। अतः इस मिट्टी में बिना खाद के ही कई वर्षों तक खेती की जाती सकती है। यह मिट्टी गेहूँ और और कपास की खेती के लिए सब से अधिक उपयुक्त है। रूस में इस मिट्टी को 'चर्नोजम' (Chernozem) कहते हैं। यह शब्द रूसी भाषा का है जिसका अर्थ काली मिट्टी होता है। यह मिट्टी दक्षिणी मध्य कनाडा, मध्य संयुक्त राष्ट्र, दक्षिणी रूस, पश्चिमी साइबेरिया, उत्तरी पश्चिमी दकन, मध्य क्वीन्सलैण्ड, मध्य अर्जेन्टाइना, सूडान तथा दक्षिणी अफ्रीका संघ में मिलती है। भारत में काली मिट्टी या रेगर मिट्टी मध्य प्रदेश, बरार, सौराष्ट्र तथा गुजरात के कुछ भागों तक फैली है।

(ब) प्रेयरी प्रदेशीय मिट्टी या चेस्टनट तुल्य भूरी मिट्टी (Chestnut Brown Soil)—जिन घास के मैदानों में मामूली वर्षा होती है वहाँ भी काफी घास उग आती है। उस घास के उगने से मिट्टी को वनस्पति अंश प्राप्त हो जाता है। किन्तु इसमें काली मिट्टी की अपेक्षा वनस्पति अंश कुछ कम होता है फिर भी यह काफी उपजाऊ होती है। इस मिट्टी में चूने और खारे पदार्थों

की कमी होती है किन्तु साथ ही ये मिट्टियाँ तेजाबी नहीं होतीं। इनका दाना महीन और रंग काला तथा गहरा भूरा होता है। यह संसार भर कृषि योग्य मिट्टियों में सर्वोत्तम उर्बरा शक्ति-सम्पन्न समझी जाती है। इसमें खेती के लिये जल भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है। इसमें कई प्रकार की पैदावारें उगाई जाती हैं। यह मिट्टी मध्य संयुक्त राष्ट्र, मध्य रूस, मध्य साइबेरिया, उत्तरी पूर्वी अर्जेन्टाइना, फ्रेंच सूडान इत्यादि देशों में मिलती है।

(स) स्टेपी भूरी मिट्टी (Brown Steppe Soil)—उष्ण तथा शीतोष्ण प्रदेश के जिन घास के मैदानों में बहुत कम वर्षा होती है वहाँ घास भी छोटी-छोटी और कम होती है इसलिये वहाँ की भूमि में वनस्पति अंश साधारण होता है कन्तु यह मिट्टी वन प्रदेशों की मिट्टी की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है। यह मिट्टी मध्य संयुक्त राष्ट्र, स्पेन, मध्य साइबेरिया, उत्तरी चीन, उत्तरी भारत तथा मध्य अर्जेन्टाइना में और आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के सवन्ना प्रदेशों में पाई जाती है। यह मिट्टी उपजाऊ होते हुए भी बहुत चरागाहों के काम में लाई जाती है क्योंकि वर्षा की मात्रा फसलों के बढ़ने के लिये पर्याप्त नहीं होती। तथा मिट्टी में नमी का अभाव रहता है और निचली पर्तों में ह्यूमस की मात्रा भी अधिक नहीं होती।

(४) मरुस्थलीय मिट्टी (Desert Soils)—यह मिट्टी बलुही तथा हल्के रंग की होती है। मरुस्थल प्रदेश शुष्क रहते हैं और प्रायः वनस्पतिशून्य होते हैं। इसलिये यहाँ की मिट्टी में वनस्पति अंश की कमी रहती है। वर्षा का प्रायः अभाव होने के कारण पानी की निचली सतहों तक सोख खनिज अंशों में बह जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ तो वाष्पीकरण द्वारा जल उल्टे—नीचे की सतहों से ऊपर को—खिचता रहता है। इसमें खनिज नमक काफी मात्रा में मौजूद होते हैं अतः यह मिट्टी अनुपजाऊ तो नहीं होती किन्तु कृषि-कार्य में लाई नहीं जाती क्योंकि जल का काफी अभाव रहता है। यह मिट्टी उष्ण तथा शीतोष्ण प्रदेशों के मरुस्थलों तथा अत्यन्त शुष्क भागों में मिलती है।

ऊपर बताया जा चुका है कि मिट्टी चट्टानों की टूट-फूट का फल है। चट्टानें मौसम के इन तीन प्रभावों के कारण टूटती-फूटती हैं: (१) सूर्य, वर्फ, बहता पानी, समुद्र की लहरें और हवायें आदि भौतिक शक्तियों द्वारा; (२) कार्बन-डाइ-आक्साइड, वनस्पति के सड़े-गले अंश आदि रासायनिक शक्तियों द्वारा; और (३) पौधों की जड़ें जो चट्टानों में घुस कर उनमें दरारें पैदा कर देती हैं और पशु—जैसे चींटी, केंचुआ आदि भूमि को खोद कर उसे ढीला कर देते हैं।

जिन मिट्टियों के निर्माण में मूल चट्टान का साधन प्रबल होता है उनके निम्न भेद किये जाते हैं—

(१) बलुही मिट्टी (Sandy Soil)—इस मिट्टी का जन्म सिलीका (Silica) के प्रकार की चट्टानों से हुआ है। इसके कण ढीले होते हैं क्योंकि उनको संगठित रखने के लिये इस मिट्टी में चिपकने वाले पदार्थ का अभाव होता है। इसमें अधिक समय तक नमी स्थिर नहीं रह सकती क्योंकि वाष्पीकरण

सरलता से जारी रहता है । इस मिट्टी में खेती करने के लिये सिंचाई की बहुत आवश्यकता होती है । पौधे के लिये आवश्यक तत्वों की इसमें बहुत कमी होती है । ऐसी मिट्टी नदियों के ऊपरी भागों में मिलती है और ऊसर क्षेत्रों में भी इसी का बाहुल्य होता है । यह शुष्क मिट्टी है । अतः खेती के दृष्टिकोण से व्यर्थ है ।

(२) चिकनी या चीका मिट्टी (Clayey Soil)—यह मिट्टी शेल (Shale) नामक मुलायम चट्टान से बनती है । इसके कण बारीक और संगठित होते हैं क्योंकि इस मिट्टी में चिपचिपा पदार्थ प्रचुरता से पाया जाता है । यह पानी धीरे-धीरे सोखती है, क्योंकि कणों के बीच बहुत कम स्थान होता है, किन्तु सोखा हुआ जल बहुत समय तक कायम रहता है क्योंकि हवा गहराई तक अन्दर नहीं पहुँच सकती और वाष्पीकरण बहुत ही कम हो पाता है । बहुत कम सिंचाई द्वारा भी फसल उगाई जा सकती है । पौधे के आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । किन्तु इसमें पौधों की जड़ें गहराई तक नहीं जा सकतीं इसलिये घास के लिये यह बहुत उपयुक्त होती है । ऐसी मिट्टी में हल चलाना भी कठिन होता है, इसलिये यह खेती के लिये उपयुक्त नहीं समझी जाती ।

(३) दोमट मिट्टी (Loam)—यह बलुही तथा चिकनी मिट्टियों के मिश्रण से बनती है । इसके कण न बहुत मोटे और न बहुत बारीक ही होते हैं । कणों के बीच में साधारण स्थान होता है जिससे पानी आसानी से सोख जाता है और स्थिर भी रहता है । पौधों की जड़ें आसानी से अन्दर जा सकती हैं और हल चलाना आसान होता है । इस मिट्टी में पौधों के लिये आवश्यक तत्व काफी होते हैं । सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती । यह मिट्टी खेती के लिये आदर्श मिट्टी है ।

(४) गहरे रंग वाली मिट्टी (Dark Soil)—यह मिट्टी बैसाल्ट नामक चट्टान से बनती है । यह काफी उपजाऊ होती है । इसके लक्षण बहुत कुछ दोमट मिट्टी से मिलते-जुलते होते हैं ।

भूमंडल पर कुछ मिट्टियों में शताब्दियों से खेती-बाड़ी की जा रही है जैसे सिंधु-गङ्गा के मैदान या ह्वांगह्वो के मैदान में । इतने लम्बे समय से कृषि होते रहने से इसमें से कई तरह के खनिज पदार्थों के कण समाप्त हो जाते हैं जिससे उनका उपजाऊपन सीमित हो जाता है । इस प्रकार की मिट्टियों को 'कृपित मिट्टी' (Cultivated Soils) कहते हैं । इसके विपरीत अमरीका के मध्यवर्ती मैदानों में तथा साइबेरिया की काली मिट्टी के प्रदेशों में खेती थोड़े ही वर्षों से आरंभ की गई है । अतः इनका उपजाऊपन बहुत अधिक है और इनका भविष्य भी उज्ज्वल है । ऐसी मिट्टियों को 'अछूती मिट्टी, (Virgin Soils) कहते हैं ।

मूल स्थान पर स्थिति तथा स्थानपरिवर्तन के आधार पर मिट्टी को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है :—

(१) मूल स्थानीय मिट्टी (Residual Soil)
(२) स्थानान्तरित मिट्टी (Transported Soil)

(१) मूल स्थानीय मिट्टी (Residual Soil)—यह वह मिट्टी है जो मूल चट्टान से टूट-फूट के बाद बनकर उसी स्थान पर रहती है अर्थात् जहाँ इसका निर्माण हुआ वहीं पर प्राप्त होती है। इसे अवशिष्ट मिट्टी (Residual Soil) भी कहते हैं। पेड़-पौधे या जीव-जन्तुओं के ढाँचों की सड़ी-गली सामग्री के जमते रहने से स्थानीय मिट्टी बनती है, इसलिये इस प्रकार की मिट्टी को Muck soil भी कहते हैं अर्थात् जो प्राणिवर्गीय प्रदेशों के क्षय के परिणाम-स्वरूप बनी हो। यह बहुधा वन प्रदेशों तथा जलाशयों के पेंदे में बनती है। इस मिट्टी में एक ही प्रकार के खनिज कण पाये जाते हैं, अतः यह कृषि के अनुपयुक्त होती है। यह कुछ लिबलिबी-सी होती है और प्रायः पठारों तथा ऊँचे भागों में पाई जाती है।

(२) स्थानान्तरित मिट्टी (Transported Soil)—यह वह मिट्टी होती है जो चट्टानों की टूट-फूट से बनकर बाह्य प्राकृतिक शक्तियों (जल, वायु, हिमनदी इत्यादि) द्वारा मूल स्थान से हटाकर अन्यत्र पहुँचा दी गई हो। विविध प्राकृतिक शक्तियों के योग के अनुसार स्थानान्तरित मिट्टी निम्न प्रकारों में विभाजित की जाती है—

(i) जल प्रवाहित मिट्टी अथवा काँप (Alluvial Soil)—यह मिट्टी जल-प्रवाह द्वारा अपने मूल स्थान से बहा कर अन्यत्र विस्तीर्ण कर दी जाती है। यह नदियों के बेसिन, घाटियों तथा डेल्टा प्रदेशों में विशेषतः मिलती है। जल प्रवाह से इनके कण बारीक होते जाते हैं इसलिए नदियों की ऊपरी तलहटी में इसके कण बड़े-बड़े और डेल्टा प्रदेश तक पहुँचते-पहुँचते बहुत छोटे होने

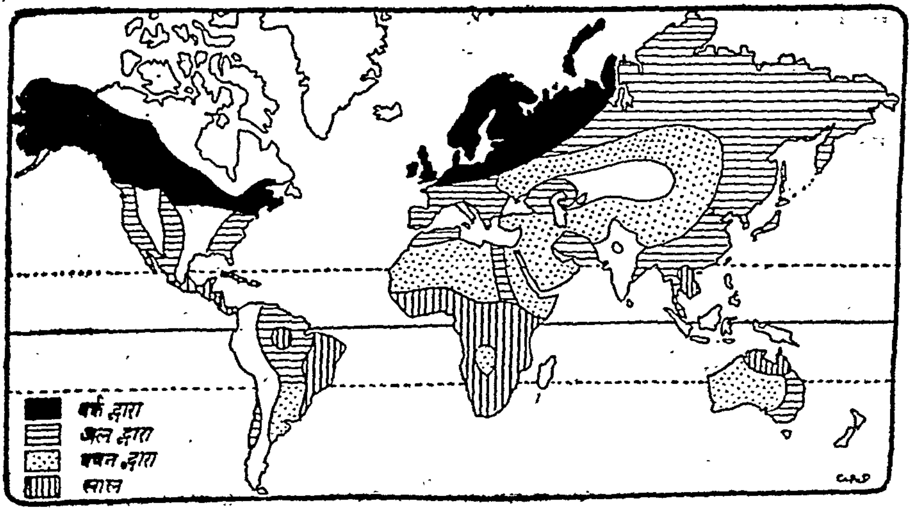

चित्र ८१—स्थानान्तरित मिट्टियाँ

जाते हैं। इस मिट्टी में वनस्पति अंश पर्याप्त मात्रा में होता है। इसमें चूने की मात्रा भी खूब होती है। अन्य खनिज लवण भी जो जल-प्रवाह के मार्ग में

पड़ते हैं इसमें पाये जाते हैं। अतः यह संसार की अत्यन्त उपजाऊ मिट्टियों में गिनी जाती है।

(ii) हिम प्रवाहित मिट्टी (Glacial or Till Soil)—उन प्रदेशों में जो अतीत काल में बर्फ से ढके थे और अब भी जहाँ वर्ष में अधिकांश समय तक बर्फ जमी रहती है इस प्रकार की मिट्टी मिलती है। इस मिट्टी के करण कड़े तथा बहुत मोटे होते हैं। कभी-कभी तो बहुत बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़े भी इसमें मिलते हैं। शीत प्रदेशीय पहाड़ी भागों में हिम नदियों के तीव्र प्रवाह से चट्टानें टूट कर उनके साथ वह आती हैं और घाटियों में जमा हो जाती हैं। इस मिट्टी के प्रदेश उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी-पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भाग में मिलते हैं। यह मिट्टी कृषि के लिये कुछ महत्व रखती है।

(iii) वायु प्रवाहित मिट्टी (Eolin Soil or Loess)—वायु वेग से अपने मूल स्थान से स्थानान्तरित मिट्टी को वायु प्रवाहित मिट्टी कहते हैं। स्थानान्तरण में वायु का प्रभावशाली कार्य तभी सम्भव होता है जब भूमि पर वनस्पति न उगी हो। अतः शुष्क तथा मरुस्थलीय भागों में इस तरह का स्थानान्तरण सम्भव होता है। शुष्क प्रदेशों की बलुही मिट्टी के मोटे करण बालुकी-स्तूप (Sand dunes) की शक्ल में जमा हो जाते हैं और बारीक कणों के पर्त दूर-दूर तक जम जाते हैं। ड्यून मिट्टी सं० रा० अमरीका के दक्षिणी पूर्वी समुद्र तट पर और फ्रांस के उत्तरी भागों में पाई जाती है। नदियों के तट पर मरुस्थलों की सीमाओं के निकट इस प्रकार स्थानान्तरित मिट्टी का प्रसार खूब मिलता है। वायु प्रवाहित मिट्टी का ज्वलन्त उदाहरण लोएस (Loess) मिट्टी है जिसका विस्तार ह्वांगहो नदी की ऊपरी तलहटी में सहस्रों वर्ग मील में मिलता है। वहाँ इस मिट्टी की गहराई सैकड़ों फुट तक मिलती है। चीन में यह मिट्टी समीपस्थ गोबी और शामो के मरुस्थल से वायु द्वारा उड़ाकर लाई जाती है।

भारत की मिट्टियाँ

भारतवर्ष की मिट्टियों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) उत्तर के बड़े मैदान की मिट्टियाँ
(२) दक्षिणी भारत की मिट्टियाँ
(३) हिमालय पर्वत की मिट्टियाँ

(१) उत्तरी मैदान की मिट्टियाँ—ये मिट्टियाँ हिमालय की नदियों द्वारा बहा कर लाई गई हैं। यह सबसे अधिक उपजाऊ होती है। इस मिट्टी वाले प्रदेश का क्षेत्रफल तीन लाख वर्गमील है। अधिकांश सिन्ध, उत्तर राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल और आधे आसाम में यही मिट्टी पाई जाती है। इस मिट्टी की गहराई का अभी तक ठीक प्रकार से

पता नहीं लग पाया है। खुदाई करने पर ज्ञात हुआ है कि १,६०० फीट तक यह मिट्टी मिलती है। इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस और वनस्पति के अंश की कमी है परन्तु पोटाश और चूना काफी मात्रा में पाया जाता है।

उत्तरी मैदान की मिट्टियाँ नदी की घाटी के भिन्न-भिन्न भागों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं; जैसे भावर और तराई में यह पुरातन कच्छार (Older

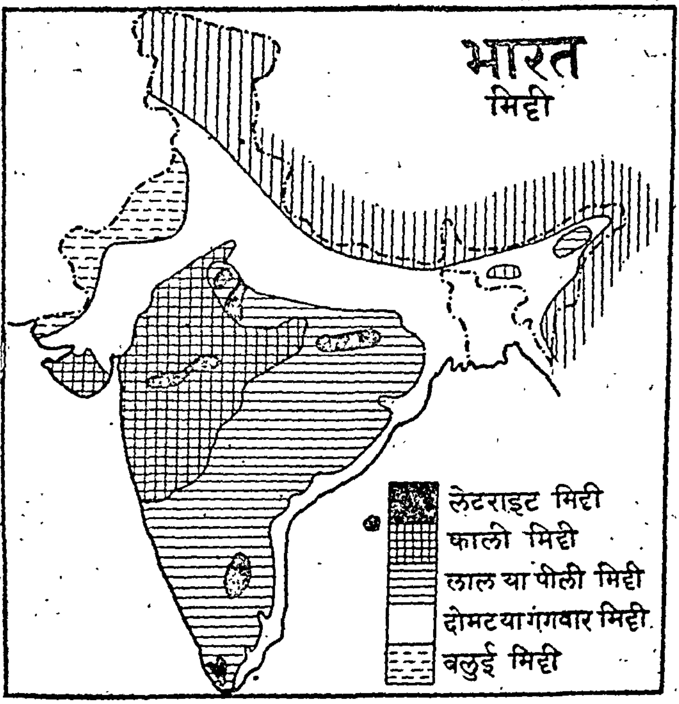

चित्र ८२—भारत की मिट्टियाँ

Alluviam), मध्य की घाटी में नवीन कच्छार (Newer Alluviam) और डेल्टा में नवीनतम कच्छार मिट्टी है। पुरातन कच्छार मिट्टी में मोटी बालू का अंश प्रधान होता है। इसमें पत्थर के टुकड़े भी मिले रहते हैं, अतः यह कम उपजाऊ होती है। नवीन कच्छार में चिकनी मिट्टी की बहुतायत रहती है। वर्षा की भिन्नता के कारण इस मिट्टी के गुणों में भी अन्तर पाया जाता है; जैसे अधिक वर्षा के कारण ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में चूना, मैगनेशियम और पोटाश आदि क्षार पानी के साथ भूमि में भिद जाते हैं, अतः मिट्टी बलुई हो जाती है किन्तु सिन्धु की घाटी में वर्षा की कमी के कारण ये क्षार भूमि पर ही रहते हैं। गंगा की घाटी में मध्यम मात्रा में ये क्षार मौजूद रहते हैं।

नदियों के डेल्टों में नदियों की घाटी की मिट्टी की अपेक्षा अधिक बारीक कण होते हैं। इसमें वनस्पति की मात्रा भी खूब होती है। यह मिट्टी बहुत ही उपजाऊ होती है। नदियों के किनारे-किनारे तो बालू की अधिकता रहती है।

रेह मिट्टी (Reh)—सिन्धु-गंगा के मैदान के कुछ भाग—उत्तरी प्रदेश के उत्तरी भाग, बिहार, पश्चिमी पंजाब और राजस्थान आदि—ऐसे भी हैं जहाँ मिट्टी में नमक की मात्रा अधिक पाई जाती है। ऐसी नमकीन मिट्टी को रेह (Reh) कहते हैं। रेह बनने का मुख्य कारण यह है कि जब बरसात का पानी छन कर जमीन की गहराइयों में पहुँचता है और वहाँ भीतरी तह के पानी से मिल कर एक हो जाता है तो भीतरी मिट्टी में रहने वाले नमक घुल कर इस पानी में मिल जाते हैं। गर्मी के मौसम में जब धूप ज्यादा पड़ती है तो मिट्टी में मिला हुआ पानी भाप बन कर उड़ने लगता है। उस वक्त भीतरी मिट्टी का खारा पानी भी ऊपर खिंच आता है। यह पानी जब भाप बन कर उड़ता है तो धरातल पर नमक की तह जम जाती है। इस प्रकार पंजाब व उत्तर प्रदेश में भूमि का बहुत बड़ा भाग क्षार के कारण खेती के अयोग्य हो गया है। बम्बई, बंगाल और मद्रास प्रान्तों में भी समुद्र के पानी ने बहुत-सी भूमि को नष्ट कर दिया है।

(२) दक्षिणी भारत की मिट्टियाँ—दक्षिणी भारत की मिट्टियाँ चार भागों में बाँटी जा सकती हैः—(i) काली मिट्टी, (ii) लाल मिट्टी, (iii) लैटेराइट मिट्टी, और (iv) नदियों के बाढ़ द्वारा लाई गई मिट्टी।

(i) काली मिट्टी (Black or Regur Soil)—बम्बई से अमरकण्टक तक तथा बेलगाँव से गुना तक फैली हुई है अर्थात् इस मिट्टी का प्रदेश २,००,००० वर्गमील भूमि में फैला है। बम्बई राज्य के अधिकांश भाग, मध्यप्रदेश, मैसूर, आंध्र तथा मद्रास के कुछ भागों में यह मिट्टी अधिक पाई जाती है। यह मिट्टी पुराने जमाने में हुये ज्वालामुखी के उद्गार से निकले हुये लावा से बनी है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसकी गहराई कई फुट तक होती है। इसमें रेत और चिकनी मिट्टी मिली होती है। वर्षा में यह मिट्टी गोंद की तरह चिपचिपी हो जाती है किन्तु सूखने पर इतनी कड़ी हो जाती है कि सूर्य की किरणें जमीन के अन्दर का पानी भाप बना कर उड़ा नहीं पातीं। इस मिट्टी में खनिज पदार्थों की बहुतायत रहती है।

काली मिट्टी रूस और उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भाग में भी पाई जाती है। रूस के यूक्रेन प्रान्त में मिलने वाली काली मिट्टी से भारत की काली मिट्टी सर्वथा भिन्न है क्योंकि यूक्रेन वाली काली मिट्टी का रंग उसमें मिली हुई सड़ी-गली वनस्पति के कारण होता है इसलिये यह हमारे देश की काली मिट्टी की तरह चिकनी नहीं है बल्कि भुरभुरी है। भारत की मिट्टी बड़ी उपजाऊ है। मध्य-प्रदेश के कुछ मैदानों में—जहाँ यह मिट्टी पाई जाती है—लगभग २,००० वर्षों से बिना सिंचाई और खाद तथा भूमि को विश्राम दिये खेत जोते और बोये जाते हैं। इस मिट्टी में कपास बहुत पैदा होता है। इस मिट्टी में चूना, पोटाश तथा लोहा खूब होता है किन्तु फासफोरस तथा नाइट्रोजन की कमी रहती है।

(ii) लाल मिट्टी (Red Soil)—लाल मिट्टी शुष्क और तर जलवायु के बारी-बारी से बदलने के फलस्वरूप पहाड़ियों की टूट-फूट के कारण बनती है।

ताप्ती नदी की घाटी में पहाड़ियों के ढालों पर लगातार ज्यादा गर्मी रहने से चट्टानों के टूटने पर उनमें मिला हुआ लोहा मिट्टी में एक-सा फैल गया है जिससे इस मिट्टी का रंग लाल हो गया है। जहाँ कहीं यह मिट्टी बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों की बनी हुई है वहाँ यह काफी उपजाऊ है। लेकिन दूसरे भागों में मिट्टी की तहों में पानी न रुकने की वजह से यह मिट्टी अक्सर बंजर रह गई है।

इस प्रकार की मिट्टी मद्रास, मैसूर, दक्षिणी-पूर्वी बम्बई प्रान्त, आंध्रप्रदेश और मध्यप्रदेश के पूर्व में तथा छोटा नागपुर, उड़ीसा और बंगाल के दक्षिण में पाई जाती है। यह मिट्टी बहुत प्रकार की चट्टानों से बनी है, अतः यह गहराई और उर्वरा शक्ति में भी बहुत तरह की होती है। ऊँचे मैदानों में पाई जाने वाली लाल मिट्टी उपजाऊ नहीं होती, यहाँ पर वह पथरीली और कम गहरी होती है। किन्तु जो नीचे मैदानों में पाई जाती है वह उपजाऊ होती है। इसमें पोटाश और चूना यथेष्ट होता है किन्तु नाइट्रोजन, फासफोरस और वनस्पति का अंश कम होता है।

(iii) लैटेराइट मिट्टी (Laterite Soil)—यह मिट्टी विशेषकर मध्य प्रदेश (ग्वालियर, पन्ना, रीवाँ) पूर्वी और पश्चिमी घाटों के समीप, राजमहल की पहाड़ियों, उड़ीसा तथा आसाम के कुछ भागों में पाई जाती है। चट्टानों का ठोसपन और बुलबुलीदार रचना इसकी विशेषताएँ हैं। यह मिट्टी भी कई प्रकार की होती है। पहाड़ियों पर पाई जाने वाली मिट्टी बहुत कम उपजाऊ और घाटियों में पाई जाने वाली अधिक उपजाऊ होती है। इस मिट्टी में चूना, फासफोरस और पोटाश कम होता है किन्तु वनस्पति का अंश यथेष्ट होता है। इस मिट्टी का रंग कुछ ललाई लिये होता है। जहाँ-जहाँ यह मिट्टी पाई जाती है वहाँ किसी तरह की वनस्पति नहीं उगती।

(iv) नदियों की बाढ़ की मिट्टी (Alluviam Soil)—नदियों की बाढ़ द्वारा लाकर बिछाई गई मिट्टी मुख्यतया उड़ीसा के कुछ भाग तथा संकड़े समुद्रतटीय मैदानों में फैली हुई है। दक्षिण की अधिकांश नदियाँ काली मिट्टी वाले भाग से निकलती हैं, अतः यह मिट्टी अपने साथ बहा लाती हैं। नदियों के अन्तिम भागों में कई तरह की दुमट अर्थात् मिली-जुली मिट्टी पाई जाती है जो बहुत ही उपजाऊ होती है। इस मिट्टी में पोटाश और चूना तो खूब मिलता है, लेकिन नाइट्रोजन, फासफोरस तथा वनस्पति का अंश कम होता है।

(३) हिमालय की मिट्टियाँ—हिमालय पर्वत की मिट्टियाँ दलदली, पतली और छिद्रपूर्ण होती हैं। इनमें वनस्पति का अंश कम होता है। इन्हीं मिट्टी वाले प्रदेशों पर देश के अधिकांश जंगल पाये जाते हैं। पूर्व की ओर इन मिट्टी के प्रदेशों में चाय, आलू, लालमिर्च अधिक पैदा की जाती है।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में पाई जाने वाली प्रायः सभी मिट्टियों में नाइट्रोजन की कमी है। यही कारण है कि हमारे यहाँ अन्य देशों

की अपेक्षा प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम होती है। भूमि की यह कमी हरे खाद (ग्वार, सन, ढैंचा, मूँगफली आदि भूमि में पैदा कर हल द्वारा उनको जोत देने से), मल की खाद, गोबर, पशुओं का मूत्र, हड्डी अथवा खली आदि अथवा फसलों को हेर-फेर करके पूरी की जा सकती है।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में पाई जाने वाली प्रायः सभी मिट्टियों में नाइट्रोजन की कमी है। बह बात नीचे की तालिका से और भी स्पष्ट हो जायगी:—[1]

मिट्टी	नेत्रजन	स्फुरिक अम्ल	पोटाश	चूना
कांप मिट्टी	·०३ से ०·३	·०८ से ·१३	·३ से ·०७	३ से २·२
काली मिट्टी	·०२ से ·०५	·०८ से ·२	·८ से ·१५	१·० से ७·७
लाल मिट्टी	·०८ से ·०६	·००५ से ·०२	·१ से ·३५	१·० से भी कम
लैटेराइट मिट्टी	·०१ से ·०४	—	—	बिल्कुल नहीं

भूमि क्षरण की समस्या (Soil Erosion)[2]

कई भागों की मिट्टियाँ बहते हुए पानी के जोर से कटकर समुद्र में चली जाती हैं। धरती के कटने (Soil Erosion) की समस्या भारत जैसे अधिक वर्षा वाले देश में बड़ी विषम हो गई है। मिट्टी के कटाव को 'रेंगती हुई मृत्यु' कहा गया है। यह परिणाम भूमि तक ही सीमित नहीं हैं किन्तु उन्हें मनुष्यों को भी भुगतना पड़ता है क्योंकि भूमि के नष्ट होने से भूमि की पैदावार क्षीण होती जाती है। भूमि की सतह के ऊपर ही वनस्पतिजन्य तत्व, रासायनिक तत्व और भूमि की शक्ति को वढ़ाने वाले पदार्थ एकत्रित रहते हैं जिनसे पौधों को खुराक मिलती रहती है। यदि एक बार यह ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है तो भूमि की उर्वरा शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ किसी प्रकार की वनस्पति पैदा होना असम्भव हो जाता है।

विश्व की उन सभी ढालू भूमियों पर जहाँ न तो जंगल हैं, न घास के मैदान हैं और जहाँ कृषि-योग्य भूमि की ठीक प्रकार से मेड़वन्दी नहीं की जाती वहाँ की मिट्टी सदैव कटती रहती है। प्रत्येक स्थान पर मिट्टी का कटाव समान नहीं होता। यह कई बातों पर निर्भर है। जैसे—मिट्टी का गुण, भूमि की ढाल, वर्षा की मात्रा आदि। कठोर मिट्टी की अपेक्षा कोमल छोटे कण वाली मिट्टी अधिक ढाल और मूसलाधार वर्षा में शीघ्र कट कर वह जाती है।

१. देखिये लेखक की "Agricultural Problems of India," पृष्ठ ४६

२. अधिक विस्तार के लिए देखिये, C. B. Mamoria : Soil Poblem in India (Modern Review, June 1952)

के धौलपुर, करौली और कोटा जिलों की भूमि को नष्ट कर दिया है। वायु कटाव के द्वारा भी पंजाब और राजस्थान के बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, भरतपुर और कोटा जिलों में बड़ी हानि पहुँची है। राजस्थान का मरुस्थल तो प्रतिवर्ष आधे मील की रफ्तार से पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों की ओर अग्रसर हो रहा है और डर है कि यदि शीघ्र ही वृक्षारोपण द्वारा इसको न रोका गया तो केवल समस्त राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के भी मिट्टी के नीचे दब जाने की सम्भावना है।

भूमि क्षरण को रोकने के उपाय

भूमि क्षरण रोकने के सम्बन्ध में अमरीका तथा अन्य देशों में काफी प्रयोग किये गये हैं। अमरीका में कृषि विभाग के अन्तर्गत भूमि संरक्षण विभाग स्थापित किया गया है। जिला भूमि संरक्षण कानून (District Soil Conservation Act) के अन्तर्गत अमरीकी किसान अपनी भूमि को भूमि-क्षरण से बचाने के लिये तथा उसमें आने वाली अन्य खराबियों को रोकने के लिये भूमि संरक्षण विभाग से काफी सहयोग करता है। सर विलियम जे० जेन्किस ने बताया है कि, "अमरीका में भूमि संरक्षण से अभिप्राय केवल ढलुवाँ जमीन पर मेंड़ बाँधने या टेक लगाने (Terracing), संकटग्रस्त भूमि पर वन लगवाने, भूमि-क्षरण निरोधक तरीकों को अपनाने और उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिये उपयुक्त फसलें बोने, तल-क्षरण को और भूमि को बालुमय होने से रोकने, फसलों को बोने के क्रम, भूमि की जुताई, सिंचाई और खाद डालने की प्रणालियों में सुधार करने से ही नहीं है। भूमि रक्षण में इनके साथ ही अन्य सुधार भी शामिल हैं। परन्तु इसका सही अभिप्राय और अन्तिम लक्ष्य यह है कि प्रति एकड़ भूमि में इसकी आवश्यकता के अनुकूल तरीके लागू किये जायँ और प्रत्येक एकड़ भूमि का उपयोग उसकी उत्पादन शक्ति का पूरा लाभ उठाने के उद्देश्य से किया जाय।"

(१) भूमि के कटाव को वृक्षारोपण (Afforestation) करके रोका जा सकता है जिससे कि उस भूमि पर हवा और जल की विनाशकारी क्रियाओं का प्रभाव न पड़े। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि नदियों के ऊपरी भागों में (जहाँ वर्षा का जल नदियों में आता है) जंगल बढ़ाये जायँ और नीचे के जंगलों और गाँवों के जंगलों को उत्तम प्रबन्ध द्वारा पशुओं की चराई से सुरक्षित रखा जाय।

(२) कृषकों को जलाऊ लकड़ी उपलब्ध हो सके इसके लिये गाँवों के समीप ही शीघ्र उगने वाले वृक्ष रोपे जायँ जिससे अधिक उपयोगी जंगलों का काटा जाना रोका जा सके।

(३) खेतों में चरने वाले पशुओं की संख्या सीमित रक्खी जाय और उनके लिये अलग-अलग चरागाह नियत किये जायँ तथा उन्हें बाँध कर भी चारा खिलाया जाय।

(४) कृषि योग्य भूमि को एक तल की करके उसमें मेंड़बन्दी कर देने से उसकी ऊपरी सतह को धरातली कटाव के प्रभाव से मुक्त किया जा सकता है।

(५) पहाड़ी ढालों पर कृषि करने के लिये सम ऊँचाई की रेखा के साथ सीढ़ीदार खेत (Terrace cultivation) बनाना जिसमें वर्षा का जल धीरे-धीरे बह सके।

(६) बीहड़ भूमि पर बाँध (Storage) बना कर जल के प्रवाह को नियन्त्रण में रखना।

भारतवर्ष में पंचवर्षीय योजनाओं में भूमि-क्षरण को रोकने और भूमि संरक्षण की आवश्यकता पर विशेष रूप से जोर दिया गया है। भारत सरकार ने विशेषज्ञों की एक तदर्थ-समिति (Ad hoc Committee) बनाई थी जिसका कार्य पंजाब, पटियाला संघ, उत्तर प्रदेश, सौराष्ट्र और कच्छ के निकटवर्ती उपजाऊ क्षेत्रों में मरुप्रसार की समस्या का अध्ययन करना था। समिति ने एक विस्तृत कार्यक्रम की सिफारिश की है जिसमें यह सुझाव दिया गया है कि: (१)राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर वनस्पति का ५ मील चौड़ा कटिबन्ध लगाया जाय, (२) राजस्थान में वन-क्षेत्र को बढ़ाने के लिये नये वन लगाये जायँ। (३) भूमि के उपयोग के तरीकों में सुधार किया जाय। विशेष रूप से किसान रेगिस्तान के प्रसार को रोकने के लिये वृक्षारोपण करें और रेगिस्तान की समस्या का अध्ययन करने के लिये अनुसंधान केन्द्र (Research Station) स्थापित किया जाय। भारत सरकार ने इस समिति की सिफारिशें मान ली हैं और जोधपुर में रेगिस्तान की समस्या का अध्ययन करने के लिये अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किया है। इसके साथ ही वनस्पति कटिबन्ध (Vegetation Belt) लगाने और भूमि के उपयोग की प्रणालियों में सुधार करने के लिये एक आदर्श योजना तैयार की गई है।

(आगे के तीन पृष्ठों पर विश्व की प्रमुख मिट्टियों के क्षेत्रों का संक्षिप्त सारिणी-बद्ध विवरण देखिये)।

संक्षेप में विश्व में प्रमुख मिट्टियों के क्षेत्र ये हैं :—

मिट्टी का प्रकार	रंग	क्षेत्र	वनस्पति और फसलें
(१) टुंड्रा प्रदेशीय मिट्टी (Tundra Soil)	हल्का लाल और नीला भूरा।	एशिया और यूरोप तथा उ० अमेरिका के उत्तर के भागों में (उ० कनाडा, ग्रीनलैंड, उत्तरी रूस, साइबेरिया, द० चिली)।	काई और लिचन
(२) पोडसोल (Podsols)	हरी	टुंड्रा के दक्षिणवर्ती क्षेत्रों में (रूस, स्वीडेन, अलास्का)।	नुकीले वन तथा सन और जई आदि।
(३) जंगलों की भूरी मिट्टी (Grey Brown)	भूरी	इङ्गलैंड का पश्चिमी भाग, स० रा० की न्यू इङ्गलैंड और झीलों के राज्य, द० अफ्रीका संघ, उ० चीन, कोरिया व दक्षिणी जापान।	चौड़ी पत्ती के वन तथा जई, जौ, राई, गेहूं, मक्का और चरी की फसलें।

मिट्टी का प्रकार	रंग	क्षेत्र	वनस्पति और फसलें
(४) उष्ण और अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धों की लाल और पीली मिट्टी (Yellow Soil)	हल्की लाल या पीली।	मध्य और द० चीन, ब्रह्मा, प्रायद्वीपीय भारत, हिन्द चीन, सं० रा० अमेरिका के उत्तरी पूर्वी भाग, ब्राजील, मैक्सिको, मध्य अमेरिका, कांगो, नाइजिरिया और गोल्ड कोस्ट, उत्तरी-पूर्वी आस्ट्रेलिया, द० फ्रांस।	चावल, गन्ना, तम्बाकू, चाय, जूट, तथा उष्ण-कटिबन्धीय वन।
(५) प्रेरीय मिट्टी (Prairie Soil)	कालापन लिये	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मध्य में; पनामा; द० अमेरिका का पराना और पैरेग्वे बेसिन; मध्य रूस; मध्य साइबेरिया; फ्रेंच सूडान।	शीतकाल का गेहूँ और मक्का।
(६) काली मिट्टी (Black Earth or Chernozem)	काली या नारंगी	शीतोष्ण घास के मैदानों में (प्रेरीज, पैम्पास, स्टैप्स, वैल्ड, डाउन्स, दकन के उत्तर-पश्चिमी भाग, मध्य चीन के उत्तरी भाग)।	घास के मैदान तथा गेहूँ।

मिट्टी का प्रकार	रंग	क्षेत्र	वनस्पति और फसलें
(७) मरुस्थलीय मिट्टी (Desert Soil)	पीली	पीरू, उ० चिली, मैक्सिको के कुछ भाग, उटाहा, एरीजोना, नवाड़ा, सहारा, अरब, एशिया माइनर, थार का मरुस्थल, मध्य एशिया, मंगोलिया और विक्टोरिया तथा कालाहारी का मरुस्थल ।	बालू के कारण उजाड़ किन्तु नखलिस्तानों में खजूर, ताड़, अनाज आदि ।
(८) पर्वतीय मिट्टी (Mountain Soil)	हल्की नीली	संसार के अधिकांश पर्वतों पर।	वन-प्रदेश, मक्का, ज्वार, बाजरा, चावल ।
(९) लैटेराइट मिट्टी (Laterite Soil)	भूरी	द० अफ्रीका, द० अमरीका के विषुवत्वृतीय जंगलों में तथा दकन के छोटा नागपुर पठार पर ।	फसलें पैदा नहीं की जा सकतीं ।

खाद
(Manures & Fertilisers)

मिट्टी पौधों के भोजन का भंडार है। भिन्न-भिन्न वनस्पतियाँ मिट्टी से भिन्न-भिन्न तत्व लेती हैं तथा कुछ तत्व छोड़ भी जाती हैं, इसलिए निरन्तर एक ही प्रकार की वनस्पति एक क्षेत्र में उगने से मिट्टी कुछ विशेष तत्वों की दृष्टि से सर्वथा हीन हो जाती है। इन तत्वों में से कुछ तो मिट्टी से, कुछ वायु से, कीड़ों से तथा कुछ वनस्पतियों से प्राप्त हो जाते हैं। अन्य तत्वों की प्राप्ति दूसरी फसलों के उगाने अर्थात् फसलों के हेर-फेर (Rotation of Crops) से हो सकती है। किन्तु इन सब प्राकृतिक साधनों से मिट्टी के नष्ट हो गये तत्वों की पूर्णतया पूर्ति नहीं हो पाती अतः कृत्रिम खाद देना जरूरी होता है। पौधों को बाहर से दिये गये आहार को 'खाद' कहा जाता है।

ख़ाद मुख्यतः दो वर्गों में बाँटी जा सकती है—

(१) रासायनिक या अकार्बनीय खाद (Inorganic Fertilisers)

(२) अरासायनिक या कार्बनीय खाद (Organic Fertilisers)

प्रथम वर्ग में खनिज व रासायनिक खादें सम्मिलित की जाती हैं। द्वितीय वर्ग में गोबर की खाद, हरी ख़ाद, खली की खाद, मछली की खाद तथा हड्डी व खून की खाद सम्मिलित की जाती है।

(i) रासायनिक तथा खनिज खादें—मिट्टी को चार मुख्य तत्वों की आवश्यकता होती है: फासफोरस, कैलशियम, नाइट्रोजन तथा पोटैशियम। रोग-शमन क्षमता उत्पन्न करने के लिए थोड़ी मात्रा में मैंगनीज व लोहा भी अपेक्षित हैं। अतः सब खादें इन्हीं तत्वों की पूर्ति करने वाली होती हैं। रासायनिक खादें बड़ी कीमती होती हैं, अतः इनका प्रयोग केवल वे ही किसान कर सकते हैं जो धनी हैं या जो मूल्यवान व्यावसायिक फसलें पैदा करते हैं। अगले पृष्ठ की तालिका में विश्व के विभिन्न देशों में रासायनिक खाद का उपभोग बताया गया है:—

(१) फासफेट—फासफेट बिहार के हजारी बाग, मुंघेर व गया जिलों से प्राप्त होने वाली अभ्रक का अंश है। आग्नेय तथा परिवर्तित चट्टानों से भी फासफेट मिलता है। ऐसी चट्टानें त्रिचनापली व मंसूरी के निकट भी मिलती हैं। संसार में इस प्रकार की चट्टानें उत्तरी अमेरिका (फलोरिडा, दक्षिणी केरोलिना), उत्तरी अफीका (ट्यूनिसिया, फ्रेंच मोरक्को) तथा यूरोप में मिलती हैं।

चट्टानों के अतिरिक्त फास्फेट विदेशों में पशुओं की वधशालाओं के निकट कारखानों से (जहाँ उनका खून और अस्थियाँ भेज दी जाती हैं) भी प्राप्त किया जाता है किन्तु इस प्रकार प्राप्त की गई मात्रा अधिक नहीं होती। द० पैसिफिक महासागर के शुष्क द्वीपों तथा पीरू तट से कुछ दूर और पश्चिमी द्वीप समूह में ग्वानों नामक चिड़ियायें मछलियाँ खाकर रहती हैं। इन्हीं के मल से फोस्फेट प्राप्त किया जाता है।

(२) पोटैशियम खाद (Patash)—इस प्रकार की खादें पोटैशियम-सलफेट, पोटैशियम क्लोराइड व पोटैशियम नाइट्रेट हैं—पोटाश नमक अधिक मात्रा

में जर्मनी (स्टैफर्ट) और फ्रांस (एलसस) और कम मात्रा में स्पेन व संयुक्त राष्ट्र (सर्ल्स झील, कैलिफोर्निया) से प्राप्त होता है। भारत में ये खादें बिहार, पंजाब तथा सिन्ध में प्राप्त होती हैं।

(३) कैलशियम खाद (Calcium)—यह खाद चूने (Lime Stone) से जो भारत में बहुतायत से मिलता है प्राप्त होती हैं। यह बहुत सस्ती पड़ती हैं। यह भारत में शाहाबाद (बिहार), कटनी (मध्यप्रदेश) तथा राजस्थान में जोधपुर से प्राप्त होती हैं। आसाम में जयन्तिया व खासी पर्वतों से भी मिलती हैं। पाकिस्तान में नमक की पहाड़ी से प्राप्त होती हैं। डोलोमाइट से मैंगनेशियम के साथ कैलशियम भी मिलता है। डोलोमाइट मसूरी, देहरादून, नैनीताल के निकट तथा मध्यप्रदेश से प्राप्त होता है। जिप्सम की प्राप्ति काश्मीर, उत्तर प्रदेश (देहरादून), जोधपुर व सौराष्ट्र से प्राप्त होती है। पाकिस्तान में सीमाप्रान्त (कोहाट) तथा सिन्ध से प्राप्त होती है। यूरोप व अमेरिका में भी कैलशियम खाद खूब मिलती हैं।

संसार में व्यापारिक खाद की खपत[1]
(Thousand Metric Tons)

	फासफेट्स		नाइट्रोजन		पोटाश	
	१९३८	१९५१/५२	१९३८	१९५१/५२	१९३८	१९५१/५२
संसार	३५००	५९००	२४००	४२००	२५००	४३००
मिश्र	८·७	१२·९	७६·०	१३०·१	०·२	०·४
कनाडा	३६·४	१०५·३	१०·०	३२·७	२१·२	५६·८
क्यूबा	....	२६·६	०·२	२५·७	१·१	१८·१
मेक्सिको	....	८·५	२·८	१६·०	....	२·०
संयुक्त राष्ट्र	६७५·०	२०२३·०	३४६·०	१२७५·०	३५७·०	१३७४·०
चिली	६·९	१४·०	९·७	१०·०	....	४·५
पीरू	१७·३	२५·४	१९·४	३९·६	६·४	६·५
लंका	०·५	२·५	८·६	१३·५	४·३	१२·५
भारतवर्ष	१·७	१३·०	२२·०	६२·९	....	....
इंडोनेशिया	०·८	१·२	१८·९	११·४	१·८	२·५
जापान	३२३·१	२४२·५	२५२·८	४४२·०	११२·५	११६·५
फिलीपाइन्स	....	....	६·६	२२·५	....	२·२
फ्रान्स	२९७·४	४२०·०	२१८·०	२८०·०	३०६·३	४२०·०
पश्चिमी जर्मनी	४१०·३	४४०·०	३४३·४	३८०·०	६०४·२	७००·०
इटली	२६२·०	२९०·०	१२८·५	१५८·०	१७·८	२०·०
नीदरलैंड	१०५·७	१०९·०	९५·३	१६०·०	११९·७	१५८·०
यू० के०	१७०·०	२७६·४	६०·०	१७५·०	७५·०	१६५·०
आस्ट्रेलिया	२२२·३	३७९·१	१३·०	१५·६	६·२	८·४

1. U. N. O : 'Facts & Figures' (1953), p. 14

(४) नाइट्रोजन (Nitrogen)—नाइट्रोजन तत्व तीन पदार्थों से प्राप्त किया जाता है अर्थात् चिलियन शोरा (सोडियम नाइट्रेट), पोटैशियम नाइट्रेट और अमोनियम सलफेट। सोडियम नाइट्रेट उत्तरी चिली के मरुस्थल से प्राप्त होता है। चिली में इसके क्षेत्र ४५० मील की लम्बाई में कोस्ट रेंज और एंडीज पर्वतों के मध्य में फैले हैं। यह समुद्र तल से लगभग २०० से ५००० फुट ऊँचाई तक और १६ से ६० मील की दूरी तक फैले हैं। यह क्षेत्र संसार के शुष्कतम क्षेत्रों में से हैं जहाँ एक बार भी वर्षा नहीं होती। इसका प्रयोग गन्ने की खेती में किया जाता है। सिंधरी में भारत सरकार ने इस खाद को बनाने के लिये करोड़ों रुपयों के व्यय से एक कारखाना लगाया है जो ३१ अक्टूबर १९५१ से चालू हो गया है।

पोटैशियम नाइट्रेट भारत में उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा बिहार में बनाया जाता है। अमोनियम सल्फेट टाटा के लोहे के कारखाने से प्राप्त होता है। वहाँ कोयले को साफ करने की क्रिया में अमोनियम सलफेट बन जाता है। उसका प्रयोग चाय के बागों में खूब किया जाता है। बिजली द्वारा हवा से नाइट्रोज़न प्राप्त करने की नई विधि जर्मनी और नार्वे में मालूम की गई परन्तु अभी भारत इसका अवलम्बन नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें बिजली बहुत खर्च होती है।

(ii) अरासायनिक खादें—(१) पशुशाला की खाद—यह खाद पशुशाला के गोबर, मूत्र व कूड़े-करकट से प्राप्त होती हैं। इनके साथ घर का अन्य कूड़ा-करकट भी गड्ढों में डालकर सड़ा लिया जाता है। भारत में ईंधन की कमी के कारण इस प्रकार की खाद अधिकतर केवल वर्षा के दिनों में ही इकट्ठी की जाती हैं जब कि गोबर से कंडे (उपले) बनाने की सुविधा नहीं रहती। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि प्रतिवर्ष ५६ करोड़ टन गोबर कंडे बना कर जला दिया जाता है और केवल एक तिहाई भाग अर्थात् २८ करोड़ टन खाद की तरह प्रयोग किया जाता है। ठीक ही कहा गया है कि, "गोबर को जलाना देश की समृद्धि को जलाना है" क्योंकि उपले के रूप में जलाये जाने वाले गोबर को यदि खाद की जगह प्रयोग में लाया जावे तो खेती की पैदावार बहुत बढ़ सकती है और देश सम्पन्न तथा समृद्धिशाली हो सकता है। इस भयंकर भूल को शीघ्र ही सुधारा जाना चाहिए।

(२) हरी खाद (Green Manures)—हरी खाद की विधि हमारे देश में पुराने जमाने से प्रचलित है। इसके अनुसार कुछ विशेष प्रकार की जल्द उगने वाली फसलों और कन्दों—उदाहरणार्थ ढेंचा, शलजम, रजका, चुकन्दर, सनई, ग्वार इत्यादि—के बीज खेतों में बो दिये जाते हैं। जब इनके पौधे काफी बढ़ जाते हैं तो उन्हें खेत में ही जोत दिया जाता है। इस प्रकार यह पौधे मिट्टी में दब कर वहीं सड़-गल जाते हैं और उत्तम प्रकार की खाद का काम देते हैं। यह पौधे मूसला जड़ वाले हैं और इनकी जड़ में विशेष प्रकार के कीटाणु पैदा हो जाते हैं जो नाइट्रोजन उत्पन्न करते हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि एक एकड़ भूमि में इन पौधों के द्वारा मिट्टी को एक मन नाइट्रोजन प्राप्त होता है।

(३) खली की खाद (Oil Cakes)—खली की खाद एक उत्तम प्रकार की खाद है जिससे मिट्टी को नाइट्रोजन प्राप्त होती है। यह खाद सरसों, तरा, दुआँ, अलसी, अरंड, महुवा, नीम, मूँगफली, तिलहन इत्यादि पदार्थों की खली से प्राप्त होती है। महुआ, नीम व अरंड की खली बहुत सस्ती पड़ती हैं; इसलिए इनका प्रयोग अधिकाधिक किया जाता है।

(४) हड्डी की खाद (Bone Meal)—जानवरों के मृत शरीरों से हड्डियाँ प्राप्त कर उन्हें मशीनों में पीसा जाता है। इस चूरे का प्रयोग खाद की तरह किया जाता है। इसमें फासफोरस की मात्रा अधिक होती है। स० रा० अमेरिका, ब्राजील, इंगलैंड व रूस में इसका अधिक उपयोग होता है। हमारे देश में हड्डी का चूरा बनाने के कई कारखाने हैं परन्तु इस चूरे का प्रयोग हमारे देश में नहीं किया जाता क्योंकि हमारे भारतीय किसान की धार्मिक भावना इसमें बाधा डालती है। यह चूरा विदेशों को भेज दिया जाता है।

(५) खून की खाद (Blood Meal)—भारत सदा से शाकाहारी देश रहा है। देश में असंख्य बूचड़ खाने हैं जहाँ हजारों की संख्या में पशुओं का वध किया जाता है। बूचड़खानों में जहाँ लाखों पशु काटे जाते हैं खून को इकट्ठा करके सुखा लिया जाता है। इस शुष्क रुधिर को खाद की तरह प्रयोग में लाया जाता है क्योंकि इसमें नाइट्रोजन का अंश काफी होता है। इस खाद का प्रचार भी हमारे देश में नहीं के बराबर है। इस प्रकार की खाद का प्रयोग सं० रा० अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना इत्यादि देशों में खाद्यान्न उत्पन्न करने में किया जाता है।

(६) मछली की खाद (Fish Meal)—दवाओं के लिए मछली का तेल निकाला जाता है। तेल निकाल लेने के बाद मछली के शरीर का जो भाग शेष रह जाता है उसे सुखा लिया जाता है। यूरोप, कनाडा, सं० रा० अमेरिका, जापान व चीन आदि देशों में इस खाद का प्रयोग बहुत किया जाता है। भारत में मछली के तेल के कारखाने मालाबार व मद्रास तट पर काफी हैं; अतः वहीं से मछली की खाद प्राप्त होती है। इसका प्रयोग भी देश में बहुत कम होता है। अधिकांश भाग विदेश को भेज दिया जाता है।

प्रश्न

१. तीन मुख्य प्रकार की मिट्टियों के गुणों और उनके वितरण पर टिप्पणियाँ लिखिये। (आगरा बी० कॉम० १९४७)

अध्याय १२

मुख्य व्यवसाय (Occupations)

भूतल के प्रत्येक भाग में प्राचीनकाल से ही ऐसी जातियाँ रहती थीं जो अपने जीवन के लिए सर्वथा अपने भौगोलिक वातावरणों के ही अधीन थीं। ऐसी जातियों के मनुष्यों को जंगली मनुष्य या आदिवासी (Primitive People) कहा जाता है। इन मनुष्यों की जन-संख्या तथा आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी थीं और वे जहाँ कहीं भी रहते थे वहाँ इनको अपने भिन्न-भिन्न भौगोलिक वातावरणों के अनुसार अपना रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा इत्यादि का भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रबन्ध करने के लिए बाध्य होना पड़ता था। ऐसी अवस्था में न तो कोई उद्योग-व्यवसाय ही थे और न व्यापार ही। कालान्तर में जब मनुष्यों की जनसंख्या क्रमशः बढ़ने लगी तब इनकी आवश्यकताएँ भी बढ़ीं और उन्होंने यह अनुभव किया कि वह अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए बहुत कुछ प्रयास कर सकते हैं। अतः इन्होंने अपनी इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। यही सभ्यता का श्रीगणेश था। जंगली पशुओं को पालने की कला उन्होंने सीखी और यह भी जाना कि कृषि द्वारा किस प्रकार अनाज तथा अन्य वस्तुएँ उत्पन्न की जाती हैं। इस भावना से कृषि की उन्नति हुई। खनिज पदार्थों के ज्ञान से मानव ने शिकार करने के अच्छे अच्छे औजार बनाये और बाद में उद्योग-व्यापार की भी उन्नति हुई जिनके फल-स्वरूप मानव अधिक उन्नतिशील, विचारवान, शक्तिशाली तथा सभ्य बनता गया। इन सभ्य जातियों ने भूतल के अच्छे-अच्छे उपजाऊ भागों को अपना निवास-स्थान बनाया और प्राचीन जातियों को वनों अथवा मरुस्थलों या निर्जन पर्वतों की ओर खदेड़ दिया जहाँ के भौगोलिक वातावरण ने उन्हें कठिन तथा कष्टमय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया।

दुनिया के मानवों के विभिन्न उद्योग-धंधों से मानव के औद्योगिक और सांस्कृतिक-विकास क्रम का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ, जीवित रहने के लिए जंगली फल-फूल एकत्र करना सबसे सरल है। सभ्यता की दूसरी सीढ़ी शिकार खेलना तथा मछली मारना है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक चतुराई और बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। तृतीय अवस्था में मानव ने पशु पालना आरम्भ किया। चौथी अवस्था में उसने कृषि का आरम्भ किया। इसमें उसको अपनी आजीविका के लिए थोड़ा-सा परिश्रम करना पड़ता है और शेष समय वह ललित कलाओं और कलाकौशल के विकास में लगा देता है। अन्तिम अवस्था है खनिज पदार्थों को खान से निकालना और वाणिज्य-व्यवसाय करना। इस प्रकार मानव के जीवनोपायों का विस्तार क्रम यह है :—

व्यवसाय (Occupations)

- १. शोपक या प्रारम्भिक व्यवसाय (Extractive or Primary)
  - शोपक (Extractive)
    - १. शिकार करना (Hunting)
    - २. मछली पकड़ना (Fishing)
    - ३. लकड़ी काटना (Lumbering)
    - ४. खान खोदना (Mining)
    - ५. वनस्पति इकट्ठी करना (Collection of Products)
  - उत्पादक (Genetic)
    - १. पशु चराना (Stock raising)
    - २. खेती करना (Agriculture)
  - शक्ति उत्पादक (Power Industries)
    - १. शक्ति प्राप्त करना
- २. गौण व्यवसाय (Secondary or Tertiary)
  - उद्योग-धंधे (Manufacturing)
  - यातायात और आवागमन (Transportation & Communication)
  - व्यापार एवं वाणिज्य (Trade & Commerce)
  - सेवायें (Services)

(१) संचय करना (Gathering)—आज भी दुनिया में विशेषतः भूमध्यरेखा वाले जंगली मनुष्य आदि अवस्था में पाये जाते हैं। ये अपने जीवन-निर्वाह के लिये जंगली फल, मूल, छाल, फूल आदि इकट्ठा करते हैं। स्वभावतः ये शिकारी होते हैं। इनमें से कुछ मछुए भी होते हैं। केवल संचय करके ही वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते अतः मछली मारने का काम उन्हें करना ही पड़ता है। इस कार्य में भ्रमणकारी जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

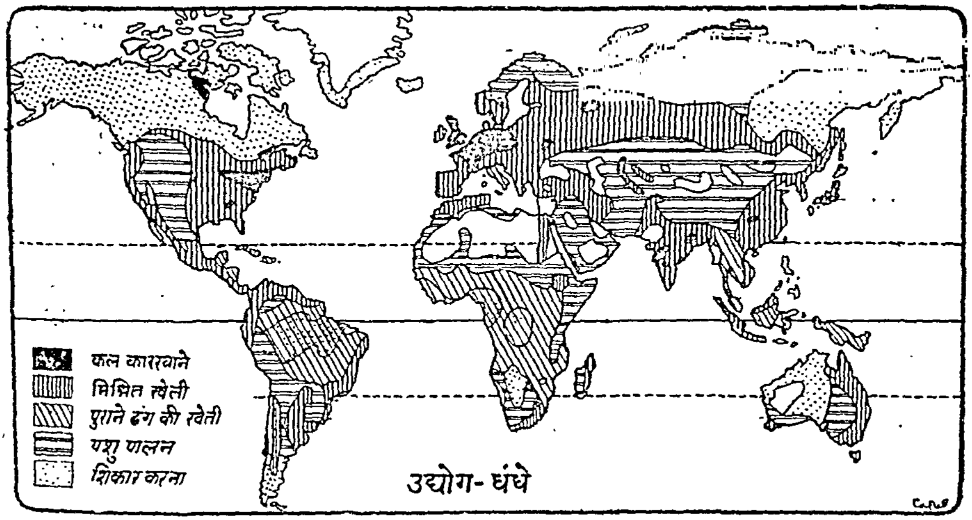

चित्र ८३—प्रमुख व्यवसाय

(२) मछली मारना (Fishing)—दुनिया में अब भी कितने ही प्रदेशों में समुद्री किनारों पर बसे हुए जंगली तथा सभ्य दोनों ही प्रकार के मनुष्यों द्वारा मछलियाँ अपने भोजन के लिए पकड़ी जाती हैं। एस्कीमो तथा टुन्ड्रा के अन्य निवासी, पोलीनिशीया द्वीप समूहों के मानव तथा पूर्वी द्वीप समूह के जंगली मनुष्य आज भी मछुए ही हैं। आधुनिक समय में तो जिन स्थानों की परिस्थितियाँ मछलियाँ पकड़ने के अनुकूल पाई जाती हैं वहाँ के निवासियों का तो यह मुख्य धन्धा ही हो गया है। न्यूफाउंडलैंड के ग्रांड वेंक, उत्तरसागर के तटवर्ती देश तथा जापान सागर के निकटवर्ती भागों में इसी कारण मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती हैं।

(३) शिकार करना (Hunting)—स्वभावतः यह आदिम निवासियों का—जो उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों तथा भिन्न-भिन्न वन-प्रदेशों में रहते हैं—ही मुख्य धन्धा है। घास के मैदानों में रहने वाले लोगों का जीवन-निर्वाह ही शिकार पर निर्भर रहता है क्योंकि यहाँ शिकार के लिए कई प्रकार के पशु वहुत मिल जाते हैं। किन्तु ऋतुओं के अनुसार इन लोगों को कभी उत्तर अथवा कभी दक्षिण की ओर स्थानान्तर करना पड़ता है। जंगली जानवर दिनोंदिन कम होते जा रहे हैं, अतः शिकारियों को वाध्य होकर दूसरे धन्धे अपनाने पड़ रहे हैं।

शीतप्रधान देशों में—विशेपकर उत्तरी अमेरिका और यूरेशिया के नुकीली

पत्ती वाले वनों में, जहाँ नरम रोयें वाले पशु—यथा, भालू, लोमड़ी, भेड़िया, ऊदबिलाव तथा खरगोश आदि—पाये जाते हैं, निवासी इनके समूरों या बालों का संचयन (Fur Collecting) करते हैं। इस कार्य के लिए अनुकूल भौगोलिक अवस्थायें ये हैं: (१) इन जंगलों में दीर्घकालीन शीतकाल में हिम वर्षा होती है तथा भयंकर शीत पड़ती है। (२) इस ठण्ड से ही रक्षा पाने के लिये प्रकृति ने यहाँ के पशुओं के शरीर पर घने बाल उत्पन्न कर दिए हैं। (३) इन जंगलों में लकड़ियों के अतिरिक्त कोई दूसरे खाने योग्य पदार्थ उत्पन्न नहीं होते, अतः ये पशु माँस-भोजी हो जाते हैं तथा स्वयं यहाँ के निवासियों के शिकार बन जाते हैं।

(४) लकड़ी काटना (Lumbering)—संसार के उन भागों में—जहाँ मकान, जहाज, नावें आदि सामानों के बनाने योग्य लकड़ियों के जंगल मिलते हैं तथा जहाँ से इन लकड़ियों को समुद्र तक लाने के साधन वर्तमान रहते हैं—यथा मानसून प्रदेशों के ग्रीष्मकालीन पतझड़ वाले जंगल (जिनमें सुन्दर तथा पुष्ट सागवान, साखू, शीशम आदि के वृक्ष होते हैं); साधारण ग्रीष्म प्रधान समशीतोष्ण जंगल (जहाँ यूकलिप्टस, मगनोलिया आदि दीमकों से न खाई जाने वाली पुष्ट लकड़ियाँ मिलती हैं); साधारण शीत प्रधान समशीतोष्ण जंगल (जो सुन्दर और मजबूत बलूत, बीच, बर्च, मेपिल, पोपलर आदि के वृक्ष पैदा करते हैं) तथा नुकीली पत्तियों वाले वृक्षों के जंगलों में—मनुष्य लकड़ी काटने (Lumbering) का काम करते हैं। इनके जीवन में भी स्थिरता नहीं रहती। एक स्थान के जंगलों के समाप्त हो जाने पर विवशतः अन्य स्थान को जाना पड़ता है।

(५) पशु-पालन (Pasturing or Stock Raising)—घास के मैदानों के निवासी मूलतः शिकारी थे, किन्तु जब उन्हें ज्ञान हुआ कि घास के मैदानों में पशु-पालन अच्छी तरह हो सकेगा तथा जीवन-निर्वाह में भी इससे सहायता मिलेगी तब शिकार करने की इनकी मनोवृत्ति कम होने लगी और उन्होंने पशुपालन का श्रीगणेश किया। वर्तमान समय में पशुपालन उन भागों में एक मुख्य धन्धा हो गया है जहाँ काफी बड़े घास के मैदान—यथा एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के सवन्ना प्रदेश; द० अमेरिका के लैनोस तथा कम्पास मैदान; यूरेशिया के स्टेप्स; उत्तरी अमेरिका के प्रेरीज; द० अमेरिका के कम्पास; आस्ट्रेलिया और न्यूजीलेंड के डाउनलैंड्स तथा द० अफ्रीका के भीतरी पठारों के वेल्ड—हैं। इन मैदानों में रहने वाले गड़रिये लाखों की संख्या में गाय, बैल, ऊँट, खच्चर, भेड़, बकरी, सूअर, मुर्गियाँ, बतखें, कबूतर तथा शुतुर्मुर्ग आदि पालते हैं। इन लोगों की आवश्यकताएँ सीमित होती हैं जो इन पशुओं से प्राप्त वस्तुओं से ही पूरी हो जाती हैं। इनका जीवन भ्रमणकारी होता है क्योंकि जब एक स्थान की घास चुक जाती है तो दूसरे स्थान को चले जाते हैं।

(६) कृषि (Farming)—उपरोक्त सभी कार्य मनुष्यों का जीवन अस्थिर बनाये रहते हैं। इस धन्धे में अधिक परिश्रम और बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। ज्यों-ज्यों मानव सभ्य होता गया जीविकोपार्जन के साधन भी विस्तृत होते गये। उसने क्रमशः अपने भोजन तथा वस्त्र की आवश्यकताओं

को पूर्ण करने के लिए स्वयं पृथ्वी से कुछ उत्पन्न करने का विचार करके यहाँ-वहाँ जंगलों और तृण-क्षेत्रों को जलाकर कृषि योग्य भूमि निकाली और उन पर कुछ खाद्यान्न उत्पन्न करने लगा। इस प्रकार की खेती को **'सरकती हुई खेती'** (Shifting or Milpa cultivation) कहते हैं क्योंकि जब इस प्रकार प्राप्त की गई किसी भूमि की उत्पादन शक्ति क्षीण हो जाती है तब जंगल का दूसरा भाग जला दिया जाता है और दूसरी खुली भूमि निकाल कर वैसी ही खेती की जाती है। ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ता गया उसमें परिवर्तन होता गया। प्राचीन कृषकों (Primitive Farmers) से आधुनिक कृषक उत्पन्न हुए जिन्होंने संसार के भिन्न-भिन्न भागों से संसर्ग करके अपनी वस्तुओं के विनिमय का अनुभव किया तथा अपनी आवश्यकताओं से अधिक वस्तुएँ उत्पन्न करने और बनाने लगे और आदान-प्रदान के विनिमय द्वारा एक दूसरे के अभावों को पूर्ण करने लगे। उन्होंने वनों की रक्षा करके उनसे बहुमूल्य द्रव्यों को प्राप्त करना सीखा तथा घास के मैदानों को भी पशुओं के चारे के लिये सुरक्षित रखना सीखा। साथ ही साथ ऐसे उपायों का भी अनुसंधान किया जिनमें ये कम व्यय तथा परिश्रम से अधिक वस्तुएँ उत्पन्न कर सकें तथा बना सकें।

अन्य व्यवसाय (Secondary Occupations)—आधुनिक काल के प्रत्येक सभ्य देश में भिन्न-भिन्न वर्गों के मनुष्य भिन्न-भिन्न उद्योगों में लगे हुए मिलते हैं। सभी वर्ग के मनुष्य देश या प्रदेश के लिये परमावश्यक समझे जाते हैं। इनमें कुछ लोग कृषक हैं जो खाद्यान्न, फल, मसाले, तरकारी तथा वस्त्रोपयोगी पौधे उत्पन्न करते हैं। कुछ लोग खानों की सुविधाओं युक्त स्थानों पर खानों से खनिज पदार्थ निकालने में लगे हैं। कुछ पशुपालन तथा दूध सम्बन्धी पदार्थों के उत्पादन का कार्य करते हैं। कुछ जंगलों, समुद्रों, नदियों तथा झीलों से उपयोगी और मूल्यवान पदार्थ प्राप्त करते हैं। कुछ कला-कौशल तथा शिल्प कार्यों में लग कर भिन्न-भिन्न प्रकार के छोटे-बड़े आवश्यक उपयोगी पदार्थ बनाते हैं। कुछ लोगों ने उपर्युक्त वस्तुओं के क्रय तथा विक्रय द्वारा व्यापार विनिमय अपना उद्यम बना रखा है। इन्हीं लोगों में कुछ गृह-विभाग का कार्य करते, हैं कुछ शिक्षक का कार्य करते हैं, कुछ चिकित्सा को अपना उद्यम बनाये हुए हैं तो कुछ वकालत करते हैं। कुछ नौकरी और कुछ लोग शासन, रक्षा तथा देश के प्रबन्ध कार्य में लगे रहते हैं।

इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकाल की पिछड़ी हुई जातियों से ही आधुनिक सभ्य तथा आगे बढ़ी हुई जातियों की किस प्रकार क्रमशः उत्पत्ति तथा वृद्धि हुई।

अध्याय १३

मछली पकड़ने का धंधा (Fishing)

मछली भोजन का महत्वपूर्ण पदार्थ है और संसार के कुछ भागों में भोजन की कमी माँस से ही पूर्ण की जाती है; किन्तु संसार के विभिन्न देशों में इसकी खपत अलग-अलग है। मनुष्य द्वारा खाये जाने वाले पशु पदार्थों में से ३ प्रतिशत मछली से मिलता है। किन्तु नार्वे, जापान, न्यूफाउन्डलैंड और आइसलैंड में भोज्य पदार्थ का १० प्रतिशत मछली से प्राप्त होता है।[1] मछली की खपत मुख्यतः स्थानीय रिवाजों, धर्म और मछली पकड़ने की सुविधा पर निर्भर रहती है। मछली पकड़ना मानव का सबसे पुराना धन्धा रहा है। इस धंधे में मनुष्य को कृषि की भाँति न भूमि खोदनी पड़ती है और न फसल पकने तक की प्रतीक्षा ही करनी पड़ती है। केवल जाल लेकर झील या समुद्र में डाल देना, और थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मछली की उत्पादन शक्ति बड़ी विचित्र होती है। एक बार में एक-एक मछली पचास से लगा कर २ करोड़ तक अंडे देती है। इसलिये यदि मछलियों के पकड़ने में सावधानी बरती जाय तो मानव भोजन का यह भंडार कभी कम नहीं हो सकता।

मछली प्राप्ति की भौगोलिक अवस्थायें—दुनिया के मछली पकड़ने के प्रमुख प्रदेश समान रूप से नहीं बंटे हैं किन्तु वह अनुकूल स्थानों में ही केन्द्रित हैं। मछली पकड़ने के लिये इन भौगोलिक अवस्थाओं की आवश्यकता होती है:—

(१) समुद्र के छिछले भाग का होना (Continental Shelf)—जहाँ तक सूर्य की किरणें आसानी से पहुँच कर समुद्री पौधों, काई तथा सूक्ष्म कीटाणुओं को उगने और बढ़ने में सहायता दे सकें। इन पौधों और सूक्ष्म कीटाणुओं पर ही अन्य छोटे-छोटे जानवर अपने भोजन के लिये निर्भर रहते हैं और यही छोटे-छोटे जानवर (Plankton) मछलियों के आहार हैं। यही कारण है कि प्रमुख मछली उत्पादक क्षेत्र अटलांटिक और उत्तरी प्रशान्त महासागर के महाद्वीपीय तटों के निकट ही जल-तल के नीचे वाले चट्टानों पर स्थित हैं। डूबे हुए तटों पर भी मछलियाँ खूब पकड़ी जाती हैं।

(२) ये वनस्पति के अंश नेत्रजन (Nitrogen), नमक, तथा कार्बन (Carbon) को सोख कर उसको मछलियों के भोजन में परिणत कर देते हैं। समुद्र में नमक तथा कार्बन की बहुतायत होती है, किन्तु नत्रजन (Nitrogen) केवल नदियों के पानी से ही मिलता है। यही कारण है कि जहाँ नदियाँ समुद्र

---

१. देखिये E. Huntington: Principles of Economic Geography; p 312

से मिलती हैं वहाँ सूक्ष्म वनस्पति के अंश (Vegetable Plankton) अधिक होते हैं। यही नहीं ये वनस्पति के अंश सूर्य की रोशनी से बहुत बढ़ते हैं, अतएव भूमि के समीपवर्ती तटीय छिछले समुद्र में ये बहुत अधिक मिलते हैं क्योंकि छिछले पानी में सूर्य की किरणें पानी को भेद कर अन्दर रोशनी पहुँचाती हैं।

चित्र ८४—महाद्वीपीय छिछले भाग

(२) किन्तु जो मछलयाँ साधारणतः तट से बहुत दूर गहरे समुद्र में रहती हैं वे तथा अन्य साधारण मछलियाँ भी दो कारण से छिछले समुद्र तथा नदियों के मुहाने के समीप आकर इकट्ठी होतीं हैं। मछलियों की यह आदत है कि वे अपने अंडे नदियों के मुहाने या छिछले समुद्र में ही देती हैं और वह भी तट के समीप। दूसरी आदत यह है कि वे अपना भोजन प्राप्त करने के लिये अगणित संख्या में छिछले समुद्र में जमा हो जाती हैं। इन्हीं भागों को वैंक (Bank) कहते हैं।

इन्ही बैंकों अर्थात् मछलियों के जमाव के कारण उत्तर-पश्चिमी यूरोप, उत्तर-पूर्वी एशिया तथा उत्तरी अमेरिका में मछलियों को पकड़ने का धन्धा बहुत होता है। मछलियाँ भिन्न-भिन्न मौसम में अंडे देती हैं। सैकड़ों मील दूर से चल कर मछली छिछले समुद्र में अंडे देने आती हैं। ह्वेल (Whale) और कॉड (Cod), जो इन मछलियों का शिकार करने आती हैं, स्वयं पकड़ी जाती हैं।

(४) जहाँ समुद्र की ठंडी तथा गर्म धारायें मिलती हैं वहाँ भी ये प्लैन्कटन पौधे बहुतायत से पाये जाते हैं, इसी कारण ये क्षेत्र मछली के मुख्य क्षेत्र हैं। उदाहरण के लिये जापान के उत्तर में जहाँ क्यूरोसिवो (Kuro-Sivo) ठंडी धारा तथा गरम जापान धारा मिलती हैं, वहाँ मछली बहुत उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार अमेरिका के उत्तर पूर्व में न्यूफाउण्डलेंड के तट पर ठंडी लैब्रोडर धारा तथा गरम गल्फ-स्ट्रीम धारा मिलती हैं और अत्यधिक मछलियाँ उत्पन्न करती हैं।

शीतोष्ण कटिबन्ध में ही मछलियों का धन्धा अधिक केन्द्रित है। इसके कई कारण हैं—

(१) उष्ण कटिबन्ध में समुद्र का पानी बहुत गर्म रहता है किन्तु शीतोष्ण कटिबन्ध में समुद्र का पानी अपेक्षाकृत ठंडा रहता है। ठंडी जलवायु मछलियों के अनुकूल पड़ती है किन्तु बहुत ठंडी जलवायु प्रतिकूल पड़ती है। अतः शीत कटिबन्ध में भी मछलियाँ कम होती हैं।

(२) उष्ण कटिबन्ध में जो थोड़ी-बहुत मछलियाँ पाई जाती हैं *(यह याद रहे कि उष्ण कटिबन्ध के समुद्रों में मछलियों के लिये भोजन की कमी है)* वे कई जातियों की होती हैं। अलग-अलग जाति की थोड़ी-सी मछलियाँ पाई जाने के कारण उष्ण कटिवन्ध में उन्हें पकड़ने की सुविधा नहीं है। इसके विपरीत शीतोष्ण कटिवन्ध में पाई जाने वाली मछलियाँ केवल गिनी-चुनी जातियों की होती हैं अर्थात् एक-एक जाति की बहुत-बहुत मछलियाँ होती हैं। इस सुविधा के कारण शीतोष्ण कटिवन्ध में मछलियाँ पकड़ने का धन्धा अधिक होता है।

(३) उष्ण कटिवन्ध में समुद्र ज्यादा गहरा है। छिछले समुद्र (जो १०० फैदम से कम गहरा हो) का भाग वहाँ बहुत कम है। अतः वहाँ गहरे समुद्र की मछलियाँ पाई जाती हैं जिनका पकड़ना जरा कठिन होता है। इसके विरुद्ध शीतोष्ण कटिवन्ध में छिछले समुद्र का भाग अधिक है। उत्तरी गोलार्द्ध के सभी महाद्वीपों का अधिकतम विस्तार शीतोष्ण कटिवन्ध में ही हुआ है। अतः उनके तटों पर पाये जाने वाले छिछले समुद्रों में बहुत अधिक मछलियाँ मिलती हैं।

(४) गरम देशों की मछलियाँ शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं। अतः उनके व्यापार में कठिनाई पड़ने के कारण उष्ण कटिवन्ध की मछलियों को पकड़ने के धन्धे ने कोई विशेष उन्नति नहीं की है। शीतोष्ण कटिवन्ध की मछलियाँ शीघ्र ही खराब नहीं होतीं क्योंकि उस कटिवन्ध में अपेक्षाकृत ठंडक रहती है। इस कारण उसका धन्धा सफलतापूर्वक चल सकता है। इसके अलावा यहाँ शीत भंडार (Cold Storage) की विधि भी बहुत प्रचलित है।

(५) शीतोष्ण कटिबन्ध के समुद्रों में हजारों छोटी-बड़ी नदियाँ अपना ताजा पानी और मिट्टी लाकर डालती रहती हैं। इससे प्लैंकटन की बढ़वार खूब होती है और मछलियाँ भी खूब पलती हैं।

(६) ठंडे पानी में खतरनाक तथा जहरीली मछलियाँ कम होती हैं और गर्म पानी में विषैली मछलियों का ही बाहुल्य रहता है। इसलिये भी शीतोष्ण कटिबन्ध में मछलियाँ पकड़ने का धन्धा बहुत होता है।

(७) शीतोष्ण कटिबन्ध के समुद्रों के समीपवर्ती भूभाग की भूमि या तो उपजाऊ नहीं है या आबादी बहुत घनी है इसलिये बहुत से लोग मछलियाँ पकड़ कर ही पेट पालते हैं।[1] कैथोलिक धर्म के मानने वालों के लिये माँस खाना वर्जित है इसलिए मछली इस प्रदेश के मनुष्यों के भोजन का मुख्य अंग है।

(८) शीतोष्ण कटिबन्ध में महाद्वीपों का किनारा अधिक कटा-फटा है इससे यहाँ सुरक्षित बन्दरगाह बहुत हैं।

(९) शीतोष्ण कटिबन्धों के समुद्रों के समीप ही वन प्रदेश पाये जाते हैं जहाँ से नावें बनाने के लिये अच्छी लकड़ी मिल जाती है।

(१०) आजकल सभ्य देश शीतोष्ण कटिबन्ध में ही स्थित हैं। इन देशों ने नये-नये औजारों का उपयोग करके मछलियाँ पकड़ने का धन्धा उन्नति पर पहुँचा दिया गया है। यहाँ मछलियाँ केवल खाने के काम ही नहीं आतीं वरन् उनसे और बहुत-सी चीजें भी बनती हैं।

यू० एन० ओ० के खाद्य और कृषि संघ ने अनुमान लगाया है कि विश्व में लगभग २५० लाख मैट्रिकटन मछलियाँ वर्ष भर में पकड़ी जाती हैं। १९५२ में लगभग ६ देशों ने १२५ लाख मैट्रिकटन मछलियाँ पकड़ीं। यह उत्पादन इस प्रकार था:—

जापान	४६·७	लाख	टन	कनाडा	९	लाख	टन
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	२३·४	,,	,,	स्पेन (१९४९)	५·५	,,	,,
चीन (१९४८)	२५	,,	,,	जर्मनी ,,	५·२	,,	,,
रूस (१९४९)	२०	,,	,,	भारत ,,	५	,,	,,
नार्वे	१७९	,,	,,	फ्रांस	४·६	,,	,,
इंगलैंड	११·५	,,	,,	इंडोनेशिया	३·५	,,	,,
उ० कोरिया (१९४९)	१३	,,	,,	नीदरलैंड	२·३	,,	,,
				स्पेन	६·३	,,	,,
				द० अफ्रीका संघ	३·८	,,	,,

१. देखिये; Finch & Trewartha : Elements of Geography; p. 318

ब्रह्मा (१९४९)	५	लाख टन
आइसलैंड	३·८	,,
पुर्तगाल	३·३	,,
डेनमार्क	३·२	,,
स्वीडेन (१९४९)	२	,,
थाइलैंड ,,	१·९	,,

मछली पकड़ने के ढंग—मछली पकड़ने के लिये आरम्भ में भाले का प्रयोग किया जाता था। यह अब भी उत्तरी ध्रुवीय तथा उष्ण कटिबन्धीय समुद्रों में प्रयुक्त होता है। भाला मार कर मछली पकड़ली जाती है। कांगो बेसिन के पिग्मी और ध्रुव प्रदेश के एस्कीमो इस विधि से मछली को शिकार करने में बड़े प्रवीण होते है। दूसरा तरीका है फन्दा डालना। फन्दा उथले (shallow) समुद्रों में डाला जाता है। तीसरा तरीका जाल डालना है। जाल विभिन्न प्रकार के होते हैं जिनमें से ट्रॉल (trawls), ड्रिफ्टिंग नैट्स (drifting nets) और सीनस (seines) मुख्य हैं। संसार की अधिकांश मछलियाँ आजकल जाल द्वारा ही पकड़ी जाती हैं। कहीं-कहीं हुकों (hooks) द्वारा भी (जो एक प्रकार के कांटे होते हैं) मछली को छेद कर पकड़ा जाता है। मछली के स्वभाव के अनुसार ही किसी विशेष तरीके का प्रयोग किया जाता है।

मछली प्रायः समुद्र की तलैटी में या ऊपरी सतह से थोड़ी दूर नीचे किनारों पर कम गहरे पानी में पाई जाती है। समुद्र की तलैटी के गहरे पानी में मिलने वाली मछलियों को ट्रॉलर (trawler) जहाजों की सहायता से पकड़ा जाता है। इन जहाजों में मछली पड़कने का जाल पानी में लटका दिया जाता है और फिर समुद्र की तलैटी के सहारे से ६ मील फीट घण्टे की रफ्तार से खींचते हैं। इस प्रकार उसमें मछलियाँ फँस जाती हैं और तब जाल को ट्रालर जहाज में ऊपर खींच लेते हैं।

कम गहरे पानी में ड्रिफ्टर (drifter) जहाज द्वारा मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस जहाज में १० चालक तथा लगभग ९० जाल रहते हैं। इन जालों को ऊपर व नीचे से छोटी-छोटी रस्सियों द्वारा बाँध देते हैं। फिर जहाज से नीचे लटका कर पानी में हिलोरते हैं जिससे मछलियाँ इनमें फँस जाती हैं और जाल को ऊपर खींच लिया जाता है।

मछलियों की किस्में—साधारणतया निम्न प्रकार की मछलियाँ हमारे समुद्रों में पकड़ी जाती हैं—

(१) तटीय छिछले समुद्रों की मछली;
(२) गहरे समुद्र की मछलियाँ; और
(३) मीठे पानी वाली मछलियाँ।

(१) तटीय छिछले समुद्र की मछलियाँ (Shallow Water Fisheries)—छिछला समुद्र ६०० फीट से अधिक गहरा नहीं होता, अतः सूर्य का

प्रकाश तथा मछली के भोजन की यहाँ बहुतायत रहती है। उथले समुद्रों में घोंघे (जिनकी विशेष किस्म लॉब्सटर, आइस्टर और क्लेमें हैं) और शैड, सारडीन, हैरिंग, मसल, कोकिल, प्रॉन, सेक्ट, हैडॉक, टर्बट, केकड़े, कॉड आदि मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। तटीय मछलियाँ सभी तटों पर पाई जाती हैं। उनका महत्व शीतोष्ण कटिबन्धीय भूमियों में अधिक है क्योंकि वहाँ कुछ सुविख्यात मछलियों की बहुतायत है। जापान तटीय मछलियाँ पकड़ने में संसार में सर्वप्रथम देश माना जाता है। यहाँ लगभग ३५ करोड़ मन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं जिनमें से लगभग ५७% तटों पट पकड़ी जाती हैं।

(२) गहरे समुद्र वाली मछलियाँ (Deep Sea Fisheries)—गहरे समुद्रों में घास तथा सूक्ष्म वनस्पति बहुत कम पाई जाती हैं। केवल ऊपर से आने वाली वनस्पति और मरी हुई मछलियों पर ही गहरे समुद्रों की मछलियाँ निर्भर रहती हैं। गहरे समुद्र वाली मछलियाँ पकड़ने के केन्द्र प्रायः बैंकों (Banks) पर स्थित होते हैं। इस प्रकार के तीन मुख्य प्रदेश हैं—(क) न्यूफाउण्डलैंड के दक्षिण पूर्व में ग्रांड बैंक (Grand Bank) और कॉड अन्तरीप के पूर्व में जार्ज बैंक जहाँ कॉड मछली (Cod) ही सबसे अधिक पकड़ी जाती है। (ख) उत्तरी सागर और उत्तरी अटलांटिक महासागर के मछली पकड़ने के केन्द्र आइसलैंड के पास स्थित हैं जिन्हें डोगर बैंक्स (Dogger Banks) कहते हैं। (ग) जापान के पास उत्तरी प्रशान्त महासागर के देश खुले हुए समुद्रों में ह्वेल, मैकरेल, स्प्रेस, पिलचर्ड और हेरिंग पाई जाती है। गहरे समुद्रों में स्पंज, मूंगा, समुद्र कमल आदि मिलती हैं।

(३) मीठे पानी वाली मछलियाँ (Fresh Water Fisheries)—मीठे पानी में रहने वाली मछलियों के पकड़ने का काम प्रायः सभी देशों की झीलों और नदियों में होता है। यह जहाँ पकड़ी जाती हैं वहीं इस्तैमाल कर ली जाती हैं। उत्तरी अमेरिका की बड़ी-बड़ी झीलों, कोलम्बिया नदी, वॉल्गा और डॉन नदियों तथा गंगा में इस प्रकार की मछलियाँ बहुत पकड़ी जाती हैं।

मछली पकड़ने के केन्द्र (Fishing Areas)—संसार में मछली पकड़ने के चार केन्द्र हैं—

(क) पूर्वी-चीन, मध्यवर्ती और उत्तरी जापान, कोरिया, पूर्वी साइबेरियो और फारमूसा द्वीप के तटीय भाग।

(ख) पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी यूरोप के जलमग्न चबूतरे और छिछले तट।

(ग) न्यूफाउन्डलैंड, न्यूइङ्गलैंड, लैब्रोडोर और पूर्वी कनाडा के तट से दूर उठे हुये बैंक और संयुक्त राज्य के पूर्वी किनारे के उथले पानी के भाग।

(घ) कैलीफोर्निया से एलास्का तक फैला हुआ प्रशान्त महासागर का तट। इन चारों भागों में ही अधिकांश मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मुख्य पकड़ कॉड, हैरिंग, सारडीन, मैकरेल, सामन और स्पंज आदि की होती है।

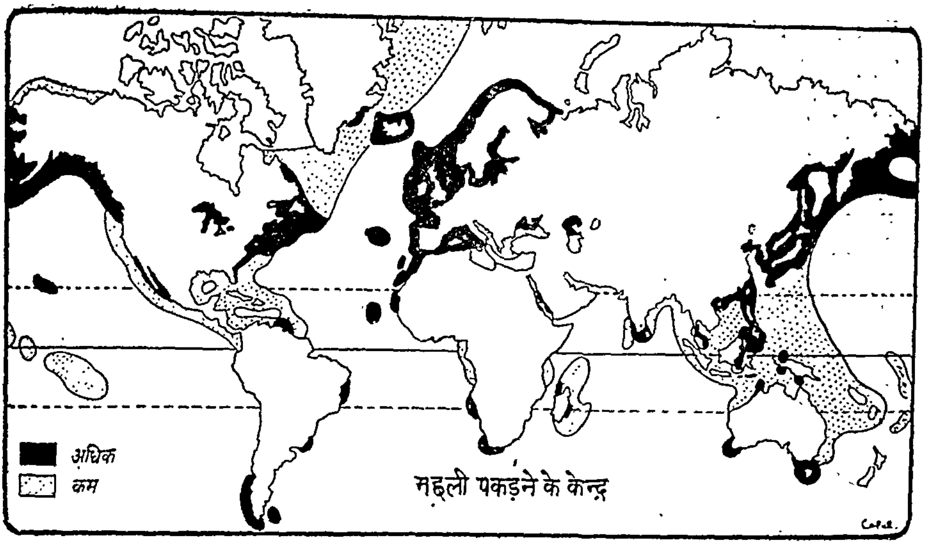

चित्र ८५—मछली पकड़ने के केन्द्र

जापान में मछली पकड़ने का धन्धा
(Japanese Fisheries)

संसार के अन्य किसी भी भाग की अपेक्षा जापान में सबसे अधिक मछली पकड़ी और खाई जाती हैं। यह यहाँ के लोगों का मुख्य उद्योग है। देश की कुल जनसंख्या के २० प्रतिशत से अधिक (२० लाख) इसी धन्धे में लगे हैं। यहाँ की मछली की वार्षिक पैदावार की मात्रा संयुक्तराष्ट्र व इंगलैण्ड से चौगुनी और संसार की पैदावार की एक चौथाई है। जापानियों के भोजन में चावल के बाद मछली और मछली पदार्थों का ही स्थान है। मछली की प्रति मनुष्य वार्षिक खपत लगभग ६५ पौंड है। इसकी तुलना में जर्मनी में लगभग २४ पौंड, ब्रिटेन में ३० पौंड और कनाडा में १४ पौंड है। देश के निर्यात में कच्चे रेशम, सूत और सूती कपड़ों के बाद मछली और मछली-पदार्थों का ही स्थान है।

जापान में मछली पकड़ने के धन्धे का इतना अधिक महत्व बहुत सी भौगोलिक दशाओं के कारण है जिनमें मुख्य यह हैं—(१) देश की जनसंख्या की तुलना में प्राकृतिक साधनों का अभाव है जिसके कारण लोगों का समुद्र की ओर झुकाव स्वाभाविक रूप से हुआ है; (२) इसके आसपास द्वीपों की भरमार होने के कारण समुद्र के उथले भागों की प्रचुरता है; (३) देश का तट असाधारण रूप से लम्बा है; (४) गर्म (क्यूरोसीवो) और ठन्डी (क्यूराइल) जल धाराओं के मिलने के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं; (५) गोश्त वाले जानवरों का अभाव होने के कारण तथा बौद्ध धर्म में माँस खाना त्याज्य होने के कारण जापानियों की अधिकतर रुचि मछली की ओर है; और (६) यह शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित है जिसके कारण मछली काफी दिन तक सुरक्षित रखी जा सकती है।

पूर्वी एशिया में तैवान (फार्मूसा) से लेकर कमचटका तक समुद्र उथला होने के कारण मछली के विकास के लिये अत्यन्त अनुकूल है। अतएव जापान में मछली पकड़ने के केन्द्र निपन (मुख्य जापान) के अतिरिक्त फार्मूसा, रियूकू द्वीप समूह, कोरिया, साखालीन और क्यूराइल द्वीप समूह के उथले पानियों में भी स्थित हैं। इन भागों से लगभग ४०० प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इनमें से कुछ तो उत्तर के ठन्डे जल में बहुतायत से मिलती हैं और कुछ अर्द्ध-उष्ण जल में। होकैडो के उत्तर में हैरिंग, सामन, हैलीबट, सार्डीन विशेष व्यापारिक महत्व की हैं और अर्द्ध-उष्ण भागों में बोनीटो, ट्यूना, मैकरेल, सी-ब्रीम, यलो-टेल कट्ल फिश, मर्लिन विशेष रूप से पकड़ी जाती हैं। जापानी मछली को खाद के रूप में भी प्रयुक्त करते हैं।

जापानियों के मछली पकड़ने के धन्धों में पुराने और नये दोनों प्रकार के ढंगों का मिश्रण है किन्तु इनके कुछ यंत्र इतने आधुनिक हैं कि ऐसे अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ते। इंजन वाले ट्रौलर, मोटर बोट और मछलियों को सुखाने, तथा डिब्बों में भरने वाली फैक्ट्रियाँ सराहनीय हैं। तटीय मछुआ कर्म अलग-अलग गृहस्थियों या बहुत सी गृहस्थियों के पुरुषों के सामूहिक पुरुषार्थ के द्वारा पुराने ढर्रे पर होता है। किन्तु नये ढंग का प्रचार तीव्र गति से बढ़ रहा है। जापानी मछुआ-कर्म दो भागों में बाँटा जा सकता है—तटीय मछुआ-कर्म और गहरे पानी वाला मछुआ-कर्म। मुख्य जापान की मछलियों के मूल्य में से ६० प्रतिशत तटीय (सारडीन, सीवीड़, सैमन,कट्ल मछली, शैल मछली आदि), २८ प्रतिशत गहरे पानी वाली (सारडीन, यलोटेल, मैकरेल, कॉड, बोनीटो, ट्राउट, डाग, सालमन, टाइन आदि), ६ प्रतिशत मोती बनाने की क्रिया और शेष ६ प्रतिशत ह्वेल आदि के शिकार शामिल हैं।

ट्रिपांग, जोकि एक प्रकार की समुद्री ककड़ी (Sea-cucumber) मानी गयी है, चीन के तटों, पूर्वी द्वीप समूह, न्यूगिनी और उत्तरी आस्ट्रेलिया के तटों के उथले जल से प्राप्त होती हैं। जापान में प्रति वर्ष लगभग ४८०,५००,००० येन के मूल्य की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इनके अतिरिक्त मछलियों से प्राप्त होने वाली वस्तुओं में सूखी बोटानो मछली, मछलियों का खाद, जिलेटीन आदि भी मुख्य है।

उत्तर पश्चिमी यूरोप का मछली उद्योग
(North European Fisheries)

खाने वाली मछली की एक बहुत बड़ी मात्रा उत्तरी अटलांटिक महासागर के पूर्वी तटों से जो पुर्तगाल से लेकर स्वेत सागर तक फैले हुये हैं, पकड़ी जाती है। किन्तु यूरोप के मछली पकड़ने के मुख्य केन्द्र विशेष रूप से उत्तरी सागर, डौगर बैंक और ग्रेट फिशर बैंक में स्थित हैं। उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के तटीय भागों में मछली पकड़ने का काम पूर्व-ऐतिहासिक काल से होता रहा है। किन्तु इस धन्धे का व्यापारिक महत्व सन् १४०० से आरम्भ होता है जबकि हालैंड वालों ने हैरिंग को सुरक्षित रखने के नये ढंगों का आविष्कार किया था। हालैंड

में मछली पकड़ने की काफी सुविधा है। इसके एक ओर उत्तरी सागर है और दूसरी ओर राइन नदी। अतएव हालैंड की हैरिंग भूमध्य सागरीय देशों तक भेजी जाती है। वास्तव में इस देश का निर्माण मछली से ही हुआ है।

संसार के मछली पकड़ने के केन्द्रों में उत्तरी सागर सबसे बड़ा माना गया है क्योंकि (१) वह बहुत उथला है और उसमें बैंकों की बहुतायत है। (२) वह घने आबाद देशों के—जैसे फ्रांस, बेलजियम, हालैंड और ब्रिटेन, जर्मनी, डेनमार्क और नार्वे—समीप होने के कारण इन देशों के लोगों को मछली पकड़ने के लिये प्रोत्साहित करता है। इङ्गलैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि उन्नतिशील देशों के निकट होने के कारण इन भागों का महत्व न्यूफाउन्डलैन्ड बैंकों से भी अधिक बढ़ गया है।[1] (३) ओर्कनी और शैटलैण्ड द्वीपों के बीच आने वाली उत्तरी एटलांटिक धारा के गर्म पानी की एक शाखा उत्तरी सागर के ठन्डे जल से मिलकर ऐसी दशायें उपस्थित कर देती है जो मछलियों के विकास के लिये अत्यन्त अनुकूल हैं।

ब्रिटेन में मछली पकड़ना

उत्तरी सागर से मछली पकड़ने में ब्रिटेन का स्थान आजकल प्रथम है। ब्रिटिश द्वीप समूह के आस-पास वाले जलों में उत्तरी सागर सबसे उथला है। पीटर हैड से जटलैंड को मिलाने वाली रेखा के दक्षिण में इसकी गहराई १०० फैदम से भी कम है। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक बैंक है, जिनमें डौगर बैंक सबसे बड़ा (२०० मील लम्बा) है। इसकी गहराई (६५ से ८० फुट) और भी कम है। अन्य बैंक ये हैं—(१) कैंट के तट के निकट गुडविन बैंक; (२) नॉर्फाक के तट के निकट यारमाउथ सौंड बैंक; (३) डौगर बैंक के निकट सिल्वर पिट तथा वैल बैंक; (४) बरविक के निकट मार बैंक; (५) लौंगफॉरटीज; (६) हार्न-रीफ जो जटलैंड तक फैला है। फ़ैरो द्वीप समूह, आइसलैंड और यूरोप के पश्चिमी तटों पर जल उथला ही है। अतएव इन सब भागों में मछली पकड़ी जाती है किन्तु उत्तरी सागर और आइसलैंड सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र है। ब्रिटेन में लगभग २७,००० मछुओं द्वारा प्रतिवर्ष लगभग १० लाख टन या प्रति सप्ताह ९,००० टन मछली पकड़ी जाती है और देश की खपत के लिये लगभग इतनी ही बाहर से मँगाई जाती है। ब्रिटेन में ताजी, जमी हुई तथा नमकीन मछलियों का प्रति सप्ताह का उपभोग १६,२०० टन है।[2]

ब्रिटेन में मछली पकड़ने का धन्धा कुछ बड़े-बड़े बन्दरगाहों में केन्द्रित है। आगे की तालिका में यह बताया गया है किन-किन बन्दरगाहों पर कौन से विशेष प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं :—

---

१. देखिये; E. Huntington: Principles of Economic Geography, p. 316

२. देखिये; Britain 1955, p. 146.

किस्म	प्रमुख बन्दरगाह	
१. श्वेत मछली (White fish)	ग्रिम्सबी, हल, फ्लीट वुड, मिलफोर्ड हैवेन, लाऊसटोफ	इंगलैंड और वेल्स
२. हैरिंग	ग्रेट यारमाऊथ, लाऊसटोफ	इंगलैंड और वेल्स
३. श्वेत मछली	एबरडीन, ग्रॉन्टन विशेषतः मोरे फॉर्थ के मुहाने में	स्कॉटलैंड
४. हैरिंग	पिटर हैड, फ्रेजरबर्ग, शटलैंड, क्लाइड और पश्चिमी तट पर	स्कॉटलैंड

ब्रिटेन की मछली दो प्रकार की हैं—धरातल वाली मछली (Pelagic) और पेंदे वाली (Demersal) मछली। ब्रिटेन के बन्दरगाहों से पकड़ी जाने वाली कुल मछली में से ३० प्रतिशत पेंदें वाली मछली हैं जिनमें हैडक, कॉड और हेक प्रमुख हैं। कॉड और हैलीबट आइसलैंड के जलों से; हैरिंग, कॉड, हैलीबट, पिलचर्ड, मैकरेल उत्तरी सागर के उत्तरी और गहरे भागों से और हेक ब्रिटेन के पश्चिमी भागों से पकड़ी जाती है। यह साल भर तक बराबर पकड़ी जाती हैं तथा हल और ग्रिम्सबी के बन्दरगाहों पर उतारी जाती हैं। अकेला बैलिंग्सगेट प्रति दिन ६०० टन मछलियों में व्यापार करता है। धरातल वाली मछलियों में हैरिंग, मैकरेल और हैडेक प्लेस प्रमुख हैं हैरिंग विशेष रूप से निर्यात के लिये ही

चित्र ८६—डोगर बैंक

पकड़ी जाती है और इसे सुखाकर नमक लगाकर बाल्टिक और भूमध्य सागरीय देशों को भेजा जाता है। पेंदे वाली मछलियाँ अधिकतर घर की खपत के लिये रखी जाती हैं। १९५३ में इङ्गलैण्ड से ५२·५ लाख पौंड के मूल्य की मछलियों का निर्यात किया गया।

नार्वे

नार्वे में तट के सुरक्षित फिओर्ड (Fiords) मछली पकड़ने के उत्तम केन्द्र हैं।

जापान की तरह नार्वे की उपज कम होने के कारण यहाँ के रहने वाले समुद्र के साधनों की ओर झुकने के लिये मजबूर हुए हैं। कॉड और हैरिंग नार्वे की दो प्रमुख मछलियाँ हैं। कॉड लोफोटन द्वीप के निकट और हैरिंग बरगन के निकट की खाड़ियों में पकड़ी जाती हैं। यह लोग अपनी घर की खपत के लिये ही मछली नहीं पकड़ते वरन् बाहर भेजने के लिये भी पकड़ते हैं जिनमें मुख्य नमकीन हैरिंग, कॉड मछली और काडलिवर आइल हैं। मछली यहाँ की सम्पत्ति का मुख्य साधन है। यहाँ प्रति वर्ष लगभग १० लाख टन मछली पकड़ी जाती है।

फ्रांस, हालैंड, स्पेन, पुर्तगाल और इटली की मुख्य मछलियाँ सार्डीन, एकूंवी और आयस्टर हैं। भूमध्य सागर में पाई जाने वाली मुख्य मछली टनी और कैस्पियन सागर की स्टर्जियन है।

कनाडा में मछली पकड़ने का व्यवसाय

कनाडा विश्व में मछलियाँ पकड़ने वाले देशों में प्रमुख है। यहाँ मछली पकड़ने के प्रमुख क्षेत्र अटलांटिक महासागर के तटवर्ती भाग, प्रशान्त महासागर के तटवर्ती क्षेत्र, बड़ी झीलें और देश की आन्तरिक नदियाँ हैं। १० वर्ष पहले कनाडा में ४५,०००,००० डालर के मूल्य की मछलियाँ पकड़ी गई थीं। १९५१ में इनका मूल्य १७५,८९४,००० डालर था। अगले पृष्ठ की तालिका में मछलियों का उत्पादन, उनका मूल्य, उसमें लगे व्यक्तियों की संख्या तथा मछली साफ करने के कारखाने में लगे व्यक्तियों आदि की संख्या बताई गई है[1]

कनाडा में मछली पकड़ने के व्यवसाय में छोटे-बड़े प्रकार की नावों व जहाज़ों आदि की संख्या ४०,००० है जिनमें ६०,०००,००० डालर की पूँजी लगी है। कनाडा के समस्त उत्पादन की ⅓ पकड़ न्यूफाउंडलैंड से; ⅓ पकड़

चित्र ८७—उत्तरी-पूर्वी कनाडा में मछली पकड़ने के क्षेत्र

नोवास्कोशिया, प्रिंस एडवर्ड द्वीप और क्यूबेक से तथा शेष ⅓ बृटिश कोलंबिया और देश के भीतरी जलाशयों से प्राप्त होती है। समस्त पकड़ का ⅓ भाग

1. देखिए; Canada, 1954, p. 192.

वर्ष	पकड़ (००० पौंड में)	मछली का मूल्य (००० डालर में)	यन्त्रों आदि का मूल्य (००० डालर में)	मछुए	मछली साफ करने के कारखानों में लगे व्यक्ति
१८९९—१९०८	—	२४,४४७	—	७७,२८२	१४,०७०
१९०९—१८	९३०,९३२	५६,५०८	३१,३७६	६७,८०४	१८,३५६
१९१९—२८	९५३,४९६	४७,८०६	२७,८१३	५९,१३९	१६,४३२
१९२९—३८	९९५,४५०	३७,२३९	२७,६७२	६७,०१४	१४,५८६
१९३९—४८	१,२४०,५७०	८९,६२५	३८,९११	६६,१३०	१६,६६१
१९४९	१,३१७,७०६	१३०,९४६	६९,५४३	६४,६१३	१६,०८७
१९५१	१,४५२,९४५	१७५,८९४	९२,४२७	६५,१८८	१६,१०७

कनाडा के पूर्वी तट से तथा ⅓ पश्चिमी तट और भीतरी जलाशयों से प्राप्त होता है। कनाडा के पूर्वी समुद्रतट से गहरे पानी की मुख्य मछलियाँ—कॉड, लॉब्स्टर, हैडक, हैलीबट, हैरिंग, सारडाइन्स और मकरेल—पकड़ी जाती हैं।

इस व्यवसाय में ६५,००० व्यक्ति लगे हैं जिन्होंने १९५१ में १,४५३,००० पौण्ड मछलियाँ पकड़ीं। संसार के मछली पकड़ने के केन्द्रों में न्यू-इङ्गलैंड और न्यूफाउन्डलैण्ड के पास वाले बैंकों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यह न्यूफ़ाउन्डलैण्ड के पूर्वी किनारों पर १,१०० मील की दूरी में नोवोस्काशिया के पश्चिमी छोर से लगाकर न्यूफाउन्डलैंड के दक्षिण तक फैले हुए हैं और इनकी चौड़ाई २५ मील से लेकर २५० मील तक है और यहाँ जल की गहराई १० से १५० फैदम तक ही है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण यह हैं: (१) न्यूफाउन्डलैण्ड के दक्षिण-पूर्व में 'ग्रैन्ड बैंक' जिसका क्षेत्रफल ३७,००० वर्ग मील है, (२) नोवास्कोशिया के दक्षिण-पूर्व में सेबिल द्वीप बैंक जिसका क्षेत्रफल ७,००० वर्ग मील है, और (३) कॉड अन्तरीप के पास जार्ज बैंक जिसका क्षेत्रफल ८,५०० वर्ग मील है। कॉड और हैडक मछलियों के लिये यह संसार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रदेश है। इस प्रदेश में पकड़ी जाने वाली अन्य मछलियाँ हैरिंग, हैडक, सामन, हैलीबट, हेक, सारडाइन और मैकैरल हैं। कनाडा का पूर्वी तट लाब्सटरों, स्मैल्टस और कॉड के लिये संसार में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ ट्रॉलरों द्वारा मछली पकड़ी जाती हैं।

लैब्रोडर और न्यूफाउन्डलैंड के लोगों का मुख्य आहार मछली है; क्योंकि (१) इन प्रदेशों की जलवायु खेती के लिये बहुत ठन्डी और आर्द्र है; (२) इसके अतिरिक्त भूमि के अन्य साधन जैसे खानें और जंगल आदि भी अत्यन्त सीमित हैं। (३) यहाँ नदियों, खाड़ियों और छिछले जल के क्षेत्रों की भरमार है। (४) यहाँ लैब्रोडर की ठन्डी धारा में प्लैंक्टन बहुत बड़ी मात्रा में चले आते हैं जिन पर मछलियाँ रहती हैं। न्यूफाउन्डलैंड से प्रतिवर्ष कॉड मछली और उसका तेल काफ़ी मात्रा में ब्राजील, स्पेन, पुर्तगाल और भूमध्य सागरीय देशों को निर्यात किया जाता है जहाँ वर्ष के कुछ समय में मांस खाना निषिद्ध है। प्रति वर्ष लगभग ११·५ करोड़ डालर के मूल्य की मछलियाँ निर्यात की जाती हैं।

कनाडा के पश्चिमी भाग में बृटिश कोलम्बिया में सामन, हैरिंग, और अन्य कई प्रकार की मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती हैं। ताजे पानी वाली मछलियों में मुख्यतः ट्राउट, पिकरैल, श्वेत मछली, टलीबी, सौजर और पाइक आदि की पकड़ का लगभग आधा भाग ओन्टेरियो झील, ⅙ मानीटोवा और शेष क्यूबेक, न्यू ब्रान्सविक, ससकेचवान, एलबर्टा, यूकन और उ० प० प्रान्तों से प्राप्त होता है।

उत्तरी-पश्चिमी कनाडा—उत्तरी अमेरिका के मछली पकड़ने के अन्य क्षेत्र प्रशान्त सागर के तटीय भाग हैं जो उत्तरी कैलीफोर्निया और बैरिंग सागर के बीच में स्थित हैं। इस भाग में अलास्का, बृटिश कोलम्बिया, ओरगन, वाशिंगटन, और कैलीफोर्निया के तट सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में पकड़ी जाने वाली

सबसे महत्वपूर्ण मछली सामन और ट्राट हैं। यह प्रदेश संसार की टीन में भरकर बाहर भेजी जाने वाली सामन मछली का भी सबसे बड़ा स्रोत है। सामन मछली की एक विशेष आदत होती है। इसका जन्म झीलों और नदियों के मीठे जलों के रेतीले पेंदों में होता है। जब यह उँगली के बराबर मोटी हो जाती है तो झीलों और नदियों को छोड़कर समुद्र में चली जाती है जहाँ वह अपने जीवन का अधिकतर भाग समुद्रों के खारे जलों में ही बिताती है, किन्तु लगभग तीन साल बाद ढलती हुई उम्र में यह नदियों के उन्हीं मीठे जल में आ जाती

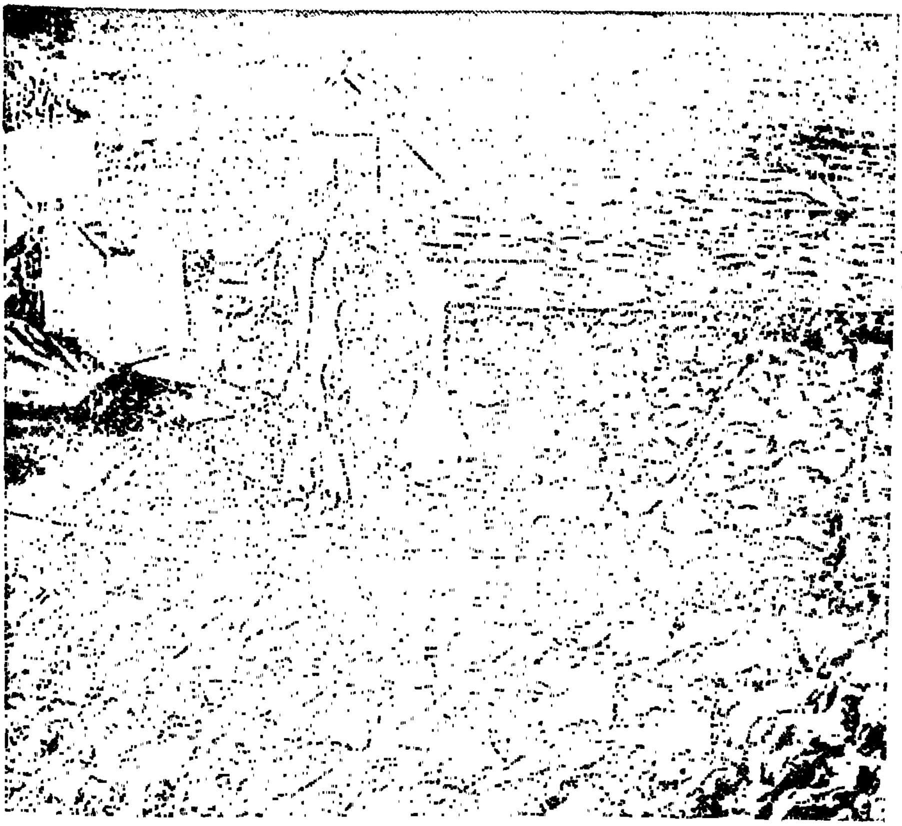

चित्र ८८—कनाडा में मछलियाँ सुखाना

है जहाँ उसका जन्म हुआ था। अंडे देने के बाद यह बूढ़ी मछलियाँ मर जाती हैं। बसन्त और गर्मियों में जो कि इनके अन्डे देने के मौसम हैं अधेड़ सामन मछलियों की बहुत बड़ी संख्या समुद्र से नदियों की ओर चढ़ती हुई देखी जाती है। अतएव सामन पकड़ने के यही दो विशेष मौसम हैं। वेंकूवर, पोर्टलैंड, प्रिन्स रूपर्ट द्वीप, विक्टोरिया व सीएटल इस प्रदेश के सामन मछली पकड़ने के सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र हैं।

यहाँ अन्य मछलियाँ पिलकर्ड, ट्यूना, श्रीम्प, ह्वेल, क्लॉम और हैलीवट हैं। पिलकर्ड जाड़ों में पकड़ी जाती हैं और ट्यूना गर्मियों में। एलास्का और ब्रिटिश कोलम्बिया के गहरे जल हैलीवट के लिये प्रसिद्ध हैं।

पिछले कुछ वर्षों से कनाडा के इस व्यवसाय में पकड़ने के तरीकों, शीत भंडार (Cold Storage) की विधि आदि में प्रगति हो जाने से बड़ा परिवर्तन हो गया है। देश के निर्यात में ताजी और बर्फ में दबी मछलियों का भाग ४२% है। १९५१ में १९९,३९६ हजार पौंड; सामन २३२,४३९ हजार पौंड कॉड तथा ४५,५७३ हजार पौंड लॉब्स्टर मछलियाँ पकड़ी गईं जिनका बाजारू मूल्य क्रमश ६१,७१९ हजार डालर; १७,४६३ हजार डालर तथा १७,५६९ हजार डालर था।

भारत में मछली पकड़ने का धन्धा

भारत जैसे विशाल देश में—जहाँ विस्तृत समुद्री किनारे, वर्ष भर पानी से भरी हुई नदियाँ और सिंचाई की नहरें तथा वर्षा जल से पूर्ण असंख्य तालाब और झीलें हैं—मछलियाँ पकड़ने के लिये विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। अब तक भारतीय समुद्रों में १,५०० प्रकार की मछलियाँ ज्ञात हो चुकी हैं, किन्तु कुछ ही किस्म की मछलियाँ यहाँ पर्याप्त मात्रा में पकड़ी जाती हैं। भारत में मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र समुद्र तटीय सीमायें हैं। इनके अतिरिक्त नदियों के मुहाने, नदियाँ, सिंचाई की नहरें, बाढ़वर्ती क्षेत्र, झीलें आदि भी मछली पकड़ने के मुख्य क्षेत्र हैं। भारत की समुद्र तटीय रेखा लगभग ३,२२० मील लम्बी है और उस समुद्र का क्षेत्रफल, जो १०० फैदम गहरा है लगभग १,१५,००० वर्ग मील है। किन्तु इस क्षेत्रफल का बहुत थोड़ा भाग ही काम में आता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि अभी तक तट से ५-१० मील के क्षेत्र तक ही मछली पकड़ने के केन्द्र सीमित हैं। सम्पूर्ण समुद्री मछलियों के केवल ५-६% क्षेत्रफल में ही मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। नदियों के मुहाने और नदियों में भी मछली पकड़ने के काम किया जाता है। इनसे देश के भीतर काफी परिमाण में मछलियों की पूर्ति हो जाती है।

भारत में मछली पकड़ने के क्षेत्रों को इन भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) समुद्री मछलियाँ।
(२) देश के भीतरी भागों में पकड़ी जाने वाली मछलियाँ।
(३) नदियों के डेल्टों और चौड़े मुखों में पकड़ी जाने वाली मछलियाँ।
(४) मोती देने वाली मछलियाँ।

(१) समुद्री मछलियाँ—समुद्री मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र तटीय रेखा से ५-१० मील की सीमा तक ही सीमित हैं। समुद्री मछली के मुख्य क्षेत्र गुजरात, कनारा, मलाबार तट, कारोमण्डल तट और मनार की खाड़ी

हैं। पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर पकड़ी जाने वाली मुख्य मछलियाँ— प्रॉन (Prawn), ज्यू मछली (Gew-fish), मेकरेल (Mackrels), मुलेट्स (Mullets), सामन (Salmon), पॉमफ्रेट (Pomfret), सीर (Seer), सारडाइन (Sardine), रे (Ray), उड़ती मछली (Flying Fish), चपटी मछली (Flat Fish) और शार्क (Shark) हैं। ये सभी मछलियाँ खाने के काम में आती हैं। ये मछलियाँ सीमित मात्रा में ही पकड़ी जाती हैं क्योंकि गाँवों आदि में इनकी माँग बहुत ही कम है।

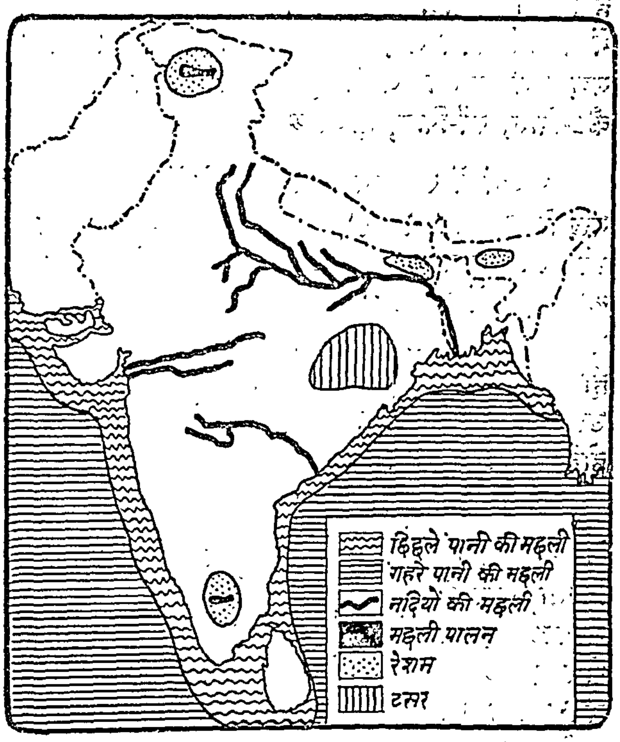

चित्र ८६—भारत में मछली पकड़ने के क्षेत्र

सभी क्षेत्र एक समान उत्पादक नहीं हैं। पश्चिमी समुद्र तट लगभग १,१५० मील लम्बा है किन्तु यहाँ कुल उत्पादन की ६६% मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, जब कि बंगाल की खाड़ी का तट, जो १,७७० मील से भी अधिक है, सम्पूर्ण भारत की १/३ ही मछलियाँ पकड़ता है। पश्चिमी तट पर ही कनारा और मलाबार के जिलों (मद्रास में—जिनकी तटीय रेखा २१५ मील है) में कुल भारत की जोड़ का १/४ मछली पकड़ी जाती हैं। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष ११६ लाख मन से भी अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं जिनका मूल्य ३०२·७ लाख रुपया होता है। मद्रास, कालीकट, मंगलौर, विशाखापट्टनम, तूतीकोरिन, मछलीपट्टम, नीलौर, नागापट्टम, पांडेचेरी आदि प्रमुख केन्द्र हैं।

(२) ताजे पानी की मछलियाँ—समुद्री मछलियों के बाद ताजे पानी की मछलियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। ताजे पानी में मछली पकड़ने के कार्य में मौसमी दशा का काफी प्रभाव पड़ता है। उत्तरी भारत की बड़ी नदियों में वर्षा काल में सामान्यतः मछली पकड़ने का कार्य अधिक नहीं होता। इन नदियों में जब बाढ़ आना बन्द हो जाता है तो अक्टूबर से मछली पकड़ने का मौसम शुरू हो जाता है। गर्मी के महीनों में मैदानों में मछलियों की माँग कम रहती है। अतः ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में पंजाब के कुछ भागों, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में मछली पकड़ने का धन्धा सामान्यतः कमजोर पड़ जाता है। तालाबों में जब पानी की

क्षेत्र	कुल पकड़ (००० मन)	प्रतिशत
सौराष्ट्र	९९·८	०·९९%
बम्बई		
गुजरात	१०७·७	१·०७%
उत्तरी थाना क्षेत्र	१६३·९	१·६३%
दक्षिणी थाना क्षेत्र	३८०·६	३·७८%
रत्नागिरी तट	३५४·३	३·५२%
उत्तरी कनारा तट	४९०·९	४·९०%
मद्रास		
द० कनारा तट	१६०४·०	१५·९२%
मलाबार तट	२२६६·०	२२·४९%
द० खंड (पूर्वी तट)	१८२·४	१·८१%
मध्यवर्ती खंड (,,)	२७०·४	२·६७%
उत्तरी खंड (,,)	५४६·७	५·४१%
कोचीन	३०८·४	३·०६%
ट्रावनकोर	२४२३·०	२४·०३%
उड़ीसा तट	३०३·३	३·०%
बंगाल तट	५७७·२	५·७%

वाणिज्य की दृष्टि से पकड़ी जाने वाली मुख्य-मुख्य मछलियाँ ये हैं—

सामन (Salmon)—सामन मछली शीतोष्ण कटिबन्ध के समुद्र की मुख्य मछली है। कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पश्चिमी समुद्र तट पर संसार में सबसे अधिक सामन मछली मिलती है। इसके अतिरिक्त जापान समुद्र, स्कैनडिनेविया का मछली क्षेत्र तथा ब्रिटिश समुद्र में सामन बहुत मिलती है। प्रशान्त महासागर संसार में सबसे अधिक सामन मछली उत्पन्न करता है। सामन नदियों के जल में ही अंडे देती है, इस कारण ये वसन्त ऋतु में बहुत दूर से चलकर नदियों के पानी में जहाँ वह समुद्र में मिलता है, अंडे देती है। यही कारण है कि फ्रेजर और कोलम्बिया नदियों में सामन बहुत अधिक पकड़ी जाती है और प्यूजेट सांउड के बन्दरगाह से बहुत सामन विदेशों को भेजी जाती है। संसार में इसका व्यापार बहुत होता है।

कॉड (Cod)—कॉड की संसार में बहुत अधिक मांग है। कॉड को उत्पन्न करने वाले दो मुख्य केन्द्र हैं : (१) आइसलैंड का किनारा, और (२) न्यूफाउन्डलैंड और लैब्रोडर। आइसलैंड के मछली क्षेत्र में अधिकतर फ्रांसीसी मछुए मछली पकड़ते हैं। कुछ अंग्रेज, डेनिश और नारवीजियन मछुये भी मछली पकड़ने का काम करते हैं। गर्मी के मौसम में यहाँ बहुत चहल-पहल रहती है। मछलियों को नमक में लपेटकर मछुये लोग नावों में जमा करके रखते हैं और मौसम समाप्त होने

पर लाते हैं। न्यूफाउण्डलैंड तथा लैब्रोडर का क्षेत्र आइसलैंड के क्षेत्र से अधिक महत्वपूर्ण है। संसार में सबसे ज्यादा कॉड यहीं से पकड़ी जाती है। किन्तु यहाँ मछली पकड़ना खतरनाक है क्योंकि यहाँ कोहरा बहुत छाया रहता है और बर्फ की चट्टानें बहती रहती हैं। मछली पकड़ने वाली नावें आपस में टकराकर अथवा जहाज और बर्फों की चट्टानों से टकराकर नष्ट हो जाती हैं। उत्तर प्रशान्त महासागर में भी कॉड पकड़ी जाती है, किन्तु इतनी अधिक नहीं होती जितनी उत्तर अटलांटिक में होती है। कॉड कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, नार्वे और न्यू-फाउन्डलैण्ड से बाहर भेजी जाती है। अधिकांश कॉड यूरोप, दक्षिणी अमेरिका तथा मध्य अमेरिका के देशों को जाती है।

कॉड लिवर आइल, कॉड मछली के जिगर को गर्म करने से तैयार होता है। इस तेल की अधिक माँग होने के कारण अन्य मछलियों का तेल भी इसी नाम से बेचा जाता है। कॉड लिवर आइल बनाने का धन्धा ब्रिटेन, न्यू-फाउन्डलैण्ड और नार्वे में अधिकतर होता है। इन्हीं देशों में यह तेल तैयार करके विदेशों को भेजा जाता है।

हैरिंग (Herring)—हैरिंग का उपयोग खाने में बहुत होता है। इसे गरीब और मध्य श्रेणी के व्यक्ति अधिकतर खाते हैं क्योंकि यह बहुत सस्ती होती है। हैरिंग उत्तर अटलांटिक में विशेषकर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा कनाडा के पूर्वी समुद्र तट पर बहुत मिलती है। जितने भी देश मछली पकड़ने के लिये प्रसिद्ध हैं वहाँ हैरिंग सब मछलियों से ज्यादा पकड़ी जाती है।

ह्वेल (Whale)—मछली पकड़ने के कार्य में खाने वाली मछलियों के

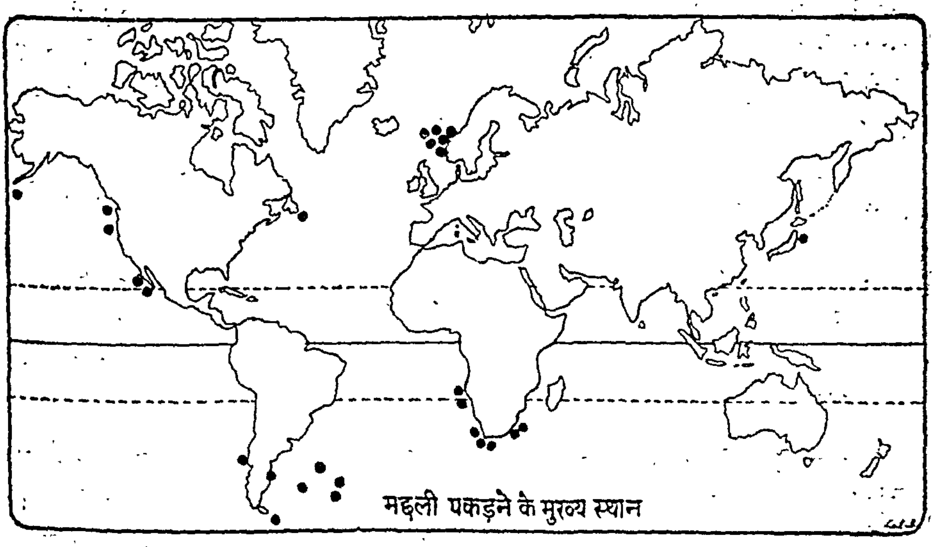

चित्र ९०—ह्वेल पकड़ने के क्षेत्र

अतिरिक्त समुद्र के बड़े-बड़े जानवरों का पकड़ना भी सम्मिलित है। यह जानवर ह्वेल, सील आदि हैं। इनकी खाल, हड्डियाँ, तेल, चर्बी, गोश्त या खाद के

लिये काम में आते हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से ह्वेल मछली का शिकार करना बड़ा महत्वपूर्ण है। यह खुली जगह का जन्तु है। उत्तरी गोलार्द्ध में तो अब यह जन्तु नाममात्र के लिये ही रह गई है, किन्तु दक्षिणी जलों में प्रधानतः पकड़ी जाती है। ब्रिटेन, नार्वे, जर्मनी और जापान के लोग ह्वेल का शिकार करते हैं। इसके पकड़ने के दो मुख्य क्षेत्र हैं—दक्षिणी अमेरिका का दक्षिणी भाग तथा आस्ट्रेलिया का दक्षिणी भाग और न्यूजीलैंड।

(१) प्रथम क्षेत्र में पैटेगोनिया और ग्रैहमलैण्ड के पश्चिम की ओर स्थित द्वीप समूह से लेकर पूर्व की ओर जमे हुए बर्फ की सीमा तक ह्वेल पकड़ी जाती है। यहाँ के मुख्य क्षेत्र ८०° पश्चिमी और २०° पूर्वी देशान्तर के मध्य तथा दक्षिणी जार्जिया, दक्षिणी शटलैंड, दक्षिणी आर्कनीज और दक्षिणी सैंडविच द्वीप समूह के चारों ओर विस्तृत हैं। दक्षिणी जार्जिया में ह्वेल पकड़ने का समय सितम्बर के अन्त से मई के मध्य तक तथा दक्षिणी शटलैण्ड में नवम्बर के उत्तरार्द्ध से अप्रैल के अन्त तक रहता है। अतः चलती-फिरती फैक्टरियाँ (जो जहाजों पर रहती हैं) नार्वे से अगस्त के मध्य से लेकर सितम्बर के अन्त तक प्रस्थान करती हैं और मई-जुलाई तक लौट आती हैं। (२) दूसरा क्षेत्र दक्षिण में रॉस सागर और बैलेनी द्वीपसमूह के चारों ओर का समुद्र है।

वर्तमान समय में अधिकाधिक ह्वेल पकड़ी जाने तथा पवनों और धाराओं द्वारा उनके लिए प्लैंक्टन आदि पदार्थ गहरे समुद्रों में ही ले जाये जाने के कारण पकड़ी जाने वाली ह्वेलों की संख्या दिन-प्रति-दिन घट रही है। अस्तु, ह्वेलिंग जहाजों को और भी बड़ा बनाने की आवश्यकता पड़ रही है जो समुद्र पर चलने में समर्थ हों। ह्वेल का पूर्ण विनाश रोकने की दृष्टि से ह्वेल मारने पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं और प्रत्येक देश में ह्वेल मारने वाले जहाजों की संख्या इस प्रकार नियत करदी गई है : नार्वे ६; जापान २; रूस १; इंग्लैण्ड ३; हालेंड १ और दक्षिण अफ्रीका १।

१९५२ में विश्व के प्रमुख देशों में ह्वेल का शिकार कर निम्न प्रकार से उन्हें पकड़ा गया:—

नार्वे	१९,१०२	दक्षिण अफ्रीका संघ	४,९४६
इंग्लैण्ड	६,९३८	चिली	१,३७४
जापान	६,५७८	आस्ट्रेलिया	१,७८४
रूस	५,५७९	विश्व	४९,७५२

जब ह्वेल को मारा जाता है तो तुरन्त ही उसे काटकर व्यापारिक वस्तुएँ प्राप्त करली जाती है क्योंकि समय बीतने पर मछलियाँ नष्ट हो जाती हैं। अतएव इस कार्य के लिये फैक्टरियाँ बनी हुई हैं जो या तो बड़े-बड़े जहाजों पर ही रहती हैं या ह्वेल पकड़ने के क्षेत्रों के निकट स्थल पर। स्थल की फैक्ट्रियों में माँस को उबालकर सुखा लेते हैं। हड्डी का चूर्ण बनाकर खाद तथा पशुओं का भोजन प्राप्त किया जाता है। इस मछली का तेल मारगरीन,

ग्लिसरीन, वार्निश, गोंद, मशीन को चिकना करने वाला तेल आदि बनाने के काम आता है।

सील (Seal)—सील मछली अपने रूएँदार बालों के लिये ही पकड़ी जाती है। एलास्का के तट से कुछ दूर प्रिबीलोफ द्वीपसमूह सील के सब से महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। यह दक्षिणी गोलार्द्ध में हार्न अन्तरीप, द० अफ्रीका, द० आस्ट्रेलिया और न्यूजीलेंड में भी मिलती है। प्रमुख पकड़ने वाले देश ब्रिटेन, कनाडा, रूस, जापान और सं० रा० अमेरिका हैं।

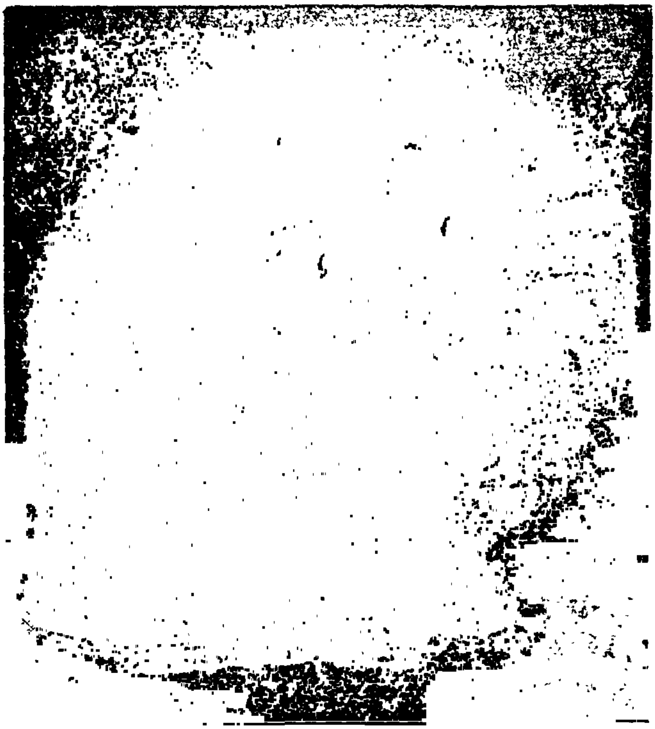

चित्र ९१—मोती की सीपी

मोती (Pearl fish)—मोती एक प्रकार की सीपी से प्राप्त होते हैं जिनका एकाधिकार उष्ण कटिबन्धीय सागरों में है। मोती फारस की खाड़ी, मनार की खाड़ी, सुलूद्वीप समूह (फिलीपाइन) आडू और मोलूशियस द्वीप के आसपास (पूर्वी द्वीप समूह), आस्ट्रेलिया के उत्तरी पश्चिमी किनारे, केलीफोर्नियाँ के धुर दक्षिणी भाग, वेनीजुएला के किनारों के छोटे-छोटे द्वीपों के चारों ओर तथा लाल सागर के उथले समुद्रों से निकाले जाते हैं।

मछली का व्यापार व उपभोग

मछली का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल नाममात्र के लिये है क्योंकि अधिकतर मछलियाँ स्थानीय उपभोग के लिये ही पकड़ी जाती हैं। अब शीत भंडार

की वैज्ञानिक विधियों की सुविधा के सहारे तथा सामान भेजने के ढंगों में सुधार हो जाने से थोड़ी-बहुत मछलियाँ पकड़ने वाले केन्द्रों से बाहर भेजी जाती हैं। न्यूफाउण्डलैण्ड, लैब्रोडर, कनाडा, नार्वे आदि भागों से कम आबादी होने के कारण मछलियाँ डिब्बों में बन्द कर यूरोप के देशों को भेजी जाती हैं। मुख्य आयात करने वाले देश ब्रिटेन, सं० रा० अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्पेन, चीन और पुर्तगाल हैं।

मछली और उनसे प्राप्त होने वाली वस्तुओं का मूल्य १ अरब रुपये से भी अधिक का कूता गया है। इनका मूल्य विश्व में पैदा होने वाले रबड़ के मूल्य का दुगना अथवा चाय, कहवा, कोको, तम्बाकू और शराब के मूल्य के बराबर होता है।

माँस की अपेक्षा मछली शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तु है, अतः शीत भण्डार की विधि के कारण अब मछलियों को बर्फ में दबाकर भेजने से मछली पकड़ने के व्यवसाय में बड़ी प्रगति हुई है। इसी के परिणामस्वरूप दूर-दूर के देशों को अब मछलियाँ मिलने लगी हैं। स्टीमरों, जालों तथा अन्य यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग बढ़ जाने से भी तथा इस व्यवसाय से प्राप्त होने वाली वस्तुओं के असंख्य नवीन प्रयोगों के आविष्कार से इस शताब्दी में मछली पकड़ने के व्यवसाय में उल्लेखनीय परिर्वतन हुआ है।

मछली केवल खाने के ही काम में नहीं आती किन्तु अब इससे व्यापार के काम की वस्तुऐं भी प्राप्त होती हैं। इसका खाद बहुमूल्य होता है। इसका तेल औषधियों, मशीनों को चिकना करने, चमड़ा रंगने, साबुन बनाने, तथा स्पात बनाने के काम में आता है। मछली से जिलेटीन तथा दाँत प्राप्त होते हैं और मछली की खाल उत्तम चमड़ा बनाने में काम आती है। मछलियाँ अधिक दूध देने के निमित्त गायों को भी खिलाई जाती हैं। मुर्गियों को खिलाकर अधिक अण्डे प्राप्त किये जाते हैं।

निम्न तालिका में १९५० में पकड़ी गई कुछ मुख्य मछलियों का उत्पादन बताया गया है:—(हजार मैट्रिक टनों में)

सामन		ट्यूना		हैरिंग	
सं० रा० अमेरिका	९१	सं० रा० अमेरिका	९०	सं० रा० अमेरिका	१८२
कनाडा	३२	जापान	२०	मोरक्को	३५
अन्य	१	फ्रांस	१७	पुर्तगाल	२९
		अन्य	१२	नार्वे	२४
विश्व का योग	१२४			फ्रांस	१७·२
		विश्व का योग	१३९	जर्मनी	१७
				इंग्लैण्ड	१२
				स्पेन	१०
				योग	३२६·२

प्रश्न

१. विश्व में मछली पकड़ने के धन्धे का भौगोलिक आधार क्या है ? इस सम्बन्ध में न्यूफाउन्डलैण्ड के तट के निकट मछली पकड़ने के लिये जो सुविधायें पाई जाती हैं उनका वर्णन करिये। (आगरा बी॰ कॉम॰ १९४७)

२. उत्तरी अटलाँटिक के मछली पकड़ने वाले क्षेत्र का महत्त्व बताइये। (आगरा बी॰ कॉम॰ १९४६)

३. क्या कारण है कि मछली पकड़ने के केन्द्र शीतोष्ण कटिबन्ध में ही पाये जाते हैं ? (आगरा बी॰ कॉम॰ १९४९)

४. "संसार के तटीय देशों के लोगों के भोजन में मछली का स्थान मुख्य है।" इस कथन की पुष्टि करते हुए संसार के प्रमुख मछली पकड़ने वाले केन्द्रों को बताइये। (आगरा बी॰ कॉम॰ १९५३)

५. समुद्र से कौन-कौन से व्यापारिक पदार्थ मिलते हैं ? संक्षेप में उन पर अवलंबित उद्योगों का भी वर्णन करिये। (यू॰ पी॰ १९३६)

६. संसार में मछली व्यवसाय के मुख्य केन्द्रों का वर्णन करिये और उनके स्थानीयकरण के कारण भी बताइये। मछली के मुख्य उपयोग क्या हैं ? (यू॰ पी॰ १९४५; रा॰ बो॰ १९५१)

७. भारत में मछली व्यवसाय इतनी पिछड़ी दशा में क्यों है ? इस उद्योग के लिये आजकल क्या किया जा रहा है ? (अ॰ बोर्ड॰ १९५१; रा॰ वि॰ १९५४)

८. संसार में मछली व्यवसाय के केन्द्रों का कारण सहित वर्णन करिये। मछली से क्या-क्या वस्तुऐं मिलती हैं ? अपनी खाद्यान्न समस्या को सुलझाने के लिये भारत ने इस उद्योग के विकास हेतु क्या किया है ? (म॰ बोर्ड १९५१)

अध्याय १४

लकड़ी काटने का व्यवसाय (Lumbering)

ऐसा अनुमान किया गया है कि पृथ्वी के जितने क्षेत्रफल पर वन-प्रदेश हैं उसका आधे भाग के लगभग (४९%) सदा हरे-भरे रहने वाले उष्ण कटिबन्ध के वनों से आच्छादित है। लगभग ३५% क्षेत्रफल पर शीतोष्ण कटिबन्ध के नुकीली पत्ती वाले वन और शेष १५% पर पतझड़ वाले वन खड़े हैं। नीचे की तालिका में पृथ्वी पर वनों का विस्तार बतलाया गया है।[1]

महाद्वीप	(लाख एकड़ में)	समस्त भूमि की तुलना % में	प्रति व्यक्ति पीछे वन प्रदेश (एकड़ों में)	पृथ्वी के समस्त वन प्रदेश का प्रतिशत
१. एशिया	२०९६	२२	२·४	२८%
२. द० अमेरिका	२०९२	४४	३२·०	२८%
३. उत्तरी अमेरिका	१४४३	२७	१०·०	१९%
४. अफ्रीका	८७९	११	६·०	११%
५. यूरोप	८७४	३१	१·७	१०%
६. आस्ट्रेलिया	२८३	१५	३५·०	४%

पृथ्वी के समस्त भिन्न प्रकार के वनों का विस्तार इस प्रकार है[2] :—

महाद्वीप	नुकीले वन (लाख एकड़ में)	पतझड़ वन	उष्ण कटिबन्धीय कठोर लकड़ी के वन
यूरोप	५७९०	१९५०	नहीं हैं
एशिया	८८९०	५७२०	६३५०
अफ्रीका	७०	१७०	७७३०
आस्ट्रेलिया	१५०	१५०	२५३०
उत्तरी अमेरिका	१०४६०	२९००	१०८०
दक्षिणी अमेरिका	१०९०	११५०	१८६९०
पृथ्वी	२६,४५०(३५%)	१२,०४० (१६%)	३६,३८० (४९%)

१. देखिये Zon और Sparhawk कृत "Forest Resources of the World".

२. Huntington, Williams and Valkenburg : Economic and Social Geography; p. 436.

उपरोक्त तालिका का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि यद्यपि उष्ण कटिबन्धीय वनों का विस्तार अधिक है किन्तु व्यापारिक दृष्टि से उनका

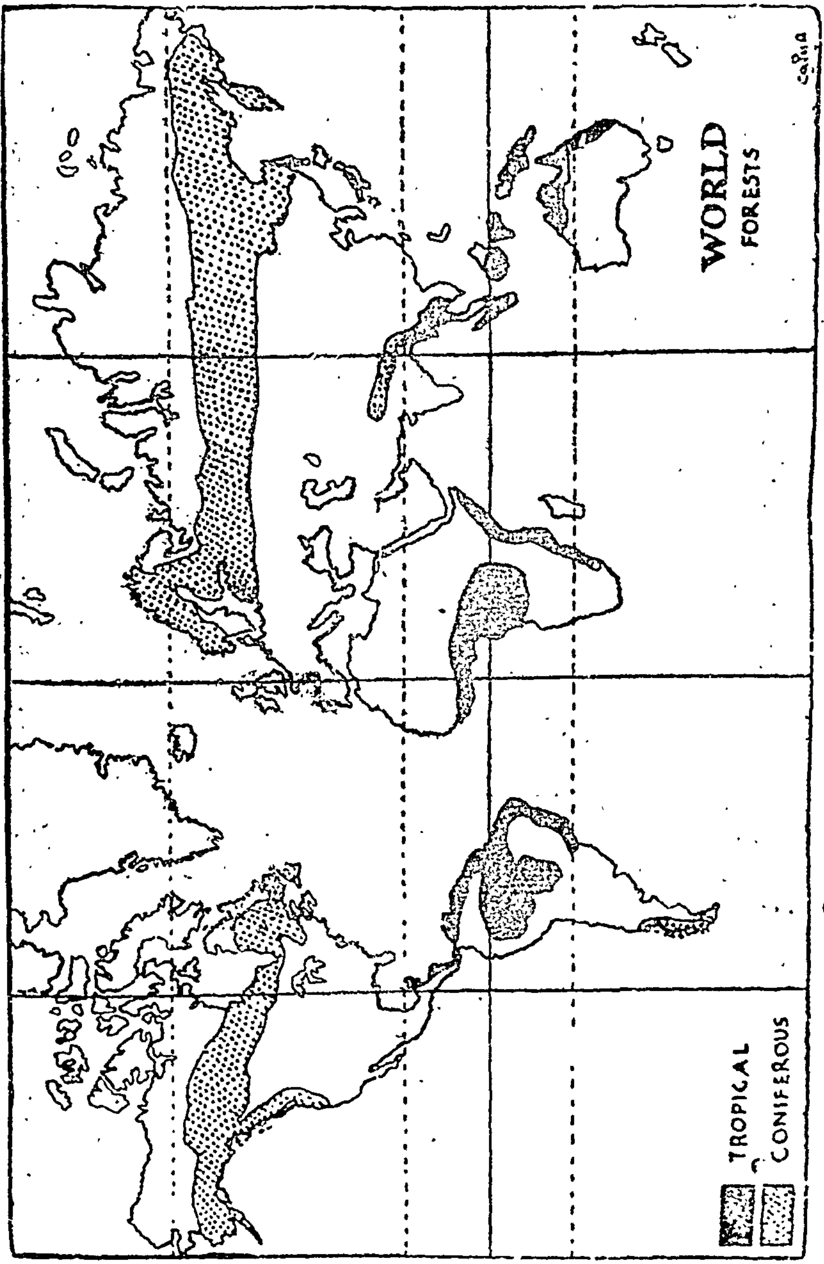

चित्र ६२—संसार के उष्ण और कोणधारी वन

महत्व बहुत कम है। व्यापारिक दृष्टि से नुकीली पत्ती वाले वन ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वनों से प्राप्त होने वाले पदार्थों का ८० प्रतिशत इन जंगलों से मिलता है।

वनों से कई कच्चे पदार्थ मिलते हैं जिन पर आधुनिक काल के प्रमुख उद्योग आश्रित रहते हैं। वनों से प्राप्त होने वाले पदार्थों में से इमारती लकड़ी का प्रमुख स्थान है। इमारती लकड़ियाँ दो प्रकार की होती हैं—

(१) कोमल लकड़ी (Soft Woods)—जो शीतोष्ण कटिबन्धों के नुकीले वृक्षों से प्राप्त होती हैं। मुलायम लकड़ियों में सब से कीमती पेड़ चीड़ का है जिससे बढिया किस्म की लकड़ी प्राप्त होती है। व्यापारिक महत्व रखने वाले अन्य मुलायम लकड़ियों वाले पेड़ फर (Fir), लार्च (Larch), सीडर (Sedar), स्प्रूस (Spruce), हेमलाक (Hemlock), रेडवुड (Redwood), चीड़ (Pine) है। विश्व का ५०% इन्हीं लकड़ियों द्वारा प्राप्त होता है। यह पोलैंड, आस्ट्रिया, रूमानिया, क्यूबा, बहामा द्वीपों, साइबेरिया, रूस, कनाडा, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, टसमानिया, न्यूजीलैंड और द० चिली में पाई जाती हैं।

(२) सख्त लकड़ी (Hard Woods) जिन्हें सुविधानुसार दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) शीतोष्ण सख्त लकड़ी (Temperate Hard Woods)—जो शीतोष्ण कटिबन्ध के पतझड़ वाले चौड़ी पत्ती धारी पेड़ों से प्राप्त होती है, जैसे (Beech), बर्च (Birch), मेपल (Maple), बलूत (Oak), पौपलर (Poplar), एल्म (Elm), ऐश (Ash), चेस्टनट (Chestnut), कॉरीगम (Kaurigam), यूकलिप्टस (Eucalyptus) आदि। विश्व में काटी गई लकड़ियों का ४०% शीतोष्ण कटिबन्ध की सख्त लकड़ियाँ होती हैं। ये प्रायः आल्पस, पिरेनीज, मध्यवर्ती रूस, साइबेरिया, मंचूरिया, चीन, कोरिया, जापान, एपैले-शियन प्रदेश, पैटेगोनिया और दक्षिणी चिली और आस्ट्रेलिया से प्राप्त की जाती हैं।

(ख) उष्ण कटिबन्धीय सख्त लकड़ी (Tropical Hard Woods) जो विषवुत् रेखीय प्रदेशों से प्राप्त की जाती है जैसे एबोनी (Ebony), महोगनी (Mahogny), रबड़, सागवान (Teak), देवदार, रोजवुड (Rosewood), लोह-काष्ट (Ironwood) आदि।

१९५० में कोमल और सख्त लकड़ी का उत्पादन इस प्रकार था:—

देश	कोमल लकड़ी (हजार घन फुट में)	सख्त लकड़ी
सं० रा० अमेरिका	६२,४७८	१३,४६१
कनाडा	१४,९१४	१,३२४
जापान	८,१२३	५०९
फिनलैंड	४,०८८	४७
फ्रांस	२,६००	२,०००
ब्राजील	२,३१९	६५१
इंग्लैंड	६७७	१,०५९
आस्ट्रेलिया	२१७	१,८३४
विश्व	१९७,०००	

कनाडा, सं० रा० अमेरिका, रूस, स्वीडेन, फिनलैंड, जर्मनी और जापान आदि देशों से विश्व की ७५%लकड़ी प्राप्त होती है। उत्तरी अमेरिका, यूरोप और ओशिनिया में संसार की २४% जनसंख्या पाई जाती है जबकि इनमें लकड़ी का उपभोग ७०% है और शेष ७६% जनसंख्या ३०% लकड़ी का उपभोग करती है। नीचे लकड़ी का विभिन्न उपयोग बताया गया है[१]:—

ईंधन	६४००	लाख मैट्रिक टन	५४·०%
इमारती काम	४०००	,,	३३·०%
कागज	६००	,,	५·०%
स्लीपर	२५०	,,	२·०%
खानों में	२००	,,	१·६ ,,
रेयन सिल्क में	५०	,,	०·४ ,,
अन्य	५००	,,	४·० ,,
योग	१२,०००	लाख मैट्रिक टन	१००%

विश्व में मुलायम लकड़ियों की माँग सब से अधिक रहती है क्योंकि यह लकड़ी अपने हल्केपन, मजबूती, टिकाऊपन, मुड़ने, झुकने और दरार होने तथा सिकुड़ने से दूरी और सरलतापूर्वक काम में ली जाने के लिये मशहूर हैं। इमारती लकड़ी के सब से बड़े व्यापारी देश वे हैं जिनमें खेई जाने वाली नदियों की सुविधायें हैं तथा लकड़ी चीरने के लिये मशीनों को चलाने के लिये जल शक्ति प्राप्त होती है।

नर्म लकड़ी के वन (Coniferous Forests)

उत्तरी गोलार्ध में मुलायम लकड़ी के कोणधारी वन उत्तरी अमेरिका और यूरेशियाके उत्तरी भागमें फैले हुए हैं। एशिया में इस वन-प्रदेश की सीमा ५५° अक्षांश तक है। उत्तर-पश्चिम यूरोप में इस वन प्रदेश की दक्षिणी सीमा ६०° अक्षाँश तक है। उत्तरी अमेरिका के पूर्व में ये वन ४० अक्षाँश तक मिलते हैं। दक्षिणी गोलार्ध में कोणधारी वन इतने विस्तृत नहीं हैं जितने उत्तरी गोलार्ध में। कोणधारी वन इन प्रदेशों में पाये जाते हैं—कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मेक्सिको, यूरोप, एशियाई रूस, मंचूको, उत्तरी जापान, न्यूजीलैण्ड, ब्राजील, अर्जेनटाइना और चिली। ये वन प्रदेश उन भूभागों में हैं जहाँ ठंड के मौसम में ठंड बहुत पड़ती है और गरमियों में गरमी पड़ती है। इन प्रदेशों में वर्षा अधिक नहीं होती किन्तु वर्षा वर्ष भर लगातार होती रहती है। इन वनों में बहुमूल्य लकड़ी उत्पन्न होती है।

इन्हीं वनों की लकड़ी से तारपीन का तेल (पाइन से निकाला जाता है), बीरोजा तथा अन्य पदार्थ बनाये जाते हैं। लकड़ी की लुग्दी बनाई जाती है जिससे कागज तैयार किया जाता है। इमारत तथा फर्नीचर के लिये लकड़ी प्राप्त होती है। कोणधारी वन औद्योगिक दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं।

१. Simon and Schuster: The Coming Age of Wood (1949)

कठोर लकड़ी के वन (पतझड़ के वन) (Deciduous Forests)

पतझड़ के वन मध्य तथा दक्षिण यूरोप में बहुत फैले हुए हैं। पश्चिमी यूरोप तथा मध्य रूस में भी कठोर लकड़ी के वन हैं। उत्तरी चीन, जापान, अपलेशियन पहाड़ के दोनों ओर, मिसीसिपी नदी के पश्चिम में, पैटेगोनिया तथा दक्षिण चिली में ये वन खड़े हुए हैं, किन्तु अफ्रीका या आस्ट्रेलिया में ये नहीं मिलते।

इन वनों की लकड़ी इमारत तथा फर्नीचर के काम अधिक आती है। पतझड़ वाले वनों की लकड़ी नरम नहीं होती वरन् कठोर होती है। ये वन उपजाऊ भूमि पर खड़े हुए हैं। इस कारण पूर्व काल में इनको साफ करके भूमि पर खेती करने का क्रम लगातार जारी रहा किन्तु अब यूरोपीय देशों की सरकारें इनकी सतर्कतापूर्वक रक्षा करती हैं।

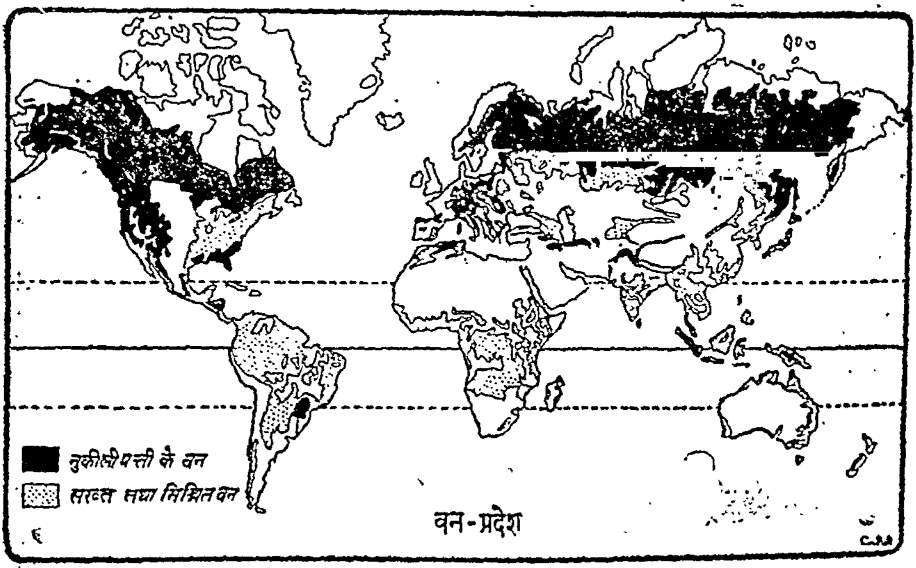

चित्र ६३—संसार के नर्म व कठोर लकड़ी के वन

उष्ण कटिबन्धीय सदा हरे रहने वाले वन (Tropical Forests)

उष्ण कटिबन्ध के सदा हरे रहने वाले वन मुख्यतः दक्षिणी अमेरिका, मध्य अमेरिका, अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा पूर्वी द्वीप समूह में पाये जाते हैं। इन वनों में देवदार, महोगनी और बाँस अधिक पाया जाता है। लकड़ी की अपेक्षा ये वन लाख, गोंद व भिन्न-भिन्न प्रकार की औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण घासों तथा रंग पैदा करने वाली वस्तुओं को अधिक उत्पन्न करते हैं। ये वस्तुयें वनों से आसानी से इकट्ठी की जा सकती हैं क्योंकि मार्गों की सुविधा न होने पर भी इन्हें इकट्ठा करने में कठिनाई नहीं होती।

पूर्वी एशिया के वन

पूर्वी एशिया में जापान, कोरिया, मंचूरिया, थाईलैंड, इन्डोचीन, बर्मा, फारमोसा तथा चीन के वन सम्मिलित हैं। जापान के वनों में बाँस, कपूर, लेक्वेर

के वृक्ष व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। फारमोसा से ही अब अधिकांश कपूर बाहर भेजा जाता है। वैसे चीन के फूकेन प्रान्त, जापान के शिकोकू और कियूशू द्वीप, सुमात्रा, जावा और बोर्नियो में कपूर के वृक्ष बहुत उत्पन्न होते हैं। जापान में लगभग ४८ प्रतिशत भूमि पर वन खड़े हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका के वन

संयुक्त राष्ट्र अमरीका की एक-तिहाई भूमि (६,२४० लाख एकड़) पर वन प्रदेश पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में से ४,६१० लाख एकड़ भूमि के वन व्यापारिक लकड़ियाँ प्रदान करते हैं और शेष १,६३० लाख वन-क्षेत्र व्यापार के लायक नहीं हैं क्योंकि यह पर्वतीय भागों, मरुस्थल के किनारों और अन्य भागों में पाये जाते हैं। व्यापारिक वन प्रदेश में से २,०५० लाख एकड़ भूमि पर काटने की लकड़ी के विस्तृत भन्डार भरे हैं। इसमें से ⅘ भाग बिल्कुल अछूती लकड़ियाँ हैं और ⅕ भाग दुबारा लगाई गई लकड़ियों का है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में व्यापारिक वनों का ३,४५० लाख एकड़ (७५%) निजी सम्पति है और १,१६० लाख एकड़ (२५%) सार्वजनिक सम्पत्ति है। निजी सम्पत्ति के अन्तर्गत जो वन-क्षेत्र हैं उनमें से ¾ भाग की लकड़ियाँ काटने योग्य हैं किन्तु सार्वजनिक क्षेत्रों के वन अनउपलब्ध होने तथा उत्तम प्रकार की लकड़ियों के अभाव में व्यापार के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

व्यापारिक महत्व की लकड़ियों के कुल क्षेत्र का ३९·८% दक्षिणी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में है क्योंकि यहाँ उत्तम जलवायु के कारण वन शीघ्र ही पैदा हो जाते हैं। मध्यवर्ती अटलांटिक राज्य तथा उत्तर पूर्वी भागों में कुल का १५·७%; तीन झील के राज्य (मिशीगन, विस्कानसिन और मिनेसोटा) ११%; मध्यवर्ती राज्य (आयोवा, मिस्सौरी, इन्डियाना, इलीनियोस और कैनटकी) ९·६%, दक्षिणी रॉकीज ३·४%; उत्तरी राकीज ६·३%; कैलीफोर्निया ३·५% और पैसीफिक उत्तर पश्चिमी भागों में १०% वन हैं।

लकड़ी की मात्रा के अनुसार पश्चिमी भागों में कुल देश की काटने योग्य मुलायम लकड़ी का ६४% (या १,०३७० लाख बोर्ड फीट) पाया जाता है। दक्षिण भागों में पीलीपाइन ११%; उत्तरी और झीलवर्ती भागों में ४%; बड़े मैदान के पूर्वी भागों में कठोर लकड़ी का १८%; उत्तरी-पश्चिमी प्रशान्त महासागर के किनारों पर २७% डगलस फर और ११·५% पीली पाइन के क्षेत्र हैं। संयुक्त राष्ट्र में १५३ राष्ट्रीय वन हैं जो १८० लाख एकड़ भूमि पर फैले हैं। इनमें से ७० लाख एकड़ पर चरागाह हैं।

संयुक्त राष्ट्र के वन-विभाग के अनुसंधान द्वारा ज्ञात हुआ है कि १९४५ में वहाँ ४७० बिलिअन घन फुट लकड़ी के क्षेत्र वर्तमान थे जिनमें से २८% दक्षिण में; २१% उत्तर और उत्तरी पूर्वी राज्यों में; ५१% पश्चिमी भागों में (३१% प्रशान्त महासागर के पश्चिमी तट पर; १०% कैलीफोर्निया और १०% राकी पर्वतों में) है। चीरने योग्य लकड़ी (Saw timber) का भन्डार १६०१ बिलिअन बोर्ड फुट था जिसमें से १२९६ बिलिअन बोर्ड फुट मुलायम लकड़ी और ३०५ बिलिअन बोर्ड फुट सख्त लकड़ी का है। १९४५ में ३४ बिलिअन बोर्ड फुट

लकड़ी काटी गई। सभी प्रकार की लकड़ियों का व्यय १३,६६१ बिलिअन घन फुट था। इसमें से ५०% लकड़ियाँ काटी गईं; १६% ईंधन के रूप में; १०% लुब्दी के रूप में; १५% खम्भों आदि के कार्यों में; ३% आग से नष्ट और ६% कीड़ों तथा रोगों से नष्ट हुईं।[1] संयुक्त राष्ट्र के वनों में १५०० विभिन्न प्रकार के वृक्ष मिलते हैं जिनमें १५० व्यापारिक महत्व के हैं। संयुक्त राष्ट्र में लगभग ६४,००० कम्पनियाँ हैं जो लकड़ी काटने और अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने में लगी है। जंगलों को काटने और उनसे उपज प्राप्त करने में १० लाख से भी अधिक व्यक्ति लगे हैं। लकड़ी का वार्षिक उत्पादन ३६ बिलिअन बोर्ड फुट, लुब्दी का उत्पादन १५ लाख टन तथा न्यूज प्रिंट का १० लाख टन है। दक्षिणी वनों से प्रति वर्ष तारपीन के ५५६,४२० पीपे और विरोजा के १७ लाख ढोल प्राप्त होते हैं। वन-सेवा विभाग के अनुमानानुसार वर्तमान गति से जंगलों के काटे जाने की रफ्तार से संयुक्त राष्ट्र के वन देश की ७६% माँग को पूरा करते है, अतः यह आवश्यक माना गया है कि देश की वन सम्पत्ति का अधिक उत्तम रूप से विकास किया जाय।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में लकड़ी के धन्धे के सात मुख्य क्षेत्र हैं जहाँ के वनों से लकड़ी प्राप्त होती है। १९५० में संयुक्त राष्ट्र के वनों से ६६० लाख घन फुट मुलायम लकड़ी प्राप्त हुई। इसी वर्ष यहाँ १३४ लाख मीट्रिक टन लुब्दी भी तैयार हुई। संसार की ४०% लुब्दी और ६०% मुलायम लकड़ी सं० रा० अमेरिका से ही प्राप्त होती है।

(१) उत्तर-पूर्व का वन-प्रान्त—इस क्षेत्र में न्यू इंगलैण्ड तथा ऐडिरानडक के वन सम्मिलित हैं। यहाँ का प्रदेश ऊँचा है और ठंड की अधिकता होने के कारण यह खेती के अनुपयुक्त है। इस पहाड़ी प्रदेश में मार्गों की सुविधा न होने के कारण यहाँ रेलें इत्यादि नहीं हैं परन्तु जाड़ों में वर्फ जम जाती है। अतएव लकड़ी के लट्ठे घोड़ों द्वारा वर्फ पर आसानी से खींचे जाते हैं। जब लकड़ी के बड़े-बड़े ढेर नदी पर आ जाते हैं और नदी का वर्फ पिघलता है तो लकड़ी के लट्ठे उसमें बहकर शहरों के समीप पहुँच जाते हैं। लकड़ी को शहरों के समीप तक लाने की सुविधा के कारण ही प्रान्त में लकड़ी का धन्धा पनप उठा है। इस वन प्रदेश में पाइन, स्प्रूस, और हैमलाक बहुत मिलता है।

(२) झीलों के समीपवर्ती वन प्रदेश—इसमें विसकांसिन, मिशिगन तथा मिनसोटा के वन-प्रदेश सम्मिलित हैं। इन वनों में सफेद पाइन, स्प्रूस और हेमलाक मिलता है। किन्तु यहाँ के वन बहुत कुछ समाप्त हो गये हैं इस कारण उनका महत्व कम हो गया है। झीलों के जल-मार्ग तथा वर्फ के जमने से लकड़ी को लाने में सुविधा भी है।

(३) एपलेशियन पहाड़ी प्रदेश के वन—अपलेशियन पहाड़ी प्रदेश के वन दक्षिणी न्यूयार्क से ज्यार्जिया और अलबामा के उत्तरी भाग तक फैले हुए हैं।

---

१. देखिये; Freeman and Raup : Essentials of Geography; पृ० १८१.

इस प्रदेश में हैमलाक बहुत मिलता है। स्प्रूस तथा पीला और सफेद पाइन भी इन वनों में अधिकता से पाया जाता है। इस वन प्रदेश में पहाड़ों का अत्यधिक ढाल तथा बर्फ की कमी के कारण स्लेज (एक प्रकार की गाड़ी जो बर्फ पर चलती है) का उपयोग नहीं हो सकता इस कारण लकड़ी को लोहे के बड़े-बड़े वैगनों में भर कर नीचे ले जाते हैं।

(४) **मध्यवर्ती क्षेत्र**—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ये वन मध्य में स्थित हैं। इनमें ओक, हिकारी, चेस्टनट, ट्यूलिप, काला वालनट तथा ऐश मिलते हैं। अरकंसास, टेनेसी, पश्चिम वरजीनिया, मिशिगन और विसकंसिन रियासतें सबसे अधिक लकड़ी उत्पन्न करती हैं। इण्डियाना, ईवैन्सविली तथा मैमफिस लकड़ी की प्रसिद्ध मंडियाँ हैं। मैमफिस कठोर लकड़ी की संसार में सब से बड़ी मंडी है।

(५) **दक्षिण पाइन के वन**—ये वन अटलांटिक समुद्र-तट के समीपवर्ती तटीय मैदान में न्यूजर्सी से टैक्सास रियासत तक फैले हैं। इन वन प्रदेशों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वृक्ष पीला पाइन है। यह कठोर और बहुत मजबूत होता है। इस वन प्रदेश की भूमि समतल तथा रेतीली है इस कारण वनों से विशेषकर न्यूआर्लियन्स से लकड़ी काटकर लाने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। अटलांटिक महासागर के बन्दरगाहों से ये लकड़ी विदेशों को जाती है।

(६) **पश्चिमी मिसिसिपी तथा राकी पर्वत के वन**—मिसिसिपी वन प्रदेश में भी ओक, मैपिल, हिकारी तथा ऐश इत्यादि वन मिलते हैं किन्तु राकी पर्वत पर कोणधारी वन हैं। वहाँ पाइन, स्प्रूस और फर बहुत मिलता है।

(७) **प्रशान्त महासागर के ढाल के वन**—उत्तरी कैलीफोर्निया, ओरेगन, वाशिंगटन, बृटिश कोलम्बिया और अलास्का में फैले हैं। ये वन संसार में सबसे अधिक लकड़ी उत्पन्न करते हैं। कैलीफोर्निया के वन तो प्रसिद्ध ही हैं। लाल लकड़ी, डगलस फर मुख्य वृक्ष हैं। इन वृक्षों की ऊँचाई सौ फुट से भी अधिक होती है और उनके तने की मोटाई ८ से १० फुट तक होती है। डगलस फर वृक्ष साधारण १७५ से २०० फुट तक ऊँचा और ३ से ६ फुट तक मोटा होता है। कोई-कोई वृक्ष तो २५० फुट से भी अधिक ऊँचे होते हैं। इन वृक्षों की इतनी अधिक ऊँचाई का मुख्य कारण साधारण उत्तम जलवायु, ग्लेसियरों द्वारा लाई गई उपजाऊ मिट्टी और वृक्ष का कीड़े-मकोड़ों द्वारा न खाया जाना है।[1] लाल लकड़ी (Red Wood) साधारणतः ३४० फुट ऊँची और १० फुट मोटी होती है। यह नावें बनाने और खुदाई करने के लिए काम में ली जाती है।[2] इतने भारी वृक्षों को लकड़ी के कारखानों तक पहुँचाना कठिन है। इस कारण बहुत-सी लकड़ी खड़े-खड़े ही नष्ट हो जाती है। साधारण गाड़ियों में ये लकड़ियाँ नहीं लाई जा सकतीं। इस कारण डंकी-एंजिनों से लकड़ी के लट्ठों को खिचवाया जाता है। प्रशान्त महासागर के तटीय प्रदेशों के वनों से बहुत लकड़ी पूर्व की तरफ भेजी जाती है।

---

1. E. C. Case : College Geography, 1954; pp. 389–391.
2. D. H. Campbell : Outline of Plant Geography, 1926; p. 128.

यूरोप के वन

नार्वे तथा स्वीडन का प्रदेश पहाड़ी है, तथा अधिकांश भाग खेती के लिये अनुपयुक्त है। नार्वे का ७१% भाग अनउपजाऊ है, २४·७% भाग पर वन हैं और केवल ३·५% पर खेती होती है। देश के निर्यात का २५% वनों की उपज होती है। स्वीडन की ५६·६% भूमि पर वन पाये जाते हैं, उस पर वनों के अतिरिक्त और कुछ उत्पन्न नहीं होता। वास्तव में नार्वे, स्वीडन तथा बाल्टिक प्रदेश के वन फिनलैण्ड और रूस में होते हुए साइबेरिया तक फैले हुए हैं। इन प्रदेशों में पाइन, लार्च और स्प्रूस खूब होता है।

जब बसन्त में फिनलैण्ड और स्वीडन की नदियों की बर्फ पिघलने लगती है तो ये नदियाँ अनन्त राशि में लकड़ी को बहाकर बाल्टिक समुद्र के कारखानों में ले जाती हैं, जहाँ उनके लट्ठे, कागज की लुब्दी तथा कागज तैयार होकर बाहर भेजा जाता है। फिनलैण्ड का वन उद्योग वहाँ की अर्थ व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। देश के कुल निर्यात में से ८०% निर्यात वन उद्योग

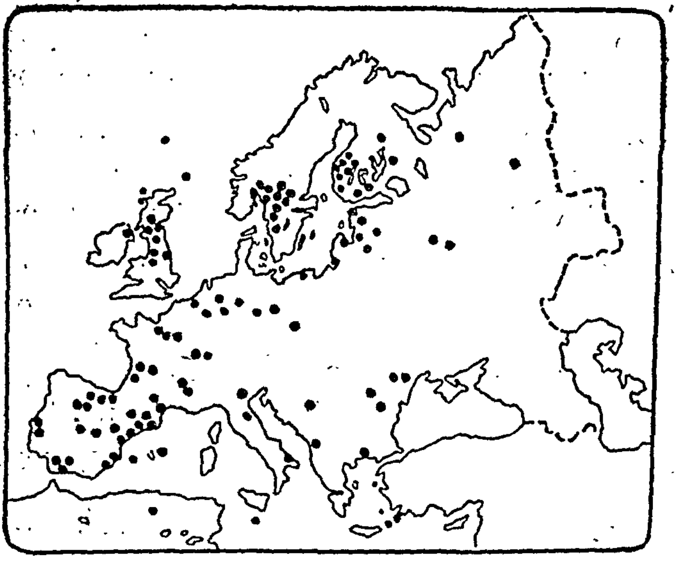

चित्र ९४—यूरोप में लकड़ी चीरने के केन्द्र

पर ही निर्भर है। इस उद्योग के कुल उत्पादन का ८०% विदेशों को भेजा जाता है। फिनलैण्ड ने पिछले वर्षों में संसार के कुल उत्पादन में से २०% लुब्दी और सैलूलोज, १५% आरे से कटा हुआ लकड़ी का सामान और ९०% प्लाईवुड विश्व-मण्डी में भेजा। न्यूज-प्रिंट एवं वुड-फाइबर बोर्ड के निर्यात में फिनलैण्ड दूसरे स्थान पर है। यहाँ १०० ऐसे लकड़ी चीरने के कारखाने हैं जिनमें निर्यात के लिए कार्य होता है। वैसे सब मिलाकर ८०० के लगभग कारखाने हैं। १८ प्लाईवुड, २७ सैलूलोज और ४ बाबिन के कारखाने हैं। कागज बनाने वाले कारखानों में ८ न्यूजप्रिंट, १५ कार्ड बोर्ड और १९ अन्य कागज बनाने के

कारखाने हैं। नीचे की तालिका में ००० मैट्रिक टनों में फिनलैण्ड का कुल उत्पादन और निर्यात वताया गया है[१]—

वस्तु	१९५० उत्पादन	निर्यात	%	१९५२ उत्पादन	निर्यात	%
कटी हुई लकड़ी का सामान	१०२५	६८३	६६·६	७६५	६११	१६·०
सैलूलोज (टनों में)	११९५	८७९	७३·५	११५६	७२२	६२·५
लुब्दी	६४४	१७७	२७·५	७२३	१४३	१९·८
न्यूज-प्रिंट	४२१	५७९	९०·०	४३९	३९२	८९·४

नार्वे में कई प्रकार की लकड़ियों के वृक्ष पाये जाते हैं। ६०°-७०° उत्तरी अक्षांशों तक चीड़ के वन पाये जाते हैं जिनका आर्थिक महत्व बहुत है। सब मिलाकर यह लकड़ी का भंडार १२० से १४० बिलिअन बोर्ड फुट कूता जाता है जिसका मूल्य संभवतः २५ करोड़ डालर आंका गया है। यहाँ के वनों में ५०% फर; ३०% चीड़ और शेष में बीच, ओक और एस्पैन पाई जाती हैं।[२]

कनाडा के वन—कनाडा की १,३२०,३२१ वर्गमील भूमि पर (देश के ४२% भाग पर) वन प्रदेश हैं। इस वन प्रदेश का ३२% व्यक्तिगत और ६८% सरकारी है। ये व्यक्तिगत वन पश्चिम से पूर्व की ओर ६०० से १००० मील चौड़ी पट्टी में समस्त देश के १/३ भाग में फैले हैं। इसमें से लगभग ७६४,००० वर्ग मील जंगल व्यापार के काम के हैं। इन वनों में कई प्रकार की बहुमूल्य लकड़ियाँ—स्प्रूस, बलसम, पाइन, डगलस फर, हैमलोक, सीडर और पोपलर आदि—पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त बर्च, मेपल, एल्म और बॉसवुड भी बहुत मिलती हैं। इन लकड़ियों के सहारे कनाडा में कई लकड़ी चीरने, कागज और लुब्दी तथा सैलूलोज बनाने, फरनीचर बनाने, वस्त्रों के धागे और प्लास्टिक बनाने के कारखाने चलाए जाते हैं। इन वनों से प्राप्त होने वाली मुख्य वस्तु काष्ठ की लुब्दी है। प्रति वर्ष लगभग १५८,००० वर्ग मील भूमि के जंगलों से लगभग ६०% लुब्दी प्राप्त की जाती है। लुब्दी के अतिरिक्त लकड़ी काट कर चीरना भी यहाँ का मुख्य व्यवसाय हो गया है। कनाडा में वनों द्वारा जितना

१. अ० भा० कां० कमेटी : आर्थिक समीक्षा—वर्ष ४, संख्या ३, (१९५४), पृष्ठ २२
२. Case and Bergsmark: College Geography, 1954, p. 401.

उत्पादन प्राप्त होता है उसका ६५% लट्ठों, लुब्दी और ईंधन के रूप में प्रयोग होता है। समस्त उत्पादन का १०% लट्ठा और ईंधन निर्यात किया जाता है। कनाडा के जंगलों से प्राप्त वस्तुओं का प्रतिशत इस प्रकार है—६१% मुलायम लकड़ी, २५% मिश्रित लकड़ी और १४% सख्त लकड़ी। इन वनों में लगभग १५० प्रकार की लकड़ियाँ मिलती हैं।

कनाडा में लकड़ी चीरने के कई कारखाने हैं जो मुख्यकर यूकन और उत्तर-पश्चिमी राज्यों तथा बृटिश कोलंबिया में हैं। १९४९ में यहाँ ७४६० लकड़ी चीरने की मिलें (Saw mills) थीं जिनमें ५५०३२ व्यक्ति काम करते थे। इन मिलों में कुल उत्पादन ३९६,४१५,०१ डालर का हुआ।

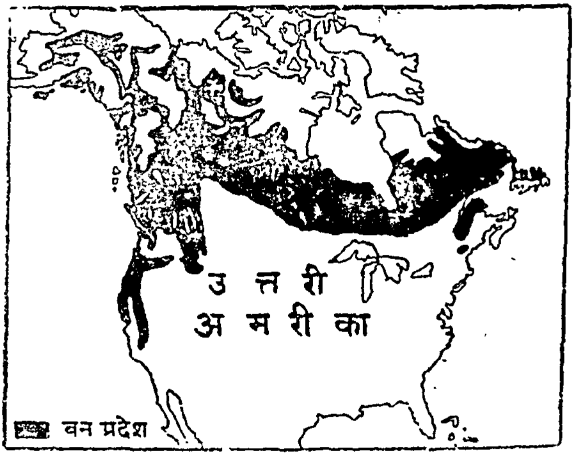

चित्र ९५—कनाडा के वन प्रदेश

कनाडा में लुब्दी बनाने के १९५१ में १३० कारखाने थे। इन कारखानों के स्थापन का मुख्य कारण निकटवर्ती क्षेत्रों में वन क्षेत्रों की स्थिति, यातायात के साधनों की सुगमता और जल-विद्युत शक्ति का वाहुल्य है। ओंटेरियो में ४५, क्यूविक में ५७, बृटिश कोलंविया में १२, मैरीटाइम प्राविन्सेज में ११ तथा न्यूफाउंडलैंड में ३ कारखाने थे। १९५० में १२३ कारखानों में ५२,३४३ मजदूर लगे थे और उनके द्वारा ९५४, १३७, ६५१ डालर का माल तैयार किया गया। इस वर्ष यहाँ ८४·७ लाख टन लुब्दी और ६८·१ लाख टन कागज वनाया गया जिनमें से १८·४ लाख टन लुब्दी और ४९·३ लाख टन कागज विदेशों को निर्यात किया गया।[1] इन कारखानों में जो वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं उनको ४ श्रेणियों में बाँटा जा सकता है:—

(१) लुब्दी (Wood-Pulp) जिसका प्रयोग कागज वनाने, रेयोन सूत, फोटोफिल्म, सैलोफोन, नाइट्रो-सैलूलोज वनाने तथा प्लैस्टिक का सामान वनाने में होता है।

(२) अखबार के लिए न्यूजप्रिंट कागज वनाना —लगभग ७०%

(३) अन्य प्रकार का कागज—वैंक नोट पेपर, सिगरेट पेपर आदि।

१. Canada, 1954, p. 171-177.

(४) पुट्ठा या दस्ती कागज—लगभग १७%

इन कारखानों के उत्पादन में ८०% भाग लुग्दी और न्यूजप्रिंट कागज का होता है तथा २०% भाग अन्य प्रकार के कागजों का होता है।

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि कनाडा में प्रतिवर्ष ३,५१५,०००,००० घनफुट लकड़ी का प्रयोग होता है। इसमें से २,७७६,०००,००० घनफुट लकड़ी उपयोग में आती है और शेष अग्नि, कीड़ों और रोगों द्वारा नष्ट हो जाती हैं। अतः यदि कनाडा में वनों का समुचित लाभ उठाना है तो यह आवश्यक प्रतीत होता है कि नष्ट होती हुई वन-सम्पत्ति को और नष्ट होने से बचाया जाय। इसी हेतु कनाडा की सरकार अब वन-प्रदेशों का अधिक संरक्षण करने लगी है। बिना सरकार की आज्ञा के कोई वन नहीं काट सकता और छोटे पेड़ तो काटे ही नहीं जा सकते। अग्नि से रक्षा के लिए वनों के बीच में जगह-जगह ऊँची चौकियाँ बनाई गई हैं जिन पर चौकीदार रहते हैं।

चित्र ९६—कनाडा में बर्फ पर लकड़ियाँ फिसलाई जा रही हैं

कनाडा की वन-संपत्ति का ३१% लट्ठों के रूप में प्रयोग होता है; २१% अग्नि, रोग या कीड़ों द्वारा नष्ट होता है; २१% ईंधन के रूप में; २०% लुग्दी और कागज बनाने तथा शेष ७% अन्य कामों में होता है।

मध्य यूरोप में फ्रांस (२२% वन), आलप्स पर्वतीय प्रदेश में स्वीटजरलैंड (२५%), मध्य राइन, उत्तर जर्मनी (२७%), जेकोस्लवाकिया तथा पोलैण्ड के वन हैं जो वास्तव में एक दूसरे से मिले हुए हैं। इन देशों में बड़ी सतर्कता-पूर्वक वनों की देख-भाल की जाती है तथा उनकी उन्नति भी खूब की गई है। इनमें अधिकांश वनों को तो लगाया गया है क्योंकि यूरोप में लकड़ी की कमी है। ब्रिटेन ही केवल एक ऐसा देश है जहाँ वन प्रायः हैं ही नहीं, केवल ४ प्रतिशत भूमि पर वन खड़े हैं और नीदरलैंड में केवल ७% भूमि पर।

रूस के वन—रूस में समस्त संसार के $\frac{1}{3}$ से भी अधिक वन पाये जाते हैं। रूस के उत्तरी वन प्रान्त कोणधारी वृक्षों से भरे हुये हैं जिनमें स्प्रूस, फर, लार्च और पाईन वृक्ष पाये जाते हैं। उनकी लकड़ी कागज, लुव्दी तथा सैलूलोज बनाने के काम आती है। मध्यवर्ती भाग में मिलावट के वृक्ष हैं और दक्षिण में केवल पतझड़ वाले वृक्ष ही पाये जाते हैं। उत्तर के कोणधारी वन बाल्टिक समुद्र से सुदूर-पूर्व में ओखट्स्क तक फैले हुये हैं। संसार में इन वनों के बराबर बहुमूल्य लकड़ी कहीं भी नहीं है। वास्तव में देखा जाय तो यूरोप तथा एशिया निवासियों के लिये यहाँ प्रकृति ने लकड़ी का अटूट भण्डार भर रखा है जो बहुत ही कम व्यवहृत हुआ है। वैसे तो सारे रूस में लकड़ी का धन्धा होता है परन्तु पश्चिम में जहाँ बड़े-बड़े नगर हैं यह विशेष रूप से केन्द्रित है। उत्तर में डाइना नदी के समीप यह धन्धा तेजी से बढ़ रहा है। मरमास्क, मैंजेन, इगरका और आरकैंजल लकड़ी के धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं। सोवियत रूस के प्रजातन्त्र संघ में यद्यपि वन प्रदेश संसार में सबसे अधिक हैं परन्तु उत्तर में अत्यन्त शीत प्रधान बर्फीले प्रदेश तथा दलदलों के वन व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं। वनों के भौगोलिक वितरण की विषमता, यातायात व्यवस्था का अपर्याप्त विकास, स्थानीय तथा विदेशी उपभोग के स्थानों की दूरी तथा मजदूरों की कमी रूस की बाधायें हैं। अगले पृष्ठ की तालिका में सोवियत रूस के वन प्रदेशों का वितरण और लकड़ी का उत्पादन बताया गया है।

साइबेरिया के वन—वन कटिबन्ध लगभग सम्पूर्ण साइबेरिया में यूराल से लेकर प्रशान्त महासागर तक तथा उत्तरी ध्रुववृत के आगे तक फैला हुआ है।

चित्र ६७—साइबेरिया में लकड़ियों का यातायात

प्रदेश	क्षेत्रफल (सम्पूर्ण का %)	लकड़ी (सम्पूर्ण का %)	प्रदेश	क्षेत्रफल (सम्पूर्ण का %)	लकड़ी (सम्पूर्ण का %)
साइवेरिया तथा सुदूरपूर्व	७५	३३	काकेशस	२	२
यूरोपीय रूस का उत्तरी प्रदेश	१२	२२	दक्षिणी प्रदेश (यूक्रेन व श्वेत रूस)	१	६
वोलगा प्रदेश	८	२१	प्राचीन औद्योगिक प्रदेश (मास्को, कालोनिन और लैनिनग्राड)	२	१५

रबर की चादरें या पट्टियाँ बनाने का काम अलग देशों की रबड़ की फैक्ट्रियों

चित्र ६६—लंका में रबर के लिए पेड़ों से दूध इकट्ठा करना

पर ही छोड़ दिया गया है। ऐसा करने से रबर का मूल्य काफी बढ़ गया है। निम्नांकित तालिका में संसार की विभिन्न प्रकार की रबर की उपज दी गई है—

संसार में रबर की उपज (००० मैट्रिक टन)

वर्ष	उपवन	पारा तथा जंगली	उपवन का भाग
१६२७	६७७	४३	६४ प्रतिशत
१६२८	६५६	३२	६५ ,,
१६२६	८५२	३०	६६ ,,
१६३०	६१६	३१	६७ ,,
१६४८	१५४४	५१०	६६ ,,

प्राकृतिक रबर का उत्पादन (००० टनों में)

औसत	द० पूर्वी एशिया	अन्य देश	योग
१६१५-१६	२०६	५१	२५७
१६३०-३४	८५३	१५	८६८
१६३५-३६	६३८	३२	६७०
१६४५-४८	७०७	६५	७७२

जंगली रबर से दुनियाँ की कुल पैदावार की केवल २·८% रबर प्राप्त होती है। यह विशेष रूप से अफ्रीका (लाइबेरिया, नाइजीरिया, कैमरून); कैपीरो (मैक्सिको), मध्य अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका (ब्राजील, इक्वेडर, कोलंबिया आदि) से मिलती है। जंगली रबर के पेड़ सबसे अधिक ब्राजील में पैदा होते हैं क्योंकि—

(१) रबर की पैदावार के लिये भूमध्य रेखा की जलवायु बहुत ही लाभदायक होती है। इसके पेड़ों के लिये साल भर ही बहुत अधिक तापक्रम (७५° से ६०° फा० तक) की आवश्यकता होती है। ब्राजील में, जो विषुवत् रेखा पर स्थित है, रबर के लिये उपयुक्त जलवायु मिलता है।

(२) अधिक गर्मी के साथ-साथ इसके लिये अधिक वर्षा की भी आवश्यकता होती है। अमेजन की घाटी में वर्षा का औसत ८०″ से भी ऊपर होता है। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि अधिक लम्बा और सूखा मौसम रबर के पेड़ों के लिये हानिकारक होता है।

(३) रबर की पैदावार के लिये मिट्टी उपजाऊ और ढालू होनी चाहिये। यही कारण है कि ब्राजील में भूमि को ढालू रखने के लिये रबर के पेड़ प्रायः २,००० फीट ऊँचे ढालों पर लगाये जाते हैं।

(४) रबर से दूध निकालने के लिये काफी सस्ते और चतुर मजदूरों की आवश्यकता होती है। अमेजन की घाटी के निवासी पेड़ों से दूध प्राप्त करने के लिये बहुत बड़ी संख्या में मिल जाते हैं।

इन्हीं सब कारणों से ब्राजील में जहाँ-तहाँ बिखरे हुये जंगली रबर के पेड़ों से दूध प्राप्त किया जाता है।

संसार में रबर का उत्पादन (००० टन)

क्षेत्रफल	१९३४–३८		१९५१	
अमरीका (उत्तरी, मध्य व दक्षिणी)		२०		३०
अफ्रीका		१०		७५
ओसीनिया		१		३
एशियाई देश—				
ब्रिटिश बोर्नियो		१·५		२·४
बरुनई				
Estates	०·६		१·९	
Small Holdings	०·९		०·५	
उत्तरी बोर्नियो		१०·३		२२·०
सारावाक		२०·७		४३·०
बर्मा		८·४		९·८
लंका		६१·५		१०६·७
भारत		१३·४		१७·४
इंडोचीन		३८·९		—
कम्बोडिया		—		१५·७
वीतनाम		—		३७·३
इंडोनेशिया		३५३·६		८१८·१
Estates	१८५·८		२१६·७	
Small Holdings	१६७·८		६०१·४	
मलाया		४२२·७		६१५·१
Estates	२६३·५		३३४·१	
Small Holdings	१५९·२		२८१·०	
फिलीपाइन		०·५		१·७
पुर्तगीज टिमर		—		०·१
थाइलैण्ड		३२·१		११०·६
योग एशिया		९६५		१८००
योग संसार		९९५		१९०५

संसार की ९७% रबर दक्षिणी-पूर्वी एशिया की पौधों वाली रबर के देशों से प्राप्त होती है। यह देश रबर के उत्पादन-महत्व के अनुसार ये हैं—ब्रिटिश मलाया ४५%; इन्डोनेशिया २४%; लंका ६%; थाइलैण्ड ६%; फ्रांसीसी हिन्द-चीन ३%, सारावाक ३%, उत्तरी बोर्नियो ५% और दक्षिणी भारत १%।

मलाया - रबर मलाया का सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ है। पिछले पचास वर्षों में रबर का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि संसार की कुल पैदावार की लगभग ५० प्रतिशत रबर यहीं से प्राप्त होती है। यहाँ की खेती के लिये उपयुक्त भूमि का कुल क्षेत्रफल ६० लाख एकड़ है जिसमें से लगभग ३५ लाख एकड़ केवल रबर के अंतर्गत है। १९४७ ई० की जन-गणना के अनुसार मलाया में लगभग १२ लाख आदमी खेती में लगे हुए थे; इनमे से अकेले ५ लाख आदमी रबर की उत्पत्ति में व्यस्त थे।

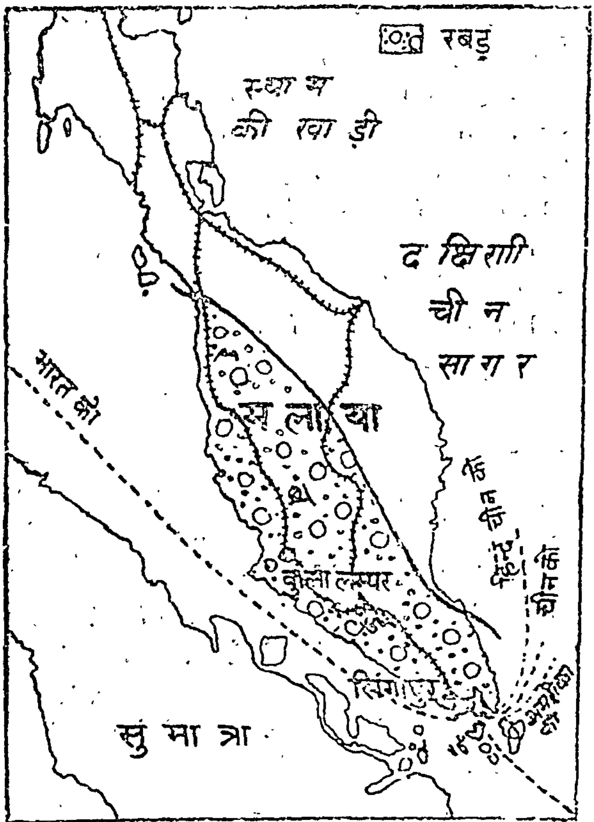

चित्र १००—मलाया में रबर का क्षेत्र

मलाया में रबर के पेड़ अधिकतर पश्चिमी तटीय मैदानों के निचले भाग में स्थित हैं। कुछ भीतर की पहाड़ी मिट्टी में भी हैं। यहाँ के रबर पैदा करने वाले महत्वपूर्ण प्रदेश यह हैं:—जल डमरू मध्य का भाग, सिंगापुर और पिनांग के द्वीप, वेलेजली प्रान्त, डिडिग्ज और मलाका, संयुक्त मलाया की पिराक, सेलनगोर, नीगिरसेम्बलीन और पाहंग की रियासतें और केलनतान, केदाह, ट्रेनगानू, जोहोर और पर्लिस की असंयुक्त रियासतें। यहाँ की लेटराइट मिट्टियाँ 'हैविया' की वृद्धि के लिये उसी प्रकार अनुकूल हैं जैसी कि अमेजन की निचली घाटी की।

यहाँ के रबर के उपवन दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं : (१) बड़े उपवन जिनका क्षेत्रफल साधारणतः २,००० एकड़ प्रति उपवन है, और (२) छोटे उपवन जिनका क्षेत्रफल १०० एकड़ प्रति उपवन से कम है। यह देशी किसानों या महेरों के अधिकार में है। सन् १९४९ ई० में बड़े उपवनों के अंतर्गत २० लाख एकड़ भूमि थी और इनमें २९०,००० मजदूर काम करते थे जिनमें ५२ प्रतिशत

भारतीय और २९ प्रतिशत चीनी थे। (२) छोटे उपवनों में लोग सामूहिक रूप से काम करते हैं और किसी बड़ी फैक्ट्री को अपना सारा दूध बेच देते हैं। व्यक्तिगत उपवन बहुत थोड़े हैं।

क्योंकि रबर की बिक्री के लिए बाहरी देशों से सम्पर्क आवश्यक है इसलिये रेलों और सड़कों की सुविधा अनिवार्य है। अतएव यहाँ के उपवन अधिकतर सड़कों और रेलों के अनुरूप ही हैं।

अन्य देश—सुमात्रा के रबर के उपवन प्रधानतः उत्तरी-पूर्वी तटीय भाग में स्थित हैं, किन्तु कुछ उपवन दक्षिणी-पूर्वी और पश्चिमी-मध्यवर्ती तटीय भागों में भी हैं। यहाँ के उपवन प्रायः देशी किसानों के अधिकार में हैं। जावा में रबर की पैदावार अधिक व्यापारिक पैमाने पर की जाती है। यहाँ के उपवन १५४० फीट की ऊँचाई के आस-पास हैं। युद्ध काल की अपेक्षा जावा की रबर की पैदावार आजकल बहुत गिर गई है। ब्रिटिश बोर्नियो का मुख्य पदार्थ रबर है। यहाँ की कुल निर्यात में ७० प्रतिशत रबर है और पैदावार ६०,००० टन है। हिन्दचीन के उपवन अधिकतर पूर्वी कोचीन और कम्बोडिया में हैं और पैदावार ४५,००० टन है। लंका के उपवन दक्षिणी मध्यवर्ती भाग से दक्षिणी-पश्चिमी तट तक फैले हैं।

भारत में रबर के पेड़ अधिकतर धुर दक्षिणी-पश्चिमी भाग में है। भारत में विश्व का केवल १% रबर पैदा होती है। यहाँ लगभग २० हजार टन रबर पैदा होती है जिसमें से आधा-उत्तम प्रकार का होता है और आधा निम्न श्रेणी का। भारत में कुल उत्पादन का १०% मद्रास में, ६०% ट्रावनकोर में, ८% कोचीन में और २% कुर्ग और मैसूर में पैदा किया जाता है। इन प्रान्तों की प्रति एकड़ औसत उपज इस प्रकार है—मद्रास २५३ पौण्ड, कोचीन ३१७ पौण्ड, ट्रावनकोर २५२ पौण्ड और कुर्ग २५० पौण्ड है। १९४८ में १५,४२२ टन रबर पैदा हुआ जब कि १९५३ में यह मात्रा २०,९६० टन पहुँच गई। इन दो वर्षों में उपभोग की मात्रा क्रमशः १९,७१९ टन और २१,९९८ टन थी। भारत से अधिकांश रबर लंका, हालैण्ड, मलाया, जर्मनी और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को निर्यात किया जाता है।

रबर में विश्व व्यापार—लगभग सब की सब पैदावार व्यापार के लिये चली आती है। रबर पैदा करने वाले देशों में तो यह कम उपयोग हो पाती है क्योंकि रबर अधिकतर विदेशी पूंजी और दिलचस्पी के कारण पैदा होती है। दक्षिणी-पूर्वी एशिया की पौध वाली रबर का तीन-चौथाई भाग अंग्रेजों के द्वारा पैदा होता है और बाकी डच, फ्रेंच और बेलजियम वासियों के द्वारा। संयुक्त राष्ट्र की दिलचस्पी ब्राजील और मैक्सिको की पौधों में है।

संसार में सबसे अधिक रबर मँगाने वाला देश संयुक्त राष्ट्र है। इसके बाद ब्रिटेन, जापान और फ्रांस का नम्बर आता है। सब रबर पैदा करने वाले देश ही रबर निर्यात करने वाले देश हैं। सिंगापुर और पिनांग के द्वारा ब्रिटिश मलाया की रबर भेजी जाती है। लंका की कोलम्बो द्वारा तथा ब्राजील की पारा व मनोस द्वारा। अफ्रीका में रबर बाहर भेजने के कई छोटे-छोटे केन्द्र हैं।

विभिन्न देशों में रबर का उपभोग नीचे की तालिका में बताया गया है:[1]—

१९५२ (००० मैट्रिक टनों में)

देश	प्राकृतिक रबर	बनावटी रबर	योग
सं० रा० अमेरिका	४६१	८२०	१२८१
इंगलैण्ड	२००	५	२०५
फ्रांस	१२०	११	१३१
जर्मनी, प०	९५	१०	१०५
आस्ट्रेलिया	२९	×	२९
भारत	२१	×	२१
जापान	६९	×	६९
कनाडा	३४	३४	६८
योग विश्व	१३५०	९००	२२५०

(२) लुब्दी—कागज बनाने के लिये आजकल ९०% लकड़ी की लुब्दी काम में ली जाती है। लुब्दी अधिकतर मुलायम लकड़ियों से ही प्राप्त की जाती है। स्प्रूस इसके लिये सबसे अच्छी समझी जाती है किन्तु फर, चीड़, पोपलर और ऐस्पेन भी काम में ली जाती है। इन लकड़ियों से दो तरह की लुब्दी तैयार की जाती है—रासायनिक और भौतिक। रासायनिक लुब्दी बढ़िया किस्म के कागजों के लिये प्रयुक्त होती है किन्तु भौतिक लुब्दी निम्न कोटि की होने के कारण सस्ते कागज बनाने—अखबार वाला कागज या रैपिंग कागज—में प्रयोग में आती है। कागज बनाने के लिये लुब्दी उत्तरी अमेरिका, स्कैन्डिनेविया, जर्मनी और जापान में अधिक प्राप्त की जाती है। लुब्दी बनाने के लिये अब एस्पार्टो, भावर, सवाई, भैंव, बांस तथा हाथी घास का भी प्रयोग किया जाने लगा है।

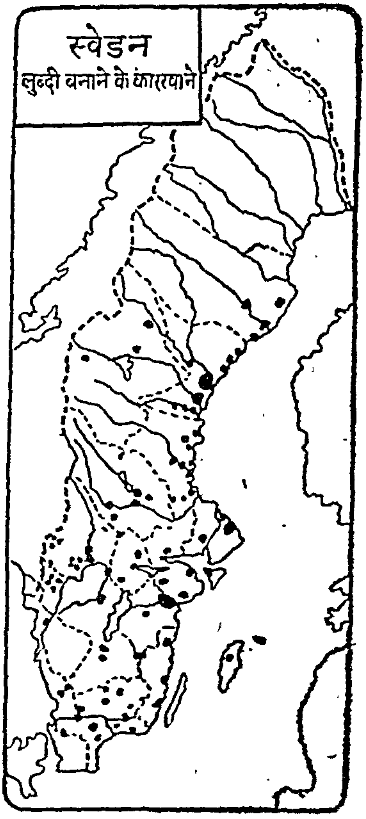

चित्र १०१

१९५० में विश्व में ३०३,६०० हजार मैट्रिक टन लुब्दी तैयार की गई जबकि १९४५ में इसका उत्पादन केवल १७९,००० हजार टन ही का था। लकड़ी से लुब्दी बनाने वाले देशों का भाग इस प्रकार है:—

१. U. N. Statistical Year Book, 1953, p. 281.

संयुक्त रा० अमेरिका	१३४,५०. हज़ार टन	जापान	७४१ हज़ार टन
कनाडा	७,४५३ ,,	फ्रांस	४९६ ,,
स्वीडेन	३,१४६ ,,	आस्ट्रिया	३४३ ,,
फिनलैंड	१,६१२ ,,	आस्ट्रेलिया	१३१ ,,
नार्वे	१,३१७ ,,	इंगलैंड (१९४९)	१३० ,,

(३) लाख—एक प्रकार का गोंद है जो विशेष प्रकार के जंगली वृक्षों के ऊपर रहने वाले छोटे-छोटे कीड़े (Laccifer lacca) की देन हैं। ये कीड़े बबूल, पलास, ढाक, खैर, सिस्सू और शिरीष आदि वृक्षों की डालों पर रहते हैं। इन्हीं डालों को खुरच कर लाख उत्पन्न की जाती है। लाख उत्पादन करने वाले देशों में भारत का स्थान प्रथम है। अन्य देश थाईलैण्ड और इन्डोचीन हैं जहाँ लाख पैदा की जाती हैं।

(४) गट्टापारचा—यह एक पेड़ का रस है जो रबर की भाँति निकाला जाता है। बिजली के तार के ऊपर जो खोल रहता है उसके बनाने में इसका उपयोग होता है। बिजली के अधिक प्रचार के साथ-साथ इस कार्य में गट्टापार्चा का उपयोग बढ़ गया है। गट्टापार्चा के खिलौने बहुत सुन्दर बनते हैं। अब तो गट्टापार्चा की अनेकों वस्तुएं बनाई जाने लगी हैं। आज ऐसी कोई बिसायत-खाने की दूकान नहीं मिल सकती जिसमें गट्टापार्चा का सामान न हो। गट्टापार्चा अधिकतर मलाया प्रायद्वीप, पूर्वी द्वीप समूह तथा उष्ण कटिबन्ध के अन्य प्रदेशों में उत्पन्न होता है और वहीं से विदेशों को जाता है। रबर की तरह गट्टापार्चा के वन भी लगाये गये हैं। आरम्भ में भूल से इस वृक्ष को नष्ट कर डाला गया था किन्तु अब तो इसको सावधानी से लगाया गया है।

(५) तारपीन का तेल—पाइन के वृक्ष से तारपीन का तेल (Turpentine oil) तथा बिरोजा (Resin) निकाला जाता है। पाइन वृक्षों को काट कर उनसे गाढ़ा-गाढ़ा गोंद इकट्ठा किया जाता है। इसमें से तारपीन का तेल निकाल लिया जाता है और बिरोजा बच रहता है। इस तेल का उपयोग पेन्ट, वार्निश तथा साबुन बनाने में किया जाता है। तारपीन का तेल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फिनलैण्ड, रूस, फ्रांस और भारत में बनाया जाता है। रूस और स्वीडन में इन्हीं वृक्षों की लकड़ी से वुडटार (Wood tar) बनाया जाता है।

(६) कपूर (Camphor)—कपूर के वृक्ष से कपूर तैयार किया जाता है। आरम्भ में वृक्ष को काट कर उसकी लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े करके उनको पानी के साथ गरम करके कपूर निकाला जाता था। किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि पत्तियों तथा डालों में तनों से भी अधिक कपूर प्राप्त हो सकता है। इस कारण अब वृक्षों

काटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सबसे अधिक कपूर फारमूसा से बाहर भेजा जाता है। चीन का फूकीन प्रान्त, जापान के शिकाकू तथा क्यूशू द्वीप, कोचीन, भारत के और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के सुमात्रा, जावा और बोर्नियो से भी कपूर बाहर भेजा जाता है।

(७) गोंद (Gum)—उष्ण कटिबन्ध के वनों में बहुत तरह के गोंद मिलते हैं। एक प्रकार का गोंद वह होता है जो पानी में घुल जाता है तथा यह चिपकाने के काम आता है। यह गोंद भारत, अफ्रीका, सोमालीलैण्ड और आस्ट्रेलिया से बाहर भेजा जाता है। दूसरे प्रकार का गोंद जिसे कोपाल (Copal) कहते हैं पानी में नहीं घुलता है, अतएव उसका उपयोग वार्निश में होता है। न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका तथा मलाया प्रायद्वीप से यह कोपाल गोंद बहुत राशि में बाहर जाता है।

(८) चमड़ा कमाने के पदार्थ (Tanning Material)—वनों से चमड़ा कमाने के लिये छाल तथा फल भी मिलते हैं। हैमलाक तथा ओक की छाल इस काम में बहुत आती है। स्प्रूस और लार्च का भी उपयोग चमड़ा कमाने में होता है। गैम्बियर जो एक झाड़ी की पत्तियों से निकाला जाता है चमड़ा कमाने के काम में बहुत आता है। यह झाड़ी मलाया, जावा और सुमात्रा में होती है। भारत के वनों में बहेडा नामक वृक्ष का फल भी चमड़ा कमाने के उपयोग में आता है। सिसीलियन झाड़ी (Sicilian Shrub) तथा उसकी तरह के अन्य पौधों की टहनियों से भी एक पदार्थ सुमच (Sumach) बनाया जाता है जिसका उपयोग चमड़ा कमाने में होता है।

(९) कार्क (Cork)—कार्क एक प्रकार के ओक वृक्ष की बाहरी मोटी छाल को कहते हैं। कार्क का वृक्ष पुर्तगाल, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस तथा अफ्रीका के उत्तरी पहाड़ी प्रदेश, मोरक्को, ट्यूनिस और अलजीरिया में पाया जाता है। इन्हीं देशों से कार्क बाहर भेजा जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी इस वृक्ष को लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

वन-सम्बन्धी धन्धों (Forestry) की दृष्टि से शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zones) के वन अधिक महत्व पूर्ण हैं। इसके कई कारण हैं—

(१) इन वनों में नरम तथा कम कठोर लकड़ी मिलती है जो व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

(२) इन वनों में झाड़ी तथा छोटे-छोटे पौधे और लतायें नहीं होतीं इस कारण लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों को वनों से लाने में कठिनाई नहीं होती। नरम लकड़ी के वन अधिकतर शीतप्रधान देशों में हैं। अस्तु जाड़े में जब बर्फ गिरकर जम जाती है तो लकड़ी को वनों से लाने के लिये सुगम मार्ग बन जाता है। घोड़ों के द्वारा वनों मे इकट्ठी की हुई लकड़ी जमी हुई नदियों तक ले जाई जाती है। जब नदियाँ पिघलती हैं तो लकड़ियाँ नीचे पहुँच जाती हैं और चीरने के कारखानों

८. रबर उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र कौन-कौन से हैं ? अमेजन बेसिन रबर उत्पादन में क्यों पिछड़ रहा है ? भारत में पौध वाली रबर का भविष्य क्या है ? (आगरा, एम. ए. १९४९)

९. 'यद्यपि उष्ण कटिबन्धीय वनों में लकड़ियों के भंडार शीतोष्ण कटिबन्धीय भागों की अपेक्षा अधिक हैं किन्तु उनका उपयोग नहीं हुआ है।' इसके क्या कारण हैं ?

(आगरा, एम. ए. १९५०, ५२)

अध्याय १५

पशु पालन का धंधा

(Pastoral Farming)

पशु मनुष्य के लिये इतने अधिक मूल्यवान हैं कि उनसे मनुष्य को भोजन, वस्त्र तथा औद्योगिक कच्चा माल मिलता है, वे खेती और यातायात में काम आते हैं। फिर भी आश्चर्य की बात है कि मानव ने बहुत थोड़े पशुओं को पालतू बनाया है। पृथ्वी पर ३५०० प्रकार के पशुओं में से केवल १७ पशु, १३००० प्रकार की चिड़ियों में से केवल ५ चिड़ियाँ और ४,७०,००० कीड़ों में से केवल २ प्रकार के कीड़े पालतू बनाये गये हैं। निम्न तालिका में पालतू पशुओं की संख्या बताई गई है[1]—

पृथ्वी पर पालतू पशुओं की संख्या (१९५२)

भेड़	६८ करोड़	ऊँट	६० लाख
गाय-बैल	७१ ,,	रेंडियर	२० ,,
सूअर	२६ ,,	लामा और अल्पाका	२० ,,
बकरी	११ ,,	मुर्गियाँ	१ अरब ६० करोड़
घोड़े	६ ,,	बत्तकें	११ करोड़
गदहे	३·५ ,,	हंस	७ करोड़ ३० लाख
खच्चर	१·५ ,,	टर्की	२ करोड़ ३० लाख

संसार में असंख्य पशु-पक्षी पाये जाते हैं परन्तु मनुष्य ने केवल थोड़े से पशु-पक्षियों को पालने के लिये चुना है। वह उन्हीं पशुओं को पाल सकता है जिनमें नीचे लिखी विशेषतायें हों—

(१) पशु घास पर जीवित रह सके क्योंकि घास सर्वत्र मिलती है। (२) बहुत अधिक खतरनाक न हो. और उसकी देखभाल आसानी से की जा सके (शेरनी का दूध अच्छा भी हो तो उसको पाला नहीं जा सकता)। (३) वह झुण्ड में रहना पसन्द करे जिससे उसको पालने में कम व्यय और सुविधा हो। (४) उसमें यह गुण होना चाहिये कि उसकी बढ़वार बहुत जल्दी हो अर्थात् बच्चे जल्दी-जल्दी और अधिक संख्या में उत्पन्न हों और शीघ्र बढ़ जावें।

---

१. U. N. O द्वारा प्रकाशित: World. Facts and Figures (May, 1953), p. 10

पशुओं से प्राप्त वस्तुयें गौण हैं परन्तु वे छोटे-छोटे उद्योगों में प्रयोग की जाती हैं। ये वस्तुयें हड्डी, सींग, खाल, चर्बी, खुर, समूर आदि हैं। हड्डियों से बटन, कंघे और शृङ्गार की वस्तुयें बनती हैं। चमड़े व खाल से मनुष्य के काम की बहुत सी चीजे बनती हैं। जूतों के अतिरिक्त चमड़े के थैले, सन्दूक, सूटकेस, घोड़ों की जीन, लगाम इत्यादि साज, कुर्सियाँ, मशीनों के पट्टे, मोटर की सीटें, बन्दूक के केस तथा अन्य बहुत-सी आवश्यक चीजें बनाई जाती हैं। इसलिये चमड़े की मांग बराबर बढ़ती ही जा रही है। खाल और चमड़ा अधिकतर गाय, भैंस, घोड़े, भेड़ और बकरियों से प्राप्त होता है। अर्जेन्टाइना, युरूग्वे, मध्य अमरीका, रूस, कनाडा और दक्षिणी अफ्रीका से दुनियाँ में खालों की मांग की पूर्ति होती है। जर्मनी और संयुक्त राष्ट्र में चमड़ा साफ करने और कमाने का काम होता है। ये चमड़ा गाय, बैल, भैंस की खाल से तैयार होता है। भारत, चीन, स्पेन और ब्राज़ील में बकरी की खालें मिलती हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये गौण वस्तुयें उन देशों में अधिकतर होती हैं जहाँ मांस का व्यवसाय होता है। ठण्डे शीतोष्ण प्रदेशों में बड़े बाल वाली लोमड़ियों, गिल्हरियों और ऊदबिलावों से समूर या फरदार खालें प्राप्त होती हैं।

सच तो यह है कि पशु हमारे बहुत काम आते हैं। वे बोझा ढोते हैं और गाड़ी खींचते हैं। दलदली भूमि पर हाथी, पहाड़ी भूमि पर घोड़ा और याक तथा मरुस्थली भूमि पर ऊँट मनुष्य का बोझा ढोता है और सवारी के काम भी आता है। वर्तमान समय में यांत्रिक साधनों की उन्नति के साथ-साथ पशुओं से बोझा ढोने का काम कम लिया जाता है फिर भी बहुत से प्रदेशों में यातायात व गमनागमन के लिये मनुष्य का एक मात्र सहारा पशु ही है। ध्रुव प्रदेशों में रेनडियर व कुत्ते और कैरिबो ही बोझा ढोने के अतिरिक्त गमनागमन के एक मात्र साधन हैं। इसी प्रकार मरुस्थलों, भूमध्य-रेखीय घने जंगलों और पहाड़ी प्रदेशों में मनुष्य का एक मात्र सहारा पशु ही है। भारतवर्ष और अन्य एशियाई कृषि प्रधान देशों में जुताई से लेकर सभी काम पशुओं से ही लिया जाता है। यूरोप और अमेरिका में वैज्ञानिक रीति से खेती की जाती है परन्तु फिर भी घोड़े खेती का एक विशेष सहारा है।

संसार के मुख्य जानवरों को दो वर्गों में रक्खा जा सकता है:—(१) चौपाये— गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर और मुर्गी जो कि मनुष्य के भोजन के साधन हैं, और (२) लद्दू जानवर—घोड़े, खच्चर, गधे, बैल, रेंडियर, याक, लामा, ऊँट और हाथी जो मनुष्यों की सवारी और बोझा लादने के काम में लाये जाते हैं।

पशु पालने के लिये आवश्यक बातें—

(१) सम जलवायु वाले स्थानों में जहाँ तापक्रम ६०° से ८०° फा० तक और वर्षा २०" से ३०" तक होती हो पशुपालन का व्यवसाय सुगमता से चल सकता है क्योंकि ऐसे स्थानों में पशुओं के लिये रहने के मकानों की आवश्यकता

नहीं होती। अतः स्टेप्स और रूमसागरीय समशीतोष्ण प्रदेश इस व्यवसाय के लिये आदर्श क्षेत्र है।

(२) पशुओं को चराने के लिये विस्तृत चरागाह होने चाहिये ताकि सस्ता चारा प्राप्त हो सके। इसी से उत्तरी अमेरिका के 'प्रेरीज', यूरेशिया के 'स्टेप', अफ्रीका के 'वेल्ड' तथा 'सवाना', दक्षिणी अमेरिका के 'लानोस', 'पेम्पास' तथा 'केम्पास' और आस्ट्रेलिया के 'डारलिंग-डाउन्स' पशु चराने के लिये विश्व विख्यात हैं।

(३) स्वास्थ्यप्रद वातावरण हो जिससे पशुओं में रोग न फैले। उष्ण प्रदेशों बहुधा अनेक जहरीले कीड़े होते हैं जिनके काटने से पशु रोगी हो जाते हैं; उदाहरणार्थ ब्राजील की बरनी मक्खी (Berny Fly) या अफ्रीका की टीस-टीसी मक्खी जिनके काटने से नींद की बीमारी लग जाती है।

(४) पीने को स्वच्छ पानी उपलब्ध हो।

चौपाये (Cattle)—'चौपाया' शब्द शीतोष्ण प्रदेशों के मैदानों में रहने वाले जानवरों के लिये प्रयुक्त किया जाता है किन्तु उनका सबसे अच्छा विकास उष्ण और अर्द्ध-उष्ण भागों के सूखे प्रदेशों में माना गया है जैसे भारत का पश्चिमी-भाग, सूडान और पूर्वी अफ्रीका। चौपाये साधारणतया या तो दुग्ध पदार्थों

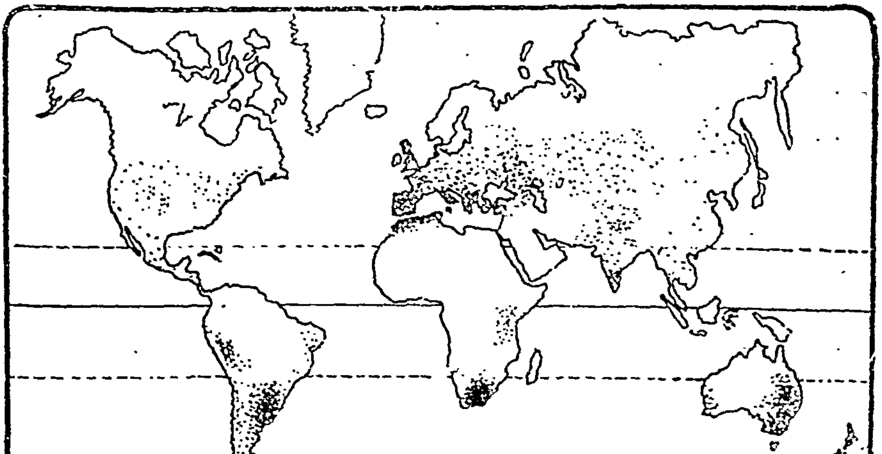

चित्र १०२—विश्व में चौपायों का वितरण

(Dairy Products) के लिये या गोश्त के लिये पाले जाते हैं। दूध देने वाले जानवर घनी आबादी वाले केन्द्रों के पास ही पाले जाते हैं क्योंकि दुग्ध-पदार्थ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। यातायात के आधुनिक साधनों की सुविधा और शीत भंडारों के प्रचलित होने के कारण दुग्ध-

पदार्थ अब खपत के केन्द्रों से दूरस्थ स्थानों में भी पैदा किये जाने लगे हैं। किन्तु गोश्त देने वाले जानवर नये देशों में खुले हुए घास के मैदानों में पाले जाते हैं क्योंकि ये मैदान खेती के लिये उपयुक्त नहीं होते। एशिया में तो अधिकांश जानवर बोझा ढोने के लिये ही पाले जाते हैं जबकि इङ्गलैण्ड, हालैण्ड, डेनमार्क, नार्वे, संयुक्त राष्ट्र के पूर्वी भागों और न्यूजीलैण्ड के चौपाये दूध देने के लिये और कनाडा, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया आदि देशों में गोश्त के लिये ही मुख्यतः पाले जाते हैं। नीचे की तालिका में पशुओं का वितरण दिया गया है :—

चौपायों का वितरण (१९५२) (दस लाख में)

देश	१९३६–४०	१९५२	देश	१९३६–४०	१९५२
भारत	—	१५५	जर्मनी	१६·१	१४·६
सं० रा० अमेरिका	६६·७	८४·२	फ्रांस	१५·५	१६·२
ब्राजील	४०·७	५३·०	आस्ट्रेलिया	१३·३	१४·८
रूस	५९·८	४६·८	द० अफ्रीका	११·६	११·५
अर्जेनटाइना	३३·८	४१·३	मैक्सिको	११·७	१४·५
यूरेग्वे	६४·३	८·१			
चीन	२४·०	२२·८	योग (विश्व)	७३३·४	१०१९·०

दुग्ध उत्पादन की अवस्थायें—(१) दुग्ध-व्यवसाय संसार के शीतल शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में ही होता है। साधारणतया दूध देने वाले पशु शीतल शीतोष्ण कटिबन्धीय भूमियों की आर्द्र जलवायु में अधिक हृष्ट-पुष्ट रहते हैं क्योंकि वहाँ की जलवायु घास उगने में अधिक सहायक होती है।

(२) दुग्ध उत्पादन के लिये उत्तम जलवायु वह है जिसमें शीतकाल में तापक्रम हिमांक बिन्दु से नीचे नहीं जाता तथा ग्रीष्म-कालीन तापक्रम ८०° फा० से ऊँचा नहीं होता—औसत तौर पर यह ६५° फा० होना चाहिये। इस प्रदेश के न्यून तापक्रम दुग्ध तथा उससे बनी अन्य वस्तुओं को बहुत समय तक बिगड़ने नहीं देते।[1]

(३) दुग्ध का धन्धा सामुद्रिक जलवायु में सर्वाधिक उन्नत है क्योंकि वहाँ ठंड अधिक नहीं पड़ती है और इसीलिये पशुओं की ठण्डक से रक्षा करने में व्यय नहीं करना पड़ता है। वहाँ के पशु वर्ष भर खुले मैदान में रहते हैं, केवल उनकी रक्षा के निमित्त घर बनाने पड़ते हैं।

(४) पशुओं की देखभाल करने को अधिक श्रम की आवश्यकता पड़ती है अतः दुग्ध-उत्पादन का धन्धा वहीं किया जाता है जहाँ जनसंख्या अधिक होती है। घने बसे देशों में यह गहरी खेती के साथ किया जाता है।

१. E. Huntington : *Principles of Economic Geography*; p. 281

(५) हरे घास के अतिरिक्त पशुओं के लिये चारा, भूसा, अनाज आदि भी विस्तृत मात्रा में अधिक पैदा किया जाना चाहिये।

दुग्ध उत्पादन—दुग्ध आमतौर पर तीन रूप में मिलता है—दूध (ताजा या पाउडर) मक्खन और पनीर। ताजा दूध अधिकतर आबादी के बड़े केन्द्रों पर ही मिलता है। गाढ़ा दूध (जो कि ताजे दूध को उबाल कर रबड़ी की भाँति गाढ़ा किया जाता है और बाद में कुछ चीनी भी मिला दी जाती है) आस्ट्रेलिया, हालैण्ड, बेलजियम, फ्रांस और नार्वे से प्राप्त होता है। दूध पाउडर के रूप में भी आता है।

मक्खन अधिकतर डेनमार्क, फ्रांस, हालैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और अर्जेन्टाइना से मिलता है।

पनीर अधजमी दही की जमी हुई शक्ल होती है जिसके सबसे बड़े निर्यात करने वाले देश कनाडा, न्यूजीलैण्ड, हालैण्ड, इटली और स्वीटजरलैण्ड हैं। दुग्ध पदार्थों के अलग-अलग केन्द्र दूध के किसी एक पदार्थ में ही विशेषता प्राप्त करते हैं।

विश्व में दुग्ध और मक्खन का उत्पादन (१९५२)
(हजार मैट्रिक टनों में)

देश	दुग्ध	मक्खन
संयुक्त-राष्ट्र	५२,६००	५४७
फ्रांस	१५,५००	२८०
प० जर्मनी	१५,८००	२७०
ब्रिटेन	१०,१००	—
कनाडा	७,६००	१२७
आस्ट्रेलिया	४,९२७	१३३
हालैण्ड	५,५९२	७४
डैनमार्क	४,९९८	१५३
स्वीड़ेन	४,५६८	—
न्यूजीलैण्ड	५,०७४	—
इटली	६,१५४	—

है। फिर भी सं० राष्ट्र अमेरिका पनीर बाहर से मँगाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में नगरों की वृद्धि हो जाने से शहरी जनता में दूध की माँग अधिक बढ़ गई है। कुल दूध की उत्पत्ति का ४५% दूध द्रव के रूप में, ३५% मक्खन में, ५% सूखे दूध के रूप में, ६% पनीर के रूप में और ३% मलाई के वर्फ के रूप में प्रयुक्त होता है। कुछ दूध जानवरों को पिलाया जाता है और कुछ नष्ट हो जाता है।

चित्र १०४—सं०रा० अमेरिका में चौपायों को पालना

यूरोपीय देश

उत्तर-पश्चिमी यूरोप में दूध के धन्धे के लिये बहुत ही अनुकूल स्थिति है। वहाँ की मिट्टी अच्छी है। जलवायु नम और ठण्डी है जिसमें घास खूब उत्पन्न होती है और जनसंख्या भी घनी है। दूध के धन्धे के लिये यह आदर्श स्थिति है। उत्तर-पश्चिमी यूरोप में दूध प्रदेश पश्चिमी फ्रांस, हालैंड, डेनमार्क, स्वीडन और रूस तक फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त आयरलैंड भी बहुत अधिक मक्खन बनाता है। उत्तरी फ्रांस में बहुत अच्छा मक्खन तैयार होता है जो लन्दन और पैरिस को जाता है। फ्रांस में लगभग १५० लाख पशु हैं जिनके दूध से पोर्ट-सेलूट, ग्रूमीर तथा कैमबर्ट नामक उत्तम प्रकार का मक्खन बनाया जाता है। इङ्गलिश चैनल के द्वीपों का मुख्य धन्धा मक्खन बनाना है। हालैण्ड तो बहुत प्राचीन काल से दूध के पशुओं के लिये प्रसिद्ध है। हालैण्ड के बहुत नम मैदान जिन पर बहुत अच्छी मिट्टी बिछी हुई है

खेती के योग्य नहीं हैं किन्तु उन पर बहुत अच्छा चारा और घास उत्पन्न होती है। इन्हीं उपजाऊ घास के मैदानों पर डच किसान अपनी गायों को चराता है। यहाँ 'हॉल्स्टीन' और 'फ्रीजीयन' जाति की उत्तम गायों से बहुत अधिक दूध प्राप्त होता है।

डेनमार्क मक्खन बनाने में संसार में सर्वश्रेष्ठ है। डैनिश मक्खन की प्रसिद्धि संसारव्यापी है ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ गृहस्थों के भोजन गृह में डेनमार्क का मक्खन काम में न लाया जाता हो। सच तो यह है कि समस्त डेनमार्क एक विशाल गऊशाला है। दूध उत्पन्न करना डेनमार्क के किसानों का मुख्य धन्धा है। मक्खन के धन्धे की आशातीत उन्नति होने के कारण डेनमार्क में अधिकांश भूमि चारा उत्पन्न करने के काम आती है और डेनमार्क अनाज बाहर से मँगाता है। डेनमार्क में मक्खन बनाने के एक हजार से अधिक कारखाने हैं। डेनमार्क की दुग्धशालाओं की विशेष महत्ता निम्नाङ्कित कारणों से है :—

(१) यहाँ न तो कोयला और लोहा पाया जाता है और न ही जलशक्ति तथा कच्चा सामान ही उत्पन्न होता है।

(२) यहाँ की जलवायु घास इत्यादि की उत्पत्ति के लिए विशेष रूप से अनुकूल है।

(३) यहाँ के अधिकांश खेत बहुत छोटे हैं जिससे प्रत्येक कुटुम्ब को छोटे-छोटे खेतों से ही अधिक मात्रा में उपज प्राप्त करना अनिवार्य होता है।

(४) यहाँ कृषि-योग्य भूमि को खेती की अपेक्षा पशुओं के चारा उगाने के उपयोग में लाने की पूर्ण व्यवस्था करली गई है। इस प्रकार घास के मैदानों के उतने ही क्षेत्रफल में अधिक पशुओं का निर्वाह हो सकता है।

(५) यहाँ की दुग्धशालाओं में से ८८% का संचालन तथा ६२% दूध का काम सहकारी समितियों द्वारा ही होता है। यही समितियाँ अपने सदस्यों की वस्तुओं को उच्चतम मूल्य पर श्रेष्ठतम श्रेणी की वस्तुएँ बिकवाती हैं। इस समय सारे देश में लगभग ६ हजार समितियाँ कार्य कर रही हैं। ८०% दूध का मक्खन तथा १०% का पनीर और गाढ़ा दूध बनाया जाता है तथा शेष दूध घरेलू उपभोग में लाया जाता है। नीचे की तालिका में डेनमार्क में दुग्धशालाओं की उपज की वस्तुओं का लेखा बताया गया है:—

वर्ष	दूध (१० लाख गैलन)	मक्खन (००० हंडरवेट)	पनीर (००० हंडरवेट)
१९३५-३९	१,११८	३,५८०	६५०
१९४६	९८४	२,७८०	१,०२०
१९४९	१,०५६	३,०५१	१,२०७
१९५२	५,३८८ (ह. मै. ट.)	१७३ (ह. मै. ट.)	८७ (ह. मै. ट.)

इसके अतिरिक्त स्वीडन, उत्तर-पश्चिम जर्मनी, स्वीटजरलैण्ड तथा रूस में भी दूध और मक्खन का धन्धा महत्वपूर्ण है। स्वीटजरलैण्ड में पहाड़ी ढालों के घास पर बहुत गायें पाली जाती हैं जिनसे दूध, मक्खन, पनीर, सूखा दूध और दूध की चाकलेट प्राप्त कर विश्व के देशों को निर्यात किया जाता है।

यूरोप तथा अमेरिका में दूध के पशु की नस्ल को बहुत अच्छा बनाने का प्रयत्न किया गया है। हालैण्ड और डेनमार्क में १६ सेर से कम प्रतिदिन दूध देने वाली गाय को आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं समझा जाता है। वहाँ की गायों की औसत १६ सेर से १८ सेर प्रतिदिन और किसी-किसी जाति की गाय का प्रतिदिन का औसत २० सेर भी होता है। उसकी तुलना में भारत की गाय के दूध का औसत एक सेर प्रतिदिन है। इसीलिए भारतीय गायों को 'Tea Cup Cows' कहते हैं।

आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड

आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड मक्खन और पनीर मँगाने वाले यूरोपीय देशों से बहुत दूर है परन्तु फिर भी शीत भण्डार रीति के आविष्कार से घी-दूध का धन्धा पनप उठा है। आस्ट्रेलिया का पूर्वीय तथा दक्षिणी समुद्र-तट, जो उत्तरी ब्रिस्बेन से लगाकर साउथ वेल्स होता हुआ विक्टोरिया तक है, इसके लिए प्रसिद्ध है। यहाँ ४०" तक वर्षा हो जाती है। यहाँ पशुओं के लिये चारा और भूसा बहुत उत्पन्न किया जाता है। यहाँ मक्खन तथा पनीर बनाने के कारखाने सर्वत्र पशु-पालन क्षेत्र में बिखरे हैं। यहाँ अच्छी जाति का मक्खन बनाया जाने का मुख्य कारण चमकीली धूप और खुली वायु में वर्ष भर ही गायों को चराने के लिये उत्तम घास मिल जाना है। यहाँ दूध देने वाली गायों की संख्या लगभग ५० लाख है। इनसे १९५०-५१ में लगभग १६५,००० टन मक्खन और ४४,५०० टन पनीर प्राप्त हुआ। तथा १९५५-५६ में १,४०५० लाख गैलन दूध प्राप्त हुआ। इसमें से ६८·८% मक्खन बनाने में, ५·९% पनीर और ५·२% सुखाने में तथा २०% द्रव-दूध के रूप में काम में लिया गया।

नीचे की तालिका में आस्ट्रेलिया में द्रव दूध, मक्खन, पनीर और तैयार किये गए दूध के उत्पादन सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किए गये हैं—

वर्ष	द्रव दूध (दस लाख टन)	मक्खन (००० टन)	पनीर (००० टन)
१९३८-३९ के पाँच वर्षों का औसत	१,१५०	१९५	२२
१९४७-४८	१,१७३	१६२	४१
१९४९-५०	१,२५४	१७३	४५
१९५०-५१	१,२१०	१६३	४४
१९५५-५६	१४०५०(ला० गैलन)	२०८	३८

न्यूजीलैण्ड विशेषकर दूध के धन्धे में अधिक उन्नति कर गया है। न्यूजीलैण्ड का अधिकतर प्रदेश पहाड़ी होने के कारण वहाँ खेती अधिक नहीं हो सकती। अतएव न्यूजीलैण्ड के लिए दूध के धन्धे की उन्नति करना आवश्यक है। न्यूजीलैण्ड में पानी बहुत बरसता है। इस कारण वहाँ अच्छी घास की बहुतायत है। न्यूजीलैण्ड सरकार ने मक्खन के धन्धे को बहुत प्रोत्साहन दिया है। इस कारण न्यूजीलैण्ड का मक्खन ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय देशों में बहुत बिकता है। न्यूजीलैण्ड में मुख्य दुग्ध उत्पादक क्षेत्र तरांकी के मैदान तथा थेम्स और मध्यवर्ती वोकोटो के मैदान और आकलैंड प्रायद्वीप में फैला है। यहाँ गायों को मशीनों द्वारा ही दुहा जाता है। अतः २-३ घण्टे में दो या तीन व्यक्तियों के सहयोग से ही १०० गायें दुह ली जाती हैं। दूध को मशीनों द्वारा ही शीशियों में बन्द कर दिया जाता है। अवशेष दूध सूअर तथा बछड़ों को पिला दिया जाता है। उत्तम जलवायु के कारण यहाँ वर्ष भर ही पशु खुले में चरते हैं। अतः उनके लिये बाड़े आदि बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। न्यूजीलैण्ड ने मक्खन बनाने में इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि डैनमार्क के बाद मक्खन बनाने वाले देशों में उसका सबसे ऊँचा स्थान है। केवल मक्खन ही नहीं न्यूजीलैण्ड में पनीर भी बहुत तैयार होता है। प्रति वर्ष न्यूजीलैंड से अधिकाधिक मक्खन और पनीर बाहर भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त जमा हुआ दूध भी न्यूजीलैण्ड से बाहर भेजा जाता है। 'Glaxo' न्यूजीलैण्ड की ही उपज है।

नीचे की तालिका में न्यूजीलैण्ड में दूध की वस्तुओं का उत्पादन बताया गया है।[1]

वस्तुएँ	१९४०-४१ (००० टन)	९४९-५० (००० टन)	१९५०-५१ (००० टन)
मक्खन	१६५·१	१६८·८	१८१·७
पनीर	१२२·४	१०५·४	१०८·४
जमाया हुआ दूध	८·६	२३·९	—
सूखे दूध का चूर्ण	९·५	२७·३	३३·६
कैसीन	—	५·३	६·६

भारतवर्ष

भारत की प्रमुख पशु-पट्टी भारतीय मरुस्थल के चारों ओर—जहाँ वर्षा की मात्रा में अपेक्षाकृत कमी होती है—फैली हुई है। भारत में पशु पालन के ये क्षेत्र अन्य देशों की स्थिति के बिल्कुल समान ही हैं। यहाँ पशु-पालन घास के उन मैदानों में होता है जो या तो मरुस्थलों की बाहरी सीमा पर स्थित हैं अथवा उन शुष्क भागों में है जहाँ प्रतिकूल प्राकृतिक रचना के कारण कृषि का विकास कठिन है। भारत के मुख्य पशु-पालन क्षेत्र पंजाब, राजस्थान, सौराष्ट्र, मध्य प्रदेश,

१. Bank of New South Wales : Review (No. 7, 1951), p. 11.

इंग्लैण्ड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, पूर्वी द्वीप समूह, क्यूबा, स्विटजरलैंड, दक्षिणी अफ्रीका और जापान हैं।

प्रति वर्ष ६०,०००,००० पौंड के मक्खन का व्यापार होता है। मक्खन निर्यात करने वाले प्रमुख देश नीदरलैण्डस्, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, आयरलैण्ड, अर्जेन्टाइना रूस और इटली हैं। मुख्य आयातकर्ता अमरीकी प्रदेश, पश्चिमी यूरोप, इंगलैंड तथा जर्मनी हैं।

पनीर मुख्यतः नीदरलैंडस्, न्यूजीलैंड, कनाडा, फ्रांस, डेनमार्क और स्विटजरलैंड से निर्यात किया जाता है और जर्मनी, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और इङ्गलैंड मुख्य आयात करने वाले देश हैं।

मक्खन और पनीर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (१९५२)[1]

(१० लाख पौण्ड में)

निर्यातक देश			आयातक देश		
देश	मक्खन	पनीर	देश	मक्खन	पनीर
नार्वे	४	—	बेलजियम	५६	७१
आस्ट्रेलिया	७३	५७	फ्रांस	६३	३७
न्यूजीलैण्ड	३६०	२०६	जर्मनी	२०	६०
कनाडा	—	—	इटली	४१	३०
डेनमार्क	२५१	११६	स्विटजरलैंड	१६	—
फिनलैंड	६	२६	ब्रिटेन	५८१	३०७
फ्रांस	—	३६	संयुक्त राष्ट्र	—	४६
नीदरलैंडस्	११०	१७२	कनाडा	—	१२
इटली	—	४४			
स्विटजरलैंड	२१	—			
स्वीडन					

मांस का उद्योग (Meat Industry)

ठण्डे देशों में मांस मनुष्य के भोजन के लिये आवश्यक पदार्थ है। लाभ की अपेक्षा यह आमतौर पर स्वाद के लिये ही खाया जाता है। पश्चिमी देशों में इसकी खपत बहुत अधिक है। इसके विपरीत दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों में इसकी खपत नाममात्र की है।

1. U. S. A. Dept. of Agriculture : Agricultural Statistics, 1953, page 432-36.

संसार में गोश्त वाले चौपायों का वितरण एक सा नहीं है। जापान में, जहाँ कि अधिकतर भूमि पहाड़ी है, आबादी के अनुसार जानवरों की संख्या बेहद कम है। यहाँ आबादी का घनत्व ४०० से ५०० आदमी प्रति वर्गमील है किन्तु ४० आदमियों के बीच मे सिर्फ एक गाय पड़ती है। दक्षिणी गोलार्द्ध के कम बसे हुये देशों में—जैसे न्यूजीलैन्ड, अर्जेन्टाइना और आस्ट्रेलिया—जन-संख्या के अनुसार चौपायों का अनुपात बहुत ऊँचा है। आस्ट्रेलिया में आबादी का घनत्व केवल १·८ मनुष्य प्रतिवर्ग मील है और वहाँ प्रति व्यक्ति २·९ जानवरों का औसत है। न्यूजीलैण्ड में जन-संख्या १५ मनुष्य प्रति वर्ग मील है और प्रति व्यक्ति २·६ जानवर हैं। भारतवर्ष में दो आदमियों के हिस्से में एक जानवर आता है। किन्तु हमारे यहाँ गोश्त के लिये जानवर नहीं पाले जाते हैं बल्कि वह खेतों को जोतने और अधिक से अधिक माल ढोने के काम में लाये जाते हैं। नीचे की तालिका में मांस का उत्पादन दिया गया है—

विश्व के प्रमुख देशों में गोश्त का वितरण एवं उत्पादन[1]

देश	प्रति व्यक्ति उपयोग (पौण्ड में)	उत्पादन (१० लाख पौण्ड में)	आयात (—) निर्यात (+) (१० लाख पौण्ड में)
१. सं. रा. अमेरिका	१४४	२३,०३५	३७३ —
२. कनाडा	१२३	१,९७७	५० +
३. क्यूबा	७९	४१०	४२ —
४. भारत	५	१,६४५	०
५. मैक्सिको	३९	१,१५२	११४ +
६. डेनमार्क	१००	१,१९३	७२३ +
७. फ्रान्स	१०५	४,४५०	९ —
८. स्वीडेन	१००	७०२	५ —
९. ब्रिटेन	९६	२,७७०	२,४०१ —
१०. स्विटजरलैण्ड	९१	४२४	१९ —
११. नीदरलैण्ड	७८	१,०४२	१२३ +
१२. अर्जेन्टाइना	२३०	४,८००	६४० +
१३. ब्राजील	५७	३,१५०	११ +
१४. आस्ट्रेलिया	२०८	२,३०९	५११ +
१५. न्यूजीलैण्ड	२२०	१,२९६	७४३ +

१. Industrial and Commercial Geography, by Russel Smith and Phillips and Smith 1955, page 209.

इंग्लैण्ड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, पूर्वी द्वीप समूह, क्यूबा, स्विटजरलैंड, दक्षिणी अफ्रीका और जापान हैं।

प्रति वर्ष ९०,०००,००० पौंड के मक्खन का व्यापार होता है। मक्खन निर्यात करने वाले प्रमुख देश नीदरलैण्डस्, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, आयरलैण्ड, अर्जेन्टाइना रूस और इटली हैं। मुख्य आयातकर्ता अमरीकी प्रदेश, पश्चिमी यूरोप, इंगलैंड तथा जर्मनी हैं।

पनीर मुख्यतः नीदरलैंडस्, न्यूजीलैंड, कनाडा, फ्रांस, डेनमार्क और स्विटजरलैंड से निर्यात किया जाता है और जर्मनी, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और इङ्गलैंड मुख्य आयात करने वाले देश हैं।

मक्खन और पनीर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (१९५२)[1]

(१० लाख पौण्ड में)

निर्यातक देश			आयातक देश		
देश	मक्खन	पनीर	देश	मक्खन	पनीर
नार्वे	४	—	बेलजियम	५९	७१
आस्ट्रेलिया	७३	५७	फ्रांस	९३	३७
न्यूजीलैण्ड	३६०	२०६	जर्मनी	२०	९०
कनाडा	—	—	इटली	४१	३०
डेनमार्क	२५१	११९	स्विटजरलैंड	१६	—
फिनलैंड	९	२९	ब्रिटेन	५८१	३०७
फ्रांस	—	३९	संयुक्त राष्ट्र	—	४९
नीदरलैंडस्	११०	१७२	कनाडा	—	१२
इटली	—	४८			
स्विटजरलैंड	२१	—			
स्वीडन					

मांस का उद्योग (Meat Industry)

ठण्डे देशों में मांस मनुष्य के भोजन के लिये आवश्यक पदार्थ है। लाभ की अपेक्षा यह आमतौर पर स्वाद के लिये ही खाया जाता है। पश्चिमी देशों में इसकी खपत बहुत अधिक है। इसके विपरीत दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों में इसकी खपत नाममात्र की है।

1. U. S. A. Dept. of Agriculture : Agricultural Statistics, 1953, page 432-36.

संसार में गोश्त वाले चौपायों का वितरण एक सा नहीं है। जापान में, जहाँ कि अधिकतर भूमि पहाड़ी है, आबादी के अनुसार जानवरों की संख्या बेहद कम है। यहाँ आबादी का घनत्व ४०० से ५०० आदमी प्रति वर्गमील है किन्तु ४० आदमियों के बीच मे सिर्फ एक गाय पड़ती है। दक्षिणी गोलार्द्ध के कम बसे हुये देशों में—जैसे न्यूजीलैन्ड, अर्जेन्टाइना और आस्ट्रेलिया—जन-संख्या के अनुसार चौपायों का अनुपात बहुत ऊँचा है। आस्ट्रेलिया में आबादी का घनत्व केवल १.८ मनुष्य प्रतिवर्ग मील है और वहाँ प्रति व्यक्ति २.९ जानवरों का औसत है। न्यूजीलैण्ड में जन-संख्या १५ मनुष्य प्रति वर्ग मील है और प्रति व्यक्ति २.६ जानवर हैं। भारतवर्ष में दो आदमियों के हिस्से में एक जानवर आता है। किन्तु हमारे यहाँ गोश्त के लिये जानवर नहीं पाले जाते हैं बल्कि वह खेतों को जोतने और अधिक से अधिक माल ढोने के काम में लाये जाते हैं। नीचे की तालिका में मांस का उत्पादन दिया गया है—

विश्व के प्रमुख देशों में गोश्त का वितरण एवं उत्पादन[1]

देश	प्रति व्यक्ति उपयोग (पौण्ड में)	उत्पादन (१० लाख पौण्ड में)	आयात (—) निर्यात (+) (१० लाख पौण्ड में)
१. सं. रा. अमेरिका	१४४	२३,०३५	३७३ —
२. कनाडा	१२३	१,९७७	५० +
३. क्यूबा	७९	४१०	४२ —
४. भारत	५	१,६४५	०
५. मैक्सिको	३९	१,१५२	११४ +
६. डेनमार्क	१००	१,१९३	७२३ +
७. फ्रान्स	१०५	४,४५०	९ —
८. स्वीडेन	१००	७०२	५ —
९. ब्रिटेन	९६	२,७७०	२,४०१ —
१०. स्विटजरलैण्ड	९१	४२४	१९ —
११. नीदरलैण्ड	७८	१,०४२	१२३ +
१२. अर्जेन्टाइना	२३०	४,८००	६४० +
१३. ब्राजील	५७	३,१५०	११ +
१४. आस्ट्रेलिया	२०८	२,३०९	५११ +
१५. न्यूजीलैण्ड	२२०	१,२९६	७४३ +

१. Industrial and Commercial Geography, by Russel Smith and Phillips and Smith 1955, page 209.

माँस के उद्योग के केन्द्र

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में गाय-बैल के मांस का उद्योग बहुत उन्नतावस्था में है। इस उद्योग का मुख्य केन्द्र शिकागो है। यहाँ शिकागो के पश्चिमी प्रेरीज की पथरीली भूमि में (जो खेती के अनुपयुक्त है) माँस के लिये पशु अधिक पाले जाते हैं। इनको मक्का खिलाई जाती है। अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र ये हैं—सेन्ट-पाल, ओमाहा, सेन्ट लुईस, कैन्सास सिटी, सेन्टजोसेफ, इन्डियानापोलिस, फोर्ट वर्थ, मिलवाकी, डेनवर तथा ओक्लोहामा-सिटी। संयुक्त-राष्ट्र में मांस की खपत है इस कारण वहाँ से विदेशों को अधिक मांस नहीं भेजा जाता। जो कुछ भी मांस यहाँ से बाहर भेजा जाता है वह अधिकतर हवाई द्वीप, पोर्टोरिको तथा अलास्का को जाता है।

दक्षिणी अमेरिका—अर्जेन्टाइना, यूरेग्वे, पैरेग्वे तथा ब्राजील में मांस का धन्धा मुख्य है। यहाँ आरम्भ में पशुपालन इस कारण बढ़ गया कि यहाँ विस्तृत मैदानों पर अत्यन्त पौष्टिक घास उत्पन्न होती थी। यहाँ जाड़ा साधारण होता है। अतः यहाँ वर्ष भर पशुओं को खुले में चराया जा सकता है। इस कारण भी यह धन्धा यहाँ केन्द्रित हो गया। इन घासों के अतिरिक्त अलफाफा घास यहां खेतों पर बहुत अधिक उत्पन्न की जाती है जिसके कारण यहाँ अच्छे चारे की बहुतायत है। अर्जेंटाइना तथा यूरेग्वे की जनसंख्या बहुत कम होने के कारण यहाँ से मांस यूरोप को बहुत अधिक भेजा जाता है। पंपास के मैदान में धूप में सुखाया हुआ (Jerked beef) माँस रायोडी, लाप्लाटा में साज़ो (Tasago) और ब्राज़ील में चार्क (Charque) कहलाता है। यह दूर-दूर के देशों को भेजा जाता है।

आस्ट्रेलिया—आस्ट्रेलिया में यह उद्योग क्वीन्सलैन्ड तथा उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया के अर्ध शुष्क प्रदेशों में केन्द्रित है। आस्ट्रेलिया में जनसंख्या बहुत कम है। इस कारण अधिकांश मांस विदेशों (विशेषकर यूरोप) को भेजा जाता है। मांस जमाकर भेजा जाता है क्योंकि एक तो दूरी बहुत है दूसरे गर्म प्रदेश में से होकर जाता है। न्यूजीलैन्ड से भी बहुत-सा गो-मांस यूरोप भेजा जाता है। १९५०-५१ ई० में आस्ट्रेलिया में ६५२ हजार टन गाय का मांस, २७६ हजार टन भेड़ का मांस और ८५ हजार टन सूअर का माँस उत्पन्न किया गया।

यूरोप—यद्यपि यूरोप में गाय-बैल बहुत हैं किन्तु वहाँ ब्रिटेन, रूस, स्पेन, फ्रान्स, इटली, जर्मनी और आयरलैन्ड के कुछ भागों को छोड़कर इन पशुओं को माँस के लिये नहीं पाला जाता। इनका उपयोग खेती के लिए अथवा दूध के धन्धे के लिये होता है। यद्यपि प्रत्येक यूरोपीय देश में कुछ सीमा तक यह धन्धा होता है परन्तु जनसंख्या बहुत अधिक होने के कारण यहाँ बाहर से बहुत सा माँस मँगवाना पड़ता है।

माँस का व्यापार

अर्जेन्टाइना संसार में सबसे अधिक गोश्त भेजने वाला देश है। इसके बाद न्यूजीलैन्ड, आस्ट्रेलिया, डेनमार्क और संयुक्त राष्ट्र का स्थान है। दक्षिणी

अमेरिका गोश्त के सारे निर्यात का २५ प्रतिशत और बाकी १० प्रतिशत में बहुत से देश शामिल हैं। ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रान्स और इटली मुख्य आयात करने वाले देश हैं। कुल आयात का ६० प्रतिशत यूरोप को आता है जिसमें से ६० प्रतिशत तो अकेला ब्रिटेन मँगा लेता है।

माँस का अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय दोनों प्रकार का व्यापार शीत भण्डार के प्रचलन हो जाने से अधिक उन्नत हो गया है। शीत-भण्डार (रेफ्रीजरेशन) द्वारा मांस दो दशाओं में भेजा जाता है: (i) स्थानीय मांस बर्फ में रख लिया जाता है और मांग होने पर निकाला जाता है, (ii) दूरवर्ती स्थानों को यातायात करने के लिये इसे उत्तमतर रीति से ठंडा किया जाता है। शीत-भण्डार के प्रादुर्भाव ने दूरस्थ देशों (अर्जेन्टाइना, न्यूजीलैन्ड तथा संयुक्त-राष्ट्र) को यूरोप के लिये मांस उत्पन्न करने योग्य बना दिया है। ठन्डा करने के ढंग में बहुत से सुधार किये गये हैं जिससे मांस बिना बिगड़े बाजारों में पहुँच जाय। मांस के व्यापार में ठन्डा करने के दो विशेष ढंग हैं—'जमादेना' (Chill) और 'ठन्डा करना' (freeze)। इनका प्रचलन कुछ समय पूर्व से आरम्भ हुआ है। जमा हुआ मांस लोग अधिक पसन्द नहीं करते क्योंकि वह देखने में अच्छा नहीं लगता। ठन्डे मांस में ये अनभीष्ट बातें नहीं होतीं अतः उसका उपयोग अधिक होता है। ठन्डा करने के लिये तापमान को २८° फा० तक नीचा कर देने की आवश्यकता पड़ती है और जमने में लगभग १५° फा० की। चारों ओर हवा के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये भी १५° फा० तापमान होना चाहिये।

माँस उद्योग के गौण-पदार्थ (By-products Of Meat Industry)

'गौण पदार्थ' उन वस्तुओं को कहते हैं जो मुख्य वस्तुओं के निर्माण के पश्चात् बचे हुए कच्चे माल से (जिसे अब से पूर्व व्यर्थ समझ कर फेंक दिया जाता था) निर्मित की जाती हैं। इस प्रकार की वस्तुएं केवल विशाल पैमाने पर किये गये उत्पादन द्वारा ही निर्मित की जा सकती हैं। मांस उद्योग में निम्नाङ्कित गौण-पदार्थों की प्राप्ति होती है—

(१) पशुओं के रक्त से स्याही, रंग और खाद तैयार किये जाते हैं।

(२) मृतक पशुओं के अवशिष्ट भागों से खाद प्राप्त की जाती है।

(३) सूअर के बालों से ब्रुश तथा पशुओं की हड्डियों से बटन, पिनें, चाकुओं के दस्ते और कंघे आदि बनाये जाते हैं।

(४) पशुओं की खालों से अनेक प्रकार की चमड़े की वस्तुऐं बनाई जाती हैं।

(५) इनकी चर्वी, जिलेटीन, सरेस और सूखा हुआ खून आदि उद्योगों में काम आता है।

भेड़ पालने का उद्योग (Sheep Rearing)

भेड़ें ऊन और गोश्त दोनों के लिये ही पाली जाती हैं। इन दोनों कामों के लिये पाली जाने वाली भेड़ों की किस्म अलग-अलग होती है। भेड़ शीतोष्ण प्रदेश में

अच्छी पनपती है। ऊनवाली भेड़ें अधिकतर ठन्डी, शुष्क और सम तापक्रम वाले प्रदेशों में पाली जाती हैं तथा गोश्त वाली भेड़ें शीतोष्ण प्रदेशों की नम जलवायु में। ३०" से अधिक वर्षा वाले प्रदेश भेड़ों के लिये अनुपयुक्त होते हैं अन्यथा उनको खुर की बीमारी हो जाती है। भेड़ संसार की कम आबादी वाले ऊबड़-खाबड़, शुष्क और चौड़े भागों में ही अधिक पाली जाती हैं।

भेड़ का मांस (Mutton), गाय और बैल के माँस (Beef) तथा सूअर के माँस (Pork) से कम महत्वपूर्ण है। भेड़ के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि जो जाति अच्छी मटन उत्पन्न करती है वह ऊन नहीं पैदा करती और जिसका ऊन अच्छा होता है उसका मांस अच्छा नहीं होता। अब कुछ ऐसी नस्ल उत्पन्न की गई हैं कि जो मांस और ऊन दोनों उत्पन्न करती है। मटन उत्पन्न करने वाले देशों में न्यूजीलैन्ड, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना तथा यूरग्वे मुख्य हैं।

चित्र १०५—आस्ट्रेलिया में भेड़ों की चराई

भेड़ उन प्रदेशों में नहीं पाली जाती जहाँ जनसंख्या घनी है। इसका मुख्य कारण यह है कि (१) भेड़, घोड़ा तथा गाय-बैलों की अपेक्षा अधिक सूखे तथा कम उपजाऊ और बीहड़ प्रदेशों में जीवन निर्वाह कर सकती है। (२) भेड़ इतनी छोटी घास पर रह सकती है जिसको अन्य पशु कुतर भी नहीं सकते। (३) भेड़ पहाड़ों के ढालों पर बड़ी सरलता से चढ़ सकती है। बकरी को छोड़ कर कोई अन्य ऐसा पशु नहीं जो पहाड़ों के ढालों पर इतनी सुविधा से चर सके। (४) भेड़ के लिये चारा ही यथेष्ट होता है, उसे दाने के रूप में अनाज नहीं

खिलाना पड़ता जैसा कि अन्य पशुओं को खिलाना पड़ता है। (५) इसके अतिरिक्त ऊन पशुओं द्वारा उत्पन्न की जाने वाली अन्य वस्तुओं (मांस, दूध, मक्खन इत्यादि) की तुलना में बहुत सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जा सकता है। (६) भेड़ों को पालने में एक बड़ी सुविधा यह है कि बहुत थोड़े आदमी बहुत अधिक संख्या में भेड़ों की देखभाल कर सकते हैं। (७) भेड़ एक ऐसी पशु है जो कठिन परिस्थिति में भी रह सकती है। यही कारण है कि बहुत से द्वीप तथा प्रदेश, जहाँ खेती-बारी तथा दूसरे धन्धों के लिये परिस्थिति अनुकूल नहीं हैं, भेड़ पाल कर ऊन बाहर भेजते हैं। कुछ प्रदेश तो ऐसे हैं कि जहाँ भेड़ें पालने के अतिरिक्त और कोई धन्धा ही नहीं होता। फाकलैन्ड तथा आइसलैन्ड के निवासियों का भेड़ चराना ही एक मात्र धन्धा है।

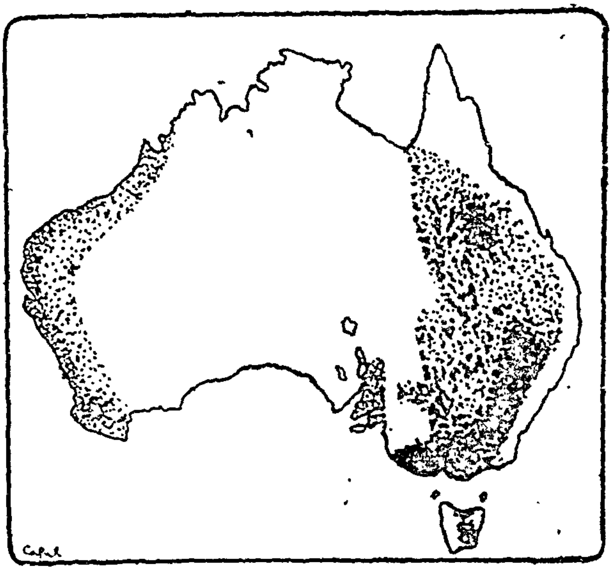

चित्र १०६—आस्ट्रेलिया में भेड़ों के चरागाह

दक्षिणी गोलार्द्ध के शीतोष्ण भागों में भेड़ें सबसे अधिक पाली जाती हैं क्योंकिः(१) ये प्रदेश बड़े बाजारों से दूर हैं जहाँ घनी जनसंख्या भेड़ों के बढ़ने में बाधक नहीं होती। (२) यह भाग अधिकतर अर्द्ध-शुष्क है।

विश्व में भेड़ें पालने वाले देशों में आस्ट्रेलिया (न्यूसाउथ वेल्स, क्वीन्सलेन्ड और विक्टोरिया) प्रमुख हैं। यहाँ की भेड़ों से ऊन और गोश्त दोनों प्राप्त किये जाते हैं। न्यूजीलैन्ड में केन्टरबरी के मैदान में भेड़ें अधिक पाली जाती हैं। इनसे उत्तम गोश्त प्राप्त किया जाता है। अन्य भेड़ें पालने वाले देश अर्जेन्टाइना, यूरेग्वे, दक्षिणी अफ्रीका, बाल्कन प्रायद्वीप के देश, दक्षिणी इटली, सिसली, ब्रिटेन और भारत में काश्मीर और राजस्थान हैं। संयुक्त राष्ट्र में भेड़ें दक्षिणी मिशीगन, मध्यवर्ती और पूर्वी ओहियो के पहाड़ी ढालों पर और मध्यवर्ती पश्चिम में पाई जाती हैं जिनसे ऊन और गोश्त दोनों ही चीजें प्राप्त होती हैं।

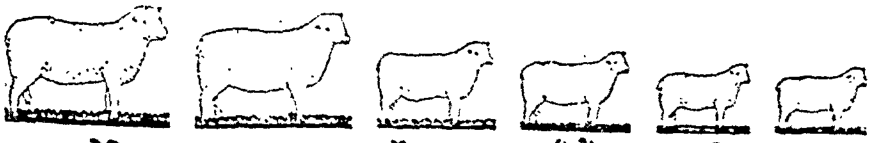

चित्र १०७—प्रमुख देशों में भेड़ों का सापेक्षिक महत्त्व

निम्न तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में भेड़ों की संख्या बताई गई है :—

विश्व में भेड़ों की संख्या [1]

वर्ष	आस्ट्रेलिया	न्यूजीलैन्ड	दक्षिणी अफ्रीका	सं० रा० अमेरिका	अर्जेन्टाइना	यूरेग्वे	रूस	योग विश्व
				१० लाख में				
१९११	१२४	५३	३१	६७	३८	—	५२	६२६
१९३६–४०	११३	३१	४०	५१	४५	१८	६६	७४९
१९४८	१०३	३२	३३	३५	५१	१८	—	६८०
१९४९	१०९	३३	३२	३२	४७	२०	—	६९८
१९५०	११३	३४	३३	३१	४८	२३	८०	७१७
१९५२	११८	३५	४०	५१	४५	२३	८०	६८१
१९५३	१२६	३६	३२	३२	५२	—	९०	८१७

१. आस्ट्रेलियन सरकार द्वारा प्रकाशित व प्रचारित : Australia in Facts & Figures, No. 31. (Sept. 1951) p. 49.; Smith, Phillips and Smith, *Ibid*, p. 20.

सूअर (Pigs)—विभिन्न प्रकार की जलवायु में पाले जा सकते हैं। निम्न तालिका में उनकी संख्या दिखलाई गई है :—

संसार के सूअरों की संख्या (१६५२)

(००० छोड़कर)

संयुक्त राष्ट्र	६३,५८२	फ्रांस	७,२२२
चीन	५६,०००	मैक्सिको	५,०००
रूस	६,०००	कनाडा	५,४००
ब्राजील	२७,८०१		
जर्मनी	२०,०००	संसार की कुल संख्या	२६४,०००

इसका गोश्त और चर्बी दोनों ही काम में आते हैं। सूअर बड़ी सरलता और शीघ्रता से बढ़ते हैं। ये उन सड़ी-गली, रद्दी और गन्दी चीजों पर पाले जाते हैं जो अन्य पालतू जानवरों के काम की नहीं होतीं जैसे मक्का, आलू, गोभी, जौ और मक्खन निकाला दूध।

सूअर विश्व में केवल चार प्रदेशों तक ही सीमित हैं: (१) चीन में यह हर जगह पाये जाते हैं जहाँ ये कूड़ा-कर्कट और विष्ठा पर रहते हैं। इसके अतिरिक्त घनी जनसंख्या होने से एक छोटे खेत पर बहुधा ५-६ चीनी किसान व उनके कुटम्ब निर्भर रहते हैं। सूअरों को पालने से उनसे एक

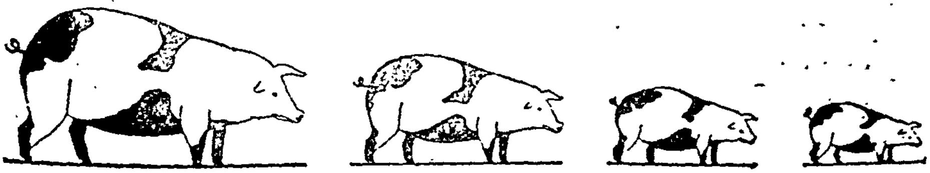

सं० रा० अमेरिका चीन ब्राजील जर्मनी

चित्र १०८—प्रमुख देशों में सुअरों का सापेक्षिक महत्त्व

ही बार में बहुत से बच्चे मिल जाते हैं जो खाद्य समस्या को कुछ सीमा तक पूरी कर देते हैं। (२) संयुक्त राष्ट्र में आयोवा, इलिनयास, इंडियाना, ओहियो, कन्सास, नैब्रास्का आदि राज्यों में मक्का पैदा करने वाले क्षेत्रों में बहुत पाले जाते हैं। शिकागो, कन्सास सिटी, ओहियो और मिलवाकी सुअर के मांस की बड़ी मंडियाँ है। यहाँ इनको मक्का खिलाकर खूब मोटा किया जाता है और फिर चर्बी बढ़ जाने पर उन्हें काट कर विश्व के उत्पादन का ५० % सूअर का मांस प्राप्त किया जाता है। (३) यूरोप में फ्रांस, रूस, डेनमार्क, हालैण्ड, बेलजियम और पश्चिमी जर्मनी में जहाँ आलू और मक्खन निकला दूध मिल जाता है। (४) ब्राजील और अर्जेन्टाइना में। धार्मिक कारणों से सूअर एशिया और अफ्रीका के मुसलमानी देशों में बिल्कुल नहीं पाले जाते। अर्जेन्टाइना, डेनमार्क, हालैण्ड, कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और आयरलैण्ड सूअर के गोश्त और चीन तथा रूस सुअर के बालों के निर्यात करने वाले महत्वपूर्ण देश हैं।

मुर्गी पालना (Poultry Farming)

मुर्गी पालने का काम विश्वव्यापक और बहुत विस्तृत है। इसके अन्तर्गत मुर्गी, बतक, हंस आदि पाले जाते हैं। ये सभी विभिन्न जलवायु और भोजनों पर पाली जा सकती है। मांस और अण्डे के लिये मुर्गियाँ रूस, डेनमार्क, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में पाली जाती हैं। यह घर का कूड़ा-कर्कट खाकर ही पल जाती हैं। मुर्गियाँ विशेषकर सं० रा० अमेरिका, यूरोप और पूर्वी एशिया में पाली जाती हैं। यह कार्य बहुधा मिश्रित खेती के साथ-साथ किया जाता है। अंडे के प्रमुख निर्यात करने वाले देश हालैंड, पौलेंड, डेनमार्क, आयरलैण्ड, बेलजियम, चीन, कनाडा और मिश्र हैं तथा मुख्य आयात करने वाले देश इङ्गलैंड व जर्मनी हैं।

मुर्गियाँ (१९५२)

(लाख में)

देश	संख्या	देश	संख्या
संयुक्त राष्ट्र	४५००	फ्रांस	१४५०
चीन	२६६०	कनाडा	८६०
रूस	२,०८० (१९३९)	डेनमार्क	१९०
जर्मनी	९०० (१९३९)	आयरलैण्ड	१८०
ग्रेट ब्रिटेन	६२०	हालैण्ड	१००
अर्जेनटाइना	९००	बेलजियम	६०
मैक्सिको	३५०	इटली	७६०

मुर्गी पालने का व्यवसाय पुराना होते हुये भी सदियों तक विशेष महत्व न प्राप्त कर सका। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अंडों के व्यापार का कोई उल्लेखनीय स्थान न रहा था क्योंकि यह शीघ्र खराब हो जाने वाली वस्तु है। किन्तु अब तो शीत भण्डार प्रणाली (Cold Storage) की वैज्ञानिक विधि तथा सामान बाहर भेजने के उन्नत तरीकों द्वारा यह बाधा दूर हो गई है। इसलिये अण्डों का व्यापार भी बढ़ रहा है। बहुधा घर-घर या प्रत्येक फार्म पर कुछ थोड़ी-बहुत मुर्गियाँ रखली जाती हैं और आस-पास की सड़ी-गली वस्तुओं से पेट भर कर वे अण्डे देती हैं। किन्तु वास्तव में यह धंधा ऐसा है कि जिसमें बड़ी देखभाल और सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। अब कुछ देशों में इस धन्धे की व्यवस्था अच्छी हो चली है और वैज्ञानिक मुर्गीशालाओं में ३,००,०० तक अण्डों की देख-रेख एक ही आदमी कर सकता है। यंत्रों (Incubators) द्वारा अपेक्षित मात्रा में ताप उत्पन्न कर लिया जाता है और अन्डों से बच्चे बिना मुर्गी की सहायता के निकाले जा सकते हैं। ऐसी दशा में मुर्गी केवल अन्डे देने का कार्य करती है और वर्ष भर में एक मुर्गी से १०० बच्चे तक प्राप्त किये जा सकते हैं।

शहद की मक्खी पालना (Bee Keeping)

यह धन्धा मनुष्य के प्रारम्भिक व्यवसायों में से है। इसमें मनुष्य को अत्यन्त पौष्टिक तथा उपयोगी खाद्य पदार्थ शहद प्राप्त होता है। पहले लोग वनों में जंगली मक्खियों के छत्तों को तोड़ कर शहद तथा मोम इकट्ठा कर लिया करते थे किन्तु अब यह धन्धा वैज्ञानिक विधि द्वारा किया जाता है। शहद की मक्खी को पालने का यह अर्वाचीन व्यवसाय बहुत कुछ मनुष्य के प्रयत्नों पर निर्भर है किन्तु इसके लिये उपयुक्त स्थान वही हो सकते हैं जहाँ मधु से युक्त पुष्पों की प्रचुरता हो।

उष्ण कटिबन्धीय वनों के वृक्षों पर मधु से युक्त पुष्पों की बहुलता रहती है क्योंकि वहाँ पर्याप्त वर्षा तथा ताप के अतिरिक्त उन्मुक्त सूर्य प्रकाश खूब प्राप्त होता है। इन प्रदेशों में सभ्य जातियों के लोगों ने शहद की मक्खी पालने का कार्य बहुत विकसित रूप में जारी किया है। इस कार्य के लिये ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका, पुर्तगाल अफ्रीका, सूडान, अबीसीनिया, भारत तथा ब्राजील प्रसिद्ध हैं। संयुक्त राष्ट्र तथा यूरोप के गर्म भागों और अस्ट्रेलिया में भी यह धन्धा प्रचलित है किन्तु यहाँ इसका विस्तार नहीं किया जा सकता है क्योंकि मधु-युक्त पुष्पों की प्रचुरता प्रकृति पर निर्भर है।

घोड़ा (Horses)

घोड़ा बहुत उपयोगी जानवर है। मानव-समाज के लिये यदि गाय और बैल को छोड़कर कोई अन्य महत्वपूर्ण पशु है तो वह घोड़ा ही है। पश्चिमी प्रदेशों में बैल खेती-बारी के काम के लिये इतना उपयोगी नहीं है जितना घोड़ा। घोड़े के लिये शीतोष्ण कटिबन्ध की जलवायु बहुत अनुकूल है। घोड़ा मरुभूमि, उष्ण कटिबन्ध के वनों तथा उत्तर के अत्यन्त शीत प्रदेशों में नहीं पाया जाता है। उष्ण कटिबन्ध के सूखे प्रदेशों में घोड़ा बहुत पाया जाता है, किन्तु जहाँ वर्षा बहुत होती है वहाँ यह नहीं होता। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (मक्का की पेटी में), कनाडा (दक्षिणी गेहूँ पैदा करने वाले मध्य भाग में), यूरोप के सब देशों (मध्य और पश्चिमी देशों में), एशियाटिक रूस तथा पश्चिमी एशिया में घोड़े बहुत पाले जाते हैं। पम्पास में ग्वाको और स्टेप्स में कज्जाक लोग बड़े अच्छे घुड़सवार होते हैं।

अरबी घोड़ा संसार में अपनी तेजी के लिये प्रसिद्ध है। यह सवारी के काम मे आता है, किंतु बोझा ढोने के काम में इसका उपयोग नहीं होता। यूरोप तथा विशेषकर ब्रिटेन की भिन्न-भिन्न घोड़ों की जातियाँ अरबी घोड़ों के संसर्ग से ही उत्पन्न हुई हैं। जर्मनी, फ्रांस, वेलजियम तथा मध्य यूरोप में घोड़े पालने का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। आस्ट्रेलिया के वेलर जाति के घोड़े प्रसिद्ध हैं किन्तु ये सवारी के काम के नहीं हैं। ये अधिकतर विक्टोरिया, न्यूसाउथ वेल्स और क्वीन्सलैण्ड में तथा दक्षिणी अमेरिका में अर्जेनटाइना, ब्राजील, यूरेग्वे, पैरेग्वे, कोलम्बिया में पाये जाते हैं। ये मंचूरिया में भी खूब मिलते हैं। उत्तरी चीन, जापान, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी अच्छी जाति के घोड़े पाले जाते हैं। भारत में सौराष्ट्र के घोड़े प्रसिद्ध हैं।

खच्चर और गधा (Mule & Donkey)

खच्चर गदहे में एक विशेषता यह है कि यह बुरे-से-बुरा चारा पाकर भी खूब परिश्रम कर सकता है। बोझा ढोने की तो उसमें अकथनीय शक्ति होती है। यदि घोड़े को एक दिन भी अच्छा चारा तथा दाना न मिले तो वह काम नहीं देता, परन्तु गदहा भोजन न मिलने पर भी मेहनत कर सकता है। यद्यपि गदहा सब प्रकार से घोड़े से श्रेष्ठ पशु है परन्तु मनुष्य ने उसका कभी आदर नहीं किया।

भारत, चीन तथा टर्की में संसार के दो तिहाई गदहे मिलते हैं। इनके अतिरिक्त स्पेन, इटली, मिश्र और मरक्को में संसार के लगभग एक चौथाई गदहे पाये जाते हैं। खच्चर दक्षिणी फ्रांस और स्पेन में भी मिलता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

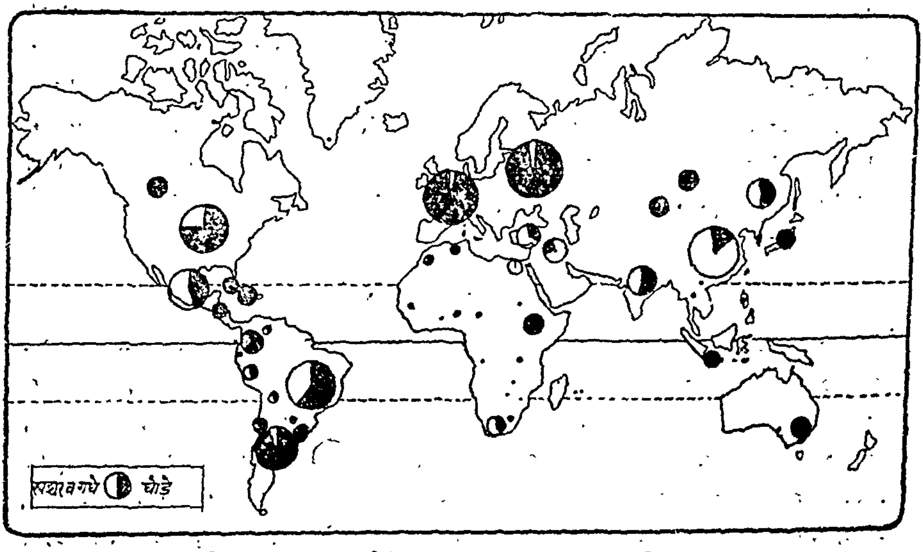

चित्र १०६—घोड़े, गदहे व खच्चरों का वितरण

दक्षिण के ऐन्डीज पर्वतीय प्रदेश तथा चीन और मंचूरिया में भी खच्चर बहुत पाये जाते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में बोझा ढोने के लिये तथा फौज का सामान ढोने के लिये खच्चरों का ही बहुत उपयोग होता है।

ऊँट (Camel)

ऊँट गरम देश में रहने वाला जानवर है। रेगिस्तानों तथा पर्वतीय देशों में जहाँ सघन वन न हों, वहाँ उसका उसका उपयोग सवारी तथा बोझ ढोने के लिये होता है। मध्य अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान से लेकर अरब, फारस, तुर्किस्तान तथा मध्य एशिया होता हुआ जो गरम और सूखा प्रदेश मंगोलिया तक जाता है उसमें मुख्य ऊँट का ही उपयोग होता है। अफ्रीका तथा एशिया के रेगिस्तानों में ऊँट न हो तो वहाँ मनुष्य निवास ही नहीं कर सकता। भारत के पश्चिमी भाग में ऊँट का बहुत उपयोग होता है। अब आस्ट्रेलिया के रेगिस्तानों में भी ऊँट पहुँच गया है। यह रेगिस्तान में सूखी घास तथा काँटेदार झाड़ियाँ

को खाकर ७–८ दिन तक रह सकता है। इसी कारण जलरहित प्रदेशों में इसका इतना अधिक महत्व है।

हाथी (Elephant)

यह सब से बड़ा पशु है। अब इसका उपयोग अधिक नहीं होता है क्योंकि इसके पालने में खर्च बहुत अधिक होता है। हाथी सघन वनों में मिलता है। मध्य अफ्रीका, बर्मा तथा थाईलैण्ड के वनों में हाथी बहुत पाया जाता है। हाथी की हड्डी तथा दाँत बहुमूल्य व्यापारिक वस्तुएँ हैं। बर्मा तथा थाईलैंड के पहाड़ी प्रदेशों में यह लकड़ी ढोने के काम में आता है।

इनके अतिरिक्त रेनडियर (Reindeer) उत्तरी ध्रुव के समीपवर्त्ती अत्यन्त ठन्डे प्रदेश का मुख्य पशु है। इस शीत प्रदेश में उत्पन्न होने वाली झाड़ियाँ, थोड़ी घास और बर्फ पर उत्पन्न होने वाली काई तक पर वह निर्वाह कर लेता है। नार्वे से लेकर बेरिंग स्ट्रेट तक यूरेशिया में तथा उत्तरी कनाडा में यह बहुत पाया जाता है।

हिमालय के प्रदेश में याक (Yak) नामक बैल, जो बर्फ पर चल सकता है, बोझ ढोने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह भी बहुत थोड़े भोजन पर निर्वाह कर सकता है।

दक्षिणी अमेरिका के एन्डीज पहाड़ी प्रदेश में लामा (Llama) नामक पशु भी माल ढोने के बहुत काम में आता है।

प्रश्न

१. यूरोप के किन देशों में दूध के लिए पशु पाले जाते हैं? किन भौगोलिक और आर्थिक कारणों से इन देशों में यह अधिक पाले जाते हैं? (आगरा बी० कॉम० १९४३)

२. दक्षिणी गोलार्द्ध में किन कारणों से पशुपालन का धन्धा अधिक किया जाता है? आस्ट्रेलिया में भेड़ें चराने और न्यूजीलैंड में पशु चराना के बारे में संक्षिप्त रूप में अपने विचार प्रकट करिये। (आगरा बी० कॉम० १९४४)

३. आस्ट्रेलिया में भेड़ें चराने के धंधे की तुलना द० अफ्रीका या अर्जेनटाइना से करिये। (आगरा बी० कॉम० १९४५, ४७)

४. आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से होने वाले दूध के व्यापार पर अपने विचार प्रकट करिये और यह भी बताइये कि यह वस्तुएँ किन देशों को निर्यात की जाती हैं। (आगरा, एम० ए० १९५२; बी० कॉम० १९४५, ४६, ४९)

५ चित्रों की सहायता से बताइये कि उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में भेड़ें चराने का धंधा क्यों किया जाता है। उनके व्यापारिक केन्द्रों का भी वर्णन करिये। (आगरा बी० कॉम० १९४८, ५१)

६. शीतोष्ण कटिबन्ध के देशों में कौन-कौन से पालतू जानवर पाये जाते हैं? उनका आर्थिक महत्त्व बताइये? (आगरा बी० कॉम० १९५२)

७. वर्त्तमान युग में माँस का व्यवसाय और दूध का धंधा अधिकतर वैज्ञानिक आविष्कारों पर पर ही निर्भर क्यों रहता है? मांस व्यवसाय के प्रमुख गौण उत्पादन क्या हैं? (यू० पी० १९३७)

अध्याय १६

कृषि के रूप (Forms of Agriculture)

प्रारम्भ में मनुष्य ने सर्वथा अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर रहते हुए खेती का कार्य किया। खेती के उस प्राचीन व अविकसित ढंग को आदि-कृषि (Primitive Agriculture) कह सकते हैं। इस प्रकार प्राप्त भूमि पर कुछ वर्ष तक खेती करने के बाद अनुर्वर हो जाने के कारण इसे छोड़ देते हैं और वनों को जलाकर नई भूमि प्राप्त करते हैं। इससे भूमि तथा वन-सम्पत्ति दोनों का नाश होता है, किन्तु आज का सभ्य मानव ऐसा नहीं करता। वह अनुर्वर भूमि को खाद के प्रयोग से उर्वर बनाये रखता है। वर्षा की कमी को सिंचाई द्वारा पूरा करता है। परिष्कृत बीज बोकर कीड़ों से खेती को सुरक्षित रखता है। इस प्रकार की खेती को वैज्ञानिक कृषि (Scientific Agriculture) कहते हैं।

विज्ञान के विकास ने कृषि को भी पूर्णतया परिवर्तित कर दिया है। विभिन्न शासन-प्रणालियाँ, राजनीतियाँ और लोगों के रहन-सहन के ढंग में अन्तरों के कारण विभिन्न देशों के खेती करने के ढंगों में भी अन्तर पाया जाता है। किन्तु कुछ देशों में कुछ सीमा तक खेती करने के तरीकों में समानता भी पाई जाती है। उष्ण कटिबन्धीय वर्षीले वनों में खेती करने का तरीका लगभग एक-सा है। दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में खेती के ढंगों में समानता पाई जाती है। भारत, वर्मा, चीन और जापान के खेती के स्वरूप में भारी अन्तर नहीं पाया जाता। पहले तीनों देशों की अपेक्षा जापान की खेती में वैज्ञानिक पुट अधिक है। जावा, क्यूवा, ब्राजील, मलाया आदि देशों की फसलों में अन्तर है किन्तु कृषि का ढंग एक ही है।

कृषि करने के ढंगों की विभिन्नता और समानता के विचार से यह निम्न प्रकार की हो सकती है—

(१) प्राचीन खेती
(२) विस्तृत खेती
(३) गहरी खेती
(४) पौध वाली खेती

(१) प्राचीन खेती (Primitive Agriculture)—भूमध्य रेखीय वर्षा वाले वनों में तथा उनके आसपास के प्रदेशों में खेती का स्वरूप प्राचीनतम है। यहाँ के मैदानों में अत्यन्त गर्मी और वर्षा के कारण वनस्पति की अत्यन्त प्रचुरता रहती है। यह लाल मिट्टी के प्रदेश हैं जिनमें लगातार असावधानी से खेती करने के कारण भूमि का उपजाऊपन बड़ी जल्दी नष्ट हो जाता है। अतएव

मिट्टी के उपजाऊपन के पूर्णतया नष्ट होने तक किसान उस प्रदेश में खेती करते हैं। यहाँ पेड़ों, झाड़ियों और लताओं को साफ करके बिना अधिक परिश्रम के ऐसे अनाजों को बो देते हैं जैसे अमेजन की घाटी में मैनियोक; अफ्रीका और पूर्वी द्वीप समूह में शकरकन्द, केला, चावल, ज्वार और बाजरा; प्रशान्त महासागरीय द्वीपों में नारियल और कोको। इस प्रकार की खेती में फसलों की हेर-फेर के बजाय खेती का हेर-फेर होता है। इसमें फावड़े से खेत खोदे जाते हैं और मनुष्य श्रम द्वारा जुताई, बुबाई व कटाई करता है।

(२) गहरी खेती (Intensive Cultivation)—दक्षिणी और पूर्वी एशिया के घने बसे हुए देशों में फसलों के पैदा करने के लिये भूमि को अनाज बोने के पहिले कई बार जोता जाता है। आवश्यकतानुसार खाद मिलाया जाता है, बहुत से श्रमिक काम करने के लिये रखे जाते हैं और बोने के बाद अच्छी तरह नलाया जाता है। थोड़ी भूमि से अधिक से अधिक पैदावार लेने के ढंग को 'गहरी खेती' के नाम से पुकारा जाता है। जर्मनी, डेनमार्क, हॉलैंड, इंगलैण्ड आदि देशों में इस प्रकार की खेती में महान उन्नति हुई है। भारत, चीन, जापान आदि देशों की बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन देने के लिये भूमि से अधिक से अधिक मात्रा में अनाज प्राप्त किया जाता है, किन्तु कृषि के ढंग बहुत ही पुराने हैं।

(३) विस्तृत खेती (Extensive Cultivation)—अनाजों को व्यापारिक स्तर पर पैदा करने का ढंग आधुनिक औद्योगिक काल की देन है। इस प्रकार की खेती में किसी एक अनाज को चुन लिया जाता है और उसी की खेती बड़े व्यापारिक पैमाने पर की जाती है। अधिकतर काम मशीनों के द्वारा होता है और अनाज खेत से सीधे ही बाजारों के लिये भेज दिया जाता है क्योंकि अनाज विशेषतः बिक्री के लिए पैदा किया जाता है। विस्तृत खेती में खेत प्रायः बहुत बड़े-बड़े होते हैं—औसत ४०० से ८०० एकड़ तक। क्योंकि इन प्रदेशों की आबादी बहुत कम है इसलिए घर की खपत अत्यन्त सीमित होती है। व्यापारिक पैमाने पर अनाज पैदा किये जाने पर प्रायः गेहूँ की फसल ही प्रधान रहती है। कहीं-कहीं गेहूँ के अतिरिक्त मक्का, जौ, चावल आदि भी इसी ढंग से पैदा किए जाते हैं। जोतने, बोने और काटने में सब काम मशीनों की सहायता से किये जाते हैं इसलिए यहाँ बहुत कम मजदूर और जानवर मिलते हैं। व्यापारिक पैमाने पर अनाज पैदा करने वाली खेती शीतोष्ण कटिबन्धों के स्टेप और प्रेरीज के शर्नोजम मिट्टी वाले मैदानों में पाई जाती है। मिट्टियाँ उपजाऊ होने पर भी वर्षा कम और अनिश्चित होने के कारण फ़ी एकड़ पैदावार आमतौर पर कम रहती है। भूमि सस्ती है, खेत बड़े होते हैं और छोटे-छोटे गाँव बहुत दूर-दूर स्थित रहते हैं। अर्ध शुष्क प्रदेशों के किनारों पर फसल का कुछ भाग 'सूखी खेती' की सहायता से उत्पन्न किया जाता है। एशिया के देशों में विस्तृत खेती का अभाव है क्योंकि यह संसार के नये और सस्ती भूमि वाले प्रदेशों में स्थित हैं। कनाडा और संयुक्त-राष्ट्र के प्रेयरी प्रदेश, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया और रूस गेहूँ की विस्तृत खेती के प्रतिनिधि देश हैं। मक्का के लिए

सिंचाई के साधनों तथा धरातल की बनावट का गहरा सम्बन्ध है। यदि भूमि पथरीली हो और प्रदेश पहाड़ी हो तो नहरें नहीं खोदी जा सकतीं क्योंकि नहरें खोदने में बहुत अधिक व्यय पड़ेगा। साथ ही नहरें उन्हीं नदियों से निकाली जा सकती हैं जिनमें बराबर पानी रहता हो। भारत में केवल उन्हीं नदियों से नहरें निकाली गई हैं जो बर्फीले पहाड़ों से निकलती हैं। तालाब और झील बनाने में अधिक व्यय नहीं होता क्योंकि केवल उनमें बाँध बनाकर पानी को रोकना पड़ता है। किन्तु भूमि पथरीली होने पर कुओं का खोदना तथा विशेषकर पाताल-तोड़ कुओं (Artesian wells) का बनाना बहुत कष्ट-साध्य तथा खर्चीला होता है। आस्ट्रेलिया में सबसे अधिक पाताल तोड़ कुए पाये जाते हैं।

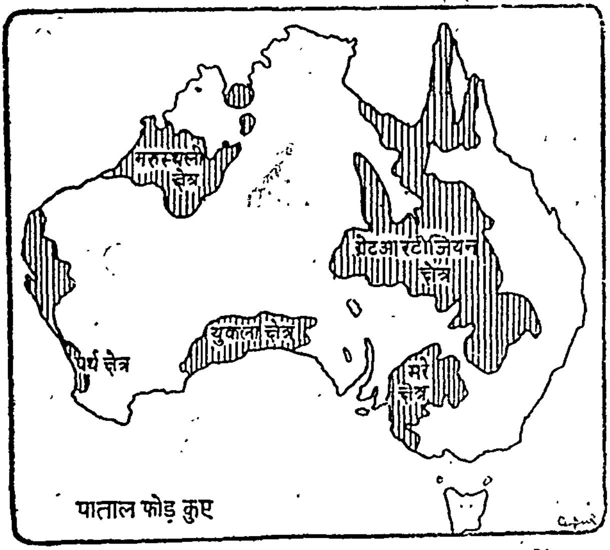

चित्र ११०—आस्ट्रेलिया में पाताल तोड़ कुऐं

सिंचाई द्वारा खेती करने का एक मुख्य लाभ यह है कि फसलों को उगाने के लिये जिस पानी की आवश्यकता होती है वह अधिकतर किसान के ही हाथ में रहता है। सिंचाई करके फसल खड़ी करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है और अधिक व्यय भी पड़ता है। फसलों की उत्तम उपज हो जाने से अतिरिक्त परिश्रम तथा व्यय का पूरा फल मिल जाता है।

सिंचाई का अभ्यास आजकल तर खेती के क्षेत्रों में बहुत सामान्य रूप से होने लगा है क्योंकि वहाँ पर होने वाली जलवर्षा पर फसलें इतनी निर्भर नहीं रह सकतीं जितनी सिंचाई पर। जलवर्षा द्वारा जो नमी फसलों को पहुँचती है वह व्यवस्थित रूप से नहीं पहुँचती है। साधारण दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यदि किसी पक्ष (पन्द्रह दिवस) में एक इंच से कम वृष्टि हो तो फसलों को हानि पहुँचेगी। इस अनुमान के अनुसार सिंचाई की आवश्यकता उन क्षेत्रों में भी पड़ पाती है जिनकी औसत वार्षिक जलवर्षा काफी ऊँची रहती है।

असावधानी से सिंचाई करने का परिणाम यह होता है कि पृथ्वी के भीतर का जल-स्तर उठने लगता है और ज़मीन में 'पानी ठहरने लगता है' (water-logging)। इससे सिंचाई करने वालों का उत्साह कम हो जाता है। पानी ठहरने वाले क्षेत्र साधारणतया क्षारयुक्त भूमियों में बदल जाते हैं। वहाँ कोई फसल नहीं उग सकती। भारत में रेह द्वारा सैकड़ों एकड़ उपजाऊ भूमि

(विशेषकर पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में) पानी ठहने के कारण नष्ट हो गई है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा दक्षिणी अफ्रीका में भी सिंचित भूमि क्षारग्रस्त होने लगी है।

सिंचित भूमि का सबसे बड़ा क्षेत्रफल भारत में है जहाँ सिंचाई के संसार के बड़े-बड़े प्रबन्ध पाये जाते हैं। भारत में लगभग ५० करोड एकड़ भूमि में सिंचाई होती है उसमें लगभग २६ करोड़ एकड़ भूमि में खाद्य पदार्थ पैदा किये जाते हैं। इस प्रकार भारत में संसार के सभी देशों की अपेक्षा अधिक भूमि में सिंचाई की जाती हैं जबकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में २५० लाख एकड़, रूस में ८० लाख एकड़, जापान में ७० लाख एकड़, मिश्र में ६० लाख एकड़, मैक्सिको में ५७ लाख एकड़ और इटली में ४५ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

नीचे की तालिका में एशिया के विभिन्न देशों में सिंचाई का विस्तार बताया गया है[1] :—

देश	भूमि सिंचित क्षेत्रफल (दस लाख हैक्टेअर)		बोयी गई भूमि पर सिंचाई का प्रतिशत	नदियों के जल का उपयोग (%)
ब्रह्मा	८·७	०·५३	६%	०·८५%
लङ्का	१·५	०·२४	१६%	६·६०%
चीन	९१·०	४३·२६	४६%	१५·००%
इन्डोचीन	४·७	०·७	१५%	—
भारत	१४७·०	२०·०	१६%	५·४५%
इन्डोनेशिया	११·०	४·३	३९%	—
द० कोरिया	२·६	०·६	२३%	—
पाकिस्तान	२१·०	८·५	४०%	—
थाईलैण्ड	४·७	०·६	१३%	५·२५%
जापान	६·०	२·८५	४८%	—
मिश्र	३·५	२·४५	७०%	—
इराक	६·६	१·३०	२०%	—

भारतवर्ष संसार में अपनी नहरों के लिये प्रख्यात है। दुनिया में सबसे अधिक सिंचित क्षेत्र हमारे देश में ही है। नहरें खोदने के लिये सबसे अच्छे भाग उत्तरी भारत में गंगा यमुना के मैदान और दक्षिणी भारत में पूर्वी किनारे की नदियों के डेल्टा हैं। क्योंकि—

(१) यह भाग समतल हैं। इन भागों की भूमि का ढाल इतना धीमा है कि नदियों के ऊपरी भागों से निकली हुई नहरों का पानी आसानी से ही सारे मैदान में फैल जाता है।

---

१. Eastern Economist : Annual 1952, p. 1067

(२) उत्तरी भारत और डेल्टाओं की भूमि अधिकांश में नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बनी है जो बहुत उपजाऊ है। अतः यहाँ सिंचाई प्राप्त होने पर उत्तम फसलें पैदा हो सकती हैं।

(३) इन भागों में चट्टानें बहुत कम हैं तथा मिट्टी मुलायम है इसलिये नहरें खोदने में बड़ी आसानी होती है और खर्चा भी अधिक नहीं होता।

(४) उत्तरी भारत के मैदानों में हिमालय पर्वत की वर्फ से ढकी चोटियों से निकली हुई बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं जिनमें अथाह पानी भरा रहता और जो कभी नहीं सूखतीं। अतः इनसे जो नहरें निकाली जाती हैं वे भी साल भर तक पानी से भरी रहती हैं।

(५) देश की अधिकांश जनसंख्या खेती करने में संलग्न है। अतः खेती के लिये सिंचाई की माँग अधिक है।

इन्हीं कारणों से हमारे यहाँ सिंचाई अधिक होती है। इसमें आश्चर्य नहीं कि भारत में कुछ ऐसी सिंचाई व्यवस्था की प्रणालियाँ पाई जाती हैं जो विश्व की सर्वोत्तम सिंचाई व्यवस्था में गिनी जाती हैं।

भारत में निम्नांकित कारणों से सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है:—

(१) भारत के कुछ भागों में—जैसे राजस्थान, पंजाब, द० पठार के मध्यवर्ती भाग आदि—वर्षा कृषि के लिए कम पड़ती है। सिंचाई द्वारा रूखी मरुभूमि हरी-भरी हो जाती है।

(२) शीतकाल में भारत के अधिक भागों में वर्षा नहीं होती अथवा बहुत कम होती है इसलिए रबी की फसल के लिये वर्षा चाहिये। रबी की फसल खरीफ की फसल से अधिक महत्व रखती है और सिंचाई द्वारा उपज बढ़ जाती है।

(३) भारत में वर्षा की मात्रा व समय अनिश्चित है। कभी वर्षा नियत समय से देर में होती है और कभी-कभी वर्षा ऋतु के मध्य में वर्षा काफी समय तक रुक जाती है। सिंचाई वर्षा की अनिश्चितता को दूर कर देश को अकाल से बचाती है।

(४) देश के कुछ भागों में मिट्टी इस प्रकार की है जिसमें अधिक समय तक नमी नहीं रुक सकती। अतः मिट्टी को नम बनाये रखने के लिये बार-बार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

(५) चावल, जूट और गन्ना के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है।

(६) बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए अधिक अन्न उत्पादन सिंचाई के द्वारा ही सम्भव है।

सिंचाई के विभिन्न साधन

भारत में सिंचाई के लिये भिन्न-भिन्न साधन काम में लाये जाते हैं। इसका कारण देश के विभिन्न भागों में प्राकृतिक दशा की विभिन्नता का होना है। उत्तरी भारत में विशेषकर नहरों और कुँओं से तथा दक्कन के पठार पर तालाबों से सिंचाई होती है। कुल सींची गई भूमि का ५०% नहरों, २०% कुओं, १०% तालाबों और शेष २०% अन्य उपायों से सींचा जाता है।[1] सन् १९५४ में २२१ लाख एकड़ भूमि नहरों से; १६० लाख एकड़ कुओं से; ७८ लाख एकड़ तालाबों से और ५७ लाख एकड़ अन्य साधनों से सींची गई। सिंचाई के लिये तीन प्रकार के साधन काम में लाये जाते हैं। (१) कुएँ, (२) तालाब और (३) नहरें।

(१) कुएँ (Wells)—भारत में कुओं द्वारा सिंचाई करने का तरीका अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। कुओं द्वारा सिंचाई उन्हीं भागों में लाभप्रद हो

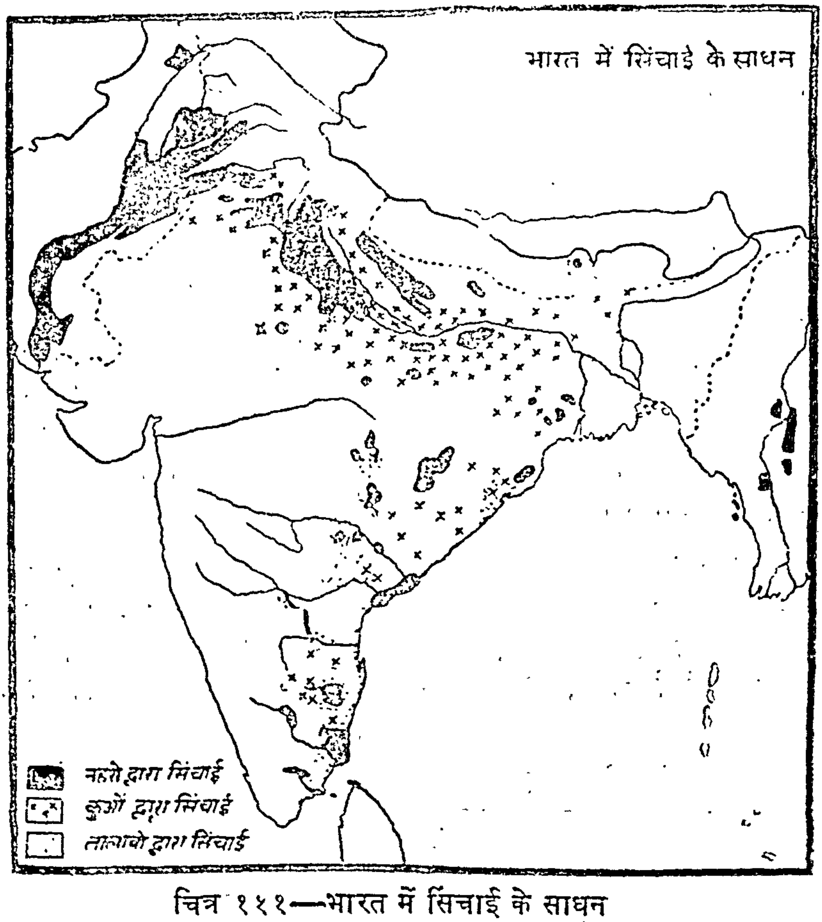

चित्र १११—भारत में सिंचाई के साधन

1. India 1956, p. 144.

सकती है जहाँ पानी भूमि के निकट ही पाया जाता हो। इस दृष्टि से गंगा का मैदान कुओं द्वारा सिंचाई किये जाने के लिए बड़ा उपयुक्त है क्योंकि यहाँ जल सभी भागों में भूमि सतह से थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ कुओं में जल थोड़ी गहराई पर मिल जाता है किन्तु जहाँ वर्षा का अभाव है वहाँ कुओं में जल अधिक गहराई पर मिलता है। यही कारण है कि पूर्वी उत्तर-प्रदेश में जल १०-१२ फीट की गहराई पर ही मिल जाता है किन्तु पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ६०-६० फीट और पश्चिमी राजस्थान में तो २००-३०० फीट की गहराई पर जल मिलता है। उथले कुएँ छिछले होते हैं किन्तु गहरे कुओं से सदा जल उपलब्ध रहता है। वर्षा के दिनों में तो इस प्रकार के कुओं में पर्याप्त जल मिलता है किन्तु शुष्क ऋतु में उथले कुएँ शीघ्र सूख जाते हैं। कुओं से सिंचाई करने की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग पंजाब से लगाकर बिहार तक का गंगा-सिंधु का मैदान है।

कुओं द्वारा सिंचाई के लिए पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश, बम्बई प्रान्त और मद्रास अधिक प्रसिद्ध है। कुओं द्वारा उत्तर प्रदेश में ५१·५ प्रतिशत, पंजाब में २५·३ प्रतिशत, मद्रास में १७·८ प्रतिशत और बम्बई में १४ प्रतिशत सिंचाई होती है। पंजाब और उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भागों में कुओं से सिंचाई, नहरों द्वारा की गई सिंचाई के सहायक रूप में होती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में तो कुएँ ही सिंचाई के मुख्य-मुख्य साधन हैं। यहाँ जल भूमि के निकट ही मिल जाता है। अतः यहाँ फसलों को पानी की आवश्यकता कम ही रहती है। इसलिए इन भागों में अधिकांशतः कच्चे कुएँ ही अधिक बनाये जाते हैं। मद्रास प्रान्त में दक्षिणी भाग, नीलगिरी और इलायची की पहाड़ियों का पूर्वी भाग—जो गन्तूर से कोयम्बटूर होता हुआ टिनैवैली तक फैला हुआ है—कुओं से सिंचाई पाने के लिए मुख्य है। बम्बई के दक्षिणी पठार से लगा कर पश्चिमी घाट के पूर्वी भागों में भी कुओं द्वारा सिंचाई की जाती है।

कुओं से सिंचाई के लिए जल कई प्रकार से ऊपर उठाया जाता है। पूर्वी अधिक वर्षा वाले स्थानों में कुओं से पानी ऊपर लाने के लिए प्रायः हल्के पानी उठाने के साधन (जैसे मनुष्य, ढेंकली आदि) काम में लाये जाते हैं किन्तु पश्चिमी भागों में चरस, रेहट, आदि के अलावा यांत्रिक साधनों का भी प्रयोग किया जाता है।

कुओं की सिंचाई में कई दोष पाये जाते हैं : (१) यदि लगातार अधिक समय तक कुओं से पानी निकाला जाय तो वे शीघ्र ही सूख जाते हैं अथवा जिस वर्ष वर्षा कम होती है उस वर्ष तो पानी और भी कम हो जाता है। (२) इसके अतिरिक्त कुओं द्वारा सिंचाई करने में व्यय और परिश्रम दोनों ही अधिक होते हैं। (३) कुओं से केवल सीमित क्षेत्रों में ही सिंचाई हो सकती है, यथा | कच्चा कुआँ अधिक से अधिक ३ एकड़ और पक्का कुआँ १५-२० एकड़ भूमि तक

सींच सकता है। (४) बहुत से कुओं का जल खारा होता है अतः नमकीन जल सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं होता।

ट्यूबवैल या नल कूप (Tube well)—कुछ ही वर्षों से विद्युत-शक्ति द्वारा चालित कुओं से आभ्यन्तरिक जल सिंचाई के लिए उपलब्ध किया जाने लगा है। भारत में ट्यूब वैल की योजना चालू करने के लिए श्री विलियम स्टैम्प ने ही सब से पहला प्रयास किया था। नल-कूपों द्वारा सब से अधिक सिंचित क्षेत्र उत्तर प्रदेश में पाया जाता है जहाँ १९५३ में ३२११ ट्यूबवैल थे। अब मध्य प्रदेश, पंजाब व बिहार में भी ऐसे कुए बनाये जा रहे हैं।

उत्तर प्रदेश में अधिक ट्यूबवैल पाये जाने के निम्न कारण हैं:—

(१) यहाँ के अधिकांश कुओं में पानी का स्रोत पृथ्वी की ऊपरी सतह से ३० फीट से भी कम गहराई पर मिलता है। इन कुँओं में केन्द्रोपसारी पम्प लगाये जाते हैं जो एक यूनिट बिजली की शक्ति से २५०० से ४५०० गैलन तक पानी खींच लेते हैं। जिन भागों में जलस्रोत ३० से ४० फीट की गहराई पर मिलता है वहाँ नलकूपों में पम्प (Boreholes) का प्रयोग किया गया है, जिनके द्वारा प्रति घंटा २ से ३ हजार गैलन तक पानी फेंका जाता है।

(२) यहाँ वर्ष भर ही सिंचाई की आवश्यकता रहती है। खरीफ में गन्ना, चरी, कपास आदि तथा रबी में गेंहुँ, चना, चारा आदि की सिंचाई की जाती हैं।

उत्तर प्रदेश में नल-कूप क्षेत्र दो भागों में विभक्त है : (१) गंगा नदी के पश्चिम की ओर के भाग जिनमें सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर और अलीगढ़ के वे भाग सम्मिलित हैं जिनमें वर्षा की मात्रा कम होती है तथा जहाँ पानी का स्रोत भूमि के धरातल से २५-३० फीट की गहराई पर ही मिल जाता है। इस क्षेत्र में लगभग ५०० नल-कूप हैं।

(२) गंगा नदी के पूर्व की ओर के भाग (जिसमें बिजनौर, मुरादाबाद और बदायूँ के जिले सम्मिलित हैं) में जल-स्रोत भूमि से १५-२० फीट की गहराई पर मिल जाता है। इस क्षेत्र में २००० नल-कूप हैं। इनमें से ३७५ नल-कूप तो अकेले बदायूँ जिले में ही हैं जो लगभग १५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करके गन्ना आदि उत्पन्न करते हैं। गंगा की नहरों से उत्पादित सस्ती बिजली इन कुओं को चलाने के लिए उपलब्ध है। प्रत्येक कुएँ द्वारा प्रायः १$\frac{१}{४}$ वर्ग मील भूमि की सिंचाई की जाती है।

नल-कूपों से सिंचाई करने में कई लाभ हैं। (१) नल-कूपों में केवल एक बार ही व्यय करना पड़ता है। इनके प्रवन्ध का व्यय भी बहुत कम होता है। (२) प्रत्येक नल-कूप पर एक कर्मचारी नियुक्त होता है जो कृषक को उसकी आवश्यकतानुसार जल नाप कर दे देता है। कृषक को नहरों के पानी की तरह प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती और न पानी व्यर्थ ही जाता है। (३) कुओं का जल नहरों की अपेक्षा फसलों के लिए अति लाभप्रद है।

रूपड़ स्थान पर पानी लेती है और लुधियाना, फ़िरोजपुर, हिसार, पटियाला व पंजाब राज्य की १८ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई करती है। इसकी लम्बाई शाखाओं सहित ३८०० मील है। इसकी मुख्य शाखायें अभोर, भटिंडा, कोटला, घग्घर और ढोआ हैं। यह नहर सन् १८६२ में खोली गई थी। इसमें शीघ्र मिट्टी भर जाती है।

(३) अपर बारी दोआब नहर (Upper Bari Doab Canal)- यह रावी नदी से माधोपुर स्थान पर पानी लेती है और गुरदासपुर तथा अमृतसर के जिलों में सिंचाई करती है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई १८०० मील है। इसकी मुख्य शाखायें लाहौर, कसूर और सबरौ हैं।

(ख) मद्रास की नहरें

दक्षिण भारत में अधिकतर नहरें नदियों के डेल्टों में ही पाई जाती हैं। इनसे ज्वार, बाजरा और चावल सींचा जाता है। मद्रास की कुल बोई हुई भूमि के ३० प्रतिशत से भी कम भाग में सिंचाई होती है। मद्रास प्रान्त की मुख्य नहरें यह हैं:—

(१) पैरियर नहर योजना—(Periyar Project)—दक्षिणी भारत में पैरियर नदी इलायची की पहाड़ियों से निकल कर पश्चिम की ओर

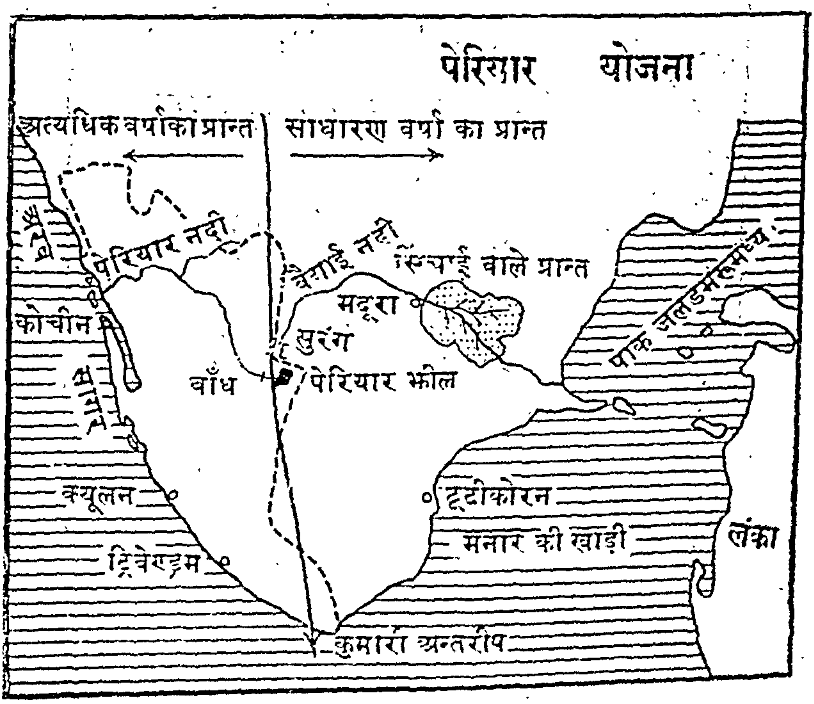

चित्र ११३—मद्रास की सिंचाई नहरें

अरब सागर में गिर जाती थी जबकि इन पहाड़ियों के पूर्व में मद्रास के मदुरा

और तिनैवेली जिलों में बहुत ही कम वर्षा के कारण बहुधा अकाल पड़ा करते थे। अतएव इञ्जिनीयरों ने उस नदी का प्रवाह-मार्ग पूर्व की ओर बदल डालने के लिए पश्चिम की ओर एक १७५ फीट ऊँचा बांध बना कर इस नदी को एक झील के रूप में परिणत कर दिया। फिर इस झील का पानी एक १$\frac{1}{8}$ मील लम्बी कृत्रिम सुरंग द्वारा पूर्व की ओर ले जाकर वेगई नदी में डाल दिया है। अब वेगई नदी में क़ाफी पानी हो गया है इसलिये उससे नहरें निकाल कर मदुरा जिले के आस-पास की लगभग १$\frac{1}{2}$ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाने लगी है।

(२) कावेरी मेट्टूर योजना (Cauvery Mettur Project)—मद्रास में कावेरी नदी पर मेट्टूर नामक स्थान पर एक बांध बना कर ९,३५,००० लाख घन फुट पानी रोका गया है। इससे लम्बी नहरें निकाल कर कावेरी डेल्टा में १·३ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई की जाती है।

(३) रामपद सागर योजना (Rampad Sagar Project)—मद्रास में एक नई योजना बनाई गई है जिसके अनुसार गोदावरी नदी पर पोलावरम नामक स्थान पर एक बड़ा बांध—रामपद सागर—बना कर १२० लाख एकड़ फुट पानी रोका जा रहा है और इस बांध के दोनों किनारों से दो नहरें निकाल कर गोदावरी डेल्टा में लगभग ६००,००० एकड़ शुष्क भूमि की सिंचाई की जायगी। डेल्टा की वर्तमान नहरों को भी इस बांध से पानी प्राप्त हो सकेगा जिसके फलस्वरूप १० लाख एकड़ भूमि और अधिक सींची जा सकेगी और १·५ लाख किलोवाट बिजली भी उत्पन्न की जायगी।

(४) तुंगभद्रा योजना (Tungbhadra Project)—के अनुसार एक बांध कृष्णा नदी की सहायक नदी पर मालापुरम नामक स्थान पर १६० फुट ऊँचा और ७,९४२ फुट लम्बा बनाया जा रहा है जिसमें २६ लाख एकड़ फुट पानी समाहृत हो सकेगा।[१] इससे नहरें निकाल कर मद्रास प्रान्त में (बलारी, कर्नूल और मद्रास) ३,००,००० एकड़ भूमि और आन्ध्र में ६,००,००० एकड़ भूमि सींची जा सकेगी तथा ११,००० किलोवाट बिजली भी उत्पन्न की जायगी।

(ग) उत्तर-प्रदेश की नहरें

उत्तर-प्रदेश की उन्नति का प्रमुख कारण उसकी बड़ी नहरें हैं। उत्तर-प्रदेश में कुल बोई गई भूमि के ३१ प्रतिशत भाग में सिंचाई होती है। ऊपरी गङ्गा की घाटी में वर्षा ४० इञ्च प्रतिवर्ष से भी कम होती है, अतः इस प्रदेश की खेती की उन्नति में नहरों का प्रमुख स्थान है। यहाँ निम्न पाँच बड़ी-बड़ी सिंचाई की योजनाएँ हैं:—

(१) ऊपरी गंगा की नहर (Upper Ganges Canal)—यह नहर गङ्गा नदी से हरिद्वार के पास निकाली गई है। इस नहर का निर्माण

---

१. १ एकड़ फुट पानी=४३,५६० घनफुट; या ३२५,८५० गैलन; या १,३०३,४०० क्वार्ट या २,७१७,६०० पौंड जल।

१८४२ से प्रारम्भ होकर १८५४ में समाप्त किया गया था। रुड़की तक आने में इसे तमाम ऊँची-नीची भूमि में होकर गुजरना पड़ता है। अतः हरिद्वार और रुड़की के बीच में कई जगहों पर इसे नदियों के नीचे, कहीं-कहीं नदियों के ऊपर और कहीं-कहीं नदियों के साथ-साथ चलना पड़ता है। इस नहर के मार्ग में ७ जगह झरने बना कर बिजली उत्पन्न की जाती है। यह गङ्गा-यमुना दोआब के उत्तरी भाग के सहारनपुर, मुजफ़्फ़रनगर, बुलन्दशहर, मेरठ, एटा, इटावा,

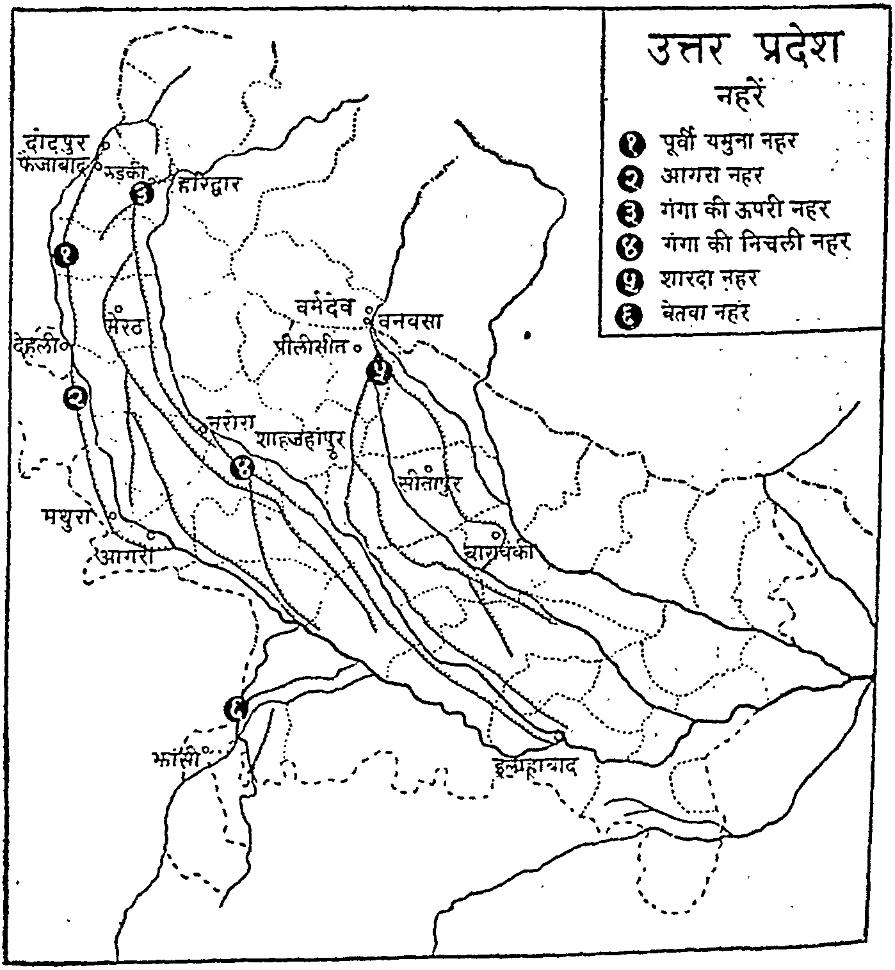

चित्र ११४—उत्तर प्रदेश की नहरें

कानपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और फतहपुर जिलों की १० लाख एकड़ से अधिक भाग में सिंचाई करती है। प्रमुख नहर की लम्बाई २१३ मील तथा उसकी शाखाओं की लम्बाई ३,५०० मील से भी ऊपर है। इस प्रकार इसकी कुल लम्बाई ३,८८८ मील है। यह नहर आगरा नहर और निचली गङ्गा नहर को भी पानी देती है। इसकी मुख्य शाखाएँ अनूपशहर और माटा हैं। ऊपरी गङ्गा

नहर ८,००० घन फुट पानी प्रति सैकिंड की रफ्तार से ले जा सकती है। इस नहर से जल विद्युत शक्ति भी पैदा की जाती है।

(२) निचली गंगा नहर (Lower Ganges Canal)—यह नहर नरोरा स्थान पर गङ्गा नदी से निकाली गई है। इसका निर्माण १८७२ से प्रारम्भ कर १८७४ में समाप्त किया गया। यह नहर ऊपरी गङ्गा नहर की शाखाओं-प्रशाखाओं के सहित ३,८३७ मील है तथा इसके द्वारा मैनपुरी, फरुख्खाबाद, एटा, कानपुर और फतहपुर जिलों की लगभग १०,००,००० एकड़ भूमि में सिंचाई होती है।

(३) आगरा नहर (Agra Canal)—यमुना के दायें किनारे से ओखला के स्थान पर पानी लेती है (यह स्थान दिल्ली से ११ मील नीचा है।) यह १८७४ में बनाई गई थी। यह नहर अपनी १००२ मील लम्बी शाखाओं-प्रशाखाओं के द्वारा दिल्ली, मथुरा, गुड़गांव और आगरा की चार लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करती है।

(४) शारदा नहर (Sharda Canal)—यह नहर १६२८ में बनाई गई थी। यह नहर गोमती नदी से बनबांसा स्थान (नैपाल की सीमा पर) से निकाली गई है। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित लम्बाई ५,५५५ मील है। इसकी सर्वाधिक पानी देने की क्षमता ६,५०० घन फीट प्रति सैकंड है। यह नहर रोहिलखण्ड और अवध के पश्चिमी भाग को सींचती है। इस नहर के द्वारा ३,००,००० एकड़ भूमि में गेहूँ; २,५०,००० एकड़ भूमि में गन्ना और ४,००,००० एकड़ भूमि में अन्य फसलों की सिंचाई होती है। इसकी मुख्य शाखायें खेरी, सीतापुर, लखनऊ और हरदोई हैं।

(५) पूर्वी जमुना नहर (Eastern Jamuna Canal)—यह नहर उत्तर-प्रदेश के उत्तरी पूर्वी भाग में सिंचाई करती है। यह नहर फैजाबाद के पास यमुना नदी से निकाली गई है जो देहली तक यमुना के समानान्तर बहती है। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित लम्बाई ६०० मील है और इसके द्वारा मेरठ, सहारनपुर और मुजफ्फरनगर की चार लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। यह भी हमारे देश की उत्पादक नहरों में से एक है।

(घ) बिहार की नहरें

बिहार में वर्षा की अनियमितता के कारण भूमि की सिंचाई करने के हेतु गंडक और सोन नदियों से नहरें निकाली गई हैं। यहाँ कुल बोई गई भूमि के २३% भाग पर सिंचाई होती है। बिहार में निम्नांकित नहरें मुख्य हैं:—

(१) पूर्वी सोन नहर (Eastern Son Canal)—सोन नदी के दाहिने किनारे से बारून नामक स्थान से निकाली गई है। यह नहर पटना के समीप गङ्गा नदी में मिला दी गई है। इसके द्वारा पटना और गया जिलों की सिंचाई की जाती है।

(२) पश्चिमी सोन नहर (Western Son Canal)—सोन नदी के बाँये किनारे से डेहरी नामक स्थान से निकाली गई है। इसकी दो शाखायें हैं। एक शाखा बक्सर के निकट गङ्गा नदी में मिल जाती है और दूसरी शाखा आगे चल कर दो भागों में विभक्त हो जाती है। उत्तर की ओर की शाखा डूमराव नहर कहलाती है और दूसरी शाखा का नाम आरा नहर है जो उत्तर-पूर्व की ओर बह कर गङ्गा में मिल जाती है।

(३) त्रिवेणी नहर (Triveni Canal)—गंडक नदी से त्रिवेणी नामक स्थान के निकट से निकाली गई है। इससे उत्तरी बिहार के चम्पारन जिले की लगभग ६ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

(च) बंगाल की नहरें

बंगाल में सिंचाई के लिये सिर्फ दो ही नहरें हैं—(१) मिदनापुर नहर, और (२) एडन नहर। मिदनापुर नहर मिदनापुर के पास कोसी नदी से निकल कर पूरब में हुगली नदी से मिल जाती है। इस नहर का कुछ भाग तो सिंचाई करने और नाव चलाने दोनों ही कामों में आता है। लेकिन हुगली के पास वाला भाग सिर्फ नाव चलाने के काम आता है। इससे भी धान की सिंचाई ज्यादा होती है। दूसरी नहर दामोदर नदी से निकाली गई है। सिर्फ बर्दवान के जिले में इस नहर से थोड़ी-सी सिंचाई होती है।

(छ) बम्बई राज्य की नहरें

दक्खिन में पठार का जो भाग बम्बई राज्य में है उसमें मद्रास की तरह तालाबों के द्वारा सिंचाई के लिये छोटी-छोटी नहरें निकाली गई हैं। जिनमें (१) नीरा नदी की नहरें, (२) गोदावरी की नहरें, और (३) मूठा नहरें खास हैं।

नीरा नदी की नहरें—इन नहरों को नीरा नदी से निकालने के लिये एक बहुत बड़ा बन्द भाटागर स्थान पर बाँधा गया है। इसके द्वारा २ लाख घन फुट पानी एकत्रित किया गया है। इस कारण से इन नहरों के लिये कुछ पानी तो नीरा नदी से आता है और कुछ ह्वाइटिंग झील से। यह ह्वाइटिंग झील नीरा की एक सहायक नदी में बाँध के द्वारा बनाई गई है। इस बांध से निकलने वाली नहरें पूना और शोलापुर जिलों में क्रमशः ८०,००० और ५,००० एकड़ भूमि सींचती हैं।

गोदावरी की नहरें—गोदावरी नदी पर बेल झील के पास एक ६२ फीट ऊँचा बांध बन्द कर उसके दोनों किनारों से नहरें निकाली गई हैं। यह नहरें लगभग ११७ मील लम्बी हैं। नासिक और अहमदनगर जिलों के उन हिस्सों में सिंचाई करती हैं जहाँ बहुधा अकाल पड़ा करता है।

मूठा की नहर—मूठा नहर असल में नहर पूना और वहाँ की छावनी को

पीने के लायक पानी पहुँचाने के लिये जिला पूना की फ़ाइफ झील (Lake Fife) से निकाली गई थी, लेकिन अब इससे थोड़ी बहुत सिंचाई भी होने लगी है।

भंडारदरा नहर—बम्बई में सबसे ज्यादा महत्व भण्डारदरा के तालाब का है। यह तालाब पच्छिमी घाट के ऐसे भाग में बनाया गया है जहाँ बहुत अधिक वर्षा (१२७" और २१४" के बीच में) होती है। तालाब बनने से पहले इस राज्य की वर्षा का तमाम पानी बह कर सागर में चला जाता था। लेकिन वह अब इसी तालाब में इकट्ठा होकर सिंचाई के काम आता है। भण्डारदरा के स्थान पर प्रवीरा नदी में २७० फीट ऊँचा एक बन्द बाँधा गया है जिसे विलसन बांध (Wilson Dam) कहते हैं। यह बन्द भारत के सब बन्दों से ऊँचा है। उसमें २०,००० लाख फुट पानी इकट्ठा किया जाता है। इस तालाब से निकाली हुई नहरें लगभग ८५ मील लम्बी हैं और अहमदनगर जिले में इनसे लगभग २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

(ज) मध्य प्रदेश की नहरें

मध्य प्रदेश में अधिकांश सिंचाई तालाबों द्वारा होती है किन्तु इस प्रदेश में तीन मुख्य नहरें भी हैं:—

(१) **महानदी नहर** (Mahanadi Canal) रुद्री नामक स्थान से महानदी से निकाली गई है। शाखाओं-प्रशाखाओं सहित यह ६५० मील लम्बी है। इस नहर द्वारा लगभग ३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

(२) **वैनगंगा नहर** (Wainganga Canal) वैनगंगा नदी से निकाली गई है। यह नहर बालाघाट और भंडारा जिले में लगभग १० हजार एकड़ भूमि सींचती है।

(३) **तन्दुला नहर** (Tandula Canal) तन्दुला और सुखा नदियों के संगम पर दो बाँध बनाकर निकाली गई है। इसके द्वारा रायपुर और द्रुग जिलों की सिंचाई होती है।

भारत में सिंचाई के साधनों का उपयुक्त उपयोग नहीं हो सका है। सम्पूर्ण बोयी गई भूमि के केवल १७% भाग को ही सिंचाई का लाभ उपलब्ध है जैसा कि अगले पृष्ठ की तालिका से स्पष्ट है[१]।

भारत में सिंचाई के विकास की सम्भावनायें

(१) अधिकारी सूत्रों के आधार पर हमें यह विश्वास करना होगा कि भविष्य में सिंचाई की भारी और खर्चीली योजनाओं के विकास का क्षेत्र सीमित है और भारत में हमें कुओं और तालाबों की सिंचाई, विशेषकर जलविद्युत द्वारा संचालित नलकूपों की सिंचाई, पर अधिक जोर देना होगा। किन्तु नहरों

१. India, 1956, p. 158.

(१९५२-५३)

राज्य	बोया गया क्षेत्रफल (हजार एकड़)	सिंचित क्षेत्रफल (हजार एकड़)	बोये गये क्षेत्रफल का प्रतिशत
आंध्र	१५,१५४	४५८८	३०·३
आसाम	५,४९९	१३३९	२४·४
बिहार	२१,२९०	४८९६	२३·०
बम्बई	४१,८६३	२३७२	५·६
मध्य प्रदेश	२९,९३०	१७८२	६·०
मद्रास	१५,३१२	४३८४	२८·७
उड़ीसा	१४,१८७	१९३५	१३·६
पंजाब	११,७३२	५०६८	४३·२
उत्तर प्रदेश	४०,६०९	१२७६०	३१·४
प० बंगाल	१२,१४०	२६२०	२१·६
हैदराबाद	२७,३९९	१४३८	५·२
जम्मू व काश्मीर	१,५९८	६८३	४२·७
मध्य भारत	११,४७०	५८६	५·१
मैसूर	७,९८४	१०४९	१३·१
पेप्सू	४,३०५	२०५५	४७·७
राजस्थान	२२,७२५	२४२७	१०·७
सौराष्ट्र	७,३२९	१८९	२·६
ट्रावनकोर-कोचीन	२८२१	९२१	३२·६
अजमेर	३५४	१४४	४०·५
भोपाल	१६८८	१२	१·३
कुर्ग	१८३	९	४·९
दिल्ली	२२७	८८	३८·८
हिमाचल प्रदेश	६६३	९६	१५·५
कच्छ	१११४	४८	७·६
मनीपुर	२०३	———	———
त्रिपुरा	४८६	———	———
विन्ध्य प्रदेश	४१९५	२१६	५·१
अडंमान निकोबार	११	———	———
कुल	३,०२,४७२	५१,७५१	१७·१

४४

भारत में जिन नवीन योजनाओं का विकास किया जा रहा है वे ये हैं—

नाम	प्रान्त	अनुमानित सिंचाई का क्षेत्रफल (००० एकड़ों में)	अनुमानित भोज्य पदार्थों का उत्पादन (००० टनों में)	कुल खर्च (करोड़ रु० में)
१. दामोदर घाटी	बिहार और पश्चिमी बंगाल	१,०००	३७०	५५·००
२. भाकरा और नांगल	पूर्वी पंजाब	३,५८१	७४७	१०९·२१
३. सादूल	,, ,,	—	—	·६०
४. तुङ्गभद्रा	मद्रास और आंध्र	३,५९१	२१०	३९·१५
५. हीराकुण्ड	उड़ीसा	१,०९५	३४०	४८·८१
६. मोर संचय योजना	पश्चिमी बंगाल	६००	६००	१४·००
७. लक्कावली योजना	मैसूर	१८०	१२०	२०.००
८. घाट प्रभा	बम्बई	१२५	४०	५.४०
९. निचली भवानी योजना	मद्रास	१८०	५	७.२९
१०. राधानगिरी	बम्बई	१९	०	१.६७
११. वीर बांध	बम्बई	९०	२८	२.५०
१२. पीपड़ी बांध	उत्तर प्रदेश	२७	—	१.८६
१३. पीच	केरल	४२	१५	१.५०
१४. कोड़यार	केरल	३०	२४	१.०५
१५. तुंगा एनीकट	मैसूर	२१	१४	१.९९
१६. जवाई	राजस्थान	७०	२१	२.७५
१७. ककरापारा	बम्बई	५६२	१६६	६.२६

की वर्तमान व्यवस्था जैसी कुछ भी है उसमें उन्नति और युक्तिकरण (Rationalisation) का पर्याप्त अवसर है। कुछ नहरों का उपयोग उनकी क्षमता के अनुरूप नहीं हो रहा है। कृषि विषयक अर्थ प्रणाली के हित में आवश्यक है कि यह दोष दूर किया जाय और सम्बन्धित नहरों का उपयोग उनकी पूरी क्षमता के अनुरूप हो।

(२) छोटी-छोटी नहरों के विकास का भी व्यापक क्षेत्र है। नदियों में समय-समय पर बढ़ने वाले पानी का भी उपयोग किया जा सकता है। सम्प्रति नहर व्यवस्था में केवल स्थायी जल (Perennial Water) का ही उपयोग होता है और बहुत-सा पानी बेकार जाता है। अनुकूल पृष्ठभूमि में इस दिशा में पर्याप्त उन्नति की सम्भावना है।

(३) सिंचाई का पानी खेतों तक पहुँचने में और उसके उपयोग करने में पानी का जो नुकसान हो जाता है उसे रोकना होगा क्योंकि इससे नुकसान तो होता ही है साथ ही जहाँ यह पानी बहता है उस भूमि की उर्वरता भी कम हो जाती है। इस अपव्यय के मुख्य कारण ये हैं: (क) किनारों का कटाव, (ख) पानी की दर प्रणाली, (ग) पानी की मांग में युक्तिकरण का अभाव, और (घ) सिंचाई विभाग के कार्यों तथा देख-रेख में ढिलाई।

मोटे तौर पर पानी की कार्यदक्षता का जो आदर्श होना चाहिये उसके २५% का पालन हो रहा है। इस प्रकार युक्तिकरण और उन्नति की काफी गुंजाइश है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि नहर के मूल से लेकर सींचे जाने वाले खेतों के बीच लगभग ५३% पानी या तो इधर-उधर बह जाता है या बीच में ही सूख जाता है। इसकी उन्नति के लिये बहुत कुछ किया जा सकता है।

(४) पानी जमीन में चले जाने से अन्य समस्यायें भी उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें रोकना होगा।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सिंचाई के सहारे लगभग २०० लाख एकड़ भूमि में फसलें उत्पन्न की जाती हैं और इनके निर्माण में एक बिलियन डालर से भी अधिक की धनराशि व्यय हुई है। इस धनराशि से १६८ स्टोरेज और डाइवरशन बाँध, १८४६८ मील लंबी नहरें, १०७ मील लंबी नहरें और १३६०२ पुल बनाने पड़े हैं। सिंचाई के महत्व के अनुसार प्रमुख राज्य ये हैं—कैलीफोर्निया, कोलोराडो, इडाहो, मोनटाना, यूटाहा और व्योमिंग जिनमें ६० लाख से भी अधिक एकड़ पर सिंचाई होती है। ऐरीजोना, नैब्रास्का, नेवाडा, न्यू-मैक्सिको, ओरेगन, टैक्साज और वाशिंगटन में भी सिंचाई की व्यवस्था पाई जाती है।

संयुक्त राष्ट्र के उन भागों में-जहाँ बंजर भूमि थी अथवा जहाँ दलदल थे और जिन्हें कृषि योग्य बनाने में लाखों करोड़ों रुपयों के व्यय की आवश्यकता

थी वहाँ १९०२ से ही संयुक्त राष्ट्र की सरकार ने १५ पश्चिमी राज्यों में लगभग ३० बड़ी-बड़ी सिंचाई की योजनायें कार्यान्वित की हैं। इन योजनाओं के सहारे अब हजारों कृषक-परिवारों का जीवन निर्वाह हो रहा है। इन राज्यों में सींचित भूमि का क्षेत्रफल १८,९४१,००० एकड़ है। ५१,४५००० एकड़ भूमि पर सिंचाई की सम्भावनायें वर्तमान हैं। नदियों के प्रवाह-क्षेत्रों के अनुसार सं० राष्ट्र में सिंचाई का वितरण इस प्रकार है[1]:—

नदियों के प्रवाह-क्षेत्र	कुल सींचित क्षेत्रफल का %	कुल सींचित क्षेत्रफल का% जिस पर सिंचाई की जा सकती है
उत्तरी पैसिफिक बेसिन	१९·१८	१९·७४
द० पैसीफिक और ग्रेट बेसिन	३१·७७	३५·१९
कालोराडो नदी बेसिन	१३·३९	१४·२३
प० खाड़ी प्रवाह प्रदेश	९·४३	६·९३
द० प० मिसीसिपी प्रवाह प्रदेश	३·९१	३·३९
मिस्सौरी प्रवाह प्रदेश	२२·३२	२०·५२
योग (१८,९४१,००० एकड़)	१००·०० (५१,४५९,	००० एकड़) १००·००

सं० राष्ट्र में सिंचाई के लिए उपलब्ध जल में से ८०% धरातलीय जल, १०% भूगर्भीय जल और शेष दोनों का योग होता है। १९५२ में २५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की गई। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि सींचित क्षेत्रफल को ४५०, ५०० लाख एकड़ तक बढ़ाया जा सकता है।[2]

नदियों के मार्गों में उपयुक्त स्थानों पर जल को बड़े-बड़े बाँध बनाकर रोका गया है। कोलम्बिया नदी पर ग्रांड कूली बाँध (Grand Coulie Dam) बनाया गया है जो ४३०० फुट लम्बा और ७२६ फुट ऊँचा है। इसके अन्तर्गत १५० मील लम्बी झील बन गई है।

मध्य घाटी में ऊपरी स्कारमैंटो नदी के ऊपर भी एक बाँध बनाया गया है जिसे शस्ता बाँध (Shasta Dam) कहते हैं। यह ५०० फुट लम्बा है। इसमें ४,५००,००० एकड़ फुट जल जमा होता है। इसमें इतना अधिक पानी रोका जाता है कि जिससे पिट और मैक्लाऊड नदियों के कैनियन भी भर जाते हैं। जब ग्रीष्मकाल में इसमें से जल छोड़ा जाता है तो ६ फुट की एक नव्य-नहर १०० मील की दूरी तक बहती हुई डेल्टा तक चली जाती है। इस बाँध के बन जाने से सैन फ्रांसिसको की खाड़ी का नमकीन जल रुक गया है। इससे बाढ़ों का

१. D. H. Davis : Earth & Man, p. 217.
२. I. Russel : World Population and World Food Supplies, 1956, p. 365.

डर भी जाता रहा है। इस बाँध से इतनी विद्युत शक्ति निर्माण की जायगी कि जिससे इस योजना का आधा खर्चा निकल जायगा। इस शक्ति का प्रयोग स्कारमैंटो नदी की घाटी से अतिरिक्त जल को पम्प करने में किया जायगा। इससे सिंचित क्षेत्रफल मध्य कैलीफोर्निया तक विस्तृत हो जायगा।

इनके अतिरिक्त एरीजोना में साल्ट नदी पर रूजवैल्ट बाँध, रायोग्रान्डे पर एलीफैन्ट बूटे बाँध और ओरेगन रियासत में बोयस के निकट एरोरोका बाँध भी संयुक्त राष्ट्र की सरकार द्वारा सिंचाई के लिए ही बनाये गये हैं।

बोल्डर बाँध या हूवर बाँध (Boulder Dam or Hoover Dam)—कोलोरेडो नदी पर बोल्डर बाँध बनाया गया है जो आंशिक रूप में व्यवहार में लाया जाने लगा है। कोलोरेडो नदी का प्रवाह नियमित करने के लिये कुछ परस्पर सम्बन्धित योजनायें हैं। बोल्डर बांध भी उनमें से एक है, किन्तु है यह सर्व प्रमुख। इन योजनाओं के सम्मुख चार उद्देश्य हैं: (अ) बाढ़ों पर नियन्त्रण, (ब) पानी देना और सिंचाई करना, (स) बिजली बनाना, तथा (द) नावें चलाना। बोल्डर बाँध की आयोजना में नाव चलाने का कोई विचार नहीं रक्खा गया है। इस जल-संग्रह में कोलोरेडो नदी का दो वर्ष का सम्पूर्ण प्रवाह रहेगा। इससे जो जल-विद्युत् निकलेगी वह रूस के नीप्रोस्ट्राय की शक्ति से दो गुणी तथा नियाग्रा के अमरीकी भाग की शक्ति से चार गुणी होगी।

यह योजना संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सिंचाई की सब से बड़ी योजना है। यहाँ पर जल विद्युत भी उत्पन्न की जायगी। इसका लक्ष्य है वाशिंगटन-राज्य में स्नेक नदी के उत्तर में तथा कोलम्बिया नदी के पूर्व में स्थित भूमि एवं उसके आस-पास की भूमि—जो मिल कर लाखों एकड़ होगी—की सिंचाई करना। कास्केड पर्वत की वृष्टिछाया में रहने के कारण इस क्षेत्र में वर्ष-भर में १०" से कम वर्षा होती है। कोलम्बिया नदी में दक्षिण पश्चिम में एक कृत्रिम झील बनाई जा रही है। इसके लिए कोलम्बिया नदी में एक बाँध बनाया गया है। इस झील से लगभग ८०० फुट ऊँचाई पर स्थित लावा के पठार में एक लम्बी सँकरी घाटी में बाँध बना कर दूसरी झील बनाई जायगी जो लगभग १५१ मील लम्बी होगी। कोलम्बिया नदी पर बने हुए बाँध जनित शक्ति से इसमें पम्पों द्वारा पानी पहुँचाया जायगा। इस झील से निकलने वाली नहरें प्रायः सिमेन्ट से बनाई जायँगी।

रॉकी पर्वतों तथा कैलीफोर्निया की खाड़ी के मध्य में यह नदी विभिन्न चट्टानों के प्रदेश को पार करती हुई ग्रेट बेसिन में प्रवेश करती है। वहाँ से चट्टानों के टूट कर पृथक् हो जाने से इसकी घाटी अपने ही ढंग की बन गई है जिसमें छोटी-छोटी पहाड़ियाँ अधिक हैं। ग्रांड केनियन से होकर इसका जो मार्ग गया है उसके समाप्त हो जाने पर कोलोरेडो नदी एक ऐसे क्षेत्र को पार करती है जहाँ एकान्तर रूप से संकीर्ण मार्गों के दोनों ओर कठोर चट्टानों की शिलायें खड़ी हैं। खुले प्रदेश मुलायम तलछट के घिस जाने से बने हैं। ग्राण्ड

के नियन नेवादा को एरोजीना से ठीक उस स्थान पर पृथक् करती है जहाँ यह नदी अपना अंतिम मोड़ खाकर दक्षिण की ओर कैलीफोर्निया की खाड़ी में चल देती है। इस स्थान पर मुख्य बाँध बनाया जा सकता था।

सिंचाई के लिये नियमित रूप से जल प्राप्त करने के निमित्त तथा शक्ति-उत्पादन के लिए एक उपयुक्त बाँध बनाने की आवश्यकता पड़ी। उसके लिये एक कृत्रिम झील बनाई गई है जो २२७ वर्गमील घेरे में है। इसमें नदी के दो वर्ष के औसत प्रवाह का जल लगभग ३०,५००,००० एकड़ फुट संरक्षित रहता है। इसके लिए नदीतल से नींव समेत ७२६ फुट ऊँचा बाँध बनाया गया है जिससे ५८४ फुट गहरा पानी मीड़ झील के रूप में इकट्ठा हो जाता है। इस रीति से बोल्डर बाँध संसार में सर्वोच्च बाँध है। द्वितीय स्थान फ्रांस के सूटेट बाँध (४४६ फुट) का है।

कोलोरेडो जैसी नदी के मार्ग में इतने बड़े आकार का बाँध खड़ा करने में इंजीनियरिंग कला की विजय हुई है। जल के तल से १३६ फुट नीचे नदीतल में नींव डालने से पहले समस्त प्रवाह को कैनियन के बाहर मोड़ देना पड़ा था। यह कार्य चार ५० फुट वाली सुरंगें खोदकर किया गया था। इनकी यौगिक लम्बाई ३ मील थी। जिस स्थान पर बाँध बनने को था उससे पहले ये सुरंगें बनी थीं। इस विधि से पानी बाँध के दोनों ओर बह जाता था और नीचे आकर कुछ दूरी के अनन्तर नदी में फिर मिल जाता था। जल का मुख-परिवर्तन सफलतापूर्वक १३ नवम्बर सन् १९३२ को पूर्ण हुआ था और कैनियन को रिक्त करने का कार्य भी तभी आरम्भ कर दिया गया था। बाँध निर्माण के स्थान को उपर्युक्त विधि से सुखा दिया गया।

अन्ततः यह झील बाँध से ११५ मील की दूरी तक पहुँच जायगी और वर्जित नदी से ३५ मील अलग रहेगी। जल की लाल-भूरी मिट्टी इस झील में बैठ जायगी तो बिजली की मशीन तक पानी निर्मल अवस्था में पहुँचेगा।

कैलिफोर्निया के राज्य को इसका निर्माण पूर्ण होते ही जो लाभ पहुँचेगा वह स्पष्ट ही है। इससे प्रत्यक्ष लाभ इम्पीरियल घाटी (Imperial Valley) के क्षेत्र को पहुँचेगा। इस घाटी तक ८० मील लम्बी नहर द्वारा पानी जायगा। इस प्रकार इस मूल्यवान फलोत्पादक क्षेत्र का कृषि योग्य क्षेत्रफल तीन गुणा हो जायगा। इसके द्वारा लैट्टस, ककड़ियाँ और सब्जी के ८५,००० एकड़ भूमि की सिंचाई हो रही है और २००,००० एकड़ पर घास उगाया जा रहा है। प्रारम्भिक खोज द्वारा ज्ञात होता है कि सींचने योग्य २० लाख एकड़ भूमि का अनुपात इस प्रकार वितरित रहेगा:—नेवादा १, एरीज़ोना ५३ कैलीफ़ोर्निया ८०।

मिश्र

मिश्र में भी सिंचाई का महत्व अधिक है क्योंकि यहाँ सिंचाई के सहारे ही मानव ६००० वर्ष से भी अधिक समय से खेती कर रहा है। ग्रीष्म के आरंभ में एथोपिया में अधिक-वर्षा हो जाने से एटबारा और नीली नील नदियों

सिंचाई से हानियाँ

किन्तु सिंचाई के कुछ दोष भी हैं, यथा—(१) नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र में भूमि इतनी संपृक्त हो जाती है कि उसमें हर समय पानी भरा रहता है (Water-logging) तथा दलदल हो जाता है। इससे मच्छर आदि बहुत पैदा हो जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र की स्कारमैंटो और सैन जुआन नदियों की घाटियों तथा मैक्सिको में भी यही समस्या उठ खड़ी हुई है।

(२) अधिक सिंचाई के कारण भूमि पर क्षार फैल जाता है जिससे भूमि कृषि के अयोग्य हो जाती है। पाकिस्तान में १$\frac{3}{4}$ लाख एकड़ और बम्बई में नीरा घाटी की ५०००० एकड़ भूमि पृथ्वी पर क्षार फैल जाने के कारण खेती के अयोग्य हो गई है। कई बार इस दोष को दूर करने के निमित्त बाढ़ की सिंचाई की जाती है जिससे भूमि पर फैला नमक घुल कर बह जाता है।

(३) अधिक सिंचाई के कारण भूमि से इतनी अधिक फसलें प्राप्त हो जाती हैं कि कृषक को उनका उचित मूल्य नहीं मिलता क्योंकि बाजार में फ़सलों की मात्रा अधिक आ जाने से उनका मूल्य घट जाता है।

(४) यदि बाढ़ की सिंचाई की नहरों का स्रोत बांध आदि होता है तो ग्रीष्म-काल में जल की कमी पड़ जाने के कारण सिंचित क्षेत्रफल में भी कमी हो जाती है।

(४) शुष्क खेती (Dry Farming)

विश्व के उन भागों में जहाँ वर्षा २०" से भी कम होती है वहाँ की जाती है। ऐसे क्षेत्र भारत में पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बम्बई, राजस्थान और सौराष्ट्र में हैं। इस खेती के लिये पहले खेत जोत दिया जाता है जिससे जितना भी जल बरसे वह भूमि में समा जाय। प्रातःकाल इस जोते हुए खेत को छोटे-छोटे पत्थरों से ढक दिया जाता है अथवा पलटा फेर दिया जाता है जिससे सूर्य की गरमी के कारण भूमि से पानी भाप बनकर न उड़ सके। संध्या समय पत्थर हटा दिये जाते हैं जिससे रात को ओस खेत में पड़ सके। इसी क्रिया को कुछ समय तक करते रहते हैं और जब मिट्टी काफी गीली हो जाती है तो उसमें ज्वार, बाजरा, राई, जई, चना, जौ, गेहूँ आदि अनाज बो दिये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उत्तरी पश्चिमी भाग (ग्रेट बेसिन, कोलम्बिया बेसिन और स्नेक नदी का बेसिन), आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया में शुष्क खेती की जाती है।

(५) झूमिंग प्रणाली द्वारा खेती (Jhuming)

आसाम, मध्य भारत, व पश्चिमी घाट और राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भागों में की जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पहले भूमि को वन आदि जला कर साफ कर लेते हैं, फिर पहली वर्षा के बाद उस राखयुक्त मिट्टी में मोटे अनाज आदि बखेर कर बो दिये जाते हैं। इस प्रकार के खेतों से दो या तीन वर्षो तक फसलें प्राप्त की जा सकती है उसके बाद फिर नई भूमि साफ

कर ली जाती है। इस प्रकार की खेती को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। आसाम में भूम (Jhoom), मध्य भारत में डाया (Dahya), हिमालय में खील (Khil), प० घाट में कुमारी (Kumari) और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में वालरा (Valra) कहते हैं।

(६) पहाड़ी खेती (Terrace Cultivation)

विशेषकर पहाड़ी ढालों पर की जाती है। पहाड़ी निवासी ढालों को सीढ़ियों के आकार में काट कर छोटे-छोटे खेत बना लेते हैं और बड़े परिश्रम के साथ आलू, चावल अथवा चाय पैदा कर लेते हैं। इस प्रकार की खेती जावा, सुमात्रा लंका, जापान, चीन, इण्डोचीन आदि देशों में भी की जाती है।

(७) मिश्रित खेती (Mixed Farming)

जव फसलें और जानवर एक ही खेत पर रखे जाते हैं तो इस प्रकार के खेती के तरीके को 'मिश्रित खेती' कहते हैं। इसमें कुछ फसल जानवरों के प्रयोग के लिये पैदा की जाती है। कुछ मनुष्यों के लिये। कुछ फसलें धन देने वाली होती हैं जैसे गन्ना, कपास आदि। खेती के आधुनिक तरीकों में मिश्रित खेती का आम रिवाज है क्योंकि फसलों के साथ साथ जानवरों का पालना भी अत्यन्त आवश्यक है। अतः कृषि कार्य के साथ-साथ दुग्ध उद्योग, मुर्गी पालना, भेड़-बकरी पालना, रेशम के कीड़े पालना आदि धन्धे भी किये जाते हैं।

विश्व की खाद्य स्थिति

सारे संसार के लिये खाद्यान्न और उद्योग-धन्धों के लिए कृषि से कच्चा माल प्राप्त करने के लिये पृथ्वी के धरातल का केवल ७·५% भाग ही उपयोग में लाया जाता है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि सम्पूर्ण पृथ्वी की कृषि योग्य भूमि का ¾ भाग उन १५ देशों में स्थित है जहाँ विश्व की लगभग ६२% जनसंख्या रहती है। अगले पृष्ठ की तालिका में इन १५ देशों में कृषि योग्य भूमि का वितरण बताया गया है।

अनुमान लगाया गया है कि संसार का केवल ५५% भाग ही खेती के लिए उपयुक्त है और शेष ४५% खेती के अनउपयुक्त है। खेती योग्य भाग पर समान रूप से कृषि नहीं की जाती। इसके अतिरिक्त इस भूमि का कुछ भाग उद्योग-धंधों के लिए कच्चा सामान पैदा करने के लिए भी छोड़ना पड़ता है तथा कुछ भाग पर मकान आदि बनाने के लिए भूमि का उपयोग किया जाता है। अतएव इस समय जो क्षेत्र खेती के लिए काम में नहीं आ रहे हैं उनमें मुख्य ये हैं—साइबेरिया, रूस, कनाडा के वे भाग जो उत्तरी वन क्षेत्रों के निकट हैं और जहाँ तापक्रम ३२° से भी कम रहता है तथा एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका के सूखे भाग जहाँ तापक्रम की अधिकता और जल की कमी के कारण खाद्य पदार्थ उत्पन्न नहीं किये जा सकते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से संसार की जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण भोजन की मात्रा में कमी हुई है। सन् १७५० में विश्व की जनसंख्या ७२८० लाख थी, १६००

देश	बोई गई भूमि का क्षेत्रफल (१००० एकड़में)	देश की सम्पूर्ण भूमि में कृषि भूमि का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति पीछे बोई गई भूमि (एकड़ में)	समस्त संसार की कृषि भूमि का प्रतिशत
सं०रा०अमेरिका	४३५,०००	२२·८	३·१३	१७·६
रूस	४१४,०००	७·९	२·४३	१६·८
भारतवर्ष	३८२ ६१०	३७·९	·९८	१५·५
चीन(२२ प्रान्त)	१७७,७१८	१३·८	·२९	७·२
अर्जेन्टाइना	६४,३६५	९·३	४·५६	२·६
कनाडा	६३,३७५	२·९	५·२९	२·५
जर्मनी	४९,९१८	४२·९	·७२	२·०
फ्रांस	४९,३३९	३६·३	१·२२	१·९
पोलैंड	४७,२१९	४९·२	१·४७	१·९
स्पेन	४४,५५६	३५·६	१·६५	१·८
ईरान	४०,७९५	१०·२	२·४७	१·६
मंचूरिया, जेहोल	३८,३८६	११·९	·८९	१·५
इटली	३५,६१०	४९·९	·७७	१·४
आस्ट्रेलिया	३४,८६५	१·७	४·७१	१·४
विश्व का योग	१,८७७,७९५			७५·८%

में यह १६०८० लाख थी और १९३० में २०००० लाख तथा १९५० में २४०८० लाख थी। इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए पहले की अपेक्षा अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। युद्ध के पहले की अपेक्षा इस बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए २१% अधिक अन्न, ४६% अधिक मांस और १००% अधिक दूध चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय संसार में पहले की अपेक्षा ४% अधिक अन्न उपजता है, किन्तु खाने वालों की संख्या पहले की अपेक्षा १२% से भी अधिक है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि जनसंख्या की वृद्धि उन्हीं देशों में अधिक हो रही है जिनमें पहले से ही जनसंख्या अधिक थी और जहाँ भोजन की समस्या पहले से ही कठिन थी। ऐसे देश चीन, जापान, भारत और दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्य देश हैं। किन्तु कुछ समय से इन देशों में पहले की अपेक्षा अधिक अन्न उत्पन्न किया जाने लगा है और अब यह देश खाद्य पदार्थों में प्रायः आत्म-निर्भर से हैं।

डा० राबर्ट स्लैटर के अनुसार पृथ्वी का ४८% भाग खेती के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है किन्तु ५२% ऐसा है जिसमें खेती की वृद्धि के लिए काफी गुंजायश है। उनके विचार से यदि संसार की अनुपजाऊ पोडसोल मिट्टी का केवल १०%

(३० करोड़ एकड़) और उष्ण कटिबन्ध की अनउपजाऊ लाल मिट्टी का केवल २०% (१०० करोड़ एकड़) फिनलैंड और फिलिपाइनस की आधुनिक प्रथाओं के अनुसार ही जोता जाय तो खेती की उपज इतनी बढ़ जायगी कि इस समय जितना भोजन हमको मिलता है १९६० में उससे दूने से भी अधिक मिलने लगेगा। नीचे की तालिका में यह बताया गया है कि १९६० में खाद्य पदार्थों की किस मात्रा में आवश्यकता होगी और किस मात्रा में यह आवश्यकता नई भूमि पर खेती करके पूरी की जायगी।

पदार्थ	१९६० में सम्पूर्ण विश्व की आवश्यकता	खेती योग्य भूमि से प्राप्त होने वाली मात्रा
भोज्य पदार्थ	३६४	७५३
आलू और सब्जी	१९५	५३६
शक्कर	३५	१७९
प्रोटीन	२०	७१
दालें	६६	५६
फल	४११	४७०
मांस	९१	९७
दूध	३००	३२३

संसार में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि करनी है तो दो उपाय काम में लाने होंगे। संसार में ४०,००० लाख एकड़ बेकार भूमि को खेती में लाया जाय और प्रति एकड़ उपज को डेढ़ गुना अधिक कर दिया जाय। दूसरा सुझाव यह है कि यदि अगर खेती के उन्नत साधनों को अपनाया जाय तो वर्तमान खेतिहर भूमि से २०% अधिक उत्पादन किया जा सकता है। अगले पृष्ठ की तालिका में प्रमुख कृषि पदार्थों का क्षेत्रफल बताया गया है।

विश्व में मुख्य फसलों का क्षेत्रफल (१९५०)[1] (दस लाख हैक्टेअर्स में)

फसल	भारत	यूरोप	उत्तरी व मध्य अमेरिका	दक्षिणी अमेरिका	एशिया	अफ्रीका	ओशिनिया	रूस	कुल विश्व का योग
गेहूँ	९·७	२८·७	३६·५	७·६	४७·७	५·६	४·८	४१·०	१३१·३
राई	—	१२·४	१·२	०·८	०·५	—	—	२५·८	१५·०
जौ	३·१	८·६	७·४	१·०	१६·०	५·१	०·५	१०·७	३८·९
जई	—	१२·६	२१·२	०·८	१·५	०·५	०·१	२०·०	३७·६
मकई	३·०	१०.५	३८·८	८·८	१५·६	८·६	०·१	४·६	८२·४
ज्वार-बाजरा	३२·०	०·२	४·४	—	५२·२	१९·७	०·१	२·९	७७·३
चावल	३०·५	०·३	१·१	२·३	८७·६	२·९	—	०·३	९४·२
समस्त अनाज	७८·३	७३·७	११०·६	२१·७	२२१·७	४२·८	६·२	१०४·०	४७३·७
कपास	५ ६	०·३	८·१	२·७	११·३	३·२	—	२·०	२५·६
जूट, सन	०·६	०·६	—	—	१·४७	—	—	—	—
तम्बाकू	०·३४	०·३	०·८	०·२	१·५	०·२	—	०·२	—
आलू	०·२	९·५	१·३	१·३	५·८	१·८	०·१	८·६	१९·५
दालें	८·०	५·३	२·१	२·५	१८·५	२·७	—	—	३१·१
तिलहन	९·४	२·७	१६·६	६·०	४१·५	७·६	—	—	७४·६

१. देखिये F. A. O. Yearbook (1951).

प्रस्तुत चित्र में प्रमुख फसलों के उत्पादन में विभिन्न महाद्वीपों का भाग प्रतिशत में बताया गया है।

संसार में भूमि से जो वस्तुएँ पैदा की जाती हैं उनको हम दो भागों में बाँट सकते हैं :

(क) भोज्य पदार्थ (Food Crops)—इनके अन्तर्गत उष्ण कटिवन्ध और अर्ध उष्ण कटिवंध में पैदा होने वाले अनाज आते हैं जिनमें मुख्य चावल, मकई और मोटे अनाज हैं। इनके अतिरिक्त शीतोष्ण कटिबंधों में गेहूँ, जौ, राई, जई आदि भी पैदा किये जाते हैं।

(ii) पेय पदार्थ (Beverages)— इनके अन्तर्गत चाय, कहवा, काफी और तम्बाकू आते हैं।

(iii) व्यावसायिक पदार्थ (Cash Crops)—इनके अन्तर्गत गन्ना, चुकन्दर, मसाले, तिलहन, सोयाफली और फल आते हैं।

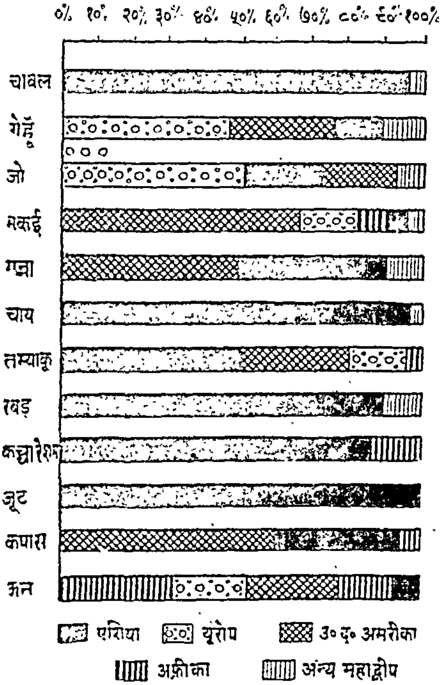

चित्र ११५—फसलों के उत्पादन में विभिन्न महाद्वीपों का भाग

(ख) अभोज्य पदार्थ (Non-Food Crops)—यह पदार्थ उद्योग-धन्धों के लिए कच्चे सामान की तरह काम में लाये जाते हैं। जैसे:—

(१) तिलहन—अलसी, तिल, मूंगफली, विनौली, गरी, ताड़ आदि।

(२) रेशेदार पदार्थ—कपास, जूट, सन, सनई, मनीला हैम्प।

(३) घासें।

(४) रबर, शहतूत आदि।

अध्याय १७

भोज्य पदार्थ (Food Crops)

(१) गेहूं (Wheat)

गेहूँ शीतोष्ण प्रदेश का सबसे महत्वपूर्ण अनाज है, जिस पर पर्सिवल के अनुसार विश्व की अधिकांश सभ्य जातियाँ निर्भर करती हैं। यों तो गेहूँ भी एक बोया हुआ घास है लेकिन इसकी बालियों से जो बीज निकलते हैं वे मनुष्यों के जीवनयापन के लिए एक उत्तम भोज्य-पदार्थ बनाते हैं। अतः इसका महत्व अन्य किसी भोज्य पदार्थ से कहीं अधिक है। विश्व के तीन प्रमुख अनाजों में (गेहूँ, मकई और चावल) गेहूँ का स्थान सर्वोपरि है। विश्व[1] में विभिन्न अनाजों की पैदावार अगले पृष्ठ की तालिका में दर्शाई गई है।

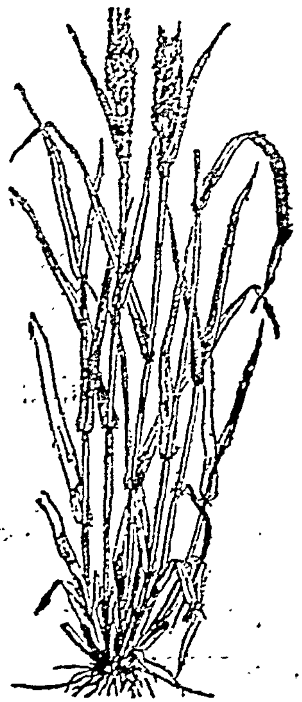

चित्र ११९—गेहूँ का पौधा

यह निर्विवाद सत्य है कि गेहूँ की उत्पत्ति बहुत प्राचीन समय में ही हो गई थी और इसका उपयोग प्राचीन सभ्यताओं में शुरू हो गया था। चीन में इसकी खेती ५ हजार और भारत में ३ हजार वर्ष पूर्व की जाती थी। लेकिन सबसे पहले यह कहाँ पैदा किया जाने लगा था यह अभी भी एक विवादास्पद प्रश्न है। फिर भी ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रारम्भ में यह एशियामाइनर के भूमध्य-सागरीय प्रदेशों, मैसोपोटेमिया या अर्द्ध-ऊष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पैदा हुआ था। गेहूँ शीतोष्ण कटिबन्ध की उपज है अतः ४०° दक्षिणी अक्षांश से ६०° उत्तरी अक्षांशों के बीच में ही पैदा किया जाता है। गेहूँ के बड़े क्षेत्र ३०° और ५५° उत्तर और ३[illegible] [illegible] ४०° द[illegible] के बीच केन्द्रित हैं।[2]

---

१. I. P. Raymond : M[illegible] the G[illegible] p. 29.

२. Smith, Phillips anc[illegible] 73.

विश्व-व्यापी उत्पादन

अनाज	मात्रा	उपज			भारत
		युद्ध-पूर्व	१९५०	१९५३	
गेहूँ	१० लाख बु०	६,०२५	६,३२०	७,१५०	२६८·७
मकई	,,	४,७६०	५,२१०	५,७७५	११४·२
जई	,,	४,३६५	४,१६५	४,०२५	—
जौ	,,	२,३६२	२,४२५	२,७४५	१२७·२
चावल	१० ला० टन	१४९	१५०	१६२	२७·१

विश्व की गेहूँ की कुल उपज का ९०% गेहूँ उत्तरी गोलार्द्ध के शीतोष्ण घास के मैदानों और शेष दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों से प्राप्त होता है।[1]

जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ—साधारण तौर पर गेहूँ ठण्डी जलवायु में ही पैदा होता है परन्तु इसकी उपज तापक्रम, वर्षा व मिट्टी आदि पर भी निर्भर रहती है। अतः गेहूँ उन स्थानों में अच्छा पैदा होता है जहाँ तीन मास का तापक्रम ५०° फा० से ६०° फा० तक रहता है। चूँकि यह ठण्डी जलवायु का पौधा है अतः ७५% प्रतिशत से भी अधिक गेहूँ शीतकालीन ऋतु में बोया जाता है।[2]

जिन स्थानों में तापक्रम साधारण व नमी काफी रहती है (जैसे भारत और मैक्सिको में) वहाँ गेहूँ थोड़े या बहुत रूप में सर्दी में ही पैदा कर लिया जाता है। किन्तु कई स्थानों पर पतझड़ में गेहूँ बोया जाता है। इसे Fall wheat कहते हैं और सर्दी से पहले पौधे को अंकुरित कर लिया जाता है। फिर जब पौधा धीरे-धीरे बढ़ता है उस समय ठण्ड व नमी बहुत लाभदायक होती है। अतः इस समय ठण्ड का होना बहुत जरूरी है, किन्तु फसल पकने के समय तेज धूप भी उतनी ही आवश्यक है। इस कारण वसन्त ऋतु में जब कि नाममात्र की वर्षा, ऊँचा तापक्रम व सूर्य की तेज किरणें गिरने लग जाती हैं, बालियों को पकने के लिए एक उपयुक्त अवसर देती हैं। साथ ही ऐसे सूखे मौसम में फसल काटना भी आसान हो जाता है।

यह अनाज उन प्रदेशों में भी बोया जा सकता है जहाँ काफी ठण्ड और घना कोहरा गिरता हो (जैसे कि मध्य संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में)। लेकिन वसन्त ऋतु काफी नम व तर होनी चाहिये जिससे जमी हुई बर्फ पिघल जाय और गेहूँ आसानी से बोया जा सके। किन्तु पकने के समय तेज धूप और सूखा मौसम नितान्त आवश्यक है। अतः उन प्रदेशों में जहाँ पर कि सर्दियाँ तेज पड़ती हैं (तापक्रम ४०° फा० से भी कम) जैसे रूस और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में,

१. Stamp : Commercial Geography, p. 43

२. Whitbeck and Finch : Economic Geography, 1941, p. 46

शीघ्र पकने वाला गेहूँ बोया जाता है। इसे वसंत ऋतु का गेहूँ (Spring Wheat) कहते हैं।

गेहूँ संसार की खेतिहर भूमि में $\frac{१}{१०}$ भाग से भी अधिक में बोया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि विश्व में १·८ विलिअन एकड़ भूमि पर गेहूँ बोया जा सकता है।[१] ६०° फा० समताप रेखा के ऊपर यह पैदा नहीं होता। इस कारण ५० लाख वर्ग मील एन्टार्कटिक में, ८ लाख वर्गमील ग्रीनलेंड में, ३-४ लाख वर्गमील कनाडा व एलास्का में ४,५००००० वर्गमील उत्तरी यूरेशिया में, १२५००० वर्गमील, दक्षिणी अमेरिका की निम्न भूमियों के प्रदेशों में बिल्कुल नहीं होता। इसी प्रकार दुनियाँ की उच्च भूमियों (जैसे तिब्बत, एण्डीज, राकी पहाड़, थियान श्यान, अल्ताई व एशिया की और श्रेणियों) की ३,०००००० वर्गमील भूमि से भी कुछ आशा रखना बेकार है। इससे यह स्पष्ट है कि निम्न तापक्रम के कारण दुनियाँ की ५७५००,००० वर्गमील भूमि में से १६,८००,००० वर्गमील भूमि में गेहूँ की खेती करना असंभव है।[२]

इस फसल के लिये ९० दिन की कड़ी धूप की आवश्यकता होती है। लेकिन यह कोई निश्चित सीमा नहीं है। स्टेपीज में तो यह १३५° में पकता है। इसके विपरीत बहुत ज्यादा ठण्डक भी हानिकारक होती है। गेहूँ के बोने के समय जलवायु नम व तर होना आवश्यक है। फिर तापक्रम क्रमशः बढ़ना बहुत लाभकारी होता है। पकने के समय गर्म, चमकीले तथा शुष्क और मेघरहित वायुमण्डल की आवश्यकता होती है तथा पकने के कुछ समय पूर्व थोड़ी जल-वृष्टि सहायक होती है, इससे इसका दाना बड़ा होता है। अतएव भूमध्य-सागरीय जलवायु जिसके जाड़े हल्के और वर्षा वाले तथा गर्मियाँ उष्ण और सूखी रहती हैं, गेहूँ के लिए आदर्श जलवायु मानी जाती है।

गेहूँ की पैदावार के लिए ज्यादा तरी की आवश्यकता नहीं होती। डा० ओ० ई० बेकर ने बतलाया है कि गेहूँ १०" की वर्षा से लेकर ४०" वर्षा वाले स्थानों में अच्छी तरह पैदा हो सकता है। शीत प्रदेशों की सीमा के निकट १०" वर्षा व तर स्थानों में ४०" वर्षा साल भर के लिए काफी होती है। जहाँ पर तापक्रम मध्यम होता है वहाँ पर १५" वर्षा होना आवश्यक है अन्यथा बिना सिंचाई के फसल पैदा करना असम्भव होता है। उष्ण-कटिबन्ध के उन भागों में जहाँ शुष्कता रहती है २०" वर्षा होना अनिवार्य है। अति वर्षा व अधिक गर्मी पड़ने से फसल में रोली लग जाती है जो कि फसल को बिल्कुल खराब कर देती है। जलवायु की दृष्टि से पृथ्वी के क्षेत्रफल में ५७,५००,००० वर्गमील में से केवल ११,०००,००० वर्गमील भूमि ही गेहूँ के लिए उपयुक्त है। १७,०००,००० वर्गमील गेहूँ के लिए उपयुक्त है क्योंकि यह बहुत सूखे हैं और १३,०००,००० वर्ग मील बहुत ही तर हैं।[३]

---

१. Jones & Drakenwald : Economic Geography, 1954, p. 264
२. Huntington : Principles of Economic Geography, 1947, p. 27-28
३. *Ibid*, p. 28.

दक्षिणी अफ्रीका-संघ के पूर्वी किनारों पर ग्रीष्म की अति वृष्टि के कारण गेहूँ पैदा नहीं किया जा सकता। इसी तरह विषुवत्‌रेखीय प्रदेश अधिक गर्म व तर होने के कारण गेहूँ की खेती के अयोग्य हैं। गेहूँ ऐसा अनाज है जो अधिक सूखे में हो सकता है, पर अधिक तरी में नहीं। यही कारण है कि एशियाई टर्की में यह काफी शुष्क भागों में पैदा किया जाता है, लेकिन चूँकि बोने के समय पानी की आवश्यकता पड़ती है इसलिए कुछ स्थानों में सूखी खेती (Dry Farming) की रीति अपनाकर (जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में) और कुछ भागों में सिंचाई की व्यवस्था कर (जैसे मिश्र, पाकिस्तान, भारत में) कठिनाई से गेहूँ पैदा किया जाता है।

मिट्टी—गेहूँ की पैदावार में भूमि का इतना महत्व नहीं है जितना कि जलवायु का। अतः गेहूँ दक्षिणी रूस, साइवेरिया, आस्ट्रेलिया और सस्केचवान व टैक्सास के मैदानों की उपजाऊ काली मिट्टी में ही पैदा नहीं होता वरन् फ्रांस की फ्लैन्डर्स जैसी रेतीली कम उपजाऊ भूमि में भी पैदा किया जा सकता है। यद्यपि गेहूँ कई प्रकार की भूमि में पैदा हो सकता है परन्तु हल्की चिकनी मिट्टी या भारी दोमट इसके लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। गेहूँ वाली मिट्टियाँ प्रायः काले रंग की होती हैं जिनमें नाइट्रोजन पैदा करने वाले पदार्थों की उपस्थिति के कारण उपज बहुत होती है। प्रेरीज व स्टेपीज की काली या गहरे भूरे रंग की मिट्टी से जो गेहूँ उत्पन्न किया जाता है उसमें प्रोटीन की मात्रा अधिकता से पाई जाती है क्योंकि यहाँ की मिट्टियों में नाइट्रोजन पदार्थ चूना व उपजाऊ कण अच्छी मिलावट में रहते हैं। इस प्रकार की भूमि अपने अन्दर काफी मात्रा में पानी जमा रखती है और साथ ही कंकड़-पत्थर आदि से भी रहित रहती है। इसलिए यहाँ की भूमि विना खाद के भी अच्छी फसल पैदा करती है और आसानी से जोती जाती है। क्योंकि गेहूँ की फसल जमीन के उपजाऊ तत्वों को जल्दी नष्ट कर देती है इसलिए इसके खेतों को अच्छे खाद की आवश्यकता होती है। हड्डियों व खली का खाद दिया जाता है। इसकी विस्तृत व व्यापक खेती के लिए समतल भूमि सर्वोत्तम होती है, किन्तु गहरी खेती वाले प्रदेशों में खेती के लिए अच्छे ढाल की भी आवश्यकता होती है।

आर्थिक दशाएँ—गेहूँकी खेती के लिए आर्थिक दशाएँ भी वड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। खेती में मशीनों का प्रयोग, फसलों का हेर-फेर, वैज्ञानिक ढंगों एवं उत्तम प्रकार के बीजों का प्रयोग, आधुनिक प्रकार के रासायनिक खादों का उपयोग और यातायात के साधनों की सुविधाओं के कारण ही पिछले कुछ ही वर्षों में गेहूँ के उत्पादन में वड़ी वृद्धि हुई है। मध्य अमेरिका, कनाडा, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया व दक्षिणी अफ्रीका के मैदानों में जहाँ वहुत कम जनसंख्या निवास करती है काफी वड़े पैमाने पर गेहूँ उत्पन्न किया जाने लगा है। खेतों में ट्रैक्टर व कम्वाइन हारवेस्टर (Combine Harvester) का प्रयोग वहुतायत से होता है। ट्रैक्टर से जमीन की गहरी खुदाई होती है और कम्वाइन से वीज वोया जाता है, कटाई होती है तथा अनाज को साफ कर थैलों में भर कर उसका तौल ले लिया जाता है। कम्वाइन हारवेस्टर

दूर उत्तर में बोई जा सकती है। रूस में आर्कटिक वृत्त के भीतर गेहूँ उत्पन्न करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। जल्दी पकने वाली गेहूँ की किस्मों के परिणाम-स्वरूप अब गेहूँ की सीमा उत्तर व सूखे भागों में काफी दूर तक बढ़ गई है।[१]

अब गेहूँ कनाडा में ८०° उत्तरी अक्षांश, एलास्का में (यूकान की घाटी) ६०° से ६५½° अक्षांश, यूरोपीय रूस में ६६° अक्षांश और यूरोप व साइबेरिया में ६४° उत्तरी अक्षांश तक बोया जाता है।[२]

नीचे की तालिका में गेहूँ की प्रमुख किस्में बताई गई हैं:—

किस्में	उत्पादक क्षेत्र	उपयोग
(१) सख्त लाल गेहूँ (Hard Red Spring wheat)	संयुक्त-राष्ट्र, कनाडा, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, रूस	रोटी बनाने में
(२) सख्त लाल जाड़े का गेहूँ (Hard Red Winter wheat)	सं० रा० अमेरिका (कन्सास, नैब्रास्का, ओक्लाहामा, टैक्साज, कोलोरेडो), अर्जेन्टाइना, भारत, चीन, रूस आदि	रोटी बनाने में
(३) मुलायम लाल जाड़े का गेहूँ (Soft Red Winter wheat)	सं० रा० अमेरिका (मिसीरी, इलिनोयास, इंडियाना, ओहियो), चीन, यूरोप	बिस्कुट और डबल रोटी बनाने में
(४) डुरुम (Durum)	कनाडा, इटली, उत्तरी अफ्रीका	मार्कोनी और बिस्कुट बनाने में
(५) श्वेत गेहूँ (White wheat).	आस्ट्रेलिया, चीन, सं० रा० अमेरिका	मार्कोनी और बिस्कुट बनाने में

उपज—साधारण गेहूँ की प्रति एकड़ औसत पैदावार खेती के तरीकों के अनुसार भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होती है। पुराने देशों में जहाँ खेती काफी वैज्ञानिक ढंग पर होती है प्रति एकड़ पैदावार बहुत होती है। लेकिन इसके विपरीत नये देशों में जहाँ सामूहिक खेती (Collective Farming) की जाती है मानव-श्रम का अधिक उपयोग जरूरी है। इस कारण फ्रांस, इङ्गलैंड, डेन्मार्क, हालैंड, व जर्मनी जैसे प्राचीन देशों में २६, ३६, ५२, ४८ और ३५ बुशल गेहूँ प्रति एकड़ पैदा हो जाता है। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया, कनाडा,

१. Changing Out-look in Agriculture, p. 243.
२. Flaksberger and Simronova: Wheat Beyond the Arctic Circle.

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका और अर्जेन्टाइना आदि नये देशों में क्रमशः १६, १७, १७·८ और १५ बुशल ही पैदा होता है। यद्यपि भारत व चीन भी वस्तुतः काफी प्राचीन देश हैं परन्तु वहाँ पर प्रति एकड़ ६ व १० बुशल गेहूँ ही होता है।[1] इसका मुख्य कारण किसानों का अन्ध-विश्वास, अच्छे खाद की कमी व वैज्ञानिक साधनों की शिथिलता है।

गेहूँ की प्रकृति वर्षा के मौसमिक वितरण पर बहुत कुछ आधारित रहती है। साधारणतया सींचे हुए तर प्रदेशों का अनाज मुलायम व स्टार्चयुक्त होता है। इसके विपरीत शुष्क प्रदेशों का गेहूँ सख्त व प्रोटीन से परिपूर्ण होता है। इस तरह अमेरिका व रूस में सख्त (Hard) और पश्चिमी यूरोप में मुलायम (Soft) गेहूँ पैदा होता है। आजकल अच्छे से अच्छा आटा प्राप्त करने की दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार के गेहूँ का श्रेणीकरण किया जाता है।[2]

रंग के अनुसार भी गेहूँ का विभाजन किया जा सकता है, जैसे (१) सफेद गेहूँ व (२) लाल गेहूँ। सफेद गेहूँ माड़ीदार व मुलायम होते हैं जब कि लाल गेहूँ लसरदार व सख्त होते हैं। आस्ट्रेलिया में सफेद गेहूँ की किस्म अधिक होती है और अमेरिका में लाल रंग के गेहूँ बहुतायत से होते हैं।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों की भौगोलिक स्थिति में भिन्नता होने से गेहूँ के क्षेत्रफल का विस्तार इतना अधिक है कि यह साल के प्रत्येक महीने में संसार के किसी न किसी भाग में काटा जाता है। इसलिए किसी भी जगह की माँग की पूर्ति आसानी से हो जाती है और मूल्य अपनी साधारण स्थिति से कभी भी ऊपर नहीं उठने पाता। निम्नलिखित तालिका दुनियाँ के विभिन्न देशों में गेंहूँ काटने का समय सूचित करती है:—[3]

महीना	देश
जनवरी	चिली, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड।
फरवरी	अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, मिश्र, भारत।
मार्च	भारत, उत्तरी मिश्र।
अप्रेल	भारत, मिश्र, मैक्सिको, क्यूबा, फारस, सीरिया।

१. Stamp & Glimour : Chisholm's Handbook of Commercial Geography, 1954, p. 125.
२. Stamp—A Commercial Geography, p. 45
३. Stamp & Glimour, *Ibid*, p. 132

महीना	देश
मई	संयुक्त-राष्ट्र, चीन, जापान, स्पेन, मोरक्को, एलजीरिया, ट्यूनिस।
जून	संयुक्त-राष्ट्र, फ्रांस, भूमध्यसागरीय प्रदेश, अफानिस्तान जापान।
जुलाई	कनाडा, रूस, मध्य-यूरोप, फ्रान्स, हंगरी।
अगस्त	कनाडा, रूस, इंग्लैंड, नीदरलैंड, जर्मनी, बेल्जियम।
सितम्बर	रूस, इङ्गलैंड, नार्वे, स्वीडेन, स्कॉटलैंड।
अक्टूबर	फिनलैंड, उत्तरी रूस।
नवम्बर	पीरू, दक्षिणी-अफ्रीका।
दिसम्बर	आर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, ब्रह्मा।

उत्पादन-क्षेत्र—

संसार में गेहूँ उत्पन्न करने वाले देशों को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं:—

(१) पश्चिमी और मध्य यूरोप के घने आबाद देश, जहाँ इसकी गहरी खेती की जाती है। यहाँ थोड़ी भूमि से वैज्ञानिक साधनों द्वारा अधिक उपज की जाती है।

(२) तुलनात्मक दृष्टि से यूरोप के पूर्वी व दक्षिणी-पूर्वी कुछ कम आबाद देश, जहाँ खेती करने का तरीका न तो पूर्णतः वैज्ञानिक ही है और न तीव्र गति से उपज बढ़ाने वाला ही है। यहाँ पर प्रति एकड़ १० से १५ बुशल तक अनाज हो जाता है।

(३) बहुत कम आबाद देश जैसे कनाडा, अर्जेन्टाइना और आस्ट्रेलिया, जहाँ जमीन बहुत है अतः मशीनों द्वारा विस्तृत पैमाने पर खेती की जाती है। प्रति एकड़ पैदावार २० बुशल से कम है परन्तु खेती में अधिक भूमि के उपयोग होने से परिमाण में गेहूँ अधिक होता है, अतः विदेशों को काफी भेजा जाता है।

गेहूं का उत्पादन

देश	क्षेत्रफल १९३४-३८ (१००० हेक्टर्स में)	क्षेत्रफल १९५२	उत्पादन १९३४-३८ (१००० मेट्रिक टनों में)	उत्पादन १९५२	प्रति एकड़[1] उपज
फ्रांस	५.२२४	४,२८७	८,१४३	८,३९८	१,५९४
हंगरी	१५८९	—	२२२०	—	४१६
इटली	५०४०	४६७९	७२५४	७७८१	१,३७१
पोलेंड	१३४३	—	१९६५	—	—
रोमानिया	२५३७	—	२६००	—	५१२
रूस	४०९२०	—	३८०९०	—	८३०
कनाडा	१०१३४	१०९३५	७१७०	१२५६५	१,०५०
संयुक्त राष्ट्र	२२४३१	२८४९२	१९४७६	३५३३४	९४९
अर्जेन्टाइना	६७८३	५६१६	६६३४	७३८६	८९८
चीन (२२ प्रांत)	२०१५४	—	२१७४३	२१६९५	८७४
भारत	१०३१२	९७५९	७१३९	५८६१	५८६
पाकिस्तान	३७६६	४०२६	३१८३	३३४२	८३३
टर्की	३४५०	५६००	३४१३	६४००	—
आस्ट्रेलिया	५२५३	४०९०	४२००	५२५२	९७७
सम्पूर्ण विश्व	१२८०००	१३६५००	१२८७००	१६४०००	—

श्री फिन्च और बेकर के अनुसार दुनियाँ में प्रमुख रूप से गेहूँ उत्पादन करने वाले प्रदेश ये हैं :—

(१) दक्षिणी रूस व डेन्यूब की घाटी के मैदान।
(२) भूमध्यसागर के किनारे वाले देश।
(३) उत्तरी पश्चिमी यूरोप के देश।
(४) संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका और कनाडा।
(५) अर्जेन्टाइना।
(६) दक्षिणी आस्ट्रेलिया।
(७) एशिया में भारत, पाकिस्तान, चीन आदि देश।

---

1. Indian Agriculture in Brief : 1956, p. 35

(३) **उत्तरी अमेरिका**—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व कनाडा गेहूँ की पैदावार के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। अमेरिका में गेहूँ का केन्द्र खास तौर पर मध्य की नीची भूमियाँ हैं लेकिन इसके पूर्ववर्ती भागों में भी इसकी खेती की जाती है। प्रेरीज के उत्तरी तरफ गेहूँ का क्षेत्र आर्कटिक और अर्ध आर्कटिक के ठण्डे जंगलों तक फैला हुआ है। संयुक्त राष्ट्र में उत्तरी भाग जो कि कनाडा के दक्षिण की तरफ फैला हुआ है और उत्तरी डकोटा व रियो नदी (Rio River) तक पहुँचता है बसन्त के गेहूँ (Spring wheat) की पैदावार के लिए प्रख्यात है। मध्य की रियासतों के परे गेहूँ आक्लो-हामा, कन्सास और नीब्रास्का में सर्द ऋतु में गेहूँ पैदा किया जाता है। कनाडा में सर्वत्र गेहूँ की खेती नहीं होती। वहाँ गेहूँ की तमाम पैदावार खास तौर पर मनीटोबा, सस्केचवान, एलबर्टा और ओन्टेरियो में ही होती है। इसमें भी विनी-पेग और पोर्ट आर्थर गेहूँ की पैदावार के मुख्य केन्द्र हैं। आजकल गेहूँ का क्षेत्र पश्चिम की ओर अलबर्टा, कन्सास, उत्तरी डकोटा, नीब्रास्का, ओकलोहामा, इलीनोस, मिसोरी, मिनीसोटा, ओहियो आदि दूसरी रियासतों (States) की

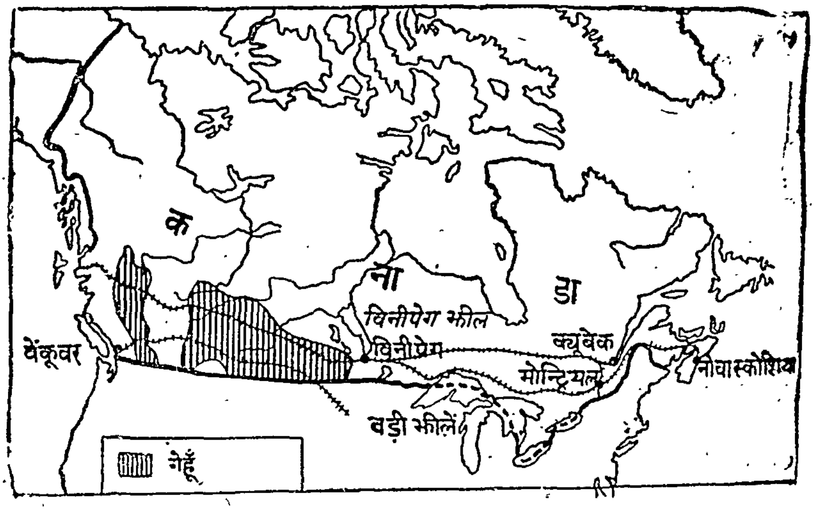

चित्र ११६—कनाडा में गेहूँ के खेत

ओर क्रमशः बढ़ता जा रहा है जब कि मनीटोबा और सस्केचवान का महत्व भूमि के कमजोर होते जाने से दिन-प्रति-दिन घट रहा है। साथ-साथ इन पश्चिमी प्रदेशों में आवागमन के साधनों के उन्नत होने जाने से भी इस ओर काफी असर पड़ा है। इसके अलावा लाल नदी की घाटी भी गेहूँ की पैदावार के लिए बहुत मशहूर है। यहाँ पर इतना अधिक गेहूँ पैदा होता है कि लोग इसे "दुनिया का भोजन भण्डार" (Bread Basket of the World) के नाम से पुकारना पसन्द करते हैं। इन सबके अतिरिक्त शिकागो, मिनियापोलिस, डुलुथ और बफेलो आदि गेहूँ के मुख्य केन्द्र हैं। इन स्थानों पर प्रचुर मात्रा में अनाज इकट्ठा किया जाता

है। यहाँ के अन्न भण्डार इतने बड़े-बड़े हैं कि उनमें १,००,००० से २,५००,००० बुशल तक अनाज भरा जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व कनाडा के प्रेरीज गेहूँ की खेती के लिए विश्वविख्यात हैं। यहाँ के लम्बे-चौड़े समतल मैदान, उपजाऊ भूमि, साधारण वर्षा, आवश्यक गर्मी व मशीनों का प्रयोग आदि सब बातें मिलकर कुछ ऐसी सुविधायें प्रदान करती हैं कि जिससे ये घास के मैदान आदर्श गेहूँ के खेतों के रूप में परिणत हो गये हैं। लेकिन यहाँ हमें यह न भूल जाना चाहिए कि इन नये मैदानों की प्रति एकड़ पैदावार पुराने प्रदेशों से बहुत कम है। यहाँ की अधिक से अधिक प्रति एकड़ पैदावार ११ से लगाकर १६ बुशल तक है।

राकी पहाड़ों के पीछे पश्चिमी प्रेरीज के प्रदेश बहुत सूखे हैं। यहाँ की वार्षिक वर्षा ५" से १०" तक है। अतः यहाँ पर स्नेक नदी की उत्तरी घाटी, केलिफोर्निया की घाटी और ग्रेट बेसिन के पठार पर ही कुछ पैदावार की जाती है। यहाँ पर गेहूँ सींचे हुए भू-भागों पर सूखी खेती (Dry Farming) के तरीकों के आधार पर पैदा किया जाता है।

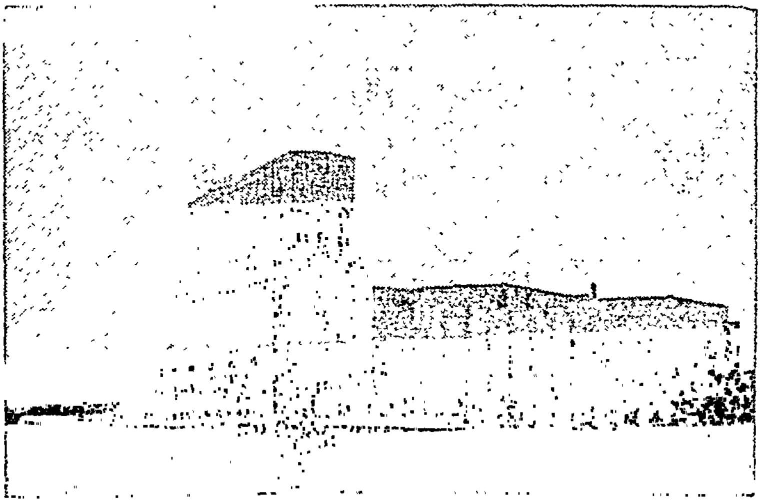

चित्र १२०—कनाडा के 'एलीवेटर'

चूँकि प्रेरीज के मैदान ठण्डी जलवायु में स्थित हैं इस कारण सर्दी में ये बर्फ की सफेद चादर से ढँक जाते हैं। अतः वसन्त ऋतु में जब कि बर्फ पिघल जाती है और जमीन तर रहती है गेहूँ बोया जाता है। गेहूँ बोने का काम मध्य अप्रैल या मई के शुरू तक समाप्त कर दिया जाता है। क्योंकि यहाँ पर ग्रीष्म-ऋतु बहुत छोटी है और फसल पकने के लिए लम्बे समय की आवश्यकता होती है इसलिए लोग दिन-रात काम करके जल्द से जल्द फसल बोने का कार्य समाप्त कर देते हैं।

यहां पर ग्रीष्म के आरम्भ में कुछ बौछार हो जाती है जो गेहूँ की फसल के लिए बहुत लाभदायक होती है। साथ-साथ तापक्रम भी क्रमशः ऊँचा होता जाता है इससे गेहूँ के पौधे कुछ हफ्तों में बढ़कर छः इन्च ऊँचे हो जाते हैं। आम तौर पर मध्य जुलाई तक फसल पक जाती है और एक महीने में कटने योग्य हो जाती है। जब अनाज पक जाता है तो उसे मशीनों द्वारा काट लिया जाता है। अनाज काटने में Size-Binders मशीन का बहुत प्रयोग किया जाता है। यह एक साथ ६ से ८ फुट तक के घेरे के अनाज को काट लेती है और इकट्ठा कर देती है। कुछ मशीनें काटने व नाज साफ करने का दोनों काम साथ-साथ कर देती हैं। कई जिलों में Cargo Machines का प्रयोग किया जाता है जो कि एक दिन में ५०० से २००० बुशल तक अनाज को कूट-छाँटकर साफ कर देती हैं। ये एक जगह से दूसरी जगह को आती-जाती रहती हैं। अनाज के साफ हो जाने के बाद वह बम्बों द्वारा रेल के डिब्बों में भर दिया जाता है जो कि अनाज को अन्न-भण्डारों (Elevators) तक पहुँचा देते हैं।

उत्तरी अमेरिका के भिन्न-भिन्न भागों में पैदा होने वाला गेहूँ जलवायु और भूमि से बहुत प्रभावित होता है। मिसीसीपी नदी के पश्चिम में जो मैदानी भाग हैं वहाँ पर सूखी जलवायु व काफी मिट्टी पाई जाती है। अतः यहाँ पर सरदी व बसन्त दोनों मौसमों में पैदा होने वाला गेहूँ पूर्वी भागों की अपेक्षा सख्त और प्रोटीन-युक्त होता है। इसके विपरीत कोलम्बिया के पठार व प्रशान्त महासागर के किनारे के क्षेत्रों का गेहूँ अक्सर रंग का और स्टार्च-युक्त होता है। चूँकि सफेद किस्म का गेहूँ ठण्डी-तर जलवायु और कम उपजाऊ तत्वों वाली भूमि में अच्छी तरह बढ़ सकता है इस कारण इन भागों में सफेद किस्म का गेहूँ बहुतायत से होता है।

संयुक्त राष्ट्र में शीतकालीन गेहूँ चार क्षेत्रों में पैदा किया जाता है:— (१) मध्य पश्चिमी क्षेत्र जिसमें नैब्रास्का, टैक्साज, कैन्सास और आक्लोहोमा की रियासतें सम्मिलित हैं; (२) पूर्वी तटीय क्षेत्र जिसमें मैरीलैंड, वर्जीनिया और पैन्सिलवेनिया की रियासतें हैं; (३) झीलों का क्षेत्र जिसमें ओहीयो, इंडियाना, मिशीगन, इलीनोस की रियासतें शामिल हैं; तथा (४) पश्चिमी क्षेत्र जिसमें वाशिंगटन और औरेगन की रियासतें सम्मिलित हैं। बसन्तकालीन गेहूँ उत्तरी डकोटा, दक्षिणी डकोटा, मोंटाना और मिनैसोटा में पैदा होता है।

सन् १९५२ में संयुक्त-राष्ट्र में ३५.३ लाख टन और कनाडा में १२५ लाख टन गेहूँ पैदा हुआ। कनाडा का गेहूँ न्यूयार्क (४०%); वैंकुँवर (२५%); मॉंट्रियल (१५%) और हैलिफेक्स, सेंटजान्स, पोर्टलैंड (२०%) के बन्दरगाहों द्वारा यूरोप को निर्यात किया जाता है।

(४) अर्जेन्टाइना—दक्षिणी गोलार्द्ध में यह प्रमुख गेहूँ उत्पन्न करने वाला देश है। यहाँ के प्रेरीज के प्रदेश जो कि पहले बड़े घास के मैदान थे विज्ञान और कृषि-कला के कारण बड़े-बड़े अनाजों के खेतों में परिणत हो गये हैं। प्लाटा नदी अपनी एसच्यूरी से लेकर ऊपर ३०० या ४०० मील तक पंते के

समान एक बड़ा उपजाऊ मैदान बनाती है। यहाँ की शीतोष्ण जलवायु और २०" तक वर्षा दोनों ही फसल के लिए उपयुक्त हैं। यह मैदान पहले घास व पौधों से ढका हुआ था लेकिन अब २०० लाख एकड़ भूमि गेहूँ की खेती के लिए उपयोग में लाई जाती है। गेहूँ पैदा करने वाले देशों में अर्जेन्टाइना का कनाडा के बाद दूसरा स्थान है। यहाँ से बहुत बड़ी मात्रा में (करीब ३/४) गेहूँ ब्यूनसआयर्स व बाहिया-ब्लैंका के बन्दरगाहों से ब्रिटेन को निर्यात किया जाता है।

(५) **आस्ट्रेलिया**—आस्ट्रेलिया में न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया मुख्य गेहूँ उत्पन्न करने वाले राज्य हैं। गेहूँ पैदा करने वाले मुख्य क्षेत्र मुख्यतः शीतोष्ण घास के मैदानों में पाये जाते हैं। भूमध्यसागरीय प्रदेशों के दक्षिण व दक्षिण-पश्चिम के भागों व पूर्वी उच्च प्रदेशों के भीतरी भागों में बहुत गेहूँ उत्पन्न किया जाता है। ये भाग अयन रेखाओं के पीछे या उन जगहों में जहाँ १०" से ३०" तक वर्षा होती है पाये जाते हैं।

पूर्व में सिंचाई और सूखी खेती के साधनों द्वारा फसल में आश्चर्यजनक उन्नति कर ली गई है। ये साधन उन्हीं जगहों पर व्यवहार में लाये जाते हैं जहाँ पर ये किफायत से लागू किये जा सके हैं। भूमध्यसागरीय प्रदेशों की सूखी व उष्ण गर्मियाँ अनाज के पकने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। आस्ट्रेलिया में यद्यपि गेहूँ की प्रति एकड़ पैदावार बहुत कम है लेकिन फिर भी धीरे-धीरे खेती के उन्नत साधनों द्वारा प्रति एकड़ पैदावार बहुत बढ़ा ली गई है। यहाँ पर खेती में कम्बाइन हारवेस्टर का काफी उपयोग होता है। यह गेहूँ को काटने, साफ करने व इकट्ठे करने का सब काम कर देती है। प्रतिदिन ये १० से २५ एकड़ तक, मशीन की कार्य-क्षमता के अनुसार, गेहूँ को साफ कर बोरों में भर देती है। यहाँ पर फसल पतली लेकिन अच्छी होती है।

(६) **भारत**—संसार के गेहूँ पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान गेहूँ के क्षेत्रफल और उसकी उत्पत्ति के हिसाब से चौथा है। यहाँ विश्व का १/१० भाग गेहूँ पैदा होता है। भारत में गेहूँ दो क्षेत्रों में अधिक होता है। उत्तरी भारत का क्षेत्र जिसमें उत्तर-प्रदेश (जिसमें देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फर नगर, मेरठ, मुरादाबाद, इटावा, शाहजहाँपुर, बदायूँ और नैनीताल सम्मिलित हैं), पंजाब तथा बिहार राज्य हैं और दक्षिणी भारत का क्षेत्र जिसमें मध्य-प्रदेश मुख्य है। भारत में उत्तरी भागों में गेहूँ मार्च के अन्त तक, मध्य-प्रदेश में मार्च और दक्षिणी भारत में दिसम्बर में काटे जाते हैं। यहाँ की औसत पैदावार केवल ६३६ पौण्ड प्रति एकड़ है किन्तु जिन स्थानों में सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं वहाँ प्रति एकड़ पैदावार अधिक होती है। प्रति एकड़ पैदावार कम होने का मुख्य कारण भारतीय किसानों की दरिद्रता, अशिक्षा और उत्तम बीजों का अभाव और खादों का पूरा उपयोग नहीं किया जाना है। देश की कुल पैदावार का ४५% देहातों में ही खप जाता है, केवल ५५% मन्डियों में लाया जाता है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक भारत काफी मात्रा में गेहूँ निर्यात करता था किन्तु अब कई वर्षों से हमें जनसंख्या की वृद्धि हो जाने और

गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों के पाकिस्तान में चले जाने से लगभग १५० करोड़ रुपये का गेहूँ विदेशों से आयात करना पड़ता है। सन् १९५५-५६ में भारत में २९,२२५ हजार एकड़ भूमि पर ८,३४८ हजार टन गेहूँ पैदा किया गया। नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न भागों में गेहूँ की बोआई और कटाई का समय बताया है—

भारत के विविन्न प्रदेशों में गेहूँ के बोआई व कटाई का समय

राज्य	बोआई का समय	कटाई का समय
अजमेर-मारवाड़ा	नवम्बर-दिसम्बर	मार्च-अप्रैल
बिहार	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च-अप्रैल
बम्बई	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च
मध्य प्रदेश	अक्तूबर-नवम्बर	फरवरी-मार्च
पूर्वी पंजाब	अक्तूबर-दिसम्बर	मार्च-मई
उत्तर प्रदेश	अक्तूबर	मार्च-अप्रैल
पश्चिमी बंगाल	नवम्बर-दिसम्बर	फरवरी-अप्रैल
बड़ौदा	अक्तूबर-दिसम्बर	मार्च-मई
भोपाल	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च
हैदराबाद	सितम्बर-अक्तूबर	फरवरी-मार्च
काश्मीर	अक्तूबर-नवम्बर	अप्रैल-मई
मैसूर	अक्तूबर	फरवरी
रामपुर	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च-अप्रैल

(७) पाकिस्तान—पश्चिमी पाकिस्तान में गेहूँ के मुख्य उत्पादन क्षेत्र पश्चिमी पंजाब, सिन्ध और उत्तरी पश्चिमी सीमा-प्रान्त हैं। इन तीनों क्षेत्रों में एक करोड़ एकड़ भूमि पर गेहूँ उगाया जाता है और वार्षिक उत्पादन ४० लाख टन है। पश्चिमी पाकिस्तान में गेहूँ नवम्बर-दिसम्बर में बोया जाकर मई तक काटा जाता

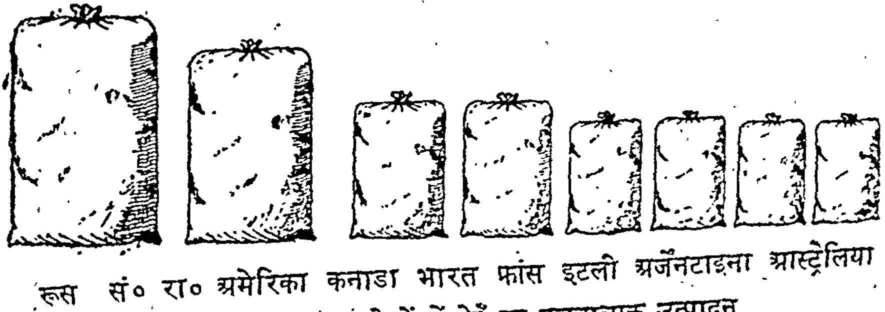

चित्र १२१—प्रमुख देशों में गेहूँ का तुलनात्मक उत्पादन

है। पश्चिमी पंजाब में गेहूँ की प्रति एकड़ पैदावार ७०० पौण्ड और सिन्ध में ६०० पौण्ड है। मुजफ्फरगढ़, अटक, झेलम और सियालकोट जिलों में ५०%, ६०% कृषि-भूमि पर गेहूँ बोया जाता है। पूर्वी पाकिस्तान में अधिक वर्षा के कारण गेहूँ की खेती सम्भव नहीं है किन्तु फिर भी राजशाही, पाबना और कुस्तिया जिलों में थोड़ा-बहुत गेहूँ पैदा किया जाता है। पूर्वी पाकिस्तान में ६४,००० एकड़ भूमि से २०,००० टन गेहूँ उत्पन्न किया जाता है। पश्चिमी पाकिस्तान में माँग से अधिक गेहूँ उत्पन्न होता है, अतः निर्यात किया जाता है।

गेहूँ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—गेहूँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से खाद्यान्नों में सबसे मुख्य है। निम्न तालिका में गेहूँ का निर्यात व्यापार बताया गया है—

(१० लाख मैट्रिक टनों में)

देश	१९४८–४९	१९५०–५१
संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका	१३·८०	१०·२५
कनाडा	६·०४	६·१४
आस्ट्रेलिया	३·४२	३·४६
अर्जेन्टाइना	१·६५	२·८१
अन्य देश	२·०९	२·७३
	२७·००	२५·३९

प्रति वर्ष लगभग २५ लाख टन गेहूँ का व्यापार होता है। इसका लगभग ९४% यूरोप (रूमानिया, हँगरी, बलगेरिया और पोलैंड को छोड़कर) और शेष कनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना व संयुक्त-राष्ट्र से आता है।

गेहूँ आयात करने वाले देशों में ब्रिटेन का स्थान पहला है। यह विश्व के कुल आयात का लगभग ४०% होता है। अन्य आयातक जर्मनी, बेल्जियम, हालैंड, ब्राजील, डेनमार्क, इटली, जापान, चीन, मंचूरिया और भारत हैं। गेहूँ आयात करने वाले देशों को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम देश वे हैं जहाँ खेती की अपेक्षा उद्योग-धन्धों पर अधिक ध्यान दिया जाता है—यथा जर्मनी, ब्रिटेन व इटली। दूसरे प्रकार के देश वे हैं जहाँ काफी गेहूँ पैदा होता है किन्तु अधिक जन-संख्या के कारण पूरा नहीं पड़ता अतः विदेशों से गेहूँ मँगवाया जाता है—भारत, चीन, डैन्मार्क, बेल्जियम और हालैंड। तीसरे प्रकार के देश वे है जहाँ खेती प्रधान धन्धे होते हुए भी अन्य फसलों—चाय, कहवा आदि को अधिक महत्व दिया जाता है—जैसे ब्राजील, मंचूरिया आदि।

१९४९ में वाशिंगटन में विश्व गेहूँ समिति का अधिवेशन हुआ जिसमें विश्व के ३५ आयात करने वाले और पाँच निर्यात करने वाले देशों (कनाडा, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस, आस्ट्रेलिया और यूरुग्वे) के बीच एक चतुर्वर्षीय समझौता

हुआ। इसके अनुसार इन देशों ने प्रति वर्ष ४५६० लाख बुशल गेहूँ निर्यात करने का आश्वासन दिया। इनमें से कनाडा २०३० लाख बुशल, सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका १६८० लाख बुशल, आस्ट्रेलिया ८०० लाख बुशल, फ्रांस ३० लाख बुशल और यूरुग्वे २० लाख बुशल देने को थे। १९५३ से तीन वर्षों के लिए इस समझौता को और बढ़ाया गया है। इसमें भी उपरोक्त पाँचों देश सम्मिलित हैं।

रूस, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, और कनाडा सबसे मुख्य गेहूँ निर्यात करने वाले देश हैं। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका अधिकतर आटे का निर्यात करता है जब कि कनाडा और अर्जेन्टाइना सिर्फ गेहूँ ही बाहर भेजते हैं। इन देशों में आबादी बहुत कम है अतः काफी तादाद में अनाज बच रहता है। साधारण तौर पर कनाडा, अर्जेन्टाइना और आस्ट्रेलिया अपनी कुल पैदावार का क्रमशः २३ प्रतिशत, ११ प्रतिशत और १३ प्रतिशत गेहूँ निर्यात करते हैं।

उपयोग—खाद्यान्नों में गेहूँ ही एक ऐसा पदार्थ है जिस पर कि संसार की अधिकांश जन-संख्या निर्भर करती है। गेहूँ के इतने बड़े परिमाण में प्रयोग में आने के कई कारण हैं[1] :—

(१) काफी लम्बे अनुभव से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि भोजन की फसलों में गेहूँ की पैदावार ही विशेष उपयुक्त है। चूँकि यह अधिक पौष्टिक और सफलतापूर्वक पैदा हो सकने वाली तथा भिन्न-भिन्न जलवायु व भूमि में पैदा हो सकने वाली उपज है अतः इसकी पैदावार बहुत सुविधाजनक पड़ती है। इसके विपरीत इसकी प्रति एकड़ पैदावार भी बहुत होती है और आसानी से एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाई जा सकती है।

(२) खाद्यान्नों में गेहूँ में ही अच्छी मात्रा में प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट और विटामिन्स मिलते हैं। इस कारण अगर मनुष्य को कोई दूसरा भोजन न मिले तो भी वह केवल गेहूँ पर ही काफी समय तक आरोग्य रह सकता है। इस दृष्टि से यह चावल से कई गुना अच्छा है।

(३) गेहूँ दूसरे खाद्यान्नों से काफी पाचक और स्फूर्तिमान भोजन है। इसलिए जहाँ कहीं भी यह सुलभ हो सकता है अधिकतर आदमी चावल, जौ, राई और ज्वार-बाजरे की अपेक्षा इसे ही पसन्द करते हैं।

(४) गेहूँ और जौ को छोड़कर कोई भी अनाज ऐसी भिन्न-भिन्न जलवायु में पैदा नहीं हो सकता। इसकी सत्यता का प्रमाण यही है कि यह पतझड़ और वसन्त दोनों ऋतुओं में ही बोया जा सकता है। इसलिये आजकल इसकी कई नई किस्में जो कि काफी ठण्डे जलवायु और अनुपयुक्त भूमि में पैदा हो सकती हैं, निकाली गई हैं। जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में फल्कास्टर (Fulcaster), होप (Hope), मारक्वीलो (Marquillo) आदि।

(५) गेहूँ इतना सख्त और तेलरहित होता है कि दूसरे खाद्यान्नों की अपेक्षा यह काफी समय तक अच्छी तरह टिक सकता है।

---

1. E. Huntington : Principles of Economic Geography, p. 205

(६) इसकी अन्य विशेषता यह है कि आर्थिक दृष्टि से भी इसकी पैदावार में कम खर्च होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जहाँ से इसकी बुवाई आरम्भ होती है वहाँ से फसल कटने तक सब काम मशीनों से होता है।

(७) गेहूँ को आटे के रूप में या वैसे भी काफी लम्बे समय तक रख सकते हैं। इस कारण दूसरे अनाजों से यह ज्यादा अच्छा है।

गेहूँ मनुष्यों का मुख्य भोज्य पदार्थ होते हुए भी जानवरों के लिए एक अमूल्य भोजन है। यह मुर्गी पालने के सहयोगी धन्धे को सहायता देता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और कनाडा में यह पशुओं और सुअरों को खिलाने के काम में लाया जाता है। इटली और दक्षिणी फ्रांस में इसके आटे से "मारकोनी" (Marconi) नामक दलिया तैयार किया जाता है। इसी के अनुसार "वारनीसीली" (Verniceli) भी तैयार की जाती है। ये दोनों किस्में सख्त गेहूँ से तैयार की जाती हैं। इटली में आटे से कई तरह के दलिये (Pastes) बनाये जाते हैं जबकि संयुक्त राष्ट्र व कनाडा में भी इससे कई चीजें तैयार कर Force और Grape Nuts आदि व्यापारिक नामों से बेची जाती है। गेहूँ से कई प्रकार की पकाई हुई या तैयार की हुई भोज्य सामग्रियों का काफी तौर पर व्यापार होता है जैसे बिस्कुट और डबल-रोटियाँ आदि। चीन में गेहूँ का उपयोग पका कर 'Noodles' और 'Dumplings' के रूप में किया जाता है।[१]

(२) चावल (Rice)

चावल उष्ण और अर्द्धउष्ण-कटिबन्धों की उपज है। संसार में चावल की खेती के क्षेत्र ४५° उत्तरी अक्षांश और ३०° दक्षिणी अक्षांशों के बीच फैले हैं। उत्तरी जापान, केलीफोर्निया और मंचूरिया में ३५° उत्तरी अक्षांश; इटली में ४४° अक्षांश; मैडेगास्कर में २०° दक्षिणी और दक्षिणी अमेरिका में ३०° दक्षिण तक बोया जाता है। लेकिन यह उष्ण कटिबन्ध के मानसूनी प्रदेशों के लिये विशेष अनुकूल है। यद्यपि दुनियाँ में गेहूँ का उपयोग अधिक है लेकिन सत्य बात तो यह है कि शीतोष्ण प्रदेश के निवासियों के लिये गेहूँ जितना उपयोगी और आवश्यक है चावल भी उष्ण-कटिबन्ध के निवासियों के लिये उतना ही महत्वपूर्ण है। इस अनाज पर संसार की लगभग आधी जन-संख्या निर्भर रहती है। वी० डी० विकिजर तथा एम० के० बैनेट के अनुसार संसार के निवासियों में ५ में से ४ प्रधानतः चावल या गेहूँ खाना पसन्द करते हैं।[२] यदि संभव हो तो अन्य बचे लोग भी चावल या गेहूँ खाना पसन्द करेंगे।

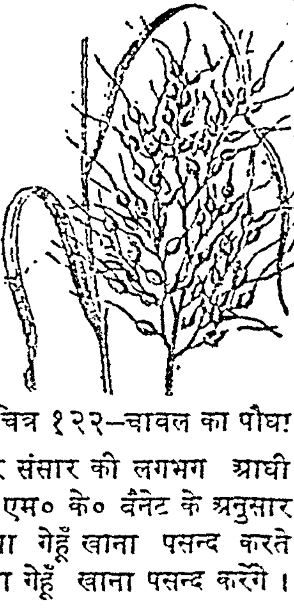

चित्र १२२—चावल का पौधा

१. Smith, Phillips and Smith: *Ibid*, p. 88-89.
२. V. D. Wichizer and M. K. Benett: The Rice Economy of Monsoon Asia, 1941, p. 2-4.

चावल और गेहूँ में से खाद्यान्नों में किसका महत्व अधिक है यह निर्णय देना दुष्कर है। किन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि दोनों ही विश्व के प्रमुख खाद्यान्न हैं। दोनों खाद्यान्नों में कुछ विपरीतता पाई जाती है, जैसे :—[१]

(१) अर्द्ध-शुष्क प्रदेशों में गेहूँ का उत्पादन होता है। यह विस्तृत खेती का प्रमुख उदाहरण है, जब कि चावल की खेती विशेषतः मानसूनी प्रदेशों तक ही सीमित है। इसका उत्पादन गहरी खेती का मुख्य उदाहरण है।

(२) गेहूँ अधिकतर कम जन-संख्या वाले क्षेत्रों में बोया जाता है जहाँ भूमि काफी होती है किन्तु श्रम महँगा होता है, जबकि चावल का उत्पादन मुख्यतः घनी जनसंख्या वाले देशों में किया जाता है जहाँ जनसंख्या के भार के कारण भूमि का अभाव होता है किन्तु श्रम बड़ा सस्ता होता है।

(३) गेहूँ प्रायः सैकड़ों एकड़ वाले खेतों में बोया जाता है किन्तु चावल छोटी-छोटी क्यारियों में ही उगाये जाते हैं।

(४) गेहूँ का प्रति एकड़ उत्पादन कम किन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है जब कि चावल का प्रति एकड़ उत्पादन अधिक किन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन कम होता है।

(५) गेहूँ की खेती अधिकतर मशीनों द्वारा की जाती है, किन्तु चावल की खेती बुवाई से लगा कर कटाई तक सभी हाथ से की जाती है।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में गेहूँ का व्यापार मुद्रा प्राप्ति के लिए अधिक होता है, किन्तु चावल का व्यापार बहुत कम होता है। यह उत्पादक देशों में घरेलू उपभोग में ही अधिक प्रयुक्त किया जाता है।

चावल का उत्पत्ति स्थान भारत माना जाता है—क्योंकि इस देश में यही ऐसा अनाज है जो कि अब भी जंगली रूप में उगता है। कई लोगों का विश्वास है कि चीन में इसकी खेती ईसाई युग के ३००० वर्ष पूर्व ही प्रचारित हो गई थी। दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों से ही चावल १४६८ ई० में यूरोप और १६६४ ई० अमेरिका में ले जाया गया। चीन और भारत से ही यह मिश्र और उत्तरी अफ्रीका को ले जाया गया।

चावल की कई किस्में हैं और ऐसा माना जाता है कि इसकी कुल किस्में गेहूँ की किस्मों से भी अधिक होती हैं। लेकिन मुख्य रूप से इसकी दो किस्में हैं—एक तो निम्न भूमि में उत्पन्न होने वाला या दलदली चावल (जिसे रवा या पेडी) भी कहते हैं और दूसरा उच्च भूमि पर उगने वाला या पहाड़ी चावल (जो सूखी किस्म का होता है)।

(क) निम्न भूमि का चावल (Swamp or Lowland Rice)—संभावित तौर पर ऐसा माना जाता है कि दुनियाँ में पैदा होने वाले चावल

१. Jones & Drakenwald : Economic Geography, p. 254.

का ७५ प्रतिशत चावल तर भूमियों का चावल होता है ।[1] यह प्रायः समतल और बाँध बँधे हुये खेतों में बोया जाता है जहाँ पर पानी लम्बे समय तक ठहर सकता है और इस तरह बहुत-सारा घास व कूड़ा-करकट नष्ट हो जाता है। चावल की यह किस्म पूर्णतया सुरक्षित होती है अतः इसकी कुछ फसलें घनी आबाद भूमि के विशेष अनुकूल होती हैं। इस प्रकार के चावल की फसल काटने और उसको इकट्ठा करने के लिये अधिक मजदूरों की आवश्यकता होती है। अतः चीन, जापान, भारत आदि देशों में इसकी खेती अधिक की जाती है।

(ख) पहाड़ी चावल (Upland or Hill Rice)—इसके विपरीत पहाड़ी चावल साधारणतया पहाड़ियों की ढालों पर सीढ़ीदार खेतों (terraces) के रूप में बोया जाता है। वर्षा से इन ढालों पर तालाबों या झरनों द्वारा पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता है। भारत में पहाड़ी चावल की खेती की जाती है। हिमालय पहाड़ के ढालों पर इसकी खेती ८,००० फीट की ऊंचाई तक होती है। लेकिन चावल के उत्पादन की सीमा ३,००० से ४००० फीट की ऊँचाई तक सीमित है।[2] चूँकि पहाड़ी चावल की प्रति एकड़ पैदावार दलदली चावल से आधी होती है अतः यह महँगा होता है और इसलिये यह बहुत कम बोया जाता है। कोरिया में केवल २% और जावा में १०% उत्पादन पहाड़ी चावल का होता है।

जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ—चावल उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों की फसल है। अतः यह स्पष्ट है कि इसकी पैदावार के लिये काफी ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता है। श्री एकमायन (Akemine) के अनुसार तो इसके पौधे के जमने के लिये भी कम से कम ५०° फा० से ५५° फा० का तापक्रम आवश्यक है और फसल के पकने के लिये अधिक से अधिक १०४° फा० या औसतन ८६° फा० से ९५° फा० तक तापक्रम रहना जरूरी है। फ्रांस और इटली में चावल की कई किस्मों के पकने के लिये कुल तापक्रम २,५००° से ४,०००° फा० तक रहता है। चीन में यह परिवर्तन ३,५००° पर दृष्टिगोचर होता है। मद्रास में मलाबार की तीन महीने की फसल के लिये ७,५००° और तन्जोर की ६ महीने की फसल के लिये १६८०° फा० पर बदलता रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विभिन्न किस्मों के लिये हर स्थान पर समान तापक्रम की आवश्यकता नहीं होती।

चावल को प्रचुर मात्रा में सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है। किसी भी जगह अधिक लम्बा मेघाच्छन्न मौसम इसके लिये हानिकारक होता है और पौधे के जड़ पकड़ने के बाद हर स्थिति में विकास के मार्ग में अड़चन डालने वाला होता है। तेज हवा भी पौधे के लिये हानिप्रद है इससे खेतों के बांध टूट जाते हैं और पकती हुई फसल को नुकसान पहुँचता है।

---

१. Williams and Huntington : Economic & Social Geography, p. 348

२. G. F. Chamberlane : Geography, p. 199

चावल के लिये तापक्रम से भी अधिक आवश्यकता पर्याप्त मात्रा में (४५" से ६५" तक) जल की आवश्यकता होती है। द० पूर्वी एशिया के पू० पाकिस्तान, मलाबार तट, जावा, थाईलैंड, इंडोचीन, लंका, इरावदी, मीनाम, मिकांग नदियों के डेल्टों में वर्षा की यह आवश्यक मात्रा द० पश्चिमी मानसूनों द्वारा प्राप्त हो जाती है किन्तु जापान, कोरिया और चीन में वर्षा कम होने के कारण सिंचाई का प्रबन्ध किया जाता है। सं० रा० अमेरिका में लूसियाना में वर्षा की मात्रा केवल २०" होती है अतएव चावल को सिंचाई द्वारा २५ से ३०" तक और पानी दिया जाता है। किन्तु यह सब ध्यान रखने योग्य है कि चावल को अधिक आर्द्रता की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह नील, पो और स्कारमैंटो नदियों की घाटी में सूखी गर्मी में भी पैदा किया जाता है। वस्तुतः विश्व का अधिकांश चावल ४०" वर्षा वाले प्रदेश में पैदा होता है। आरम्भ में चावल को बोते समय और पौधे को उगते समय बहुत ही अधिक मात्रा में पानी चाहिए। इसलिये प्रारम्भिक अवस्था में खेत में ६" की ऊँचाई तक पानी भरा रखा जाता है। खेतों में पानी की यह मात्रा कम से कम ७५ दिनों तक भरी रहनी चाहिए[१]। लेकिन फसल पकने के समय अधिक वर्षा या पानी की अधिकता फसल को नष्ट कर देती है। पानी की सुगमता की दृष्टि से नदियों के डेल्टे और कच्छारी मैदान जहाँ पर कि प्रचुर मात्रा में नमी रहती है[२] चावल की फसल के लिये आदर्श खेत प्रस्तुत करते हैं।

चावल के लिये चिकनी मिट्टी अथवा गहरी चिकनी दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है—क्योंकि इसमें पानी बहुत अधिक समय तक टिका रह सकता है और इस तरह भूमि में सदा नमी बनी रहती है। लेकिन जब भूमि रेतीली होती है तो फसल का पैदा करना कठिन ही नहीं किन्तु बिल्कुल ही असम्भव हो जाता है। भारी मिट्टी के प्रदेशों में कुछ मिट्टी की ऐसी पुरानी किस्में पाई जाती हैं कि उनको खाद न देने पर भी अच्छी फसल पैदा करती हैं। चावल भूमि को सारी उर्वरा शक्ति नष्ट कर देता है। अतः भूमि में बहुत से पदार्थों व उपजाऊ तत्त्वों की कमी पड़ जाती है। इस कारण भूमि में हरा खाद (Green manure) देना आवश्यक हो जाता है जिससे उसकी खोई हुई उपजाऊ शक्ति लौट आवे। एक एकड़ जमीन में चावल की फसल से ३,००० पौंड अनाज मिलता है और लगभग उतना ही भूसा प्राप्त होता है। अतः चावल की फसल एक समय में भूमि से ४८ पौंड पोटाश (Potash) खींच लेता है जिसकी कमी की पूर्ति वापस खाद देकर पूरा करना पड़ती है। बनावटी खाद देने से चावल के खेतों की उर्वरा शक्ति सुधर जाती है। चावल के लिये सबसे उपयुक्त खाद हड्डियाँ, सुपरफोस्फेट, एमोनिया और साइनाइड का मिला हुआ खाद होता है।[३] इन रासायनिक खादों के अतिरिक्त जापानी लोग

---

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 95.

२. M. N. Basu : Short Studies in Economic & Commercial Geography, p. 114

३. L. D. Stamp : A Commercial Geography, p. 55.

पेड़-पौधों की पत्तियाँ, उनकी शाखायें व टहनियाँ, घास और दूसरे सड़े-गले पदार्थ और राख आदि खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये उपयोग में लाते हैं।

धान की खेती के लिये बहुत बड़ी संख्या में सस्ते मजदूरों की भी आवश्यकता होती है, अतः जिन देशों में जनसंख्या अधिक होती है वहाँ सस्ते मजदूर बहुत मिल जाते हैं। किन्तु संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जहाँ धान की खेती मशीनों द्वारा की जाती है इतने मजदूरों की आवश्यकता नहीं पड़ती। कैलीफोर्निया और लूसीयाना में कम्बाइन हारवेस्टर की सहायता से १० मानव श्रम के घन्टों में प्रति एकड़ से ३,५०० पौंड चावल प्राप्त किया जाता है जबकि पूर्वी देशों में इतना चावल पैदा करने में सैकड़ों घन्टे लग जाते हैं! मशीनों के अधिक व्यवहृत होने के कारण सं० रा० में चावल का क्षेत्र १९३० में १० लाख एकड़ से १९५२ में १९ लाख एकड़ हो गया है।

अगर चावल की पैदावार के लिये जलवायु व भूमि अवस्थाएँ अनुकूल हुईं तो अनाज बहुत शीघ्रता से पकता है। यहाँ के एक खेत से साल भर में पाँच-पाँच फसलें तक ली जाती हैं किन्तु साधारणतया साल भर में दो फसलें तो सभी जगह प्राप्त हो जाती हैं।

उत्पादन विधि—चावल पहले उत्पत्ति स्थानों (Nurseries) में बोये जाते हैं। वहाँ जब पौधे ६" बड़े हो जाते हैं तो उन्हें खेतों में थोड़ी-थोड़ी दूर पर कतार में हाथों से रोप देते हैं और फिर खेतों में काफी पानी भर देते हैं क्योंकि पौधों की शीघ्र वृद्धि के लिये खेतों में अधिक जल का भरा रहना लाभ-प्रद होता है। किन्तु फसल पकने के समय पानी को खेतों से पूरी तरह निकाल देते हैं। धान की पैदावार का कम अथवा ज्यादा होना कई बातों पर निर्भर करता है। इनमें भूमि की बनावट या प्रकृति, जलवायु की अवस्था, खाद का उपयोग और कीड़े व बीमारियाँ आदि से पौधे की मुक्ति ऐसी मुख्य बातें हैं जो प्रति एकड़ पैदावार पर प्रभाव डालती हैं। साधारणतया ग्रीष्म ऋतु के चावल की फसल की पैदावार बहुत होती है जबकि पतझड़ की फसल में पैदावार बहुत ही कम होती है। इसी तरह सिचाई द्वारा पैदा किये गये क्षेत्रों में प्रति एकड़ पैदावार असिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा कम होती है। यह भी स्मरणीय है कि चावल की प्रति एकड़ उपज ऊँचे अक्षाँशों वाले देशों में विषुवत् रेखीय और उष्ण कटिबन्धीय भागों की अपेक्षा अधिक होती है। प्रो० हंटिंगटन का अनुमान है कि १०° अक्षांशों के बीच ३०-४०° अक्षाशों की अपेक्षा चावल की उपज ४०% ही होती है।[१] ऊँचे अक्षांशों वाले देश में चावल १०० ही दिनों में पक जाते हैं जबकि अन्यत्र इसे पकने में १५० दिन लगते हैं। इसके अतिरिक्त ऊँचे अक्षांशों में चावल की किस्म भिन्न होती हैं—'जैपोनिका' (Japonica)—जबकि निम्न अक्षांशों में 'इंडिका' (Indica) किस्म बोई जाती है। चावल की प्रति एकड़ पैदावार एक देश से दूसरे देश में कितनी भिन्न होती है यह बात अगली तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

१. E. Huntington, S. W. Cushing and E. B. Shaw: Principles of Human Geography, 1949, p. 470.

(प्रति एकड़ पीछे उपज—पौंडों में)

जैपोनिका		इंडिका	
		जावा	१,०३४
जापान	२,३५२	थाईलैंड	८८८
मिश्र	१,८९०	ब्रह्मा	८४६
कोरिया	१,५६३	भारत	७७२
चीन	१,५४६	इंडोचीन	७१६
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	१,३१०	फिलीपाइंस	७०३

इससे यह स्पष्ट है कि भारत की पैदावार दक्षिणी पूर्वी एशिया के दूसरे देशों की तुलना में बहुत ही कम है व भूमध्यसागरीय प्रदेशों की तुलना में भी भारत की प्रति एकड़ पैदावार बहुत कम है क्योंकि इन देशों की भूमि बहुत उपजाऊ है और यहाँ कई प्रकार का बनावटी खाद जैसे नाइट्रोजन ६० से ८० पौंड, फोरिक एसिड ५० से ६० पौंड तक प्रति एकड़ प्रयोग में लाया जाता है। लेकिन ये खादें महँगी होने के कारण भारतीय किसान इनका प्रयोग नहीं कर पाता।

उत्पादन क्षेत्र—एशिया के द० पूर्वी मानसूनी प्रदेश विश्व के उत्पादन का लगभग ९०% चावल उत्पन्न करते हैं। इस क्षेत्र के मुख्य चावल उत्पादक देश भारत, चीन, जापान, बर्मा, थाईलैंड, इडोनेशिया, हिन्दचीन, फिलीपाइन, कोरिया, पाकिस्तान तथा लंका हैं। यहाँ इतना अधिक चावल उत्पन्न होने के मुख्य कारण ये हैं :—

(१) इन देशों में अधिकांश चावल नदियों के डेल्टों में ही बोया जाता है जहाँ प्रति वर्ष नदियाँ बाढ़ की मिट्टी लाकर बिछाती रहती हैं। अतः बनावटी तौर पर भूमि में खाद देने की आवश्यकता नहीं पड़ती और भूमि स्वतः ही उर्वरा हो जाती है।

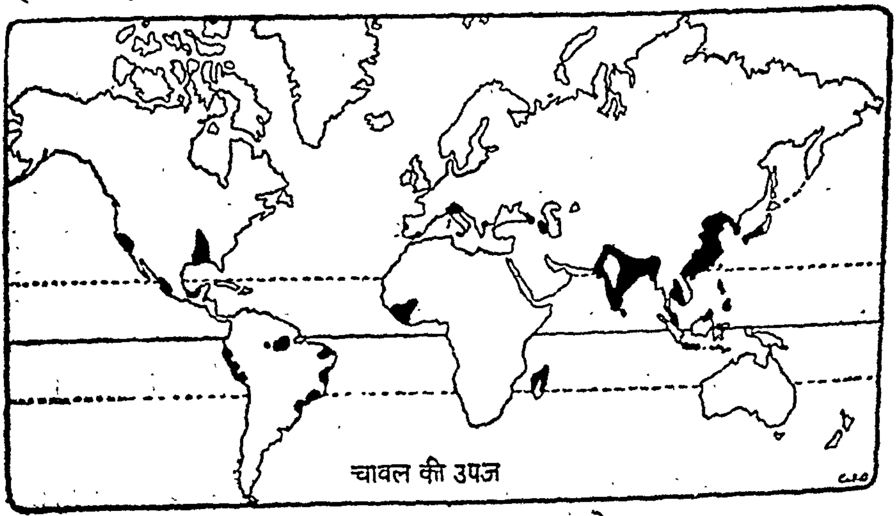

चित्र १२३—चावल उत्पादक क्षेत्र

(२) इन प्रदेशों में द० प० मानसूनों द्वारा उसी समय वर्षा होती है जब फसल को पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

(३) इन देशों की जनसंख्या घनी होने के कारण सस्ते मजदूर अधिक मिल जाते हैं।

(४) इन प्रदेशों में अधिक तापक्रम और पर्याप्त नमी पाई जाती है जो दोनों ही बातें चावल की उपज के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

शेष १० प्रतिशत चावल दुनियाँ के अन्य भागों में विशेषत: मैक्सिको, ब्राजील, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और मैडेगास्कर तथा उत्तर पूर्वी आस्ट्रेलिया में पैदा किया जाता है जहाँ मानसूनी जलवायु के सदृश ही जलवायु मिलती है और केवल थोड़ा सा चावल भूमध्य सागर के प्रदेशों में इटली, स्पेन और मिश्र में, जहाँ गर्मियाँ तेज और सूखी तथा सर्दियाँ आर्द्र और तर होती हैं, पैदा किया जाता है। निम्न तालिका में चावल का उत्पादन बताया गया है:—

चावल का उत्पादन

देश	क्षेत्रफल (१००० हेक्टेअरस में)		उत्पादन (१००० टनों में)	
	१९३४–३८	१९५२	१९३४–३८	१९५२
इटली	१४२	१५६	७५३	७२९
संयुक्त राष्ट्र	३८७	७९८	९५६	२,२०७
ब्राजील	९५६	१,९८०	१३६५	३,१५०
ब्रह्मा	४९३१	४,०००	६९७१	५,८३०
लंका	३४४	४३०	३४०	३५१
चीन (२२ प्रान्त)	१९७७१	१९०००	५००६५	४४,५९९
फारमूसा	६६६	७८०	१६४२	१९००
भारत	२५१६७	३०,२१२	३४१८२	३५,६९८
हिन्दचीन	५५९०	—	६४९८	—
इन्डोनेशिया, जावा, मदुरा	३८४३	४,३००	६०८१	५,४७०
जापान	३१९९	३००४	११५०१	१२,४०४
द० कोरिया	१०१२१६	—	२७२६	—
पाकिस्तान	५७८२	९१३६	१११६९	१२,२११
थाईलैण्ड	३३७७	५,१३०	४३५७	६,६०२
मैडागास्कर	५००	५६५	६१३	८५०
सम्पूर्ण विश्व	८५८००	९५७००	१५१२००	१६०,०००

जापान—जापान चावल पैदा करने वाला तीसरा बड़ा देश है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ चावल की ४,००० किस्में बोई जाती हैं। जापान की कुल खेती की ज़ानेवाली भूमि की ५५ प्रतिशत भूमि चावल की खेती के लिए उपयोग में लाई जाती है। जापान के उत्पादन का ⅙ अकेले क्वांटो के मैदान से प्राप्त होता है। जापानियों के लिए यही एक मुख्य भोज्य पदार्थ है जिस पर लाखों आदमी निर्भर रहते हैं। सामान्य तौर पर चावल का कलेवा, दोपहर का नाश्ता व संध्या भोजन आदि सभी समयों पर प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर दलदली चावल को हा (Ha) और पर्वतीय चावल को 'होटा' (Hota) कहते हैं।

चीन—चीन को संसार में सब से अधिक चावल पैदा करने वाला देश माना जाता है। यहाँ इसकी खेती २०° उत्तरी अक्षांशों से ३३° उत्तरी अक्षांशों के बीच की जाती है। चावल उत्पादन करने वाले मुख्य क्षेत्र सीक्यांग नदी की घाटी व डेल्टा, यांग्टीसी- क्यांग की घाटी का निचला भाग और डेल्टा तथा जीचुआन बेसिन है। यहाँ चावल सिंचाई के सहारे पैदा किया जाता है। अधिक वर्षा वाले स्थानों में तीन और अन्यत्र दो फसलें प्राप्त की जाती हैं। किन्तु जनसंख्या की अधिकता से पैदावार देश की खपत के लिए कम पड़ती है अतः यहाँ थाईलैंड और हिंद चीन से चावल आयात किया जाता है।

भारत—चीन के बाद भारत संसार में सब से ज्यादा चावल पैदा करता है। यहाँ चावल पश्चिमी बंगाल, जलपाईगुरी, बांकुड़ा, मिदनापुर, दिनाजपुर और वर्दवान, मद्रास (कनारा, कर्नूल, कडप्पा, चिंगलपुट, तंजौर और पश्चिमी गोदावरी के जिले), आसाम (गोलपारा और कामरूप जिले) तथा उड़ीसा (कटक, सम्बलपुर और पुरी) और बिहार (गया, मुंघेर तथा भागलपुर) में पैदा किया जाता है। किन्तु सब से अधिक पैदावार प० बंगाल में होती है। यहाँ वर्ष में तीन फसलें प्राप्त की जाती हैं। बसंतऋतु में काटी जाने वाली आँस (Aus), सर्दी में काटी जानेवाली अमन (Aman) और गर्मी में काटी जानेवाली बोरो (Boro) कहलाती है। मध्य प्रदेशमें एक तथा मद्रास में दो फसलें प्राप्त की जाती हैं। यहाँ १८० लाख टन चावल उत्पन्न होता है किन्तु जनसंख्या अधिक होने के कारण प्रतिवर्ष ५० करोड़ रुपये का चावल आयात करना पड़ता है—विशेषतः वर्मा, थाईलेंड, मिश्र और चीन से। अगले पृष्ठ की तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में चावल काटने व बोने का समय बताया गया है।

हिंदचीन—फ्रांसीसी हिंदचीन भी चावल उत्पादन में प्रमुख देश है। यहाँ की समतल भूमि, कछारी मिट्टी। ऊँचा तापक्रम और पौवे के उगते समय खूब वर्षा का होना कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण पूर्वी देशों में यह चावल की खेती के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हो गया है।[1] यहाँ चावल मीकांग नदी की घाटी में पैदा किया जाता है और लगभग ⅔ भाग सेगाँव द्वारा निर्यात कर दिया जाता है।

थाईलैंड—थाईलैंड में तो चावल राष्ट्र का प्राण ही है—इसी पर राष्ट्र की मुख्य आय निर्भर है क्योंकि यहाँ की खेतिहर भूमि का लगभग ९५% भाग चावल

---

१. Bergsmark : Economic Geography of Asia.

भारत के विभिन्न प्रदेशों में चावल काटने व बोने का समय

प्रदेश	जाड़े की फसल		सितम्बर-अक्तूबर की फसल		गर्मी की फसल	
	बोना	काटना	बोना	काटना	बोना	काटना
बङ्गाल	मई-जुलाई	अक्तूबर-जनवरी	मार्च-जुलाई	जून-सितम्बर	अक्तूबर-जनवरी	फरवरी-अप्रैल
बिहार	जून-अगस्त	नवम्बर-दिसम्बर	मई-जुलाई	अगस्त-अक्तूबर	सितम्बर-नवम्बर	फरवरी-मार्च
मद्रास	जून-अक्तूबर	दिसम्बर-मार्च	—	—	दसम्बर-मार्च	अप्रैल-मई
पंजाब	मार्च-अगस्त	सितम्बर-नवम्बर	—	—	—	—
उत्तर प्रदेश	जून-अगस्त	सितम्बर-दिसम्बर	—	—	—	—
काशमीर	—	—	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्तूबर	—	—
मैसूर	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	फरवरी	अप्रैल-मई
मध्य प्रदेश	जून-जुलाई	नवम्बर	जून-जुलाई	अक्तूबर	—	—
केरल	सितम्बर-अक्तूबर	जनवरी-फरवरी	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्तूबर	जनवरी-फरवरी	अप्रैल-मई
आंध्र	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	नवम्बर-जनवरी	अप्रैल-मई

मिकाम नदी की घाटी में पैदा किया जाता है और बैंकांक द्वारा भारत, सिंगापुर, चीन और क्यूबा को निर्यात कर दिया जाता है।

इंडोनेशिया—में चावल की फसल के लिए जावा के कई जिलों में वर्षा जरूरत से कम और असामयिक होती है—अतः यहाँ सब का सब चावल सिंचाई द्वारा पैदा किया जाता है। यहाँ चावल समतल मैदानों के अतिरिक्त सीढ़ीदार खेतों में बोया जाता है।

फिलीपाइन द्वीप— में उगने वाली फसलों में चावल की ही अधिक पैदावार होती है। यद्यपि यह द्वीप के अधिकतर भागों में बोया जाता है लेकिन मुख्यतः पैदावार लूजन के मध्य मैदान में ही केन्द्रित है जहाँ घरेलू काम में आने वाली फसल की $\frac{1}{3}$ फसल पैदा की जाती है। फिर भीतरी उच्च प्रदेशों में यह इन्टर मोन्टेन घाटी व ढालू जगहों पर भी बोया जाता है।

अन्य क्षेत्र—चावल का थोड़ा उत्पादन पश्चिमी द्वीप-समूह व मध्य अमेरिका से फ्लोरिडा तक और खाड़ी के समीपीय भागों (टैक्सास, लूसियाना, अर्केनसास राज्यों) और मिसीसीपी नदी की नीचे की घाटी में होता है। यहाँ जलवायु व भूमि सम्बन्धी सभी अवस्थाएँ चावल की खेती के उपयुक्त पाई जाती हैं। खाड़ी के चारों ओर प्रदेशों में तो समुचितरूप से खेतों को पानी पहुँचाने के लिए कुएँ खोदे गये हैं तथा पानी को ऊपर खेतों में पहुँचाने के लिये पम्प लगाये गये हैं। इन खेतों में चावल मशीनों द्वारा ही बोया व काटा जाता है। अफ्रीका में मैडागास्कर, टैन्गैनिका झील की ओर दक्षिणी जेंजीबार का समुद्री-प्रदेश, नाइजर की घाटी व मिश्र के डेल्टा में (जहाँ पर नील नदी की बाढ़ तमाम प्रदेश पर उपजाऊ कीचड़ बिछा देती है) चावल पैदा किया जाता है।

भूमध्यसागरीय प्रदेशों में भी चावल पैदा किया जाता है। उत्तरी इटली की पो नदी की नीची भूमि, पीडमान्ट, लम्बार्डी, वैनीशिया, टस्कैनी में बोया जाता है। कुछ फसल स्पेन में भी पैदा की जाती है। दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील, गायाना, कोलंबिया, इक्वेडोर और पीरू के समुद्री तटीय भागों में भी चावल बोया जाता है। पिछले कुछ समय से थोड़ा चावल रूस के अजरबैजान, उत्तरी काकेशिया, कज़ाक और सुदूरपूर्व के भागों में भी पैदा किया जाने लगा है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—चूंकि चावल की अधिकांश पैदावार घरेलू उपभोग के लिये ही पैदा की जाती है अतः दुनियाँ के व्यापार में इसकी बहुत कम मात्रा पहुँच पाती है—अन्तर्राष्ट्रीय जगत में चावल का १० प्रतिशत व्यापार होता है जब कि गेहूँ का व्यापार २०% से भी अधिक होता है। अधिकांश व्यापार एशिया के देशों के बीच ही होता है जहाँ चावल खाने वाली जनसंख्या रहती है और शेष व्यापार चावल निर्यात करने वाले देशों व चावल आयात करने वाले यूरोपीय देशों के बीच होता है।

चावल निर्यात करने वाले प्रमुख देश थाईलैंड, बर्मा और फ्रांसीसी हिन्दचीन हैं। इन देशों में चावल उपभोग के उपरांत भी अधिक बच जाता है, अतः

भारत, चीन, जापान, मलाया, लंका, फ्रांस, इंडोनेशिया और क्यूबा को निर्यात किया जाता है। इन देशों में चावल की खपत तो बहुत होती है, किन्तु उपज कम। नीचे की तालिका में चावल के निर्यात व आयात सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किए गये हैं:—

चावल का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

निर्यात	१६५३ (००० टन)	आयात	१६५३ (००० टन)
थाइलैंड	१,३४२	भारत	२२१
ब्रह्मा	६७१	मलाया	५३८
स० रा० अ०	४६२	लंका	४१०
मिश्र	१७३	इन्डोनेशिया	३३०
इन्डोचीन	२१५	जापान	५६६
अन्य देश	२५८	अन्य देश	१,५५०
विश्व—योग	३,४५१	विश्व—योग	३,६४५

उपयोग—भोजन की दृष्टि से चावल का महत्त्व गेहूँ से बहुत कम है क्योंकि इसकी गेहूँ के समान रोटी नहीं बनाई जा सकती। चावल के आटे में लोच (gluten) नहीं होता अतः इसकी रोटी ठीक प्रकार नहीं बन सकती परंतु यह बहुत जल्दी उबाले जा सकते हैं। भारत में इसको उबाल कर कढ़ी के साथ खाते हैं। चूँकि इसमें स्टार्च बहुत पाया जाता है अतः पश्चिम में यह आलू व रोटी के स्थान पर काम में लाया जाता है। चीन व जापान में चावल मछलियों के साथ खाया जाता है। चावल में कार्बोहाइड्रेट काफी मात्रा में पाया जाता है, इस कारण इसमें बहुत बड़ी मात्रा में स्टार्च तैयार किया जाता है। जापान में मशहूर पेय सेक (Sakes) इसी से तैयार किया जाता है। दूसरी जगह इससे दूसरे प्रकार के शराब बनाये जाते हैं। इसका भूसा भी अच्छी घास का काम देता है। कागज, टोप, चटाइयें, चप्पल, रस्से, मेजें व वर्षाती कोट और झाड़ू आदि बनाने में भी इसके भूसे का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका छिलका तकिये भरने व पैकिंग के काम आता है। यह मकानों की शब्दअभेद्य दीवारें (Sound proof) बनाने के लिये भी सिमेन्ट के साथ मिलाया जाता है।

(३) जौ (Barley)

खाद्यान्नों में केवल जौ ही एक ऐसा अनाज है जो संसार के अधिकतर भागों में पैदा किया जाता है चूँकि यह कम वर्षा व काफी निम्न तापक्रम में भी उग सकने वाला पौधा है। अतः इसका क्षेत्र आजकल काफी विस्तृत हो गया है। कई विद्वानों का कथन है कि खेती किये जाने वाले अनाजों में जौ ही

सबसे पुराना है।[१] हैब्रिड, रोमन और यूनानी लोगों का यह प्रधान खाद्यान्न था। प्राचीन मिश्र की खुदाई में जो जौ के दाने मिले हैं वे ५-६ हजार वर्ष पूर्व उत्तरी अफ्रीका और द० प० एशिया में पैदा किये जाने वाले अनाज से मिलते-जुलते पाये गये हैं। जौ गेहूँ की ही एक किस्म है जिसकी सबसे पहले उत्पत्ति उत्तरी गोलार्द्ध की दक्षिण-पश्चिम की सूखी भूमियों पर हुई थी। इस कारण इसे मुख्यतः दक्षिणी-पश्चिमी एशिया की ही पैदावार मानते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार दो वालियों वाला जौ लाल सागर और काकेशस पर्वत के बीच के क्षेत्र की मूल उपज है जबकि छः बालियों वाला जौ कुर्दिस्तान पर्वत का मूल पौधा है।

जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ—खेती किये जाने वाले अनाजों में जौ सबसे सख्त होता है। दूसरे भोज्य पदार्थों की अपेक्षा संसार में इसकी बहुत अधिक खेती की जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी फसल बहुत जल्द पक जाती है। इस कारण काफी निम्न तापक्रमों वाले स्थानों पर भी बड़ी आसानी से इसे उगाया जा सकता है। दूसरे, इसे अधिक वर्षा व उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं होती। यह बहुत साधारण भूमि पर भी अच्छी फसल देता है। इस तरह इसकी खेती काफी दूर उत्तर में नार्वे में ७०° उत्तरी अक्षांश तक होती है और दक्षिण में १०° अक्षांश के बीच लाइबेरिया तक की जाती है।[२] इस तरह जौ स्लेज खिचने वाले रेंडियर और रेगिस्तान को पार करने वाले ऊँट दोनों का साथी व पड़ौसी है। हिमालय-पर्वत पर यह १४,००० फीट की ऊँचाई तक बोया जाता है।[३]

यदि जौ और गेहूँ के लिये समान अवस्थाएँ हों तो स्वभावतः ही जौ की प्रति एकड़ पैदावार गेहूँ से ज्यादा होगी और साथ-साथ बोई जाने वाली भूमि का क्षेत्र भी ज्यादा होगा। जो भूमि व जलवायु गेहूँ के लिये उपयुक्त है वह जौ के लिए भी अनुकूल ही होगी। वस्तुतः ऐसी जलवायु में तो इसकी और ज्यादा उत्तम फसल होती है। गेहूँ की अपेक्षा यह क्षार-युक्त भूमि पर भी अधिक बोया जाता है। अतः प्रति एकड़ और करीब ५० प्रतिशत अधिक फसल देता है।[४]

क्योंकि यह काफी निम्न तापक्रमों में भी बहुत जल्द पक जाता है इस कारण उत्तर की अल्पकालीन ग्रीष्म ऋतु व पहाड़ी घाटियों की मनमोहक गर्म ऋतु में भी आसानी से पैदा कर लिया जाता है[५]। इसकी कुछ किस्में तो इतनी जल्द पकने वाली हैं कि ६० दिन की अवधि में ही तैयार हो जाती है। साधारण तौर पर जौ हिमालय, उत्तरी नार्वे और स्वीडेन व आर्कटिक वृत्त के परे ७०° अक्षांश के बीच पैदा किया जाता है।[६] इसकी लगभग ६८% खेती उत्तरी गोलार्द्ध तक ही सीमित है। फिनलैंड, उत्तरी रूस व आर्कटिक

---

१. Stamp & Glimour : *Ibid*—p. 125
२. J. F. Macferlane : Economic Geography, P. 199.
३. Russel Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 120.
४. Whitback and Finch : Economic Geography, p. 58.
५. Stamp : Commercial Geography, p. 47
६. Huntington and Williams : *Ibid*—P. 199.

समुद्र के पास तो यह बराबर पैदा किया जाता है। यह सूखा व गर्मी को सहन करने के कारण ही नील की घाटी, एबीसीनिया और विषुवत् रेखा के निकट पूर्वी अफ्रीका के भागों में बोया जाता है। खास तौर पर यह गर्म व सूखी जलवायु वाले स्थानों में बोया जाता है। इस कारण भूमध्य सागरीय प्रदेशों की यह मुख्य फसल है। चूँकि यह गेहूँ की अपेक्षा ज्यादा तरी को सहन नहीं कर सकता इस कारण इसकी खेती शीतोष्ण प्रदेशों में ब्रिटेन जैसे ठण्डे व तर स्थानों पर नहीं की जा सकी है।

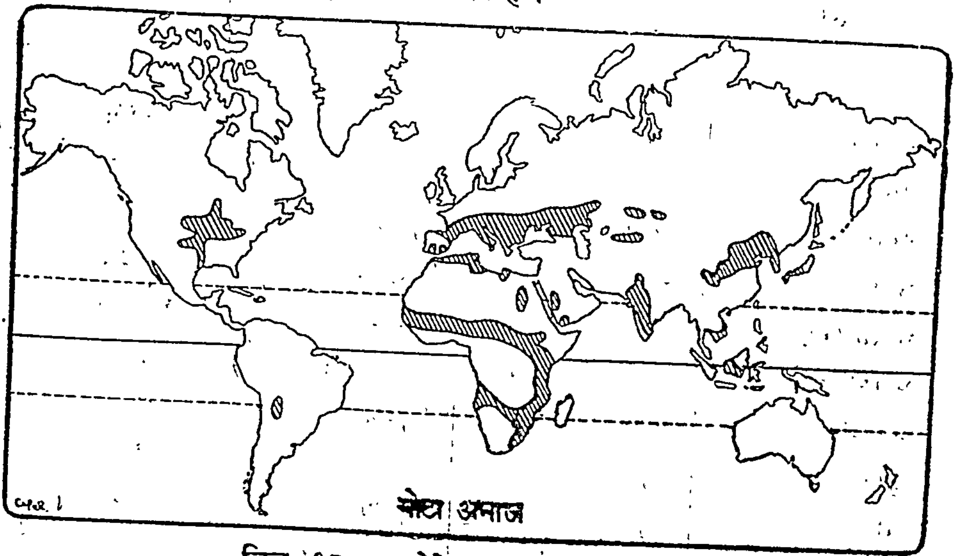

चित्र १२४—मोटे अनाज के क्षेत्र

उत्पादन क्षेत्र—जौ उन प्रदेशों में अधिक होता है जो सूखे हैं और जहाँ वर्षा ऋतु छोटी होती है। संसार में जौ की सबसे ज्यादा खेती यूरोप महाद्वीप में की जाती है जहाँ कुल उपज का लगभग आधा होता है। जौ पैदा करने में रूस ही एक ऐसा देश है जो कुल उपज का लगभग एक तिहाई से कुछ अधिक पैदा करता है।[1] इसके अतिरिक्त प्रमुख रूप से जौ उत्पन्न करने वाले देश संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, कनाडा, रूमानिया, स्पेन, जापान, चीन, भारत, पौलैण्ड और चैकोस्लेवेकिया हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में तो इसकी बहुत कम पैदावार होती है। यहाँ पर दुनियाँ की कुल उपज का २% पैदा किया जाता है।

अगले पृष्ठ की तालिका में विश्व में जौ की उत्पत्ति बताई गई है।

व्यापार—यद्यपि यूरोपीय महाद्वीप में जौ काफी मात्रा में उत्पन्न किया जाता है फिर भी उपयोग बड़ी मात्रा में होने से बहुत सा अनाज बाहर से मँगवाना पड़ता है। इनमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा और रूस मुख्य हैं। रूस, अर्जेन्टाइना, पोलैण्ड, कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूमानिया और

१. Stamp : *Ibid*, pp. 46–47.

मक्का की फसल को पैदा होने में १३५ से २१० दिन तक लग जाते हैं, और इस सम्पूर्ण लम्बी अवधि में तापक्रम बिना किसी हेर-फेर के ऊँचा और सूर्य की रोशनी काफी मात्रा में रहनी चाहिये जिससे फसल का विकास अच्छी प्रकार हो सके। औसत तौर पर जहाँ ग्रीष्मकाल का तापक्रम ६६° फा० से कम होता है बोनें के समय तापक्रम ऊँचा रहे और बाद में अच्छी मात्रा में वर्षा हो जाय तो पौधा अपने आपको अच्छी तरह बढ़ा पाता है। इस तरह से उन भागों में जहाँ गर्मियाँ ठण्डी रहती हैं—जैसे इंग्लैण्ड, स्काटलैंड उत्तरी यूरोप और ४४° उत्तरी अक्षांशों के परे उत्तर न्यू इंग्लैंड के बहुत से भागों और कनाडा में—मक्का की अच्छी फसल पैदा नहीं हो सकती। इसे रात और दिन बराबर गर्मी की आवश्यकता होती है। इस कारण उन सूखे प्रदेशों में भी जहाँ पर दिन में बहुत गर्मी रहती है परन्तु रातें ठण्डी होती हैं अच्छी फसल पैदा नहीं की जा सकती। लेकिन पतझड़ के आरम्भ होने के समय ठण्डा मौसम बड़ा अच्छा साबित होता है। इससे फसल की पैदावार गर्म भागों व अयन रेखाओं की अपेक्षा मध्य शीतोष्ण प्रदेशों के अक्षांशों में कहीं ज़्यादा अच्छी होती है। इसकी फसल दुनियाँ के गर्म भागों में ५८° उत्तरी अक्षांश से ४०° दक्षिणी अक्षांश तक फैली हुई है। वास्तव में मक्का समुद्रतल से निम्न भूमि—कैस्पीयन सागर के निकटवर्ती भागों—और पीरू में १२,००० फुट की ऊँचाई तक भी बोई जाती है। मक्का की मुख्यतः दो किस्में होती हैं। बौना किस्म (Dwarf) जो साधारणतः २ फुट ऊँची होती है, यह ६०–७० दिन में तैयार हो जाती है। दूसरी किस्म २० फुट से भी ऊँची होती है। इसे तैयार होने में १० से ११ महीने लग जाते हैं।[1] सूखा सहने वाली किस्म एरीजोना और न्यू मैक्सिको में बोई जाती है।

जलवायु के इन उपकरणों के अलावा इसके लिए अच्छी उपजाऊ जलयुक्त चिकनी (Loamy) भूमि की भी आवश्यकता होती है।

उत्पादन क्षेत्र—संसार की पैदावार की लगभग दो-तिहाई मक्का सिर्फ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही पैदा की जाती है जहाँ इसकी सारी पैदावार मिसीसीपी नदी की ऊपरी घाटी में केन्द्रित है। यहाँ यह मैक्सिको की खाड़ी से लेकर बड़ी झीलों तक और एटलान्टिक सागर से पश्चिमी टैक्साज तक पैदा की जाती है। लेकिन पैदावार का प्रमुख क्षेत्र (जिसे अमेरिका के अनाज की पेटी (American Corn Belt) कहते हैं) मध्य ओहियो से मध्य टैक्साज और कैंटकी से विस्कोंसिन तक पहुँचता है। इसमें आयोवा, मिसौरी, इलयोनास, इन्डियाना और ओहियो की स्टेटों तथा नेब्रास्का के लगभग आधे भाग सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रदेश की भूमि उपजाऊ और कंकड़-पत्थर से रहित है। अनाज की इस पेटी में सूखा बहुत कम पड़ता है। यहाँ ग्रीष्म की अति वर्षा फुव्वारों व बौछारों के रूप में होती है जो फसल को नुकसान नहीं पहुँचाती और अनाज की अच्छी फसल के लिए काफी मात्रा में गर्मी बनी रहती है। यहाँ ग्रीष्म का औसत तापक्रम ७०–८०° फा० और रात का तापक्रम ५८° फा० से अधिक रहता है तथा १४०

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 106

दिन तक कोहरा नहीं गिरता। वर्षा भी २५" से ५०" तक हो जाती है। अमेरिका के यह भाग विश्व के उत्पादन का ५० से ६०% पैदा करते हैं।

इस अनाज का अधिकांश भाग सुअरों और खेतिहर जानवरों को खिलाया जाता है जो गोश्त आदि पदार्थों के लिए विशेष रूप से पाले जाते हैं।

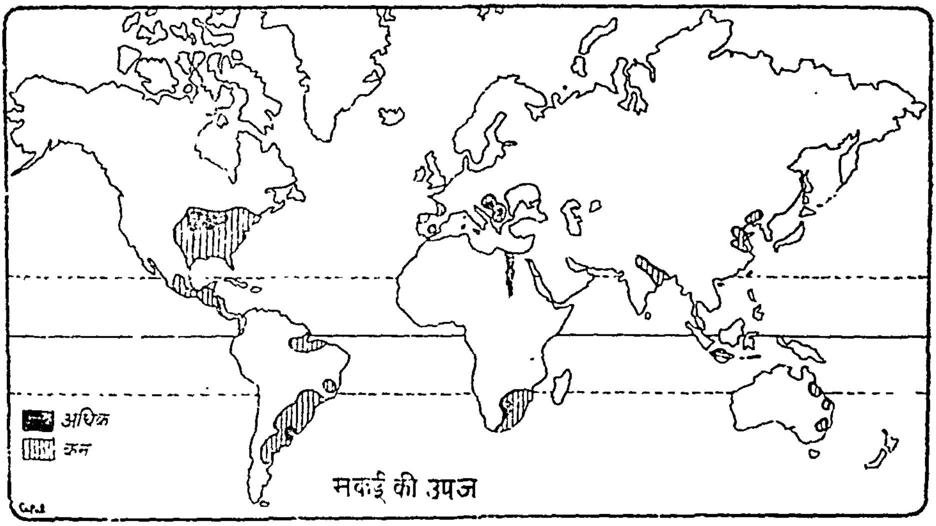

चित्र १२६—मक्का उत्पादक क्षेत्र

मैक्सिको में भी यह काफी मात्रा में पैदा की जाती है। दक्षिणी अमेरिका, ब्राजील (यहाँ की ३/४ फसल मीनास गिरास, साओ पालो, राओग्रान्डे डूसूल से प्राप्त होती है) और अर्जेन्टाइना (यहाँ २५,००० वर्गमील क्षेत्र में पराना नदी की निचली घाटी में मक्का होती है) में भी इसकी पैदावार कम नहीं है। यूरोप में यह डेन्यूब की निचली घाटी के गर्म-तर स्थानों और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप के काले सागर के समीप जिलों में बोई जाती है। इस प्रदेश में इसकी ३५०० से ४००० लाख बुशल वार्षिक फसल होती है। डेन्यूब की निचली घाटी में मक्का हंगरी, रूमानियाँ, सरविया व बलगेरिया के उपजाऊ मैदानों में और काले सागर के निकट रूसी भूमि में पैदा किया जाता है।

भूमध्यसागरीय प्रदेश का बहुत सारा क्षेत्र (केवल कुछ सींचे जाने वाले भाग को छोड़कर) ग्रीष्म में बहुत सूखा रहता है। इस कारण यहाँ इसकी खेती नहीं होती। इटली, स्पेन व दक्षिणी फ्रांस प्रमुख उत्पादक हैं।

अफ्रीका में तो यह खाद्यान्नों की फसलों में से मुख्य फसल मानी जाती है, परन्तु पैदावार अधिक नहीं होती। एशिया में भारत व चीन में यह सहायक फसल के रूप में बोई जाती है। चीन में इसका उत्पादन दक्षिणी मंचूरिया से लगा कर चीन के बड़े मैदान तक होता है।

मकई उत्पादक-क्षेत्र (१९५२)

देश	क्षेत्र (००० हेक्टेअर में)	उत्पादन (००० टनों में)	प्रति एकड़ उत्पादन (पौंड में)
संयुक्त-राष्ट्र	३२,९२४	८३,९९४	२,२३५
अर्जेन्टाइना	२,४२८	३,७००	१५८५
चीन	४,८००	६,५९२	१२४८
ब्राजील	४,९०८	६,२४५	१०३४
रुमानिया	४३०८ (१९४७)	५,२७० (१९४७)	-
यूगोस्लाविया	२,३१६	३,७१८	५९३
रूस	४३४८(१९३४-३८)	४,६४८(१९३४-३८)	९५५
इटली	१२३८	२,२०२	२०७९
हंगरी	१३२९ (१९४८)	२८,६२ (१९४८)	—
दक्षिणी अफ्रीका संघ	२,६३४	२,८५३	—
भारत	३,५६०	२,६४९	८००-१०००
मिश्र	६२८	१,२५०	१८३५
मैक्सिको	४,८७०	३,७५९	—
विश्व उत्पादन (रूस को छोड़कर)	८४,६००	१४२,०००	

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—मक्का की पैदावार होती तो बहुत है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से इसका महत्व बिल्कुल नहीं के बराबर है। इसका संसार में केवल ६% प्रतिशत व्यापार ही होता है।

यद्यपि संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में इसकी प्रचुर मात्रा में फसल होती है लेकिन वहाँ इसका उपभोग पालतू जानवरों के लिए होता है अतः निर्यात बहुत ही कम किया जाता है। अर्जेन्टाइना ही सिर्फ एक ऐसा देश है जो कि अपनी पैदावार का ७५% प्रतिशत निर्यात करता है। दूसरे प्रमुख निर्यात करने वाले देश दक्षिणी अफ्रीका, हंगरी, रुमानियाँ, बल्गेरिया और रूस हैं। इसके विपरीत इंग्लैण्ड, हालैण्ड और फ्रांस मुख्य आयात करने वाले देश हैं जो इसे भोजन-सामग्री बनाने के उपयोग में लेते हैं।

उपयोग—ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में पैदा होने वाली मक्का का तीन-चौथाई भाग विशिष्ट तौर से जानवरों (जैसे सुअर आदि) घोड़ों और कुक्कुटों आदि के भोजन के लिये उपयोग में लाया जाता है। यही कारण है कि संयुक्त-राष्ट्र की अनाज की पेटी में इतनी बड़ी संख्या में सुअर पाले जाते है और माँस का इतने बड़े पैमाने पर व्यापार होता है। प्रो० जेकिन्स के अनुसार मक्का अमेरिकन कृषि का मेरुदण्ड (Backbone of American agriculture) है। इसके विपरीत ब्रिटिश द्वीपसमूह व उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में मक्का का अभाव इस बात को स्पष्ट करता है कि यहां पर थोड़ी

मात्रा में सुअर पालने का धन्धा अपनाया गया है। इस अन्न का भूसा, डन्ठल, पत्ते और छिलका जानवरों के लिए अच्छा खाद्य-पदार्थ उपस्थित करते हैं।

जानवरों के खाद्य-पदार्थ होने हुए भी यह प्राणी-मात्र के लिये भी एक मुख्य भोज्य पदार्थ है। इंग्लैंड में अन्न का आटा पीस कर रोटी बनाने के उपयोग में लाया जाता है। चूँकि इसकी उत्तम रोटी नहीं बन पाती इससे दक्षिणी अफ्रीका में यह राबड़ी (Mealie Pap or Maize Gruel) के रूप में काम लाई जाती है। भारत व संयुक्त-राष्ट्र में हरी मक्की का भुट्टा एक अच्छी सब्जी का काम देता है। अमेरिका व भारत में मक्का के दाने मटर के दानों के समान भूनकर खाये जाते हैं। अमेरिका में इससे होमिनी (Hominy) नामक पदार्थ तैयार किया जाता है जो वहाँ के निवासियों द्वारा बहुत पसन्द किया जाता है। मैक्सिको में तो यह अब भी वहाँ के आदिवासियों का मुख्य भोजन बना हुआ है। वहाँ इसकी मीठी रोटी—जो टोर्टिलास (Tortlas) के नाम से प्रसिद्ध है—तैयार की जाती है और गर्म-गर्म खाई जाती है। इटली में इससे पोलैन्टा (Polenta) और रूमानिया में मेमालिगा (Mamalga) दूसरे मुख्य भोज्य-पदार्थ बनाये जाते हैं।

भोज्य सामग्रियों के अतिरिक्त इससे माड़ी (स्टार्च), शराब, मद्य-पदार्थ, शक्कर, डेक्स्ट्राईन, कार्न आइल और सिल्यूलोज आदि दूसरी मुख्य वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। इसकी पत्तियों से एक सस्ते किस्म का कागज भी तैयार किया जाता है। इसके छिलके गद्दे भरने के काम देते हैं और डंठल ईन्धन के रूप में जलाये जाते हैं।

यूरोप में मक्का को 'टर्किश गेहूँ' (Turkish wheat), अमरीका में कार्न (Corn) और मीलीज (Mealies) तथा इंगलैंड में 'भारतीय अनाज' (Indian corn) कहते हैं।

(५) जई (Oats)

गेहूँ या जौ की तरह जई की खेती प्राचीन नहीं हैं। इसका मूल-स्थान एशिया माइनर माना जाता है। चौथी शताब्दी पूर्व यूनानी लोगों का यह मुख्य खाद्यान्न था।

जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ—जई ठण्डे प्रदेशों का पौधा है। साधारण तौर पर जई की पैदावार के लिये वही जलवायु उपयुक्त होती है जो कि गेहूँ व जौ के लिये होती है। लेकिन चूँकि इसके पकने में काफी समय लगता है इस कारण अधिक वर्षा और गर्मी इसके लिये आवश्यक होती है।[1] यह ठण्डी

१. Smith, Russel and Smith : Industrial and Commercial Geography, p. 118.

जलवायु में भी पैदा हो सकता है। इस तरह नम और ठण्डी गर्मियाँ ही इसकी पैदावार के लिये आदर्श जलवायु है। अमरीका के विशाल मैदानी क्षेत्र और भूमध्यसागरीय देशों में लाल जई (Rad oat) या स्टेरिलिस (Sterilis) की खेती की जाती है जो अधिक तापक्रम में भी उग सकती है। इसके लिए कम से कम ८४° और अधिक से अधिक ७०° तापक्रम की आवश्यकता होती है।

ऐसी जलवायु में अनाज अच्छी किस्म का होता है और प्रति एकड़ पैदावार भी अधिक होती है। कहीं-कहीं पर इसकी पैदावार ५० पौंड प्रति एकड़ तक देखी जाती है, जबकि दूसरे स्थानों पर २६ पौण्ड प्रति एकड़ ही होती है।[१] यद्यपि जई की पैदावार के लिए उपजाऊ भूमि चाहिये फिर भी यह कई किस्म की भूमियों पर भी अच्छी तरह पैदा होती है।[२] काफी कम उपजाऊ भूमि से भी इसकी सन्तोषजनक पैदावार हो जाती है।[३] सब से अधिक प्रति एकड़ पैदावार भारी दुमट मिट्टी में होती है।

उत्पादन क्षेत्र—इसलिए इसके उत्पादन के प्रमुख केन्द्र हैं उत्तरी-पश्चिमी यूरोप—जहाँ पर गर्मियाँ शीतल और तर होती हैं—उत्तरी-पूर्वी संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका और दक्षिणी कनाडा में—जहाँ पर जलवायु साधारणतया समान पाई जाती है परन्तु सिर्फ ग्रीष्म ऋतु अधिक गर्म और सर्द ऋतु अधिक ठण्डी होती है। जई की खेती उन्हीं स्थानों में महत्वपूर्ण है जहाँ जलवायु ठण्डी और तर होती है। यही कारण है कि आयरलैण्ड, स्काटलैण्ड, स्वीडेन, नार्वे, डैन्मार्क, बेल्जियम और नीदरलैंड्स

जई का उत्पादन

देश	१९३४-३८ (क्षेत्रफल—००० हैक्टेअर)	१९५२	१९३४-३८ (उपज—००० टन में)	१९५२	प्रति एकड़ उपज हण्डरवेट में १९४७ ४८)
कनाडा	५,४३७	४,४७७	५,०१८	७,१९९	९ ७
फ्रांस	३,२७८	२,२७५	४,५७२	३,३५५	११·०
सं. रा. अमेरिका	१४.१४८	१५,६३८	१३,९७३	१८,४०९	१०·२
इङ्गलैण्ड	९४९	१,१६६	२,०१९	२,८१६	१७·८
रूस	१९,९७०	—	२०,०३०	—	—
अर्जेन्टाइना	७९४	८५४	७४८	१,१०६	९·३
सम्पूर्ण विश्व	३८,१००	३७,१००	४५,१००	५०,२००	—

१. Stamp and Glimour : *Ibid*, p. 134.

२. Op. Cit. p. 134

३. Whitbeck and Finch : *Ibid*, p. 58.

में उपयुक्त जलवायु होने से जई की खेती बड़े पैमाने पर होती है। भूमध्य-सागरीय जलवायु में नमी की न्यूनता होने से जई पैदा नहीं की जा सकती। विषुवत् रेखा के दक्षिण में चिली और अर्जेन्टाइना ही मुख्य जई पैदा करने वाले देश हैं।

यह अभी भी एक विवादास्पद प्रश्न है कि प्रमुख रूप से सबसे अधिक जई उत्पन्न करने वाला देश कौनसा है। चूँकि भिन्न-भिन्न लेखक अलग-अलग अंकों के आधार पर अपना मत प्रकट करते हैं इसी कारण कोई भी अभी इस बात पर एक मत नहीं हो पाये हैं। डा० स्टाम्प के कथनानुसार यूरोप सबसे अधिक जई उत्पन्न करने वाला देश है। परन्तु श्री रसल स्मिथ और श्री जे० एफ० चेम्बरलेन का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का इस दृष्टि में पहला है और ये दोनों दुनियाँ की करीब एक तिहाई फसल पैदा करते हैं।

व्यापार—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से जई का महत्व नहीं के बराबर है। जई की कुल पैदावार में से सिर्फ ४ प्रतिशत का ही व्यापार होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि चिली और अर्जेन्टाइना को छोड़कर दूसरे देशों में इसकी पैदावार या तो स्वयं के उपयोग के लिए ही होती है या अधिक समय तक टिक नहीं सकने के कारण जहाजों द्वारा बाहर नहीं भेजी जा सकती है। इस तरह यह अनाज व्यापार-जगत में आ नहीं पाता।[1] आयात करने वाले मुख्य देश ग्रेट ब्रिटेन, स्विटज़रलैण्ड, बेल्जियम, इटली, हालैण्ड, आस्ट्रिया और डेन्मार्क हैं जो कि बहुत बड़े पैमाने पर गाय-भेंस पालने का धन्धा (Dairy Farming) अपनाये हुए है। जई निर्यात करने वाले मुख्य देश चिली, अर्जेन्टाइना, रूस, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका और कनाडा हैं।

उपयोग—जई मनुष्य के भोजन के लिये एक अच्छा भोज्य पदार्थ है। स्काटलैण्ड, आयरलैण्ड व स्केन्डीनेविया में तो यह प्रमुख भोजन रूप में काम में लाई जाती है। दूसरी जगह भी यह दलिया और रोटी के रूप में प्रयोग की जाती है। स्कॉट लोग इससे रोटी और हलवा आदि स्वादिष्ट पदार्थ बनाते हैं। डा० जानसन के अनुसार "जई स्कॉटलेंड में मनुष्यों का और इंगलेंड में घोड़ों का मुख्य भोजन है।" कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन की अधिक मात्रा के कारण अन्य अनाजों की अपेक्षा जई अधिक अच्छा अनाज है। यह गाय, भेंस व घोड़ों को भी खिलाई जाती है।

(६) राई (Rye)

राई को गेहूँ का करीब साथी कहा गया है।[2] राई गेहूँ की जाति का अनाज है परन्तु यह गेहूँ से कुछ छोटा और काला होता है। यह भी एशिया

---

१. Huntington and Williams : *Ibid*, p. 343.

२. Stamp : *Ibid*, p. 50

माइनर की मूल उपज मानी जाती है। पौष्टिक तत्वों की दृष्टि से इसका स्थान गेहूं के बाद दूसरा है।

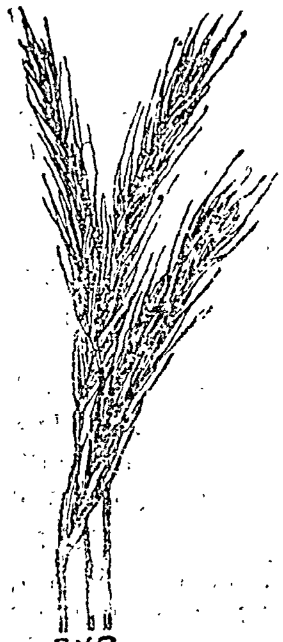

चित्र १२७–राई का पौधा

जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ—यह गेहूँ के समान जलवायु में पैदा होती है। लेकिन इसका पौधा गेहूँ से जरा सख्त होता है। यह एक ऐसा अनाज है जो अपने आपको भूमि और जलवायु की दशा के अनुकूल बना लेता है। इसके पौधे को गेहूँ की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता होती है। यह निम्न तापक्रम में भी उग सकता है। जिन स्थानों पर सर्दी का औसत तापक्रम ४०° फा० रहता है तथा ४००° फा० से भी नीचे चला जाता है वहाँ भी इसकी खेती की जाती है। राई की मुख्य विशेषता यह है कि इसका पौधा कैसी भी अनुपजाऊ भूमि में, जहाँ पर कि कोई दूसरा अनाज पैदा नहीं हो सकता, अच्छी तरह बड़ा हो जाता है। यूरोप में जहाँ यह काफी मात्रा में पैदा की जाती है यह साधारण भूमि पर ही होती है। इसकी खेती मुख्यतः बालू और पतली मिट्टी में होती है। यही इसके लिए आदर्श मिट्टी है।[१] यहाँ की भूमि हल्के रंग की और रासायनिक-पदार्थों और चूने से बहुत बहुत कम युक्त होती हैं। इन तमाम कारणों से यह ऊँचे अक्षांशों और उच्च स्थानों पर पैदा की जाती है। रूस में तो इसकी पैदावार काली मिट्टी वाले भागों के दूर उत्तर में बहुतायत से होती है। नार्वे में गर्म धारा के प्रभाव के कारण यह आर्कटिक वृत्त के समीप भी पैदा की जाती है।[२] इसके अतिरिक्त यह यूरोप के बड़े मैदान की दलदली व रेतीली भूमियों पर भी उगाई जाती है। फ्रांस के मध्य पठार और थाईलैण्ड के उत्तर-पश्चिमी उच्च प्रदेशों पर भी यह बोई जाती है।

उत्पादन के क्षेत्र—संसार में सबसे अधिक राई उत्पन्न करने वाला प्रदेश यूरोप का नीचा मैदान है जो इंग्लिश चेनल से हालैण्ड, बेल्जियम, जर्मनी, डेन्मार्क और रूस होता हुआ यूराल पहाड़ तक फैला हुआ है। संसार की कुल पैदावार की ९५% प्रतिशत यूरोप और एशिया में फैले हुए रूस में होती है।[३] अकेला रूस ही दुनियाँ की आधी से अधिक राई की फसल यूक्रेन, ट्रांस काकेशिया और कज्जाक में पैदा करता है। जर्मनी एक चौथाई से अधिक, आस्ट्रिया और

---

१. Case and Bergsmark : *Ibid*, p. 446.

२. J. F. Chamberlane : *Ibid*, p. 147

३. Huntington and Williams : *Ibid*, p. 544

हंगरी दसवें भाग से अधिक और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका पाँचवे भाग से कम पैदा करते हैं।[1] दूसरे मुख्य उत्पादक कनाडा और जापान हैं। बृटिश द्वीप में बोये जाने वाले अनाजों में राई ही सबसे कम परिचित और प्रचलित है।

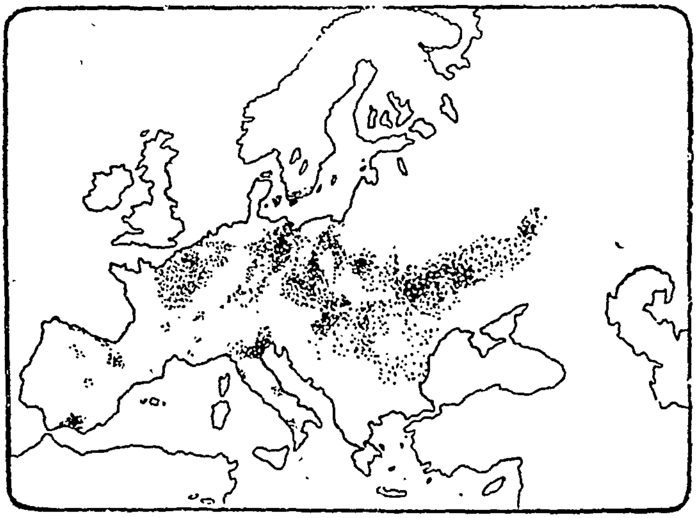

चित्र १२८—रूस में राई का उत्पादन

राई का उत्पादन

देश	१९३८ (क्षेत्रफल—००० हैक्टेअर)	१९५२ (क्षेत्रफल—००० हैक्टेअर)	१९३८ (उपज—००० टन)	१९५२ (उपज—००० टन)
अर्जेन्टाइना	४३४	१,३०५	२५४	१,३३५
टर्की	३५०	५८७	३३६	६६९
सं० रा० अमेरिका	१,३४३	५६०	१,०२८	४०४
कनाडा	२९७	५०९	१८०	६२४
फ्रांस	६६३	४३०	७६९	४८२
जर्मनी	२,८७८	२,७४०	५,१५६	५,१५४
हालैण्ड	२१८	१८४	४९६	४९७
पोलैण्ड	५ ३५२	५,१३६	६,८५४	६,५०२
विश्व (रूस को छोड़कर)	१६,०००	१५,२००	२१,०००	२१,२००

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid* p. 117

कहवा, चाय, कोको (या चाकलेट) और कोला आदि पेय तथा तम्बाकू आदि सभी अपने स्वाद, सुगन्ध और उत्तेजक गुणों के कारण आधुनिक काल में सभ्य जगत में एक विशेष स्थान पागये हैं। इनमें से केवल कोको का ही खाद्य-महत्व है अन्य तो केवल क्षणिक उत्तेजना देने के निमित्त काम में लिये जाते हैं। कहवा, चाय और कोला पेय में यह उत्तेजनात्मक गुण उनमें पाये जाने वाले कैफीन (Caffein), कोको में थिओब्रोमाइन (Theobromine) से और तम्बाकू में निकोटिन (Nicotine) से प्राप्त होता है।

अध्याय १८

पेय पदार्थ (Beverages)

(१) चाय (Tea)

जिस प्रकार कहवा मुख्यतः विषुवतरेखीय और कोको कटिबन्धीय है—उस प्रकार चाय की पैदावार के लिये कोई निश्चित रेखा नहीं है। चाय उष्ण-कटिबन्धीय और गर्म शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में समान रूप से पैदा की जा सकती है। चाय दक्षिणी-पूर्वी एशिया का आदि पौधा है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह चीन की उच्च भूमियों, हिन्द चीन या भारत की वनस्पति की पैदावार में उत्पन्न हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह उष्ण कटिबन्ध का पौधा है। परन्तु जलवायु की दृष्टि से ऐसा माना जाता है कि यह निम्न अक्षांश प्रदेशों की ही उपज है, जहाँ ऊँचा तापक्रम, लम्बी पैदावार की मौसम और समयानुकूल पर्याप्त जलवृष्टि होती है जो पैदावार को घनी और कोमल टहनियों को निरन्तर शीघ्रता के साथ बढ़ाने में सहायक होती है। जलवायु की ऐसी अवस्थाएँ दक्षिणी भारत, लंका और इन्डोनेशिया में पाई जाती हैं। यह अवस्था चाय की पैदावार और पत्तियों के निरन्तर साल भर चुनने में हानिकारक नहीं होती। चाय का पौधा अर्ध उष्ण कटिबन्ध के पौधों में सबसे सख्त पौधा है और इस कारण यह अनुपयुक्त अवस्थाओं में पैदा नहीं किया जा सकता।

चित्र १२६—चाय का पौधा

पेय पदार्थों में सबसे अधिक महत्व चाय का ही है जैसा कि निम्न उत्पादन के आँकड़ों से स्पष्ट होगा:—

यह विशेषता पाई जाती है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र में भी इसके अनुकूल जलवायु व सस्ते नीग्रो मजदूर प्राप्त किये जा सकते हैं फिर भी वहाँ चाय की खेती सम्भव नहीं है क्योंकि नीग्रो लोगों की अँगुलियाँ मोटी और खुरदरी होती हैं जो चाय की पत्तियाँ चुनने के लिये कदाचित ही उपयोगी हो सकती हैं।

चाय का पौधा पहले बीजों से तैयार किया जाता है—यह अक्टूबर-नवम्बर में बोया जाता है। जब पौधा क्यारियों में (Nursuries) में ४–६ इञ्च बड़ा हो जाता है तो उसे उखाड़कर चाय के खेतों में चार से ६ फीट की दूरी में कतारों में रोप देते हैं। पहले वर्ष बहुत सावधानी से उनकी काट-छाँट की जाती है और पौधे को तीन या चार फ़ीट से अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता। दूसरे वर्ष इससे बहुत थोड़ी मात्रा में पैदावार मिलती है। तीसरे वर्ष फसल अच्छी होती है परन्तु बहुत अच्छी पैदावार तो ६ वर्ष बाद ही मिलने पाती है और यह ३० वर्ष तक मिलती रहती है। अप्रैल-अक्टूबर तक पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं। चाय के खेत सामान्यत: पहाड़ी ढालों पर ही स्थित होते हैं जिससे कि वर्षा का बहुत अधिक पानी नीचे बह जाय और चाय के पौधे की जड़ों में एकत्रित न हो सके। चाय के पौधे में हरी डन्डी के ऊपर की पत्तियाँ बहुत ही उम्दा चाय प्रस्तुत करती हैं। चाय की पत्तियों का चुनाव उनकी कलियों के साथ ही होता हैं। चाय की झाड़ी की नीचे की पत्तियाँ अधिक अच्छी नहीं होती हैं। अत: इनका उपयोग हल्की चाय तैयार करने में किया जाता है।

वाणिज्य की दृष्टि से चाय दो प्रकार की होती है—काली (Black Tea) और हरी चाय (Green Tea)। इन दोनों प्रकारों की चाय में भेद केवल पत्ती के तैयार करने की विधि में ही है। काली चाय (Black Tea) उन पत्तियों से तैयार होती है जिन्हें तोड़कर एक निश्चित समय तक कुम्हलाने और खमीर उठाने के लिये सूर्य की धूप में छोड़ दिया जाता है। इसके पश्चात उन्हें आग पर चढ़ाया जाता है और उन पर बेलन घुमाया जाता है। पत्तियों के पूरी तरह सूख जाने पर उनको चलनियों से छानकर छोटी-छोटी पत्तियों के रूप में अलग कर लिया जाता है और डिब्बों में भरकर बाजारों में भेज दिया जाता है।

हरी चाय (Green Tea) बनाने के लिये पत्तियों को तोड़कर तत्क्षण कड़ी गर्मी में कुछ देर के लिये रखा जाता है जिससे उनमें खमीर न उठ सके। पत्तियों के सूख जाने पर उन्हें चलनियों द्वारा भिन्न-भिन्न श्रेणियों में विभक्त कर लिया जाता है। इस विधि से पत्ती का मौलिक रंग तथा स्वाद वैसा ही बना रहता है।

भारत, लङ्का, इन्डोनेशिया में केवल काली चाय तैयार होती है। जापान में सारी चाय हरी तैयार होती है तथा चीन में काली और हरी चाय दोनों ही बनाई जाती हैं।

उत्पादन क्षेत्र—विशाल परिमाण पर चाय का उत्पादन एशिया में ही होता है। भारत, पाकिस्तान, लङ्का, इंडोनेशिया और जापान चाय उत्पन्न करने वाले

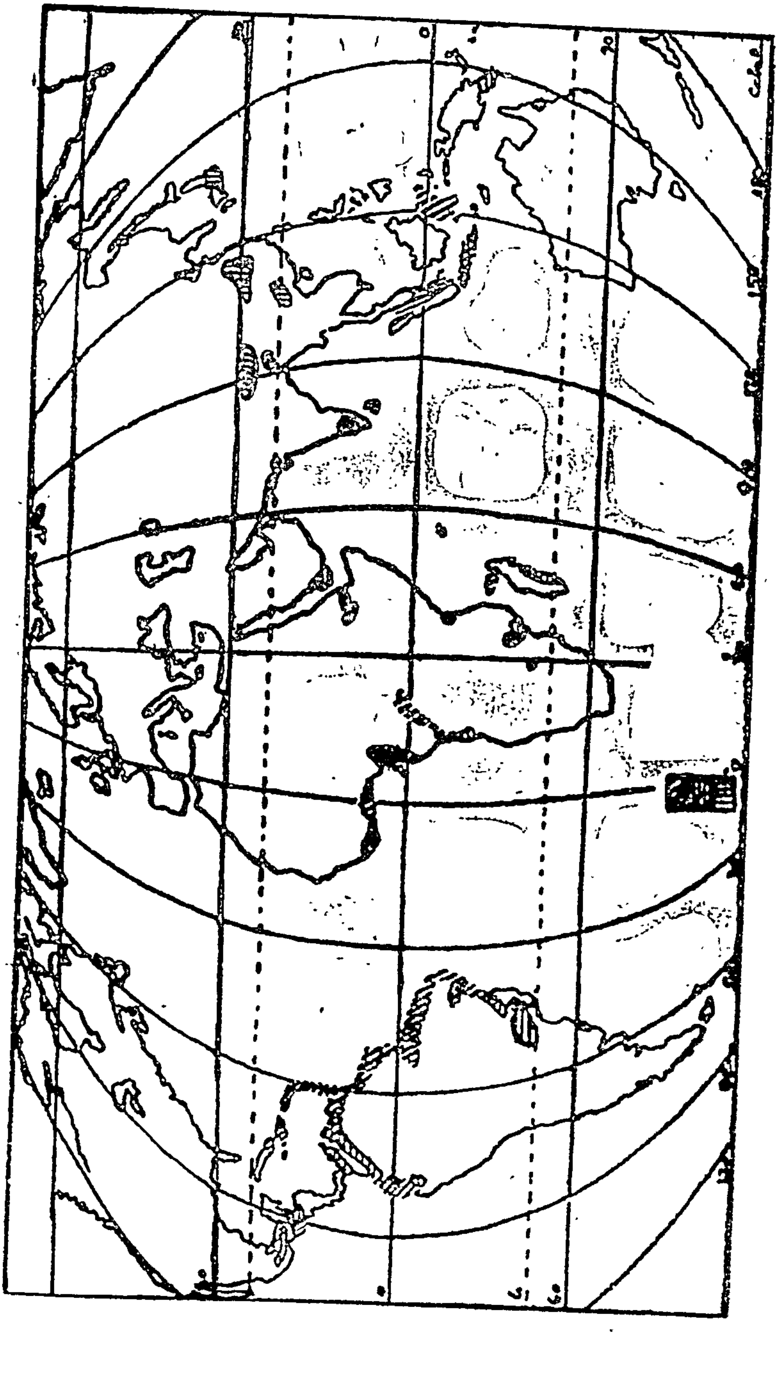

चित्र १३१—संसार के पेय पदार्थ उत्पन्न करने वाले भाग।

मुख्य देश माने जाते हैं। भारत दुनियां की ५३ प्रतिशत, लङ्का २७ प्रतिशत, इंडोनेशिया व जापान ११ प्रतिशत और बहुत थोड़ी मात्रा में चाय ब्राजील, जमेका और नेटाल में भी पैदा की जाती है। अब पूर्वी अफ्रीका व ईरान में भी चाय की खेती बढ़ाई जा रही है तथा दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में भी इसे पैदा करने के परीक्षण किये जा रहे हैं। अन्य चाय-उत्पादक देश ये हैं—दक्षिणी ब्रह्मा, फीजी द्वीप, मलाया और हिन्द चीन। अगले पृष्ठ की तालिका में संसार के मुख्य देशों में चाय का उत्पादन बताया गया है।

चाय का उत्पादन

देश	१९३८ (लाख पौण्डों में)	१९५२
भारत	४,५२०	६,२२०
पाकिस्तान	—	५३०
लंका	२,४७०	३,१७०
न्यासालैंड	११०	१६०
केनिया	११०	१५०
युगाण्डा	—	४०
टेंगानीका	१०	२०
मलाया	१०	४०
दक्षिणी अफ्रीका संघ	१०	—
इन्डोनेशिया	१,७८०	८१०
जापान	१,२१०	१,२८०
फारमूसा	२७०	२६०
सोवियत रूस	१९०	—
ईरान	१०	१२०
योग	१०,७००	१२,८००

चीन—चाय का व्यवसाय सर्वप्रथम चीन में ही आरम्भ हुआ था, और १९ वीं शताब्दी के अन्त तक वही एक मात्र चाय पैदा करने वाला और निर्यात करने वाला देश था। चीन में चाय का व्यवसाय एक घरेलू उद्योग के रूप में किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौते के अनुसार चाय की खेती के लिये जितने क्षेत्र की अनुमति दी गई है उतने में इस समय इसकी खेती नहीं की जाती।

यहाँ यह व्यवसाय अच्छे व्यवस्थित और बड़े पैमाने पर नहीं होता। चीन में चाय के छोटे-छोटे बगीचे होते हैं जिनकी उचित देखभाल नहीं होती। यहां

पर अधिकतर चाय यांगटिसीक्यांग की घाटी और दक्षिणी पूर्वी पहाड़ियों पर एनाहिवी (Anhevi), क्यांगसी (Kiangsi) और फूकेन (Fukain) की उपजाऊ लाल मिट्टी पर पैदा की जाती है। सामान्यतः यहाँ पर चाय चुनने की चार मौसम हुआ करती हैं। पहली अप्रैल, दूसरी मई, तीसरी जुलाई और अगस्त और चौथी सितम्बर मास में चुनी जाती है। पहले चुनाव की पत्तियाँ सबसे उत्तम चाय प्रस्तुत करती हैं और चीन में इसे बहुत पसंद किया जाता है। अतः यह चाय शायद ही कभी बाहर निर्यात की जाती है। इसके बाद की चुनी हुई चाय कुछ घटिया किस्म की होती है और प्रायः बाहर भेज दी जाती है। यह चाय हरी चाय (Green Tea) के नाम से प्रसिद्ध है। चाय का कुल निर्यात शंघाई बन्दरगाह से किया जाता है। चाय के घरेलू बाजार की दृष्टि से हांको (Hankowe) सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र है।

तिब्बत को भी यहाँ से बहुत बड़ी मात्रा में चाय ईंटों (Brick Tea) के रूप में निर्यात की जाती है। चाय की यह किस्म एक विशेष तरीके से तैयार की जाती है। चाय के पौधों से १२″ लम्बे तिनके काटकर धूप में सुखा दिये जाते हैं और फिर इनको चावल के माँड में मिलाकर चिपचिपी बना लेते हैं और मशीनों से दबाकर चाय की ईंटें तैयार कर लेते हैं। तिब्बत को यह चाय याक, ऊँट और कुलियों के सिर पर निर्यात करदी जाती है।

भारत—चाय पैदा करने वाले प्रदेशों में १६ वीं शताब्दी के अन्त तक चीन ही विश्व में सबसे अधिक चाय निर्यात करने वाला देश था किन्तु जब एशिया के दूसरे देशों में अंग्रेजों द्वारा व्यवस्थित रूप से चाय की खेती की जाने लगी तो चीन के चाय निर्यात को बड़ा धक्का लगा। यह सन् १८८६ में २६५० लाख पौंड से घट कर १६०६-१३ में केवल १६६० लाख पौंड ही रह गई और सन् १६३५-३६ में केवल ८०० लाख पौंड। अब भी यहाँ की निर्यात मात्रा २००-२५० लाख पौंड से अधिक नहीं है। निर्यात में भारतवर्ष प्रथम नम्बर का देश है। यहाँ पर चाय पहले-पहल ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय प्रचारित की गई और आज इसका धंधा इतना उन्नत अवस्था को पहुँच गया है कि वर्त्तमान समय में हमारा देश प्रमुख निर्यात करने वाला बन गया है। यहाँ के उत्तरी-पूर्वी भाग में चाय की फसल मौसमी फसल होती है। पत्तियाँ चुनने का मौसम सिर्फ अप्रैल से नवम्बर तक रहता है। इसमें सितम्बर और अक्टूबर मास में सबसे अधिक चाय तोड़ी जाती है। भारत की चाय के कुल उत्पादन का ५५% ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में धरांग, शिवसागर, लखीमपुर जिले तथा सुरमा घाटी के कछार में होती है। पश्चिमी बंगाल में चाय दार्जिलिंग और जलपाईगुरी जिले में २५%; बिहार में पूर्णिया व राँची जिले; उत्तर प्रदेश में कांगड़ा, गढ़वाल, अलमोड़ा, देहरादून जिले तथा दक्षिणी भारत में ट्रावनकोर, मद्रास, कुर्ग, मैसूर और बम्बई के सतारा जिले में पैदा की जाती है। उत्तरी भारत में चाय ३५०० फुट और दक्षिण में नीलगिरी की पहाड़ियों में ४,८०० से ५,६०० फुट की ऊँचाई तक बोई जाती है। यहाँ चाय के बाग १०० एकड़

से लेकर ६००० एकड़ तक के होते हैं, चाय का अधिकतर निर्यात कलकत्ता और मद्रास बन्दरगाहों से होता है।

जापान—जापान की प्राकृतिक परिस्थितियों में भी इसकी पैदावार के लिये अनुकूल अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं। अतः जापान भी इसके व्यापार में महत्त्वपूर्ण भाग लेने वाला देश हो गया है। यद्यपि चीन, भारत, लंका और इंडोनेशिया में बहुत अधिक मात्रा में चाय बोई जाती है और पैदा भी की जाती है परन्तु इन सबकी अपेक्षा जापान की प्रति एकड़ पैदावार सबसे अधिक है। जापान पाँचवाँ बड़ा चाय पैदा करने वाला और निर्यात करने वाला देश है। यहाँ चाय भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों (करीब एक चौथाई एकड़ के) में पैदा की जाती है परन्तु वह बहुत ही व्यवस्थित ढंग से पैदा की जाती है।

यहाँ पैदावार के सबसे बड़े केन्द्र द्वीप के दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी भागों में स्थित हैं। सिज्युका (Shizuoka) सबसे उत्तम चाय पैदा करने वाला देश है। यह देश की आधी फसल पैदा करता है। जापान में चाय की अधिकतर खेती प्रशान्त महासागर की ओर ही केन्द्रित है। चूंकि इस ओर धूप अधिक और बर्फ कम गिरती है तथा घनी वर्षा (करीब ६०" प्रतिवर्ष) और पैदावार की मौसम लम्बी होती है व सरदी का तापक्रम इसके विपरीत जिलों से जो कि महाद्वीप के सामने स्थित हैं कम रहता है अतः जापान के पूर्वी भागों का चाय के व्यवसाय का केन्द्र होना स्वाभाविक ही है। यहाँ की पहाड़ियाँ व भूमि मुख्यतः प्रस्तरीभूत चट्टानों व फ्यूजीयामा के लावा से बनी हैं जो कि चाय की खेती के लिये अति उत्तम सिद्ध हुई हैं। जापान में घरेलू उपयोग के लिये अभी भी चाय पुराने ढंग पर हाथ से ही तैयार की जाती है। किन्तु निर्यात के लिये सारी चाय मशीनों द्वारा ही तैयार की जाती है। यहाँ की चाय हरी चाय होती है जो याकोहामा के बन्दरगाह से संयुक्त राष्ट्र को निर्यात की जाती है।

इंडोनेशिया में भी बहुत बड़ी मात्रा में चाय की खेती की जाती है। यह तीसरा बड़ा चाय निर्यात करने वाला देश है। इनमें जावा द्वीप ही मुख्य है और लगभग २२५,००० एकड़ में चाय बोई जाती है। चाय के खेत अधिकतर द्वीप के पश्चिमी ज्वालामुखी उच्च प्रदेशों में ही स्थित हैं जो सामुद्रिक धरातल से २५०० से ५,००० फीट तक ऊँचे हैं। यहाँ सबसे बड़ी विशेषता समवितरित वर्षा (१५० से २०० इंच) और ऊँचे तापक्रमों का उचित समन्वय है जिससे कि लगातार सालभर चाय तोड़ने की मौसम बनी रहती है। यहाँ के उच्च प्रदेशों के ढालों में काली गहरी दोमट मिट्टी भी पाई जाती है जो वर्षा के कारण पानी से पूर्ण प्लावित रहती है। अति वर्षा के कारण यहाँ मिट्टी का कटाव बहुत तेज होता है। अतः इसके बचाव के फलस्वरूप खेती सीढ़ीदार खेतों के रूप में अपनाई जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जावा की चाय लंका, उत्तरी बंगाल व ब्रह्मपुत्र की घाटी की चाय से काफी घटिया किस्म की समझी जाती है। जावा के मध्यम किस्म की चाय का अधिकतर प्रदेश वहाँ के आदिवासियों के हाथ में ही है जो उस पर जावा की चाय की रियासतों (Javanese Tea Estates) के समान वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती नहीं करते। सुमात्रा में भी चाय की खेती बढ़ाई जा रही है।

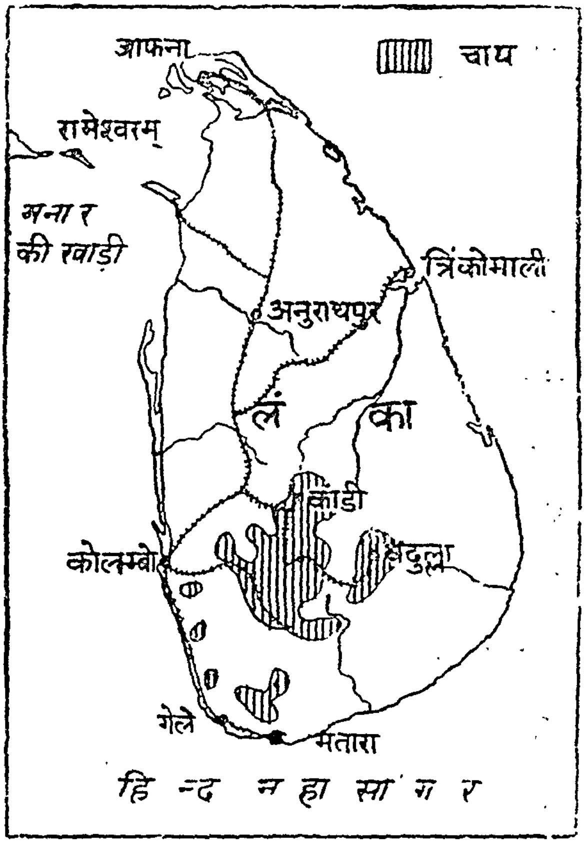

चित्र १३२—लंका में चाय का क्षेत्र

लंका—लंका की उच्च भूमि तथा वहाँ कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हैं जिसके कारण चाय का व्यवसाय ही वहाँ पर प्राकृतिक रूप से उपयुक्त बन गया है। ऊँचा तापक्रम, पैदावार की लम्बी मौसम, प्रचुर मात्रा में समवितरित वर्षा आदि सुविधायें भी वहाँ मौजूद हैं कि जिससे चाय की पैदावार निरन्तर तीव्र गति के साथ बढ़ती ही जाती है। यहाँ पत्तियों का चुनना सालभर होता रहता है। लंका की चाय काले रंग की होती है और प्रति एकड़ पैदावार ८०० पौंड संसार के सब देशों से अधिक होती है।

लंका में लगभग ४ लाख एकड़ भूमि से भी अधिक में चाय बोई जाती है। इसमें से आधे से अधिक वहाँ की Corporation के अन्तर्गत है जो तमाम अँग्रेज अधिकारियों की व्यवस्था में है। वहाँ का औसतन खेत २०० एकड़ का होता है। लगभग ३५० बाग ५०० एकड़ से भी बड़े हैं किन्तु चाय के बागों का ३/५ भाग १० से १०० एकड़ तक का है।[1] वहाँ के चाय के बगीचों में काम करने के लिये दक्षिणी भारत के तामिल कुलियों से काम लिया जाता है।

---

१. International Bank for Reconstruction and Development: The Economic Development of Ceylon, 1953, p. 227-235

चाय का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

नीचे की तालिका में मुख्य-मुख्य देशों से हुए निर्यात के आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं:—

देश	१६३८	१६५२
	(१० लाख पौंड में)	
भारत	३,५१०	४,१००
पाकिस्तान	—	२४०
लंका	२,३६०	३,१४०
न्यासालैंड	१००	१५०
केनिया	६०	१००
ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका के अन्य देश		५०
इन्डोनेशिया	१,५६०	७००
चीन	६२०	१२०(ग)
जापान	३७०	२१०
फारमूसा	२२०	२२०
मोजाम्बिक	१०	६०
योग	६,१७०	६,०६०

निर्यात का रूप—चाय का अधिकांश व्यापार ब्रिटिश राष्ट्र मंडल के देशों के मध्य होता है। इन्हें छोड़ कर केवल इन्डोनेशिया ही बड़े परिमाण पर निर्यात करने वाला और केवल अमेरिका बड़े परिमाण पर आयात करने वाला देश है। ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के निर्यातक देशों का सबसे अधिक माल ब्रिटेन लेता है। यह भारत और पाकिस्तान का दो-तिहाई और लंका का एक-तिहाई माल लेता है परन्तु १६३८ में उत्पादक देशों से खपत वाले देशों को सीधा माल भेजने की प्रथा चालू हो जाने और ब्रिटेन से पुनर्निर्यात के व्यापार पर प्रतिबन्ध (अक्तूबर १६५२ तक) लग जाने के कारण इसमें कमी हो गई है। अब भारत और लंका से काफी परिमाण में चाय सीधी अमेरिका, कनाडा और

आयर को भेजी जाने लगी है। आस्ट्रेलिया, ईरान और मिस्र को भी पहले से अधिक परिमाण में चाय सीधी उत्पादक देशों से भेजी जा रही है। एक समय था जब ये देश मुख्यतः इण्डोनेशिया से ही चाय लेते थे। १९५२-५३ में भारत से ब्रिटेन को भेजी गई चाय का परिमाण बहुत थोड़ा कम हुआ जब कि लंका का निर्यात प्रायः ज्यों का त्यों बना रहा। भारत और लंका दोनों के ही लिये अब उत्तरी अफ्रीका और मध्य पूर्व के बाजार पहले से अधिक महत्वपूर्ण हो गये हैं। १९५२-५३ में पाकिस्तान के लिये ब्रिटेन ही सबसे अच्छा बाजार रहा। पाकिस्तान का अधिकांश निर्यात ब्रिटेन को ही हुआ। ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका और न्यासालैंड का निर्यात मुख्यतः ब्रिटेन को ही होता है यद्यपि चाय कनाडा और अमेरिका को भी भेजा जाता है।

इण्डोनेशिया की अधिकांश चाय नीदरलैंड में ही खपती है। दूसरा स्थान ब्रिटेन का रहता है। आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, अमेरिका, मिस्र और ईरान युद्ध से पहले की अपेक्षा इण्डोनेशिया से कम चाय लेता है। जापान से निर्यात हुई चाय का आधा भाग अल्जीरिया और मोरक्को को और शेष आधा अमेरिका और सुदूर पूर्व के देशों को जाता है। फारमूसा की चाय का अमेरिका को जाना बराबर गिरता गया है। परन्तु उसकी पूरी चाय उत्तरी अफ्रीका में खपने लगी है।

अगले पृष्ठ की तालिका में चाय के निर्यात के आँकड़े दिये गये हैं:—

(१० लाख पौण्डों में)

देश	भारत और पाकिस्तान		लंका		इंडोनेशिया	
	१९३८	१९५२	१९३८	१९५२	१९३८	१९५२
ब्रिटेन	३०४·४	२८१·३	१९९·३	११३·४	२६·४	१०·२
कनाडा	१५·५	२२·६	८·३	२०·२	०·२	०·२
आस्ट्रेलिया	१·३	१२·६	१३·०	३९·६	३३·५	४·६
न्यूजीलैण्ड	०·३	१·४	८·९	८·२	—	०·४
दक्षिणी अफ्रीका	०·४	—	१०·५	२१·२	३·६	०·७
मलाया	—	—	०·९	२·४	०·८	३·१
सूडान	०·२	७·६	०·२	०·८	४·०	५·३
आयर	३·४	१२·४	०·१	०·७	—	१·९
अमेरिका	८·१	२९·६	१२·७	३४·९	२०·८	५·८
नीदरलैण्ड	—	७·६	०·१	५·८	३१·६	२९·३
सोवियत रूस	०·१	—	—	—	०·९	—
ट्यूनेशिया	—	१·४	२·२	३·३	०·७	० २
लीबिया	—	—	—	४·४	१४·४	०·२
मिस्र	०·४	१३·२	३·४	२३·२	० ३	४·३
अरब	०·७	१५·९	०·१	३·३	५·४	—
ईराक	०·२	२·१	०·७	१४·७	५·०	२·२
ईरान	५·१	१·१	·०६	७·६	११·०	०·२
अन्य देश	८·७	१४·९	७·३	१७·८		४·९
योग	३०४·०	४२३·७	२३५·७	१५८·६	१५८·६	७०·३

आयात करने वाले मुख्य देश—ब्रिटेन अब भी विश्व भर के देशों से निर्यात होने वाली आधे से अधिक चाय खरीदता है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों ने हाल के वर्षों में कोई १,५०० लाख पौण्ड और अमेरिका ने १,००० लाख पौंड से कुछ ही कम चाय खरीदी है। १९५२ में अक्टूबर में राशन टूटने से पहले ब्रिटेन में चाय का संग्रह कर लिया गया था अतः उसने ५,००० लाख पौंड चाय खरीदी थी। कनाडा और दक्षिणी अफ्रीका ने भी बहुत चाय खरीदी थी। परन्तु आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की खरीद घट गई। इसमें भी न्यूजीलैण्ड की खरीद में तो बहुत भारी कमी हो गई थी।

नीचे की तालिका में देशों के अनुसार चाय का आयात दिखाया गया है :—

देश	१९३८ (लाख पौंडों में)	१९५२
ब्रिटेन	५,२७०	४,९७०
आस्ट्रेलिया	४५०	५४०
कनाडा	३८०	४६०
दक्षिणी अफ्रीका संघ	१६०	२४०
न्यूजीलैण्ड	११०	९०
सूडान	६०	१८०
आयरलैण्ड	२३०	१७०
अमेरिका	८१०	९३०
सोवियत रूस	३७०	४०
नीदरलैण्ड	२४०	१७०
फ्रान्सीसी मोरक्को	२००	२७०
मिस्र	१७०	३६०
जर्मनी	१२०	६०
ईरान	१६०	६०
ईराक	७०	१९०
योग	८,८००	८,७३०

चीन को छोड़ कर विश्व में उत्पन्न होने वाली चाय का अधिकांश भाग ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के देशों में खपता है। ब्रिटेन में चाय बहुत पी जाती है और भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है अतः इन देशों में चाय की खपत अच्छी होती है। बृटिश राष्ट्र मण्डल से बाहर अमेरिका में चाय की अच्छी खपत होती है परन्तु इतने पर भी वहाँ प्रति व्यक्ति पीछे चाय की खपत का औसत कम रहता है।

नीचे की तालिका में मुख्य देशों में वार्षिक उपभोग के आँकड़े प्रस्तुत किए गये हैं:—

देश	उपभोग (१९५२) लाख पौंड	देश	उपभोग (पौंड) लाख पौंड
ब्रिटेन	४,२१०	आस्ट्रेलिया	५३०
कनाडा	४५३	द० अफ्रीका संघ	२३५
न्यूजीलैंड	९९	आयर	२२८
भारत और पाकिस्तान	२,०५८	अमेरिका	९९०
लंका	१४०	नीदरलैंड	१६२
सूडान	१७५	फ्रा० मोरक्को	२७४
		मिश्र	३५८

नीचे की तालिका में प्रति व्यक्ति पीछे चाय की खपत के आँकड़े दिखाये गये हैं:—[1]

देश	१९५३ (पौण्डों में)	देश	१९५३ (पौण्डों में)
ब्रिटेन	९·५	फ्रांसीसी मोरक्को	३·२
आस्ट्रेलिया	६·५	नीदरलैंड	१·७
न्यूजीलैंड	७·९	मिस्र	२·१
कनाडा	३·०	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	०·७
भारत और पाकिस्तान	०·५	फ्रांस	०·०७
लंका	१·८	जर्मनी	·१७
आयर	५·५	रूस	·२१

सन् १९२९ की आर्थिक मन्दी के युग के पश्चात् चाय का उत्पादन अत्यधिक मात्रा में हो जाने से मन्डियों में इसका मूल्य गिर गया जिससे बड़े-बड़े व्यापारियों को बड़ी हानि उठानी पड़ी। अतः १९३२ में चाय के उत्पादन और निर्यात की मात्रा पर नियंत्रण करने के लिये एक अंतर्राष्ट्रीय योजना बनाई गई जो १९३३ से १९३६ तक लागू रही। १९३८ में दूसरी पंचवर्षीय योजना चालू की

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 192

गई। प्रथम समझौता भारत, जावा और लंका के बीच इस उद्देश्य से हुआ कि—(१) निर्यातक देशों से चाय की निर्यात की मात्रा पर नियन्त्रण रखा जाय ताकि माँग व पूर्ति में सामंजस्य हो सके; (२) निर्धारित-मात्रा से अधिक निर्यात पर विभिन्न सरकारें नियन्त्रण लगादें, और (३) समझौते की अवधि ५ वर्ष होगी जिसमें कोई भी देश चाय की खेती नहीं बढ़ा सकेगा। इस समझौते के अनुसार भारत की निर्धारित निर्यात मात्रा ३८०० लाख पौण्ड थी किन्तु १९३९ में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने पर भारत की निर्यात मात्रा युद्ध-कालीन माँग की पूर्ति करने के लिये बढ़ा दी गई। सन् १९४८ में एक और अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौता भारत, पाकिस्तान लंका व इन्डोनेशिया देशों के बीच दो साल के लिये हुआ।

चाय के अन्य प्रतिस्पर्धी

चाय की झाड़ी की पत्तियों के अतिरिक्त दुनियाँ के कई भागों में अन्य पौधों की पत्तियाँ भी चाय की तरह काम में ली जाती हैं। उदाहरण के लिए दक्षिणी ब्राजील, उत्तरी अर्जेन्टाइना, द० पूर्वी बोलिविया और पैरेग्वे में जंगली रूप में पैदा होने वाले वृक्ष यरबा माटे (Yerba Mate) की पत्तियाँ विशेष रूप से यूरेग्वे, ब्राजील, पैरेग्वे और अर्जेन्टाइना यरबा चाय या पैरेग्वे चाय के नाम से व्यवहृत की जाती है। आस्ट्रेलिया में यूक्लीप्टस वृक्ष की पत्तियाँ, दक्षिणी अफ्रीका में 'Bushman Tea' भारत में 'Lemon grass Tea' और रियूनियन द्वीप में 'Bourbon Tea' तथा स० रा० अमेरिका में यूपोन (Yupon or Black Drink) आदि चाय की तरह ही पी जाती है।

(२) कहवा या काफी (Coffee)

कहवा एक हरी झाड़ी का बीज है जिसकी उत्पत्ति स्थान अफ्रीका की उच्च भूमि प्रधानतः इथोपिया अथवा एबीसीनिया है। ११ वीं शताब्दी में अफ्रीका से ही यह अरब ले जाया गया। अरब में काफी १५०० ईसवी तक पा जाती थी। यह मिश्र में भी यहीं से पहुँचा। पश्चिमी यूरोपीय देशों में इसकी पिया जाना १७वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हुआ। यह पौधा उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों का पौधा है जो विषुवत रेखा के दोनों ओर २८° उत्तरी और ३८° दक्षिणी अक्षांशों के बीच सुगमता से पैदा किया जाता है। व्यापारिक दृष्टि से इसकी पैदावार विषुवत रेखा के १५° अक्षांश तक ही सीमित है जो कि समुद्र के धरातल से १,५०० फीट से ४,००० फीट तक की ऊँचाई वाले पठारों पर बोई जाती है। श्री स्मिथ, फिलिप्स और स्मिथ के अनुसार विश्व को काफी के ६ बिलिअन वृक्ष विषुवत् रेखा के २४–२५° अक्षांशों के बीच उच्च भागों में पाये जाते हैं। कहवे का मूल्य इसके बीजों के कारण होता है जो इसके गूदेदार फलों में पाये जाते हैं। इसके फलों में प्रायः दो बीज होते हैं। फलों को इकट्ठा करने के बाद गूदे को अलग कर दिया जाता है और बीजों को निकाल कर धूप में सुखा लेने के बाद उनको तलकर पीस लेते हैं। यही बाजारों में बिकने वाला कहवा है।

चित्र १३३—कहवा का पौधा और फल

जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताएँ

कहवे के लिये उष्णतर जलवायु की आवश्यकता होती है। इसके लिये पूर्ण रूप से आदर्श जलवायु यमन (Yemen) में पाई जाती है। सूर्य की सीधी किरणें इस पौधे के लिये हानिकारक होती हैं। इसलिये अच्छे बढ़े हुए पौधों को उष्ण प्रदेशों में चमकने वाले तेज सूर्य की किरणों से बचाने के लिये प्रायः केले, रबड़, सिकोना और बड़े-बड़े मटर अथवा अन्य छायादार वृक्षों के नीचे बोया जाता है। दक्षिणी पूर्वी अरब के तटीय भागों में कहवे के पौधों की रक्षा प्राकृतिक रूप से दोपहर के समय समुद्री धुन्धों (Mist) से हो जाती है।

(१) इसका पौधा न तो सूखा ही सहन कर सकता है और न पाला ही। इसीलिये यह उष्ण प्रदेशों के ठण्डे भागों में ही पैदा हो सकता है। इस कारण अधिकतर पैदा करने वाले देशों में ठण्डे ऋतु का औसत तापक्रम ५२° फा० और ग्रीष्म का औसत तापक्रम ४२·५° फा० होता है। इसके लिये वार्षिक तापक्रम ६३° फा० से ७७° फा० तक उत्तम रहता है। ८०° से अधिक तापक्रम में इसकी उपज कम हो जाती है और फिर लम्बी गर्मियाँ भी यह सहन नहीं कर सकता।

(२) कहवे के लिये घनी वर्षा (६०" से ७५" तक) की आवश्यकता होती है। जहाँ इतनी वर्षा नहीं होती वहाँ सिंचाई द्वारा कमी पूरी की जाती है और जहाँ आवश्यकता से अधिक पानी गिरता है वहाँ पानी के निकास का प्रबन्ध करना पड़ता है।

(३) कहवे के लिए उपजाऊ और ढालू तथा जल से सिंचित भूमि की आवश्यकता होती है। इसके लिये सबसे उपयुक्त जंगलों को काट कर साफ की हुई भूमि समझी जाती है जो वनस्पति के सड़े-गले अंशों और लोहे के अंशों के मिले होने के कारण काफी उपजाऊ होती है। इंडोनेशिया और लेटिन अमरीका में यह ज्वालामुखी पर्वतों की लावा मिट्टी वाली भूमि में अच्छा पैदा होता है।

इसका पौधा ३ से ५ साल तक फल देने योग्य हो जाता है किन्तु व्यावसायिक रूप से ६ साल के उपरान्त ही पूर्ण रूप से फसल देने योग्य होता है और निरन्तर २०—३० वर्ष तक तीव्र गति से फल-फूल देता रहता है।[1] सबसे उत्तम और खुशबूदार कहवे के पेड़ पहाड़ी ढालों में ही पैदा किये जाते हैं जहाँ वर्षा का अतिरिक्त जल ढालों से बह जाता है और जहाँ यातायात के साधनों की विशेष सुविधा होती है। इसके उपरान्त भूमि बिल्कुल अनउत्पादक हो जाती है। कहवे के कई चालीस व तीस वर्ष पुराने पेड़ भूमि की उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाने के कारण ऐसे ही छोड़ दिये जाने पर अब बड़े जंगल के अन्य भागों से बिल्कुल ही नहीं पहचाने जाते।

ब्राजील में यह १,५०० फीट से ३,००० फीट, जावा में १,५०० से ५,००० फीट और भारत मे २,५०० फीट से ३,५०० फीट के ऊँचे पहाड़ी ढालों पर बोया जाता है। किन्तु इसकी सबसे उम्दा किस्म २,५०० से ६,००० फीट की ऊँचाई पर होती है। कहवे के अधिकतर बगीचे समुद्र के समीप ही पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि समुद्र के प्रभाव के कारण तापक्रम हमेशा समान रहता है और वर्षा की बौछारों के कारण वर्षा का वितरण भी सम होता है। इससे इसकी पैदावार को काफी लाभ पहुँचता है और प्राकृतिक रूप से दोपहर के समय समुद्री धुन्धों द्वारा भी पौधों की रक्षा हो जाती है।

इस फसल की उन्नति में यदि सबसे बड़ी कोई बाधा है तो वह कीड़े लगने की है। इसका सबसे बड़ा शत्रु कॉफी बिटल (Coffee Beetle) नामक कीड़ा होता है। यह इसके फल के अन्दर घुस कर उसे बिल्कुल खोखला कर देता है। असामयिक जलवृष्टि एक दूसरी समस्या उपस्थित करती है। कहवे के पौधे में प्रति वर्ष सितम्बर से दिसम्बर तक फूल आते हैं। ये फूल चार दिनों तक रहते हैं। यदि इन चार दिनों में वर्षा हो गई, तो फूल गिर जाते हैं और फिर कोई फल नहीं होता।

(४) कहवे के लिये सस्ते मजदूरों की भी आवश्यकता होती है जो पेड़ पर से इसके फल चुन सकें। कहवे की खेती क्रमशः विभिन्न देशों में घटती-बढ़ती रही है। सबसे पहले अरब कहवे का मुख्य उत्पादक था। फिर बदलकर पश्चिमी द्वीप हुए, इसके बाद जावा और आजकल ब्राजील सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र है।[2]

इसके पौधे वर्षा ऋतु में नवम्बर से फरवरी तक लगाये जाते हैं। बाद में

---

१. W. H. Vkers : All About Coffee, 1935.
२. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 184.

उनकी बढ़वार के समय काफी सतर्कता रखने की आवश्यकता होती है। कहीं-कहीं इसकी सुरक्षा के हेतु बहुत बड़े बाँसों के ऊपर जाल भी बाँधा जाता है। परन्तु बहुत-सी जगह इस कार्य के लिये छायादार वृक्ष ही लगाये जाते हैं। इन पेड़ों में खास कर जंगली सेम ही अधिक पसन्द की जाती है—चूंकि यह जानवरों के लिये अच्छा भोजन भी देती है और जब सूख कर नीचे गिर जाती है तो भूमि को भी उपजाऊ बनाती है। जब पौधे लगभग १८" बड़े हो जाते हैं तो उन्हें दूसरे क्षेत्रों में १२ से १५ फुट की दूरी पर लगा दिया जाता है। पौधों के बेरों (berry) को पकने में ६-७ महीने लग जाते हैं। प्राकृतिक रूप में पैदा होने वाले कहवे के वृक्ष २५ से ४० फीट तक ऊँचे होते हैं; परन्तु व्यापारिक दृष्टि से उत्पन्न किये गये पौधों को ५ से १२ फीट से अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता ताकि मजदूर लोग जमीन पर खड़े रहकर ही इसके फलों को सरलतापूर्वक चुन सकें। कहवे की उपज साल में दो बार उतारी जाती है—शीतकाल और बसन्त ऋतु में सबसे अधिक फसल अक्तूबर, नवम्बर, और दिसम्बर के महीनों में और सबसे कम अप्रैल, मई व जून के महीनों में प्राप्त होती है।

संसार में कहवा पैदा करने वाले मुख्य देश, ब्राजील, पश्चिमी द्वीप समूह (जमेका, हेटी, क्यूबा), मध्य अमेरिका (पोर्टो रिको, डोमोनिको, निकारगुआ, ग्वाटेमाला, साल्वेडोर, कास्टॉरिका), दक्षिणी अमेरिका (वैनेजुएला, इक्वेडोर, कोलंबिया, एंडीज के पठार), दक्षिणी भारत, लंका, इंडोनेशिया, अरब, अफ्रीका (केनिया, टैंगेनिका, यूगंडा, बेलजियन कांगो, अंगोला, नाइजीरिया और गोल्ड कॉस्ट) हैं। नीचे की तालिका में प्रमुख देशों का उत्पादन और प्रति एकड़ पैदावार दिखलाई गई है।

कहवा का उत्पादन (१००० मैट्रिक टनों में)[1]

देश	१९३४-१९३८	१९५०	प्रति एकड़ उपज (पौंडों में)
ब्राजील	१४४६	९६०	३६५·८
कोलम्बिया	२५१	३२०	५६२·१
क्यूबा	३२	३२	४४६·१
सालवेडोर	६४	९८	५४६·१
ग्वाटेमाला	६९	५५	—
इंडोनेशिया	६८	—	४४६·१
नेटिव योरोप	४९	११	४७२·८
मेक्सिको	५६	६४	४१९·३
वैनीज्वैला	५८	—	५१७
भारत	१९·३	—	१६६·३
सम्पूर्ण विश्व	२४२०	—	—

१ F. A. O : The World's Coffee.

ब्राजील समस्त विश्व की २/३ पैदावार उत्पन्न करता है। यद्यपि ब्राजील के प्रत्येक राज्य में कहवा उत्पन्न होता है; किन्तु इसका उत्पादन साओपालो राज्य में ही मुख्यतः केन्द्रित है। यही कहवा के उत्पादन का हृदय-स्थल (heart of the Coffee region) उत्तर की ओर कहवा क्षेत्र गॉडलैंड की सीमा के निकट और पश्चिम में पैराना की सहायकों के बीच प्लेकाऊ तक फैला है। ब्राजील की ९०% पैदावार मध्य और दक्षिणी साओपालो, रियोडिजिनिरो के पूर्वी जिले औरमिनास-जिरास, एस्पिरिटा सैंटो के प्रान्तों से प्राप्त होती है जो अपनी प्राकृतिक बनावट, जलवायु और अनुकूल

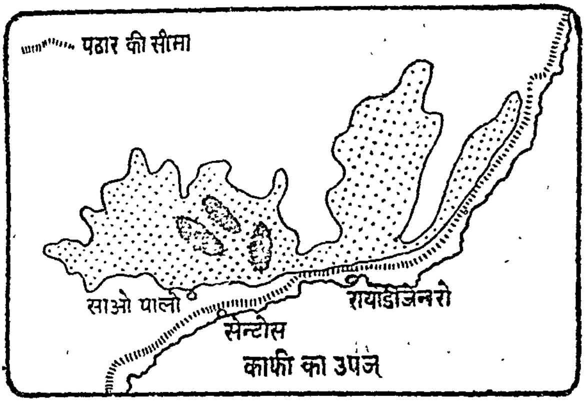

चित्र १३४—ब्राजील में कहवा के प्रदेश

भूमि के कारण इसकी पैदावार के लिये बहुत ही प्रख्यात हो गये हैं। साओपालो के उत्तरी भाग से ब्राजील की ४०-५०% पैदावार; मिनास-जिरास के दक्षिणी भाग से २५-३० और रियोडिजिनिरो से १०% कहवा प्राप्त किया जाता है। ब्राजील में कहवे के खेत फजेंडा (Fazenda) कहलाते हैं। साओपालो में कहवे के बगीचों में ३००,०००० से ४००,०००० तक के पेड़ पाये जाते हैं, परन्तु कही-कहीं यह संख्या ८००,०००० से भी अधिक पहुँच गई है। कहवे के बागों का क्षेत्रफल ६५०,०००० एकड़ से भी अधिक है। ब्राजील के कुछ बाग तो इतने बड़े हैं कि उनकी पैदावार ढोने के लिए प्राइवेट रेल-मार्ग आदि भी बनाये गये हैं। ब्राजील में हर २,००० पेड़ों के पीछे एक मजदूर की आवश्यकता होती है। अतः कहवे के बगीचों में काम करने वाले मजदूरों की काफी बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है जिनमें फसल इकट्ठा करने वाले, गाड़ी चलाने वाले, मोटर ड्राइवर्स और नीचे भूमि पर काम करने के लिये मजदूर भी सम्मिलित होते हैं।

ब्राजील में यह उद्योग १८७० के आस-पास शुरू हुआ था। सर्वप्रथम रियोडिजिनीरो के समीप किनारे की निम्न भूमियों में इसकी जाँच करने के हेतु फसल बोई गई। जब इसमें पूर्ण सफलता मिली तो फिर किनारे की श्रेणी के पीछे की ओर इसके सहारे-सहारे रियोपेरादिवो की घाटी में समुद्र की सतह से २,५७० से ५,००० फीट की ऊँचाई वाले ढालों पर इस प्रदेश के मध्य में भी खेती की जाने लगी। इसके फलस्वरूप जहाँ १८०० में ब्राजील से केवल १३ बोरे कहवे का निर्यात हुआ था, वहाँ १८४० में १० लाख से भी अधिक बोरे निर्यात हुए। १८५० में विश्व के कुल उत्पादन का ३/४ अकेले ब्राजील से ही प्राप्त हुआ था। १९३४ में ब्राजील की पैदावार चरम सीमा तक पहुँच गई—२,९५०,००० बोरे। आजकल यह मात्रा २० लाख बोरे ही

है।[1] साओपालो प्रदेश में इसकी खेती के इतना जल्दी बढ़ने के निम्नलिखित कारण हैं —[2]

(१) यहाँ की भूमि लोहे से परिपूर्ण है जो कहवे की पैदावार बढ़ाने में आवश्यक पदार्थ होता है। यहाँ गहरी लाल रंग की मिट्टी, जो कि टेरा रोक्षा (Terra Roxa) के नाम से जानी जाती है, पाई जाती है। यहाँ पर काली मिट्टी भी पाई जाती है जिसमें लोहे और पोटाश का अंश अधिक होता है। ये कहवे के लिये अधिक उपयोगी होती है।

(२) उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों के ढालों के उत्तम जलवायु (ग्रीष्म में तापक्रम कदाचित ही कभी ७०° फा० से ऊँचा जाता हो और सर्दी का तापक्रम ६३° फा० से कभी नीचे होता हो और सर्दी के महीने पाला रहित होते हैं) के कारण कहवे के सबसे अधिक सफल प्रदेश उष्ण कटिबन्ध के बाहरी किनारों पर २६° से २३½° दक्षिणी अक्षांशों में स्थित हैं। इस कहवे के अधिकतर पेड़ पहाड़ों की चोटियों पर ३,००० की ऊँचाई पर ढालों पर भी उगाये जाते हैं।

दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवाओं से निश्चित वर्षा भी होती रहती है (औसत ४०"–६०")। इसकी फसल ग्रीष्म के महीनों (नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी) में ही काटी जाती है। इसके साथ-साथ सर्दी की मौसम सूखी और चमकीली होती है और सर्दी के तीन महीनों में औसत वर्षा ८" से भी कम होती है। मौसम की इस अनुकूलता के कारण कहवे के बेर एक मौसम में ही अच्छे पक जाते हैं और फसल को सुखाने में भी आसानी रहती है। कभी-कभी हल्का पानी भी गिरता है लेकिन वह फसल के लिये उतना हानिकारक नहीं होता।

(३) कहवे के बगीचों में मजदूरों की बहुत आवश्यकता होती है क्योंकि बेरों को चुनने का काम हाथों से ही करना पड़ता है। अतः मजदूरों की इस समस्या को हल करने के लिये उत्तरी इटली निवासियों को इनके बगीचों में काम करने के लिये इसी प्रदेश में बस जाने को उकसाया गया। यहाँ इटली के मजदूरों की इतनी अधिक माँग रहने लगी कि सॉओपालो की रियासत ने वहाँ के मजदूरों को कहवे के बगीचों में काम करने को उत्साहित करने के प्रचार में बहुत बड़ी राशि में धन खर्च किया।

(४) यहाँ हर-एक पेड़ पर बेर एक ही साथ पकते हैं। अतः फसल को एक ही साथ आसानी से इकट्ठा कर लिया जाता है परन्तु ऐसी सुविधा अन्य जगह नहीं पाई जाती। अतः फसल को कई बार में इकट्ठा करना पड़ता है।

(५) ब्राजील में सॉओपालो व अन्य जगहों पर कहवा का उद्योग कई विकास योजनाओं के द्वारा इतनी जल्दी बढ़ गया कि जब गत अर्ध-शताब्दी में

---

१. १ बोरा = १३२ पौंड कॉफी

२. E. W. Shanon : South America, Economic and Regional Geography.

कहवा का उपयोग अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया तो वहाँ की पैदावार अपनी, अनुकूल अवस्थाओं के कारण इसकी खपत से भी अधिक होने लगी। १९२० से तो ब्राजील में इतनी बढ़िया फसल होने लग गई कि जल्दी ही इसकी पूर्ति से बाजार भर गये और अन्त में कीमतों में भी भारी गिरावट आ गई।[1] अतः सरकार ने कहवा के दामों को उचित स्तर पर लाने के लिये प्रतिवर्ष जितना भी कहवा बचत में होता उसे खरीदने लगी और इस आशा से कि बाद में इसे अच्छी कीमत पर बेचा जा सकेगा। उसे गोदामों में इकट्ठा कर लिया गया लेकिन सरकार को इसमें असफलता मिली। अतः उसे बहुत बड़ी मात्रा में कहवा को या तो भूमि में गाड़ देना पड़ा, जला देना पड़ा या समुद्र में फेंक देना पड़ा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व वाली दशाब्दी में ब्राजील में ६८० लाख बोरे जलाये गये। यह मात्रा इतनी अधिक थी कि समस्त विश्व को २½ साल तक कहवा मिल सकता था।[2] जब सरकार अपनी इस योजना (Valorization Scheme) में पूर्ण-रूप से असफल रही तो उसने कहवा की दर को बराबर बनाये रखने के लिये काश्तकारों पर यह पाबन्दी लगा दी कि वे अपनी फसल का ४० प्रतिशत ही बेच सकते हैं। इस तरह कहवा पैदा करने वाले जो पहले सिर्फ अपनी इस व्यापारिक फसल पर ही निर्भर रहते थे अब दूसरी फसलों पर भी परीक्षण करने लगे हैं।

कहवा बाहर भेजने के लिये बन्दरगाह पास ही है। कहवा निर्यात करने का सबसे बड़ा बन्दरगाह सैंटोस से केवल २५० मील दूर है। रायोडिजिनिरो और विक्टोरिया द्वारा भी कहवा बाहर भेजा जाता है।

(६) इन उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त साओपालो को दूसरी सुविधा यह है कि वह चारों ओर से रेलों द्वारा जुड़ा हुआ है। पश्चिम की ओर यह कहवा प्रदेश से जुड़ा हुआ है। अतः यहाँ से फसल को इकट्ठा करना व उसको वहाँ से बाहर भेजना आसान होता है। इसके अतिरिक्त बिजली के द्वारा कहवे के बोरों को पहाड़ी प्रदेश से सैंटोस के बन्दरगाह तक लाने की अन्य सुविधायें भी हैं। ऊँचाई पर होने के कारण कहवा उत्पादक रियासतों से सैंटोस बन्दरगाह तक ऊपर बंधे हुये तारों में लटका कर कहवा के बोरे आसानी से भेजे जाते हैं। कहवे से भरी हुई डोलचियाँ तार की रस्सी पर फिसलती हुई नीचे आ जाती हैं क्योंकि आकर्षण शक्ति उन्हें ढाल के सहारे-सहारे नीचे ले आती है। भरी हुई डोलचियों के सैंटोस की ओर फिसलने से खाली डोलचियाँ पठार के सिरों की ओर ऊपर को खिंच आती हैं इससे यातायात व्यय कम हो जाता है।

दुनिया में काफी पैदा करने वाले देशों में ब्राजील सबसे महत्त्वपूर्ण है और प्रथम स्थिति भी रखता है परन्तु वह उम्दा किस्म की कॉफी पैदा नहीं करता।

---

१. सन् १९२८ में कहवे का उत्पादन २७० लाख बोरे था, १९३२ में २८० लाख बोरे तथा १९३४ में २९५ लाख बोरे।

२. Smith : Phillips and *Ibid* p. 190.

ब्राज़ील में प्रति पेड़ पैदावार भी सिर्फ एक पौंड या आधा पौंड ही होती है लेकिन पेड़ों के पाँच या छः वर्ष बड़े हो जाने पर पैदावार भी बढ़ जाती है। यह औसतन प्रति पेड़ पाँच या छः पौंड होती है। अब ब्राजील में कहवा पैदा करने के लिए अन्य क्षेत्र भी उपलब्ध हो रहे हैं—यथा उत्तरी पराना, पूर्वी मिनास जिरास, मध्यवर्ती और उत्तरी एस्पीरीटो सैंटो और गाँयाज आदि।[१]

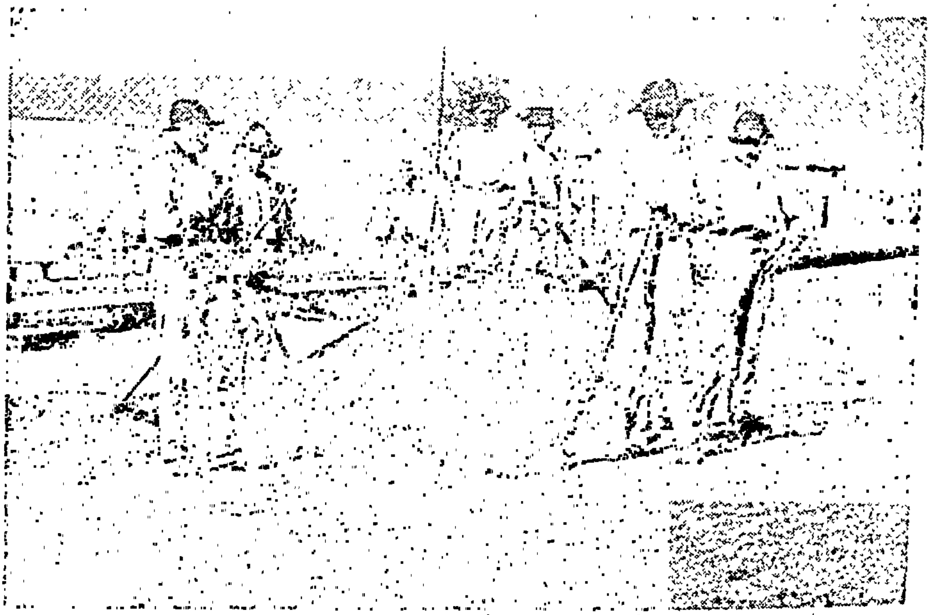

चित्र १३५—ब्राजील में कहवा सुखाना

ब्राजील की कुल पैदावार सेन्टोस रायोडिजिनिरो या विक्टोरिया बन्दरगाह को भेज दी जाती है जो क्रमशः ब्राजील की कॉफी का ६०, ३० और १० प्रतिशत निर्यात व्यापार करते हैं। सेन्टोस के निवासियों का जीवन तो पूर्णतः कहवा के व्यापार द्वारा ही प्रभावित है। ब्राजील से ६०% कहवा संयुक्त राष्ट्र और १०% जर्मनी व फ्रान्स को भेजा जाता है।

कोलम्बिया—का कहवा उत्पादन में दूसरा स्थान है। यहाँ उत्तम जलवायु मिट्टी और पर्याप्त वर्षा के कारण कहवे के बाग मध्यवर्ती श्रेणियों के पूर्वी और पश्चिमी ढालों पर और पूर्वी श्रेणी के पश्चिमी ढालों पर—जहाँ ज्वालामुखी मिट्टी पाई जाती है—४,५०० से ७,००० फुट तक पाये जाते हैं। यहाँ का अधिकतर कहवा बोगोटा के पश्चिम में मैग्डेलना और दक्षिण में मैडेलीन नदियों के समीपवर्ती प्रदेशों से प्राप्त होता है। कोलम्बिया में

१. G. Whythe, R. A. White and H. N. Midiff: Brazil An Expanding Economy, 1949, p. 67-68.

कुल मिलाकर ४५ करोड़ वृक्ष हैं और प्रति पेड़ पीछे प्रति वर्ष १ पौंड कहवा प्राप्त होता है। यहाँ कहवे के खेत साधारणत: छोटे है। यहाँ कहवा उच्चकोटि का, उत्तम स्वाद और सुगंध वाला होता है। यहाँ से १९०२-१३ में विश्व के निर्यात का ४%, १९३५-३९ में १४% और १९५०-५२ में ५९% कहवा प्राप्त हुआ।

मध्य अमरीका और पश्चिमी द्वीप समूह में भी काफी कहवा उत्पन्न किया जाता है। जमेका मे Blue Mountain Coffee विश्व का सबसे उत्तम कोटि का कहवा होता है। वर्ष भर ही वर्षा और उत्तम चमकीली धूप के कारण इसका स्वाद बहुत अच्छा होता है। पोर्टोरीको, डोमीनिकन रिपब्लिक, क्यूबा, हेटी आदि द्वीप भी उत्तम कहवा पैदा करते हैं।

जावा में कहवा की खेती समुद्रतल से २,००० से ४,००० फीट ऊँचाई वाले पहाड़ों पर की जाती है। यहाँ कहवा का धंधा व्यक्तिगत रूप से ही अधिक किया जाता है।

भारत में केवल मैसूर, (३७%), कुर्ग (२०%), कोचीन व ट्रावनकोर (१३%), मद्रास (३०%) में ही पैदा किया जाता है। पश्चिमी घाट के सुरक्षित पूर्वी ढाल इसके लिये बहुत उपयुक्त स्थान हैं। यहाँ पर कहवा के खेत २५०० से ३,००० फीट ऊँचाई वाले पहाड़ों के ढालों पर पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अफ्रीका में केनियाँ, यूगन्डा, टेन्गेनिका, अंगोला और बेल-जियन कांगो आदि भी कहवा उत्पन्न करने वाले देश हैं।

अरब में होने वाला मोचा कहवा (Mocha Coffee) संसार में श्रेष्ठतम माना जाता है। यह अपनी बहुत ही उम्दा किस्म, स्वाद और सुगन्ध के लिये जगत्प्रसिद्ध है। कहवा पैदा होने के लिये यहाँ अनुकूल परिस्थितियाँ ये हैं:—

(१) ढलवाँ जमीन जिससे कि हवा व पानी ठीक रूप में संचालित होता रहता है। यहाँ जलवायु अति गरम और शुष्क होने के कारण कहवा की उपज के लिये अनुकूल दशायें केवल यमन प्रान्त में ही पाई जाती है। यह प्रान्त पहाड़ी और शीतोष्ण जलवायु वाला है। यहाँ २ से ६½ हजार फीट की ऊँचाई तक पर्वतीय ढालों पर कहवा की खेती की जाती है।

(२) उपजाऊ भूमि, और

(३) घना कुहरा जो कि ग्रीष्म के तूफानों को आगे बढ़ाते हैं। इससे आवश्यकतानुसार तरी प्राप्त हो जाती है। ग्रीष्म के दिनों में कुहरा तापक्रम को भी परिमित कर देता है किन्तु सिंचाई की कठिनाई, खराब सड़कों, भारी राजकीय करों और राज्य प्रवन्ध के कारण प्रति एकड़ पैदावार बहुत कम है। अदन बन्दरगाह से बहुत बड़ी मात्रा में मोचा कॉफी निर्यात की जाती है।

व्यापार और उपभोग—स्वभावतः कहवा उन्हीं देशों से निर्यात किया

जाता है जहाँ इसकी पैदावार बहुत होती है। अतः विश्व की माँग का ६०% कहवा ब्राजील और शेष कोलंबिया, इन्डोनेशिया, साल्वेडोर और ग्वाटेमाला तथा भारत से निर्यात किया जाता है। कहवा आयात करने वाले प्रमुख देश वे हैं जहाँ अंग्रेजी रीति-रिवाजों का प्रचलन नहीं है। इन्हीं देशों में उपभोग भी अधिक होता है। मुख्य आयातक—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, बेलजियम, स्वीडेन, डेनमार्क, स्विटज़रलैंड और नार्वे हैं।

निम्न तालिका में विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति पीछे कहवे का उपभोग बताया गया है (१९५३) :[1]—

स० रा० अमेरिका	१६·७ पौण्ड	फ्रांस	६·६ पौण्ड
स्वीडेन	१५·८ पौण्ड	नीदरलैण्ड	५·६ पौण्ड
डेनमार्क	११·९ पौण्ड	स्विटरजरलैण्ड	८·८ पौण्ड
नार्वे	१३·७ पौण्ड	जर्मनी	३·८ पौण्ड
बेलजियम	११·३ पौण्ड	इंग्लैण्ड	१·३ पौण्ड
फिनलैंड	१२·३ पौण्ड	कनाडा	७·१ पौण्ड
		ब्राजील	१३·२ पौण्ड

कोको (Coco or Cocoa)

कोको एक पेड़ का सुखाया हुआ बीज होता है जिससे कोको व चाकलेट दोनों चीजें बनाई जाती हैं। कोको दक्षिणी अमेरिका, ओरीनिको और अमेजन नदी की घाटियों (जंगलों) का आदि पौधा है जहाँ से वह भूमध्य रेखीय आर्द्र-प्रदेशों में ले जाया गया है। यह जंगली अवस्था में मैक्सिको के निचले मैदान, अमेजन की घाटी और ओरीनिको की घाटी में ४,·० फुट की ऊँचाई तक उगता है। अमेरिका की खोज के समय यह पनामा से मैक्सिको तक उगता था और वहाँ के निवासी इसके सूखे बीजों को मुद्रा के रूप में प्रयोग में लाते थे।

जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताएं—संसार में जिन क्षेत्रों में कोको पैदा किया जाता है वह सब १३° उत्तरी और दक्षिणी अंक्षाशों के बीच ही स्थित हैं। चूंकि यह एक उष्ण कटिबन्धीय पौधा है अतः इसके लिए औसत तापक्रम ८०° फा० की आवश्यकता होती है। समान उच्च तापक्रम व तर जलवायु इसके लिये विशेष उपयुक्त है। इसके अलावा इसे ८०″ वार्षिक वर्षा की भी आवश्यकता होती

१. Tea and Coffee Trade Journal, Newyork.

है। वर्षा का साल भर क्रमशः उचित रूप से होते रहना बहुत लाभदायक होता है। लेकिन वर्षा की यह मात्रा मिट्टी की मोटाई व उसके गुण और वायु की नमी आदि पर घटती-बढ़ती रहती है जहाँ सिंचाई की व्यवस्था होती है वहाँ बहुत कम वर्षा होने पर भी काम चल जाता है।

कोको का पेड़ तेज हवा व बहुत अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकता। अतः तेज हवा व प्रचण्ड गर्मी से इसकी रक्षा करने के लिये यह उत्तरी क्षेत्रों में बोया जाता है जहाँ हवा हल्की या बिल्कुल ही नहीं होती जिससे कि फल के डोडे टूट न सकें। कोको की कुछ उत्तम किस्में समुद्र की सतह से सैकड़ों फीट ऊँचाई पर नदियों की घाटियों के ढालों पर पैदा की जाती हैं। पौधे को गर्मी से बचाने के लिये केले आदि अन्य छायादार वृक्षों की ओर लगाया जाता है। लेकिन कई-स्थानों में कोको के पेड़ समानान्तर इस रीति से लगाये जाते हैं कि जिससे उनके फूल उन्हीं की छाया से धूप से बच सकें।

इसकी पैदावार के लिये उपजाऊ व गहरी मिट्टी की आवश्यकता होती है। ऐसी मिट्टी नदियों से बनाये गये मैदानों या समुद्रतटीय निचले भागों में पाई जाती है। इसके पेड़ लगभग ४० फीट की ऊँचाई तक होते हैं जो कि तीन वर्ष

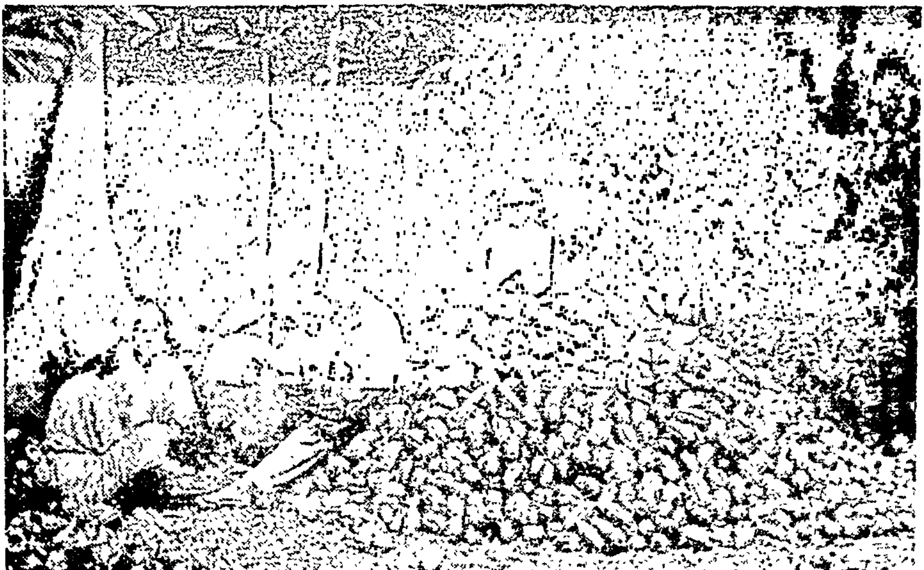

चित्र १३६—ट्रिनीडाड में कोको के फल तोड़ना

बाद फल देने लगते हैं। लेकिन पूरी फसल तो १०-१२ वर्ष से पूर्व किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं की जा सकती है। एक पेड़ से ३०-४० साल तक लगातार फसल मिल सकती है। एक पेड़ पर ३० से ६० तक फलियाँ लगती हैं।

इसके पेड़ की डालियों में फूल के गुच्छे खिलते हैं। इन फूलों की पंखुड़ियाँ खिलने पर उनमें से डोडियाँ फूट निकलती हैं जो जल्दी ही ७ से १२ इन्च तक लम्बी बढ़ जाती है। हरेक डोडी में सफेद गूदे से परिवेष्ठित बीस से चालीस तक लाल फलियं होती हैं। अधिकतर देशों में फल दो बार काटे जाते हैं। एक साल के अन्तिम महीनों में और दूसरी साल के पूर्व के महीनों में। ट्रिनीडाड में मुख्यतः साल के शुरू महीनों में और गोल्डकोस्ट में फल मध्य अक्टूबर से मध्य जनवरी तक चुने जाते हैं।

फसल काटने के समय नीग्रो लोग पेड़ के तने व उसकी नीची-नीची डालियों से पकी हुई फलियाँ तोड़ लेते हैं। वे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर फलियों को तोड़ने के लिये बढ़ते रहते हैं और लड़कियाँ नीचे पड़ी हुई फलियों को चुन कर अपनी टोकरियों में इकट्ठा करती रहती हैं। जब टोकरियाँ भर जाती हैं तो वे बगीचे में अलग-अलग जगहों पर ढेर लगा कर इकट्ठा कर देती हैं जहाँ तेज औजारों द्वारा फलियों के कड़े छिलके हटाकर उसे दो भागों में कर देते हैं। इन खुली हुई फलियों को छीलकर औरतें उनमें से बीज (Beans) निकाल लेती हैं। गूदे से ढकी हुई फलियाँ केले के पत्तों पर इकट्ठी की जाती हैं और उन पर बहुत सारे पत्ते ढक दिये जाते हैं या सन्दूकों में खमीर उठाने के लिये भर दी जाती हैं। खमीर उठने पर फलियों को धूप में सुखा लेते हैं। जब फलियाँ बिल्कुल सूख जाती हैं तो उन्हें थैलों में भरकर कारखानों को ले जाया जाता है। ट्रिनिडाड में प्रायः खच्चर की गाड़ियों, ब्राजील में डोंगियों और इक्वेडोर में मोटर द्वारा इनको पहुँचाया जाता है। कारखानों में यह फलियाँ भिन्न-भिन्न दर्जों में छाँट ली जाती हैं। इन्हें गिरी निकाल कर बेलनों द्वारा पीसा जाता है और चूरा बना लेते हैं। इस चूरे से अर्द्ध शुष्क पदार्थ (Paste) बनाते हैं। इसमें ५०% चर्बी होती है जिसे कोको बटर (Cocoa Butter) कहते हैं। कोको बनाने के लिए इसमें से कुछ चर्बी निकाल दी जाती है। किन्तु जब चॉकलेट बनाई जाती है तो इसे रहने दिया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र—कोको नई दुनियाँ से उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में प्रचारित किया गया है। यही नहीं दक्षिणी अमेरिका के ब्राजील, इक्वेडोर, वेनेजुएला,

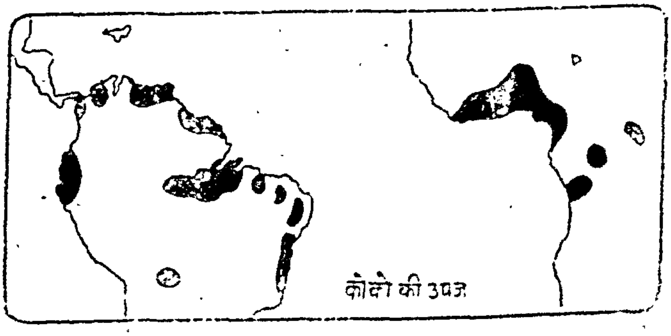

चित्र—१३५ कोको उत्पादक क्षेत्र

ट्रिनीडाड, डोमिनिका और पश्चिमी द्वीपों में भी यह बाद में पैदा किया गया। कोको अब गोल्डकोस्ट, नाइजीरिया और आइवरी कोस्ट के विस्तृत क्षेत्रों में पैदा किया जाता है। सचमुच यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि १८०८ में जहाँ एक भी कोको का पेड़ न था वहाँ अब १८,००,००० पेड़ लहलहाते हैं। यह अकेला प्रदेश ही दुनिया का लगभग आधा कहवा पैदा करता है। पश्चिमी अफ्रीका में कोको की बहुत उपज होती है। यद्यपि यहाँ भूमि व जलवायु अन्य दोनों की तरह ही है किन्तु भूमि के कुशल प्रयोग और अंग्रेजों के अनुभवी प्रवन्ध के कारण यह अन्य देशों की अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण हो गया है। यहाँ कोको को आय की प्रधान फसल बना लिया गया है। यहाँ कोको अधिक उत्पन्न होने के मुख्य कारण इसका समुद्री मार्ग पर स्थित होना और उपज के क्षेत्रों व बन्दरगाहों के बीच यातायात की सुविधाओं का पाया जाना है। यहाँ कोको के बाग आदि-निवासियों के अधिकार में हैं।

नीचे की तालिका में विश्व में कोको का उत्पादन दिखलाया गया है :—

कोको का उत्पादन (००० मैट्रिक टनों में)

देश	१९३४-१९३८	१९५२
ब्राजील	१४४	१०५
कैमरून्स	२५	५१
पश्चिमी अफ्रीका	४७	१ (१९४९)
गोल्ड कोस्ट	२६६	२४५
नाइजीरिया	९१	१००
इक्वेडोर	२०	१७ (१९४९)
वेनीज्वैला	१७	१८ (१९४९)
स्पेनिश गाइना	१२	१३ (१९४९)
डोमीनिक रिपब्लिक	२३	३०
संपूर्ण विश्व	२९९	७४४

व्यापार—संसार का सारा कोको भूमध्यरेखीय प्रदेशों से ही प्राप्त होता है क्योंकि इन प्रदेशों की जलवायु उष्ण होने के कारण घरेलू खपत थोड़ी ही होती है। अस्तु कोको उत्पन्न करने वाले देशों से ही बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है। मुख्य निर्यातक—गोल्ड कोस्ट, ब्राजील और नाइजीरिया हैं जो कुल निर्यात का ७५% बाहर भेजते हैं। शेष कोको डोमीनिका, फ्रांसीसी कैमरून और पश्चिमी अफ्रीका, टोगोलैंड, वेनज़ुएला, इक्वेडोर, कोलंबिया आदि से भेजा जाता है। नीचे की तालिका में कोको का निर्यात बताया गया है :—

गोल्डकोस्ट—	२४०,००० टन	ट्रिनीडाड	३०,००० टन
ब्राजील	१००,००० ,,	वेनीज़ुएला	२०,००० टन
नाईजीरिया	७०,००० ,,	इक्वेडोर	१५,००० टन
डोमीनिका	२०,००० ,,		

कोको आयात करने वाले प्रमुख देश उत्तरी-पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के शीतोष्ण कटिबन्धीय देश हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका संसार की समस्त उपज का ४०% लेता है और शेष उपज ब्रिटेन, (२०%), स्पेन, फ्रांस (१०%), जर्मनी और हालैंड (८%) को जाती है। स्विटजरलैण्ड और हालैंड में कोको का आयात चाकलेट बनाने के लिये किया जाता है। कोको का आयात इस प्रकार है :—

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२२०,००० टन
जर्मनी	८०,००० ,,
ग्रेट-ब्रिटेन	७०,००० ,,
फ्रांस	५०,००० ,,
हालैंड	४०,००० ,,

कोको का विश्व के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग इस प्रकार है :—

नीदरलैण्ड्स १५ पौं०; इंगलैण्ड ५ पौं०; स्विटजरलैण्ड ४ पौं०; संयुक्त राष्ट्र अमरीका ३·६ पौं०; कनाडा ३·६ पौं०; जर्मनी ३ पौं०; बेल्जियम २ ५ पौं०; फ्रांस २·४ पौं०।

तम्बाकू (Tobacco)

तम्बाकू उत्तरी अमेरिका के उष्णकटिबंधीय भागों का आदि पौधा है। सन् १६४२ में जब कोलम्बस अमेरिका पहुँचा तो इसने इसका प्रयोग वहाँ के निवासियों (रेड-इन्डियन्स) को करते देखा। वहाँ से १६ वीं शताब्दी में स्पेन निवासी इसको यूरोप लाये और बाद में इसका प्रचार दुनिया के दूसरे देशों में भी बड़ी तेजी के साथ हुआ। इसकी पत्तियाँ खाने, सूंघने और धूम्रपान करने में तो काम आती ही हैं, इसके पौधे के बचे-खुचे भाग कीड़े मारने और खाद देने के काम आते हैं।

जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ—यह ५२° उत्तरी और ४०° दक्षिणी अक्षांशों के बीच पैदा की जाती है।

तम्बाकू की पैदावार का क्षेत्र काफी विस्तृत है। यों तो यह विषुवत रेखा और उष्ण कटिबंध की उपज है परन्तु शीतोष्ण कटिबंध में भी यह आसानी से पैदा की जा सकती है। इसी कारण यह उतर में कनाडा, स्काटलैंड और उत्तरी पोलैंड आदि दूर-दूर भागों में पूर्ण सफलता के साथ बोई जासकी है। तम्बाकू की पैदावार के लिये पाला और ओले सबसे अधिक हानिकारक हैं और यही कारण है कि इसको पहले छोटी-छोटी क्यारियों में बोया जाता है और फिर पौधों को बड़े-बड़े खेतों में रोप दिया जाता

चित्र १३८—तम्बाकू का पौधा

है। ऐसा करने का उद्देश्य यह है कि छोटी-छोटी क्यारियों में पौधों को सूखी पत्तियों व ऐसे ही हल्के पदार्थों से ढक दिया जाता है जिससे पौधे पर पाले का विनाशकारी प्रभाव न पड़ सके। इसकी पैदावार की मौसम वहुत छोटी होती है। इसको प्रचुर मात्रा में तरी की आवश्यकता होती है और पकने के लिये कम से कम १८० दिन पाले रहित होने चाहिए। चूँकि तम्बाकू का पौधा भूमि की उर्वरा शक्ति को वहुत जल्दी नष्ट कर देता है अतः इसको ऐसी भूमि की आवश्यकता होती है जो चूना, पोटाश, ह्यूमस व उपजाऊ तत्त्वों में धनी हो। इसकी पैदावार भूमि की उर्वरा शक्ति को तीन या चार साल में पूर्णतः नष्ट कर देती है। अतः काफी खाद की आवश्यकता पड़ती है। अतः तम्बाकू की पौध लगाने, काटने, पत्तियों के सुखाने और तैयार करने में वहुत से सस्ते मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है। इस कारण तम्बाकू की खेती गहरी खेती के रूप में की जाती है और सिर्फ उन्हीं देशों में की जा सकती है। जहाँ काफी मात्रा में सस्ते मजदूर मिलते हों। अव संयुक्त राष्ट्र में इसकी खेती मशीनों द्वारा की जाने लगी है।

तम्बाकू की कई किस्में होती हैं, लेकिन पौधे की किस्म पर ही इसकी किस्म निर्भर करती है। इसकी किस्म मिट्टी, अपने रंग, वजन व खाद आदि पर भी वहुत निर्भर करती है। मौसम में हल्के परिवर्तन व पत्तियों की छँटनी व सफाई का भी इसकी किस्म पर काफी असर पड़ता है। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि ठंडी, नम ग्रीष्म ऋतु व हल्की नरम भूमि होने पर पत्तियाँ अच्छे रेशे वाली व कम तेज होती है—लेकिन जव भूमि सख्त व तापक्रम ऊँचा होता है तो पत्तियाँ जाड़ी व तेज स्वाद वाली होती हैं।

उत्पादन क्षेत्र—यद्यपि तम्बाकू की खेती विश्व के ६० से अधिक देशों में होती है किन्तु ५०% से अधिक तो सं० रा० अमेरिका, चीन और भारत से ही प्राप्त होती

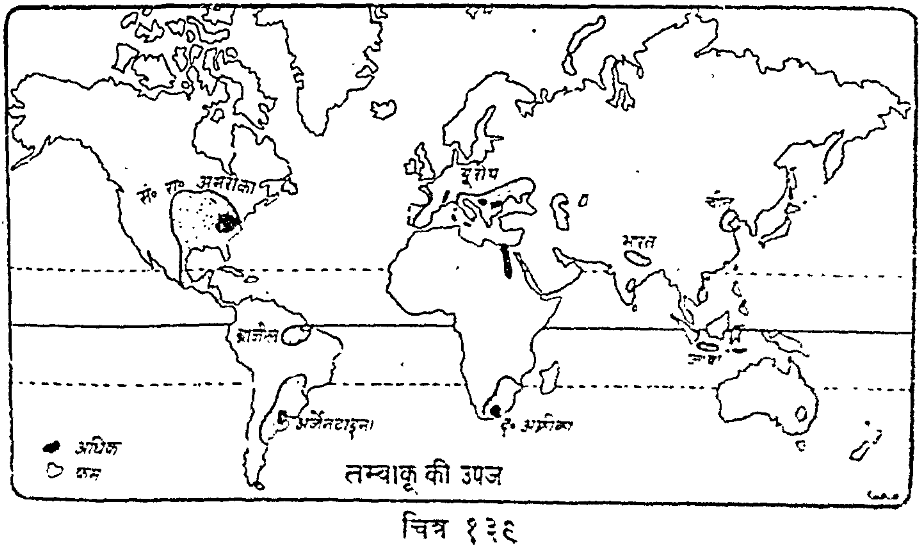

तम्बाकू की उपज

चित्र १३९

है। अन्य उत्पादक देश रूस, जापान, ब्राजील और टर्की हैं। संसार में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ही एक ऐसा देश है जहाँ कि कुल पैदावार का ४०% तम्बाकू पैदा होता है। संयुक्त राष्ट्र में तम्बाकू का क्षेत्र मेरीलैंड स्टेटस् से होता हुआ वर्जीनिया व उत्तरी केरोलीना तक फैला हुआ है। वैसे संयुक्त राष्ट्र की ९० प्रतिशत तम्बाकू छः स्टेटस् से ही पैदा की जाती है जो क्रमशः कैन्टकी, उत्तरी केरोलीना, वर्जीनिया, टिनेसी, दक्षिणी केरोलिना और ओहियो है। विल्सन, रिचमंड, पीट्सबर्ग और डरहम नगर तम्बाकू के प्रसिद्ध केन्द्र हैं। इन स्थानों में खाने का तम्बाकू, सुँघनी (Snuff) और सिगरेट बनाने के बड़े बड़े कारखाने हैं। दूसरा प्रधान क्षेत्र कैंटकी है। इस क्षेत्र में लेक्सिंगटन और लुईस्विले नगरों में तम्बाकू के कारखाने हैं। कैंटकी नगर विश्व में तम्बाकू की पत्तियों की सबसे बड़ी मंडी है। वर्जीनिया से बनने वाली सिगरेट 'वर्जीनिया सिगरेट' के नाम से संसार भर में प्रसिद्ध है।

क्यूबा—क्यूबा की तम्बाकू अपने उत्तम स्वाद के लिये बहुत प्रसिद्ध है लेकिन सच बात तो यह है कि अब वहाँ पर वैसी किस्म पैदा नहीं होती। वहाँ खासकर तम्बाकू पाईनर डेलरियों (Pinar del Rio) जिले से ही आती है। यहाँ

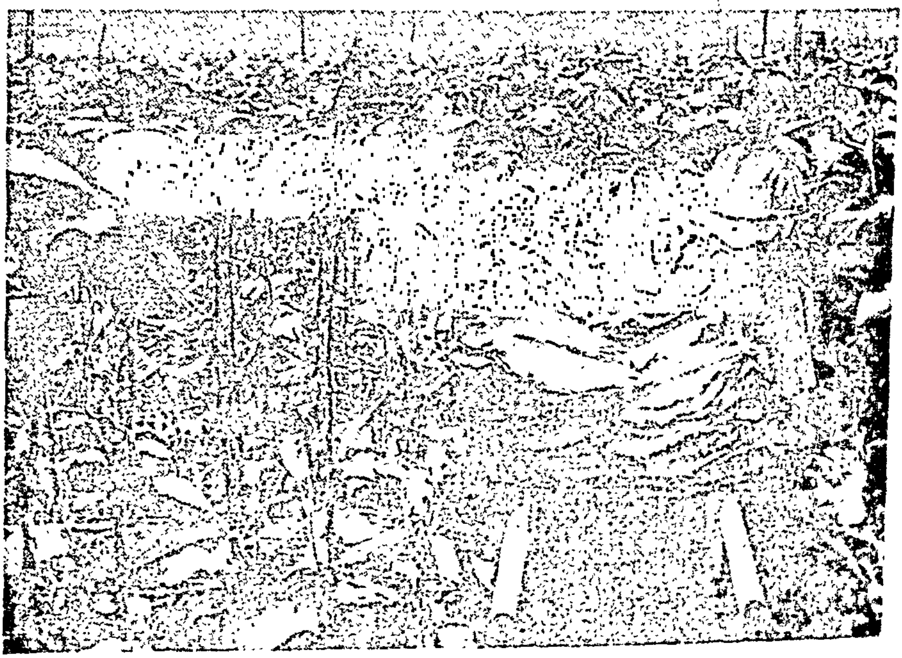

चित्र १४०—क्यूबा में तम्बाकू का खेत

क्यूबा के सियरा डी लॉस पर्वतों के ढालों पर भी तम्बाकू पैदा की जाती है। अब वहाँ तम्बाकू बहुत बड़ी मात्रा में बाहर से मँगवाई जाती है जो सिगरेट बनाने के काम में लाई जाती है। हवाना बन्दरगाह से इनका निर्यात होने के कारण इनका नाम ही हेवेना सिगरेट पड़ गया है।

भारत—भारत की अर्थ-व्यवस्था में तम्बाकू का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि पदार्थ के नाते यह भारतीय उत्पादकों को ३२·७ करोड़ रु० वार्षिक आमदनी लाता है। इससे करीब १६ करोड़ रु० की विदेशी मुद्रायें प्राप्त होती हैं और तम्बाकू पर लगने वाली आबकारी से राष्ट्रीय धनागार को करीब ३४ करोड़ रु० हर साल प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि महसूल के द्वारा ६ लाख रुपये की और आमदनी सरकार को होती है।

इस प्रकार राष्ट्रीय धनागार को अधिक धन दिलाने की तम्बाकू की शक्ति बहुत ही अधिक है। सन् १९४८-४९ में आबकारी से प्राप्त राजस्व २५ करोड़ रुपया था और तम्बाकू के निर्यात से प्राप्त धन १२·२ करोड़ रुपये। १९५४-५५ में आबकारी और निर्यात से प्राप्त धन क्रमशः ३१·१ करोड़ रु० और १२·६ करोड़ रु० था।

इसके अतिरिक्त तम्बाकू अपने विभिन्न उद्योगों अर्थात् सिगरेट, सिगार और चुरुट, बीड़ी, सूँघनी, खानी और हुक्का आदि के बनाने के काम में लगे हुए सैकड़ों हजारों व्यक्तियों की जीविका चलाता है। इसके अतरिक्त हजारों कुटुम्ब अपनी जीविका के लिये तम्बाकू की खेती पर भी आधारित हैं।

भारत में तम्बाकू की खेती के लिये जमीन और तम्बाकू उत्पादन के आंकड़े गत वर्षों के नीचे दिये गये हैं—

वर्ष	जमीन एकड़ों में (००० एकड़)	उत्पादन (दस लाख पौण्ड में)
१९४८–४९	८०३	५७१
१९४९–५०	८६०	५९१
१९५०–५१	९०२	५८९
१९५१–५२	७१२	४५९
१९५२–५३	८९५	५३८
१९५३–५४	९१२	६००
१९५४–५५	८६०	५८५

आन्ध्र राज्य तम्बाकू उत्पादन का प्रधान केन्द्र है। वह देश के तम्बाकू उत्पादन का ३३ प्रतिशत और देश के वर्जीनिया सिगरेट तम्बाकू का ६५ प्रतिशत पैदा करता है। उसके बाद बम्बई ने करीब १४.६ करोड़ पौण्ड तम्बाकू, मद्रास ने ६.३ करोड़ पौण्ड, उत्तर-प्रदेश ने २.७ करोड़ पौंड, पश्चिमी बंगाल ने २.५ करोड़ पौण्ड सन् १९५३-५४ में उगाया है। इनके बाद तम्बाकू को उगाने वाले दूसरे राज्य ये हैं—बिहार (२.२ करोड़ पौण्ड), हैदराबाद (१.६ करोड़ पौण्ड), आसाम, मैसूर, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, मध्यभारत, पंजाब और विन्ध्य-प्रदेश (सब मिलकर ५.५ करोड़ पौण्ड)।

भारत में तम्बाकू का उत्पादन छः विभिन्न प्रदेशों में केन्द्रीकृत है।

(१) **गुंटूर प्रदेश**—इसमें आन्ध्र के गुंटूर, कृष्णा, पूर्वी गोदावरी, तथा पश्चिमी गोदावरी जिले, विशाखापट्टनम जिले और हैदराबाद राज्य के कुछ परिसर प्रान्त सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में अधिकतः गर्म हवा से सिझाये गये तथा सूर्य की धूप से सिझाये गये विभिन्न प्रकार के *वर्जीनिया तम्बाकू;* तथा नाटु (देशी) तम्बाकू भी उगाये जाते हैं। लंका (द्वीप) नामक जिला विशेष का तम्बाकू तो पूर्वी गोदावरी तथा कृष्णा जिलों के द्वीपों में उगाया जाता है और यह मुख्यतः छोटी पेंसिल के माफिक हाथ से लपेटी जाने वाली चुरुटों के बनाने में उपयोग किया जाता है।

(२) **उत्तर बिहार और बंगाल प्रदेश**—इसमें बिहार के मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मुंघेर और पुनिया जिले तथा पश्चिमी बंगाल के जलपाइगुड़ी, माल्दा, हुगली, कूचबिहार, बरहमपुर, और दिनाजपुर जिले सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में हुक्का के लिए उपयोगी **एन टवैकम** और **एन रस्टिका** की विविध किस्में उगाई जाती हैं। उनके स्थानीय नाम ये हैं—(१) विलायती; (२) मोतिहारी; और (३) जाति।

(३) **उत्तर प्रदेश और पंजाब प्रदेश**—इसमें उत्तर प्रदेश के बनारस, मेरठ, बुलन्दशहर, मैनपुरी, सहारनपुर और फर्रुखाबाद जिले; पंजाब के जालन्धर, गुरुदासपुर, अमृतसर और फिरोजपुर जिले सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में हुक्का के लिये तथा खाने के लिये उपयोगी कलकत्तिया किस्म का तम्बाकू उगाया जाता है।

(४) **चरोतार प्रदेश**—इसमें बम्बई राज्य के खैरा जिले के आनन्द, बोरसद, पेटलाड, नाडियाद ताल्लुक सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में विविध किस्मों का बीड़ी तम्बाकू उगाया जाता है। यहाँ वर्जीनिया तम्बाकू भी उगाने के लिये कोशिशें की जा रही हैं।

(५) **नियानी प्रदेश**—इसमें कोल्हापुर, सांगली तथा मिराज जिलों के साथ बम्बई राज्य के बेलगाँव तथा सतारा जिले भी सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में मुख्यतः बीड़ी तम्बाकू उगाया जाता है।

(६) दक्षिण मद्रास प्रान्त--इसमें मद्रास राज्य के, मदुरा और कोयम्बतूर जिले सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में सिगार भरने वाला, लपेटे जाने वाला तथा खाने वाला तम्बाकू अधिकतः उगाया जाता है।

तम्बाकू की किस्म--एन रस्टिका (En Rustica) किस्म का अधिकांश भाग हुक्का के लिये उपयोग किया जाता है।

एन टबैकम (En Tibbacum) किस्म का तम्बाकू तो सिगरेट, बीड़ी, सूंघनी और खानी तम्बाकू को बनाने के काम आता है।

वर्जीनिया तम्बाकू, जो अधिकतर आन्ध्र राज्य में उगाया जाता है और सिगरेट बनाने के काम आता है, व्यापार की दृष्टि से अत्यन्त प्रधान है। वर्ली तम्बाकू, अधिकतर सिगरेटों में सम्मिश्रण के लिये तथा पाइप और पेग में सम्मिश्रण के लिये उपयोग किया जाता है। नाटु (देशी) तम्बाकू किसी खास जगह में 'चुट्ट' नाम से प्रसिद्ध छोटे तथा हाथ से लपेटे जाने वाले चुरुटों को बनाने के काम आता है। इस तम्बाकू की हल्की तथा भूरे रंग की पत्तियाँ सस्ते ब्रैंड के सिगरेटों के निर्माण के लिये उपयोग की जाती हैं। गहरे भूरे रंग की पत्तियाँ, पाइप तम्बाकू के विभिन्न ब्रैंडों को तैयार करने के लिये ब्रिटेन को निर्यात की जाती हैं।

दक्षिण मद्रास के डिंडुकल, तिरुचिरापल्ली और कोयम्वतूर जिलों में उगाया गया प्रमुख जाति का तम्वाकू, चुरुट और 'सिगार' के बनाने में तथा खाने वाले तम्वाकू के तैयार करने में उपयोग किया जाता है। भरने वाला तम्बाकू नाना प्रकार के तम्वाकू के संकरण से उगाया जाता है। इस संकरण का अनुपात तो सिगार के वांछित गुण पर आधारित रहता है। डिंडुकल प्रदेश में लपेटी जाने वाली तथा भरने वाली तम्वाकू पत्ती कुछ सीमित परिमाण में ही उगाई जाती है।

अगले पृष्ठ की तालिका में भारत से तम्वाकू के निर्यात सम्वन्धी आँकड़े दिये गये हैं।

निर्यात—

(केवल समुद्र तथा वायु मार्ग से)

देश	(परिमाण दस लाख पौंड में);		(मूल्य दस लाख रुपए में)	
	१९५०-५१		१९५४-५५	
	प०	मू०	प०	मू०
१. अदन	४·३	२·०	६·४	३·४
२. बेल्जियम	५·२	३·४	१·७	१·०
३. लंका	१·६	५·०	३·१	६·७
४. चीन	०·१	०·१	१०·९	५·१
५. डेनमार्क	१·२	१·७	०·३	०·६
६. मिश्र	१·९	२·४	२·२	२·८
७. पश्चिमी जर्मनी	३·५	१·७	०·०४	०·०४
८. हांगकांग	१·३	१·२	३·२	२·२
९. इण्डोनेशिया	३·०	४·०	०·३	०·३
१०. आइरिश रिपब्लिक	३·४	७·८	१·०	२·०
११. जापान	१·२	०·६	५·९	४·६
१२. केन्या कोलोनी	०·७	१·२	०·६	१·०
१३. नीदर लैण्ड्स	६·२	४·६	२·६	१·५
१४. पाकिस्तान	१०·९	२२·४	१·९	२·५
१५. स्वीडन	२·३	३·७	——	——
१६. ब्रिटेन	३८·८	७९·७	३१·१	६५·८
१७. सोवियत रूस	८·४	३·३	——	——
१८. युगोस्लाविया	१·८	०·४	——	——
१९. अन्य	२·४	६·४	६·०	८·१
कुल	९८·२	१५१·६	८८·८	१२८·६

आयात—

नीचे की तालिका भारत में हुए आयातों को दिखाती है—

वर्ष	परिमाण दस लाख पौंडों में	मूल्य करोड़ रु० में
१९५०–५१	६·१६	२·७४
१९५१–५२	५·२१	१·९९
१९५२–५३	५·६७	१·८०
१९५३–५४	२·०८	०·६२
१९५४–५५	२·६२	०·६७

ऊपर की तालिका आयातों में आकस्मिक कमी को सूचित करती है। आयातों का अधिक परिमाण कच्चे तम्बाकू का है जिसका ५० प्रतिशत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आयात किया जाता है। मुख्यतः वर्जीनिया सिगरेट तम्बाकू पत्ती, उत्तम दर्जे के सिगरेटों में सम्मिश्रण कार्य के लिये आयात की जाती है। रैपर तम्बाकू का कुछ परिमाण भी मुख्यतः संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से, तैयार माल ब्रिटेन तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से वहुत छोटे परिमाण में आयात किये जाते हैं।

भारत में तम्बाकू के तैयार माल—सिगरेट, सिगार, वीड़ी, सूंघनी, खानी तम्बाकू और हुक्का तम्बाकू हैं। सिगरेट कारखानों तथा कुछ हद तक सिगार कारखानों को भी छोड़कर, वीड़ी, हुक्का-तम्बाकू, खाया जाने वाला तम्बाकू, सूंघनी आदि तम्बाकू के अन्य तैयार माल प्रधानतः कुटीर उद्योगों के अन्दर आते हैं।

(१) सिगरेट—गत १५ वर्षों के अन्दर मुख्यतः द्वितीय संसार महायुद्ध के काल में भारत के सिगरेट उद्योग में वहुत ही संतोषजनक उन्नति हुई। युद्ध के पहले इस उद्योग के लिये करीव २·३ करोड़ पौंड कच्चा तम्बाकू लिया गया था और उस समय से क्रमशः उसमें वढ़ती ही रही।

अन्दाज से द्वितीय महायुद्ध के पहले सिगरेटों का वार्षिक उत्पादन करीव ७५० करोड़ का था, युद्ध काल में तथा वाद में देश में सिगरेट के धूम्रपान की आदत के वढ़ने के कारण वढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिये उत्पादन शक्ति भी वढ़ाई गई। गत ६ वर्षों का वार्षिक माध्यम उत्पादन केवल २१५० करोड़ सिगरेटों का था। एक दिन में ६ घन्टों की एक पाली के हिसाव से कारखाना चले तो एक साल में करीव १८०० करोड़ सिगरेटें वनाई जाती हैं। वैसे तो वहुत से कारखाने दो पाली पर काम करते हैं।

देश के विभिन्न राज्यों में छोटे और वड़े दोनों प्रकार के सिगरेट के कारखाने इस प्रकार हैं:—

जर्मनी, बेल्जियम, हॉलैंड, स्वीडन, नार्वे, स्विटजरलैंड आदि देश मुख्यतया अमेरिका से प्राप्त करते हैं। दक्षिणी रोडेशिया से तम्बाकू आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, नीदरलैंड और जर्मनी को तथा न्यासालैंड से ब्रिटेन और कनाडा से ब्रिटेन आस्ट्रेलिया और ब्रिटिश केरेबेयन द्वीप को भेजी जाती है। नीचे की तालिका में यह बताया गया है कि किन देशों से कितनी तम्बाकू मँगाई।

(१० लाख पौंड सूखे भार में)

	अमेरिका	भारत	रोडेशिया	ब्राजील	तुर्की	यूनान
ब्रिटेन	५४·७	३३·५	५५·२	०·१	३·७	२·१
आस्ट्रेलिया	२४·०	०·५	७·३	——	——	——
जर्मनी	७९·१	०·७	४·१	१९·३	२५·६	४०·९
नीदरलैंड	३६·३	२·६	८·२	६·७	१·६	०·२
चीन	——	०·४	——	——	——	——
फ्रांस	६·७	१·०	——	०·३	२·३	१३·०
बेलजियम	१५·६	२·२	१·३	२·८	५·५	०·४
स्विटजरलैंड	१०·७	——	——	६·७	१·६	२·२
डेन्मार्क	९·६	——	३·५	४·७	०·३	——
मिश्र	३·२	२·०	१·५	——	४·५	२·९
इटली	२ ९	०·६	०·१	——	३·२	१·५
योग	३९६·५	७६·९	८८·४	६६·५	१२५·४	९१·३

तम्बाकू के आयात करने वाले मुख्य देश शीतोष्ण कटिबंध के देश ही हैं। ब्रिटेन अब भी संसार भर के सब देशों में सब से अधिक तम्बाकू का आयात करता है परन्तु यह आयात की हुई तम्बाकू का पाँचवाँ भाग निर्मित अवस्था में फिर निर्यात कर देता है। ब्रिटेन में तम्बाकू अमेरिका, भारत, रोडेशिया, ब्राजील और टर्की आदि देशों से आती है। जर्मनी अपने यहाँ तम्बाकू अमेरिका, तुर्की, बाल्कन राष्ट्र, इन्डोनेशिया और लेटिन अमरीकी देशों से मँगवाता है। कनाडा यद्यपि अपनी तम्बाकू निर्यात करता है—किन्तु सिगार की पत्ती वाली तथा पूर्वी देशों की अन्य प्रकार की तम्बाकू कुछ परिमाण में मँगाता है। फ्रांस में तम्बाकू अलजीरिया, यूनान और यूगोस्लाविया से; स्पेन में लेटिन अमेरिकन देशों, फिलीपाइन और अमरीका से और अमेरिका में यूनान और तुर्की से; क्यूबा और पोर्टोरीको से सिगरेट में भरने का उत्तम तम्बाकू, और इन्डोनेशिया से सिगार पर लपेटने की पत्ती का तम्बाकू आता है।

उपभोग—तम्बाकू के विभिन्न उत्पादनों में सिगरेटों की खपत पिछले कुछ वर्षों से बहुत बढ़ी है। अमेरिका, कनाडा, स्वीडन और डेन्मार्क में सिगरेटों की बिक्री युद्ध से पहले की अपेक्षा दुगनी हो गई है। अन्य देशों में भी ५% खपत बढ़ी

है। दूसरी ओर अधिकांश देशों, विशेषतः अमेरिका, में पाइप की तम्बाकू और सूँघनी की खपत घट गई है। नीदरलैंड और डेन्मार्क में सिगार की खपत घट रही है जबकि अमेरिका और कनाडा में इसकी खपत बढ़ रही है। नीचे की तालिका में कुछ देशों के तम्बाकू की खपत के आँकड़े दिखलाये गये हैं:—

देश	बड़े सिगार (१० लाख में)	छोटी सिगार और सिगरेट (१० लाख में)	तम्बाकू और सूँघनी (१ हजार पौंड में)
कनाडा	२००	१७,८४८	३४,८१०
अमेरिका	५६८३	३६४,६६५	२१५,१०१
फ्रांस	६७	३३,०३०	४२,८६०
इटली	५६३	३२,०५२	१२,३६१
नीदरलैंड	६६२	६,५६४	२२,६५४
बेल्जियम	११७	८,५८४	२३,०८६
स्वीडन	२१	५,२३५	६,८६६
डेन्मार्क	२१४	४,४२३	७,०६७

अध्याय १६

फल, तिलहन और मसाले

फल (Fruits)

व्यापारिक पैमाने पर फलों की पैदावार के लिये भौगोलिक दशाओं की अपेक्षा आर्थिक तथा अन्य दशाओं का महत्व अधिक होता है। अतः फलों की पैदावार और उनका व्यापार अत्यन्त स्थानीय होता है। शीत भण्डारों (Refrigeration) के विकास और सुलभ समुद्री यातायात के साधनों की सुविधा के कारण अब फलों का व्यापार घरेलू स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। फलों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :—

(क) उष्ण कटिबन्धीय फल (Tropical Fruits)—इन प्रदेशों के फलों में केला, अनन्नास, आम, खजूर आदि फल सम्मिलित किये जाते हैं।

(१) केला (Banana)—उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों का प्रमुख फल है। भारत और दक्षिणी चीन इसके उत्पत्ति स्थान माने गये हैं। इसके लिये लम्बी गर्मी और अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। इसके लिये गहरी, उपजाऊ मिट्टी और विशेष रूप से मैदानों के ऊपरी भाग बहुत उपयोगी होते हैं। सूखा पौधे के लिये हानिकर होता है।

सबसे उत्तम केला दक्षिणी भारत में पैदा होता है। केला पैदा करने वाले मुख्य क्षेत्र मद्रास, बम्बई, आसाम, बिहार, ट्रावनकोर तथा मैसूर राज्य हैं। यह कुल पैदावार का ६०% उत्पन्न करते हैं। मद्रास और बंगाल में तो भारत का कुल केला क्षेत्र का $\frac{1}{3}$ भाग स्थित है। ये दोनों राज्य भारत का $\frac{1}{2}$ भाग से भी अधिक भाग उत्पन्न करते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों में केले की प्रति एकड़ उपज भिन्न-भिन्न है। मद्रास में प्रति एकड़ ६८ से २७२ मन केला प्राप्त होता है, बंगाल में ५०० मन, बम्बई में १३५ मन, आसाम में २०० मन, बिहार में ६० मन, ट्रावनकोर में ३० से ४५ मन और मैसूर में ३५ मन होता है। भारत से बहुत थोड़ा केला ही बाहर भेजा जाता है। सारा उत्पादन भारत में ही खप जाता है।

केला विस्तृत रूप से जेमिका, कोस्टारिका, कोलम्बिया, मैक्सिको, फिलीपाइन्स, पूर्वी द्वीप समूह, मध्य अमेरिका, ग्वाटेमाला, हौंडूरास, निकारेगुआ, पनामा, कैनेरी द्वीप, हवाई द्वीप समूह और दक्षिणी भारत में पैदा किया जाकर संयुक्त राष्ट्र, ब्रिटेन और दूसरे यूरोपीय देशों को निर्यात कर दिया जाता है।

साधारणतौर पर विश्व में १० करोड़ केले के गुच्छों का व्यापार होता है, जिसमें से प्रतिवर्ष ६०% सं० रा० अमेरिका और ३०% यूरोप में उपभोग में आते हैं।

(२) अनन्नास (Pine-apple) का उत्पत्ति स्थान मध्य अमेरिका है। इसके लिये सम-उष्ण तापक्रम, अधिक वर्षा और हल्की या रेतीली मिट्टी की आवश्यकता होती है। किन्तु जाड़े में पाला फसल को नष्ट कर देता है। समुद्री किनारे की हवायें इसकी वृद्धि के लिये बहुत लाभप्रद होती हैं।

इसकी खेती पश्चिमी द्वीप समूह, कैनेरी, हवाई, पूर्वी द्वीप समूह, नैटाल, क्वीन्सलैण्ड, थाई लैण्ड तथा फ्लोरिडा में होती है। इन देशों से डिब्बों में बन्द कर यह यूरोप और अमेरिका को भेजा जाता है।

(३) आम (Mango)—उन प्रदेशों में बहुतायत से होता है जिनमें न अधिक न बहुत कम वर्षा होती है। यह अधिकतर भारत में पैदा होता है। आम, भारत का प्रसिद्ध फल है। यह देश के प्रायः सभी भागों में पैदा किया जाता है। किन्तु वर्षा काफी होने के कारण एवम उपजाऊ और चिकनी मिट्टी होने के कारण गंगा-यमुना के मैदानों में आम बहुत होता है। उत्तरी भारत में आम पकने का मौसम जून से अगस्त तक और दक्षिणी भारत में इससे कुछ पहले शुरू हो जाता है। भारत में आम पैदा करने वाले मुख्य राज्य बिहार, मध्य मद्रास, उत्तर प्रदेश, दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और बम्बई हैं। भारत में आम की कई किस्में पैदा की जाती हैं—

(१) बङ्गाल में माल्दा, हिमसागर, कृष्ण भोग और मोहनभोग।

(२) बम्बई में मुमराद और हापुस।

(३) बिहार में हिजली, लँगड़ा और सीपिया।

(४) गोदावरी डेल्टा में तोतापुरी और बेगन पाली।

पिछले कुछ वर्षों से भारत से आमों का निर्यात भी होने लगा है।

(४) खजूर—उष्ण मरुस्थलों के मरुद्यानों का फल है जहाँ उप-भूमि में काफी जल रहता है। पानी का खारापन खजूर की पैदावार पर कोई प्रभाव नहीं डालता। उत्तरी अफ्रीका (मरक्को, एलजीरिया, ट्यूनिस) मिश्र, अरब, फारस, इराक और उत्तरी पश्चिमी भारत इसके मुख्य उत्पादक देश हैं। इराक से विश्व की २/३ उपज प्राप्त होती है। यहाँ यह फारस की खाड़ी से १०० मील दूर शतुल-अरब नदी के दोनों ओर १-२ मील चौड़ी पट्टी में खूब पैदा होती है।

(ख) शीतोष्ण कटिबन्धीय फल (Temperate Fruits)—शीतोष्ण कटिबन्धीय फल दो भागों में बांटे जा सकते हैं—(१) समशीतोष्णीय फल। (२) शीत शीतोष्णीय फल।

समशीतोष्ण फल (Warm Temperate Fruits)—ये फल उन प्रदेशों में पैदा किये जाते हैं जिनमें या तो भूमध्यसागरीय जलवायु हो या चीनी जलवायु पाई जाती है। इस कोटि के कुछ फल ये हैं: रसीले फल (Citrus fruits)—नारंगी, शंतरा, नीबू, चकोत्रा, खट्टा, अंगूर, खूबानी, शफतालू आदि। ये सब भूमध्य सागरीय जलवायु में पैदा किये जाते हैं।

ये फल अधिकतर भारी होते हैं अतः इनका यातायात-व्यय अधिक होता है। इसलिये इतना उत्पादन अर्द्ध उष्ण-कटिबन्धीय उन क्षेत्रों में होता है जो बड़े बाजारों के निकट हैं। सं० रा० अमेरिका में ऐसे क्षेत्र फ्लोरिडा, कैलीफोर्निया टेक्साज, और एरीजोना हैं। यूरोप में यह प्रदेश भूमध्य सागर के किनारे स्थित हैं। ये दोनों क्षेत्र मिल कर विश्व के उत्पादन की ७०% नारंगी; ८५% नीबू और ९३% अंगूर पैदा करते हैं, जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

मुख्य रसदार फलों के क्षेत्र उनकी पैदावार और निर्यात

(हजार पेटियों में)

क्षेत्र	पैदावार		निर्यात
	१९३५–३९	१९४८–५२	१९४७–५२
नारंगी :			
संयुक्त राष्ट्र	६७,०३४	११६,३५७	६,१०७
भूमध्य सागरीय वेसिन	५९,३३२	८२,८५०	३५,०४२
विश्व	२१३,३६५	२९५,९९१	४९,९०७
नीबू :			
संयुक्त राष्ट्र	९,५५२	११,९०४	३३४
भू० सा० वेसिन	१२,४२३	११,८१७	५,९८५
विश्व	२३,३१०	२७,९३६	६,३२९
अंगूर :			
स० राष्ट्र	३१,७८५	४१,४२६	१,६३७
भू० सा० वेसिन	१,५०८	१,४९०	९२४
विश्व	३५,२४६	४५,८८८	३,४२१

नोट—१ पेटी में ७० पौण्ड नारंगियाँ, ७६ पौण्ड नीबू और ८० पौण्ड अंगूर होते हैं।

नारंगी (Oranges)—नारंगी का मूल स्थान चीन है। किन्तु पंद्रहवीं शताब्दी में यह पौधा यूरोप में पहुँचा और वहाँ से इसको अमेरिका ले जाया गया। नारंगी के लिये पाला हानिकर है। नारंगी की फसल बहुधा बहुत अच्छी होती है। इस कारण थोड़ी-सी भूमि पर भी बहुत-सी फसल उत्पन्न की

जा सकती है। किन्तु नारंगी का व्यापार इतना अधिक नहीं होता जितना और फलों का क्योंकि यह शीघ्र खराब हो जाती है तथा दूर भेजने में अड़चन पड़ती है। भूमध्यसागर के देशों में नारंगी बहुत उत्पन्न होती है। यूरोप में स्पेन, इटली, सिसली, माल्टा, फ्रांस तथा ग्रीस में इसकी पैदावार अधिक होती है।

स्पेन संसार में सबसे अधिक नारंगियाँ विदेशों को भेजता है। स्पेन का भूमध्यसागर का प्रदेश वैलेशिया नारंगी उत्पन्न करने में मुख्य है। स्पेन से अधिकतर नारंगी फ्रांस, बेलजियम, डेनमार्क, नार्वे तथा स्वीडन को जाती है। स्पेन की नारंगी की कुल पैदावार ४ करोड़ बक्सों (७० पौंड प्रति बक्स) के लगभग प्रतिवर्ष होती है।

दक्षिण अमेरिका में ब्राजील और पेरेग्वे में इसकी बहुत पैदावार होती है किन्तु इनका व्यापार नहीं होता। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की फ्लोरिडा नामक रियासत बहुत नारंगियाँ उत्पन्न करती है। पश्चिमी द्वीप समूह में भी नारंगियों की बहुत पैदावार होती है किन्तु विदेशों को यहाँ से नारंगियाँ नहीं भेजी जातीं। केलीफोर्निया की रियासत में भी नीबू-नारंगी के बहुत बाग हैं। एशिया में नारंगी की पैदावार बहुत कम होती है। चीन, जापान और भारत में ही थोड़ी-सी नारंगी उत्पन्न होती है। इटली में नारंगी का उत्पादन जिनाओ के चारों ओर तथा गार्डा के किनारे होता है।

इसके अतिरिक्त अलजीरिया, सीरिया, मिश्र, ग्रीस, ट्यूनीसिया, टर्की और साइप्रस में भी नारंगी अधिक उत्पन्न होती है। भारत में नारंगी और सन्तरे की कई किस्में पैदा की जाती हैं। आसाम, मध्य प्रदेश और बम्बई मुख्य उत्पादक हैं। आसाम में ब्रह्मपुत्र की घाटी का सिलहट का सन्तरा मशहूर है। हिमालय के पूर्वी भाग में भूटान, सिक्किम और नैपाल में भी काफी नारंगी पैदा की जाती है। नागपुर के सन्तरे तो भारत भर में प्रसिद्ध हैं। यहाँ सन्तरों के अनेकों बाग हैं। मौसमी बम्बई के नासिक और पूना जिलों में खूब पैदा होती है। सन्तरे की प्रति एकड़ उपज जलवायु, खाद, मिट्टी तथा कीड़ों से बचाव और वृक्षों की उम्र पर निर्भर रहती है। भारत में सन्तरे की प्रति एकड़ औसत उपज ६८ मन होती है जब कि संयुक्त राष्ट्र में १३२ मन, ब्राजील में १२५ मन, स्पेन में ८५ मन, इटली में ६० मन और दक्षिणी अफ्रीका में ७२ मन होती है।

नीबू (Lemons)—नीबू के लिए उर्वरा भूमि, यथेष्ट जल, धूप तथा सम शीतोष्ण (Mild) जलवायु उपयुक्त है। इसको पाले और कीड़े से बहुत हानि पहुँचती है। केलीफोर्नियों में तो बागों में गरमी पहुँचाई जाती है जिससे पाला हानि न पहुँचा सके और कीड़ों से वृक्षों की रक्षा का विशेष उपाय किया जाता है।

नीबू अधिकतर सिसली, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, कैलीफोर्निया, फ्लोरिडा और नैटाल तथा क्वीन्सलैण्ड से बाहर भेजा जाता है। मोटे छिलके वाला खट्टा (Citron) भूमध्य सागर के समीपवर्ती प्रदेशों, जापान और भारत भेजा जाता है। क्रमशः इसकी पैदावार घट रही है तथा नीबू इसका स्थान ले रहा है।

संसार में सबसे अधिक नीबू इटली में (१ करोड़ २० लाख बाक्स) उत्पन्न होता है। इसकी ६०% पैदावार इटली के सिसली द्वीप में होती है। नीबू उत्पन्न करने में दूसरा नम्बर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का है जहाँ लगभग १ करोड़ बाक्स (एक बाक्स में ७६ पौण्ड नीबू होते हैं) नीबू वार्षिक उत्पन्न होते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का अधिकांश नीबू केलीफोर्निया में उत्पन्न होता है। तीसरा नम्बर स्पेन का है जहाँ १५ लाख बाक्स नीबू उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त भूमध्य सागर के समीपवर्ती सभी प्रदेशों में नीबू उत्पन्न होते है, मुख्यतः मिश्र में। इसके अतिरिक्त दक्षिणी अफ्रीका, फ्लोरिडा, आस्ट्रेलिया तथा मैक्सिको में भी नीबू की अच्छी पैदावार होती है। इटली, केलीफोर्निया तथा स्पेन के अतिरिक्त थोड़ा-सा नीबू पैलेस्टाइन, सीरिया और मैक्सिको से भी विदेशों को भेजा जाता है, किन्तु पहले तीन देश ही संसार को नीबू देते हैं।

अंगूर (Grapes)—अंगूर स्वभाव से भूमध्यसागरीय फल है, यद्यपि यह पौधा अन्य प्रकार की जलवायु में भी पैदा किया जा सकता है। इसके लिये ढालू मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें औसत तापक्रम ६०° फा० के लगभग और वर्षा की हल्की बौछारें हों। अधिक वर्षा फल के लिए हानिकारक होती है। फ्रांस, इटली, दक्षिणी रूस, एल्जीरिया, ग्रीस, एशिया के पश्चिमी भाग प्रमुख अंगूर पैदा करने वाले भाग है। इनके अतिरिक्त कुछ कम महत्व वाले भाग यह हैं—केलीफोर्निया, संयुक्त राष्ट्र में झीलों के आसपास वाले भाग, अर्जेन्टाइना, चिली, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के कुछ भाग।

विदेशी व्यापार में सूखे हुए अंगूर बहुत महत्व के हैं। सूखे अंगूरों की खास किस्में किशमिश (raisins) और मुनक्के (Currants) हैं। सुल्ताना किशमिशें विना बीज वाले अंगूरों की सूखी किस्म होती है जो कि व्यापारिक पैमाने पर एशिया माइनर और एजियन द्वीप समूह (Aegean Island) और केलीफोर्निया में पैदा की जाती है। मुनक्के भी अंगूर की सूखी शक्ल होती है। किन्तु इस प्रकार के अंगूर बड़े और बीजों वाले होते हैं। ग्रीस में मुनक्के तैयार करने का एकाधिकार है। हाल ही में आस्ट्रेलिया ग्रीस का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी खड़ा हो गया है।

भारत में सबसे अधिक अंगूर बम्बई प्रान्त, मद्रास और मैसूर में होते हैं। देश में अंगूरों के अन्तर्गत केवल १,४७५ एकड़ भूमि है। बम्बई में नासिक जिला, काशमीर में श्रीनगर तथा मद्रास में मदुरा, सलेम और आनन्दपुर जिले अंगूरों के मुख्य उत्पादक है। हरे अंगूरों की उपज में भारत के कुछ क्षेत्र दुनिया के मुख्य उत्पादक हैं जैसा कि अगले पृष्ठ की तालिका से प्रकट होता है।

प्रति वर्ष बहुत-सा अंगूर भारत में अफगानिस्तान, पाकिस्तान, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और आस्ट्रेलिया से आयात किया जाता है।

अंगूरों की प्रति एकड़ उपज
(पौंडों में)

विश्व	पौंड	भारत	पौंड
सं० रा० अमेरिका	७६७८	मैसूर	११६१०
आस्ट्रेलिया	४२२०	बम्बई	१११६०
फ्रांस	४०६४	मद्रास	७०००
स्पेन	१४०५		

अंजीर (Fig)—अंगूर और नारंगी की तरह यह पाले से नष्ट नहीं हो जाता और इसका फल आसानी से बाहर भेजा जा सकता है। अधिकतर इसे सुखा कर भेजते हैं। स्पेन, इटली, एशिया माइनर, ग्रीस, एलजिरिया और टर्की से यह अधिकतर विदेशों को भेजा जाता है। स्मर्ना अंजीर के व्यापार का मुख्य केन्द्र है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में केलीफोर्निया और टैक्सास में भी अंजीर बहुत पैदा होता है।

(ग) शीत-शीतोष्ण कटिबन्धीय फल—

सेब (Apple)—यह फल शीतोष्ण कटिबन्ध में बहुत उत्पन्न होता है। सेब का वृक्ष बड़ा होता है और एक फसल में एक से डेढ़ मन तक फल उत्पन्न करता है। यह ऐसा फल है जो बहुत ऊँचे स्थान पर तथा ६५° उत्तर अक्षांश रेखाओं तक उत्पन्न किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सेब बहुतायत से उत्पन्न होता है। वैसे तो ऐसी कोई रियासत नहीं जिनमें सेब की पैदावार न होती हो किन्तु न्यूयार्क,

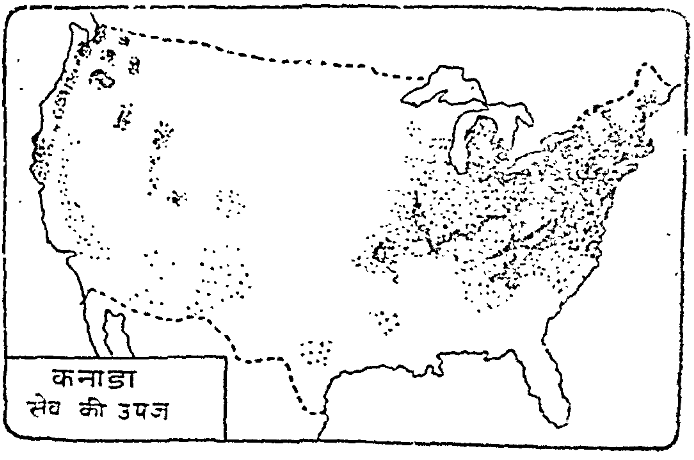

चित्र १४१

पेंनसिलवेनिया, ओहियो तथा मिशिगन रियासतें सेव उत्पन्न करने के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। संयुक्त राष्ट्र के पश्चिमी भाग और केलीफोर्निया में भी सेव बहुतायत से उत्पन्न होता है।

कनाडा में भी सेव बहुत उत्पन्न होता है नोवास्कोशिया तथा इरी और अन्टोरियो झीलों के समीपवर्ती मैदान और पश्चिम की ओर राकी पर्वतमाला में भी सेव बहुत उत्पन्न होता है। ब्रिटिश कोलम्बिया तो सेव का घर है।

सेव का मूल-स्थान यूरेशिया है। स्पेन से लेकर जापान तक सेव उत्पन्न होता है। इंग्लैण्ड, स्विटजरलैण्ड, जर्मनी का दक्षिणी भाग तथा आस्ट्रिया का पहाड़ी प्रान्त सेव उत्पन्न करने के लिये प्रसिद्ध हैं। बर्लिन, पेरिस और लन्दन सेव की यूरोप में मुख्य मंडियाँ हैं जहाँ आस-पास के प्रदेशों से सेव आता है।

एशिया में जापान, चीन और कोरिया में सेव बहुत उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, चिली और टसमानिया में भी सेव की पैदावार बहुत होती है। सेव यदि सावधानी से रक्खा जावे तो बहुत दिनों तक खराब नहीं होता। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा कनाडा से बहुत राशि में सेव यूरोपीय देशों को जाता है।

शराब (Wine)—शराब का सबसे अधिक उत्पादन भूमध्य सागरीय देशों में होता है। यूरोप के बाद उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया का स्थान आता है। व्यक्तिगत देशों में फ्रान्स की पैदावार सबसे अधिक है और इटली की पैदावार इससे कुछ ही कम है। स्पेन, एलजीरिया, संयुक्त राष्ट्र, अर्जेन्टाइना और पुर्तगाल की पैदावार कुछ सन्तोषजनक है। अन्य देशों की पैदावार, जिनमें रूमानिया, ग्रीस, यूगोस्लेविया, दक्षिणी अफ्रीका, चिली, हंगरी, आस्ट्रेलिया, बलगेरिया और आस्ट्रिया प्रमुख हैं, अत्यन्त साधारण है। इनमें से कुछ स्थानीय महत्व के हैं। इनमें से विशेष रूप से दक्षिणी अफ्रीका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

विश्व-वितरण : फ्रान्स—यह संसार में सबसे अधिक शराब पैदा करने वाला देश है। संसार की कुल पैदावार का २५% शराब फ्रान्स से ही प्राप्त होती है। यहाँ शराब की प्रतिवर्ष प्रति मनुष्य खपत २५ गैलन के लगभग है। अंगूर की पैदावार के प्रमुख क्षेत्र लैंग्वेडक (दक्षिणी-पश्चिमी भूमध्यसागरीय तट पर) और गैरोन की घाटी हैं। इसके अतिरिक्त रोन और लॉयर नदी की घाटियों में भी अंगूर की पैदावार कुछ केन्द्रित है। आमतौर पर देश की कुल शराब की पैदावार की एक तिहाई केवल लैंग्वेडक क्षेत्र से प्राप्त होती है।

शराब की औसत पैदावार लगभग १६,००० लाख गैलन है। भौगोलिक और आर्थिक दशाओं में अन्तर होने के कारण शराब के स्वाद और गन्ध में भी अन्तर आ जाता है। अतएव इन दशाओं की विषमता के कारण कुछ प्रकार की शराबें अत्यन्त स्थानीय हो गई हैं जैसे शैम्पेन (Champagne) केवल पेरिस बेसिन की चाक की पहाड़ियों से प्राप्त होती है; क्लैरेट (Claret) या

बोर्डो (Bordeaux) गैरौन की घाटी से आती है और बर्गन्डी (Burgandy) शराब कोटे-डी-ओर (Cote-d'-or) के ढालों से। यह फ्रान्स की प्रसिद्ध शराबें हैं।

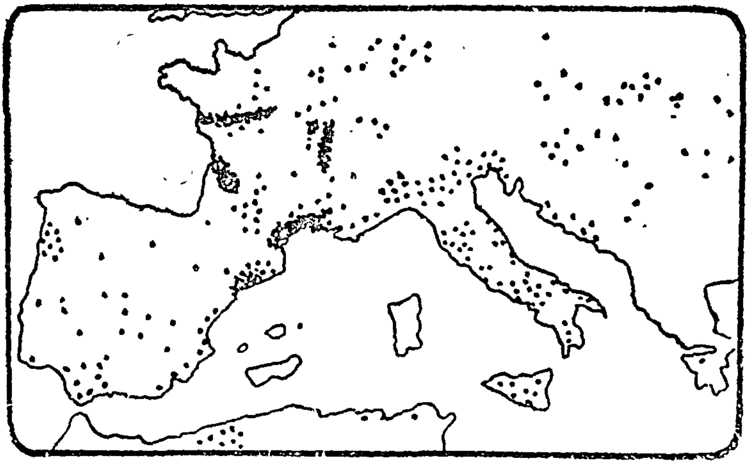

चित्र १४२—यूरोप में शराब का उत्पादन

शराब का सबसे अधिक निर्यात फ्रान्स से ही होता है। फ्रान्सीसी शराब की मांग स्थानीय प्रयोग के लिये इतनी अधिक है कि देश की पैदावार की कमी की पूर्ति के लिये प्रतिवर्ष लाखों गैलन शराब इटली, स्पेन और एल्जीरिया से मँगानी पड़ती है। कभी-कभी फ्रान्सीसी अपनी महँगी शराबों को पूर्णतया बेच देते हैं और घरेलू खपत के लिये इटली और स्पेन की सस्ती शराबों को मँगाकर प्रयोग करते हैं।

इटली—संसार के देशों में इटली का पहला स्थान है जहाँ अंगूर की खेती के अन्तर्गत भूमि का सबसे अधिक भाग पाया जाता है। वहाँ चूने के ऊँचे-नीचे, विस्तृत और पथरीले भाग, चमकती धूप, हल्की वर्षा और सस्ती मजदूरी आदि दशायें अंगूर की खेती के लिये अति अनुकूल हैं। संसार में ऐसा कोई देश नहीं है जो अंगूर की शराब की पैदावार पर इतना अधिक निर्भर रहता हो जितना कि इटली। किन्तु इटली की शराब इतनी अच्छी और मूल्यवान नहीं होती जितनी कि और देशों की। फिर भी यहाँ की शराब की निर्यात मात्रा बहुत अधिक है।

इटली की शराब की प्रतिवर्ष औसत पैदावार एक खरब गैलन है—प्रति मनुष्य २० गैलन से अधिक। इटली की शियाण्टी (Chianti) शराब, जो कि टस्कैनी से प्राप्त होती है, विदेशों में बड़े आदर के साथ देखी जाती है।

स्पेन—संसार में शराब पैदा करने वाले देशों में स्पेन का तीसरा स्थान है। यहाँ की सबसे उत्तम शराब शैरी (Sherry) है जो दक्षिण की ओर

कैडिज के पास जैरेज डीला फन्टेरा से प्राप्त होती है। स्पेन की शराब विशेषतः ब्रिटेन को भेजी जाती है।

पुर्तगाल—की सबसे प्रसिद्ध शराब 'पोर्ट शराब' (Port wine) है जो कि ओपोर्टो से प्राप्त होती है। स्पेन की भाँति यहाँ की शराब भी अधिकतर ब्रिटेन को भेजी जाती है और देश की निर्यात का लगभग ½ भाग ब्राजील को भेजा जाता है।

जर्मनी में अंगूर राइन तथा उसकी सहायक नदियों नैकर और मुजेल और झुकने वाले पहाड़ी प्रदेशों पर पैदा किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र में शराब का धंधा अधिकतर पश्चिम में केलीफोर्निया में और पूर्व में न्यूयार्क में ही केन्द्रित है। कनाडा में शराब बहुत कम तैयार की जाती है और जो कुछ पैदा हो भी जाती है वह उसके दक्षिणी पूर्वी समुद्री प्रान्तों तक ही सीमित है।

अफ्रीका में शराब अधिकतर उसके केप प्रान्त में ही तैयार होती है। इगलैण्ड में दक्षिणी अफ्रीका की हॉक (Hock), क्लैरेट (Claret) और बरगन्डी (Burgandy) शराब बहुत प्रसिद्ध हैं।

आस्ट्रेलिया में शराब अधिकतर दक्षिणी आस्ट्रेलिया, न्यूसाउथवेल्स और विक्टोरिया की रियासतों में तैयार की जाती है। आस्ट्रेलिया की बरगन्डी और पोर्टो शराब देशी बाजारों में काफी प्रसिद्ध है।

दक्षिणी अमेरिका में शराब चिली की बड़ी मध्य घाटी में, अर्जेन्टाइना के सिंचित भागों में (मण्डोजा और सैन ज्वान) और ब्राजील में तैयार होती है। कुछ थोड़ी बहुत शराब स्थानीय मांगों की पूर्ति के लिये यूरुग्वे और पीरू में भी बनती है।

अगले पृष्ठ की तालिका में विश्व में शराब का उत्पादन दर्शाया गया है[1] :—

---

1. Stamp & Glimour : Chisholm's Handbook of Commercial Geography, p. 147.

शराब की वार्षिक उपज (दस लाख इम्पीरियल गैलनों में)

देश	सन् १९३८	सन् १९५१
यूरोपीय देश		
आस्ट्रिया	२१	२४
वल्गेरिया	५२	५०
फ्रांस	१,३२०	१,०४१
जर्मनी	५०	६८
ग्रीस	१०३	९७
हंगरी	६८	७८
इटली	९१९	१,०००
पुर्तगाल	२४१	१६३
रोमानिया	२१८	१००
स्पेन	३५२	२८७
स्विटजरलैंड	८	२३
यूगोस्लेविया	१०३	१३०
साईप्रस	५	३
वलगेरिया	४७३	३०२
फ्रां० मोरक्को	१७	२०
ट्यूनिशिया	४३	१६
दक्षिणी अफ्रीका	३३	६२
कनाडा	४	४
संयुक्त राष्ट्र	१२०	२००
अर्जेन्टाइना	२०४	१९०
ब्राजील	१८	२६
चिली	७९	७७
आस्ट्रेलिया	२०	२८
योग	४,४७१	३,९८६

भारत में फलों का उत्पादन—

भारत के कुछ भागों में फलों की पैदावार वैज्ञानिक ढंग से बड़ी मात्रा में की जाती है। पूर्वी पंजाब की कुलू और कांगड़ा की घाटियाँ, उत्तर प्रदेश का कुमायूं जिला, मध्य प्रदेश व आसाम के पहाड़ी जिले तथा बम्बई का कोंकन प्रदेश, काश्मीर राज्य तथा मद्रास की नीलगिरी और अनामलाई की पहाड़ियाँ फलों के मुख्य उत्पादक हैं। भारत में नारंगी, अंगूर, केला, सेव, आम, नासपाती, और बेर आदि फल खूब पैदा किये जाते हैं किन्तु फिर भी

प्रति व्यक्ति के पीछे फलों का उपभोग केवल १५ पौण्ड है। इन सभी स्थानों में लम्बी सर्दी की ऋतु, साधारण वर्षा और ढालू जमीन (जिसके कारण फालतू पानी बहकर चला जाता है) होने के कारण फलों का उत्पादन विशेष रूप से किया जाता है। इन भागों की मिट्टियाँ भी बहुत बारीक और उपजाऊ हैं जो फल उत्पादन के लिये विशेष रूप से लाभदायक हैं।

भारतवर्ष में अभी तक फल उत्पन्न करने का धन्धा उन्नत अवस्था में नहीं है। इसके कई कारण हैं—

(१) फलों के बग़ीचे बहुत ही छोटे-छोटे और बिखरे हुए हैं। उदाहरण के लिये कुछ वर्ष पहिले पंजाब में एकसौ चौरानवे बाग ऐसे थे जो बहुत बड़े थे, किन्तु इनमें से अधिकांश दस एकड़ से बड़े थे जब कि उत्तर प्रदेश में एक बाग का औसत क्षेत्र फतहपुर में ८ एकड़, सीतापुर में ३ और नैनीताल में ६ एकड़ है।

(२) बहुत ही कम फलों के भाग व्यवसायिक रूप से लगाये जाते हैं, अतः इन बागों से इनके मालिकों को अधिक आर्थिक लाभ नहीं होता।

(३) बागों की हिफाजत प्रायः उन ठेकेदारों के हाथ में छोड़ दी जाती है जो स्वयं फल खरीदते हैं या फिर अशिक्षित और गरीब माली ही इनकी देखभाल करते हैं। ठेकेदार भी थोड़े खर्चे में अधिक से अधिक फायदा उठाने के लिये प्रयत्नशील रहता है किन्तु वैज्ञानिक रीति से फलों की पैदावार बढ़ाने के लिये वह कुछ भी नहीं करता।

(४) फलों के बाग में पौधे इतने नजदीक-नजदीक लगाये जाते हैं कि ये साधारण रूप से पूरी तरह बढ़ भी नहीं पाते। पौधों को पास-पास लगाने से यद्यपि कुछ समय तक फलों की पैदावार बढ़ती जाती है किन्तु थोड़े समय बाद वह घटने लगती है।

(५) फलों को बाजार में जाकर बेचने के लिये हमारे यहाँ सन्तोषजनक हालत नहीं है। फलों के बग़ीचे जो शहरों के नजदीक होते हैं उनके लिये कोई कठिनाई नहीं होती किन्तु जो बाग गाँवों में होते हैं वहाँ के सभी फल शहरों में भेज दिये जाते हैं जिसके फलस्वरूप गाँवों के लिये बिल्कुल फल नहीं रह जाते। शहरों में भी फलों की माँग पूरी नहीं होती। अनुमान लगाया गया है कि बम्बई में प्रतिदिन व्यक्ति पीछे आधे आउन्स फल बिकते हैं जबकि लन्दन में यह मात्रा ४½ आउन्स और न्यूयार्क में १ पौण्ड होती है।

(६) फलों के पकने के समय अधिक असावधानी की जाती है जिससे फल और पौधे दोनों की खराबी होती है। अधिकतर तो हरे और कच्चे फलों को ही तोड़ लिया जाता है। कभी-कभी फलों को तोड़ने के लिये वृक्ष की टहनियाँ हिलाई जाती हैं जिससे बहुत से फल नष्ट हो जाते हैं।

(७) फलों को बाहर भेजते समय बड़े फलों को ऊपर रखा जाता है और छोटों को नीचे जिससे बहुत फल बिगड़ जाते हैं। उसके अलावा जिन डिब्बों

और टोकरियों में यह बन्द करके भेजे जाते हैं वे हल्की और हवादार नहीं होतीं। फलों के साथ-साथ घास और सूखी पत्तियाँ भी भर दी जाती हैं जिससे फल गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के पहले ही नष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिये बम्बई की आम मार्केटिंग कमेटी ने अनुमान लगा कर यह बताया है कि बम्बई शहर में आने वाले २०% आम तो इसलिये खराब हो जाते हैं कि वे कच्चे ही तोड़कर पेटियों में बन्द कर दिये जाते हैं और २०% सड़ जाते हैं।

(८) भारतवर्ष में जो कुछ फल और तरकारियाँ बोई जाती हैं वे सब शीघ्र ही खराब हो जाने के कारण शहरों के समीपवर्ती स्थानों में बोई जाती हैं क्योंकि हमारे यहाँ शीत भण्डारों (Refrigeration) की सुविधायें नहीं हैं और रेलें भी इनको एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिये विशेष प्रबन्ध नहीं करतीं जबकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में तरकारी और फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिये प्रतिदिन प्रातः काल फल और तरकारियों की एक्सप्रेस गाड़ियाँ दौड़ती हैं।

प्रतिवर्ष औसत रूप में डब्बे में बन्द किये हुए फल ११ लाख रु० की लागत के, अचार और मुरब्बे ७ लाख की लागत के आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, जापान और अमेरिका से मँगाये जाते हैं। इनमें से बहुत अधिक फल तो भारत में ही पैदा किये जा सकते हैं। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि आवागमन के साधन पूर्ण रूप से विकसित हों तथा किसानों की आर्थिक दशा सुधारी जाय और अधिक उपयोग के लिये रुचि पैदा की जाय।

तिलहन (Oil seeds)

तिलहन और वनस्पति तेल अधिकतर विभिन्न प्रकार के पौधों के बीज या फलों से प्राप्त होता है जो प्रायः उष्ण-कटिबन्ध में ही पैदा होते हैं। यह तेल खाने तथा अन्य व्यवसायों—वार्निश बनाने, मशीन के पुर्जों को ढीला करने, मोमबत्तियाँ बनाने, साबुन, इत्र और दवा बनाने के काम में आते हैं।

युद्धोत्तर काल में कई तिलहनों के उत्पादन में युद्ध से पूर्व के वर्षों की अपेक्षा वृद्धि हुई। इसका प्रमुख कारण पश्चिमी गोलार्द्ध में (विशेषतः अमेरिका में) इन फसलों की खेती में उल्लेखनीय विस्तार होना था। विश्व के सोयाबीन तथा मूँगफली के उत्पादन में १९३४–३८ के औसत उत्पादन की अपेक्षा वृद्धि हुई। इसका कारण महत्वपूर्ण उत्पादक देशों में इनकी खेती फिर होने लगना तथा दक्षिण व उत्तरी अमेरिका में इनका उत्पादन बढ़ जाना है। इसी प्रकार सन फ्लावर की खेती सोवियत-संघ में फिर से चालू की गई तथा अर्जेन्टाइना, उरुग्वे व अन्य छोटे उत्पादक क्षेत्रों में उसमें विस्तार किया गया। युद्धोत्तर काल में बिनौले का उत्पादन भी काफी बढ़ा क्योंकि इसकी खेती में पर्याप्त विस्तार हुआ है। तिल में भी थोड़ी वृद्धि हुई है। इसका उत्पादन अधिकतर उन देशों में होता है जो खेती के नये तरीकों से पिछड़े हुए हैं। १९५२–५३ में तोरिया का उत्पादन चरम सीमा पर रहा। चीन में इसकी फसल बहुत बढ़िया हुई। युद्ध से बाद के वर्षों में पश्चिमी यूरोप में तोरिया की खेती निरन्तर बढ़ती रही लेकिन हाल की

फसलों में यह स्थिति बदल गई। यह परिवर्तन मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर माल आराम से उपलब्ध होने तथा भाव गिर जाने से हुआ। १९४८–४९ में अलसी का उत्पादन चरम सीमा पर था। लेकिन बाद के वर्षों में अर्जेन्टाइना, अमेरिका तथा भारत में फसल के बिगड़ जाने से विश्व का अलसी उत्पादन तेजी से घटता गया। सुखाने के लिए अलसी के बदले अन्य तेल तथा रासायनिक

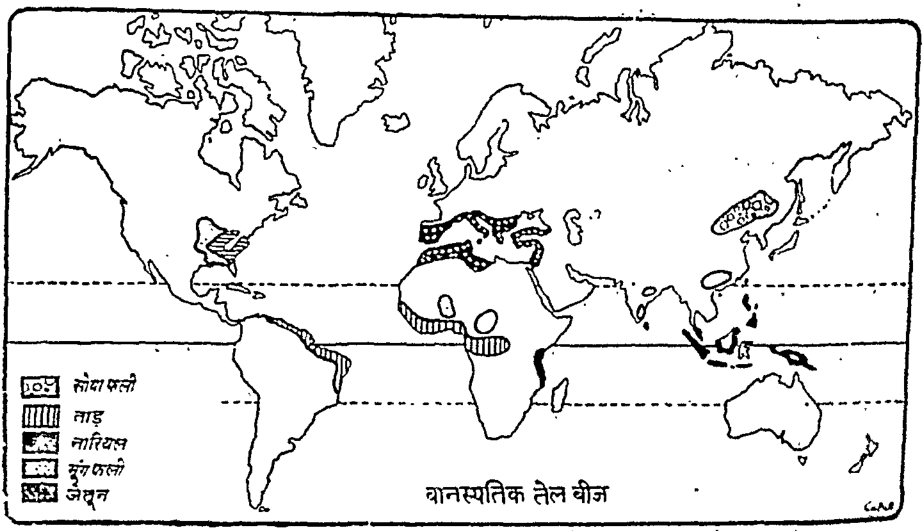

चित्र १४३

वस्तुएँ काम में लाई जाने लगीं। ऐसा जान पड़ता है कि चीन में तुङ्ग तेल का उत्पादन, निर्यात सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण, १९५० से घटता जा रहा है। लेकिन इसके विपरीत अन्य देशों में जहाँ इसका उत्पादन लड़ाई से पहले नगण्य-सा था, अब धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। सम्भवतः तुङ्ग तेल का उत्पादन १९५३ में सबसे उच्च स्तर पर था।

विभिन्न तिलहनों का तेल-परिमाण भी अलग-अलग होता है। इनमें से कई में बड़ा अन्तर होता है। तिलहनों को बीज के अतिरिक्त एक बड़े परिमाण में बिना पेराई किये खाने तथा खाद्य-वस्तुएँ बनाने के काम में भी लाया जाता है। उदाहरण के लिए मूँगफली को ही लीजिये, जिन देशों में मूँगफली का अधिक उत्पादन होता है, वहाँ लोग इसे पेरे बिना ही बहुत खाते हैं। चीन (मंचूरिया को छोड़कर) तथा अन्य देशों में सोयाबीन मुख्यतः अनाज के रूप में खाई जाती है। तिल को गजक, रेवड़ियाँ, लड्डू तथा अन्य मिठाइयाँ बनाने के काम में लाया जाता है। बिनौले के भी कई उपयोग होते हैं। अमेरिका तथा अन्य कई देशों में बिनौला बड़े परिमाण में तेल निकालने के काम में ही लाया जाता है परन्तु भारत, चीन तथा अन्य देशों में इसे जलाने तथा पशुओं को खिलाने के काम में लाया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि विश्व के तिलहनों के उत्पादन में से बीज तथा सीधा मनुष्यों तथा पशुओं द्वारा खाने के लिए निम्न अनुपात में

प्रयुक्त होता है—मूंगफली ३५–४५%, सोयाबीन ३०–३५%, बिनौला २५%, तिल १५–२५%, तोरिया, अलसी १०% और अरण्डी ५%। नीचे की तालिका में मुख्य-मुख्य तिलहनों का विश्व उत्पादन दिया गया है :—

तिलहनों का उत्पादन (हजार टन में)

तेल	१९३८-३९	१९५२-५३
खाद्योपयोगी (Edible Oils)—		
मूंगफली	८,५२१	९,५११
बिनौला (Cottonseed)	११,७७५	१४,५०४
सोयाबीन	१२,६३०	१७,९६८
सन फ़्लावर के बीज	२,४३१	४,१३१
तिल	१,४३१	१,८०३
जैतून का तेल	८३२	७६९
खाद्योपयोगी (औद्योगिक)—		
गरी का गोला	२,४६०	(२,५५०)
ताड़ की गिरी	६४०	(८५०)
ताड़ का तेल	५४५	(८६०)
औद्योगिक (Industrial Type):-		
तोरिया	३,८६३	५,२१३
अलसी	३,२४२	३,२३६
अरण्डी	३००	४५०
तुंगतेल	७०	(१३०)
कुल तेल के बराबर	१३,८५०	१६,७५५
जिसमें—		
खाद्योपयोगी	८,८२०	१०,८९०
खाद्योपयोगी-औद्योगिक	२,३८५	(२,२१५)
औद्योगिक	२,६००	३,२१५
	१३,८५०	१६,७५५

नीचे की तालिका में मुख्य-मुख्य वनस्पति तेलों तथा तिलहनों का निर्यात दिखाया गया है। इसे देखने से स्पष्ट होगा कि तिलहनों के निर्यात में कितनी अधिक कमी तथा इसके विपरीत तेलों के निर्यात में कितनी वृद्धि हुई है :—

(हजार टनों में तेल के बराबर)

तेल	१९३९	१९५२
खाद्योपयोगी—		
मूंगफली	९४२	४६२
बिनौला	१७१	११०
सोयाबीन	३८०	२४२
सनफ्लावर	५	४३
तिल	४२	३९
जैतून	११८	७६
योग	१,६५८	९७२
खाद्योपयोगी-औद्योगिक—		
नारियल	१,१७०	१,०८८
ताड़ की गिरी	३०९	३५३
ताड़	४८८	५०८
योग	१,९६७	१,९४९
औद्योगिक—		
तोरिया	८३	६४
अलसी	५३३	१९१
अरंडी	८२	१११
तुङ्ग	६९	४२
योग	७१७	४०८
जिसमें—		
तिलहन (तेल के रूप में)	३२०३	१,८२९
तेल	११३९	१,५००
तेल, कुल के प्रतिशत के रूप में	२६·२	४५·१

१९५२ में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कुल माल का ३५ प्रतिशत भाग ब्रिटिश राष्ट्रमंडलीय देशों द्वारा दिया गया जबकि १९५१ में २६ प्र० श० तथा १९४६-५० में और १९३४-३८ में ३२ प्र० श० दिया गया था। भारत के निर्यात में भी काफी गिरावट हुई। यद्यपि युद्धोत्तर काल में राष्ट्रमंडलीय देशों के निर्यात में कमी हुई फिर भी वह इतनी अधिक नहीं हुई जितनी कि अन्य देशों के निर्यात में। अर्जेण्टाइना, चीन, फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका तथा इण्डोनेशिया के निर्यातों में जो कमी हुई उसकी पूर्ति केवल आंशिक रूप में ही अमेरिका, बेल्जियम, कांगो और फिलीपाइन के बढ़े हुए निर्यात से हो सकी। नीचे की तालिका में प्रमुख देशों के निर्यात आँकड़े दिखाये गये हैं :—

(हजार टनों में, तेल के बराबर)

देश	१९३८	१९५२
कनाडा	७	४१
लंका	१२२	१३३
भारत	६५१	१४६
मलाया	१५०	६८
न्यू गायना और पेपुआ	५४	४९
नाइजेरिया	३३६	४६६
अन्य पश्चिमी अफ्रीका	४७	६२
प्रशान्त द्वीप	६२	६७
अर्जेन्टाइना	४१६	५३
बेल्जियन कांगो	११२	२०८
ब्राजील	६५	४०
चीन और मंचूरिया	५३२	१४३
फ्रांसिसी पश्चिमी अफ्रीका	२३४	१७६
इंडोनेशिया	६१३	३४७
फिलीपाइन	३७५	४६५
पुर्तगाली अफ्रीका	६०	८०
ट्यूनिशिया	४०	१६
अमेरिका	१३	२७३
उरुगुए	२३	३६
योग	४,३४२	३,३२६
कुल (अमेरिका में हुए आयात को छोड़कर)	३,६१४	३,६५७

नीचे की तालिका में मुख्य-मुख्य वनस्पति तेलों तथा तिलहनों का निर्यात दिखाया गया है। इसे देखने से स्पष्ट होगा कि तिलहनों के निर्यात में कितनी अधिक कमी तथा इसके विपरीत तेलों के निर्यात में कितनी वृद्धि हुई है :—

(हजार टनों में तेल के बराबर)

तेल	१९३९	१९५२
खाद्योपयोगी—		
मूँगफली	९४२	४६२
बिनौला	१७१	११०
सोयाबीन	३८०	२४२
सनफ्लावर	५	४३
तिल	४२	३९
जैतून	११८	७६
योग	१,६५८	९७२
खाद्योपयोगी-औद्योगिक—		
नारियल	१,१७०	१,०८८
ताड़ की गिरी	३०९	३५३
ताड़	४८८	५०८
योग	१,९६७	१,९४९
औद्योगिक—		
तोरिया	३३	६४
अलसी	५३३	१९१
अरंडी	८२	१११
तुङ्ग	६९	४२
योग	७१७	४०८
जिसमें—		
तिलहन (तेल के रूप में)	३२०३	१,८२९
तेल	११३९	१,५००
तेल, कुल के प्रतिशत के रूप में	२६·२	४५·१

१९५२ में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कुल माल का ३५ प्रतिशत भाग ब्रिटिश राष्ट्रमंडलीय देशों द्वारा दिया गया जबकि १९५१ में २६ प्र० श० तथा १९४६-५० में और १९३४-३८ में ३२ प्र० श० दिया गया था। भारत के निर्यात में भी काफी गिरावट हुई। यद्यपि युद्धोत्तर काल में राष्ट्रमंडलीय देशों के निर्यात में कमी हुई फिर भी वह इतनी अधिक नहीं हुई जितनी कि अन्य देशों के निर्यात में। अर्जेण्टाइना, चीन, फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका तथा इण्डोनेशिया के निर्यातों में जो कमी हुई उसकी पूर्ति केवल आंशिक रूप में ही अमेरिका, बेल्जियम, कांगो और फिलीपाइन के बढ़े हुए निर्यात से हो सकी। नीचे की तालिका में प्रमुख देशों के निर्यात आँकड़े दिखाये गये हैं :—

(हजार टनों में, तेल के बराबर)

देश	१९३८	१९५२
कनाडा	७	४१
लंका	१२२	१३३
भारत	६५१	१४९
मलाया	१५०	९८
न्यू गायना और पेपुआ	५४	४६
नाइजेरिया	३३६	४६६
अन्य पश्चिमी अफ्रीका	४७	६२
प्रशान्त द्वीप	६२	६७
अर्जेन्टाइना	४१९	५३
बेल्जियन कांगो	११२	२०८
ब्राजील	९५	४०
चीन और मंचूरिया	५३२	१४३
फ्रांसिसी पश्चिमी अफ्रीका	२३४	१७९
इंडोनेशिया	६१३	३४७
फिलीपाइन	३७५	४९५
पुर्तगाली अफ्रीका	६०	८०
ट्यूनिशिया	४०	१६
अमेरिका	१३	२७३
उरुगुए	२३	३९
योग	४,३४२	३,३२९
कुल (अमेरिका में हुए आयात को छोड़कर)	३,६१४	२,९५७

नीचे की तालिका में प्रमुख देशों द्वारा तेल और तेलहनों का आयात दिखाया गया है:—

(हजार टनों में)

देश	१९३६–३८ औसत			१९५०–५२ औसत		
	तेल के बराबर में तेलहन	कुल तेलहन और तेल	तेलहन के रूप में आयात का प्र० श०	तेल के बराबर में तेलहन	कुल तेल और तेलहन	तेलहन के रूप में आयात का प्र० श०
ब्रिटेन	४५५	६७३	६७·६	४७४	९८०	४८·४
बेल्जियम	९७	१२९	७५·२	१०३	१८५	५५·७
फ्रांस	५२८	६११	८६·६	२५६	४२१	६०·८
प० जर्मनी	५८३	६७६	८६·२	२१९	५१२	४२·८
नीदरलैंड	२४७	३०९	७९·९	१७७	२७६	६४·१
अमेरिका	३६२	९४७	३८·२	२५७	४४२	५८·१
योग	२,२७२	३,३४५	६८·०	१,४८६	२,८१६	५२·१
योग (अमेरिका को छोड़कर)	१,९११	२,३९८	७९·७	१,२२९	२,३७४	५१·८

मुख्य तिलहन ये हैं:—

(१) मूंगफली (Groundnuts)

इसकी उत्पत्ति के लिये लम्बे और गर्म मौसम की आवश्यकता होती है—किन्तु इसे पानी की थोड़ी मात्रा की जरूरत पड़ती है। यह उन भागों में पैदा की जाती है जहाँ २०″ से ३०″ तक वर्षा होती है और पकने के समय ७० डिग्री से ८० डिग्री तक का तापक्रम इसकी बढ़वार के लिये बहुत अच्छा रहता है। किन्तु पाला फसल के लिए हानिकारक होता है। यह हल्की मिट्टी में अच्छी पैदा होती है। इसका उत्पादन भारत, चीन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, द० पूर्वी द्वीप समूह (जावा और मदुरा) ब्रह्मा, अर्जेन्टाइना और अफ्रीका में पश्चिमी फ्रांसीसी अफ्रीका, केनियाँ और नाइजीरिया में होती है। भारत में इसकी पैदावार मद्रास और बम्बई प्रांतों में काले मिट्टी के क्षेत्र तथा दक्षिणी पठार के लाल मिट्टी के भागों में होती है।

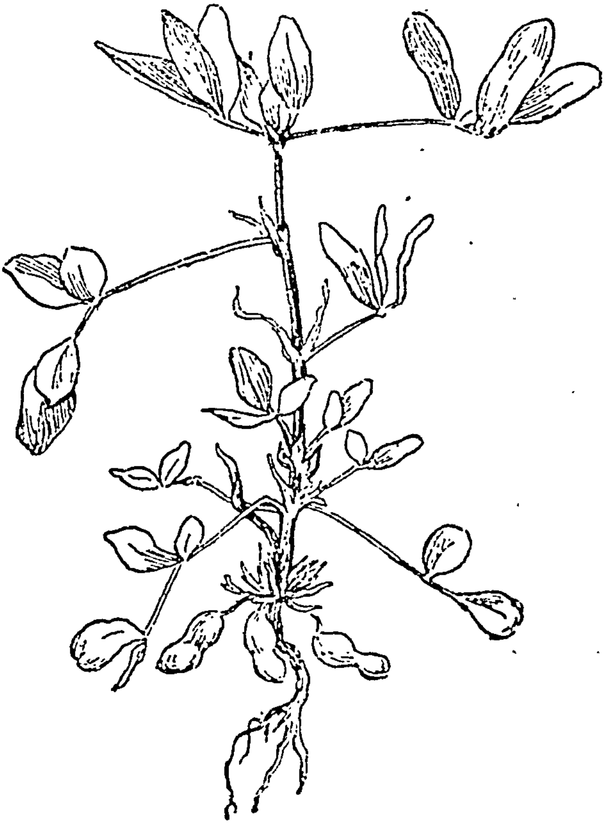

चित्र—१४४ मूंगफली का पौधा

विश्व में मूंगफली का उत्पादन १९५२ में इस प्रकार था (हजार टनों में):—

अर्जेन्टाइना	१४८	इन्डोनेशिया	३५१
भारत	३,३५०	चीन-मनचूरिया	२,१५०
सं० रा० अमेरिका	६१६	द० प० अफ्रीका	६००
पूर्वी अफ्रीका	१००	फ्रा० प० अफ्रीका	७२०

मूंगफली के तेल से घी और मशीनों का तेल बनाया जाता है। ये खाने के काम में भी आती है।

(२) तिल (Sesamum)—तिल की पैदावार के लिये पानी अच्छी तरह सोखने वाली उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है। यह सभी प्रकार की जलवायु में बोया जा सकता है, किन्तु इसकी विस्तृत खेती भारत, ब्रह्मा, लङ्का, चीन, टर्की और सूडान जैसे अर्ध उष्ण कटिबंधीय भागों में होती है। इन देशों से इसका निर्यात इंगलैंड, जापान, फ्रांस और मिश्र में किया जाता है। इसका उपयोग खाने और रोशनी के लिये जलाने में काम आता है।

(३) रेंडी (Caster Seed)—रेंडी उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान पहला है। अन्य मुख्य उत्पादक मंचूरिया, इण्डोचीन, ब्राजील और जावा हैं। भारत में सबसे अधिक रेंडी मद्रास, बम्बई, हैदराबाद और मध्य-प्रदेश में होती है। १९५० में सम्पूर्ण विश्व में ५४०,००० टन रेंडी पैदा हुई जिसमें से १२०,००० भारत में, २५०,००० टन ब्राजील में, २०,००० टन इण्डोनेशिया और ८०,००० टन रूस में पैदा हुई।

रेंडी

चित्र १४५—रेंडी

इसकी फसल गर्म भागों में तो वर्ष के सभी महीनों में की जाती है। किन्तु पहाड़ी अथवा ठंडे जलवायु में इसकी एक ही फसल बोई जाती है। यह सभी प्रकार की मिट्टियों—विशेषकर दुमट मिट्टी—में उत्पन्न की जा सकती है। इसका उपयोग तेल बनाने तथा मशीनों के लिए और साबुन बनाने में होता है। ब्राजील और भारत इसके मुख्य निर्यातक और यूरोप के देश तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका इसके मुख्य आयात करने वाले देश हैं।

(४) राई और सरसों (Rape & Mustard)—सरसों और राई दोनों ही गेहूँ और जौ आदि फसलों के साथ मिलाकर बोये जाते हैं। अतः इनके लिये भी वैसा ही जलवायु और मिट्टी चाहिए, जैसा कि गेहूँ या जौ के लिये, किन्तु पानी की अधिकता से इनके पौधों को नष्ट कर देती है। यह भारत में अधिक पैदा होती है। यहाँ से अधिकांश उपज इंगलैंड, बेलजियम, फ्रांस और जर्मनी को निर्यात करदी जाती है।

(५) अलसी (Linseed)—अलसी के लिये ठंडे जलवायु की आवश्यकता होती है। अतः जिन भागों में गेहूँ की पैदावार हो सकती है उन्हीं भागों में अलसी भी पैदा की जाती है। उष्ण कटिबन्धों में इसकी पैदावार बीज प्राप्त

करने के लिये की जाती है। अलसी सभी प्रकार की मिट्टी में पैदा हो सकती है—यदि वहाँ वर्षा ३०" से ४०" तक हो। विश्व में १९५० में अर्जेन्टाइना में ५०० हजार टन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १०५० हजार टन, भारत में ३९० हजार टन, कनाडा में ४०० टन, और रूस में ५०० हजार टन अलसी पैदा की गई।

अलसी का उपयोग इसका तेल बनाने में होता है। यह तेल, वार्निश, रंग, साबुन, तेलिया कपड़ा और पेटेन्ट चमड़ा बनाने के काम में आता है।

चित्र १४६—अलसी

(६) नारियल (Coconut)—नारियल का वृक्ष उष्ण कटिबन्ध का प्रमुख पौधा है। इसकी पैदावार विशेषकर पूर्वी द्वीप समूह, लंका, मलाया, फिलीपाइन, प्रशान्त महासागर के द्वीप, गोल्डकोस्ट, मारीशस और केनिया में होती है। भारत में संमुद्र तटीय भागों, में लगभग ५० लाख एकड़ भूमि में इसकी पैदावार होती है। यहाँ मद्रास (पूर्वी गोदावरी डेल्टा, मलाबार और दक्षिणी कनारा के जिले), ट्रावनकोर, कोचीन (मध्यवर्ती और पश्चिमी समुद्र-तटीय भागों में), मैसूर (हसन, तंजोर, कादूर और चितलद्रुग)

चित्र १४७—लंका में नारियल के वृक्ष

खरीददार अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, ब्राज़ील, जर्मनी, मलाया, इंडोनेशिया और सारावाक है।

(३) अदरख (Ginger)—यह भूमि के नीचे पैदा होने वाला एक फल है जो दक्षिणी एशिया के देशों में अधिक पैदा होती है। यह भारत, चीन, ब्रिटिश पश्चिमी अफ्रीका, सियरा लियोन, नाइजीरिया और जमेका से अधिक मात्रा में निर्यात की जाती है। मुख्य आयातक ब्रिटेन, अदन, कनाडा, मलाया, अमेरिका, जर्मनी और अरब हैं। १९५२ में १५६,००० हंडरवेट सोंठ निर्यात की गई।

(४) लौंग (Cloves)—यह एक कोमल पौधे की कलियाँ होती हैं जिन्हें सुखाकर खाने के काम में लिया जाता है। इनसे तेल और इत्र भी बनाया जाता है। इसकी सबसे अधिक पैदावार मैडेगास्कर और मलक्का तथा जंजीबार और पेम्बाद्वीप में (जो अफ्रीका के पूर्व में है) की जाती है। यहाँ विश्व की ८५% उपज होती है। यहाँ २३० लाख पौंड लौंग प्रतिवर्ष लगभग ३० लाख वृक्षों से प्राप्त की जाती है। १९५०-५१ में इसकी उपज ४,००,००० हंडरवेट हुई थी, किन्तु १९५२-५३ में यह केवल ४४,००० हंडरवेट ही हुई। १९५२ में लौंग का शुद्ध निर्यात—१४८,००० हंडरवेट का हुआ।

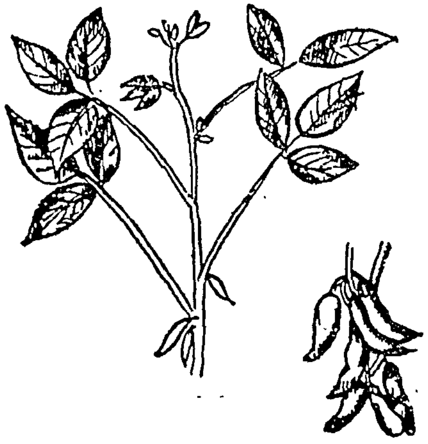

चित्र १४९—लौंग

(५) जायफल और जावित्री (Nutmag and Mace)—एक पेड़ का फल है जिसके पक जाने पर फल फूट जाता है। इस फल के ऊपर का छिलका ही जावित्री है। इसे हटाकर अन्दर का भाग निकाल लिया जाता है। सूख जाने पर चिटख जाता है तब अन्दर का बीज या जायफल निकाल लिया जाता है। जायफल के पेड़ को गर्मी, वर्षा तथा पतली ढालू मिट्टी चाहिए। इसे फल पैदा करने में बीस साल से अधिक लगते हैं पर बाद में यह सौ वर्ष तक फल देता है। जायफल और जावित्री मलक्का का पौधा है और अब भी संसार का आधा उत्पादन इंन्डोनेशिया में और शेष पश्चिमी द्वीप समूह में होता है।

अगले पृष्ठ की तालिका में मसालों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी आँकड़े दिये गये हैं:—

(हजार हंडरवेट)

वस्तु और निर्यात	१९३२	१९५२
गोल मिर्च—		
मलाया	२२४	९३
सारावाक	४३	८०
भारत	२६	४६
ब्रिटेन	१४	२७
इण्डोनेशिया	६११	१३६
हिन्दचीन	७६	८
अमेरिका	१०	१
मेडेगास्कर	२८	८
सौंठ—		
सियारालियोन	५४	३०
भारत	६०	६४
जमेका	२६	२७
नाइजीरिया	७	९
जायफल और जावित्री-		
ग्रेनेडा	४१	५१
इंडोनेशिया	९५	५५
दाल चीनी—		
लङ्का	४७	५०
सेकेलीन	१	३
हिन्दचीन	२२	——
लालमिर्च—		
भारत	१२५	२०२
वरमा	९९	——
युगांडा	१	११
नाईजेरिया	——	४
मेक्सिको	४८	१९८
इलायची—		
भारत	१३	१९
लङ्का	४	२
हिन्दचीन	१०	——
वनीला—		
मेडागास्कर	७	८
मेक्सिको	३	३
फ्रान्सीसी ओशिनिया	२	४

अध्याय २०

व्यावसायिक फसलें (Commercial Crops)

(१) शक्कर

विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में विभिन्न ढंगों से शक्कर तैयार की जाती है। उसमें तीन प्रकार मुख्य हैं—

(अ) गन्ने के रस द्वारा शक्कर बनाना।

(ब) चुकन्दर से शक्कर बनाना।

(स) मैंपल वृक्ष के रस से शक्कर बनाना।

(अ) गन्ना (Sugar cane)

भारत में गन्ने की पैदावार ५००० वर्ष पूर्व भी की जाती थी। एशिया के उष्ण देशों से यह ८ वीं शताब्दी में मूर लोगों द्वारा भूमध्यसागरीय देशों को ले जाई गई। यहाँ से कोलम्बस द्वारा नई दुनिया में ले जाई गई। यहाँ कैरेबियन द्वीपों, ब्राजील इत्यादि होती हुई इसकी खेती फ्लोरिडा और लूसियाना में की जाने लगी। यूरोपीय देशों में इसका उत्पादन १८ वीं शताब्दी से ही महत्वपूर्ण हुआ है।

गन्ने का मूल स्थान दक्षिणी पूर्वी एशिया में शायद गंगा की घाटी या हिन्द चीन रहा हो। परन्तु इस पौधे के लिये उष्ण एवं अर्द्धोष्ण जलवायु परमावश्यक है। गन्ने का पौधा दूर से मोटी घास (जो कि खूब लम्बी हो) जैसा प्रतीत होता है। इस पौधे के स्थान-स्थान पर निशान बने रहते हैं जिनमें कि पौधे का बीज रहता है और छिलके प्रारम्भ होते हैं जिनकी लम्बाई ३' तक और कुल पौधे की लम्बाई १०' से १५' तक होती है तथा साधारणतया जिसका व्यास २" तक होता है।

विश्व में इस पौधे की उत्पत्ति बहुत विस्तृत क्षेत्र में की जाती है और यह ३७° उ० (स्पेन में) एवं ३६° द० (न्यू साउथवेल्स में) के बीच के अक्षांशों में खूब बोया जाता है परन्तु ज्यों-ज्यों गन्ने के तापक्रमों की प्राप्यता में कमी पड़ती जाती है त्यों-त्यों उससे प्राप्त होने वाली शक्कर की मात्रा भी कम होती जाती है। जैसे अर्द्धोष्ण प्रदेशों के दक्षिणी भागों में इस पौधे में शक्कर की मात्रा ७%—९% तक होती है जबकि अनुकूल परिस्थितियों में यही मात्रा १२% से १५% तक हो सकती है।

जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताएँ (क) तापक्रम—गन्ने की सफलतापूर्वक खेती में जलवायु का बहुत ही महत्वपूर्ण हाथ है। गन्ने के लिए औसतन

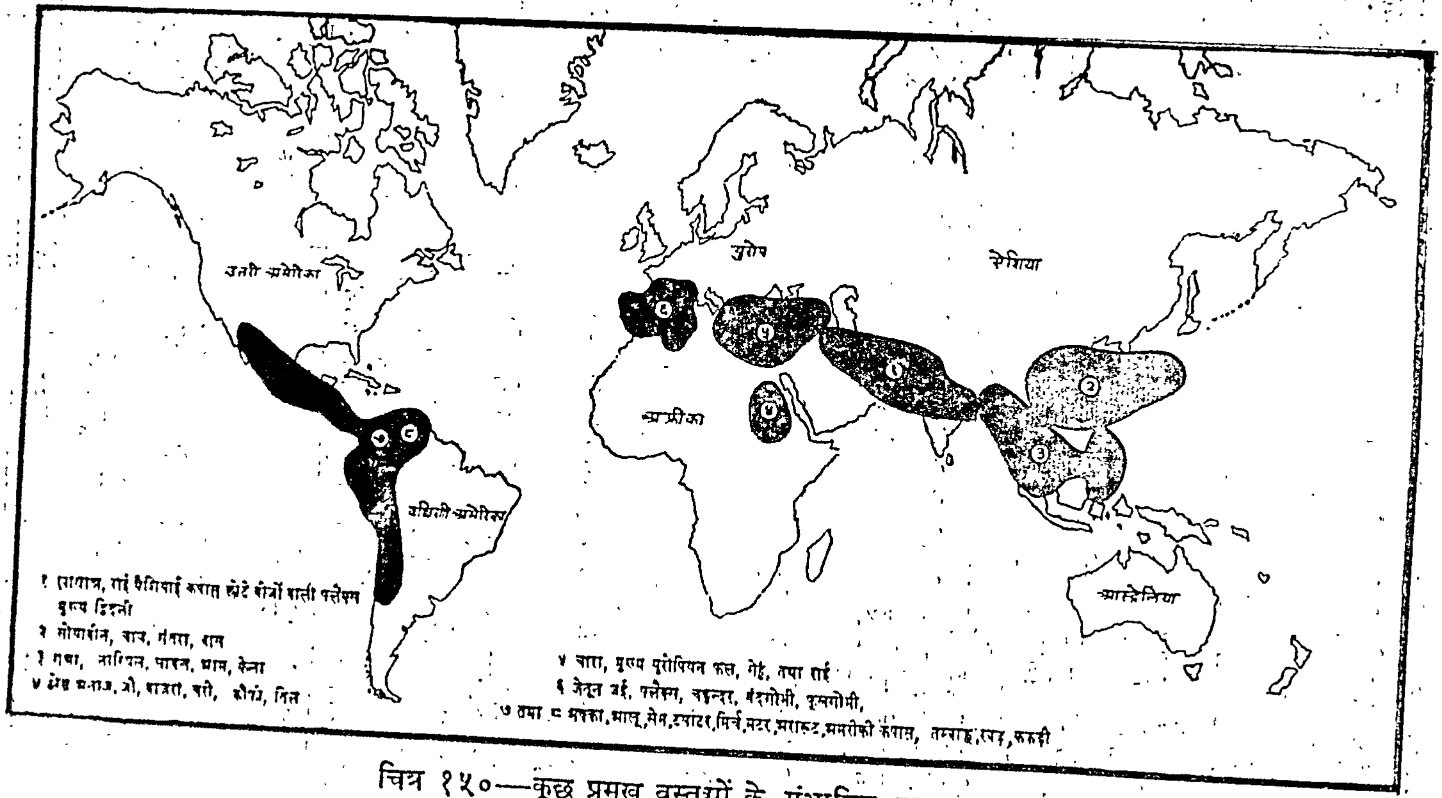

चित्र १५०—कुछ प्रमुख वस्तुओं के संभावित जन्म-स्थान

तापक्रम ऊँचे होने चाहिये जो कि ७५° फा० से ८०° फा० तक है, अतः स्पष्ट है कि यह पाला नहीं सह सकता है। पाला पड़ने से गन्ने में शक्कर की मात्रा में कमी आ जाती है। उत्पादन के समय अच्छी वर्षा और नम मौसम होना चाहिये। ज्यों-ज्यों पौधा बड़ा होता जाता है अधिक गर्मी और मामूली वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। पकने के समय मौसम शुष्क चाहिये जिससे पौधे में इसकी मात्रा बढ़ सके। अधिक तापक्रमों के अभाव के ही कारण यह पौधा भूमध्यसागरीय प्रदेशों में पैदा नहीं हो सका। इसके लिये अनुकूल तापक्रम दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में ही पाया जाता है।

(ख) वर्षा—इस पौधे को वार्षिक औसत वर्षा ५०″ से ७०″ तक चाहिये परन्तु जिन भागों में सिंचाई होती है वहाँ पर कम वर्षा होने पर भी इसकी खेती की जा सकती है। गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदान के $\frac{3}{4}$ भाग में गन्ना सिंचाई द्वारा पैदा किया जाता है। इसी प्रकार पश्चिमी पाकिस्तान, ब्राजील, पश्चिमी द्वीप समूह आदि प्रदेशों में भी वर्षा की कमी के कारण सिंचाई द्वारा क्षति-पूर्ति की जाती है। जब पौधा कुछ बड़ा हो जाता है तो इसको आर्द्र एवं उष्ण जलवायु चाहिये।

मिट्टी और खाद—यह पौधा दोमट मिट्टी में भी पैदा होता है, परन्तु चिकनी मिट्टी इसके लिये अधिक लाभदायक है क्योंकि हल्की चिकनी मिट्टी (गहरी चिकनी मिट्टी भी) पूरी तरह से पानी को लम्बे समय तक इन पौधों की जड़ों में रोक सकती है। यह पौधा भूमि के उपजाऊपन को बहुत प्रभावित करता है, अतः रासायनिक खाद जैसे एमोनियम सल्फेट, नाइट्रेट आदि देने की आवश्यकता रहती है जिससे कि उसकी फसल की क्षति-पूर्ति पूर्ण हो सकती है।

मज़दूरी—सस्ते श्रम की गन्ने के लिये बहुत आवश्यकता है क्योंकि प्रत्येक गन्ने को अलग-अलग काट कर उसको गट्ठरों में बाँधा जाता है फिर वहाँ से मिलों तक भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा पहुँचाया जाता है। बोते समय भी इस पौधे को एक-एक करके निश्चित दूरी पर लगाना या रोपना पड़ता है। पश्चिमी द्वीप समूह में गोरे लोगों का श्रम काम में आता है। ब्राजील, दक्षिणी पूर्वी संयुक्त राष्ट्र (U. S. A.) और ब्रिटिश गायना में वहाँ के मूल निवासियों या हब्शियों का श्रम, जो कि पहले गुलाम थे, काम में लाया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र—गन्ने के उत्पादन की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि गन्ना अधिकतर उन प्रदेशों में होता है जिनका कि पूर्णतया औद्योगीकरण नहीं हो पाया है। इसके मुख्य उत्पादन क्षेत्र भारत, नैटाल, न्यूजीलैण्ड, अर्जेन्टाइना, क्यूबा, जावा, ब्राजील, चीन, फारमूसा, स्पेन आदि हैं।

भारत—यहाँ पर विश्व का ५०% गन्ना पैदा होता है। भारत का गन्ना दूसरे देशों की तुलना में पतला होता है, इस कारण रस कम निकलता है और बीज, खाद, आधुनिक उपकरणों के अभाव के कारण ही यहाँ प्रति एकड़ गन्ने

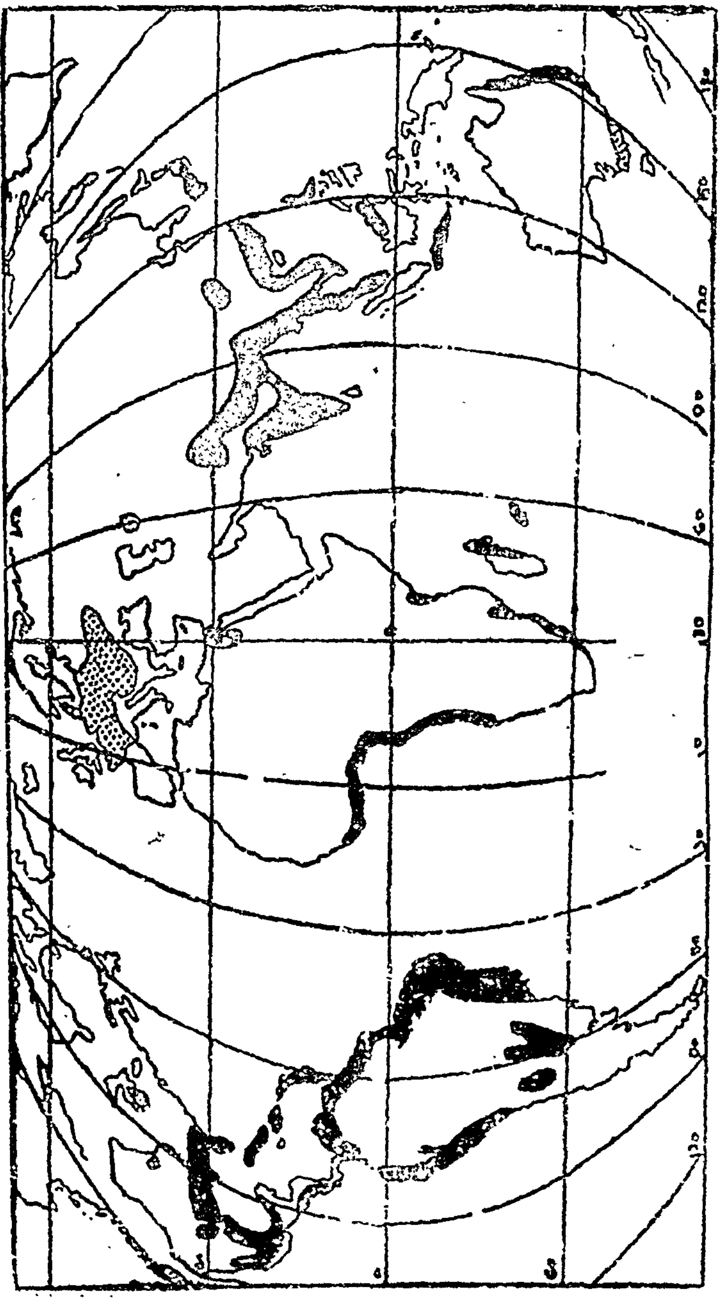

चित्र १५१ —संसार के चीनी उत्पन्न करने वाले भाग। काले प्रदेश गन्ना और बिंदु वाले प्रदेश चुकन्दर बताते हैं।

का उत्पादन दूसरे देशों की तुलना में बहुत कम है जैसा कि निम्नांकित आँकड़ों से पता चलता है[1] :—

प्रति एकड़ पीछे उत्पादन (टनों में)

हवाई	८०	फारमूसा	२८
जावा	५६	फिलीपाईन्स	२७
पीरू	४१	क्यूबा	१७
मिश्र	३०	भारत	१५
पोर्टोरीको	३०	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२०-३०
मारीशस	१९		

अत: भारत में प्रति एकड़ उत्पादन कुछ ही मेहनत से आसानी से बढ़ाया जा सकता है।

भारत में गन्ना गंगा की घाटी में होता है। इन प्रदेशों में भी उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा तीनों ही मिल कर ७०% कुल भारत के गन्ने का उत्पादन करते हैं। भारत के उत्तरी भाग में गन्ना अधिक पैदा किया जाता है। इसका मुख्य कारण उपजाऊ भूमि, सिंचाई की सुविधा, पाला नहीं पड़ना और घनी आबादी आदि स्थितियों का यहाँ पर पूर्णतया उपलब्ध होना है। बढ़िया गन्ना दक्षिणी भारत में ही होता है और गन्ने की पैदावार हैदराबाद, मद्रास, आन्ध्र, मैसूर, बम्बई आदि प्रान्तों में होती है। कोयम्बटूर का गन्ना भारत का सबसे उत्तम किस्म का गन्ना है और उसमें भी कोयम्बटूर नं० ११२, ११३, एवं १३० बहुत उत्तम किस्म के हैं। यहाँ पर भारत सरकार द्वारा शोध इन्स्टीट्यूट की स्थापना की गई है जो गन्ने का विभिन्न उपयोग कैसे होता है बताती है और बढ़िया किस्म के गन्नों की स्थिति पर भी प्रकाश डालती है।

क्यूबा—यह संयुक्त राष्ट्र के पूर्व में स्थित है। यह विश्व का ⅛ भाग गन्ना पैदा करता है। यहाँ पर गन्ना पैदा करने के खेत बड़े-बड़े हैं। विश्व में गन्ने एवं चुकन्दर से जितनी शक्कर निकाली जाती है उसका ⅛ भाग यहाँ पर पैदा होता है। गन्ने के लिये यहाँ पर जलवायु, भूमि, गोरे लोगों का सस्ता श्रम और प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल होने के कारण इस देश में कुल भूमि के एक बहुत बड़े भाग पर इसकी खेती होती है। देश की आर्थिक दृढ़ता इसी फसल पर निर्भर करती है क्योंकि क्यूबा अपने कुल निर्यात का ८०% निर्यात इसी फसल या उससे प्राप्त वस्तुओं का करता है। फिर संयुक्त राष्ट्र सामने आ गया है अतः विस्तृत बाजार है जहाँ पर कि गन्ने की वस्तुएँ (शक्कर आदि) भेजने में एक पौण्ड पर ⅛ सेन्ट या इससे भी कम लगते हैं। इसलिये यहाँ की शक्कर संयुक्त राष्ट्र के न्यूयार्क, फिलाडेलफिया आदि बन्दरगाहों से सस्ते भावों पर देश के

१. A. I. C. C—Economic Review, Jan. 5, 1957; p. 169.

आन्तरिक स्थलों तक पहुँचती है। इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात जो है वह यह है कि संयुक्त राष्ट्र के एकदम पास होने से इस देश को पूँजी तथा साहस वहाँ से प्राप्त हो जाता है, अतः यहाँ की मिलें बहुत ही आधुनिक ढंग से सुसज्जित हैं।

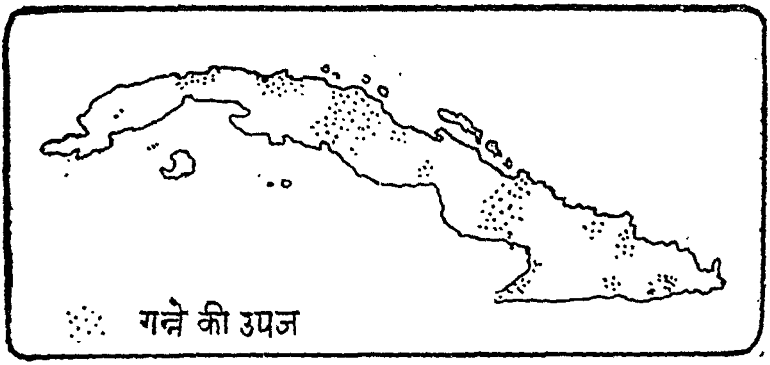

चित्र १५२—क्यूबा में गन्ने का उत्पादन

यहाँ के खेत बहुत बड़े हैं। कभी-कभी खेतों का क्षेत्रफल हजारों एकड़ तक होता है। कुछ खेत छोटे भी हैं। प्रत्येक बड़े खेत में मील, रेलवे लाइन एवं सड़कें होती हैं जिससे सारे गन्ने को कम खर्चे पर आसानी से ढोया जा सके। गन्ना यहाँ पर हेमन्त ऋतु में वर्षा के बाद बोया जाता है और कहीं-कहीं वसन्त में भी गन्ने की उत्पत्ति प्रारम्भ की जाती है। इसको पकने में एक साल के लगभग लग जाता है। प्रति वर्ष नया वीज नहीं बोया जाता बल्कि उसी पुराने बीज को काम में लाया जाता है। एक एकड़ भूमि से २०–२५ टन गन्ना प्राप्त होता है तथा जिससे कि २–३ टन तक शक्कर निकाली जाती है जब कि भारत में इतने ही क्षेत्र से १ टन निकाली जाती है। शक्कर की क्यूबा में १६० मिलें हैं। यहाँ का वार्षिक उत्पादन ६३ लाख टन है। यह उत्पादन भारत से बहुत अधिक है।

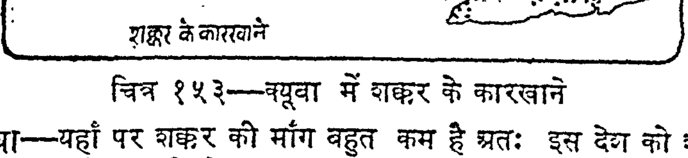

चित्र १५३—क्यूबा में शक्कर के कारखाने

जावा—यहाँ पर शक्कर की माँग बहुत कम है अतः इस देश को शक्कर के लिए विदेशी निर्यात पर निर्भर रहना पड़ता है। यही कारण है कि देश की कुल भूमि के $\frac{1}{3}$ भाग में गन्ना पैदा किया जाता है और उसमें से $\frac{4}{5}$ शक्कर का उत्पादन (कुल का) बाहर भेज दिया जाता है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन लगभग ६·६ लाख टन है। अब यहाँ चावल को ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। यहाँ की

सरकार कभी भी गन्ने की खेती को ⅓ भाग (कुल खेती योग्य भूमि का) से अधिक भाग में नहीं बढ़ने देती है। यहाँ गहरी खेती कम की जाती है। यहाँ खेत छोटे-छोटे होते हैं तथा प्रति वर्ष चावल, आलू, शकरकन्द आदि फसलों का क्रम चलता रहता है। शक्कर की मिलें गन्ना पैदा करने वाले प्रदेशों में ही स्थित हैं। यहाँ की शक्कर सस्ती होती है। जावा में गन्ने का अधिक उत्पादन होने का मुख्य कारण वहाँ ज्वालामुखी पर्वतों की उपजाऊ मिट्टी, आर्द्र तथा गरम जलवायु तथा गन्ने में अधिक रस की मात्रा, घनी जनसंख्या के कारण सस्ते मजदूर, खेती के नवीनतम साधनों का उपयोग आदि है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी गन्ना पैदा करने वाला देश है। यहाँ पर गन्ना मिसीसिपी के डेल्टा एवं घाटी की उपजाऊ कछार के मैदानों में पैदा किया जाता है। इन प्रदेशों में नीग्रो लोगों का सस्ता श्रम प्राप्त है। लुसियाना में प्रतिवर्ष पाला पड़ता है अतः गन्ने की वह किस्म जो कि ८ महीने में ही तैयार हो जाती है बोई जाती है तथा प्रतिवर्ष पाले के कारण नये बीज खेतों में डालने होते हैं। यहाँ का वार्षिक उत्पादन ५ लाख टन (१९५३) है परन्तु प्रति एकड़ उपज बहुत कम है जो कि हवाई एवं जावा से करीब-करीब आधी ही है। इसका मुख्य कारण शायद गन्नों में शक्कर जमा होने से पूर्व ही काट लिया जाना है। यही कारण है कि यहाँ की शक्कर मँहगी पड़ती है। इसीलिये संयुक्त राष्ट्र शक्कर का आयात क्यूबा, हवाई द्वीप आदि से करके अपनी माँग पूरी करता है।

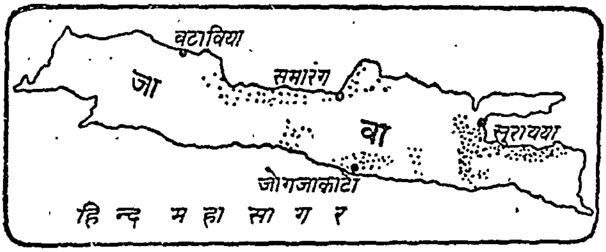

चित्र १५४—जावा में गन्ने के क्षेत्र

दक्षिणी अमेरिका में ब्रिटिश गायना में गन्ने की खेती की जाती है। यहाँ की धमरारा शक्कर (Dhamerara Sugar) प्रसिद्ध है। शक्कर तटीय प्रदेशों में पैदा की जाती है परन्तु यहाँ पर गोरे लोगों के लिये जलवायु अनुपयुक्त है, इस कारण भारतीय कुलियों के श्रम को काम में लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त कई छोटे-छोटे टापुओं में भी शक्कर पैदा करने के लिये गन्ने की खेती की जाती है जिनमें हवाई द्वीप का प्रमुख स्थान है। यहाँ पर खेती से उत्तम किस्म का गन्ना प्राप्त होता है। इसका कारण लावा मिट्टी और उत्तम खाद है। मिट्टी में लोहा खूब होता है। प्रति एकड़ उपज १२,००० पौण्ड है। यहाँ फसलें वैज्ञानिक ढंग से बोई जाती हैं और उनकी सिंचाई होती है। गहरी खेती होने से भी प्रति एकड़ उत्पादन खूब है। अन्य गन्ना उत्पादक देश जमेका, फिलीपाइन, फारमूसा, मोरीशस, पोर्टोरिको हैं। कुछ प्रदेशों के तटीय प्रदेशों—जिसमें क्वीन्सलैण्ड, उ० न्यू साउथवेल्स और नैटाल हैं—में भी गन्ना पैदा किया जाता है।

नीचे की तालिका में गन्ने की शक्कर का उत्पादन बताया गया है :—

गन्ने की शक्कर का उत्पादन (हजार टनों में)

देश	१९३५-३९ (औसत)	१९५४
क्यूबा	३,१८३	५,०००
कैरेबियन प्रदेश (कैरेबियन द्वीप, मैक्सिको, म० अमरीका, कोलम्बिया, वेनेजुएला एवं गायना)	२,८०४	४,९४०
द० अमरीका	१,८१७	४,०६०
सं० रा० अमेरिका	४७४	५५२
हवाई	९८०	१,०९०
एशिया	५,०८५	४,६५५
आस्ट्रेलिया	८९४	१,४२५
अफ्रीका	१,२९३	२,१४०
विश्व योग	१६,७५३	२३,९९५

व्यापार—शक्कर एक ऐसी महत्वपूर्ण वस्तु है जो खाद्योपयोगी है एवं उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों से दूसरे प्रदेशों के लिये निर्यात की जाती है। सर्वाधिक महत्व के आयात करने वाले देशों में संयुक्त राष्ट्र और ग्रेट ब्रिटेन का प्रमुख स्थान है। संयुक्त राष्ट्र में शक्कर क्यूबा, फिलीपाइन्स, पोर्टोरिको तथा हवाई द्वीप से प्राप्त होती है जब कि ब्रिटेन अपनी शक्कर ब्रिटिश गायना, ब्रिटिश पश्चिमी द्वीप, क्यूबा, मारीशस, फीजी, पोर्टोरीको, तथा डोमीनिकन प्रजातन्त्र से प्राप्त करता है। भारत अब बहुत कम शक्कर जावा से आयात करता है क्योंकि इस दृष्टि से वह प्रायः स्वावलम्बी हो गया है।

व्यापार के लिए गन्ने की शक्कर मुख्यतः क्यूबा, जावा, हवाई, फिलीपाइन्स, पोर्टोरीको से प्राप्त होती है जहाँ सभी जगह गन्ने का उत्पादन समुद्रतटीय मैदानों में होता है तथा सस्ते श्रम का प्राचुर्य है। अगले पृष्ठ की तालिका में गन्ने की शक्कर का व्यापार बताया गया है।

उपयोग—गन्ने के पौधे का प्रत्येक भाग काम में आता है। पत्तियाँ पशुओं को खिलाई जाती हैं। पौधे से रस निकाल कर गुड़ तथा शक्कर बनाई जाती है। छिलकों को शक्ति (Fuel) के रूप में काम में लेते हैं। रस निकालने के बाद में छिलकों से अलकोहल निकाला जाता है। अन्त में बचे-खुचे पदार्थों से प्लास्टिक बनाया जाता है। एसेटिक एसिड और सीमेण्ट के साथ मिलाकर पक्की सड़कें

शक्कर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (हजार टनों में)

मुख्य निर्यातक	१९३५-३९ (औसत)	१९५३
क्यूबा	२,८७१	६,०८१
कैरेबीयन देश [1]	२,१३३	२,६०६
हवाई	९६३	१,०८६
फारमूसा	१,०२४	१,०२०
फिलीपाइन्स	८९२	८६६
आस्ट्रेलिया	४७१	८१६
मोरीशियस और रीयुनियन	३९४	६९६
पीरू	३२७	४५४
पूर्वी यूरोप और रूस	१,०७६	२६६
कुल उपरोक्त देशों का जोड़	११,१८२	१४,२६४

मुख्य आयातक	१९३५-३९ औसत	१९५३
ब्रिटेन	२,०५८	२,६२१
दूसरे प० यूरोपीय देश	१,४८५	१,३३५
सं० रा० अमेरिका	४,७७९	५,९६२
कनाडा	४८३	५७९
जापान	८७२	१,१६८
चीन	३३४	—(२)
चिली	१४१	२४७
कुल उपरोक्त देशों का जोड़	१०,१५२	११,९१२

(१) इसमें केरेबीयन द्वीप समूह, मेक्सिको, मध्य अमेरिका, कोलम्बिया, वेनेज्युएला और गायना हैं।

(२) आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

बनाने के काम में आता है। इससे मोटे कागज व गत्ते भी बनाये जाते हैं। जलने के बाद राख बचती है उसको खाद के रूप में काम में लाया जाता है।

शक्कर का उपभोग—निम्न सारिणी में विश्व के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति पोछे शक्कर का वार्षिक उपभोग बताया गया है—[1]

प्रति व्यक्ति (वार्षिक) शक्कर का उपभोग (१९५१)

देश	उपभोग (पौण्ड)	देश	उपभोग (पौण्ड)
आस्ट्रेलिया	१२६	स्विटजरलैण्ड	९३
हवाई	१२१	इटली	२०
डेनमार्क	१००	मिश्र	३१
संयुक्त राष्ट्र	१०३	रूस	१८
क्यूबा	१२९	चीन	६
ग्रेट ब्रिटेन	९०	भारत	२६ गुड़ सहित
कनाडा	१००		
जर्मनी	७१	द० अफ्रीका संघ	१०४
		फ्रांस	६०
		ब्राजील	६४

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि प्रत्येक देश की असमान आर्थिक दशा, शक्कर की स्थानीय प्राप्ति आदि के कारण शक्कर का उपभोग विभिन्न देशों में अलग-अलग है। पश्चिमी यूरोप, क्यूबा, हवाई द्वीप, संयुक्त राष्ट्र आदि में उपभोग अधिक है जब कि रूस और इटली में कम है क्योंकि वहाँ गन्ना कम पैदा होता है और बाहर से नहीं मँगा सकते हैं। भारत, चीन और मिश्र अपनी गरीबी के कारण ज्यादा शक्कर का उपभोग नहीं कर सकते हैं।

(ब) चुकन्दर (Sugar beet)

१९ वीं सदी में जब शक्कर की समस्या यूरोपीय देशों के सामने आई तो उन्होंने इसी चुकन्दर का सहारा लिया क्योंकि इन प्रदेशों में गन्ना पैदा नहीं हो सकता है। सर्व प्रथम श्री—चार्ड ने इस पौधे की जड़ों से शक्कर निकालने का ढंग बताया और तभी से ही इस उद्योग में आशातीत उन्नति मिली है। आज चुकन्दर द्वारा जो शक्कर प्राप्त होती है उसका स्थान कुल उत्पादन की दृष्टि से १/३० है।

जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियाँ—इसका पौधा शीतोष्ण कटिबन्ध में पैदा हो सकता है। इस पौधे की उत्पत्ति के लिये आवश्यक है कि सर्दियाँ शीतल हों और

1. A. I. C. C.—Economic Review, Jan, 5, 1957, p. 16.

गर्मियों में अत्यधिक गर्मी नहीं पड़े। लम्बे दिवस की सूर्य की रोशनी ज्यादा आवश्यक है। कम से कम ५ महीने तक मौसम गरम होना चाहिए। साधारण वर्षा लाभदायक रहती है और लम्बे दिन होने से जड़ों में शक्कर की मात्रा अधिक जमा हो सकती है। यदि तीन महीने तक तापक्रम ६०° से ७०° फा० तक रह जाय तो इस पौधे को पूरी-पूरी उष्णता प्राप्त हो जाती है। वायुमण्डल में आर्द्रता होनी चाहिये परन्तु अत्यधिक आर्द्रता से जड़ों को नुकसान होता है जिसके कारण उपज कम हो जाती है।

यह पौधा साधारणतया उपजाऊ गहरी दोमट मिट्टी में अच्छी प्रकार से होता है। इस पौधे को खाद की भी आवश्यकता रहती है क्योंकि जहाँ भी यह बोया जाता है वहाँ से मिट्टी के उपजाऊपन को नष्ट कर देता है।

इसके उत्पादन के लिए सस्ते श्रम का होना भी परमावश्यक है क्योंकि प्रारम्भ में जड़ों को निकालकर शक्कर बनाने तक बहुत ही मेहनत करनी पड़ती है। इस कारण घनी जन-संख्या वाले प्रदेशों में इसकी पैदावार आसानी से हो सकती है।

चुकन्दर को वसन्त के आगमन पर बोया जाता है और सर्दी के प्रारम्भ में काटा जाता है जब कि पौधों की जड़ों में सर्वाधिक शक्कर की मात्रा होती है। काटने से पूर्व जड़ों को ग्रीष्म एवं दूसरी ऋतुओं में पूर्णतया ढक देते हैं। कटाई के महीने सितम्बर-अक्तूबर हैं। चुकन्दर के बोये गये खेत में एक एकड़ जड़ों में से ९ से ११ टन तक निकलती हैं और उसमें भी २० से ३०% तक शक्कर, दूसरा भाग पानी और दूसरे बेकार के पदार्थ निकलते हैं। यही कारण है कि चुकन्दर से शक्कर निकालने के कारखाने अधितर शक्कर बनाने के लिये उन स्थानों पर स्थित हैं जहाँ से कि चुकन्दर-क्षेत्र बहुत नजदीक पाये जाते हैं।

इसकी जड़ें सफेद होती हैं और शक्कर निकालने से पूर्व इनको घोटा जाता है। बाद में इनकी लम्बी चीरें की जाती हैं तथा उनको बड़े-बड़े बर्तनों में रक्खा जाता है जहाँ से कि यह रस और दूसरे पदार्थों में परिणत हो जाता है।

उत्पादन क्षेत्र—चुकन्दर के मुख्य उत्पादक देश यूरोप के बड़े मैदान में हैं जहाँ फ्रान्स के उत्तरी-पश्चिमी भागों से लगाकर रूसी यूक्रेन तक खूब चुकन्दर पैदा की जाती है। चुकन्दर की शक्कर उत्पादन करने में अब रूस का स्थान प्रथम है जहाँ का १९५४ का उत्पादन २७०० हजार टन था। यहाँ पर विश्व की चुकन्दर की शक्कर उत्पादन का १/४ भाग उत्पादन किया जाता है। यहाँ ट्रांस काकेशिया, पश्चिमी साइबेरिया, दक्षिणी एवं मध्य यूरोपीय रूस चुकन्दर पैदा करने वाले प्रदेश हैं। यहाँ २१ लाख एकड़ भूमि में खेती की जाती है। इसकी खेती अब कीरगीज प्रदेश एवं पूर्वीय प्रदेश (Far East) में भी की जाने लगी है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और जर्मनी का उत्पादन लगभग समान है। जर्मनी में पश्चिमी जर्मनी में मध्य एल्ब की घाटी में जो भी चुकन्दर से शक्कर पैदा की

जाती है वह आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से की जाती है और उसकी उन्नति के लिये यहाँ कई महत्वपूर्ण खोजें भी हो पाई हैं। इसी कारण प्रति टन चुकन्दर से ज्यादा शक्कर निकाली जाती है। जहाँ १८३६ में प्रति १८ पौण्ड से १ पौण्ड शक्कर निकलती थी वहाँ १८८२ में प्रति १० पौण्ड से ही १ पौण्ड शक्कर और १६२४ में ७ तथा अब ५ पौंड चुकन्दर से १ पौंड शक्कर प्राप्त की जाती है। जो कुछ रस निकलने के बाद बचता है उसको सहायक-उत्पति (By-product) के रूप में काम में लाया जाता है[1]।

फ्रांस भी शक्कर पैदा करने वाले देशों में महत्वपूर्ण है। यहाँ पर शक्कर उत्तरी भाग में जहाँ कि चुकन्दर पैदा किया जाता है निकाली जाती है क्योंकि इन भागों में औद्योगिक क्षेत्र से जो कि पास में ही हैं मजदूर आसानी से प्राप्त हो जाते हैं।

नीचे की तालिका में चुकन्दर की शक्कर का उत्पादन बताया गया है :—

चुकन्दर की शक्कर का उत्पादन
(हजार टनों में)

देश	१६३५-३६ औसत	१६५४
प० यूरोप	४,३५२	६,७७०
पूर्वी यूरोप	२,६२५	३,०२०
रूस	२,७६१	२,७००
योग	१०,०३८	१२,४६०
योग-विश्व	११७७२	१४१६०

गन्ने एवं चुकदर में भेद—गन्ने एवं चुकन्दर के मुख्य-मुख्य भेद तो उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट हो जाते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि गन्ने एवं चुकन्दर से शक्कर निकालने में क्या अन्तर है। इन सब के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे अन्तर हैं जिनको यहाँ बताना आवश्यक है। सर्व प्रथम गन्ने का उत्पादन बहुत ही पुराने समय से हो रहा है परन्तु शक्कर का उद्योग १६ वीं शदी में ही आरम्भ हुआ है। चुकन्दर गन्ने की अपेक्षा ज्यादा क्षेत्रफल में बोये जाते हैं किन्तु इतना होते हुए भी गन्ने की उपज चुकन्दर की तुलना में कई गुना अधिक है। कई एक आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों से चुकन्दर की शक्कर का उत्पादन आधुनिक समय में हो रहा है। शीतोष्ण कटिबन्ध वाले यह नहीं चाहते कि वह शक्कर के लिये उष्ण कटिबन्धीय देशों पर निर्भर रहें अन्यथा उनके लिये

खतरे की बात होगी। इसी कारण इस उद्योग को संरक्षण, सहायता एवं ऋण आदि देकर इसकी खेती को बढ़ाया जा रहा है।

(स) मैपल वृक्ष—जो अधिकतर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पूर्वी और उत्तरी भाग में बहुतायत से पैदा होते हैं—भी शक्कर बनाने के लिए काम में लिये जाते हैं। इन वृक्षों से शक्कर के लिए रस २०-२५ वर्षों की उम्र से लगाकर ७० वर्षों तक मिलता है। किन्तु शक्कर का यह उत्पादन बहुत ही कम होता है।

(२) कपास (Cotton)

कपास एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रेशे वाला पौधा है जो विश्व के गर्म व ठण्डे देशों में वस्त्र बनाने के उपयोग में लाया जाता है। संभवतया ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसकी विश्वव्यापी माँग कपास के तुल्य हो। निम्न तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा कि सभी रेशेदार पौधों में कपास का स्थान महत्वपूर्ण है क्योंकि (क) यह सभी रेशेदार पौधों से सस्ता है, (ख) इसका उत्पादन विभिन्न जलवायु में संभव है, और (ग) वस्त्र बनाने के लिए इसका पौधा अन्य पौधों से उत्तम है।

चित्र १५५—कपास का पौधा

रेशेदार पौधों से प्राप्ति का विवरण

	मात्रा	युद्ध पूर्व	१९५०	१९५३	भारत
कपास	१० ला० गाँठें (४७८ पौंड)	३१.७	२८.२	३७.१	३.९
ऊन	१० लाख पौंड	२,०७०	२,२८३	२५.२०	——
जूट	००० टन	१,५८५	१,७२०	१,२१०	५५८
सीसल, आदि	००० टन	५२७	५२५	५८०	——

कपास उष्ण और समशीतोष्ण कटिबन्धों में पैदा होने वाला सबसे पुराना पौधा है और संभवतः इसके व्यापारिक उपयोग आदि की दृष्टि से इसका महत्व

ईसा के ५०० वर्ष पूर्व भी था जैसा कि हेरोडोटस आदि के वर्णन से ज्ञात होता है। उसका कथन है कि, "भारत में कुछ जङ्गली पेड़ों के स्थान पर श्वेत ऊन प्राप्त होती है जो सुन्दरता में भेड़ों से प्राप्त होने वाली ऊन से भी अच्छी होती है। भारतवासी इसी के वस्त्र पहनते है।" भारत में कपास के उत्पादन का उदाहरण ईसा से ८०० वर्ष पूर्व तक पाया जाता है। यह संभवतः भारत की उपज हैं जहाँ पूर्व ऐतिहासिक काल से ही इसकी खेती की जा रही है। यहीं से ३२७ ई० पू० के लगभग यूनान में इस पौधे का प्रचार हुआ। भारत से कपास का पौधा शनैः-शनैः चीन और संसार के अन्य देशों में भी फैला। ईसा से ५०० वर्ष पूर्व कपास मिश्र में भारत से ही ले जाया गया।

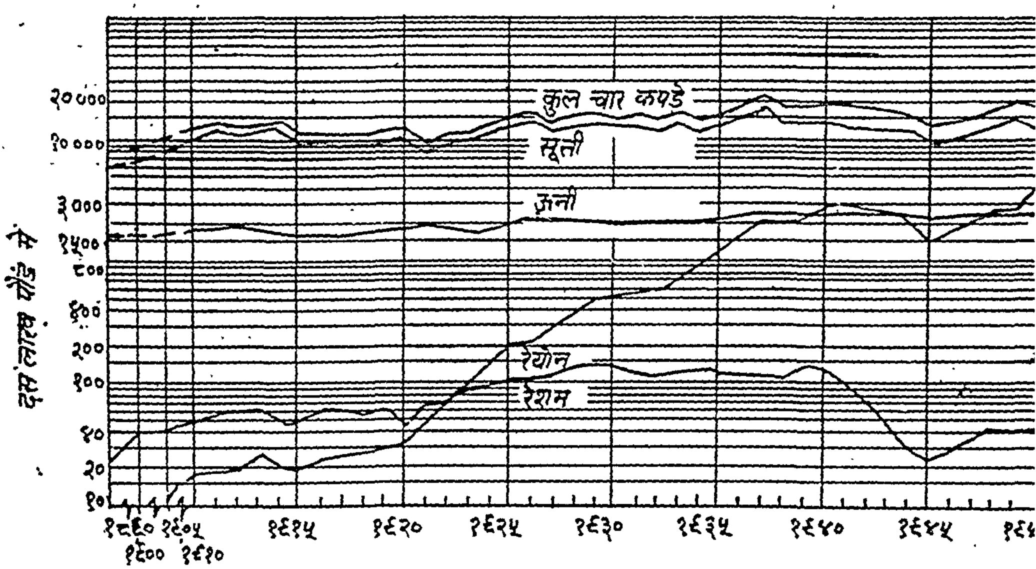

चित्र १५६—विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का उत्पादन

१९ वीं शताब्दी के पूर्व विश्व में बनने वाले कपड़ों का भाग इस प्रकार था—सूती ४%, ऊनी ७४% एवं सन के कपड़े १८% जब कि बीसवीं शताब्दी में यही भाग सूती ७४%; ऊनी २०% और सन का ६% हो गया।[1]

जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताएँ—कपास एक प्रकार का रेशा है जो कि समूह रूप में पौधे पर पैदा होता है। प्राकृतिक तौर पर यह १५-२० फीट तक बढ़ सकता है। परन्तु हर वर्ष उत्पादन होने के कारण यह स्थिति नहीं रहती। यह ज्यादा से ज्यादा २ या ५ फीट बढ़ता है। इसके फल का रंग पीला होता है।

---

१. W. S. Woytinsky and E. S. Woytinsky : World Population and Production—Trends and Outlook, 1953, p. 600.

वैसे तो कपास के लिए सब ही प्रकार की जलवायु अनुकूल पड़ती है, किन्तु उसके लिए आदर्श जलवायु वह है जहाँ उच्च तापक्रम पाया जाता है। उत्पन्न होने के समय तापक्रम ७०° फा० से ८५° फा० रहना चाहिए और बाद में उच्च तापक्रम के साथ-साथ आर्द्रता बढ़ती जानी चाहिए। इस प्रकार का मिश्रण कपास के लिए उपयोगी होता है। इसे पाले का डर रहता है और यही कारण है कि अन्य अनाजों की तरह यह जल्दी उत्पन्न नहीं होता। अतः इसे २०० दिन की पाला-रहित ऋतु चाहिए क्योंकि इससे कम समय में पौधे का पूर्ण विकास नहीं होता और न ही अच्छे बड़े-बड़े फूल आते हैं। सिर्फ उत्पन्न होने की ऋतु लम्बी ही नहीं होनी चाहिए वरन् गर्म और नम भी होनी चाहिये। कलियाँ खिलने के समय ऋतु सूखी होनी चाहिए और आकाश स्वच्छ तथा बादलों से रहित होना चाहिए जिससे रेशे में चमक आ सके। अच्छी प्रकार की कपास तभी तक अच्छी पैदा हो सकती है जब कलियाँ पूरी तरह पक जायँ। कलियों के खिलने के बाद वर्षा का होना हानिकारक होता है। समुद्र की वायु कपास के लिए लाभदायक होती है। अतः सभी बढ़िया प्रकार का कपास समुद्री भागों से दूर नहीं बोया जाता।

इसके लिए २०″ से ४०″ तक की वर्षा होनी चाहिए। ४०″ से अधिक वर्षा वाले भागों में यह पैदा नहीं की जा सकती। जहाँ वर्षा २०″ से भी कम होती है वहाँ फसल की सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। कई स्थानों—जैसे पाकिस्तान, मिश्र, सूडान, भारत और अमेरिका—में कपास की सिंचाई की जाती है। टैक्साज में कपास का उत्पादन २५″ से कम वर्षा वाले भागों में और द० मिसीसिपी के मैदानों में ६०″ से भी अधिक वर्षा वाले भागों में होता है। मध्य एशिया के मरुस्थलीय भाग, भूमध्य सागरीय प्रदेशों के सूखे भाग और पीरू में भी कपास सिंचाई के सहारे ही पैदा किया जाता है।

कपास भिन्न-भिन्न मिट्टियों पर पैदा किया जा सकता है परन्तु उसमें नियमित रूप से खाद डाला जाना चाहिये। हल्की सुन्दर सिंचाई वाली नमकीन भूमि इसके लिए (जिसमें आर्द्रता रह सके) आदर्श भूमि है—जैसे लावा, चूने के पत्थर वाली भूमि और कपास की काली मिट्टी। भारत में इस प्रकार की मटियार चूने वाली काली भूमि मध्य-प्रदेश के खानदेश, बरार और बम्बई राज्य के भड़ौंच, सूरत, गुजरात व दक्षिणी सौराष्ट्र में मिलती है। कपास का पौधा भूमि से तुलनात्मक रूप में बहुत ही अधिक उपजाऊ तत्त्व पोटाश और फास्फोरस एसिड ले लेता है—अतः अमेरिका में कपास के बीज के अलावा मछली की हड्डी, सल्फेट आदि का खाद भी उपयोग में लाया जाता है।

कपास के डोडों से कपास चुनने के लिये सस्ते मजदूरों की आवश्यकता होती है। ज्यों-ही पौधे पर फूल निकलें और वे बड़े हों त्यों-ही उन्हें चुन लेना आवश्यक हो जाता है अन्यथा देरी होने पर फूल खराब होकर गिरने

लगते हैं या गिर पड़ते हैं और कपास की किस्म खराब हो जाती है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में कपास के डोंडे चुनने का काम नीग्रो मजदूरों द्वारा किया जाता है।

कपास के पौधों को बाल-वीविल (Boll-Weevil) नामक कीड़ा भी नष्ट कर देता है अतः आजकल दवाई छिड़ककर अथवा खेत में विभिन्न प्रकार की फसलें बोकर इसकी कीड़ों से रक्षा की जाती है। यह कीड़ा सबसे पहले १८९२ में टैक्सास रियासत में मेक्सिको से आया किन्तु इसने १९१४ से ही फसल को अधिक नष्ट करना आरम्भ किया। यह कीड़ा कपास के डोडे पर अपने अंडे देता है। जब अंडों से कीड़े फूट पड़ते हैं तो वे डोडे को नष्ट कर देते हैं जिससे डोडा सूख कर गिर पड़ता है अथवा सड़ जाता है। यह कीड़ा प्रायः कपास के डंठलों अथवा सूखी घास में अधिक पनपता है। प्रायः ६% कीड़े शीतकाल में जीवित रह जाते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दो कीड़े मिलकर सम्पूर्ण कपास वाले मौसम में लगभग १२० लाख बच्चों को जन्म देते हैं। क्योंकि ये कीड़े ज्यामितिक

चित्र १५७—सूडान में कपास की चुनाई

अनुपात में (१,१०,१००,१०००० आदि) बढ़ते हैं और प्रति मौसम में इनकी नई पीढ़ियाँ जन्म ले लेती हैं। देर से पकने वाली कपास समुद्री कपास पर कीड़े का अधिक प्रभाव पड़ता है। अमेरिका के कृषक खेती की घास आदि को जलाकर अथवा गहरी जुताई कर अब इस हानि से बचने के लिए वसन्त ऋतु में शीघ्र पकनेवाली कपास पैदा करने लगे हैं। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में दो शताब्दियों में ही यह कीड़ा कपास की पेटी में फैल गया है

जिससे दक्षिणी भागों में कई करोड़ डालर की हानि हो गई जिसके फल-स्वरूप न केवल कपास के उत्पादन में ही कमी हो गई बल्कि किसानों को भी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। कई खेत वीरान हो गये, भण्डार खाली हो गये और मजदूर देश छोड़ कर अन्यन्त्र चले गये। सारे कृषि और आर्थिक जीवन में संकट हो गया। किसानों ने कपास की जगह अनाज उगाने तथा पशुपालन करने के धन्धे को अपनाया।

कपास की किस्में (Kinds of Cotton)

कपास व्यापारिक व अन्य दृष्टियों से कई प्रकार की होती है। इसकी विभिन्न किस्में एक दूसरे से रेशे की लम्बाई, शक्ति, रंग और बनावट में भिन्न होती हैं। कपास की किस्म रेशे की लम्बाई से जानी जाती है जो $\frac{1}{2}$" से २$\frac{1}{4}$"तक लम्बी होती है। कपास को उसकी किस्म के अनुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) छोटे रेशे वाली कपास (Short Staple Cotton)—यह कपास अधिक वर्षा वाले भागों में पैदा होती है। इसका रेशा $\frac{7}{8}$" से भी कम लम्बा होता है। इसे भारतीय कपास (Indian Cotton) भी कहते हैं। चीन, ब्राजील, भारत और एशिया के अन्य भागों की कपास इसी श्रेणी की होती है। यह निम्न प्रकार की कपास होती है। इसका रेशा सफेद मजबूत और साधारणतया महीन होता है।

ऊपरी भागों में पैदा होने वाली छोटे रेशे वाली कपास (Upland Cotton) अमेरिका, ब्राजील, रूस, अर्जेन्टाइना, चीन और अफ्रीका में पैदा होती है। यह सफेद रेशे की होती है। जिसकी लम्बाई $\frac{7}{8}$" से १$\frac{1}{2}$" तक होती है। इसे अमरीकी कपास (American Cotton) भी कहते हैं।

(२) मध्यम रेशे वाली कपास (Medium Staple Cotton)—यह वह कपास होती है जिसके रेशे की लम्बाई १$\frac{1}{8}$" से १$\frac{3}{4}$" तक होती है। मिश्र, पीरू, उत्तरी ब्राजील और पूर्वी अफ्रीका के देशों—युगेण्डा, टैंगेनिका—तथा सं० राष्ट्र में कैलीफोर्निया, ऐरिजोना और मैक्सिको आदि का कपास इस श्रेणी में शामिल किया जा सकता है। इसके रेशों में रेशम के समान चमक होती है। इसे मिश्री कपास (Egyptian Cotton) भी कहते हैं। इसका उपयोग मुलायम और महीन कपड़े बनाने में होता है।

(३) लम्बे रेशे वाली कपास (Long Staple Cotton)—यह सर्वोत्तम गुण वाली कपास होती है। इसके रेशे की लम्बाई १$\frac{3}{8}$" से २$\frac{1}{4}$" तक होती है और इसे 'समुद्र द्वीपीय कपास' (Sea Island Cotton) के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि सर्वप्रथम यह फ्लोरिडा के किनारे वाले टापुओं (बारबाडोस) में उत्पन्न किया गया। अब इस प्रकार का कपास उत्तरी अमेरिका—विशेषत: फ्लोरिडा और जार्जिया व कैरोलिना—में उत्पन्न किया जाता है। मिश्र के कुछ भागों में (जिनोविच और सैकलेराइड किस्म) तथा आस्ट्रेलिया

और फिजी द्वीपों में भी यह पैदा की जाती है। यह कपास अपनी उत्तमता, चमक, मजबूती और महीन रेशे के लिए प्रसिद्ध है। यह उत्तम वस्त्र बनाने के उपयुक्त होती है।

(४) पीरू की कपास (Peruvian Cotton)—इस प्रकार की कपास पीरू में जंगली अवस्था में ही एक प्रकार के पेड़ों से प्राप्त की जाती है। इसका रेशा ऊन के समान मजबूत, खुरदरा और लगभग १$\frac{१}{४}$" लम्बा होता है। इसे ऊन के साथ मिला कर कपड़ा बनाने में उपयोग किया जाता है।

किस्मों के अनुसार कपास का उत्पादन

(००० गाँठों में—४७८ पौण्ड)

	१९५४–५५
१$\frac{१}{२}$" और अधिक—	
मिश्र	५३१
पीरू	७०
सूडान	३४०
सं० रा० अमेरिका	१५
अन्य	३६
योग	९९२
१$\frac{१}{८}$" से १$\frac{१}{२}$" तक—	
ब्राजील	३२०
मिश्र	१,०७४
पीरू	३८०
सूडान	७०
यूगंडा	२४५
सं० रा० अमेरिका	४६०
अन्य	१५५
योग	२,७०४
३/४" से १$\frac{१}{८}$" तक—	
सं० रा० अमेरिका	१३,१२५
मैक्सिको	१,७५०
भारत	३,३५०
पाकिस्तान	१,०६५
ब्राजील	१,१८०
टर्की	५९५
अर्जेण्टाइना	५२३
अन्य	२,३९६
योग	२३,९८४
$\frac{३}{४}$" से कम—	१,०००
कुल योग	२८,६८०

कपास का उत्पादन कपास की भिन्न-भिन्न विशेषताओं पर निर्भर करता है। साथ ही चुनने की ऋतु और पाले आदि न गिरने पर भी निर्भर करता है। मिश्री कपास के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह अमेरिका के कपास से भी प्रति एकड़ अधिक उत्पन्न होती है। उसका कारण सूखी जलवायु, पाले आदि से स्वतन्त्रता व रोगों से मुक्ति होना है। निम्नांकित तालिका भिन्न-भिन्न देशों में प्रति एकड़ कपास के उत्पादन को प्रकट करती है:—

देश	प्रति एकड़ पैदावार (पौंडों में)
मिश्र	५०० पौंड
यू० एस० एस० आर०	३२२ ,,
चीन	२२५ ,,
सं० रा० अमेरिका	२७० ,,
भारत	६४ ,,
पीरू	५०८ ,,
सूडान	३०० ,,
अर्जेन्टाइना	१५१ ,,
यूगैंडा	८४ ,,
ब्राजील	१५४ ,,
पाकिस्तान	१५० ,,

अधिकतर विश्व की कपास ३०° दक्षिणी और ४०° उत्तरी अक्षांश से आती है। कपास के प्रमुख उत्पादक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, भारत, मिश्र, चीन, रूस और ब्राजील हैं।

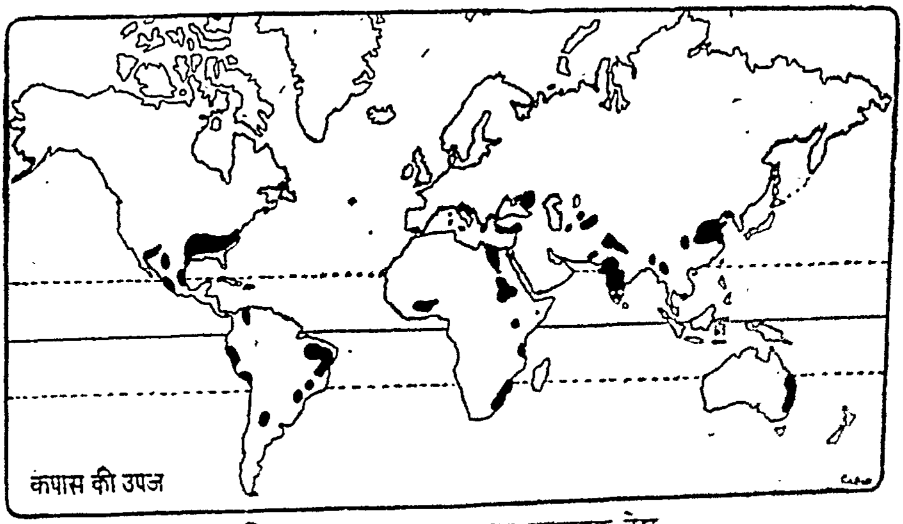

चित्र १५८—मुख्य कपास उत्पादक देश

कपास का उत्पादन
(१९५२-५३)

देश	क्षेत्र (१० लाख एकड़) १९५२-५३	उत्पादन (हजार गाँठें) १९५२-५३
अमेरिका	५१२१	२५,१६६
मेक्सिको	१,९३८	१,२५०
पाकिस्तान	३,४३०	१,५००
ब्राजील	४,५००	१,६००
अर्जेन्टाइना	१,३१५	५००
तुर्की	१,६८९	७००
सीरिया	४५९	२०५
बेल्जियन कांगो	९०२	२२५
मिश्र	२,०४२	२,०५६
सूडान	६१५	३८५
पीरू	४९४	४०३
युगांडा	१,४६८	२६५
भारत	१५,६७८	२,९७५
अन्य	५,४५६	१,५६२
योग	६५,८७७	२८,८३२
चीन	९,३५०	२,८५०
रूस	६,८००	४,०००
पूर्वी यूरोप	६२०	१३०
संसार का योग	८२,६५७	३५,८१२

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में कपास उत्पादन

अमेरिका कपास पैदा करने वाले देशों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अमेरिका में उत्तरी कपास-पेटी का तापक्रम ७७° फा० और दक्षिणी भाग का तापक्रम ८०° फा० से ८५° फा० तक रहता है। उस भाग में बहुत कम कपास पैदा किया जाता है जहाँ २०० दिन पाले रहित नहीं होते। दक्षिणी भाग में यह ऋतु लगभग २६० दिन तक रहती है। सारी पेटी में वर्षा २३" से ६०" तक होती है जिसमें ग्रीष्म में अधिक और शेष भागों में कम।

(२) दूसरा कारण यह है कि वालवीविल कीड़ा जो कपास की फसल को नष्ट कर देता है यहाँ काफी फैल चुका है। यहाँ पर इस कीड़े का फैलना सन् १८९२ ई० में मैक्सिको से प्रारंभ हुआ। यद्यपि इसको नष्ट करने के लिए अनेक उपाय किये गये हैं तो भी यह कीड़ा काफी मिलता है। इसको मारने के लिए केलशियम आरजिनेट हवाई जहाजों द्वारा कपास क्षेत्रों में छोड़ा जाता है, परन्तु इस साधन के प्रयोग में खर्च अधिक होता है। इस भाग की जलवायु जितनी कपास के लिए अनुकूल है उतनी ही कीड़े के लिए। इसलिए कपास की खेती अब धीरे-धीरे पश्चिम की तरफ बढ़ रही है। वहाँ पर सिंचाई का साधन बढ़ाया जा रहा है क्योंकि उस भाग की जलवायु कीड़े की वृद्धि के लिए अच्छी नहीं है।

(३) तीसरा कारण यह है कि यहाँ पर कपास की खेती नीग्रो लोग करते हैं परन्तु अब वह यह सोचने लगे हैं कि उनकी मेहनत का फल कला-कौशल वाले क्षेत्रों में अधिक मिल सकता है इसलिए अब वे खेती की ओर कम ध्यान देते हैं और कला-कौशल वाले क्षेत्रों में काम करने चले जाते हैं। अतः कपास के क्षेत्रों में मजदूरों की कमी होने लगी है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुए भी अब भी संयुक्त-राष्ट्र में संसार की सम्पूर्ण उपज की ४० प्रतिशत कपास यहाँ उत्पन्न की जाती है।

पहले की अपेक्षा संयुक्त-राष्ट्र से अब कपास कम मात्रा में विदेशों को निर्यात की जाती है। प्रथम तो यहाँ की उपज में कमी हो गई है दूसरे यहाँ सूती कपड़े के कारखाने अब अधिक खुल गये हैं इसलिए अधिकतर कपास खप जाती है। जो कुछ कपास निर्यात होती है वह न्यू आर्लियन्स, गालवेस्टन तथा सवाना के बन्दरगाहों से भेजी जाती है।

नीचे की तालिका में संयुक्त राष्ट्र में कपास का उत्पादन बताया गया है :—

औसत वर्ष	१३ दक्षिणी पूर्वी राज्य[1]		३ दक्षिणी पश्चिमी राज्य[2]	
१९२५-२९	४२१ लाख एकड़	१४९ लाख गाँठें	५ लाख एकड़	४ लाख गाँठें
१९४८-५२	२२३ लाख एकड़	१२० लाख गाँठें	१८ लाख एकड़	२५ लाख गाँठें

१. ये १३ राज्य ये हैं—फ्लोरिडा, अरकेन्सास, मिसिसिपी, लूसियाना, मिसौरी, उत्तरी कैरोलिना, ओक्लेहामा, दक्षिणी कैरोलिना, टैनेसी, टैक्सास, विरजिनिया।

२. ये ३ राज्य ये हैं—एरीजोना, न्यू मैक्सिको, कैलीफोर्निया।

भारत

भारत में कपास का क्षेत्रफल विश्व का २०% है किन्तु उत्पादन केवल ६% है। संसार में कपास पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। यहाँ मटियार चूने वाली काले रंग की मिट्टी खानदेश, बरार, भड़ौंच, सूरत, गुजरात और दक्षिणी सौराष्ट्र में मिलती है जिसमें पानी अधिक देर तक ठहर सकता है। सस्ते मजदूरों की अधिकता है तथा उत्तरी भारत में ऐसी किस्म बोई जाती है जो दिसम्बर के अन्त तक चुन ली जाती हैं जिससे पाले से हानि न हो सके, किन्तु दक्षिणी भारत में पाले का डर नहीं रहता अतः कपास की चुनाई मार्च-अप्रैल तक होती रहती है।

भारत में दो प्रकार की कपास उत्पन्न की जाती है। (i) देशी या छोटे रेशे वाली कपास जिसका रेशा $\frac{3}{4}''$ से भी कम होता है। यह कपास मध्य-प्रदेश, उत्तर-प्रदेश व राजस्थान में बोई जाती है। (ii) लम्बी रेशे वाली अमेरिकन कपास १" से लम्बे रेशे वाली विशेषतः सौराष्ट्र, बंबई, आंध्र तथा मद्रास में बोई जाती है।

भारत में कपास का उत्पादन सब से अधिक बम्बई, मध्यप्रदेश, आंध्र और मद्रास में होता है क्योंकि वहाँ इसका क्षेत्र कुल कृषि क्षेत्र का १६–२०% रहता है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब आदि प्रदेशों में कपास की खेती का महत्व अधिक नहीं है। बम्बई प्रदेश में कपास का २२% क्षेत्र मिलता है। यह सम्पूर्ण उत्पादन का २३% देता है। मध्य प्रदेश भी उतने ही क्षेत्र से २०%, हैदराबाद २८% से २०% और मद्रास १२% से १०% तथा मध्य भारत १०% क्षेत्रफल से कुल उत्पादन का ८% देता है। वास्तव में कपास का सब से अधिक केन्द्रीकरण दक्षिण के पठार पर काली मिट्टी के प्रदेश भड़ोंच, खानदेश, बरार और टिनावेली में है। पठार के बाहर इसका केन्द्रीकरण पंजाब में है यद्यपि उतना नहीं है। इस फसल का दो तिहाई से अधिक क्षेत्रफल मध्य प्रदेश और मद्रास में हैं। केवल $\frac{1}{8}$ उतर के कछारी मैदानों में हैं।

दक्षिणी भारत में कपास की दो फसलें बोई जाती हैं। पहली फसल ग्रीष्म ऋतु के मानसून के आरम्भ होने पर और दूसरी उसके अन्त होने पर बोई जाती है। कपास चुनने का मौसम प्रायः नवम्बर से फरवरी तक चलता है। पहली फसल से लगभग जनवरी तक और दूसरी से अप्रैल तक कपास मिलती है। बम्बई में कपास की खेती के मुख्य क्षेत्र अहमदाबाद, भड़ोंच, सूरत, कर्नाटक, धारवाड़ और खानदेश हैं। भंड़ोंच में मिट्टी गहरी होने के कारण नमी अधिक रुकी रहती है। मानसून आरम्भ होने पर कपास बोई जाती है और अक्टूबर से मार्च-अप्रैल तक कपास की चुनाई होती रहती है। कर्नाटक, धारवाड़ और खानदेश में मानसून के कारण फसल को कुछ देर से बोया जाता है। यहाँ अगस्त के अन्त तक कपास चुनी जाती है।

मध्य प्रदेश में वर्षा आरम्भ होते ही फसल वो दी जाती है और नवम्बर से मार्च तक चुनाई होती रहती है। मद्रास में दो फसलें बोई जाती हैं। एक

दक्षिण पश्चिमी मानसून पर निर्भर रहती है। वह मई से जुलाई तक बोई जाती है और दूसरी दक्षिणी पूर्वी मानसून पर जो सितम्बर से नवम्बर के बीच में बोई जाती है। टिनावैली में दोनों फसलें एक ही मौसम में बोई जाती हैं। तामिल प्रदेश में लाल मिट्टी पर दक्षिणी पूर्वी मानसून के समय और काली मिट्टी पर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के समय बोई जाती है।

प्रायद्वीप के बाहर कपास की खेती सिंचाई के सहारे मार्च से अगस्त तक बोई जाती है। पंजाब में तो पाले के डर से जनवरी तक चुनाई पूरी हो जाती है।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका संसार का सबसे बड़ा कपास उत्पादक है किन्तु वह भारत से छोटे रेशे वाली रुई खरीदता है जिसमें खुरदरापन, सफाई और सफेदी होती है। ऐसी रुई सूती कम्बल और सूती और ऊनी मिले हुए कम्बल बनाने के लिये प्रयोग में ली जाती है।

गुणों के दृष्टिकोण से भारत में कई प्रकार की कपास उत्पन्न की जाती है। इनकी अच्छाई या बुराई उनकी मजबूती, धागे, सूक्ष्मता, रंग तथा चमक और ओटाई की प्रतिशतता आदि बातों पर निर्भर करती है। यहाँ निम्न प्रकार की कपासें बोई जाती हैं:—

(१) **बंगाल की कपास** (Bengal Cotton) का धागा $\frac{१७}{३२}$" होता है। यह छोटे रेशे वाली कपास होती है जिसका उत्पादन-क्षेत्र राजस्थान, उत्तर प्रदेश और देहली राज्य है।

(२) **अमरीकन कपास** (American Cotton) का धागा १" से अधिक लम्बा होता है। यह लम्बे रेशे वाली कपास मुख्यतः बम्बई व मद्रास में पैदा की जाती है।

(३) **धौलेरा** (Dholleras) कपास के रेशे की लम्बाई $\frac{६}{१६}$" से $\frac{३१}{३२}$" तक होती है। यह मुख्यतः गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ और पश्चिमी भारत में उत्पन्न की जाती है।

(४) **उमरा** (Oamras) कपास का धागा बहुत छोटा होता है। इसकी पैदावार विशेषतः मध्य प्रदेश, मध्य भारत और हैदराबाद में होती है।

(५) **भड़ौंच कपास** (Broach) कपास का धागा भी छोटा होता है। यह प्रायः बड़ौदा और गुजरात में पैदा की जाती है। सूरती कपास भड़ौंच की ही एक उपजाति होती है।

(६) **कुम्पटा** (Kumpta) कपास का रेशा $\frac{११}{१६}$" से $\frac{२७}{३२}$" तक लम्बा होता है। यह छोटे रेशे वाली कपास मुख्यतः दक्षिण में मैसूर, हैदराबाद, उ० पू० मद्रास और मध्य बम्बई में बोई जाती है। जयवन्त नाम के नये बीज द्वारा इसमें उन्नति की गई है।

(७) कम्बोडिया (Kambodia) अधिकांशत: दक्षिणी मद्रास में ही बोई जाती है। यह तीन प्रकार की होती है—लम्बी रेशे वाली (१" से अधिक); मध्यम रेशे वाली (१") और छोटे रेशे वाली (३१/३२" तक)।

(८) कोम्मिला (Comillas) कपास छोटे रेशे वाली देशी कपास होती है जिसकी खेती आसाम में की जाती है।

सम्पूर्ण भारत में १७% छोटे रेशे वाली (७/८" से भी कम); ५०% मध्यम रेशे वाली (७/८" से १ १/१६" तक) और २३% लम्बे रेशे वाली (१" से भी अधिक) रुई पैदा की जाती है। १९४१–४२ में ७/८" से ऊपर तक की रुई का उत्पादन ६, ५७,००० गाँठें था; १९४३–४४ में यह ८,१८,००० गाँठ; १९४९–५० में केवल ४,९२००० गाँठ और १९५१–५२ में ५,५७,००० गाँठ थी। निम्नलिखित रुई की विभिन्न किस्मों के अन्तर्गत क्षेत्रफल (००० एकड़ में) बताया गया है :—

रुई की किस्म	१९५३–५४	योग
(i) लम्बी रेशे वाली :		
अमरीकन	१,३८६	
हैदराबाद-गाओरानी	१,१०८	
सूरती सूयोग	४७६	
दक्षिणी—जयधर	३३३	
		३,३०३
(ii) मध्यम रेशे वाली :		
अमरीकन	९३७	
ऊमरा-जरीला, वीरम	२,५४२	
भड़ौंच-विजय	८२५	
धौलेरा	१,०२९	
दक्षिणी	२८६	
		५,६१९
(iii) छोटे रेशे वाली :		
बंगाल	१,००५	
ऊमरा	२,७५०	
धौलेरा-मठिओ	१८१	
द० मुङ्गरी और चिनापथी	४०	
कोम्मिला	५८	४,०३४
सम्पूर्ण योग		१२,९५६

१९५३–५४ में जहाँ २६ लाख गाँठ रुई की पैदा हुई वहाँ १९५४–५५ में ३९ लाख गाँठ अधिक पैदा हुई। यह वृद्धि अधिकांश में लम्बे और मध्यम रेशे वाली रुई में हुई। १९४७–४८ में लम्बे और मध्यम रेशे वाली रुई की केवल १४ लाख गाँठ के लगभग हुई थी। अब यह बढ़कर ३० लाख गाँठ हो गई। ⅞ इंच वाली और इससे अधिक लम्बे रेशे वाली रुई १९४७–४८ में ३ लाख गाँठ हुई थी जब कि १९५३–५४ में १३ लाख गाँठ उत्पन्न हुई। नीचे की तालिका में भारत में कपास के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उसका उत्पादन बताया गया है[१]:—

भारत में कपास का क्षेत्र व उत्पादन

वर्ष	क्षेत्रफल (एकड़ में)	उत्पादन (००० टनों में)
१९४९–५०	१२,१७३	२,६२८
१९५१–५२	१६,२०१	३,१३३
१९५३–५४	१७,२६५	३,६४४
१९५५–५६	२०,२३०	३,९६८

भारत में रेशे की लम्बाई के अनुसार कपास का उत्पादन
(३९२ पौण्ड वाली १००० गाँठों में)

	१९४७–४८	१९४९–५०	१९५१–५२	१९५३–५४
लम्बे रेशे वाली	३१९	५५०	९१९	१,३६५
मध्यम रेशे वाली	१,१२४	१,३३२	१,२२३	१,६२३
छोटे रेशे वाली	७४५	७४६	९९२	६४७
योग	२,१८८	२,६२८	३,१३४	३,६३५

मद्रास राज्य में एम. यू. ६ और एम. यू. २ तथा बम्बई में १७० सी. वो. २ और १३४ सी. वो. २ किस्म की रुई उपजाने में बड़ी सफलता मिली है। योजना कमीशन ने रुई को १८० लाख एकड़ क्षेत्र में बोने का लक्ष्य रखा था। जिसमें से १९५३–५४ में १७० लाख एकड़ में रुई बोई गई। योजना के अन्तिम काल में १२½ लाख का अतिरिक्त उत्पादन होगा। भारत में रुई का क्षेत्र संसार

१. Agricultural Situtation in India : Oct. 1956, p. 545 and 551.

के रुई क्षेत्र का २०·८% है किन्तु हमारी रुई का उत्पादन संसार के उत्पादन का केवल ९·४% है।

भारत में क्षेत्र तथा उपज दोनों में ही वृद्धि हुई है। उत्पादन का अनुमान अब ३५ लाख गाँठ है जो युद्धोत्तर वर्षों में सब से अधिक है। मौसम अच्छा रहने के कारण उपज बढ़ी है। भारत में दो किस्मों को मिलाकर नई और अच्छी किस्म निकालने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। हैदराबाद और मध्य-प्रदेश में देशी तथा अमेरिकन रुई की किस्में सुधारने में सफलता हुई है। उत्तर-प्रदेश में जहाँ सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध है लंबे रेशे की रुई उत्पन्न करने के प्रयत्न हो रहे हैं। 'अमेरिकी रुई आई० बी०'' की एक नई किस्म भी निकाली गई है। पंजाब में अमेरिकी रुई से एक इंच लम्बे रेशे वाली रुई उत्पन्न करने के प्रयत्न हो रहे हैं। मैसूर में भी ऐसे प्रयत्न हो रहे हैं जिनमें कुछ सफलता भी मिली है। इन्दौर की पौध उद्योगशाला में भी नई किस्में निकालने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इनके फलस्वरूप कई किस्म की लम्बे रेशे की रुई उत्पन्न हुई है। मद्रास में १-१/८ इंच लम्बे रेशे की रुई पैदा करने के प्रयोग हो रहे है। आन्ध्र में लक्ष्मी किस्म की रुई बहुत उपजने लगी है।

बम्बई में ऐसी रुई पैदा करने के यत्न हो रहे है जिसका रेशा तो अमेरिकन रुई के बराबर लम्बा होगा परन्तु मजबूती में वह एशियाई रुई के समान होगी। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी किस्में भी निकली हैं जो प्राय: ५ महीने में पक कर तैयार हो जायँगी। ये सूखे क्षेत्रों तथा धान कट जाने के बाद उसके खेतों में बोये जाने के योग्य हैं।

नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में कपास के अन्तर्गत क्षेत्रफल व उत्पादन बताया गया है :—

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़) (१९५५-५६)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	१,१९५	१४०
बिहार	११	२
बम्बई	१०,८६६	१,६२३
मध्य प्रदेश	२,३२४	४१६
मद्रास	९२१	२८२
मैसूर	२,७९८	४११
उड़ीसा	१११	२
पंजाब	१,२८२	६०५
राजस्थान	५९०	१९३
उत्तर प्रदेश	१३६	२७
सम्पूर्ण भारत	२०,२३०	३,९९८

भारत में कपास का प्रति एकड़ उत्पादन बहुत ही कम है। यहाँ प्रति एकड़ पीछे केवल ७९ पौण्ड कपास उत्पन्न किया जाता है जब कि मिश्र में ४७५ पौण्ड सं० राष्ट्र अमेरिका में २७३ पौण्ड, ब्राजील में १५८ पौण्ड, चीन में १४१ पौण्ड और पाकिस्तान में १६७ पौण्ड है।

भारत में निम्न उत्पादन का मुख्य कारण भूमि को खाद न देना, अच्छे बीजों का अभाव तथा कृषकों का वैज्ञानिक रीतियों से अनभिज्ञ होना है।

मिश्र

मिश्र में कपास का उत्पादन रेतीली भूमि में होता है जहाँ उसे "सकरा" कहते हैं। कुछ कपास काली भूमि में भी पैदा होती है जिसमें प्रति एकड़ अधिक उत्पादन होता है। वह गुण और संख्या के अनुसार सर्वोत्तम होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की कपास में भूरी कपास, मिताफी, साकेल आदि हैं। मुहाने के आस-पास की भूमि का पूरा भाग पश्चिम से पूर्व तक 'साकेल' प्रकार की कपास पैदा करता है जिसका रेशा $1\frac{1}{8}''$ से $1\frac{3}{8}''$ तक लम्बा होता है। यहाँ भूरी कपास मध्य मिश्र में पैदा होती है। अपने उत्तम रेशे के कारण साकेल कपास से स्पर्द्धा करती है। मिश्री कपास में सबसे बड़ा गुण उसकी शीघ्र उत्पत्ति और शीघ्र पकने में है। मिश्री कपास भारतीय कपास व औसत अमरीकी कपास से उत्तम होती है। परन्तु साथ ही यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ दो महत्वपूर्ण उत्पादक भारत और अमेरिका पैदा की गई कपास का बहुत बड़ा भाग अपने उपभोग के लिए रख लेते हैं वहाँ मिश्र अपनी कपास का अधिकतर भाग निर्यात कर देता है। यह निर्यात सिकन्दरिया के बन्दरगाह से होता है।

चीन

चीन भी कपास का बहुत बड़ा भाग उत्पन्न करता है, परन्तु वह अपने उपभोग के लिए ही अधिक उत्पन्न करता है और बहुत कम जापान को निर्यात करता है। यह कपास छोटे रेशेवाली होती है जो कि कर्घों के योग्य नहीं होती। यद्यपि देश के बड़े भाग में इसकी खेती होती है परन्तु लोमस मिट्टी के मैदान और उत्तर तथा यांगटिसीक्यांग नदी की घाटी में अधिकतर उत्तम कपास पैदा होती है।

अन्य देश

इन देशों के अतिरिक्त एशिया में टर्की, सीरिया, इराक और कोरिया में भी कपास पैदा की जाती है किन्तु थोड़ी मात्रा में। पिछले कुछ वर्षों में रूस में भी दक्षिणी यूक्रेन, ट्रांस काकेशिया, तुर्किस्तान, क्रीमिया और काले सागर के तटीय भागों में कपास पैदा की जाने लगी है।

अफरीका में सूडान, टैंगेनिका, केनिया, नाइजीरिया, रोडेशिया, युगेंडा, न्यासालैंड और दक्षिणी अफरीका में; दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील, उत्तरी अर्जेन्टाइना, पश्चिमी पीरू और वैनेजुएला तथा आस्ट्रेलिया में क्वीन्सलैंड और न्यूसाउथ-वेल्स में भी थोड़ी कपास बोई जाती है।

कपास का व्यापार

कपास अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक प्रधान वस्तु है। कपास का आयात करने वाले मुख्य देश हैं ग्रेट ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, इटली, चीन, बेल्जियम, हालैण्ड, कनाडा और जैकोस्लेविया है। सन् १९४२ से पहिले जापान सबसे अधिक कपास आयात करता था।

कपास के आयात के आँकड़े
(हजार मैट्रिक टनों में)

देश	१९५०-५१
जापान	३५८·५
ग्रेट-ब्रिटेन	३५४·८
जर्मनी	१८८
फ्रांस	१७६
इटली	२०२
चीन	३९
भारत	११३·८
विश्व योग	२०७४·१

ब्राजील, संयुक्त राष्ट्र, भारत और मिश्र कपास निर्यात करने वाले मुख्य देश हैं। केवल संयुक्त-राष्ट्र से प्रतिवर्ष १५ लाख मैट्रिक टन से अधिक कपास निर्यात होती है। निकट भविष्य में पाकिस्तान भी कच्ची कपास की माँग की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन बन जायगा।

कपास का निर्यात
(हजार मैट्रिक टनों में)

देश	१९५०-५१
संयुक्त राष्ट्र	९३२
पाकिस्तान	२२६·१
ब्राजील	१४८
मिश्र	३३४
मैक्सिको	२०८
सूडान	८१
टर्की	७९
विश्व योग	२०७४·१

भारत—१९४७ के पूर्व संसार में जूट पैदा करने वाले देशों में केवल भारत ही जूट पैदा करता था। १९४७ में भारत का कुल जूट क्षेत्र २३ लाख एकड़ था उसमें से विभाजन के फलस्वरूप १८ लाख एकड़ से अधिक क्षेत्र पाकिस्तान को चला गया। अब भारत में अविभाजित भारत की पैदावार का केवल २३ प्रतिशत ही जूट पैदा होता है। अधिकांश जूट गंगा और ब्रह्मपुत्र की घाटी में तथा डेल्टा में पैदा किया जाता है। बिहार का ९० प्रतिशत जूट पूर्णिया जिले में, तथा शेष मुजफ्फरपुर, चम्पारन और सहारसा जिलों से प्राप्त होता है। उड़ीसा का ९२ प्रतिशत कटक जिले में तथा शेष बालासोर और पुरी जिलों में तथा आसाम का अधिकांश जूट ब्रह्मपुत्र की घाटी में (नौगांव और कामरूप जिले) होता है। पश्चिमी बंगाल में सम्पूर्ण भारत का ३५ से ५० प्रतिशत जूट पैदा किया जाता है। यहाँ के मुख्य क्षेत्र मुर्शिदाबाद, नाड़िया और हुगली जिले हैं। किन्तु भारत में जूट की पैदावार प्रति एकड़ में बहुत ही कम होती है। प्रति एकड़ की औसत १०१२ पौंड है। किन्तु इस औसत में विभिन्न राज्यों में अन्तर पाया जाता है। बिहार में प्रति एकड़ ११४९ पौण्ड, आसाम में १०५२ पौण्ड, कूच विहार में १०७० पौण्ड, पश्चिमी बंगाल में ९९१ पौण्ड, तथा उड़ीसा में ८०० पौण्ड जूट प्रति एकड़ पीछे पैदा होती है। चीन में प्रति एकड़ पीछे ९१५ पौंड, सं० रा० अमेरिका में १२५८ पौंड; ब्राजील में ६०७ पौंड, इटली में १२१४ पौंड और कनाडा में १४९६ पौंड जूट पैदा होता है।

विभाजन के फलस्वरूप भारत के मिलों को जूट की बड़ी कमी पड़ गई है। अतः अब जूट रिसर्च कमेटी ने बिहार, आसाम व ट्रावनकोर में प्रत्येक में ५०,००० एकड़, उत्तर प्रदेश तराई भाग में १५,००० एकड़, मद्रास में २०,००० एकड़, और कूच विहार में ५,००० एकड़ तथा त्रिपुरा में ५००० एकड़ जूट का क्षेत्रफल बढ़ाने का प्रयत्न किया है। नीचे की तालिका में जूट के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उसका उत्पादन बताया गया है:—

वर्ष	क्षेत्रफल (लाख एकड़ में)	उत्पादन (लाख गांठों में)
१९४८-४९	८	२०
१९४९-५०	११½	३१
१९५०-५१	१४	३३
१९५१-५२	१७	४१
१९५२-५३	१८	४६
१९५३-५४	११	३१
१९५५-५६	१५	४२

भारत के प्रमुख जूट उत्पादक क्षेत्र और उनका ...

प्रान्त	क्षेत्रफल (००० एकड़) १९५५-५६
पश्चिमी बंगाल	७८०
बिहार	२७०
उड़ीसा	१११
आसाम	३६७
त्रिपुरा	२०
उत्तर प्रदेश	३३
सम्पूर्ण भारत	१,५८१

भारत से जूट का निर्यात बहुत ही कम होता है ... पूर्वी पाकिस्तान से आयात करते हैं। हमारे यहाँ से ... जापान, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और इंगलैण्ड तथा फ्रांस को ...

जूट की मिलों में विशेषकर चार प्रकार की ... (१) जूट के बोरे (Gunny bags) जिनमें कृषि ... (२) टाट (Hessians); (३) मोटे कालीन और फर्श ... (४) रस्से तिरपाल आदि। जूट का महीन सूत ... उपयुक्त होता है। कलकत्ते में भारतीय केन्द्रीय जूट ... है जिसमें जूट के नये-नये प्रयोगों को खोज निकाला है। ... मकान बनाने में, प्लास्टिक की वस्तुएँ, गलीचे, कम्बल, ... के गद्दे, वाटर प्रूफ सामान, तिरपाल, कैनवास, रस्से, ... प्रयोग, रुई और ऊन के साथ मिश्रित कर कपड़े बनाने आदि ...

वर्त्तमान समय में जूट के उद्योग को कई समस्याओं ... रहा है। कई देशों में नये किस्म के रेशे का प्रचार बढ़ ... लिये न्यूजीलैण्ड में टिनैक्स (Tenax) नामक रेशे के बोरे ... है। रूस और अर्जेन्टाइना में अलसी के रेशे बोरे बनाने ... जाते हैं। कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका ... में कागज और कपड़े के बोरे ही काम में लिये जाने लगे ... सिसल (Sisal), मैक्सिको में हैनेक्वीन (Henequin), ... (Fique), ब्राजील में कैरोआ (Caroa), स्पेन में एस्पार्टो ... (Julital), जावा में रोसेला (Rosella) और दक्षिणी ... रूस (Stock roos) नामक विभिन्न प्रकार के पौधों

जाने लगे हैं। किन्तु अभी तक भारत में जूट के बने बोरों से किसी भी अन्य प्रकार के बोरे लाभदायक सिद्ध नहीं हुए हैं। कई देशों में तो जूट ही उत्पन्न किया जाने लगा है किन्तु फिर भी विश्व के प्रमुख कृषि-उत्पादक देशों में भारतीय जूट के बोरों की माँग ही अधिक है। इन विभिन्न रेशे वाले पौधों की उत्पत्ति के साथ-साथ कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में फसलों को इकट्ठा करने के लिये यांत्रिक तरीके (Elevators) काम में लाये जा रहे हैं तथा यातायात और बन्दरगाहों पर ढेरों के रूप में माल इकट्ठा किया जाने लगा है जिनमें बोरों की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः यह आवश्यक हो गया है कि जूट और जूट के सामानों के नये प्रयोग निकाले जावें।

कृषि अनुसन्धानशाला ने जूट की उपज बढ़ाने की एक नई रीति खोजी है। अब तक जूट के बीजों को छितरा कर बोया जाता है और अंकुर निकल आते हैं तो उन्हें पतला कर देते हैं ताकि फसल अच्छी हो। इस रीति से बीजों की हानि होती है और खराब अनावश्यक घास-फूँस को हाथ से उखाड़ने में मेहनत करनी पड़ती है। नई रीति के अनुसार जूट के बीज क्यारियों में बोये जाते हैं जो एक फुट की दूरी पर होनी हैं। बीजों को ३–४ इंच के फासले पर बोया जाता है। इस प्रकार के खेतों में पहियेदार खुरपों से अनावश्यक घास को साफ कर दिया जाता है। इससे खर्चा कम पड़ता है और उगाये हुए जूट की किस्म व उपज अच्छी होती है।

भारत से १९५०–५१ में २७१ हजार हंडरवेट पटसन का निर्यात हुआ जिसका मूल्य १२८ लाख रुपये था। १९५५–५६ में यह मात्रा ३९९ हजार हंडरवेट तथा उसका मूल्य १६७ लाख रुपये था।

(३) सन (Flex)

अठारहवीं शताब्दी तक इसका उपयोग कपड़ा बनाने के लिये किया जाता था और उस समय इसका उत्पादन रूस व अमरीका में होता था। किन्तु जब से सूती कपड़े के उद्योग का विकास हुआ इसका महत्व कुछ घट गया है। सन अपने बीज (अलसी) और रेशे दोनों के लिये बोया जाता है। इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है (अलसी का तेल) जो कि पेण्टों और वार्निशों में खूब काम में लाया जाता है और खली जानवरों के खिलाने के काम में आती है तथा रेशा वस्त्र बनाने के काम में आता है। इसके मोटे रेशे से मोमजामा, रस्से आदि बनते हैं और इसके चिथड़े से कागज बनाया जाता है।

जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ—सन कई प्रकार की जलवायु में पैदा किया जा सकता है। विशेष रूप से रेशा प्राप्त करनेवाले पौधों के लिये शीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। किन्तु बीज प्राप्त करने के लिये भारतवर्ष जैसी उष्ण और अर्द्ध उष्ण जलवायु चाहिये। इसके लिये उपजाऊ मिट्टी की जरूरत होती है क्योंकि सन मिट्टी का उपजाऊपन नष्ट कर देने वाला पौधा है। सन की व्यापारिक पैदावार उन्हीं प्रदेशों तक सीमित है जिनमें सस्ते मजदूरों की बहुतायत है। बीज प्राप्त करने के लिये पौधों को जड़ से उखाड़ने तथा तने से

विश्व में ऊन का उत्पादन

देश	औसत (१९३४-४८) (१० लाख पौंड में)	१९५५-५६
आस्ट्रेलिया	९९५	१३३१
न्यूजीलैण्ड	३००	४७५
दक्षिणी अफ्रीका	२६१	२९५
ब्रिटेन (U. K.)	१११	१०६
भारत	९६	१२
पाकिस्तान		३०
कनाडा	१६	८
दूसरे कामनवैल्थ के देश	७	९
अर्जेन्टाइना	३७६	३६०
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	४७०	३०८
यूरेग्वे	११४	२०२
स्पेन	६५	९५
टर्की	५२	८२
ब्राजील	३९	५३
फ्रांस	५३	५६
फारस	३५	३९
चिली	३५	३९
यूगोस्लाविया	३३	३७
इटली	३१	३७
इराक	१६	३३
फ्रेंच मोराक्को	२२	३६
यूनान	२२	२३
पीरू	१७	२०
आयर प्रजातन्त्र	१७	१८
रूस	४५०	६३०
एशिया के अन्य देश	३३	५२
यूरोप	७७	५०
अफ्रीका	३७	३५
अमेरिका	३०	३२
विश्व योग	३८१०	४५६५

उत्पादन की अवस्था—ऊन देने वाली भेड़ अधिकतर ठण्
सम जलवायु में पाई जाती है। अतः संसार के भेड़ पाले जाने
औसत तापक्रम सर्दियों में ५०° और गर्मियों में ७५° फा० के
चाहिये और वर्षा २०" से ३०" तक ठीक रहती है क्योंकि १०'
होने पर घास कम होती है और ३०" से अधिक होने पर भेड़ों को र
हो जाती है। इस प्रकार की उत्तम जलवायु आस्ट्रेलिया, दि
द० अमरीका व न्यूजीलैण्ड में पाई जाती है।

उत्पादन क्षेत्र—संसार के कुल उत्पादन का लगभग ३०
अकेले आस्ट्रेलिया से ही प्राप्त हो जाता है। अन्य ऊन उत्पादक
अर्जेन्टाइना १४ प्रतिशत; न्यूजीलैण्ड १० प्रतिशत; संयुक्त राष्ट्र
दक्षिणी अफ्रीका ६ प्रतिशत; यूरेग्वे ४ प्रतिशत; ब्रिटेन २·५ प्रति

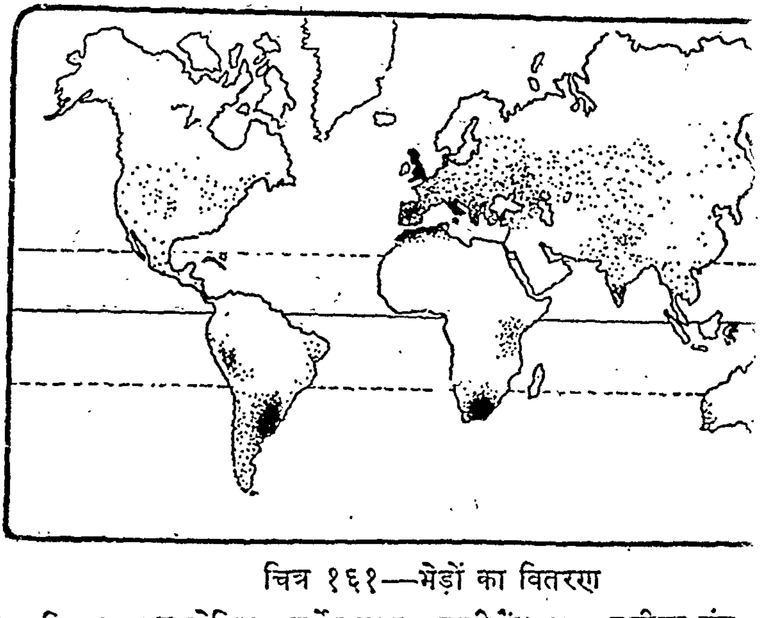

चित्र १६१—भेड़ों का वितरण

२ प्रतिशत। आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना, न्यूजीलैंड, द० अफ्रीका संघ
पाँचों देश मिलाकर विश्व का आधा ऊन उत्पादन—३/४ एपेरेल
४/५ ऊन—का निर्यात करते हैं। इन देशों से अधिकतर कारपेट ऊन
wool) प्राप्त होता है। इसका उत्पादन उत्तरी अफ्रीका से लगाकर
उत्तरी भारत और पश्चिमी चीन, अर्जेन्टाइना तथा यूरेग्वे से प्रा
है। कम महत्व वाले देश भारत, चीन, टर्की, चिली, फ्रांस, इट
हैं। सबसे अधिक ऊन दक्षिणी गोलार्द्ध से ही प्राप्त होती है क्योंकि (
भागों में अर्ध-शुष्क प्रदेशों की अधिकता है जिससे यहाँ विस्तृत चरागाह बन
हैं। (२) संसार के बड़े-बड़े बाजारों से दूर होने के कारण इन देशों को ह
और कीमती पदार्थों के पैदा करने की अधिक सुविधा रहती है, तथा (३) जनसंख्या
कम होने के कारण भूमि का अधिकांश भाग चरागाहों के लिये खाली ही मिल
जाता है। अगले पृष्ठ की तालिका में ऊन का उत्पादन बताया गया है।

पहाड़ तथा समुद्र के बीच पहली पट्टी में खेती के लिये यथेष्ट पानी बरसता है। किन्तु पहाड़ के पश्चिम की ओर पानी बहुत कम होता है अस्तु वहाँ केवल घास ही उत्पन्न हो सकती है। ये घास के मैदान प्रसिद्ध भेड़ चराने के मैदान हैं। किन्तु जहाँ वर्षा बहुत कम होती है वहाँ भेड़ें कम पाली जा सकती हैं। अस्तु भेड़ों का पालना वर्षा के ऊपर निर्भर है। जहाँ बहुत अधिक वर्षा होती है वहाँ भी भेड़ें पाली जा सकती हैं। भेड़ों को सूखा प्रदेश चाहिए किन्तु ऐसा सूखा भी नहीं होना चाहिये कि घास ही उत्पन्न न हो सके। सच तो यह है कि आस्ट्रेलिया के पूर्व के अधिक वर्षा वाले भागों में केवल माँस के लिये और पश्चिमी सूखे भागों में ऊन के लिये भेड़ें पाली जाती है।

आस्ट्रेलिया में भेड़ों की संख्या (दस लाख में)

१९५३

न्यूसाउथवेल्स	५४४०
विक्टोरिया	१८२०
क्वीन्सलैंड	२४२०
दक्षिणी आस्ट्रेलिया	९९०
पश्चिमी ,,	९६०
टसमानियाँ	२७०
उत्तरी टेरीटेरी	३०
योग	११९३०

आस्ट्रेलिया की ऊन के सब से बड़े ग्राहक ब्रिटेन, फ्रांस, बेलजियम, सं० रा० अमेरिका और जापान हैं।

न्यूजीलैण्ड में ऊन प्राप्त करने के लिये भेड़ पालना एक बहुत महत्वपूर्ण व्यवसाय है। इन द्वीपों में लगभग ३५,६००,००० भेड़ें हैं। प्राकृतिक दशा विभिन्न होने के कारण द्वीपों में भेड़ की कितनी ही किस्में हैं जिन्हें विभिन्न भौगोलिक दशाओं की आवश्यकता होती है। पश्चिमी तट के पहाड़ी चरागाहों में बढ़िया किस्म की मैरीनो ऊन में विशेषता प्राप्त की जाती है किन्तु पूर्व के कैन्टरबरी के मैदानों से 'कौरीडेल' नामक भेड़ की उत्तम ऊन प्राप्त होती है। द्वीपों के अन्य भागों में भेड़ विशेषरूप से गोश्त के लिये पाली जाती है। यहाँ की ऊन अधिकतर निर्यात के लिये ही पैदा की जाती है। ब्रिटेन इसकी ऊन का सबसे बड़ा ग्राहक है।

संसार के ऊन पैदा करने वाले देशों में 'दक्षिणी अफरीका' का चौथा नम्बर है। यहाँ ऊन के लिये भेड़ पालने का धन्धा सबसे पुराना और देश के सबसे महत्वपूर्ण धन्धों में से है। दक्षिणी अफ्रीका में लगभग ४०,०००,००० भेड़ें हैं जो कि विशेष रूप से वैल्ड के पठारी भागों में केन्द्रित हैं। यहाँ की सबसे

आस्ट्रेलिया

संसार का सब से अधिक ऊन आस्ट्रेलिया में उत्पन्न होता है। यहाँ की ऊन मैरीनो भेड़ों से प्राप्त होती है जो यहाँ १८ वीं शताब्दी में यूरोप से लाई गई थी। भेड़ पालने का धन्धा न्यू-साउथ वेल्स (५०%), क्वीन्सलैंड (२०%) और विक्टोरिया प्रान्त (१५%) की उच्चतम भूमि में जहाँ लगभग ३०" वर्षा होती है, में किया जाता है। पश्चिमी भाग में (१०%) भी ऊन के लिये भेड़ें बहुत पाली जाती हैं। आस्ट्रेलिया में १०" से कम वर्षा वाले भागों में प्रति वर्गमील पीछे ० से ७० भेड़ें और तर भूमि में दक्षिणी पूर्वी भागों में २०० से ६०० भेड़ें तक मिलती हैं। यहाँ ऊन इकट्ठा करने वाले केन्द्र सिडनी, मेलबॉर्न, अलबरी, शिलांग, ब्रिस्बेन और बैलेरट हैं। आस्ट्रेलिया की विशाल मरुभूमि में भेड़ें चराने

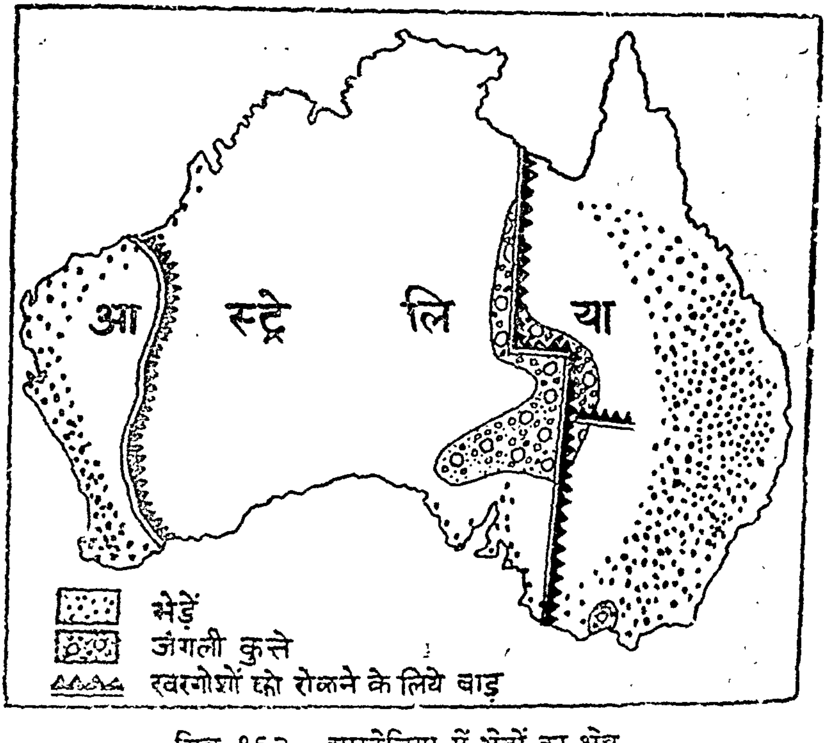

चित्र १६२—आस्ट्रेलिया में भेड़ों का क्षेत्र

की सुविधा नहीं है क्योंकि वहाँ पानी नहीं है। साथ ही वहाँ गरमी भी बहुत पड़ती है। इस कारण वहाँ भेड़ें नहीं पाली जाती हैं। आस्ट्रेलिया के भेड़ चराने वालों को कुछ भागों में भेड़ों की बीमारियों का तथा जंगली कुत्तों और टिक नामक कीड़ों का सामना करना पड़ता है। इन बीमारियों के कारण कहीं-कहीं भेड़ पालने में कठिनाई उत्पन्न हो गई है। आस्ट्रेलिया में एक प्रकार की काँटेदार वनस्पति (*Prickly Pear*) होती है जो भेड़ के ऊन में चिपट जाती है और ऊन को खराब कर देती है। आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर पहाड़ की एक ऊँची और लम्बी दीवार खड़ी है। यह दीवार पानी की हवाओं को रोक लेती है। अतएव

कोलोराडो में १८ लाख; मोंटाना में १७ लाख; यूटाहा में १४ लाख; न्यूमैक्सिको में १४ लाख; आयोवा में १२ लाख; इडाहो में १२ लाख; मिस्सौरी में ११ लाख और दक्षिणी डकोटा में १० लाख भेड़ें पाई जाती हैं। यहाँ की अधिकतर ऊन मोटे किस्म की होती है जो कि अँग्रेजी नस्ल की मोटी ऊन देने वाली भेड़ से प्राप्त हो जाती है। बढ़िया किस्म की ऊन दक्षिण पश्चिम के शुष्क पठारों पर पाली जाने वाली मैरीनो भेड़ों से प्राप्त होती है। देश में ऊन की खपत के अनुसार पैदावार बहुत कम है, इसलिये उसकी ऊन की माँग की ७० प्रतिशत के लगभग बाहर से मँगाई जाती है। यहाँ की आयात विशेषरूप से आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैन्ड, दक्षिणी अफ्रीका, अर्जेन्टाइना और यूरुग्वे से होती है। कालीन बनाने वाली मोटी ऊन भारतवर्ष और चीन से मँगाई जाती है।

अन्य देश—स्पेन, रूमानियाँ, फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, टर्की और यूगोस्लेविया यूरोप में ऊन पैदा करने वाले महत्वपूर्ण देश हैं किन्तु उनका घरेलू उत्पादन इतना कम होता है कि उनके ऊन के उद्योग-धन्धे केवल विदेशों से मँगाई हुई ऊन पर ही चल सकते हैं। यूरोपीय देशों को ऊन भेजने वाले देश आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका और अर्जेन्टाइना हैं।

भारत में भेड़ें—भारत में भेड़ों का विस्तृत क्षेत्र २५" से ४०" वर्षा वाले भागों में है—जहाँ चरागाह पाये जाते हैं—तथा पहाड़ी ढालों पर। भेड़ें अधिकतर पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश में गढ़वाल, अलमोड़ा और नैनीताल ज़िलों, मद्रास में बिलारी, कर्नूल व कोयम्बटूर जिलों, मद्रास, सौराष्ट्र, गुजरात तथा काशमीर और पश्चिमी राजस्थान में बीकानेर और जैसलमेर जिलों में पाई जाती है। किन्तु भारतीय भेड़ों से जो ऊन प्राप्त होती है वह आस्ट्रेलिया के ऊन से निम्न श्रेणी की होती है। उत्तरी भारत की ऊन सफेद और लम्बे रेशे वाली होती है, इससे उत्तम कपड़े बनाये जा सकते हैं। किन्तु दक्षिणी भारत की ऊन भूरी, मोटी और छोटे रेशेवाली होती हैं। दोनों प्रकार की ऊन छोटे रेशेवाली होती है। अतः इससे उम्दा ऊनी कपड़े नहीं बनाये जा सकते। यहाँ अधिकतर ऊन मरी हुई भेड़ों से प्राप्त की जाती है। भारत की ऊन से अधिकतर पट्टू, कालीन, कम्बल तथा शाल-दुशाले खूब बनाये जाते हैं। भारत में प्रतिवर्ष लगभग ५५० लाख पौंड ऊन प्राप्त होता है जिसका अधिकांश भारत में ही मिलों और छोटे-छोटे उद्योगों में खप जाता है। भारत से प्रतिवर्ष लगभग ४२० लाख पौंड ऊन विदेशों को निर्यात की जाती है। भारत में ऊन की उत्पत्ति इस प्रकार है—जोधपुर ८० लाख पौंड, बीकानेर ५७ लाख पौंड, उत्तर प्रदेश ५२ लाख पौंड, मद्रास ४२ लाख पौंड; पूर्वी पंजाब ४३ लाख पौंड, हैदराबाद ४२ लाख पौंड तथा जयपुर ३५ लाख पौंड।

भारत में भेड़ों की मुख्य-मुख्य किस्में—भारत में कई प्रकार की भेड़ें मिलती हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(१) **बीकानेरी** (Bikanare)—जो बीकानेर के सूखे ड़िवीजन में पाई जाती हैं। इसके अन्य क्षेत्र रोहतक, गुड़गाँव, अम्वाला, फिरोजपुर और

बढ़िया ऊन मैरीनो भेड़ से प्राप्त होती है। किन्तु इंगलैंड, हालैंड और आस्ट्रेलिया की दूसरी मजबूत नस्लें भी यहाँ प्रचलित कर दी गई हैं। यूनियन की ऊन अधिकतर बाहर जाने के लिये ही पैदा की जाती है। ऊन की प्रतिवर्ष निर्यात ३०० पौण्ड के लगभग है। ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी दक्षिणी अफ्रीका की ऊन के सबसे बड़े ग्राहक हैं।

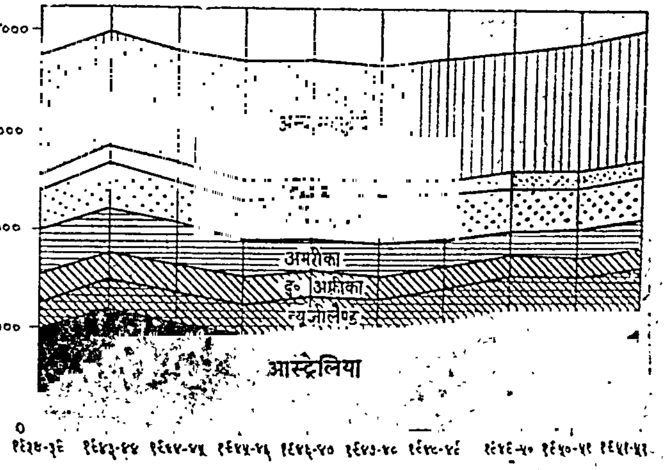

चित्र १६३—भेड़ों की संख्या

अर्जेन्टाइना—संसार के ऊन पैदा करने वाले देशों में अर्जेन्टाइना का दूसरा स्थान है। यहाँ ५०० लाख भेड़ें पाई जाती हैं। इसकी भेड़ें अधिकतर पराना की घाटियों में पाई जाती हैं। यहाँ भेड़ें मुख्यतः दो क्षेत्रों में पाली जाती हैं—(१) ब्यूनेस आयरस प्रान्त में जहाँ गर्मियाँ ठंडी और तर रहती हैं तथा (२) पैटेगोनिया के पठार तथा टैराडैलफ्यूगो के द्वीप में। वहाँ बड़े-बड़े बाड़े बनाकर ६००० भेड़ें तक एक-एक बाड़े में पाली जाती हैं। भेड़ें विशेपरूप से इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड के लोगों के द्वारा पाली जाती हैं। मैरीनो भेड़ों से सबसे अच्छी ऊन प्राप्त होती है किन्तु यहाँ अन्य किस्में भी प्रचलित हैं। इसकी ऊन का निर्यात विशेष रूप से बेल्जियम, फ्रांस और जर्मनी को होता है।

दक्षिणी अमेरिका का दूसरा ऊन पैदा करने और बाहर भेजने वाला महत्वपूर्ण देश यूरग्वे है। बाहर भेजने वाले पदार्थ में अकेली ऊन का भाग लगभग ४० प्रतिशत होता है। यूरग्वे में ऊन और गोश्त के लिये भेड़ों के वितरण और विस्तार की बहुत अधिक सम्भावना है। इसकी ऊन की निर्यात भी प्रधानतः फ्रांस, बेल्जियम और जर्मनी को होती है।

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में ऊन हर जगह पैदा की जाती है किन्तु ऊन पैदा करने का सबसे बड़ा केन्द्र राकी पर्वतों का ढालू प्रदेश है। सं० राष्ट्र में भेड़ों की संख्या का ८२% भाग मिसिसिपी नदी के पश्चिमी राज्यों में पाया जाता है। टैक्साज में ६६ लाख; वोमिंग में २१ लाख; कैलीफोर्निया में २० लाख;

दूसरे महायुद्ध के बाद से ऊन का विश्व उपभोग १०-१५ प्रतिशत बढ़ गया है और इसी कारण उत्तम श्रेणी का ऊन कम मिलता है। परन्तु हाल ही में कुछ नई खोजें हुई हैं उनमें से विशेष उल्लेखनीय खोज है कि मध्यम व निम्न श्रेणी के ऊन की उपयोगिता किस प्रकार बढ़ाई जावे। इस खोज के फलस्वरूप आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफीका और संयुक्त राष्ट्र में ऊन के उत्पादन की दशा बहुत कुछ सुधर गई है।

भेड़ों के अतिरिक्त बकरियों और ऊँटों से भी ऊन प्राप्त होता है—

(१) ईरान, अरब, एशिया माइनर, उत्तरी अफ्रीका और मध्य एशिया में ऊँट के ऊन का बड़ा महत्व है। वास्तव में ऊँट की गर्दन और कूवड़ से बाल मिलते हैं।

(२) भेड़ों के अलावा अंगोरा बकरियों, तिब्बत की याक, अल्पाका, लामा तथा ऊँटों से भी ऊन प्राप्त होती है। दक्षिणी अफ्रीका की बकरियों से प्राप्त ऊन को 'मोहेर' (Mohair) कहते हैं। तिब्बत की बकरियों का ऊन बड़ा मुलायम होता है और इनकी ऊन से काश्मीरी शाल-दुशाले बनाये जाते हैं। ये तिब्बती बकरियाँ तिब्बत, काश्मीर और दक्षिणी चीन में पाई जाती है।

(३) दक्षिणी अमेरिका के पीरू और बोलीविया राज्यों में अल्पाका, विकूना और लामा नामक पशुओं से 'अल्पाका' ऊन प्राप्त होता है। इसका उपयोग अस्तर, गोटे, फीता लगाने तथा मामूली वस्त्र बनाने में होता है।

रेशम (Silk)

रेशम एक कीड़े के कोये से प्राप्त होता है। यह कीड़ा विशेषकर शहतूत के वृक्ष की पत्तियों को खाकर जीवित रहता है। बेल, साल, लारेल, अण्डी, शाहबलूत नारंगी इत्यादि वृक्षों की पत्तियाँ भी रेशम के कीड़े को खिलाई जा सकती हैं।

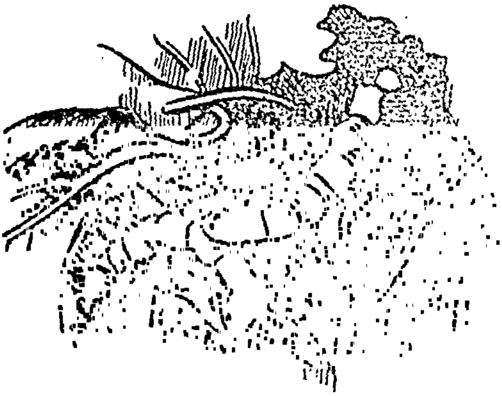

चित्र १६४—रेशम का कीड़ा

शहतूत का वृक्ष गर्म शीतोष्ण प्रदेशों में तथा उपोष्ण क्षेत्रों में खूब उगता है। उष्ण कटिबन्धीय भागों के पहाड़ी प्रदेशों में भी यह वृक्ष पैदा होता है। इस प्रकार इस वृक्ष के उगने के क्षेत्र मुख्यतः १५° से ४०° अक्षांश तक भूमध्य रेखा के दोनों ओर स्थित हैं। यूरोप तथा पश्चिमी अमेरिका में तो ४५° उत्तरी अक्षांश तक ये वृक्ष मिलते हैं। इस वृक्ष के लिये कम से कम तीन महीने तक

लुधियाना हैं। ये भेड़ें बड़ी मजबूत होती हैं और इनका ऊन लम्बा और खुरदरा होता है। यह अधिकतर गलीचे (Carpet) बनाने के काम आता है। यह ऊन अधिक मात्रा में इंगलैण्ड और उत्तरी अमेरिका को भेज दिया जाता है।

(२) लोही (Lohi)—अधिकतर मुल्तान, माँटगोमरी, शाहपुर, गुजरानवाला, अमृतसर के जिलों में पाई जाती है। इसके ऊन से मोटे कपड़े और कम्बल बनाये जाते हैं जिनका प्रयोग अधिकतर किसान लोग करते हैं।

(३) दक्षिणी ऊन (Deccanise)—अधिकतर बम्बई राज्य में होता है। यह घटिये दर का और काले रंग का होता है।

(४) नैलोर किस्म (Nellore Breed)—मद्रास राज्य में विशेषकर नैलोर जिले में पाई जाती है। इस तरह की नस्ल से अधिक माँस (Mutton) मिलता है किन्तु ऊन बहुत कम प्राप्त होता है।

भारत की भेड़ों की नस्लें उतनी अच्छी नहीं होतीं जितनी कि आस्ट्रेलिया की भेड़ों की। यहाँ पर साल में एक भेड़ से सिर्फ दो पौंड ऊन ही मिलती है जबकि आस्ट्रेलिया में प्रति भेड़ ७½ पौंड ऊन प्रतिवर्ष देती है। भारत में प्रतिवर्ष कुल ऊन लगभग ६० करोड़ पौंड होती है।

भारत में ऊन की उत्पत्ति के मुख्य स्थान तथा व्यापार के केन्द्र उप-हिमालय प्रदेश में गढ़वाल, अलमोड़ा और उत्तर प्रदेश में नैनीताल तथा पूर्वी पंजाब में हिसार जिला, दक्षिणी प्रायद्वीप में बम्बई का खानदेश जिला, मद्रास में बिलारी, करनूल तथा कोयम्बटूर जिले तथा मैसूर इत्यादि राज्यों में हैं।

विश्व व्यापार—ऊन भेजने वाले मुख्य देश आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, अर्जेन्टाइना, दक्षिणी अफ्रीका, यूरेग्वे, भारत, चीन और एल्जीरिया हैं। ऊन आयात करने वाले मुख्य देश ब्रिटेन, फ्रान्स, संयुक्त राष्ट्र, जर्मनी, जापान, बेल्जियम, रूस और इटली हैं।

ऊन का निर्यात

(दस लाख पौंड में)

निर्यात			आयात		
देश	१९३७-३८	१९५३	देश	१९३५-३९	१९५३
आस्ट्रेलिया	७७८·१	११०१	इंगलैंड	६२९	८२८
न्यूजीलैण्ड	२५८·६	४०१	फ्रांस	४०३	३९६
द० अफ्रीका	२१८·४	२२०	जर्मनी	२६०	२०७
अर्जेन्टाइना	२७५·६	३४२	इटली	७६	२०१
यूरग्वे	७५·४	१४६	सं० राष्ट्र	२२५	४४६
			रूस	६८	—
			जापान	१८८	२४३

रेशम के कीड़ों को दो प्रकार से पाला जाता है—बाहर के पेड़ों पर तथा मकान के अन्दर के पेड़ों पर। बाहर पेड़ों पर जब बीज पालना होता है तो रेशम के कीड़ों का बीज व्यापारियों से मोल ले लिया जाता है। रेशम का कीड़ा जब सो जाता है और अपने चारों तरफ एक रेशम की झिल्ली (Cocoon) पैदा कर लेता है तब उसे मौथ (Moth) या रेशम के कीड़े का बीज कहते हैं। यह बीज मौसम आने पर अपनी झिल्ली से बाहर निकल आता है और थोड़े समय में इससे हजारों कीड़ों के अण्डे पैदा हो जाते हैं। इन अण्डों को पत्तियों में रख देते हैं। नवें दिन जब इन अण्डों से बच्चे निकलते हैं तो उनको शहतूत की पत्तियों पर रख दिया जाता है। इन कीड़ों को पालने वाले इनकी बड़ी रक्षा करते हैं; नहीं तो चिड़ियाँ और चींटियाँ इन कीड़ों को खा जायँ। पेड़ों के तनों को हर समय साफ रखना पड़ता है ताकि इन पर और कोई कीड़े इंत्यादि नहीं चढ़ सकें। जब ये कीड़े एक पेड़ की पत्तियों को खा जाते हैं तो इन पेड़ों की डालियाँ जिन पर ये कीड़े होते हैं तो काट डाली जाती हैं। अब ये लोग काटी हुई डालियों को नये पेड़ों पर बाँध देते हैं ताकि इन डालियों के कीड़े इन पर से नये पत्तों पर रेंग कर पहुँच जायँ। इस प्रकार एक पेड़ के बाद दूसरे पेड़ पर इनको तब तक बदलते रहते हैं जब तक कि रेशम का कीड़ा कूकून नहीं बना लेता। रेशम के कीड़े कुछ बड़े होने पर अपने चारों ओर अपने ही मुँह से निकाला हुआ धागा लपेटने लगते हैं। यह धागा कीड़ा अपने चारों ओर लपेट लेता है तो यह सो जाता है। प्रत्येक कीड़ा लगभग ४००० गज रेशम की झिल्ली तैयार करता है।

जब रेशम के कीड़े को कमरे में पाला जाता है तो मौथ को प्रायः बाँस की चटाइयों पर रखा जाता है। बाहर पाले जाने वाले कीड़ों की भाँति ये कीड़े भी अपनी झिल्ली से ६-१० दिन में बाहर निकलते हैं और ८-६ दिन बाद ही हजारों अण्डे पैदा कर देते हैं। तब कीड़ों पर शहतूत के पत्तों को डाल दिया जाता है। कीड़ों को पालने वाले लोगों को इस बात का बड़ा ख्याल रखना पड़ता है कि हर समय खाई हुई पत्तियों को वे वहाँ से हटालें और उनकी जगह नई पत्तियाँ रख दें। जिन मकानों में ये कीड़े पाले जाते हैं वहाँ रोशनी तथा हवा का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध होना आवश्यक है नहीं तो कीड़ों को बीमारी लग जाने का बड़ा डर रहता है। जब रेशम के कीड़े रेशम उगलने लगते हैं तो वे बड़े बेचैन हो जाते हैं। तब इन कीड़ों को वहाँ से हटा कर पर्दे पर रख दिया जाता है। जब कूकून बन जाते है तो ये इकट्ठा कर बाजार में बेच दिये जाते हैं।

उत्पादन के क्षेत्र—रेशम के कीड़े पालने का धन्धा चीन का प्राचीन व्यवसाय है। वहाँ से यह व्यवसाय जापान, ईरान, भारत तथा रूमसागरीय देशों में फैला। इंगलैण्ड, अमेरिका, मेक्सिको इत्यादि देशों में भी इस धन्धे को चलाने के प्रयत्न किए गये किन्तु इसमें विशेष सफलता न मिली। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस धन्धे के असफल होने का एक मात्र कारण सस्ते श्रमिकों का अभाव था। संसार में रेशम के उत्पादन के दो मुख्य क्षेत्र हैं—

५५° फा० औसत तापक्रम जरूरी है। साथ ही कीड़ों की वृद्धि के मौसम में काफी नमी भी चाहिये ताकि नई-नई पत्तियाँ प्राप्त होती रहें। एक पौण्ड कच्चा रेशम प्राप्त करने के लिये रेशम के कीड़ों को १५० पौण्ड पत्तियाँ खिलाने की आवश्यकता होती है। रूमसागरीय भागों में उन दिनों सिंचाई की व्यवस्था करनी पड़ती है। चीन व जापान में तो गर्मी की ऋतु में वर्षा होती है इसलिये पत्तियाँ बहुतायत से मिलती रहती हैं।

कीड़ों को पालने के कार्य में बड़ी मेहनत और सावधानी की आवश्यकता है। प्रतिदिन नवीन पत्तियाँ तोड़ना, कीड़ों को पालने की तश्तरियों को साफ करना, साधारणतया गर्म वायु पहुँचाते रहना इत्यादि ऐसे कार्य हैं जिनमें पर्याप्त सावधानी और नियमितता की आवश्यकता है। इसलिये मजदूर काफी चाहिये और वे चतुर, परिश्रमी, धैर्यवान तथा भरोसे के हों। साथ ही सस्ते भी हों ताकि उत्पादन-व्यय बढ़ न जावे।

अच्छी जलवायु तथा सस्ते मजदूरों के मिलने के कारण ही दक्षिणी पूर्वी एशिया में दुनिया में सबसे अधिक रेशम के कीड़े पालने का व्यवसाय होता है। यद्यपि शहतूत का पेड़—जिन पर रेशम का कीड़ा रहता है—यूरोप इत्यादि देशों में उगाया जा सकता है किन्तु चीन और जापान में तो एक खास प्रकार के शहतूत के पेड़ ही उगाये जाते हैं जिनमें साल में ६ दफा नई पत्तियाँ लगती हैं और इस तरह कीड़ों के लिये साल भर ही ताजा पत्तियाँ मिलती रहती हैं और इसलिये इन देशों में रेशम के कीड़े पालने के व्यवसाय में अधिक उन्नति भी हुई है।

चित्र १६५—जापान में रेशम के कीड़ों से रेशम निकालना

रेशम के कीड़ों को दो प्रकार से पाला जाता है—बाहर के पेड़ों पर तथा मकान के अन्दर के पेड़ों पर। बाहर पेड़ों पर जब बीज पालना होता है तो रेशम के कीड़ों का बीज व्यापारियों से मोल ले लिया जाता है। रेशम का कीड़ा जब सो जाता है और अपने चारों तरफ एक रेशम की झिल्ली (Cocoon) पैदा कर लेता है तब उसे मौथ (Moth) या रेशम के कीड़े का बीज कहते हैं। यह बीज मौसम आने पर अपनी झिल्ली से बाहर निकल आता है और थोड़े समय में इससे हजारों कीड़ों के अण्डे पैदा हो जाते हैं। इन अण्डों को पत्तियों में रख देते हैं। नवें दिन जब इन अण्डों से बच्चे निकलते हैं तो उनको शहतूत की पत्तियों पर रख दिया जाता है। इन कीड़ों को पालने वाले इनकी बड़ी रक्षा करते हैं; नहीं तो चिड़ियाँ और चींटियाँ इन कीड़ों को खा जायँ। पेड़ों के तनों को हर समय साफ रखना पड़ता है ताकि इन पर और कोई कीड़े इंत्यादि नहीं चढ़ सकें। जब ये कीड़े एक पेड़ की पत्तियों को खा जाते हैं तो इन पेड़ों की डालियाँ जिन पर ये कीड़े होते हैं तो काट डाली जाती हैं। अब ये लोग काटी हुई डालियों को नये पेड़ों पर बाँध देते हैं ताकि इन डालियों के-कीड़े इन पर से नये पत्तों पर रेंग कर पहुँच जायँ। इस प्रकार एक पेड़ के बाद दूसरे पेड़ पर इनको तब तक बदलते रहते हैं जब तक कि रेशम का कीड़ा कूकून नहीं बना लेता। रेशम के कीड़े कुछ बड़े होने पर अपने चारों ओर अपने ही मुँह से निकाला हुआ धागा लपेटने लगते हैं। यह धागा कीड़ा अपने चारों ओर लपेट लेता है तो यह सो जाता है। प्रत्येक कीड़ा लगभग ४००० गज रेशम की झिल्ली तैयार करता है।

जब रेशम के कीड़े को कमरे में पाला जाता है तो मौथ को प्रायः बाँस की चटाइयों पर रखा जाता है। बाहर पाले जाने वाले कीड़ों की भाँति ये कीड़े भी अपनी झिल्ली से ६-१० दिन में बाहर निकलते हैं और ८-६ दिन बाद ही हजारों अण्डे पैदा कर देते हैं। तब कीड़ों पर शहतूत के पत्तों को डाल दिया जाता है। कीड़ों को पालने वाले लोगों को इस बात का बड़ा ख्याल रखना पड़ता है कि हर समय खाई हुई पत्तियों को वे वहाँ से हटालें और उनकी जगह नई पत्तियाँ रख दें। जिन मकानों में ये कीड़े पाले जाते हैं वहाँ रोशनी तथा हवा का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध होना आवश्यक है नहीं तो कीड़ों को बीमारी लग जाने का बड़ा डर रहता है। जब रेशम के कीड़े रेशम उगलने लगते हैं तो वे बड़े बेचैन हो जाते हैं। तब इन कीड़ों को वहाँ से हटा कर पर्दे पर रख दिया जाता है। जब कूकून बन जाते हैं तो ये इकट्ठा कर बाजार में बेच दिये जाते हैं।

उत्पादन के क्षेत्र—रेशम के कीड़े पालने का धन्धा चीन का प्राचीन व्यवसाय है। वहाँ से यह व्यवसाय जापान, ईरान, भारत तथा रूमसागरीय देशों में फैला। इंगलैण्ड, अमेरिका, मेक्सिको इत्यादि देशों में भी इस धन्धे को चलाने के प्रयत्न किए गये किन्तु इसमें विशेष सफलता न मिली। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस धन्धे के असफल होने का एक मात्र कारण सस्ते श्रमिकों का अभाव था। संसार में रेशम के उत्पादन के दो मुख्य क्षेत्र हैं—

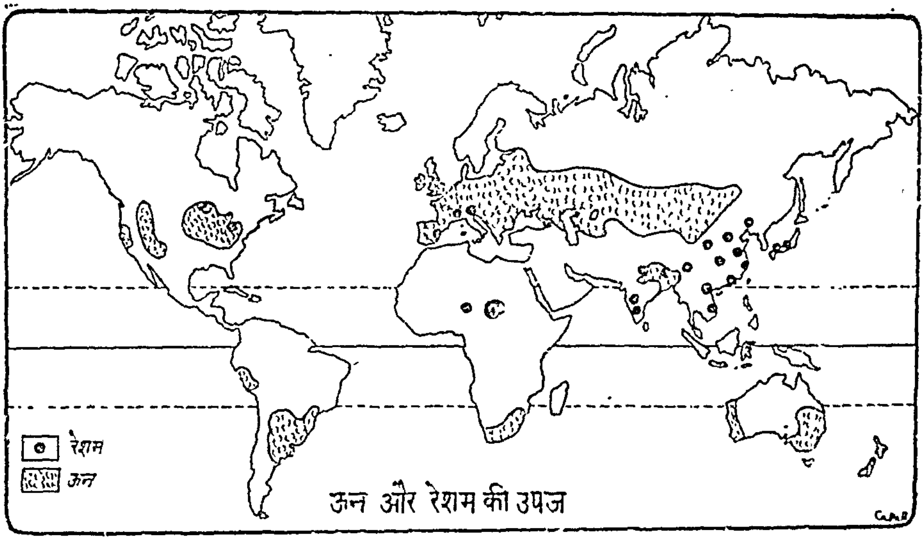

चित्र—१६६ ऊन और रेशम उत्पादन क्षेत्र

(१) दक्षिणी तथा पूर्वी एशिया।

(२) रूमसागरीय देश।

नीचे की तालिका में विश्व में कच्चे रेशम का उत्पादन, आयात और निर्यात दर्शाया गया है:—

(००० मैट्रिक टनों में)

उत्पादन :	१९३८	१९५०
जापान	४३·१५	८·८६
चीन	३·२०	३·०३
इटली	२·७४	१·३७
भारत	—	१·०३
फ्रांस	०·११	०·०५
निर्यात :		
जापान	२८·७	५·६८
इटली	२·६	०·५६
आयात :		
सं० रा० अमेरिका	२४·६७	४·२८
इंगलैण्ड	२·६५	०·७८
फ्रांस	२·४६	०·६५
स्विटजरलैण्ड	०·२७	०·५३

प्रथम क्षेत्र से संसार का ८०% रेशम मिलता है और शेष दूसरे क्षेत्र से। प्रथम क्षेत्र में चीन अग्रगण्य माना गया है यद्यपि इसके उत्पादन के विश्वसनीय आँकड़े प्राप्त नहीं हैं। जापान का स्थान चीन के बाद है किन्तु इस देश की रेशम की उत्पत्ति भी बहुत अधिक है। एशिया में तृतीय स्थान कोरिया का है और अन्य उत्पादक सीरिया, ईरान, भारत, इन्डोचीन इत्यादि है। यूरोपियन क्षेत्र में सर्वप्रथम स्थान इटली का है किन्तु संसार में इस का तीसरा नम्बर है। अन्य उत्पादक फ्रान्स, बलगेरिया, स्विटजरलैण्ड, स्पेन और यूनान इत्यादि हैं।

चीन में यांगटिसी तथा सीक्यांग की घाटियों में और शांटंग प्रायद्वीप पर अर्थात् मध्य और दक्षिणी चीन में रेशम के कीड़े पालने का व्यवसाय केन्द्रित है। शांटंग प्रायद्वीप पर शाहबलूत की पत्तियों पर कीड़े पाले जाते हैं अतः यहाँ का रेशम घटिया किस्म का होता है। चीन में रेशम के कीड़े पालने के धन्धे में वैज्ञानिक विधियों से काम नहीं लिया जाता। 'यूनान' प्रान्त में रेशम के व्यवसाय की दीक्षा देने के लिये एक कॉलिज खोला गया है।

चीन में सबसे प्रसिद्ध क्षेत्र 'टे हो' झील का निकटवर्ती भाग है जहाँ लगभग १०० वर्गमील के क्षेत्र में रेशम के कीड़े पालना ही मुख्य व्यवसाय है। यांगटिसी का डेल्टा प्रदेश भी रेशम के धन्धे के लिये प्रसिद्ध है। शंघाई नगर संसार में रेशम के व्यवसाय का सर्व प्रमुख बाजार है। चीन का दूसरा प्रसिद्ध बाजार केण्टन नगर है जो 'क्वांटंग' प्रान्त के रेशम-क्षेत्र में स्थित है।

चीन को छोड़कर रेशम के व्यवसाय में जापान का प्रथम स्थान है। निर्यात में तो निश्चय ही जापान अग्रगण्य है। यहाँ वर्ष में तीन फसलें प्राप्त की जाती हैं—एक ग्रीष्म में, दूसरी हेमन्त में तथा तीसरी बसन्त में। यहाँ की शीत ऋतु बड़ी साधारण होती है और काफी तापक्रम रहता है। पर्वतीय ढालों पर शहतूत का वृक्ष खूब होता है। ग्रामीण जनों का सस्ता श्रम भी सहज उपलब्ध है किन्तु कभी-कभी गर्मियों में पत्तियों का रोग फैल जाता है, जाड़ों में बहुत वर्षा हो जाती है तथा बसन्त में पाला पड़ जाता है तो रेशम के कोयों का उत्पादन घट जाता है।

जापान में प्रायः सभी भागों में यह धन्धा प्रचलित है क्योंकि ४०° उत्तरी अक्षांश से दक्षिण की ओर सारे देश में पहाड़ी ढालों पर शहतूत के वृक्ष उगाये जाते हैं। 'नागोनो' पहाड़ी क्षेत्र और क्वान्टो का मैदान रेशम के धन्धे के लिये प्रसिद्ध इलाके हैं।

मैदानों में खेती-योग्य भूमि के अभाव से पहाड़ी भागों में शहतूत के वृक्षों के लिए काफी गुञ्जाइश है। अधिक जनसंख्या के कारण कीड़े पालने के लिए स्त्री मजदूर सस्ते उपलब्ध हैं। रेशम के कीड़ों की बीमारियों पर नियंत्रण और कीड़े पालने की प्रणाली में वैज्ञानिक सुधार होने से जापान में रेशम के कीड़े अधिक पाले जाते हैं। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से कृत्रिम रेशों अथवा कई प्रकार के बनावटी रेशम के आविष्कार से जापान के इस व्यवसाय को धक्का

लगा है और इसका उत्पादन कम हो गया है, जैसा कि निम्न तालिका से प्रकट होगा—

	१९३४-३८	१९५५
शहतूत (क्षेत्रफल)	१,४१३,०००	४३५,०००
कच्चा रेशम (गांठों में)	७२१,०००	२१५,०००
निर्यात हजार (टनों में)	३०·२	४·३

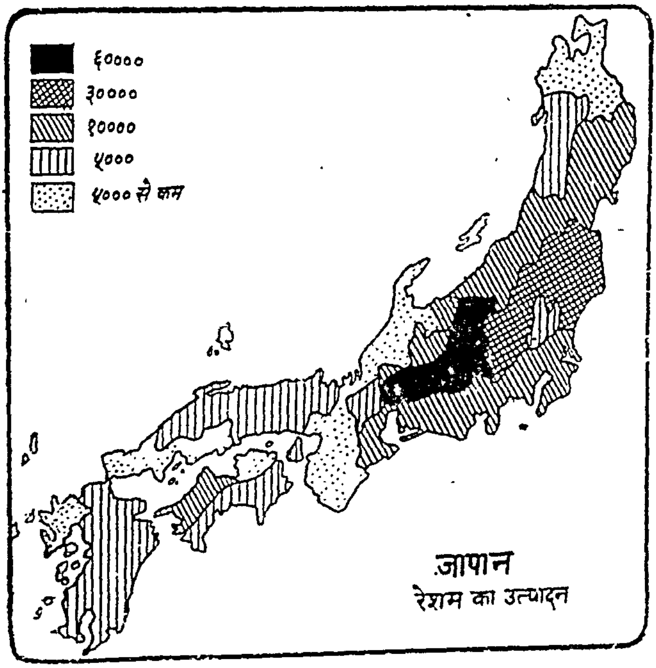

चित्र १६७

रेशम के धन्वे में तृतीय स्थान इटली का है। यह संसार का लगभग ८ प्रतिशत रेशम उत्पन्न करता है। यहीं से यूरोप का ६०% रेशम प्राप्त होता है। उत्तरी इटली में 'पो' नदी का बेसिन इस धन्वे के लिये प्रसिद्ध है। 'मिलान' नगर रेशम की प्रधान मण्डी है। यहाँ इस धन्वे की उन्नति के तीन कारण हैं—(१) जलवायु शहतूल के वृक्षों के लिये अनुकूल है, (२) श्रमिक सस्ते और काफी मिल जाते हैं, (३) जल-विद्युत शक्ति की सुविधायें हैं।

शेष उत्पादकों में कोरिया का स्थान प्रमुख है। यहाँ से संसार का ५% रेशम प्राप्त होता है। फ्रान्स में रोन नदी की घाटी (Rhone Valley) जिसमें लियोंस (Lyons) स्थित है, यूरोप का प्रसिद्ध रेशम-क्षेत्र है। सीरिया में दमिश्क नगर का निकटवर्ती क्षेत्र रेशम के लिये नामी है। इसके अतिरिक्त ईरान,

स्विटजरलैंण्ड, जेकोस्लेविया, बलगेरिया, स्पेन, यूनान, टर्की, ब्रह्मा, भारत इत्यादि में भी रेशम का धन्धा प्रचलित है किन्तु इन देशों का उत्पादन बहुत कम है।

भारत—भारत में रेशम के प्रायः चार प्रकार के कीड़े पाये जाते हैं। शहतूत की पत्तियों पर पाला जाने वाला कीड़ा टसर, एन्डी और मूंगा है। रेशम का कीड़ा यहाँ दो प्रकार से पाला जाता है—एक बाहर पेड़ों पर और दूसरा मकानों में। अधिकांश कीड़े शहतूत की पत्तियाँ ही खाते हैं। बङ्गाल, मैसूर और काश्मीर में तो शहतूत के बाग लगाये गये हैं किन्तु आसाम तथा हिमालय प्रदेश में यह जंगली अवस्था में ही उत्पन्न होता है।

भारत में रेशम के कीड़े अधिकतर तीन भागों में पाले जाते हैं : (१) मैसूर के पठार का दक्षिणी भाग और मद्रास का कोयम्बटूर जिला; (२) बंगाल में पश्चिमी जिले और मालदा, मुर्शिदाबाद और वीरभूम जिला, तथा (३) पंजाब के कुछ जिले और काश्मीर तथा जम्मू में। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त टसर कीड़े छोटा नागपुर, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में और मूंगा तथा एन्डी कीड़े आसाम में पाले जाते हैं। इन कीड़ों से रेशम प्राप्त किया जाता है। सबसे अच्छा रेशम काश्मीर और आसाम में होता है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग २६,२०४,००० पौंड रेशम होता है जिसमें से शहतूत के कीड़े द्वारा प्राप्त रेशम २०,६६०००; टसर रेशम ४,०१,००० तथा अन्य रेशम ६,५०,००० पौंड होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार :—रेशम की प्रमुख मंडियाँ फ्रान्स, संयुक्त राष्ट्र, जापान, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, कनाडा और भारत हैं। संयुक्त राष्ट्र में संसार का कुल निर्यात का ६६ प्रतिशत आयात किया जाता है। फ्रान्स में ७%, जापान में ६%, ब्रिटेन में ५% तथा भारत में ४% रेशम आयात किया जाता है। रेशम का निर्यात करने वाले मुख्य देश जापान, चीन, कोरिया, इटली और मनचूरिया हैं। जापान से ७३% रेशम निर्यात किया जाता है। चीन से १०%, कोरिया से ६%, इटली से ६% और मनचूरिया से ४% रेशम निर्यात किया जाता है।

प्रश्न

१. गेहूँ के उत्पादन और व्यापार के लिये किन-किन भौगोलिक दशाओं की आवश्यकता होती है? भारत के मानचित्र पर गेहूँ के प्रमुख क्षेत्र दिखलाइये। यह भी बतलाइये कि गेहूँ के उत्पादन और व्यापार में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की अपेक्षा भारत को क्या लाभ तथा हानि है?

२. कपास के उत्पादन के तीन प्रमुख देश बतलाइये और वे भौगोलिक दशायें बतलाइये जिनके अन्तर्गत इन देशों में कपास का उत्पादन होता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की अपेक्षा भारत में प्रति एकड़ कपास का उत्पादन कम क्यों है? (यू० पी० बोर्ड, १९२२)

३. उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध के फल उत्पादन क्षेत्रों का वर्णन करिये। इस सम्बन्ध में यह भी बतलाइये कि फलों पर कौन-कौन से उद्योग निर्भर करते हैं?

(यू० पी० बोर्ड, १९३५)

३०. ब्राजील में किन भौगोलिक अवस्थाओं के कारण कहवा पैदा किया जाता है? पहाड़ों के अधिक ऊँचे और अधिक वर्षा वाले ढाल कहवा उत्पादन के लिये उपयुक्त क्यों नहीं माने जाते? (आ० बी० कॉम, १९४५, १९४६, १९४७, १९५२)

३१. यूरोप के किन देशों में कच्चा रेशम का उत्पादन किया जाता है और क्यों? अथवा यह बताइये कि यूरोप में शराब बनाने और निर्यात करने वाले कौन से देश हैं और क्यों? (आ० बी० कॉम, १९४६)

३२. उष्ण कटिबंध और अर्द्ध उष्ण कटिबंध में गन्ने की पैदावार और शीतोष्ण कटिबंध में चुकन्दर की पैदावार और शक्कर बनाने के उद्योग की तुलना करिये। (आ० बी० कॉम १९४७, १९४९)

३३. आस्ट्रेलिया में किन भौगोलिक अवस्थाओं के अन्तर्गत गेहूँ पैदा किया जाता है। चित्र खींच कर गेहूँ उत्पादन के केन्द्र बताइये। (आ० बी० कॉम, १९४६, १९४७)

३४. यूरोप में किन कारणों से गेहूँ उत्पन्न किया जाता है? यूरोप उत्तरी अमेरिका और कनाडा के उत्पादक क्षेत्रों की तुलना कीजिये। (आ० बी० कॉम, १९४९, १९५०)

३५. रेशेदार पदार्थों के उत्पादन में कौन-सी बातों का प्रभाव पड़ता है? कच्चे रेशम और ऊन उत्पादन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करिये। (आगरा बी० कॉम, १९५२)

३६. ऊन और कहवा के उत्पादन में कौनसे भौगोलिक कारणों का महत्व अधिक है? (एम० ए० १९४८)

३७. गन्ने और चुकन्दर के उत्पादन में कौन-कौन-सी भौगोलिक दशाओं की आवश्यकता पड़ती है? इस सम्बन्ध में उनके व्यापार पर भी प्रकाश डालिये। (एम० ए० १९४९, १९५२)

३८. रबड़ उत्पादन के कौन-कौन से मुख्य क्षेत्र हैं? अमेजन बेसीन का महत्व इस सम्बन्ध में कम क्यों हो गया है? भारत में बागाती रबड़ के उत्पादन की क्या संभावनायें हैं? (एम० ए० १९४९)

३९. एशिया के मानसून देशों में चाय के उत्पादन पर एक लेख लिखिये। (एम० ए० १९५०)

४०. विश्व में कपास के उत्पादन पर प्रकाश डालिये और बताइये कि कपास के निर्यात व्यापार में भारत की क्या स्थिति है? (एम० ए० १९५१)

४१. विश्व के प्रमुख गेहूँ उत्पादक देशों का वर्णन करिये। (एम० ए० १९५१)

४२. विश्व में ऊन और वैजीटेबिल घी के उत्पादन पर लेख लिखिये। (एम० ए० १९५२)

४३. विश्व में 'फलों के उत्पादन' पर एक लेख लिखिये। प्रमुख रसदार फलों और शीतोष्ण कटिबन्धीय फलों का वर्णन करते हुए बताइये कि उन पर कौन से उद्योग आधारित हैं। (एम० ए० १९५३)

४४. चाय और रबड़ का विश्व उत्पादन बताते हुए उनके लिए अनुकूल भौगोलिक दशाओं का भी वर्णन करिये। (एम० ए० १९५४)

अध्याय २१

खनिज पदार्थ

(Mineral Resources)

जो वस्तुएँ पृथ्वी के धरातल अथवा उसके गर्भ से खोद कर निकाली जाती हैं उन्हें खनिज पदार्थ कहते हैं। खनिज पदार्थ वह प्राकृतिक रूप से निकलने वाली वस्तु है जिसकी अपनी भौतिक विशेषतायें होती हैं और जिनकी बनावट को रासायनिक गुणों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।[1] जिन विशेष स्थानों से यह निकाले जाते हैं, उन्हें खदानें (Mines) कहते हैं। खनिज पदार्थ जिन कच्ची धातुओं में मिलते हैं उन्हें 'Ore'[2] कहते हैं। वर्त्तमान युग में खनिज पदार्थों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि जिस देश में खनिज पदार्थों का अगाध भंडार भरा है वही देश आज विश्व में सबसे अधिक आर्थिक, औद्योगिक और व्यापार सम्बन्धी उन्नति कर सका है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस, इङ्गलैंड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम और जापान आदि ऐसे ही राष्ट्र हैं जिन्होंने अन्य देशों की अपेक्षा अधिक उन्नति की है। आधुनिक सभ्यता बहुत अंशों तक खनिज पदार्थों पर ही निर्भर है। कृषि सम्बन्धी यन्त्र, मिलों सम्बन्धी यन्त्र, हथियार, आवागमन के विभिन्न वाहक, जैसे रेलगाड़ियाँ और एंजिन, हवाई जहाज, जलयान आदि वस्तुओं से लेकर सुई, कैंची और भारी मोटरें और फौजी टैंक तथा अन्य दैनिक कार्यों में आने वाली वस्तुएँ, सिक्के, आभूषण और निवास-गृह आदि सभी किसी न किसी प्रकार के खनिज पदार्थों द्वारा ही बनाये जाते हैं। अतएव कृषि, उद्योग, यातायात और संदेशवाहन आदि सभी का विकास खनिज सम्पत्ति पर ही अवलम्बित है। खनिज पदार्थों की खोज के कारण ही आज विश्व के उष्णतम मरुस्थल (आस्ट्रेलिया और कालाहारी) तथा ठण्डे मरुस्थल (विशेषकर अलास्का) का आर्थिक विकास सम्भव हो सका है।

---

१. "A mineral is a naturally occurring chemical compound either constant in its composition or varying within narrow limits"—Stamp: A Commercial Geography, p. 104-5.

"A mineral may be defined as a naturally occurring substance that has a distinctive set of physical properties and a composition expressible by a chemical formula."—Longwell, Knopf and Flint : Physical Geology, 1948.

२. "An Ore is a mineral aggregate from which one or more minerals can be extracted at a profit"—Longwell, Knopf & Flint.

यदि यह कहा जाय कि "मानव के विकास और प्रगति में इतिहास तथा खनिज पदार्थों का अटूट सम्बन्ध रहा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।" "पाषाण युग" (Stone Age), 'ताम्रयुग' (Bronze Age), 'लोह युग' (Iron Age), 'स्पात युग' (Steel Age), 'अणु-युग' (Atomic Age) आदि शब्द मानव उत्थान की विभिन्न सीढ़ियों में खनिज पदार्थों का महत्व दर्शाते हैं। ज्यों-ज्यों मानव सभ्यता की सीढ़ियों पर चढ़ता गया त्यों-त्यों उसने अपने व्यवहार में आने वाले खनिज पदार्थों में भी परिवर्तन किया। वर्तमान युग में लोहे और स्पात का उपयोग अन्य खनिज पदार्थों के साथ—निकल, वैनेडियम, टंगस्टन, क्रोमीयम आदि—बहुत अधिक होता है। वास्तव में यदि लोहे और स्पात का प्रयोग करना बन्द कर दिया जाय तो हमारे कृषि, खनिज, वन, कलाकौशल और यातायात के उद्योग एक प्रकार से पंगु हो जावेंगे।[1]

खनिज पदार्थों की विशेषताएँ—(१) यह कहना सत्य ही प्रतीत होता है कि खान खोदना प्रकृति की सम्पत्ति का अपहरण करना (Exploitation) है, क्योंकि कृषि की भाँति खनिज पदार्थों का उत्पादन नहीं किया जा सकता है। मानव खनिज पदार्थों का केवल उपभोग कर सकता है; वह उन्हें अपने इच्छित स्थान पर, अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पैदा नहीं कर सकता। कारण स्पष्ट है, खनिज सम्पति का परिमाण सीमित होता है। यह परिमाण इच्छानुकूल बढ़ाया नहीं जा सकता। भूगर्भ से एक बार निकाले जाने पर उतनी मात्रा में खनिज सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं। इसीलिये यह कहा जाता है कि खान खोदना एक प्रकार की डकैती (Robber Economy) है क्योंकि इसके द्वारा जो खनिज पदार्थ एक बार निकाल लिये जाते हैं, उनकी पूर्ति करना असम्भव होता है। जिस गति से आज खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं, उसे देखकर विद्वानों का कहना है कि निकट भविष्य में इन पदार्थों की भारी कमी पड़ जायगी। पश्चिमी देशों में विशेषकर उत्तरी अटलांटिक महासागर के निकटवर्ती देशों में जस्ता, टिन, सीसा, ताँवा, राँगा और मैंगनीज आदि खनिज पदार्थ कम होते जा रहे हैं और अब उनका नई जगहों में निकाला जाना सन्देहजनक है। ऐसे प्रदेश अभी भी पृथ्वी पर बहुत से हैं विशेषकर पूर्वी एशिया के देश (जापान, चीन, ब्रह्मा, भारत आदि) जिनमें खनिज पदार्थ बहुत दवे पड़े हैं, किन्तु अभी तक उन्हें पूर्णतया निकाला नहीं गया है। पिछले कुछ समय से पाश्चात्य देशों के संसर्ग में आकर अब यह देश भी अपने खनिज पदार्थों को निकालने में आगे बढ़ रहे हैं।

(२) कृषि पदार्थों की भाँति खनिज पदार्थ भिन्न-भिन्न स्थानों पर पैदा नहीं किये जा सकते क्योंकि वे प्रकृति की देन हैं और पृथ्वी के गर्भ में छिपे रहते हैं। खनिज सम्पत्ति का वितरण पूर्णतया पृथ्वी की बनावट पर निर्भर रहता है, भौगोलिक दशाओं पर नहीं। पृथ्वी के धरातल पर साधारणतया दो प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। पहले प्रकार की चट्टानें पुरानी और सख्त होती हैं,

---

१. Case & Bergsmark : *Ibid*, p. 613.

यह धातु पदार्थों में बड़ी धनी होती हैं। यही कारण है कि ब्राजील के पठार, गायना के पठार, दक्षिणी अफ्रीका, प्रायद्वीपीय भारत और आस्ट्रेलिया के बड़े पठार जो सभी भाग प्राचीन काल के गोंडवाना लैंड प्रदेश के अन्तर्गत आते थे—तथा अंगारालैंड और कैनेडियन शील्ड आदि भागों में असंख्य परिमाण में लोहा, सोना, ताँबा, मैंगनीज, हीरे आदि पदार्थ पाये जाते हैं जबकि अन्य प्रदेश खनिज पदार्थों में दरिद्र हैं।

दूसरे प्रकार की चट्टानें वे होती हैं जो पृथ्वी के धरातल पर नई ही बनी हैं। इनमें खनिज पदार्थों की मात्रा बिल्कुल नहीं होती, क्योंकि इन चट्टानों में ज्वालामुखी परिवर्तनों का प्रभाव नहीं पहुँच पाया है। इसीलिये विश्व के आल्पस, हिमालय, रॉकी और एण्डीज पर्वत खनिज पदार्थों में बहुत ही निर्धन हैं। सिंध-गंगा के मैदान, ह्वांगो और यांगटिसीक्यांग नदियों के मैदानों में भी किसी प्रकार के खनिज पदार्थ नहीं पाये जाते।

(३) खनिज पदार्थ खाने-पीने की वस्तुएँ न होने के कारण उनकी माँग बहुत कम होती है। इसलिये उनकी मांग में काफी घटा-बढ़ी होती रहती है और इसी के अनुसार उनके उत्पादन की मात्रा में भी कमी या वृद्धि होती रहती है। साधारणतया शान्तिकाल की अपेक्षा युद्धकाल में हथियार आदि बनाने के लिये धातुओं की माँग बढ़ जाया करती है। किन्तु युद्ध समाप्त होते ही उनकी माँग में एक दम कमी पड़ जाती है। जबकि कृषि पदार्थ दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रयुक्त होने के कारण सदैव ही एक-सी माँग वाले होते हैं।

(४) खान खोदने के व्यवसाय में खान की गहराई का भी विशेष महत्त्व होता हैं, क्योंकि जितनी ही खान अधिक गहरी होती है उतना ही खनिज निकालने का व्यय भी बढ़ता जाता है। खानें अधिक गहरी होने की दशा में—अधिक गर्मी और हवा का अभाव होने के कारण—मजदूरों का कार्य करना भी कठिन हो जाता है। गहराई के साथ-साथ न केवल गर्मी ही बढ़ती जाती है बल्कि खानों के अन्दर रेल आदि डालने और पदार्थों को उठाने और उनको धरातल तक लाने में काफी व्यय करना पड़ता है। अतएव किसी स्थान विशेष पर खानें तभी खोदी जाती हैं जबकि वहाँ खनिज पदार्थों का निकालना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हो।

(५) चूँकि खनिज सम्पत्ति का परिमाण सीमित होता है—अतएव खानों में काम करने का धन्धा अस्थायी होता है और इसीलिये पर्याप्त मात्रा में श्रमिक भी खानों के लिए नहीं मिल पाते और जो मिलते हैं उनकी मजदूरी भी अधिक होती है।

(६) खनिज पदार्थों का विकास बहुत कुछ यातायात के साधनों पर निर्भर रहता है। अतएव जिन स्थानों में जैसे—पहाड़ी भागों अथवा गर्म मरुस्थलों में जहाँ यातायात के साधनों की पूर्ण सुविधा नहीं है, वहाँ खनिज पदार्थों के अत्यधिक मात्रा में होने पर भी उनको ठीक प्रकार नहीं निकाला जाता।

हर देश में कुछ न कुछ खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। जिस देश में जितने अधिक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं वह उतना ही सम्पन्न समझा जाता है। किन्तु ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ सारे ही खनिज पदार्थ पाये जाते हों।

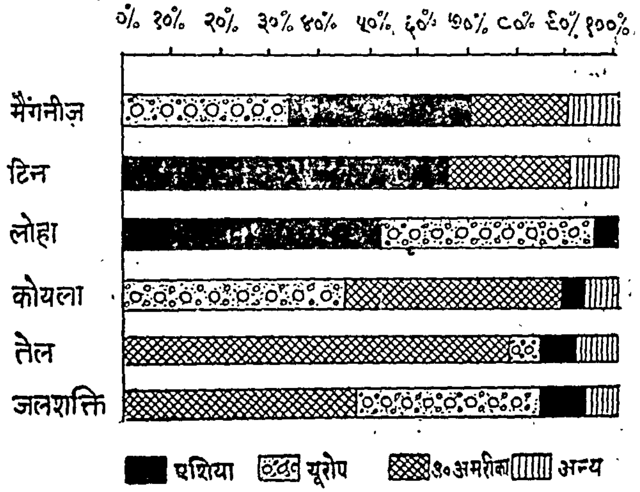

चित्र १६८—महाद्वीपों में खनिज पदार्थ उत्पादन

अतएव हर देश को कुछ न कुछ खनिज पदार्थों का दूसरे देशों से आयात करना पड़ता है। इस प्रकार सारे ही देश खनिजों के सम्बन्ध में एक दूसरे पर आर्थिक रूप से निर्भर रहते हैं। अगले पृष्ठ की तालिका में यह बताया गया है, कि विभिन्न देश अमुक खनिज पदार्थों में कहाँ तक आत्मनिर्भर हैं।

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि खनिज पदार्थों का उत्पादन और नियन्त्रण कुछ ही देशों तक सीमित है। सन् १९३९ में खनिज पदार्थों के कुल उत्पादन का ३४% संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, २३% ब्रिटिश साम्राज्य, १०% रूस, ७½% जर्मनी और ६% इंगलैण्ड से प्राप्त हुआ था।[1] द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विश्व के आठ बड़े देशों में कुल खनिज उत्पादन का ८५% भाग उपभोग में लाया गया। यह देश क्रमशः सं० रा० अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, बेल्जियम, फ्रान्स, जर्मनी, इटली और जापान हैं। किन्तु अकेले रूस को छोड़कर सभी देश खनिज पदार्थों के लिए अन्य देशों पर निर्भर हैं। शताब्दियों से विश्व की दो बड़ी शक्तियाँ—अमेरिका और ब्रिटेन—खनिज उत्पादन में महत्वपूर्ण रहे हैं क्योंकि उपनिवेशों में इन्हीं देशों के नियन्त्रण में खनिज सम्पत्ति रही है और यदि यह कहा जाय कि वस्तुतः ये दोनों देश विश्व के कुल उत्पादन के ¾ पर नियन्त्रण रखते हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी।

ज्यों-ज्यों यांत्रिक उन्नति होती गई त्यों-त्यों ब्रिटेन, सं० राष्ट्र के पूर्वी

१. Leith, Furness and Lewis: World Minerals and World Peace, 1943, p. 224-226.

भाग और पश्चिमी तथा मध्यवर्ती यूरोप में कल-कारखानों का विकास होता गया। इसके फलस्वरूप यहाँ खनिज पदार्थों का उपभोग भी बढ़ता गया। फलतः यहाँ के निवासियों ने विश्व के अन्य भागों में जाकर खनिज सम्पत्ति प्राप्त करने के प्रयास किये। इसी प्रगति के परिणाम स्वरूप आज हम संयुक्त राष्ट्र में मिसीसिपी नदी के पूर्वी क्षेत्र में तथा ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिमी और मध्यवर्ती यूरोप तथा रूस और साइबेरिया में एक विस्तृत शक्ति की पट्टी (Power Belt) पाते हैं जहाँ विश्व में सम्भवतः सबसे अधिक खनिजों का उपभोग होता है और फलत: औद्योगिक विकास भी इस क्षेत्र का अपनी चरम सीमा तक पहुँच सका है। इस क्षेत्र में कोयले, पैट्रोल और विद्युतशक्ति से प्राप्त होने वाली शक्ति का ९०% उपभोग में आता है। यहाँ बिखरे हुए भागों में विश्व का ९०% कच्चा लोहा और स्पात बनाया जाता है। इसकी तुलना में उत्तरी अटलांटिक के शक्ति-क्षेत्र तथा सम्पूर्ण दक्षिणी गोलार्द्ध में विश्व के उत्पादन की केवल ३% शक्ति प्राप्त होती है और यहाँ केवल २% लोहे और स्पात का उत्पादन होता है तथा अन्य खनिजों का उपभोग भी कम होता है।[१]

सौभाग्यवश अब एशिया में भारत, चीन, जापान और द० अमरीका में ब्राजील, अर्जेन्टाइना और चिली में औद्योगिक विकास आरम्भ हो गया है।

भारत में खनिज पदार्थों का वितरण—भारतवर्ष में सिन्ध, गंगा और ब्रह्मपुत्र का मैदान अभी हाल ही में नई चट्टानों से बना है जिसमें कई हजार फीट की गहराई तक चिकनी मिट्टी और बालू की तह है। यहाँ सिवाय कंकड़ के (जो सड़क बनाने के काम में आता है) और कोई खनिज पदार्थ नहीं मिलता। दक्षिणी पठार बहुत ही पुराने समय में पुरानी चट्टानों से बना है। इस प्राचीन बनावट के बहुत बड़े-बड़े भाग पर्तदार चट्टानों, बालू के पत्थरों और चूने के पत्थरों से ढके हुए हैं। लगभग चौथाई प्रायद्वीप दक्षिण के पठार के अन्तर्गत आता है जो कई हजार फीट मोटी लावा प्रवाहों की चट्टानों से ढका हुआ है। ये चट्टानें खनिज पदार्थों से शून्य हैं। अत्यन्त प्राचीन चट्टानों से कई बहुमूल्य खनिज पदार्थों की प्राप्ति होती है यथा, लोहा, मैंगनीज, तांबा, क्रोमीयम, सोना और औद्योगिक पदार्थ—अभ्रक, मैगनेसाइट, ग्रैफाइट, सेलखड़ी, लैमेनाइट, मौनेजाइट, गार्नेट, एस्बस्टस, जर्कन आदि मिलते हैं। बालू के और चूने के पत्थर तो सर्वत्र ही मिलते हैं।

भारत में खनिज पदार्थों का वितरण बहुत ही असमान है। डा० डन का कहना है कि "यदि एक रेखा दक्षिण में मंगलौर से कानपुर तक और वहाँ से हिमालय पर्वत तक खींची जाये तो जो भाग इसके पूर्व में होंगे वे सभी खनिज पदार्थों में धनी तथा पश्चिम की ओर के भाग—राजस्थान में अभ्रक, नमक, शीशा तथा पंजाब में कोयला और मिट्टी का तेल तथा पाकिस्तान में बलूचिस्तान में गंधक और क्रोमाइट पाने वाले भागों को छोड़कर—खनिज पदार्थों में बिल्कुल ही निर्धन हैं।"

---

१. Leith, Furness and Lewis: World Minerals & World Peace, 1943, p. 32.

वैयक्तिक रूप से तो राज्यों में भी खनिज पदार्थों का वितरण बिल्कुल ही असमान है। बिहार और छोटा नागपुर का पठार तो संसार में सबसे धनी भाग माने जाते हैं जहाँ सम्पूर्ण भारत के लगभग ४० प्रतिशत खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं। यहाँ कोयला, लोहा, क्रोमाइट, तांबा, अभ्रक, फॉस्फेट्स, बाक्साइट, इलेमैनाइट, मैंगनीज आदि खूब निकाले जाते हैं। यह भाग खनिज पदार्थों का भण्डार कहा जाता है। बिहार प्रान्त के दो जिलों और उनसे संलग्न उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में उत्तम लोहे के ८०,००० लाख टन का जमाव है। यहाँ विश्व के सबसे अच्छे किस्म का अभ्रक (५०%) और मैंगनीज धातु भी मिलते हैं। खनिज पदार्थों में दूसरा धनी प्रान्त मध्य प्रदेश है जिसमें उत्तम किस्म का लोहा, मैग्नेसाइट, मैंगनीज, अभ्रक, चूना तथा लिगनाइट कोयला मिलता है। भारत में प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण सोना मैसूर राज्य में मिलता है जहाँ चिकनी मिट्टी, तथा लोहे की खानें भी हैं। ट्रावनकोर में काँच के लिए उत्तम श्रेणी की बालू, मोनेजाइट, जिरकन, गार्नेट पाया जाता है। आसाम में मिट्टी का तेल और कोयला मिलता है। हिमालय पर्वत के दक्षिण पश्चिमी भाग में काश्मीर राज्य में कोयला, बाक्साइट और रत्न मिलते हैं। पश्चिमी बंगाल में केवल कोयले का जमाव है किन्तु दामोदर नदी की घाटी खनिज पदार्थों की दृष्टि से बहुत धनी है। यहाँ सम्पूर्ण भारत में उत्पन्न होने वाले ताँबे का १००%, कियेनाइट का १००%, लोहा ६३%, कोयला, ८०%, क्रोमाइट ७०%, अभ्रक ७०%, फायर क्ले ५०%, एस्वस्टस ४५%, चीनी मिट्टी ४५%, चूने का पत्थर २०% और मैंगनीज १०% मिलता है।[१] नैपाल में कोबाल्ट, निकल और तांबा तथा सिक्किम और भूटान में केवल ताँबा प्राप्त होता है। इन पर्वतीय प्रदेशों को छोड़कर सम्पूर्ण हिमालय पर्वत खनिजों में निर्धन है। पूर्वी पंजाब, बम्बई, उत्तर प्रदेश और मध्य भारत भी खनिज पदार्थों से शून्य हैं किन्तु पिछले कुछ समय से राजस्थान में निकाले गये खनिज पदार्थों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। यहाँ अभ्रक, बेरीयम, एस्वस्टस, पन्ना, ताँबा, शीशा और जस्ता निकाले जाने लगे हैं।[२]

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि भारत में प्रायः सभी प्रकार के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री वी० बॉल का कथन उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि, "भारत के गर्भ में कई खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं। यदि विश्व के सभी देशों से भारत का सम्बन्ध न होता अथवा यदि यहाँ निकाले गये खनिजों को विदेशों की प्रतिस्पर्धा से बचाया जा सकता तो इसमें कोई संशय नहीं कि भारत अपने देश ही में प्राप्त हुए खनिज पदार्थों से सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता।"[३] भारतीय औद्योगिक

१. देखिये C. N. Vakil : "Economic Consequences of Divided India" पृ० २१८

२. देखिये D. N. Wadia : Geological and Geographical Distribution of India's Minerals."

३. देखिये V. Ball : "Economic Geology of India." पृ० १५

देश के विस्तार तथा जनसंख्या को देखते हुए यह कहना कठिन है कि देश में खनिज अत्यधिक हैं। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि देश खनिज पदार्थों की दृष्टि से निर्धन नहीं है। जहाँ तक खनिज पदार्थों का प्रश्न है ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ भारत में यथेष्ट राशि में हैं और भारत उन्हें विदेशों को भेज सकता है। कुछ ऐसे खनिज पदार्थ हैं जो भारत की आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं और कुछ ऐसे खनिज पदार्थ भी हैं जिनके लिये भारत को विदेशों पर निर्भर रहना होगा।[1]

१. वे खनिज पदार्थ जिनको भारत बाहर भेजता है—लोहा, अबरख, टीटैनियम।

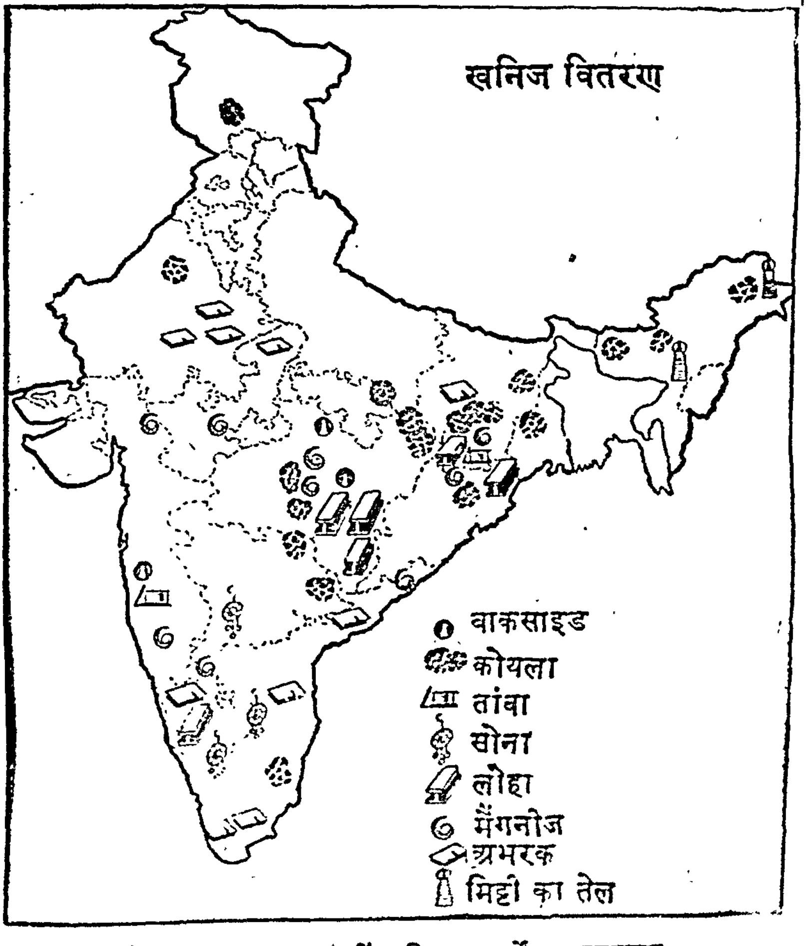

चित्र १६६—भारत में खनिज पदार्थों का उत्पादन

१. देखिये D. N. Wadia : "Mineral Outlook of India" (in Science & Culture : May, 1942) पृ० 517

२. खनिज पदार्थ जो पर्याप्त मात्रा में निर्यात किये जा सकते हैं — मैंगनीज, सेलखड़ी, बेरील, बाक्साइट, मैगनेसाइट, मोनोज़ाइट, सीलिका, ग्रैनाइट, कोरंडम, सीएटाइट आदि।

३. वे खनिज़ पदार्थ जो भारत की आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त हैं —कोयला, सीमेण्ट के लिये आवश्यक पदार्थ, एलूमीनियम, सोना, तांबा क्रोम, इमारती पत्थर, संगमरमर, स्लेट, औद्योगिक मिट्टियाँ, रेडियम, लवण, शोरा, लाइम स्टोन और डोलोमाइट, शीशे का रेत, बोरेक्स, नाइट्रेट, फासफेट्स, जिरकन, आरसेनिक, एण्टीमनी, बहुमूल्य पत्थर, वैनेडियम, फैलसपार, बैराइट।

४. वे खनिज पदार्थ जिनके लिये भारत को मुख्यतः विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है—चांदी, निकल, पैट्रोलियम, गन्धक, सीसा, जिंक, टिन, पारा, टंगस्टन, प्लैटिनम, ग्रेफाइट, अस्फाल्ट, पोटाश, मोलीबिड्नम।

भारत में सन् १६५५ में खनिज़ पदार्थों का उत्पादन

लोहा	४,२४० हजार टन
मेंगनीज	१,३८० ,,
कोयला	३८,२०८ ,,
इलेमैनाइट	२११ ,,
बाक्साइट	६७ ,,
चीनी मिट्टी	५४ ,,
क्रोमाइट	१५ ,,
ग्रैफाइट	१·५ ,,
जिप्सम	२०३ ,,
मैगनेसाइट	१११ ,,
तांबा	७,२८१ टन
सीसा	२,२३४ टन
एलुमुनियम	७,२२५ टन
अभ्रक	४६० हण्डरवेट
नमक	७३,६०४ मन
सोना	२,११,४६४ औंस
हीरा	१,६७४ कैरेट

हम खनिज पदार्थों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से भी करते हैं:—

खनिज पदार्थ (Minerals)

- धातु खनिज (Metallic)
  - १. बहुमूल्य (Precious metals)
    - सोना
    - चाँदी
    - प्लैटीनम
    - पैलेडियम
  - २. हल्की धातुएँ (Light Metals)
    - मैगनेशियम
    - टाईटैनियम
    - अल्यूमीनियम
  - ३. साधारण धातुएँ (Ordinary Metals)
    - ताँबा
    - टिन
    - सीसा
    - जस्ता
    - लोहा
    - राँगा
    - पारा
  - ४. धातुमेल (Ferro-Alloys)
    - क्रोमीयम
    - मैंगनीज
    - टंगस्टन
    - मोलीबिडेनम
    - सुरमा
    - बैरीलियम
  - ५. कठिनाई से मिलने वाली (Rare)
    - थोरीयम
    - वैनेडियम
    - यूरेनियम
- अधातु खनिज (Non-Metallic)
  - १. ईंधन (Fuels)
    - कोयला
    - मिट्टी का तेल
    - प्राकृतिक गैस
    - अणुविक शक्ति
  - २. अन्य धातुएँ
    - गन्धक
    - शोरा
    - सल्फेट
    - फॉस्फेट
    - चूने के पत्थर
    - संगमरमर
    - ग्रेनाइट
    - फैल्सपार
    - डोलोमाइट
    - मैगनेसाइट
    - फायोलाइट
    - अभ्रक
    - एस्बस्टस
    - हरसौठ
    - ग्रैफाइट

अध्याय २२

खनिज पदार्थ (क्रमशः)

लोहा और अलॉय खनिज
(Iron And Alloy Minerals)

इस अध्याय में हम लोहा और अन्य (Alloy) धातुओं का अध्ययन करेंगे।

(१) लोहा (Iron)

आधुनिक काल में एलूमीनियम को छोड़ कर संसार में और किसी धातु का इतना प्रयोग नहीं होता, जितना कि लोहे का। यदि यह कहा जाय कि लोहा आधुनिक सभ्यता की जननी है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि आज के युग में मानव के प्रयोग में आने वाली दैनिक वस्तुओं में से अधिकांश लोहे से ही बनाई जाती हैं। अतएव आधुनिक युग को 'लोहे और स्पात का युग' कहा जा सकता है। सुई, चाकू, कैंची छुरियाँ आदि से लगाकर कृषि-यन्त्र, वस्त्र बनाने की मशीनें तथा जलयान, एंजिन, मोटर गाड़ियाँ और इमारतें तक सभी लोहे से ही बनाई जाती हैं। सच तो यह है कि लोहे का ६०% भाग स्पात बनाने के काम में आता है[1], जिसके द्वारा भारी भरकम, मजबूत, टिकाऊ वस्तुएँ बनाई जाती हैं क्योंकि स्पात का मुख्य गुण उसकी सख्ती और टिकाऊपन है। लोहे के इतने अधिक मानव के उपयोग में आने के मुख्य कारण उसका धरातल पर आसानी के साथ मिलना, खपत के केन्द्रों के नजदीक खानों का होना, और लोहे में कुछ विशेष गुणों का होना है जैसे भारीपन, टिकाऊपन, सस्तापन, लचीलापन और उसको तारों में खींचे जाने की क्षमता होना है।[2] जिन देशों में लोहे के भण्डार पाये जाते हैं अथवा जिन्हें लोहा और कोयला अन्यन्त्र स्थानों से सरलता-पूर्वक मिल जाता है उन्होंने ही आधुनिक युग में औद्योगिक प्रगति, राजनैतिक

---

१. Smith, Phillips and Smith: Industrial and Commercial Geography; p. 340-41.

२. Op. cit; p. 340 और Case and Bergsmark: *Ibid*, p. 615:

"By alloying it with smaller amounts of other metals and by special treatment in the furnace, iron may be given various qualities such as extreme hardness, toughness, elasticity, durability, brittleness, density, porosity and resistence to corrosion or oxidation. No other metal has been adapted to so many uses, and none is so easily and cheaply produced."

सत्ता और धन की प्राप्ति की है। ये देश फौजी प्रगति में भी अग्रणी हैं। कोयला आधुनिक काल को गति प्रदान करता है और लोहा और स्पात औद्योगिक उन्नति में महान् योग देते हैं। अतएव: कोयला और लोहा आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के दो लाभ हैं जिनके न होने पर सभ्यता के शिखर का स्थायी रहना असम्भव-सा प्रतीत होने लगेगा।[1]

लोहे की बनावट आदि—लोहा पृथ्वी के धरातल पर कभी भी परिष्कृत रूप में नहीं पाया जाता है। लोहे में जल्दी ही जंग लग जाता है। लोहे में कई प्रकार की अशुद्धियाँ मिली रहती हैं जैसे—सिलीका, गन्धक, अल्यूमीनिया, फास्फोरस, संखिया आदि। यह अशुद्धियाँ प्राय: दो प्रकार की होती हैं। यदि कच्ची धातु में टाइटैनियम फास्फोरस ताँबा या गन्धक मिला रहता है, तो उसमें धातु निम्न श्रेणी की और हल्की होती है, क्योंकि यह अशुद्धियाँ लोहे को कमजोर बना देती हैं और लोहे के टूटने या चूरा हो जाने का डर रहता है। लोहे का मूल्य भी कम हो जाता है। किन्तु यदि कच्ची धातु में मैंगनीज, चूना, क्रोमियम मिला रहता है, तो उनसे लोहे का गुण बढ़ जाता है।

वैसे तो लोहा पृथ्वी के सभी भागों में थोड़ी-बहुत मात्रा में पाया जाता है, किन्तु निकाला वहीं जाता है जहाँ वह काफी मात्रा में वर्तमान हो। पृथ्वी के धरातल पर मिट्टी के लाल, पीले और बादामी रंग के होने का मुख्य कारण उनमें लोहे की उपस्थिति का होना है। किन्तु केवल थोड़े से स्थानों में ही लोहा इतना अधिक केन्द्रीभूत हो पाया है कि उसे खानों से खोदकर निकाला जा सके। अनुमान लगाया गया है कि लोहा प्रकृति में पाये जाने वाले पदार्थों में परिमाण की दृष्टि से चौथा है। पृथ्वी की ऊपरी पर्त का ४·६% भाग लोहा ही है। अल्यूमीनियम पृथ्वी के ८·२%; कैलशियम ३·५%; मैग्नेशियम २·६%; सोडियम २·६% और पोटेशियम २·४% भाग का निर्माण करते हैं। किन्तु लोहा प्रयोग की दृष्टि से सबको मात कर देता है। इसको व्यावसायिक तौर पर निकालने का काम वहीं किया जाता है जहाँ कच्ची धातु में लोहे की मात्रा कम से कम ५०% हो, और जहाँ पहुँचना सरल हो, तथा जो क्षेत्र बाजारों और औद्योगिक केन्द्रों के निकट हों। इन सब सुविधाओं के कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अधिक लोहा निकाला जाता है। किन्तु ब्राजील में उत्तम प्रकार के लोहे के जमाव होते हुए भी वहाँ खानें खोदना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं हुआ है। जहाँ धातु में लोहे का अंश ३०% से कम होता है वहाँ लोहा नहीं निकाला जाता। संसार में लोहे के सबसे अधिक धनी जमाव (धातु का अंश ६५% द० आस्ट्रेलिया में आयरन-नॉब जिले; द० रूस में, क्रिवाय रॉग जिले; पूर्वी ब्राजील में इताबीरा जिले में एलटोफो; स्वीडेन में किरूना जिलों में पाये जाते हैं।

---

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid* p. 340.
"Verily Coal and Iron are twin pillars of physical strength underlying the civilization of today."

लोहे की किस्में (Kinds of Ore)—लोहे की कच्ची धातु उसमें मिले रासायनिक पदार्थों के कारण चार प्रकार की हो सकती है :—

मैग्नेटाइट (Magnetite)—यह काले रंग का होता है और इसमें लोहे व आक्सीजन के सम्मिश्रण में चुम्बकीय गुण पाया जाता है (Magnetic Black ore) । इसमें लोहे की मात्रा ७२·४% तक होती है । इस प्रकार की धातु आग्नेय चट्टानों में छोटे-छोटे कणों के रूप में बिखरी हुई पाई जाती है । यह सबसे उत्तम प्रकार का लोहा होता है जो स्वीडेन से प्राप्त होता है ।

हेमेटाइट (Hametite)—यह लाल व स्लेटी रंग (Red or gray Iron oxide) का होता है, तथा इसमें लोहे और आक्सीजन का सम्मिश्रण होता है । इसमें लोहे का ७०% होता है । इस प्रकार की धातु सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि संसार में पाये जाने वाले लोह-संग्रह का सबसे अधिक भाग इसी प्रकार की धातु का है । दूसरे, इस कच्ची धातु से अन्य धातुओं की अपेक्षा अधिक सरलतापूर्वक लोहा पृथक् किया जा सकता है । इस प्रकार की धातु इंग्लैंड में लंकाशायर और कम्बरलैण्ड में; संयुक्त राष्ट्र में सुपीरियर झील के आस-पास; रूस में यूक्रेन तथा स्पेन में बिलवाओं में मिलती है । स्वीडन ब्राजील, अलजीरिया और क्यूबा में भी यह धातु पाई जाती है ।

लिमोनाइट (Lemonite)—यह पीले रंग की अथवा भूरे रंग (Brown Hydrated Iron Oxide) की होती है । इसमें धातु का अंश ६०% के लगभग होता है । यह पर्त्तदार चट्टानों में पाया जाता है । अतएव यह समुद्र के पास वाले प्रदेशों में छिछले पानी में जमी हुई पुरानी चट्टानों से निकाला जाता है । इसमें लोहा, आक्सीजन और हाइड्रोजन का सम्मिश्रण होता है । फ्रांस में एलसेस लारेन और इंग्लैण्ड में क्लीवलैण्ड, लिंकन और नारदम्टनशायर की खानों में यह धातु पायी जाती है ।

सिडेराइट (Siderite)—इसका रंग राख जैसा होता है । यह लोहे और नमक (Iron Carbonate) के मिलने से बनती है । कच्ची धातु में लोहे का अंश ४८% तक होता है । इसमें लोहे और कार्बन का सम्मिश्रण होता है इस प्रकार की धातु में अशुद्धियाँ अधिक मिली रहने के कारण इसका मूल्य घट जाता है । इसको साफ करने में कम ईंधन और कम गलाने की वस्तुओं (Flux) की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इसमें स्वतः ही चूना और कोयला मिला रहता है ।

लोहे में पत्थर आदि अनेक अशुद्धियाँ पाई जाती हैं । इस प्रकार के लोहे को कच्चा लोहा (Iron ore) कहते हैं । इन अशुद्धियों को साफ करने के लिए कच्ची धातु को साधारणतया चूना, कोयला और मैंगेनीज मिलाकर काफी तेज आँच वाली भट्टियों में गलाया जाता है । चूने का पत्थर धातु की अशुद्धता को सोख लेता है और इस प्रकार साफ किये हुए लोहे को ढला हुआ लोहा (Pig Iron) कहते हैं । इसमें कार्बन, गन्धक और फासफोरस जैसी अशुद्ध

वस्तुयें मौजूद रहती हैं। इससे बनी हुई वस्तुयें ढली लोहे की वस्तुयें (Cast iron) कहलाती हैं। ढले हुए लोहे को अगर दुबारा गर्म किया जाय, और उसमें से कार्बन आदि निकाल दिया जाय तो उसे शुद्ध लोहा (Wrought Iron) कहते हैं। इसके द्वारा चादरें और सलाखें बनाई जाती हैं। किन्तु यह अधिक कठोर नहीं होता और इसके बनाने में समय और खर्च भी बहुत लगता है। शुद्ध लोहे में जब पुनः कार्बन मिला दिया जाता है तो वह बहुत मजबूत और कठोर बन जाता है। इससे कठोर से कठोर मशीनें और शस्त्र आदि बनाये जा सकते हैं। स्पात बनाने के लिए लोहे में क्रोमियम, मैंगनीज, टंगस्टन, वेनेडियम और जस्ता मिलाया जाता है।

लोहे का विश्व वितरण—यद्यपि विश्व के लगभग ४५ देशों में लोहा मिलता है किन्तु ८५% लोहा सं० रा० अमेरिका, रूस, फ्रांस, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और बेलजियम, लक्सम्बर्ग से प्राप्त होता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका विश्व का लगभग २५%, फ्रांस २०%, इंग्लैण्ड ५%, स्वीडेन १०%, जर्मनी

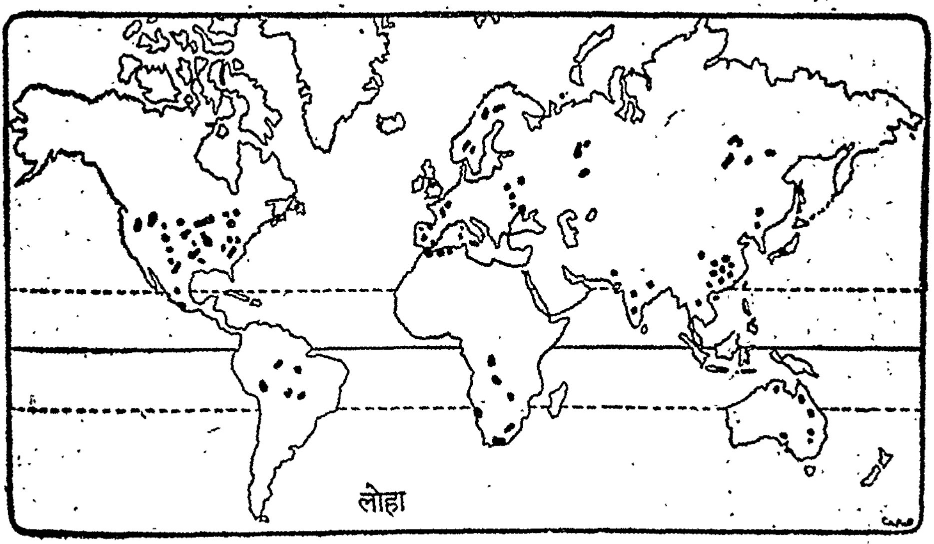

चित्र १७०—विश्व में लोहे का वितरण

४%, स्पेन ३% और भारतवर्ष २% लोहा पैदा करता है। शेष लोहा एलजीरिया, कनाडा, जापान, चिली, आस्ट्रेलिया, ब्राजील आदि देशों में पैदा होता है।

सन् १८०० में लोहे का उत्पादन ५ लाख टन था किन्तु १८६० में यह बढ़ कर ७४ लाख टन हो गया और १९५२ में १०९० लाख टन।

अगली तालिका में कच्चे लोहे का उत्पादन बताया गया है।

सं० रा० अमेरिका में लोहे, धातु का भण्डार
(Billions of long tons)

प्रदेश	५०% से ऊपर (धातु)	३५% से ५०%	२५% से ३५%	योग
सुपीरियर झील	१·६	२·२	६०·०	६३·८
द० पूर्वी भाग	——	——	३·०	३·०
दक्षिणी भाग	——	१·८	९·५	११·३
पश्चिमी भाग	·५	·१	·२	·८
योग	२·१	४·१	७२·७	७८·९

यूरोपीय देश—यूरोप में लोहा उत्पन्न करने वाला प्रमुख देश फ्रान्स है जहाँ विश्व का १०% लोहा निकाला जाता है। यहाँ समस्त उत्पादन का $\frac{9}{10}$ भाग लॉरेन के पठार से प्राप्त किया जाता है जो उत्तर में लक्सम्वर्ग तथा वेल्जियम में फैला हुआ है। यहाँ लोहा निकालने का कार्य तीन घाटियों में किया जाता है। लाँगवी में बेल्जियम की सीमा के निकट ब्री तथा नैन्सी में और दक्षिण की ओर। यहाँ कच्ची धातु की तहें ६० से १२० फुट तक मोटी हैं और जमीन से ३०० से ७५० फुट तक की गहराई पर मिलती हैं। कच्ची धातु में लोहे का अंश ३५ से ४२% तक होता है किन्तु फास्फोरस तथा चूना अधिक मात्रा में पाया जाता है। इस लोहे का अधिकतर प्रयोग वेसिक स्पात बनाने में होता है। थोड़ा-सा लोहा मध्य भाग में सेंट एटीन तथा पिरेनीज और ब्रिटेनी प्रायद्वीप में भी मिलता है।

ग्रेट ब्रिटेन में लोहा उत्पन्न करने वाली पट्टी यार्कशायर तट से दक्षिण पश्चिम की ओर डारसैट तक फैली है। यहाँ का लोहा घटिया किस्म का होता है जिसमें लोहे की धातु केवल २७% ही है। तहें लगभग समतल हैं, और भूमि के ऊपर चट्टानों के रूप में पाई जाती हैं। यहाँ का लोहा भी वेसिक स्पात बनाने के काम में आता है। लोहा मुख्यतः चार क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। (i) उत्तरी पश्चिमी इङ्गलैण्ड में नार्थम्बरलैण्ड, डर्बन और कम्बरलैण्ड में। (ii) क्लीव लैण्ड की पहाड़ियों में, (iii) स्टेफर्डशायर, (iv) स्काटलैण्ड और एडिनवरा में। इन सभी खानों से देश की माँग का केवल दो-तिहाई लोहा प्राप्त होता है। अतएव शेष भाग की पूर्त्ति स्वीडेन, स्पेन, फ्रांस और अल्जीरिया से आयात करके की जाती है।

पहले रूस में बहुत ही थोड़ा लोहा निकाला जाता था, किन्तु अब पिछले कुछ सालों से रूस का उत्पादन अधिक बढ़ गया है। यहाँ निम्नलिखित क्षेत्रों से लोहा प्राप्त किया जाता है—

वस्तुयें मौजूद रहती हैं। इससे बनी हुई वस्तुयें ढली लोहे की वस्तुयें (Cast iron) कहलाती हैं। ढले हुए लोहे को अगर दुबारा गर्म किया जाय, और उसमें से कार्बन आदि निकाल दिया जाय तो उसे शुद्ध लोहा (Wrought Iron) कहते हैं। इसके द्वारा चादरें और सलाखें बनाई जाती हैं। किन्तु यह अधिक कठोर नहीं होता और इसके बनाने में समय और खर्च भी बहुत लगता है। शुद्ध लोहे में जब पुनः कार्बन मिला दिया जाता है तो वह बहुत मजबूत और कठोर बन जाता है। इससे कठोर से कठोर मशीनें और शस्त्र आदि बनाये जा सकते हैं। स्पात बनाने के लिए लोहे में क्रोमियम, मैंगनीज, टंगस्टन, वेनेडियम और जस्ता मिलाया जाता है।

लोहे का विश्व वितरण—यद्यपि विश्व के लगभग ४५ देशों में लोहा मिलता है किन्तु ८५% लोहा सं० रा० अमेरिका, रूस, फ्रांस, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और बेलजियम, लक्सम्बर्ग से प्राप्त होता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका विश्व का लगभग २५%, फ्रांस २०%, इंग्लैण्ड ५%, स्वीडेन १०%, जर्मनी

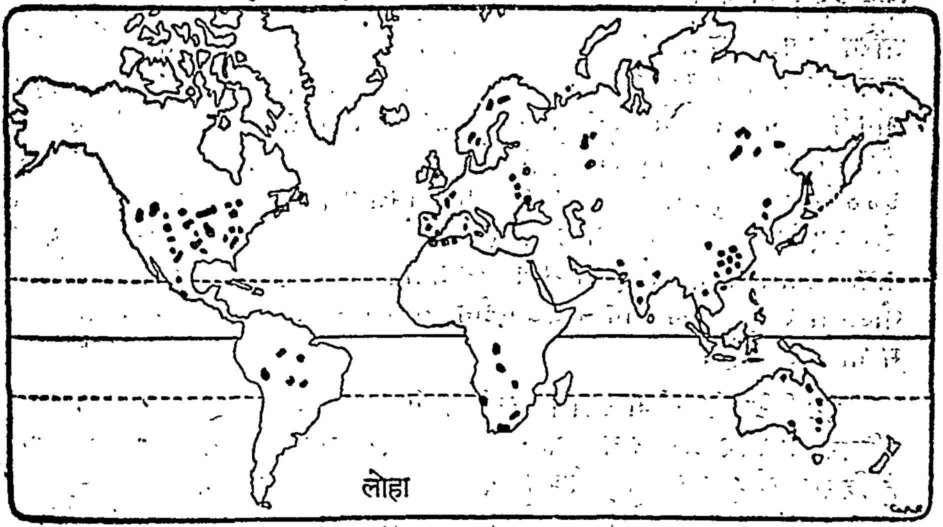

चित्र १७०—विश्व में लोहे का वितरण

४%, स्पेन ३% और भारतवर्ष २% लोहा पैदा करता है। शेष लोहा एलजीरिया, कनाडा, जापान, चिली, आस्ट्रेलिया, ब्राजील आदि देशों में पैदा होता है।

सन् १८०० में लोहे का उत्पादन ५ लाख टन था किन्तु १८६० में यह बढ़ कर ७४ लाख टन हो गया और १९५२ में १०९० लाख टन।

अगली तालिका में कच्चे लोहे का उत्पादन बताया गया है।

सं० रा० अमेरिका में लोहे, धातु का भण्डार
(Billions of long tons)

प्रदेश	५०% से ऊपर (धातु)	३५% से ५०%	२५% से ३५%	योग
सुपीरियर झील	१·६	२·२	६०·०	६३·८
द० पूर्वी भाग	——	——	३·०	३·०
दक्षिणी भाग	——	१·८	९·५	११·३
पश्चिमी भाग	·५	·१	·२	·८
योग	२·१	४·१	७२·७	७८·९

यूरोपीय देश—यूरोप में लोहा उत्पन्न करने वाला प्रमुख देश फ्रान्स है जहाँ विश्व का १०% लोहा निकाला जाता है। यहाँ समस्त उत्पादन का ९/१० भाग लॉरेन के पठार से प्राप्त किया जाता है जो उत्तर में लक्सम्बर्ग तथा बेल्जियम में फैला हुआ है। यहाँ लोहा निकालने का कार्य तीन घाटियों में किया जाता है। लाँगवी में बेल्जियम की सीमा के निकट ब्री तथा नैन्सी में और दक्षिण की ओर। यहाँ कच्ची धातु की तहें ६० से १२० फुट तक मोटी हैं और जमीन से ३०० से ७५० फुट तक की गहराई पर मिलती हैं। कच्ची धातु में लोहे का अंश ३५ से ४२% तक होता है किन्तु फास्फोरस तथा चूना अधिक मात्रा में पाया जाता है। इस लोहे का अधिकतर प्रयोग बेसिक स्पात बनाने में होता है। थोड़ा-सा लोहा मध्य भाग में सेंट एटीन तथा पिरेनीज और ब्रिटेनी प्रायद्वीप में भी मिलता है।

ग्रेट ब्रिटेन में लोहा उत्पन्न करने वाली पट्टी यार्कशायर तट से दक्षिण पश्चिम की ओर डारसैट तक फैली है। यहाँ का लोहा घटिया किस्म का होता है जिसमें लोहे की धातु केवल २७% ही है। तहें लगभग समतल हैं, और भूमि के ऊपर चट्टानों के रूप में पाई जाती हैं। यहाँ का लोहा भी बेसिक स्पात बनाने के काम में आता है। लोहा मुख्यतः चार क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। (i) उत्तरी पश्चिमी इङ्गलैण्ड में नार्थम्बरलैण्ड, डर्बन और कम्बरलैण्ड में। (ii) क्लीव लैण्ड की पहाड़ियों में, (iii) स्टेफर्डशायर, (iv) स्काटलैण्ड और एडिनबरा में। इन सभी खानों से देश की माँग का केवल दो-तिहाई लोहा प्राप्त होता है। अतएव शेष भाग की पूर्त्ति स्वीडेन, स्पेन, फ्रांस और अल्जीरिया से आयात करके की जाती है।

पहले रूस में बहुत ही थोड़ा लोहा निकाला जाता था, किन्तु अब पिछले कुछ सालों से रूस का उत्पादन अधिक बढ़ गया है। यहाँ निम्नलिखित क्षेत्रों से लोहा प्राप्त किया जाता है—

(१) यूक्रेन प्रदेश में क्रीवोईरोग
(२) यूराल के दक्षिण में आर्स्क और मेगनीटीगोरस्क
(३) कुर्स्क की खान से
(४) उत्तरी पश्चिमी भाग में मरमान्स्क के प्रायद्वीप से।
(५) कुजमास प्रदेश में टेलविस क्षेत्र से।
(६) मास्को के दक्षिण में टूला की खान से।

जर्मनी में कच्चा लोहा रूर प्रदेश के दक्षिण की ओर सीजरलैंड को घाटी की खानों से प्राप्त किया जाता है। बैंगलवर्ग, साल्जामिट, पीन, सैक्सोनी, वैस्ट फेलिया, दक्षिणी पूर्वी साईलेशिया और वीजर की खानों से भी उत्तम लोहा प्राप्त किया जाता है। देश की एक-तिहाई माँग इन खानों से पूरी हो जाती है और शेष दो-तिहाई माँग फ्रांस, स्वीडेन और स्पेन से लोहा आयात कर पूरी की जाती है।

थोड़ा-सा लोहा जर्मनी, फ्रांस और बेल्जियम के बीच स्थित लक्समबर्ग देश से भी प्राप्त किया जाता है।

स्वीडेन में कच्चा लोहा मुख्यत: दो क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। प्रथम क्षेत्र उत्तर में ध्रुव प्रदेश के निकट है जिसमें गैलीवरा और किरूना जिले की खानें देश का अधिकांश उत्तम प्रकार का लोहा देती हैं। यहाँ चुम्बकीय पर्वत लोहे के लिए प्रसिद्ध है। इसमें लोहे का अंश ६२% और फासफोरस का अंश एक से दो प्रतिशत तक होता है। दूसरा क्षेत्र दक्षिण भाग में स्टॉकहोम तथा डेनीमोरा के निकट फैला है। इस लोहे में फासफोरस और गंधक का अंश बहुत कम होता है। क्योंकि इस देश में कोयला बहुत कम पाया जाता है अतएव कच्ची धातु को ब्रिटेन, जर्मनी आदि देशों को नोर्विक बन्दरगाह द्वारा निर्यात कर देते हैं।

स्पेन में लोहे के उत्पादन क्षेत्र प्रायद्वीप के किनारे पर फैले हैं। यहाँ अधिकांश खानें १५०० फुट की ऊँचाई से ऊपर स्थित हैं। अत: यहाँ पर लोहे की ढुलाई केवल ढाल की सहायता से होती है। समुद्र के किनारे तक तार की डोलियाँ बँधी होती हैं जिनके सहारे लोहा नीचे आ जाता है। बहुत-सा लोहा धरातल के निकट भी पाया जाता है। किन्तु धरातल पहाड़ी होने के कारण कच्चे लोहे का यातायात बड़ा मँहगा पड़ता है। यहाँ के लोहे में धातु की मात्रा ५०% से ६०% तक होती है। यहाँ का दो-तिहाई लोहा उत्तरी स्पेन के कैन्टेब्रियन क्षेत्र में बिजकाया, विलबाओ, सेन्टेन्डर और एक चौथाई लोहा दक्षिणी स्पेन में जिब्राल्टर के निकटवर्ती भागों और एलमोरिया से तथा शेष एक चौथाई विरेनीज की खानों से प्राप्त किया जाता है।

एशिया—एशिया में यद्यपि चीन में अनेक स्थानों पर लोहे के पठार पाये जाते हैं किन्तु यातायात के साधनों और आवागमन के मार्गों की असुविधा

मद्रास प्रान्त में मैगनेटाइट प्रकार का लोहा पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा जमाव सलेम—त्रिचनापली में ३,०४० लाख टन, कर्नूल में ३० लाख टन और सैंडूर में १३०० लाख टन कूता गया है किन्तु कोयले की कमी के कारण यह अभी तक काम में नहीं लाया जा सका है। मद्रास प्रान्त में लोहे के मुख्य क्षेत्र—गोदामलाई, थालयमलाई, सिंगापट्टी, थिरतामलाई और कंजमलाई हैं। यहाँ धातु में ३५ से ४० प्रतिशत तक लोहा मिलता है।

मध्य प्रदेश में द्रुग जिले में राजहारा पहाड़ियाँ तथा बस्तर राज्य में धाली पहाड़ियों में भी ठोस लोहे की पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। ये पहाड़ियाँ अपने चारों ओर की चौरस भूमि की सतह से कहीं २,४०० फीट ऊँची उठ गई हैं और २० मील तक लगातार टेढ़े-मेढ़े आकार में चली गई हैं। अमेरिकन विशेषज्ञों ने धाली और राजहारा को 'संसार का खनिज आश्चर्य' कहा है। इनमें लोहे का भाग ६७% है। चाँदा जिले में लोहारा पहाड़ी ६०० गज लम्बी २०० गज चौड़ी और १२० फीट ऊँची है।

भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि उत्तम किस्म के लोहे का जमाव भारत में पर्याप्त मात्रा में है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत में प्रथम श्रेणी के लोहे का जमाव ३०,००० लाख टन है जबकि इस श्रेणी का जमाव ग्रेट-ब्रिटेन में २२,५४० लाख, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ६८,८५० लाख टन, फ्रांस में ४३,३६० लाख टन और जर्मनी में १३,७४० लाख टन है। श्री फोक्स के मतानुसार कच्ची धातु में लोहे का जमाव इस प्रकार है :—

कच्ची धातु में	६०% लोहा	३,२४१० लाख टन
,,	४५·६%	३,०००० ,,
,,	४५·६% से भी कम	१५००० ,,

(१) यूक्रेन प्रदेश में क्रीवोईरोग
(२) यूराल के दक्षिण में आर्स्क और मेगनीटीगोरस्क
(३) कुर्स्क की खान से
(४) उत्तरी पश्चिमी भाग में मरमान्स्क के प्रायद्वीप से।
(५) कुजमास प्रदेश में टेलविस क्षेत्र से।
(६) मास्को के दक्षिण में टूला की खान से।

जर्मनी में कच्चा लोहा रूर प्रदेश के दक्षिण की ओर सीजरलैंड को घाटी की खानों से प्राप्त किया जाता है। वैंगलवर्ग, साल्जामिट, पीन, सैक्सोनी, वैस्ट फेलिया, दक्षिणी पूर्वी साईलेशिया और वीजर की खानों से भी उत्तम लोहा प्राप्त किया जाता है। देश की एक-तिहाई माँग इन खानों से पूरी हो जाती है और शेष दो-तिहाई माँग फ्रांस, स्वीडेन और स्पेन से लोहा आयात कर पूरी की जाती है।

थोड़ा-सा लोहा जर्मनी, फ्रांस और बेल्जियम के बीच स्थित लक्समवर्ग देश से भी प्राप्त किया जाता है।

स्वीडेन में कच्चा लोहा मुख्यत: दो क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। प्रथम क्षेत्र उत्तर में, ध्रुव प्रदेश के निकट है जिसमें गैलीवरा और किरूना जिले की खानें देश का अधिकांश उत्तम प्रकार का लोहा देती हैं। यहाँ चुम्बकीय पर्वत लोहे के लिए प्रसिद्ध है। इसमें लोहे का अंश ६२% और फासफोरस का अंश एक से दो प्रतिशत तक होता है। दूसरा क्षेत्र दक्षिण भाग में स्टॉकहोम तथा डेनीमोरा के निकट फैला है। इस लोहे में फासफोरस और गंधक का अंश बहुत कम होता है। क्योंकि इस देश में कोयला बहुत कम पाया जाता है अतएव कच्ची धातु को ब्रिटेन, जर्मनी आदि देशों को नोर्विक वन्दरगाह द्वारा निर्यात कर देते हैं।

स्पेन में लोहे के उत्पादन क्षेत्र प्रायद्वीप के किनारे पर फैले हैं। यहाँ अधिकांश खानें १५०० फुट की ऊँचाई से ऊपर स्थित हैं। अत: यहाँ पर लोहे की ढुलाई केवल ढाल की सहायता से होती है। समुद्र के किनारे तक तार की डोलियाँ बँधी होती हैं जिनके सहारे लोहा नीचे आ जाता है। बहुत-सा लोहा धरातल के निकट भी पाया जाता है। किन्तु धरातल पहाड़ी होने के कारण कच्चे लोहे का यातायात बड़ा मँहगा पड़ता है। यहाँ के लोहे में धातु की मात्रा ५०% से ६०% तक होती है। यहाँ का दो-तिहाई लोहा उत्तरी स्पेन के कैन्टेब्रियन क्षेत्र में विजकाया, विलवाओ, सेन्टेन्डर और एक चौथाई लोहा दक्षिणी स्पेन में जिब्राल्टर के निकटवर्ती भागों और एलमोरिया से तथा शेष एक चौथाई विरेनीज की खानों से प्राप्त किया जाता है।

एशिया—एशिया में यद्यपि चीन में अनेक स्थानों पर लोहे के पठार पाये जाते हैं किन्तु यातायात के साधनों और आवागमन के मार्गों की असुविधा

मद्रास प्रान्त में मैगनेटाइट प्रकार का लोहा पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा जमाव सलेम—त्रिचनापली में ३,०४० लाख टन, कर्नूल में ३० लाख टन और सैंडूर में १३०० लाख टन कूता गया है किन्तु कोयले की कमी के कारण यह अभी तक काम में नहीं लाया जा सका है। मद्रास प्रान्त में लोहे के मुख्य क्षेत्र—गोदामलाई, थालयमलाई, सिंगापट्टी, थिरतामलाई और कंजमलाई हैं। यहाँ धातु में ३५ से ४० प्रतिशत तक लोहा मिलता है।

मध्य प्रदेश में द्रुग जिले में राजहारा पहाड़ियाँ तथा बस्तर राज्य में धाली पहाड़ियों में भी ठोस लोहे की पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। ये पहाड़ियाँ अपने चारों ओर की चौरस भूमि की सतह से कहीं २,४०० फीट ऊँची उठ गई हैं और २० मील तक लगातार टेढ़े-मेढ़े आकार में चली गई हैं। अमेरिकन विशेषज्ञों ने धाली और राजहारा को 'संसार का खनिज आश्चर्य' कहा है। इनमें लोहे का भाग ६७% है। चाँदा जिले में लोहारा पहाड़ी ६०० गज लम्बी २०० गज चौड़ी और १२० फीट ऊँची है।

भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि उत्तम किस्म के लोहे का जमाव भारत में पर्याप्त मात्रा में है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत में प्रथम श्रेणी के लोहे का जमाव ३०,००० लाख टन है जबकि इस श्रेणी का जमाव ग्रेट-ब्रिटेन में २२,५४० लाख, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ९८,८५० लाख टन, फ्रांस में ४३,३९० लाख टन और जर्मनी में १३,७४० लाख टन है। श्री फोक्स के मतानुसार कच्ची धातु में लोहे का जमाव इस प्रकार है :—

कच्ची धातु में	६०% लोहा	३,३४१० लाख टन
,,	४५·६%	३,०००० ,,
,,	४५·६% से भी कम	१५००० ,,

भारत में ६०% या इससे ऊपर वाली लोह धातु के भंडार (लाख टनों में)

प्रदेश	भूगर्भिक सर्वेक्षण द्वारा अनुमानित	अनुमान
१. हेमेटाइट धातु		
बिहार व उड़ीसा		
सिंधभूम	१०,४७०	
क्योंझार	६,८८०	
बोनाइ	६,४८०	
मयूरभंज	१७०	
	२७,०००	८०,०००
मध्य प्रदेश		
लोहारा	२००	
पीपल गाँव	३०	
असोला दिवालगाँव	२०	
दाली-राजहारा पहाड़ियाँ	१,२००	
बाइलाडिला	६,१००	
राव घाट आदि	७,४००	
जबलपुर (भिन्न-भिन्न किस्म की)	५५०	
	१५,५००	३०,०००
बम्बई		
गोआ रत्नगिरी	७०	
हैदराबाद	३६०	
मद्रास-आन्ध्र व मैसूर		
वेजङ्करटी (Kurnool)	७०	
मैसूर	१,२००	१०,०००
सन्दार (Bellery)	१,३००	२,५००
कुल हेमेटाइट धातु	४५,५००	१,२२,५००
२. मेगनेटाइट धातु		
मद्रास-आन्ध्र व मैसूर	४,३५०	१२,०००
बिहार व उड़ीसा		
सिंघभूम मयूरभंज (Tivores)	२०	
पलामाड़	१०	
मण्डी (हिमाचल प्रदेश)	२५०	
कुल मैंगनेसाइट धातु	४,६३०	१२,०००
३. लियोनाइट धातु		
बंगाल		
रानीगंज क्षेत्र		५,०००

अमेरिकन टैकनीकल मिशन की जाँच के अनुसार तो भारत में पाये जाने वाले लोहे का जमाव संसार के सभी लोह-उत्पादक देशों से अधिक और उत्तम श्रेणी का है। मिशन का कहना है कि अकेले सिंहभूम जिले में ही ३०,००० लाख टन से लेकर २००,००० लाख टन तक उत्तम श्रेणी के लोहे का जमाव है। इसी प्रकार बस्तर राज्य में ७२,४०,००,००० टन उत्तम लोहे का जमाव होना पाया जाता है।

यद्यपि भारत लोह-खनिज में धनी है किन्तु लोहे के कारखाने अधिक न होने तथा बिजली और कोयले की कमी के कारण अभी तक इसका पूरा उपयोग नहीं हो सका है। भारत की खानों से प्राप्त सम्पूर्ण कच्चा लोहा तीन बड़े-बड़े कारखानों—जमशेदपुर में टाटा लोह कम्पनी, आसनसोल में भारतीय लोहे और स्पात की कम्पनी तथा कुल्टी में बङ्गाल लोह कम्पनी—द्वारा ही उपयोग में ले लिया जाता है।

आस्ट्रेलिया में थोड़ा-सा लोहा दक्षिणी आस्ट्रेलिया में मिडिलबैंक रेंज, कुल्का, कुलटाना और पश्चिमी आस्ट्रेलिया में माउण्ट गिबसन, वयू और कूलन द्वीप में तथा न्यू साउथ वेल्स में केडिया, मिटागोंग तथा टालबौंक और क्वींसलैण्ड में कोलनवरी आदि स्थानों से उत्तम जाति का लोहा प्राप्त किया जाता है।

अफ्रीका के उत्तरी-पश्चिमी राज्यों में—अल्जीरिया, ट्यूनेशिया और मरक्को में—तथा दक्षिणी अफ्रीका संघ के ट्रांसवाल राज्य में लोहा प्राप्त किया जाता है।

दक्षिणी अमेरिका में चिली प्रान्त में कुंकंबों की टोगों खान से ९०% तथा अटाकामा प्रान्त से १०% लोहा प्राप्त किया जाता है। किन्तु कोयले के अभाव के कारण यह निर्यात कर दिया जाता है। ब्राजील में भी मिनास-जिरास जिले की इटाबरा खानों से लोहा प्राप्त होता है। अर्जेन्टाइना प्रान्त के उत्तरी पश्चिमी भाग में मैगनेटाइट, एंडीज पर्वत के पूर्वी ढालों पर हेमेटाइट और मिशनस प्रान्त में लेटराईट जाति का लोहा मिलता है।

लोहे का व्यापार—लोहा भारी और कम मूल्य वाला पदार्थ है—अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इसका महत्व बहुत कम है। इसका सब से अधिक व्यापार पश्चिमी यूरोप के देशों के बीच में होता है जहाँ कोयला बहुत मिलता है। लोहे के मुख्य निर्यातक स्वीडेन, फ्रांस, चिली, एलजीरिया ब्राजील और स्पेन हैं। इन देशों से लोहा इग्लैंड, संयुक्त राष्ट्र, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैंड और बैलजियम, लक्सम्बर्ग देशों को जाता है। अगली तालिका में लोहे का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बताया गया है।

१९५० लोहे का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (हजार मैट्रिक टनों में)

मुख्य निर्यातक

मुख्य आयातक	स्वीडन	फ्रांस	चिली	एलजीरिया	ब्राजील	स्पेन
बेल्जियम, लक्सम्बर्ग	१५१७	६८६'६	——	——	——	१४
इंग्लैंड	३४९७	३६६	——	१५०५	——	७२६
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२०७०	——	२६१२	५०२	७०३	—
पश्चिमी जर्मनी	३७५४	३९९	——	——	——	६१
नीदरलैंडस	२०८	१७०	——	१७७	१४३	११६

लोहे के भंडार (Reserves)—दुनिया के विभिन्न भागों में लोहे के जो जमाव हैं उनके बारे में वैज्ञानिकों का विचार है कि इस समय जिस गति से लोहे का प्रयोग हो रहा है उससे थोड़े ही वर्षों में उत्तम प्रकार के लोहे का अभाव संसार में हो जायगा। निम्नलिखित तालिका में विश्व के विभिन्न देशों में लोहे के जमाव सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं[१] :—

लोहे की मात्रा

क्षेत्र	श्री मीकामी का अनुमान[२] (बिलिअन टनों में)	प्रो० गुनर का अनुमान (लाख ग्रास टन)	श्री जीमर मैन (लाख टन)
सं० रा० अमेरिका	३,८००	८०,०००	१०,४५००
रूस	३,१००	६०,०००	२०,५७०
फ्रांस	४,५००	६०,०००	८१,६५०
चिली	——	२०,०००	——
पश्चिमी जर्मनी	——	१७,६००	१३,१५०
स्वीडन	१,२५०	१०,०००	२२,०३०
ब्रिटेन	३,१००	१०,०००	५६,७००
स्पेन	——	६५०	——
भारत	३,६००		३०,०००
ब्राजील	४,०००		७०,०००
क्यूबा	३,०००	——	३१,५६०
न्यूफाउंडलैंड	१,२५०	——	४०,०००
योग	३५–४५		

१. Zimmermann : World Resources and Industries, 1951.
२. M. Mikami : World Iron Ore Map, Eco. Geography, Jan-Feb, 1944. p. 1-24.

श्री मिकामी का अनुमान है कि विश्व में ज्ञात लोहे के भंडारों का वास्तविक भंडार ३५ से ४५ बिलिअन टन और संभावित भंडार १६० बिलिअन टन के है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमानानुसार विश्व में लोहे के सुरक्षित भंडार इस प्रकार हैं—

विश्व में लोह धातु के सुरक्षित भंडार का अनुमान[1]

देश	अनुमानतः भंडार (Probable) बिलिअन	कुल संभावित भंडार (Potential) मेट्रिक टन	प्रति व्यक्ति पीछे अनुमानतः भंडार मेट्रिक टन	प्रति व्यक्ति पीछे संभावित भंडार मेट्रिक टन
भारत	५·६	१०·३	१६	३०
ब्राजील	४·१	१०·८	८५	२२३
फ्रांस	२·५	३·९	६१	९३
रूस	२·०	४·३	११	२३
संयुक्त राष्ट्र	१·७	२५·५	१२	१७४
स्वीडन	१·४	५·१	२०५	२३३
क्यूबा	१·२	१·६	१०७	४२८
द० अफ्रीका संघ	१·३	५·४	२३३	१,०४७
द० रोडेशिया	१·१	५०·७	५७७	२५,५९१
फ्रांसिसी प० अफ्रीका	१·०	१·०	६३	६३
कनाडा	०·९	२·२	७०	१६८
चीन	०·८	१·२	२	३
ब्रिटेन	०·७	०·९	१३	१८
फिलिपाइन	०·५	०·५	२४	२४
स्पेन	०·४	०·५	१३	२३
अन्य देश	१·५	४·८	—	—
कुलयोग (विश्व)	२६·७	१२८·८	११	५५

(२) रांगा (Nickel)

यद्यपि रांगा का उत्पादन और प्रयोग संभवतः २००० वर्ष पूर्व से किया जा रहा है किन्तु इसका महत्व कुछ ही वर्षों से बढ़ा है। सन् १८८५ तक विश्व में रांगे का उपयोग केवल ७५० टन था। इस समय इसका प्रयोग रांगा-चांदी

1. U. N. O : World Iron Resources and Their Utilization, 1950, p. 66-67.

(Nikel Silver) और सिक्के बनाने में होता था किन्तु सन् १८६० से जब इसका प्रयोग लोहे पर कलई करने (इलक्ट्रोप्लेटिंग) और लोहे के साथ मिलाकर युद्ध-पोतों के निर्माण में किया गया तभी से इसकी माँग बढ़ गई है। अतः सन् १८६० में जहाँ इसका उत्पादन केवल ३,००० टन था, वहाँ सन् १९१३ में ३५,००० टन, सन् १९१८ में ५२,००० टन होगया। सन् १९२० में जब शान्तिकालीन समझौता हुआ तो इसकी माँग को कुछ धक्का पहुँचा किन्तु इस समय मोटर यातायात और अन्य उद्योगों का विस्तार होने से इसकी माँग पुनः बढ़ गई। १९२९ में ९०% राँगे का उपयोग व्यावसायिक कार्यों के लिए होने लगा।

राँगे पर मोर्चा नहीं लगता तथा इस पर अम्लों का प्रभाव भी नहीं पड़ता तथा यह २६४६° फा० पर पिघलता है। यह बिजली का अच्छा संचालक नहीं है किन्तु यह कई धातुओं के साथ सरलता से मिलाया जा सकता है। इसका उपयोग स्ट्रक्चरल स्टील, अग्नि-प्रतिरोधक स्टील (जिसमें ७ से ३५% तक राँगा होता है), स्टेनलैस स्टील (८ से १८% तक राँगा होता है), मोनल धातु (६८% राँगा) आदि बनाने में होता है। यह विभिन्न प्रकार के मिश्रित धातु बैटरी, काँच, चीनी मिट्टी और तेल शोधन के उद्योगों, युद्ध पोतों, अस्पताल के यंत्रों, रासायनिक यंत्रों और बरतन आदि बनाने में प्रयुक्त किये जाते हैं। इसे ताँबे के साथ भी मिलाया जाता है।

विश्व के रांगे के उत्पादन का ८०% अकेला कनाडा के सडवरी जिले से प्राप्त होता है। यहाँ राँगे की कच्ची धातु ३५ मील लम्बे और १६ मील चौड़े क्षेत्र में लगभग २५३० लाख टन भरी पड़ी है जिसमें ७५ लाख टन राँगा मिलता है। उत्तरी मानीटोबा में लीन-झील क्षेत्र में १४० लाख टन के जमाव मिलने की सम्भावना है। सन् १९५३ ई० में कनाडा में १४३,००० टन राँगा निकाला गया जिसमें से ९८% निर्यात किया गया।

रूस में केवल २७,००० टन का उत्पादन होता है। यहाँ के मुख्य उत्पादक क्षेत्र बरैंट सागर के निकट पैचेंगा और कोल प्रायीद्वीप के निकट मोंचेगोरस्क तथा निचली यनीसी घाटी में ओर्स्क है।

थोड़ा-सा राँगा सं० रा० अमरीका और न्यू कैलेडोनिया में मिलता है।

(३) मैंगनीज़ (Manganese)

मैंगनीज दो प्रकार की कच्ची धातुओं से प्राप्त होता है—पाइरोलुसाइट (Pyrolucite) और सिलोमिलेन (Silomalene)। मैंगनीज प्रायः पर्त्तदार चट्टानों में पाया जाता है। यह लोहे को कड़ा करने और उसकी गन्दगियाँ दूर करने के काम में लाया जाया है। संसार का ९५% मैंगनीज धातुओं को साफ करने और ५% रासायनिक उद्योगों में काम में आता है। इसका उपयोग कपड़ा धोने का पाउडर, सीसे को रँगने और चमकदार बनाने तथा कीटाणुनाशक पदार्थों—पोटेशियम परमैंगनेट और आक्सीजन तथा क्लोरीन गैसें—को बनाने में होता है। आजकल बिजली के कारखानों में भी इसका प्रयोग बढ़ गया

है। वास्तव में इस धातु के लिए यह कहावत प्रचलित है कि यह "Jack of All Trades" खनिज है।[1]

मैंगनीज पैदा करने वाले देशों में प्रमुख स्थान गोल्डकोस्ट, रूस, भारत, क्यूबा, ब्राजील, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका संघ का है। १९५१ में विश्व में २०,३०० हजार टन मैंगनीज पैदा किया गया।

संसार में सबसे अधिक मैंगनीज पैदा करने वाला देश रूस है। यहाँ यूक्रेन की निकोपोल और काकेसस प्रदेश की चियादुरी खानों से ९०% मैंगनीज निकाला जाता है।

भारत में सबसे अधिक मैंगनीज मद्रास, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्य प्रदेश और मैसूर में निकाला जाता है। इसकी मुख्य उत्पादक पेटी बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश में फैली हुई है जिसमें १५ से २० लाख टन का अनुमानित जमाव है, जिसकी कच्ची धातु में मैंगनीज की अंश ४८% है। भारत में विश्व के सभी देशों से उत्तम श्रेणी का मैंगनीज प्राप्त होता है, यथा भारत में मैंगनीज का अंश कच्ची धातु में जहाँ ४७% से ५२% तक होता है वहाँ रूस में ४१% से ४८%; गोल्ड कोस्ट में ४१ से ५०% और ब्राजील में ३३ से ५०% ही होता है।

मध्य प्रदेश सम्पूर्ण भारत की मैंगनीज उत्पत्ति का ६० प्रतिशत उत्पन्न करता है। यहाँ मैंगनीज पाये जाने वाली पट्टी १२ मील की लम्बाई में फैली है जो रेल-मार्ग द्वारा बम्बई और कलकत्ता के बन्दरगाहों द्वारा जुड़ी है। यह पट्टी प्रति वर्ष लगभग ½ से ¾ लाख टन तक मैंगनीज उत्पन्न करती है। यहाँ के मुख्य क्षेत्र नागपुर, सियोनी, भण्डारा, छिंदवाड़ा, बालाघाट और जबलपुर हैं।

मद्रास प्रान्त में गंजाम, बलारी, सेंडूर, और विजगापट्टम जिले मैंगनीज-उत्पादक क्षेत्र हैं। मैसूर में चितलदुर्ग, काडूर, शिमोगा और तुमकर में भी मैंगनीज प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग भद्रावती के लोहे के कारखानों में ही हो जाता है। मद्रास का मैंगनीज अधिकतर विजगापट्टम द्वारा निर्यात कर दिया जाता है।

बिहार और उड़ीसा प्रान्त में गंगापुर, सिंहभूम, क्योंनझार और बोनई रियासतों में भी मैंगनीज निकाला जाता है। बम्बई प्रान्त में पंचमहल, छोटा उदयपुर, रत्नागिरी, नामकोट और बेलगाम जिलों में भी मैंगनीज मिलता है। मध्य प्रदेश के झाबुआ राज्य और राजस्थान के उदयपुर डिवीजन में भी मैंगनीज खनिज प्राप्त होने की संभावना की गई है।

भारत में लोहे और स्पात के उद्योग का अधिक विकास न होने से मैंगनीज

---

१. C.F. Jones & G. G. Drakenwald : Economic Geography, 1954, p. 385.

विशाखापट्टनम, मद्रास व बम्बई से फ्रान्स, बेल्जियम, ब्रिटेन, जर्मनी और सं० रा० अमेरिका को निर्यात कर दिया जाता है। सन् १९५०-५१ में ७२८,००० टन मैंगनीज निर्यात किया गया।

दक्षिणी अफ्रीका के पश्चिमी ग्रीकुवाँलैण्ड प्रदेश में पोस्टमास्बर्ग के निकट और गोल्डकोस्ट में मैंगनीज प्राप्त किया जाता है। थोड़ा-सा मैंगनीज ब्राजील में मीनास-जिरास जिले की लेफयटे और नजारत जिले की वाह्या की खानों से भी निकाला जाता है।

जर्मनी, क्यूबा, मिश्र, मरक्को और आस्ट्रेलिया अन्य मैंगनीज पैदा करने वाले देश हैं। नीचे की तालिका में मैंगनीज का उत्पादन बताया गया है—

मैंगनीज उत्पादन
(००० टनों में)—१९५२

रूस	२८००	दक्षिणी अफ्रीका संघ	३५१
भारत	६०१	क्यूबा	९३
गोल्डकोस्ट	४१२	सं० रा० अमरीका	५७
जापान	७६	विश्व का योग	५०५०

दुनिया में मैंगनीज उन देशों में पैदा होता है जहाँ इसकी घरेलू खपत कम होती है। अतः इन देशों से यह उन देशों को भेजा जाता है जहाँ लोहा और फौलाद के बड़े-बड़े कारखाने पाये जाते हैं। प्रमुख निर्यातक रूस, भारत गोल्डकोस्ट, दक्षिणी अफ्रीका संघ और ब्राजील हैं और मुख्य आयातक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन, जर्ममी, फ्रान्स, बेल्जियम और जापान हैं।

(४) अभ्रक (Mica)

वर्तमान युग में अभ्रक का उपयोग अधिकतर बिजली के कारखानों में किया जाता है। सफेद और पीले रंग का अभ्रक अपनी स्वच्छता, लचक, तड़क और बिजली तथा गर्मी के लिए अचालकता आदि गुणों के कारण बड़ा उपयोगी होता है और इसी कारण इसका उपयोग छोटे-छोटे डाइनमों, बिजली की मोटरों के कम्यूटेटर, बेतार के तार, समुद्री विज्ञान, मोटर यातायात आदि में इसका अधिकाधिक उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अपनी स्वच्छता और पतली-पतली पर्तों में पृथक् हो जाने की रुचि के कारण अभ्रक लालटेन की चिमनियों, मकानों की खिड़कियों, कारखानों में भट्टियों के मुँह पर पोतने तथा अग्नि प्रतिरोधक पदार्थों के समान वायलरों के ऊपर लगाने के काम में भी आता है जिससे वे अधिक जल्दी ठण्डे नहीं होते। अभ्रक को काटते समय जो चूरा बच जाता है उसे स्प्रिट में मिलाकर पतले-पतले पर्त बना लेते हैं। इस उद्योग को माइकेनाइट (Micanite) उद्योग कहते हैं।

अभ्रक ग्रेनाइट नामक अग्नेय अथवा शिष्ट (Schist) और नीस (Gneiss) नामक परिवर्तित शिलाओं में सफेद या काले अभ्रक के छोटे-छोटे टुकड़े के रूप में पाया जाता है। किन्तु सफेद अभ्रक के बड़े-बड़े टुकड़े धारियों के रूप में बनी हुई पेगमेटाईट (Pegmatite) नामक आग्नेय चट्टानों में ही मिलते हैं। सफेद अभ्रक को रूबी अभ्रक (Ruby Mica) और हल्का गुलाबीपन लिये अभ्रक को बायोटाइट अभ्रक (Biotite Mica) कहते हैं।

संसार में अभ्रक पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान प्रथम है। यहाँ पैग्मेटाइट शिलायें कई स्थानों पर मिलती हैं। बिहार, मद्रास, ट्रावनकोर, मैसूर तथा अजमेर-मेरवाड़ा और राजस्थान के जयपुर और उदयपुर डिवीज़न में अभ्रक बहुत मिलता है किन्तु इन सब स्थानों में से मुख्य क्षेत्र प्रथम दो ही प्रान्तों में हैं।

बिहार में अभ्रक का क्षेत्र गया, हजारीबाग मुंघेर और मानभूम जिलों में फैला है। यह क्षेत्र १२ मील लम्बा है। अधिकतर अभ्रक की खानें कोडर्मा (Kodarma), दोमाचान्य, चाकल, धाव तथा तिसरी इत्यादि स्थानों पर हैं। ये सब खानें कोडर्मा के जंगल में हैं। इस क्षेत्र से भारत का ८०% अभ्रक प्राप्त किया जाता है। इस क्षेत्र के अभ्रक को 'बंगाल अभ्रक' (Bengal Mica) अथवा 'बंगाल का लाल अभ्रक' कहते हैं, कारण कि यहाँ के अभ्रक के परतों के समूह का रँग फीका लाल होता है और यह अभ्रक कलकत्ता से ही विदेशों को निर्यात किया जाता है।

अभ्रक का दूसरा प्रसिद्ध क्षेत्र मद्रास के नैलोर जिले में है। यह क्षेत्र भी ६० मील लम्बा और ८ से १० मील चौड़ा है। यहाँ की प्रसिद्ध खानें कालीचेडू और तेलाबाडू हैं। ये खानें गडूर, कवाली, रायपुर और आतमकुर में हैं। यह अभ्रक हरे रंग का होता है। अत: यहाँ का अभ्रक बिहार के अभ्रक से हल्का होता है।

राजस्थान में अभ्रक शाहपुर, टोंक, भीलवाड़ा, राजनगर, बायपुर और अजमेर जिलों में मिलता है। यहाँ का अभ्रक भी उत्तम किस्म का होता है। कुछ अभ्रक मैसूर में हसन, और केरल में नैय्यूर और पुन्नालूर में भी मिलता है। भारत का अभ्रक कलकत्ता, बम्बई, मद्रास के बन्दरगाहों से इंगलैण्ड, सं० रा० अमेरिका, फ्रान्स और जर्मनी को निर्यात किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में उत्तरी केरोलीना और न्यू हैमशायर रियासतों में तथा दक्षिणी अफ्रीका में दक्षिणी रोडेशिया के लोमागुंडी प्रदेश में भी मैंगनीज प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अन्य उत्पादक, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, नार्वे, स्पेन, कनाडा, अर्जेन्टाइना, रूस और जापान हैं।

मुख्य निर्यातक दक्षिणी अफ्रीका और भारत हैं—इन देशों से अभ्रक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ग्रेट-ब्रिटेन और जर्मनी को भेजा जाता है।

(५) एस्बस्टस (Asbestos)

यह मैगनेशिया, सिलीका और जल का मिश्रण होता है । यह दो प्रकार का होता है—एक जहर मोहरा (Serpentine) नामक खनिज की रेशेदार किस्म और दूसरी हार्नब्लेंड (Hornblende) नामक खनिज की। विश्व में प्रथम प्रकार का एस्बस्टस ही मिलता है । इसके रेशे इतने मजबूत होते हैं कि उन पर मौसम के परिवर्तन, आग या पानी का कोई असर नहीं होता । इस खनिज की उपयोगिता उसके रेशों के चिमड़ेपन, लचीलेपन और उसके अग्निरोधक गुण के कारण ही है । इसके रेशे रुई के समान काते और बटे जा सकते हैं । इन रेशों से मोटे कागज, कपड़े और तख्ते तैयार किये जाते हैं । इसके अतिरिक्त सीमेंट मिलाकर उसके खपरैल और छत पाटने के तख्ते और बिजलीघरों तथा तेजाब जैसे द्रवों को छानने में भी इसका प्रयोग किया जाता है ।

एस्बस्टस का उत्पादन १९५२ में इस प्रकार था :—

कनाडा	८८२·९ हजार टन	इटली	२३·९ हजार टन
रूस (१९३८)	८६·० ,, ,,	सं०रा०अमेरिका	४८·९ ,,
द० रोडेशिया	७७·० ,, ,,	साइप्रस	१६·६ ,,
द० अफ्रीका	१२१·० ,, ,,	विश्व	१२५६·३ ह० टन

विश्व में इसके प्रमुख उत्पादक कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका संघ और इटली और भारत हैं । भारत में विहार में सरायकेला और मयूरभंज राज्यों में तथा मुंगेर जिले की परिवर्तित शिलाओं के क्षेत्र में एस्वस्टस की बड़ी-बड़ी धारियाँ मिलती हैं । मैसूर राज्य में शिमोगा, काडूर, हसन और मैसूर नामक जिलों में एस्वस्टस बहुत मिलता है । मद्रास के कड्डापा जिले और राजस्थान के राजनगर जिले में भी इसकी वहुतायत है । मध्य प्रदेश के भंडारा जिले में भी एक-दो जगह एस्वस्टस पाया जाता है ।

(६) टंगस्टन (Tungsten)

इसका मुख्य खनिज वूलफ्राम (Woolfram) है जो टंगस्टन, लोहे और मैंगनीज की भस्मों का रासायनिक मिश्रण है । वूलफ्राम बिल्लौर पत्थर की धारियों में पाया जाता है । यह धारियाँ ग्रेनाइट नामक आग्नेय शिला के पास की भूमि में पाई जाती हैं । कहीं-कहीं ऐसी धारियों के पास ही वूलफ्राम के कण नदियों की वालू मिट्टी में भी पाये जाते हैं । इसका अधिकतर उपयोग वढ़िया स्पात बनाने के लिए होता है । यह धातु बिजली के लैम्प के तार बनाने में भी काम आती है ।

संसार में टंगस्टन पैदा करने वाले मुख्य देश बर्मा, पुर्तगाल, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, न्यूसाउथवेल्स, विक्टोरिया, क्वींसलैंड और टस्मानिया, कनाडा, चीन, ब्रिटेन और भारत हैं । भारत में यह धातु सिंहभूम जिले तथा मध्य प्रदेश के अगरगाँव और राजस्थान के जोधपुर जिले में पाई जाती है ।

अध्याय २३

खनिज पदार्थ (क्रमशः)

बहुमूल्य और अ-लौह धातुएँ
(Precious and Non-Ferrous Metals)

बहुमूल्य धातुएँ (Precious Metals)—कुछ धातुएँ अपनी सुन्दरता, रंग, अपर्याप्त मात्रा में उपलब्धि और स्थिरता के कारण प्राचीन काल से ही मानव उपयोग में आ रही हैं। इन्हें हम 'बहुमूल्य धातुएँ' कहते हैं। इनमें प्रमुख सोना, चाँदी, प्लैटीनम तथा हीरे और रत्न आदि हैं।

(१) सोना (Gold)

सोना अपने चमकीले रंग और सुन्दरता, टिकाऊपन और गलाने की सुविधा, भौतिक परिस्थितियों और कम मात्रा में पाये जाने के कारण बहुत प्राचीन काल से ही मनुष्य के लिए आकर्षण की वस्तु रहा है।[1] इसका अधिकांश प्रयोग सिक्के बनाने, धातु की ईंटें बनाने, आभूषण, पैन की निबें, चश्मे के फ्रेम तथा वर्क और भस्में तथा औषधियाँ बनाने के लिए किया जाता है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि यह मुलायम होता है। इसके तार आसानी के साथ खींचे जा सकते हैं और इसमें जंग कभी नहीं लगता तथा यह बहुत टिकाऊ होता है।

सोना कभी भी प्रकृति में शुद्ध रूप में नहीं मिलता, किन्तु इसमें चाँदी व अन्य धातुओं के अंश मिले रहते हैं। सोने की कच्ची धातु दो प्रकार से मिलती है—आग्नेय चट्टानों की तह में और नदियों की बालू मिट्टी में। पहले प्रकार का सोना चट्टानों की नसों में पाया जाता है। इस प्रकार की नसें चट्टानों में अधिक गर्मी और अधिक दबाव के कारण बन जाती हैं। सोने के कण आग्नेय चट्टानों में बहुत थोड़ी मात्रा में बिखरे हुए पाये जाते हैं अथवा स्वर्ण-मिश्रित बिलौर की धारियों में पाये जाते हैं। इस प्रकार का सोना पटरी सोना (Vein-deposit या Load-mines) कहलाता है। इस प्रकार की सोने की चट्टानें विशेषकर दक्षिणी भारत के पठार, ब्राजील के पठार और दक्षिणी अफ्रीका संघ और पश्चिमी आस्ट्रेलिया में मिलती हैं।

दूसरे प्रकार का सोना नदियों की मिट्टी में पाया जाता है—क्योंकि नदियाँ और समुद्र की लहरें सोना मिलने वाली चट्टानों को तोड़कर मैदानी भाग में रेत और बजरी के साथ जमा कर देती है। इसलिए इसके कणों को नदियों

---

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 415.

आदि से छानकर आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार से प्राप्त किये गये सोने की मात्रा बहुत ही थोड़ी होती है। इस प्रकार के सोने को **मैदानी सोना** (Placer deposit) कहते हैं। आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रान्त में बेलेरेट की खानें, अलास्का के उत्तरी भाग में क्लोनडाइक की खानें तथा दक्षिणी अफ्रीका में रैंड की खानें इसी प्रकार के सोने की खानें हैं। भारत में उत्तर प्रदेश की सोना नदी, आसाम की स्वर्णसीरी और बिहार उड़ीसा की स्वर्णरेखा नदियों के बालू में भी सोना पाया जाता है—किन्तु इस प्रकार प्राप्त किये गये सोने की मात्रा अधिक नहीं होती और वह मूल्य में ३००-४०० पौंड से अधिक नहीं होता है।

चट्टानों से प्राप्त कच्ची धातु को शुद्ध करने के लिए पहले चूरा कर लिया जाता है। फिर इसे पानी में घुमाया जाता है जिससे अशुद्धियाँ बाहर निकल जाती हैं और सोने के कण भारी होने के कारण नीचे रह जाते हैं। इस प्रकार की क्रिया को 'Placer Mining' कहते हैं। शुद्ध करने के दूसरे ढंग में पानी की एक तेज धार को चट्टानों पर डाला जाता है जिससे चट्टानें छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और सोने के कण अलग हो जाते हैं। इस क्रिया को 'Hydraulic Mining' कहते हैं। इसके पश्चात सोने को गन्धक के तेजाब, जस्त का चूरा तथा अन्य रासायनिक पदार्थों—पारा, पोटेशियम साइनाइड आदि के साथ भट्टियों में गलाकर साफ किया जाता है।

विश्व वितरण—पिछले ६० वर्षों से सोने के उत्पादन में काफी वृद्धि हो गई है। १८६२ और १६१२ के बीच सोने के उत्पादन में तीन गुनी वृद्धि हुई तथा १६१२ से १६४० तक प्रायः दोगुनी हो गई। १६५३ में ३४० लाख औंस सोना प्राप्त किया गया जबकि १६३७-३६ में यह मात्रा ३८० लाख औंस थी। १६५५ में सोने का उत्पादन ३१०·४ लाख औंस था। इसमें से १०० लाख औंस रूस में, १४६ लाख औंस द० अफ्रीका में; १८·६ लाख औंस सं० रा० अमेरिका में और ४५·५ लाख औंस कनाडा से प्राप्त हुआ। संसार में प्रायः सभी देशों में सोना पाया जाता है। किन्तु निकाला वहीं जाता है जहाँ-जहाँ यह काफी मात्रा में मिलता है। सोने के मुख्य उत्पादक दक्षिणी अफ्रीका संघ, कनाडा, संयुक्त राष्ट्र, गोल्डकोस्ट (घाना), रोडेशिया, मेक्सिको, कोलम्बिया, बेल्जियन कांगो, चिली, भारत, जापान और आस्ट्रेलिया हैं। अगले पृष्ठ की तालिका में सोने के उत्पादन क्षेत्र आदि बताये गये हैं:—

सोने का उत्पादन १९५४ (००० औंस में)

दक्षिणी अफ्रीका संघ	जोहनेजबर्ग, ट्रांसवाल, दक्षिणी रोडेशिया	१२,२३५
कनाडा	ब्रिटिश कोलम्बिया, यूकन ओनटेरियो, क्यूबिक नोवास्कोशिया	४,३१०
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	अलास्का, केलिफोर्निया, नेवाडा, कोलोराडो, मोनटाना, डाकोटो, न्यूमेक्सिको	१,८६७
गोल्डकोस्ट (घाना)		७८७
मेक्सिको		४५०
कोलम्बिया		४३०
बेल्जियन कांगो		—
चिली		१८०
भारत	मैसूर, हैदराबाद, पूर्वी पंजाब	२२३
आस्ट्रेलिया	पश्चिमी आस्ट्रेलिया, विक्टोरिया, न्यूसाउथवेल्स, न्यूजीलैंड	१,११०
द० रोडेशिया		५४०
विश्व योग		२७,७००

दुनियाँ में सब से अधिक सोना (५०%) दक्षिणी अफ्रीका संघ से प्राप्त होता है। यहाँ सोना निकालने का काम १८८४ से किया जा रहा है। यहाँ

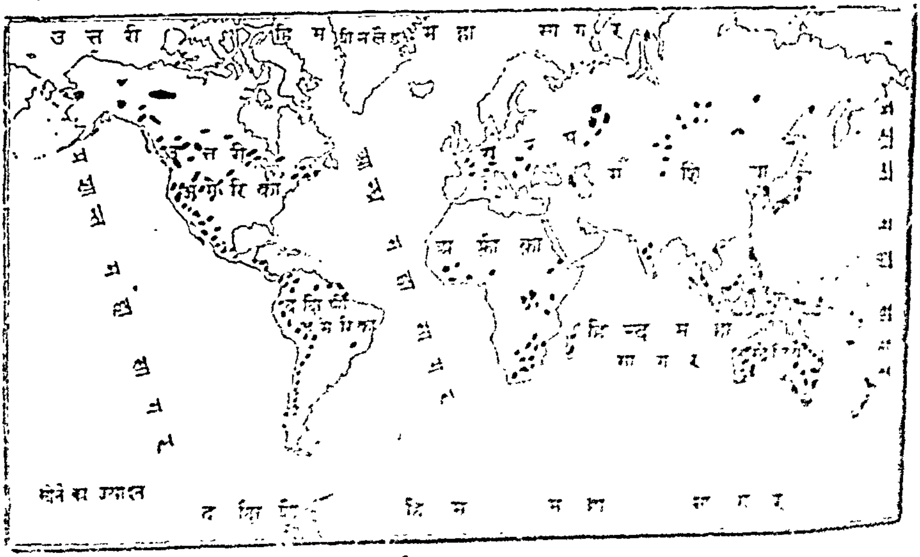

चित्र १७२

ट्रांसवाल राज्य के किम्बरले, मोनेरीफ, पिलग्रीमस रैस्ट, बारबरटन, हाईडलबर्ग, कलकसडाफ, बुलाश्रो और बोक्लियों की खानों से प्राप्त किया जाता है। इनमें सबसे प्रमुख लिम्पोपो और ओरेंज नदियों के बीच में स्थित विटवाटरसरैंड की की चट्टानें हैं। यह क्षेत्र ५० मील लम्बा और २० मील चौड़ा है। यहाँ वर्ष में लगभग ४२५ टन सोना प्राप्त करने के लिए खानों से ६७० लाख टन कच्ची धातु निकाली जाती है। यहाँ खानें ६००० फुट गहरी हैं [1]। यह संसार का सबसे बड़ा स्वर्ण-केन्द्र है। थोड़ा-सा सोना दक्षिणी रोडेशिया की बाटलें, विक्टोरिया, और सेलसबरी तथा बेल्जियन कांगों की किलोमीटर और गोल्डकोस्ट (घाना) की उम्ताली खानों से भी प्राप्त किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से विश्व का केवल ६% सोना प्राप्त किया जाता है। यहाँ सोना केलीफोर्नियाँ, फ्लोरिडा, मोनटाना, दक्षिणी डाकोटा, यूटाहा, कोलोराडो और के एरीजोना पठार की खानों से प्राप्त होता है। सोना द० डकोटा में ब्लैक पहाड़ियों के जिले से प्राप्त होता है।

कनाडा में सोना १८५८ से फ्रेजर नदी की घाटी में निकालना आरम्भ किया गया। यहाँ ब्रिटिश कोलंबिया की कूटेनी खानों, अलास्का की क्लोनडाईक और पूर्वी ऑंटेरियो प्रान्त के किर्कलैंड, पोरक्यूपाइन और लार्डर झील प्रदेश तथा क्यूबिक और नोवास्कोशिया की खानों से सोना प्राप्त किया जाता है। थोड़ा-सा सोना मेक्सिको के पठार पर रिपलडीओरो तथा विटामादरे की खानों से भी मिलता है।

आस्ट्रेलिया में जितना सोना निकलता है उसका ८०% पश्चिमी आस्ट्रेलिया की कूलगार्ली, कालगूर्ली, किम्बरले, यालगू, सेन्टमारग्रेट और शेष २०% सोना विक्टोरिया प्रान्त के बेलेरेट और बेनेडिगों की खानों से, न्यूसाउथवेल्स की कोबाल्ट और एडीलोंग तथा क्वींनसलैंड की मारगन पर्वत चारटर्सटावर्स और जिम्पी की खानों से प्राप्त किया जाता है। थोड़ा-सा सोना न्यूजीलेंड की ओंकलैंड और ओटेको खानों से भी प्राप्त होता है।

साइबेरिया में सोना लीना और यनीसी नदियों की घाटियों और यूराल, अल्टाई पर्वतों तथा आर्कटिक तथा सुदूरपूर्व पठारी के भागों से भी प्राप्त किया जाता है। दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील, गायना, इक्वेडोर, बोलेविया, पीरू, बेनेजुएला, कोलंबिया और चिली राज्यों में मिलता है।

एशिया में चीन, पूर्वी द्वीपसमूह, फिलीपाइन तथा जापान में सागानोसे और कोरिया में इन्सान और सुहआन की खानों से सोना प्राप्त किया जाता है।

भारत का समस्त सोना मैसूर के कोलार नामक जिले में उत्पन्न होता है। यहाँ पर सोना बिल्लौर पत्थर की धारियों में मिलता है। बिल्लौर की धारियाँ अत्यन्त परिवर्तित शिलाओं को बेधती हुई दूर तक उत्तर-दक्षिण दिशा में चली गई है। इन धारियों की मोटाई बराबर एक-सी नहीं रहती बल्कि ये कहीं कहीं मोटी

---

१. E.W. Zimmermann: World Resources and Industries, p. 761.

और कहीं-कहीं पतली होती हुई चली गई हैं। इन धारियों में मुख्य धारी एक ही है और इस पर कई खानें कार्य कर रही हैं। इस धारी की मोटाई करीब ४ फुट है और पृथ्वी तल पर यह ५ मील से अधिक दूर तक दिखाई देती है। यहाँ की सबसे गहरी खानें 'चेम्पियन रीफ' (Champion Reef) और 'ओरोगॉम रीफ' (Ooregum Reef) हैं। इन दोनों खानों में लगभग २०,००० व्यक्ति काम कर रहे हैं। ये खानें १½ मील से अधिक गहराई तक पहुँच चुकी हैं। इस समय इन दोनों खानों में ९००० फीट की गहराई पर कार्य हो रहा है। इन खानों की गणना संसार की सब से गहरी खानों में की जाती है। पृथ्वी तल से इतनी नीचे होने के कारण इन खानों की तह में तापक्रम १२९° फा० तक पहुँच जाता है जिस कारण वहाँ के पत्थर हर समय तपते रहते हैं। अतः मजदूरों को इस गहराई पर कार्य करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इस गर्मी को कम करने के लिए खानों में बड़ी-बड़ी चानकों (Shifts) में होकर बिजली के बड़े-बड़े पंखों द्वारा वायु का संचार किया जाता है। ओरोगॉम की एक चानक तो ४६८० फीट गहरी और १८ फुट चौड़ी है। यहाँ *शिवासमुद्रम्* से बिजली लाई जाकर खानों में बिजली से ही काम किया जाता है। यहाँ बिल्लौर पत्थर को पीसकर जल द्वारा सोने के कण मिट्टी से अलग कर लिये जाते हैं। यहाँ **चैम्पीयन रीफ, ओरोगॉम रीफ, मैसूर गोल्ड माइनिंग और नंदीदुर्ग गोल्ड माइनिंग** कम्पनी काम कर रही हैं। मैसूर की इस खान से १८८२ में केवल ९ औंस सोना निकाला गया (केवल ३७ पौंड १३ शि० ५ पें० का) जबकि १९०५ ई० में ३,२७३,४५७ पौंड की लागत का ५५६,५२७ औंस और १९४३ ई० में ५,०८,३८,७८१ पौण्ड की लागत का २५३,१९२ औंस सोना प्राप्त किया गया।

कोलार क्षेत्र के अतिरिक्त कुछ सोना वंगलोर से ६० मील पश्चिम की ओर बैलारा खानों से भी प्राप्त किया जाने लगा है। दक्षिण हैदराबाद में रायचूर जिले के हट्टी नामक क्षेत्र से भी सोना कुछ समय पहले तक निकाला जाता था। बम्बई के धारवाड़ जिले तथा उसके पास की सांगली रियासत में, मद्रास प्रान्त के अनन्तपुर जिले और नीलगिरी पर्वत पर भी सोना मिलता है।

व्यापार—सोना निर्यात करने वाले मुख्य देश आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, भारत, दक्षिणी अमेरिका और कनाडा हैं तथा मुख्य आयातक ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस और इटली हैं।

(२) चाँदी (Silver)

चाँदी विश्व में शुद्ध रूप में नहीं पाई जाती है बल्कि यह कई प्रकार के अन्य पदार्थों—जैसे जस्ता, तांबा अथवा सीसा आदि—के साथ मिली हुई पाई जाती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि चाँदी मिलने वाली उन धातुओं से जिनसे दुनियाँ को ९०% शुद्ध चाँदी मिलती है उनसे ही दुनियाँ का ८५% सोना, ९९% रांगा, ६६% तांबा और ४६% जस्ता भी प्राप्त होता है। चाँदी मुख्यतः पाँच प्रकार की कच्ची धातुओं में प्राप्त की जाती है—

(i) अर्गेनटाइट (Argentite) (इसमें धातु का अंश ८७% होता है), (ii) पायराजाइराइट (Pyrazirite) (धातु का अंश ६०%), (iii) स्टैफनाइट (Stefanite) (धातु का अंश ७०%), (iv) होर्नसिल्वर (Horn-Silver) (७५% धातु), तथा (v) प्रोसटाइट (Prostite) (६५% धातु)।

चाँदी का सबसे अधिक प्रयोग सिक्के, आभूषण, वर्तन और औषधियाँ, फोटोग्राफिक आदि बनाने, जवाहरात उद्योग के लिए होता है। विश्व में चाँदी उत्पन्न करने वाले मुख्य देश मैक्सिको, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, पीरू, बोलीविया, चिली, आस्ट्रेलिया, जापान, स्वीडन आदि देश हैं। विश्व में चाँदी का उत्पादन क्रमशः बढ़ता रहा है। सन् १८०० ई० में ७८० लाख औंस चाँदी प्राप्त की गई। १९४० में यह मात्रा २७३० लाख औंस हो गई। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् चाँदी का औसत उत्पादन प्रति वर्ष २००० लाख औंस है। इलैक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग तथा रासायनिक उद्योगों में द्वितीय महायुद्ध के समय इसका प्रयोग सोल्डर (Solder) तथा मिश्रित धातु बनाने में भी होता था। १९५१ में विश्व में ५४०० मैट्रिक टन उत्पन्न हुई।

नीचे की तालिका में चाँदी के उत्पादक देश बताये गये हैं—

देश	खनिज क्षेत्र	उत्पादन (मैट्रिक टनों में)
मैक्सिको	पोटोसी, गुनाजूटो, सोनोए दुरंगा, चिहाहा, गाकाटोक्स और सानलुईस	१३६२
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	मोनटाना, उटाहा, इडाहो, नेवाडा, एरिजोना, कोलोराडो, टेक्साज	१२४१
कनाडा	ब्रिटिश कोलम्बिया, यूकन उत्तरी आँटेरियाँ	७५४
पीरू	सेरोडीपास्को, पूनो	४६२
बोलीविया और चिली	पोटोसी	२२२
आस्ट्रेलिया	ब्रोकनहिल, क्वीनसलैंड	३३५
जापान		१७०
स्वीडन		४०
विश्व (रूस को छोड़कर)		५४००

उत्तरी अमेरीका संसार में सबसे अधिक चाँदी पैदा करने वाला महाद्वीप है। यहाँ विश्व की ६६% चाँदी पाई जाती है, यहाँ चाँदी का भण्डर पश्चिम की समस्त पहाड़ी श्रेणी में उत्तर में संयुक्त राष्ट्र से लेकर दक्षिणी अमेरिका, में चिली तक भरा है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में चाँदी, उटाहा, मोनटाना, नेवाडा, इडाहो, कोलोराडो, एरीजोना आदि रियासतों में मिलती है। यह देश के उत्पादन

का ८५% देती हैं। कनाडा में चाँदी, ऑंटेरियो प्रान्त में (देश की ५०%) सडवरी और कोवाल्ट की खानों से, तथा गोगाँडा और दक्षिणी लारेंस; बृटिश कोलम्बिया में किम्बरले, पोर्टलैण्ड, क्यूबेक प्रान्त में नौरेन्डारुयेन जिले में तथा मानीटोबा और सस्केचवान में और यूकन प्रान्त से भी चाँदी प्राप्त की जाती है। मैक्सिको में संसार की एक तिहाई चाँदी प्राप्त की जाती है। यहाँ की मुख्य खानें हिल्डागो राज्य में है। चिहुआहुआ राज्य में चिहुआहुआ, सैनफान्सिसको, डेल ओरो, पराल, सैंटा बारबारा तथा कूहाहिला में सियरा मोजाडा में चाँदी प्राप्त की जाती है। यह खानें देश की $\frac{2}{3}$ चाँदी देती हैं।

दक्षिणी अमेरिका में पीरू राज्य से विश्व की ८% चाँदी प्राप्त की जाती है। यहाँ चाँदी की खानें सैरोडी पैस्को में १४,७०० फुट की ऊँचाई पर मिलती है। इसके अतिरिक्त बोलीविया और चिली में भी टिन, ताँबा, जस्ता और सीसे की कच्ची धातु के साथ मिली हुई चाँदी पाई जाती है।

आस्ट्रेलिया में चाँदी न्यूसाउथवेल्स प्रान्त की ब्रोकनहिल और पश्चिमी आस्ट्रेलिया में कालगूर्ली, क्वीन्सलैण्ड और दक्षिणी आस्ट्रेलिया में पाई जाती है। टस्मानियाँ की रीड हरक्यूलिस खानों से भी चाँदी प्राप्त की जाती है।

यूरोप में चाँदी जर्मनी, युगोस्लेविया, स्वीडन, इटली, जेकोस्लोवाकिया और रूमानिया से प्राप्त की जाती है।

एशिया में चाँदी जापान और ब्रह्मा में पाई जाती है। जापान की अकीता, कगावा और इवारकी जिले की खानें प्रसिद्ध हैं। थोड़ी-सी चाँदी कोरिया, चीन, और फारमूसा में भी मिलती है। ब्रह्मा में शान के पठार पर बाल्डविन की खानों से सीसे की कच्ची धातु के साथ चाँदी मिलती है।

आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, कनाडा और पीरू अपने यहाँ से चाँदी बाहर भेजते हैं। चाँदी का आयात करने वाले मुख्य देश ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रान्स, भारत और पाकिस्तान हैं।

(३) प्लैटिनम (Platinum)

यह कड़ी धातु होती है जिस पर वायु, अम्ल और ऊँचे तापक्रम का प्रभाव कम पड़ता है।

वर्तमान समय में यह सबसे मूल्यवान धातु मानी जाती है क्योंकि विश्व में इसका बड़ा अभाव है। इसका प्रयोग बिजली के औजार, बहुमूल्य गहने, दन्त चिकित्सा, फोटोग्राफी और X—Ray में भी होता है। इसका प्रयोग हीरे-जवाहिरात जड़ने में भी किया जाता है।

सन् १९५२ तक विश्व में सबसे अधिक प्लैटिनम कनाडा में पाया जाता रहा। किन्तु अब इसका प्रमुख उत्पादक द० अफ्रीका संघ है। यहाँ ट्रांसवाल के वाटरबर्ग, लिडनबर्ग और रस्टनबर्ग जिलों में पाया जाता है। दक्षिणी अमेरिका में कोलंबिया और अलास्का में गुडन्यूज के क्षेत्र में भी प्राप्त किया जाता है। रूस में प्लैटिनम निजनी टागील में पाया जाता है। १९५१ में विश्व में

५००,००० ट्राय औंस प्लैटिनम प्राप्त किया गया जिसका ४३% अकेले द० अफ्रीका संघ, २३% कनाडा और २०% रूस तथा शेष अलास्का और कोलम्बिया में प्राप्त हुआ।

(४) बहुमूल्य पत्थर (Precious Stones)

संसार में जहाँ कहीं भी बहुमूल्य पत्थर पाये जाते हैं वहीं इन्हें निकाला भी जाता है क्योंकि इनका मूल्य बहुत होता है। हीरे, माणिक, नीलम, पन्ने, पुखराज और रक्तमणि आदि मुख्य बहुमूल्य रत्न है। इनका वितरण निम्न प्रकार से है—

(क) हीरा (Diamond)—हीरा संसार में सबसे अधिक दक्षिणी अफ्रीका की किम्बरले की खानों से नीली चट्टानों से प्राप्त किया जाता है। द० अफ्रीका में हीरे के मुख्य क्षेत्र बैलजियन कांगो में कसाई नदी की ऊपरी घाटी में बुवंगा क्षेत्र; उत्तरी अंगोला का डाइमंग क्षेत्र, गोल्ड कोस्ट का बिरीम घाटी; और सियरा लियोन की कंजा और कोनो क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त ब्राजील, ब्रिटिश गायना, न्यूसाउथवेल्स और दक्षिणी भारत में अनन्तपुर, बिलारी, कड्डापा, कर्नूल, गन्तूर, कृष्णा और गोदावरी जिले तथा पूर्वी भारत में महानदी और उसकी सहायक नदियों की बालू में मुख्यतः सम्बलपुर और चाँदा जिले में तथा मध्य भारतीय क्षेत्र में मध्य प्रदेश की बुंदेलखण्ड आदि रियासतों में हीरा पाया जाता है। विश्व का उत्पादन १५० लाख मैट्रिक कैरेट है।

(ख) माणिक और नीलम (Ruby & Sapphires)—यह अधिकांश वर्मा, लंका, थाइलैंड में पाये जाते हैं।

(ग) पन्ना (Emerald)-यह कोलंबिया, साइबेरिया, और न्यु-साउथवेल्स में मिलता है।

(घ) रक्तमणियाँ (Topaz)—यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, युराल पर्वत, साइबेरिया,, सेक्सोनी, शाईलेशिया और बोहीमिया में पाई जाती हैं।

(ङ) मोती (Pearls)—यह अधिकतर मनार की खाड़ी, बेहरीन द्वीप, सुलू द्वीप, केलीफोर्निया की खाड़ी तथा आस्ट्रेलिया के उत्तरी और पश्चिमी तट के किनारे छिछले पानी में पाये जाते हैं।

अलौह धातु (Non-ferrous Metals)

(१) सीसा या रांगा (Lead)

सीसा प्रायः जस्ते और चाँदी के साथ मिला हुआ पाया जाता है। यह मोलीबिडनम, वैनेडियम, कैडमीयम, तांबा, सोना, सुरमा आदि के साथ भी मिला हुआ पाया जाता है। विश्व की प्रमुख खानों में (मैक्सिको की चिहुआहुआ और पोटोसी की खानें, आस्ट्रेलिया की ब्रोकन हिल और माउंट ईसा तथा पीरू की कैरोडी पास्को) सीसा इसी प्रकार मिलता है। टस्मानिया, बोलिविया और कार्नवाल में यह टिन के साथ मिलता है। स्पेन में यह चांदी के

साथ मिलता है किन्तु पौलेंड, जर्मनी और सार्डीनिया में यह चांदी के साथ नहीं मिलता।[1]

सीसा तीन प्रकार की कच्ची धातुओं से प्राप्त होता है :—

(i) गैलिना (Galena)—इसमें धातु का प्रतिशत ८६%होता है।
(ii) केरूसाईट (Cerrusite)—इसमें धातु का प्रतिशत ७७%है।
(iii) एंगेसाईट (Angesite)-इसमें धातु का प्रतिशत ६८% होता है।

सीसा अधिकतर परतदार चट्टानों की नसों के रूप में पाया जाता है। सीसे के साथ कभी-कभी चूना, चाँदी और जस्ता भी मिला रहता है। लोहे के बाद सीसे का ही सबसे अधिक प्रयोग होता है क्योंकि यह मुलायम और भारी धातु होती है जो ६२१° फा० ताप पर पिघलती है। इसे सरलता से दूसरी धातुओं के साथ मिलाया जा सकता है और यह बिजली का कुसंचालक है।

उपयोगिता की दृष्टि से इसका बड़ा भारी महत्व है। रेल के इंजिन, मोटर कार, बैटरी, हवाई जहाज, टाइपराइटर, वाद्ययंत्र, मशीनें, छापेखाने के टाइप, कारतूस, बन्दूक की गोलियाँ, बिजली के तार, रंग-रोगन तथा अन्य वस्तुओं के बनाने में इसका प्रयोग होता है।[2]

विश्व में जितना सीसा पाया जाता है उसका ४५% अकेले उत्तरी अमेरिका से और शेष मेक्सिको, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, स्पेन, पीरू, इटली, युगोस्लोविया, दक्षिणी-पूर्वी अफ्रीका और मरक्कों तथा ब्रह्मा से प्राप्त होता है। १९५१ में १५४० हजार टन सीसा पैदा हुआ। अगले पृष्ठ की तालिका में सीसा पैदा करने वाले देश बताये गये हैं।

माँग की वृद्धि होने के साथ-साथ सीसे के उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि हुई है। सन् १८८० ई० में ४०८,००० टन सीसा निकाला गया। सन् १९१३ में यह मात्रा १,२६९,००० टन हो गई और सन् १९५३ में १,९८३,००० टन। विश्व के उत्पादन का ३/५ भाग सं० राष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, रूस और कनाडा से प्राप्त हुआ। सीसे के सम्भावित भंडार दुर्भाग्यवश बहुत

---

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 411.

२. "As a metal, an alloying agent, an ingredient of manufactured goods, and an agent in industrial operations, the range of lead's usefulness is almost as wide as the field of industry itself. It is present in the home in paint, plumbing materials glassware and musical instruments; in the office it is used in typewriters and calculating machines; in transportation large quantities are required in the manufacture of automobiles, airplanes, and locomotives. It is valuable in the building trade, communication by wire, the printing industry, the sportsman's rifle, and the chemical laboratory"- Case and Bergsmark : *Ibid* p. 700.

कम हैं और यह अन्देशा है कि ये कुछ ही दशाब्दियों में समाप्त हो जावेंगे।[1]

सीसा निर्यात करने वाले मुख्य देश आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, स्पेन और पीरू हैं। मुख्य आयातक ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और भारत हैं।

सीसा उत्पादक देश

देश	प्रमुख क्षेत्र	उत्पादन (हजार टनों में)
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	मिसौरी, इडाहो, कन्सास, ओकलोहामा, कोलोराडो, मोनटाना, यूटाहा, न्यूआर्लियन्स और एरीजोना की रियासतें	४१०
मैक्सिको	पठारी भाग	२३०
आस्ट्रेलिया	न्यूसाउथवेल्स की ब्रोकनहिल और टस्मानिया की रीडहरक्यूलिस खानों से	२००
कनाडा	ब्रिटिश कोलम्बिया की सिलूवन खान से, क्यूबिक, आँटेरियों, नोवास्कोशिया प्रान्तों से	१४७
यूगोस्लाविया	ट्रेप्का खान से	८०
पीरू		८२
प० जर्मनी	अपरसाईलेशिया	१२०
स्पेन	सीयरा नेवदा और सीयरा, मोरेना	४१
इटली		३६
वर्मा	शान राज्य की वाडविन खानों से	—
यूरोप	इंगलैंड में कम्बरलैंड, डरहम, डरवीशायर, स्काटलैंड में लनार्कशायर; फ्रांस में सेवॉय, आल्पस और पिरेनीज में	—
विश्व का योग		१५४०

१. A. B. Parson : 'Metals & Minerals ; Has the World Enough' quoted in Case & Bergsmark, *Ibid.* p. 702.

(२) जस्ता (Zinc)

जस्ता भी प्रकृति में शुद्ध रूप में नहीं मिलता, यह रांगे की तरह पतंदार चट्टानों की नसों में मिलता है। इसके साथ चाँदी और राँगा दोनों ही मिलते हैं। जस्ता अधिक मात्रा में जस्ते की सलफाइड (Zinc-Sulphide) से प्राप्त होता है। किन्तु यह केलेमीन, जिंकाइट, विलेमाइट, हेमीमोरफाइट से भी प्राप्त होता है।

इसका अधिकांश प्रयोग लोहे को मोर्चे से बचाने के लिए (galvanising) किया जाता है। इसके अलावा यह रग बनाने, बिजली के शैल बनाने, लोहे पर पालिश करने बैटरीज बनाने, मोटर के हिस्से बनाने, दवाइयाँ, बॉयलर प्लेट, फोटो-एनग्रेविंग करने में भी प्रयोग में आता है। जस्ते से तैयार किया हुआ नमक दवाइयाँ, वार्निश और रोगन बनाने के काम में आता है। इसको ताँबे के साथ मिलाकर पीतल (brass) और टिन के साथ मिला कर काँसा (Bell metal) धातु भी बनाई जाती हैं।

उत्पादन क्षेत्र—जस्ता उत्पन्न करने वाले देशों में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका सबसे प्रमुख है। अन्य मुख्य उत्पादक कनाडा, मेक्सिको, आस्ट्रेलिया, इटली, जर्मनी, जापान, बेलजियन कांगो, स्वीडन और रोडेशिया तथा रूस और फ्रांस हैं। १९५२ में २२४० हजार टन जस्ता निकाला गया। नीचे की तालिका में प्रमुख उत्पादक देश बताये गये हैं।

देश	प्रमुख क्षेत्र	उत्पादन (हजार टनों में)
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	कन्सास, मिसोरी, ओक्लाहामा, इडाहो, यूटाहा, कोलोराडो, टेनेसी, केन्टकी, पेंसिलवेनिया, न्यूजरसी,	६८१
कनाडा	ब्रिटिश कोलम्बिया, क्यूबिक, ऑंटेरियो, मानीटोवा	२१०
मेक्सिको		२२७
ब्रह्मा, चीन	बाडविन की खानों से	
आस्ट्रेलिया	न्यूसाउथवेल्स में ब्रोकनहिल, टस्मानियाँ में रीड रोजबरी	२००
इटली		५४
जर्मनी		७५
जापान		६४
बेलजियन कांगो		८६
स्वीडन		६५
उ० रोडेशिया		२३
यूरोप	पोलैंड, साइलेशिया, हंगरी, स्पेन, नार्वे, इंगलैंड, रूस, फ्रांस	२६०
विश्व (रूस को छोड़कर)		२२४०

सन् १६१३ में विश्व में जस्ते का उत्पादन ११ लाख टन था। यह १६२५ में बढ़ कर १३ लाख टन, सन् १६३६ में १८ लाख टन और सन् १६५३ में २७ लाख टन हो गया।

सन् १६५३ में कुल उत्पादन का ५६% संयुक्त राष्ट्र, कनाडा, रूस, आस्ट्रेलिया और मैक्सिको से प्राप्त हुआ।

स० राष्ट्र अमेरिका से विश्व का २०% जस्ता प्राप्त होता है किन्तु यह धातु का प्रतिशत ५% से भी कम होता है जबकि अच्छी धातु में यह प्रतिशत १३% से भी अधिक होता है। यहाँ जस्ता पाँच क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है (१) इडाहा में क्यूर डी एलेन (Coeur d' Alene), (२) ओक्लाहामा में कन्सास, द० प० मिस्सूरी जिले में; (३) मोन्टाना में बूटे में; (४) न्यू जर्सी में फ्रैंकलीन में, और (५) न्यूयार्क राज्य में सैंट लारेंस में। किन्तु इनमें सबसे प्रमुख क्षेत्र प्रथम क्षेत्र है।

कनाडा का $\frac{3}{4}$ उत्पादन कोलम्बिया के किम्बरले जिले से और शेष मानीटोबा से प्राप्त होता है।

मैक्सिको मे जस्ते का उत्पादन जैकेटिका, चिहुआहुआ और पोटोसी की खानों से प्राप्त होता है।

रूस में $\frac{3}{4}$ उत्पादन अल्टाई पर्वतों में लैनीनोगोर्स्क और शेष काकेशश, यूराल, बालकश झील और व्लाडीवोस्टक क्षेत्रों से प्राप्त होता है।

जस्ते के निर्यात करने वाले मुख्य देश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मैक्सिको, आस्ट्रेलिया, कनाडा, अफ्रीका और ब्रह्मा हैं। मुख्य आयातक ब्रिटेन, जर्मनी, रूस, फ्रान्स और भारत हैं।

(३) एलूमीनियम (Aluminium)

यह धातु बाक्साइट नाम की काली धातु से प्राप्त होती है जिसमें धातु का अंश ५० से ६५% तक होता है। इसका रंग मिट्टी की तरह का होता है और प्रायः लाल या पीले लोहे के उज्जमय भस्म (Hydrated Oxide) के साथ मिली हुई पाई जाती है। लोहे का अंश कम होने पर ही एलूमीनियम निकालने के लिए बाक्साइट (Bauxite) की धातु उपयुक्त होती है। वरना गेरू का अंश बहुत अधिक होने पर वह पत्थर लेटेराइट के नाम से पुकारा जाता है। थोड़ा-सा एलूमीनियम क्रायोलाइट, कोरनडम, और केयोलीन धातु से भी प्राप्त किया जाता है। इसका उत्पादन विज्ञान की खोज का फल है। सन् १८२५ ई० के पूर्व इसका पता नहीं लगा था। तत्पश्चात् डेन्मार्क निवासी हान्स ऑरस्टेड (H. C. Orsted) ने इसके कच्चे खनिज पदार्थ से कुछ सूक्ष्म धातु ढूंढ़ निकाले। २० वर्ष पश्चात् फ्रैडरिक वोहलर (F. Wohler) नामक जर्मन वैज्ञानिक ने इसके कच्चे खनिज पदार्थ से कई धातुएँ प्राप्त कीं और उनके भौतिक गुणों का विश्लेषण किया और वह इस निश्चय पर पहुँचा

कि एलूमीनियम अत्यन्त हल्की धातु है। सन् १८५६ में फ्रांस निवासी हेनरी सेन्ट क्लेरी डेब्रिल (H. S. Claire) ने एक क्रिया विधि को जन्म दिया जिसके द्वारा लगभग दो टन एलूमीनियम प्रतिवर्ष पैदा किया जाने लगा। सन् १८५९ और १८८६ के बीच एलूमीनियम का उत्पादन २ से १६ टन तक बढ़ गया और इसका मूल्य १७ डालर प्रति पौंड से घटकर ८ डालर प्रति पौंड हो गया।[1]

एलूमीनियम का विशेष गुण यह है कि यह बहुत हल्का होता है। एक घन फुट एलूमीनियम का भार १६७ पौंड होता है जबकि एक घन फुट तांबे का भार ५५६ पौंड और एक घनफुट इस्पात का वजन ४८७ पौंड होता है। यह धातु बहुत ही कोमल होती है और इससे सरलतापूर्वक दूसरी चीजें बनाई जाती हैं। यह गर्मी का उत्तम संचालक है। बिजली के संचालक में तांबे की अपेक्षा निम्नकोटि का है। इसको सरलतापूर्वक तांबा और अन्य धातुओं से मिलाकर मिश्रण (Alloy) बनाया जाता है।[2]

बाक्साइट का अधिकतर प्रयोग एलूमीनियम निकालने के अतिरिक्त फिटकरी और धातु सोधने की ईंटें, सीमेंट तैयार करने तथा पत्थरों को काटने, घिसने और उन पर पालिश करने वाले पदार्थों के बनाने में किया जाता है। इससे बरतन, तार, फर्नीचर, कालेस्बिल ट्यूब आदि भी बनाये जाते हैं। एलूमीनियम का प्रयोग अधिकतर हवाई जहाज बनाने, विज्ञान के यंत्र, रोगन, जीवन-रक्षक नौकायें, एलूमीनियम की चादरें, बर्तन, ईंटें, चद्दरें, मोटरें, रेल के डिब्बे, बिजली के सामान और अस्त्र-शस्त्र उद्योग में भी किया जाता है। एलूमीनियम को गलाने में सस्ती और अधिक मात्रा में बिजली की आवश्यकता होती है। अतः जिस बाक्साइट में धातु का अंश ३० से ६०% तक होता है वह शक्ति के श्रोतों के पास ले जाया जाता है। अतएव इसके गलाने के कारखाने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (मोबाईल, कार्प्स क्रिस्टी और बैटन रोग, लिस्टरहिल); कनाडा (अरविदा, आइल मैलीग्ने, ला टूक, व्यू हारनाइस); रूस (कैमेंस्क, क्रास्नोटूरिन्स्क, वालकोव, जपोरोज, कांडलाक्षा, ईरीवान), स्वीडन-नार्वे, इटली, जर्मनी, स्विटजरलैंड ब्रिटेन और भारत में (अलवाई मुरी और आसनसोल) जहाँ बिजली अधिक मात्रा में और सस्ती प्राप्त हो जाती है, में पाये जाते हैं।

विश्व में एलूमिनियम का उत्पादन सन् १८९५ में १८०० टन था, सन् १९१३ में यह मात्रा ६४,००० टन और १९५३ में २,६४४,००० टन हो गई। सन् १९५३ के कुल उत्पादन का २६% सुरीनाम (डच-गायना), १७% ब्रिटिश

---

१. Smith, Phillips & Smith : *Ibid*, p. 595.

२. Smith, Phillips & Smith : *Ibid*, p. 395-396.
"It is a light material, resistant to corrosion, is malleable and ductile, is a fairly good conductor of electricity and has high thermal conductivity. For its weight alluminium has high tensile strength and is of special value where both lightness and strength are desired."—vide, Case & Bergsmark : *Ibid*, p. 706.

गायना, १३% सं० रा० अमेरिका और १०% जमेका से प्राप्त किया गया। शेष फ्रांस, हंगरी, रूस, यूगोस्लाविया और पश्चिमी फ्रांसीसी अफ्रीका से प्राप्त किया गया।

सं० राष्ट्र अमेरिका के उत्पादन का ६०% पुलास्की और सैलाइन काउन्टी (अरकन्सास) से प्राप्त होता है। भारत में यद्यपि बाक्साइट का जमाव इन देशों से कम नहीं है तथापि इन देशों के मुकाबले में यहाँ की पैदावार कुछ भी नहीं है। इस देश में जितनी बाक्साइट मिलती है वह सब बाहर भेज दी जाती है। भारत में उत्तम किस्म की बाक्साइट मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले के बेहर पहाड़ की तथा जबलपुर जिले के कटनी स्थान की है। मध्य प्रदेश के सिउनी, मंडला जिलों और सरगूजा व जाशपुर क्षेत्रों में तथा भूपाल व रीवाँ क्षेत्र में, उड़ीसा के छोटा नागपुर डिवीजन और कालाहांडी क्षेत्र, बम्बई के सतारा, खेड़ा, कोलाबा, कोल्हापुर और बेलगाँव जिले, बिहार के राँची जिले, और मद्रास में सलेम की शिवौरी पहाड़ियों तथा मैसूर राज्य में अच्छी बाक्साइट मिलती है। आजकल जबलपुर के कटनी और खेड़ा के कपदवंज नामक स्थानों से ही अधिक बाक्साइट निकाली जाती है।

भारत में बाक्साइट का जमाव २५०० लाख टन होने का अनुमान किया है जिसमें से ३५० लाख टन तो बहुत ही उत्तम किस्म का जमाव है। बाक्साइट के ये भंडार निम्न रूप से वितरित हैं:—

भारत में बाक्साइट का जमाव

मध्य प्रदेश	१५४ लाख टन	मद्रास	२० लाख टन
पूर्वी रियासतें	८६ ,,	बम्बई	१३ ,,
बिहार	५२ ,,	जम्मू काश्मीर	१० ,,
कोल्हापुर	२० ,,		

भारत में १९४४ ई० में १२२३५ टन बाक्साइट प्राप्त की गई, १९४५ में १३८९३ टन और १९४६ में १६४०५ टन, १९४८ में २२,१५६ टन और १९४९ में ४२,५४१ टन।

विश्व में बाक्साइट के भण्डार मुख्यतः अयन रेखीय भागों में स्थित है जैसा कि अगली तालिका से ज्ञात होगा। जमेका, हैटी, गोल्ड कोस्ट (घाना) और फ्रान्सीस गायना में भी नये भण्डारों का पता लगा है।

विश्व में अलूमीनियम धातु के भंडार[1]

देश	भण्डार	धातु की वास्तविक मात्रा	धातु का प्रतिशत
	(१० लाख मैट्रिक टनों में)		
संयुक्त राष्ट्र	५००	१००	५०
ब्रिटिश गायना	६५०	१७०	६१
हैटी और डोमीनीकन गणतन्त्र	३००	६०	४७
सुरिनाम	५००	१३०	५६
भारत	२५००	६४००	६०
गोल्ड कोस्ट (घाना)	२३०	५१०	५३
ब्राजील	१५००	४१०	६१
युगोस्लाविया	१०००	२६०	६०
फ्रान्स	६००	१६०	६१
जेमेरिका	३१५०	६७०	५०
यूनान	६००	१५०	५७
फ्रान्सीसी प० अफ्रीका	५००	१३०	६०
दूसरे देश	६००	३६०	४७
कुल योग	१५०००	३७५०	

अनुमान लगाया गया है कि सं० रा० अमेरिका के भण्डार प्रायः समाप्ति पर है।[2] यूरोप में हंगरी, फ्रान्स और यूगोस्लाविया में केन्द्रित हैं। हंगरी में २५०० से ३००० लाख टन और रूस में ३०० लाख टन जमाव होने का अनुमान है।[3]

अलूमीनियम निर्यात करने वाले मुख्य देश कनाडा (ग्रेट ब्रिटेन और सं० रा० अमेरिका को), फ्रान्स (ब्रिटेन, जर्मनी, स्विटजरलैंड, नार्वे को), गायना (सं० रा० अमेरिका), नार्वे आदि हैं।

(४) तांबा (Copper)

तांबे का उपयोग मानव बहुत प्राचीन-काल से करता आया है। बिजली के डायनमो के आविष्कार तथा प्रयोग के साथ-साथ इसका महत्व बढ़ गया है। तांबा बिजली का उत्तम संचालक है। यह पर्याप्त मात्रा में मिलता है, सस्ता प्राप्त किया जाता है, इस पर जंग नहीं लगता। इससे सरलतापूर्वक तार बनाये जा सकते हैं, इसे पीटकर किसी भी शक्ल का बनाया जा सकता है।[4]

१. U. S. Geological Survey and Bureau of Mines: Resources for Freedom, Vol. 2, 1952, p. 69.
२. Op. Cit. p. 71
३. R. Redler: Aluminium in World Affairs 1951, p. 7.
४. Case and Bergsmark, *Ibid*, p. 690.

आज से ७००० वर्ष पूर्व ताँबे का प्रयोग होता था। नूतन पाषाण-काल (Neolithic Age) में मनुष्यों ने यह पता लगाया कि लाल रंग की धातु में विशेष गुण होते हैं जो कि काष्ट, हड्डी और प्रस्तर (Stone) में नहीं पाये जाते हैं। उनका कथन था कि यह सख्त किया जा सकता है और हथौड़े द्वारा पीटकर इसमें फल निकाला जा सकता है। यह धातु कम गर्मी पहुँचाये जाने पर भी पिघल जाती है। इस प्रकार के तथ्य इस धातु के प्रयोग के बारे में उस काल के निवासियों ने लगाये थे। तत्पश्चात् यह पता चला कि काँसे के बनाने में ताँबा बड़ी आसानी से टीन में मिलाया जा सकता है और पीतल बनाने के लिये जस्ते में। काँसा (Bell metal) और पीतल दोनों ताँबे की अपेक्षा अधिक दिन चल सकते हैं। काँसा कई प्रकार से मानव समाज के लिये अत्यन्त लाभदायक है। पाषाण-युग (Stone Age) के मनुष्यों की सभ्यता में विकास हुआ और धीरे-धीरे वे सभ्यतर बनते गये। किसी को अभी तक यह पता नहीं चल सका कि ताँबा कब और कहाँ सर्वप्रथम प्रयोग में लाया गया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ४००० ईस्वी पूर्व (B. C.) में मेसोपोटामिया और मिश्र में लोहे का प्रयोग हुआ था। लोगों का यह विश्वास है कि २००० ईस्वी पूर्व (B. C.) में पत्थर, ताँबा और पीतल का यूरोप में क्रमानुसार प्रयोग हुआ था। उसी समय चीन और भारत में भी इसका प्रयोग प्रारम्भ हुआ। परन्तु जब तक आधुनिक सभ्यता का विकास नहीं हुआ था तब तक पीरू के इन्का और मैक्सिको के एजेटेक्स निवासी इनके प्रयोग से अनभिज्ञ थे।

प्राचीन-काल में लोगों ने ताँबा, काँसा तथा पीतल के प्रयोग में अधिक सुधार किया। हमें इस बात का ज्ञान नहीं है कि प्राचीन-काल के कारीगर किस प्रकार ताँबे के सुन्दर यन्त्र बनाया करते थे। लगभग २००० ई० पू० (B. C.) हिसारलिक (Hissarlink) डारडनलीज तट पर काँसा बनाने का एक बहुत बड़ा केन्द्र था।[१] तत्पश्चात् सिटी ऑफ ट्राय का महत्व बढ़ा। हिसारलिक से व्यापारी तलवार, बर्छी, काँटे, म्यान और नाना प्रकार की काँसा धातु से बनी हुई वस्तुओं को लेजाकर भूमध्य सागर के तटवर्ती क्षेत्रों बोहिमीयाँ, सेक्सोनी और साइलेशिया में बेचते थे। रोमन राज्य के शैशव-काल में कैपनूआ नामक नगर में फैक्टरियाँ ताँबे, काँसे और पीतल से नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करती थीं। इन फैक्टरियों में बहुत अधिक पूँजी लगी हुई थी और सहस्रों श्रमिक कार्य करते थे। श्रम विभाजन भी उच्च-कोटि का था। कुशल धातुशोधक, ताँबे को पिघलाते थे और बड़ी होशियारी के साथ उसे टीन के साथ मिलाते थे, जबकि दूसरे कुशल विश्व-कर्मा धातु पर खुदाई करने, उस पर पालिश करने में विशेषज्ञ थे। कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। इसके परिणामस्वरूप कैटो महोदय शराब, तेल व पानी

१. W. Y. Elliot : International Control in Non-ferrous Metals, 1937, p. 389-390.

रखने के लिये तांबे से बने बर्तनों का प्रयोग करते थे। कांसे के बने हुए दीपक, दावात और अन्य बहुत-सी वस्तुऐं जो कैपुआ (Capua) नामक नगर में बनाई गई थीं आज भी पोमपियाइ (Pompii) नगर के खण्डहरों में पाई जाती हैं। तांबे, कांसे और पीतल के बने हुए नाना प्रकार के सिक्के इस समय प्रयोग में लाये जाते थे।[१]

तांबा बिजली का उत्तम संचालक होने से कई प्रयोगों में आता है।[२] इससे बिजली के तार, हल्के बल्ब, यांत्रिक रिफ्रीजेटर, टेलीवीजियन, विद्युत एंजिन, रेडियो, टेलीफोन, रेलों के सिगनल-उपकरण, मोटरें, पानी के नल, बरतन, सिक्के आदि बनाये जाते हैं। तांबे के तारों का महत्व आधुनिक यातायात में कितना है यह इस बात से सिद्ध होता है कि विश्व में ३०,००० मील लम्बे सामुद्रिक तार (Cables) तथा ६० लाख मील लंबी तार की लाइनें (Telegraph lines) लगी हैं तथा विश्व के ७०३ लाख टैलीफोन २००० मील लंबे तारों से जुड़े हैं।[3]

तांबे को अन्य धातुओं के साथ भी मिलाया जाता है। तांबे को जस्ते के साथ मिलाकर पीतल (Brass), रांगा के साथ मिलाकर कांसा (Bell-metal), लोहे के साथ मिलाकर जंगरहित स्पात (Stainless steel), अल्यूमीनियम के साथ मिलाकर डूराल्यूमिन (Duralumin), निकल के साथ मिलाकर मोनल (Monel metal), तथा टिन और सुरमा के साथ मिलाकर बैबिट (Babbit) धातु और कांसे के साथ मिलाकर जर्मन सिल्वर (German silver) बनाया जाता है। तांबा सोने के साथ भी मिश्रित किया जाता है तब इसे रोल्ड-गोल्ड (Rolled-Gold) कहते हैं।

प्रकृति में तांबा कई जगह अपने असली रूप में और कई जगह यह अन्य पदार्थों के साथ मिला हुआ पाया जाता है। यह आग्नेय और पर्तदार चट्टानों की नसों में पाया जाता है। कच्चे खनिज में धातु का अंश ३% से ६% तक होता है। तांबा कई प्रकार की चट्टानों से प्राप्त किया जाता है जिनकी मुख्य धातु मेलेसाइट (Malesite), एज्यूराइट (Azurite), कूपराइट (Cuprite), टेट्रा-हैडेराइट, (Tetra-hederite) और चल्कोपाईराईट (Chelkopyrite) हैं।

विश्व में तांबे का उत्पादन सन् १८०० से बराबर बढ़ रहा है। इस वर्ष १८,००० टन तांबा प्राप्त किया गया। सन् १८५० में ५२,००० टन, सन् १८८० में १७३,००० टन, सन् १९१२ में १,१००,००० टन, सन् १९४१-४५ में २,६००,००० टन और १९५३ में ३,०६८,००० टन तांबा निकाला गया।[४]

---

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 380.
२. "Copper has become the hand-maiden of electricity and has proved indispensable to generation, transmission and use of electric power"—Smith, Phillips and Smith: *Idid*, p. 381.
३. Op. cit., p. 382.
४. U. S. A., Minerals Year Book, 1945 : p. 145 and Smith etc., p. 381.

नीचे की तालिका में विश्व में तांबे का उत्पादन दर्शाया गया है—

महाद्वीप	देश	प्रमुख क्षेत्र	उत्पादन ००० टनों में
उत्तरी अमेरिका (४२.१%)	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (२८.८)	एरीजोना, ग्लोबमेथी, बिस्वी, एजोरंम, यूटाहा, मोन्टाना, नेवाडा, मिशीगन और सुपीरियर झील के निकट	८४२
	कनाडा (११.३%)	आन्टेरियो, क्यूबिक, मोनीटोवा, ब्रिटिश कोलंबिया, वेंकूअर, यूकन	२४५
	मेक्सिको (२%)	एलोनोरा और अलरीक	
दक्षिणी अमेरिका (१७.३%)	चिली	चूकिकमाटा	३८०
	पीरू	सेरोडीपेस्को, कअर्माका	३३
	वैनेजुएला	ब्रेडन, पोटरोरिलिस	
	बोलिविया		
अफ्रीका (१७.३%)	रोडेशिया (११.४%)	रोडेशिया	३१४
	बेलजियन काँगो (५.६%)	कटंगा	१६२
यूरोप (५.६%)	रूस (४.६%)	यूराल, काकेशस, मध्य एशिया	
	स्पेन और पुर्तगाल (१.३%)	सियरा मोरेना, सियरा नेवेडा, रायोटीन्टो	
एशिया	जापान (४.५%)	होंश्यू, सिकोकू, होकेडो	४१
	भारत	सिंघभूम, राजस्थान	६
	बर्मा	बाडविन	
	चीन	शाटन्ग, सेचवान, यूनान	
आस्ट्रेलिया	दक्षिणी आस्ट्रेलिया	झील प्रदेश	
	न्यूसाउथवेल्स	ब्रोकनहिल	
	क्वींसलैंड	कारपेन्टरिया	

वर्तमान काल में तांवा उत्पादक मुख्य देश सं० रा० अमेरिका है। यहाँ का उत्पादन सन् १८५० में ७५० टन से बढ़ कर सन् १६२० में ६०५,००० टन और १६५३ में ६२५,००० टन हो गया है। यहाँ तांवा उत्पादक क्षेत्र मिशीगन प्रायद्वीप, मोंटाना, ऐरीजोना, यूटाहा और नेवाडा हैं। मोंटाना में बूटे की पहाड़ियों से ४१०० फुट की गहराई से तांवा प्राप्त किया जाता है। यहाँ से सं० रा० के उत्पादन का १६% (७० लाख टन) तांवा प्राप्त होता है।

एरीजोना से १२% तांबा प्राप्त होता है। यूटाहा में बिंघम कैन्यन जिला और नेवाडा में ईली प्रमुख क्षेत्र हैं।

दक्षिणी अमेरिका में तांबे का सबसे अधिक उत्पादन और संभावित भण्डार प्रशान्त महासागर के तटवर्ती भागों में विशेषतः चिली में चुकिकमाटा में है जो समुद्रतल से १०००० फुट ऊँचा है। इस पहाड़ी में २०० लाख टन के भण्डार हैं। इस समय यहाँ २ मील लम्बे और ½ मील चौड़े तथा ६०० फुट की गहराई पर काम हो रहा है। यहाँ तांबा निकाल कर साफ करने के लिये भेजा जाता है। तांबे का दूसरा क्षेत्र एटकामा मरुस्थल के दक्षिणी भाग में पोट्रीरीलोस में पाया जाता है। थोड़ा-सा तांबा एलटैनीट में भी मिलता है।

बेलजियन काँगो और उत्तरी रोडेशिया अफ्रीका के प्रमुख उत्पादक हैं। यहाँ लगभग २८० मील लम्बे और ५० मील चौड़े क्षेत्र में—जो ८० पूर्व की ओर कटंगा जिले से रोडेशिया प्रान्त तक फैला है—तांबे की पट्टी विस्तृत है। कटंगा जिले के तांबे में धातु का अंश ६½ से २५% तक है किन्तु रोडेशिया में यह प्रतिशत ३½ है।

कनाडा के उत्पादन का लगभग आधा भाग ओंटेरियो प्रान्त की सडबरी की खानों से निकाला जाता है जहाँ धातु का प्रतिशत २% है। ¼ उत्पादन क्यूबिक के नोरंडा जिले से और शेष मानीटोबा—सस्केचवान प्रान्तों से प्राप्त होता है।

मैक्सिको में तांबा क्षेत्र कर्मनिया, सोनोरा और सैंटा रोसालिया हैं। यहाँ प्रति वर्ष ६०–७० हजार टन तांबा निकाला जाता है। क्यूबा में पिनार डेल रायो में तांबा निकाला जाता है।

तांबे के अन्य उत्पादक रूस (मध्यवर्ती वोल्गा प्रदेश, बालकश झील के उत्तरी और पश्चिमी भाग में कॉनराड और जैकजगान में), यूगोस्लाविया, फिनलैण्ड, स्पेन, स्वीडन, नार्वे, जापान तथा आस्ट्रेलिया हैं।

भारत—तांबा पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान तेरहवां है। भारत में तांबा पुराने समय में राजस्थान के उदयपुर, अलवर, भरतपुर, बूंदी, जैपुर और बीकानेर तथा दांता राज्यों और गढ़वाल, नैपाल आदि स्थानों में बहुत मात्रा में निकाला जाता था। किन्तु आधुनिक युग में इसको निकाल कर विदेशी तांबे से मुकाबला करना असम्भव हो गया है। अब भी कई स्थानों पर चट्टानों की दरार-व्यवस्था में तांबे की कच्ची धातु ताम्र माक्षिक (सोनामाखी–Copper pyrites) छितरी हुई दशा में पाई जाती है। यह खनिज या तो बिल्लौर की धारियों में या अन्य धातुओं के खनिजों के साथ मिलती है अथवा परिवर्तित शिलाओं में इसका जमाव पाया जाता है।

वर्तमान समय में तांबा दो ही क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। प्रथम बिहार-उड़ीसा में सिंहभूम और मानभूम जिलों में स्थित है। मुख्य क्षेत्र सिंहभूम जिले में लगभग ८० मील तक बैरा, मोसाबोनी, राखामाइन्स इत्यादि स्थानों में पश्चिम-पूर्व दिशा में चला गया है। यहाँ की मुख्य खनिज सोनामाखी ही है।

परन्तु इसके साथ तांबे, लोहे और निकिल के गंधकदार मिश्रण भी मिलते हैं। यहाँ की खनिज परिवर्तित शिलाओं की तहों में अनियमित रूप से मिलती है। कहीं-कहीं निकाले जाने योग्य मात्रा में मिलती है। परन्तु अधिकतर खनिज के कण शिला में इस प्रकार बिखरे मिलते हैं कि उनका निकालना निरर्थक होता है। जहाँ तांबे की खनिजें निविष्ट हो गई हैं—जैसे माटीगारा और मोसाबानी नामी स्थानों में—वहाँ पर वे खानें स्थापित करके निकाली जा रही हैं। तांबे के इस क्षेत्र में अधिक लाभदायक और प्रसिद्ध खान 'मोसाबानी' (Mosabani) धोबानी और राखा हैं। यहाँ इंडियन कोपर करपोरेशन नाम की कम्पनी कार्य कर रही है। यहाँ ६५० फुट की गहराई पर कार्य हो रहा है। इस कम्पनी की मुख्य खानें और कारखाना घाटशिला नामक स्थान के पास हैं। घाटशिला के निकट ही कम्पनी ने मौभंडार नामक स्थान पर एक विशाल कारखाना तांबे के खनिजों को शोधने के लिये तैयार किया है। सन् १९४० के अन्त में यहाँ की कच्ची धातु का अनुमान १० लाख टन किया गया था जिसमें लगभग २.८८% तांबे का अंश है। धोबानी में कच्ची धातु का अनुमान १.२७,१३१ टन लगाया गया था जिसमें ३·१४% तांबे का अंश है।

तांबे के भण्डार के ९०% सं० रा० अमेरिका, चिली, उत्तरी रोडेशिया, रूस, कनाडा और बेलजियन काँगो में पाये जाते हैं। ये ६ देश मिलाकर विश्व का ८५% तांबा उत्पन्न करते हैं। नीचे की तालिका में विश्व में तांबे के भण्डार बताये गये हैं।

विश्व में तांबे के भण्डार (१९४६)[1]

देश	भण्डार (टनों में)	विश्व के योग का प्रतिशत
सं० रा० अमेरिका	२९,२००,०००	२६·४
चिली	२५,९००,०००	२३·४
उत्तरी रोडेशिया	२१,१००,०००	१९·०
रूस	९,०००,०००	८·१
कनाडा	७,७००,०००	७·०
बेलजियन काँगो	७,४००,०००	६·७
पीरू	२,५००,०००	२·२
स्पेन	१,२००,०००	१·१
जापान	१,०००,०००	·९
अन्य	५,८००,०००	५·२
विश्व का योग	११०,८००,०००	१००·०

१. U. S. A: Report on the Copper Industry, 1947: p. 54-56 और William P. Shea "Foreign Ores Resources of Copper, Lead and Zinc," Engineering and Mining Journal, 1947 Jan., p. 53-58.

विश्व के तांवा निर्यात करने वाले मुख्य देश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चिली, रोडेशिया, बेलजियन कांगो, क्यूबा, वोलिविया, साइप्रस, फारमूसा, फिलीपाइन्स और पीरू हैं, तथा मुख्य आयात करने वाले देश कनाडा, फ्रांस, इटली, बेलजियम, जर्मनी और ब्रिटेन हैं।

(५) टिन (Tin)

हम जितनी धातुओं का प्रयोग करते हैं संभवतः टिन ही सवसे कोमल और सवसे अधिक उपयोगी धातु है। यह इतना कोमल और पीट कर बढ़ाने योग्य होता है कि इससे पतली चादर बनाई जाती है। इस धातु में मोर्चा नहीं लगता अतः यह स्पात और लोहे की रक्षा करता है, अतः इसकी कलई की जाती है। ऐतिहासिक काल के पूर्व से ही इसका उपयोग हथियार, वरतन, औजार तथा गहने आदि वनाने और कांसा वनाने के लिए तांवा टिनके साथ मिलाया जाता जाता था। सोल्डर (Solder) बनाने के लिए तांबा और सीसा मिलाया जाता है और सुरमा तथा तांवा मिलाकर बैबिट धातु (Babbit) धातु वनाई जाती है जिसका अधिकाधिक उपयोग यातायात के साधनों और कई उद्योगों में होता है। टिन के हल्का होने के कारण इसके कनस्तर (Containers) और डिब्बे वनाये जाते हैं जिनमें फल, सब्जियाँ तथा अन्य वस्तुयें भर कर भेजी जाती हैं। वास्तव में टिन मानव-जीवन के हरेक पहलू में काम आता है।[1]

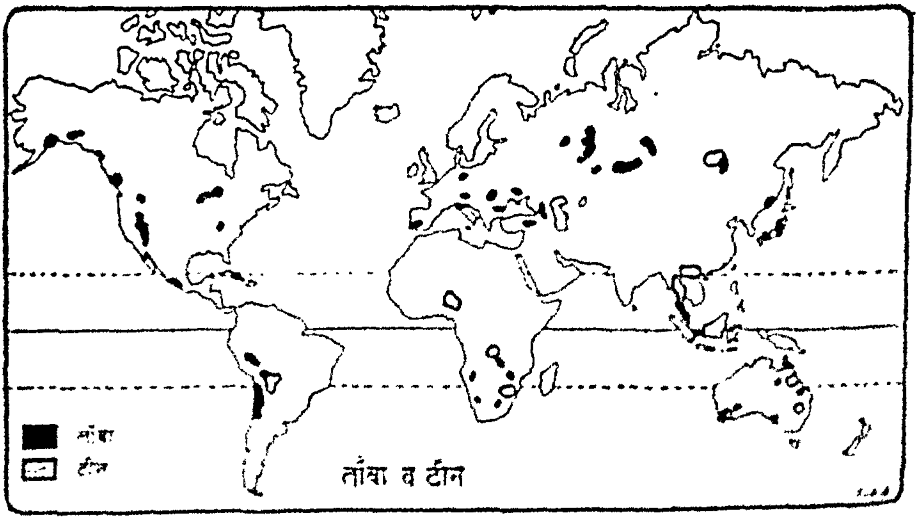

चित्र १७३

1. "It accompanies man in every walk of life literally from craddle to the grave.........It is a necessary ingredient of solder, and is a component of babbit and most other anti-friction metals, without which manufacture and transportation would be impossible. As foil, it wraps like the

टिन कैसीटराइट (Cassiterite) नामक धातु से प्राप्त किया जाता है। यह अधिकतर नदियों की लाई हुई मिट्टी के उस जमाव में पाया जाता है जिसकी मिट्टी आग्नेय चट्टानों से टूट कर आई हो। साधारणतः कच्चा टिन कठोर होता हैं। मलाया और बोलिविया में ऐसा टिन पाया जाता है जो पानी के कटाव से मिट्टी के साथ बहकर चला आता है। यह टिन पत्थर (Tin-Stone) कहलाता है। मलाया में कीप-टिन (Alluvial-Tin) पाया जाता है।

सन् १९५१-५३ में विश्व में टिन का उत्पादन १७२,००० लाख टन था, जब कि १९३७-३८ में यह मात्रा १८४,००० टन थी। सन् १९५३ के कुल उत्पादन का लगभग ३३% मलाया प्रायद्वीप, २०% इंडोनेशिया, २०% बोलिविया, और ९% बेलजियन कांगो से प्राप्त हुआ। शेष उत्पादन थाईलेंड, नाईजीरिया और चीन से प्राप्त हुआ। विश्व का ९०% टिन मलाया, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, ग्रेट-ब्रिटेन और नीदरलैंड में गलाया जाता है।

नीचे की तालिका में १९५१ में टिन का उत्पादन बताया गया है।

देश	प्रमुख क्षेत्र	उत्पादन (हजार टनों में)
मलाया	जोपंग, पीराक, सिलंगर, पहांग और निगर संबेलीन	५८
इंडोनेशिया	बाँकाबिलिटन, सिंगकेप	३२
बोलीविया		३४
बेलजियन कांगो		१४
थाईलेंड		——
चीन	यूनान के पठार की कोचू खानें	५
नाइजीरिया		६
आस्ट्रेलिया	क्वींसलैंड, टस्मानियां	२
ब्रह्मा		१
विश्व		१६६

workingmain's tobacco and the schoolgirl's confections. It accounts for the rustle and lustre of silk so dear to feminine heart, while the tin dinner pail has a place in politics and is celebrated in song and story. Without the humble tin can the world could no longer be properly fed"—Spurr and Wormser's : Marketing of Metals and Minerals, 1925, p. 181-182.

विश्व में सबसे अधिक टिन मलाया प्रायद्वीप से प्राप्त होता है। यहां चीनियों द्वारा कांप-टिन १५ वीं शताब्दी से ही निकाला जा रहा है। अब मलाया के उत्पादन का ६०% टिन अंग्रेजों के अधिकार में है। सबसे धनी क्षेत्र पश्चिमी मलाया में है। टिन की कच्ची धातु निकालने के लिए गाटी ड्रेजरों का उपयोग किया जाता है। यह ड्रेजर टिन की धातु को निकाल देते हैं। इसके पश्चात् टिन को पीसा जाता है और उसे पानी की बड़ी-बड़ी तश्तरियों में धोया जाता है। चूंकि टिन का चूरा भारी होता है अतः यह पेंदे में जम जाता है। इसे धोकर पीनांग और सिंगापुर के कारखानों में गलाने के लिए भेज देते हैं। यहाँ गलाने के लिए टिन थाईलैंड, ब्रह्मा, इंडोनेशिया और इंडोचीन से भी आता है। मलाया के मुख्य उत्पादक पराक, सैलेनगोर, नेगरी सम्बीलन राज्यों में हैं। थोड़ा-सा टिन जोहोर, केड़ा, केलानयन, पेरेलिस, ट्रंगनू, जोपंग, जंसीपोट में भी मिलता है।

इंडोनेशिया में टिन अधिकतर बांका, विलीटन, और सिंगकेंप द्वीप में मिलता है। यहाँ का टिन गलाने के लिये सं० रा० अमेरिका और नीदरलैंड को भेजा जाता है।

थाईलैंड में टिन निकालने का कार्य चीनी, ब्रिटिश और आस्ट्रेलियन फर्मों के आधीन है। यहाँ मावची और तवॉय जिलों में टिन निकाला जाता है।

चीन में यद्यपि टिन यूनान, क्वांग्सी, हूनान आदि प्रान्तों में मिलता है लेकिन अधिकांश उत्पादन द० यूनान के कोचीऊ जिले से प्राप्त किया जाता है।

पश्चिमी गोलार्द्ध में एक मात्र टिन उत्पादक बोलिविया देश है जहाँ टिन की धातु बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में समस्त पूर्वी एन्डीज में मिलती है। यहाँ २५ जिलों में टिन निकाला जाता है किन्तु सबसे प्रमुख उत्पादक क्षेत्र युनसिया-हुआनूनी जिला है। यहाँ टिन की खानें १२ से १८ हजार फुट की ऊँचाई पर पर मिलती हैं। यहाँ से टिन निकाल कर लामा पशुओं पर लादकर रेल तक पहुँचाया जाता है। वहां से यह एरीका बन्दरगाह द्वारा ग्रेट ब्रिटेन और सं० रा० अमेरिका को गलाने के लिए निर्यात कर दिया जाता है।

अफरीका में नाईजीरिया प्रान्त में बहुनी पठार की खानों से टिन प्राप्त किया जाता है। बेलजियन कांगो में यह कटांगा, मनोमा, कंपाला-पर्रती जिलों में प्राप्त किया जाता है। यह अधिकतर ब्रिटेन को निर्यात कर दिया जाता है। थोड़ा-सा टिन ब्रह्मा में मालची और टामोर जिलों में भी प्राप्त होता है।

टिन आयात करने वाले मुख्य देश ग्रेट-ब्रिटेन, सं० रा० अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, इटली, जापान, और रूस हैं तथा प्रमुख निर्यातक, मलाया प्रायद्वीप, ब्रह्मा, थाईलैंड, इंडोनेशिया और बोलीविया है।

अध्याय २४

खनिज खाद और इमारती पत्थर

(Mineral Fertilizers and Building Materials)

खनिज खाद

मिट्टी की उर्वराशक्ति मुख्यतः उसमें पाये जाने वाली विभिन्न रसायनों—फास्फोरस, पोटाश, नेत्रजन, कैल्शियम, गंधक, मैग्नेशियम आदि—की मात्रा पर निर्भर करती है। फास्फोरस, पोटाश, नेत्रजन, गंधक आदि रसायन व्यावसायिक या खनिज खाद कहे जाते हैं। आधुनिक-काल में इन खनिज खादों का उपयोग और महत्व दो कारणों से बहुत बढ़ गया है :—

१—विश्व के अधिकांश भागों में निरंतर खेती करते रहने से उसकी उर्वरा शक्ति का ह्रास हो गया है। इसकी पूर्ति खेतों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक खाद देकर की जाती है।

२—उ० प० यूरोप, पूर्वी अमरीका आदि देशों में भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ता जा रहा है इसके लिए अधिकाधिक मात्रा में खाद्यान्नों की आवश्यकता पड़ती है। भूमि के प्रति एकड़ भाग से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए गहरी खेती की प्रणाली अपनाई जाती है। इसमें रासायनिक खादों द्वारा ही अधिक उपज संभव होती है।

इन खनिज खादों की मुख्य विशेषता यह है कि ये उन प्रदेशों में पाई जाती हैं जो इनके उपभोग करने वाले प्रदेशों से बहुत दूर हैं।

निम्न प्रकार के पदार्थ खनिज खादों के अन्तर्गत लिये जाते हैं—

(१) फास्फेट (Phosphate or P_2O_5)

खनिज खादों में प्रमुख फास्फेट माना जाता है। विश्व की पूर्ति के लिए फास्फेट दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है—(१) पृथ्वी के गर्भ में दबी हुई उन फास्फेट चट्टानों से जो प्राचीन-काल में भूगर्भ में जल में विचरने वाले प्राणियों के दब जाने से बनी हैं। विश्व का ५०% फास्फेट इन्हीं चट्टानों से प्राप्त होता है। इस प्रकार की चट्टानें उत्तरी अफ्रीका, सोवियट रूस, सं० रा० अमेरिका आदि देशों में पाई जाती हैं।

अनुमान लगाया गया है कि विश्व में ३४ बिलिअन टन फास्फेट के भंडार छिपे हैं। इनमें से लगभग २/३ उत्तरी अमेरिका के अल्जीरिया, मोरक्को, ट्यूनीशिया और मिश्र में हैं—लगभग २३ बिलिअन टन। इन्हीं देशों से विश्व

खनिज खाद (Mineral Fertilizers)

- १. फास्फेट
  - (क) चट्टानों से प्राप्त
  - (ख)
    - १. मांस पैक करने वाले कारखानों से (हड्डियाँ, खून)
    - २. मछलियाँ
    - ३. मनुष्य की विष्ठा
    - ४. लोहे और इस्पात के कारखानों से स्लैग
    - ५. ग्वानो
- २. पोटाश
  - १. पोटाश नमक
  - २. नमकीन झीलों का नमक
  - ३. वनस्पति पदार्थों से प्राप्त (वुड-एश, चुकन्दर का शेष, सी वीड)
  - ४. पशुओं से प्राप्त (ऊन के अवशिष्ट भाग)
  - ५. लोहे और इस्पात के कारखानों से प्राप्त गैसें
- ३. नेत्रजन
  - (क) प्राकृतिक (चट्टानों से प्राप्त)
  - (ख) हवा से प्राप्त (कृत्रिम नेत्रजन)
  - (ग) कोयले से प्राप्त (अमोनीयम सल्फेट)
  - (घ)
    - १. पशु और मनुष्यों की विष्ठा
    - २. बूचड़खानों की अवशिष्ट वस्तुएँ
    - ३. सोयाफली, बिनौली की खली
- ४. गन्धक
  - (क) पायराईट खनिज से
  - (ख) जस्ता और ताँबे को गलाने से

का १/३ फास्फेट प्राप्त किया जाता है। यहाँ चट्टानों में फास्फेट का अंश ५८ से ७७% तक होता है तथा वे १ से २० फुट तक मोटी हैं। यहाँ यह सतह के निकट ही खोदकर निकाला जाता है। यूरोप की माँग का ५० से ८०% फास्फेट ये ही प्रदेश पूरा करते है। यहाँ यह कूरीघा, मोरक्को, गफसा, ट्यूनिशिया, हैबेसा और अल्जीरिया में निकाला जाता है।

रूस में विश्व के भंडार का लगभग १५% समाहित है—लगभग ५½ बिलिअन टन। रूस विश्व का तीसरा प्रमुख उत्पादक है। यहाँ फास्फेट देने वाली चट्टानें १०० से ३०० फुट मोटी है जिनमें फास्फेट का अंश ५० से ७०% तक होता है। यह मुख्यत: कोला प्रायद्वीप में खीबिनी, वाल्गा और नीपर नदियों के मध्य में तथा उत्तरी कजकस्तान में अक्तीयूबिन्सक और काराताऊ की खानों से प्राप्त होता है। सारा ही फास्फेट घरेलू मांग के लिए ही पूरा हो जाता है।

कुछ समय पूर्व से फास्फेट के नये उत्पादकों का भी ज्ञान हुआ है। नारु, ओशन, मकाटा, क्रिसमस और अंगोर आदि द्वीपों में ७८ से ९०% अंश वाली चट्टानें पाई गई हैं। इनसे फास्फेट निकालकर आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जापान को निर्यात कर दिया जाता है।

सं० राज्य अमेरिका फास्फेट उत्पादन में दूसरा मुख्य देश है। यहाँ विश्व के १२% भंडार—लगभग ४ बिलिअन टन—पाये जाते हैं। इन भंडारों का लगभग २/३ अकेले फ्लोरिडा (२½ बिलिअन टन), और शेष १/३ पश्चिमी रियासतों में (यूटाहा, व्योमिंग, मोनटाना में १½ बिलिअन टन और टैनेसी में ०.१ बिलिअन टन) पाया जाता है। सं० रा० में सब से प्रमुख उत्पादक फ्लोरिड़ा ही है जहाँ फास्फेट की चट्टानें १०० फुट तक मोटी पाई जाती हैं। ये चट्टानें धरातल के समीप होने के कारण सरलता से ही खोदी जा सकती हैं। सं० रा० से फास्फेट का निर्यात कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन, इटली, जापान, नीदरलैंड और जर्मनी आदि देशों को होता है। अनुमान लगाया गया है कि सं० राष्ट्र के भंडार वर्तमान गति के अनुसार १३०० वर्षों तक के लिए पर्याप्त होंगे।[1]

फास्फेट का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है। या तो फास्फेट की चट्टानों को चूरा कर उसे मिट्टी में मिला दिया जाता है। या फिर फास्फेट की चट्टानों को गन्धक के तेजाब से साफ कर उनमें मिलने वाले फास्फोरस को फासफोरिक तेजाब (Phosphoric Acid) के रूप में प्राप्त किया जाता है। सबसे अधिक उपयोग खाद के लिए किया जाता है। फास्फोरस का उपयोग दियासलाई बनाने, बन्दूक की गोलियाँ, रंग, दवाइयाँ, पकाने का चूर्ण, हल्के पेय, आदि बनाने तथा मुर्गियों और पशुओं को खिलाने में होता है।

(२) दूसरे प्रकार का फास्फेट लोहे और इस्पात के कारखानों में बिसैमर और खुली भट्टियों में जब लोहा गलाया जाता है तो भट्टे में चूना आदि उससे

---

१. The President's Material Policy Commission : Resources for Freedom, Vol 2, 1952. p. 156.

फास्फोरस खींच लेते हैं। इसी को पीस कर चूरा बनाकर 'Basic Slag' या 'Thomas Meal' के नाम से बाजारों में बेचा जाता है। इस प्रकार का फास्फोरस जर्मनी, फ्रान्स, बेल्जियम और लक्समबर्ग से प्राप्त किया जाता है।

(३) कुछ फासफोरस पशु और मनुष्यों की विष्ठा से भी प्राप्त किया जाता है। कुछ मात्रा अमेरिका के बूचड़खानों से विशाल मात्रा में प्राप्त होने वाले रक्त, हड्डियों और पशुओं के अन्य अवशेषों से भी प्राप्त की जाती है।

(२) पोटाश (Potash or K_2O)

पोटाश की प्राप्ति भी कई प्रकार से होती है। अधिकतर पोटाश उन भूगर्भिक नमक की चट्टानों से प्राप्त होता है जो पूर्व काल में बनी थीं। नमक की ये चट्टानें क्रमशः कारनेलाइट (Carnallite), सिलवाईट (Sylvite) और कियेनाइट (Kainite) हैं। इन विभिन्न प्रकार की नमक की चट्टानों से ही विश्व का अधिकांश व्यापारिक पोटाश प्राप्त होता है।

अनुमान लगाया गया है कि सम्पूर्ण विश्व में ५ बिलियन टन पोटेशियम आक्साइड (Potassium Oxide) के भण्डार मौजूद हैं, जो वर्तमान उपयोग की गति से आगामी एक हजार वर्षों तक के लिए पर्याप्त हैं। इनमें से सबसे अधिक भण्डार पूर्वी जर्मनी में हैं—१४,०००० लाख टन; पश्चिमी जर्मनी में २० से २००,००० लाख टन; रूस में ७,००० से १८४,००० लाख टन; इसराइल-ट्रांसजार्डन में १२,००० से १४,००० लाख टन; फ्रान्स में ३,००० से ४,००० लाख टन; स्पेन में २,७०० से ५,००० लाख टन और सं० राष्ट्र में २,५०० लाख टन के भण्डार होने का अनुमान है।[1]

पोटाश का सबसे अधिक उत्पादक जर्मनी है जहाँ से विश्व का ६०% पोटाश प्राप्त होता है। यहाँ तीनों ही प्रकार के नमक की चट्टानें मिलती हैं जिनमें पोटाश की मात्रा इस प्रकार है :—

कारनेलाइट (पोटाश + मैगनीशियम क्लोराइड)	८ से १०%
कैयेनाइट (पोटेशियम क्लोराइड + मैग्नेशियम सल्फेट)	१० से १२%
सिलवाइट (पोटेशियम क्लोराइड)	१५ से २४%

इनमें से प्रथम प्रकार की चट्टानें ही जर्मनी में अधिक पाई जाती हैं। यहाँ नमक की चट्टानें हर्ज पर्वत के चारों ओर पाई जाती हैं—उत्तर की ओर निम्न भूभागों के नीचे की ओर दक्षिण-पश्चिम में थुरिंगिया तक। यहाँ पोटाश की खानें १,३०० से २,००० फुट की गहराई पर पाई जाती हैं। ये चट्टानें ६ से १२० फुट मोटी हैं। खानों से पोटाश गहरी खुदाई (Shaft tunnel) करके निकाला जाता है। यहाँ पोटाश निकालने में कई सुविधाएँ प्राप्त हैं—जैसे

१. Resources for Freedom, 1952, p. 157-158.

(१) विद्युत शक्ति सस्ती प्राप्त हो जाती है, (२) सड़कों, नदियों और रेलों द्वारा यातायात सस्ता है, (३) निकटवर्ती क्षेत्रों में जर्मनी के औद्योगिक क्षेत्र स्थापित हैं, (४) खाद के रूप में काम आने के लिए बाजार निकट ही है तथा उत्तरी सागर द्वारा इसका निर्यात सुविधापूर्वक किया जा सकता है।[1]

फ्रान्स के एल्सेस जिले में भी पोटाश दो क्षेत्रों में मिलता है। प्रथम क्षेत्र दक्षिणी-पश्चिमी भाग में १,६०० फुट की गहराई से लगाकर उत्तरी-पूर्वी भाग में २,८०० फुट तक फैला है, इसकी मोटाई १२ फुट है। दूसरा क्षेत्र उपरोक्त क्षेत्र से ५० से ८० फुट ऊपर है। यहाँ चट्टान में पोटाश का अंश २२% है। फ्रान्स विश्व का १/४ पोटाश निकालता है।

स्पेन में पोटाश नमक की खानें उत्तरी-पूर्वी भाग में कारडोना के निकट हैं। ये ७०० से ३,००० फुट गहरी हैं। यहाँ से विश्व का ५% पोटाश प्राप्त किया जाता है।

रूस में पोटाश नमक कई स्थानों पर मिलता है किन्तु यहाँ के सबसे बड़े भण्डार सोलीकमास्क में हैं जहाँ नमक की चट्टानें २५० से १,००० फुट की गहराई तक मिलती हैं। इनकी मोटाई क्रमशः ६५ फुट और २०० फुट तथा पोटाश का अंश २०% है। रूस से भी विश्व की ५% पोटाश की खानें पाई जाती हैं। यहाँ चट्टानें ५०० से ६५० फुट गहरी हैं। यहाँ भी बड़े जमाव उपस्थित होने का अनुमान है।

संयुक्त राष्ट्र में पोटाश नमक पश्चिमी रियासतों में—न्यूमैक्सिको, कैलीफोर्निया और यूटाहा में—पाया जाता है। इनमें न्यूमैक्सिको की कर्लबाद के पूर्ववर्ती ४०,००० वर्गमील क्षेत्र पोटाश के उत्पादन के लिए मुख्य हैं। सं० राष्ट्र अमेरिका विश्व के उत्पादन का १/४ भाग देता है।

चट्टानों के अतिरिक्त पोटाश प्राप्त करने के अन्य स्रोत भी हैं। जार्डन में मृतक सागर, तथा द० कैलीफोर्निया में सीअरलैस (Searles) झील के नमकीन पानी से पोटाशियम प्राप्त किया जाता है।

इसके अतिरिक्त लकड़ी का राख (Wood-ashes), शेल (Shales), ग्रीनसैंड (Greensand), फैल्सपार (felspar) आदि से भी पोटाश प्राप्त किया जाता है।

पोटाश न केवल खेती के काम में ही आता है बल्कि वर्तमान युग में इसका अधिकाधिक उपयोग साबुन, विस्फोटक पदार्थ, दवाइयाँ, काँच, दियासलाई, कागज बनाने, चमड़ा रंगने, ब्लीचिंग करने, और उसे कमाने, धातुशोधन, फोटोग्राफी और इलैक्ट्रोप्लेटिंग आदि करने में भी होता है। किन्तु कुल उत्पादन का लगभग ९/१० भाग हल्की रेतीली भूमि में खाद देने में किया जाता है और

1. Jones and Drakenswald : Economic Geography, 1954, p. 544.

इसके सहारे कपास, आलू तथा तम्बाकू और अन्य जड़ों वाली फसलें पैदा की जाती हैं।

(३) शोरा या नेत्रजन (Nitrate or Nitrogen)

नेत्रजन भी खनिज खादों में मुख्य माना जाता है। यह मुख्यतः तीन प्रकार के स्रोतों से प्राप्त होता है—७५% हवा से, २०% कोयले से और ५% प्राकृतिक चट्टानों से।

(१) हवा से प्राप्त किया हुआ कृत्रिम नेत्रजन (Atmospheric Nitrogen or Synthetic Nitrogen)—प्रथम युद्ध के समय जब जर्मनी को चिली से प्राकृतिक शोरा मिलना बंद होगया तो जर्मनी के वैज्ञानिकों ने हवा से कृत्रिम नेत्रजन प्राप्त करने का प्रयास किया। हवा नेत्रजन का सबसे बड़ा अक्षय भंडार माना जाता है। अनुमान लगाया गया है कि प्रति घनफुट हवा के भार का ७५% असली नेत्रजन गैस होती है जिसमें से २२० लाख टन भूमि के धरातल पर प्रति वर्ग मील में पाई जाती है।[1]

हवा से नेत्रजन प्राप्त करने के लिए तीन मुख्य विधियाँ काम में लाई जाती हैं—(क) सन् १९०० में नार्वे में महराब-विधि (Arc method) का विकास किया गया। इस विधि के अन्तर्गत एक बड़े विद्युत महराब में होकर गर्म हवा को निकाला जाता है। इससे आक्सीजन और नेत्रजन मिलकर आक्साइड बनाती हैं, जो पुनः पानी में घुलकर शोरे की तेजाब (Nitric Acid) बन जाती है। किन्तु इस विधि में सस्ती विद्युत-शक्ति की आवश्यकता बहुत पड़ती है अतः इसका प्रयोग बन्द हो गया है।

(ख) सन् १९०० में जर्मनी में साइनामाइड विधि (Cynamide Process) का विकास किया गया। इसके अंतगत बिजली के भट्टों में कैलशियम कार्बाइड (Calcium Carbide) बनाने के लिए कोक और चूने का उपयोग किया जाता है। इसको नेत्रजन गैस के साथ २१२° फा० के तापक्रम पर गर्म किया जाता है जिससे कैलशियम साइनामाइड बन जाता है। इसे जल और भाप के साथ मिला कर अमोनिया प्राप्त किया जाता है। इस विधि का प्रयोग भी अब कम होता जा रहा है।

(ग) हैबर-बॉशविधि (Haber-Bosch Process) का आधुनिक समय में अधिक महत्व है। इस विधि को सबसे पहले १९१३ में जर्मनी में काम में लिया गया। इसकी सफलता का मुख्य कारण कैटेलिस्ट्स (Catalysts) के बारे में रासायनिक ज्ञान प्राप्त होना था। इस विधि में जल गैस से शुद्ध हाइड्रोजन और प्रोड्यूसर गैस से शुद्ध नेत्रजन प्राप्त कर दोनों को १०२२° फा० की आँच पर गर्म किया जाता है। इनमें थोड़ी मात्रा में लोहे के आक्साइड भी मिले रहते हैं। इस प्रकार गर्म करने से हवा से नेत्रजन प्राप्त हो जाता है। इस विधि में विद्युत शक्ति की भी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती।

1. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 474.

(२) नेत्रजन का दूसरा स्रोत अमोनियम सल्फेट (Ammonium Sulphate) है जो कोयले को जला कर प्राकृतिक गैस से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार का नेत्रजन विश्व के प्राय: सभी औद्योगिक देशों में कोयले से उप-प्राप्ति के रूप में निकाला जाता है। विश्व के सम्पूर्ण उत्पादन का लगभग ८०% सं० राज्य अमेरिका, रूस, प० जर्मनी और ब्रिटेन से प्राप्त होता है।

(३) नेत्रजन प्राकृतिक सोडियम नाइट्रेट (Sodium Nitrate) से भी प्राप्त किया जाता है जिसकी कच्ची धातु को 'Caliche' कहते हैं। प्राकृतिक शोरा मुख्यत: चिली, भारत, मिश्र, स्पेन और केलीफोर्निया से प्राप्त होता है किन्तु इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण चिली के मरुस्थल है। यहाँ शोरे की शिलायें (Beds) चिली के मरुस्थल में ४५० मील की लम्बाई में समुद्र के धरातल से ४ से ७,००० फुट की ऊँचाई पर १९° से २९° द० अक्षांशों के बीच में एण्डीज पर्वत के पूर्वी भाग में अस्त-व्यस्त रूप में पाई जाती है। कुछ शिलायें तो समुद्र तट से १५ मील के भीतर हैं जबकि कुछ ९० मील दूर भी है। इस शिला में Caliche की तहें कुछ इंचों से लेकर १० फुट तक मोटी पाई जाती हैं। इनमें से कुछ धरातल के निकट ही और कुछ २५ फुट की गहराई तक मिलती हैं। इनमें शोरे का प्रतिशत ६०% तक होता है। इन शिलाओं को बिजली की मशीनों (Electric Shovels) द्वारा काट कर उसे शोरा साफ करने वाले कारखानों (Oficina) तक ले जाया जाता है। वहाँ इसे बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा पीसा जाता है, फिर इस चूरे को पानी की बड़ी-बड़ी परातों में धोया जाता है और फिर इस घोल को ठण्डे करने वाली परातों में उँडेल दिया जाता है। यहाँ शोरा और जल अलग-अलग हो जाते हैं। इस शोरे को सीमेण्ट की फर्शों पर धूप में सूखने के लिए रख दिया जाता है। सूखने पर २०० पौण्ड के थैलों में भर कर इकीक, एन्टाफोगेस्टा आदि बन्दरगाहों को निर्यात के लिए भेज दिया जाता है। इन कारखानों की शोरा साफ करने की दैनिक क्षमता १६,००० टन की है। चिली में शोरा प्राप्त करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ये प्रदेश समुद्र तल से काफी ऊँचे पाये जाते हैं अतः यातायात की असुविधा रहती है। इसके अतिरिक्त कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के लिए जल १०० मील से भी अधिक दूरी से लाया जाता है।

चिली से शोरे का निर्यात सबसे अधिक किया जाता है। सन् १८८० से १९०० के बीच यह मात्रा २·५ लाख टन से बढ़कर १५ लाख टन हो गई। १९१६–१८ में ३० लाख टन और १९२९ में इससे भी अधिक। किन्तु ज्यों-ज्यों कृत्रिम नाइट्रोजन प्राप्त करने की विधि का विकास होता गया त्यों-त्यों उससे प्रतिस्पर्धा होने से चिली के निर्यात को कुछ धक्का पहुँचा। अतः १९३२ में यह मात्रा २·५ लाख टन ही रह गई। द्वितीय महायुद्ध के बाद अब वार्षिक निर्यात लगभग २० लाख टन का होता है।

शोरे का उपयोग न केवल खाद के रूप में ही होता है बल्कि मनुष्यों के भोजन में भी इसका स्थान है। यह आश्चर्यजनक बात प्रतीत होती है कि शोरे

से ३० मील के भीतर स्थित हैं। नमक के कारखाने ऐसे स्थानों पर स्थापित किए गए हैं जो समुद्र के ज्वार भाटे के तल से नीचे हों। ऐसे स्थान के चारों ओर एक पक्का मजबूत बांध बना दिया जाता है। इस घेरे में बाहरी तथा भीतरी जल भंडार होते हैं तथा नमक बनाने का बड़ा हौज होता है। ज्वारभाटा के समय पानी ऊँचा उठता है तो बाहरी जल भंडार भर जाता है। उसका पानी भीतरी भंडार में जाता है और यहाँ से यह जल हौजों में भेजा जाता है और सूर्य के ताप से सुखाया जाता है। जब इस जल में से चूने के सल्फेट और कार्बोनेट नामक लवणों का अवक्षेपन हो चुकता है तो शेष नमकीन जल को कढ़ाइयों में भर कर उसमें से नमक निकाला जाता है। इस तट पर नमक बनाने का काम जनवरी से जून तक होता है। कुल उत्पत्ति का केवल २५% ही राज्य में खपता है, बाकी नमक मध्य प्रदेश और दकन में भेज दिया जाता है। कच्छ की खाड़ी में खारगोदा, उड और कुदा नामक स्थानों पर भी नमक के कारखाने हैं। यहाँ की भूमि में से खारी जल १८ से ३० फीट तक नीचे कुएँ खोदकर निकाला जाता है। यहाँ नमक अप्रेल से जून तक बनाया जाता है। बम्बई राज्य की कुल नमक की उत्पति का २० से २५% भाग कच्छ की खाड़ी से प्राप्त होता है।

पूर्वी तट पर मद्रास राज्य में समुद्र के तटीय भागों में नमक तैयार किया जाता है। कुल उत्पति का ९०% सरकारी कारखानों और शेष गैर-सरकारी कारखानों से द्वारा प्राप्त किया जाता है। सम्पूर्ण तट की १६०० मील की लम्बाई तक नमक बनाया जाता है। यहाँ नमक बनाने का ढंग वही है जो बम्बई में है। उत्तर के जिलों में—गंजाम से कृष्णा जिले तक—नमक जनवरी-फरवरी से लेकर जून-जुलाई के अंत तक बनाया जाता है। बीच के जिलों—में कृष्णा जिले से चिंगलपुट तक—मार्च-अप्रेल से अगस्त–सितम्बर तक नमक तैयार किया जाता है किन्तु धुर दक्षिण में—चिंगलपुट से मलाबार तट के भागों तक—नमक मार्च-अप्रेल से लगा कर अक्तूबर-नवम्बर तक तैयार किया जाता है। इस प्रकार मद्रास में गंजाम से लगाकर तूतीकोरन तक नमक तैयार किया जाता है। भारतीय नमक का लगभग ३०% भाग यहीं से प्राप्त होता है। मद्रास का वार्षिक उत्पादन लगभग १३० लाख टन होता है। कुल उत्पति का ८५% तो राज्य प्रांत में ही व्यवहृत हो जाता है शेष मध्य प्रदेश, उड़ीसा, मैसूर और पश्चिमी बंगाल को निर्यात कर दिया जाता है।

पश्चिमी बंगाल के तटीय भागों में समुद्री नमक बनाने के प्रयास किए गए हैं किन्तु वहाँ के अस्वास्थ्यकर जलवायु, वर्षा की अधिकता, गंगा के ताजे पानी के सामुद्रिक खारी पानी से सम्मिश्रण होते रहने, तथा तट के निकट के पानी में खारीपन कम होने के कारण और कोयले आदि के लाने की कठिनाइयों के कारण यहाँ नमक बनाने का व्यवसाय पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने पाया है। मिदनापुर के किनारों के निकट सूर्य-ताप द्वारा नमकीन पानी को सुखाकर नमक बनाने की काफी सम्भावनाएँ मौजूद हैं। बंगाल अपने उपभोग के लिए नमक अदन, पोर्ट सईद और लाल सागर के अन्य बन्दरगाहों तथा मद्रास से प्राप्त करता है।

(२) झीलों तथा खारी पानी से नमक कच्छ के तट से पश्चिम राजस्थान तथा बहावलपुर राज्य में जो विस्तृत मरुभूमि फैली हुई है उसमें ही अधिक बनाया जाता है। राजस्थान में सांभर, डीडवाना, लूनकरनसर नामक खारी झीलें हैं। राजस्थान की खारी भूमि तथा झीलों के नमक की उत्पत्ति के विषय में भूगर्भ वेत्ताओं (श्री होलैंड और श्री क्रिस्त) का विचार है कि अरबसागर की ओर से कच्छ के रन पर होती हुई जो हवायें ग्रीष्म ऋतु में राजस्थान में चलती रहती हैं उनके साथ कच्छ की खाड़ी से नमक के छोटे-छोटे कण चले आते हैं। राजस्थान तक पहुँचते-पहुँचते इन हवाओं की चाल कम हो जाती है जिसके कारण ये नमक के कणों को आगे नहीं ले जा सकतीं और वे कण इस प्रान्त की मरुभूमि में गिर जाते हैं। यह असंख्य कण इस भाग की छोटी-छोटी नदियों—मेंढा, रूपनगर, खारी और खडेल—द्वारा बहाकर वर्षा ऋतु में साँभर जैसी झीलों में एकत्र कर दिया जाता है। यही कारण है कि यद्यपि सांभर झील छोटी-सी है किन्तु वर्षा ऋतु में इसका जल ९० वर्ग मील के क्षेत्रफल में फैल जाता है। सांभर झील के तल की मिट्टी में कम से कम १२ फुट तक ५·२१% के हिसाब से नमक का अंश है। इस झील के नमक का परिमाण डा० क्राइस्ट द्वारा लगभग ५ करोड़ टन होने का कूता गया है। जब साँभर झील का पानी मार्च-अप्रैल में सूख जाता है तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक जम जाता है। झील में झपोग स्थान पर एक बहुत बड़ा बाँध बनाया गया है जिसमें पम्प द्वारा झील का पानी पहुँचा दिया जाता है। इस बड़े हौज से नमकीन पानी छोटे-छोटे हौजों और क्यारियों में पहुँचाया जाता है जहाँ पानी भाप बन कर उड़ जाता है और केवल नमक ही रह जाता है। डा० डनीक्लीफ (Dr. Dunniclif) की गवेषणानुसार साँभर झील भारत में नमक का सबसे बड़ा स्रोत है। सन् १९४८-४९ में राजस्थान में १२८ लाख टन नमक पैदा किया गया जिसमें से १०० लाख मन तो अकेला साँभर झील से ही प्राप्त हुआ। साँभर का नमक राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब, दिल्ली और मध्य प्रदेश में खपता है।

इस झील के अतिरिक्त राजस्थान में कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ पृथ्वी के नीचे बहने वाला नमकीन जल निकाल कर उसे सुखा कर नमक बनाया जाता है। पंचभद्रा में कई ३०० फीट लम्बे तथा १०-१२ फ़ीट गहरे और ५०-६० फीट चौड़े कुएँ बनाकर नमक बनाया जाता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि ३०० फीट लम्बे और ५० फुट चौड़े कुएँ के नमकीन पानी से प्रति वर्ष १५,००० मन अच्छी किस्म का नमक तैयार किया जा सकता है। डीडवाना की झील से भी लगभग इतना ही नमक प्राप्त किया जाता है। डा०. डनीक्लीफ का अनुमान है कि यह क्षेत्र भारत के लिए कई वर्षों तक उम्दा नमक दे सकता है।

(३) पत्थर का नमक पूर्वी पंजाब में मंडी राज्य में द्रांग और गूमा की खानों से निकाला जाता है किन्तु इसका रंग कुछ गहरा आसमानी-सा होता है और इसमें २५% अशुद्धि रहती है। अनुमान लगाया गया है कि इन खानों

से यदि प्रतिवर्ष ६०,००० टन नमक निकाला जाय तो ये खानें १० वर्षों तक के लिए पर्याप्त हैं।

भारत में खाने के काम में आने वाला साधारण नमक ही तैयार किया जाता है। भारत में प्रति वर्ष ६२० लाख मन की खपत हो जाती है अतः प्रति वर्ष बहुत-सा नमक अदन, पश्चिमी पाकिस्तान, पूर्वी अफ्रीका, मिश्र, और इंगलैंड से आयात किया जाता है। भारत का नमक का उपभोग निम्न प्रकार से है:—

भारत में नमक का उपभोग

(००० टनों में)

घरेलू काम में	२'०७
खेती और पशुओं के लिये	०'०३
मछली साफ करने में	०'०१
घी दूध के धन्धों में	०'०१
चमड़ा साफ करने में	०'०७
औद्योगिक कार्यों में	०'३१
	२'५०

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत में औद्योगिक कार्यों में अभी तक नमक का उपयोग बहुत कम होता है। जहाँ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कुल उपभोग का ८०% औद्योगिक कार्यों में प्रयोग होता है वहाँ भारत में केवल १२% ही।

इमारती पत्थर (Building Stones)

साधारण लोगों का यह विचार है कि प्राय: सब पत्थरों से अच्छी मजबूत इमारतें बन सकती हैं जो शताब्दियों तक खड़ी रह सकें, किन्तु यह केवल भ्रम है। कई पत्थर तो लकड़ी से भी कम टिकाऊ होते हैं। इमारतें बनाने के लिए सबसे उत्तम पत्थर ग्रेनाइट (Granite) अथवा अन्य आग्नेय शिलाएँ हैं। इन शिलाओं पर जल का प्रभाव बहुत धीरे-धीरे पड़ता है और इनमें जल प्रविष्ट भी बहुत कम होता है क्योंकि इनकी रंध्रविशिष्टता (Porosity) बहुत कम है। परन्तु यह शिलाएँ प्रायः पर्तहीन होती हैं और बहुत कड़ी होती हैं जिनसे इनको काटने-छाँटने में बड़ी मेहनत पड़ती है। जलज चूने के पत्थर और संगमरमर हल्के, सुन्दर और बहुत नरम होने के कारण अधिक प्रयोग में आते हैं किन्तु अन्य पत्थरों के मुकाबले में ये पत्थर कम टिकाऊ होते हैं। इमारती पत्थरों में सबसे अधिक प्रचलित बालू का पत्थर (Sand stone) है। यह पत्थर न तो ग्रेनाइट जैसा अधिक कड़ा और न चूने के पत्थर जैसा अति नरम और शीघ्र क्षय होने वाला ही होता है। इसके अतिरिक्त बालू का पत्थर तहदार भी होता है इसलिए इसकी पतली-पतली पट्टियाँ आसानी से बनाई

जा सकती हैं। सबसे उत्तम बलुआ पत्थर वह गिना जाता है जिसमें बालू या रेत के अतिरिक्त अन्य पदार्थ बहुत कम हों। इनके अतिरिक्त इमारतों की छतों के पाटने में खपरैल की जगह स्लेट भी काम में आती है। जलज मिट्टी की पतली तहदार शिलाएँ पृथ्वीतल के नीचे पहुँचकर दवाव द्वारा परिवर्तित होकर स्लेट बन जाती है। भारत में इमारती पत्थरों आदि का उत्पादन नीचे की तालिका में दिया गया है :—

इमारती पत्थरों का उत्पादन
(००० टनों में)

किस्म	१६४४	१६४६
ग्रेनाइट	१,४५१	१२,८६२
लैटेराइट	७६६	१३,८४४
चूने का पत्थर व कंकड़	४४,१०	४,१०१,४६७
संगमरमर	१८	२६,६१६
बलुआ पत्थर	३६२	३०७,६५५
स्लेट	०'४	२०,३५३
ट्रैप	७	—
अन्य पत्थर	५,१८१	३,४८६,४६८
योग	१२,२५७	

भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों में जो पास में सबसे उपयुक्त पत्थर होता है उसी का उपयोग इमारतों में कर लिया जाता है। इस प्रकार मद्रास और मैसूर में ग्रेनाइट तथा चारनोकाइट (Charnokite) नामक स्थानीय आग्नेय शिलाएँ ही अधिकतर कार्य में लाई जाती हैं। भारत में अन्य दक्षिणी और मध्य भाग में प्रथम कल्प से भी पूर्व के स्लेट और चूने के पत्थर तथा द्वितीय कल्प के अन्त समय के ज्वालामुखी बेसाल्ट (Basalt) नामक काले पत्थर की ही इमारतें बनाई जाती हैं। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में प्रथम कल्प के आरंभ में बने हुए विंध्याचल पर्वत के बालू और चूने के पत्थरों का इमारतों में बहुत प्रयोग होता है। इस पर्वत में बालू के लाल पत्थर का बड़ा भारी जमाव है जो इमारतों के लिए अति उत्तम प्रमाणित हुआ है। मिर्जापुर, चुनार, कटनी, इंदौर, ग्वालियर, बूंदी इत्यादि अनेकों स्थानों पर इस पत्थर की खानें हैं। बंगाल और उसके पास के कोयले के क्षेत्रों में गोंडवाना काल के बालू के पत्थरों की ही इमारतें बनाई जाती हैं। सौराष्ट्र में जूनागढ़ और पोरबंदर के चूने का पत्थर तथा धारंगध्रा का बालू का पत्थर ही अधिक प्रचलित है। उड़ीसा, और मध्य प्रदेश में लैटराइट नामक शिला भी इमारतों के काम में आती है। राजस्थान में पश्चिमी भागों में लाल इमारती पत्थर तथा दक्षिणी पूर्वी भागों में अरावली से प्राप्त पत्थर ही इमारतें बनाने में उपयुक्त होते हैं। चित्तौड़ ज़िले

की मानपुरा, नीम्बाहेड़ा आदि स्थानों की पट्टियाँ मकानों की छतें बनाने में उपयुक्त और चौके फर्श पर जड़ने के लिए काम में आते हैं। इन शिलाओं के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब आदि प्रांतों में कंकड़ नामक चूने का पदार्थ भी इमारतों में काम आता है। कंकड़ प्रायः प्राचीन कछार में जल द्वारा लाया जाकर एकत्रित किए हुए चूने के कणों से बना है। खपरैल के लिए स्लेट हिमालय पर्वत की कांगड़ा घाटी, अलमोड़ा और गढ़वाल जिलों में तथा रेवाड़ी में भी पाई जाती है। सं रा० अमेरिका में ग्रेनाइट जार्जिया, मैसेचूसेट्स और वरमाऊंट में मिलता है।

संगमरमर (Marbles):

भारत में कई स्थानों पर उत्तम संगमरमर पत्थर भी प्राप्त होते हैं। निम्न स्थानों के संगमरमर तो जगत-प्रसिद्ध हैं:—

(१) जोधपुर डिवीजन के मकराना और उदयपुर डिवीजन के राजनगर जिले के शर्बती और सफेद तथा अन्य कई रंगों के संगमरमर पत्थर।

(२) अजमेर, किशनगढ़, जयपुर, अलवर, दान्ता और पटियाला इत्यादि क्षेत्रों के संगमरमर।

(३) मध्य प्रदेश के जबलपुर का श्वेत और बड़ौदा क्षेत्रों के मोतीपुरा नामक स्थान का हरा संगमरमर।

(४) जैसलमेर रियासत और ग्वालियर के 'बाघ' नामक स्थान के चूने का लाल-पीला, छींटदार और हरा पत्थर।

सं० राष्ट्र अमेरिका में संगमरमर झील-प्रदेश तथा एपेलिशियन क्षेत्र में मिलता है। जार्जिया, टैनैसी, कोलोराडो की खानों से भी संगमरमर प्राप्त होता है। किन्तु विश्व में सबसे उत्तम संगमरमर की खानें इटली में करारा में पाई जाती हैं।

चूना और सिमेंट का पत्थर:

साधारण चूने का सिमेंट बनाने के लिए मध्य प्रदेश और राजस्थान में चूने के परिवर्तित पत्थरों का तथा उत्तर प्रदेश में कंकड़ों का भारी जमाव है। भारत में अनेक स्थानों पर चूने का पत्थर स्वयं ही ऐसे रासायनिक संगठन का होता है कि उसमें मिट्टी बहुत कम मिलाने की आवश्यकता रह जाती है। उदाहरण के लिए ग्वालियर की कम्पनी सीमेंट के लिए स्थानीय चूने के पत्थर के साथ केवल १% ही मिट्टी मिलाती है। बूंदी की सीमेंट कम्पनी में तो मिट्टी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के मिट्टीदार चूने के पत्थर को ही आपस में मिलाकर उपयुक्त रासायनिक मिश्रण कर लिया जाता है। विंध्या पर्वत में उत्तम श्रेणी के पत्थरों का बड़ा भारी जमाव प्रायः रेलवे लाइन के पास ही पाया जाता है। इस कारण भारतीय सीमेंट के सब कारखाने प्रायः चूने की पत्थरों की खानों के पास ही खोले गये हैं। सीमेंट के लिए हरसोठ राजस्थान से मंगवाई जाती है। सं० रा० अमेरिका में चूने के पत्थर के मुख्य क्षेत्र न्यूयार्क और पेन्सिलवेनिया से लगाकर मिस्सोरी, ओहियो और मिशीगन तक फैले हैं।

काँच के लिये बालू (Glass Sand) :

साधारण काँच बनाने के लिए उत्तम और आदर्श बालू वह माना गया है जिसमें १०० प्रतिशत सिलीका हो और जिसके सब कण बराबर तथा कोणदार आकार के हों। बालू में सिलीका के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ जितना ही कम होता है उतना ही बालू अधिक सफेद होता है और वह काँच के लिए उपयोगी होता है। बालू के सफेद जलज पत्थरों तथा स्फटिक शिलाओं को भी पीस कर कांच के उपयुक्त बालू बनाया जाता है किन्तु इसमें मेहनत और व्यय अधिक पड़ता है। यद्यपि भारत में काँच के लिये उपरोक्त आदर्श बालू कहीं पर नहीं मिला है परन्तु साधारण काँच के बालू की यहाँ कमानहीं है। राजमहल पहाड़ में मंगलहाट तथा पाथरघाटा नामक स्थानों पर गोंडवना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर मिलता है जिसको पीस कर काँच के लिए बालू बनाया जाता है। विंध्याचल पर्वत के लोहगरा तथा बरगढ़ नामक स्थानों पर बालू का परिवर्तित जलज पत्थर मिलता है जिससे उत्तम बालू प्राप्त होता है जिसका प्रयोग उत्तर प्रदेश के कई काँच के कारखानों में हो रहा है। इन स्थानों के अतिरिक्त बरार, पूना, जबलपुर, इलाहाबाद इत्यादि स्थानों तथा जयपुर, बीकानेर, बूँदी और बड़ौदा इत्यादि क्षेत्रों में भी उत्तम श्रेणी के बालू अथवा बालू के लिये पत्थर मिलते हैं।

उपयोगी मिट्टियाँ :

मिट्टियाँ कई प्रकार की होती है। मिट्टी की उत्तमता इस बात में है कि वह गीली होने पर मुलायम हो जाय ताकि इसको किसी भी शक्ल में परिवर्तित किया जा सके। भारत में मुख्यतः तीन प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं—(१) अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी, (२) चीनी मिट्टी, (३) मुल्तानी मिट्टी। भारत में इन मिट्टियों का उत्पादन इस प्रकार है :—

मिट्टियों का उत्पादन
(००० टनों में)

किस्म	१९४४	१९४६
चीनी मिट्टी	४६	४२
अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी	८७	१०६
अन्य साधारण मिट्टियाँ	६८३	२९७
सम्पूर्ण योग	८१६	४४५

(१) अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी (Fire-Clay)—जिन मिट्टियों में पोटाश अथवा सोडा का अंश बहुत कम होता है वे अग्नि प्रतिरोधक होती हैं। भारत में अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी की तह बंगाल की राजमहल पहाड़ी के पश्चिमी भाग में तथा गोंडवाना काल के कोयले की भिन्न-भिन्न तहों के बीच में बहुत मिलती है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश में जबलपुर तथा अन्य स्थानों पर भी यह मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी अधिकतर भारतीय कारखानों की भट्टियों के लिए अग्नि प्रतिरोधक ईंटें तथा बालू की ईंटें बनाने के काम आती हैं। रानीगंज में बर्न कम्पनी का कारखाना, कुमार धूबी में बर्ड कम्पनी का तथा कुल्टी में मार्टिन कम्पनी का कारखाना अग्नि-प्रतिरोधक ईंटों के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश में जबलपुर और कटनी के कारखाने भी ईंटें तैयार करते हैं।

(२) चीनी मिट्टी (China Clay or Kaolin)—सब मिट्टियों में बिल्कुल सफेद चीनी नामक मिट्टी अधिक मूल्यवान होती है। यह मिट्टी प्रायः ग्रेनाइट की फैल्सपार (Felspar) नामक खनिज के क्षय से उत्पन्न होती है। पोटाश और सोडा इस मिट्टी में न होने से यह अग्नि प्रतिरोधक भी होती है। इस प्रकार की मिट्टी भारत के कई भागों में पाई जाती है। सबसे उत्तम चीनी मिट्टी सिंहभूम जिले में तथा राजमहल पहाड़ी में मिलती है। इनमें से प्रथम स्थान की मिट्टी कपड़ों के कारखानों के लिए भी उत्तम प्रमाणित हुई है। इसके अतिरिक्त बिहार के भागलपुर, गया इत्यादि स्थानों में भी तथा मद्रास, मध्य प्रदेश और राजस्थान में चीनी मिट्टी मिलती है। यह मिट्टी अधिकतर चीनी के बर्तन बनाने, कपड़ों में भरने, तथा सफेद बढ़िया कागज बनाने में काम आती है। चीनी मिट्टी के उत्तम श्रेणी के पदार्थ (Ceramics & Potteries) बनाने के कारखाने ग्वालियर, जबलपुर, कलकत्ता, देहली, मैसूर आदि स्थानों में स्थित हैं।

(३) मुलतानी मिट्टी—भारत में बीकानेर, जैसलमेर जोधपुर, जबलपुर, हैदराबाद और मैसूर प्रदेशों में बहुत मिलती है। इसका रंग सफेद, भूरा अथवा पीला होता है। इस मिट्टी के कण बहुत बारीक होते हैं अतः उनमें चिकनाई और रंगकारक द्रव सोख लेने का गुण होता है। अतः इसका उपयोग ऊन से चिकनाई दूर करने तथा तैलों को स्वच्छ अथवा रंगहीन करने के लिए और कागज, साबुन और कपड़ों के कारखानों तथा सिर के बाल धोने के लिए किया जाता है।

प्रश्न

१. 'रासायनिक खाद' और 'टिन' के विश्व वितरण पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये। (आगरा, एम० ए० १९४८)

२. भारत में लोहे की प्राप्ति का संक्षिप्त वर्णन करिये और बताइये कि यहाँ लोहे का विदोहन किस प्रकार हुआ है? (आगरा, एम० ए० १९४९)

३. बहुमूल्य धातुओं और खनिज ईंधन के विदोहन पर अपने विचार प्रकट करिये और बताइये कि इनका मानव की प्रगति पर क्या प्रभाव पड़ा है? (आगरा, एम० ए० १९५२)

४. सं० राष्ट्र अमेरिका की लोहे की सम्पत्ति पर एक लेख लिखिये और बताइये कि वहां इसका क्या उपयोग किया जाता है ? (आगरा, एम० ए० १९५३)
५. भारत में मैंगनीज और अभ्रक का भौगोलिक वितरण बताइये। यह भी बताइये कि इनका देश के आर्थिक जीवन में क्या स्थान है ? (आगरा, एम० ए० १९४३)
६. खनिजों के विदोहन का मानव पर क्या प्रभाव पड़ा है ?
७. कोयले और लोहे का मनुष्य के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

अध्याय २५

शक्ति के स्रोत

(Sources of Power)

यन्त्रवेत्ता के अनुसार शक्ति (Power) शब्द का अर्थ उस शक्ति से है जिस पर मनुष्य का अधिकार है और जो यन्त्र सम्पादित कार्यों के लिए प्राप्य है।

शक्ति के तीन मुख्य साधन हैं जिन्हें मनुष्य ने पूर्ण रूप से प्रयोग किया है। ये कोयला, तेल तथा गिरता हुआ जल अर्थात् विद्युत हैं। इनमें से जल विद्युत् सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे सिंचाई के लिए जल भी प्राप्त होता है और विद्युत शक्ति भी। इस तरह से यह दो कार्यों में आती है। सबसे प्राचीन और सामान्य शक्ति का साधन "मनुष्य के शरीर की शक्ति" है। मानव गण अपनी शक्ति का प्रयोग खाद्यान्न पैदा करने, मकान बनाने तथा बोझा ढोने में करते हैं तथा इसका प्रयोग वह खिरगीज़ की तरह ऊनी कम्बल बनाने तथा स्विस निवासियों की तरह खिलौने बनाने में भी करता है।

वर्तमान इस्पात तथा विद्युत के युग में शक्ति के समस्त साधनों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। एक उत्पादक को शक्ति की आवश्यकता अपनी मशीनें चलाने के लिए, अपना कच्चा माल लाने के लिए तथा अपना तैयार माल बाजार में ले जाने के लिए पड़ती है। व्यापारी को अपने इलीवेटर को ले जाने के लिए तथा प्रकाश के लिये बिजली की आवश्यकता होती है। किसान शक्ति की खोज में इसलिये रहता है क्योंकि वह उसे अपने खेत में प्रयोग करना चाहता है जिससे वह अपने औजार आदि तेज कर सके, मक्खन निकाल सके तथा अपनी उपज को खपत केन्द्र तक पहुँचा सके। साधारण मनुष्य को लीजिए; वह अपने घर में प्रकाश के लिए, यात्रा करने के लिए, अपने पत्र आदि लाने के लिये तथा भेजने के लिये शक्ति का प्रयोग करता है। इस तरह से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रत्येक स्थान पर तथा पद-पद पर शक्ति की आवश्यकता पड़ती है तथा सभ्य देश में तो प्रत्येक मनुष्य शक्ति को किसी न किसी रूप में निश्चित रूप से अथवा अनिश्चित रूप से अवश्य ही प्रयोग करता है। वर्तमान युग में मनुष्य शक्ति का गुलाम है और उसका कार्य बिना शक्ति के नहीं हो सकता। मनुष्य ने शक्ति का विकास अपनी अन्तिम सीमा तक किया है तथा उसके विलक्षण कार्य खेतों, यातायात के साधनों तथा बड़े-बड़े कारखानों में देखने में आते हैं।

शक्ति के निम्न ११ स्रोत हैं जिनमें से प्रथम सात महत्वपूर्ण हैं :—

(१) मानव शक्ति (२) पशु शक्ति (३) वायु शक्ति (४) जल शक्ति (५) लकड़ी की शक्ति (६) कोयला शक्ति (७) पैट्रोलियम (८) प्राकृतिक गैस (९) एलकोहल (१०) सूर्य शक्ति, और (११) अणु-शक्ति।

लेकिन इनमें से सबसे महत्वपूर्ण जल शक्ति, कोयला तथा पैट्रोलियम ही हैं जिनका वर्तमान युग में मानव पर अधिक आधिपत्य है। प्राचीन समय में विश्व की ६०% शक्ति कोयले से प्राप्त होती थी लेकिन वर्तमान युग में तेल तथा विद्युत का प्रयोग अधिक होने लगा है। सन् १९०० में सं० राष्ट्र अमेरिका में कुल शक्ति का ८९% कोयले और जल-शक्ति से प्राप्त होता था। सन् १९२५ में यह प्रतिशत ६६·३%; १९३९ में केवल ५१·४% ही रह गया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि १८५० में खनिज ईंधनों से १ बिलिअन अश्व शक्ति प्राप्त की जाती थी, १९०० में यह मात्रा ३० बिलिअन से भी अधिक हो गई, किन्तु फिर भी मनुष्य और पशुओं का श्रम अधिक मात्रा में काम में लिया जाता था। १९१० में आधी शक्ति इन खनिज ईंधनों से ही प्राप्त हुई।[1]

(१) मानव शक्ति (Man Power)—उष्ण कटिबन्धीय देशों में मनुष्य शक्ति का प्रमुख साधन है। उदाहरणार्थ वर्तमान युग में भी विश्व के विभिन्न भागों में हजारों कुली काम कर रहे हैं जैसे कि भारत, अफ्रीका तथा उष्ण कटिबन्धीय दक्षिणी अमेरिका में जहाँ पर ये लोग जंगल साफ़ करने तथा दलदली स्थानों को ठीक करने में लगे हैं जिससे कि ये स्थान मनुष्य के उपयोग में आ सकें। यूरोपीय देशों में मानव शक्ति का उपयोग प्रत्येक स्थान पर होता था लेकिन अब इसके स्थान पर मोटर गाड़ियाँ, शक्ति बोट (Power Boats) तथा विद्युत गाड़ियाँ (Electric-trucks) प्रयोग की जाती हैं। चीन, जापान आदि में भी बहुत सा काम मानवीय शक्ति द्वारा ही किया जाता है।

(२) पशु शक्ति (Animal Power)—जब मनुष्य को यह आभास हो जाता है कि उसकी शक्ति पर्याप्त नहीं है और फिर भी वह अपनी सब कामनाओं को फलता-फूलता देखना चाहता है तो वह अपनी समस्त युक्तियों का प्रयोग करता है; वह अपने विभिन्न विभागों के विकास के लिए पशु शक्ति का उपयोग करता है। इसीलिये मनुष्य ने गधों, घोड़ों, भैंसों, ऊँटों और रेनडियरों को पालतू बनाया। उसने इनमें किसी एक पशु का प्रयोग किया। इनकी शक्ति उसकी शक्ति से भिन्न थी और उनका प्रयोग उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में सबसे कम तथा उन्नतिशील देशों में सबसे अधिक किया गया। जापान तथा पूर्वी चीन के निवासियों ने पशु शक्ति के साधन का विशेष रूप से खेतों में बहुत प्रयोग किया है। पशु शक्ति ने खेती में एक असाधारण क्रांति पैदा करदी है। जिन देशों में रेलें या सड़कें नहीं हैं या पर्वतीय प्रदेशों में जहाँ भूमि के असमान होने के कारण अथवा मरुस्थलीय प्रदेशों में जहां प्रचंड आँधियों और बालू मिट्टी की अधिकता के कारण रेलें और सड़कें नहीं बनाई जा सकतीं

1. Needs and Resources, 20th Century; Fund's Survey, p. 680-681

वहाँ पशुओं का भारवाहक के रूप में प्रयोग किया जाता है। अस्तु रॉकी और एंडीज पर्वतों पर अलपाका और लामा, तिब्बत में याक, टंड्रा में रेंडियर और कैरिबो, कुत्ते तथा मरुस्थलों में ऊँट और पर्वतीय प्रदेशों में खच्चरों का प्रयोग भार ढोने के लिए अधिक होता है। इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी तथा स्पेन में खेती के लिए घोड़े और खच्चर काम में लाये जाते हैं। भारत में गाड़ियाँ चलाने, हल जोतने तथा कुँओं से पानी निकालने में बैलों और भैंसों का ही प्रयोग होता है। चीन तथा जापान में खेती में भैंसों का महत्व अधिक है।

(३) वायु-शक्ति (Wind Power) मनुष्य को प्रकृति की देन है। इस शक्ति के प्रयोग के लिए मनुष्य में यंत्र निर्माण योग्यता और आविष्कारात्मक बुद्धि का होना आवश्यक था। वायु शक्ति ने उद्योग और यातायात दोनों को प्रभावित किया। पहले नावें और जहाज चलाने में इसका उपयोग किया गया। किन्तु यह शक्ति अनिश्चित है क्योंकि आवश्यकता के समय हवा का चलना बन्द हो सकता है अतः वर्तमान काल में इसके सस्ते होने पर भी इसका प्रयोग कम होता जा रहा है। सन् १८०० ई० में संसार के समस्त जहाज वायु से चलते थे क्योंकि उस समय कोयले एवं तेल से चलने वाले जहाजों का आविर्भाव नहीं हुआ था किन्तु सन् १९२२ के बाद वायु-चालित जहाजों का लोप होगया।

वायु से चलने वाले जहाजों के प्रचार के बहुत काल बाद पवन चक्कियों (Wind Mills) का प्रादुर्भाव हुआ। इनका प्रयोग नदियों और कुओं से पानी खींचने वाली मशीनों और अनाज पीसने वाली चक्कियों को चलाने में होता था। पवन चक्कियों का विकास आधुनिक काल में मुख्यतः समशीतोष्ण कटिबन्ध में हुआ है क्योंकि इन प्रदेशों में वर्ष भर पछुआ हवाएँ चलती रहती हैं। पूर्वी ईरान, डेनमार्क, हौलेंड, सं० रा० अमेरिका (आयोवा और विस्कांसिन की रियासतों में) पानी खींचने, चारा काटने और खेतों में अब भी पवन चक्कियाँ अधिक पाई जाती हैं।

कोयले और तेल के क्षयशील होने के कारण कई देशों में—विशेषतः ग्रेट ब्रिटेन, डेनमार्क, फ्रांस, जर्मनी और सं० रा० अमेरिका—अब वायु शक्ति के उपयोग सम्बन्धी कई खोजें हो रही हैं। इससे बिजली पैदा की जाने लगी है।

भारत में मलाबार तट और राजस्थान के शुष्क प्रदेशों में प्राचीन काल से ही पवन-चक्कियों का प्रयोग होता रहा है क्योंकि इन भागों में साल भर ही हवा तीव्र गति से चला करती है।

(४) जल शक्ति (Water Power)—मानव ने जल शक्ति का प्रयोग भी बहुत प्राचीनकाल से ही करना सीख लिया था। शक्ति के लिए ऐसे जल का प्रयोग करते हैं जो विभिन्न नहरों तथा नदियों से हवा के धक्के से आता है। अठारहवीं शताब्दी के पूर्व भी इस शक्ति का उपयोग किया जाता था। इस शक्ति की उपलब्धता के कारण ही पिनाइन पर्वतों की घाटियों में ऊनी कपड़े के उद्योग की प्रगति सम्भव हो सकी। स्कॉटलैण्ड में ट्वि‍ड नदी की घाटी

में सूती कपड़े के व्यवसाय का विकास भी इस शक्ति के कारण हुआ। सं० रा० अमेरिका में मिसीसिपी नदी पर स्थिति मिनीयापोलिस नगर में आटा पीसने के कारखानों में अब भी जल-शक्ति का प्रयोग होता है। कनाडा, जापान, नार्वे, स्विटजरलैण्ड, इटली, फिनलैण्ड आदि देशों में लकड़ी चीरने की मशीनें तथा कागज बनाने में इसी शक्ति का उपयोग होता है। १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में जल-प्रेरित टरबाइन (जल चक्की) और डायनमो के आविष्कार ने जल शक्ति के विकास को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया। पिछले ५० वर्षों में इन आविष्कारों के फलस्वरूप जल-विद्युत ने मानव सभ्यता में एक नवीन क्रान्ति ला दी है। जल शक्ति की मुख्य विशेषता यह है कि यह तारों द्वारा उत्पादित क्षेत्रों से दूर तक पहुँचाई जा सकती है।

आजकल का युग 'यंत्र युग' (Machine Age) कहा जाता है। इस युग के महत्वपूर्ण शक्ति-स्रोत कोयला, जलविद्युत एवं तेल माने जाते हैं। इन स्रोतों के उपयोग के अनुसार ही किसी देश की सभ्यता एवं रहन-सहन के स्तर का माप-दण्ड निर्धारित किया जाता है। किन्तु आधुनिक काल के ये स्रोत प्राचीन शक्ति-स्रोतों के महत्व को कम नहीं कर सके हैं। आज भी मनुष्य, वायु, पशु शक्ति आदि का महत्व विश्व के विशेष भागों में उतना ही है जितना कोयले, तेल एवं विद्युत शक्ति का।

शक्ति के स्रोतों को चार मुख्य भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:—

शक्ति के स्रोत

क	ख	ग	घ
जीवों से प्राप्त शक्ति (Animate Power)	निर्जीवों से प्राप्त शक्ति (Inanimate Power)	वानस्पतिक शक्ति (Vegetational Power)	अन्य शक्ति (Other)
१. मनुष्य शक्ति	१. वायु शक्ति	१. लकड़ी	१. सूर्य शक्ति
२. पशु शक्ति	२. जल शक्ति	२. कोयला	२. अणु शक्ति
		३. तेल	३. ज्वार भाटे की शक्ति
		४. प्राकृतिक गैस	
		५. अल्कोहल	

नीचे की तालिका में विश्व के विभिन्न प्रदेशों में प्राप्त होने वाली जीव और निर्जीव शक्ति, उसका प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग, और प्रति देश का भाग बताया गया है :—[१]

प्रदेश	जीवों से (प्राप्त शक्ति १०लाख यू०) में	निर्जीवों से प्राप्त शक्ति (१०ला० यू०) में	जीव-शक्ति का कुल शक्ति से अनुपात	विश्व का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति के पीछे उपभोग (यूनिट में)
उत्तरी अमेरिका	२४,५६७	६४७,५५२	६७·५	३६·६	६,८६०
मध्य और द० अमेरिका	२३,४०६	५१,४७४	६४·३	३·०	६१०
यूरोप	५५,१२६	८७७,८८६	६४·१	३५·४	२,३५६
रूस	२५,६५८	२०७,७१३	८८·२	६·०	१,३८०
अफ्रीका	१६,६६१	३०,६१०	६०·६	१·०	३४४
एशिया	१६८,१५०	१७१,२६६	५०·५	१२·६	३०५
ओशिनोया और आस्ट्रेलिया	२,२३६	२२,३५७	६०·८	०·६	२,४८८
विश्व योग	३२५,८६७	२,३०८,८६४	८७·६	—	१·२५०

यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इन सभी स्रोतों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान कोयले को ही प्राप्त है क्योंकि इसी के द्वारा विश्व की ५०% शक्ति प्राप्त होती है।[२] सभी प्रकार के कोयलों से प्राप्त शक्ति तेल से प्राप्त की गई शक्ति से दुगुनी, प्राकृतिक गैस की शक्ति से ५ गुनी और जल-विद्युत शक्ति से ८ गुनी है। लकड़ी या पीट से प्राप्त की गई शक्ति से यह सम्भवतः ७ गुनी अधिक है। एक वर्ष की अवधि में कोयले से प्राप्त की गई शक्ति मानव और पशु शक्ति से ६ गुनी अधिक होती है।[३] अगले पृष्ठ की तालिका में विभिन्न शक्ति के स्रोतों का सापेक्षिक महत्व बताया गया है।[४]

१. Sir Alfred Egerton's article on 'Civilization and Use of Energy' in Br. Association for Advancement of Science Journal, March 1951, p. 390.

२. U. S. Dept. of State : Energy Resources of the World, 1949, p. 28 ; E. W. Zimmermann : World Resources and Industries, 1951, p. 454.

३. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 286.

४. *Ibid*, p. 287.

विश्व में शक्ति के विभिन्न स्रोतों का महत्व (१९१३–५२)
(कोयले के बराबर १० लाख टनों में)

वर्ष	कोयला व लिग्नाइट	मिट्टी का तेल	प्राकृतिक गैस	जलविद्युत शक्ति	योग
१९१३	१२५६	७०	२४	८६	१४३९
१९२९	१४१२	२७६	७६	१००	१८६४
१९३७	१४०४	३८१	१०४	१२४	२०१३
१९५२	१६८८	८३०	३२०	२७७	३०७५
		कुल पूर्ति का प्रतिशत			
१९१३	८७.५	४.९	१.७	५.९	१००
१९२९	७५.७	१४.८	४.१	५.४	१००
१९३७	६९.७	१८.९	५.२	६.२	१००
१९५२	५४.९	२७.०	१०.४	७.७	१००

कोयला (Coal)

कोयला आधुनिक यंत्र युग की सभ्यता का मूलाधार है क्योंकि यह भाप बनाने, धातुओं को गलाने और ताप शक्ति निर्माण करने के उपयुक्त है।[१] इसकी उपलब्धता के अनुसार किसी देश के आर्थिक विकास को जाना जा सकता है। वर्तमान काल में यांत्रिक शक्ति का यह प्रमुख स्रोत है। सन् १८९९ ई० में संसार में प्रयुक्त कुल शक्ति का ९०% कोयला से प्राप्त हुआ। बीसवीं शताब्दी में जब तेल एवं जल विद्युत शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होता गया तो कोयले से प्राप्त शक्ति का प्रतिशत घटता गया। यहाँ तक कि सन् १९५२ ई० में कुल शक्ति का केवल ३४% कोयले से प्राप्त हुआ और ३९% तेल ने, २३% प्राकृतिक गैस ने तथा ४% जल-विद्युत ने प्रदान किया।

विश्व के सभी उन्नतिशील देशों में अधिकाधिक कोयले का प्रयोग होता है। जिन देशों में कोयले के विशाल भंडार है वे विश्व के महत्वपूर्ण देश माने जाते हैं। ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, लक्सम्बर्ग और जैकोस्लोवाकिया में कोयला कुल

१. "Coal is the basis of our modern machine civilization, because of its suitability for raising steam, smelting ores and providing heat"—Smith and others: p. 287; and Jones and Drakenswald: *Ibid*, p. 388.

शक्ति का ९०% प्रदान करता है। रूस, पौलेंड, तथा फ्रांस में सारी आंतरिक शक्ति का लगभग ७०% कोयले से प्राप्त होता है। सं० रा० में जल शक्ति, तेल और गैस के अधिकाधिक प्रयोग के कारण कोयला कुल शक्ति का केवल ५०% प्रदान करता है।[1] भारत में भी कुल शक्ति का अधिकांश कोयले से ही प्राप्त होता है। अतएव यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि आधुनिक औद्योगिक सभ्यता कोयले पर ही आश्रित है। "आधुनिक संस्कृति जिन साधनों पर टिकी हुई है उनमें कोयले को प्रथम स्थान मिलना चाहिए।"[2] आधुनिक युग में कोयले का महत्व बहुत अधिक है। कोयले ने प्रमुख औद्योगिक देशों को राजनैतिक सत्ता प्रदान कर दी है। कोयले के अभाव में आधुनिक सभ्यता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि संसार से कोयला सहसा विलीन हो जाय तो मनुष्य के सैकड़ों काम रुक जायँ और उसे बड़े संकट का सामना करना पड़े, सारे कारखाने बन्द हो जावें, संसार के समस्त एंजिन बेकार हो जायें और उत्पादन को गहरा धक्का लग कर विश्व का सारा व्यापार ठप्प हो जाय।

अनुमानतः ३००० वर्ष पूर्व चीन के निवासी अपने घरों में कोयला जलाने के काम में लाते थे। यूनान के दार्शनिक थियोफ्रैस्टस के मतानुसार ईसा से ३५० वर्ष पूर्व उत्तरी इटली के लिगूरिया प्रान्त के निवासी धातु गलाने और साफ करने में कोयले का प्रयोग करते थे। ग्रेट ब्रिटेन में भी रोम निवासियों के शासन काल में कोयला उपयोग में आता था। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में कोयला लोहे के व्यवसाय में प्रयुक्त होने लगा। इस प्रकार वाष्प एंजिन बनने के पूर्व इङ्गलैंड में कोयला प्रयोग किया जाता था। १८वीं शताब्दी के अन्त में स्टीम एंजिन में कोयले का उपयोग होने से उसकी माँग बढ़ी फलतः उसका उत्पादन भी बढ़ा। सं० रा० अमेरिका में कोयले का उद्योग अभी नया ही है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब यूरोप निवासी दुनिया के अन्य देशों में पहुँचे तो साथ-साथ कोयले के प्रयोग का ज्ञान भी बढ़ता गया और दूसरे देश के वासी भी कोयले का प्रयोग अपने घरों एवं उद्योग-धन्धों में करने लगे।

कोयले का निर्माण (Formation of Coal)

कोयला जिस पर कि आज के युग का औद्योगिक विकास निर्भर है अत्यन्त प्राचीन वनस्पति का रूप है जो कि परिवर्तित रूप में पाया जाता है। जहाँ आज कोयले के क्षेत्र हैं अतीत काल में वहाँ सघन वन थे। भूगर्भवेत्ता उस काल को "कोयले का युग" (Carboniferous Age) कहते हैं। ये वन प्रदेश दल-दल भूमि पर स्थित थे। शताब्दियों तक बड़े-बड़े विशाल वृक्ष एवं विविध प्रकार के पौधे इन पर उगते गये और गिरते रहे। वृक्ष दल-दल के पानी में पड़े-पड़े सड़-गल कर पृथ्वी तल पर जमा होते रहे। पानी में पौधों का मूल स्वरूप धीरे धीरे नष्ट होने लगा। पौधों के असली स्वरूप के नष्ट होने में एक बैक्टीरिया (Bacteria) नामक कीड़े द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। यह कीड़ा सभी हरे

१. Case and Bergsmark : *Ibid*; p. 649.

२. E. C. Jeffrey : *Coal and Civilization*, 1925, p. 2.

पौधों में बहुतायत के साथ पाया जाता है। यह पौधों के कार्बन के तत्वों को आक्सीजन, जल-वाष्प एवं हाइड्रोजन से अलग कर देता है। इस प्रकार इस अवशिष्ट वनस्पति की तह पर तह जमा होते-होते कभी भूगर्भ में परिवर्तन द्वारा यह प्रदेश नीचे धँस गया और विस्तृत जलाशय बन गया। इसमें अनेक नदियाँ एवं नाले बारीक रेत लाकर डालते गये और शताब्दियों तक रेत की तहें जमा होती गईं। मरे हुए जल-जीवों के ढाँचे भी इसी पर जमते गये। प्राचीन बन प्रदेश की वनस्पति में धीरे-धीरे पृथ्वी के भीतर की गर्मी और ऊपर की तहों के दबाव से परिवर्तन होता रहा। ज्यों-ज्यों धरातल का दबाव दबी हुई वनस्पति पर बढ़ता गया त्यों-त्यों इसमें से पानी और गैसें अलग होती चली गईं और अवशेष पदार्थ में कार्बन का अंश बढ़ता गया। प्राचीन वनस्पति का यह परिवर्तित रूप ही कोयला है। भूगर्भ की किसी महान् हल-चल से पुनः जलाशय का यह पेटा उठ कर ऊपर आ गया। ऐसे ही भूभागों में कहीं-कहीं पर भू-तल के कुछ ही नीचे और बहुधा बहुत गहराई में कोयले की खानें मिलती हैं।

कोयला अधिकतर जलमग्न अथवा परतदार चट्टानों (Sedimentary Rocks) में पाया जाता है। कोयले की तहों के बीच-बीच में मिट्टी की तहें भी पाई जाती हैं। ये मिट्टी की तहें अत्यधिक दबाव के कारण पत्थर बन जाती हैं जिन्हें कि हम कोयले की तहें (Coal measures) कहते हैं। कोयले

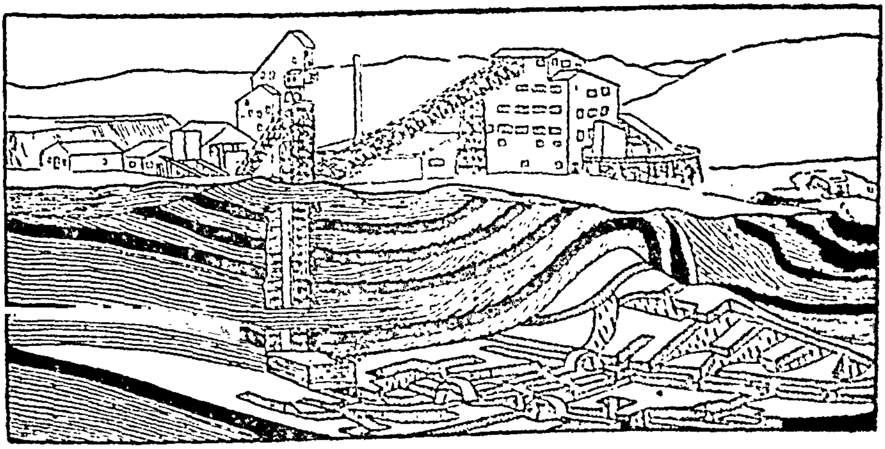

चित्र १७४—कोयले की खानों का भीतरी दृश्य

के साथ मिट्टी की तहों का पाया जाना लाभदायक समझा जाता है क्योंकि इनमें कच्चा लोहा पाया जाता है।

वनस्पति का प्रारम्भिक परिवर्तित रूप पीट (Peat) है, उसके पश्चात् जैसे-जैसे समय बीतता गया वह लिगनाइट (Lignite), उप-बिटयूमीनस (Sub-Bituminous) बिट्यूमीनस (Bituminous), अर्द्ध-एंथ्रेसाइट (Semi-Anthracite) और एंथ्रेसाइट (Anthracite) में परिवर्तित हो गया।

कोयले की तहें कुछ इंच से लेकर कई फुट तक मोटी होती हैं। भारत के झेरिया क्षेत्र में १८ तहें ऐसी हैं जिनकी मोटाई १०० फुट तक की है तथा बुकारो और रामगढ़ क्षेत्र में यह तहें ७५ से १२० फुट तक मोटी हैं।

कोयला खान खुदाई की विधियाँ

(१) खुली खान खुदाई (Open-pit mining)—जिसमें कोयले की तहों के ऊपर से चट्टानों की तह हटा दी जाती है और फिर सतह पर ही फावड़ा या मशीनों के द्वारा कोयला खोद कर निकाला जाता है। इस प्रकार की खुदाई कोयले के सतह के पास पाये जाने पर ही हो सकती है। संयुक्त राष्ट्र, जर्मनी और चीन में इस प्रकार की काफी खुदाई होती है।

(२) भूगर्भिक खुदाई (Underground mining)—इसमें हजार या उससे भी ज्यादा फुट की गहराई तक खोल या सुरंगें खोदी जाती हैं और उसमें कोयला निकाला जाता है। इस प्रकार की खान खुदाई में अधिक व्यय होता है।

(३) ड्रिफ्ट खुदाई (Drift mining)—इसमें सुरंगें सतह के समानान्तर खोदी जाती हैं और कोयले की सतहें खुदती चली जाती हैं।

(४) स्लोप खुदाई (Slope mining)—इसमें कोयले की तहें ढालू होती हैं, इसलिए सुरंग भी ढालू खोदनी पड़ती है।

(५) शाफ्ट खुदाई (Shaft mining)—इसमें लम्बवत् सुरंग खोदनी पड़ती है जिसमें बहुत गहराई से कोयला प्राप्त होता है। बेल्जियम में इसकी अधिकतम गहराई ४००० फुट है। ब्रिटेन में २००० फुट की गहराई है।

कोयले के प्रकार

एन्थ्रेसाइट (Anthracite)—यह सर्वोत्तम प्रकार का एवं सबसे सख्त किस्म का कोयला होता है। यह अपने निर्माण की पूर्ण प्रक्रिया में गुजर जाने के बाद में बनता है। यह बहुत कड़ा, चमकीला एवं रवेदार होता है। यह पत्थर के समान दिखाई देने वाला कोयला होता है जिसके छूने से अँगुलियां काली नहीं होतीं। यह सरलता से आग नहीं पकड़ता, किन्तु जलते समय बिल्कुल धुआँ नहीं देता तथा राख भी नहीं छोड़ता। घरों में भोजन बनाने के लिये इसी को ईंधन की तरह काम में लाया जाता है। इसकी आग बहुत तेज होती है अतः चालक दृष्टि से भी उसका महत्व बहुत है। इसमें कार्बन का अंश-९५% होता है, तथा आक्सीजन २·५% तथा हाइड्रोजन २·५% होती है। इस प्रकार का कोयला वहाँ पाया जाता है जहाँ कि गहराई अधिक होने के कारण अधिक दबाव एवं तापक्रमों के प्रभावों से गैसें अधिकतर नष्ट हो जाती हैं और कार्बन की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है।

विश्व के कुल एन्थ्रेसाइट कोयले के उत्पादन का लगभग आधा रूस में

और १/४ से अधिक सं० रा० अमेरिका तथा शेष वेल्जियम, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और इण्डोचीन से प्राप्त होता है।

(२) ब्रिटूमिनस (Bituminus Coal)—यह कोयला भी काफी शुद्ध होता है, इसमें कोयले का अंश ७५% से ८५% तक पाया जाता है, तथा शेष में से १०% आक्सिजन एवं ५% हाइड्रोजन पाई जाती है। इस प्रकार का कोयला काले या गहरे भूरे रंग का होता है। यह बड़ा उपयोगी एवं प्रचलित है। लोहे से स्पात बनाने में यही कोयला अधिक काम में लाया जाता है। यह बहुत देर हवा में पड़े रहने पर चूरा-चूरा नहीं होता। यह सरलता से आग पकड़ लेता है एवं धुआँ भी देता है। Low-Volatile बिट्यूमिनस कोयले का उपयोग जहाजों में होता है क्योंकि इसमें वाष्प कम होती है। High-Volatile कोयला कृत्रिम गैस, कोक बनाने में उपयुक्त होता है। विश्व के बिट्यूमीनस कोयले के उत्पादन का ७०% रूस, ब्रिटेन, सं० रा० अमेरिका और जर्मनी से प्राप्त होता है।

(३) लिगनाइट या भूरा कोयला (Lignite or Brown Coal)—यह निकृष्ट जाति का कोयला होता है। इसमें अशुद्धियाँ अधिक परिमाण में होती हैं, कार्बन का अंश केवल ४५% से ७०% तक ही होता है किन्तु वाष्प अधिक होता है। यह कड़ा नहीं होता। खान के बाहर निकलते ही इसके टुकड़े होने आरम्भ हो जाते हैं इसके छूने से उंगलियाँ काली हो जाती हैं। जलते समय इसमें से गन्ध निकलती है। इसके घटिया होने का कारण यह है कि यह निर्माण की पूर्ण प्रक्रिया में गुजर नहीं पाया होता है। इसकी आयु अपेक्षाकृत कम होती है। अधिक समय तक भूगर्भ में रहने पर यह अच्छा कोयला बन सकता था।

विश्व के कुल उत्पादन का ५२% लिग्नाइट कोयला अकेले जर्मनी से प्राप्त होता है और शेष जैकोस्लोवाकिया, रूस और हंगरी से प्राप्त होता है। जर्मनी में ४½ टन लिग्नाइट १ टन विट्यूमिनस कोयले के बराबर माना गया है; जैकोस्लोवाकिया में यह अनुपात १·७:१ है तथा हंगरी और सं० रा० अमेरिका में ३:१ है। जर्मनी में इसका सबसे अधिक उपयोग ईंटें बनाने (Briquette), कृत्रिम पैट्रोल, गैस आदि बनाने में होता है।

(४) केनल या गैस कोयला (Cannel or Gas Coal)—इसमें कार्बन का अंश ४०% से भी कम पाया जाता है। यह सबसे अशुद्ध एवं निकृष्ट जाति का कोयला है। इसके छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं। जलते समय इससे ऊंची शिखाएँ निकलती है। इसका उपयोग कोल गैस (Coal Gas) बनाने में बहुत होता है। इसमें गैस तथा तरल पदार्थ विटुमिनस अथवा एन्थ्रेसाइट से अधिक होते हैं।

(५) पीट कोयला (Peat Coal)—यह वनस्पति के मौलिक स्वरूप में थोड़ा-सा ही परिवर्तित कोयला है। इसमें ६०% कारबन, ३५% आक्सीजन, ५% हाइड्रोजन पाई जाती है। यह लकड़ी की भाँति जलता है और धुआँ अधिक

देता है तथा कम गर्मी प्रदान करता है। पीट का उपयोग घरों में जलाने के लिए सबसे अधिक जर्मनी, पौलैंड, आयरलैंड और रूस में होता है। रूस में तो इससे विद्युत् शक्ति भी उत्पादित की जाती है। यहाँ पीट से विद्युत शक्ति बनाने के शक्ति गृह मास्को, लेनिनग्राड और गोरकी में हैं।

निम्न तालिका में विभिन्न प्रकार के कोयलों का रासायनिक सम्मिश्रण बताया गया है—[1]

कोयले का प्रकार	कार्बन (%)	हाइड्रोजन (%)	आक्सीजन (%)	नाइट्रोजन (%)
लकड़ी	५०	६	४३	१
पीट कोयला	५९	६	३३	२
लिग्नाईट	६९	५·२	२५	०·८
बिटूमिनस	८२	५·०	१२·२	०·८
एन्थ्रसाइट	९५	२·५	२·५	×

उत्पादन क्षेत्र— मानव की उन्नति में कोयले के अनुकूल भौगोलिक वितरण का गहरा प्रभाव पड़ा है। विश्व के देशों को चार भागों में कोयले की उपलब्धता के दृष्टिकोण से बाँट सकते हैं:—

(१) प्रथम प्रकार के वह देश जहाँ कि कोयला खूब मिलता है। इनमें यूरोप में पूर्वी जर्मनी के पश्चिमी भाग और मिस्सिसिपी के पूर्व में संयुक्त राष्ट्र के उत्तरी भाग हैं। इन स्थानों पर कोयले के क्षेत्र पास-पास नहीं बल्कि सतह के पास ही हैं—जहाँ से निकलना कठिन नहीं है। ब्रिटेन में प्रति वर्ष वार्षिक उत्पादन प्रति व्यक्ति पीछे ६ टन है, संयुक्त राष्ट्र में ५ टन, बेल्जियम में ३ टन और जर्मनी में २ टन है। इस प्रकार इन देशों का उत्पादन विश्व में सर्वाधिक है।

(२) द्वितीय भाग में वे देश आते हैं जहाँ कि कोयले का उत्पादन कम होता है जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया और फ्रांस जहाँ प्रति व्यक्ति वार्षिक उत्पादन १½ टन है। दक्षिणी अफ्रीका में १ टन एवं रूस तथा जापान में ½ टन ही है, परन्तु इन उन्नतिशील प्रदेशों के निवासियों के अदम्य साहस एवं जागृति के कारण यहाँ के निवासियों ने कोयले का ठीक-ठीक उपयोग करके यहाँ का उत्पादन बढ़ा दिया है।

(३) तीसरे भाग में वे देश आते हैं जहाँ कि कोयले के विशाल भंडार हैं किन्तु पिछड़े देश होने से अभी तक उनका पूरा-पूरा सर्वेक्षण नहीं हो पाया

1. Chamberlain : Geography, p. 315

है—ऐसे देशों में चीन, इण्डोचीन, भारत आदि देशों के नाम प्रमुख हैं जहाँ कि कोयले के विस्तृत क्षेत्र अछूते पड़े हैं।

(४) चौथे वे देश हैं जो कि पिछड़े हुए है तथा विषुवत् रेखीय प्रदेशों में स्थित हैं। ऐसे देशों में कोयले के भण्डार भी कम हैं। इन देशों में पीरू, ब्राजिल, वेनेजुएला और कोलम्बिया आदि प्रमुख हैं। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि आजकल कोयला सबसे अधिक उन देशों में निकाला जाता है जो १०° फा० और ४०° फा० जनवरी तापक्रम रेखाओं द्वारा घिरे हैं। ये सब ठण्डे देश हैं जहाँ मकानों को गर्म करने के लिए कोयले की माँग बहुत रहती है।

कोयले का वार्षिक उत्पादन १९५२ में १७००० लाख टन था जो कि १९४७ की तुलना में ३% अधिक था। इस कोयले में अधिकतर कोयला बिटुमिनस जाति का है, और एन्थ्रासाइट तो ६०० लाख टन ही है। लिगनाइट १९०० लाख टन से कुछ ही अधिक है।

कोयले का उत्पादन (१० लाख मैट्रिक टन में)

देश	१९३८	१९५२
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	३५५२	४५३६
रूस	९३५	३००२
इंग्लैंड	२३०६	२३०१
प० जर्मनी	१७१७	१२३२
पौलैंड	३८१	८४४
फ्रांस	४६५	७१५
भारत	२८७	३६८
जापान	४८६	४३३
वेल्जियम	२९५	३०३
विश्व योग	१२०००	१७०००

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होगा कि विश्व में सबसे अधिक कोयला सं० रा० अमेरिका में पैदा होता है। सन् १९५२ में यहाँ से विश्व का ३०% कोयला प्राप्त हुआ। सं० रा० अमेरिका, इंग्लैंड और जर्मनी तीनों देश विश्व का ७५% कोयला उत्पन्न करते हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—विश्व में कोयला उत्पन्न करने में प्रथम देश है। यहाँ का कोयला उत्तम श्रेणी का और अधिक मात्रा में पैदा होता है। यहाँ की

खानों की खुदाई में मशीनों द्वारा कोयला निकाला जाता है इससे प्रति व्यक्ति उत्पादन भी अधिक होता है और कोयला भी सस्ता पड़ता है। नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में प्रति व्यक्ति पीछे कोयले का उत्पादन बताया गया है:-

देश	१९३९	१९४९
सं० रा०—बिट्यूमीनस	५·४२	६·६२
एन्थ्रैसाइट	२·६४	२·७१
बेल्जियम	०·९२	१·०२
जैकोस्लोवाकिया	१·४५	१·६०
फ्रांस	१·०८	१·२०
जर्मनी (रूर)	१·७२	१·५२
नीदरलैंड्स	१·८९	१·९१
पौलैंड	२·०७	२·०२
सार	——	१·४५
इंग्लैंड	१·५४	१·७२

इससे ज्ञात होता है कि अमेरिकन खदान खोदने वाला अन्य देशों की अपेक्षा अधिक उत्पादक है। इसके अतिरिक्त कोयले की प्राप्ति की भौगोलिक अवस्था भी सुविधाजनक और सस्ती खुदाई के लिए अनुकूल है। खान के मुंह पर जर्मनी

चित्र १७५—कोयले के उत्पादन

के रूसी क्षेत्र में प्रति टन कोयले का मूल्य १०·८ शिलिंग होता है, जबकि ब्रिटेन से यह ८·७ शि० और सं० रा० में केवल ५·३ शि० है। सं० राष्ट्र के पठारी भागों में नदियों ने गहरी घाटियाँ काट कर कोयले की चट्टानों को धरातल पर ला दिया है। इन घाटियों की दीवारों से कोयला बहुत सरलता से खोदा जाता है। बिजली के फावड़ों की सहायता से २-३ मिनिट में ही एक ट्रक भर दी जाती है। सं० रा० अमेरिका में अब तक ३२ बिलिअन टन कोयला निकाला जा चुका है। प्रथम युद्ध की मांग ने कोयले का उत्पादन सन् १९१८ में ६७८० लाख टन बढ़ा दिया। सन् १९४४ में यह मात्रा ६८३० लाख टन, सन् १९४७ में ६८८० लाख टन होगई। १९५३ में ४५४० लाख टन बिट्यूमीनस, ३१० लाख टन एन्थ्रैसाइट, और ३० लाख टन लिग्नाइट कोयला सं० राष्ट्र में पैदा किया गया।

यहाँ के मुख्य कोयला क्षेत्र ये हैं:—

(१) अप्लेशियन कोयला क्षेत्र-(Appalachian Coal Fields) उत्तरी पेनसिलवेनिया से उत्तरी अलाबामा तक लगातार यह क्षेत्र फैला हुआ है। इस क्षेत्र में संसार का सबसे बढ़िया किस्म का कोयला प्राप्त होता है। यह उत्तरी अमरीका का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्र है। यहाँ कई नदियों द्वारा सस्ते यातायात के कारण खान खुदाई का बहुत अधिक विकास हो गया है। इसके तीन उपक्षेत्र हैं (अ) पश्चिमी पेनसिलवेनिया। (ब) मध्य अप्लेशियन क्षेत्र जिसमें केन्टकी और अलीघनी पठार की खानें हैं। उत्तरी भाग में खान खुदाई के कार्य की बहुत अधिक उन्नति हुई है। (स) अलाबामा की खानें। यहाँ सस्ते आवागमन का प्रयोग कोयले के लिए बहुत लाभदायक है। संयुक्त राष्ट्र का प्रायः सारा एन्थ्रसाइट कोयला जो सबसे बढ़िया किस्म का होता है इसी क्षेत्र से मिलता है। इस भाग में बिटुमिनस कोयला भी मिलता है जो बहुत सस्ते दामों में प्राप्त होता है। यहाँ का कोयला कड़ा और बड़े आकार का होता है।

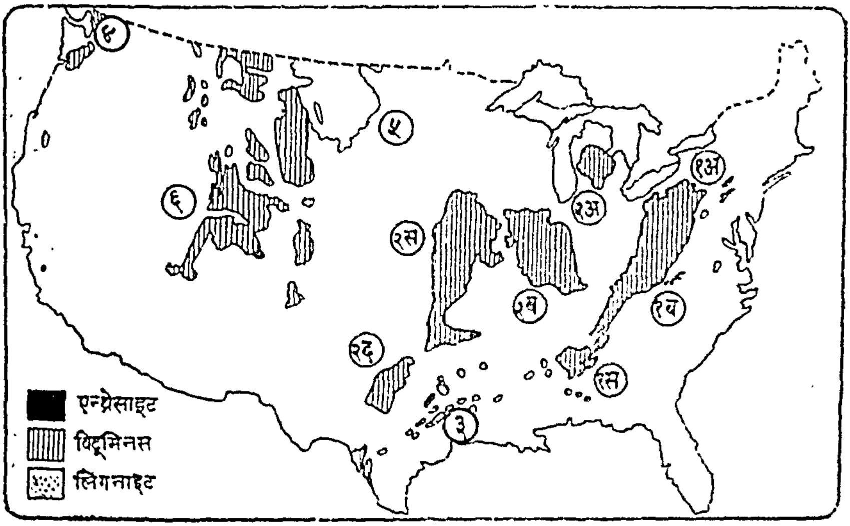

चित्र १७६—सं० राज्य में कोयले के क्षेत्र

(अ) पश्चिमी पेनसिलवेनिया या उत्तरी उपक्षेत्र में भी चार अलग-अलग भाग हैं—(१) उत्तरी (२) मध्य पूर्वी (३) मध्य पश्चिमी और (४) दक्षिणी। उत्तरी और मध्य पूर्वी भागों में कोयले की तह क्षैतिज होने के कारण आसानी से खोदी जा सकती हैं। इसका क्षेत्रफल ६ हजार वर्ग मील में है और ओहियो और पेन्सिलवेनिया रियासतों में फैला है। पिट्सबर्ग और यंग्सटाऊन नामक प्रसिद्ध स्पात केन्द्र इसी क्षेत्र में स्थित हैं।

(ब) मध्य अप्लेशियन क्षेत्र में उत्तम बिटुमिनस कोयला मिलता है। यह घरेलू काम के लिये बहुत अच्छा रहता है। यह क्षेत्र पिट्सबर्ग से ५०० मील दक्षिण की ओर स्थित है। इसके भी तीन भाग हैं—(अ) उत्तरी, (ब) मध्य, (स) दक्षिणी। इस क्षेत्र में नदियों की घाटियाँ गहरी हैं जिनमें कोयले की

योगिता नहीं हो सकती है; क्योंकि वहाँ समुद्र-तट से १५ मील की दूरी से ही कोयला निकाला जाता है।

(२) यूरोप के औद्योगिक क्षेत्रों की दूरी यहाँ से बहुत अधिक है।

(३) संयुक्त राष्ट्र से बाहर जाने के लिये जहाज का भाड़ा बहुत अधिक है; क्योंकि यहाँ से बाहर माल अधिक जाता है। इंगलैंड में सारे संसार के जहाजों का अड्डा है, जिससे इगलैंड से बाहर जाने का भाड़ा कम है।

केवल दक्षिणी अमेरिका को ही संयुक्त राष्ट्र से कोयला जा सकता है, परन्तु यहाँ की मांग बहुत कम है। यहाँ पर न तो औद्योगिक उन्नति ही हुई है और न अधिक सर्दी ही पड़ती है। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र का कोयला कोयले की बड़ी खपत के क्षेत्रों से दूर है।

इंगलैण्ड—कोयले के उत्पादन की दृष्टि से ग्रेट ब्रिटेन का विश्व में तीसरा स्थान है। यहाँ पर कोयले की खानों की स्थिति व्यापारिक एवं आन्तरिक उपभोग की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि देश के भीतरी प्रदेशों में कोयला और लोहा पास-पास मिलते हैं, जबकि समुद्र के किनारे कहीं-कहीं तो समुद्र के भीतरी भागों तक कोयले की खानें चली गई हैं, जहाँ से कि आसानी से कोयला विदेशों को भेजा जा सकता है। ग्रेट ब्रिटेन की कोई भी कोयले की खान समुद्री बन्दरगाह से २५ मील से अधिक दूर नहीं है, जिसका कि खर्चा २७ सेन्ट आता है, जबकि जर्मनी में रूर कोयले का क्षेत्र रोटरडम से १४० मील दूर है और जहाँ ७० सेन्ट उतने ही कोयले के ले जाने में व्यय होते हैं, जबकि संयुक्त राष्ट्र में उतने कोयले को प० वर्जीनिया से हेम्पटन रोड्स (जो कि ३१० मील दूर है) ले जाने में १·२५ डालर लग जाते हैं। फिर यहाँ जितने कोयले के भंडार हैं उनका अनुमान १२०,०००,०००,००० टन है। ये भंडार आधुनिक उत्पादन की दृष्टि से ७०० से ८०० वर्षों तक पर्याप्त हैं। सब कोयले के क्षेत्रों का क्षेत्रफल ६,६०० वर्गमील है। कुल कोयले का ६१% कोयला इंगलैण्ड में, १२% स्काटलैण्ड में और २१% वेल्स में पाया जाता है। नीचे की तालिका में इंगलैण्ड में कोयले का उत्पादन बताया गया है:—

(१० लाख टनों में)

	१९४७	१९४९	१९५१	१९५३
गहरी खानों से	१८७·२	२०२·७	२११·६	२१२·५
खुली खानों से	१०·२	१२·७	११·०	११·७
योग	१९७·४	२१५·४	२२२·६	२२४·२

ग्रेट ब्रिटेन के कोयले के क्षेत्रों को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

(क) पिनाइन श्रेणी के आस-पास का क्षेत्र

(ख) वेल्स प्रदेश

(ग) स्कॉटिश निम्न प्रदेश

(क) पिनाइन-समूह (The Penine Group)—

इस पर्वत के दोनों ढालों पर कोयले के क्षेत्र पाये जाते हैं, जो कि महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। यहाँ के कोयले के क्षेत्रों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है:—

(१) नार्थम्बरलैंड-डर्हम कोल क्षेत्र (Northumberland-Durham Coal Fields)—यह क्षेत्र पिनाइन श्रेणी के पूर्व में पाया जाता है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन ४६,०००,००० टन है। कोयले के क्षेत्र बाहर झलकते हुए दिखाई देते हैं, जो कि पूर्वी शील्ड से ऑकलैण्ड बिशोप तक चले गये हैं। यही क्षेत्र टेन तथा कोनक्वेट नदियों की घाटियों में होता हुआ किनारे तक चला गया है तथा दक्षिण पूर्व में यह क्षेत्र मैगनेशियम-लाइमस्टोन की चट्टानों के नीचे आ गया है। वहाँ से यह समुद्र के पेंदे में २ से ३ मील तक चला गया है। यहाँ पर ग्रेट ब्रिटेन का सबसे उत्तम कोयला पाया जाता है विशेषकर दक्षिणी भाग में। इस क्षेत्र को कई लाभ है:—

(१) दक्षिणी डर्हम में बढ़िया कोक कोयला मिलता है।

(२) समुद्र के किनारे मिलने से निर्यात आसानी से होता है।

(३) यह क्षेत्र क्लीवलैण्ड लोह क्षेत्रों के बिल्कुल पास में है।

(४) पिनाइन एवं वीवर घाटी से चूना प्राप्त हो जाता है।

(५) तटीय प्रदेशों में होने के कारण स्वीडेन से उत्तम प्रकार का लोहा आयात किया जा सकता है। इन सब लाभों के कारण यह ग्रेट ब्रिटेन का औद्योगिक क्षेत्र है, जहाँ से लोहे और स्पात के सामानों का निर्यात किया जाता है।

(२) यार्कशायर - डर्बीशायर - नॉटिंघमशायर कोल क्षेत्र (Yorkshire-Durbyshire And Nottingham Shire Coal Fields)—यह क्षेत्र दक्षिणी पिनाइन के पूर्वी ढालों पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल २००० वर्ग मील है। यह क्षेत्र ग्रेट ब्रिटेन का १/३ कोयला पैदा करता है। यहाँ पर कोयले के भण्डार ४०,०००,०००,००० टन होने का अनुमान है तथा वार्षिक उत्पादन ७२,०००,००० टन है। इस क्षेत्र की लम्बाई ७० मील है तथा चौड़ाई १० से २० मील तक है। पूर्वी भागों के क्षेत्र धीरे-धीरे मैगनेशियम लाइमस्टोन के नीचे तथा बालू पत्थरों के नीचे चले गये हैं। कोयला भिन्न-भिन्न खानों में भिन्न प्रकार का पाया जाता है। इसका सर्वाधिक उपयोग रेलों में होता है। इसके अतिरिक्त घरेलू एवं गैस बनाने के काम में भी यह कोयला

लिया जाता है। यार्कशायर के ऊनी कपड़े के कारखाने और शैफील्ड के लोहे के कारखाने इसी कोयले का उपयोग करते हैं।

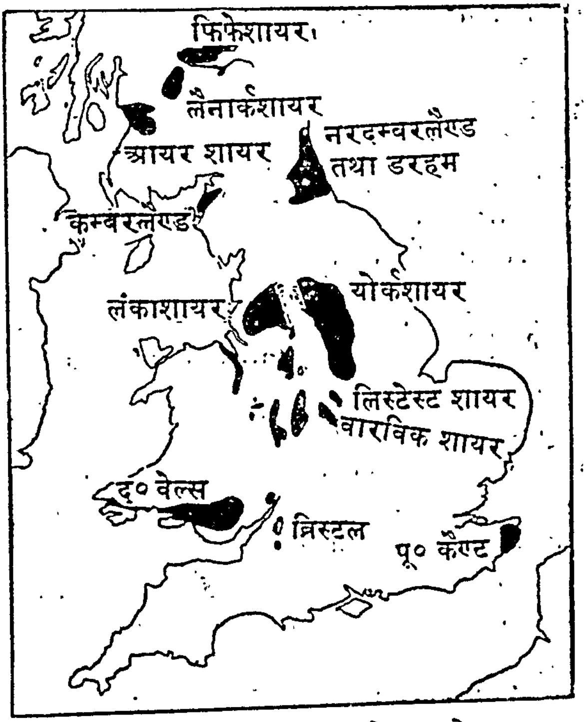

चित्र १७७—इंगलेंड के कोयला क्षेत्र

(३) कम्बरलैंड कोल क्षेत्र (Cumberland Coal Field)—
यह छोटा-सा क्षेत्र है और तटीय प्रदेशों में स्थित हैं। यह उत्तरी पूर्वी दिशा में देश में १५ मील तक चला गया है। यहां पर कोयले के भण्डार अनुमानित २,०००,०००,००० टन है और वार्षिक उत्पादन १,२००,००० टन है। इसका एक बड़ा भाग मेरी पोर्ट, वर्किंगटन और वाइटेवन बन्दरगाहों से आयरलैण्ड को निर्यात कर दिया जाता है। कोयले के निर्यात के महत्व के निम्न कारण हैः—

(क) कोयले का क्षेत्र तटीय है अतः भूमि-आवागमन खर्च बिल्कुल नहीं होता।

(ख) यहाँ बहुत कम उद्योग है, अतः बहुत-सा कोयला बच जाता है।

(ग) आयरलैण्ड में कोयला बहुत कम है, अतः वह अच्छा बाजार है।

(४) लङ्काशायर कोल क्षेत्र (Lancashire Coal Fields)—यह क्षेत्र रिबिल्स एवं परसी नदी के बीच में फैला हुआ है, तथा इसका कुछ भाग पिनाइन पर्वत के ढाल पर तथा कुछ भाग आस-पास के निम्न प्रदेशों में

स्थित है। कुछ स्थानों पर दरारें पड़ जाने के कारण कोयले का क्षेत्र थोड़े से क्षेत्रफल के बाद में बहुत गहराई में चला गया है। यहाँ के अनुमानित भण्डार ५,६००,०००,००० टन हैं और वार्षिक उत्पादन १५,०००,००० टन है। इसका उपयोग लङ्काशायर की सूती कपड़े की मिलों में होता है।

(५) मिडलैंड कोल क्षेत्र (Midland Coal Fields)—ये कोयले के क्षेत्र ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं, क्योंकि यहाँ का उत्पादन अब बहुत कम होता है। खानें भी बहुत गहरी हैं तथा परतें भी पतली हो गई हैं और कोयले की किस्म भी बढ़िया नहीं है। इस कोयले का उपयोग बर्मिंघम के औद्योगिक प्रदेश में होता है।

(६) दक्षिण स्टाफर्डशायर कोल क्षेत्र (South Staffordshire Coal Fields)—बर्मिंघम के उत्तर से १० मील स्टेफोर्ड के भीतर तक यह क्षेत्र चला गया है। यहाँ पर जितने भण्डार हैं उनका अनुमान ७,०००,०००,००० टन है। परन्तु काले देश में यह मात्रा १,०००,००० टन से कुछ ही ज्यादा है। यह प्रदेश महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र है तथा कोयला लोहा गलाने के काम में तथा स्पात की वस्तुएँ बनाने के काम में आता है।

(७) वारविकशायर कोल क्षेत्र (Warwickshire Coal Fields)—यह प्रदेश वारविक भाग के उत्तर-पूर्व में मिलता है। अधिकतर कोयला बिटुमिनस है, यहाँ पर इसका उपयोग होता है। कुछ कोयला देश के दूसरे भागों में भी निर्यात किया जाता है। कोयले के भण्डार यहाँ पर अनुमानतः १,४००,०००,००० टन हैं और वार्षिक उत्पादन ५,५००,००० टन है। कॉवेंट्री जो कि औद्योगिक केन्द्र है कुछ ही मील दक्षिण में स्थित है तथा यहीं से कोयला प्राप्त करता है।

(ख) वेल्स समूह (The Welsh Coal Fields):—

(१) (North Welsh Coal Field)—यह क्षेत्र उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित है। यहाँ के अनुमानित भण्डार २,५००,०००,००० टन हैं और वार्षिक उत्पादन २,६००,००० टन है। ग्रीस फोर्ड के पास के प्रदेशों में सर्वाधिक उत्पादन होता है।

(२) दक्षिणी वेल्स कोल क्षेत्र (South Wales Coal Fields)-यह क्षेत्र मॉनमन्थशायर के पश्चिम से उस्क नदी की घाटी से ग्लेमोरगॉशायर तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल १००० वर्गमील है। यहाँ के अनुमानित भण्डार ३५,०००,०००,००० टन है, जिसमें से १४% प्रथम श्रेणी का स्टीम कोयला है, २२% एन्थ्रेसाइट और ३०% बिटुमिनस एवं ३३% द्वितीय श्रेणी का स्टीम कोयला है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन ३५,०००,००० टन है। अतः स्पष्ट है कि यह क्षेत्र मात्रा, किस्म एवं विभिन्नता की दृष्टि से प्रसिद्ध है। पश्चिमी भागों के आधे प्रदेशों में जो कोयला निकलता है वह एन्थ्रेसाइट होता है।

(३) उत्तरी स्टैफर्डशायर कोल क्षेत्र (North Staffordshire Coal Fields)—पिनाइन के दक्षिणी-पश्चिमी किनारों (ढालों) पर पाया जाता है, तथा उत्तरी स्टेफोर्डशायर का ही सिलसिला है। यह औद्योगिक प्रदेश (Potteries) के नाम से पुकारा जाता है।

(ग) स्काटिश प्रदेश के कोल क्षेत्र (Scottish Coal Fields)—

स्कॉटलैंड के कोयले का ९९% प्रतिशत कोयला मध्यवर्ती निम्न प्रदेशों में पाया जाता है, जो ग्रेट ब्रिटेन का १/६ भाग उत्पादन करते हैं। जहाँ इंगलैण्ड के कोयले के क्षेत्र पर्वतीय ढालों एवं ऊँचे भागों में पाये जाते हैं वहाँ स्काटलैण्ड के कोयले के क्षेत्र निम्नतम बेसिनों के निचले भागों में पाये जाते हैं। यहाँ के महत्वपूर्ण कोयले के क्षेत्र निम्न प्रकार के हैं—

(१) आयरशायर कोयला क्षेत्र—यह स्काटलैण्ड का १३% कोयला पैदा करता है और १२ से १५ मील तक फैला हुआ है।

(२) लैनार्कशायर कोयला क्षेत्र—यह स्काटलैण्ड का बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह कोयला स्टीम बनाने के काम में आता है। यहाँ ४५% कोयला निकलता है।

(३) मध्य लोथियन कोयला क्षेत्र—यह एडिनबर्ग एवं हैडिंगटन कांउटी में स्थित है। इस क्षेत्र में कोयले के साथ-साथ शेल से तेल भी निकाला जाता है।

(४) फाइफशायर कोयला क्षेत्र—यह क्षेत्र आधुनिक काल में उत्पादन बढ़ जाने से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है। यहाँ का कोयला निर्यात कर दिया जाता है, जो कि मैथिल और बर्निटशायर बन्दरगाहों द्वारा बाल्टिक देशों को भेजा जाता है। डन्डी इसी क्षेत्र में है, जो कि जूट के पक्के माल का उत्पादन केन्द्र है। यहाँ जूट से रस्से, झालियाँ, शेल कपड़ा, केनवास आदि बनाये जाते हैं।

व्यापार—ब्रिटेन का ४०% कोयला विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। निर्यात करने के मुख्य कारण निम्नांकित हैं :—

(१) कोयले का उत्पादन आवश्यकता से अधिक होता है।

(२) कोयले की खानें तटीय प्रदेश पर एवं समुद्र के गर्भ तक चली गई हैं तथा वैसे भी कोई भी प्रदेश तटीय बन्दरगाह से २५ मील से ज्यादा दूर नहीं है।

(३) यूरोप एक विशाल बाजार के रूप में पास में ही आगया है।

(४) आवागमन के साधन तथा निर्यात के जहाजों के साधन आधुनिकतम हैं, जिससे खर्चा कम होता है।

(५) खानें पहाड़ी ढालों पर आगई हैं और वहाँ से कोयला आधुनिक ढंगों से निकाला जाता है। इस कारण भी विदेशी मण्डी में यहाँ का कोयला सस्ता पड़ता है।

(६) स्वीडेन बिल्कुल पास में ही है, जहाँ कोयले की कमी एवं लोहे की अधिकता है। अतः वहाँ से लोहे का निर्यात इंग्लैण्ड के लिये और यहाँ से कोयले का निर्यात स्वीडेन हो सकता है।

इंग्लैण्ड अपने कोयले के व्यापार का ५०% यूरोपीय देशों को भेजता है। प्रथम महायुद्ध के बाद इंग्लैण्ड के कोयला-निर्यात में कमी आगई है। सन् १९२३ में ७९० लाख टन, सन् १९३८ में ४०० लाख टन और १९५३ में केवल १४० लाख टन का निर्यात किया गया।

निर्यात में कमी होने के मुख्य कारण ये हैं:—[1]

(१) आस्ट्रेलिया, द० अफ्रीका और जापानी कोयले से प्रतिस्पर्धा होने से ब्रिटेन के कोयले की माँग में कमी हो गई है।

(२) कई देशों में अब कोयले के स्थान पर मिट्टी का तेल या शक्ति के अन्य साधन काम में लाये जाने लगे हैं। आधुनिक काल में ८०% समुद्री जहाजों में में तेल काम में लाया जाता है।

(३) जहाजों के एंजिनों, भट्टियों तथा विद्युत-प्लांटों में सुधार हो जाने से अब ताप के लिए कम कोयले की आवश्यकता पड़ने लगी है।

(४) ब्रिटेन में कोयला निकालने में खर्चा और असुविधा अधिक बढ़ गई है।

(५) ब्रिटेन में कोयले का उत्पादन भी घटता जा रहा है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

(१० लाख टन में)

वर्ष	उत्पादन	निर्यात	जहाजों के लिए
१९१३	२८७·४	७३·४	२१·०
१९२३	२७६·०	७९·५	१८·२
१९३३	२०७·१	३९·१	१३·५
१९४३	१९८·९	३·६	३·२
१९५३	२२३·५	१४·०	२·८

(६) ब्रिटेन में शताब्दियों से कोयला निकाला जारहा है, अतः निकटवर्ती खानों का कोयला समाप्त प्रायः हो गया है। केवल १०% कोयला धरातलीय खानों से प्राप्त किया जाता है। कुछ खानें तो २ से ३·५ हजार फुट तक गहरी पहुँच गई हैं, अतः कोयला निकालने में व्यय बढ़ गया है।

इन असुविधाओं से बचने के लिये १९४५ में कोयले उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है।

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 210.

कोयला पाकिस्तान में भी निकलता है जो बहुत ही कम है। जापान में भी कोयला मिलता है।

चीन के कयोला-क्षेत्र—चीन में एशियाई रूस के बाद कोयले के सर्वाधिक भण्डार हैं। यहाँ के भण्डार रूस, सं० राष्ट्र और कनाडा को छोड़कर किसी भी देश से यहाँ तक कि ग्रेट ब्रिटेन एवं जर्मनी से भी अधिक हैं। यहाँ पर जो कोयला मिलता है उसमें एन्थ्रेसाइट एवं बिटुमिनस ही सर्वाधिक है। चीन में कोयले के भण्डार करीब-करीब सबही प्रान्तों में हैं, परन्तु मुख्य क्षेत्र शैंसी, शाँसी, होनन और कैन्सू हैं। यह भण्डार २२०० लाख टन से १०११० लाख टन के कूते जाते हैं। अकेले लोयस प्रदेश में जिनमें कि उपर्युक्त प्रान्त आजाते हैं चीन का ६०% कोयला जमा है। चीन का इस समय वार्षिक उत्पादन ३० मिलियन टन ही है। परन्तु शान्तुग प्रायद्वीप, मंचूरिया एवं उपरोक्त दूसरे प्रान्तों में कोयला आसानी से निकाला जाता है। इस दृष्टि से हो सकता है कि चीन आने वाले वर्षों में विश्व का महत्वपूर्ण कोयला-उत्पादन क्षेत्र बन जाय। मंचूरिया में कोयले के भंडार ६ से १७ बिलिअन टन तक कूते जाते हैं। यहाँ विश्व में सबसे मोटी कोयले की तहें—१३० से ४३० फुट मोटी—पाई जाती हैं। यहाँ कोयला फूशन, फूसीन और प्रायद्वीप में मिलता है।

जापान के कोयला-क्षेत्र—जापान विश्व का ७वां बड़ा देश कोयले के उत्पादन की दृष्टि से है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन १९५३ में ४७० लाख टन था, फिर भी औद्योगिक प्रगति के कारण जापान को कोयले की कमी पड़ती है। इस कारण उसे प्रतिवर्ष बहुत-सा कोयला विदेशों से मँगाना पड़ता है। जापान के दो मुख्य कोयवा उत्पादन करने वाले द्वीप होकेडो एवं क्यूशू है जो दोनों मिलाकर देश का ६०% कोयला उत्पादित करते हैं। अधिकतर कोयला निम्न विट्यूमीनस या अर्द्ध-विट्यूमीनस प्रकार का है, जो कि बढ़िया कोक बनाने के काम में नहीं आता है। जापान पहले अपने कोयले की पूर्ति अपने साम्राज्य के देशों से ही कर लेता था। परन्तु अब जापान सं० राष्ट्र एवं दूसरे देशों से कोयला आयात कर रहा है। यहाँ ५७० लाख टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं।

पाकिस्तान कोयले की दृष्टि से बहुत ही निर्धन देश है। यहाँ पर कोयला सिर्फ पंजाब में ही मिलता है, जिसका कि वार्षिक उत्पादन ६०६,००० टन है जब कि यहाँ की माँग ३½ मिलियन टन की है अर्थात् १/५ माँग का कोयला निकाला जाता है शेष ४/५ भाग विदेशी आयातों पर निर्भर है।

अफ्रीका के कोयला-क्षेत्र (Coal Fields Of Africa)—

अनुमान है कि अफ्रीका कोयले की दृष्टि से धनी निकले। अभी विश्व का २% कोयला ही निकाला जाता है। जहाँ-जहाँ सर्वेक्षण हो पाया है उन क्षेत्रों में सब से ज्यादा कोयले के भण्डार दक्षिणी अफ्रीका में पाये जाते हैं, तथा दक्षिणी अफ्रीका के संघ में नैटाल, केप ऑफ गुड होप, और ट्रांसवाल में मुख्यतः मिलता है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन १९५२ में २८० लाख टन था। इसका अधिकतर

उपयोग रेलों, विद्युत, कारखानों, खानों आदि में होता है। लगभग ३० लाख टन जहाजों के लिए भी निर्यात किया जाता है।

चित्र १७९—अफ्रीका के कोयला-क्षेत्र

आस्ट्रेलिया—

कोयले की दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा हुआ महाद्वीप है। थोड़ा-सा कोयला पश्चिमी भागों में और कुछ कोयला दक्षिणी-पूर्वी आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। १९५३ में यहाँ १९० लाख टन बिट्यूमीनस और ८० लाख टन लिग्नाइट निकाला गया।

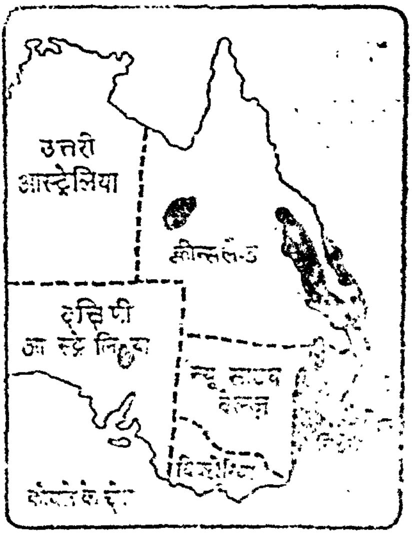

चित्र १८०—आस्ट्रेलिया के कोयला-क्षेत्र

दक्षिणी अमरीका—

इस महाद्वीप में कोयले की सुरक्षित मात्रा बहुत कम है। औद्योगिक उन्नति न होने के कारण कोयले की माँग भी यहाँ कम है। अधिकांश कोयला ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र से मँगाना पड़ता है। यहाँ चिली, ब्राजील, पीरू, अर्जेन्टाइना और कोलम्बिया में मिलता है। कोलम्बिया में पर्याप्त कोयला नहीं निकाला जाता, यद्यपि यहाँ की कोयला-सम्पत्ति विकास के योग्य है।

चिली—दक्षिणी अमेरिका के कोयला उत्पादन में चिली का पहला स्थान है। यहाँ बिट्यूमीनस कोयला मिलता है, जिसका उपयोग विशेष रूप से

रेलों के द्वारा किया जाता है। लोहे और स्पात के कारखानों के लिये अच्छा कोयला ब्रिटेन से आयात किया जाता है। यहाँ हर साल २५ लाख टन से अधिक कोयला निकाला जाता है। इससे इस देश की माँग की प्रायः आधी पूर्ति हो जाती है। इस देश के मध्य और दक्षिणी भागों में कान्सपेशन, वालडिविया, अरान्को और पेटा-एरानास प्रांतों में कोयला निकाला जाता है। कान्सपेशन प्रान्त में कोरोनेल, लोटी और लेबू इत्यादि खानें मुख्य हैं। इनके निकट ही लोहे और स्पात का एक कारखाना सन् १६४८ में खोला गया था जिससे कोयले की माँग और उत्पादन काफी बढ़ गया।

ब्राजील—इस देश में लगभग २० लाख टन कोयला हर साल निकाला जाता है। इसका ६० प्रतिशत कोयला दक्षिणी ब्राजील की रायोग्रेंडो, सूल और सैंट कैटारिना प्रान्तों से प्राप्त होता है। इनमें पहले प्रान्त से ८० प्रतिशत मिलता है लेकिन यह बिट्यूमीनस जाति का होता है। उत्तम जाति का कोयला साओ-पोलो और पैराना प्रान्तों से मिलता है लेकिन इसकी मात्रा बहुत कम होती है। मोटो ग्रेसो प्रान्त में भी कोयला सुरक्षित है लेकिन निकाला नहीं जाता है क्योंकि यह पहाड़ी क्षेत्र है और यहाँ आवागमन के साधन नहीं हैं।

पीरू—यहाँ केवल ३ लाख टन कोयला हर साल निकाला जाता है। *लगभग सभी खानें एण्डीज के कार्डीलैरा प्रदेश में स्थित हैं।* *कोयला साधारण* प्रकार का है। इसका प्रयोग ताँवा गलाने में और रेलवे इंजनों में किया जाता है। उद्योग-धन्धों की कमी के कारण माँग बहुत कम है।

अर्जेन्टाइना—इस देश के नेक्विन प्रान्त में कुछ बढ़िया कोयला निकाला जाता है। इस प्रदेश की खानों का पूरा विकास नहीं किया जा सका है। ये देश के औद्योगिक केन्द्रों से बहुत दूर स्थित हैं।

भारत—

यहाँ कोयला कई भौगर्भिक काल की शिलाओं (Acqueous Rocks) में मिलता है, जिनमें से दो ही काल का कोयला अधिक महत्व का है। एक प्रथम कल्प के गोंडवाना नामक काल की 'बाराकर' और 'रानीगंज' नामक श्रेणियों की शिलाओं से और दूसरा तृतीय कल्प का। गोंडवाना काल की शिलाओं के बनने के बहुत समय बाद इन क्षेत्रों में भूकम्पीय तथा आग्नेय हलचलें भी बहुत हुई जिनके कारण इन क्षेत्रों की शिलाओं को काट कर अथवा उनकी तहों के समानान्तर मुख्यतः दो प्रकार की आग्नेय (Igneous Rocks) शिलाएं 'डोलेराइट' (Dolerite) और 'पैरीडोटाइट' (Peridotite) मिलती हैं। इनके अतिरिक्त पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों के फलस्वरूप इन क्षेत्रों में अनेक स्तर-भ्रंश भी हो गये हैं जिससे कोयले तथा अन्य शिलाओं की तहें इधर-उधर हो गई हैं। गोंडवाना कोयले के क्षेत्रों के चारों ओर परिवर्तित शिलाएँ (Metamorphosed Rocks) मिलती हैं जो जलज शिलाओं से कहीं अधिक पुरानी हैं। इन्हीं परिवर्तित शिलाओं की भूमि में प्राचीन जलाशय उपस्थित थे जिनमें कोयला बनने का सामान एकत्रित हुआ।

भारत का ९८% कोयला गोंडवाना काल की शिलाओं में से निकाला जाता है और शेष २% तृतीय कल्प की शिलाओं से। इस प्रकार सामान्य रूप से भारत के कोयले के क्षेत्र दो चौड़ी पट्टियों में विभाजित किए जा सकते हैं। प्रथम पट्टी में गोंडवाना क्षेत्र के अन्तर्गत कोयला विहार, उड़ीसा, बंगाल, मध्य प्रदेश, और आंध्र राज्यों में पाया जाता है और दूसरी पट्टी में टर्शरी क्षेत्र (Tertiary belt) के राजस्थान, आसाम तथा पाकिस्तान के कोयले के क्षेत्र हैं। प्रथम क्षेत्र प्रायद्वीप भारत में और द्वितीय क्षेत्र उसके बाहर अवस्थित हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भूगर्भिक दृष्टि से भारतीय कोयले की उम्र यूरोप और अमेरिका के कोयलों की अपेक्षा कम है। गोंडवाना काल का कोयला २००० लाख वर्ष पुराना और टर्शरी युग का कोयला केवल ५०० लाख वर्ष पूर्व का है।

रासायनिक सम्मिश्रण की दृष्टि से भारत में तीन प्रकार का कोयला मिलता है :—

(१) लिग्नाइट (Lignite) या भूरा कोयला जो विशेपकर राजस्थान में पालना (बीकानेर) और काश्मीर के कारेवां (Karewan) में मिलता है।

(२) बिट्यूमिनस (Bituminous) या धुआँधार कोयला निम्न गोंडवाना काल की कई चट्टानों से मिलता है।

(३) एन्थ्रैसाइट (Anthracite) कोयला केवल काश्मीर राज्य में जम्मू के निकट ३६ मील के क्षेत्र में १ से २० फीट मोटी तहों में रियासी जिले में पाया जाता है।

उपयोग में आने के विचार से भी भारत में मिलने वाले कोयले को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक कोयला वह है जिससे उत्तम प्रकार का कोकिंग कोयला (Coking Coal) बनाया जाता है। कोकिंग कोयला धातु शोधन (Metallurgy) के काम में आता है। इस प्रकार का कोयला रानीगंज, झरिया, गिरडीह, बोकारो और दामूदा घाटी में मिलता है। अनुमान किया गया है कि इन खानों में २०,००० लाख टन से कुछ ही अधिक कोकिंग कोयले का जमाव है, जिसमें छीजन काट कर लगभग १४,००० लाख टन कोयला कोक बनाने के लिए मिल सकता है। भारत के कोकिंग कोयला में फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है और राख उससे कुछ कम।

दूसरे प्रकार का कोयला वह है जिसमें उत्तम किस्म की भाप बनाई जाती है। ऐसे कोयले के क्षेत्र रानीगंज, बोकारो, करनपुरा, तलचर, मध्यभारत, मध्य प्रदेश और सिंगरेणी में हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि विशेषता की दृष्टि से भारत का सर्वोत्तम कोयला भी सामान्यतः इंगलैंड के औसत दर्जे के कोयले से घटिया है। रानीगंज और झरिया के कोयले में चमकदार और मैली तहें एक के बाद एक पाई जाती

है। गिरडीह का कोयला साधारणतः मटमैला और काफी हद तक एकसार होता है। इसके विपरीत टर्शरी कोयले की खानों में सामान्यतः गहरे काले रंग का चमकदार और बिना परत का कोयला पाया जाता है। इसमें गोंडवाना कोल-क्षेत्र की कोयले की तहों की अपेक्षा वाष्पशील पदार्थों की मात्रा अधिक होती है।

कोयले के भंडार (Coal Reserves):—भिन्न-भिन्न भूगर्भ विशारदों द्वारा समय-समय पर जो अनुमान लगाये गये हैं उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत में निम्न श्रेणी का कोयला तो काफी परिमाण में मौजूद है, किन्तु धातु-शोधन योग्य उत्तम कोयले के भण्डार बहुत कम हैं। डा० फरमर (Dr. L. L. Fermor) के मतानुसार भारत में कोयले का सम्पूर्ण जमाव ४,५२,१०० लाख टन है जिसमें से केवल १,७०,००० लाख टन कोयला कोक बनाने योग्य है बाकी कोक बनाने के अयोग्य है। दूसरे भूगर्भ विशारद डा० फाक्स (Dr. C. Fox) के मतानुसार सम्पूर्ण कार्य-योग्य कोयले का जमाव २०,००,००० लाख टन है जिसमें से ५,००,००० लाख टन अच्छे किस्म का और १,५०,००० लाख टन कोयला कोक बनाने के उपयुक्त है।[1] डॉ० फाक्स का मत है कि यदि वर्तमान परिमाण में ही यह कोयला निकाला जाता रहा तो अगले १०० वर्षों में ही यह जमाव समाप्त हो जायेगा। भारतीय कोल-क्षेत्र कमेटी (Indian Coalfield Committee) ने १९४५ में उच्च श्रेणी के कोकिंग भण्डारों को ७००० से ७५०० लाख टन के बीच में आंका है। इस कमेटी के मतानुसार यह परिमाण, यदि इसी प्रकार निकाला जाता रहा जैसा कि अब तक निकाला जा रहा है तो, आगामी ६५ वर्षों में ही समाप्त हो जावेगा। सबसे बाद, अनुसार (१९४६) के अनुमान के भारत का कोयले का कुल भण्डार ६,००,००० लाख टन माना जा सकता है जिसका वितरण इस प्रकार से है:—[2]

---

१. डा० फाक्स के अनुसार अच्छे किस्म और कोकिंग कोयले के जमाव इस प्रकार हैं—

उत्तम कोयले के भण्डार

(Reserves of Good Quality Coal)

क्षेत्र	(दस लाख टनों में)
गिरडीह और जयन्तिका क्षेत्र	४०
रानीगंज, झरिया, बुकारो और करनपुरा क्षेत्र	४,६००
सोन की घाटी के क्षेत्र	८०
तलचर क्षेत्र	२००
सतपुड़ा क्षेत्र	३०
बलारपुर, सींगरेणी	५०
	५,०००

२. देखिये National Planning Committee Report on "Power & Fuel"

भारत में कोयले का भण्डार

क्षेत्र	जमाव (दस लाख टनों में)
१. दार्जिलिंग और पूर्वी हिमालय प्रदेश	१००
२. गिरडीह, देवगढ़ और राजमहल की पहाड़ियाँ	२५०
३. रानीगंज, झेरिया, बुकारो और करनपुरा	२५,०००
४. सोन की घाटी (औरंगा से सुहागपुर तक)	१०,०००
५. छतीसगढ़ और महानदी क्षेत्र (तलचर)	५,०००
६. सतपुड़ा क्षेत्र (मोहपानी से कनहान और पंचघाटी)	१,५००
७. वर्धा घाटी (वरोरा से बेदाद मोरू तक)	१७,०००
कुल	६०,०००

कोकिंग कोयले के जमाव
(Reserves of Coking Coal)

क्षेत्र		दस लाख टनों में
गिरडीह		३०
रानीगंज		२५०
झेरिया		९००
बुकारो		३२०
करनपुरा		अज्ञात
	योग	१,५००

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारत का ९८% कोयला गोंडवाना से और २% आसाम आदि से प्राप्त होता है, नीचे की तालिका में यह उत्पादन बताया गया है:—

कोयला व कोक का उत्पादन (१९५२ व ५३)

कोयला		हजार टनों में
बंगाल	१०,३३८·४	१०,२२२·२
बिहार	१९,२८६·३	१९,०११·९
विन्ध्य प्रदेश	७९६·२	८७८·६
मध्य प्रदेश } उड़ीसा }	३,९०८·०	४,०१३·८
मद्रास व कैरल	१,४३४·२	१,३३१·१
दूसरे	५३८·३	५१७·६
योग	३६,३०१·४	३५,९७५·२
कोक	२,३९६·१	२,५३५·४

बंगाल, बिहार और उड़ीसा के कोयले के क्षेत्र—

भारत की कुल उत्पत्ति का लगभग ९०% कोयला इन तीन राज्यों की खानों से प्राप्त होता है। यह सभी क्षेत्र दामोदर नदी की घाटी में फैले हैं। कलकत्ते से १२०-१५० मील उत्तर-पश्चिम की ओर दामोदर घाटी का सबसे पूर्व वाला रानीगंज का कोयला-क्षेत्र है। इसका क्षेत्रफल ६०० वर्ग मील है। यहाँ पर कोयला निकालने का प्रथम प्रयास कदाचित् १७७४ ई० में बराकर नदी के किनारे किया गया था। रानीगंज क्षेत्र में यद्यपि कोयला 'बराकर' और 'रानीगंज' दोनों श्रेणियों की शिलाओं में पाया जाता है किन्तु यहाँ रानीगंज श्रेणी का कोयला ही अधिक मिलता है। रानीगंज श्रेणी में कई अच्छी-अच्छी कोयले की तहें है। बराकर श्रेणी के कोयलों में जल और वाष्पीय पदार्थों का

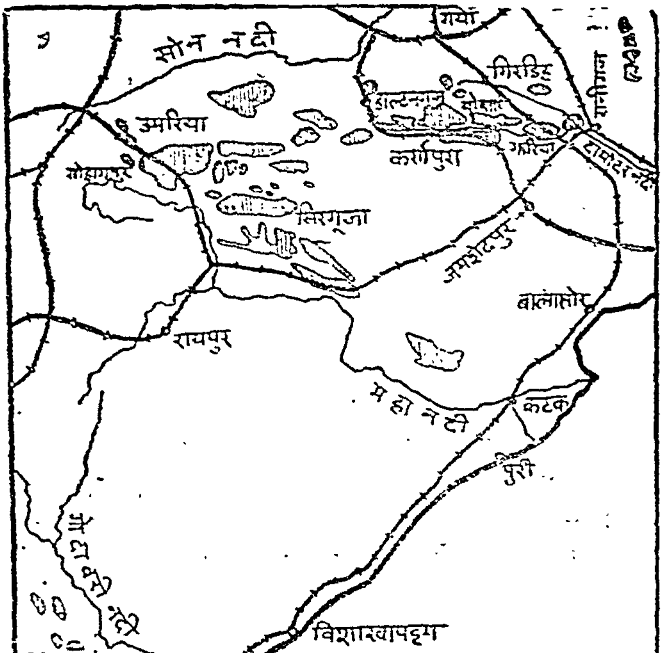

चित्र १८१—भारत के प्रमुख कोयला-क्षेत्र

अंश रानीगंज श्रेणी के कोयलों से कम और ठोस कार्बन अधिक मात्रा में होता है। रानीगंज श्रेणी की तह में थोड़ी-सी तह ही धातु शोधने योग्य कोक बनाने के लिए अच्छी है जिनमें तिशारगढ़ तह (Tishergarh Seam) १८ फीट मोटी और सैक्टोरिया तह १० फीट मोटी उत्तम कोयले के लिए प्रसिद्ध है। केवल इन दोनों सीमों में १००० फीट की गहराई तक १२ करोड़ टन से अधिक प्रथम श्रेणी का कोक बनाने वाला कोयला कूता गया है और इसके अतिरिक्त २० करोड़ टन कोक न बनाने वाला, किन्तु उत्तम कोयला और होगा। रानीगंज क्षेत्र में कुल कोयला ५६८ करोड़ टन १००० फुट की गहराई तक होगा। यह

क्षेत्र भारत के कोयले का १/२ भाग उत्पन्न करते हैं। इस क्षेत्र को दक्षिणी-पूर्वी रेलवे जोड़ती है।

झेरिया कोल क्षेत्र (Jheria Coal fields)—रानीगंज क्षेत्र से ३० मील पश्चिम की ओर है। इस क्षेत्र का पता सन् १५८५ में लगा था। यह क्षेत्र २३ मील लम्बा (पूर्व-पश्चिम में) और १० मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल १७५ वर्गमील है। इस क्षेत्र का कोयला 'बराकर' और 'रानीगंज' दोनों श्रेणियों की जलज शिलाओं से मिलता है। 'बराकर' श्रेणी यहाँ पर लगभग ८४ वर्गमील में मिलती है और उनमें कोयले की बीसत हें (Seams) हैं। इन तहों की पृथक रूप से मोटाई कुछ फीट से २७ फीट तक है। कुल तहें मिलाकर ३०० फुट के लगभग होंगी। 'रानीगंज' श्रेणी की शिलायें २१ वर्गमील में मिलती है। झेरिया क्षेत्र की प्रायः सब तहों के कोयले से कोक बन सकता है, परन्तु उत्तम कोक केवल ९ नम्बर से १८ नम्बर तक की तहों से ही बनता है। झेरिया क्षेत्र समस्त भारत का ५०% कोयला उत्पन्न करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी रेलवे इस क्षेत्र को कलकत्ता से जोड़ती है।

गिरडीह क्षेत्र (Girdih fields)—हज़ारीबाग ज़िले में है। इसका क्षेत्रफल केवल ११ वर्ग मील है, जिसमें कोयले वाली जलज शिलायें केवल ७ वर्गमील में ही मिलती है। ये कोयले की शिलायें 'बराकर' श्रेणी की हैं, परन्तु यहाँ के कोयले की मुख्य विशेषता यह है कि उससे अति उत्तम प्रकार का स्टीम-कोक (Steam Coke) तैयार होता है। यहाँ की प्रसिद्ध तहें कडहरबाड़ी (Kadharbari) और पहाड़ी की सीम कहलाती है। इस तह में ४ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान लगाया गया है। यह कोयला धातु शोधने में व्यवहृत होता है।

बुकारो क्षेत्र (Bokaro fields)—झेरिया के पश्चिम में है और दो भागों में बँटा है—पूर्वी बुकारो और पश्चिमी बुकारो। दोनों का क्षेत्रफल मिलाकर २२० वर्गमील है। यह क्षेत्र ४० मील लम्बा और ७ मील चौड़ा है। यहाँ भी कोक बनाने योग्य उत्तम कोयला मिलता है। यहाँ ६ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान किया जाता है।

करनपुरा क्षेत्र (Karanpura fields) ऊपरी दामोदर की घाटी में बुकारो क्षेत्र से दो मील पश्चिम में यह क्षेत्र वर्तमान हैं। इस क्षेत्र के भी दो भाग हैं—उत्तरी और दक्षिणी करनपुरा जिनका क्षेत्रफल क्रमशः ४७५ और ७० वर्गमील है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि यहाँ पर कोयले की तह अधिक मोटी पाई जाती है। यहाँ ६० फुट मोटी तहें बहुत-सी है। इस क्षेत्र में भारत के कुल कोयले का २ प्रतिशत निकाला जाता है। यहाँ ९.५ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान है

उपर्युक्त पाँच क्षेत्रों के अतिरिक्त बिहार-उड़ीसा में रामगढ़ (दामोदर घाटी), रामपुर (सम्बलपुर), तथा पलामाऊ के तीन क्षेत्र औरंगा, हुटार और

डाल्टनगंज और उड़ीसा के तलचर इत्यादि प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। औरंगा (Auranga) क्षेत्र का क्षेत्रफल ६७ वर्गमील है। यद्यपि यहाँ कोयले की तहें बहुत हैं किन्तु यह कोयला निम्न श्रेणी का है। हुटारक्षेत्र का क्षेत्रफल ५७ वर्गमील है। यहाँ साधारण श्रेणी का बाराकर कोयला १२ फुट की तहों तक मिलता है। डालटन-गंज क्षेत्र का कोयला निकृष्ट श्रेणी का है। इसका क्षेत्रफल ३२ वर्गमील है। उड़ीसा के तलचर क्षेत्र का क्षेत्रफल २०० वर्गमील है; यह ब्रह्मणी नदी की घाटी में है। यहाँ कोयले का जमाव १·८ करोड़ टन का कूँता गया है।

मध्य प्रदेश के कोयला-क्षेत्र—

भारत के इस भाग में कोयले का पता सन् १८२८ में ही लग चुका था। मध्य प्रदेश के मुख्य क्षेत्र उमरिया, सुहागर और सिंगरौली में है। (१) उमरिया का क्षेत्रफल केवल ६ वर्गमील है। यहाँ कोयले में राख और वाष्प का अंश अधिक होता है। इस क्षेत्र में ८ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान है। यह क्षेत्र कटनी के निकट है। (२) सोहागपुर क्षेत्र १२०० वर्ग मील में फैला है। यहाँ कोयले की कई तहें हैं। (३) रीवाँ प्रदेश में सिंगरौली क्षेत्र ९०० वर्गमील में फैला है। यहाँ कोयले की तहें ६ फीट से १८ फीट की मोटाई तक पाई जाती हैं। यद्यपि मध्य प्रदेश में कई स्थानों में कोयला पाया जाता है, किंतु कुछ क्षेत्र तो रेल इत्यादि से दूर हैं और बहुतों का कोयला बिहार-उड़ीसा के क्षेत्र के कोयले से निम्न श्रेणी का है। यहाँ के कोयले में नमी अधिक होती है। यहाँ कोयले के अन्य क्षेत्र निम्न भागों में हैं—

पंचघाटी के कोयले के क्षेत्र (Pench Valley Coalfields)—ये क्षेत्र छिंदवाड़ा जिले में सतपुड़ा पहाड़ के दक्षिण तवा, कन्हान और पंच नदियों की घाटियों में वर्तमान हैं। इन सबका क्षेत्रफल १०० वर्गमील है। यहाँ के मुख्य क्षेत्र सिरगौरा, बरकोई, हिंगलदेवी, कन्हान और तवा के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये क्षेत्र १९०५ से काम में आने लगे हैं। यहाँ कोयले की तहें ५ से १२ फुट तक मोटी हैं। कन्हान का कोयला कोक बनाने योग्य है।

मोहपानी क्षेत्र (Mohpani Coalfields) मध्य प्रदेश के नृसिंहपुर जिले में इस प्रदेश का सबसे पुराना क्षेत्र हैं, जो नर्मदा घाटी के दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत के उत्तरीय ढाल के तले में वर्तमान है। बराकर श्रेणी की शिलाओं में यहाँ पर कोयले की चार तहें हैं जिनमें से दो तो लगभग २० और २५ फुट मोटी हैं। यहाँ ४ करोड़ टन कोयले का जमाव होने का अनुमान है। बंगाल के साधारण कोयलों से यहाँ का कोयला कुछ निकृष्ट है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त यवतमाल (Yeotmal) और बेतूल जिले में शाहपुर (Shahpura) इत्यादि क्षेत्र भी प्रसिद्ध हैं।

वरधा घाटी के क्षेत्र (Wardha Coalfields)—इन क्षेत्रों में बलारपुर,

वरोरा, सस्ती और घुघस उल्लेखनीय हैं। परन्तु प्रथम दो ही अधिक महत्व के हैं। चांदा जिले में बलारपुर (Ballarpur) नामक क्षेत्र में कोयलेदार तहें ६२ फुट की गहराई तक मिलती हैं जिनमें केवल दो ही १७ और १४ फुट मोटी तहें अच्छे कोयले की हैं और इन्हीं से कोयला निकाला जा रहा है। यहाँ २०,००० लाख टन कोयले का भंडार होने का अनुमान है। यहाँ का कोयला हवा में पड़ा रहने पर चूर-चूर होने लगता है और इस कोयले की तह में स्वयं जल उठने का भी डर रहता है। बरार के यवतमाल जिले में पिसगांव के निकट ७७ फीट की गहराई पर १३ से २७ फुट मोटी और राजपुर के निकट १६० फुट की गहराई पर १८ से ३० फुट मोटी कोयले की तहें पाई जाती हैं। यहां का कोयला हल्के किस्म का कोक न बनाने योग्य है। सम्पूर्ण जमाव २४०० लाख टन का है। चाँदा जिले में एक और क्षेत्र वरोरा (Warora) है जहाँ कोयले की दो तहें—ऊपरी तह २२ फुट मोटी और निचली तह १.० फुट मोटी है। यहाँ १२० लाख टन कोयले का भंडार माना जाता है।

उत्तरी छत्तीसगढ़ तथा सरगुजा राज्य के क्षेत्र—इन क्षेत्रों में रामकोला, तातापानी, सिनहट, विश्रामपुर, बन्सर, लखनपुर, पंचवहनी और संदूरगढ़ इत्यादि छोटे-छोटे क्षेत्र सम्मिलित हैं। क्षेत्रफल में यद्यपि रामकोला-तातापानी (Ramkola-tatapani) क्षेत्र ८०० वर्गमील है, किन्तु गोंडवाना काल की कोयलादार शिलायें केवल १०० वर्गमील में ही पाई जाती हैं और यहाँ की कोयला भी अच्छा नहीं है। इस क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिम में झिलमिली क्षेत्र से अच्छा कोक बनाने योग्य कोयला मिलता है। यहां की तहें क्षैतिज (Horizontal) हैं जिससे कोयला निकालने में वहुत सुभीता रहता है। इस क्षेत्र के दक्षिण और केन्द्रीय भाग में उत्तम कोयले का परिमाण अधिक है, किन्तु वे भाग रेलवे से दूर हैं।

दक्षिणी छत्तीसगढ़ और कोरिया के क्षेत्र—छत्तीसगढ़ में कोरवा, मांड नदी की घाटी तथा रामपुर नामक स्थान में कोयला मिलता है। रामपुर का नाम रायगढ़-हिंगिर (Raigarh) क्षेत्र में भी है। यहां निम्न श्रेणी का कोयला मिलता है। यह क्षेत्र २०० वर्गमील में सम्बलपुर से २४ मील उत्तर में है। कोरिया क्षेत्र में अनेक स्थानों पर कोयला मिलता है। यहां पर कुरासिया (Kurasia)—क्षेत्रफल ४८ वर्गमील—और कोरियाग आदि नये क्षेत्र हैं।

हैदराबाद के क्षेत्र (Hyderabad Coalfields)—

हैदराबाद राज्य में गोंडवाना काल की चट्टानें ३८०० वर्गमील भूमि में फैली हैं। यहाँ सिगरेनी (Sigreni) नामक क्षेत्र अधिक प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में बराकर श्रेणी की शिलायें ८ वर्ग मील में पाई जाती हैं। यहां पर चार तहें हैं, जिनमें सबसे बड़ी तह ३४ से ६७ फुट तक मोटी है। दक्षिण भारत में यह क्षेत्र पास है अतः यहां का कुल कोयला दक्षिणी भारत की रेलों और कारखानों में खप जाता है।

टर्शरी युग का कोयला (Cretaceous or Tertiary Coalfields)—सम्पूर्ण भारत का २% कोयला टर्शरी युग की चट्टानों से प्राप्त होता है। इसके मुख्य क्षेत्र राजस्थान और आसाम हैं। राजस्थान में बीकानेर डिविजन में **पलाना** (Palana) नामक क्षेत्र से कोयला निकाला जाता है। यहाँ पर केवल एक ही तह है, जिसकी मोटाई पृथ्वी तह पर केवल ६ फुट है, परन्तु नीचे कहीं-कहीं यह तह २० फुट मोटी हो गई है। यहाँ का कोयला 'लिग्नाइट' वर्ग का है जिसमें उद्भिज रेशे (fossil-resin) दिखलाई पड़ते हैं।

आसाम प्रान्त में कोयला पूर्वी नागा पर्वत के उत्तर-पश्चिमी ढाल पर लखीमपुर तथा शिवसागर जिलों में पाया जाता है। यहाँ का सबसे बड़ा क्षेत्र **माकूम** है जो लगभग ५० मील लम्बा **नामदाग-लीडो** कोलक्षेत्र के नामसे प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की तहों की मोटाई अधिकतर ५० फुट है। यहाँ ६०० लाख टन कोयला होने का अनुमान लगाया गया है। यह उत्तम किस्म का गैस बनाने योग्य कोयला है किन्तु इसमें गंधक का अंश ज्यादा होता है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त **जयपुर** क्षेत्र है जो २५ मील की लम्बाई में फैला है और जहाँ कोयले का जमाव २०० लाख टन है। नजीरा क्षेत्र—झांजी और देसीय नामक क्षेत्र भी उल्लेखनीय हैं। यद्यपि यहाँ के कोयले में भी गंधक का अंश अधिक है, किन्तु वैसे यह कोयला बड़ा उत्तम है जिससे कोक भी बन सकता है। आसाम का प्रायः सब कोयला रेलों, स्टीमरों और आसाम के चाय के कारखानों में ही काम आ जाता है।

कोयले का उपयोग (Consumption of coal)

हमारे देश में कोयले की उत्पत्ति का उपभोग रेलवे में ३३·५%; लोहे और फौलाद के कारखानों में १०·४%; जहाजों और निर्यात में ७·४%; सूती कपड़े के कारखानों में ७.४%; बिजली के कारखानों में ६.५%; ईंटों के भट्टों में ३·७%; अन्य कारखानों में (सीमेंट, जूट, कागज, इन्जीनियरिंग और चाय रासायनिक पदार्थ) २८·६%; अन्य कार्यों में २·२% होता है। कुल उत्पादन का लगभग ४० प्रतिशत कोयला रेलों, जहाजों तथा अन्य यातायात की सवारियों में व्यय हो जाता है। केवल ३० प्रतिशत ही विभिन्न उद्योगों में काम आता है और शेष ३० प्रतिशत क्षति, घरेलू खपत आदि में उपयोग में आता है। देश में कोयले को गरम करके भी कई रासायनिक पदार्थ प्राप्त किए जाते हैं। इसी से कोक, कोलतार और अमोनिया प्राप्त किया जाता है। कोलतार से रंग, इत्र, नेपथलीन, कारबोलिक एसिड, मशीनों का तेल, विस्फोटक, फिनाइल, पिच आदि तैयार किए जाते हैं। भारतीय कोयला धातु शोधने के काम का बहुत कम है।

भारतीय कोयले और उससे सम्बन्धित व्यवसाय में बहुत से दोष हैं उनमें से कुछ मुख्य ये हैं:—

(१) देश के विस्तार को देखते हुए हमारे यहाँ बहुत ही कम मात्रा में कोयला निकाला जाता है। यहाँ की वार्षिक उत्पत्ति ३½ करोड़ टन है, जबकि

सं० रा० अमेरिका में २० करोड़ टन, रूस में २५ करोड़ टन और ब्रिटेन में १६½ करोड़ टन है।

(२) भारत में अधिकतर घटिया कोयला ही मिलता है जिसमें कारबन का अंश कम होता है किन्तु राख, वाष्पीय अंश और जल अधिक होता है इस कारण ही यह कोयला कठोर कोक बनाने और धातु शोधन के योग्य नहीं होता।

(३) भारत में कोयले के क्षेत्रों का वितरण असमान है, क्योंकि सम्पूर्ण उत्पत्ति का ९८% कोयला गोंडवाना क्षेत्र—बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और मध्य भारत से—तथा केवल २% टर्शरी क्षेत्र के आसाम और राजस्थान से प्राप्त होता है। अतः प्रथम क्षेत्रों से कोयला औद्योगिक केन्द्रों तक ले जाने में व्यय अधिक हो जाता है। यही कारण है कि समुद्र तटीय भागों में कोयला विशेषतः अफ्रीका और इङ्गलैंड से आयात किया जाता है।

(४) भारत के कोयला-क्षेत्र नव्य-नदियों के प्रवाह-क्षेत्रों से दूर हैं, अतः पश्चिमी देशों की भाँति हमारे यहाँ न तो नदियाँ ही और न नहरें ही कोयला ढोने के काम में आती है। परिणामतः सारा कोयला मालगाड़ियों के डिब्बों द्वारा ढोया जाता है जिससे व्यर्थ ही नष्ट हो जाने के कारण किराया भी काफी पड़ जाता है।

(५) भारत में कोयला निकालने के साधन बहुत ही पुराने हैं। अब भी भारतीय खानों में मजदूरों द्वारा ही कोयला खोदकर खानों में चलने वाले ठेलों में भर दिया जाता है; इसमें चूरा भी बहुत नष्ट हो जाता है। अभी तक कई खानों में मशीनों का तो प्रयोग भी नहीं किया जाता, अतः खानों से निकाले जाने वाले कोयले की मात्रा में भी कमी होती है। उदाहरण के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सतह के नीचे से निकाले जाने वाले कोयले का परिमाण प्रति व्यक्ति पीछे ६५७ टन, इङ्गलैंड में २८७ टन, जापान में २१२ टन और भारत में केवल १२० टन ही है। इसी प्रकार सतह के ऊपर जहाँ इङ्गलैंड में २७० टन, जापान में २९३ टन कोयला प्रति व्यक्ति पीछे निकाला जाता है वहाँ भारत में केवल १८० टन ही।

(६) भारतीय खानें काफी गहराई तक पहुँच गई हैं, अतः गरमी की अधिकता से मजदूरों को खान में काम करने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं और खर्च भी बहुत अधिक होता है।

बचत की आवश्यकता

भारत में अच्छे कोयले के—जिनसे कोक बनाया जा सके—भंडार बहुत ही सीमित हैं और यदि उनका दुरुपयोग वर्तमान की भाँति ही होता रहा तो ये भंडार अधिक समय तक नहीं चल सकते। ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि सुरक्षित कोयले को अधिक समय तक चलाने के लिए मितव्ययिता के

सभी सम्भव उपाय काम में लाये जायँ। इस सम्बन्ध में डा० एन० एन० चटजी का मत है कि रानीगंज, झेरिया, गिरडीह और करनपुरा क्षेत्रों का कोयला केवल धातु शोधन के लिए कोक बनाने में प्रयुक्त किया जाय और अन्य स्थानों का कोयला जिसमें वाष्पीय अंश तथा गंधक अधिक है, उसका प्रयोग रासायनिक उप-प्राप्ति उत्पन्न करने में ही किया जाय। इन्हीं विद्वान के मतानुसार कोयले से सोफ्ट-कोक (Soft coke) बनाने में निम्न रूप से हानि होती है। यदि २० लाख टन सोफ्ट कोक बनाया जावे तो उसमें निम्न रूप से कोयले का दुरुपयोग होगा :—

मोटर स्प्रीट ०:७५ (दस लाख) गैलन, हल्के तेल (Light oils) १:५० (दस लाख गैलन) मशीनों का तेल ३:० (दस लाख) गैलन, कारबोलिक एसिड इत्यादि ०:७५ (दस लाख) गैलन, अमोनियम सल्फेट १०५०० टन, पिच (Pitch) १५,००० टन, गैस ७:५० लाख घन फीट (जिससे ५०० लाख की अश्व-शक्ति उत्पन्न की जा सकती है।)

इस बढ़ते हुए राष्ट्रीय अपव्यय को रोकने के लिए सबसे पहली चीज यह है कि (१) कोयले को खानों में से निकालने के लिए अधिक आधुनिक ढङ्ग प्रयोग में लाये जायँ, जिससे कोयला निकालने में कम-से कम दुरुपयोग हो। (२) यह क्षति अच्छे तरीकों और मशीनों तथा बालू के प्रयोग (Sand stowning) से कम-से-कम की जा सकती है। (३) कोयले के अधिक-से-अधिक लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि यातायात और उद्योगों में काम में आने वाली बिजली घटिया कोयले से ही बनाई जाय। उत्तम किस्म का कोयला केवल धातु-शोधन के प्रयोग में व्यवहृत हो। (४) कोयले से प्राप्त होने वाली उपप्राप्तियाँ (By-products) और रासायनिक पदार्थों को उत्पन्न करने वाले कारखानों की भी वृद्धि की जाय।

कोयले के भंडार (Coal Reserves)

विश्व में कोयले के अनुमानित भंडार इतने विशाल हैं कि भविष्य में किसी भी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये थी। परन्तु सब महाद्वीपों एवं देशों में कोयले का वितरण इतना असमान है कि कई देशों के लिए कोयले की कमी एक समस्या बनी हुई है।

एन्थ्रेसाइट, विटुमिनस एवं लिगनाइट कोयला मिलाकर विश्व के गर्भ में ८००० बिलिअन टन कोयला छुपाये हुए हैं जो कि अभी के उत्पादन की दृष्टि से आने वाले हजारों वर्षों के लिए पर्याप्त है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह कोयले के भण्डार जो कि ६०००' तक पाये जाते है आने वाले ४००० वर्षों के लिये पर्याप्त हैं। अगले पृष्ठ की तालिका में कोयले के भण्डारों को बताया गया है—[1]

---

१. Smith, Phillips & Smith : *Ibid.*, p. 297

विश्व के कोयला भंडार (१६५३)
(दसलाख मैट्रिक टनों में)

देश	एंथ्रसाइट, विस्थ्यूमीनस और उपविस्थ्यमीनस	लिग्नाइट और भूरा कोयला	योग	विश्व का %
एशियाः	२,०६४,५७५	२०६,२५५	२,३००,८३०	४६.०
रूस	६६८,०००	२०२,०००	१,२००,०००	२४.०
चीन	१,०११,०००	६००	१,०११,६००	२०·२
भारत	६२,१४३	२,८३३	६४,६७६	१·३
जापान	१६,२१८	४७३	१६,६६१	·३
अन्य देश	७,२१४	३४६	७,५६३	·२
उत्तरी अमेरिका :	१,३६०,६१७	५१६ ८५७	१ ६१०,४७४	३८·२
स० राष्ट्र	१,३०३,०६६	४२०,३५०	१,७२३,४१६	३४·४
अलास्का	२२,४६८	७४,६१५	६७,४१३	२·०
कनाडा	६५,०५३	२४,५६२	८६,६४५	१·८
यूरोपः	५७२,०४५	८७,८६०	६५६,६३५	१३·१
जर्मनी	२७६,५१६	५६,७५८	३३६,२७४	६·७
इग्लैंड	१७२,२००	——	१७२,०००	३·४
पोलैंड	८०,०००	१८	८०,०१८	१·६
चेकोस्लोवाकिया	६,४५०	१२,५००	१८,६५०	·४
फ्रांस	११,२२४	१२५	११,३४६	·२
पुर्तगाल	६,०३६	४,२००	१०,२३६	·२
अन्य	१६,६१६	१४,२८६	३०,६०८	·६
अफ्रीकाः	६६.७३४	२१०	६६,६४४	१·४
द० अफीका संघ	६८,०१४	०	६८,०१४	१·४
अन्य	१,७२०	२१०	१,६३०	—
आस्ट्रेलियाः	१३,६५७	३६,६८६	५३,६४६	१·१
आस्ट्रेलिया	११ ६००	३६,२००	५३,१००	१·१
अन्य	५७	४८६	५४६	—
दक्षिणीमध्यअमेरिकाः	१२,७३३	४	१२,७३७	·२
कोलंबिया	१०,०००	०	१०,०००	·२
चिली	२,११६	०	२,११६	—
अन्य	१,६१७	४	१,६२१	—
विश्व का योग	४,१५४,६६१	८५३,६०५	५,००८,५६६	१००·०

इस तालिका के अध्ययन से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :—

(१) संसार के सभी देशों में कोयले के भण्डार समान नहीं हैं।

(२) एशिया में संसार भर के कोयले के भण्डार का ४६% है, किन्तु सबसे अधिक भण्डार सं० राष्ट्र अमेरिका में पाये जाते हैं, जहाँ संसार के कुल भण्डार का ३४% अनुमानित है। उ० अमरीका में विश्व के ३८% भण्डार पाये जाते हैं।

(३) सं० राष्ट्र के अनन्तर रूस में २४% भण्डार पाये जाते हैं।

(४) यूरोप का महत्व इनके पश्चात् आता है—केवल १३% किन्तु इसके भण्डार विक्रय स्थलों के निकट हैं।

(५) अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका के भण्डार नगण्य हैं—क्रमशः १·४%; १·१% और ·२%।

(६) संसार में सबसे अधिक भण्डार एंथ्रेसाइट और बिट्यूमीनस कोयले के पाये जाते है। यह संसार के कुल संचित कोष का ८०% है और २०% लिगनाइट का है।

(७) विश्व का ५०% एन्थ्रेसाइट और बिट्यूमीनस एशिया में और लगभग २५% उत्तरी अमरीका में पाये जाते हैं।

कोयले के भण्डार के इस असमान वितरण का प्रभाव औद्योगिक उन्नति पर पड़ा है। इसी कारण आज यूरोप और उत्तरी अमेरिका के देश संसार के औद्योगिक विकास में अग्रणी हैं तथा सभ्यता और संस्कृति के केन्द्र बन गये हैं।

कोयले का उपयोग (Utilizatian of Coal)

विभिन्न देशों में कोयले के उपभोग की मात्रा और उसके विभिन्न उपयोगों में बड़ी विषमता पाई जाती है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व विश्व के कोयले के उत्पादन का ३/४ भाग संयुक्त राष्ट्र, इंग्लैंड, जर्मनी, रूस और कनाडा द्वारा उपभोग में लाया जाता था। इन सभी देशों में लगभग ६०% कोयला औद्योगिक कार्यों, विद्युत उत्पादन और गैस निर्माण में, प्रयुक्त होता था। आज भी कनाडा में ४१% कोयला यातायात में प्रयुक्त होता है। केप वर्डी द्वीप में ६१% कोयला जहाजों के ईंधन के रूप में काम में लिया जाता है जबकि रूस में यह उपभोग केवल १½% ही है। नार्वे में ७७% घरों को गर्म रखने में होता हैं। संयुक्त राष्ट्र में १९५३ में २८० लाख टन एंथ्रेसाइट घरों को गर्म करने तथा लगभग १०६० लाख टन बिट्यूमीनस विद्युत उत्पादन और इतनी ही मात्रा स्पात के कारखानों में काम आती थी। भारत में कोयले के उत्पादन का ३४% रेलों में, ७% जहाजों और निर्यात में तथा शेष लोहे और स्पात, सूती कपड़े, ईंटों के भट्टे, चाय, कागज, जूट, सीमेन्ट, रासायनिक पदार्थों के उद्योगों तथा घरेलू उपयोग में आता है।

महीन, टूटा हुआ और घटिया कोयला (जिसकी मांग कम है) अधिकतर

ईंधन की ईंटें (Briquettes) तथा गोले तैयार करने में प्रयुक्त होता है। यह कार्य अधिकतर फ्रान्स, हालैंड, ब्रिटेन, जर्मनी और बेलजियम में किया जाता है। इन ईंटों का उपयोग घरेलू कार्यों में और विद्युत-कारखानों में किया जाता है। रूस और जर्मनी में भूरे कोयले से गैस और तेल भी प्राप्त किया जाता है।

कोयले की मुख्य मांग ईंधन के रूप में होती है। इस मांग पर कई बातों का प्रभाव पड़ सकता है। इनमें से मुख्य ये हैं:—

(१) कोयला जलाने की रीतियों में सुधार अथवा उसका गैस या बिजली द्वारा अप्रत्यक्ष उपयोग। ब्रिटेन व जर्मनी तथा रूस में बहुत-सा कोयला इन दोनों ही कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य ढंग भी कोयले को जलाने तथा उसको प्रयोग में लाने के लिये निकाले गये हैं। इन ढंगों में कोयले को तरल बनाकर उसका प्रयोग किया जाता है। साधारणतः ६०% कोयले और ४०% तेल का मिश्रण भी काम में लाया जाता है। इस मिश्रण का लाभ यह है कि उसकी गर्मी की शक्ति साधारण कोयले से कहीं अधिक होती है तथा वह थोड़े-से स्थान में ही रखा जा सकता है और यह तेल से भी सस्ता पड़ता है।

(२) तेल रूपी ईंधन का प्रयोग अब औद्योगिक क्रियाओं में बढ़ रहा है। इसका मुख्य कारण डीजल एंजिनों (Diesel Engines) का विकास होना है। समुद्री यातायात में अब ऐसे जहाजों का चलन हो गया है जिनमें ईंधन के रूप में तेल का प्रयोग अधिकाधिक किया जाने लगा है। सन् १९१८-१९ में केवल ३४% जहाज तेल से चलते थे; सन् १९२५-२६ में ६८%, तथा अब ८०% से भी अधिक जहाज तेल से चलाये जाते हैं।

(३) विश्व के विभिन्न देशों में अनुकूल परिस्थितियों में जल-विद्युत-शक्ति का उत्पादन दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए सं० रा० अमेरिका में जल-विद्युत शक्ति ने १९१३ में सम्पूर्ण शक्ति के ३% की पूर्ति की थी, १९२१ में ५% और अब लगभग १०% पूर्ति करती है।

इन सब कारणों के होते हुए भी विश्व में कोयले का उपयोग बढ़ रहा है क्योंकि अब भी वाष्प (Steam) सर्वाधिक शक्ति का स्रोत माना जाता है— उद्योगों के लिए भी और रेल के एंजिनों के लिए भी।

गौण-वस्तुएँ (By-products of Coal)

कोयले से कई बहुमूल्य गौण-वस्तुएँ भी प्राप्त की जाती हैं। अनुमान लगाया गया है कि इससे २००,००० से भी अधिक गौण-वस्तुएं प्राप्त की जाती हैं।[१] कोयले से यह वस्तुएं प्राप्त करने के लिए निम्न ढंग काम में लाये जाते हैं:—

---

१. Smith, Phillips & Smith : *Ibid*, p. 504

(१) उच्च तापमान पर कोयले को जलाना

इस क्रिया के अन्तर्गत कोयले को अधिक तापक्रम पर भट्टियों में जलाया जाता है। कोयले को जला कर उससे गैस निकाल दी जाती है और अच्छी प्रकार बुझा हुआ कोयला या 'कोक' (Coke) प्राप्त कर लिया जाता है। निकली हुई गैसों से गौण वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। ऐसी भट्टियों को 'Bee-hives' कहते हैं। एक दूसरे प्रकार की भट्टीमें कोयले को इस प्रकार जलाया जाता है कि उससे केवल गैस ही तैयार होती है।

(२) कोयले को धीमे तापक्रम पर जलाना

इस ढंग के द्वारा कोयले को नीचे तापक्रम पर जलाया जाता है। इसमें पहिली क्रिया की अपेक्षा अधिक परिमाण में कोलतार और तेल प्राप्त होता है। इससे सरलता से जलने वाला धूम्ररहित घरेलू उपयोग में आने वाला 'कोक' बनता है।

(३) कोयले में हाईड्रोजन मिलाकर उसे तरल बनाना

इस क्रिया द्वारा कोयला द्रवित पदार्थ में परिणत हो जाता है। इस क्रिया में कोई ठोस वस्तु नहीं बचती और न कोक या गैस बनाते समय जो उप-वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, वे ही निकलती हैं।

उपर्युक्त क्रियाओं में से सबसे महत्वपूर्ण क्रिया प्रथम ही है। ऊँचे तापक्रम पर कोयले को जलाकर मुख्यतः ५ वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं—

(१) कोलतार एवं उससे प्राप्त अन्य वस्तुएँ।
(२) अमोनिया और उससे संबंधित अन्य वस्तुएँ।
(३) गैसें।
(४) हल्के तेल और उनसे सम्बन्धित वस्तुएँ।
(५) विविध वस्तुएँ।

अनुमान लगाया गया है कि लगभग २००० पौंड बिट्यूमीनस कोक-योग्य कोयले से निम्न प्रकार से गौण वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं[1] —

(i) १३०० से १५०० पौंड तक स्पात बनाने के लिए कोक।

(ii) १८ से २४ पौण्ड तक विस्फोटक, रासायनिक खाद आदि बनाने के लिए अमोनियम सल्फेट।

(iii) २½ से ३ गैलन-कोलतार—रंग, डामर, सुगन्धि आदि बनाने के लिए।

(iv) ९,५०० से ११,५०० घनफुट गैस—घरेलू उपयोगके लिए।

१. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*; p. 304,

नीचे के चार्ट में कोयले से प्राप्त होने वाली विभिन्न वस्तुओं को बतलाया गया है :[१]

- कोयला
  - गैस (Gas)
    - हल्का तेल, मोटर का तेल, वेनजीन
    - गन्धक
    - साइनाइड रंग
    - इंधन गैस, चमकीली गैस
  - गैस के रंग (Gas Colours)
    - रासायनिक खाद
    - अमोनिया, अमोनियम सल्फेट, ,, क्लोराइड, ,, फॉस्फेट, शोरा, कार्बोनेट, नाइट्रेट आक्साइड, शोरे का तेजाब, पाइराडाईन
  - कोक (Coke)
    - ग्रैफाइट, धोने का सोडा, चिकने पदार्थ, इल्कट्रोंस
    - ईंटें, घरेलू कोक, कार्बन-डाइ-आक्साइड

१. Freeman and Ranp : Essentials of Geography.

- टार (Tar)
  - हल्के तेल व अन्य तेल
    - वैनजोल
    - दवाइयें
    - रंग
    - नैपथा
    - वार्निस
    - विरोजा
    - प्लास्टिक
    - टूलन
    - इत्र
    - सैक्रीन
    - कारबोलिक एसिड
    - वैनजीन
    - फिनायल
    - वालों का खिजाव
    - नील
    - विस्फोटक
    - फोटो का मसाला
    - कार्बन काला
    - एस्पीरिन
    - क्रिसोल
    - कीटाणु नाशक दवाइयाँ
    - नैपथा
  - टार
    - सड़क पर बिछाने का डामर
  - पिच
    - वाटर प्रूफ
    - इंटें
    - छतें
    - बैटरीज
    - कार्बन
    - कैलशियम कार्बाइड
    - इल्कट्रोन्स

कोयले का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

विश्व के कुल उत्पादन का १० प्रतिशत कोयला अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में व्यापारिक दृष्टिकोण से आता है। मुख्य-मुख्य निर्यातक देश ग्रेटब्रिटेन, जर्मनी और संयुक्त राष्ट्र हैं। ये तीनों देश विश्व के ३/४ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की पूर्ति करते हैं। फ्रांस, कनाडा एवं इटली ये तीनों देश कोयले के सर्वाधिक आयातक हैं। तीनों देश विश्व के कोयले के बाजार से १/२ कोयला आयात करते हैं। फ्रांस और और इटली कोयले के लिये इङ्गलैण्ड और जर्मनी पर तथा कनाड़ा संयुक्त राष्ट्र पर निर्भर रहता है।

इनके अतिरिक्त भी विश्व के प्रायः सभी महाद्वीपों के देशों में कोयले का विस्तृत बाजार के रूप में आयात-निर्यात होता रहता है।

कोयले का संरक्षण (Conservation of Coal)

कोयले का महत्व आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में लोहे के बाद में सर्वाधिक है, अतः इसका उपयोग बहुत ही सावधानी से करना चाहिये। आज विश्व में कोयले का वार्षिक उपभोग २ से ३ बिलिअन टन तक का है। यदि इसी अनुपात में कोयले की माँग बढ़ती गई तो शायद ही कोयले के ज्ञात भण्डार १५० वर्षों से अधिक न चल सकें।

कई एक ऐसे ढंग एवं प्रयोग हैं जिनके द्वारा कोयले को नष्ट होने से बचाया जा सकता है :[1]—

(१) कोयले को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में रेलों को कोयले का उपभोग करना पड़ता है। अमेरिका एवं इङ्गलैण्ड में परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यदि इन्हीं खानों के पास में बिजली पैदा करके (जो कि कोयले के जलाने से प्राप्त होगी) लौह उद्योग केन्द्रों को भेज दी जाय तो रेलों के उपभोग में कमी होगी। इसके अतिरिक्त एक स्थान से दूसरे स्थान तक कोयला ले जाने में जो चूरा होता है वह भी नहीं होगा; शहरों में भी स्वच्छ हवा और वातावरण स्वच्छ बना रहेगा। विदेशों से जो कोयला मँगाया जाय उनको बन्दरगाहों में जला कर उससे विद्युति-शक्ति प्राप्त करली जाय जो वहाँ से देश के आन्तरिक भागों में भेजी जा सके।

(२) जब किसी वाष्प-यन्त्र में कोयला जलाया जाता है तो उसकी शक्ति का १५% ही उपयुक्त होता है और बाकी ८५% शक्ति वायुमण्डल में नष्ट हो जाती है। जब इस १५% से बिजली पैदा की जाती है तो ६% कोयले का ही ठीक-ठीक बिजली में उपयोग होता है। अतः उपयोग बढ़ाने के लिये कोयले में से गैसोलीन, गैस, आदि का विदोहन बिना कोयले की ज्वलनशीलता को प्रभावित किये किया

---

१. E. Huntington and E. B. Shaw: Principles of Human Geography, 1949.

जाना चाहिये। साथ ही यह भी देखा गया है कि १ टन पाउडर कोयला ज्यादा शक्ति प्रदान करता है बनिस्बत १ टन ठोस कोयले के।

(३) कोयले का एक बहुत बड़ा भाग खानों से निकालते समय खानों की दीवालों, खम्भों आदि के साथ रह जाता है जिसके परिणामस्वरूप कभी-कभी दीवालें अत्यधिक असंतुलित होकर गिर जाती हैं और कई व्यक्ति मर जाते हैं और हजारों टन कोयला भी नष्ट होता है। साधारण दशा में विशेष सावधानी पर ऐसा खुले एवं निर्जन क्षेत्र में किया जा सकता है, परन्तु जिन स्थानों (खानों) की भूमि पर घर बने होते हैं ऐसे स्थानों पर सारे के सारे घरों के बैठने की आशंका बनी रहती है। इसको बचाने के लिये खानों में स्थान-स्थान पर सीमेंट एवं कंकरीट के खम्भे बना दिये जायँ और कोयले के खम्भों को एवं दूसरे स्थानों से कोयला निकाल लेना चाहिये।

अध्याय २६

शक्ति के स्रोत (क्रमशः)

(२) खनिज तेल या मिट्टी का तेल (Mineral oil or Petroleum)

पैट्रोलियम का शाब्दिक अर्थ है चट्टानी तेल (Rock oil)। तेल हाइड्रोजन और कार्बन के प्रज्वलनशील उस मिश्रण को कहते हैं जो पृथ्वी के गर्भ से स्वयं निकलता है या निकाला जाता है।[1]

तेल का महत्व—तेल के प्रयोग में आने से पहले मनुष्य को बहुत युगों तक अन्य प्रकार के तेलों पर निर्भर रहना पड़ा जैसे वनस्पति तेल और जीव-धारियों से प्राप्त तेल। रात्रि के समय घरों को प्रकाशित करने के लिये यूरोप में जैतून का तेल काम में लाया जाता था। अमेरिका और उत्तरी यूरोप में ह्वेल मछलियों के तेल से घरों में उजाला किया जाता था। वैसे तो पेट्रोलियम का प्रयोग हजारों वर्षों से होता आया है, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में उसका वास्तविक प्रयोग प्रारम्भ हुआ। कुछ लोगों का मत है कि ईसाई युग (Christian Era) के पूर्व चीन में तेल के कुयें हाथों से खोदे जाते थे और प्राकृतिक गैस को खारी पानी के सुखाने के काम में लाते थे। मिस्र देश में तेल का प्रयोग बहुत पुराना है, लेकिन वह आधुनिक ढंग से प्रयुक्त नहीं होता था, बल्कि यहाँ पर मृतक (Mummies) के लपेटने के कपड़े (कफन) गाढ़े तेल में भिगोये जाते थे। ईसा के ४००० वर्ष पूर्व बैबीलोनिया और निनेवा में भवन-निर्माण में चूने की तरह एस्फाल्ट का प्रयोग होता था।[2] आज से एक हजार वर्ष पूर्व ब्रह्मा का यनंगयांग तेल क्षेत्र विकसित अवस्था में था। संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान में एक प्रकार का तेल जलाया जाता था जिसे वहाँ के पुराने निवासी 'प्रज्वलित जल' (Burning water) के नाम से पुकारते थे। रूमानिया देश में तेल का प्रयोग अठाहरवीं शताब्दी में होता था। उत्तरी अमरीका के आदि निवासी तेल का प्रयोग सभी प्रकार की बीमारियों को ठीक करने के लिए करते थे।

तेल का औद्योगिक विकास उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से होता है। संयुक्त राज्य के तेल व्यवसाय से पूर्व तेल ब्रह्मा से लन्दन के बाजारों में प्राकृ

---

१. "Petroleum is an inflammable mixture of oily hydro-carbons that exudes from the earth or pumped up."

२. Case & Bergsmark : College Geography, p. 675.

बिकता था। इस कारण यह कहना ठीक न होगा कि सबसे पहले तेल का व्यवसाय अमेरिका में प्रारम्भ हुआ। पर इतना अवश्य है कि विस्तृत पैमाने पर तेल व्यवसाय का विकास अमेरिका में ही हुआ सन् १८५९ से पूर्व तेल निकालने के लिये कुओं को हाथ से खोदा जाता था और कभी-कभी पानी की खोज में तेल मिल जाता था। तेल के इतिहास में सन् १८५९ ई० का महत्व अभूतपूर्व है, क्योंकि इसी वर्ष पैंसिल वानिया के तितुसविली (Titus ville) स्थान पर तेल के लिये प्रथम कुआँ यन्त्र से खोदा गया। यह कुआ ६९ फुट गहरा था और इससे प्रतिदिन २५ बैरल तेल निकाला जाता था[1] तेल का उत्पादन एवं उपयोग बड़ी ही तेजी के साथ इसके बाद बढ़ने लगा। इसका मुख्य कारण यह था कि यह तेल (Petroleum) ह्वेल मछली के तेल की तुलना में कम मंहगा था। फल स्वरूप सभी घरों में इस तेल का प्रयोग प्रारम्भ हुआ और पचास वर्षों तक संसार में प्रकाश का प्रमुख साधन बना रहा। इसके बाद विद्युत के द्वारा शहरों की बत्तियाँ टिमटिमाने लगीं। फिर भी आज भी मिट्टी के तेल का प्रयोग जलाने में एवं प्रकाश के लिये असंख्य घरों में उपयोग में लाया जाता है और भविष्य में भी लाया जायगा।

तेल की उत्पत्ति (Formation of Petroleum)

तेल—प्रायः मैदानों में साधारणतया नवीन पर्वतों के किनारे पाया जाता है। क्योंकि यहां पृथ्वी के भीतरी भागों में उथल पुथल कम हुई है, अतः ऊपर की छिद्रहीन चट्टानें टूटती नहीं और गैस तथा तेल सुरक्षित बने रहते हैं। पुरानी चट्टानों के बने पठारी प्रदेशों में जैसे अफ्रीका, दक्खन का पठार, ब्राजील, स्केन्डेनेविया और कनाडा मिट्टी का तेल नहीं पाया जाता। यह तेल पर्त्तदार चट्टानों में ही मिलता है। आग्नेय या परिवर्त्तित चट्टानों में नहीं। बालू और चूने के पत्थरों में तेल उसी तरह से विद्यमान रहता है जैसे स्पंज में पानी।

वैसे तो किसी भी समय की जलज शिलाओं (Acqueous Rocks) में यह पाया जा सकता है। किन्तु अधिकतर तृतीय कल्प की जलज शिलाओं से ही मिलता है, क्योंकि यह शिलाएँ औरों से नई हैं, जिससे पृथ्वी की आन्तरिक गर्मी तथा दबाव का प्रभाव इन पर अधिक नहीं पड़ा है, अन्यथा मिट्टी का तेल गैस आदि के रूप में कभी का निकल गया होता। यह विश्वास किया जाता है, कि तेल की उत्पत्ति वनस्पति और समुद्र के जीव जन्तुओं (Microscopic organism) के जो पुराने समय में डेल्टाओं, झीलों, और समुद्रों में रहते थे—दब जाने से हुई है। जब जलज चट्टानें बन रही थीं, तो उनमें बहुत से सामुद्रिक जीवजन्तु भी दब गये। दब जाने पर समय पाकर गर्मी और दबाव के प्रभाव से इन्हीं जीवजन्तुओं की चर्बी खनिज पदार्थों में मिलकर मिट्टी का तेल बन गई। मिट्टी का तेल प्रायः बालू, बालू के पत्थर, चिकनी-मिट्टी के पत्थर और कहीं-कहीं छिद्रदार चूने के पत्थर में पाया जाता है। इन पत्थरों में भी यह छिद्रहीन पत्थरों की तहों के बीच में छिद्रदार पत्थरों (porous) में पाया

१. Jones & Drakenwald : *Ibid*, p. 402.

जाता है। क्षितिज अथवा एक ओर को थोड़ी झुकी हुई जलज-शिलाओं की तहों का निर्माण कहीं-कहीं पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों, खिचाव, तथा संकोचन के प्रभाव से जल की लहरों की बनावट के समान हो जाता है। इन झुकी हुई चट्टानों में ऊँचा उठा हुआ भाग उन्नतोदर (anticline) और नीचा झुका हुआ नतोदर (Syncline) कहलाता है। मिट्टी का तेल इन्हीं ऊपर उठे हुए भागों में बन्द रहता है। ऐसे स्थानों को तेल स्रोत (oil pool) कहते हैं।

तेल प्राय: नमकीन जल और गैसों के साथ मिला रहता है। सबसे नीचे जल रहता है, उसके ऊपर नमकीन तेल और सबसे ऊपर गैस होती है। प्राकृतिक गैस के दबाव पर धरातल के नीचे वाले पानी के दबाव के कारण तेल की कुछ सीमित मात्रा कुछ समय के लिए झरनों या नालों के रूप में पृथ्वी के धरातल पर बहने लगती (overflow) है। किन्तु बाद में इसे पम्प करके निकाला जाता है। कभी-कभी मिट्टी का तेल फव्वारों के रूप में अपने आप भी भूमि के गर्भ से निकलकर बहने लगता है। किन्तु अधिकांश में इसे पम्पों द्वारा ही निकालना पड़ता है।

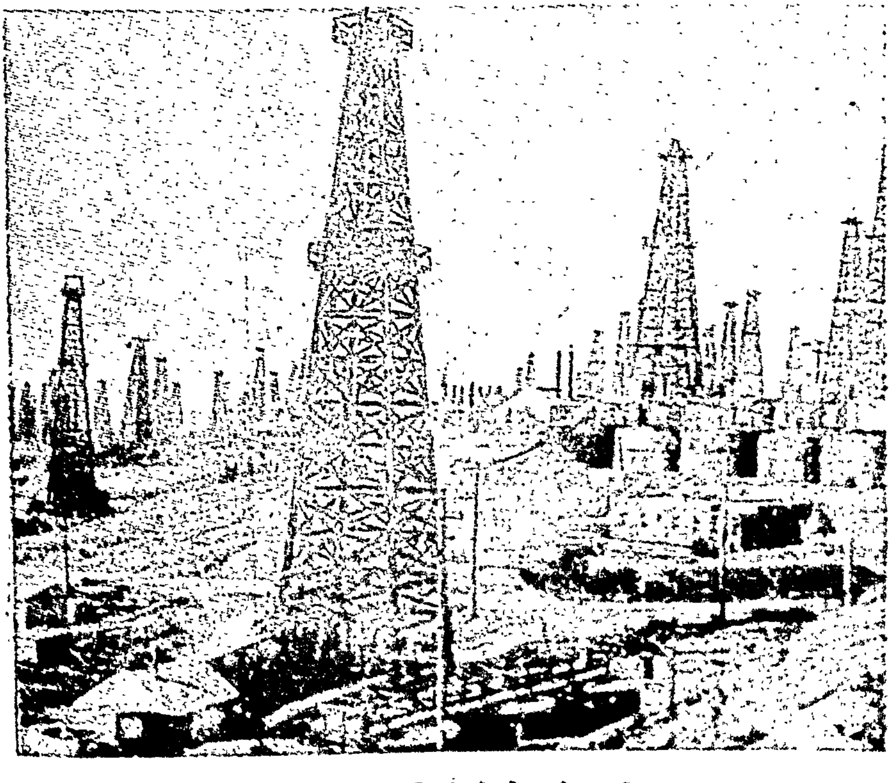

चित्र १८२—मिट्टी के तेल के कुएं

साधारणतया मिट्टी का तेल ३,००० फीट से लगाकर ७,००० फीट की गहराई तक पाया जाता है। जिन स्थानों में नीचे कोयला रहता है, उन कुओं का आकार छोटा और गहराई अधिक होती है। आकार और उत्पादन दोनों

की दृष्टि से तेल क्षेत्र एक दूसरे से भिन्न होते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में पूर्वी टेक्सास का तेल क्षत्र आकार में संसार में सबसे बड़ा है। यह लगभग ४० मील लम्बा और ७ मील चौड़ा है। इसमें अब तक २५८०० तेल के कुएं खोदे जा चुके हैं। इस क्षेत्र में लगभग ६५ करोड़ टन तेल कूता जाता है। संसार में केलीफोर्निया प्रान्त में सबसे गहरा कुंआ पाया जाता है। इसकी गहराई १५,००० फुट है। साधारणतया एक कुएँ से ४ से ७ वर्ष तक तेल निकाला जाता है।

जो मिट्टी का तेल पृथ्वी से निकाला जाता है उसमें बहुत से अशुद्ध पदार्थ मिले रहते हैं। अतः इसे पेट्रोलियम या अशुद्ध तेल कहते हैं। हल्के तेलों (Light oils) में कार्बन को अपेक्षा हाइड्रोजन की मात्रा अधिक रहती है। किन्तु भारी तेलों (Heavy oils) में हाइड्रोजन की अपेक्षा कार्बन की मात्रा अधिक होती है।

इसी तेल को साफ करने पर वर्तमान जगत की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कई प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। खनिज तेल तीन प्रकार की विधियों द्वारा शुद्ध किया जाता है।

(i) साधारण स्रवण की विधि (Topping Plant Process) द्वारा हल्की वस्तुएं जैसे गैसोलीन और केरोसीन अलग कर ली जाती हैं। स्रवण की इस क्रिया में अशुद्ध तेल और भारी चीजें नीचे रह जाती हैं।

(ii) पूर्ण प्रक्रिया वाली विधि (Straight Run Process) द्वारा भी तेल का स्रवण किया जाता है। और इसके द्वारा अनेक पदार्थ गैसोलीन, केरोसीन, ईंधन, चिकने करने वाले तेल, पराफीन, वैसलीन, मोम, नेप्था, एस्फाल्ट आदि अलग किये जाते हैं। इस क्रिया से २५% गैसोलीन प्राप्त किया जाता है।

(iii) चटकाने वाली विधि (Cracking Process) के अनुसार कच्चे तेल को लेकर बहुत तेज आँच में बिजली की गर्मी से गर्म किया जाता है और अधिक दबावमय रखा जाता है जिससे तेल के कण अलग-अलग होकर पुनः संगठित हो जाते हैं और कई हल्के पदार्थ जैसे गैसोलीन (६५%) आदि बन जाते हैं।

क्रूड ऑयल से ४३% गैसोलीन, ३८% शोधा हुआ और बचा हुआ ईंधन; ५% कैरोसीन, २% चिकना करने वाला तेल, तथा १२% अन्य वस्तुएँ मिलती हैं[१]।

मिट्टी के तेल में कार्बन का अंश सबसे अधिक होता है। यह ८०%, हाईड्रोजन १३% और आक्सीजन ७% होता है। कुओं से मिट्टी का तेल निकालकर शुद्ध होने के लिए उन केन्द्रों को भेजा जाता है जहाँ तेल शोधने के कारखाने (Refineries) होते हैं। इस कार्य के लिए टैंकरस (Tankers) नामक विशेष

१. C. F. Jones & G. G. Drakenwald: Economic Geography, 1954, p. 406.

प्रकार के जहाज तेल ले जाने के लिए काम में लाये जाते हैं। ये टैंकर्स साधारणतः १५०००० बैरल तेल ले जाने की क्षमता रखते हैं। संयुक्त राष्ट्र में १००-१०० रेलवे टैंक कार और ५०० टैंकर्स जहाज और हजारों टैंक लारियाँ हैं। मिट्टी के तेल के कुछ क्षेत्र समुद्रतट से दूर स्थित होते हैं। अतएव इन स्थानों से जहाजों तक कुओं से तेल भेजने के लिए सैकड़ों मील तक ८" से १२" व्यास वाले नल बिछा दिये जाते हैं। ईराक के किरकुक क्षेत्र का तेल नलों द्वारा भूमध्य-सागर पर स्थित हैफा और ट्रिपोली तक भेजा जाता है। इसी प्रकार ईरान का तेल अबादान की फ़ैक्ट्री को नलों द्वारा भेजा जाता है। संयुक्त राष्ट्र में तेल के नलों की लम्बाई ४,०००,००० मील है। ईराक, फारस, वेनेजुएला, पीरू और पूर्वी द्वीप समूह से कच्चा तेल जहाजों में भरकर औद्योगिक देशों को साफ करने के लिए भेज दिया जाता है। विश्व के प्रमुख तेल शोधने के कारखाने मुख्यतः संयुक्त राष्ट्र के उत्तरी पूर्वी समुद्र तटीय भागों और उ. प. यूरोप में पाये जाते हैं। ये विक्रय स्थलों के समीप हैं। सन् १९५३ में विश्व में ६६२ तेल शोधने के कारखाने थे जिनकी क्षमता प्रतिदिन २३५० लाख बैरल तेल साफ करने की थी। इनमें से ३४६ संयुक्त राष्ट्र में थे जिनकी दैनिक क्षमता ७० लाख बैरल की थी।[१]

नीचे की तालिका में तेल शोधन फैक्ट्रियों का उत्पादन प्रतिशत में दर्शाया गया है :—

	१९५०	१९५२
उत्तरी अमेरिका	५६·१	५५·६
लैटिन अमेरिका	१६·१	१४·२
पश्चिमी यूरोप	७·७	१२·८
रूस—पूर्वी यूरोप	८·७	९·४
मध्य पूर्व	८·७	४·५
एशिया के अन्य देश	२·४	२·६
अफ्रीका	०·२	०·१
ओसीनिया	०·१	०·२

उत्पादक क्षेत्र—(Areas of Production) :—

विश्व में तेल के तीन प्रमुख क्षेत्र पाये जाते हैं :—

(i) उत्तरी अमेरिका में ऐपेलेशियन पर्वत से लगाकर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मध्यवर्ती राज्यों से होता हुआ, मेक्सिको तथा वैनेजुएला तक प्रमुख क्षेत्र फैला हुआ है। इसकी एक शाखा राकी पर्वतों में होती हुई, केलीफोर्निया तक चली गई है।

(ii) दूसरा क्षेत्र मध्य पूर्व का क्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत तेल की एक पट्टी फारस से ईराक, सीरिया, पेलेस्टाइन होती हुई रूस और रूमानिया में कैस्पीयन तथा काले सागर के प्रदेशों तक चली जाती है।

---

१. C. F. Jones & G. G. Drakenwald : Economic Geography, 1954, p. 407.

(iii) तीसरा क्षेत्र एशिया के दक्षिणी पूर्वी भागों में बर्मा से आरम्भ होकर इडोनेशिया, फिलीपाईन्स और जापान द्वीप तक फैला है।

प्रमुख देशों में तुलनात्मक तेल उत्पादन

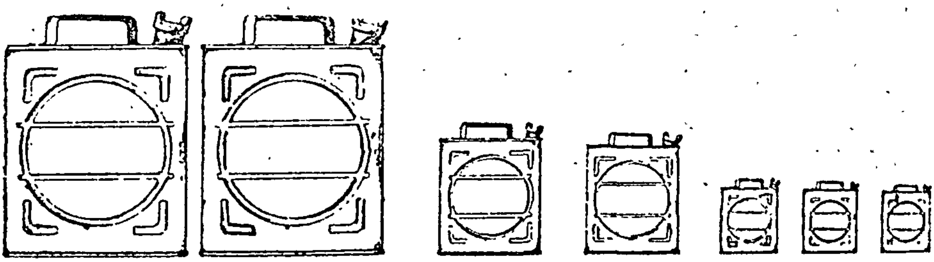

सं० रा० अमेरिका रूस वैनेजुएला रूमानिया फारस पू.द्वी.

चित्र १८३

मिट्टी के तेल का उत्पादन १९१३ के बाद से निरन्तर बढ़ता रहा है। सन् १९१३ में ३८५० लाख बैरल तेल निकाला गया। १९३२ में यह मात्रा १३१०० लाख बैरल; १९३७ में २०८५० लाख बैरल, १९४६ में २७४५० लाख बैरल और १९५१ में ४२७७० लाख बैरल था[१]। १९५३ में ४७४७० लाख बैरल हो गई। सन् १९३७ से यह उत्पादन ११५% अधिक था। इन्हीं वर्षों में कनाडा में मिट्टी के तेल के उत्पादन में १५३२%, मिश्र में १२६४%, ब्रिटिश बोर्नियो में ५२४%, वैनेजुएला में २२०%, कोलंबिया और ईराक में ९०%, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ७३%, मैक्सिको में ६३% और बहरीन में ४२% की वृद्धि हुई। ईरान में तेल के झगड़ों के कारण उत्पादन में कम वृद्धि हुई।

नीचे की तालिका में विश्व में सन् १९५३ में मिट्टी के तेल का उत्पादन बताया गया है[२] :—

देश	उत्पादन (१० लाख बैरल में)	देश	उत्पादक (१० लाख बैरल में)
संयुक्त राष्ट्र	२३६०	ईराक	२११
वैनेजुएला	६४४	कनाडा	८१
रूस	३६५	इंडोनेशिया	७७
कुवैत	३१५	मैक्सिको	७३
सौदी अरब	३०९	कोलंबिया	३९
		कतार	३१
		ईरान	९
		अन्य देश	२३३
		विश्व योग	४७४७

१. Chisholm, *Ibid.*, p. 266.
२. Oil & Gas Journal, December 21, 1953. (American Petroleum Institute).

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि विश्व में सबसे अधिक मिट्टी का तेल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (५४%), कुवैत (३%), इराक, (१%), रूस (७%), वैनेजुएला (१४%) और इंडोनेशिया (१%) तथा कनाडा और सौदी अरब (४%) और ईरान (६%) में होता है।

१९५५ में विश्व में तेल का उत्पादन ७८५० लाख मैट्रिक टन हुआ। इसमें से सबसे अधिक उत्पादन संयुक्त राष्ट्र और वैनेजुएला में हुआ। कुवैत में ५५० लाख; अरब में ४७० लाख, इराक में ३४० लाख और फारस में १६० लाख, बोर्नियो में ५५ लाख, ट्रिनीडाड में ३५ लाख और कनाडा में १७० लाख मैट्रिक टन उत्पादन था।

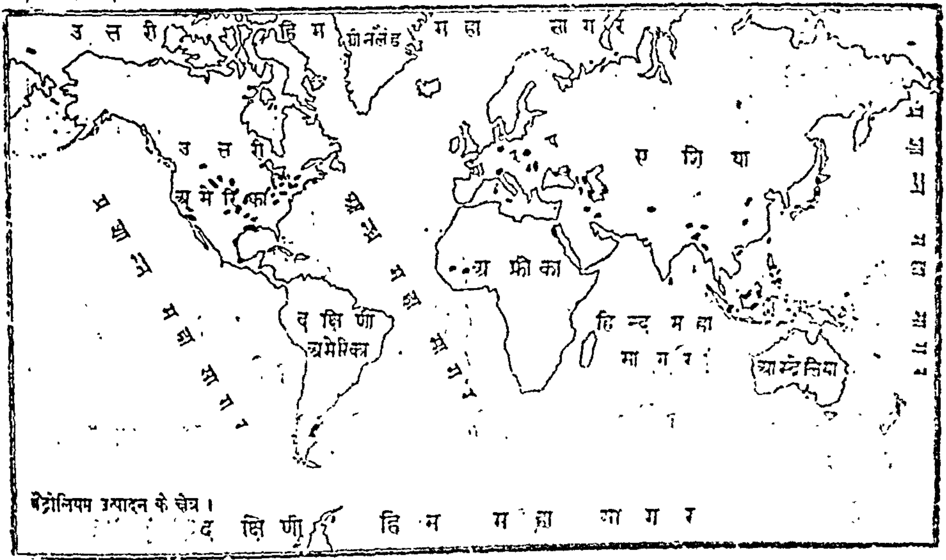

चित्र १८४

मिट्टी के तेल के वितरण के सम्बन्ध में यह बात महत्वपूर्ण है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अतिरिक्त संसार के उन बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यवसायी देशों में जिन्हें इसकी आवश्यकता अधिक पड़ती है, यह नहीं पाया जाता। संयुक्त राष्ट्र में भी अधिकांश उत्पादन क्षेत्र औद्योगिक प्रदेशों से दूर हैं। मिट्टी के तेल का अभाव राजनैतिक झगड़ों की जड़ है। इस अभाव को दूर करने के लिए ब्रिटिश पूंजीपतियों ने पहले ही संसार के अनेक भागों के मिट्टी के तेल क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था, यद्यपि इस समय ये क्षेत्र ब्रिटेन के हाथ से निकल चुके हैं। रूस, मैक्सिको तथा और ईरान से ब्रिटिश तेल कम्पनियाँ निकाल दी गई हैं। आज भी दुनिया के शक्तिशाली राष्ट्र मिट्टी के तेल के क्षेत्र अपने अधिकार में करने का प्रयत्न कर रहे हैं। सौभाग्यवश मिट्टी के तेल के वृहद भण्डार मध्यपूर्वी देशों में हैं जो निर्बल हैं। अतः कहा जाता है कि ये देश विश्व में अशांति उत्पन्न करने सहायक हो सकते हैं।[1]

१. Smith & Phillips: Industrial and Commercial Geog.; Third Edition, p. 106—"Rich Oil land under a weak and corrupt Govt., in a strategic location is a menace to world peace."

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका विश्व में सर्वाधिक तेल उत्पन्न करता है। यहाँ तेल क्षेत्र लगभग ९००० वर्ग मील में फैला है जिसमें ४ लाख से अधिक तेल के कुएँ हैं। सन् १८५७ से १८८२ तक संयुक्त राष्ट्र ने विश्व के उत्पादन का ८० से ९९% तक तेल उत्पन्न किया किन्तु १८८३ से १९०१ के बीच यह प्रतिशत केवल ४१% रह गया। सन् १९०६ से १९४२ तक पुनः यह प्रतिवर्ष ६०% तक उत्पादन करता रहा। अब यह प्रतिशत लगभग ५४-५५ तक रह गया है क्योंकि मध्यपूर्व के तेल क्षेत्र अधिक उत्पादन करने लग गये हैं।[1] यहाँ का औसत उत्पादन १९०३-१३ में २१७० लाख बैरेल से बढ़कर १९३५-३९ में ११७१० लाख बैरल और १९४६-५० १८८५० लाख बैरल हो गया और १९५३ में २३६०० लाख बैरल। सन् १८५९ से अब तक लगभग ४८ बिलिअन बैरल तेल इन कुओं से निकाला जा चुका है। इसका आधा १९३८ के पश्चात् ही निकाला गया है।[2]

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में तेल के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—

(१) अपलेशियन क्षेत्र
(२) लीमा—इंडियाना क्षेत्र
(३) मध्यवर्ती क्षेत्र
(४) खाड़ी के क्षेत्र
(५) राकी पर्वत के क्षेत्र
(६) कैलीफोर्निया क्षेत्र

नीचे की तालिका में संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न तेल क्षेत्रों का उत्पादन बताया गया है :—

क्षेत्र	१९०१–१० औसत	१९५१–५३ औसत
	(१० लाख बैरल में)	
एपैलेशियन	२८·९	३३·६
लीमा-इंडियाना	१७·३	०·१
मिशीगन	—	१३·२
इलिनॉस	१२·७	७१·२
मध्यवर्ती क्षेत्र	२५·१	१२७०·७
खाड़ी क्षेत्र	१७·४	४३३·८
राकी पर्वत	०·४	११६·४
कैलीफोर्निया	३५·६	३५९·६

इससे स्पष्ट होगा कि मध्यवर्ती क्षेत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसी क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र के सबसे बड़े भंडार भी पाये जाते हैं :—[3]

१. Jones & Drakenwald : *Ibid.*, p. 404.
२. Smith, Phillips and Smith : *Ibid.*, p. 311.
३. *Ibid* p. 313.

टैक्साज	१५·०	बिलिअन बैरल	न्यू मैक्सिको	०·८	बिलिअन बैरल
कैलीफोर्निया	३·९	"	इलनास	०·६	"
लूसियाना	२·८	"	मिसीसिपी	०·३	"
ओक्लाहामा	१·७	"	अन्य	२·६	"
व्योमिंग	१·३	"	संयुक्त राष्ट्र		
कन्सास	०·९	"	का योग	२९·९	

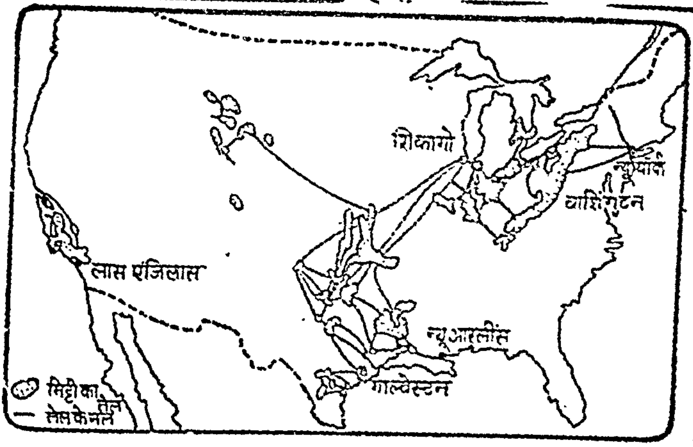

चित्र १८५—संयुक्त राष्ट्र में तेल क्षेत्र

(अ) एपेलेशियन क्षेत्र (Appalachian fields)—

यहाँ पर तेल एक लम्बी सकरी पट्टी में पाया जाता है जो न्यूयार्क राज्य के दक्षिण पश्चिमी किनारे से पैन्सिलवेनिया और पूर्वी ओहियो होती हुई पश्चिमी वर्जीनिया तथा पूर्वी कंटकी तक फैली हुई है। तेल उत्पादन इसी पट्टी के निश्चित क्षेत्रों से आता है। यहाँ तेल का निकालना १८५९ से आरंभ किया गया। आजकल उत्पादन की दृष्टि से बड़े कुएं दक्षिण पश्चिम पेन्सिलवेनिया में पाये जाते हैं। इस क्षेत्र के तेल के कुएं सामान्यतः लम्बे तथा सकरे हैं और उन्नतोदर खाली भागों में स्थित हैं जो उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर सामान्य वन वट के समानान्तर चले गये हैं। इस क्षेत्र में जो तेल मिलता है वह संयुक्त राष्ट्र का सर्वोतम तेल है तथा तेल उद्योग में "पेन्सिलवेनिया श्रेणी" के नाम से प्रसिद्ध है। इसका आधार पैराफीन वैक्स है और इसमें पर्याप्त प्रतिशत गैसोलीन निकलती है। यह सरलता से साफ भी हो जाता है तथा इसमें गन्धक या दूसरे प्रकार की अपवित्रता नहीं के बराबर है। इस क्षेत्र का जिसने संयुक्त राष्ट्र के तेल इतिहास में इतना अभूतपूर्व भाग लिया है अब भावी उत्पादन में बहुत थोड़ा भाग रहता है। यदि यहाँ का तेल इतना अधिक अच्छा न होता तो इनमें से बहुत से कुओं से तेल निकालने में कोई फायदा न होता। यहाँ के कुओं में तेल और प्राकृतिक गैस साथ-साथ पाये जाते हैं किन्तु कुछ कुओं में अकेली प्राकृतिक गैस ही मिलती है, तेल नहीं। पेन्सिलवेनिया क्षेत्र से अब संयुक्त राष्ट्र का केवल [illegible] भाग तेल निकलता है।

१. Smith Phillips & Smith : *Ibid.*, p. 314.

(ब) लीमा-इण्डियाना क्षेत्र (Lima-Indiana fields)—

यहाँ, ओहियो में १८८४ और इण्डियाना में १६०४ से तेल निकालना आरम्भ हुआ। पूर्व में ओहियो, पश्चिम में मिसीसीपी तथा उत्तर में ग्रेट लेक्स को मिला कर जो एक त्रिभुज बनता है उसमें दो क्षेत्र हैं जो महत्वपूर्ण उत्पादक रहे हैं। लेकिन अब वे अपने वैभव के दिन खो चुके हैं। ये हैं—(१) लीमा—इण्डियाना क्षेत्र, (२) ईलिनास क्षेत्र। इसमें से पहला क्षेत्र इरी झील के पश्चिमी कोने से दक्षिण पश्चिम की ओर फैला हुआ है तथा इसका कुछ भाग ओहियो तथा कुछ भाग इण्डियाना में है। मुख्य उत्पादन क्षेत्र ओहियो में लीमा नगर में तथा उसके चारों ओर हैं। यहाँ पर चूने की चट्टान ही मुख्य आवरण चट्टान (Cap rock) है। यद्यपि तेल अच्छी किस्म का है लेकिन बहुत मिश्रित है। गंधक मिश्रण का मुख्य पदार्थ है। तेल से गंधक को पृथक करने की प्रणाली में उत्पादन का मूल्य बढ़ जाता है। इसलिए इस तेल का उतना मूल्य नहीं मिलता जितना पेन्सिलवेनिया के तेल का मिलता है। एपलेचियन क्षेत्र के तेल की तरह इस क्षेत्र में भी पैराफीन का आधार है और गैसोलीन के उच्च प्रतिशत में प्राप्त होने के साथ-साथ यह बत्ती में जलाने के लिए सब से उत्तम तेल का उत्पादन करता है। यहाँ का औसत वार्षिक उत्पादन १३०,००० बैरल से भी कम है।

(स) इलिनास क्षेत्र—

इस क्षेत्र का विकास १६०५ से ही हुआ है। लीमा-इण्डियाना क्षेत्र के दक्षिण पश्चिम में मिशीगन झील के दक्षिणी कोने तथा ओहियो नदी के बीच इलिनास क्षेत्र है। यह एक लम्बा संकरा उत्पादन प्रदेश है। जो उत्तर से दक्षिण तक इलिनास में कार्क फोर्ड तथा लारेंसी काऊंटी में फैला हुआ है। सम्पूर्ण पट्टी प्रेरी देश में वावाश नदी के पश्चिम की ओर फैली हुई है। इसके मुख्य उत्पादक सलेम, लूडन और सेंट्रलिया जिले हैं। इसका उत्पादन १६३१-३५ में ५० लाख बैरल से बढ़कर १६४० में १४८० लाख बैरल हो गया, किन्तु यह अब घट गया है। इस मुख्य क्षेत्र के अलावा कुछ बिखरे हुए क्षेत्र भी हैं जो कि राज्य के दूसरे भागों में पाए जाते हैं और मुख्य क्षेत्र के पश्चिम की ओर हैं। यहाँ पर तेल कार्बोनीफेरस बालू के पत्थरों से निकलता है और शेल आवरण चट्टान है।

इन दोनों क्षेत्रों में प्रत्येक क्षेत्र की सीमा में तेल लगभग एक ही प्रकार का है लेकिन इलिनास क्षेत्र का तेल एक सा नहीं है। यहाँ हलके तेल से भारी तेल तक निकाला जाता है।

ये तीनों क्षेत्र उत्तरी समूह की श्रेणी में आते हैं और यहाँ से अधिकांश तेल या तो अटलांटिक तट की ओर भेज दिया जाता है या मिशिगन झील पर शिकागो के पास बहुत तेल साफ करने के कारखानों में उत्तर की ओर भेज दिया जाता है या इरी झील की ओर चला जाता है। इन क्षेत्रों पर संयुक्त राष्ट्र अब भविष्य में निर्भर नहीं रह सकता। इन्होंने अमरीकी तेल उद्योग के विकास में अपना भाग भली प्रकार निभाया है और अब मिसिसिपी के उस ओर के नवीन क्षेत्रों के लिए मार्ग छोड़ दिया है।

(द) मध्य महाद्वीप समूह (Mid Continent Fields)

यह क्षेत्र एक पट्टी के रूप में उत्तर से दक्षिण तक मिसीसिपी के समानान्तर उसके पश्चिम में फैला हुआ है। यह क्षेत्र कंसास, ओकलाहामा, टैक्साज तथा लूसियाना राज्यों की सीमाओं के अन्तर्गत है। यहाँ अधिकांश तेल दक्षिण की ओर मेक्सिको की खाड़ी को भेज दिया जाता है। यहाँ कंसास में तेल उत्पादन सन् १८८९ से आरम्भ किया गया; ओकलाहामा में १९०२ में; लूसियाना में १८९८ में और द० अरकनसास में १९२१ में पहले तेल के कुए खोदे गये।

मध्य महाद्वीपीय क्षेत्र को बहुत से छोटे क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है जैसे ओक्लाहामा, कंसास, दक्षिणी ओकलाहामा, उत्तरी टैक्साज, मध्य टेक्साज, कैडो, डि सोटो और रैड नदी के क्षेत्र जो पश्चिमी लूसियाना में फैले हुए हैं। इनमें अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से दक्षिण टेक्साज तथा दक्षिणी लूसियाना के खाड़ी क्षेत्र भी सम्मिलित किए जा सकते हैं।

मिसीसिपी के पश्चिम में तथा मिसूरी के दक्षिण में एक ऐसा चतुर्भुजी क्षेत्र है जिसकी पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमा पर क्रमशः आर्कन्सास तथा रेड नदी की तरह मिसीसिपी की अनेकों सहायक नदियाँ इस क्षेत्र में बहती हैं। इस चतुर्भुज के उत्तरी भाग के मध्य में ओजार्क पर्वत है। इन पर्वतों के पश्चिम में मिसीसिपी से कोई २०० मील दूर मध्य महाद्वीपीय क्षेत्र का सब से बड़ा क्षेत्र है जो ओकलाहामा तथा कंसास में है। यह एक लम्बी पट्टी है जो कन्सास और ओकलाहामा के पूर्वी भाग में उत्तर से दक्षिण की ओर फैली हुई है और इसका अन्त कन्सास के मध्य हो जाता है तथा पश्चिमी किनारा फैलता हुआ सा प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में बहुत से प्रसिद्ध तेल के कुएं हैं जैसे कुशिंग, ग्लैन, बार्टल्स विल, जैनिग्स, शैमरौक जिन्होंने इस प्रदेश के तेल इतिहास को वैभवशाली बना दिया है। यह क्षेत्र तथा टेक्साज लूसियाना क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र के सब से बड़े तेल उत्पादक प्रदेश हैं और मिलकर विश्व का $\frac{1}{3}$ तेल उत्पादन करते हैं और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का ४४%।

ओकलाहामा में प्रतिवर्ष लगभग २०००० लाख बैरल तेल पैदा होता है और वहाँ पर वार्षिक उत्पादन बराबर बढ़ ही रहा है। अंत में इस क्षेत्र का भी वही भाग्य होगा जो दूसरे क्षेत्रों का हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन निकट भविष्य में इस प्रकार का कोई चिन्ह देखने में नहीं आता और आज तक कोई ऐसा क्षेत्र नहीं हुआ है जो इतना अधिक उत्पादन करे।

जैसा कि उत्तरी समूह के अधिकांश क्षेत्रों में है इस क्षेत्र में भी तेल Carboniferous Sand Stone से ही आता है जिसमें तेल एकत्रित रहता है। तेल के कुए धनुपाकार उठे हुए भागों में बड़ी गुम्बदों (domes) में पाए जाते हैं और छोटे गुम्बदों में गैस होती है। इस प्रदेश में उत्पन्न तेल का लगभग $\frac{1}{3}$ भारी तेल होता है जिसे शुद्ध कर चिकना करने वाली वस्तुएँ बनाई जाती हैं और $\frac{2}{3}$ हल्का तेल होता है जिसमें गैसोलीन का अनुपात अधिक होता है।

मध्य महाद्वीपीय क्षेत्र के सब कुओं में सबसे प्रसिद्ध कुशिंग है। इस प्रसिद्ध कुए में सन् १९१७ तक जबकि इसने अधिकतम उत्पादन किया था १७०० लाख बैरल तेल ५ साल में पहिले कुए के १९१२ में खुदने से किया था जो कि उस समय के संयुक्त राष्ट्र के बाद विश्व के सबसे बड़े तेल उत्पादक मैक्सिको के बराबर था। वह एक छोटे से उन्नतोदर ढाल पर स्थित है। यह उन्नतोदर ढाल १५ मील लम्बा तथा २ से ४ मील तक चौड़ा है और सिमारन नदी पर स्थित एक बिंदु से दक्षिण की ओर ४० मील पश्चिम तक 'तुलसा' नामक स्थान तक जो आर्कन्सास पर है फैला हुआ है। इस प्रकार यह मध्य महाद्वीपीय क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर स्थित है।

इसके पश्चात् दक्षिणी ओक्लाहामा और उत्तरी टेकसाज के क्षेत्रों को हम देखते हैं। इनमें से एक उत्तर तथा दूसरा रैड नदी के दक्षिण में है जो यहाँ तक ओकलाहामा तथा टेकसाज के नीचे की सीमा निर्धारित करती है और प्रत्येक दशा में उत्पादन क्षेत्र पूर्वी पश्चिमी धनुषाकार ऊपर उठे हुए भागों में है जो कि उत्तर में विचित्र उन्नतोदर कहलाता है तथा दक्षिण में रैड रिवर अपलिफ्ट (Red River uplift) कहलाता है। ओकलाहामा के भाग में उत्पादन क्षेत्र पठार की सबसे ऊंची भूमि के दक्षिण में है तथा टेक्साज में अधिकांश उत्पादन वर्कबर्नेट क्षेत्र में होता है जो विचिटा प्रपात से अधिक दूर नहीं है और विचिटा तथा रैड नदी के बीच में स्थित है। एक छोटा सा उत्पादन क्षेत्र मुख्य क्षेत्र के पूर्व में पैट्रोलिया के निकट पाया जाता है।

उत्तरी-पश्चिमी टेकसाज के पैन-हैन्डल जिले (Panhandle district) में बहुत अधिक विकास हो गया है तथा तेल के खपत केन्द्रों के लिए तीन पाइप लाइनें बना दी गई हैं। इस कुए से अधिक उत्पादन तथा ओकलाहामा के सेमीनोल कुए केलीफोर्निया के नये क्षेत्र तथा पूर्वी टेक्साज से अधिक उत्पादन हो गया है और तेल का मूल्य गिर गया है।

टेक्साज का तेल उद्योग उस कुए से आरम्भ हुआ जो १८९५ में कौसिकाना में ट्रिनिटी नदी की एक सहायक नदी के पास शहर में पीने का पानी प्रदान करने के लिए खोला गया था। कुए में तेल निकल आया। दूसरे कुए भी तुरंत ही खोदे गए और टेकसाज का तेल उद्योग प्रारम्भ हो गया जिसने बाद में इतना विशाल रूप धारण कर लिया। कौसिकाना के कुए में वास्तव में दो कुए हैं—एक कौसिकाना का जो पश्चिम में होता है और अच्छा हल्का तेल पैदा करता है तथा दूसरा पौवेल का जो कौसिकाना से ८ मील पूर्व में तथा भारी तेल जो जलाने के काम आता है पैदा करता है। इस क्षेत्र ने अपना अधिकतम उत्पादन १९०६ में १०००,००० वैरेल्स किया। अब कौसिकाना क्षेत्र एक छोटा उत्पादक है। इसके ३० मील दक्षिण में मैक्सिमआ नगर है जिसके चारों ओर पहले अधिक प्राकृतिक गैस पैदा की जाती थी और अब एक विशाल तेल क्षेत्र विकसित हो गया है।

यहाँ दूसरा क्षेत्र जहाँ तीव्रता से विकास हुआ केडो-डि-सोटो क्षेत्र है जो रैड नदी पर उत्तरी-पश्चिमी लूसियाना तथा उत्तरी-पूर्वी टेकसाज में है। यहाँ से तेल सैबाईन झील के बन्दरगाहों को पाइप लाइन द्वारा भेज दिया जाता है।

इस प्रदेश के लगभग १०० मील उत्तर-पूर्व में अर्कन्सास का तेल क्षेत्र है जिसने १९३६ में १०० लाख बैरल्स तेल का उत्पादन किया। यद्यपि इसके बारे में एक प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री ने जो भविष्य वाणी करने में बहुत जल्दबाजी से काम लेता था यहाँ तक कहा था कि वह आर्कन्सास में भविष्य में जितना भी तेल पैदा होगा उसको पीने को तैयार है।

(य) खाड़ी के क्षेत्र (Gulf Coast Fields)

तट से ५० मील दूर एक और तेल की पट्टी पाई जाती है जिसे "खाड़ी क्षेत्र" कहते हैं। यह क्षेत्र दलदली और लैगून क्षेत्र के ठीक पीछे है। यहाँ पर तेल गोल (Salt domes) में पाया जाता है और नतोदर में नहीं पाया जाता। यह गुम्बदें केवल कुछ १०० एकड़ ही में फैली हुई हैं और इनमें तेल की मात्रा कम है जो गैस के अधिक दबाव के कारण निकलती हैं। गुम्बदों से स्रोत (Gushers) भी निकलते हैं जो शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। यद्यपि ये टेक्साज माटागोर्डा से मिसीसिपी तक फैले हुए क्षेत्र में पाए जाते हैं तथा इनका विस्तार ४०० मील तक है लेकिन यहाँ के विशेष कुए केवल एक छोटे से ही क्षेत्र में पाए जाते हैं जो हाउस्टन और सैबाईन नदी के बीच में है। इसमें सर्व प्रमुख कुए सिन्डिल टॉप, अम्बिल, गूज क्रीक तथा सारा टोगा हैं।

सन् १९१६ में गूज क्रीक ने ३००००० बैरल तेल पैदा किया और १९१७ में इसी ने २०००% वृद्धि दिखाते हुए ७३००,००० बैरल तेल पैदा किया। इस प्रदेश में तेल चूने के पत्थर में पाया जाता है और आवरण चट्टान चिकनी मिट्टी है। इस क्षेत्र में सबसे पहले सन् १९०१ में सिन्डिल टॉप में तेल निकाला गया। इसके पश्चात सोरलेक तथा जौनिंग्स में कुए खोदे गए। इन सबका जीवन तीन साल का था। १९२५ में सिन्डिल टॉप पर कुँआ खोला गया और इसमें बहुत भारी उत्पादन हुआ। यहाँ से तेल सरलतापूर्वक जहाजों के लिए निर्यात कर दिया जाता है या गल्फ स्ट्रीट के ऊपर तेल साफ करने के कारखानों में भेज दिया जाता है।

सन् १९३६ में विश्व में १९७०० लाख बैरल से अधिक तेल पैदा हुआ जिसका ४०% मध्य महाद्वीपीय क्षेत्र, खाड़ी क्षेत्र तथा मैक्सिकन क्षेत्र से ही पैदा किया गया।

(च) कैलिफोर्निया क्षेत्र (California Fields)

उत्पादन की दृष्टि से इसका द्वितीय स्थान है। यदि मध्य महाद्वीप तथा कैलीफोर्निया का उत्पादन मिला दिया जावे तो संयुक्त राष्ट्र का ९/१० उत्पादन हो जाता है। शेष १/१० दूसरे क्षेत्रों से आता है। यहाँ तेल का उत्पादन १८८६ से ही किया गया किन्तु वास्तविक उत्पादन लॉस एन्जलीज और बेकर्सफील्ड क्षेत्रों के मिलने पर ही बढ़ा। यहाँ १९५३ में ३६५० लाख बैरल तेल पैदा किया गया।

मैक्सिको—सन् १९१० में मैक्सिको ४० लाख बैरल से कम तेल का उत्पादन कर रहा था। सन् १९२१ में यहाँ २००० लाख बैरल तेल का उत्पादन हुआ

जो कि विश्व के कुल उत्पादन का (जो कि उस समय बहुत बढ़ गया था) है था। सन् १९३२ में ३३० लाख बैरल। अब मैक्सिको का स्थान संयुक्त राष्ट्र के बाद तेल उत्पादन में छटा है। सन् १९४० में ६२० लाख बैरल तथा १९५३ में ७३० लाख बैरल तेल पैदा किया गया। यहाँ का अधिकांश तेल उस लम्बी सकरी पट्टी से आता है जो कि टैम्पीको के उत्तर-पश्चिम में उसके पीछे को स्थित है।

मैक्सिको की खाड़ी के पश्चिमी किनारे पर रायो ग्रान्डी डेल नार्डे तथा टेहुन्टापैक के स्थल डमरूमध्य के बीच में दक्षिण की ओर मैक्सिको के मुख्य उत्पादन क्षेत्र स्थित हैं। ये दो हैं: पहला टैम्पिको से अन्दर की ओर पेनुको और तोमसी की एस्चूरी के मिलने के स्थान पर स्थित है। २० मील और अन्दर चलकर दोनों नदियों के बीच त्रिभुजाकार क्षेत्र में मैक्सिको का उत्तरी तेल क्षेत्र है इस क्षेत्र के मुख्य उन्नत क्षेत्र इबानो के निकट टैम्पिको से ४० मील पश्चिम में तथा पैनुको के पास इसी नाम की नदी पर टैम्पिको से ३० मील दक्षिण में स्थित है।

समस्त उत्तरी प्रदेश के लिए टैम्पिको मुख्य बन्दरगाह है। मैक्सिको का अधिकांश तेल घटिया किस्म का, भारी, ईंधन में प्रयोग किया जाने वाला तेल है। इसमें गैसोलीन की मात्रा बहुत कम (५% से १५%) है जबकि अमरीकी तेल में यह २०% से ४०% तक होती है। मैक्सिको का तेल चूने की पर्त से आता है।

दूसरा दक्षिणी क्षेत्र ४० मील लम्बी तथा १ मील लम्बी चौड़ी तथा सकरी पट्टी में पाया जाता है। यह टैम्पिको से लगभग ६० मील दक्षिण में आरम्भ होता है और तट पर टक्सपान तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में बहुत से कुए हैं जो दूर २ पर स्थित हैं और उनमें से प्रत्येक लगभग १००० लाख बैरल तेल समाप्त होने के पहले पैदा करता है। यह कुए 'स्रोत' (Gusher type) हैं।

इसी क्षेत्र में मैक्सिको का तेल उद्योग बड़े पैमाने पर आरम्भ हुआ जबकि सन् १९०८ में डोंस बोकास कुआ खोदा गया था जिसमें आग लग गई थी और २ मास तक जलता रहा था। जिसके पश्चात् नमकीन पानी तैरता हुआ पाया गया। इसके जलने से ८०० से १४०० फुट ऊँची लौ उठी थी। इससे इतनी रोशनी हुई थी कि रात को भी १७ मील दूर अखबार पढ़ा जा सकता था। इसके बाद १९१० तक उत्पादन नहीं हुआ और फिर जुआन कैसिनो नामक कुआ १९१० में खोदा गया जिसका दैनिक उत्पादन १००,००० बैरल था और जो १९२० तक समाप्त ही नहीं हुआ। १९१० में ही दक्षिणी क्षेत्रों ने अपना भारी उत्पादन प्रारम्भ किया। उस समय से ही बहुत से प्रसिद्ध कुए सफलतापूर्वक खोदे जा चुके हैं जिनमें मुख्य सैरो अजूल स्रोत, अमहलान कुआ पोटरिगे डेल लानो टोटेकी, अलजान तथा अलामो हैं।

इसलिए अब मैक्सिको के तेल उत्पादन का भविष्य अब उसके तीसरे प्रदेश के हाथ में है जो कि टैहानटपैक में स्थित है। इसका विकास १९०२ में

ग्रारम्भ हुआ। लेकिन इसमें भूमि की दलदली प्रकृति, घनी वनस्पति के ग्रावरण तथा टैम्पिको के स्रोतों की खोज के कारण वाधाएँ उपस्थित हो गई।

कनाडा—कनाडा में ग्रोन्टेरियो प्रान्त में लगभग उसी समय तेल मिला था जबकि वह संयुक्त राष्ट्र ग्रमेरिका में मिला। परन्तु भूमि में अधिक तेल न होने से कनाडा में उसकी उन्नति नहीं हुई।

प्रथम विश्व युद्ध के वाद रॉकी पर्वत के निकट मैदानों में तेल ढूँढ़ा जाने लगा। ढूँढने वालों में ग्रधिकतर लोग संयुक्त राष्ट्र के ही थे। उस क्षेत्र मे १९२० में पहले पहल ग्रार्कटिक वृत्त से लगभग ७० मील दक्षिण में स्थित नार्मन वैल्स नामक स्थान पर तेल मिला। वहुत दिनों तक इस तेल की उन्नति नहीं की गई; क्योंकि न तो उस तेल के लिये स्थानीय मांग ही थी और न उस क्षेत्र से वाहर ले जाने के लिये ग्रच्छे मार्ग ही थे। द्वितीय विश्व युद्ध के वाद संयुक्त राष्ट्र में तेल की मांग वढ़ी और इसीलिये कनाडा की इस तेल की उन्नति के लिये पूंजी व नई मशीनें संयुक्त राष्ट्र से लाई गई, जिससे लगभग ७० कुएं खोदे गये और तेल निकाला जाने लगा। इसी काल में कुञ्जी नदी में जहाज चलने लगे और पूरे क्षेत्र की ग्रार्थिक उन्नति की ग्रोर ध्यान गया। इससे वहाँ पर स्थानीय मांग भी खड़ी हुई। खोज करने पर पता चला कि नार्मन वैल्स के क्षेत्र में लगभग ३० लाख पीपे तेल भण्डार है।

ऊपर कहे हुए तेल के क्षेत्रों की उन्नति के साथ-साथ लोग निकटवर्ती ग्रलवर्टा और सस्केचुग्रान प्रान्तों के मैदानों में भी तेल की खोज करने लगे। १९३६ में टैनर घाटी में तेल पाया गया। यह स्थान काल गेरी से लगभग ७० मील दूर है। इस स्थान के तेल की प्रचुरता को देखकर लोग ग्रन्धाधुन्ध इधर उधर तेल के लिये कुएँ खोदने लगे इसके फलस्वरूप कुछ ग्रन्य स्थानों में भी तेल मिला। इन स्थानों में लड्युक तथा रेड वाटर उल्लेखनीय हैं। इस समय कनाडा में तेल के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं :—

(१) पीस रिवर नगर के निकट—नार्मन्ड विल
(२) एडमान्टन नगर के निकट—एठा वास्का, लड्युक, वुड वैन्ड, किन्सैला, लायड-मिसटर तथा प्रोवोस्ट।
(३) कालगेरी नगर के निकट—टर्नर घाटी

१९४६ में कनाडा का तेल भण्डार लगभग ७२० लाख पीपे कूता गया था। लेकिन उपरोक्त क्षेत्रों की खोज के वाद १९५० में इसकी संख्या १२००० लाख पीपे कर दी गई, जिससे तेल भण्डार की दृष्टि से संसार में कनाडा का स्थान ग्राठवां हो गया है।

उत्तरी ग्रलवर्टा में स्थित एठावास्का में तेल युक्त वालू का बहुत वड़ा भण्डार है। ऐसा ग्रनुमान है कि संसार में ग्रन्य कहीं ऐसा भण्डार नहीं है। इस वालू में १०० से २५० ग्ररव पीपे तेल के जमाव होने का ग्रनुमान किया जाता है। इस वालू के तेल में गन्धक भी मिलता है।

वैनेजुएला क्षेत्र—वैनेजुएला मिट्टी का तेल पैदा करने वाला संसार में दूसरे नम्बर का देश है। यहाँ १९१४ से ही तेल का निकाला जाना प्रारम्भ हुआ।

सन् १९३९ और १९५३ के बीच यहाँ तेल का उत्पादन २१३० से ६४४० लाख बैरल हो गया। यहाँ मारकाईबो झील के समस्त तट पर तेल के क्षेत्र पाये जाते हैं जिनमें से मुख्य क्षेत्र लारोजा और लेगुनीलाज है। लारोजा से बाँकेंवरो तक ५० मील लम्बे सम्पूर्ण प्रदेश में मिट्टी के तेल के डेरिक दिखाई पड़ते हैं। इस क्षेत्र में अन्य मुख्य उत्पादक मारकाईवो खाड़ी के पश्चिम की ओर कन्सेपशन और लापाज तथा पूर्व की ओर एलमेर और दक्षिण पश्चिम में कोलन हैं। यहाँ का दूसरा तेल क्षेत्र वैनेजुएला के मैदानों में पाया जाता है। यहाँ का मुख्य तेल क्षेत्र ओफीसना मे है।

यहाँ का तेल नलों द्वारा अरूबा और क्यूराको के कारखानों को शोधने के लिए भेज दिया जाता है। कुछ तेल नलों द्वारा कैरेबीयन तट पर स्थित प्यूरटो ला क्रूज तथा कैरीपीटो को भी भेजा जाता है जहाँ वैनेजुएला की तेल शोधने की बड़ी फैक्ट्रियाँ हैं। वैनेजुएला के इस उद्योग में अमरीकन और ब्रिटिश की लगभग २ बिलिअन डालर की पूंजी लगी है।

कोलंबिया में मैग्डेलना नदी पर स्थित बैरानकाबरमेजा के चारों ओर तेल क्षेत्र हैं। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग ४०० लाख बैरल तेल निकाला जाता है। इसका अधिकांश भाग मामोनल बन्दरगाह द्वारा निर्यात कर दिया जाता है।

इस प्रकार दक्षिण अमेरिका का ९०% तेल वैनेजुएला, कोलंबिया और ट्रिनीडाड के द्वीप में पाया जाता है। अधिकतर तेल निर्यात कर दिया जाता है। थोड़ा सा तेल अर्जेनटाइना (२५० लाख बैरल) में कोमोराडो रिवाडिवा क्षेत्र से और ब्राजील तथा चिली में भी मिलता है।

रूस—रूस का तेल पैदा करने वाले देशों में तीसरा स्थान है। यहाँ के तेल क्षेत्र दो भागों में पाये जाते हैं। यहाँ तेल का उत्पादन १९१३ में ६३० लाख बैरल से बढ़कर १९३९ में २१७० लाख बैरल और १९५३ में ३६५० लाख बैरल हो गया।

(i) पहला क्षेत्र काकेसस क्षेत्र है जो केस्पियन सागर के पश्चिमी और दक्षिण काकेसस प्रदेश में फैला है। रूस में प्रधान तेल के कुएं बाकू में पाये जाते हैं। काकेसस क्षेत्र के कुछ केन्द्र उत्तरी काकेसस में भी हैं। इनमें ग्रोजनी, मेंकोप, टिफलिस और माकचकाला है। समस्त रूस का ४२% तेल इसी क्षेत्र से निकलता है।

(ii) तेल की दूसरी पट्टी यूराल पर्वत के पश्चिमी ढाल पर उत्तर में उक्ता से लेकर स्टर्लीटामक तक फैली हुई है। इस क्षेत्र में एम्बाक और वसीरियन, पूसू और ऊफा प्रमुख उत्पादक हैं। इस क्षेत्र से समस्त रूस का ४% तेल मिलता है।

उपर्युक्त दो क्षेत्रों के अतिरिक्त रूस के अधिकार में एशिया के दो क्षेत्र और हैं। उनमें एक मध्यएशिया में फरगना और बुखारा के निकट है तथा दूसरा साखालीन द्वीप में है। रूस के मध्यएशिया वाले भाग ८·९% और सुदूरपूर्व से १·१% तेल मिलता है।

रूस के तेल क्षेत्र बाकू से एक दुहरी पाईप लाईन बातूम से मिली है तथा माकच्काला, ग्रोजनी और मेकोश अपना तेल नल द्वारा काले सागर पर

स्थित ट्रूआपसे को और पूर्वी यूक्रेन में स्थित ट्रूडो, वापाको भेजते हैं। तेल की एक दूसरी लाइन केस्पियनसागर के उत्तर पूर्व स्थित, कोशाहेगिल, राकूशा, गूरोफ और ओस्क को मिलाती है। रूस में तेल शुद्ध करने के कई केन्द्र हैं जिनमें सबसे बड़ा कारखाना बाकू में है। यहाँ प्रतिदिन लगभग ४ लाख पीपे तेल साफ किया जा सकता है। तेल साफ करने के अन्य कारखाने ग्रोजनी, क्रसनोडार, मोलोहोफ, ऊफा, स्टर्लिटामाक, ओरर्क और कर्गना में हैं। रूस में प्रतिवर्ष बहुत अधिक मात्रा में तेल निकाला जाता है। यहाँ १९३८ में तेल का उत्पादन ३२२ लाख टन, १९४२ में ३८५ लाख टन और १९५० में ३७० लाख टन तथा १९५२ में ४७० लाख टन तेल प्राप्त किया गया। तेल की मात्रा में वृद्धि होने का मुख्य कारण रूस में नये और उन्नत ढंगों का प्रयोग है। १९४५ के पहले रूस में २½-३ हजार फीट गहराई से तेल निकाला जाता था। परन्तु अब नये प्रयोगों के कारण ६,००० फीट की गहराई से तेल प्राप्त किया जाता है। यहाँ का सबसे गहरा कुँआ बकू में है। इसकी गहराई २०,००० फीट है। रूस में तेल के उत्पादन के साथ-साथ उसकी खपत भी बढ़ती जा रही है। १९४९ में यहाँ तेल की खपत ४०० लाख टन थी। मोटरों व मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग के कारण तेल की माँग बढ़ती जा रही है। इसीलिये बढ़ती हुई खपत के कारण १९६० तक रूस में ६०० लाख टन तेल प्रतिवर्ष निकालने का आयोजन है। १९४९ में तेल की वार्षिक प्रति व्यक्ति खपत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ५०० गेलन, ब्रिटेन में ८० गेलन, और रूस में ५० गेलन थी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि रूस में विश्व के कुल तेल भंडार का लगभग ५९% तेल पाया जाता है। रूस में तेल का कुल भडार ६३,८०० लाख गेलन का कूता जाता है। जिसमें से ७८०० लाख टन बाकू, १७, ७०० लाख टन अजरबेजान, १८,५०० लाख टन ग्रोजनी, १६०० लाख टन मेकोप, १८०० लाख टन जारजिया, १५०० लाख टन दाखेस्तान, ११,६०० लाख टन अम्बा, ३७०० लाख टन बशकीविया, ३५०० लाख टन पर्म, ४७०० लाख टन यूराल, वाल्गा ३४०० लाख टन साखालीन और ४३०० लाख टन मध्य एशिया में हैं।

यूरोप—यूरोप में रूमानिया देश में तेल के कुएं कारपेथियन पहाड़ की दक्षिणी तलहटी में ६ मील लम्बे और ३० मील चौड़े क्षेत्र में पाये जाते हैं। यह तेल क्षेत्र उत्तर में सुसीवा से लेकर दक्षिण में डामब्रोरिटजा की घाटी तक फैला है। तेल के सबसे विशाल क्षेत्र डामब्रोरिटजा घटी, पारहोवा, बाडुऊ और बकाऊ में स्थित है। इन क्षेत्रों में सन् १८८० में तेल निकालना आरम्भ हुआ और अब इनसे समस्त देश का ९८% तेल निकाला जाता है। कुल उत्पादन का लगभग ७०-८०% भाग निर्यात कर दिया जाता है। अधिकतर तेल पलोस्टी से नलों द्वारा ओडेसा को भेजा जाता है। रूमानिया का उत्पादन १९३६ में ६४० लाख बैरल था किन्तु अब यह घट कर १९५३ में केवल ३३० लाख बैरल ही रह गया।

मध्यपूर्व के देश—मध्यपूर्व में तेल के प्रमुख क्षेत्र दक्षिणी-पश्चिमी और पश्चिमी फारस, पूर्वी ईराक और सौदी अरब तथा कुवैत में पाये जाते हैं। मध्यपूर्व के इन क्षेत्रों में संसार का लगभग आधा भण्डार पाया जाता है।

१९५१ में इन्होंने समस्त विश्व के उत्पादन का १५% तेल पैदा किया। नीचे की तालिका में मध्यपूर्व से देशों में मिट्टी के तेल का उत्पादन बताया गया है :—

	१९५०	१९५४
	(१० लाख टनों में)	
कुवैत	१७·२	४७·७
अरब	२६·९	४६·१
ईराक	६·४	२९·५
ईरान	३२·२	२·९
कतार	१·६	४·७
अन्य	४·१	३·५
योग	८८·४	१३४·४

(क) ईराक—ईराक और विश्व का सबसे बड़ा तेल क्षेत्र (७० मील की लम्बाई में) किरकुक के उत्तर की ओर बाबा गुरगुर में स्थित है। इन तेल क्षेत्रों से तेल का निकालना १९२७ में आरम्भ हुआ और तेल का उत्पादन इतना अधिक बढ़ा कि यहां १९३३ में १० लाख बैरल से १९३९ में ३१० लाख बैरल और १९५३ में २११० लाख बैरल तेल निकाला गया। इन तेल क्षेत्रों से एक अंग्रेजी तेल कम्पनी तेल निकालती है। इस का तेल १२″ व्यास वाले नलों द्वारा (जिनकी वार्षिक तेल-वाहन की क्षमता ३०० लाख बैरल है) भूमध्य सागर पर स्थित दो स्थानों को पहुँचाया जाता है। प्रति वर्ष इन नलों द्वारा ६२० मील की दूरी पर हैफा को और ५३१ मील दूर त्रिपोली को तेल पहुँचाया जाता है। हैफा और त्रिपोली में इस तेल को टैंकर जहाजों में लादकर विदेशों को भेज दिया जाता है। १९५२ में एक और नई पाइप लाइन सीरिया में बनियास तक बनाई गई है।

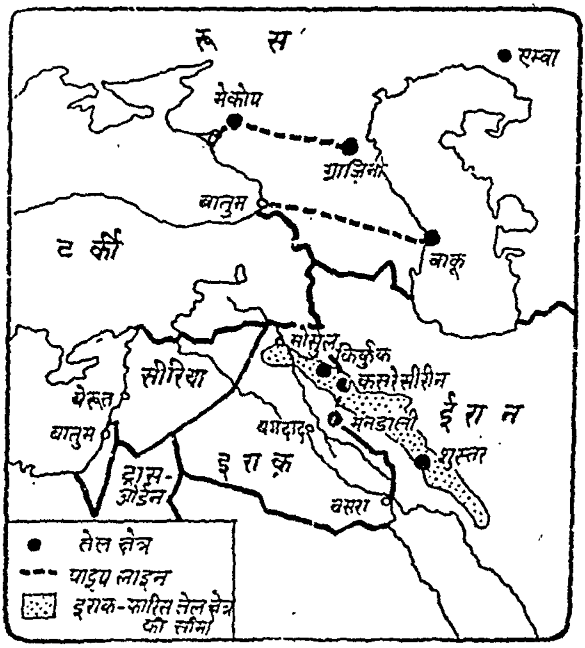

चित्र १८६—ईरान के तेल क्षेत्र

(ख) ईरान—खनिज तेल निकालने का व्यवसाय ईरान के आर्थिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। यहाँ तेल निकालना १९१३ से आरम्भ किया

गया। यहाँ के प्रमुख तेल क्षेत्र दक्षिण-पश्चिम में कजकिस्तान के निकट केन्द्रित हैं। यहाँ प्रसिद्ध तेल क्षेत्र दो हैं: (१) पहला मस्जिदे सुलेमान जो ५० वर्ग मील क्षेत्र में सुस्तरार से लगभग ३० मील दक्षिण में फैला है। यहाँ का उत्पादन १९१३ में २० लाख बैरल से बढ़कर १९३९ में ६६० लाख बैरल और १९५० में २४२० लाख बैरल हो गया। इस क्षेत्र से तेल का निकाला जाना १९०८ में आरम्भ हुआ।

(२) दूसरा क्षेत्र ४० मील और दक्षिण में ४० वर्ग मील क्षेत्र में फैला है। इससे तेल का उत्पादन १९२८ में शुरू किया गया। अन्य क्षेत्र गचसारन, आगाहाजारी, नफ्थसफीद और लालीट्ट हैं। इन क्षेत्रों का तेल नलों द्वारा सतल अरब नदी पर स्थित अबादान के बन्दरगाह पर लाया जाता है। अबादान का कारखाना संसार से सबसे बड़ा तेल शोधने का कारखाना है जहाँ ५ लाख बैरल तेल प्रति दिन साफ किया जाता है।

थोड़ा सा मिट्टी का तेल फारस की खाड़ी में स्थित बैहरीन द्वीप में भी पाया जाता है। यहाँ वार्षिक उत्पादन लगभग ११ लाख बैरल का है।

(ग) **सौदी अरब**—सौदी अरब में मिट्टी का तेल १९३३ में निकाला जाने लगा। यहाँ मिट्टी का तेल डोमन क्षेत्र में पाया जाता है। यहाँ से यह शुद्ध करने के लिए २५ मील लम्बी पाइप-लाइन द्वारा बैहरीन भेज दिया जाता है। सौदी अरब में इस समय सात क्षेत्रों से तेल निकाला जा रहा है जिनमें से मुख्य दमाम, कातिफ, अबाकेक बुक्का और आयन्दार हैं। यह सब क्षेत्र रासतानूरा के तेल शुद्ध करने के कारखाने के निकट हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण में हराढ़ और समुद्र तट के निकट फाढीली और अबूब हादरिया के निकट भी तेल के क्षेत्र हैं। रासतानूरा के कारखाने में लगभग ३५०००० पीपा तेल प्रति दिन साफ हो सकता है। सौदी अरब में तेल निकालना दहरान में १९३६ में आरंभ किया गया। इसके बाद नये तेल क्षेत्र क्रमशः अबाकेक और घवर में ज्ञात हुए। यहाँ का उत्पादन लगभग ३०८० लाख बैरल होता है।

(घ) **कुवैत**—यहाँ भी बुर्गन की पहाड़ियों में लगभग ३५०० फुट की गहराई से तेल निकाला जाता है। कुवैत में भी एक तेल साफ करने का कारखाना है जिसमें प्रति दिन केवल २५,००० पीपे तेल साफ हो सकता है जो स्थानीय माँगों की ही पूर्ति के लिए पर्याप्त है। इसलिए कुवैत से प्रायः अशुद्ध तेल ही बाहर भेजा जाता है। नीचे की तालिका में सौदी अरब और कुवैत में निकाले गये तेल की प्रगति बताई गई है:—

	सौदी अरब	कुवैत
	(पीपे प्रति दिन—हजार में)	
१९४८	३९०	१२७
१९४९	४७७	२४६
१९५०	५४६	३४४
१९५१	७११	३७५
१९५२	८५०	७५०

मध्यपूर्व में चट्टानों की १५ अलग २ तहें हैं जिनमें तेल मिलता है। इनमें ईरान की आगाजरी, कुवैत की बुरगन और अरब की अवाकेक अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक से लगभग २०० लाख टन तेल प्रति वर्ष निकलता है। इसकी तुलना संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पूर्वी टेक्सास के तेल क्षेत्र से की जा सकती है जहाँ प्रति वर्ष लगभग १३४ लाख टन तेल निकलता है। मध्यपूर्व के तेल क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग १४ लाख वर्ग मील है। इसमें से लगभग ५१/३ वर्ग मील ही इस समय उन्नत किया जा रहा है। मध्यपूर्व के तेल क्षेत्र के प्रतिवर्ग किलोमीटर में १५,००० टन तेल है। यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के टेक्सास की तुलना में चौगुना अधिक है। मध्यपूर्व के तेल के भण्डार का अनुमान १९४९ में इस प्रकार लगाया गया था : कुवैत में १०९५ करोड़ पीपे, सौदी अरब में ९०० करोड़ पीपे, कतार में ८०० करोड़, ईरान में ७०० करोड़ और ईराक में ५०० करोड़ पीपे है।

मध्यपूर्व के देशों में पिछले कुछ वर्षों से तेल का उत्पादन बढ़ जाने से यूरोपीय देशों में तेल की माँग घट गई है। किन्तु १९५१ में जब ईरान सरकार ने मिट्टी के तेल के राष्ट्रीयकरण करने का निश्चय किया तो उसके फलस्वरूप सरकार और एँग्लोईरान तेल-कम्पनी के बीच झगड़ा हो गया, और तेल का निकाला जाना १९५३ तक बंद रहा। अब पुनः १९५४ से तेल का उत्पादन आरम्भ हो गया है।

पाकिस्तान—हिमालय पर्वत के दोनों ओर तेल के क्षेत्र पाये जाते हैं—पूर्व की ओर आसाम और बर्मा दोनों ही प्रमुख उत्पादक हैं। यह इस क्षेत्र का लगभग ९५ प्रतिशत तेल देता है और शेष ५ प्रतिशत पश्चिमी पाकिस्तान में पंजाब में (खोर और धूलिया) से प्राप्त होता है। इन दोनों क्षेत्रों की वार्षिक उत्पत्ति क्रमशः २०० व ३०० गैलन है—१९५० में पाकिस्तान में ११ लाख पीपे पैदा हुए जिनमें से प्रत्येक पीपा ४० गैलन का था। इन दोनों क्षेत्रों का तेल निकाल कर नलों द्वारा रावलपिंडी को, जो खोर से ५६ मील और धूलिया से ६७ मील दूर है, लेजाया जाता है। यहाँ यह साफ किया जाता है। थोड़ा सा तेल रावलपिंडी से ४० मील दक्षिण की ओर जोयामेल से भी प्राप्त होता है। आधुनिक परवेक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ कि पश्चिमी सीमा प्रान्त, बिलोचिस्तान, सिन्ध और पश्चिमी पाकिस्तान में तेल के क्षेत्र पाये जाने की काफी संभावना है। पूर्वी पाकिस्तान में सिलहट, और चिटगाँव जिले में भी तेल पाये जाने की सम्भावना है। वर्तमान समय में पाकिस्तान अपनी तेल की माँग का केवल १५% ही पैदा करता है, शेष विदेशों से निर्यात करना पड़ता है। १९५० में खोर तेल क्षेत्र से १५००० पीपे, धूलिया से ८५२ हजार, जोयामेर से १५० हजार और बल्का साहब से ५३० हजार पीपे मिट्टी का तेल प्राप्त किया गया।

भारत—भारत में आसाम ही एक ऐसा राज्य है जहाँ मिट्टी का तेल प्राप्त किया जाता है। आसाम में तेल क्षेत्र उत्तरी पूर्वी आसाम से लगाकर ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी की घाटी से लगा कर रामरी और चेदूवा द्वीपों के ८०० मील के घेरे में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में तेल के कुएँ लखीमपुर जिले में डिगबोई, बप्पापान और हस्सापान में हैं जिनका क्षेत्रफल २१/२ वर्ग मील

है। यहाँ तेल पाँच हजार फीट गहरे कुँओं से आसाम तेल कम्पनी द्वारा निकाला जाकर नलों द्वारा डिगबोई के तेल शोधने के कारखाने को भेज दिया जाता है। यहाँ इसका पेट्रोल, मोमबत्ती, जूट बेचिंग तेल, केरोसीन, मोम और मशीनों को चिकना करने का तेल बनाया जाता है। १९४८ में भारत में १५० लाख गैलन मोटर स्प्रिट, ४००० टन केरोसीन, और ४००० टन डीजल तेल प्राप्त किया गया। १९५० में सब मिलाकर भारत में ६०० लाख गैलन मिट्टी का तेल प्राप्त किया गया। यह भारत की माँग का केवल ७% है। अतः भारत को प्रतिवर्ष विदेशों से कई करोड़ रुपयों का तेल आयात करना पड़ता है। भारत में मोटर गाड़ियों की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ मिट्टी के तेल के आयात में भी वृद्धि हुई। १९२५ में सब मिलाकर पचास हजार मोटर गाड़ियाँ भारत में थीं—१९३५ में यह संख्या १,३२,९७४; १९४५ में १,४४,६९४, और १९५४ में तीन लाख से ऊपर होगई। नीचे की तालिका में भारत में आयात किये मिट्टी के तेल का ब्यौरा बतलाया गया है—

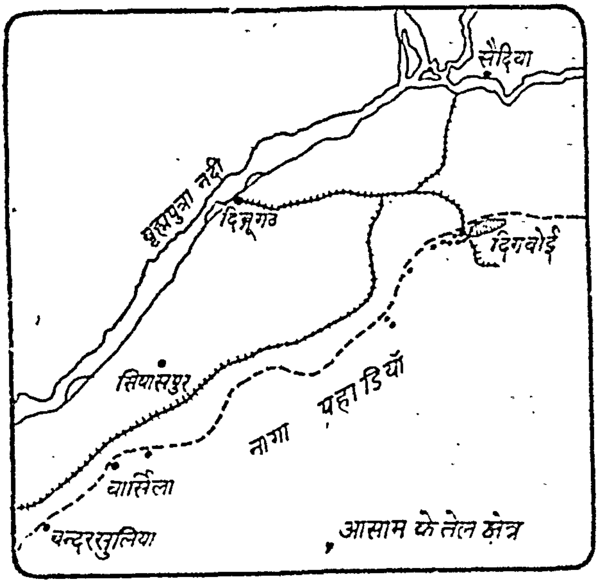

चित्र १८७

	(१० लाख गैलन)		(लाख रुपयों में)	
	१९५०–५१	५३–५४	१९५०–५१	५३-५४
केरोसीन	२२९	२९१	१७६५	२७४८
डीजल तेल	१३४	१६४	६८६	१०९१
अन्य जलाऊ तेल	१९८	१९२	४९४	७९४
मशीनों को चिकना करने का तेल	४०	३७	६९५	५९९
मोटर स्प्रिट	१९३	२७०	१७८६	३०८९
योग—	७९४	९५४	५४२६	८३२१

सन् १९५४–५५ में विदेशों से ९० करोड़ की लागत का मिट्टी का तेल आयात हुआ।

पंच वर्षीय आयोग की सिफारिशों के अनुसार भारत में तेल शोधन के तीन कारखाने खोले जाने वाले हैं। जिनमें से पहला कारखाना बम्बई के निकट

स्टेंडर्ड वेकम आइल कम्पनी (Standard Vacuum oil Co) द्वारा ट्राम्बे में साढ़े सतरह करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया है। इसके लिये कच्चा तेल फारस की खाड़ी के तेल क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। इस कारखाने के खुलने से भारत को प्रतिवर्ष ५ करोड़ रुपये की बचत हो रही और इस कारखाने के द्वारा प्रतिवर्ष निम्न प्रकार से तेल वस्तुओं का उत्पादन होता है।

मोटर स्प्रिट	६०० लाख गैलन	देश की माँग की ३५% पूर्ति
केरोसीन	४०० लाख गैलन	,, १५% ,,
डीजल तेल	५०० लाख गैलन	,, २५% ,,
अन्य तेल	१००० लाख गैलन	,, ६०% ,,

इसकी तेल साफ करने की क्षमता १२ लाख टन वार्षिक है। दूसरा कारखाना १९५५ में बम्बई में ही बर्मा शैल कम्पनी के साझे में ३० करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया है। इसकी क्षमता २० लाख टन की है। तीसरा कारखाना अमरीका की कैल्टैक्स कम्पनी के साझे में ७·५ करोड़ की लागत से विशाखापट्टनम में बनाया जा रहा है। यह १९५७ तक बनकर तैयार होगा। इसकी शोधन क्षमता ५ लाख टन की होगी।

भारत में मिट्टी का तेल ईरान, बोरनिया, सुमात्रा, सिंगापुर, वेहरिम टापू, सउदी अरब और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आयात किया जाता है। डा० वाडिया के अनुसार मिट्टी के तेल के नये स्रोत पंजाब, कच्छ की खाड़ी के निकटवर्ती भाग, सौराष्ट्र, आसाम, त्रिपुरा और राजस्थान के अर्द्ध-मरुस्थलीय भागों में भी पाये जाने की सम्भावना है।

ब्रह्मा—ब्रह्मा में मिट्टी का तेल इरावदी नदी की घाटी में पाया जाता है। यहाँ के मुख्य क्षेत्र पूर्वी तट पर माँगवे जिले में येनाँग याँग, और मिगयान जिले में सिंगू तथा पश्चिमी तट पर पाँकूकू जिले में यनांग यात हैं। यहाँ का वार्षिक उत्पादन लगभग १० लाख बैरल है। कुँओं से तेल निकाल कर नलों द्वारा नदी तट पर स्थित हौजों में भेजा जाता है। वहाँ से यह विशेप रूप से निर्मित जहाजों द्वारा रंगून पहुँचाया जाता है। रंगून में तेल शोधक कारखाने सीरियम और डेनिडा में हैं। अराकान तट के अक्याब और क्यायू, क्यपू जिले में भी थोड़ा सा तेल पाया जाता है।

इंडोनेशिया में मिट्टी का तेल सुमात्रा, बोर्नियो, जावा आदि द्वीपों में मिलता है। सुमात्रा में प्रमुख तेल क्षेत्र अटजेह के तटीय क्षेत्रों में तथा पूर्वी तट पर जम्बी और पालम बंग में स्थित है। बोर्नियो के पूर्वी तट से कुछ दूर टाकन द्वीप में तथा दक्षिणी तट के निकट बालकी पापन में भी तेल मिलता है। थोड़ासा तेल सिलेबीज, सारावाक और जावा में भी पाया जाता है। इंडोनेशिया के तेल क्षेत्रों में १९५३ में ७५० लाख बैरल तेल प्राप्त हुआ जो विश्व के उत्पादन का ३% था।

थोड़ा सा मिट्टी का तेल जापान में भी पाया जाता है। तेल उत्पादन पट्टी समुद्र के किनारे-किनारे उत्तर में होकेडो से लेकर उत्तरी होंशू तक फैली

हुई है। उत्तरी होंसू के पश्चिमी भाग में दो प्रमुख तेल क्षेत्र अकीता और नीगाता में हैं जिनसे जापान के घरेलू उद्योग का ६५% तेल प्राप्त होता है।

तेल के नये क्षेत्र—पिछले कुछ समय से अमरीकन नये क्षेत्रों की खोजों में लगे हुए हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात मिश्र, सिनाई, फिलस्तीन, सीरिया, अरब, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान, एशियाई रूस, इंडोनेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और घाना, नाईजीरिया, भूमध्य रेखीय अफ्रीका आदि देशों में तेल क्षेत्रों के विकास के लिये काफी प्रयत्न किये गये हैं।

तेल भण्डार (Oil Reserves)

विश्व में तेल कितनी मात्रा में सुरक्षित है इसका अनुमान लगाना कठिन है। मात्रा ज्ञात करने के ढंगों में जो सुधार हो रहे हैं उनसे संभव है विश्व के तेल भंडारों का पूरी तरह ज्ञान हो सके। नीचे की तालिका में तेल भंडारों का अनुमान दिया जाता है—[1]

विश्व के तेल भण्डार

(लाख पीपों में; १ पीपा=४ गैलन)

देश	भंडार	भंडार(१०लाख टनों में)	%
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२६०,४४०	४,०००	३०·५
सौदी अरब	२८०,०००	५,५७१	४२·४
कुवैत	२००,०००		
ईरान	१५०,०००		
ईराक	१३०,०००		
वैनेजुएला	९९,०००	१,५३६	११·७
रूस	६०,०००	१,२१४	९·२
इंडोनेशिया	२४,५००	२८९	२·२
कनाडा	१९,५००	४१	०·३
मैक्सिको	१७,२५०	१३९	१·१
कतार	१५,०००	—	—
कोलंबिया	५,५००	८३	०·६
अन्य देश	३१,०००	१०७	०·८
योग	१३५,२५९०	१३,१३३	१००·०

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि विश्व के तेल भंडारों का ४२% फारस की खाड़ी के निकटवर्ती भागों—सौदी अरब, ईराक, ईरान, बहरीन द्वीप, कतार, और कुवैत—में स्थित है। शेष भंडार संयुक्त राष्ट्र में ३०%; कैरेबियन तटीय प्रदेश १४%; रूस ९%; तथा विश्व के अन्य देशों में केवल ५% है।

---

१. D. M. Duff : "Over Half of World's Reserves Now Concentrate in Middle East" : Oil and Gas Journal, December, 21, 1953, p. 117-119 and Dr. A. Parker's article : "Man's Use of Solar Energy" in Br. Association for Advancement of Science Journal, March 1951, p. 400.

अनुमान लगाया गया है कि विश्व के तेल भंडार संभवतः १०० वर्षों से अधिक नहीं चल सकेंगे।[1]

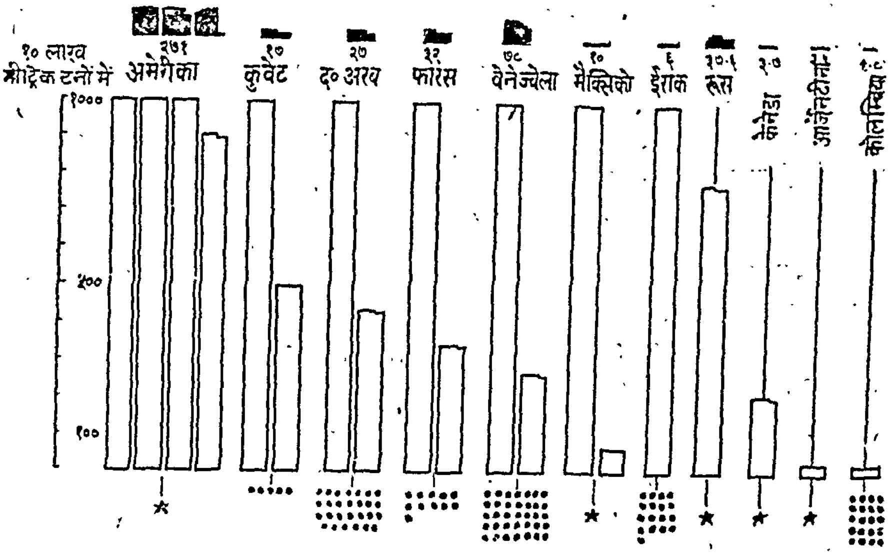

चित्र १८८—विभिन्न देशों के तुलनात्मक तेल भंडार

तेल का उपयोग (Utilization of Oil)

कोयले के बाद उत्पादन के मूल्य के दृष्टिकोण से मिट्टी के तेल का महत्व सबसे अधिक है क्योंकि इसका अधिकाधिक उपयोग वर्त्तमान समय में ताप, प्रकाश, चालक शक्ति और मशीनों को चिकना करने के लिए किया जाने लगा है।[2] इसके अतिरिक्त जब से डीजल के तेल के एंजिन का आविष्कार हुआ है तब से इस ईंधन के प्रयोग में काफी प्रगति हुई है और इसी कारण कोयले और तेल में शक्ति के साधन के रूप में प्रतिस्पर्धा भी होने लगी है। हवाई जहाजों में, जलयानों में (जहाँ गति और स्थान दोनों ही अभीष्ट हैं) एवं मोटर गाड़ियों में इसका अधिक प्रयोग बढ़ने लगा है। इसका कारण यह है कि (*i*) तेल अधिक सुगमतापूर्वक और कम खर्चे से एक स्थान से दूसरे स्थान को लेजाया जा सकता है क्योंकि यह कोयले की अपेक्षा कम स्थान घेरता है और सैकड़ों मीलों तक नलों अथवा विशेष प्रकार के जहाजों में भरकर ले जाया जा सकता है (ii) कोयले के प्रयोग की अपेक्षा इसके प्रयोग से अधिक स्वच्छता रहती है और इसे इकट्ठा रखना भी आसान है। (iii) इसके प्रयोग से यंत्रों की रफ्तार अधिक की जा सकती है और यंत्र संचालन के लिए अपेक्षाकृत कम मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है। (iv) कोयले की भाँति मिट्टी के तेल क्षेत्रों में कोई उद्योग

१. A. Parker : World Energy Resources and their Utilization, 1949.

२. "By providing lubricant and a compact and convenient fuel, petroleum has played a *major* role in revolutionizing transportation on land on sea and, in the air."

केन्द्रित नहीं है यहाँ तक कि उसको शुद्ध करने के कारखाने भी बन्दरगाहों पर ही पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि जिन क्षेत्रों में मिट्टी का तेल पाया जाता है वहाँ प्रायः और कोई खनिज पदार्थ नहीं मिलते, जिससे कारखाने चल सकें।

वास्तव में तेल के कुल उत्पादन का विश्व में ४५% मोटरों के लिए ईंधन के रूप में, ४४% ईंधन तेल, ८% केरोसीन और शेष ३% चिकना करने वाले तेलों के उपभोग में आता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ४९% तेल यातायात के साधनों में; १९% व्यावसायिक और घरेलू कार्यों में, १४% उद्योग और खानों में तथा १८% अन्य कार्यों में प्रयुक्त होता है। दक्षिण अमेरिका में ६९% तेल ईंधन के रूप में काम में लाया जाता है।[1] उत्तरी अमेरिका और यूरोप दोनों ही महाद्वीप विश्व के उत्पादन का ९/१० भाग उपभोग में लाते हैं। विश्व में पैट्रोलियम के कुल उत्पादन का ५७% उत्तरी अमेरिका में, ११% पश्चिमी यूरोप; १०% रूस व पूर्वी यूरोप में ७% लैटिन अमेरिका में, ३% एशिया में, १% मध्य पूर्व अफ्रीका और ओसिनिया प्रत्येक में उपभोग में आता है।

मिट्टी के तेल से लगभग ५००० प्रकार की विभिन्न उप-वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं।[2] इसका सबसे अधिक मुख्य उपयोग युद्ध काल में बनावटी (Synthetic) रबड़ बनाने में किया गया। अनुमान लगाया गया है कि एक ढोल कच्चे तेल से ३९% ईंधन का तेल, ३५% गैसोलीन, १५% गैस का तेल, ८% मिट्टी का तेल, ४% डिस्टीलेट और शेष २% में चिकना करने का तेल, पराफीन, नेप्था, वैस्लीन, बैन्जीन, कोक, मोम आदि प्राप्त होता है। मिट्टी का तेल केवल मोटरकार, ट्रैक्टर, जहाज, वायुयान आदि में ही केवल ईंधन के रूप में ही प्रयोग में नहीं लाया जाता है बल्कि इससे रबर, रासायनिक पदार्थ, औषधियाँ, रंग, इत्र, कागज, साबुन, मोमबत्तियाँ, चपड़ी, विस्फोट पदार्थ, एल्कोहल और क्षार आदि भी बनाये जाने लगे हैं।

---

१. Janes & Drakenwald : *Ibid*, p. 402.
२. Smith, Phillips and Smith : *Ibid.*, p. 308.

मोटे तौर पर पैट्रोल से निम्न वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं[१] :—

पैट्रोल

१ प्राकृतिक गैस (Natural Gas)	२ हाइड्रो-कार्बन गैस (Hydro-Carbon Gases)	३ भारी वस्तुएँ (Heavy Distillates)	४ शेष पदार्थ (Residuals)	५ अन्य वस्तुएँ (Other Products)
ईंधन	ईंधन गैस	नैप्थलीन	चिकनाई	गंधक का तेजाब
औद्योगिक ईंधन	पैट्रोल ईथर	साफ किए तेल	सड़क के तेल	एस्फाल्ट
बूटेडीन	द्रव गैस	कैरोसीन	वाटर प्रूफ तेल	ईंधन कोक
बूटेलीन	ठोस कार्बन डाई आक्साइड	मोटर का तेल	तेल-कोक	चमड़ा साफ करने का तेल
ऐसेटीलीन	काला कार्बन	चिकना करने वाला तेल	दवाइयों के तेल	इत्र
ऐथीलीन	नैप्थलीन	मोम		रासायनिक पदार्थ
मैथील एलकोहोल		पैराफीन		
फारम लेडीहाइड				
क्लोरोफॉर्म				
कार्बन, काला				
कार्बन टैट्रा क्लोराइड				

तेल की विशेषताएँ—संसार के सारे शक्ति स्रोतों में खनिज तेल सबसे अधिक धोखेबाज (fugitive) है। इसके कई कारण हैं[२] :—

(१) तेल के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह दृष्टि के परे पृथ्वी के गर्भ में पाया जाता है और एक द्रव होने के कारण उसमें चंचलता विद्यमान है, अतः वह एक स्थान से दूसरे स्थान को बह कर चला जाता है। अतः निश्चित रूप से यह कहना कि किसी भूखंड में कितना तेल विद्यमान है बड़ा कठिन है। अभी तक जो भी अनुमान लगाये गये हैं वे सभी झूठे सिद्ध हुए हैं।

(२) तेल के विचित्र दशाओं में प्राप्त होने के कारण उसमें स्थिति-विषयक अनिश्चितता भी है। कई वर्षों तक अनुमान लगा कर इसकी खुदाई होती थी जिसे 'Wild Catting' कहते थे। किन्तु अब कई आधुनिक यंत्रों का आविष्कार होने के कारण तेल की स्थिति लगाने का उपाय ठीक प्रकार किया जाता है। परन्तु अभी तक इस दिशा में पूरी तरह सफलता नहीं मिली है। तेल की स्थिति ज्ञात करने के निमित्त ये यंत्र प्रयोग में लाये जा रहे हैं : सीसमोग्राफ (Seismograph), टॉरशिन तराजू (Torsion Balance), मैग्नेटोमीटर (Magnetometer), विद्युत् लॉग (Electric Log), हवाई कैमरा (Aerial Camera)।

१. Freeman & Ranp : Essentials of Geography, 1939
२. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 309-310.

(३) तेल का जीवन भी अनिश्चित है। एक तेल का कुआ वर्षों तक तेल दे सकता है या कुछ ही दिनों बाद उसमें खारी पानी निकलने लगता है जो तेल के अन्त का द्योतक होता है। यह निश्चित है कि तेल किसी भी समय समाप्त हो सकता है क्योंकि खनिज तेल एक क्षयात्मक शक्ति श्रोत (exhaustible power) है। साधारणतः एक तेल के कुए से उसके उत्पादन का ३/४ प्रथम दो वर्षों में ही प्राप्त हो जाता है और शेष तेल १० वर्षों या उससे अधिक समय तक न्यून मात्रा में निकलता रहता है।[१]

(४) जब किसी स्थान पर तेल मिलता है तो वहाँ तेल निकालने के लिए एक प्रकार की होड़ सी लग जाती है। "पहले मारे सो मीर" (First Come First Served) वाली कहावत तेल की खुदाई के लिए पूरी तरह चरितार्थ होती है। स्पर्धात्मक खुदाई में बहुत सी कम्पनियों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

(५) इस उद्योग में लगाई गई पूँजी से होने वाला लाभ भी अनिश्चित होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—तेल का सबसे अधिक व्यापार उन देशों के बीच में होता है जो तेल उत्पन्न करते हैं— यद्यपि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अपने यहाँ काफी तेल पैदा करता है किन्तु फिर भी यह अपनी बढ़ती हुई माँग के लिए कोलम्बिया, वेनेजुएला और मैक्सिको से तेल आयात करता है। तेल आयात करने वाले अन्य मुख्य देश फ्रान्स, जर्मनी, बेलजियम, इटली कनाडा, जापान और भारत हैं। तेल निर्यात करने वाले मुख्य देश वेनेजुएला, ईरान, रूमानिया, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मैक्सिको, ईराक, कोलम्बिया, बरमा और इंडोनेशिया हैं।

नीचे की तालिका में मिट्टी के तेल का व्यापार बताया गया है :—

मुख्य निर्यातक	(प्रतिशत में)	मुख्य आयातक	(प्रतिशत में)
वेनेजुएला	३७	नीदरलैंड	२१
कुवैत	२१	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	१६
सौदी अरब	१६	इङ्गलैंड	१३
ईराक	१४	फ्रान्स	१२
		इटली	७
		कनाडा	६
योग	८८%	योग	७५%

तेल का संरक्षण (Conservation of Oil)—वर्तमान समय में तेल की एक विकट समस्या पैदा हो गई है। संसार में उत्पन्न होने वाले मिट्टी के तेल का भंडार शीघ्रता से समाप्त होता जा रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसको खान से निकालना और इससे भिन्न वस्तुएँ तैयार करके दूर के

१. James & Drakenswald : *Ibid*, p. 403.

जाता है गैस और तेल बड़ी तेजी से ऊपर आ जाते हैं और जिस प्रकार दूध से मलाई अलग हो जाती है उसी प्रकार तेल से गैस। कभी २ तेल न पैदा करने वालों क्षेत्रों से भी गैस प्राप्त होती है। इन्हें गैस-क्षेत्र (gas-field) कहा जाता है और वहाँ तेल के कुओं की भाँति गैस के कुए खोदे जाते हैं। सं० राष्ट्र में गैस के कुल उत्पादन का ५०% केवल गैस के कुओं से प्राप्त होता है और शेष तेल के कुओं से।

खनिज तेल की भाँति प्राकृतिक गैस भी पृथ्वी के गर्भ से बड़ी सरलता से प्राप्त हो जाती है किन्तु गैस कुए से बड़ी तेजी से निकलती है और उत्तमोत्तम साधनों के होते हुए भी बहुत सी गैस नष्ट हो जाती है। यह या तो जलने के लिये छोड़ दी जाती है या वायुमण्डल में विलीन हो जाती है।

पहले गैस का वितरण साधारणतया १०० से २५० मील की दूरी तक ही सीमित था किन्तु अब गैस को उत्पादन क्षेत्रों से १८०० मील की दूरी तक पहुँचाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में उत्पादन क्षेत्रों से उपभोग केन्द्रों तक ३००,००० मील लम्बे नलों का जाल सा बिछा दिया गया है। कनाडा में भी अल्बर्टा से मोनटाना, टोरेन्टो और विन्नीपेग तक २२४० मील लम्बी नल की लाइनें बिछाई गई हैं। वैनेजुएला में गैस नलों द्वारा कैराकास के बन्दरगाह तक भेजी जाती है।

गैस का सबसे अधिक उत्पादन संयुक्त राष्ट्र में होता है। यहाँ विश्व के उत्पादन का ८५% गैस पैदा होती है। संयुक्त राष्ट्र के उत्पादन का ८१% कैलीफोर्निया, टैक्साज, लूसियाना और ओक्लाहामा के राज्यों से प्राप्त होता है जहाँ संयुक्त राष्ट्र के जमावों का ९०% पाया जाता है। अन्य प्रमुख उत्पादक इंडोनेशिया है।

सन् १९०२ में प्राकृतिक गैस का उत्पादन निम्न प्रकार था :—

(१० लाख घन मीटरों में)

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२२६,६७२	वेनेजुएला	२०,८७४
इटली	१,४३६	फ्रांस	२७६
इंडोनेशिया	१.०९९	जर्मनी	९६
रूमानी	१,०९४		
		विश्व का योग	२९०,०००

गैस का प्रयोग १९वीं शताब्दी के मध्य में ही आरम्भ हुआ है। बहुत समय तक यह घरों में खाना बनाने, प्रकाश करने और मकानों को गर्म करने में ही प्रयुक्त की जाती थी किन्तु उस शताब्दी के अन्त से गैस यांत्रिक शक्ति के रूप में भी व्यवहृत की जाने लगी है। आधुनिक युग में गैस का उपयोग कई कार्यों में किया जाता है। इसका सबसे अधिक उपभोग उद्योग-धन्धों में होता है। संयुक्त राष्ट्र में गैस के कुल उत्पादन का ७५% उद्योग-धन्धों और १७% घरेलू कार्यों तथा ५% व्यापारिक कार्यों में प्रयुक्त होता है। गैस तेल और गैस के कुओं से तेल तथा गैस निकालने के लिए शक्ति के रूप में भी प्रयोग में लाई जाती है। इसका उपभोग कांच, तेल साफ करने, लोहे, सीमेंट

इत्यादि के कारखानों में भी किया जाता है। गैस से काला कारबन भी बनाया जाता है जो टायर, स्याही और रंग आदि बनाने के काम में आता है।

जलशक्ति वर्तमान काल में बडे आर्थिक महत्व का एक प्रमुख प्राकृतिक साधन है। कहा जाता है कि जलशक्ति के विकास एवं उत्पादन और उपभोग से ही किसी देश की आर्थिक अवस्था का पता लगाया जा सकता है। यह निश्चित तथ्य है कि भूमण्डल पर कोयले और तेल के भंडार प्रायः सीमित हैं और संभवतः वे कुछ ही शताब्दियों के लिए लाभदायक हो सकते हैं। किन्तु इसके विपरीत पानी शक्ति का एक अटूट साधन है जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। दूसरे, कोयले या तेल की अपेक्षा पानी की अधिक जगहों पर बहुतायत है अतः विश्व के अनेक देशों में जल शक्ति के विकास की कुछ न कुछ संभावनायें पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त शक्ति के अन्य साधनों की अपेक्षा जलशक्ति बहुत सस्ती पड़ती है एवं इसका प्रयोग उत्पत्ति के स्थानों से बहुत दूर तक भी किया जा सकता है।

जल विद्युत बनाने के लिए ऐसा स्थान चुना जाता है जहाँ स्वाभाविक जल प्रपात पाये जाते हैं अथवा जल प्रपात न होने पर वहाँ बांध आदि बना कर कृत्रिम जल प्रपात तैयार किए गए हों। प्रपात के जल की शक्ति द्वारा जल-चक्की (Turbine) चलाई जाती है जिनसे बिजली उत्पन्न करने वाला यंत्र (Dynamo) कार्य करता है और विद्युतशक्ति तैयार हो जाती है। इसे तारों द्वारा दूरस्थ स्थानों को लेजाया जा सकता है। जलविद्युत शक्ति का विकास बहुत ही थोड़े समय पूर्व ही हुआ है। संसार का सर्व प्रथम विद्युत-गृह फ्रांस में १८८३ में स्थापित किया गया। तब से जलशक्ति का विकास संसार के सभी देशों में बड़ी द्रुत गति से हुआ है।

जलशक्ति के विकास में निम्न भौगोलिक और आर्थिक दशाओं का होना आवश्यक है:—

(१) प्रपातों का होना

जिस स्थान पर जलशक्ति उत्पन्न की जाय वहां का धरातल ऊँचा-नीचा होना चाहिए। जब नदियां पर्वतीय प्रदेशों अथवा हिमानियों द्वारा प्रभावित क्षेत्रों पर होकर बहती है तो उनके मार्ग में झरने अथवा प्रपात बन जाते हैं। ग्लेशियर प्रभावित जल प्रदेश इस दृष्टि से बड़े लाभदायक होते हैं। सहायक नदियों की घाटियां खड़े ढाल वाली होने के कारण नदियों के मार्ग में बाधायें डालती हैं जिससे जलागार और जल प्रपातों की अधिकता पाई जाती है। जिस झरने का पानी जितनी ऊँचाई से गिरेगा, उस स्थान पर उतने ही कम खर्च और सुविधा से जलशक्ति के उत्पन्न होने की संभावना होगी। यदि थोड़े परिमाण का जल अधिक ऊँचाई से गिरता है तो शक्ति का उत्पादन भी बड़ी मात्रा में होगा और जहां अधिक परिमाण का जल कम ऊँचाई से गिरता है तो शक्ति भी उसी मात्रा में उत्पन्न होगी। भारत में उत्तर प्रदेश में गंगा नहर में हरिद्वार से अलीगढ़ तक ११ जल प्रपात पाये जाते हैं—यथा बहादुराबाद, मुहम्मदपुर, सलवा, चितौड़ा, सुमेरा, बुलन्दशहर, पालरा, भोला आदि—जहां जलशक्ति प्राप्त करने के बड़े महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये हैं। दक्षिणी भारत में पश्चिमी घाटों के

जल प्रपातों तथा मध्यप्रदेश में धुंआधार जल प्रपात और मैसूर में जिरसपा प्रपात पर जल-विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है। अफ्रीका में विक्टोरिया तथा उत्तरी अमेरिका में नियाग्रा के संसार प्रसिद्ध झरनों का महत्व जलशक्ति पैदा करने के कारण ही है। जापान, स्वीडेन तथा नार्वे और उत्तरी इटली में भी नदियों के मार्गों में जल प्रपातों के कारण ही सस्ती जलशक्ति उत्पन्न की जाती है।

(२) जल का निरन्तर प्राप्त होना

जलशक्ति के उत्पादन करने के लिए जल की मात्रा का निरन्तर और एकसी मात्रा में उपलब्ध होना भी आवश्यक है। अस्तु, जिन क्षेत्रों में वर्षा पर्याप्त और सालभर समान रूप से होती रहती है वहाँ नदियों में प्रवाहित जल की राशि भी निरन्तर समान गति से प्राप्त होती रहती है तथा जिन स्थानों में वर्षा मौसमी होती है वहाँ कुछ महीनों में अधिक पानी प्राप्त होता है और नदियों में बाढ़ें आ जाती हैं। किन्तु शेष महीने नदियों में पानी की मात्रा कम रह जाती है और जलशक्ति के लिए जल की मात्रा पर्याप्त नहीं रहती। ऐसे स्थानों पर बांध आदि बनाकर वर्षा ऋतु के जल को रोका जाता है और इस जल को कृत्रिम रूप से झरने के रूप में ऊँचाई से गिराया जाता है। नार्वे, स्वीडेन तथा स्विटजरलैंड, में प्राकृतिक रूप से बने झरनों की अधिकता है। अतः जल-विद्युत शक्ति भी अधिक बनाई जाती है।

नदियों में बाढ़ नहीं आनी चाहिए क्योंकि इससे शक्ति-यंत्रों को हानि पहुँचने की संभावना रहती है और यदि नदियों में पानी कम हो जाता है तो यंत्र ठीक प्रकार से बिजली नहीं बना सकते और उन्हें अनिवार्यतः बन्द कर देना पड़ता है। इसलिए प्रायः बाढ़ वाली नदियों के ऊपरी भागों में बांध अथवा झील बनाकर जल-राशि को रोक लिया जाता है जिससे जलशक्ति के लिए वर्ष भर ही पर्याप्त मात्रा में जल मिल सके। संयुक्त राष्ट्र में नियागरा नदी के मार्ग में झीलें हैं अतः उसमें पानी की मात्रा वर्ष भर ही लगभग एक सी पाई जाती है किन्तु सस्क्वेहैना नदी में जल की मात्रा प्रति सैकिन्ड ५,००० से १९६ ००० घन फुट तक घटती-बढ़ती रहती है क्योंकि इसके मार्ग में झीलों का अभाव है अतः जल-विद्युत बनाने में कठिनाई पड़ती है।

(३) अन्य शक्ति के साधनों का अभाव

जलशक्ति के उत्पादन के लिए वे ही प्रदेश अनुकूल होते हैं जहाँ कोयला अथवा मिट्टी का तेल न तो पर्याप्त मात्रा में मिलता ही हो और न वह सस्ता ही हो। इसीलिये संसार के बड़े-बड़े महत्वपूर्ण जल-शक्ति उत्पादन केन्द्र उन्हीं क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ ये दोनों साधन महँगे पड़ते हैं। जल-विद्युत की प्रारंभिक लागत बहुत अधिक पड़ती है और उसमें लगी हुई पूँजी पर ब्याज आदि का व्यय भी अधिक हो जाता है अतः बिजली कुछ महँगी पड़ती है। किन्तु एक बार जल-यंत्रों के चालू किये जाने पर उन्हें काम में लाना ही पड़ता है अतः जिन देशों में लिगनाइट कोयला अधिक पाया जाता है वहाँ जल से विद्युत शक्ति प्राप्त नहीं की जाती किन्तु इटली जापान, दक्षिणी भारत, स्वीडेन, फ्रांस नार्वे आदि देशों में कोयले की कमी किन्तु जल राशि की अधिकता के कारण अधिक जल विद्युत शक्ति उत्पादित की जाती है।

(४) खपत के केन्द्रों का निकट होना

चूँकि विद्युत शक्ति को उत्पादन के केन्द्रों से अधिक दूरी तक भेजने में काफी खर्चा पड़ता है अतः यथा संभव खपत के केन्द्र जलशक्ति पैदा करने वाले क्षेत्रों के निकट ही होने चाहिए। जलशक्ति तारों द्वारा दूरस्थ केन्द्रों को भेजी जाती है किन्तु ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जाती है त्यों-त्यों शक्ति का क्षय होने लगता है। साधारणतः शक्ति संवाहन में १० से २०% तक विद्युत-शक्ति का ह्रास होता है :—

१०० मील की	दूरी पर	८	%
२००	,,	१०	,,
३००	,,	१३	,,
४००	,,	१७	,,
५००	,,	२१	,,

अधिक दूर तक तार लगाना और उनकी देखभाल करना बड़ा व्ययसाध्य हो जाता है। इस व्यय के कारण एक ऐसा बिन्दु आजाता है जहाँ से आगे शक्ति-संवाहन की लागत संवाहित शक्ति के मूल्य से बढ़ जाती है। अतः खपत के केन्द्र विद्युत उत्पादन के क्षेत्रों के निकट होना अनिवार्य है। संयुक्त राष्ट्र में २८७,०००० वाल्ट की शक्ति २५० से ३०० मील तक बड़ी सरलता से भेजी जा रही है। बोनविले शक्ति प्रशासन ने तो एक ६०० मील लम्बी शक्ति ले जाने वाली तार की लाइन लगाई है।

(१) जल-विद्युत उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली पुच्छल जलराशि (Tail-water) का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सके तो थोड़े से ही अतिरिक्त व्यय से नहरें बनाकर संबन्धित क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है और जल-शक्ति के उत्पादन का मूल्य भी घटाया जा सकता है।

(२) जल विद्युत उत्पादन के क्षेत्र ऐसे स्थानों पर स्थित होने चाहिए जहाँ मशीनें, आवश्यक भारी यंत्र एवं अन्य सामान सुगमतापूर्वक पहुँचाया जा सके।

निम्न तालिका में विश्व के विभिन्न देशों में उन बांधों को बताया गया है, जो जल विद्युत उत्पादन के निमित्त बनाये गये हैं और जो १०० फुट से ऊँचे हैं[1] :—

देश	बांधों की वर्तमान संख्या	प्रति वर्ग मील पीछे बांध
आस्ट्रेलिया और टसमानिया	४०	७४,२००
कनाडा	३७	९९,८००
फ्रांस	५३	४,०१०
जर्मनी	३८	३,७६०
भारत	४०[2]	३१,३००

१. Major Industries Annual, 1954-55, p. 115.

२. २८ बांध इस समय हैं और १२ का निर्माण हो रहा है।

इटली	११९	१,००८
जापान	१६१	९१९
स्विटजरलैंड	२४	६६६
इंग्लैंड	२६	४६,५००
महाद्वीपीय संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (अलास्का सहित)	४९६	६,०९०

जलशक्ति का महत्व

शताब्दियों से यंत्र शक्ति के लिये कोयला तथा पेट्रोलियम का प्रयोग किया जाता रहा है, और अब भी हो रहा है। किन्तु जब से जल विद्युत का आविष्कार हुआ है तथा इसका उपयोग किया जाने लगा है, कोयले और पेट्रोल का महत्व कम होने लग गया है। कई क्षेत्रों में तो जल विद्युत ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया है। इसकी सर्व-प्रियता, शीघ्र प्रचार तथा महत्व-पूर्णता के अनेक कारण हैं :—

(१) कोयले तथा पेट्रोल की सुरक्षित मात्रा की एक सीमा है अतः निरन्तर प्रयोग करते रहने से एक ऐसा समय आ सकता है, जब कि इसके भण्डार समाप्त हो जावेगे, अतः इनका भविष्य सदिग्ध है। जबकि जल विद्युत का भण्डार अक्षय है यह निरन्तर उत्पन्न की जा सकती है। जहाँ जल विद्युत के उत्पादन की सुविधाएँ नहीं है वहाँ अन्य साधन खोज निकाले गये हैं, एवं प्रयत्न किये जा रहे हैं। उदाहरणार्थ कृत्रिम पेट्रोल, सूर्य के किरणों की शक्ति, ज्वार भाटा के जल की शक्ति आदि को काम में लाने के अविरल प्रयत्न जारी हैं।

(२) जल विद्युत के प्रयोग में स्वच्छता एवं सुविधा रहती है अतः इसे सफेद कोयला (White Coal) कहते हैं। कोयला तथा पेट्रोल की अपेक्षा इसे कम श्रमिकों द्वारा चलाया जा सकता है।

(३) विजली के प्रयोग से उद्योग के विकेन्द्रीकरण में आसानी हो गई है। उससे केन्द्रीकरण के दोषों से वचा जा सकता है।

(४) विजली द्वारा यन्त्र चलाने में वहुत कम विजली का व्यय होता है। जितनी शक्ति छः टन कोयले से मिलती है उतनी ही शक्ति एक अश्व-शक्ति विजली से प्राप्त होती है।

(५) विजली को केन्द्र से दूर तक ले जाने में प्रारम्भ में तार का एवं खम्भे लगाने का जरूर खर्चा पड़ता है, किन्तु बाद के वर्षों में इनका उपयोग होता रहता है, अतः विजली को कारखानों तक ले जाने में कोयले अथवा तेल की अपेक्षा कम व्यय होता है। परिणामस्वरूप विजली सस्ती पड़ती है।

(६) विजली का अधिकाधिक प्रयोग वढाने मे कोयले की वचत होती है, और उसके ढोने में जो यातायात के साधन काम में लाये जाते हैं, उनका उपयोग अन्य वस्तुओं के वाहन में किया जा सकता है।

(७) कोयले के स्थान पर विजली के प्रयोग से रेलगाड़ियों के चलाने में अधिक सुविधाएँ रहती है। रेल को एकदम चालू करने तथा रोकने में वहुत कम समय लगता है। रफ्तार अधिक तेज हो सकती है। पहाड़ों की चढ़ाई में

बिजली की शक्ति द्वारा चालित रेलगाड़ी अधिक उपयुक्त रहती है क्योंकि उतार की यात्रा में विद्युत उतपन्न होती रहती है जिसका प्रयोग चढ़ाव पर किया जा सकता है। सुरगों में कोयले के धुंएँ से दम घुटने लगता है, अतः ऐसे स्थानों पर धूम्र रहित रेलगाड़ियाँ अधिक उपयुक्त रहती हैं। रेलगाड़ी चलाने में बिजली का प्रयोग होने की दशा में रेलवे लाइन के समीपस्थ भागों में विद्युत का वितरण, प्रकाश, कुटीर उद्योग, इत्यादि के लिये किया जा सकता है। भारत में विद्युत चालित रेलों की लम्बाई केवल २४० मील है जिनमें से १८४·६५ मध्यवर्ती रेलवे पर, ३७·२५ मील पश्चिमी रेलवे पर और १८·१५ मील दक्षिणी रेलवे पर हैं। स्विटजरलैण्ड, इंगलैण्ड एवं जर्मनी में इस प्रकार की रेलें अधिक चलाई जाती हैं।

(८) यों तो प्रायः उद्योगों के सभी क्षेत्रों में बिजली के प्रयोग से सुविधाएँ रहती हैं किन्तु कुछ विशेष उद्योगों में विद्युत का प्रयोग बहुत ही आवश्यक है। उदाहरणार्थ अल्यूमीनियम बनाने में, वायु मण्डल से नाइट्रोजन प्राप्त करने में, लकड़ी की लुग्दी बनाने, कागज और लोहे की चादरें बनाने में इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

जलशक्ति का उपयोग

आधुनिक काल में जल विद्युत शक्ति का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसके कई कारण हैं :—

(१) अल्यूमीनियम, कृत्रिम रेशे तथा समाचार पत्रों का कागज (news-print) बनाने में अधिक और सस्ती शक्ति की आवश्यकता होती है। यह विद्युत शक्ति द्वारा ही मिलती है।

(२) बहुत से उद्योग कोयले की खानों से दूर स्थापित किये गये हैं जहाँ कोयला पहुँचाना व्ययसाध्य होता है किन्तु विद्युत शक्ति सरलता से भेजी जा सकती है।

(३) संसार की आवश्यकता से कम कोयला निकाला जा रहा है।

(४) खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए सिंचाई की उन्नति करनी पड़ी है। इस उन्नति के लिए नदियों पर बांध बनाने पड़े हैं। इन बांधों पर बहते हुए जल से विद्युत बनाना सरल हुआ है।

जल विद्युत शक्ति का उपयोग मकानों तथा सड़कों पर रोशनी करने, ठंडे देशों में गर्म करने, ट्यूब वैलों से जल निकालने तथा खेती में ट्रैक्टर आदि चलाने के अतिरिक्त उद्योग धन्धों में अधिक किया जाता है। रासायनिक और धातु शोधन सम्बन्धी (Metallurgical) उद्योगों में यह अधिक प्रयुक्त की जाने लगी है जैसा कि अगले पृष्ठ की तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

---

१. Govt of India, 'Bhagirath' Anniversary Number, June 1955 p. 25.

देश	जल-विद्युत शक्ति का कुल उपभोग (१० लाख किलोवाट में)	विद्युत-धातु शोधन एवं विद्युत रासायनिक उद्योगों में जल विद्युत शक्ति का उपभोग (१० लाख किलोवाट में)	कुल उपभोग के अनुपात में धातु शोधन एवं रासायनिक उद्योगों में जल विद्युत का उपभोग (%)
फ्रांस	२८,८७७	४,२३८	१४·७
पं० जर्मनी	३७,८३४	६,६००	२५·४
इटली	२०,६६८	४,६०७	२२·४
नार्वे	१५,५५५	७,०५०	४५·५
स्वीडेन	१५,५५०	२,६७७	१६·६
स्विटज़रलैंड	८,४४२	१,७६४	२१·०
जापान	३१,६४३	५,७८८	१८·३

भारत के आँकड़े प्रस्तुत नहीं हैं किन्तु यह ज्ञात है कि लोहे और स्पात तथा एल्यूमीनियम और तांबे के उद्योग में कुल विद्युत शक्ति का १२·८% उपभोग होता है। नीचे की तालिका में जल विद्युत शक्ति का उपभोग भारत में किन-मदों में होता है यह बताया गया है :—[1]

मद	१९५२	१९५५	१९६०	१९७० (अनुमानित मांग)
घरेलू उपयोग में (जलाने और रोशनी के लिए)	६२९	७५९	१,३६०	२,३६०
व्यावसायिक शक्ति के लिए (जलाने व रोशनी के लिए)	३४७	४४६	४९९	७००
औद्योगिक शक्ति	३,२०६	४,७२१	५,६०५	८,६८०
सिंचाई	२१५	२३१	५४२	९५२
अन्य उपयोग में	६१९	९४	९३८	१,३२०
उपयोग का योग (१० लाख किलोवाट में)	५,०१६	६,२५१	८,९४४	१४,०१२

भारत में विद्युत शक्ति का उपभोग प्रति व्यक्ति पीछे अन्य देशों की तुलना में बहुत ही कम है। हमारा वार्षिक प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग केवल १७·३ किलोवाट है जबकि उपभोग की यह मात्रा पश्चिमी देशों में बहुत अधिक है—कनाडा में प्रति व्यक्ति पीछे ३,५६६ किलोवाट शक्ति ; स्विटज़रलैंड में १,९८८ किलोवाट; संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में २,२९६ किलोवाट ; नार्वे में २,०२४ किलोवाट ; स्वीडेन में २,४०० किलोवाट और इंग्लैंड में १,०३३ किलोवाट है।[2]

१. Major Industries Annual, 19545-5, p. 119.

२. India, 1955.

भारत में विभिन्न राज्यों में भी शक्ति के उपभोग में बड़ी विषमता पाई जाती है। दिल्ली में सबसे अधिक (६४ किलोवाट) और उड़ीसा में सबसे कम (०·५७ किलोवाट) उपभोग होता है। मैसूर में ५६ किलोवाट, बम्बई मे ५५ किलोवाट और बंगाल में ५४ किलोवाट शक्ति प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग में ली जाती है।[1] मैसूर मे इतने अधिक उपभोग का मुख्य कारण यह है कि वहाँ औद्योगिक विकास बहुत हुआ है। हिन्दुस्तान एयर-क्राफ्ट, इंडियन टैलीफोन उद्योग, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, मैसूर लोहे और स्पात के उद्योग, सीमेंट, शक्कर, रासायनिक खाद तथा कोलार सोने के क्षेत्र आदि संस्थाएँ जल विद्युत शक्ति का बहुत अधिक उपयोग करती हैं।

अनुमान लगाया गया है कि धातु शोधन में प्रति शॉर्ट टन पीछे औसत तौर पर विभिन्न धातुओं के पीछे निम्न रूप मे जल विद्युत शक्ति का उपभोग आवश्यक है :—[2]

एल्यूमीनियम	२४,०००	किलोवाट	क्लोरीन और का० सोडा	३,४००	कि०वा०
तांबा	३६७	,,	फैरो-सिलीकन	१०,०००	,,
जस्ता	३,७१४	,,	कॉस्ट और अलाय लोहा	५०० से ६००	,,
			कॉस्ट स्टील	५०० से ७००	,,
मैग्नेशियम	१६,००० से २०,०००		विद्युत पिग आयरन	२,५००	,,

विश्व में जल विद्युत का विकास

जल विद्युत की सुरक्षित और उत्पादित राशि का अनुमान करना बड़ा ही दुष्कर है, क्योंकि अभी इसके खोज सम्बन्धी कार्य बहुत ही अविकसित दशा में हैं। विश्व की सुरक्षित राशि का लगभग ४१½% अफ्रीका में पाया जाता है। किन्तु इसमें से बहुत ही नगण्य राशि (½ से १%) का उपभोग किया जा सका है। एशिया में सम्पूर्ण विश्व का २२% पाया जाता है जिसमें से ४% का ही उपभोग हुआ है। वास्तव में उत्तरी अमेरिका में सुरक्षित राशि का केवल १३% और यूरोप १०½% पाया जाता है किन्तु दोनों ही महाद्वीपों में क्रमशः ४०% व ३२% का विकास किया गया है क्योंकि इन्हीं महाद्वीपों में औद्योगिक विकास अधिक हुआ है। दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया में जल विद्युत शक्ति का और भी कम विकास हो पाया है जैसा कि अगली तालिका से स्पष्ट होगा।[3]

---

१. India, 1956, p. 190.

२. Bhagirth, June, 1955, p. 27.

३. (i) U. S. Geological Survey: Developed and Potential Water Power of the World, 1951, p. 7; (ii) Man and His Material Resources, p. 53.

जल विद्युत शक्ति का वितरण
(अश्व-शक्ति में)

महाद्वीप	सुरक्षित	जलशक्ति गृहों की क्षमता (१० लाख) किलोवाट	उत्पादित
अफ्रीका	२७२,०००,०००	·६	१७५,०००
एशिया	१५१,०००,०००	१३·७	६,०००,०००
उत्तरी अमेरिका	८७,०००,०००	४१·१	२९,०००,०००
दक्षिणी अमेरिका	५५,०००,०००	४०·८	१,३००,०००
यूरोप	६९,०००,०००	३·१	२७,५००,०००
ओसीनिया	२३,०००,०००	१·४	६००,०००
विश्व	६५७ ०००,०००	१००·७	६४,५७५,०००

नीचे की तालिका में विश्व में जल विद्युत शक्ति का उत्पादन बताया गया है:—

जलविद्युत उत्पादन की मात्रा (दस लाख किलोवाट)

प्रदेश	१९३९	१९५१-५२
अलजीरिया	२१२	६६६
फ्रा. मोरक्को	९८	६०२
ब्राजील	५५५	२९८८
चिली	२८४	१६८२
मेक्सिको	१५२९	४८९६
लंका	२१·७	१०७·७
भारत	२५३२	५८५२
हिन्द चीन	६४·४	२१७
मलाया	१४४	९१३
फिलिपाइन	१०९	४९७
अर्जेन्टाइना	२१९९	४७१८
आस्ट्रेलिया	३९७२	१०५०३
आस्ट्रिया	२८९२	७३७५
बेल्जियम	५५४९	९४९८
जेकोस्लोवेकिया	४११५	१००००
जर्मनी	४९९६९	५१३५५
इटली	१५४३०	२९२२३
जापान	३०३९१	४७७२९
हालैंड	३४८४	७८१६
न्यूजीलैंड	१२५३	३४५०
द० अफ्रीका संघ	५३२६	११९९०

सुरक्षित विद्युत शक्ति

नीचे की तालिका में विश्व में अनुमानित जलशक्ति के आँकडे प्रस्तुत किए गये हैं :—

देश	संभावित जल शक्ति (फ्रांसीसी विशेषज्ञों के अनुसार)	(अश्व-शक्ति में) (संयुक्त राष्ट्र के भूगर्भिक सर्वेक्षण के अनुसार)
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२,८०,००,०००	३६२,००,०००
कनाडा	२,००,००,०००	३३५,००,०००
फ्रांस	४७,००,०००	६०,००,०००
नार्वे	५,५१,००,०००	१०,५०,००,०००
स्वीडेन	४५,००,०००	—
इटली	३८,००,०००	६०,००,०००
स्विटजरलैंड	१४,००,०००	—
जर्मनी	१३,५०,०००	—
जापान	६०,००,०००	७२,००,०००
स्पेन	४०,००,०००	—
मैक्सिको	६०,००,०००	८५,००,०००
ब्राजील	२,५०,००,०००	३,६०,००,०००
ब्रिटेन	५,८५,०००	—
फिनलैंड	१५,००,०००	—
भारत	२,७०,००,०००	३,९०,००,०००
बैल्जियम कांगो	९,००,००,०००	१३,००,००,०००
फ्रांसीसी कांगो	३,५०,००,०००	५०,००,००,०००
चीन	२,००,००,०००	२२,००,००,०००
फ्रांसीसी कैमरून	१,३०,००,०००	१,८५,००,०००
साइबेरिया	८०,००,०००	७,८०,००,०००
नाइजीरिया	९०,००,०००	१,३०,००,०००
पूर्वी बृटिश अफरीका	—	६७०,००,०००
बोर्नियो, न्यूगिनी, पैपूआ	—	१०,००,००,०००

अगले चित्र में विश्व की अनुमानित जलशक्ति का वितरण बताया गया है।

उक्त तालिका से स्पष्ट होगा कि विश्व के जल-शक्ति के अनुमानित भण्डार सबसे अधिक उष्णकटिबन्धीय अफ्रीका में पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि उसका बहुत सा भीतरी भाग एक ऊंचा पठार है और प्राय सभी नदियों में तट के पास जल प्रपात पाये जाते हैं। कांगो नदी अपने मार्ग में ३००० फुट ऊंचाई से बहते हुए कई प्रपात बनाती है। स्टैनले प्रपात में तो इतनी शक्ति भरी है कि उससे १०० से १५० लाख, अश्व शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है। मध्य अफ्रीका में वर्षा भी अधिक होती है।

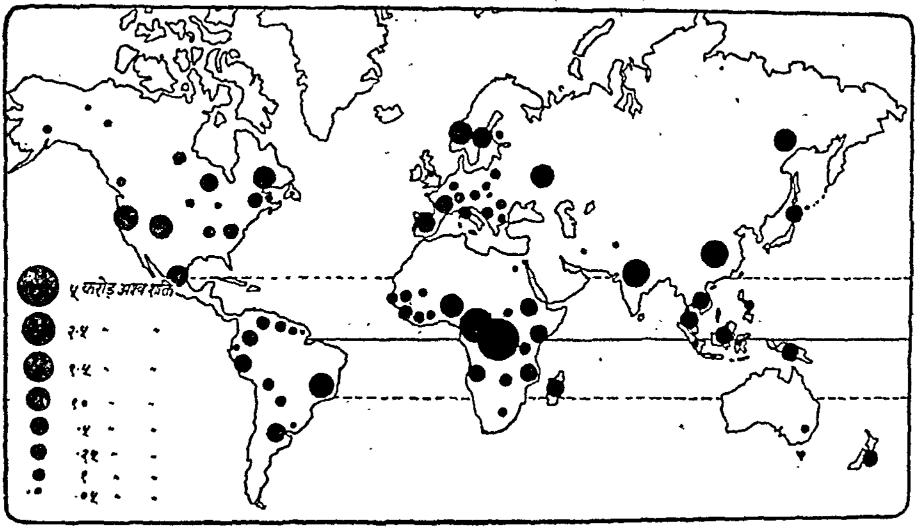

चित्र १८९—जलविद्युत शक्ति के सुरक्षित क्षेत्र

एशिया का स्थान दूसरा है लेकिन क्षेत्रफल देखते हुए जलशक्ति कुछ भी नहीं है। संभावित जलशक्ति की मात्रा के अनुसार उत्तरी अमेरिका का स्थान तीसरा है। संभावित जलशक्ति के विश्व वितरण की मुख्य विशेषता यह है कि उसका बहुत सा अंश उन महाद्वीपों में पाया जाता है जो बहुत ही पिछड़ी अवस्था में हैं।

नीचे की तालिका में विश्व के २० प्रमुख देशों में जलशक्ति की क्षमता बताई गई है :—

जलशक्ति की क्षमता १९५०

देश	कुल क्षमता (१० लाख अश्वशक्ति में)	प्रति व्यक्ति पीछे अश्व-शक्ति
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२७.५	.१८
कनाडा	१२.६	.९०
जापान	९.२	.११
इटली	८.५	.१९
फ्रांस	७.२	.१७
रूस	४.३	.०२
स्वीडेन	४.१	.६०
नार्वे	३.९	१.३०
स्विटजरलैंड	३.६	.८०
जर्मनी	२.७	.०४
स्पेन	२.३	.०८
आस्ट्रिया	२.०	.३०

देश	कुल क्षमता (१० लाख अश्वशक्ति में)	प्रति व्यक्ति पीछे अश्व-शक्ति
ब्राजील	१'९	'०४
कोरिया	१'८	'०६
भारत, पाकिस्तान, लंका	०'९	'०२
इंग्लैंड	०'८	'०२
न्यूजीलैंड	०'७	'३५
फिनलैंड	०'७	'१८
आस्ट्रेलिया-टसमानिया	०'४	'०५
चिली	०'४	'०७

इस तालिका से विदित होता है कि जलविद्युत का सबसे अधिक विकास यूरोपीय देशों और उत्तरी अमेरिका में हुआ है। इटली, फ्रांस, स्वीडन, नार्वे, स्विटजरलैण्ड और जर्मनी यूरोप की समस्त विकसित शक्ति का ७५% उत्पन्न करते हैं। व्यक्तिगत रूप से इटली ने अपनी जलशक्ति का ६०%, स्विटजरलैंड ने ६७%, जर्मनी ने ५४%, नार्वे ने ५२%, फ्रांस ने ४८%, स्वीडेन ने २७%, और रूस ने ३४% विकास किया है जबकि संयुक्त राष्ट्र ने अपनी २४% शक्ति और कनाडा ने ३४% शक्ति तथा भारत ने केवल १% शक्ति का विकास किया है।

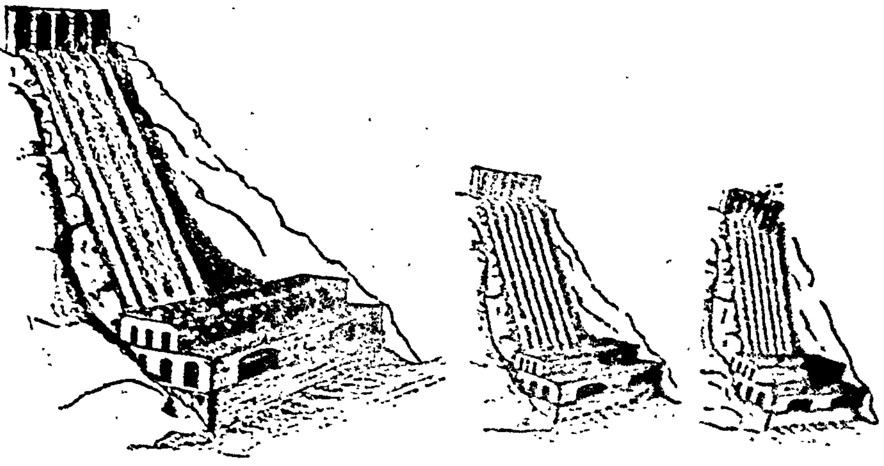

चित्र १९०—विश्व में जलविद्युत शक्ति का तुलनात्मक उत्पादन

इटली, स्विटजरलैंड, नार्वे, स्वीडेन आदि यूरोप के ऐसे देश हैं जिनमें कोयले का अभाव है और इसलिए जलशक्ति की भारी मांग होने से इन देशों में उसका विकास इतना अधिक हो सका है। यद्यपि फ्रांस और जर्मनी कोयला पैदा करने वाले देशों में प्रमुख हैं किन्तु वहां भी जलशक्ति का विकास बहुत हुआ है। फ्रांस के बहुत से भागों में महत्वपूर्ण कोयले की खानें नहीं पाई जातीं; दूसरे फ्रांस को अपने कोयले की आवश्यकता के लिए विदेशों पर

निर्भर रहना पड़ता है। जर्मनी में कोयला अधिक मिलता है फिर भी उद्योग-धन्धों के बढ़ने के कारण जलशक्ति का विकास आर्थिक दृष्टि से लाभदायक सिद्ध हुआ है। ग्रेट-ब्रिटेन में कोयले की अधिकता और संभावित जलशक्ति की कमी के कारण जलविद्युत का महत्व बहुत कम है। रूस में कोयला और तेल दोनों ही पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। संभावित जलशक्ति के अधिक होते हुए भी जलशक्ति का विकास अभी आरंभ ही हुआ है।

एशिया के देशों में संभावित शक्ति के अनुपात में विकास बहुत कम हुआ है। किन्तु जापान और कोरिया ऐसे देश हैं जहाँ जलशक्ति का विकास अपनी चरम सीमा पर हुआ है।

उत्तरी अमेरिका—सुरक्षित सम्पत्ति के दृष्टिकोण से उत्तरी अमेरिका का स्थान संसार में तीसरा है, लेकिन उत्पन्न की गई शक्ति के विचार से इसका स्थान प्रथम है। इस महाद्वीप में संयुक्त राष्ट्र और कनाडा में ही जलविद्युत उत्पादन का अधिकाधिक विकास हुआ है। आधुनिक औद्योगिक विकास के साथ ही जल विद्युत का उपभोग बहुत बढ़ गया है। उत्तरी अमेरिका में कुल ३ करोड़ अश्व-शक्ति जलविद्युत उत्पन्न की जाती है। संयुक्त राष्ट्र में सुरक्षित जलविद्युत सम्पत्ति की ५% बिजली उत्पन्न की जाती है। बाढ़ के सारे पानी को यदि बांधा जावे तो इस देश में केवल इस पानी से ८० करोड़ हार्स पावर बिजली तैयार की जा सकती है। १९२०–५३ के बीच जल विद्युत शक्ति का उत्पादन लगभग ११ गुना बढ़ा है। नीचे की तालिका से यह स्पष्ट होगा[1] :—

(लाख किलोवाट में)

	१९२०	१९५३
सम्पूर्ण उत्पादन	३९·४०५	४४२·६६५
जल-विद्युत शक्ति	१५·७६०	१०५ २३३
वाष्प शक्ति	२३·४८९	३३३·५४२
तेल शक्ति	·१५६	३·८९०

संयुक्त राष्ट्र में जल विद्युत का उत्पादन १८९९ के बाद से ही बढ़ा है। सन् १९०० में केवल २० लाख अश्व-शक्ति का उत्पादन किया गया किन्तु १९११ में यह मात्रा ७९ अ. श., १९३१ में १४८ अ. श., १९४० में २०० अ. श. और १९५३ में २२० लाख अश्व शक्ति हो गई।[2]

संयुक्त राष्ट्र के जल-विद्युत उत्पादन क्षेत्र—संयुक्त राष्ट्र के मुख्य जल विद्युत उत्पादन क्षेत्र पूर्वी अटलांटिक समुद्र तटीय पेटी में फैले हुए हैं। पीडमांट पठार और तट के बीच में झरनों की एक पंक्ति है। जो नदियाँ अपलेशियन पर्वत से निकलती हैं वे सभी डेलावेयर, सस्केहाना, मोटोमैक और जेम्स पठार को छोड़ते ही मैदानी भाग में प्रवेश करते समय अपने मार्ग में

---

१. USIS : Economic Forces in the U. S. A.—in Facts and Figures (1955) p. 57.

२. D. H. Davis : Earth and Man, 1955, p. 204.

झरने बनाती हैं। इन झरनों की पंक्ति (Fall Line) पर क्रमशः ट्रेन्टन, फिलाडेलफिया, बाल्टीमोर, वाशिंगटन, रिचमांड, पीटर्सवर्ग, रैले, कोलंबिया,

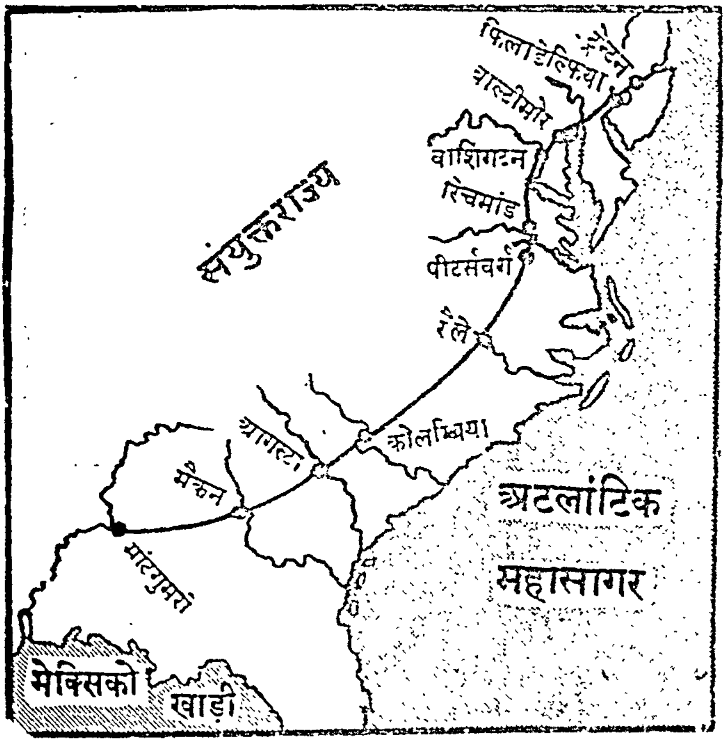

चित्र १६१

आगस्टा, मैकन आदि नगर बसे है। अन्य क्षेत्र झीलों के पास और रॉकी पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित हैं। संयुक्त राष्ट्र के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित है :—

(१) न्यू इङ्गलैंड की रियासतें (New England States)— इस क्षेत्र में कानेक्टिकट, माएन, मैसाचुसेटस, न्यू हेम्पशायर, रोडद्वीप और वरमोण्ट शामिल हैं। इस क्षेत्र में १२१ जल विद्युत ग्रह हैं जिनसे हर साल २७० करोड़ किलोवाट (Kilowatt) विजली पैदा की जाती है। ये क्षेत्र प्राचीन समय से हिम नदियों की क्रियाओं से प्रभावित हुआ था इसलिए यहाँ असंख्य छोटी-वड़ी झीलें और प्राकृतिक जल प्रपात पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में कोयला नहीं पाया जाता और यह क्षेत्र कोयला क्षेत्रों से काफी दूर पड़ता है। इसलिये प्राकृतिक सुविधाओं की उपस्थिति में काफी जल विद्युत तैयार की जाती है। अधिक वर्षा होने से सभी झीलों में सारे साल आवश्यकतानुसार काफी पानी रहता है। इस क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र की अन्य रियासतों की अपेक्षा कहीं अधिक जल विद्युत उत्पन्न की जाती है।

(२) दक्षिणी एटलांटिक रियासतें (South Atlantic States)—इस क्षेत्र में वर्जीनिया, उत्तरी केरोलिना, दक्षिणी केरोलिना रियासतें शामिल हैं। इन रियासतों में ब्लू पर्वत और मैदानी पेटी के संगम क्षेत्र

(Piedmount Area) में प्रपात-रेखा (Fall-Line) के सहारे असंख्य प्रपात उपस्थित है जिनसे काफी जल विद्युत का विकास हुआ है। इस क्षेत्र में काफी

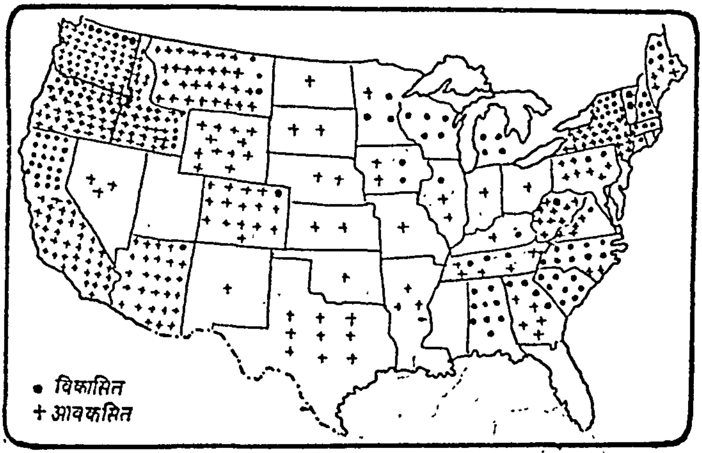

चित्र १९२—सं० रा० अमेरिका में जल विद्युत शक्ति

वर्षा होती है और झीलों में सारे वर्ष पानी भरा रहता है। इस क्षेत्र का सबसे बड़ा जल-विद्युत-गृह चारलोट नगर के पास है। यहाँ की घनी आबादी, औद्योगिक उन्नति और शक्ति की माँग के कारण खपत भी बहुत होती है। यहाँ से उत्तरी रियासत और औद्योगिक नगर वाशिंगटन और बाल्टीमोर को भी बिजली भेजी जाती है।

(३) नियाग्रा जल प्रपात क्षेत्र (Niagra Fall)—यह क्षेत्र पूर्ण रूप से न्यूयार्क रियासत में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में नियाग्रा जल प्रपात से काफी जल विद्युत उत्पन्न की जाती है। नियाग्रा प्रपात इरी और ओण्टारियो झीलों के मध्य स्थित है। कुल उत्पन्न की गई बिजली की दो-तिहाई संयुक्त राष्ट्र में आती है। यहाँ उत्तरी अमेरिका का सबसे बड़ा विद्युत गृह है। यहाँ से पूर्व में अत्यन्त उन्नतशील औद्योगिक क्षेत्रों को बिजली प्राप्त होती है। कोयले का अभाव और औद्योगिक शक्ति की माँग के कारण यहाँ विद्युत का काफी विकास हो गया है।

(४) महान झीलों का दक्षिणी क्षेत्र (Great-lakes Area)—इस क्षेत्र में सुपिरियर, मिशीगन, ह्यूरन झीलों के दक्षिण में स्थित विसकांसिन और मिशिगन रियासतों का भाग शामिल है। ये दोनों ही रियासतें हिम नदी का प्रभाव क्षेत्र रही हैं। इसलिये असंख्य छोटी-बड़ी झीलें इस क्षेत्र में हैं। नदियाँ छोटी और द्रुतगामी हैं और औद्योगिक माँग भी अधिक है। यह भाग कोयला क्षेत्रों से काफी दूर पड़ता है।

(५) पेसिफिक तट क्षेत्र (Pacific Area)—इस क्षेत्र में केलीफोनिया और अरीजोना रियासतें शामिल हैं। पूर्वी तटीय मैदान की तरह इस क्षेत्र में छोटी, द्रुतगामी नदियों का लगातार एक क्रम उत्तर से दक्षिण तक फैला है। इस क्षेत्र में कोलोरोडो नदी पर बने बाँधों के द्वारा

काफी जल-विद्युत बनाई जाती है। बाधों में प्रसिद्ध बाँध हूवर, ग्राण्ड कूली और बोल्डर बांध सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। पहाड़ी ढालों की उपस्थिति, कोयले की कमी, पर्याप्त ढलू भूमि, सिचाई के साधनों की अत्यधिक आवश्यकता, जाड़े की ऋतु में घनी वर्षा का होना, गरमी की ऋतु में बर्फ के पिघलने से काफी पानी की प्राप्ति और तटीय बड़े नगरों में बिजली की बड़ी मांग अन्यतम सुविधायें हैं।

पिछले कुल समय से संयुक्त राष्ट्र की केन्द्रीय सरकार ने कुछ ऐसी योजनाओं को कार्यान्वित किया है जिनका उद्देश्य न केवल जल विद्युत शक्ति का ही विकास करना है बल्कि उनके द्वारा बाढ़ का नियंत्रण, जलमार्ग का विकास, सिचाई और भूमि का वैज्ञानिक उपयोग, घरेलू कार्यों के लिए पानी की व्यवस्था, मछली पकड़ने की सुविधायें, जंगलों का संरक्षण आदि भी होगा। ऐसी योजनाओं में सबसे प्रमुख टेनैसी घाटी योजना (Tennessee Valley Project) है।

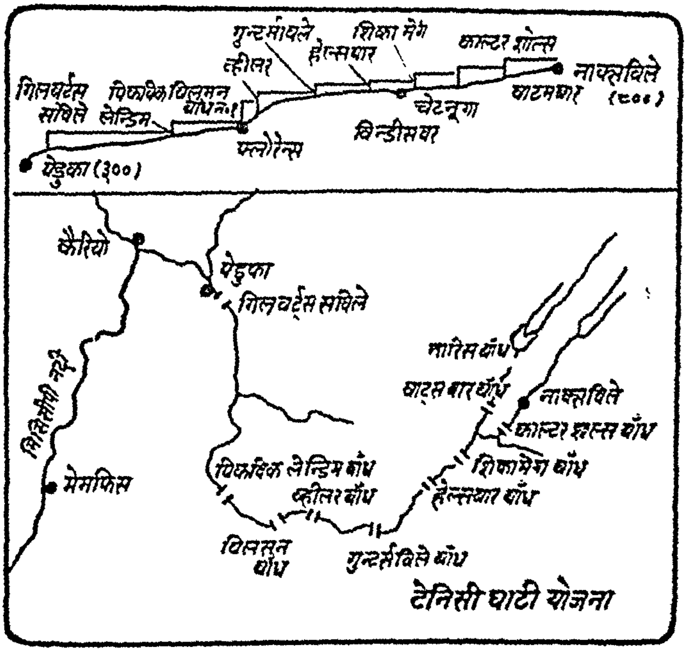

चित्र १६३—टेनेसी घाटी योजना

टेनैसी घाटी योजना का विकास टेनेसी रियासत में टेनैसी नदी की घाटी में किया गया है। टेनैसी और उसकी सहायक नदियां एक ऐसे प्रदेश में बहती हैं जिसकी बनावट में विभिन्न प्रकार की चट्टानें और ३०० फुट से ७००० फुट तक के भूभाग हैं। यह प्रदेश खनिज संपत्ति में बड़ा धनी है। इस घाटी में सुधार करने हेतु अनेक प्रयत्न किए गये हैं और १६१४ के बाद से नदी का मार्ग अनेक स्थानों पर नावों की सुगमता के निमित्त सुधारा गया है। प्रथम महायुद्ध काल में बारूद बनाने के लिये अलबामा राज्य में स्थित फ्लोरेंस नगर के निकट मसल शोल्स (Muscle Shoals) का शक्तिगृह विल्सन नामक बाँध पर ५ करोड़ डालर की लागत से बनाया गया था। किन्तु इस शक्तिगृह के

चलने के पूर्व ही युद्ध समाप्त हो गया। अतएव कुछ समय तक सरकार के समक्ष यह समस्या हो गई कि वह इसका किस प्रकार उपयोग करे। किन्तु जब मिसीसिपी नदी में भयंकर बाढ़ के कारण एक बहुत बड़े भूभाग में विनाश हुआ तो सरकार ने इस नदी का सुधार मिसीसिपी की बाढ़ को कम करने के लिए किया।

टेनैसी नदी का प्रदेश ४०६,००० वर्ग मील में फैला हुआ है जिसमें अधिकतर ग्रामीण जनसंख्या रहती थी। अतएव सन् १९३३ में अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक प्रबन्ध (Tennessee Valley Authority) स्थापित किया। इसको ये कार्य सौंपे गये—

(१) टेनैसी की नाविक शक्ति में सुधार करना।

(२) बाढ़ों पर नियंत्रण करना।

(३) निकटस्थ भागों में वृक्षारोपण कर इस प्रदेश की औद्योगिक उन्नति करना।

(४) घाटी की कृषि और आर्थिक दशा में सुधार करना।

सन् १९४८ में इस योजना के अंतर्गत मुख्य नदी पर ९ और सहायक नदियों पर २१ बाँध बनाये गये। इसके अतिरिक्त इस प्रबन्ध के अधिकार में २ ०००,००० किलोवाट शक्ति के २६ शक्तिगृह भी थे तथा एक कोयले से शक्ति उत्पन्न करने का गृह भी था जिससे ४५०,००० किलोवाट शक्ति उत्पन्न हो सकती है। इन दोनों गृहों को शक्ति-लाइनों द्वारा जोड़कर सम्मिलित रूप से शक्ति का उपयोग किया जाता है। बाँधों के बन जाने से झीलों की एक श्रृङ्खला सी बन गई है (जिनका क्षेत्रफल ९३६ वर्ग मील है)। इससे स्वतः ही बाढ़ों पर नियंत्रण हो गया है। इसके फलस्वरूप ओहियो और मिसीसिपी की बाढ़ की ऊँचाई भी कम हो गई है। बाँधों की इस प्रणाली के कारण टेनैसी नदी की नाविक शक्ति में भी सुधार हुआ है क्योंकि इनके द्वारा मौसमी प्रवाह को रोककर नदी में पानी का बहाव समान कर दिया गया है। पहले टेनैसी की गहराई २६० मील तक ४ फुट थी और उसके ऊपर २६४ मील तक केवल २ फुट; किंतु अब इसकी धारा ऊपरी ४६४ मील में ६ फुट गहरी करदी गई है और निचले ६५० मील में ९ फुट। अतः इससे नदी यातायात में बड़ी वृद्धि हुई है।

इस योजना के अन्तर्गत दलदली भूमि में मलेरिया की रोकथाम भी हो चुकी है तथा विद्युत का उत्पादन भी बढ़ा है। संपूर्ण योजना में ९२२, १८१,०६४ डालर का व्यय अनुमानित किया गया है। यह खर्च स्टीम प्लान्ट लगाने, विद्युत के तार लगाने, नदी को नाव्य बनाने, रासायनिक उद्योग आदि के स्थापन में खर्च होगा। १९४४ में इससे १०,११७,७४८ ००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की गई। टेनैसी घाटी योजना ने अपने प्रदेश की काया पलट करदी है। यहाँ मनोरंजन के लिए कई उद्यान, शिकारगाह आदि भी पर्याप्त मात्रा में बनाये गये हैं।

मिसौरी घाटी प्रबन्ध (Missouri Valley Authority)— टेनैसी घाटी योजना के आशाप्रद परिणाम के फलस्वरूप सं० रा० की केन्द्रिय सरकार ने प्रोत्साहित होकर कुछ और भी घाटी योजनाओं का प्रबंध

किया है जिनमें मुख्य मिसौरी घाटी प्रबन्ध (M. V. A) है। यदि यह योजना पूर्ण हो गई तो टेनैसी योजना का महत्व घट जायगा क्योंकि इसके अन्तर्गत सं० राष्ट्र का कुल १६% क्षेत्रफल आ जावेगा। इस योजना के अन्तर्गत ये कार्य होंगे।

(१) नदी की ऊपरी और मध्यवर्ती घाटी में जहाँ वर्षा के अभाव में खेती अनिश्चित होती है—लगभग ५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की व्यवस्था करना।

(२) मिस्सौरी नदी की निचली घाटी में नदी की गहराई को बढ़ाकर उसे नाव्य बनाना।

(३) निचले प्रदेश में नदी में बाढ़ नियंत्रण कर प्रतिवर्ष होने वाली आर्थिक हानि से बचाना।

(४) मुख्य नदी और उसकी सहायक पर जलविद्युत शक्ति गृह स्थापित कर शक्ति उत्पादन करना।

(५) नदी की घाटी में मिट्टी के कटाव को रोकना।

इस योजना में लगभग १ अरब डालर व्यय होने का अनुमान है।

बोल्डर बाँध या हूवर बाँध (Boulder or Hoover Dam)—यह बाँध कोलोरेडो नदी पर (एरीजोना रियासत में) १९३६ में बनाया गया। इसके निर्माण में १२ करोड़ डालर खर्च हुए। इस बाँध के द्वारा २३० वर्ग मील क्षेत्र की एक झील (Lake Mead) बनाई गई है जिसमें कोलोरेडो नदी के दो साल के प्रवाह के बराबर जल रोका गया है। इस बाँध के बनने के पूर्व कोलोरेडो नदी के जलप्रवाह में बड़ा परिवर्तन होता रहता था। जब नदी में पानी की मात्रा कम होती थी तो प्रवाह प्रति सैकिंड पीछे १३०० घन फुट होता था, किन्तु अधिक पानी के समय प्रवाह की मात्रा प्रति सैकंड २४०,००० घनफुट से ३००,००० घन फुट तक हो जाती थी। इससे नदी के प्रवाह प्रदेश में बाढ़ आ जाने से अकथनीय हानि होती थी। अतः संयुक्त राष्ट्र की सरकार ने १९३१ में इस बाँध का श्रीगणेश किया। इस योजना का उद्देश्य भी बहुमुखी है। इस बाँध से १,८३५,००० अश्वशक्ति का उत्पादन होना है।

कूली बाँध (Coulee Dam)—कोलंबिया और उसकी सहायक नदी के जल का पूर्ण रूप से उपयोग करने तथा इनकी घाटी का विकास करने हेतु यह बाँध कोलम्बिया नदी पर बनाया गया है। यह ५५० फुट ऊँचा है। यह भी एक बहुउद्देशीय योजना है। इसका निर्माण १९३३ में आरंभ हुआ किन्तु पूरी योजना अभी तक समाप्त नहीं हो पाई है। इसमें ५० करोड़ डालर खर्च होने का अनुमान है। अन्तिम रूप में इससे २,१००,००० अश्वशक्ति का उत्पादन किया जायगा तथा बिग बैंड देश (Big Bend) में लगभग १,२००,००० एकड़ भूमि की सिंचाई भी की जायगी। इस बाँध से मछली पकड़ने के व्यवसाय में भी बड़ी सहायता मिलेगी तथा कोलंबिया नदी में नावें भी चलाई जा सकेंगी।

अध्याय २७

शक्ति के स्रोत (क्रमशः)

(३) जलविद्युत शक्ति (Hydro-electric Power)

कनाडा (Canada)—इस देश के पश्चिमी और दक्षिणी पूर्वी क्षेत्रों में पहाड़ी और पठारी इलाके जल-विद्युत उत्पादन के आदर्श क्षेत्र हैं।

कनाडा में जलविद्युत शक्ति की प्रगति[1] :—

प्रान्त	२४ घंटे प्रतिदिन के हिसाब से शक्ति की उपलब्धता		विद्युत शक्ति का जमाव
	न्यूनतम बहाव	साधारण बहाव	
न्यूफाउण्ड लेण्ड	६८,५००	२,७५४,०००	३०६,१५०
प्रिंस एडवर्ड द्वीप	५००	३,०००	१.६००
नोवा स्कोशिया	२५,५००	१५६,०००	१७१,४३३
न्यू ब्रन्सविक	१२३,०००	३३४,०००	१६६,०१८
क्यूबेक	१०,८९६,०००	२०,४४५,०००	७,७१०,८६०
आन्टरियो	५,४०७,०००	७,२६१,०००	४,००७,५७६
मानीटोवा	३,३३३,०००	५,५६२,०००	७१३,६००
सस्केचवान	५५०.०००	१,१२०,०००	१०६,८३५
एलवर्टा	५०८,०००	१,२५८,०००	२०७.६६०
बृ० कोलम्बिया	७,०२३,०००	१०,९९८.०००	१,७०२.८५८
यूकन	३८२,५००	८१४.०००	३२.३६०
कनाडा	२८,३४७,०००	५०,७०५,०००	१५,१४०,८८०

इस देश के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं :—

(१) **न्याग्रा क्षेत्र**—यह क्षेत्र इस देश की सीमा पर ईरी और ओण्टारियो झीलों के मध्य में फैला है। इस क्षेत्र में काफी जलविद्युत न्याग्रा प्रपात से उत्पन्न की जाती है जिसकी ½ कनाडा को प्राप्त होती है।

---

१. Canada, 1955, p. 130.

(२) **सेन्ट लारेन्स क्षेत्र**—इस क्षेत्र में प्रेसकोट से मांट्रियल तक का क्षेत्र फैला है। इस क्षेत्र में सेन्ट लारेन्स नदी के अन्तर्राष्ट्रीय उथले वेग के भाग में कई स्थानों पर बाँध बनाकर जल विद्युत उत्पन्न की जा रही है। इस क्षेत्र में दक्षिणी पूर्वी ओण्टारियो और क्यूबेक रियासतों के भाग शामिल हैं। यहाँ २२ लाख हार्स पावर की सुरक्षित सम्पत्ति में से १ लाख हार्स पावर बिजली उत्पन्न की जा रही है।

(३) **पेसिफिक तटवर्ती भाग**—इस क्षेत्र में ब्रिटिश कोलम्बिया रियासत शामिल है। यहाँ कोयले का अधिक अभाव है। राकी और कोस्ट पर्वत की श्रेणियों के पास प्राकृतिक जल प्रपातों से काफी बिजली उत्पन्न की जाती है। फ्रेजर और कोलम्बिया नदियों पर बांध बनाये गये हैं। यहाँ ८८ लाख अश्व शक्ति बिजली उत्पन्न की जाती है जिसके द्वारा कनाडा के कागज और लकड़ी उद्योग चलाये जाते हैं।

कनाडा की जलविद्युत शक्ति की Installed capacity १७,०००,००० अ० श० है।

यूरोप :

यहाँ जल-विद्युत मात्रा का अनुमान लगभग ७ करोड़ अश्व शक्ति है जिसका केवल ३३% ही शोषित किया जा सका है। इस महाद्वीप में औद्योगीकरण का विकास सबसे अधिक हुआ है। इसलिये शक्ति की प्रचुर माँग रहती है। यहाँ के कई देशों में जैसे इटली, नार्वे, फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, फिनलैण्ड, ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैण्ड और रूस में जलविद्युत का अत्यधिक विकास हो चुका है। इन देशों में कोयले की बड़ी कमी है।

इटली—यह देश यूरोप में सबसे अधिक बिजली उत्पन्न करता है। सन् १९२९ में यहाँ २३ लाख हार्स पावर बिजली पैदा की गई थी। देश का आधुनिक औद्योगीकरण इसी जल-विद्युत पर निर्भर करता है। देश के उत्तरी भागों में पर्वत और मैदान के संगम क्षेत्र (Piedmont Section) जलविद्युत उत्पन्न करने के आदर्श क्षेत्र हैं। पीडमाण्ट क्षेत्र के लोम्बार्डी और वेनिशिया प्रान्त बिजली के उत्पादन में सर्व प्रथम हैं। इस क्षेत्र में स्विटजरलैंड की बड़ी झीलों से निकलने वाली द्रुतगामी नदियां ऊँचे जल प्रपात बनाती हुई गिरती हैं जिससे प्रचुर मात्रा में बिजली उत्पन्न की जाती है। आल्पस पर्वत में बर्फ के पिघलने और घनी वर्षा से नदियों में पानी की काफी पूर्ति होती है। अन्य प्रसिद्ध केन्द्र अम्बरिया, एमलिया, टस्कानी हैं जो

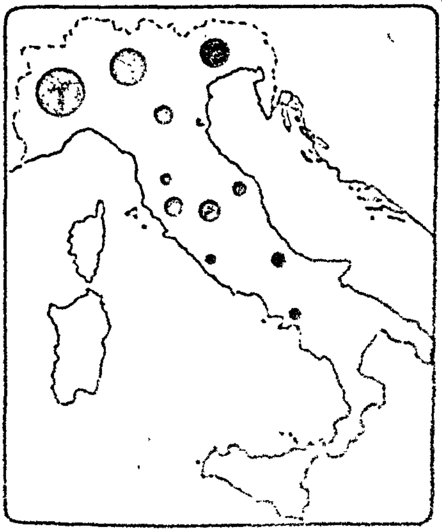

चित्र १६४
इटली में जल-विद्युत शक्ति

मध्य इटली में स्थित हैं। मध्यवर्ती श्रेणी अपीनाइन से निकलने वाली कई छोटी द्रुतगामी नदियों से काफी बिजली उत्पन्न की जाती है। इटली में कोयले का अत्यन्त अभाव है इसलिये जलविद्युत के विकास को काफी प्रोत्साहन मिला है।

नार्वे-स्वीडन—इन दोनों देशों में यूरोप की २५% बिजली उत्पन्न की जाती है। सारे यूरोप की सुरक्षित सम्पत्ति का एक तिहाई भाग इस क्षेत्र में पाया जाता है। इटली के बाद सारे यूरोप में इसका उत्पादन सबसे अधिक है। नार्वे स्वीडन के पश्चिमी भाग में स्थित ऊँचा पर्वतीय भाग हिम नदी कृत महान् झीलों, तंग घाटियों और द्रुतगामी जलप्रपात बनाने वाली नदियों से भरा पड़ा है। इस क्षेत्र में कोयले का अभाव है ही लेकिन धातु उद्योगों के विकास की आवश्यकतानुसार जल विद्युत का उत्पादन भी आरम्भ किया गया है। पश्चिमी भाग में घनी वर्षा तो होती ही है, झीलों और नदियों को बर्फ और हिम नदियों से भी पर्याप्त पानी मिल जाता है। प्राचीन मजबूत खादार चट्टानों की नींव पर ऊचे-ऊँचे मजबूत बाँध बनाये गये हैं। इस क्षेत्र के दक्षिणी पूर्वी भाग में जल-बिजली का विशेष विकास हुआ है। इस क्षेत्र में बिजली का उपयोग खासकर खाद, कागज, वन. धातु और लोहे स्पात के कारखानों और रेल चलाने में होता है। नार्वे के दक्षिणी भाग में घनी जनसख्या और औद्योगिक विकास के कारण इस सस्ती जलविद्युत की काफी माँग रहती है।

स्विटजरलैण्ड—स्विटजरलैंड में भी जलविद्युत् शक्ति का अच्छा विकास हो पाया है क्योंकि यहाँ पहाड़ी भागों में जल-प्रपातों की अधिकता है तथा आल्पस से निकलने वाली नदियाँ तेज बहने वाली हैं। यहाँ कोयले का भी अभाव है तथा देश के धरातल के पहाड़ी होने के कारण विदेशों से कोयला लाना बड़ा व्ययसाध्य हो जाता है, अतः जलशक्ति उत्पन्न कर इस अभाव को दूर किया जाता है। यहाँ के कुटीर उद्योगों में इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है। यहाँ जलविद्युत उत्पादन के २८५ विशाल केन्द्र हैं जिनमें से प्रत्येक में २०,००० अश्व शक्ति से भी अधिक शक्ति का उत्पादन किया जाता है।

स्विटजरलैण्ड में जल विद्युत केन्द्र

केन्द्र	ऊँचाई (फीट में)	बाँध की ऊँचाई (फीट में)	बाँध की शक्ति (लाख क्यू० फीट में)	संभावित शक्ति (लाख किलोवाट)
डिक्सेन्स	७,३४८	२९५	१,७६०	२.०००
ग्रिमसल	६,२६३	३७४	३,५३०	२,६००
डिक्सेने	७,७७६	८६९	१५,१८०	२०,०००

फ्रांस—फ्रांस में जलविद्युत् शक्ति के उत्पादन के लिए कई अनुकूल अवस्थायें पाई जाती हैं। यहाँ जल विद्युत का विकास आल्पस, पिरेनीज और सेवान्स पर्वतों के सहारे सहारे किया जा सकता है। फ्रांस में लोहे की मात्रा अधिक पाई जाती है किन्तु कोयले का अभाव ही है। अतः फ्रांस में जल विद्युतशक्ति का विकास काफी हुआ है। १९५२ में २४,७३४० लाख किलोवाट

शक्ति यहाँ उत्पन्न की गई। नीचे की तालिका में फ्रांस के जलविद्युत केन्द्र बताये गये हैं—

वर्तमान केन्द्र	नदी	ऊँचाई (फुट)	बाँध की ऊँचाई (फुट)	संभावित शक्ति (प्रतिवर्ष १० ला० किलोवाट में)
बोर्ट	डोरडोन	१,६२६	३३०	२६४
सरान्स	ट्रूमीर	१,६७८	३१५	१२२
चैम्बन	रोमञ्ज	३,१२०	२७४	७४
ल' गेल	डोरडोन	१,०२६	२७०	४४
मर्जेस	डोरडोन	१,२५१	२७०	१६
जैनीसीग्राट	रोन	६६०	३०६	१०
इगूजन	क्रूज	६०६	१७७	२·५
(निर्माण में) टिग्न्स	इसर	५,२६५	३६०	२७२

आस्ट्रेलिया :

इस महाद्वीप के पूर्वी भाग में आस्ट्रेलियन आल्पस पर्वत श्रेणी में जल-बिजली की काफी सुरक्षित मात्रा है लेकिन औद्योगीकरण के विकास न होने के कारण इस विद्युत् सम्पत्ति का शोषण नहीं हो पाया। इस क्षेत्र में माँग भी बहुत कम है।

न्यूजीलैण्ड एक पर्वतीय प्रदेश है और पश्चिमी यूरोपीय जलवायु वाले खण्ड में स्थित है। इसलिये इसको सारे साल घनी वर्षा प्राप्त होती है। नदियाँ भी छोटी और द्रुतगामी हैं और तंग घाटियों से होकर बहती हैं। यहाँ सात बड़े बिजली के केन्द्र हैं—पुटारूरू, जिसबोर्न, क्राइस्ट चर्च, ओमारू, शेनन, क्रॉमिब्रज, नाइटेकेस और डुनेनिन। न्यूजीलैण्ड के कुटीर डेरी उद्योग में इस बिजली की काफी खपत है।

द० अफरीका :

सारे संसार में जल बिजली की सुरक्षित सम्पत्ति के विचार से इसका स्थान पहला है लेकिन उत्पादन के विचार से यह सारे संसार में सबसे अधिक पिछड़ा है। यहाँ जल विद्युत का विकास कई कारणों से नहीं हो पाया है—(अ) नदियों में अक्सर बाढ़ आती रहती है जिससे विद्युत गृह के टूटने का खतरा रहता है। (ब) नदियाँ कुछ तो केवल मौसमी हैं, उनमें एक ऋतु में पानी रहता ही नहीं है। (स) अफरीका संसार का सबसे बड़ा महाद्वीप है इसलिये उद्योग धन्धों के अभाव में बिजली की माँग नहीं के समान है। (द) जिन क्षेत्रों में जल-विद्युत शक्ति उत्पन्न करने की अनुकूल दशायें प्राप्त हैं वे सभी क्षेत्र घनी आबादी वाले क्षेत्रों से बहुत दूर पड़ते हैं। आबादी तो सबसे अधिक उत्तरी, पूर्वी और दक्षिणी भागों में है लेकिन जल बिजली उत्पादन की संभावनायें सबसे अधिक मध्यवर्ती अफरीका में है। (र) शक्ति प्राप्ति के क्षेत्र अधिकतर भूमध्य रेखीय भागों में है जहाँ के स्थान घने दुर्गम जंगलों के कारण पहुँच के बाहर है।

अफरीका के विक्टोरिया जल प्रपात और कांगो के कटंगा जिले से कुछ जल बिजली उत्पन्न की जाती है।

एशिया :

अफ्रीका के बाद सारे संसार में सुरक्षित सम्पत्ति की दृष्टि से एशिया का विकास हुआ है। औद्योगीकरण के प्रभाव से वंचित रहने और मुख्यतः खेतिहर और कच्चे माल के उत्पादन क्षेत्र होने के कारण औद्योगिक शक्ति की यहाँ बहुत अधिक माँग नहीं रही है और इसलिये जल-विद्युत का विकास बहुत कम हुआ है। यहाँ ७ करोड़ ५० लाख अश्व शक्ति की अनुमानित सुरक्षित सम्पत्ति है जिसमें से केवल ४% ही विकसित हो पाई है। विकास के विचार से केवल भारत और जापान मुख्य हैं।

नीचे की तालिका में एशिया के प्रमुख देशों में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जलविद्युत शक्ति की कुल क्षमता (Capacity) और प्रति १००० व्यक्ति पीछे शक्ति का उत्पादन बताया गया है[1]:—

देश	क्षमता (००० Kw में)	प्रति १००० व्यक्ति पीछे उत्पादन (Kw में)
जापान	८,५३६	१०६.०
भारत	१,३६२	४.१०
चीन	१,३३२	२.८८
इंडोनेशिया	३५०	५.०७
मलाया	१२०	२०.६८
फिलीपाइन्स	१०८	५.५३
पाकिस्तान	७५	१.०२
इण्डोचीन	४६	१.७०
ब्रह्मा	३०	१.७६
लंका	२१	३.०४
थाईलैण्ड	१६	०.६४
योग	१२,२७१	

जापान—यह देश सारे एशिया में सबसे अधिक औद्योगिक, उन्नतिशील देश है लेकिन इस देश में कोयले का अत्यन्त अभाव है। इसलिए जलविद्युत का विकास भी यहाँ सबसे अधिक हुआ है। एशिया की सारी सुरक्षित सम्पत्ति का केवल ५०% यहाँ है। लेकिन यहाँ सारे एशिया की दो-तिहाई जल बिजली उत्पन्न की जाती है। एशिया का सबसे पुराना जल बिजली उत्पादन केन्द्र इसी देश में है। जलविद्युत उत्पादन कार्य इस देश में सन् १८६१ में शुरू किया गया लेकिन सन् १८६४-६५ में चीन युद्ध के कारण कोयला आना बन्द हो जाने के पश्चात अधिकाधिक जल बिजली बनाई जाने लगी। जापान में जल-विद्युत उत्पादन की निम्नलिखित अनुकूल दशाएँ हैं :—

(अ) जापान अत्यन्त ऊँचा-नीचा पहाड़ी प्रदेश है जिसके ठीक बीचोंबीच एक ऊँची श्रेणी उत्तर दक्षिण दिशा में फैली है। इससे उतरते समय सभी नदियाँ जल प्रपात बनाती हैं।

1. U. N. O: Survey of Asia and Far East, 1948, p. 82.

(ब) जापान की सभी नदियाँ बहुत द्रुतगामी हैं और अधिकतर नदियाँ विकसित तथा औद्योगिक क्षेत्रों से होकर बहती हैं जिनमें बिजली की बहुत बड़ी माँग रहती है। माँग के क्षेत्र की निकटता एक अत्यन्त सुविधा है।

(स) जापान के मध्यवर्ती पर्वतीय भाग में घनी वर्षा होने के कारण सारी बड़ी झीलों में पर्याप्त पानी सारे साल भरा रहता है। इसलिये नदियों में कभी पानी की कमी नहीं होती।

(द) जापान में औद्योगीकरण की प्रगति को इतनी ज्यादा हो गई है लेकिन यहाँ कोयला और पैट्रोल की अत्यन्त कमी है। शक्ति की पूर्ति के लिये इस कारण जल विद्युत का महत्व बहुत बढ़ गया है।

(र) जापान में हल्के उद्योग धन्धों का विकास हुआ है जिससे छोटी-छोटी मशीनों के चलाने में बिजली का प्रयोग उपयुक्त रहता है।

(ल) जापान में तांबा इतनी अधिक मात्रा में मिलता है कि बिजली के तारों के बनने में काफी सुविधा मिलती है। इसलिये प्रारम्भिक व्यय काफी घट जाता है।

जापान में सिंचाई, जल विद्युत शक्ति और बहुमुखी उद्देश्यों के लिए हाल ही में कई बाँध बन कर समाप्त हो चुके हैं—नीचे की तालिका में यही बताया गया है :—

	(i) इस समय कार्य कर रहे हैं	(ii) जो बन रहे हैं
बहुमुखी उद्देश्यों के लिए	१८ बांध	३४ बांध
जल विद्युत शक्ति	१७९ ,,	३५ ,,
सिंचाई	१६७ ,,	९९ ,,
जल-सेवा	५४ ,,	४ ,,
बाढ़ रोकना	० ,,	३ ,,
योग	४१८	१७५

ये सभी बाँध १५ मीटर से ऊँचे हैं।

पाकिस्तान—पाकिस्तान में जल विद्युत की चार मुख्य योजनायें बनाई गई हैं जिनके द्वारा लगभग ३ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न की जायगी और लगभग २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई भी होगी। (१) सीमा प्रान्त में मालकंद के निकट (Malkand Project) लगभग २०,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जा रही है। (२) पेशावर के निकट वारसाक (Warsak Project) योजना द्वारा १५०,००० किलोवाट विद्युत पैदा की जायगी और १२०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई भी होगी। (३) प० पंजाब में रसूल (Rasul Project) योजना द्वारा २२००० किलोवाट यूनिट बिजली उत्पन्न की जा रही है। (४) मीयांवाली योजना से १००,००० किलोवाट शक्ति उत्पन्न की जायगी। इन योजनाओं के अतिरिक्त पूर्वी पाकिस्तान में कर्णफूली नदी के जल से १६००० किलोवाट शक्ति उत्पन्न कर चांदपुर, कोमिल्ला और चटगांव को दी जायगी तथा ७०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई होगी।

भारत में जल विद्युत शक्ति

जहां प्रकृति ने भारत को कोयले और मिट्टी के तेल की दृष्टि से निर्धन बनाया है वहाँ उसने भारत में जल-विद्युत को उत्पन्न करने के साधन उपलब्ध करके इस कमी को पूरा कर दिया है। अतः देश प्रायः दो भागों में बँट गया है—एक भाग वह है जिसमें जल-विद्युत-शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है और दूसरे वे क्षेत्र हैं जिनमें कोयले की खानों के निकट होने के कारण कोयले से ही विद्युत शक्ति पैदा की जा सकती है। भारत में जल-विद्युत शक्ति के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—

(१) संभावित जल-विद्युत शक्ति का सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र हिमालय पर्वत के नीचे पाकिस्तान के पश्चिमी भाग से लेकर पूर्व में आसाम तक फैला है। इस क्षेत्र में हिमाच्छादित भागों से निकल कर बहने वाली प्रमुख नदियों में वर्ष भर ही पानी भरा रहता है तथा नदियों के मार्ग में कई प्रपात होने के कारण उपयुक्त स्थानों पर जल रोक कर बाँध बनाये जा सकते हैं किन्तु इस प्रकार उत्पादित शक्ति अधिक दूर तक नहीं भेजी जा सकती।

(२) जल-विद्युत शक्ति का दूसरा विशाल क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप की पश्चिमी सीमा के सहारे बम्बई प्रान्त में होकर मद्रास तथा मैसूर तक फैला है। इस क्षेत्र में भारत की सबसे मुख्य-मुख्य जल-विद्युत योजनाएँ कार्य कर रही हैं।

(३) उपरोक्त दोनों क्षेत्रों के मध्य में मध्य प्रदेश में तीसरा विस्तृत जल-विद्युत शक्ति का क्षेत्र है जो सतपुड़ा, विंध्याचल, महादेव और मैकाल की पहाड़ियों के सहारे-सहारे पश्चिम से पूर्व की ओर चला गया है, किन्तु यह क्षेत्र अधिक घनी नहीं है।

इन तीन क्षेत्रों के अतिरिक्त भारत के कई क्षेत्रों में कोयले से भी विद्युत शक्ति पैदा की जाती है। ताप-शक्ति (Thermal power) का मुख्य क्षेत्र कलकत्ता में आरंभ होकर पश्चिम में नागपुर तक फैला है। इसके अन्तर्गत गोंडवाना कोयले के क्षेत्र हैं।

इस वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होगा कि भारत में संभावित जल-विद्युत शक्ति के प्रधान क्षेत्र पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश, बम्बई, आसाम और बिहार हैं। जल-विद्युत शक्ति से रहित प्रमुख क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान, मध्य भारत आदि हैं।

भारत में तीन प्रकार के जल-विद्युत उत्पन्न करने के कारखाने हैं (१) वे कारखाने जो सरकार द्वारा स्थापित किए गए हैं और जो बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्रों को बिजली देते हैं यथा—उत्तर प्रदेश की ग्रिड योजना, पूर्वी पंजाब की मंडी योजना और मैसूर की शिवासमुद्रम योजना। (२) वे कारखाने जो मिश्रित पूँजीवाली कंपनियों द्वारा स्थापित किए गए हैं, यथा—टाटा जल-विद्युत शक्ति की तीनों योजनायें (३) वे कारखाने जो असंख्य छोटी-मोटी निजी कम्पनियों द्वारा पहाड़ी स्थानों अथवा नगरों में रोशनी देने के लिए बिजली उत्पन्न करते हैं।

(क) पश्चिमी घाट के कारखाने (Hydro-electric Works of Bombay Deccan)—भारत में सबसे महत्वपूर्ण जल-विद्युत उत्पन्न करने वाले कारखाने पश्चिमी घाट के समीप स्थित हैं। इन घाटों पर अत्यधिक वर्षा होती है। इस जल से बिजली उत्पन्न करने का विचार भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी श्री जमशेद जी नशरवान जी ताता के मस्तिष्क की उपज थी। ताता ने देखा कि बम्बई की मिलें कोयले की खानों से बहुत दूर हैं; अतः कोयला मिलों को बहुत मँहगा पड़ता है। अतः उन्होंने ताता जल-विद्युत शक्ति का कारखाना (Tata Hydroelectric Works) स्थापित किया। इस योजना के अनुसार भोरघाट के ऊपर लोनावला, वलव्हान और शिरवता नामक तीन झीलें बाँध बना कर तैयार की गईं। वर्षा का पानी इन झीलों में इकट्ठा किया जाता है और नहरों द्वारा लोनावला की झील तक लाया जाता है। यहाँ से पानी नली द्वारा १७७५ फुट की ऊँचाई से खोपोली शक्तिगृह के पास गिराया जाता है और यहाँ से

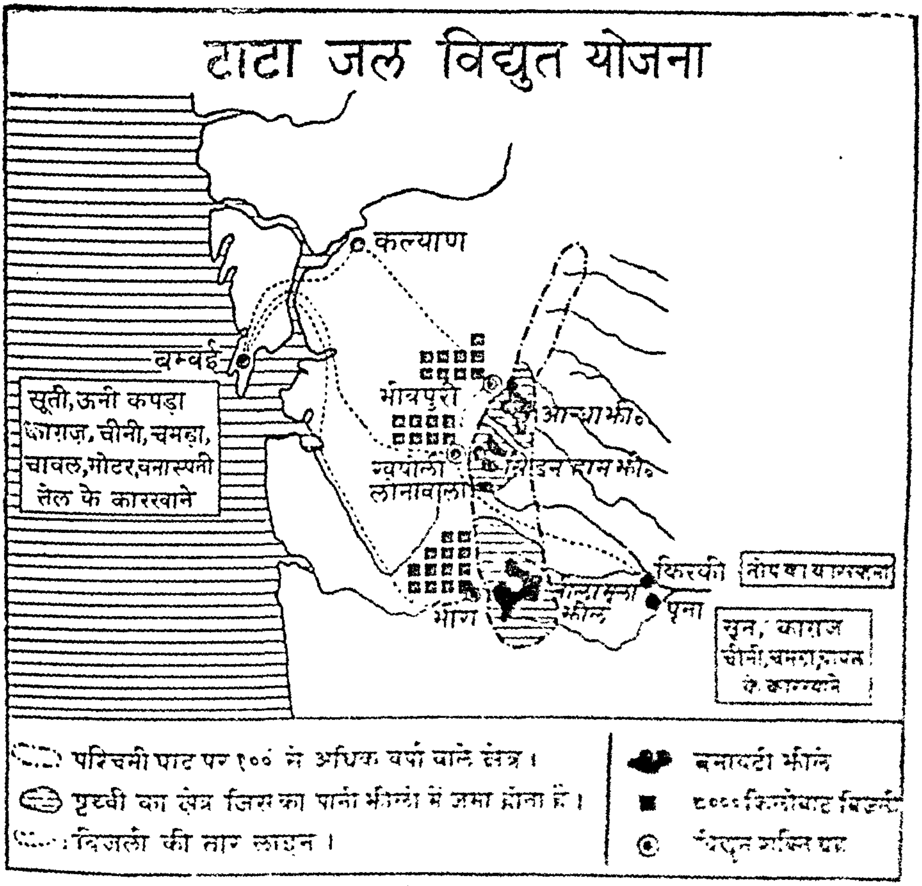

चित्र १९५

४८,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है। बिजली की अधिक मांग होने के कारण कुंडले के निकट एक झील और बनाई गई और दोनों कारखानों

में ५१,००० घोड़ों की शक्ति के बराबर बिजली उत्पन्न करके ७० मील दूर तारों द्वारा बम्बई के मिलों को भेजी जाती है।

बम्बई में बिजली की माँग इतनी अधिक थी कि ताता कम्पनी उसे पूरा नहीं कर सकती थी। इसलिए ताता कम्पनी ने **आँध्रा घाटी जल-विद्युत योजना** का श्रीगणेश किया। इस योजना के अनुसार लोनावला के उत्तर में तोकरवाडी के पास आंध्र नदी पर १/३ मील लम्बा और १९२ फुट ऊँचा बाँध बना कर नदी का पानी रोका गया। यहाँ से एक लम्बी सुरंग (८७००/) द्वारा पानी भीवपुरी के शक्तिगृह को ले जाया गया। यहाँ पानी १७५० फुट की ऊँचाई से गिराया जाता है। इस शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता ४८,००० किलोवाट है। यहाँ की बिजली बम्बई हारबर, ट्रामों और मध्य रेलवे के उपयोग में आती है। वास्तव में आंध्र घाटी योजना पहली योजना का विस्तार मात्र है।

ताता ने एक तीसरी कम्पनी (Tata Power Co.) बना कर नीलामला नदी को मुलसी नामक स्थान पर एक बड़ा बाँध बनाकर रोक दिया है। इस झील से १७५० फीट की ऊँचाई से पानी भीरा (Bhira) के शक्तिगृह पर गिराया जाता है और उससे बिजली उत्पन्न की जाकर बम्बई की मिलों, पश्चिमी व मध्य रेलवे को दी जाती है। भीरा शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता ८७,५०० किलोवाट है।

उपर्युक्त तीनों योजनाएँ एक ही इकाई की भाँति काम कर रही हैं और इनकी सम्मिलित उत्पादन क्षमता २,१०,००० से २,१५,००० किलोवाट तक बिजली उत्पन्न करने की है। यह बिजली बम्बई नगर, निकटवर्ती स्थानों, थाना, कल्याण, पूना को जाती है।

(ख) दक्षिण के जल-विद्युत उत्पन्न करने वाले कारखाने (Hydral works of Peninsular India)—दक्षिण भारत कोयले की खानों से बहुत दूर पड़ता है और यहाँ के अधिकांश बड़े नगर समुद्र से भी दूर हैं। अतः यहाँ कोयले को मंगाने में बड़ा खर्च पड़ता था और इसीलिए यहाँ के उद्योग धंधे भी पूर्ण रूप से नहीं पनप सके थे। जबसे दक्षिणी भारत में—मद्रास और मैसूर राज्य में—जल-विद्युत उत्पन्न होने लगी है तब से यहाँ के उद्योग-धंधे चमक उठे हैं।

मद्रास राज्य में जल-विद्युत विकसित करने के उत्तम स्थान नीलगिरी और पालनी पर्वतों के मध्य में हैं। इस राज्य में अब तक तीन महत्वपूर्ण योजनायें विकसित की जा चुकी हैं—

(i) पायकारा योजना—

इस योजना के अन्तर्गत पायकारा नदी के आर-पार प्रमुख प्रपातों से ऊपर की ओर १९३२ में एक बाँध बनाया गया है जिसे ग्लैन मार्गन कहते हैं। इसके पानी को १३०० फीट की ऊँचाई से गिरा कर बिजली उत्पन्न की जाती है। पायकारा की सहायक मुकुर्ती नदी पर भी १९३८ में एक बाँध बना कर अतिरिक्त पानी की व्यवस्था की गई है। पूरे विकसित रूप में इस

योजना की अनुमानित उत्पादन क्षमता ६६,००० किलोवाट होगी। अभी इसकी क्षमता ४४,००० किलोवाट ही है। विद्युतशक्ति पहले कोयम्बटूर जाती है और फिर वहाँ से उद्मलपेट, इरोड, मदुरा, तिरूपुर, सम्वाती, विधुनगर, और कोयलपट्टी को बिजली की तार जाती है। इरोड और मदुरा की लाइनों को मैटूर और पापानासम प्रणालियों से क्रमशः जोड़ दिया गया है। पायकारा योजना के अन्तर्गत उत्पादित बिजली तामिल प्रदेश के छोटे २ गांवों और नगरों को दी जाती है।

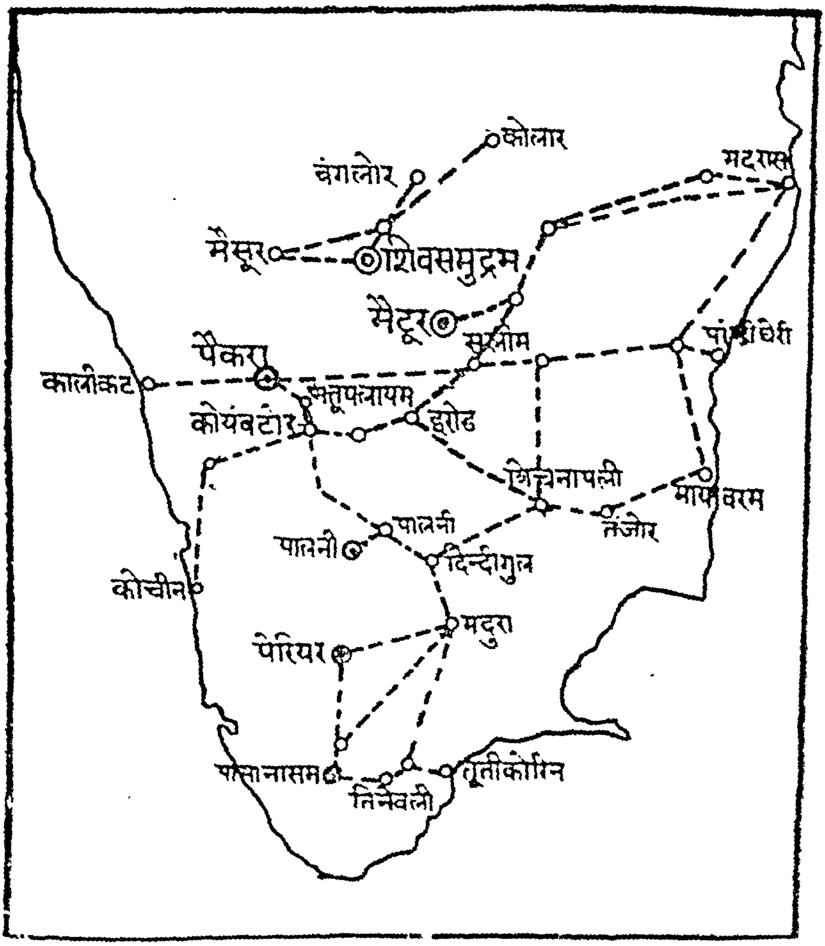

चित्र १६६

(ii) मैटूर जल-विद्युत योजना (Mettur Project)—

मैटूर पर स्टेनले नामक १७६ फीट ऊँचा बाँध बनाया गया है जो ९३५,००० लाख घनफीट पानी रोक लेता है। इससे जो विद्युत-शक्ति उत्पन्न होती है उसकी मात्रा में मैटूर बाँध के पानी की सतह के अनुसार घटा-बढ़ी होती रहती है। अतः पानी की कमी के समय मैटूर बाँध को अन्य स्थानों की बिजली की आवश्यकता पड़ जाती है। इस समस्या को पायकारा और मैटूर

की लाइन से मिलाकर हल कर लिया गया है। मैट्टूर बाँध से उत्पन्न की गई विजली उत्तर में सिंगारपट को और दक्षिण में इरोड को दी जाती है। इरोड पर मैट्टूर की बिजली को पाईकारा विद्युत के तारों से मिला दिया गया है। उत्तर में विद्युन लाइनें वैलोर, तिरूपुर, अम्बर, तिरुवन्नमलय, विल्लूपुरम तक फैली हुई हैं और दक्षिण में त्रिचनापली, तंजौर, नागापट्टम, चितूर, अरकोनम, काँजीवरम, चिंगलपुर आदि स्थानों तक जाती हैं। मैट्टूर प्रणाली को मद्रास तापीय गृह से सिंगारपैट और मद्रास के बीच एक लाइन से जोड़ दिया गया है। इस प्रकार दक्षिणी भारत में इन शक्तिगृहों से विजली ले जाने वाली लाइनों को जोड़कर एक वड़ी लाइन का जाल-सा विछा दिया गया है। मैट्टूर योजना से त्रिचनापली, सलेम और मैट्टूर के उद्योगों, दालमियानगर के सीमेंट के कारखानों और नागापट्टम के लोहे के रोलिंग मिलस को शक्ति मिलती है।

(iii) पापानासम योजना (Papanasam Project)—

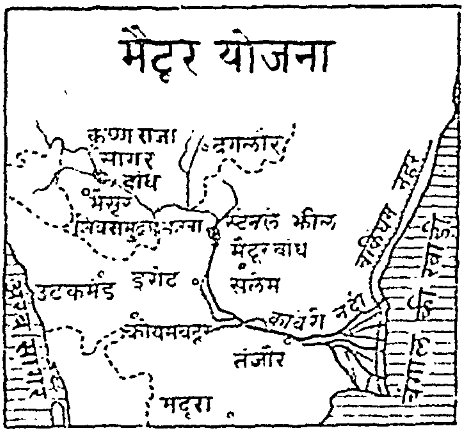

चित्र १६७

तिनैवेली जिले में—पश्चिमी घाटी के नीचे—ताम्रपर्णी नदी ३३० फुट की ऊचाई से पापानासम प्रपात पर गिरती है। इस प्रपात से ६ मील ऊपर एक १७६ फीट ऊँचा बाँध बनाकर ५५,००० लाख घनफुट पानी रोका गया है। यहाँ से विजली तूतीकोरिन, कोयलपट्टी और मदुरा को भेजी जाती है और मदुरा पर इसे पायकारा योजना में जोड़ दिया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता २१,००० किलोवाट है।

उपरोक्त तीनों योजनाएँ एक विद्युत शक्ति ग्रिड के रूप में सम्वन्धित हैं। दक्षिण में यह ग्रिड पूर्ण रूप से व्यवस्थित है और चितूर से तिन्नेवेली तक तथा चिंगलपुट से मलावार तक के १२ जिलों के अधिकांश भागों को घेरे हुए है। इन तीनों शक्ति गृहों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता १०४,००० किलोवाट है। इस ग्रिड से कपड़े की मिलों, सीमेंट के कारखानों, रासायनिक कार्यों, चाय की फैक्ट्रियों आदि को विजली मिलती है।

ट्रावनकोर और कोचीन संघ :—

ट्रावनकोर-कोचीन संघ में पल्लीवासल जल विद्युत योजना विकसित की गई है। इसके अनुसार मदिरापूजा नदी का पानी ऊँचाई से गिराकर मुनार पर शक्ति गृह बनाया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता ६,००० किलोवाट है। इसके अतिरिक्त मद्रास सरकार की पापानासम व्यवस्था से भी ३००० किलोवाट विजली मिल जाती है। इसके लिए कुंदरा और सेनकोट को इकहरी लाइन से जोड़ दिया गया है। इस संघ में ७०% से अधिक विजली औद्योगिक कार्यों

में—अल्यूमीनियम, चाय, मिट्टी के वर्तन, कपड़े, कागज, प्लाईवुड, तेल और लकड़ी के मिलों तथा इंजीनियरिंग कारखानों आदि में—और शेष घरेलू व कृषि-सम्बन्धी कार्यों में व्यवहृत होती है।

मैसूर में जलविद्युत (Hydel Works in Mysore)—

मैसूर राज्य में कावेरी नदी पर शिवासमुद्रम् जल-प्रपात के समीप शक्ति-गृह स्थापित किया गया है। भारत में सबसे पहले (१९०२ में) जल विद्युत मैसूर राज्य में ही उत्पन्न की गई है। शिवासमुद्रम् से उत्पन्न की गई बिजली ९२ मील दूर कोलार की सोने की खानों का दी गई है। इसके अतिरिक्त बिजली बंगलौर और मैसूर की ऊनी और रेशमी कपड़े के मिलों को भी दी गई। बिजली की मांग अधिक होने के कारण नदी के ऊपर की ओर कृष्ण राजासागर बाँध बनाकर कावेरी नदी के जल को रोक दिया गया है और इस प्रकार दोनों की सम्मिलित उत्पादक क्षमता ४२,००० किलोवाट होगई है।

कावेरी की सहायक नदी शिम्मा के प्रपात पर एक नया शक्ति गृह बनाया गया है; इससे १७,२०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है।

महात्मा गाँधी जल विद्युत योजना या जोग-प्रपात शक्ति योजना के अन्तर्गत शिरावती नदी के जोग (गिरस्सप्पा) प्रपातों का उपयोग किया गया है। यहाँ का बाँध प्रपात के करीब ३ मील ऊपर और शक्तिगृह प्रपात से २ मील नीचे है। इस योजना से ४८,७०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है। किन्तु अन्तिम स्थिति में बढ़कर इसकी उत्पादन क्षमता १२०.००० किलोवाट हो जायगी। शिम्सा, शिवासमुद्रम् और जोग प्रपातों की बिजली भद्रावती पर आकर मिल जाती है और मैसूर राज्य को बिजली देती है।

(ग) उत्तरी भारत के कारखाने (Hydro-electric Works of Northern India) :

(i) काश्मीर—

काश्मीर राज्य में झेलम नदी पर श्रीनगर से ३४ मील उत्तर की ओर बारामूला के निकट नदी का पानी विद्युत उत्पन्न करने में लिया जाता है जिसका शक्ति गृह मोहरा स्थान पर है। यहाँ से बिजली की लाइनें बारामूला और श्रीनगर तक जाती है। यह बिजली झेलम नदी में काम चलाने, श्रीनगर में रोशनी करने और रेशम के कारखाने चलाने में प्रयोग होती है।

(ii) पूर्वी पंजाब—

उत्तरी भारत में मंडी राज्य का जल-विद्युत का कारखाना महत्वपूर्ण है। इस योजना के अनुसार मंडी राज्य में ऊह्ल नदी के पानी को रुकाकर ३ मील लम्बी सुरंग से ले जाकर जोगिन्दरनगर के निकट १८०० फुट की ऊँचाई से गिराकर बिजली उत्पन्न की जाती है। इस योजना से ४८००० किलोवाट बिजली पैदा की जाती है। यह पूर्वी पंजाब के लगभग २० स्थानों को दी जा रही है। फिरोजपुर, लायलपुर, शिमला, गुरदासपुर, पटियाला, गुजरानवाला और अम्बाला को यहीं बिजली मिलती है।

(iii) उत्तर प्रदेश—

उत्तर प्रदेश में बिजली के कारखानों में गंगा की नहर से बिजली उत्पन्न करने की योजना (Ganges Canal Hydro-electric Grid System) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गंगा की नहर के १० प्रपातों में से सात प्रपातों पर शक्ति-गृह बनाये गये हैं। आसफनगर के समीप ही 'बहादुराबाद' मुख्य शक्ति गृह है। इसके अतिरिक्त गाजियाबाद के समीप 'भोला' और बुलन्दशहर के समीप 'पालरा' शक्तिगृह हैं। अन्य शक्तिगृह चितौरा, सुमेरा, बुलन्दशहर और सालवा में हैं। इन सभी शक्ति गृहों तथा जल प्रपातों से उत्पन्न होने वाली बिजली को एक बड़ी बिजली की लाइन (Electric Grid) से जोड़ दिया गया है। यह प्रणाली पश्चिमी उत्तर प्रदेश के १४ जिलों में ९३ नगरों को बिजली दे रही है जिनमें से मुख्य जिले यह हैं—सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ़, आगरा, बिजनौर तथा मुरादाबाद। इस प्रणाली से मेरठ और रुहेलखंड डिवीजनों में लगभग ३००० नल-कूप चलाये जा रहे हैं।

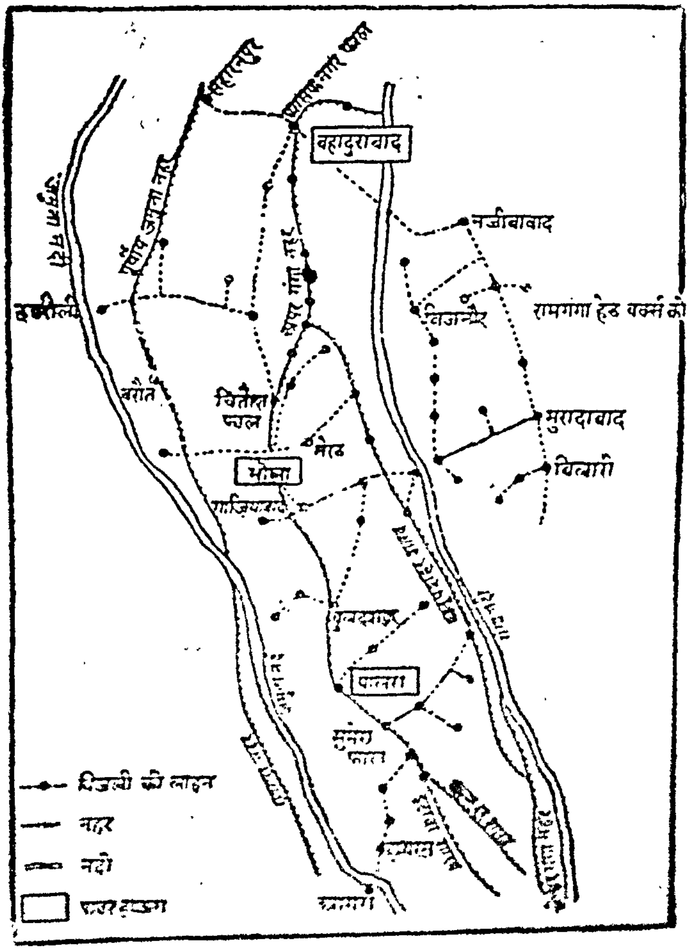

चित्र १९८—गंगा नहर जल-विद्युत योजना

भारत के अधिकांश पहाडी भागों में भी जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है क्योंकि वहाँ जल-प्रपात होते हैं और वहाँ कोयला आसानी से नहीं पहुँच सकता। अतएव जल-विद्युत उत्पन्न करना वहाँ आवश्यक और सुविधाजनक होता है। आसाम प्रान्त में शिलाँग के निकट एक छोटा सा कारखाना है जिसमें उत्पादित विद्युत शक्ति कालिम्पोंग और कुरसोंग के चाय के बागों को दी जाती है।

भारत में उत्पादित विद्युत शक्ति का उपभोग इस प्रकार है—६४% कारखानों में; १२% घरेलू खर्च, रोशनी आदि में; ८% खेती में; ७% व्यापारिक रोशनी में, ५% कल के कारखानों में; ३% सिंचाई में और १% सड़कों पर रोशनी करने में।

पश्चिम के देशों से यदि भारत की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि यहाँ जल-विद्युत शक्ति का जो भी विकास हुआ है वह बहुत थोड़ा है। देश में उद्योग धन्धों के पूर्ण रूप से विकास न होने के कारण ही हमारी यह स्थिति है। कनाडा में प्रति व्यक्ति पीछे जल-विद्युत का वार्षिक उपभोग ३,५३८ किलोवाट; स्विटजरलैण्ड में १,६८८ किलोवाट; संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में २,२९६ कि०; नार्वे में २,०२४ कि०; स्वीडन में २,४०० कि०; इंग्लैण्ड में १,०३३ कि० और भारत में केवल १७'० किलोवाट है।

निम्न तालिका में भारत में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विकसित तथा सम्भाव्य जल-विद्युत शक्ति का परिमाण बताया गया है:—

प्रदेश	सम्भाव्य		विकसित	
आसाम	४०	लाख किलोवाट	५००	किलोवाट
उड़ीसा	२०	,,	—	
बिहार	१८	,,	—	
उत्तर प्रदेश	१२	,,	२२,७००	,,
बम्बई	६	,,	१,३५,७१४	,,
हैदराबाद	६	,,	—	
मद्रास	६	,,	९८,२९०	,,
पंजाब	५	,,	४६,५५०	,,
मैसूर	३	,,	७१,२००	,,
बंगाल	३	,,	२,३६०	,,
मध्यप्रदेश	२½	,,	—	
ट्रावनकोर	—	,,	१३,६००	,,
काश्मीर	—	,,	४,३१५	,,
सम्पूर्ण भारत	१४८	लाख किलोवाट	४,९९,२२३	,,

इस तालिका से ज्ञात होगा कि लगभग ८०% जल-विद्युत पश्चिमी घाट में पैदा की जाती है। बम्बई, मद्रास, मैसूर तथा ट्रावनकोर की जल-विद्युत शक्ति यहीं से प्राप्त होती है। हिमालय की अपेक्षा पश्चिमी घाट में अधिक जल-विद्युत शक्ति प्राप्त की जाती है क्योंकि :—

(१) पश्चिमी घाटों में स्थित जल-विद्युत प्रपातों तक पहुँचने की सुविधायें अधिक हैं जिससे सामान और मशीनें सरलतापूर्वक पहुँच सकती है।

(२) यहाँ जल वर्षा बहुत होती है अतः बिजली बनाने के लिये पानी की कमी नहीं पड़ती।

(३) इस क्षेत्र में औद्योगिक उन्नति अधिक हुई है अतः यहाँ बिजली की माँग अधिक है।

(४) इस क्षेत्र में कोयले का अभाव है अतः यहाँ कोयले का काम बिजली से लिया जाता है।

(५) यह क्षेत्र पठारी है और पठार के ढालों पर स्वभावतः जल-प्रपात अधिक पाये जाते हैं। मैसूर में शिवासमुद्रम, गांधी प्रपात आदि है।

भारत की बहुमुखी योजनायें—

यद्यपि भारत में संसार में सबसे अधिक प्रदेश में सिंचाई होती है फिर भी भारत की खाद्य पदार्थों की कमी को पूरा करने के लिये सिंचाई की सुविधाओं में और अधिक वृद्धि करने की आवश्यकता है। वैज्ञानिकों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में सिंचाई के लिये जितना पानी उपलब्ध हो सकता है उसका केवल ६ प्रतिशत ही अब तक कार्य में लाया जा रहा है, शेष पानी व्यर्थ में समुद्र में बह जाता है और प्रतिवर्ष अनियन्त्रित बाढ़ों के द्वारा इतनी धन और जन की हानि होती है कि उसका सही माने में अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। प्रतिवर्ष भारत की नदियों में १३,५६० लाख एकड़ फीट पानी बहता है। इस मात्रा का केवल ५·६% (७६० लाख एकड़ फीट) पानी सिंचाई व जलविद्युत उत्पादन के प्रयोग में आता है। शेष ९४·४% यों ही बह कर चला जाता है।

अभी तक जल विद्युत शक्ति बनाने के लिए केवल २% जल का ही प्रयोग हुआ है। अतः पंचवर्षीय योजना (१९५१–५६) ने देश की जल-शक्ति का उपयोग करने के लिए १५३ बड़ी-बड़ी योजनायें बनाई हैं। इनमें से १२ योजनाएँ तो बहुत बड़ी हैं। इन १२ में से ६ बहुमुखी योजनायें हैं। इनमें से ३ केवल शक्ति उत्पादन के लिए और ३ केवल सिंचाई के लिए हैं। इन १२ योजनाओं पर ४३९ करोड़ रुपया खर्च होगा और शेष १४१ योजनाओं पर १५१ करोड़ रुपया खर्च होगा। इनके समाप्त होने में १५ से २० वर्ष लगेंगे। इनके अतिरिक्त १२२ योजनाओं पर भी जाँच-पड़ताल समाप्त हो चुकी है। इन पर १३१० करोड़ रुपया खर्च होगा। अगले के चित्र में भारत में वर्तमान एवं भविष्य के सिंचाई के साधन एवं बहुमुखी योजनाओं के क्षेत्र बताये गये हैं।

भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के पश्चात् केन्द्रीय और राज्यीय सरकारों द्वारा जल-शक्ति और सिंचाई की वृद्धि के लिये कई योजनायें बनाई गई हैं। इन योजनाओं के कार्यान्वित होने पर न केवल देश के सिंचाई के साधनों में ही वृद्धि होगी वरन् जल-शक्ति में वृद्धि, बाढ़ नियन्त्रण, जल मार्ग, आमोद-प्रमोद

और मछली पकड़ने आदि सभी कार्यों को सहयोग प्राप्त होगा तथा सबकी वर्तमान स्थिति में वृद्धि की सम्भावना है। ये सभी बहुमुखी योजनायें कहलाती हैं।

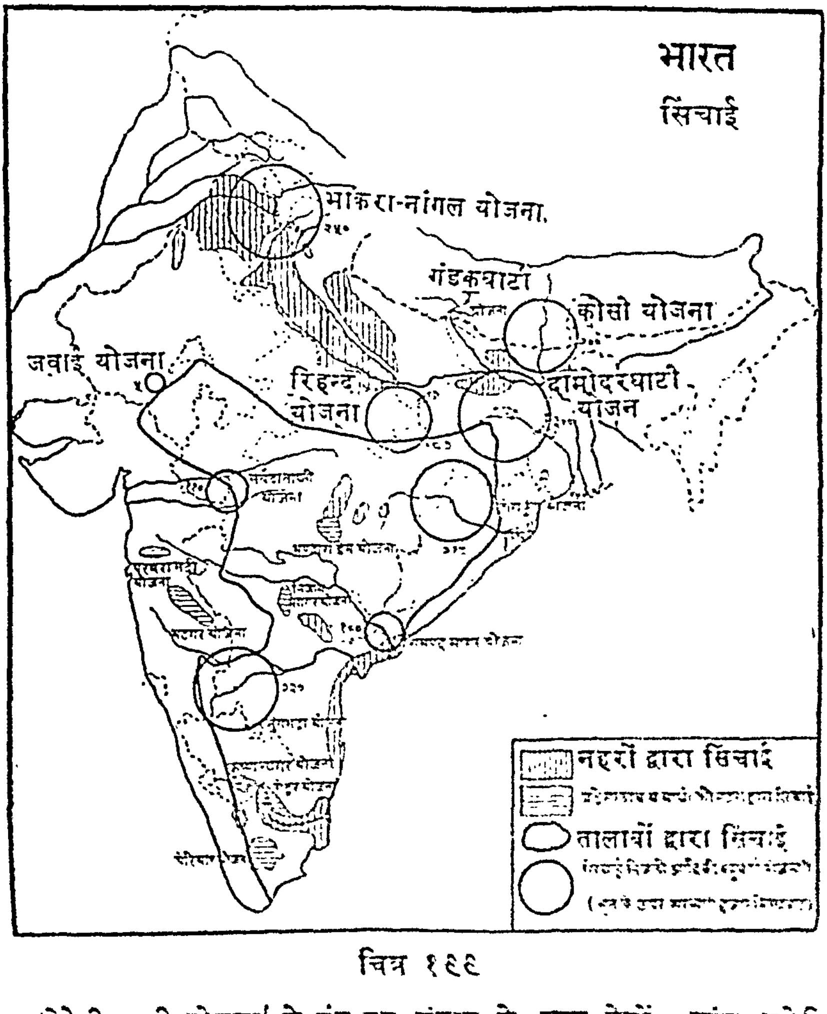

चित्र १६६

'टेनेसी घाटी योजना' के ढंग पर संसार के अन्य देशों— फ्रांस, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और रूस—में बनी नदी घाटी योजनाओं की सफलता से उत्साहित हो कर भारत ने भी अपनी जल-शक्ति का उपयोग करने में एक नये तरीके को अपनाया है। यह 'नया रास्ता' 'भूमि को पानी, उद्योग को शक्ति और सभी को उद्यम' प्रदान करेगा।

बहुधन्धी योजना उन कई उद्देश्यों को एक साथ पूरा करने का ढंग है जो वास्तव में एक ही समस्या के विभिन्न रूप हैं। इस प्रकार हम न तो किसी पक्ष की अवहेलना ही करते हैं और न हमारा दृष्टिकोण एकांगी रह जाता है। उस क्षेत्र की सभी आवश्यकताओं और सभी साधनों को ध्यान में रखते हुए बहुधन्धी योजना विकास कार्य करती है। किसी नदी का सम्पूर्ण उपयोग

इसी ढंग के अन्तर्गत सम्भव है। नदी की स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक अर्थ व्यवस्था तथा साधनों में अनावश्यक उलट-फेर न कर उनका इस प्रकार विकास किया जाता है कि समाज को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। संतुलित और समग्र विकास पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। किसी भी ऐसी योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं—

(१) सिंचाई और भूमि का वैज्ञानिक उपयोग एवं प्रबन्ध,
(२) विद्युत-शक्ति में वृद्धि और औद्योगीकरण,
(३) बाढ़ नियन्त्रण और बीमारियों की रोकथाम में सहायता,
(४) जल-मार्ग का विकास तथा क्षेत्रीय आर्थिक प्रगति,
(५) घरेलू-कार्य के लिए पानी की व्यवस्था,
(६) मछलियों को पकड़ना, मत्स्य-उद्योग का विकास,
(७) जंगलों की रक्षा, वृक्षारोपण और ईंधन का प्रबन्ध,
(८) भूमि की हिफाजत,
(९) पशु सम्पत्ति के लिए चारे की व्यवस्था,
(१०) दुर्भिक्ष आदि से मुक्ति दिलाना, और
(११) मनुष्यों तथा साधनों को काम मिलना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भूमि-विशेषज्ञ, कृषक, इन्जीनियर और अर्थशास्त्री में सहयोग की बहुत बड़ी आवश्यकता है। अन्यथा सभी परिश्रम व्यर्थ हो जाने की आशंका है।[1]

इन सब योजनाओं के कार्यान्वित होने पर भारत अपनी १० प्रतिशत जलशक्ति का उपयोग करने और लगभग २८० लाख एकड़ भूमि को खेती के योग्य बनाने में समर्थ हो सकेगा। इन योजनाओं के कारण १६,९४० लाख एकड़ भूमि पर अधिक सिंचाई होगी और इस सिंचाई के कारण प्रतिवर्ष १५० लाख टन अधिक अन्न पैदा होगा और १५० लाख किलोवाट बिजली भी पैदा की जायगी।

प्रस्तावित योजनायें नियन्त्रण के दृष्टिकोण से निम्न भागों में विभाजित की जा सकती हैं :—

(१) पूर्वी पंजाब की नदियों सम्बन्धी योजनायें जो भारत विभाजन के पूर्व सिन्ध घाटी के अन्तर्गत आती थीं।

(२) मध्य गंगा का बहाव प्रदेश जो इसके उद्गम और उत्तर प्रदेश की पूर्वी सीमा के बीच में आता है।

(३) पूर्वी गंगा का बहाव प्रदेश, जिसमें प्रधानतः इसकी उत्तरी सहायक नदियाँ बहती हैं।

(४ उत्तरी आसाम की ब्रह्मपुत्रा बहाव प्रदेश की योजना।

1. Lewis Mumford: 'The Culture of Cities.'

(५) हुगली के बहाव प्रदेश की योजना, जो पूर्वी विहार और लगभग समस्त पश्चिमी बंगाल को अपना कार्य क्षेत्र बनाती है।

(६) उड़ीसा की नदियों के वहाव प्रदेश की योजनायें जिनकी सीमा उत्तर में स्वर्ण रेखा और दक्षिण में महानदी के उद्गम से बनती हैं।

(७) गोदावरी नदी की योजना जो अपनी सहायक नदियों सहित बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

(८) कृष्णा नदी की योजना जो मध्य और पूर्वी मद्रास के सूखे जिलों तक फैली हुई है।

(९) कावेरी नदी की योजना।

(१०) मध्य भारत की नर्वदा और ताप्ती नदी के वहाव प्रदेश की योजना।

यह तथ्य निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

नदियों के प्रवाह क्षेत्र	अनुमानित औसत वहाव	१९५१ तक उपयोग	प्रथम योजना के अन्तर्गत अतिरिक्त उपयोग	द्वितीय योजना के अंतर्गत अतिरिक्त उपयोग
		(१० लाख एकड़ फुट में)		
१. सिंधु	१६८	८·०	११·००	१·२
२. गंगा	४००	२०·०	२१·५	१४·५
३. ब्रह्मपुत्रा	३००	—	—	—
४. गोदावरी	८४	१२·०	१·०	१·५
५. महानदी	८४	०·६	१०·५	०·२
६. कृष्णा	५०	९·०	१५·६	२·६
७. नर्मदा	३२	०·२	—	१०·१
८. ताप्ती	१७	०·२	०·७	३·५
९. कावेरी	१२	८·०	१·३	०·६

(११) मालवा नदियों की योजनाएँ जो राजस्थान की पूर्वी सीमा को स्पर्श करती हैं और यमुना की सहायक नदी चम्बल के आसपास के प्रदेश को अपना कार्य स्थल बनाती हैं।

उक्त योजनाओं के विकास के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने निम्नलिखित योजनाओं का कार्य अपने हाथ में ले रखा है :—

(१) दामोदर घाटी की योजना (हुगली बहाव प्रदेश की)।
(२) कोसी योजना (पूर्वी गंगा प्रदेश की)।
(३) हीरा कुण्ड योजना (उड़ीसा प्रदेशीय नदियों की)।
(४) तुंगभद्रा योजना।

---

१. Second Five Year Plan : 1956, p. [illegible]

(५) भाकरा-नांगल योजना।
(६) रिहाण्ड योजना।
(७) चम्बल योजना।

इन योजनाओं में अनुमानतः २३२ करोड़ व्यय होगा तथा इनसे १२० लाख एकड़ भूमि सिंचाई के योग्य बनेगी। इन योजनाओं के द्वारा केवल सिंचाई और उद्योगों के लिये जल शक्ति की ही नहीं प्राप्त होगी वरन् इनसे बाढ़ नियन्त्रण, मलेरिया निवारण, जलमार्ग, उपजाऊ भूमि की वृद्धि और मछली पालने में भी वृद्धि होगी।

उक्त योजनाओं के अतिरिक्त कुछ राज्कीय योजनाओं को भी कार्यान्वित किया जा रहा है। जैसे :—मोर घाटी योजना (पश्चिमी बंगाल में), रामपद सागर (मद्रास में), पूर्वी पंजाब की भाकरा और नांगल योजनाएँ, राजस्थान की चम्बल योजना।

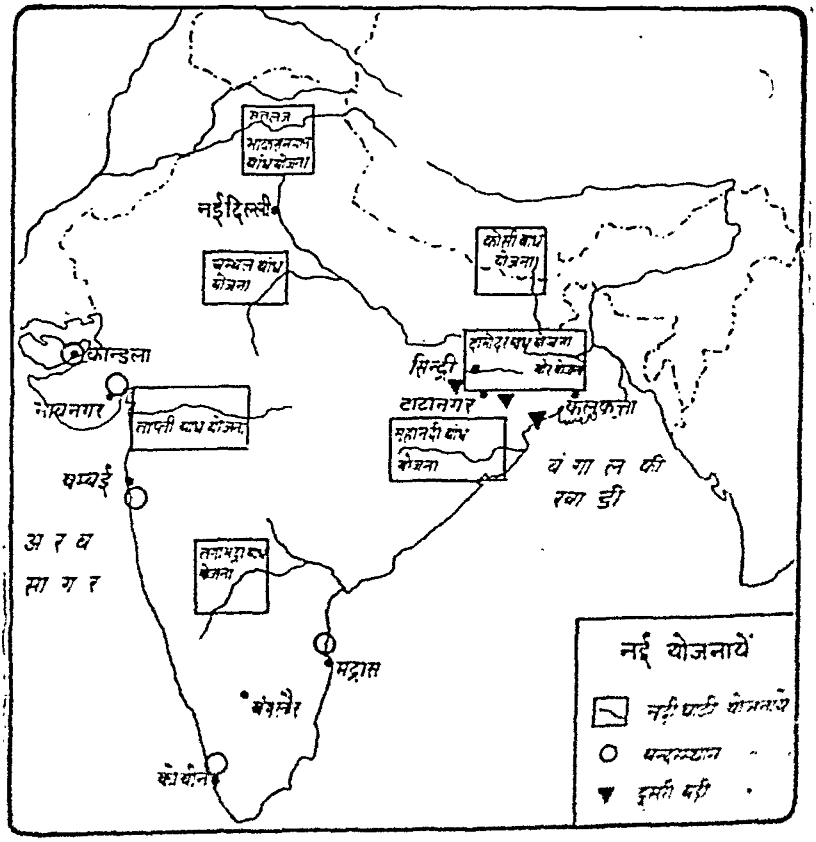

चित्र २००— भारत में बहुमुखी योजनायें

(१) दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project)—दामोदर (इसको 'शोक की नदी' भी कहते हैं) ३३६ मील लम्बी है। इसका उद्गम छोटा नागपुर की पहाड़ियों में समुद्र तल से २,००० फुट की

ऊँचाई पर है। यह बिहार में १८० मील बहने के बाद पश्चिमी बंगाल में हुगली में गिर जाती है।

दामोदर घाटी की योजना का ध्येय सिंचाई तथा जल मार्ग के लिये पानी प्रदान करना, मलेरिया पर विजय प्राप्त करना तथा वैज्ञानिक व्यवस्था का प्रवेश कर, सारी घाटी की आर्थिक स्थिति में विकास करना है। इस योजना से ७ लाख ५० हजार एकड़ भूमि में नित्यवही सिंचाई और ३ लाख किलोवाट शक्ति के उत्पादन का अनुमान है। कोनार बांध १९५४ में बनकर तैयार हो चुका है। इसमें ११ लाख घनफुट जल रोका जायगा और ६०,००० किलोवाट शक्ति उत्पन्न की जायगी। पंचेट पहाड़ी पर निर्माण कार्य चालू है। दुर्गापुर का बांध बनकर समाप्त हो चुका है।

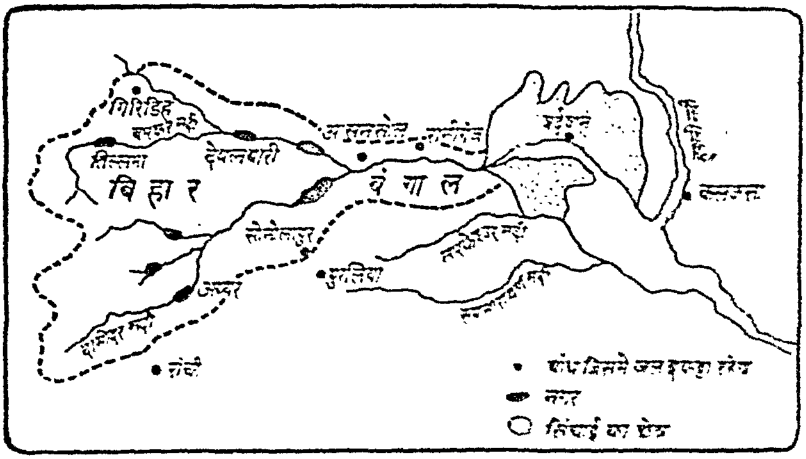

चित्र २०१—दामोदर घाटी योजना

उत्तरी दामोदर नदी की घाटी टिम्बर, लाख और टसर रेशम के लिये बहुत धनी है। नीचे की घाटी यद्यपि बहुत उपजाऊ है लेकिन सिंचाई की उचित व्यवस्था के अभाव में वहाँ विस्तृत कृषि एवं उत्पादन असम्भव है। दामोदर घाटी में भारत के प्रसिद्ध कोयले के सम्भावित क्षेत्र और निरापेक्षीय मात्रा में बॉक्साइट और एल्यूमीनियम पाया जाता है। इस घाटी में फायर क्ले, अभ्रक, चूना, सीसा, चाँदी, सुरमा और क्वार्ट्ज के मिलने की भी सम्भावना है। इसलिये सस्ती जल-विद्युत शक्ति के वितरण से ये खनिज भी उचित रूप से प्रयोग में लाये जा सकेंगे।

भारत सरकार ने एक कानून द्वारा दामोदर घाटी की योजना के लिये १९४८ में एक कॉरपोरेशन का निर्माण किया है। दामोदर घाटी का यह कॉरपोरेशन सिंचाई, शक्ति उत्पादन और बाढ़ नियन्त्रण की योजनाओं को कार्यान्वित करेगा। दामोदर और उसकी सहायक बाराकर नदी पर ८ बांध बनाकर नदी की बाढ़ को रोका जायगा और सभी बाँधों से जलशक्ति उत्पन्न की जायगी। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर इन जलशक्ति के केन्द्रों को सहायता देने के लिए एक दो लाख किलोवाट शक्ति का [illegible] में सबसे [illegible]

बोकारो में बनाया गया है। ये बाँध क्रमशः मलथान, सानोलपुर, दलबरी, तिल्लैया, अय्यर, बुकारो, पंचेट पहाड़ी और मध्य कोनार पर बनाये जायेंगे। इनके अतिरिक्त एक बाँध दुर्गापुर मे केवल बिजली उत्पन्न करने के लिये बनाया जावेगा। इन आठों बाँधों स लगभग ३ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी जो दक्षिणी बिहार, पटना, कलकत्ता, जमशेदपुर और डालमियानगर तक पहुँचाई ज यगी। इसके अतिरिक्त इस योजना के अन्तर्गत १५५० मील लम्बी नहरें भी बनाई जावेंगी जिससे बगाल की १० लाख एकड़ भूमि को सींचा जा सकेगा। पूरी प्रणाली के समाप्त होने पर चार लाख टन अधिक अन्न पैदा किया जा सकेगा। छोटा नागपुर के उजाड़ क्षेत्रों में भूमि के कटाव को रोकने के निमित्त वन लगाये जावेंगे जिनसे पशुओं के लिये चारा, रेशम के कीड़ों के लिए शहतूत के वृक्ष, लाख और बाँस प्राप्त होगा और ९० मील लम्बी सिचाई की मुख्य नहर द्वारा सस्ते दामों पर कलकत्ता व घाटी के बीच कोयला आदि वस्तुएं ले जाई जा सकेंगी। तालाबों में नावें चलाने तथा तैरने की सुविधा होगी और घरेलू कार्यों के लिए नलों द्वारा जल प्रदान किया जावेगा। इसमें १०० करोड़ रुपया खर्च होगा।

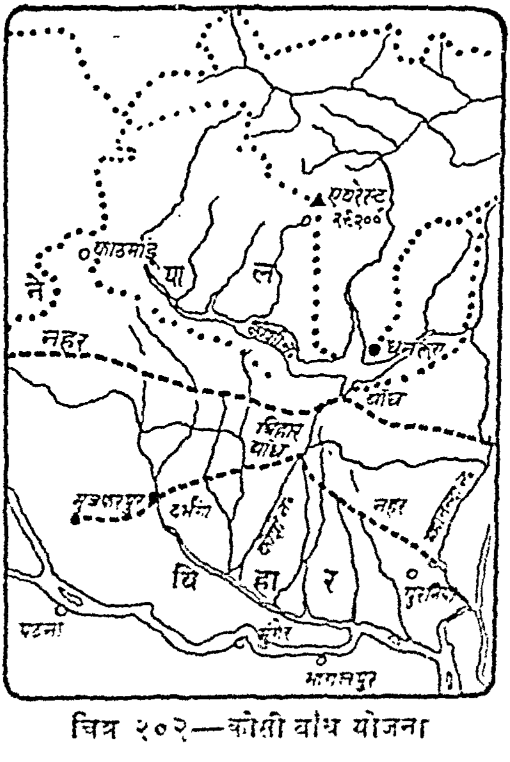

चित्र २०२—कोसी बांध योजना

इस योजना के अन्तर्गत तिल्लैया बाँध (११२ फुट ऊँचा और ११४७ फुट लम्बा) १९५२ में बन चुका है। इस बांध द्वारा ९९,००० एकड़ भूमि की सिंचाई हो रही है। बुकारो बाँध भी समाप्त हो चुका है। इसकी उत्पादन क्षमता १·५ लाख किलोवाट शक्ति है।

(२) कोसी योजना (Kosi Project)

यह बिहार की सबसे अधिक महत्वपूर्ण योजना है। यह योजना सिंचाई, शक्ति, जल-मार्ग, बाढ़ नियन्त्रण, मिट्टी के कटाव, नियन्त्रण, दलदल भूमि को साफ करने, मलेरिया नियन्त्रण, मछली पकड़ना और मनोरंजन की सुविधा की दृष्टि से एक बहुमुखी योजना बनेगी। इस योजना के द्वारा नेपाल में छत्रा गढ्ढ के आस-पास ७५० फीट ऊँचा बाँध बनाया जायगा। इस बाँध के द्वारा ११० लाख एकड़ फीट पानी संग्रहीत किया जा सकेगा। यह पानी ७९ वर्गमील भूमि को ढकेगा। इस योजना के द्वारा कोसी पर दो बाँध

बनाये जायेंगे। (१) पहला बाँध कोसी के आर-पार नेपाल में बनाया जायगा और इसके दोनों किनारों से नहरें निकाल कर नेपाल की लगभग १० लाख एकड़ भूमि में सिंचाई की जा सकेगी। (२) दूसरा बांध कोसी नदी के आर-पार नेपाल, बिहार की सीमा पर बनाया जावेगा और यहाँ से दो नहरें बायीं और एक नहर दायीं ओर बनाई जावेगी जिससे बिहार की २० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। यह पुर्निया, दरभंगा और मुजफ्फरपुर (बिहार) जिलों की जनसंख्या का जीवनस्तर ऊँचा उठाने में सहयोग प्रदान करेगा। बिहार के इस प्रदेश में पानी की अधिकता से बाढ़ भी आया करती है तथा पानी की कमी से अकाल भी पड़ा करता है। इसलिये यह योजना जल नियन्त्रण कर उपयुक्त वितरण के द्वारा यहाँ कृषि के उत्पादन में सहयोग प्रदान करेगी। इस योजना के द्वारा १८ लाख किलोवाट शक्ति का उत्पादन होगा। इसके शक्ति गृहों को दामोदर घाटी के शक्ति गृहों से मिलाकर एक जाल सा बना देने की योजना भी है। इस योजना को पूरा होने में १० वर्ष लगेंगे और १७७ करोड़ रुपये खर्च होंगे।

(३) हीराकुण्ड बाँध की योजना (Hirakund Project)—महानदी प्रायद्वीप की एक महत्वपूर्ण नदी है। किन्तु महानदी के जल का अभी तक सिंचाई अथवा जल विद्युत उत्पन्न करने के लिये उपयोग नहीं किया गया है। केवल ३% जल ही अब तक प्रयोग में लाया जा सका है। उड़ीसा का प्रान्त खनिज पदार्थों से भरा पड़ा है। यहाँ कोयला, लोहा, बाक्साइट, मैंगनीज, ग्रेफाइट क्रोमाइट और अभ्रक बहुत बड़ी राशि में पृथ्वी के गर्भ में भरा हुआ है। महानदी प्रति वर्ष ७ करोड़ ४० लाख एकड़ फीट पानी बहा ले जाती है। उड़ीसा का क्षेत्रफल अब ५,०३९ वर्ग मील है और एक करोड़ २० लाख जनसंख्या है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की प्रसिद्ध टेनैसी घाटी से कई गुना यह प्रदेश साधन-सम्पन्न है। परन्तु महानदी के जल का पूरा-पूरा

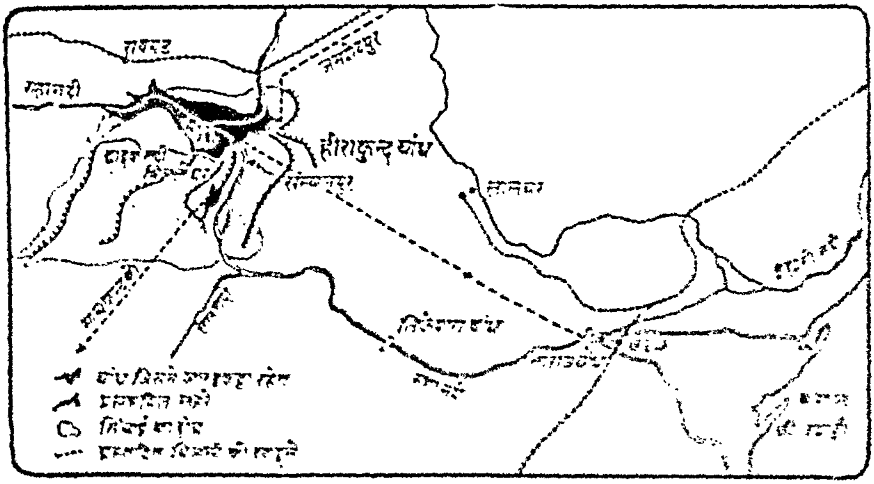

चित्र २०३—हीराकुण्ड बाँध योजना

उपयोग न हो सकने के कारण यह प्रदेश निर्धन और अवनत दशा में पड़ा हुआ है।

इस प्रदेश को धन-धान्य तथा उद्योग-धंधों से भरा-पूरा करने के उद्देश्य से हीराकुण्ड बाँध की योजना हाथ में ली गई है। हीराकुण्ड बाँध की योजना बहुमुखी है। उसके द्वारा सिंचाई होगी, जल-विद्युत उत्पन्न होगी, नावों के द्वारा माल ढोने की सुविधा होगी और आज जो नदी में बाढ़ आने से विनाश होता है वह रोका जा सकेगा।

हीराकुण्ड बाँध की योजना उड़ीसा के सम्बलपुर जिले में महानदी पर सम्बलपुर से ९ मील ऊपर की ओर हीराकुण्ड नामक स्थान पर बनाई जा रही है। इस योजना के बन जाने पर इस प्रदेश में खेती, उद्योग-धंधों तथा खनिज धंधों की आश्चर्यजनक गति से उन्नति होगी। यह योजना संसार की सबसे बड़ी योजना होगी।

मुख्य बाँध १९५ फीट ऊँचा और १६ मील लम्बा होगा। इसके द्वारा २५० वर्ग मील क्षेत्र में ६७ लाख एकड़ फुट पानी एकत्रित किया जायगा। इसके अतिरिक्त दो और बाँध बनाये जायेंगे। अस्तु कुल मिलाकर इस योजना के अन्तर्गत तीन बड़े बाँध बनाये जावेंगे। (१) हीराकुण्ड (२) तिकरपारा (३) नाराज। इन बाँधों के बन जाने पर केवल सिंचाई, बिजली, नौका-संचालन, बाढ़ नियन्त्रण की सुविधाएँ ही प्राप्त नहीं होंगी वरन् मलेरिया के प्रकोप को रोकने, मछली की पैदावार को बढ़ाने, भूमि के कटाव को रोकने तथा मनोरंजन की बहुमूल्य सुविधाएँ भी प्रदान की जाएँगी।

हीराकुण्ड बाँध की योजना से लगभग ३५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। दो शक्तिगृह जो स्थापित किये जायेंगे वे ३½ लाख किलोवाट शक्ति उत्पन्न करेंगे। इनमें से एक शक्तिगृह बाँध के निकट और दूसरा बाँध से १७ मील नीचे की ओर होगा। यह बिजली कटक और जमशेदपुर तक ही जावेगी तथा इस बिजली की लाइन मूचकन्द शक्तिगृह को भी जोड़ेगी। ये बाँध बाढ़ों को रोककर लगभग १२ लाख रुपये का लाभ करेंगे। सम्पूर्ण योजना में ७१ करोड़ रुपया समाप्त होगा। यह योजना १९५७-५८ तक बन कर तैयार होगी। इसका पहला भाग प्रायः समाप्त होने पर है।

इस योजना के बनकर तैयार होने पर सम्बलपुर के समीप लोहे, सीमेंट, शक्कर, कागज, रासायनिक पदार्थों के कारखाने खड़े हो जावेंगे। इस योजना के फलस्वरूप २½ लाख टन अधिक अनाज उत्पन्न होगा जिसका मूल्य ३॥ करोड़ रुपये होगा। संक्षेप में इस योजना के बन जाने पर यह प्रदेश भारतवर्ष के अत्यन्त समृद्धशाली प्रदेशों में गिना जाने लगेगा।

(४) तुङ्गभद्रा योजना (Tungbhadra Project)—यह योजना भारत की चार बड़ी नदी घाटी योजनाओं में से एक है और मद्रास और हैदराबाद सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई है। इसमें कृष्णा की बड़ी सहायक नदी तुङ्गभद्रा के आर-पार मैसूर के बलारी जिले में १६० फीट ऊँचा और ८२०० फीट लम्बा बाँध बनाया गया है जिसमें ६० फुट चौड़े और २० फुट

ऊँचे ३३ दरवाजे हैं। इस बाँध के द्वारा २६ लाख एकड़ फीट पानी संग्रह किया जाता है, जिसका उपयोग मद्रास और आंध्र दोनों प्रदेशों के लिये होगा। इस योजना से मद्रास में जल-विद्युत का भी उत्पादन किया जावेगा। मद्रास व आंध्र में दो नहरों द्वारा २·५ लाख एकड़ और ४·५ लाख एकड़ भूमि की सिचाई की जा रही है। इस योजना से कुल १,८०,००० किलोवाट शक्ति उत्पादन तथा ७ लाख एकड़ भूमि में सिचाइ हो सकेगी। इस योजना में ५२ करोड़ रुपया खच हुआ है।

(५) भाकरा और नागल योजना (Bhakra Nangal Project)—पूर्वी पंजाब की यही एकमात्र और भारत की सबसे बड़ी बहुमुखी योजना है। इस योजना का ध्येय (१) सतलज और यमुना नदी के बीच के भाग की सिंचाई करना, (२) सरहिंद नहर में पानी बढ़ाकर उसकी सिंचाई का क्षेत्र बढ़ाना, (३) गंगा नहर-द्वारा राजस्थान मे सिंचाई के लिये जल पहुँचाना, और (४) लगभग ४ लाख किलोवाट बिजली पैदा करना। भाकरा खड्ड के आर-पार सतलज नदी पर ६८६ फीट ऊँचा सीमेंट और कंकरीट का बाँध बनाया जा रहा है। यह स्थान रूपड़ से ४० मील ऊपर की ओर है। इस बाँध से ५० मील लम्बी और लगभग २-३ मील चौड़ी गोविंद सागर नामक झील बनेगी। इस झील में ७२ लाख घन फीट पानी सँग्रह होने का अनुमान है, लेकिन इसमें शक्ति उत्पादन तथा सिंचाई के लिये प्रति वर्ष ५५ लाख घन फीट पानी ही प्राप्त होने की सम्भावना है। इस योजना से ३६ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होगी और १,४४,००० किलोवाट शक्ति का उत्पादन होगा।

यह बाँध ऊपरी सिरे पर १७०० फीट लम्बा होगा, इसकी चौड़ाई पैंदे में ११०० फीट होगी और सिरे पर ३० फीट सड़क का निर्माण होगा। बाँध के निर्माण में नदी को दो ५० फीट व्यास वाली सुरंगों में विभाजित किया जावेगा; उनमें से एक दायें और एक बायें होगी। प्रत्येक सुरंग आधा मील लम्बी होगी।

नागल योजना में नागल के पास नदी में आर-पार एक बाँध बनाया जा रहा है। यह बाँध भाकरा से ८ मील नीचे की ओर है। इस बाँध के द्वारा नदी का पानी नागल जल-विद्युत नहर में परिणत कर एक समतुलित संग्राहक का कार्य करेगा। इस संग्राहक में भाकरा बांध से पानी लिया जावेगा। नागल बांध १०२६ फीट लम्बा, ६५ फीट ऊँचा और ४०० फीट चौड़ा है। जल-मार्ग में ३० फीट चौड़ी २८ खाड़ियाँ बनेंगी और प्रत्येक में एक लोहे का फाटक लगाया जावेगा जिससे वर्तमान नदी के स्तर से ५० फुट ऊपर तक पानी रोका जा सकेगा। इस बांध से नीचे १२ और १८ मील पर दो शक्तिगृह बनाये जावेंगे। यहां पानी ६८ फीट ऊपर से गिरेगा। इस योजना से भाकरा बांध के ऊपर तक ८०,००० किलोवाट तथा बाद में १,४०,००० किलोवाट शक्ति के उत्पादन का अनुमान है। ये दोनों शक्तिगृह बन चुके हैं।

नागल शक्ति योजना से भाकरा बांध के बनाने के लिये शक्ति मिलेगी तथा आसपास के प्रदेश की आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के साथ-साथ सतलज

घाटी, सरहिन्द और पश्चिमी यमुना नहर के पास ट्यूबवैल से पानी लेने के लिये पम्पों का संचालन कर सिंचाई पूरक प्रयत्न होगा। पंजाब व राजस्थान की ३५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी तथा योजना के पूरे होने पर लगभग १३ लाख टन अनाज व ८ लाख टन उत्तम कपास अधिक पैदा होगी। ४ लाख किलोवाट बिजली भी पैदा की जायगी। इस बिजली के द्वारा तेल, सूती-ऊनी कपड़ा, चमड़ा, चीनी और खनिज उद्योगों की उन्नति होगी। यह बिजली पंजाब के जिलों, दिल्ली, गुड़गाँव, रिवाड़ी तक जा सकेगी। इस योजना में १५१ करोड़ रुपया खर्च होगा जिसमें से ८५% पंजाब, और १५% राजस्थान की सरकार देगी। नागल नहर का उद्घाटन १९५४ की ८ जुलाई को हो चुका है।

(६) रिहाण्ड बाँध योजना (Rihand Dam)—यह पूर्वी उत्तर प्रदेश की सबसे महत्वपूर्ण बहुमुखी योजना है। इस बाँध के द्वारा सोन नदी की सहायक नदी रिहाण्ड का पानी, मिरजापुर जिले में पीपरी गाँव के पास, एक बड़े संग्राहक में इकट्ठा किया जावेगा। यह बाँध ३००० फीट लम्बा और ९० फीट चौड़ा होगा। इसके द्वारा ९० लाख एकड़ फीट पानी संग्रह हो सकेगा। यह संग्राहक १८० वर्गमील के फैलाव में होगा।

इस योजना के द्वारा २,३०,००० किलोवाट शक्ति का उत्पादन एक पाई प्रति यूनिट से होगा। इस सारी योजना में ३० करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है उसमें से १६.२५ करोड़ बाँध में, ३ करोड़ ओबरा के बाँध में और १० करोड़ रुपया बिजली पहुँचाने में खर्च होने की सम्भावना है।

रीवाँ क्षेत्र में सीमेण्ट बनाना, कपड़ा बनाना, कागज, काँच, शक्कर, एल्यूमीनियम, प्लाईवुड, माचिस और खाद बनाने का व्यवसाय प्रारम्भ कर इस योजना का पूरा-पूरा लाभ उठाया जायगा।

इस योजना से पूर्वी उत्तर प्रदेश में लगभग ३००० से ऊपर ट्यूबवैल और घाघरा, यमुना, और गङ्गा नदियों के पानी को पम्प करके ४००० मील लम्बी नहर निकाल कर २५ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होगी। इस प्रकार बहुत सी नई जमीन खेती के योग्य बन कर खेती खाद्य पदार्थ उत्पादन में सहयोग प्रदान करेगी।

इस बड़े संग्राहक में मछली पकड़ने का कार्य और नावों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल ले जाने का कार्य भी हो सकेगा। नहरों के द्वारा सोन की घाटी का अज्ञात प्रदेश गंगा को स्पर्श करने लगेगा। बड़े-बड़े जहाज हुगली से रिहण्ड तक चल सकेंगे।

इस योजना के द्वारा एक खनिज पदार्थों के धनी प्रदेश में औद्योगीकरण किया जा सकेगा। पूर्वी रेलवे के कुछ विभागों को बिजली प्रदान कर यह योजना कोयले की खनन के कार्य में भी सहयोग प्रदान कर सकेगी और योजना के फलस्वरूप ४०००० [illegible] कोयला प्रतिवर्ष बनाया जा सकेगा।

इस योजना के अन्तर्गत ४० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की सम्भावना है, तथा यह योजना बाढ़ नियन्त्रण का कार्य भी करेगी और सोनी क्षेत्र में

इसके आस-पास के प्रदेश में जङ्गल लगाने के कार्य में भी सहायता मिलने की सम्भावना है।

(७) चम्बल योजना (Chambal Project)—चम्बल राजस्थान व मध्यप्रदेश की नदी है, जो इन दोनों प्रान्तों मे बहकर उत्तर प्रदेश में यमुना नदी में मिल जाती है। इस नदी के किनारे भूमि का कटाव होने के कारण हर साल बहुत अधिक बाढ़ें आती हैं। इस नदी का मार्ग बहुत पथरीला और कटा-फटा है। इसके किनारे २००-३०० फुट ऊँचे और इसका विस्तार २५०० फुट है। लेकिन एक स्थान पर यह केवल ६०० फुट चौड़ी है। इसी सँकड़े स्थान पर तीन बाँध बनाए जा रहे हैं। पहला बाँध चम्बल के मुहाने से २०० मील उत्तर की तरफ बनाया जा रहा है। इसका नाम गाँधी सागर बाँध होगा। इस बाँध के द्वारा पौने दो सौ वर्ग मील भूमि का जल रोका जायगा। यह बाँध २०० फुट ऊँचा व १७५० फुट लम्बा होगा। इसके द्वारा ६०,००० किलोवाट बिजली पैदा होगी, और इसके बनने में लगभग साढ़े दस करोड़ रुपया खर्च होगा। यह बाँध १९६०–६१ तक बन कर तैयार होगा।

दूसरा बाँध रावत भाटा के पास राणा प्रताप सागर बाँध के नाम से चूलिया झरने पर बनाया जायगा। इसके द्वारा साठ वर्ग मील जमीन का पानी रोका जायगा। यह बाँध ३५०० फुट लम्बा व १२० फुट चौड़ा होगा। इसके द्वारा ९०,००० किलोवाट बिजली पैदा होगी। यह बाँध १९६१–६२ में समाप्त होगा।

तीसरा बाँध कोटा से १० मील उत्तर की तरफ कोटा बाँध के नाम से बनाया जायगा। यह बाँध १८०० फुट लम्बा व ८० फुट चौड़ा होगा। इसके द्वारा ५०,००० किलोवाट बिजली पैदा होगी।

पूरी योजना पर सब मिलाकर ५० करोड़ रुपया खर्च होगा जिनमें से ४० करोड़ भारत सरकार और ५ करोड़ राजस्थान और ५ करोड़ मध्य प्रदेश सरकार खर्च करेगी। इस योजना के पूरी हो जाने पर मध्य प्रदेश की १२ और राजस्थान की १९ तहसीलों में सिंचाई करके १२ लाख एकड़ जमीन पर खेती की जायगी जिससे चार लाख टन अनाज अधिक पैदा होगा और २ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न की जायगी। इस योजना से सांभर झील का नमक, मकराने का संगमरमर, जयपुर व भीलवाड़ा का घीया पत्थर, जयपुर, किशनगढ़, कोटा और भीलवाड़ा की सूती कपड़ों की मिलों, उदयपुर की जावर की खानों और बूँदी के सीमेन्ट के कारखानों तथा जयपुर के धातु उद्योग को बहुत सस्ती बिजली प्राप्त हो सकेगी।

(८) मयूराक्षी योजना (Mayurakshi Project)—संथाल परगना में मैसनजोर नामक स्थान पर मयूराक्षी नदी पर एक बाँध ११२ फुट ऊँचा और २,०६७ फुट लम्बा बनाकर लगभग ५ लाख एकड़ फुट पानी का संग्रह किया गया है। यह बाँध मैसनजोर या कनाडा बाँध कहलाता है। दूसरा बाँध मैसनजोर से २२ मील आगे इसी नदी पर प० बङ्गाल के बीरभूम जिले में सूरी स्थान के निकट बनाकर दोनों किनारों से नहरें निकाली

जायेंगी जो वीरभूम, वर्दवान और मुर्शिदाबाद जिलों की ६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करेगी। इसके फलस्वरूप ३ लाख टन चावल और २५ हजार टन रवी की फसलें पश्चिमी बङ्गाल और बिहार में उत्पन्न की जा सकेंगी।

मैंसनजोर नामक स्थान पर एक छोटा सा शक्तिगृह भी बनाया जायेगा जिससे ४,००० किलोवाट जल-विद्युत शक्ति तैयार होगी। यह शक्ति वर्दवान, मुर्शिदाबाद और संथाल परगना को दी जायगी। यह योजना विशेषत: सिंचाई योजना है। यह बन कर सम्पूर्ण हो चुकी है। इस योजना पर १६ करोड़ रु० खर्च हुए हैं।

(६) मच्छकुण्ड योजना (Machkund Project)—आन्ध्र और उड़ीसा राज्य के सम्मिलित प्रयत्न से इस योजना के अन्तर्गत मच्छकुण्ड नदी पर १३४ फुट ऊंचा और १३०० फुट लम्बा बाँध बनाया जायगा जिसके अन्तर्गत ५·८ लाख एकड़ फुट जल एकत्रित किया जा सकेगा। शक्ति उत्पादन के लिए तीन शक्तिगृह निर्मित किये जायेंगे जिनमें से प्रत्येक की उत्पादन क्षमता १७,००० किलोवाट होगी। बाद में तीन और शक्तिगृह निर्माण किये जायेंगे। इनकी सम्मिलित शक्ति की क्षमता १,०२,००० किलोवाट होगी। इसमें १६·६० करोड़ रुपये व्यय होंगे।

(१०) रामपद सागर (Rampad Sagar)—यह बाँध गोदावरी नदी पर पोलावारम के पास बनाया जायगा। यह ४२८ फुट ऊँचा और ६६०० फुट लम्बा होगा। यद्यपि यह बहुमुखी योजना है किंतु इसका महत्व सिंचाई के लिए अधिक होगा। इसके द्वारा विशाखापट्टनम, कृष्णा, गोदावरी और गन्तूर जिलों की लगभग २७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। इस बांध के दाईं ओर एक शक्तिगृह भी बनाया जायेगा जिससे लगभग १½ लाख किलोवाट शक्ति उत्पन्न होगी। इस शक्तिगृह का सम्बन्ध मद्रास के विद्युत-जाल से किया जायेगा। इसके बनने में १३० करोड़ रुपये लगेंगे और यह पांच वर्षों में बन कर तैयार होगा।

(११) कोयना बाँध योजना (Koyna Project)—बम्बई में कोयना नदी पर हेलवाक स्थान पर ३८२ फुट ऊंचा और ३,०३० फुट लम्बा बाँध बनाया जा रहा है। इस बाँध के जल में ७·२ लाख किलोवाट जल-विद्युत उत्पन्न की जायेगी। इसका उपयोग बम्बई, सतारा, पूना, शोलापुर, बीजापुर, रत्नगिरी, तथा थाना जिले में किया जायेगा। इस योजना के अन्तर्गत ३७,००० एकड़ भूमि की सिंचाई भी की जायेगी। इसके निर्माण में ६० करोड़ रुपये खर्च होंगे।

(१२) ककड़ापारा बाँध (Kakrapara Project)—ताप्ती नदी पर ककड़ापारा नामक स्थान के निकट एक २,१७५ फुट लम्बा और ४५१ फुट ऊँचा एक बाँध १९५३ में बन कर समाप्त हो चुका है। इससे बम्बई और अहमदाबाद के बीच ६·५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी तथा २·२ लाख किलोवाट जल-विद्युत शक्ति का उत्पादन होगा।

शक्ति के अन्य साधन (Other Sources of Power)

यद्यपि विश्व में शक्ति के और भी कई साधन उपलब्ध हैं, किन्तु मानव के आर्थिक विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि होने से उनकी मांग भी बढ़ती जा रही है और

यह डर है कि यदि शक्ति की मांग इसी प्रकार निर्विरोध गति से बढ़ती रही तो संभवतः एक समय ऐसा आ सकता है जब शक्ति के वर्तमान साधन बिल्कुल ही अपर्याप्त सिद्ध हों। अतः मानव शक्ति के अन्य साधनों की खोज निकालने में तत्पर हो रहा है। इस सम्बन्ध में उसे कुछ सीमा तक सफलता मिली भी है, लेकिन वह नगण्य सी है। इस प्रकार की नई अविष्कृत शक्तियाँ क्रमशः ये हैं :—

(१) ज्वार भाटे की शक्ति (Power of Tidal Water)

(२) पृथ्वी का अन्तर्ताप (Internal Heat of the Earth)

(३) सूर्य की शक्ति (Heat of the Sun)

(४) अणु-शक्ति (Atom Power)

(१) इनमें से पृथ्वी की गर्मी और समुद्रीय लहरों की शक्ति के तरीके अभी अपूर्ण हैं। इङ्गलैण्ड में दक्षिणी वेल्स में सेवर्न नदी की इस्चुरी में और फ्रांस में विस्के की खाड़ी में ज्वार-भाटे की शक्ति-प्रयोग के कुछ सफल प्रयास किये गये हैं। किन्तु इस प्रकार की शक्ति विश्व की मांग का बहुत ही थोड़ा भाग पूरा कर सकती है।

(२) शक्ति का अन्य साधन पृथ्वी के गर्भ में ज्वालामुखी पर्वतों के निकट पाई जाने वाली आन्तिरक गर्मी है। यह गर्म स्रोतों में भी प्राप्त होती है। कैलीफोर्निया, इटली (टस्कैनी) और इङ्गलैण्ड के ज्वालामुखी पर्वतीय भागों में इस शक्ति से वाष्प-इंजिन और विद्युत् उत्पन्न करने वाले यंत्र चलाए जाते हैं। आइसलैंड में भी इस शक्ति का विकास किया गया है। यहाँ थिंगवाला झील में कई गर्म स्रोतों का जल बह कर आता है। यह गर्म जल नलों द्वारा १० मील की दूरी पर रैक्जाविक को ले जाया जाता है। वहाँ यह लगभग ३००० घरों को गर्म करने में उपयुक्त होता है। इसका उपयोग सार्वजनिक-लौन्ड्रियों में भी होता है। आइसलैंड में तो इस गर्म जल की शक्ति से मकानों (Hot houses) में ही केला, रसदार फल, सब्जियाँ और फूल पैदा किए जाते हैं। किंतु इस प्रकार प्राप्त की गई शक्ति भी मानव की भविष्य की मांग को पूरा करने में अपर्याप्त ही रहेगी।

(३) सूर्य भी पृथ्वी पर मिलने वाली गर्मी और शक्ति का जन्मदाता है। वह स्वयं भी दहकता हुआ एक आग का महान पिंड है। श्री ऐबट के अनुसार पृथ्वी इस समय भूमि के प्रति ५ वर्ग फीट पर सूर्य से एक अश्व शक्ति ग्रहण करती है। पृथ्वी को सूर्य से बहुत अधिक गर्मी और शक्ति प्राप्त होती है। अनुमान लगाया गया है कि मिस्र के ६००० वर्ग मील पर पड़ने वाली सूर्य की किरणें इतनी शक्ति फेंकती हैं जो विश्व की सारी मशीनों और पवन-चक्कियों को गतिमान कर सकती है। विशेष प्रकार के कांच और धातु साधनों द्वारा सूर्य की शक्ति का छोटे पैमाने पर विकास किया गया है। किन्तु मोटे तौर पर सूर्य की शक्ति का वे ही देश अधिक लाभ उठा सकते हैं जहाँ मौसम वर्ष भर चमकीला और साफ रहता है क्योंकि ऐसे ही मौसम में सूर्य की किरणें सीधी पड़ने के कारण उनसे मिलने वाली गर्मी की मात्रा अधिक होती है।

अतएव यह संभव है कि उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश ही भविष्य में इस शक्ति उत्पादन के अग्रणी होंगे और तब सभ्यता के केन्द्र गर्म मरुस्थलों की सीमा पर ही स्थापित होंगे।

सूर्य से शक्ति प्राप्त करने के प्रयास भारत में भी आरंभ हो गये हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि यदि इस शक्ति का विकास किया जा सका तो इससे न केवल खेतों की सिंचाई और कुटीर उद्योगों को ही लाभ मिलेगा वरन् पश्चिमी शुष्क प्रदेशों में जहाँ पानी की कमी है और शक्ति का अभाव है, सूर्य यंत्र विशाल क्षेत्रों को खेती के उपयुक्त बना सकेंगे।

(४) शक्ति का नवीनतम साधन विभिन्न प्रकार की खनिजों—थोरियम, (Thorium), यूरेनियम (Uranium), प्लूटोनियम (Plutonium) आदि से प्राप्त की जाने वाली अणु-शक्ति है। अनुमान लगाया जा सकता है कि एक पौंड यूरेनियम या प्लूटोनियम से १२० लाख किलोवाट शक्ति उत्पादित की जा सकती है—अर्थात् इस शक्ति की मात्रा ६००० टन कोयले से प्राप्त होने वाली शक्ति के बराबर होगी। ये तीनों ही खनिज भारत, बेल्जियन कांगो, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों में प्राप्त होते हैं। अभी तक इस शक्ति का उपयोग केवल विनाशकारी कार्यों के लिए ही किया गया है। इसका सर्वप्रथम परीक्षण १९४५ में हीरोशीमा के निकट अणुबम डाल कर किया गया। किन्तु अब इसका उपयोग वायुयान चलाने में भी किया गया है। सं० राष्ट्र, रूस, फ्रांस और ब्रिटेन अणुशक्ति के नये उपयोग ढूँढ़ निकालने में प्रयत्नशील हैं।

प्रश्न

१. ब्रिटेन के व्यापार में कोयले का क्या स्थान है? ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के व्यापार की तुलना कीजिए। (आ० बी० कॉम० १९४४, १९४५)

२. दुनियाँ में कोयला और पेट्रोल की उत्पत्ति के बारे में संक्षिप्त नोट लिखिये।

३. जल विद्युत के विकास के लिए कौन-कौन सी भौगोलिक तथा आर्थिक दशाएँ आवश्यक होती हैं? अपने उत्तर को भारत अथवा इटली के उदाहरण से स्पष्ट कीजिये। (आ० बी० कॉम० १९४७)

४. जल विद्युत का क्या महत्व है? उसके मुख्य साधन बताओ और यह भी लिखो कि अब तक उसने देश की क्या-क्या सेवाएँ की हैं। (यू० पी० बोर्ड १९४६)

५. "आधुनिक युग में कोयला व लोहा, सोना व हीरों से अधिक मूल्यवान हैं।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर की पुष्टि में उदाहरण दीजिये।

६. विश्व के कुछ ही देशों में कोयला क्यों पाया जाता है? कोयले की किस्म और उत्पादन-व्यय किस प्रकार भूगर्भिक कारणों से सम्बन्धित होते हैं। (आ० बी० कॉम० १९४८, १९५३)

७. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रमुख मिट्टी के तेल क्षेत्रों का वर्णन करते हुये बताइये कि विश्व में मिट्टी के तेल का क्या महत्व है? (आ० बी० कॉम० १९५१, १९५६)

८. पेट्रोलियम क्या है ? संसार के किन देशों में यह निकाला जाता है। ईंधन के रूप में इसका क्या महत्त्व है ? (आ० बी० कॉम० १९४६)

९. विश्व के कोयले और पेट्रोलियम के क्षेत्रों का वर्णन करते हुये उनके वितरण बताइये। (आ० बी० कॉम० १९४८)

१०. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और रूस के तेल क्षेत्रों का वर्णन करते हुये बताइये, कि आधुनिक समय में मिट्टी के तेल का क्या महत्व है।
(आ० बी० कॉम० १९४९)

११. 'ब्रिटेन में कोयला उद्योग' का वर्णन करते हुये बताइये कि इन कोल-क्षेत्रों में कौन से प्रमुख उद्योग-धन्धे पाये जाते हैं। (आ० बी० कॉम० १९५२)

१२. विश्व के जल विद्युत साधनों पर अपने विचार प्रकट करिये। इस सम्बन्ध में भारत के उत्पादित और सम्भावित साधनों पर प्रकाश डालिए।
(आ० बी० कॉम० १९५३)

१३. दक्षिणी-पूर्वी एशिया मे तेल-प्राप्ति का वर्णन करते हुए उसका महत्व समझाइए।
(आगरा, एम० ए० १९४७)

१४. चित्र खींच कर रानीगंज के कोल-क्षेत्र का विवरण देते हुए बताइये कि इस कोयले की क्या बुराइयाँ हैं। उनके दूर करने के लिए क्या सुझाव दिये जा सकते हैं ? (आगरा, एम० ए० १९४८)

१५. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के तेल-क्षेत्र का विवरण दीजिए और उनसे सम्बंधित उन बन्दरगाहों का भी उल्लेख करिये जिनके द्वारा तेल का व्यापार होता है।
(आगरा, एम० ए० १९४९)

१६. टेनैसी घाटी योजना का वर्णन करते हुए बताइये कि भारत की दामोदर घाटी योजना से इसकी तुलना कहाँ तक की जा सकती है ? (आगरा, एम० ए० १९४९)

१७. भारत में जल विद्युत शक्ति का विकास करना क्यों आवश्यक है ? उत्तरी भारत में जो विकास हुआ है उसका वर्णन करिये। (आगरा, एम० ए० १९४९)

१८. कौन-कौन सी भौतिक और आर्थिक दशायें जल-विद्युत शक्ति के विकास पर प्रभाव डालती हैं ? कोयले की तुलना में इसने उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण पर क्या प्रभाव डाला है ? (आगरा, एम० ए० १९४९)

१९. एशिया के तेल-स्रोतों का वर्णन करिये ? ये किस प्रकार पूर्व और पश्चिम के बीच झगड़ों के कारण रहे हैं ? (आगरा, एम० ए० १९५२)

२०. भारत के लिए तेल के कौन कौन से विदेशी स्रोत उपलब्ध हैं ? इनकी वर्तमान स्थिति का उल्लेख करिये और यह भी बताइये कि देश में कोयले और गन्ने के छूटे से किस प्रकार शक्ति उत्पादन की जा सकती है ? (आगरा, एम० ए० १९५२)

२१. "यद्यपि वर्तमान काल में मिट्टी के तेल और जल विद्युत का महत्व बहुत अधिक है किन्तु कोयले ने औद्योगिक केन्द्रों के स्थानीयकरण मे बड़ा प्रभाव डाला है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? विश्व के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करिये। (आगरा, एम० ए० १९५२)

२२. दामोदर घाटी योजना का संक्षिप्त वर्णन करिये। (आगरा, एम० ए० १९५३)

२३. 'ईरान में तेल-समस्या' पर छोटा सा निबन्ध लिखिये।

(आगरा, एम० ए० १९५३)

२४. "कुछ समय पश्चात् कोयले, गैस और तेल का महत्व कम हो जायगा, किन्तु जल विद्युत शक्ति रहेगी। जब तक पृथ्वी पर आकाश से जल और बर्फ गिरता रहेगा, जब तक जल समुद्र में बहता रहेगा ताकि वाष्पीकरण की क्रिया द्वारा जल पुनः धरातल पर बह सके; मनुष्य की सहायता के लिये जल शक्ति का यह स्रोत अक्षय रहेगा।" इस पर विवेचन करिये और इस सम्बन्ध में टेनैसी घाटी योजना और भारत की अन्य बहुमुखी योजनाओं का वर्णन करिये।

(आगरा, एम० ए० १९५४)

२५. पृथ्वी के विभिन्न भागों में मानव ने अपनी सांस्कृतिक उन्नति के लिए शक्ति के विभिन्न स्रोतों का किस प्रकार उपयोग किया है ?

२६. कोयले और मिट्टी के तेल का तुलनात्मक विवरण करिए।

२७. "जल विद्युत शक्ति के उपयोग में कई उतार-चढ़ाव आए हैं जो विशेषकर औद्योगिक अवस्थाओं और आविष्कारों पर निर्भर रहते हैं।" इस कथन की पुष्टि करो।

२८. बहुमुखी योजनाओं से क्या अभिप्राय है ? भारत की कुछ प्रमुख योजनाओं का वर्णन करिये।

अध्याय २८

प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र

(Great Manufactural Regions)

उद्योगों का स्थानीयकरण (Localisation of Industries)—इंग्लैंड में होने वाली यांत्रिक और औद्योगिक क्रांतियों ने आधुनिक उद्योगों को जन्म दिया। यांत्रिक क्रांति के फलस्वरूप मनुष्य को मशीनें और औद्योगिक क्रांति ने इन मशीनों को चलाने के लिए शक्ति प्रदान की। मनुष्य ने अपने बौद्धिक विकास से मशीनों का आविष्कार कर शारीरिक परिश्रम के भार को कम किया और बड़े पैमाने पर उत्पत्ति आरंभ कर विश्व के बाजारों को विभिन्न प्रकार के तैयार माल से पाट दिया। ज्यों-ज्यों मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ती गईं त्यों-त्यों वैज्ञानिक आविष्कारों के सहारे नई-नई वस्तुओं का उत्पादन भी बढ़ता गया। यहाँ तक कि वर्तमान युग में किसी भी देश का आर्थिक महत्व उसके औद्योगिक विकास से आँका जाने लगा है। जो देश भौगोलिक और आर्थिक दृष्टि से बड़ी मात्रा में जिन वस्तुओं के उत्पादन के लिए अनुकूल हैं, वहाँ उन्हीं से सम्बन्धित उद्योगों का विकास किया गया। यूरोप के पश्चिमी देशों विशेषतः जर्मनी, बेल्जियम, इंग्लैंड—और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जैसे देशों की आर्थिक व्यवस्था पूर्ण रूप से औद्योगिक प्रगति पर आधारित है। इन देशों ने अपनी आय बढ़ाने तथा अपने निवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने के लिए अधिकाधिक उत्पादन करना आरंभ किया और अपने कारखानों में निर्मित पक्के माल को बेचने के लिए विश्व के अविकसित देशों पर प्रभुत्व जमाया। इन देशों से इन्हें पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल सस्ता मिलने लगा।

संसार के औद्योगिक मानचित्र पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि विभिन्न उद्योग विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित हैं। उदाहरण के लिए लोहे और इस्पात का उद्योग जर्मनी, इंग्लैंड, फ्रांस व संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कोयले की खानों के निकट स्थापित है; कागज का उद्योग कनाडा, नार्वे और स्वीडन में तथा सूती वस्त्रों का धन्धा इंग्लैंड के पश्चिमी भागों में और रेशम का धन्धा फ्रांस में केन्द्रित हो गये हैं। किसी उद्योग के इस प्रकार किसी स्थान विशेष में केन्द्रित होने या स्थापित हो जाने की प्रवृत्ति को उस उद्योग का स्थानीयकरण (Localisation of Industries) कहते हैं। संसार के सभी देश एक समान उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए अनुकूल नहीं होते। कुछ देशों में कच्चे माल सम्बन्धी विशेष सुविधा होती है, कुछ में शक्ति के स्रोतों की और कुछ में मजदूरों की कुशलता तथा कुछ में बाजारों की निकटता होती है। इसी कारण जहाँ

इंग्लैंड में सूती और ऊनी वस्त्र उद्योग स्थापित हैं, वहाँ रेशम उद्योग के लिए अनुकूल अवस्थायें नहीं पाई जातीं। यहाँ यह स्मरणीय है कि यह आवश्यक नहीं कि स्थानीयकरण के सभी तत्व एक ही स्थान या क्षेत्र विशेष में उपलब्ध हों। केवल एक या दो तत्वों की विद्यमानता से ही वहाँ उद्योग विशेष स्थापित हो सकता है। किसी स्थान विशेष पर उद्योगों के केंद्रित हो जाने के लिए निम्न आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होना आवश्यक है :—

(१) पूंजी की सुलभता।
(२) कच्चे माल की निकटता।
(३) बाजार की निकटता।
(४) अनुकूल जलवायु।
(५) शक्ति के साधनों की निकटता।
(६) सरकारी संरक्षण।
(७) यातायात की सुविधायें।
(८) पूर्वारम्भ का लाभ।
(९) चतुर श्रमिकों की प्रचुरता।

इन तत्वों को सुविधा के लिए हम इस प्रकार निर्धारित कर सकते हैं:—

"Money, Material, Market, Men,
Motive Power, Machinery, Management".

(१) पूंजी की सुलभता—बड़े-बड़े उद्योग धन्धों को चलाने के लिए पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है। जहाँ बड़े-बड़े पूंजीपति होते हैं वहाँ यदि किसी उद्योग के लिए कुछ और सुविधायें भी हों तो वह उद्योग-धन्धा उस स्थान पर केन्द्रित हो जाता है। उदाहरणार्थ—बम्बई के सेठों ने अमेरिकन गृह युद्ध के फलस्वरूप हुई कपास की महँगाई से लाभ उठाते हुए कपास का निर्यात कर बहुत-सा धन कमा लिया था। उस धन से बम्बई के सूती कपड़े की मिलें भारी संख्या में खुलगईं। आधुनिक काल में पूंजी गतिशील (mobile) तत्व माना जाता है। अतः जिन देशों के पास आवश्यकता से अधिक पूंजी उपलब्ध है वे इस प्रचुर पूंजी को लगा कर सुदूर देशों में भी उद्योग स्थापित कर सकते हैं। अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस तथा जर्मनी की पूंजी अधिकतर भारत, पाकिस्तान, एशिया के अन्य देशों और दक्षिण अफ्रीका में लगी हुई है। इसी प्रकार औद्योगिक विकास के लिए ब्रिटेन और न्यू इंग्लैंड स्टेट्स को अन्य देशों से पर्याप्त मात्रा में पूंजी उपलब्ध हो गई थी। भारत में पूंजी का आधिक्य होते हुए भी उसके शंकित (shy) होने कारण विदेशों से पूंजी का आयात करना पड़ता है।

(२) कच्चे माल की निकटता (Proximity to Raw Material)—सभी छोटे-बड़े उद्योगों को कच्चे माल की आवश्यकता होती है। यदि किसी कारखाने को दूर से कच्चा माल मँगाना पड़े तो उसका उत्पादन व्यय बढ़ जायेगा और वह दूसरे उत्पादकों के मुकाबले में नहीं टिक सकेगा। उद्योग-धन्धों के स्थापन और कच्चे माल की उपलब्धता में गहरा सम्बन्ध है। उद्योग-धन्धों में व्यवहृत होने की दृष्टि से कच्चा माल दो तरह का होता है। एक वह

जो कच्चे रूप में बहुत भारी होता है, किन्तु तैयार माल के रूप में बदल कर उसका भार कम हो जाता है। इस प्रकार के माल को मुख्यत: उनके मिलने के स्रोतों के निकट ही उपयोग में ले लिया जाता है। उदाहरण के लिए माँस बन्द कर भेजने का धन्धा। यदि उपभोग के केन्द्रों तक पशुओं को निर्यात किया जाय तो व्यय बहुत पड़ेगा। किन्तु यदि पशु-पालन क्षेत्रो के निकट ही पशु के वधगृह बनाये जायें और वहीं से मांस को शीत भडारों मे बन्द कर निर्यात किया जाय तो वाहन-व्यय कम होगा तथा माँस भी सुविधापूर्वक भेजा जा सकेगा। अत: माँस के बड़े-बड़े कारखाने अर्जेनटाइना, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं, जब कि इसका उपभोग शीतोष्ण कटिबन्ध के उत्तरी दशो में अधिक होता है। कच्चे माल की उपलब्धता के कारण ही भारत में सीमेंट का उद्योग मध्य प्रदेश, चीनी का उद्योग पश्चिमी उत्तर प्रदेश, सूती वस्त्र उद्योग बम्बई और रेशम का उद्योग इटली, फ्रांस, जापान व चीन मे अधिक केन्द्रित हैं। भारत में जो भी उद्योग केन्द्रित हुए हैं वे विशेषत: कच्चे माल के स्रोतों के निकट ही हैं—यथा; मद्रास में चमड़े के कारखाने, कलकत्ता में जूट व रासायनिक पदार्थों के कारखाने, कानपुर व गोरखपुर मे शक्कर और जमशेदपुर में लोहे व स्पात के कारखाने इनके मुख्य उदाहरण हैं। स्वीडेन तथा नार्वे और पूर्वी कनाडा में वन-प्रदेशों की निकटता से लकड़ी चीरने, लुग्दी बनाने और कागज बनाने के उद्योगों का स्थानीयकरण हुआ है। काँच का उद्योग भी बालू मिट्टी के स्रोतों के निकट ही स्थापित किया जाता है।

दूसरे प्रकार का कच्चा माल हल्का होता है और दूर तक निर्यात करने में व्यय भी अधिक नहीं होता तथा कच्चे माल और पक्के माल के वजन में भी कोई विशेष अन्तर नहीं पडता। फलत: ऐसे उद्योग कच्चे माल के स्रोतों से दूर ही स्थापित किये जाते हैं, जहाँ अन्य सुविधायें प्राप्त होती हैं। सूती व ऊनी कपड़ों के उद्योग इसी कारण इंगलैंड, फ्रांस, तथा पूर्वी संयुक्त राष्ट्र में पाये जाते हैं जहाँ कपास व ऊन क्रमश: भारत, मिस्र, पाकिस्तान, सूडान, आस्ट्रेलिया आदि देशों से आयात की जाती है।

(२) बाजार की निकटता (Nearness to Market)—यों तो अनेक उद्योग-धन्धों की वस्तुओं के बाजार विदेशों तक में होते हैं किन्तु जब उद्योग-धन्धे स्थापित किए जाते हैं तो देशी बाजार (खपत का क्षेत्र) का ही विशेष ध्यान रक्खा जाता है। जिन क्षेत्रों में किसी उद्योग की वस्तुओं की खपत अधिक होती है वहीं वे उद्योग चालू किये जाते हैं। ऐसा करने से तैयार माल को बाजार तक भेजने में बहुत कम खर्च होता है और उत्पादन व्यय भी कम रहता है। माल की खपत जल्दी हो जाती है और अधिकाधिक माल बना कर लाभ उठाया जा सकता है। बम्बई में सूती कपड़ों की मिलों के लिए कच्चा माल दूर से मँगाना पड़ता है पर वहाँ कपड़े की खपत बहुत ज्यादा है अत: सूती उद्योग स्थापित किया गया है। विशेषकर ऐसी वस्तुयें जो टिकाऊ नहीं होतीं (जैसे शीशे का सामान) अथवा जिनको दूर भेजने में विशेष कठिनाई होती है (जैसे तेजाब इत्यादि) तो उनके कारखाने बाजार के निकट

ही स्थापित किए जाते हैं। हुगली औद्योगिक क्षेत्र में तेजाब की काफी खपत है, इसलिए तेजाब के कारखाने वहाँ पर केन्द्रित हैं।

जूतों की स्टाइल में समय २ पर ग्राहकों की रुचि के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि जूता बनाने वाली मशीनों के उद्योग भी जूते के कारखानों के निकट ही स्थापित किए जाएँ। इसी प्रकार सूती वस्त्रों के उद्योग के निकट ही कताई और बुनाई की मशीनों के उद्योग स्थापित किए जाते हैं जिससे उनकी माँग की पूर्ति सुविधाजनक रूप से पूरी की जा सके। प्रायः प्रत्येक बड़े नगर में बिस्कुट बनाने, छपाई करने आदि के उद्योग इसीलिए पाये जाते हैं कि वहाँ इन उद्योगों की माँग स्थानीय होने के साथ-साथ निरंतर भी रहती है।

अब सामान भेजने की विधि में इतनी अधिक उन्नति हो चुकी है कि नाजुक और शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुयें दूर-दूर के स्थानों को शीघ्रता के साथ भेजी जा सकती हैं, किंतु बाजारों की निकटता उद्योग स्थापन के लिए पर्याप्त प्रलोभन होता है। दूध, अंडे, मछलियाँ, फल आदि वस्तुयें शीत भंडारों में बंद कर काफी दूर तक भेजे जा सकते हैं।

(४) अनुकूल जलवायु (Favourable Climate)—उद्योग-धन्धों में अनेक व्यक्ति काम करते हैं और औद्योगिक क्षेत्रों की जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इसलिए उद्योग ऐसे स्थानों पर स्थापित किये जाते हैं जहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद होती है। किसी-किसी उद्योग धंधे को विशेष प्रकार की जलवायु की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ सूती कपड़े के उद्योग के लिए नम जलवायु अच्छी समझी जाती है क्योंकि ऐसी जलवायु में धागा कम टूटता है और धागा बारीक तथा मजबूत बनाया जा सकता है। इसीलिए सूती कपड़ों के उद्योग बम्बई, मानचेस्टर व ओसाका में स्थापित किये गये हैं। शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में कृत्रिम उपायों से नमी रखी जाती है, किन्तु इससे उत्पादन-व्यय बहुत बढ़ जाता है। इसके विपरीत आटा पीसने के लिए सूखी जलवायु चाहिए। इसीलिये यह उद्योग बुडापेस्ट, मिनियापोलिस, सेंटपाल तथा कराँची में पाया जाता है। फिल्म व्यवसाय के लिए स्वच्छ धूप और उज्ज्वल प्रकाश की आवश्यकता होती है अतः हालीवुड, पूना, फ्रांस और इटली में काफी फिल्में बनाई जाती हैं। पूना को तो 'भारत का हालीवुड' कहा जाता है। ऊनी कपड़े, रस्सी तथा कागज आदि के उद्योग पर भी जलवायु का नियंत्रण रहता है।

(५) शक्ति के साधनों की निकटता (Proximity to Sources of Power)—उद्योग-धन्धों में शक्ति के साधनों से ही प्राण संचार होता है। शक्ति के साधनों में अभी भी कोयले का महत्व अधिक है। अधिकांश उद्योग कोयले से ही चलाये जाते हैं। कोयला एक भारी पदार्थ है जो दूर तक ले जाने में काफी व्यय पड़ जाता है, इसलिए प्रायः वे धंधे जिनमें कोयले का अधिक खर्च होता है कोयले की खानों के निकट ही स्थापित किये जाते हैं। उदाहरणार्थ—रानीगंज, झरिया की खानों के निकट ही लोहे व लोहे के उद्योग केन्द्रित हैं। पंजाब में कोयले का अभाव होने के कारण

उसका औद्योगिक विकास नहीं किया जा सका यद्यपि वहाँ कच्चा माल बहुत उपलब्ध है। किंतु अब शक्ति के साधन की दृष्टि से बिजली का महत्व बढ़ रहा है। यह बिना अधिक व्यय के ही काफी दूर तक तारों द्वारा ले जाई सकती है। अतः यह आवश्यक नहीं रह गया है कि उद्योग-धन्धे शक्ति-स्रोतों के निकट ही स्थित हों। जहाँ तक बिजली पहुँच सकती है वहीं तक उद्योग भी स्थापित किये जा सकते हैं। अतएव स्विटजरलैंड, इटली, स्कैंडेनेविया, पूर्वी कनाडा, जापान और भारत में कागज बनाने, धातु से एल्यूमिनियम प्राप्त करने, लुब्दी बनाने, घड़ी बनाने और सूती वस्त्रों की मिलों में बिजली का ही प्रयोग किया जाता है। किंतु ब्रह्मा, ईरान और सं० रा० अमेरिका में मिट्टी के तेल की उपलब्धता के कारण वहाँ इसी सहारे उद्योग चलते हैं।

(६) सरकारी संरक्षण (Protection)—जब कोई राज्य किसी उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिये आर्थिक सहायता (Subsidy) अथवा आयात माल पर अधिक चुङ्गी लगाता है तो वहाँ वह उद्योग चालू होकर पनप जाते हैं। लखनऊ के नवाबों के संरक्षण के बल पर ही वहाँ चिकन का व्यवसाय केन्द्रित हो गया था। सरकारी संरक्षण के कारण ही भारत में शक्कर, कागज, लोहा और सूत के कपड़े के कारखाने इतनी अधिक उन्नति कर सके। रूस में तो सारे कारखाने सरकार द्वारा आयोजित और नियंत्रित होते हैं।

(७) यातायात की सुविधायें (Accessibility of Means of Transport)—हर प्रकार के उद्योग के लिये कच्चे माल को दूर से मँगाने और तैयार माल को बाजार तक भेजने की आवश्यकता होती है। अतः जिस स्थान पर यातायात की अधिकाधिक सुविधायें प्राप्त होती हैं, वहीं यदि अन्य साधन भी सुलभ हों, तो उद्योग-धन्धे केन्द्रित हो जाते हैं। यातायात के साधनों की प्राप्ति ही काफी नहीं, वे तेज रफ्तार वाले और सस्ते भी होने चाहिये। बड़े-बड़े नगर रेल, सड़क, हवाई जहाज इत्यादि के मार्ग पर होते हैं। बन्दरगाहों पर तो इन मार्गों के अतिरिक्त जल मार्गों की भी सुविधा होनी है अतः उद्योग-धन्धे बन्दरगाहों पर या बड़े नगरों में केन्द्रित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—बम्बई में (जो कोयले के क्षेत्रों से दूर हैं) सूती कपड़े की मिलें केन्द्रित हैं। वहाँ पर जलयानों द्वारा अफ्रीका से कोयला मँगा लिया जाता है। हुगली औद्योगिक क्षेत्र की जूट मिलें जलमार्गों द्वारा कच्चा माल सुगमता से प्राप्त कर लेती हैं और पक्का माल भी नावों व स्टीमरों द्वारा कलकत्ता बन्दरगाह तक भेजा जा सकता है। इसीलिये कहा जाता है कि उद्योग की नसें यातायात के मार्ग हैं जिनसे उनमें जीवन-रक्त का संचार होता रहता है। यातायात के अतिरिक्त समाचार वाहन, अखबार, टेलीफोन, टेलीग्राफ की सुविधायें भी उद्योगों के स्थानीयकरण में सहायक होती हैं।

(८ पूर्व आरम्भ (Momentum of an Early Start or Geographical nertia)—जिस स्थान पर किसी उद्योग-धंधे का कोई कारखाना पहले से स्थापित होता है और वह सफलतापूर्वक चल जाता है तो अन्य साहसी उद्योगपति भी उसी स्थान पर उस धंधे के कारखाने स्थापित करने को आकर्षित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—बम्बई में सूती कपड़े का कौन

कलकत्ते में जूट का पहला कारखाना स्थापित हुआ था। किन्तु इसके बाद ये दोनों उद्योग क्रमशः बम्बई और कलकत्ते में ही केन्द्रित हो गये।

(६) चतुर श्रमिकों की प्रचुरता—उद्योग-धन्धों के संचालन में सस्ते किन्तु निपुण श्रमिकों का भी काफी हाथ रहता है। चतुर और कार्यक्षम श्रमिक अधिक और अच्छा श्रम कर सकते हैं जिससे माल सस्ता और अच्छा बनता है। जिन स्थानों में जिस उद्योग के लिए चतुर और कार्यक्षम श्रमिकों की प्रचुरता होती है वहीं वे उद्योग केन्द्रित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—फीरोजाबाद में कांच के कारखानों में काम करने वाले चतुर कारीगरों के कारण ही यह उद्योग स्थापित हो सका है। कानपुर में चमारों की प्रचुरता के कारण चमड़े का उद्योग केन्द्रित हो सका है। इसी प्रकार अलीगढ़ में ताला बनाने, मेरठ में चाकू, कैंचियाँ बनाने, फर्रुखाबाद में रंगाई छपाई तथा जापान और स्विटजरलैंड के औद्योगिक विकास का प्रमुख कारण वहाँ सस्ते व निपुण कारीगरों का अधिक मात्रा में मिलना ही है।

स्थानीयकरण के लाभ :

(१) कुशल मजदूरों की पूर्ति में वृद्धि—जब किसी स्थान पर कोई धन्धा केन्द्रित हो जाता है तो आस-पास के श्रमिक उन धन्धों में काम करते-करते निपुण हो जाते हैं। इस प्रकार उस क्षेत्र में निपुण श्रमिकों की पूर्ति अधिक हो जाती है। यदि कुछ कारीगर बीमार हो जावें या छुट्टी पर चले जायें तो विशेष हानि नहीं होती क्योंकि अन्य कारीगर आसानी से मिल जाते हैं।

(२) कुशल मजदूरों की माँग में वृद्धि—जब एक स्थान पर किसी उद्योग के अनेक कारखाने खुल जाते हैं तो वहाँ कुशल कारीगरों की माँग बढ़ जाती है और वह स्थान कुशल कारीगरों का बाजार हो जाता है। दूर-दूर से भी कारीगर उस केन्द्र पर काम के लिये आते रहते हैं।

(३) यंत्रों का विकास—जब कोई कारीगर लगातार कई वर्षों तक एक ही काम करता रहता है तो वह उस काम को करने के सरल ढंग निकाल लेता है और उस कार्य को सरलतापूर्वक करने के लिए औजारों और मशीनों का आविष्कार कर लेता है अथवा मौजूदा यंत्रों में सुधार कर लेता है। उस स्थान पर उन यंत्रों की वर्कशाप खुल जाती है। धीरे-धीरे उन मशीनों को बनाने के कारखाने भी खुल जाते हैं।

(४) सहकारी धन्धों का विकास—जब किसी स्थान पर कोई धन्धा केन्द्रित हो जाता है तो हजारों मजदूर वहाँ काम करने लगते हैं। उनके कुटुम्ब भी उनके साथ आते हैं अतः मजदूरों की स्त्रियों के लिये भी काम चाहिये। फलतः छोटे-छोटे धन्धे भी वहाँ खुल जाते हैं जिनमें उनकी स्त्रियों और बच्चों को काम मिल जाता है।

(५) पूरक अथवा निर्भर उद्योगों का विकास—जहाँ कोई धन्धा केन्द्रित हो जाता है वहाँ उस धन्धे से बच रहने वाली वस्तुओं का उपयोग करने वाले सहायक धन्धे भी खुल जाते हैं जैसे मिट्टी के तेल के कारखानों के केन्द्र में मोमबत्ती के बनाने का धंधा चालू हो जाता है। लोहे के कारखानों के

केन्द्र के निकट टिन की चादरों के कारखाने, सीमेन्ट के कारखाने तथा खाद बनाने के कारखाने खुल जाते हैं क्योंकि इन कामों में लोहे के कारखानों की बची हुई स्लैग (Slag) का उपयोग होता है। वनस्पति घी के कारखानों के केन्द्र में साबुन बनाने के कारखाने और शक्कर बनाने के कारखानों के निकट अलकोहल, कागज आदि बनाने के कारखाने खुल जाते हैं।

(६) **व्यापार में वृद्धि**—जिस केन्द्र में किसी विशेष धन्धे का स्थानीयकरण हो जाता है वहाँ उस धन्धे के कच्चे माल और तैयार माल की मंडी बन जाती है और उनका व्यापार बढ़ जाता है।

(७) **स्थान की प्रसिद्धि**—जब किसी स्थान पर कोई धन्धा केन्द्रित हो जाता है तो वह स्थान उस धन्धे के लिए प्रसिद्ध हो जाता है। देश-विदेशों में वह प्रख्यात हो जाता है जैसे—अहमदाबाद या मानचेस्टर बढ़िया कपड़े के लिये, फिरोजाबाद चूड़ियों के लिये और जमशेदपुर फौलाद के लिए प्रसिद्ध हो गये हैं।

स्थानीयकरण की हानियाँ :

(१) **सुरक्षा की दृष्टि से हानिकर**—यदि कोई धन्धा किसी एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है तो युद्धकाल में शत्रु की उस पर निगाह रहती है और वह सबसे पहले ऐसे केन्द्रों को बम गिराकर नष्ट करके देश को बहुत बड़ी क्षति पहुँचा सकता है। अतः सुरक्षा की दृष्टि से स्थानीयकरण घातक सिद्ध होता है।

(२) **श्रमिक संघों की शक्ति का दुरुपयोग**—जहाँ एक ही प्रकार के अनेक कारखाने होते हैं वहाँ समान हित वाले मजदूरों की उपस्थिति के कारण श्रमिक संघ बड़े संगठित होते हैं और वे मामूली बातों पर ही अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर बैठते हैं अर्थात् हड़तालें करते हैं इस प्रकार उत्पादन में कमी आ जाती है उदाहरणार्थ—बम्बई में विशेषतः सूती कपड़े के कारखानों में लम्बी-लम्बी हड़ताल चला करती हैं।

(३) **मकान की समस्या की विकटता**—जहाँ कोई धन्धा किसी स्थान पर केन्द्रित हो जाता है और कारखानों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है तो रहने के लिये मकान की उपयुक्त व्यवस्था नहीं हो पाती जिससे मकानों के किराये बढ़ जाते हैं। जनसंख्या बढ़ जाने से गंदगी व रोग बढ़ने लगते हैं।

(४) **दैनिक उपयोग की वस्तुओं की कमी**—किसी स्थान पर उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण से जनसंख्या की बेहद वृद्धि होने पर दैनिक उपयोग की वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है जिसकी पूर्ति कठिन होती है, इसलिए मँहगाई अधिक हो जाती है और रहन-सहन का मानदण्ड गिर जाता है।

(५) **सामाजिक कुरीतियों का प्रसार**—स्थानीयकरण के केन्द्रों पर मजदूर जो घर से दूर अकेले रहते हैं दिन भर की मजदूरी के बाद शाम को किसी सस्ते मनोरंजन की खोज में घूमा करते हैं। ऐसी दशा में वे जुआरियों, शराबियों के फन्दे में फँस जाते हैं अथवा व्यभिचार के अड्डों की ओर

आकर्षित हो जाते हैं। इस तरह अनेक सामाजिक कुरीतियों का प्रसार हो जाता है।[1]

(६) उद्योग के अनायास ठप्प हो जाने का भयंकर परिणाम; बेकारी— यदि किसी कारण से कोई केन्द्रित उद्योग नष्ट हो जावे या उसे भारी धक्का लगे तो बड़े भयकर परिणाम होते हैं। अनायास ही बेकारी फैल जाती है; किन्तु यदि एक स्थान पर अनेक उद्योग हों तो एक धंधे में घाटा होने पर उसके मजदूर अन्य उद्योगों मे खप सकते हैं।

अब हम विश्व के औद्योगिक क्षेत्रों का वर्णन करेंगे।

(१) संयुक्त राष्ट्र के औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Regions of U.S.A)[2]

संयुक्त राष्ट्र संसार का सबसे उन्नत औद्योगिक देश माना जाता है। इसकी विशाल प्राकृतिक सम्पत्ति और उसका व्यवस्थित विदोहन, यहाँ के निवासियों का श्रम और वैज्ञानिक बुद्धि आदि तत्व ही औद्योगिक प्रगति के मुख्य कारण हैं। नये-नये वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा उद्योगों को नित्यप्रति नये-नये क्षेत्रों को विस्तृन किया जा रहा है। स्वचालित मशीनों के प्रयोग से प्रति व्यक्ति औद्योगिक उत्पादन बहुत बढ़ गया है। संयुक्त राष्ट्र के औद्योगिक विकास के लिए निम्नलिखित कारण महत्वपूर्ण हैं :—

(१) यह संसार का सबसे धनी देश है। आर्थिक विकास के लिए इसे कभी अर्थ और पूंजी का कोई अभाव नहीं होता।

(२) यहाँ की जलवायु मानसिक और शारीरिक परिश्रम के लिए बहुत ही उपयुक्त है तथा यूरोप से आये हुए निवासियों की परम्परागत कुशलता इसके लिए एक महान देन रही है।

(३) यहाँ औद्योगिक शक्ति की प्रचुर प्राप्ति है। यहाँ जल, कोयला, तेल और गैस से संसार की ५० प्रतिशत बिजली उत्पन्न की जाती है।

(४) इस देश में औद्योगिक यातायात के लिए संसार का सबसे अधिक सम्पन्न, व्यवस्थित एवं कुशलतापूर्ण यातायात क्रम है। संयुक्त राष्ट्र में रेलों की लम्बाई विश्व भर की रेलों की लम्बाई की २६% है।

(५) इसकी स्थिति यूरोप के महान औद्योगिक क्षेत्र और एशिया के विस्तृत बाजारों के ठीक मध्य में है।

इन्हीं सब कारणों से संयुक्त राष्ट्र संसार के औद्योगिक देशों में सर्वप्रथम है; परन्तु एक महाद्वीप के रूप में यूरोप संसार में सबसे अधिक उन्नत औद्योगिक क्षेत्र है।

१. "In thousands of slums of Indian industrial centres, manhood is brutalised, womanhood dishonoured and childhood poisoned at its very source.'

Dr. R. K. Mukerjee : Indian Working Class, 1951.

२. Finch & Trewarth : Elements of Geography, 1942 pp. 711-715.

संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र प्रायः पूर्वी अटलांटिक तटीय प्रदेश पर स्थिति हैं। यह वही भूमि है जहाँ सबसे पहले आबादी आकर बसी थी। यहाँ बन्दरगाह, कोयला, जल-शक्ति और यूरोप की निकटता की अन्यतम सुविधायें प्राप्त हैं। भौगोलिक स्थिति के विचार से संयुक्त राष्ट्र के औद्योगिक क्षेत्र दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं:—

(क) **अटलांटिक तटीय भाग**—यह भाग अटलांटिक तट पर न्यू इंगलेंड के उत्तर से दक्षिण की ओर अलबामा तक फैला है।

(ख **भीतरी भाग**—यह भाग अप्लेशियन के पश्चिम की ओर स्थित है।

(क) अटलाण्टिक तटीय भाग (Atlantic Coastal Region)

यह भाग देश के सबसे अधिक उन्नत औद्योगिक भागों में से एक है। उद्योगों की विविधता ही इस भाग की मुख्य विशेषता है। यूरोप से सीधा सम्पर्क इसकी महान सुविधा है। इस भाग के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं :—

(i) न्यू इङ्गलैंड क्षेत्र (New England States)—इस क्षेत्र में सारे उद्योग दक्षिणी-पूर्वी कोने में बोस्टन के आस-पास केन्द्रित हैं। यहाँ केवल सूती कपड़ा उद्योग का विशिष्टीकरण हो जाने से यह पृथ्वी का एक पृथक् भूभाग सा लगता है। देश के इस क्षेत्र में ही सबसे पहले उद्योग चालू किए गये थे और कनेक्टीकट घाटी में धातु-उद्योग। इस क्षेत्र में खनिज पदार्थ नहीं पाए जाते हैं। किंतु यहाँ जल-प्रपातों से यान्त्रिक और विद्युत शक्ति प्राप्त की जाती है। यातायात का विकास पठारी क्षेत्र होने के कारण नहीं हो पाया है। लकड़ी चीरने, कागज और लुग्दी बनाने का उद्योग इस क्षेत्र की विशाल वनस्पति पर निर्भर है। अधिक आबादी वाले न्यू इङ्गलैंड राज्य के खेतों से प्रचुर संख्या में सस्ते श्रमिक प्राप्त हो गए हैं। यहाँ के मछली उद्योग से प्राप्त पूंजी कारखाना उद्योगों में लगाई गई है। अप्लेशियन से जलयानों और रेलों द्वारा कोयला प्राप्त हो जाता है। इसलिए अधिकतर केन्द्र समुद्रतट के पास ही स्थित हैं। इस क्षेत्र में केवल हल्के उद्योग चालू हैं। पूर्वी और दक्षिणी पश्चिमी भागों में बड़ा औद्योगिक अन्तर है। पूर्वी भाग जो रोड द्वीप से मेन तक फैला है सूती कपड़ा, चमड़े का सामान और जूते बनाने के उद्योगों का मुख्य क्षेत्र है। यहाँ उन मशीनों का भी उद्योग है जो जूते, सूती कपड़ा और चमड़ा उद्योगों में प्रयुक्त होती हैं। दक्षिणी पश्चिमी भाग में धातु के हल्के सामान का उद्योग है। यहाँ भारी सामान, पुर्जे, बिजली के यन्त्र, बन्दूक हथियार, हवाई जहाज और मशीनें बनाई जाती हैं। इन दोनों भागों को देश की सघन जनसंख्या वाले पूर्वी भागों की निकटता की अन्यतम सुविधा प्राप्त है। इनमें इनके पदार्थों की बड़ी खपत है। दक्षिणी पश्चिमी भाग का घनिष्ट सम्पर्क न्यूयार्क क्षेत्र से है। यहाँ से कुछ सूती कपड़े की मिलें दक्षिणी रियासतों को चली गई हैं जिससे इसका महत्व कुछ घट गया है। फिर भी इस क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र का २५ प्रतिशत सूती और ऊनी कपड़ा तैयार होता है। इस क्षेत्र के मुख्य औद्योगिक केन्द्र लावेल, लारेन्स, बोस्टन, प्राविडेन्स और ट्राय हैं।

नकली रेशम—ट्राय ; जूता—हैवरहिल ; ब्राकटन और लिन (मैसेचुसेट्स रियासत) ; बिजली की मशीन—स्केनेक्टेडी ; घड़ियाँ—वाटरबरी ; कागज—

होलीयोक ; सूती कपड़ा—बेडफोर्ड, फल रिवर, लावेल और लारेंस ; ऊनी कपड़ा—वरसेस्टर ; और फैन्ट हैट डेनवरी में बनाये जाते हैं।

अधिकतर केन्द्रों में केवल एक ही उद्योग केन्द्रित है। बोस्टन इस क्षेत्र का सबसे बड़ा नगर है। इसके सारे उद्योग आयात किये गये कच्चे माल पर निर्भर करते हैं। यह न्यू इङ्गलैंड उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले कच्चे मालों का आयात करता है और तैयार मालों का निर्यात करता है।

(ii) मध्य अटलांटिक तटीय क्षेत्र (Middle Atlantic Metropolitan Districts)- इस क्षेत्र में डिलावेयर, न्यूजर्सी, न्यूयार्क, पेन्सिलवेनिया, ओहियो, पश्चिमी वर्जीनिया और मेरीलैंड के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में असंख्य उद्योग चालू हैं। उत्तरी अप्लेशियन से प्रचुर कोयला, वाणिज्य सुविधाएं, बन्दरगाह और घनी आबादी के क्षेत्र की महान सुविधाएँ इस क्षेत्र को प्राप्त हैं। इसको सारे कच्चे माल का आयात करना पड़ता है। पश्चिम और दक्षिण से ओहियो नदी और महान झीलों के द्वारा यह जुड़ा हुआ है। अप्लेशियन से होकर असंख्य नदी, नहर, सड़क और रेल मार्ग गुजरते हैं। यूरोप को सामान भेजने में बन्दरगाह प्रमुख तत्व है। यहाँ पूंजी भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है और सस्ते श्रमिक भी बहुलता के साथ मिल जाते हैं। न्यू इङ्गलैंड रियासतों की तरह इस क्षेत्र को पूर्वारम्भ की सभी सुविधाएं प्राप्त हैं। न्यूयार्क स्वयं ही एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र है। साथ ही यह बन्दरगाह के काम में भी सर्वप्रथम है। यहाँ के उद्योगों में दूसरे औद्योगिक क्षेत्रों से बने पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। वस्त्र उद्योग यहाँ का मुख्य उद्योग है। चीनी साफ करना, वनस्पति तेल, पेट्रोल और ताँबा साफ करने के कारखाने मुख्य हैं। प्राय: ऐसे गौण उद्योग (Secondary Industries) बाल्टीमोर, फिलाडेलफिया और पेनसिलवानिया के दक्षिणी-पूर्वी नगरों में केन्द्रित हैं।

जलयान निर्माण—न्यूयार्क और फिलाडेल्फिया में ; रसायन—विलिमङ्गटन में ; भाप की चक्कियाँ—ट्रेन्टन में ; ऊनी कपड़ा—फिलाडेल्फिया में और रेडियो—कैमडेन में बनाये जाते हैं।

(iii) मध्य न्यूयार्क क्षेत्र (Central New York Belt)- यह क्षेत्र अलबानी से रोचेस्टर तक फैला है। ओण्टारियो मैदान और मोहाक घाटी की प्राकृतिक यातायात की सुविधा इसे प्राप्त है। हडसन नदी की घाटी से होकर कई रेलें, सड़कें और नहरी मार्ग उत्तर की ओर इस क्षेत्र को महान झील क्षेत्र से जोड़ते हैं। महान झीलों से जोड़ने के लिए ईरी नहर खोदी गई है। इस क्षेत्र में कोयले की स्थानीय पूर्ति तो नहीं है, परन्तु पेनसिलवानिया की विशाल एन्थ्रेसाइट कोयला की सम्पत्ति इसके निकट ही पड़ी हुई है। निकटवर्ती पर्वतीय क्षेत्रों से प्रचुर मात्रा में विद्युत-शक्ति प्राप्त हो जाती है। यह क्षेत्र भी उद्योगों की विविधता (Industrial Diversity) के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ गौण उद्योगों का विकास खूब हुआ है। वस्त्र बनाने, बिजली की मशीन, चश्मा, कागज और रासायनिक पदार्थों के उद्योग खूब विकसित हैं।

यहाँ कागज—अलवनी में ; रेशम— विघाँमटन में ; भारी लोहे की मशीनें —राचेस्टर मे ; फोटोग्राफी के सामान—राचेस्टर में ; चीनी मिट्टी के वर्तन—साईराक्यूज और हाथों के दस्ताने—जानस्टन में बनाये जाते हैं ।

(iv) दक्षिणी अप्लेशियन क्षेत्र (South Appalachian Region)—इस क्षेत्र के कुछ केन्द्र तटीय भागों मे और कुछ क्षेत्र अप्लेशियन के दक्षिणी सिरे पर स्थित हैं । इसलिये जल यातायात की सस्ती सुविधा और भीतरी भागों में कोयले और जल-विद्युत दोनों की सुविधा दोनों इस क्षेत्र को प्राप्त हैं । यहाँ लोहे की कच्ची धातु भी काफी मिलती है । यहाँ सस्ता श्रम, वन सम्पत्ति, कच्ची रुई और अन्य कच्चे माल की प्रचुर परिमाण में स्थानीय प्राप्ति है । पीडमॉन्ट क्षेत्र में कपास के कारखाने और सूती कपड़े की मिलें हैं । उत्तरी अलाबामा में लोहे की भट्टियाँ और स्पात, कागज और रासायनिक पदार्थों की मिलें हैं । इस क्षेत्र में उद्योगों का विशिष्टीकरण वहुत हुआ है । यह क्षेत्र अभी औद्योगिक परिपक्वता नहीं प्राप्त कर पाया है । इस क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र के ७५ प्रतिशत करघे चालू हैं । टेनेसी से सस्ती बिजली प्राप्त होने से उत्तरी केरोलिना में सूती उद्योग का विशेषीकरण हुआ है । डुरहाम और विंस्टन में अनेकानेक सिगरेट के विशाल कारखाने हैं । विद्युत् रसायन, विद्युत् धातु, प्लस्टिक और कृत्रिम खाद के कई कारखाने इस क्षेत्र मे चालू हैं । ओकरिज में अणुवम, किंग्सपोर्ट में नकली रेशम और अलकोआ में अलुमीनियम बनाने के कारखाने हैं । खेती के पदार्थो पर निर्भर उद्योग यहाँ चारों ओर फैले हुये हैं ।

(ख) भीतरी भाग (Central Region)—इस भाग के सारे क्षेत्र अप्लेशियन श्रेणी द्वारा पूर्वी तटीय भाग से पृथक हैं । इस क्षेत्र में उद्योग का विकास अपेक्षाकृत बाद में हुआ था । इस भाग में निम्नलिखित क्षेत्र मुख्य हैं:—

(i) नियाग्रा-ओन्टारियो क्षेत्र (Niagra-Ontario Region)—इस क्षेत्र को महान झीलों के सस्ते यातायात की महान सुविधायें प्राप्त हैं । भीतरी भागों से इसी यातायात द्वारा कृषि उपजें और खाद्यान्न फसलें यहाँ इकट्ठी की जाती हैं । झीलों के क्षेत्र से कच्ची लोहे की धातु और अप्लेशियन क्षेत्र से प्रचुर कोयला भी प्राप्त किया जाता है । नियाग्रा जल-प्रपात से प्रचुर मात्रा में जल विद्युत् मिल जाती है । भीतरी क्षेत्र और पूर्वी तटीय भाग के मध्य में यह स्थित है । इस क्षेत्र के मुख्य उद्योग भारी उद्योग है । यहां लोहे की भट्टियाँ, स्पात मिलें, मशीनें और गाड़ियां बनाई जाती हैं । रसायन उद्योग, आटा पीसने और कृषि उपज उपयोग करने वाले कई उद्योग भी यहां पाये जाते हैं । यहां लोहे की भारी चादरें भी बनाई जाती हैं । यहाँ के मुख्य केन्द्र बफेलो, टोरोन्टो और नियाग्रा हैं । यहाँ के उद्योग में कोई विविधता नहीं है । बफेलो सारे देश का सबसे बड़ा आटा पीसने का केन्द्र है ।

(ii) पिट्सबर्ग-ईरी क्षेत्र (Pittsburg-Erie Lake Region)—पश्चिमी वर्जीनिया और पश्चिमी पेनसिल्वानिया के भागों में देश का सबसे अच्छा कोयला पाया जाता है । यहाँ कोक कोयला, पेट्रोल और प्राकृतिक गैस

की शक्ति भी प्राप्त की जाती है। यहाँ केवल भारी उद्योगों का केन्द्रीकरण हुआ है। स्पात मिलें और लोहे की भट्टियाँ ही यहाँ अधिक हैं। ईरी झील के बन्दरगाहों पर मेसावी श्रेणी से लाई गई लोहे की कच्ची धातु उतारी जाती है। पेन्सिलवानिया क्षेत्र से काफी कोयला प्राप्त किया जाता है। अब बन्दरगाहों पर ही उद्योग स्थापित किए जा रहे हैं। भारी स्पात उद्योग का यह अमरीका में सबसे बड़ा केन्द्र है। ट्राँस अप्लेशियन रेल और सड़क मार्गों और महान झील मार्गों की उत्तम सुविधायें इस क्षेत्र को प्राप्त हैं। लोहा, स्पात, सिमेन्ट, सूती कपड़ा. काँच, चीनी मिट्टी के बर्तनों, गृह निर्माण के काम में आने वाली स्पात की वस्तुओं और स्पात नलों के बहुत से कारखाने यहाँ स्थापित हैं। भारी स्पात—पिट्सबर्ग, क्लीवलैंड, लारेन, यंग्स्टन और ओहियो में; रबड़—आक्रोन में; सूती वस्त्र—क्लीवलैंड में; इंजिन—रोनेकटाडी में और सूती कपड़ा—ईस्टन में बनाया जाता है।

(iii) डेट्रायट क्षेत्र (Detroit Region) इस क्षेत्र का विस्तार ईरी झील के पश्चिमी सिरे पर है। इस क्षेत्र में पश्चिमी ओण्टारियो, उत्तरी पश्चिमी ओहियो और दक्षिणी पूर्वी मिशीगन के भाग सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र को भी पूर्वी अप्लेशियन कोयला क्षेत्र और पश्चिम की महान झीलों के लोहा क्षेत्रों के मध्य में स्थित होने से कई सुविधायें प्राप्त हैं। यहाँ कुछ लोहा स्पात के उद्योग हैं। लेकिन अधिकतर उद्योग इन धातुओं और अन्य कच्चे माल को प्रयोग में लाते हैं। इनका मुख्य उपयोग मोटर गाड़ियाँ बनाने में होता है। महान झीलों की उत्तम यातायात सुविधाएँ इस क्षेत्र को प्राप्त हैं। समतल मैदान पर असंख्य रेलें और सड़कें फैली हैं। ओण्टारियो के भाग में चुंगी बाधा (Tariff Barrier) से उद्योगों को बड़ा प्रोत्साहन मिला है। इस क्षेत्र का मुख्य केन्द्र डिट्राएट है। यहाँ मोटरें, मोटर का इञ्जिन और इनसे सम्बन्धित सामान बनाये जाते हैं। डिट्राएट संसार का सबसे बड़ा मोटर निर्माण केन्द्र है। इसके अतिरिक्त यहाँ औजार, बिजली की मशीनरी, शीत भण्डार की मशीनरी, काँच और रसायन उद्योग भी स्थित हैं।

(iv) सिनसिनाती-इण्डियानापौलिस क्षेत्र (Cincinati-Indianapolis Region) इस क्षेत्र में पूर्वी इण्डियाना एवं दक्षिणी पश्चिमी ओहियो के केन्द्र शामिल हैं। इसको महान झील यातायात मार्ग, झील क्षेत्र के लोहे एवं वन सम्पत्ति की महान सुविधायें तो प्राप्त नहीं हैं परन्तु अन्य की कुछ सुविधायें प्राप्त हैं। अप्लेशियन और पूर्वी मध्यवर्ती कोयला क्षेत्र के मध्य इसकी स्थिति है। अनाज की पेटी के धनी भाग की पूर्वी सीमा पर स्थित होने से इसके माल की काफी खपत है। ओहियो नदी और रेलों द्वारा यह अप्लेशियन कोयला क्षेत्र से जुड़ा है। अमेरिका की आबादी के सबसे बड़े केन्द्र के सबसे पास यह क्षेत्र पड़ता है। इस क्षेत्र में लोहा, स्पात, मशीनरी, बिजली के सामान, वैज्ञानिक यन्त्र, रासायनिक पदार्थ, माँस, तेल और साबुन के उद्योग स्थित हैं। यहाँ खेती पर निर्भर उद्योगों और धातुओं पर निर्भर उद्योगों में एक प्रकार का संतुलन स्थापित है। सिनसिनाती इन उद्योगों का मुख्य केन्द्र है।

(v) मिशीगन क्षेत्र (Michigan Region)—यह अमेरिका के मुख्य क्षेत्रों में से एक है। इसमें मिशीगन झील का दक्षिणी भाग और उसका पृष्ठ प्रदेश सम्मिलित है। यह क्षेत्र कई विशिष्टीकरण प्राप्त जिलों में बँटा है। इस क्षेत्र को इण्डियाना-इलीनोएस क्षेत्र से रेल द्वारा और झील मार्ग द्वारा पूर्वी भागों से भी कोयला मिल जाता है। इसी क्षेत्र में मध्यवर्ती क्षेत्र, राकी पर्वत, पैसिफिक तट और पूर्व से आने वाले सभी मार्ग मिलते हैं। इन सभी क्षेत्रों से पर्याप्त कच्चा माल प्राप्त होता है और यहाँ बने हुए माल के विकने के भी केन्द्र हैं। इस क्षेत्र के मुख्य उद्योग चादर की मिलें, ट्रेक्टर, खेत घेरने के तार, खेती की मशीनें, चमड़े का सामान, जूते, माँस पैकिङ्ग और खाद्यान्न से संबंधित हैं। फर्नीचर और कागज की मिलें भी यहाँ हैं। शिकागो और मिलवाकी यहाँ के प्रसिद्ध केन्द्र हैं। अमेरिका में औद्योगिक उत्पादन के विचार से यह बड़ा केन्द्र है। शिकागो में संसार की सबसे बड़ी माँस की मण्डी है। कागज बनाने और आटा पीसने के कई कारखाने सेंट लुईस में भी हैं।

(vi) मध्य मैदानी भाग क्षेत्र (Central Plain Region)—उच्च मैदान के पूर्व प्रेरीज प्रान्त के गल्फ तट तक कई छोटे-छोटे उद्योग क्षेत्र कई विभिन्न स्थानों में फैले हुए हैं। इनका स्थानीय महत्व ही अधिक है। ये उद्योग अधिकतर कृषि उपजों पर निर्भर हैं। इन क्षेत्रों में विनिपेग, मिनियोपोलिस—सेंट पाल, ओमाहा, कान्सास, सेन्टलुई, डालेस-फोर्ट, वर्थ और हाउस्टन मुख्य हैं। इन उद्योगों का खास काम कच्चे माल को नया रूप प्रदान करना (Bulk reducing type) है। माँस पैकिङ्ग, अनाज पीसने, कपास दबाने और तेल साफ करने के उद्योग मुख्य हैं। सेन्ट लुई मुख्य केन्द्र है जहाँ स्पात, मशीनरी, जूतों और रासायनिक पदार्थों के कारखाने हैं। युद्ध के समय मध्यवर्ती नगरों में युद्ध सामग्री बनाने के कई उद्योग विकसित हो गए थे। कन्सास और नेब्रास्का हवाई जहाज निर्माण के केन्द्र हैं। मिनियोपोलिस संसार का सबसे बड़ा आटा पीसने का केन्द्र है।

(२) यूरोप के औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Regions of Europe):

उत्तरी पश्चिमी यूरोप को आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का जन्म क्षेत्र माना जाता है। संसार के सभी बड़े उद्योगों की स्थापना पहले यहीं हुई थी। पूर्वारम्भ के लाभ के कारण ही संसार के औद्योगिक विकास में आज भी इसका स्थान प्रथम है। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व ही से यूरोप में सारे सांस्कृतिक और प्राकृतिक तत्व विद्यमान थे जिनके आधार पर औद्योगिक विकास संभव हो सका। यूरोप की औद्योगिक उन्नति के कारण ये हैं :—

(१) यूरोप की स्थिति संसार में मध्यवर्ती है। यह एशिया और अमेरिका से प्रायः समान दूरी पर स्थित है, जिससे यह दोनों ही से समान सुविधा से व्यापार कर सकता है। इसके पश्चिम में अत्यन्त उन्नतिशील व्यापारिक मार्गों का क्षेत्र अन्ध महासागर विस्तृत है। वास्तव में इसकी स्थिति स्थल गोलार्द्ध (Land hemisphere) में मध्यवर्ती है। पनामा नहर के द्वारा इसका सीधा सम्बन्ध प्रशान्त महासागर के व्यापार से और स्वेज नहर के द्वारा हिन्द महासागरीय व्यापार से रहता है।

(२) यूरोप का विस्तार सबसे अधिक शीतोष्ण कटिबन्ध में है और ध्रुवीय क्षेत्र में इसका भाग अन्य महाद्वीपों से बहुत कम है। इसलिये इसके अधिकांश भाग में सम जलवायु पाई जाती है। ऐसी जलवायु मानव जाति की प्रगति में एक उत्साहवर्द्धक और सहायक तत्व है।

(३) यूरोप की जलवायु प्रो० हन्टिंगटन के कथनानुसार भौतिक सभ्यता, मानसिक प्रगति और औद्योगिक उन्नति के लिये आदर्श है। खेती और उद्योग दोनों के लिये ही यहाँ की जलवायु अत्यन्त अनुकूल है। शीतोष्ण चक्रवातीय जलवायु स्वास्थ्य के लिए आदर्श है। इसलिये यूरोपवासियों की कार्य-क्षमता बहुत अधिक है।

(४) यूरोप एक विशाल प्रायद्वीप है जिसमें कई छोटे-छोटे प्रायद्वीप हैं। इस प्रकार असंख्य स्थानों पर समुद्र यूरोप के भीतर चला गया है और सामुद्रिक प्रभाव भीतरी भागों में पहुँचकर जलवायु को सम बनाता है। रूस को छोड़कर यूरोप का कोई भी भाग समुद्र से अधिक दूर नहीं पड़ता। जलवायु के सम होने के साथ व्यापार में भी इसीलिये सुविधा और वृद्धि हो जाती है।

(५) यूरोप के समुद्र तट की लम्बाई क्षेत्रफल के अनुपात से संसार में सबसे अधिक है। समुद्र तट अत्यन्त कटा-फटा है। असंख्य छोटी-बड़ी खाड़ियाँ भीतर तक चली गई हैं जिससे यूरोप में उत्तम बन्दरगाहों की अधिकता है। यूरोप के प्रायः सारे बन्दरगाह प्राकृतिक हैं।

(६) यूरोप में निवास योग्य भूमि का क्षेत्रफल कुल क्षेत्रफल के अनुपात में बहुत अधिक है। यूरोप में कोई भाग रेगिस्तानी नहीं है। इसके किसी भाग में अमेजन बेसिन जैसे सघन वन नहीं पाये जाते और पर्वतीय बेकार क्षेत्र का विस्तार भी बहुत थोड़ा है। इसीलिये यूरोप में कृषि का महत्व उतना ही अधिक है जितना उद्योग-धन्धों का।

(७) यूरोप में खनिज सम्पत्ति की विविधता तो नहीं है, लेकिन लोहा और कोयला, जो आधुनिक कारखाना उद्योग के आधार हैं, इस महाद्वीप में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कोयले और लोहे का शोषण भी इस महाद्वीप में सबसे पहले हो गया था।

(८) यूरोप के निवासी कई जातियों के मिश्रण हैं, इसलिये ये स्फूर्तिवान और अन्वेषणप्रिय होते हैं।

(९) यूरोप में वैज्ञानिक प्रगति भी सबसे अधिक हुई है, अतः इसकी औद्योगिक उन्नति भी संभव हो सकी है।

(१०) यूरोप के राष्ट्रों के आधीन संसार के बड़े-बड़े क्षेत्रों में उपनिवेश हैं जहाँ से यूरोप के कारखानों के लिए कच्चा माल प्राप्त होता है और जहाँ पक्के माल के लिए विस्तृत बाजार विद्यमान हैं।

(११) संसार के किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में यूरोप का भीतरी यातायात क्रम कहीं अधिक उन्नत और कार्यकुशल है।

(१२) ऊंचे अक्षांशों में स्थित होने से इसकी जलवायु समशीतोष्ण है। प्रोफेसर हण्टिङ्गटन के अनुसार यूरोप की चक्रवातीय जलवायु कारखाना उद्योग के लिए आदर्श है।

यूरोप में औद्योगिक क्षेत्र समान रूप से फैले हुए नहीं हैं। अधिकतर औद्योगिक क्षेत्र उत्तरी पश्चिमी यूरोप में स्थित हैं जहाँ की ४० प्रतिशत आबादी कारखानों में काम करती है। किंतु ज्यों २ पूर्व और दक्षिण की ओर जाते हैं औद्योगिक आबादी घटती जाती है। यूरोप की मुख्य औद्योगिक पेटी (Industrial Belt यहाँ के मुख्य सम्पत्ति क्षेत्र पर फैली हुई है। यह पेटी यूरोपीय महाद्वीप के ठीक बीच पूर्व से पश्चिम तक फैली है। उत्तरी और दक्षिणी यूरोप में औद्योगिक क्षेत्रों का स्थानीय महत्व ही उनकी विशेषता है। मुख्य पेटी में ग्रेट ब्रिटेन है। वहाँ से यह पेटी उत्तरी फ्रांस, बेल्जियम, पश्चिमी और मध्य जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया और दक्षिणी पोलेंड होती हुई भीतरी तथा दक्षिणी रूस तक चली गई है। एक ही औद्योगिक क्षेत्र में एक से अधिक देश सम्मिलित हैं। मुख्य औद्योगिक पेटी के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं:—

(i) ब्रिटेन,
(ii) फ्रेंको-बेल्जियम,
(iii) वेस्टफलिया,
(iv) मध्य यूरोप के देश,
(v) दक्षिणी यूरोप के देश,
(vi) उत्तरी पश्चिमी यूरोपीय देश, तथा
(vii) सोवियत रूस।

(i) ब्रिटेन के औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Regions of Britain)—ग्रेट ब्रिटेन में कोयले के विशाल भंडार पाये जाते हैं किंतु अन्य विशाल साधनों का अत्यन्त अभाव है। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि ग्रेट ब्रिटेन के सारे औद्योगिक क्षेत्र कोयला क्षेत्रों पर ही स्थित हों। जल विद्युत का विकास हो जाने से अवश्य ही विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति लागू हो गई है लेकिन फिर भी पूर्वारम्भ के लाभ के कारण अब भी अधिकतर उद्योग कोयला क्षेत्र पर ही स्थित हैं। सच तो यह है कि प्रत्येक प्रमुख कोयला क्षेत्र का अपना अलग औद्योगिक क्षेत्र है। ब्रिटेन के वैसे तो, प्रो० डडले स्टाम्प के अनुसार, तेरह औद्योगिक क्षेत्र हैं। परन्तु उनमें से केवल निम्नलिखित ही मुख्य हैं:—

(अ) उत्तरी पूर्वी इङ्गलैंड या नार्थम्बरिया का क्षेत्र (North East England or Northumber land)—यह क्षेत्र डरहम और नार्थम्बरलैंड के कोयला क्षेत्र पर आधारित है। उत्तरी यार्कशायर और कम्बरलैंड से इसे लोहा प्राप्त होता है। सामुद्रिक स्थिति और उत्तम बन्दरगाहों की सुविधा भी इसे प्राप्त है। नीचे इस क्षेत्र के मुख्य उद्योग और उनके केन्द्र बताये गये हैं:—

उद्योग	केन्द्र
जहाज निर्माण	मिडिलसबरो, साउथ शील्ड्स, हार्टपूल, संडरलैंड और न्यू कासिल ।
इंजीनियरिंग	न्यू कासिल, स्टाक्टन और डरहम ।
रासायनिक पदार्थ	टाईनमाउथ, टीजमाउथ, बिलिङ्घम और हैवरटल हिल ।
धातु गलना	टाईनमाउथ ।
काँच	बिलिङ्घम ।

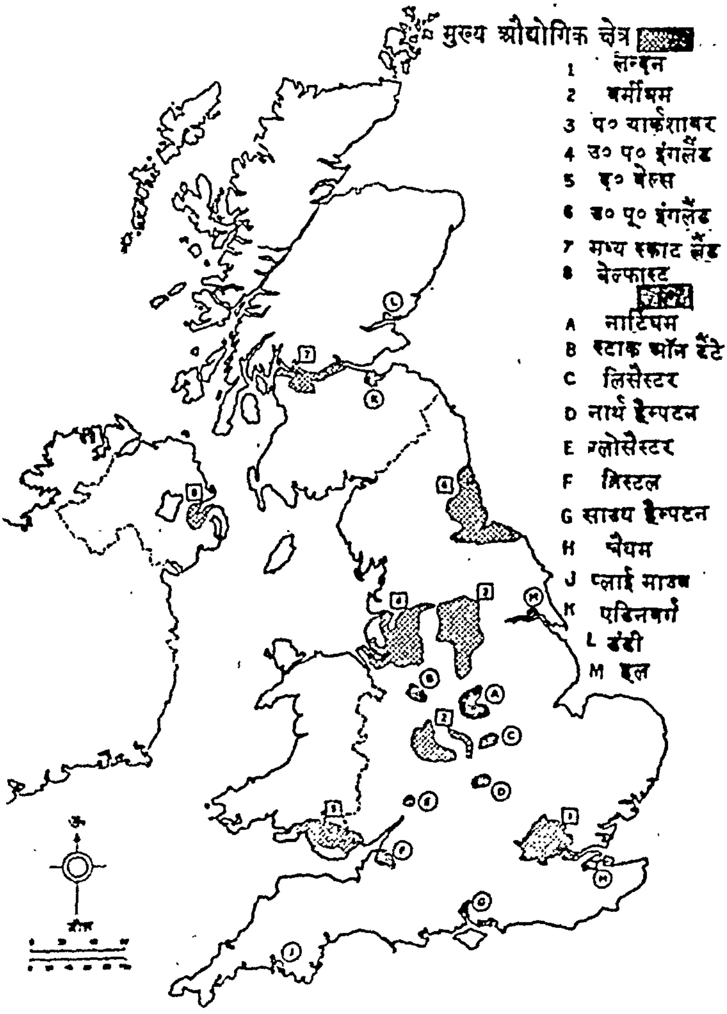

चित्र २०४

(आ) यार्क डरबी तथा नाटिंघम शायर क्षेत्र (York Durby and Nottingham Shire Area)—यह क्षेत्र ब्रिटेन का सबसे बड़ा ऊनी उद्योग क्षेत्र है। यह पिनाईन के पूर्व की ओर फैला है। यार्क के दो उपक्षेत्र हैं।

(१) वेस्ट राईडिङ्ग जहाँ ऊनी कपड़ा उद्योग केन्द्रित है, और (२) शेफील्ड क्षेत्र जहाँ लोहा, स्पात और कटलरी के उद्योग का विशिष्टीकरण हुआ है। नाटिङ्घम क्षेत्र सूती कपड़ा उद्योग और डरबी रेशम कपड़ा उद्योग के लिये प्रसिद्ध हैं। यहाँ चरम सीमा तक विशिष्टीकरण हुआ है। इस क्षेत्र के मुख्य उद्योग और केन्द्र निम्नलिखित हैं :—

उद्योग	केन्द्र
स्पात उद्योग	चेस्टरफील्ड और शेफील्ड।
साइकिलें	नाटिंघम।
इञ्जिनियरिंग	ब्रेडफोर्ड, लीड्स और डरबी।
शीत भण्डार मशीन	डरबी
काँच	हडर्सफील्ड
रासायनिक पदार्थ	नाटिङ्घम
ऊनी कपड़ा	हडर्सल्फीड।
धातु गलाना	शेफील्ड।
विद्युत तथा रंगाई	शेफील्ड।
सिगरेट	नाटिङ्घम।

हल, यार्क, लिंकन, डोनकास्टर राथरहम और वेकल्फीड आदि अन्य प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र हैं।

(इ) लंकाशायर क्षेत्र (Lancashire Region)—यह क्षेत्र संसार का सबसे बड़ा सूती उद्योग क्षेत्र है। मान्चेस्टर संसार का सबसे बड़ा सूती कपड़ा उद्योग का केन्द्र है। यह क्षेत्र पिनाईन श्रेणी के पश्चिम की ओर मरसी नदी के बेसिन में फैला है। सूती कपड़ा उद्योग में भी अलग-अलग अङ्गों का विभिन्न केन्द्रों में विशिष्टीकरण हुआ है। मुख्य उद्योग और उनके केन्द्र निम्न-लिखित हैं—

उद्योग	केन्द्र
सूती कपड़ा	मांचेस्टर, लिवरपूल और ओल्डहम।
बुनाई	मांचेस्टर।
कताई	ओल्डहम, बोल्टन, बरी, रोशडेल और स्टाकपोर्ट।
रङ्गाई-छपाई	रेडक्लिफ, बोल्टन और रोशडेल।
सूती धोतियाँ	प्रेस्टन और ब्लैकबर्न।
चीनी	लिवरपूल।
काँच	सेंट हेलेन्स।
साबुन	लिवरपूल।
रासायनिक पदार्थ	रेनकोर्न
कागज	रोशडेल।
रबड़ और रेशमी कपड़ा	मांचेस्टर।

(ई) मिडलैंड क्षेत्र (Midland Region)—इस क्षेत्र में प्रारम्भिक स्पात उद्योग के कारखाने स्थापित किये गये थे। बर्मिङ्घम इसका मुख्य केन्द्र है। मध्यवर्ती स्थिति और सुव्यवस्थित रेल मार्गों की सुविधा इसे प्राप्त है। यहाँ स्पात के भारी और हल्के, दोनों प्रकार के सामान बनाये जाते हैं। साईकिल, अस्त्र-शस्त्र, हल्के सामान, चीनी मिट्टी के बर्तन, जूते, शराब, स्पात और इन्जिनियरिङ्ग के कई कारखाने यहाँ पाये जाते हैं। यहाँ के मुख्य उद्योग और उनके केन्द्र इस प्रकार हैं :—

उद्योग	केन्द्र
जूता	लिसेस्टर।
शराब	बर्टन।
रेल के इन्जिन	बर्मिङ्घम।
मोटरकार	कावेन्ट्री।
पोटरी	बर्सलेम और स्टोक।
ताला	वोलवरहैम्पटन।
जीन	वालशाल।

(उ) साउथ वेल्स क्षेत्र (South Wales Region)—इस क्षेत्र का अभी हाल ही में औद्योगिक विकास हुआ है। साउथ वेल्स कोयला क्षेत्र पर यहाँ के उद्योग निर्भर हैं। यहाँ का विशिष्टीकरण महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र के मुख्य उद्योग टिन चादर और स्पात चादर हैं। स्वान्सी में सीसा और जस्ता गलाने के उद्योग चालू हैं। स्वान्सी, नरगाम और पोर्ट टालबोट टिन चादर उद्योग के केन्द्र हैं। ब्रिस्टल में रेल के डिब्बे, हवाई जहाज और इन्जिनियरिङ्ग उद्योग पाये जाते हैं।

(ऊ) स्काटिश क्षेत्र (Scottish Area)—यह क्षेत्र स्काटलैंड के मैदान में स्थित है जो क्लाईड और फर्थ आफ फोर्थ के बीच फैला हुआ है। यह क्षेत्र वहाँ के कोयला क्षेत्रों पर निर्भर है। यहाँ उद्योगों की विविधता एक मुख्य विशेषता है। सूती कपड़ा और लोहा तथा स्पात उद्योगों के कारखाने भी हैं। ग्लासगो के पास जलयान निर्माण, ऊन, जूट और लिनेन के उद्योग स्थित हैं। एडिनबरा रबड़ और कागज; डण्डी जूट और लिनेन; किलमार्नक इन्जिन और पैसली सूती कपड़ा उद्योग के लिये प्रसिद्ध हैं। आयरलेनार्क और हैमिलटन अन्य मुख्य केन्द्र हैं।

(ए) लन्दन क्षेत्र (London Region)—लन्दन के अधिकतर उद्योग आयात किये गए माल पर निर्भर हैं। बन्दरगाह और रेलों के जकशन की सभी सुविधायें इस क्षेत्र को प्राप्त हैं। रासायनिक पदार्थों के बनाने, जलयान तथा कागज निर्माण के कारखाने और धातु उद्योग इस क्षेत्र में अधिक हैं।

(ii) फ्रैन्को-बेल्जियम औद्योगिक क्षेत्र—(Franco-Belgium Industrial Region)—यह क्षेत्र यूरोप की प्रधान औद्योगिक पेटी के पूर्व की ओर स्थित है। इस क्षेत्र के सभी केन्द्र कोयला क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। राजनैतिक सीमाओं की बाधा से इसके विकास को बड़ी असुविधा है और क्षेत्र

की औद्योगिक महत्ता भी घट जाती है। इस क्षेत्र के दो भाग हैं। (अ) फ्रेंच, और (आ) बेल्जियम क्षेत्र।

(अ) फ्रेंच भाग—यह भाग देश के उत्तरी पूर्वी भागों में फैला है। फ्रांस के भाग में कोयला तो नहीं है लेकिन यहाँ सुविकसित जल शक्ति प्राप्त है। आर्डेनेज, वोसजेज, जूरा, आल्पस और मध्य के उच्च पठारों में काफी जल बिजली शक्ति पैदा की जाती है। इसका उपयोग उत्तर पूर्व और पूर्व में सूती कपड़े और हल्के उद्योगों में किया जाता है। लारेन की लोहे की खानें भी इसी क्षेत्र में स्थित हैं। इस क्षेत्र में भारी उद्योगों का विशिष्टीकरण हुआ है। स्पात उद्योग के अतिरिक्त हल्के सूती कपड़ा उद्योग चालू हैं। आर्मेंटाएर्स लिनेन का महान केन्द्र है। लीले, पैरिस और वेलेन्शियस में इंजीनियरिंग उद्योग चालू हैं। जस्ते और अन्य धातुओं को गलाने, मशीनरी, बनाने, कांच, चिकनी मिट्टी के बर्तन और रासायनिक पदार्थों के उद्योग भी यहाँ पाये जाते है।

(आ) बेल्जियम भाग—यह भाग मोंज से आरम्भ होकर नामूर की घाटी से होते हुए लीज तक फैला हुआ है। यह भाग कैम्पाईन और फ्रैंको-बेल्जियम कोयला क्षेत्र पर निर्भर है। यहाँ जस्ता, काँच, चिकनी मिट्टी के बरतन, रसायन और गाड़ी के डिब्बे बनाने के कारखाने हैं। नहरों द्वारा कोयला औद्योगिक केन्द्रों तक पहुँचाया जाता है। यहाँ ऐतिहासिक पूर्वारम्भ का तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लीज और चार्लीरॉय इस क्षेत्र के मुख्य केन्द्र हैं। लीज और शारलोट खनिज और इन्जीनियरिङ्ग उद्योगों के लिये प्रसिद्ध हैं। यहाँ रासायनिक पदार्थों और काँच का सामान बनाने के भी बहुत बड़े-बड़े कारखाने हैं।

इन दो भागों के अतिरिक्त हालैंड का दक्षिणी भाग भी इसी क्षेत्र में सम्मिलित है। इस भाग में सूती कपड़ा उद्योग का विशिष्टीकरण हुआ है। एन्सकेडी सूती कपड़े, टिलबर्ग ऊनी कपड़े और नकली रेशम, इंडोवेन बिजली के बल्ब, रेडियो और अन्य बिजली के सामान और लाँगरट्राट जूते के उद्योग का केन्द्र है।

(iii) पश्चिमी जर्मनी या रूर-वेस्टफेलिया क्षेत्र (W. Germany or Ruhr Westphalian Region)—इस क्षेत्र में ऊपरी राईन घाटी, सारा कोयला बेसिन और बवेरिया शामिल हैं। लेकिन इसमें निचली राईन घाटी का क्षेत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र वेस्ट- फालिया के रूर कोयला क्षेत्र से सम्बन्धित है। यह जर्मनी के भारी उद्योगों का सबसे पुराना और सबसे बड़ा क्षेत्र है। इन क्षेत्र के भीतर औद्योगिक विशिष्टीकरण खूब हुआ है। किन्तु भारी उद्योग कोयला क्षेत्र के पास स्थित हैं। इसके पूर्व और दक्षिणी पूर्व की ओर मजबूत सामान और हल्के धातु उद्योग चालू हैं। इसके उत्तर और पश्चिम की ओर कपड़ा उद्योग स्थित हैं। एसैन, डार्टमंड और बोचम स्पात के केन्द्र हैं। राम्सचीड और सोलिन्जेन में भारी सामान, अस्त्र-शस्त्र और कटलरी के सामान बनाये जाते हैं। वुपरटाल, हैम्बोर्न, क्रेफेल्ड, मुंचेन-ग्लाडबैक, कोलोन कपड़ा उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं। इस औद्योगिक क्षेत्र को दो बड़े महायुद्धों से विशेष क्षति पहुँची है। लेकिन कोयले और

लोहे की निकटता के कारण पुनर्निर्माण द्रुतगति से हो रहा है। सम्पूर्ण क्षेत्र में रेशम से लगाकर जहाज तक बनाये जाते हैं।

(iv) मध्य यूरोपीय क्षेत्र (Central European Regions)—इस क्षेत्र में दक्षिणी मध्य जर्मनी और बोहेमिया के क्षेत्र बर्लिन से प्राग तक फैले हुये हैं। इस क्षेत्र में लिगनाईट कोयले की विशाल सम्पत्ति पाई जाती है। कहीं-कहीं जल शक्ति, अच्छा कोयला और गैसोलीन की शक्ति भी पाई जाती है। इस क्षत्र में लोहे और पोटाश के लवण भी पाये जाते हैं। लिगनाईट से कृत्रिम उपायों द्वारा गैसोजीन बनाया जाता है। शक्ति की प्रचुर प्राप्ति इस क्षेत्र की अन्यतम सुविधा है। यहाँ भारी स्पात उद्योग स्थानीय लोहे की पूर्ति पर चलाये जा रहे हैं। पोटाश और लिगनाईट से प्राप्त पदार्थों द्वारा रासायनिक

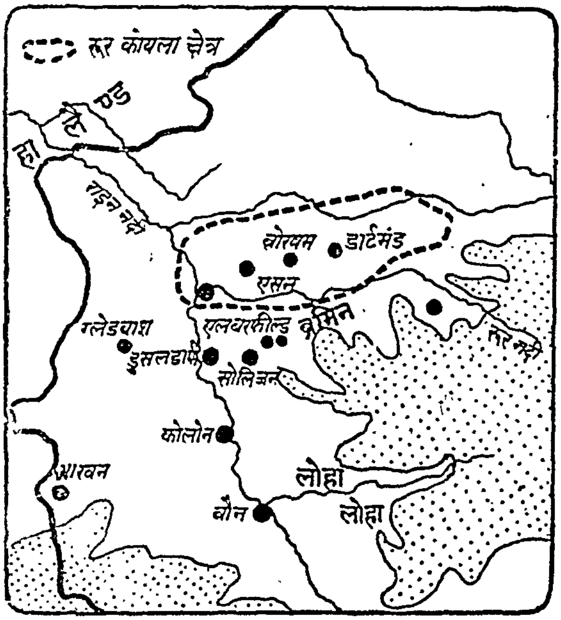

चित्र २०५

उद्योग चलाये जा रहे हैं। कपड़ा, रसायन, पौटरी, हल्की मशीनरी, ऐनक, वैज्ञानिक यन्त्र आदि के अनेक हल्के उद्योग यहाँ स्थापित हैं। युद्ध के समय अस्त्र-शस्त्र, हवाई जहाज और अनेक युद्ध यंत्र बनाने के कारखाने चालू किये गये थे जो अब भी स्थित हैं। इस औद्योगिक क्षेत्र का अधिकतर भाग अब रूस के अधीन है। साइलेशिया के भाग में जस्ता, कोयला, लोहा और अन्य धातुएँ पाई जाती हैं। इसका प्राय: सारा भाग पोलेंड में होने के कारण इसका विकास नहीं हो पाया है। यहाँ जस्ता रसायन, धातु और स्पात उद्योग चालू हैं। रीनबोर और ग्लीविटज प्रसिद्ध केन्द्र हैं। ब्रेसलो सूती कपड़े और लिनेन का बड़ा केन्द्र है।

(v) दक्षिण यूरोपीय औद्योगिक क्षेत्र (South European Centres)—दक्षिणी यूरोप में कोयले की कमी ने कारखाना उद्योग को जन्म लेने से रोका तो नहीं है लेकिन उद्योगों के स्वभाव पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। स्पेन में प्रचुर लोहा पाया जाता है लेकिन कोयला नहीं मिलता। इटली, बलकान देश और स्विटजरलैंड में लोहा और कोयला दोनों में से एक भी नहीं है। आल्प्स और पिरेनीज पर्वत-श्रेणियों पर बहने वाली नदियों से प्रचुर मात्रा में विद्युत शक्ति प्राप्त की जाती है। इन्हीं कारणों से यहाँ भारी उद्योगों का अभाव है। यह उद्योग विशेषकर हथियार, हवाई जहाज आदि प्राय: सरकारी संरक्षण में

राजनैतिक या फौजी कारणों से चलाये जा रहे हैं। इटली में जलयान और वायुयान निर्माण ऐसे ही उद्योग हैं। यहाँ के अधिकतर उद्योग हल्के प्रकार के है जिनमें मुख्य कृत्रिम अन्न बनाना, घड़ियाँ, यन्त्र और कपड़ा आदि हैं। इन उद्योगो को प्रचुर जल-विद्युत शक्ति और कुशल श्रमिक मिलते हैं। स्विस घाटी, पो बेसिन और केटेलोनिया की घाटी इन उद्योगों के मुख्य क्षेत्र है तथा एक दूसरे से पृथक हैं। यहाँ औद्योगिक पेटी की अपेक्षा पृथक केन्द्र ही पाये जाते हैं। वार्सीलोना, लियों, सेंट इटीन, मार्सलेज, ट्यूरिन, ट्रिएस्ट, बेसल, बर्न, ज्यूरिच और सेन्ट गालन प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र हैं। स्विटजरलैंड बहुत समय से घड़ियों और वैज्ञानिक यन्त्रों के लिये विश्व विख्यात है। लियोन रेशमी कपड़े का बड़ा केन्द्र है। रेडियो और बिजली का सामान भी इटली में बनाया जाता है।

(vi) सोवियत रूस के औद्योगिक प्रदेश—आधुनिक काल में सोवियत रूस में शिल्प उद्योगों का यथेष्ट विकास हुआ है। सोवियत संगठन का यह उद्देश्य है कि समस्त देश में उद्योगों का पुनर्वितरण कर दिया जाय जिससे कि किसी प्रदेश विशेष में उद्योगों का एकाधिकार न रहे। यंत्र निर्माण, खेती के औजार, मोटर, ट्रैक्टर मोटरगाड़ियाँ, सूती वस्त्र, चमड़े की वस्तुएँ, मिट्टी के बर्तन, रासायनिक पदार्थ, चीनी शोधन आदि के यहाँ पर बड़े-बड़े कारखाने हैं। इस रीति से सोवियत रूस का औद्योगिक संगठन केवल उन्हीं कच्ची वस्तुओं पर निर्भर रहता है जो कि रूस ही में प्राप्त हो सकती हैं।

(अ) मास्को प्रदेश (Moscow Region)—सोवियत रूस में छः प्रधान औद्योगिक प्रदेश हैं। जिनमें सबसे प्रधान मास्को प्रदेश है। सूती वस्त्र के ९०% कारीगर मास्को प्रदेश में ही केन्द्रित हैं। मास्को तथा इवानावे ही दो प्रधान सूती वस्त्र केन्द्र हैं। धातु उद्योगों का स्थानीयकरण ट्यूला, मास्को तथा

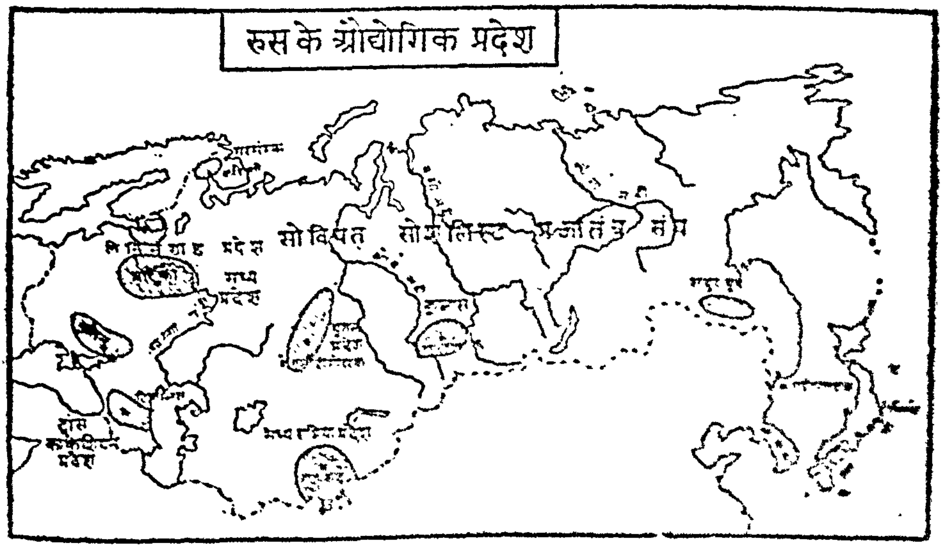

चित्र २०६

गोर्की में हो गया है। देश के रासायनिक उद्योगों का ६०% भाग मास्को प्रदेश में ही स्थित है।

(आ) यूक्रेन का औद्योगिक प्रदेश—दूसरा महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रदेश यूक्रेन तथा उसके समीप का भाग है। डोनेट्ज नदी के बेसिन से ही सोवियत रूस की ४५% इस्पात तथा ७०% अल्यूमूनियम की पूर्ति होती है। यूक्रेन का डोनेट्ज बेसिन चीनी मिलों, आटे की मिलों तथा चमड़े के कारखानों के लिये भी प्रसिद्ध है। खीपा (अनाज की मंडी), ओडेसा (खेती के औजार) क्रिवोई रॉग (लोहा तथा इस्पात), नीप्रोपेट्रोवस्क (इंजीनियरी की वस्तुओं तथा कोयले से उत्पन्न बिजली का स्टेशन), रोस्टोव (खेती के औजार), वोरोशिलोवग्राड (मोटर गाड़ी) तथा स्टालिनग्राड (लोहा तथा इस्पात) इस प्रदेश के मुख्य औद्योगिक केन्द्र हैं।

(इ) यूराल का औद्योगिक प्रदेश—यह प्रदेश अपेक्षतः नवीन ही है। इस क्षेत्र में पर्मस्वर्डलोवस्क, शीलियाविंस्क, ओरेनवर्ग तथा वाश्कीर प्रदेश सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में सोवियत रूस का २०% के लगभग लोहा तथा २५% के लगभग इस्पात उत्पन्न होता है। अन्य शिल्प उद्योगों में रासायनिक उद्योग, रेलों के कारखाने तथा, शस्त्रास्त्र ढालने के कारखाने हैं। इस प्रदेश के प्रधान नगर मैगनी, टोगोरस्क, निझनी टागिल, शीलियाविंस्क, स्वर्डलोवस्क तथा उर्स्क हैं। इस प्रदेश को ट्रांस साइबेरियन रेलवे तथा कैस्पियन रेल दोनों ही जाती हैं।

(ई) कुजबुज देश—पश्चिमी साइबेरिया में है। कुछ ही दिनों में यह महत्त्वपूर्ण औद्योगिक प्रदेश वन गया है। केमेरोवो (तेल शोधन तथा धातु उद्योग), स्टालिस्क (लोहा इस्पात तथा मोटर गाड़ियों) तथा होमस्क (वायुयानों के लिये) यहाँ के प्रमुख औद्योगिक नगर हैं।

(उ) मध्य एशिया प्रदेश—सोवियत मध्य एशिया प्रदेश में सूती वस्त्र उद्योग, रासायनिक पदार्थ, लोहा तथा इस्पात आदि के उद्योग होते हैं। ताशकंद, बुखारा तथा स्टालिनावाद मध्य एशिया प्रदेश के मुख्य नगर हैं।

(ऊ) द्वितीय विश्वयुद्ध के छिड़ने से सुदूरपूर्व का कुजनेटस्क औद्योगिक प्रदेश भी महत्वपूर्ण हो गया है। यूराल पर्वत से २००० मील के अन्तर पर होने से सोवियत सरकार ने इस प्रदेश को आर्थिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बना दिया है। सुदूरपूर्व स्थित इस प्रदेश के याकूतस्क, विटिम, कोमसोमोल्सक, आर्खलोवोस्क तथा व्लाडीवोस्कट प्रसिद्ध नगर हैं। इस प्रदेश में रसायन, कागज, लुब्दी और हल्के धातु उद्योग स्थित हैं।

(vii) उत्तरी-पश्चिमी औद्योगिक क्षेत्र—इस क्षेत्र में नार्वे स्वीडन, और फिनलैंड के निकटवर्ती भागों के औद्योगिक क्षेत्र सम्मिलित हैं। इन देशों में कोयले का अत्यन्त अभाव है पर सौभाग्य वश सभी देश पहाड़ी हैं, जहाँ ग्लेशियरों के रगड़ से असंख्य जल-प्रपात पाये जाते हैं, जिनका उपयोग शक्ति उत्पादन के लिए किया गया है। नार्वे और स्वीडन में उत्तम श्रेणी का लोहा मिलता है किन्तु दुर्गम्य स्थानों पर पाये जाने के कारण इसका पूरी तरह

विदोहन नहीं हो पाया है। किन्तु जल शक्ति के सहारे कागज, लुग्दी, विद्युत यंत्र और रसायन आदि के उद्योग यहाँ स्थापित हो गये हे। यहाँ स्पात, लकड़ी चीरने और दियासलाई बनाने के भी कई कारखाने पाये जाते हैं। नार्वे में नोटोडेन और यून्यू खाद और विस्फोटक पदार्थों के उत्पादक केन्द्र हैं। ओसलो फियोर्ड में विद्युत रसायन और स्पात उद्योग केन्द्रित हैं। स्वीडेन के मुख्य औद्योगिक केन्द्र नारकोपिंग, मोटाला और टॉल हाय हैं। फिनलैंड के मुख्य केन्द्र हाको और हेलसिंकी हैं।

(३) पूर्वी और दक्षिणी एशिया के औद्योगिक क्षेत्र :

जापान—जापान में उद्योग-धन्धों का विकास सबसे घनी जनसंख्या की पेटी में ही हुआ है जहाँ सस्ते मजदूर और बाजार दोनों की प्रचुरता है। इस क्षेत्र में कोयला, रेशम और जल विद्युत शक्ति भी उपलब्ध है तथा यहीं जापान के मुख्य-मुख्य बन्दरगाह स्थित हैं जिनके द्वारा जापान का वैदेशिक व्यापार होता है। जापान का मुख्य औद्योगिक क्षेत्र होंशू के दक्षिण में स्थित है जो उत्तरी क्यूश्यू व आन्तरिक सागर से लगाकर पूर्व में टोकियो तक फैला है। यह ६०० मील लम्बी पेटी नागासाकी से टोकियो तक विस्तृत है। इस पेटी में सैकड़ों कारखाने पाये जाते हैं। सिताउची सागर के दोनों किनारों पर बड़े-बड़े औद्योगिक नगर स्थित हैं। इस पेटी में जापान की ५३% जनसंख्या और ८०% मजदूर पाये जाते हैं। ७५% कच्चा लोहा और ९०% स्पात भी यहीं तैयार किया जाता है। यहाँ सूती, ऊनी, रेशमी कपड़े, कागज, लुग्दी, रसायन, दियासलाई, पेंसिल, चीनी के बर्तन काँच, रबड़, चमड़ा, आदि के उद्योग भी केन्द्रित हैं। इस औद्योगिक पेटी में चार मुख्य क्षेत्र हैं :—

(अ) कोबे-ओसाका क्षेत्र या किंकी केन्द्र (Kobe-Osaka Region)—यह क्षेत्र जापान के मध्यवर्ती सागर के चारों ओर फैला है। इस क्षेत्र से जापान का एक तिहाई माल उत्पन्न होता है। ओसाका यहाँ का प्रमुख केन्द्र है। यह तो 'जापान का मानचेस्टर' ही कहलाता है क्योंकि यह नगर सूती वस्त्र उद्योग में एक विशेष स्थान रखता है। सूती कपड़े के अतिरिक्त यहाँ रेशमी व ऊनी वस्त्र उद्योग, लोहा व स्पात, जहाज आदि उद्योग भी केन्द्रित हैं। ओसाका के पीछे समतल भूमि विस्तृत है तथा अधिक जनसंख्या के कारण बाजार और सस्ते मजदूरों की प्रचुरता है, अतः कच्चा माल और शक्ति न होते हुए भी उद्योग चलाये जाते हैं। क्योटो में कला पूर्ण वस्तुएँ अधिक निर्माण की जाती हैं। रेशमी वस्त्र, मिट्टी व चीनी के बर्तन, शराब, बाँस व काँसे की वस्तुएँ और खिलौने अधिक बनाये जाते हैं।

(आ) टोकियो-याकोहामा क्षेत्र या क्वान्टो केन्द्र (Tokiyo-Yakohama Region)—यह क्षेत्र टोकियो और याकोहामा के चारों ओर क्वान्टो के मैदान पर फैला है। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। टोकियो सागामी खाड़ी के सिरे पर स्थित है, जहाँ तक बड़े जहाज नहीं पहुँच पाते, अतः खाड़ी के द्वार पर स्थित याकोहामा बन्दरगाह

द्वारा इस क्षेत्र का व्यापार होता है। इसके पृष्ठ देश में रेशम बहुत होता है अतः यहाँ रेशम उद्योग के कई कारखाने पाये जाते हैं। यहाँ मशीनें, बिजली का सामान, छापेखाने की मशीनें, खिलौने, आदि बड़ी मात्रा में तैयार किये जाते

चित्र २०७—जापान के औद्योगिक क्षेत्र

हैं क्योंकि पृष्ठदेश में बहने वाली तीव्रगामी नदियों से जल शक्ति प्राप्त होती है। क्वान्टो के मैदान में अन्य कई केन्द्रों में प्लास्टिक, रबड़, व लकड़ी के खिलौने, फैशन की वस्तुएँ, सजावट के सामान, कागज, चीनी मिट्टी के बर्तन और चमड़े का सामान बनाने के भी कई कारखाने हैं।

(इ) नगोया क्षेत्र (Nagoya Region)—यह क्षेत्र एक छिछली खाड़ी के किनारे स्थित है। इसका मुख्य केन्द्र नगोया है जहाँ जापान की १०% वस्तुएँ तैयार की जाती हैं तथा ६०% ऊनी कपड़ा यहाँ तैयार होता है। यहाँ कोयले व लोहे के अभाव में हलके उद्योग-धन्धे उन्नति कर सके हैं। ऊनी, सूती व रेशमी वस्त्रो के अतिरिक्त रसायन, चीनी मिट्टी के बर्तन व औजार और मशीनें भी बनाई जाती हैं।

(ई) उत्तरी क्यूश्यू क्षेत्र—यह क्षेत्र क्यूश्यू के उत्तरी सिरे पर मोजी और नागासाकी के मध्य में स्थित है। यह क्षेत्र जापानके भारी उद्योग का आधार है। यहाँ सबसे अधिक लोहे गलाने की भट्टियाँ मिलती हैं। भारी लोहे की वस्तुएँ, जहाज, एंजिन, मशीनें व पुर्जे, कांच, सीमेंट तथा रसायन उद्योग के कारखाने पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ आटा पीसने, तेल साफ करने के भी कारखाने हैं। यावटा में लोहे के बड़े कारखाने केन्द्रित हैं।

चीन—चीन मुख्यतः एक खेतिहर देश है अतः यहाँ का औद्योगिक विकास पूर्ण नहीं है। इसके कई कारण हैं: (१) खेतिहर देश होने से चीन निवासी अधिकतर गाँवों में ही रहते हैं अतः उद्योगों की ओर उनका कोई आकर्षण नहीं रहता। (२) अब तक की अव्यवस्थित राजनैतिक अवस्था देश की आर्थिक प्रगति में बड़ी बाधक रही है। (३) भीतरी यातायात की सुविधायें

भी कम हैं। (४) सामुद्रिक यातायात का भी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। (५) श्रमिकों की कार्य-कुशलता बहुत कम है। (६) पूंजी की नितान्त कमी है। (७) कोयले और जल विद्युत शक्ति का पूर्ण रूप से विकास न होने से औद्योगिक विकास भी उच्च स्तर तक नहीं पहुँच सका है। (८) चीन संसार के अन्य औद्योगिकों देशों से बहुत दूर पड़ता है, अतः उनका प्रभाव इस पर नहीं पड़ा है।

अतएव चीन में अधिकतर कुटीर उद्योग-धंधे ही किए जाते हैं। इनमें मुख्य रेशम के कीड़े पालना, रील बनाना, रेशम कातना, लोहे के बर्तन, खेती के छोटे यत्र, रस्सियाँ, टोकरियां, नमदे, कालीन, कपड़ा, चीनी मिट्टी के बर्तन आदि हैं।

चीन के मुख्य औद्योगिक क्षेत्र छः है :—

(अ) मुकडेन-डेरियन क्षेत्र—इस क्षेत्र में कोयला, लोहा-स्पात, रसायन, सीमेंट, रेलवे के सामान और सोयाफली से तेल निकालने के कारखाने हैं।

(आ) टिंटशीन-चिनवांगटाओ क्षेत्र– इस क्षेत्र में कोयला, नमक, सीमेंट, काँच और सूती कपड़े के कारखाने हैं।

(इ) शिंगटाओ–शिनान क्षेत्र—इस क्षेत्र में सूती कपड़े के कारखाने हैं।

(ई) शंघाई–हांगची–नानकिंग क्षेत्र—इस क्षेत्र में सूती, रेशमी कपड़े, आटा पीसने, सिगरेट, जहाज और हल्के उद्योगों के कारखाने हैं।

(उ) हांको क्षेत्र—इस क्षेत्र में स्पात, लोहा और कृषि यंत्र बनाने के कारखाने हैं।

(ऊ) हांगकांग–कैंटन क्षेत्र—इसमें रेशमी कपड़े और जहाज बनाने के कारखाने हैं।

भारत के औद्योगिक क्षेत्र

यद्यपि भारत विश्व के औद्योगिक देशों में आठवां देश है किन्तु यहाँ अभी तक पूर्णरूप से कारखानों का विकास नहीं हुआ है। केवल १०% व्यक्ति इनमें काम करते हैं फिर भी कुछ क्षेत्र विशेषों में कई विशेषताओं के कारण औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो गये हैं। ये विशेषताएं हैं क्रमशः (१) विशाल जनसंख्या और अधिक माँग, (२) बड़े २ बैंकों द्वारा पूंजीगत सहायता देना, (३) यातायात की सुविधाएँ, और (४) कच्चे माल की प्रचुरता।

भारत में मोटे तौर पर निम्नलिखित औद्योगिक प्रदेश हैं :—

(i) हुगली नदी के क्षेत्र (Hooghly Side Area)—जहाँ भारत के लगभग १/३ उद्योग-धंधे पाये जाते हैं। यही भारत का प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ भारत के सभी जूट मिल, पाट, कागज, लोहा, रसायन, सूती कपड़े, काँच, आदि उद्योगों के कारखाने केन्द्रित हैं। यह उद्योग मुख्यतः कलकत्ता की घनी बस्ती के बाहर स्थित हैं। हावड़ा, लिलुआ, बेलूर, बजबज, टीटागढ़ आदि कलकत्ता के मुख्य उप-नगर हैं। यहाँ कारखाने अधिकतर हुगली नदी

के किनारे २ ही पाये जाते हैं। इस क्षेत्र को ये सुविधाएँ प्राप्त हैं :—

(१) हुगली के यातायात मार्ग पर स्थित होने के कारण यहाँ कलकत्ता द्वारा विदेशों से व्यापार बड़ी मात्रा में और सरलतापूर्वक किया जा सकता है। भीतरी भागों से भी यह क्षेत्र रेल-मार्गों और नदियों द्वारा संबंधित है, अतः कच्चा माल सुविधापूर्वक प्राप्त हो जाता है।

(२) कोयले की खानों से निकट होने से—जो सभी १५० मील से अधिक दूर नहीं है—कोयला मिल जाता है। यह न केवल कारखानों के लिये शक्ति प्रदान करता है वरन् इससे बिजली (Thermal power) भी बनाई जाती है।

(३) नदियों और उनसे संबंधित झीलों (bills) तथा नहरों के कारण उद्योगों के लिये पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ जल उपलब्ध हो जाता है।

(४) अधिक जनसंख्या होने के कारण यहाँ श्रमिक भी बहुत मिलते हैं।

(५) यहाँ बने माल की माँग भी उत्तरी भारत में सभी जगह है।

(६) यहाँ पूंजी की पूर्ण सुविधा है।

(ii) बम्बई का कपास क्षेत्र (Bombay Cotton Belt)—यह भी भारत का प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है जो दक्षिण के कपास उत्पादन क्षेत्रों से संबंधित है। अतः यहाँ सूती वस्त्र उद्योग बहुत उन्नत हो गया है, अतः यहीं भारत के सबसे अधिक श्रमिक पाये जाते हैं। यहाँ कपास के क्षेत्रों की निकटता से पर्याप्त मात्रा में कपास उपलब्ध हो जाता है। शक्ति अधिकतर टाटा के जल-विद्युत् कारखानों से प्राप्त हो जाती है। बन्दरगाह होने के नाते विदेशों से रसायन और यंत्र, उपकरण आदि कम खर्च में और सरलतापूर्वक आयात किये जा सकते हैं। भीतरी भागों से रेल मार्गों द्वारा संबंधित होने से यहाँ का माल दूर-दूर तक पहुँचता है। बम्बई में बड़े-बड़े पूंजीपतियों का सानिध्य है, अतः पूंजी खूब मिल जाती है। अतएव इस क्षेत्र में सूती उद्योग के अतिरिक्त कागज, रेशम, ऊनी वस्त्र, काँच रसायन आदि के कारखाने भी केन्द्रित हैं। यहाँ के मुख्य औद्योगिक केन्द्र बम्बई, शोलापुर, अहमदाबाद, बड़ौदा, ओखा, बेलगाँव, पूना आदि हैं।

(iii) नीलगिरी पर्वतों के निकट मद्रास व मैसूर क्षेत्र—यद्यपि यह क्षेत्र उत्तरी भारत के भागों से बहुत दूर पड़ जाते हैं तथा यहाँ लोहा और कोयला तथा अन्य खनिज पदार्थ भी कम पाये जाते हैं किन्तु दक्षिणी भारत में जल विद्युत शक्ति का विकास बहुत अधिक हो जाने से यहाँ विशेषतः सूती, ऊनी व रेशमी कपड़ों और रसायन तथा चमड़े के उद्योग केन्द्रित हो गये हैं। यहाँ सिमेंट, दियासलाई, चीनी आदि उद्योग भी मिलते हैं। बंगलौर, मैसूर, मद्रास, कोयम्बटूर, मदुरा आदि प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं।

(४) रानीगंज-झरिया क्षेत्र (Raniganj-Jheria Area)—यह क्षेत्र कलकत्ता से लगभग १२५ मील पश्चिम की ओर स्थित है। इसके विकास का मुख्य कारण यहाँ मिलने वाली कोयले की विशाल राशि है जो धातु शोधन एवं कोक बनाने और गैस निर्माण के सर्वथा उपयुक्त है। इसी क्षेत्र में चूने का पत्थर, डोलोमाइट, मैंगनीज, अभ्रक, अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी तथा

लोहा खूब मिलता है। अतः यहाँ जमशेदपुर, कुल्टी, व हीरापुर में लोहे व स्पात के कारखाने, रानीगंज में कागज, सिंदरी में रासायनिक खाद, जे. के. नगर में अल्यूमीनियम और डालमिया नगर में सिमेंट, कागज, रसायन आदि के मुख्य कारखाने पाये जाते हैं। दामोदर घाटी योजना के पूर्ण होने पर यह क्षेत्र वास्तव में भारत का रूर प्रदेश (Ruhr of India) वन जायगा क्योंकि प्राकृतिक स्रोतों में यह बहुत सम्पन्न है।

दक्षिणी अमेरिका के औद्योगिक क्षेत्र :

दक्षिणी अमेरिका में उद्योगों का विकास बहुत कम हुआ है। जो कुछ भी विकास हो पाया है वह मुख्यतः ब्राजील और अर्जेनटाइना देशों में हुआ है। यहाँ ऐसे उद्योग पनपे हैं जिनमें, (१) स्थानीय कच्चे माल का ही अधिक उपयोग किया जाता है. (२) जिनमें कोयले का उपभोग बहुत कम होता है, (३) जिनमें अधिक यांत्रिक और वैज्ञानिक ज्ञान वाले श्रमिकों की आवश्यकता नहीं पड़ती, और (४) जो विशेषतः स्थानीय माग की पूर्ति करते हैं। अतः यहाँ के मुख्य उद्योग कृषि की पैदावारों से ही सम्बन्धित हैं। अर्जेनटाइना में जल विद्युत और कोयले की कमी से माँस का उद्योग, आटा पीसने, खेती के यंत्र बनाने, मोटरें तथा सूती कपड़े के उद्योग पाये जाते हैं। ये अधिकतर ब्यूनस आयरस और उसके निकटवर्ती केन्द्रों में ही स्थापित हैं। अर्जेनटाइना की तुलना में ब्राजील में जल विद्युत शक्ति भी अधिक है और मांग भी पर्याप्त है, अतः यहाँ उद्योग-धन्धों की विविधता पाई जाती है। मुख्य उद्योग सूती और जूट के वस्त्र, रसायन तथा हल्के उद्योग हैं।

दक्षिणी अफ्रीका संघ :

अफ्रीका में दक्षिणी अफ्रीका सबसे विकसित तथा उन्नत औद्योगिक देश है। किन्तु पश्चिम के राष्ट्रों की तुलना में यह औद्योगिक उन्नति बहुत ही नगण्य है। यहाँ औद्योगिक विकास मुख्यतः द्वितीय महायुद्ध के बाद ही हुआ है। यहाँ के प्रारम्भिक उद्योग खेती की उपजों पर ही निर्भर थे। डरबन में चीनी, पोर्ट एलिजाबेथ में चमड़े का सामान और जूते केप प्रान्त में शराब बनाने और फलों को टिन में बन्द करने के कारखाने हैं। डरबन में क्रोमियम धातु से चमड़ा रंगने के, नामक जूते और ऊनी कम्बल बनाने के कारखाने हैं। केप प्रान्त और नैटाल में रंग और वार्निश बनाये जाते हैं।

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड :

दक्षिणी अमेरिका या अफ्रीका की अपेक्षा आस्ट्रेलिया का औद्योगिक विकास प्रमुखतः इन कारणों से हुआ है। (१) यहाँ कोयला पर्याप्त मात्रा में मिलता है (२) यह क्षेत्र उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय देशों से बहुत दूर पड़ता है अतः वस्तुओं के आयात में बड़ा खर्च पड़ जाता है। (३) यहाँ के निवासी अंग्रेज जाति के ही हैं, अतः इन्हें भी अपने पूर्वजों की तरह वैज्ञानिक ज्ञान और औद्योगिक व्यवस्था का अनुभव है। यहाँ के अधिकांश धन्धे खेती की पैदावार से ही सम्बन्धित हैं—विशेषकर भोज्य पदार्थ बनाने के। आटा पीसना, शक्कर बनाना, फलों का संरक्षण और डिब्बों में बन्द करना, माँस तैयार करना

भारी पदार्थों में कच्चा लोहा, कोयला और चूना मुख्य हैं अतएव उत्तम माल को तैयार करने के लिए अनावश्यक रूप से उत्पादन का मूल्य बढ़ाये बिना इन भारी पदार्थों को अधिक दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। अतएव कोयले की खानों के निकट ही लोहे का उद्योग स्थापित किया जाता है। यदि चूने की चट्टान और लोहा एक ही स्थान में मिलते हैं तो अन्य लाभ मिलने के कारण कभी-कभी लोहे की खानों के समीप ही बाहर से कोयला मँगाकर उद्योग स्थापित कर दिया जाता है। किन्तु साधारण दशा में कोयले के क्षेत्रों पर ही कच्चे लोहे को ले जाया जाता है क्योंकि कोयला कच्चे लोहे से अधिक भारी होता है और इधर-उधर ले जाने में कच्चे लोहे की अपेक्षा अधिक मँहगा पड़ता है। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बर्मिंघम के कारखाने, इंग्लैंड में लोहे के कारखाने और भारत में जमशेदपुर का कारखाना प्रायः सभी कोयले की खानों के निकट ही स्थापित किये गये हैं।

(२) सस्ती भूमि और स्वच्छ जल की अधिकता—लोहे के कारखानों में इतनी बड़ी-बड़ी और भारी मशीनों का प्रयोग किया जाता है कि उसके लिए बहुत अधिक भूमि की आवश्यकता होती है—भूमि के अतिरिक्त इस उद्योग के लिए अधिक पानी की भी आवश्यकता होती है। लोहे को ठंडा करने, गैस की धुलाई करने, भाप बनाने आदि कामों में अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि लोहे के बड़े-बड़े कारखाने प्रायः झीलों अथवा नदियों के किनारे ही स्थापित किये जाते हैं।

(३) यातायात के साधनों की सुविधा—लोहे और कोयले जैसे पदार्थों के इधर-उधर ले जाने को सस्ते यातायात के साधनों की आवश्यकता होती है क्योंकि यदि यह साधन सस्ते न होंगे तो निम्न कोटि के धातु के मूल्य के बढ़ जाने की सम्भावना हो सकती है। इस उद्योग में पूर्णतया अथवा कुछ अंश तक ही जल मार्गों द्वारा कच्चा माल एकत्रित करना रेल मार्गों की अपेक्षा अधिक सस्ता पड़ता है। यातायात के साधनों द्वारा ही उत्पादित-माल को खपत के केन्द्रों तक आसानी के साथ भेजा जा सकता है।

एक बार लोहे और स्पात के कारखाने के नष्ट हो जाने से उसके पुनर्निमाण की संभावनायें कम रहती हैं, अतः युद्धकालीन आक्रमण से बचने के लिए स्पात के कारखाने देश के भीतरी क्षेत्रों में सुरक्षित स्थानों में स्थापित किये जाते हैं। जमशेदपुर, बर्मिघम और पिट्सबर्ग के कारखाने ऐसे ही स्थानों पर केन्द्रित हैं। साईबेरियन क्षेत्र में आधुनिक स्पात के कारखाने इसीलिए स्थापित किये जा रहे हैं।

लोहे की अशुद्धियाँ दूर करना

कच्चे लोहे में कई प्रकार की अशुद्धियाँ मिली रहती हैं जिन्हें साफ करने के लिए लोहे को भट्टी में रखकर गर्म किया जाता है और उनमें कुछ नियत मात्रा में चूना मिलाया जाता है। इस प्रकार गलने पर शुद्ध लोहे की धातु नीचे जम जाती है और उसकी अशुद्धियाँ ऊपर तैरने लगती हैं। नीचे की ओर भट्टी में एक टोंटी लगी रहती है जिसमें से शुद्ध धातु निकलकर नीचे रखे हुये साँचों

में गिरती रहती है। इस तरह जो लोहा प्राप्त होता है उसे ढला हुआ लोहा (Cast iron) कहते हैं। यह लोहा अधिक मजबूत नहीं होता, क्योंकि इसमें अब भी काफी मैल जैसे गंधक, फास्फोरस और कार्बन रह जाता है। इसलिये यह बड़ी जल्दी टूट भी जाता है। अतएव इसे और अधिक मजबूत और साफ बनाने के लिए फिर भट्टियों में गलाया जाता है। इस प्रकार का लोहा आसानी के साथ काटा-पीटा जा सकता है - और काफी मजबूत भी होता है। इसे शुद्ध या पिटवाँ लोहा (Wrought Iron) कहते हैं। शुद्ध लोहा काफी कठोर होता है और इससे मशीनें, शस्त्र आदि बनाये जाते हैं किन्तु यह सभी प्रकार की वस्तुओं के लिए पर्याप्त कठोर नहीं होता। और इसके बनाने में समय भी काफी लगता है और खर्चा भी अधिक पड़ता है। इसलिये इस लोहे को और भी मजबूत और कठोर बनाने के लिए उसमें कार्बन की मात्रा बहुत कम करके कई प्रकार की धातुएँ मिला दी जाती हैं। यही पक्का लोहा स्पात, या फौलाद (Steel) कहलाता है। इसका प्रयोग अधिक मजबूत और टिकाऊ वस्तुएँ बनाने में होता है। स्पात कई प्रकार का होता है और स्पात में कुछ विशेष गुण होते हैं और हर स्पात किसी विशेष धातु के मिश्रण से बनता है।

लोहे को मजबूत बनाने के लिए दो प्रकार की धातुओं को मिलाया जाता है। मैंगनीज, टिन, टंगस्टन, निकल, क्रोमियम आदि धातुएँ (Ferrous Metals) तथा ताँबा, जस्ता, सीसा, एलूमीनियम, सुरमा, थोरियम, वेनेडियम और मॉलीबिडनम आदि धातुएँ (Non Ferrous Metals) आदि। इनके मिलाने से स्पात में जंग नहीं लगता और वह काफी मजबूत हो जाता है। इस प्रकार के मिश्रित स्पात (Ferro Alloys) विशेषकर एंजिनों के बॉयलर, बर्त्तन, मशीनें, तथा तेज धार वाले औजार बनाने के काम में आते हैं। स्पात बनाने में मुख्यतया इन धातुओं का प्रयोग किया जाता है :—[१]

धातु	उपयोग का हेतु	सामान जो बनाया जाता है
क्रोमियम	थोड़ी मात्रा में लोहे को कड़ा करने और जंग रहित बनाने में।	मशीनों के पुर्जे, यंत्र, औजार स्टेनलैस स्टील, अम्ल प्रतिरोधक स्टील
तांबा	जंग लगने से बचाता है।	चादरें
सीसा	टिन के साथ मिला कर जंग बचाने के लिए रोगन किया जाता है; स्पात के साथ मिला कर उसे मशीनें बनाने योग्य बनाया जाता है।	चादरें बनाने, मोटर गाड़ियाँ, गैसोलीन, टैंक, मशीनों के पुर्जे।

१. Jones and Drakenwald : Economic Geography, p. ३५२ ; and Smith, Phillips and Smith : Industrial Geography, p. 350.

भारी पदार्थों में कच्चा लोहा, कोयला और चूना मुख्य हैं अतएव उत्तम माल को तैयार करने के लिए अनावश्यक रूप से उत्पादन का मूल्य बढ़ाये बिना इन भारी पदार्थों को अधिक दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। अतएव कोयले की खानों के निकट ही लोहे का उद्योग स्थापित किया जाता है। यदि चूने की चट्टान और लोहा एक ही स्थान में मिलते हैं तो अन्य लाभ मिलने के कारण कभी-कभी लोहे की खानों के समीप ही बाहर से कोयला मँगाकर उद्योग स्थापित कर दिया जाता है। किन्तु साधारण दशा में कोयले के क्षेत्रों पर ही कच्चे लोहे को ले जाया जाता है क्योंकि कोयला कच्चे लोहे से अधिक भारी होता है और इधर-उधर ले जाने में कच्चे लोहे की अपेक्षा अधिक मँहगा पड़ता है। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बर्मिंघम के कारखाने, इंग्लैंड में लोहे के कारखाने और भारत में जमशेदपुर का कारखाना प्रायः सभी कोयले की खानों के निकट ही स्थापित किये गये है।

(२) सस्ती भूमि और स्वच्छ जल की अधिकता—लोहे के कारखानों में इतनी बड़ी-बड़ी और भारी मशीनों का प्रयोग किया जाता है कि उसके लिए बहुत अधिक भूमि की आवश्यकता होती है—भूमि के अतिरिक्त इस उद्योग के लिए अधिक पानी की भी आवश्यकता होती है। लोहे को ठंडा करने, गैस की धुलाई करने, भाप बनाने आदि कामों में अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि लोहे के बड़े-बड़े कारखाने प्रायः झीलो अथवा नदियों के किनारे ही स्थापित किये जाते हैं।

(३) यातायात के साधनों की सुविधा—लोहे और कोयले जैसे पदार्थों के इधर-उधर ले जाने को सस्ते यातायात के साधनों की आवश्यकता होती है क्योंकि यदि यह साधन सस्ते न होगे तो निम्न कोटि के धातु के मूल्य के बढ़ जाने की सम्भावना हो सकती है। इस उद्योग में पूर्णतया अथवा कुछ अंश तक ही जल मार्गों द्वारा कच्चा माल एकत्रित करना रेल मार्गों की अपेक्षा अधिक सस्ता पड़ता है। यातायात के साधनों द्वारा ही उत्पादित-माल को खपत के केन्द्रों तक आसानी के साथ भेजा जा सकता है।

एक बार लोहे और स्पात के कारखाने के नष्ट हो जाने से उसके पुनर्निमाण की संभावनायें कम रहती हैं, अतः युद्धकालीन आक्रमण से बचने के लिए स्पात के कारखाने देश के भीतरी क्षेत्रों में सुरक्षित स्थानों में स्थापित किये जाते हैं। जमशेदपुर, बर्मिंघम और पिट्सबर्ग के कारखाने ऐसे ही स्थानों पर केन्द्रित हैं। साइबेरियन क्षेत्र में आधुनिक स्पात के कारखाने इसीलिए स्थापित किये जा रहे हैं।

लोहे की अशुद्धियाँ दूर करना

कच्चे लोहे में कई प्रकार की अशुद्धियाँ मिली रहती हैं जिन्हें साफ करने के लिए लोहे को भट्टी में रखकर गर्म किया जाता है और उसमें कुछ नियत मात्रा में चूना मिलाया जाता है। इस प्रकार गलने पर शुद्ध लोहे की धातु नीचे जम जाती है और उसकी अशुद्धियाँ ऊपर तैरने लगती हैं। नीचे की ओर भट्टी में एक टोंटी लगी रहती है जिसमें से शुद्ध धातु निकलकर नीचे रखे हुये ढाँचों

में गिरती रहती है। इस तरह जो लोहा प्राप्त होता है उसे ढला हुआ लोहा (Cast iron) कहते हैं। यह लोहा अधिक मजबूत नहीं होता, क्योंकि इसमें अब भी काफी मैल जैसे गंधक, फास्फोरस और कार्बन रह जाता है। इसलिये यह बड़ी जल्दी टूट भी जाता है। अतएव इसे और अधिक मजबूत और साफ बनाने के लिए फिर भट्टियों में गलाया जाता है। इस प्रकार का लोहा आसानी के साथ काटा-पीटा जा सकता है - और काफी मजबूत भी होता है। इसे शुद्ध या पिटवाँ लोहा (Wrought Iron) कहते हैं। शुद्ध लोहा काफी कठोर होता है और इससे मशीनें, शस्त्र आदि बनाये जाते हैं किन्तु यह सभी प्रकार की वस्तुओं के लिए पर्याप्त कठोर नहीं होता। और इसके बनाने में समय भी काफी लगता है और खर्चा भी अधिक पड़ता है। इसलिये इस लोहे को और भी मजबूत और कठोर बनाने के लिए उसमें कार्बन की मात्रा बहुत कम करके कई प्रकार की धातुएँ मिला दी जाती हैं। यही पक्का लोहा स्पात, या फौलाद (Steel) कहलाता है। इसका प्रयोग अधिक मजबूत और टिकाऊ वस्तुएँ बनाने में होता है। स्पात कई प्रकार का होता है और स्पात में कुछ विशेष गुण होते हैं और हर स्पात किसी विशेष धातु के मिश्रण से बनता है।

लोहे को मजबूत बनाने के लिए दो प्रकार की धातुओं को मिलाया जाता है। मैंगनीज, टिन, टंगस्टन, निकल, क्रोमियम आदि धातुएँ (Ferrous Metals) तथा ताँबा, जस्ता, सीसा, एलूमीनियम, सुरमा, थोरियम, वेनेडियम और मॉली-विडनम आदि धातुएँ (Non Ferrous Metals) आदि। इनके मिलाने से स्पात में जंग नहीं लगता और वह काफी मजबूत हो जाता है। इस प्रकार के मिश्रित स्पात (Ferro Alloys) विशेषकर एंजिनों के बॉयलर, बर्तन, मशीनें, तथा तेज धार वाले औजार बनाने के काम में आते हैं। स्पात बनाने में मुख्यतया इन धातुओं का प्रयोग किया जाता है :—[1]

धातु	उपयोग का हेतु	सामान जो बनाया जाता है
क्रोमियम	थोड़ी मात्रा में लोहे को कड़ा करने और जंग रहित बनाने में।	मशीनों के पुर्जे, यंत्र, औजार स्टेनलैस स्टील, अम्ल प्रतिरोधक स्टील
तांबा	जंग लगने से बचाता है।	चादरें
सीसा	टिन के साथ मिला कर जंग बचाने के लिए रोगन किया जाता है; स्पात के साथ मिला कर उसे मशीनें बनाने योग्य बनाया जाता है।	चादरें बनाने, मोटर गाड़ियाँ, गैसोलीन, टैंक, मशीनों के पुर्जे।

१. Jones and Drakenwald : Economic Geography, p. ५४२ ; and Smith, Phillips and Smith : Industrial Geography, p. 350.

धातु	उपयोग का हेतु	सामान जो बनाया जाता है
मैंगनीज	१ से २% मिला कर गैसें दूर की जाती है; धातु की मजबूती और ठोसपन बढ़ाने, जंग से बचाने में।	रेलें बनाने, मशीनों के पुर्जे (Frog, Switches and dredge bucket teeth)
मॉलीबिडनम	धक्के-प्रतिरोधक, मजबूती आदि के लिए।	औजार, मशीनों के पुर्जे।
रांगा	मजबूती और कड़ाई बढ़ाने तथा अग्नि और अम्ल-प्रतिरोधक बनाने में।	औजार, मशीनों के पुर्जे, स्टेनलैस स्टील, अन्य अग्नि प्रतिरोधक स्पात।
टिन	स्पात पर जंग प्रतिरोधक रोगन करने में।	वर्तन तथा गुसलखाने के उपकरण बनाने (Sanitary Wares) में।
टंगस्टन	अत्यधिक तापक्रम पर भी लोहे को कठोर और मजबूत बनाने में।	मैग्नेट्स, काटने के तीखे औजार बनाने में।
वैनेडियम	लोहे को मजबूत बनाने में।	औजार, पुर्जे आदि।
जस्ता	स्पात पर रोगन करने में।	बाल्टियाँ, काँटेदार तार, गैलवेनाइज्ड चादरें आदि।

स्पात बनाने की विधियाँ : कच्चे लोहे से स्पात बनाने के लिए निम्न प्रकार की क्रियायें काम में ली जाती हैं :—

(i) बैसेमर प्रणाली : (Bessemer Process)—इस प्रणाली में ढले हुये लोहे को एक सुराईदार वर्तन में रखकर इस वर्तन में की हवा को बडी तेजी के साथ फूंका जाता है। इस विधि में प्रयुक्त होने वाले वर्तन को बैसेमर परिवर्तक (Bessemer Convertor) कहते हैं। वर्तन में अन्दर फूंकी जाने जाने वाली हवा में मौजूद आक्सीजन ढले लोहे की अशुद्धताओं को गला डालती है। इसके बाद उस लोहे में उचित मात्रा में कार्बन और फैरो-मैंगनीज आदि धातुएँ मिला दी जाती हैं। सामान्यतया, बैसेमर क्रिया उन कच्चे लोहों के लिये उपयुक्त होती है जिनमें फास्फोरस बिल्कुल नहीं या बहुत ही थोड़ा होता है[1]। इस क्रिया से तैयार होने वाला स्पात बहुधा रेल की पटरियों पुल और जहाज की चादरें बनाने के काम में आता है। इस क्रिया द्वारा स्पात उत्पादन जर्मनी में अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस क्रिया का आविष्कार सन् १८५५ में सर हेनरी बैसेमर ने किया था। बैसेमर विधि दो प्रकार की होती है। अम्लीय (Acid) विधि, जिसमें बालू और स्पीगल (Spiegel) दोनों ही गली धातु में मिलाये जाते हैं। भास्मिक विधि (Basic) जिसमें गली धातु में चूना और फास्फोरस दोनों ही मिलाये जाते हैं।

१. Jones and Drakenwald : Economic Geography, p. 441.

(ii) सीमेंस मार्टिन की खुली अँगीठी वाली क्रिया (Seimens Martin's Open Hearth Process) यह स्पात बनाने की आधुनिक विधि है। इस विधि में खुली भट्टी में चूने या मैगनीशियम का लेप किया जाता है और ढला हुआ लोहा किसी बर्तन में भर दिया जाता है और उसके ऊपर गर्म हवा और गैस की लौ पहुँचाई जाती है। ऐसा तब तक करते रहते हैं जब तक अनावश्यक कार्बन की मात्रा उसमें से न निकल जाय। जब सब अशुद्धियाँ जल कर नष्ट हो जाती हैं तो अन्य धातुएँ उसमें मिला दी जाती हैं और पिघले हुये स्पात को साँचे में ढाल कर ठंडा कर लिया जाता है जिससे स्पात बहुत अच्छा और मजबूत बन जाता है। यह खुली अंगीठी का स्पात कहलाता है। ब्रिटेन और जर्मनी में इस प्रकार का स्पात अधिक बनाया जाता है। सामान्यतया यह विधि मध्यम श्रेणी का कच्चा लोहा बनाने के लिये उपयुक्त होती है।

(iii) मिश्रित विधि (Mixed Process)—इस विधि का आजकल बहुत कम उपयोग होता है। यह उपरोक्त दोनों ही विधियों का मिश्रण है।

(iv) कटोरी पात्र विधि (Crucible Process)—इस विधि का आविष्कार शैफील्ड के एक घड़ीसाज ने किया था। इस विधि के अनुसार एक बड़ी कटोरी में लोहा पिघला कर उसमें चूना और दूसरी वस्तुएँ आवश्यक मात्रा में मिला कर स्पात बनाया जाता है।

(v) विद्युत भट्टी प्रणाली (Electric furnace Process)—जहाँ विद्युत् उत्पादन सस्ता होता है या जिन क्रियाओं के लिये बहुत ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होती है वहाँ इस प्रणाली का उपयोग होता है। ये भट्टियाँ दो प्रकार की होती हैं :—

(क) विद्युत चाप भट्टी (Electric Arc Furnace)—इसमें कार्बन के दो ध्रुवों द्वारा ३०,००० सैन्टीग्रेड तक तापक्रम उत्पन्न किया जाता है।

(ख) विद्युत प्रतिबन्ध भट्टी (Electric Resistance Furnace)—इसमें विद्युत् चक्र में बाधा डाल कर उसमें गर्मी उत्पन्न की जाती है।

यह विधि नयी है और आधुनिक काल में इसका प्रयोग स्पात बनाने के लिये किया जाता है किंतु इसके दो दोष हैं। एक तो यह विधि बहुत व्यय-साध्य है और दूसरे विद्युत की मात्रा भी अधिक खर्च होती है। इस विधि में विद्युत भट्टी में लोहा गला कर अन्य धातुएँ आवश्यकतानुसार मिला कर अच्छा स्पात बनाया जाता है। इस विधि का अधिकतर प्रयोग इटली और नार्वे तथा स्वीडन में होता है। सन् १९५५ में इस विधि द्वारा इटली में १,५०९ हजार टन, इंगलैण्ड में ६४५; स्वीडन में ८३२; फ्रांस में ९८५; जर्मनी में ५०२; आस्ट्रिया में २०१; बेल्जियम में १६५; स्विटजरलैण्ड में १५७ और स्पेन में १४१ हजार टन स्पात बनाया गया।[1]

---

१. Figures of 1955 (approx)

स्पात उत्पादन के क्षेत्र

विश्व का अधिकांश स्पात केवल उन दो बड़े क्षेत्रों से प्राप्त होता है जो उत्तरी, अटलांटिक महासागर के पश्चिमी और पूर्वी भागों में केन्द्रित हैं। पश्चिम की ओर के मुख्य क्षेत्र सं० रा० अमेरिका में मध्य अटलांटिक तट से लगा कर शिकागो और सैन्ट लुई तक फैले हैं। यही अमेरिका का 'स्पात हृदय' (Steel-Core) है। पूर्व की ओर का क्षेत्र पश्चिमी यूरोप में ब्रिटेन से लगा कर फ्रांस, स्पेन, जर्ममी और रूस तक फैला है।

विश्व में सबसे अधिक स्पात संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में तैयार किया जाता है—लगभग ५०%। रूस स्पात तैयार करने में दूसरे नम्बर का देश है। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देश संसार का ⅓ स्पात बनाते हैं। इन तीनों क्षेत्र के अतिरिक्त १०% स्पात जापान, भारत, चीन, आस्ट्रेलिया तथा द० अफ्रीका से प्राप्त होता है।

१९५१ में ढले लोहे का उत्पादन १२५७ लाख टन था। यह उत्पादन १९३७ की अपेक्षा ४२% अधिक था। इसी प्रकार १९५१ में १७८० लाख टन स्पात बनाया गया, जो १९३७ के उत्पादन से ५१% अधिक था। रूस ने १९३२ में ५९ लाख टन, १९३७ में १७७ लाख टन और १९५१ में ३९३ लाख टन स्पात पैदा किया। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इन्हीं वर्षों में १३० लाख टन, ५९३ लाख टन और ९५३ लाख टन स्पात बनाया। नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में स्पात का उत्पादन बताया गया है:—

स्पात के उद्योग का विकास
(१८७०—१९५३)
लाख long टन

देश	१८७०	१९००	१९१५	१९३९	१९५१	१९५३
संयुक्त राष्ट्र	०·४	१०१·९	३२१·५	४६९·९	९९६·३	९९६·६
ब्रिटेन	२·२	४९·०	८५·५	१३१·८	१५५·९	१७५·९
जर्मन	१·३	६३·६	१२०·९	२४०·७	१३२·५*	१५१·८*
रूस	०·१	२१·६	४८·२	१८८·४	२७८·३	३७२·४
फ्रांस	०·८	१५·४	१०·७	७८·०	१२२·०	१२४·८
बेलजियम लक्सम्बर्ग	—	८·१	१०·७	४६·९	८०·२	६९·७
जापान	—	—	२·४	६५·७	६२·३	७५·५
भारत	—	—	·९९(१९१६)	·८४२	१०·७६	१०·२५
विश्व(कु.योग)	५·१	२७८·३	५९३·३	१३५४·७	१९८४·३	२३०५·७

* यह आंकड़े पश्चिमी जर्मनी के ही हैं। १९५५ में प० जर्मनी का उत्पादन ब्रिटेन के उत्पादन से भी बढ़ गया। इस प्रकार अब वह विश्व में तीसरा स्थान रखता है।

उत्तरी अमेरिका का लोहे और स्पात का उद्योग

उत्तरी अमेरिका में लोहे और स्पात का उद्योग १६४४ से आरंभ हुआ जबकि मैसेचूसेट्स में पहला कारखाना खोला गया। इसमें लकड़ी का कोयला जलाया जाता था और इसकी साप्ताहिक उत्पादन क्षमता ७ टन की थी। यहाँ ढला लोहा बनाया जाता था। किन्तु उद्योग का वास्तविक विकास १८४० के बाद हुआ जब स्यूलकिल घाटी में तथा पेन्सिलवेनिया के कोल-क्षेत्रों में इसका स्थापन हुआ। किन्तु कई कारणों से इस उद्योग का विस्तार पश्चिमी अपलेशियन भागों में अधिक हुआ। (१) यहाँ अपलेशियन कोयला क्षेत्र मिलते हैं जो पश्चिमी पेन्सिलवेनिया से लगाकर पूर्वी कैन्टकी तथा उत्तरी अलबामा तक फैले हैं। यहाँ बिट्यूमीनिस कोयला मिलता है। (२) सुपीरियर झील के चारों ओर करोड़ों टन उत्तम श्रेणी का कच्चा लोहा मिलता है। (३) इन दोनों सुविधाओं के अतिरिक्त झील-मार्गों से सस्ते यातायात की सुविधायें उपलब्ध हैं जिससे भारी माल कम खर्चे में स्पात-केन्द्रों तक भेजा जा सकता है। (४) झीलों के दक्षिण और पूर्व में पर्याप्त मैदान विस्तृत हैं जहाँ खेती की जाती है और जहाँ खेती के उपयोगी यंत्रों की बड़ी माँग है। (५) इन मैदानों के नीचे पैट्रोल और प्राकृतिक गैस के भंडार जमे हैं। इस प्रकार की सुविधायें विश्व के किसी भी एक देश में नहीं पाई जातीं। अतः इस भाग में विश्व की सबसे अधिक स्पात-उत्पादन की क्षमता उस क्षेत्र में पाई जाती है जिसके तीन बिन्दु पिट्सबर्ग, शिकागो और बफेलो हैं।

संयुक्त राष्ट्र के मध्य-पश्चिमी भाग में स्पात के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—

(i) उत्तरी अपलेशियन या पिट्सबर्ग क्षेत्र (North Appalachian or Pittsburg Region)

(ii) झीलों का प्रदेश (Lake Region)

(iii) अटलांटिक तटीय प्रदेश (Atlantic Coast Region)

(iv) दक्षिणी अपेलेशियन प्रदेश (Southern Appalachian Region)

नीचे की तालिका में संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न जिलों में लोहे और स्पात की उत्पादन क्षमता बताई गई है :—

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में लोहे और स्पात के बनाने की शक्ति
(लाख टन में)

	पिग आयरन	स्पात
पिट्सबर्ग यंग्स टाऊन	२९५	४६७
इरी झील	१४२	१६०
शिकागो—गैरी	१६४	२६३
पूर्वी संयुक्त राष्ट्र	११८	१५८
दक्षिणी—(„)	६५	६९
पश्चिमी („)	३९	७०
कुल योग (सं० रा० अमेरिका)	८२३	१२४३

(i) उत्तरी अपलेशियन प्रदेश (North Appalachian Region)—पश्चिमी पेन्सिलवेनिया तथा पूर्वी ओहियो में फैला हुआ है। इस प्रदेश में पिट्सबर्ग तथा यंग्स्टाऊन दो क्षेत्र शामिल हैं। (क) पिट्सबर्ग क्षेत्र संसार का सबसे बड़ा स्पात-उद्योग क्षेत्र गिना जाता है। पिट्सबर्ग-क्षेत्र के कारखाने ओहियो, अलेघनी तथा मोननघोड़ा नदियों की घाटियों में पिट्सबर्ग से ४० मील के भीतर स्थित हैं। (२) यंगस्टाऊन क्षेत्र के कारखाने शेननगो तथा महोनिंग नदियों की घाटियों में यंगस्टाऊन से ३० मील के अन्दर स्थित हैं। यह संयुक्त प्रदेश संयुक्त-राष्ट्र के स्पात उद्योग का सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है और समस्त देश का ३५ प्रतिशत लोहा व स्पात तैयार करता है। अकेले पिट्सबर्ग नगर के कारखानों में एक चौथाई माल बनता है जिसका उपयोग न केवल इसी क्षेत्र में किया जाता है बल्कि अटलांटिक तटीय क्षेत्र झीलों के प्रदेश, मध्य पश्चिमी तथा दक्षिणी और प्रशान्त महासागर के क्षेत्रों में भी होता है। इस प्रदेश में लोहा तथा स्पात उद्योग के लिए नीचे लिखी सुविधाएँ प्राप्त हैं :—

(१) कोयला (विशेषकर कोकिंग कोयला) उत्तरी अपलेशियन की खानों से मिल जाता है। कोयले के यहाँ बड़े भंडार सुरक्षित हैं।

(२) इस क्षेत्र का लोहा समाप्त हो चुका है अतः यह सबसे बड़ी असुविधा है, किन्तु सस्ते जल यातायात-साधनों द्वारा समुचित परिमाण में लोहा सुपीरियर झील-क्षेत्र की लोहे की खानों से प्राप्त हो जाता है।

(३) चूना यहाँ पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

(४) सभी कारखाने नदियों की घाटियों में स्थित हैं ; अतः सस्ते यातायात की सुविधा है और जल की पर्याप्त पूर्ति है तथा इस क्षेत्र में रेलों का विस्तार अधिक है।

(५) सघन जनसंख्या और श्रेष्ठ औद्योगिक क्षेत्र होने के कारण माल की स्थानीय माँग बहुत है।

(६) इस क्षेत्र को भारत से सस्ता मैंगनीज प्राप्त हो जाता है।

(७) यहाँ के श्रमिक कुशल और मजबूत हैं।

इस क्षेत्र की कई असुविधायें भी हैं, जैसे—

(१) चूना पूर्वी पर्वतों से या उत्तरी ओहियो से १०० मील से भी अधिक दूरी से लाना पड़ता है।

(२) लोहा झील मार्गों से कारखानों तक रेलों द्वारा लाया जाता है अतः लोहे की ढुलाई बहुत लग जाती है—एक बार झील-मार्गों में और दूसरी बार रेलों में।

(३) चूँकि झीलें दिसम्बर से अप्रैल तक बर्फ से ढकी रहती हैं, अतः यातायात में असुविधा हो जाती है ; फलतः कई कारखानों को सर्दी के लिए भी कच्चा लोहा जमा रखना पड़ता है।

(४) कई कारखानों की मशीनें व यंत्र आदि भी पुराने पड़ गए हैं तथा नदियों के निकट भूमि का अभाव होने से उनके विस्तार में बाधा पड़ती है।

अतः कई पुराने कारखाने अब बंद प्राय हो गये हैं। इस क्षेत्र का उत्पादन १९४१-५४ के बीच केवल २०% तक ही बढ़ा है जब कि सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्र में यह वृद्धि ५५% तक हुई है। इसी बीच झील प्रदेशों की उत्पादन क्षमता ३ गुनी और शिकागो गैरी की ५०% बढ़ी है।

इस प्रदेश का मुख्य केन्द्र पिट्सबर्ग है किन्तु उसके चारों ओर कई अन्य केन्द्र भी स्थापित हो गये हैं। जैसे—

उद्योग	केन्द्र
पिट्सबर्ग के निकट	मैकीजपोर्ट, ब्रैडॉक, कारनेगी, हॉमस्टैड और जॉन्सटाऊन।
शैननगो घाटी में	शैरोन।
महोनिंग घाटी में	यंगस्टाऊन, कैंटन, मैसीलन।
ओहियो घाटी में	वीवरटन, वीलिंग, स्टूबैनविले, हंटिंगटन, ऐशलैंड, आयरनटन, पोर्ट्समाउथ।
मियामी घाटी में	मिडिलटाऊन।

इन सभी केन्द्रों में भारी वस्तुऐं बनाई जाती हैं।

(ii) बड़ी झीलों का प्रदेश (Great Lake Districts)—यह संयुक्त राष्ट्र के स्पात उद्योग का प्रमुख क्षेत्र है जो ईरी, मिशीगन और सुपीरियर झीलों के सहारे फैला है। इन क्षेत्रों में इस उद्योग के स्थानीयकरण का मुख्य कारण जल यातायात की सस्ती और उन्नत सुविधाएँ हैं। झील मार्गों द्वारा कच्चा माल आसानी से इकट्ठा किया जा सकता है और तैयार माल देश के भीतरी भागों में वितरित किया जा सकता है। इस क्षेत्र के तीन भाग हैं :—

(क) ईरी क्षेत्र (Erie Region)—बफैलो से टोलडो और डिट्रायट तक फैला है। इस क्षेत्र को (१) पेंसिलवेनिया रियासत से काफी कोयला मिल जाता है। बफैलो जिलों को न्याग्रा प्रपात की सस्ती बिजली का भी लाभ प्राप्त है। (२) चूना ईरी झील के द्वीपों अथवा ह्यूरन झील के पश्चिमी भागों से मिल जाता है। (३) कच्चा लोहा मैसावी की खानों से प्राप्त हो जाता है। (४) कारखानों के लिए जल झीलों से मिल जाता है। (५) इस क्षेत्र को सस्ते जलमार्ग, रेलों और सड़कों की सुविधाएँ प्राप्त हैं। (६) इस प्रदेश में बने माल की मांग भी बहुत है। इस क्षेत्र के मुख्य केन्द्र ईरी, डिट्रायट, लोरेन, टोलडो और क्लीवलैंड हैं।

(ख) मिशीगन क्षेत्र (Michigan Region) या शिकागो-गैरी क्षेत्र (Chicago-Gary Region)—इस क्षेत्र को चूना और लोहा मिशीगन झील मार्ग द्वारा ह्यूरन झील के पश्चिमी किनारों तथा मिशीगन झील के पूर्वी किनारों और लोहा उत्तरी भागों (मसूबा और गोगेबिक) से मिल जाता है। उत्तरी और मध्यवर्ती अपलेशियन क्षेत्र से कोयला प्राप्त होता है। यहाँ मिशीगन के दक्षिणी सिरे पर पूर्वी पश्चिमी और दक्षिणी रेल मार्ग आकर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर से सस्ती जल यातायात सुविधा भी प्राप्त है। निकटवर्ती

भागों में मोटरें, मशीनें, औजार आदि बनने से स्पात की माँग भी अधिक रहती है। इस क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र शिकागो, गैरी और मिलवाकी हैं। यहीं विश्व के सबसे बड़े दो स्पात के कारखाने स्थापित हैं।

(ग) सुपीरियर क्षेत्र (Lake Superior Region)—इस क्षेत्र को अति निकट की मैंसावी श्रेणी से प्रचुर मात्रा में अच्छा लोहा मिल जाता है। अपेलेशियन क्षेत्र से लौटते हुए जहाज यहाँ काफी कोयला ले आते हैं। सस्ते जल-यातायात की सुविधा भी उपलब्ध है। यहाँ के प्रसिद्ध केन्द्र डुलूथ और सुपीरियर हैं।

नीचे की तालिका में संयुक्त राष्ट्र के उद्योग की लोहे की पूर्ति बताई गई है :—

संयुक्त राष्ट्र में लोहे की पूर्ति
(लाख शार्ट टनों में)

कहाँ से	निम्न झील प्रदेशों को	पूर्व में	दक्षिण में	पश्चिम में	योग
सुपीरियर झील	८५०	६०	—	—	९१०
उत्तर-पूर्व	२५	२५	—	—	५०
दक्षिण	—	—	११०	—	११०
पश्चिम	—	—	—	५०	५०
कनाडा	२०	—	—	—	२०
चिली	—	३०	—	—	३०
दूसरे साधन से	१०	३०	—	—	४०
	९०५	१४५	११०	५०	१२१०

(iii) अटलांटिक तट-प्रदेश (Atlantic Coast Region)—मध्य मैंसेचूसेट्स से लगा कर स्पैरो पॉइन्ट तक फैला है। यहाँ लोहा और स्पात का उद्योग औपनिवेशिक युग में स्थापित हुआ। जब प्रारंभ में अंग्रेज यहाँ अटलांटिक तट पर न्यू-इंग्लैंड रियासत में आकर बसे और उन्हें कृषि कार्य के लिए यंत्रों की आवश्यकता हुई तो इस उद्योग का श्रीगणेश हुआ। प्रारंभ में यहाँ कुछ लोहा प्राप्त हो जाता था किन्तु अब यह प्राय: समाप्त हो चुका है। कोयले का कार्य वन-वृक्षों की लकड़ी के कोयले से किया जाता था। कोयले तथा तेज बहने वाली नदियों के जल से शक्ति प्राप्त की जाती है। संयुक्त-राष्ट्र के अन्य स्पात-प्रदेशों की तुलना में इस प्रदेश में न कच्चे माल की सुविधा है और न पत्थर का कोयला ही मिलता है। किन्तु फिर भी यह उद्योग निरन्तर चालू है। इसके निम्न कारण हैं :—

(१) इस प्रदेश में सबसे पहले इस उद्योग का श्रीगणेश हुआ और सफलतापूर्वक चला।

(२) इस प्रदेश की तटीय स्थिति होने के कारण विदेशों से कच्चा लोहा मंगाने और तैयार माल भेजने में बड़ी सुविधा रहती है।

(३) अधिकांश कच्चा माल क्यूबा, चिली, ब्राजील, वैनेजुएला स्वीडेन, स्पेन तथा अलजीरिया से सुगमतापूर्वक मंगाया जाता है।

(४) निकटस्थ सघन वनों से लकड़ी का कोयला और तेज बहने वाली नदियों से शक्ति प्राप्त की जाती है।

(५) सघन जनसंख्या व व्यवसाय की प्राचीनता के कारण सस्ते और कुशल श्रमिक मिल जाते हैं।

(६) अधिक जनसंख्या तथा न्यू-इंग्लैंड के औद्योगिक क्षेत्र के लिए तैयार माल की स्थानीय मांग काफी है।

(७) यातायात के भीतरी और बाहरी साधन अच्छे हैं। विदेशों से जल-मार्ग द्वारा और देश के भीतरी भागों से रेलों द्वारा जुड़ा हुआ है।

इस क्षेत्र के प्रधान स्पात-केन्द्र तट के सहारे वाशिंगटन से बोस्टन तक फैले हैं। उल्लेखनीय केन्द्र बाल्टीमोर, हैरीसबर्ग, ट्रेंटन, मोरसीविले, "स्पेरो पाइंट," बेथलेहम, स्टीलटन, फिलाडेलफिया, वरसेस्टर, वाटरबरी इत्यादि हैं।

(iv) दक्षिणी अप्लेशियन या अलबामा प्रदेश (South Appalachian or Albama Region)—यह क्षेत्र अलबामा राज्य में है। यहाँ कम्बरलैंड तथा दक्षिणी अलैघनी पठार के रास्ते विशाल भंडार से बिटयूमीनस कोयला प्राप्त होता है। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध केन्द्र बर्मिंघम के चारों ओर दस मील के क्षेत्र में चूना, कच्चा लोहा और कोकिंग कोयला मिल जाता है। लोहे की खनिज में १५% तक चूना पाया जाता है, अतः अलग से चूना काम में लाने की कम आवश्यकता पड़ती है। इसी कारण यहां विश्व में सबसे सस्ता स्पात तैयार किया जाता है। यहाँ श्रमिक भी काफी सस्ते मिल जाते हैं किन्तु यह क्षेत्र उत्तर की विशाल माँग के क्षेत्रों से दूर पड़ता है। यहाँ सबसे अधिक उत्पादन पश्चिमी वर्जीनिया में होता है। इसके मुख्य केन्द्र बर्मिंघम, अलबामा और वर्जीनिया हैं।

संयुक्त-राष्ट्र के स्पात-केन्द्रों का विशिष्टीकरण इस प्रकार है :—

जलयान निर्माण :

न्यूयार्क, फिलाडेलफिया, बाल्टीमोर, न्यू-पोर्ट विलिंगटन इत्यादि।

मोटरें :

क्लीवलैंड, फिलाडेलफिया, डेट्रायट, इंडियानापोलिस, कोनर्सविले, न्यूयार्क, फिलट, लैंसिंग, पोंटिएक, टोलडो, बफेलो इत्यादि।

इंजिन तथा बिजली की मशीनें :

न्यूयार्क, फिलाडेलफिया, पिट्सबर्ग, शिकागो, मिलवाकी इत्यादि।

कपड़ा बुनने की मशीनें :

बोस्टन, वरसेस्टर और फिलाडेलफिया।

आमूर घाटी में खबारोवस्क तथा कामसोमोस्क और प्रशान्त के तट पर ब्लाडीवोस्टक में बनाये गये हैं।

ब्रिटेन का लोहा व स्पात उद्योग

विश्व के लोहा व स्पात-उद्योग में ब्रिटेन का तीसरा स्थान है। इस उद्योग में यहाँ ४५०,००० व्यक्ति लगे हैं। उन्होंने १९५५ में १९८ लाख टन स्पात बनाया जिसमें से २२ लाख टन १४१० लाख पौंड की कीमत का स्पात निर्यात किया गया। यहाँ लोहे की कच्ची धातु परिमित मात्रा में मिलती है इसलिए लगभग आधी कच्ची धातु स्वीडेन, स्पेन, अलजीरिया तथा उत्तरी अमेरिका से मँगाई जाती है। इस आयात की हुई धातु का प्रयोग आम-तौर पर तटीय कारखानों में होता है। इस प्रदेश के अधिकतर स्पात-केन्द्र बन्दरगाहों वाले ऐसे स्थानों पर हैं जहाँ कोयले की खानें हैं। अतः ब्रिटेन के स्पात उद्योग को सबसे बड़ी सुविधा यह है कि भौगोलिक से अनुकूल स्थिति होने के कारण यहाँ कोयला और लोहा की प्राप्ति में अपूर्व सुविधा रहती है और कच्चा माल मँगाने तथा तैयार माल बाहर भेजने में आसानी रहती है। स्पात का उद्योग ब्रिटेन के केवल उन केन्द्रों में होता है जिनमें अच्छा कठोर कोयला मिलता है जैसे दक्षिणी वेल्स, उत्तरी-पूर्वी समुद्र-तट पर तथा स्काटलैंड। पश्चिमी समुद्र-तट अधिक स्पात उत्पन्न नहीं करता यद्यपि वहाँ कच्चा लोहा मिलता है क्योंकि स्थानीय कोयला स्पात बनाने के लिए अनुपयुक्त है। अतः कोयला अन्य केन्द्रों से मँगवाना पड़ता है।

ब्रिटेन के स्पात-उद्योग के चार मुख्य-प्रदेश हैं:—

(i) साऊथ-वेल्स प्रदेश।
(ii) उत्तरी-पूर्वी तटीय प्रदेश।
(iii) दक्षिणी यार्क शायर-प्रदेश।
(iv) काला प्रदेश।

(i) साऊथ वेल्स-प्रदेश (South Wales Region)—ब्रिटेन के स्पात उद्योग में इस प्रदेश का प्रथम स्थान है। यहाँ इस धन्धे के लिए निम्न सुविधाएँ प्राप्त हैं:—

(१) यहाँ अत्युत्तम जाति का कोयला पाटरीज फील्ड की खानों से पर्याप्त-मात्रा में प्राप्त हो जाता है।

(२) बढ़िया कच्ची धातु स्पेन और अलजीरिया से सस्ते दामों पर कार्डिफ, न्यूपोर्ट बन्दरगाहों पर मँगाली जाती है।

(३) तैयार माल बाहर भेजने की बड़ी सुविधा है।

(४) अन्य धातुओं उदाहरणार्थ सीसा, जस्ता, टिन, ताँबा इत्यादि के कारखानों के कारण यहाँ स्पात और लोहे की स्थानीय माँग काफी है।

इस क्षेत्र में जहाज-निर्माण और टिन की चादरें बनाने के कारखाने हैं। इसका विश्व में सबसे बड़ा कारखाना टैलबट (Talbot) में है।

इस प्रदेश के मुख्य स्पात-केन्द्र कारडिफ, न्यूपोर्ट, स्वाँसी, वेल्स, वैरो इत्यादि हैं।

जहाज बनाना—कारडिफ, वैरो।

टिन की चादरें बनाना—स्वाँसी।

रेल के एंजिन और पटरियाँ—न्यूपोर्ट, वेल्स।

(ii) उत्तरी-पूर्वी तटीय-प्रदेश (N. E. Coastal Region)—इस प्रदेश का स्थान स्पात उद्योग में साऊथ वेल्स के बाद है। यहाँ कच्चा लोहा क्लीवलैंड की खानों से तथा बढ़िया कोकिंग कोयला नार्थम्बरलैंड तथा डरहम की खानों से प्राप्त होता है। स्वीडेन तथा अन्य देशों से टीज नदी के मुहाने के बन्दरगाहों द्वारा लोहा सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। पिनाइन-श्रेणी से चूने का पत्थर प्राप्त होता है। यहाँ का लोहा और स्पात जहाज, गर्डर, पुल, रेल की पटरी इत्यादि बनाने के काम में आता है।

मिडिल्सवरो और टाइन नदी के तट पर न्यूकैसिल व साऊथशील्ड तथा वियरी नदी के मुहाने पर स्थित सुन्दरलैण्ड नगर जहाज बनाने के कारखानों के लिए प्रसिद्ध है। डारलिंगटन में पुल का सामान तथा रेल के इंजिन बनाये जाते हैं। मिडिल्सवरो में इंजीनियरिंग का सामान बनाया जाता है। अन्य प्रसिद्ध केन्द्र स्टाकटन, डरहम, विटवी और हार्टलेयूल हैं।

(iii) दक्षिणी यार्कशायर प्रदेश (South Yorkshire Region)-स्पात उद्योग में इस प्रदेश का तृतीय स्थान है। यहाँ यह उद्योग बहुत प्राचीन समय से चालू है। यहाँ इसके लिए नीचे लिखी सुविधाएँ हैं :—

(१) कच्चा लोहा इस प्रदेश में मिलता है, किन्तु पर्याप्त मात्रा में नहीं ; इसलिए कुछ स्वीडेन से मँगा लिया जाता है।

(२) यहाँ की कोयले की खानों में मिलने वाला कोयला लोहे में मिलाने के लिए कार्बन की तरह तथा शक्ति की तरह काम में लाया जाता है।

(३) वनों की लकड़ी के कोयले और तीव्र प्रवाह वाली नदियों से अतिरिक्त शक्ति प्राप्त की जाती है।

(४) अन्य कच्चे माल चूना, धार तेज करने का पत्थर इत्यादि भी इस प्रदेश में मिलता है।

"शेफील्ड" इस क्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र है। यह चाकू-छुरी, काँटे, उस्तरे, कैंची इत्यादि के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। अन्य प्रसिद्ध केन्द्र लीड्स, राथरहम, डानकास्टर और चेस्टरफील्ड इत्यादि हैं। डानकास्टर नगर रेल के इंजिनों और चेस्टरफील्ड मिट्टी के तेल के चूल्हों, [illegible] सूती कपड़े की मशीनों और नाटिंघम साइकलें तथा राथरहम मशीनें बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं।

(iv) काला प्रदेश (Black Country Region)—दक्षिणी स्टैफर्डशायर (South Stafford Shire) और उत्तरी नारविकशायर (North Norvickshire) के स्पात-उद्योग क्षेत्र इस प्रदेश में सम्मिलित हैं। पहले यहाँ

कच्ची धातु, लकड़ी का कोयला तथा चूना की स्थानीय पूर्ति थी किन्तु अब कच्ची धातु समाप्त हो चुकी है इसलिए केटरिंग तथा वेलिंगवरो जिलों से कच्चा लोहा (Pig Iron) प्राप्त किया जाता है। इस प्रदेश के स्पात-केन्द्रों में हल्की तथा कीमती वस्तुएं बनाई जाती हैं जैसे सुइयां, कीलें, जंजीरें मशीनों के पुर्जे औजार, हथियार, बन्दूकें, पिस्तौलें आदि। इसके अतिरिक्त मोटर और साइकिलें भी बनाई जाती हैं।

इस क्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र बरमिंघम है। यहाँ कई प्रकार का स्पात बनाया जाता है। यह नगर हथियार, बाइसिकिल, मोटर इत्यादि के लिए प्रसिद्ध है। डडले जंजीरों के लिए, रेडिश सुइयों के लिए और कैवेन्ट्री मोटरकार तथा साइकिलों के लिए तथा वूलवर हैम्पटन मशीनों के लिए प्रसिद्ध है।

जर्मनी का लोहा व स्पात उद्योग

संसार में लोहा व स्पात उद्योग में जर्मनी का स्थान चौथा है क्योंकि इस देश को कोयले और लोहे की सुविधाओं के साथ-साथ अति-उन्नत वैज्ञानिक आविष्कारों की भी सुविधा प्राप्त है। प्रथम महायुद्ध के बाद ही यहाँ इस उद्योग का विकास हुआ है क्योंकि प्रथम युद्ध में जर्मनी का $\frac{3}{4}$ कच्चा लोहा, $\frac{1}{3}$ कोयला और $\frac{1}{3}$ स्पात पैदा करने वाले भाग शत्रुओं के हाथ में चले गए थे। युद्ध के पश्चात् पुनर्निमाण के कारण जर्मनी में स्पात और लोहे का उद्योग संगठित हो गया और १६२४ में यहाँ २४० लाख टन स्पात तैयार किया गया। किन्तु द्वितीय महायुद्ध से इस उद्योग को पुनः धक्का लगा क्योंकि रूर का उत्पादन घट गया, साइलेशिया पोलैण्ड को चला गया, सार फ्रांस को और स्वयं जर्मनी के भी दो भाग हो गए। किन्तु अब पुनर्निमाण क्रियाओं के फलस्वरूप पश्चिमी जर्मनी में यह उद्योग एक बार फिर से संगठित किया गया गया है। १६५३ में यहाँ से १५० लाख टन स्टील प्राप्त हुआ। यहाँ स्पात-उद्योग के प्रधान क्षेत्र निम्न लिखित हैं:—

(i) रूर प्रदेश (Ruhr Region)

(ii) साइलेसिया प्रदेश (Silesia Region)

(i) रूर प्रदेश (Ruhr Region)—यह क्षेत्र नीची जर्मन राईन घाटी में पूर्व-पश्चिम दिशा में ४५ मील और उत्तर-दक्षिण दिशा में १५ मील तक फैला है। इसका विस्तार रूर नदी के उत्तर की ओर ड्यूसबर्ग से डॉटमंड तक है। रूर प्रदेश संसार के प्रसिद्ध लोहा तथा स्पात क्षेत्रों में गिना जाता है। नाजियों के प्रभुत्व से पहले यह प्रदेश संसार में सबसे अधिक लोहा निर्यात करता था। सन् १६३७ में यहाँ ७३ लोहे तथा स्पात के कारखाने थे जो जर्मनी का तीन-चौथाई लोहा व स्पात उत्पन्न करते थे। यहाँ सारे अंग्रेजी साम्राज्य के बराबर लोहा और फौलाद उत्पन्न होता था। द्वितीय महायुद्ध से पहले इस देश का लोहा और स्पात उद्योग प्रायः आयात की हुई कच्ची धातु पर निर्भर था जो नार्वे, स्वीडिन, लक्जम्बर्ग, उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका, स्पेन तथा संयुक्त-राष्ट्र से मँगाया जाता था। किन्तु अब रूर क्षेत्र के दक्षिण में गीजरलैंड, लानहिल, वोजिलसबर्ग की खानों से ही कुछ लोहा प्राप्त होता है। इस प्रदेश

में स्पात के उद्योग के विकास का कारण रूर प्रदेश का कोयला है जिस पर इस उद्योग का आधार है। रूर प्रदेश की सबसे बड़ी सुविधा यह है कि यहाँ जल-मार्गों की सुविधा होने के कारण स्वीडेन, लक्जम्बर्ग, लारेन और स्पेन से सस्ते दामों पर धातु मँगाया जा सकता है। डुसलडर्फ में भारी मशीनें बनाई जातीं हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र ड्यूसबर्ग, डार्टमंड, एसेन, गेलसेनकर्चेन और बोशेम हैं।

(ii) साइलेसिया प्रदेश (Silesia Region)—पूर्वी भाग में स्थित साइलेसिया क्षेत्र भी जर्मनी का लोहे व स्पात का मुख्य प्रदेश है। इस प्रदेश में कच्ची धातु की बहुत कमी है और भीतरी भाग में स्थित होने के कारण विदेशों से कच्चा लोहा मगाने में अपेक्षाकृत अधिक खच हो जाता है। किन्तु इस प्रदेश में कोयला काफी मिलता है। ड्रेस्डन, लिपजीग, चिमनीज इत्यादि प्रसिद्ध केन्द्र हैं।

उपरोक्त दो प्रधान स्पात प्रदेशों के अतिरिक्त सैक्सोनी, बवेरिया तथा हनोवर में भी स्पात के केन्द्र हैं। जर्मनी विविध स्पात केन्द्रों का विवरण इस प्रकार है:—

जहाज बनाने के केन्द्र—हैम्बर्ग, कील, रोस्टार्क, ब्रीमेन, स्टेटिन तथा लुबके

सीने की मशीनें और प्यानो—ड्रेस्डन तथा लीपजिग।

छुरे, चाकू, कैंची इत्यादि—रैम्सखीड, टटालिगटन तथा साइलेसिया।

भारी मशीनें—इसन, डुपलडार्फ, डार्टमड, नूरेम्बर्ग, ड्यूसबर्ग, एसेन।

कृषि यंत्र व बिजली का सामान—हाले, मेकडेबर्ग, फ्रेंकफर्ट, बर्लिन आदि।

सुइयाँ—इजरलोन।

वैज्ञानिक यंत्र—ड्रेसडेन, लिपजिग और इजरलोन।

मोटरें—स्टैटगार्ड, एसेन और नूरेम्बर्ग।

स्वीडन का स्पात उद्योग

स्वीडन में उत्तम प्रकार के कच्चे लोहे के भंडार विश्व में सबसे अधिक पाये जाते हैं—लगभग १½ बिलिअन टन। यहाँ के मुख्य लोह-क्षेत्र आर्कटिक वृत्त के उत्तरी भागों में किरूना—गलीवरा जिले में पाये जाते हैं। इनमें कच्ची धातु में लोहे का अंश ६५% से भी अधिक है किंतु इनमें से अधिकांश लोहे में फास्फोरस का भी अंश पाया जाता है, अतः लोहे को साफ करने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है। मध्यवर्ती स्वीडन में भी डैनेमोरा और ग्रेंगसबर्ग में लोहा प्राप्त होता है। वह विश्व का सबसे शुद्ध लोहा है जिसमें फास्फोरस का अंश ०·००१% से ०·०२% तक होता है, किंतु यहाँ के भंडार ५०० लाख टन से भी कम के हैं। इस लोहे का उपयोग स्वीडन में मशीनें, विद्युत-औजार, हार्डवेयर तथा क्रूसिबल-निर्मित स्पात बनाने में होता है। इस स्पात से कटलरी, औजार, रेजर-ब्लेड, बॉल-बियरिंग आदि तैयार किये जाते हैं।

यहाँ लोहे के विशाल भंडार होते हुये भी कोयले की नितान्त कमी है। अतः इस उद्योग के लिये ९०% से भी अधिक कोयला ब्रिटेन, जर्मन आदि देशों से

मँगवाना पड़ता है। कई कारखानों में लकड़ियाँ भी जलाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त देश के कुल पिग आयरन के उत्पादन का २०% और स्पात की ईंटों का ४०% बनाने में जल विद्युत का उपयोग किया जाता है। स्वीडन में Quality Steel तैयार किया जाता है। वार्षिक उत्पादन लगभग २० लाख टन से कम का होता है। स्वीडन साधारण उपयोग की लोहे की वस्तुएँ विदेशों से आयात करता है। यहाँ टिन की चादरें, रेल की पटरियें आदि भी आयात की जाती हैं।

स्पेन में भी अच्छी किस्म का लोहा प्राप्त होता है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन २५ लाख टन का होता है। किंतु इसमें से अधिकांश विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है क्योंकि यहाँ कोयले का अभाव है। बिल्बैओ में स्पात बनाने का एक छोटा कारखाना है। यहाँ के लिये कोयला ब्रिटेन से उन जहाजों द्वारा लाया जाता है जो वहाँ कच्चा लोहा भर कर ले जाते हैं। लौटते समय उन्हीं जहाजों में कोयला सस्ते भाड़े में आ जाता है।

इटली में एल्बा द्वीप, सार्डिनिया और ओस्टा में निम्न श्रेणी का लोहा पाया जाता है, जिसका वार्षिक उत्पादन १० लाख टन से भी कम है किंतु यहाँ कोयले की बड़ी कमी है। अतः कोक बनाने योग्य कोयला इङ्गलैंड और जर्मनी से आयात किया जाता है। किंतु इटली में जलविद्युत् का अधिक विकास होने से शक्ति की प्राप्ति की सुविधा हो गई है। एपीनाइन पर्वतों में नीरा नदी के सहारे तर्नी में विद्युत् भट्टी की विधि द्वारा ऊँचे किस्म का स्पात बनाया जाता है, किंतु देश का अधिकांश उत्पादन जिनोआ और मिलन में खुली भट्टी की विधि द्वारा किया जाता है।

फ्रांस में लोहे और स्पात का उद्योग

फ्रांस देश में लोहे की धातु की कमी नहीं है। यहाँ की लारेन की प्रसिद्ध खानों में देश की ९५% कच्ची धातु प्राप्त की जाती है किंतु यहाँ घटिया किस्म का कोयला मिलता है और वह भी कम मात्रा में। इसलिए इस देश का स्पात उद्योग विकास की ओर नहीं जा रहा है। पहले संसार में इस देश का उद्योग तीसरे स्थान पर था किंतु रूस का उत्पादन बढ़ जाने से अब स्थिति बदल गई है। इस देश का स्पात उद्योग लारैन प्रदेश तथा उत्तरी पूर्वी भाग के कोयला क्षेत्र में स्थित है जहाँ मैजेल नदी और राईन-मार्ने नहर द्वारा सस्ता जल यातायात प्राप्त होता है। इन क्षेत्रों में लगभग तीन-चौथाई लोहा व स्पात बनाया जाता है। फ्रांस में १९५५ में १२,५८६ हजार टन स्पात बनाया गया। कुल उत्पादन में से ७६ लाख टन थॉमस विधि से; ३९ लाख टन खुली भट्टी की विधि से और १० लाख टन विद्युत् भट्टी की विधि से बनाया गया।

फ्रांस देश के मुख्य स्पात केन्द्रों का विवरण इस प्रकार है :—

मशीनें—लीले, रोबे, सेंटईटीन, वेलेन्शिया।

रेल के इञ्जन, पटरियाँ—लाक्रूजोट।

मोटर कार—सेंट इटीन, पेरिस, लियोंस।

बन्दूकें; हथियार—लाक्रूजोट, सेंट इटीन।

लोहा साफ करने की भट्टियाँ—मेज, वेये, नेन्सी, थायनविले और लांगवे में हैं।

जापान में लोहे और स्पात का उद्योग

जापान का स्पात उद्योग अन्य औद्योगिक देशों के स्पात उद्योगों की तुलना में बहुत सीमित है। सन् १९४० का जापानी स्पात उत्पादन सयुक्त राष्ट्र का केवल १०% था किंतु पूर्वी देशों में इसका पहला स्थान है। यहाँ स्पात का उत्पादन १९१३ में २४०,००० टन से बढ़ कर १९३० में २० लाख टन; १९५३ में ७० लाख टन हो गया। यहाँ स्पात का सबसे पहला कारखाना क्यूश्यू के उत्तरी भाग में यावटा में सरकार द्वारा स्थापित किया गया। यहाँ के स्पात उद्योग के मार्ग में तीन बड़ी बाधाएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) यहाँ कच्ची धातु बहुत कम मिलती है इसलिए चीन, कोरिया, मंचूरिया, संयुक्त राष्ट्र इत्यादि से मँगानी पड़ती हैं। कच्चा लोहा भी बाहर से मँगाया जाता है।

(२) स्थानीय कोयला बहुत घटिया है और मँहगा पड़ता है। केवल क्यूश्यू और होकेडो की खानों का कोयला काम में लाया जा सकता है। शेष भाग चीन, मंचूरिया तथा कराफूटो से मँगाया जाता है।

(३) अन्य कच्चे माल के पदार्थ भी विदेशों से मँगाने पड़ते हैं, केवल चूना ही इस देश में पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

इनके अलावा इस देश में स्पात उद्योग अन्य देशों की अपेक्षा बहुत पीछे प्रारंभ हुआ। इसलिये कच्चा माल प्राप्त करने और तैयार माल बेचने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई पड़ी। इससे यह लाभ भी हुआ कि दूसरे देशों के अनुभव का उपयोग करके यह देश इस उद्योग की त्रुटियों से बचा रहा।

जापान के स्पात उद्योग के तीन मुख्य प्रदेश हैं :—

(i) **मौजी क्षेत्र (Moje Area)**—यह क्षेत्र उत्तरी क्यूश्यू में स्थित है। यहाँ जापान का तीन-चौथाई लोहा व स्पात बनाया जाता है। कोयला नागासाकी के निकट से और चीन में काइलान खान से मिल जाता है। लोहा होकेडो से तथा विदेशों से नागासाकी तथा कूपाभोटो बन्दरगाहों द्वारा मँगाया जाता है। पूर्व के अविकसित देशों को तैयार माल भेजने में भी यह क्षेत्र सबसे निकट पड़ता है। यावटा मुख्य केन्द्र है जहाँ एक बहुत बड़ा सरकारी कारखाना है। यहाँ भारी सामान जैसे—रेल के डिब्बे, पटरियाँ और मशीन-जलयान बनाये जाते हैं।

(ii) **केमिशी क्षेत्र (Kaimishi Area)**—यह होंशू द्वीप में स्थित है। यहाँ कच्ची धातु और कोयला दोनों बाहर से मंगाये जाते हैं। कुछ कच्ची धातु इस प्रदेश की कुजी तथा सिंडाई खानों से भी मिल जाती है। इस क्षेत्र को कुशल तथा सस्ते श्रमिक, पर्याप्त पूँजी और नदियों से सस्ती जल-विद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है। यहाँ समतल भूमि भी काफी है और केन्द्रों का जमाव [illegible] है। इस क्षेत्र में अधिकतर हल्का सामान ही बनाया जाता है। [illegible], टोकियो तथा याकोहामा प्रसिद्ध केन्द्र हैं।

(iii) मुरारॉं क्षेत्र (Muraran Area)—यह होकेडो द्वीप में स्थित है। यहाँ कच्ची धातु मुरारॉं खान से और कोयला इशाकारी की खान से प्राप्त किये जाते हैं। वेनिशी प्रसिद्ध केन्द्र है। यहाँ सैनिक मशीनें अधिक बनाई जाती हैं।

चीन का स्पात उद्योग

चीन में द्वितीय महायुद्ध के पूर्व आधुनिक ढङ्ग का स्पात और लोहे का कोई कारखाना नहीं था यद्यपि चीन कोयले और लोहे में धनी देश है। कुटीर उद्योग-धंधों की प्रणाली से ही देश के कई भागों में छोटी २ फाउंड्रियाँ फैली हुई थीं जो स्थानीय माँग को ही पूरा करती थीं, किंतु आधुनिक ढग की स्पात की कोई भट्टी नहीं थी। एक स्पात का कारखाना हैको में था किंतु इसका उत्पादन भी १९३० में बंद हो गया। एक भट्टी पेंपिग में भी बनाई गयी थी किंतु जापानी आक्रमण के पूर्व (१९३७) यह भी काम में नहीं ली जा सकी। किंतु मंचूरिया में जापानियों द्वारा एक आधुनिक कारखाना स्थापित किया गया है, यही चीन का मुख्य स्पात केन्द्र है। इस कारखाने का स्पात का उत्पादन १९३६ में १३७ हजार टन से बढ़ कर १९४३ में ८३७ हजार टन होगया। यह कारखाना ऐंशन में स्थित है जहाँ कुल स्पात तथा ३/४ पिग आयरन तैयार किया जाता है। यहाँ कच्चा लोहा और चूना पास ही मिलता है। कच्ची धातु मे लोहे का अंश ३५% है। अतः इसे शुद्ध करने में बड़ा खर्च होता है। मुकडेन में भारी मशीनें बनाने का कारखाना है।

दक्षिणी गोलार्द्ध में स्पात उद्योग

आस्ट्रेलिया :

विषुवत रेखा के दक्षिणी भागों में कई क्षेत्रों में लोहा पाया जाता है किन्तु ये विश्व के स्पात के उत्पादन का केवल ५% से भी कम देते हैं। इन सबमें प्रमुख आस्ट्रेलिया है। यहाँ इस उद्योग का विकास १९१५ के बाद से ही हुआ है। १९२१ से सरकार ने आयात पर अधिक चुंगी लगा रखी है, अतः यहाँ १९२१ से १९५३ के बीच स्पात का उत्पादन २८०,००० से १,८३०,००० टन बढ़ गया। यहाँ स्पात के कारखाने न्यूकैसिल, पोर्ट कैम्बला, लाइथगो (जो सभी न्यू साऊथ वेल्स में हैं) और दक्षिणी आस्ट्रेलिया में वाइयाला में हैं। ये सब अधिक आबाद क्षेत्रों के निकट हैं, अतः स्पात की मांग ज्यादा है। न्यूकैसिल और पोर्ट कैम्बाला की निकटवर्ती खानों से कोयला और चूना, तथा जलमार्गों द्वारा उत्तम श्रेणी का लोहा स्पेन्सर की खाड़ी के निकट आयरननाब जिले से प्राप्त होता है। यातायात की सुविधा के कारण यह कच्चा माल इतना सस्ता प्राप्त हो जाता है कि स्पात बनाने में बहुत ही कम खर्चा पड़ता है। यहाँ कई प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं, जिनका थोड़ा सा भाग न्यूजीलैंड को भी निर्यात कर दिया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका :

दक्षिणी अफ्रीका संघ में भी स्पात का उद्योग विकसित हुआ है। यहाँ यद्यपि लोहा और कोयला पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाता है किन्तु मांग कम होने से यहाँ वर्ष में १० लाख टन से भी कम स्पात बनाया जाता है। यहाँ स्पात

के कारखानें ट्रांसवाल में प्रिटोरिया और विरीनीगींग और नैटाल में न्यूकैसिल में स्थित हैं। इनके लिए कच्चा माल निकटवर्ती स्थानों में ही मिल जाता है।

लेटिन अमेरिका :

लेटिन अमेरिका देशों में भी इस उद्योग का विकास हुआ है किन्तु यहाँ की कुल स्पात उत्पादन क्षमता २५ लाख टन से भी कम है—अर्थात् विश्व की क्षमता का केवल १%। इसमें आधी क्षमता ब्राजील के कारखानों मे है। ब्राजील का मुख्य कारखाना पैराहाइबा नदी की घाटी में वोल्टा रैडोन्डा में स्थित है। छोटे-छोटे कारखाने मिनास जिरास और साओपालो में भी हैं। वोल्टा के कारखाने के लिए चूना, कच्चा लोहा और मैंगनीज रेल द्वारा २५० मील की दूरी से मिनास जिरास जिले से आता है। कोयला ६०० मील दूर पूर्वी सैंटा कैथेरीना से नावों द्वारा मँगवाया जाता है। कुछ कोयला आयात भी किया जाता है। यह कारखाना मुख्य रेल मार्गो के केन्द्र पर स्थित है, अतः यह उस प्रदेश में है जहाँ स्पात का उपभोग सबसे अधिक होता है। कारखाने के लिए शुद्ध जल पैराहाइबा नदी से मिल जाता है, तथा १२०० फुट ऊँचाई पर होने से जलवायु भी अधिक गर्म नहीं है। यहाँ इस उद्योग को सरकारी संरक्षण भी प्राप्त है।

चिली में स्पात का कारखाना सरकारी है जो सैनविसेंट घाटी पर स्थित हुआचीपाटो में है। यहाँ कच्चा लोहा और स्पात उत्तर की ओर से ५०० मील की दूरी से एलटोफो की खानों से प्राप्त किया जाता है। कोयला जल-मार्ग द्वारा लाटा और शैवेगर की खानों से प्राप्त किया जाता है। मान्द्रेडी डायस द्वीप से प्राप्त किया जाता है जो यहाँ से ६०० मील दूर है। जल-विद्युत शक्ति और जल दोनों ही निकटवर्ती नदियों से मिल जाते हैं। चिली के स्पात की माँग स्थानीय है।

भारत में लोहे और स्पात का उद्योग

विकास :

भारत में लोहे को पिघलाने और ढालने तथा इस्पात तैयार करने का धन्धा अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। भारत न केवल अपनी आवश्यकता ही पूरी करता था किन्तु विदेशों को भी लोहा और इस्पात भेजता था। दिल्ली का विख्यात लोहे का स्तंभ भारत में जो २००० वर्ष पूर्व बनाया गया इस प्राचीन उद्योग का ज्वलंत उदाहरण है। संसार विख्यात दमिश्क के तलवार और कटार की फालें भारत के इस्पात की ही बनी होती थीं। आधुनिक ढंग के लोहे और स्पात के उद्योग के जन्म और विकास के फलस्वरूप भारत के दूसरे प्राचीन उद्योगों की तरह यह उद्योग भी नष्ट हो गया और भारत विदेशों से लोहा और इस्पात का आयात करने वाला देश बन गया। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से इस उद्योग को आधुनिक ढंग से विकसित करने के प्रयत्न भारत में आरम्भ हुए। वे प्रयत्न १८३० में और उसके आस पास अंग्रेजों ने किये थे, पर वे सब असफल रहे। अन्त में १८७४ से बाराकर लोहे की कम्पनी भी

स्थापना हुई। सन् १८८९ में कलकत्ते की मार्टिन एन्ड कम्पनी ने इस कारखाने को ले लिया। बाद में इसी का नाम बंगाल लोहे और इस्पात का कारखाना (Steel Corporation of Bengal—SCOB) हो गया जो कुछ ही समय पूर्व भारतीय लोह और इस्पात के कारखाने (Indian Iron & Steel Co., Ltd.—IISCo) में मिला दिया गया।

हमारे यहाँ लोहे और इस्पात के उद्योग का वास्तविक इतिहास टाटा के कारखाने की स्थापना के साथ ही आरम्भ होता है। आज भी देश के इस उद्योग का वास्तविक केन्द्र यही कारखाना है। यह कारखाना १९०७ में साकची नामक स्थान में स्थापित किया गया जिसमें कच्चा लोहा १९११ में और इस्पात १९१३ में पहली बार तैयार किये गए। सन् १९१६ तक इसने पूर्ण उत्पादन क्षमता प्राप्त करली। सन् १९१८ में भारतीय लोहे और इस्पात का कारखाना हीरापुर में खोला गया। इसके बाद १९२१ में यूनाइडेड स्टील कारपोरेशन ऑफ एशिया मनोहरपुर में तथा १९२३ में मैसूर का भद्रावती का कारखाना और १९३९ में बंगाल लोहे की कम्पनी की स्थापना की गई। द्वितीय महायुद्ध के बाद से ही भारतीय लोहे और स्पात के कारखानों के उत्पादन में वृद्धि होती रही है। वास्तविक रूप में इस उद्योग का विकास तो १९२३ के बाद हुआ जबकि सरकार ने इस उद्योग को संरक्षण दिया जो १९३५ तक चलता रहा। इसके फलस्वरूप ढले लोहे का उत्पादन १९१४ में १,६२,२७२ टन से बढ़कर १९३५ में १३,४३,००० टन होगया। १९३५ में फिर संरक्षण दिया गया जो १९४७ तक चलता रहा।

द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप भारत में कई प्रकार के फौलाद तैयार किये जाने लगे—High Speed Steels, Hot Steels, Tap-Steels, Nickel-Chrome Steels, Special Steels for Shear Blades and Punches, Die Steels for Mints, Armour Steels—सन् १९४१ में युद्ध की मांग की पूर्ति के लिये जमशेदपुर में टाटा ने रेल के पहिये बनाने के लिए 'The Jamshedpur, Engineering and Machine Manufacturing Co.,' की स्थापना की। तब से बराबर भारत का यह उद्योग प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है।

उद्योग का स्थान :

इस उद्योग के लिए कच्चे लोहे और कोयले तथा लोहे को परिष्कृत करने के लिए कई प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता बड़ी मात्रा में होती है। ये सब पदार्थ वजन में भारी किन्तु मूल्य में सस्ते होते है। अतः उन्हें अधिक दूर तक ले जाने में वाहन-व्यय बहुत बढ़ जाता है। इसलिये भारत में इस उद्योग का स्थापन कच्चे माल की उपलब्धता द्वारा निर्धारित हुआ है (Raw material localised) न कि बाजार की मांग द्वारा (Market localised)।

नीचे के आंकड़ों से यह स्पष्ट होगा कि १ टन पिग-आयरन बनाने में कच्ची धातु और अन्य कच्चा माल किस परिमाण में आवश्यक होते हैं :—[1]

पदार्थ	१ टन स्पात बनाने में उपभोग की मात्रा	
कोकिंग कोयला	१.५६५	टन
लोहा	१.९१३०	,,
मैंगनीज	०.१३०	,,
ब्लास्ट फरनेस फ्लक्स	०.५०९	,,
खुली भट्टी के लिए फ्लक्स	०.०५७	,,
फैरो-एलॉय	०.०१७	,,
डोलोमाइट	०.०९०	,,
मैंगनेसाइट	०.००९	,,
अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ	०.०२६	,,
अन्य मिट्टियाँ	०.०१७	,,
स्टीम कोयला	०.३६५	,,

मोटे तौर पर टैरिफ बोर्ड (Tariff Board) के अनुमानानुसार यह कहा जा सकता है कि १ टन परिष्कृत स्पात के लिए २ टन कच्ची धातु, १½ टन कोकिंग कोयला और १½ टन अन्य कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार १ टन पिग आयरन बनाने में १⅔ टन कच्ची धातु और १⅓ टन कोकिंग कोयला चाहिए। इनके अतिरिक्त अन्य कई पदार्थ (Flux) धातु शोधन के लिए आवश्यक हैं। ये सभी वजन में भारी होते हैं अतः भारत का लोहा और स्पात का उद्योग मुख्यतः बिहार-उड़ीसा में ही केन्द्रित है। इस स्थापन के कई भौगोलिक और आर्थिक कारण हैं :—

(१) उत्तम माल को तैयार करने के लिए आवश्यक रूप से उत्पादन का मूल्य बढ़ाये बिना भारी पदार्थों को अधिक दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। इसके अतिरिक्त लोहे और इस्पात के कारखानों में हर एक प्रकार का कोयला काम में नहीं लिया जा सकता। पश्चिमी बंगाल और बिहार के झरिया क्षेत्र में पाया जाने वाला कोकिंग कोयला ही इस कार्य के उपयुक्त है। धातु शोधन कोयला संरक्षण समिति (Metallurgical Coal Conservation Committee, 1951) के अनुसार यदि ठीक प्रकार से स्टोविंग, ब्लैंडिंग और वाशिंग किया जाय तो ज्ञातव्य कोयले के भंडारों से २०,००० लाख टन कोकिंग कोयला प्राप्त किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त यहाँ ४००,००० लाख टन कोक न बनाने योग्य कोयले के भंडार भी हैं जिनसे यदि नवीन विधियों द्वारा कोयला प्राप्त किया जाय तो यह १००,००० लाख टन कच्चे लोहे को गलाने के लिए पर्याप्त हो सकता है।

(२) इसी प्रकार बिहार और उड़ीसा की लोहे की पट्टी में मिलने वाली हैमेटाईट की कच्ची धातुएँ ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं और यही अन्य सभी भारतीय धातुओं में लोह सम्पन्न हैं। ये कच्ची धातुएँ ही महत्वपूर्ण क्षेत्र

1. Major Industries Annual : 1952-53, p. 131.

के पश्चिम में गुरुमहिसानी पहाड़ियों से लेकर क्योंझार और बोनाई क्षेत्रों में होती हुई बिहार के सिंहभूम जिले के कोल्हान के उप-विभागों तक फैली हुई हैं। यहाँ कच्ची धातु में ६४ प्रतिशत लोहा होता है। यहाँ लोहे के २६,००० लाख टन के उत्तम भंडार पाये जाने का अनुमान है।

(३) इस क्षेत्र में मध्य प्रदेश से लेकर पश्चिमी बंगाल तक काफी परिमाण में चूने के पत्थरों की खानें और डोलोमाइट पाया जाता है।

(४) इसी क्षेत्र में मैंगनीज और सिलीकन की खानें भी हैं जिनका प्रयोग धातुओं को परिष्कृत करने में होता है।

(५) इसी भाग में क्रोमाइट और अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं जिनकी ईंटों की तह फौलाद की भट्टियों में लगाई जाती है।

सामूहिक रूप से कहा जाता है कि कच्चे माल की पूर्ति के संबंध में झरिया के कोयले के क्षेत्रों और लोह पट्टी के बीच की परिस्थितियाँ बहुत ही अनुकूल हैं।

भारत में इस समय लोहे और स्पात के निम्न प्रमुख कारखाने कार्य कर रहे हैं।

(१) टाटा लोहे और स्पात का कारखाना, जमशेदपुर। (TISCO)
(२) भारतीय लोहे और स्पात का कारखाना कुलटी और हीरापुर। (IISCO)
(३) मैसूर का लोहे और स्पात का कारखाना, भद्रावती।

इन तीन मुख्य कारखानों के अतिरिक्त ६१ रोलिंग मिल्स (Rolling Mills) भी देश में रद्दी और पुराने स्पात के टुकड़ों (Scraps) का उपयोग कर लोहे का सामान तैयार करते हैं। इस उद्योग में लगभग २७ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और ७९,००० व्यक्ति काम करते हैं।[1] नीचे की तालिका में भारत में तैयार किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के स्पात की वस्तुओं का उत्पादन बताया गया है :—

लोहे और स्पात का उत्पादन (००० टनों में)

किस्म	१९४६	१९४९	१९५२	१९५५
कच्चा लोहा	१३४६	१५२८	१६८५	१७५७
सीधी ढलाई	७६	६४	१३०	१२६
लोह मिश्रित धातु	१६	१९	४१	१२
स्पात के पिंड	१२९४	१३५२	१५७८	१७०४
अधूरा तैयार स्पात	१०३१	११०५	१३०८	१४५७
तैयार स्पात	८९०	९३०	११०३	१२६०
स्पात की नलियाँ	—	४७०	२१५	—

टाटा लोहे और स्पात का कारखाना (TISCO)—भारत में लोहे और स्पात का सबसे बड़ा कारखाना जमशेदपुर में है। इस कारखाने में अधिकतर स्पात बनता है अतः यह कोयले की अपेक्षा लोहे के क्षेत्र के अधिक समीप है।

१. Govt. of India : Report on the Sixth Census of Indian Manufactures, 1951, (1955)

यह कारखाना साकची नामक स्थान पर श्री जमशेदजी टाटा द्वारा स्थापित किया गया था। उन्हीं के नाम पर अब इस स्थान का नाम जमशेदपुर हो गया है। यह स्थान विहार के सिंहभूमि जिले में है जिसके उत्तर में स्वर्णरेखा और पश्चिम में खोरकाई नदी बहती है। इन्हीं दोनों नदियों की ३ मील चौड़ी घाटी में यह कारखाना स्थित है।

(१) इस कारखाने के लिए लोहा पार्श्ववर्ती गुरुमहिसानी की पहाड़ियों से प्राप्त होता है जो यहाँ से केवल ६० मील दूर है।

(२) कोयला झरिया की खानों से मिलता है जो केवल १०० मील की दूरी पर स्थित हैं।

(३) चूना २०० मील की दूरी से आता है। पागपोश की डोलोमाइट की चट्टानें यहाँ से ३०० मील दूर हैं तथा मैंगनीज और अन्य रासायनिक पदार्थ निकट ही प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ के मैंगनीज में ४० से ५०% धातु होती है। ६५ से ६८% वाली क्वार्टजाइट चट्टानें भी यहाँ मिलती हैं। ४० से ५०% क्रोमाइट वाली चट्टानें सिंहभूम जिले में मिलती हैं। टंगस्टन मिदनापुर और जोधपुर से प्राप्त किया जाता है तथा टाइटेनियम दक्षिणी भारत से।

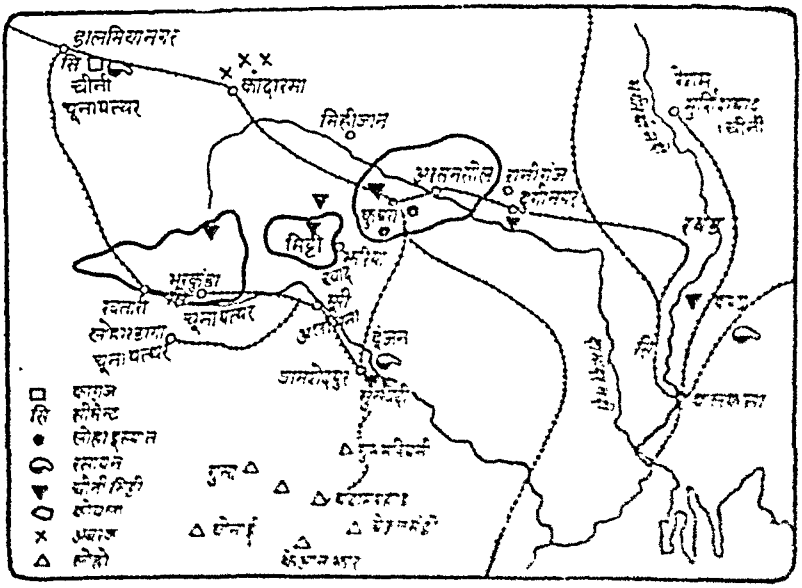

चित्र २०८—जमशेदपुर का स्पात का क्षेत्र

(४) लोहे और स्पात के लिए मीठे और साफ पानी की बहुत आवश्यकता होती है। दोनों नदियाँ छोटी होने के कारण गरमी में सूख जाती हैं। इस कारण इनका पानी एक बड़े हौज में इकट्ठा कर लिया जाता है। स्वर्णरेखा की बालू मिट्टी लोहा ढालने के लिए उपलब्ध है।

(५) जमशेदपुर का कारखाना पूर्वी रेलवे द्वारा कलकत्ता और बम्बई से जुड़ा है अतएव यहाँ का माल बाजारों को सुविधापूर्वक भेजा जा सकता है।

(६) इस प्रदेश में आबादी कम है और जो कुछ भी है वह संथाली लोगों की है जो कारखानों में काम करना पसंद नहीं करते इसलिए यहाँ अधिकांश मजदूर बिहार और उत्तरप्रदेश से आते हैं।

इन्हीं सब कारणों से जमशेदपुर में यह उद्योग केन्द्रित हो गया है।

टाटा के स्पात के कारखाने की उत्पादन क्षमता ७,८०,००० टन है। टाटा ने अब अपने कारखाने में वृद्धि करने के लिए उत्पादन क्षमता १५ ००,००० टन तक बढ़ाने का निश्चय किया है। इसमे ४३ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इस विस्तार कार्यक्रम के अन्तर्गत कोक भट्टी, प्रवात भट्टी, स्पात पिघलाने की भट्टी आदि की क्षमता बढ़ाई जायगी और चादरें, सरिये, स्पात खण्ड बनाने की नयी मिल, रेल की पटरियाँ तथा ढाँचा बनाने की मिल, पहिये, टायर तथा धुरी बनाने की मिल तथा स्लिपर बनाने का नया यंत्र लगाया जायगा। यह क्षमता १९५७ के अंत तक पहुँच जायगी। यहाँ के कारखाने में ५ धातु-शोधक भट्टियाँ हैं। इनमें प्राप्त ढला लोहा इसी कारखाने में भिन्न २ प्रकार से प्रयोग में आता है। निम्न तालिका में इस कारखाने की क्षमता व उत्पादन बताया गया है :—

टाटा लोहे और स्पात के कारखाने की क्षमता व उत्पादन

	क्षमता वार्षिक		वास्तविक उत्पादन	
			१९५०–५१	१९५३–५४
कोक	१,२६०,००० टन	कोक	९.७८.०००	९९०,०००
पिग आयरन	१.३००,००० ,,	पिग आयरन	१,११२,०००	१,१५०,०००
क्रूड स्टील	१,१००,००० ,,			
तैयार स्टील	७८०,००० ,,	स्टील		७८०,०००

टाटा के उद्योग के आस-पास कुछ दूसरे उद्योग भी खड़े हो गये हैं इनमें से मुख्य ये हैं—टिन प्लेट, रेलवे के डिब्बे, कास्ट लोहे के स्लीपर, और स्टील, और तारों के उद्योग, जमशेदपुर एजीनियरिंग और मशीन कम्पनी, टाटानगर फाउंडरी, कृषि के औजार उत्पन्न करने वाली ऐग्रीको फैक्टरी। रेल के पहिए और टायर्स आदि भी यहाँ बनाये जाते हैं।

बङ्गाल लोहे का कारखाना—सन् १९३७ ई० में इस कारखाने की स्थापना नपूरिया नामक स्थान (पश्चिमी बंगाल) में की गई। यह बर्न एंड कम्पनी के अधिकार में है। यहाँ स्पात ही अधिक तैयार किया जाता है। इस कारखाने में खुला भट्टा, २ बिस्सेमर भट्टे, दो रोलिंग मिल आदि हैं जिनमें रेल, चद्दरें, छड़ें आदि बनाई जाती हैं। इस कारखाने की उत्पादन शक्ति २,५०.००० टन है। अब इस कारखाने ने एक नई योजना बनाई है जो दो भागों में समाप्त की जायगी। प्रथम भाग में ५ करोड़ रु० खर्च होंगे और इसकी शक्ति ४,५०,००० टन की हो जायगी।

भारतीय लोहे और स्पात का कारखाना (IISCO)—(हीरापुर और कुल्टी में)—कुल्टी में भारत में लोहा तैयार करने वाला यह सबसे पुराना कारखाना है। यह पहले बंगाल आयरन वर्क्स के नाम से चलाया गया था,

किन्तु १८६६ में भारतीय लोहे और स्पात की कम्पनी ने इसे ले लिया। सन् १६३६ में इसका नाम भारतीय लोहे और स्पात का कारखाना रखा गया। यहाँ भारत का सबसे अधिक लोहे की ढलाई का काम होता है। यह कारखाना कुल्टी में लोहे और कोयले के क्षेत्र के समीप ही दामोदर नदी की शाखा बाराकर नदी पर स्थापित किया गया है जो कलकत्ता से १६० मील उत्तर पश्चिम की ओर है। पूर्व की ओर सबसे बड़ी 'आयरन फाउन्डरी' यही है। इस कारखाने को लोहा कोल्हान राज्य की खानों से और कोयला रामनगर की खानों से मिलता है। झरिया क्षेत्र की जितपूर और नूनोदिह खानों से भी कोयला मिलता है। चूने का पत्थर गगपुर के निकट बिसरा नामक स्थान तथा पूर्वी रेलवे पर स्थित पाराघाट और बाराद्वार से आता है। यहाँ की फाउन्डरी में ५ विभिन्न खंड हैं जिनकी उत्पादन शक्ति ७०,००० टन की है। हीरापुर में (जो कुल्टी से ६ मील दूर है) लोहे की ढली हुई वस्तुएँ बनाई जाती हैं। यहाँ केवल गला हुआ लोहा ही बनाया जाता है। यह दोनों कारखाने एक ही प्रबन्ध में हैं।

१६५३ में बंगाल स्टील कारपोरेशन कम्पनी को इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी से मिला दिया गया। इस सम्मिलित कम्पनी—Indian Iron & Steel Co. Ltd —का विस्तार ७,००,००० टन तैयार स्पात और ४००,००० टन ढला लोहा करने का है। इसमें ३५ करोड़ रुपये खर्च होंगे।

भारतीय लोहे और स्पात का कारखाना—क्षमता और उत्पादन

क्षमता			उत्पादन		
				१६५१–५२	१६५३–५४
पिग आयरन	७५०,०००	टन	कोक	८६५,६००	७२४,६००
क्रूड स्टील	४५०/५००,०००	,,	पिग आयरन	६६४,१००	५७६,४००
तैयार स्टील	३५०,०००	,,	स्टील	३५२,८६०	३४७,८६१

मैसूर लोहे और स्पात का कारखाना (MISW)—पश्चिमी बंगाल और बिहार के बाहर केवल एक ही लोहे का कारखाना है जो मैसूर राज्य में भद्रावती नामक स्थान पर है। यह स्थान भद्रावती की घाटी में बिरूर-शिमोगा रेल लाइन पर है। इसके समीप ही बहुत बड़े जङ्गल हैं जिनकी लकड़ी के कोयले से लोहा गलाया जाता है क्योंकि पश्चिमी बंगाल और बिहार से यहाँ कोयला मँगा कर लोहा गलाना बड़ा खर्चीला पड़ता है। भारत में केवल यही एक कारखाना ऐसा है जहाँ लकड़ी का कोयला काम में आता है। यहाँ के लिए कच्चा लोहा बाबाबूदन की पहाड़ियों में स्थित केमानगुड़ी की खानों से (जो भद्रावती से केवल २६ मील दूर है), आता है। चूने का पत्थर भांडीगुड़ा की खानों से (जो भद्रावती से १३ मील पूर्व में है) आता है। इस कारखाने में लकड़ी से एलकोहल तथा लकड़ी का तार तैयार किया जाता है। यहाँ लोहे के मैल का उपयोग करने के लिए सीमेंट का कारखाना अभी थोड़े दिनों पहले ही खोला गया है।

मैसूर लोहे और स्पात का कारखाना—क्षमता व उत्पादन

क्षमता		उत्पादन १९५२	
पिग आयरन	२८,००० टन	पिग आयरन	२६,१०९ टन
क्रूड स्टील	३४५०० ,,	क्रूड स्टील	२४,३३७ ,,
रोल्ड प्रोडक्टस	१३०,००० ,,	रोल्ड प्रोडक्टस	२७,००० ,,

मैसूर की लोहे और स्पात की माँग इतनी अधिक हो गई है कि इस कारखाने का विस्तार आवश्यक हो गया है। अतः इसके लिए निकटवर्ती महात्मा गांधी प्रपात से बिजली बनाई जाने लगी है। इसकी सहायता से स्पात बनाने की दो भट्टी चलाई जाती हैं जिनकी प्रत्येक की वार्षिक उत्पादन क्षमता लगभग ३३,००० टन है। वर्तमान वार्षिक क्षमता को लगभग ३०,००० टन से बढ़ा कर लगभग १००,००० टन किया जा सकेगा।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में इस उद्योग का अभी तक विदेशों की भाँति पूर्ण विकास नहीं हुआ है। इसका एक मुख्य कारण देश में औद्योगिक उन्नति का पूरा न होना है। भारत में अभी भी ऊँचे किस्म की कटलरी, स्पात और रेलों आदि का सामान नहीं बनाया जाता। यहाँ मुख्यतः ढला लोहा, छड़, स्पात के नल, चादरें, इनामेल वेयर्स, खूँटियाँ, तार, रेल के डिब्बे आदि ही बनाये जाते हैं। भारत में ढला लोहा बनाने की सुविधायें बहुत हैं, अतः विश्व में सबसे सस्ता ढला लोहा यहीं तैयार किया जाता है। इसके मुख्य कारण ये हैं :—

(१) यहाँ कच्चे लोहे में फास्फोरस केवल नाम मात्र को—(·२५%) है, जब कि यूरोप की धातु में १½% तक फासफोरस पाया जाता है।

(२) हमारे देश के कोयले में गंधक का प्रायः अभाव है, जबकि यूरोप तथा अमेरिका के कोयले में काफी गंधक रहता है, जिसको दूर करने में कुछ व्यय लगता है।

(३) हमारे यहाँ कच्ची धातु में लोहे का अंश ६० से ६९% तक रहता है। इसकी अपेक्षा यूरोप में यह अंश केवल ४०% और अमेरिका में ५०% ही होता है।

भारत में लोहे और स्पात का प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग अन्य देशों की तुलना में बहुत ही कम है, जैसा कि अगली तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

1. Major Industries Annual, 1954-55 : p. 185

देश	१९३७-३८ (पौंड में)	१९५३
संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका	६४०	१,३७३
स्वीडेन	५३२	७०४
कनाडा	३३६	६९८
इंग्लैंड	४९३	७०४
आस्ट्रेलिया	४२८	५४७
जर्मनी	६००	६५२
फ्रांस	२८९	४१४
बेल्जियम-लक्समवर्ग	३५३	४६५
नीदरलैंड्स	३३३	४४७
इटली	१२३	१९१
भारत	६	११

भारत से ढले लोहे का निर्यात मुख्यत: कलकत्ते के बन्दरगाह से इंग्लैंड, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, जापान और चीन को होता है। पुराना लोहा व स्पात पुनर्निर्माण के लिए जापान और इंग्लैंड को भेजा जाता है। नीचे की तालिका में निर्यात बताया गया है :—[1]

वर्ष	पुराना लोहा व स्पात पुनर्निर्माण के लिये (००० टन)	स्पात व लोहे का सामान (मू० लाख रुपयों में)
१९५०-५१	२	७८
१९५१-५२	४३	१२१
१९५२-५३	४७९	११०
१९५३-५४	२३९	११३
१९५४-५५	११८	११२
१९५५-५६	१८६	१२७

स्पात के नये कारखाने :

भारत में प्रतिवर्ष लगभग २५ लाख टन स्पात की आवश्यकता होती है किन्तु उत्पादन होता है केवल १० लाख टन ही। अत: प्रथम द्वितीय पंच वर्षीय योजनाओं के अंतर्गत स्पात का उत्पादन बढ़ाने हेतु सरकार ने अँग्रेज, रूसी और जर्मनी इंजीनियरिंग फर्मों से भारत में तीन नये स्पात के कारखाने खोलने का समझौता किया है। इन तीन नये कारखानों के अतिरिक्त, वर्तमान कारखानों की क्षमता भी बढ़ाई जायगी। इस सब के फलस्वरूप द्वितीय योजना के अंत में ६० लाख टन स्पात तैयार होने लगेगा—३० लाख टन नये कारखानों से और शेष वर्तमान कारखानों की विस्तृत योजनाओं से। पहला कारखाना उड़ीसा में रूरकेला नामक स्थान पर; दूसरा कारखाना मध्यप्रदेश में भिलाई में और तीसरा कारखाना पश्चिमी बंगाल में दुर्गापुर नामक स्थान पर बनाये जा रहे हैं। पहला देमाग और क्रप्स नामक जर्मन कम्पनियों के साथ; दूसरा

१. उद्योग व्यापार पत्रिका, वर्ष ४, अंक २, १९५६ : पृ० २२८ व २३१।

रूसी कम्पनी के साथ और तीसरा बृटिश कंपनी के साथ स्थापित किये जा रहे हैं। इन तीनों कारखानों की उत्पादन क्षमता इस प्रकार होगी :—[1]

कारखाना		कोयले से कारबन बनाना	ढला लोहा	स्पात के पिंड	तैयार स्पात	बिक्री के लिए अतिरिक्त ढला लोहा	शक्तिगृह Kw
कोयले का कारबन (मात्रा १० लाख टन में)							
रूरकेला	१६	१·०४	·९४	१·०	·७२	·०३	७५,०००
भिलाई	१·६५	१·९४	१·११	१·०	·७७	·३०	२४,०००
दुर्गापुर	१·८२	१·३९	१·२७	१·०	·७९	·३५	१५,०००

(*i*) हिन्दुस्तान स्टील वर्क्स, रूरकेला—रूरकेला से कुछ पश्चिम की ओर सांख और कोइल नदियाँ ब्राह्मणी नदी में गिरती हैं। स्पात के इस कारखाने के लिये २० लाख टन खनिज लोहे ५,००,००० टन चूने के पत्थर और १,५०,००० टन खनिज मेंगनीज की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त, १६ टन कोयला भी आवश्यक होगा। अतः स्पात के कारखाने के लिये वही स्थान आदर्श माना जा सकता है जहाँ समीप ही कोयला और उपर्युक्त अन्य कच्चे माल उपलब्ध हो सकें।

रूरकेला से केवल ५० मील की दूरी पर बोनाई रियासत में तालडीह नामक स्थान पर अच्छे खनिज लोहे की बड़ी-बड़ी खानें हैं। यहाँ ७,००० लाख टन धातु के भण्डार पाये जाने का अनुमान है। चूने का पत्थर और खनिज मेंगनीज भी निकट ही उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त १६ लाख टन कोयला, लगभग १५० मील की दूरी पर स्थित बोकारो नामक स्थान से और लगभग २०० मील की दूरी पर स्थित झरिया से लाना पड़ेगा। किन्तु समीप ही २६ लाख टन खनिज और चूने उपलब्ध होने की सुविधा होने के सम्मुख कोयला ढोने की उपर्युक्त कठिनाई विशेष महत्व नहीं रखती।

स्पात के कारखाने के समीप जल की पर्याप्त उपलब्धि आवश्यक है। कारखाने और इसके आस-पास बसे नगर को बहुत अधिक परिमाण में १२५ घनफुट प्रति सैकिंड की अनवरत जलधारा अथवा प्रतिदिन लगभग ७०० लाख गैलन जल की आवश्यकता होगी। नदी के जल का प्रवाह पूरे वर्ष जल उपलब्ध करने के लिये पर्याप्त होगा।

अनुमान है कि लपट वाली पहली भट्टी अक्टूबर १९५८ में काम करने लगेगी और पूरा कारखाना १९५९ के अन्त तक तैयार होकर कार्य करने लगेगा।

कारखाना पूरा हो जाने पर उसका स्वरूप होगा कि यहाँ एक बड़ा तापीय शक्ति केन्द्र (Thermal Power Station) होगा जो ७५,००० किलोवाट विद्युत शक्ति तैयार करेगा। शक्ति का वास्तविक उत्पादन कम रहेगा क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता अधिकतम आवश्यकता का सामना करने

1. Second Five Year Plan : 1956, p. 396.

के लिए सुरक्षित रखी जायगी। इसके अतिरिक्त कारखाने को ४०,००० से ६०,००० किलोवाट विद्युत शक्ति हीराकुण्ड योजना से प्राप्त हो सकेगी। द्वितीय मुख्य विभाग में कोक बनाने वाली भट्टियों की तीन बैटरियाँ होंगी। इसमें से प्रत्येक प्रतिवर्ष ३,००,००० टन कच्चा लोहा तैयार कर सकेगी। तैयार किये जाने वाले स्पात के तीन-चौथाई भाग का उत्पादन एक नयी प्रणाली द्वारा किया जायगा जिसका विकास सर्व प्रथम आस्ट्रिया में लिन्ज (Linz) नामक स्थान पर किया गया था। इसलिये इसे लिंजर डुसेन स्टाल (Linzer Dusen Stale) प्रणाली कहा जाता है। गलाया हुआ लोहा में बड़े २ अण्डाकार बर्तनों में उड़ेल दिया जाता है जिनमें ४० टन वजन आ सकता है। फिर इसमें लगभग २० मिनट तक, ध्वनि से भी अधिक द्रुतगति से आक्सीजन फूंकी जाती है। यह उस प्रकार का स्पात तैयार करने की शीघ्रता और अपेक्षाकृत कम लागत वाली प्रणाली है जिसे पारिभाषिक रूप से "नरम स्पात" कहा जाता है। इस प्रकार के स्पात की आवश्यकता चादरें तैयार करने के लिए होती है। स्पात का एक चौथाई उत्पादन सीधी खुली भट्टी प्रणाली (Open Hearth Process) द्वारा किया जायगा। पिघलाया हुआ लोहा उन पात्रों में उड़ेल दिया जाता है जिन्हें 'पिण्ड के सांचे" (Ingot Moulds) कहते हैं। उन्हीं में उसे ठन्डा होने दिया जाता है और फिर उसे ८ टन से भी अधिक भारी चतुर्भुजाकार पिण्डों के रूप में निकाल लिया जाता है।

स्पात कारखानों के शेष भागों को ढलाई कारखाने (Rolling Mills) कहते हैं। यहाँ बड़े २ पिंडों को अभीष्ट आकार तथा चौड़ाई की प्लेटों, चादरों तथा पत्तियों का रूप दिया जाता है। पिंडों को पहले 'सोकिंग पिट' (Soking pit) नामक भट्टियों में तपाया जाता है जिससे वे नरम पड़ जाएँ और उन्हें दबाकर अभीष्ट आकार दिया जा सके। एक ओर ये पिंड अपने इसी रूप में भीतर जाते दिखाई देते हैं और दूसरी ओर से वे कुछ इंच मोटी और लम्बी २ सिल्लियों के रूप में निकलते जाते हैं। प्लेट अथवा पत्ती (Strip) के कारखानों में प्रविष्ट होने से पहले इन सिल्लियों को फिर तपाया जाता है। इन कारखानों में से ये सिल्लियाँ बड़ी २ प्लेटों तथा सैकड़ों गज लम्बी चादरों के रूप में बाहर निकलती हैं।

रूरकेला स्पात के ढलाई कारखाने की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ केवल चपटे आकार की वस्तुएँ उदाहरणार्थ, अलग-अलग मोटाई की प्लेटें, चादरें, पत्तियाँ और टीन की प्लेटें तैयार की जायँगी। इनमें से प्रथम की आवश्यकता जहाज अथवा रेल के डिब्बे बनाने तथा अन्य प्रकार के कार्यों के लिये होगी। इसके आस-पास स्थापित होने वाले उद्योगों में से एक में लपट वाली भट्टियों से निकलने वाले मैल द्वारा सीमेंट बनाया जायगा।

(२) भिलाई स्पात कारखाना—सरकारी क्षेत्र में दूसरा कारखाना मध्य प्रदेश में भिलाई नामक स्थान पर बनाया जा रहा है। संभवत यह कारखाना १९५९ तक उत्पादन आरंभ कर देगा। इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १० लाख टन सिल्लियों की रखी गई है जिनसे ७५ ००० हजार टन चादरें तैयार की जा सकेंगी। भिलाई स्थान को निम्न सुविधाओं के कारण चुना गया है:—

(१) इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा यहाँ से २० मील दूर धाली-राजहरा पहाड़ियों से प्राप्त होगा, इसमें धातु का अंश ६५% तक है। कच्चा लोहा हाहालदी, कोन्डापुखा, चारगाँव और रावघाट में भी मिलता है। दुग, चाँदा और बस्तर जिलों में १६,५०० लाख टन के भंडार सुरक्षित हैं।

(२) यहाँ के लिये उत्तम किस्म का कोकिंग कोयला १४० मील दूर से प्राप्त होगा। यहाँ से ६६० लाख टन कोयला मिल सकेगा। इसके अतिरिक्त झरिया और कोरबा का कोयला ६५ : ३५ के अनुपात में मिलाकर धातुशोधन के उपयुक्त बनाया जा सकेगा। इसमें कार्बन का प्रतिशत ७६% और राख का अंश २१·४% होगा।

(३) इस कारखाने के लिये प्रतिदिन लगभग १७५० लाख गैलन साफ जल की आवश्यकता होगी। यह जल-प्राप्ति तंदुला नहर से मिलेगी। गोंदी योजना भी इसमें सहायक होगी।

(४) चूना दुग, रायपुर और बिलासपुर जिलों से प्राप्त हो सकेगा।

(५) डोलोमाइट भानेवर, कासोंदी, पारसोदा, खरिया, रामतोला और हरदी (बिलासपुर जिले में) तथा भाटपारा और पाटपार (रायपुर) से प्राप्त होगा।

(३) दुर्गापुर स्पात कारखाना—यह कारखाना ब्रिटेन और भारत सरकार के संयुक्त उपक्रम से दुर्गापुर में खोला जायगा। इसकी उत्पादन क्षमता १० लाख टन सिल्लियों की होगी। इसको बिहार की खानों से कोयला तथा लोहा प्राप्त होगा।

नीचे की तालिका में इन तीनों कारखानों के लिए पड़ने वाली विभिन्न कच्चे माल की आवश्यकताओं को बताया गया है :—

(१० लाख टन में)

	रूरकेला	भिलाई	दुर्गापुर
कोयला	१·६००	१·७६०	१·८३०
कच्चा लोहा	१·७००	१·६४०	१·६४०
मैंगनीज	·११२	·०३३	·०६४
चूना	·५२३	·५५१	·६१७
डोलोमाइट	·०२८	·३०६	·०४२

स्पात के ढाँचे बनाने का उद्योग

ढांचा निर्माण उद्योग एक महत्वपूर्ण विशिष्ट उद्योग है जिसके लिये बड़ी वर्कशापों की तथा बहुत से मशीनी उपकरणों की आवश्यकता होती है। इसके लिये प्रशिक्षित तथा अनुभवी इंजीनियरों और कुशल कर्मचारियों की भी आवश्यकता होती है। अन्य अनेक उद्योगों के विपरीत ढाँचा निर्माण उद्योग एकसी ही वस्तुएं नहीं बनाता बल्कि यह तो जैसे ढांचे की मांग हो वैसा ही ढांचा बनाता है। दूसरे शब्दों में उन्हीं मशीनों का अनेक-प्रकार के ढांचे बनाने

में प्रयोग किया जाता है। इस देश में इस उद्योग का श्रीगणेश इस शताब्दी के आरम्भ में स्थापित किये गये इंजीनियरी के कारखाने में हुआ जिससे रेलों तथा सरकारी निर्माण विभागों आदि की जरूरतें पूरी की जा सकें। प्रतिरक्षा विभाग की बेहद माँग के कारण यह उद्योग दूसरे महायुद्ध के दिनों में खूब बढ़ा, पनपा। महायुद्ध के बाद यद्यपि निर्माण कार्यक्रमों की बहुत माँग रही, फिर भी स्पात की कमी के कारण यह उद्योग अपनी पूरी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर सका। लेकिन हाल ही में इस स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आगया है।

विभिन्न प्रकार के ढांचे :

अधिक सामान्य किस्मों के जो ढांचे बनाये जाते हैं, उन्हे मोटे तौर पर निम्न शीर्षों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :—

(१) वर्कशापों, मालगोदामों, बिजलीघरों, विमानशालाओं आदि के लिये आवश्यक ढांचे।

(२) सड़क, रेल तथा नदियों के पुलों, जहाजों पर से उतरने के स्थान तथा जहाज घाटों के ढांचे।

(३) इस्पात संयंत्र, कोक भट्टी संयंत्रों, सीमेन्ट, कागज मिल, रासायनिक संयंत्रों आदि के लिये आवश्यक ढांचे।

(४) मशीनों द्वारा सामान इधर-उधर पहुँचाने के क्रेनों, विन्चों तथा डैरिकों जैसे उपकरणों के लिये स्पात के ढांचे।

(५) पानी में प्रयोग किये जाने वाले इस्पात के ढांचे जैसे नहर आदि में पानी छोड़ने या रोकने के फाटक, उन फाटकों को चलाने वाले गीयर, बाढ़ का पानी निकालने वाले फाटक। ये ढांचे जल-विद्युत तथा सिंचाई योजनाओं के काम आते हैं।

(६) रस्सों तथा तारों के बने हुये वायुयानों से सामान इधर-उधर हटाने के उपकरण जैसे पिंजड़े, ट्राली तथा सहायक पाढ़ें आदि।

(७) विद्युत प्रेषक स्तंभ।

(८) पानी तथा तेल भरने के लिये स्पात की ढाली हुई अथवा झाली हुई टंकियाँ।

(९) ढालकर, झालकर अथवा रिपट लगा कर बनाये गये अन्य विविध प्रकार के ढांचे।

इनके अतिरिक्त रेल के माल ढोने के डिब्बे, डिब्बों के नीचे लगने वाले ढांचे, सवारी डिब्बे, सिगनल के सामान तथा जहाजों के निर्माण में भी ढांचों का बहुत प्रयोग करना होता है।

उत्पादन क्षमता :

इस समय ढांचे बनाने का काम ६९ कारखानों में होता है। इन ६९ कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता लगभग १,२६,००० टन है। विभिन्न प्रदेशों में यह क्षमता निम्न प्रकार है :—

राज्य	कारखानों की संख्या	उत्पादन क्षमता एक पाली के आधार पर (टन)
पं० बंगाल	२५	७८,१४४
बम्बई	२४	३०,१२०
मद्रास	१०	४,६८०
विहार	३	७,६८०
उत्तर प्रदेश	१	४८
मध्य प्रदेश	१	१०८
दिल्ली	१	४००
अन्य राज्य	४	४,९७६
योग	६९	१,२६,४५६

आधे से अधिक कारखाने छोटे-छोटे हैं और उनकी उत्पादन क्षमता १००० टन वार्षिक से भी कम है। यद्यपि ढांचे बनाने वाली फर्में बम्बई और मद्रास में, विहार में (स्पात के कारखानों के पास) तथा देश के आन्तरिक भाग में स्थित एक महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र कानपुर में हैं तथापि फिलहाल यह उद्योग मुख्य रूप से कलकत्ते के आस-पास ही है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों में जो कारखाने हैं, वे मुख्य रूप से हलके ढांचे ही बनाते हैं।

इन्जीनियरी उत्पादन क्षमता का सर्वेक्षण करने वाली समिति के अनुसार २५ प्रतिशत क्षमता का उपभोग भारी ढांचे बनाने में, ४० प्रतिशत कम भारी ढांचे बनाने में और ३५ प्रतिशत क्षमता का प्रयोग हलके ढांचे बनाने में किया जा सकता है। भारी ढांचे बनाने की कुल क्षमता का ७० प्रतिशत भाग देश के पूर्वी प्रदेश में तथा शेष भाग पश्चिमी प्रदेश में है। कम भारी तथा हलके ढांचे बनाने की अधिकांश क्षमता पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेश में है।

कच्चा माल :

ढांचा निर्माण उद्योग में विभिन्न वर्गों के हलके तथा भारी ढांचों, प्लेटों, कम तथा तेज तनाव रोकने वाली इस्पात की सलाखों, वोल्ट तथा ढिबरियों, रिपटों, ढाले हुए लोहे और इस्पात, जस्ता चढ़ी चादरों और तारों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है। ये सभी वस्तुऐं देश में ही तैयार होती हैं और कभी-कभी कमी पूरी करने के लिये इनका आयात भी किया जाता है। विशेष रूप से चौड़ी प्लेटों तथा ढांचों के उन भागों का भी आयात किया जाता है, जिनकी ढलाई भारत के कारखाने नहीं कर सकते हैं। हाल के वर्षों में इस उद्योग को जिन प्रमुख कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनमें से दो प्रमुख कठिनाइयाँ लोहे की सामान्य कमी तथा आयातित इस्पात के ऊँचे दाम होने की है। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में इस्पात उद्योग के विस्तार हो जाने से ढांचा निर्माण उद्योग के विकास मार्ग की बड़ी वाधा दूर हो जायगी। इसी प्रकार भारी ढलाई-घर तथा भारी गलाईघर स्थापित होने से यह आशा है कि भारी ढलाई और गलाई की आवश्यकतायें भी पूरी हो जायेंगी।

इस उद्योग में करीब ११-१२ करोड़ रु० लगा हुआ है।

दूसरी योजना में बने बनाये ढांचों की मांग मुख्यतः निम्न कारणों से बढ़ेगी :—

(१) इस्पात उद्योग का विस्तार। अनुमान है कि तीन नये इस्पात कारखाने स्थापित करने के सिलसिले में २½ लाख टन ढांचे १९५७ से लेकर १९६० तक बनाने पड़ेगें।

(२) नंगल, रूरकेला तथा नेवेली में खाद बनाने के तीन कारखानों की स्थापना जिनकी कुल क्षमता २,३०,००० टन स्थायी नाइट्रोजन बनाने की होगी।

(३) अन्य प्रमुख औद्योगिक संस्थानों की स्थापना जैसे बिजली का भारी सामान बनाने का संयंत्री ढलाईघर तथा भारी गलाईघर और छोटी रेल्वे लाइन के सवारी डिब्बे बनाने का कारखाना।

(४) कालटैक्स के पेट्रोल शोधक कारखाने की स्थापना।

(५) सीमेन्ट, भारी रासायनिक पदार्थ, चीनी तथा कागज बनाने की मिलों की स्थापना।

(६) हीराकुण्ड में १०,००० टन अलूमीनियम शोधने का कारखाना तथा इतने ही बड़े दूसरे कारखाने की स्थापना।

(७) उष्मा विद्युत के संयंत्रों की स्थापना जिनकी कुल क्षमता ११ लाख किलोवाट होगी।

(८) कोरबा तथा अन्य स्थानों में नयी कोयला खानों का विकास, दक्षिणी अरकाट में लिगनाइट की खानों का विकास तथा कोल भट्टी संयंत्रों की स्थापना।

अनुमान है कि इन सब विकास कार्यक्रमों के लिये इस्पात के ढाँचे बनाने की, जिसमें दूसरी योजना के अन्तर्गत रेल के वैगन बनाने की मांग भी सम्मिलित है, औसत मांग ४,५०,००० टन प्रतिवर्ष के स्तर की होगी और १९६०-६१ तक यह माँग बढ़कर ५ लाख टन प्रतिवर्ष हो जायगी।

जहाज बनाने का उद्योग (Ship-Building)

जहाज-निर्माण उद्योग के लिए दो बातें मुख्य हैं। प्रथम तो जहाँ जहाज बनाये जावें वहाँ ऐसी नदी हो जिसमें बड़े-बड़े जहाज चलाये जा सकें और नदी उस स्थान से समुद्र तक खेने योग्य हो। दूसरी आवश्यकता यह है कि उसके निकट जहाज बनाने का सामान सरलता से उपलब्ध हो सके। पहले जब जहाज लकड़ी के बनाये जाते थे तो उनके केन्द्र उन स्थानों पर थे जहाँ पर या तो लकड़ी मिलती थी या बाहर से सरलतापूर्वक मँगाई जा सकती थी। परन्तु जब से लोहे के जहाज बनाये जाने लगे ये केन्द्र हट कर उन स्थानों पर चले गये जहाँ लोहा तथा कोयला उपलब्ध है।

ग्रेट ब्रिटेन :

ग्रेट-ब्रिटेन में जहाजों के बनाने के उद्योग में सफलता के कारण यह हैं :—

(१) यहाँ की नदियों के मुहानों के पास बड़ी २ खाड़ियाँ हैं जहाँ ऊँचे ज्वार-भाटे आते हैं।

(२) यहाँ बड़े २ कोयले के क्षेत्र हैं जहाँ पर लोहे तथा स्पात का उद्योग उन्नति पर है।

(३) लकड़ियाँ पहाड़ी भागों के वनों से मिल जाती हैं।

(४) संसार में सब जगह से जहाजों की माँग बढ़ती जा रही है।

(५) अंग्रेज लोग सदा से ही नाविक रहे हैं।

ग्रेट-ब्रिटेन में लगभग सभी प्रकार के जहाज बनाये जाते हैं। यहाँ के जहाज बनाने वाले मुख्य केन्द्र निम्नांकित हैं :—

(i) उत्तरी-पूर्वी समुद्र-तट—यह क्षेत्र टाइन, वियर तथा टीज के किनारे हैं। यहाँ पर समस्त ब्रिटेन के उत्पादन के $\frac{1}{2}$ भाग जहाज बनाये जाते हैं। इस तटीय भाग में जहाज बनाने वाली ४० बड़ी २ कंपनियाँ हैं जो Cargo Liners, Tramp, War-ships और Tankers आदि बनाती हैं। न्यूकैसिल, सुन्दरलैंड, हार्टिलपुल तथा मिडिलसवरो मुख्य नगर हैं।

(ii) क्लाइड क्षेत्र में विशेषतः यात्री जहाज बनते हैं। यहाँ के यार्ड विश्व में सबसे उत्तम रूप से सज्जित हैं। यहाँ जहाज बनाने के ३० कारखाने हैं। Queen Mary और Queen Elizabeth जहाज यहीं बनाये गये हैं।

(iii) बर्केनहेड—यहाँ पर अधिकतर नौ सेना के लिए जहाज बनाये जाते हैं। बैरो यहाँ का मुख्य नगर है। अन्य नगर अबरडीन, डंडी, लीथ गूले, साऊथ हैम्पटन, काऊज, इत्यादि हैं।

(iv) बेलफास्ट—यहाँ जहाज लगैन नदी की ऐस्चुरी में बनाए जाते हैं। यहाँ पर स्काटलैंड तथा कम्बरलैंड से जहाज बनाए जाने के सामान मंगाये जाते हैं। यहाँ पर अधिकतर मोटर बोटें बनाई जाती हैं।

(v) बैरो—यहाँ पर व्यापारिक नौ सेना के लिए सब मेरीन जहाज बनाये जाते हैं। टेम्स के किनारे अब जहाज नहीं बनाये जाते हैं। परन्तु लन्दन में जहाजों के मरम्मत का काम अधिक होता है।

वास्तव में जहाज-निर्माण-उद्योग में ब्रिटेन का स्थान सर्वोपरि है। १९४६ से १९५२ तक यहाँ ८६ लाख टन के जहाज बनाये गये। यहाँ अधिकतर विदेशों के लिए ही जहाज बनाये जाते हैं। इनका लगभग ३०% नार्वे; ८% अर्जेन्टाइना और फ्रांस; ६% पुर्तगाल, ६% हॉलैंड और ३% स्वीडेन को जाता है। १९५३ में ब्रिटेन से बना कर भेजे गये जहाजों का मूल्य ४०० लाख पौंड था। इस उद्योग में लगभग २१३,००० व्यक्ति लगे हैं।

अन्य देश :

युद्ध पूर्व के काल में जर्मनी भी जहाज बनाने में बड़ा प्रमुख देश था। वहाँ कोयला और लोहा पर्याप्त मात्रा में मिल जाने तथा समुद्र से राइन द्वारा जल यातायात की सुविधा होने से स्टैटीन, रॉसटाक, ल्यूबैक, कील और हम्बर्ग में उत्तम श्रेणी के जहाज बनाये जाते थे, किंतु द्वितीय महा-युद्ध के अंत में ये सब कारखाने विजेताओं के अधिकार में चले गये। द्वितीय

महायुद्ध काल में जर्मनी के जहाज बनाने पर कई प्रतिबंध लगाये गये किंतु १९५१ से अब जर्मनी में पुनः उपरोक्त स्थानों पर जहाज निर्माण का कार्य किया जाने लगा है।

नीदरलैण्ड, स्वीडन और डैनमार्क में भी जहाज बनाने का उद्योग बहुत समय से किया जा रहा है। ये तीनों ही समुद्र-तटीय देश हैं। यहाँ स्पात जर्मनी और ब्रिटेन से मँगा कर जहाज बनाये जाते हैं। नीदरलैण्ड में उत्तरी सागर की नहर के किनारे वैल्सन; डैनमार्क में कोपनहेगन और स्वीडेन में गोटेबर्ग और माल्मो में जहाज बनाये जाते हैं। **फ्रांस** में जहाज बनाने के केन्द्र अटलांटिक महासागर के किनारे लाहावरे, चैरबोर्ग, और बोर्डो तथा भूमध्य-सागरीय तट पर मार्सलीज और टूलन में हैं। **इटली** में जिनाओ और नेपल्स में जहाज बनाये जाते हैं।

रूस में बड़े-बड़े जहाज कालेसागर के किनारे निकोलायेव और सिवास्टो-पोल तथा फिनलैंड की खाड़ी के किनारे लैनिनग्राड और मुरमांस्क, आर्केनगैस्क तथा ब्लाडीवोस्टक में बनाये जाते हैं। **जापान** में जहाज बनाने के मुख्य केन्द्र कोबे और नागासाकी हैं। यहाँ व्यापारी जहाज अधिक बनाये जाते हैं।

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका :

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में व्यापारिक जहाजों के निर्माण का लगभग $\frac{2}{3}$ तीन मुख्य क्षेत्रों से प्राप्त होता है—न्यूयार्क हारबर, डिलावेयर नदी की खाड़ी और चैस्पीक की खाड़ी। न्यूयार्क हारबर में जहाज बनाने के डॉक्स स्टैटन द्वीप, ब्रूकलीन और करनी में हैं। डिलावेयर में तो इतने जहाज बनते हैं कि इसे अमेरिका की क्लाइड नदी का नाम दिया जाता है। यहाँ के मुख्य केन्द्र फिला-डेलफिया, चेस्टर, विलमींगटन, कैमडेन हैं। चैस्पीक खाड़ी के किनारे स्पैरो पाइन्ट व न्यूपोर्ट न्यूज में सभी प्रकार के व्यापारिक तथा लडाकू जहाज बनाये जाते हैं। यहाँ स्पात स्पैरो पाइंट के कारखानों से प्राप्त किया जाता है, पूर्व के कारखानों से मशीनें और एंजिन, एपलेशियन क्षेत्र से कोयला और स्थानीय भागों से कुशल कारीगर मिल जाते हैं। न्यू इंग्लैंड स्टेट्स में भी बड़े जहाज क्विन्सी और छोटे जहाज ग्रोटन में बनाये जाते हैं। यहाँ पनडुब्बियाँ भी बनाई जाती हैं। कुछ जहाज बाथ और साऊथ पोर्टलैंड में भी बनाये जाते हैं।

यद्यपि पैसीफिक महासागर के तटीय भागों में अनुकूल जलवायु मिलता है किन्तु स्पात की असुविधा और बाजारों से दूर होने के कारण यहाँ जहाज बनाने का धन्धा पूर्ण रूप से नहीं चमका है। फिर भी खाड़ी के निकटवर्ती भागों में टैम्पा, मोबाइल और वैसगूला में तथा प्रशांत महासागरीय तट पर सिएटल, पोर्टलैंड और सन फ्रांसिसको में जहाज बनाये जाते हैं। झील क्षेत्र में सभी सुविधायें होने से क्लीवलैंड, डिट्रायट, शिकागो, और बफैलो तथा टोलडो और लोटेन में जहाज बनाये जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र में व्यापारिक जहाजों के अतिरिक्त नौसेना के लिए भी बड़े-जहाज बनाये जाते हैं। युद्ध के जहाज यहाँ मुख्यतः पोर्ट्समाऊथ, बोस्टन,

ब्रूकलीन, फिलाडेलफिया, नोरफॉक, चार्ल्सटन, विमाटन और मेअर आइलैण्ड में बनाये जाते हैं।

भारत में समुद्री जहाज बनाने का धंधा (Ship Building Industry)

द्वितीय महायुद्ध के पहले तक कलकता और विजगापट्टम में केवल नावें ही बनाई जाती थीं अथवा जहाजों की मरम्मत होती थी, किन्तु सन् १९४१ में सिंधिया कम्पनी ने विशाखापट्टम में समुद्री जहाज बनाने का उद्योग आरभ किया जिसमें अब तक कई प्रसिद्ध जलयान बनकर अवतरण कर चुके हैं। यहाँ जहाज बनाने के उद्योग को निम्न सुविधायें प्राप्त है :—

(१) यह बन्दरगाह पूर्वी तट पर कलकता और मद्रास के केन्द्रवर्ती भाग में स्थित है अतः दोनों ओर से आने-जाने की सुविधा है।

(२) इसका बन्दरगाह गहरा है अतः बड़े-बड़े जहाजों के ठहरने की सुविधा है।

(३) बंगाल और बिहार के लोहे तथा कोयले के क्षेत्र बहुत ही निकट हैं। विजगापट्टम दक्षिण-पूर्वी रेलवे द्वारा ताता नगर से जुड़ा है। (जो केवल ५५० मील दूर है) अतः स्पात मिलने की सुविधा है।

(४) जहाज बनाने के उपयुक्त मजबूत लकड़ी बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर के जगलों से प्राप्त हो जाती है।

(५) कुशल और दक्ष मजदूर बंगाल और मद्रास से आ जाते हैं।

(६) छोटा नागपुर से अच्छे मेल की लकड़ी भी मिल जाती है जो जहाज निर्माण में डेक, कमरे आदि बनाने के काम आती है। १९५२ में विशाखापट्टम पोत-निर्माण क्षेत्र हिन्दुस्तान शिपयार्ड कं० लि० के हाथ में आ गया है। इस कम्पनी में भारत सरकार का $\frac{2}{3}$ और सिंधिया क० का $\frac{1}{3}$ धन लगा है।

समुद्री जहाज बनाने के व्यवसाय का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है क्योंकि जिन कच्चे मालों की आवश्यकता पड़ती है वे भारत में ही मिल जाते हैं। किन्तु मद्रास व बम्बई के बन्दरगाहों में जहाज निर्माण का कार्य नहीं हो सकता। बंबई लोहा व कोयला उत्पादन केन्द्रों से सैकडों मील दूर है तथा मद्रास कृत्रिम बन्दरगाह और पानी छिछला है अतः बडे जहाजों का बनाना बड़ा कठिन है। कोचीन के समुद्री जलाशय में जहाजों की मरम्मत के लिये उचित सुविधायें हैं।

वायुयान बनाने का उद्योग (Air Craft Manufacture)

हवाई जहाज बनाने का उद्योग अभी भी अन्य उद्योगों की तुलना में शिशु उद्योग (Infant Industry) ही कहा जा सकता है जिसका विकास प्रतिदिन बड़ी तेजी से हो रहा है। निर्माण क्रिया में यांत्रिक परिवर्तन, उत्पादन में अस्थिरता और उद्योग से प्राप्त होने वाली आय में अनिश्चितता आदि इस उद्योग की मुख्य विशेषतायें हैं।[1] सबसे प्रथम वायुयान १९०३ में अमेरिका के राईट बन्धुओं ने बनाया। उसी समय से इस उद्योग की विशेष प्रगति हुई है।

---

१. Smith, Russel and Smith : *Ibid*, p. 450.

हवाई जहाज बनाने के उद्योग के अन्तर्गत दो प्रकार के यानों का निर्माण सम्मिलित किया जाता है—एक वे जो हवा से भी हल्के होते हैं और दूसरे वे जो हवा से भारी होते हैं। प्रथम जाति के यान—गुब्बारे ब्लिम्पस, और डिरिजीब्ल्स हैं जो गैस या आन्तरिक दहन (Combustion) एंजिन की शक्ति द्वारा चलाये जाते हैं। इनका प्रयोग मुख्यतः वायु सेना अथवा फौजों द्वारा ही किया जाता है। दूसरी श्रेणी के यानों में मुख्य हेलीकोप्टर यान है जिसे 'Flying Windmill, Whirligig or Egg Beater' कहते हैं। यह वायुयान जल, थल और वायु में तथा बर्फीले और दलदली भागों में दौड़ और उड़ सकते हैं। ब्रिटेन में इनका उपयोग लंदन और बर्मिघम के बीच यात्री ले जाने में होता है। इसी तरह अमेरिका में न्यूयार्क और ला गारडिया, लास एजलिस, शिकागो आदि के बीच यात्री ले जाते हैं। तेल कंपनियाँ इनका उपयोग तेल लेजाने में करती हैं। कुछ खेतों में कीड़े मारने वाली दवाएं डालने के काम में भी आते हैं। ये साधारणतः ३०० मील की दूरी तक ४० यात्रियों को ले जा सकते हैं।

वायुयान उपयोग की दृष्टि से कई प्रकार के होते हैं। बड़े यान अधिक दूरस्थ स्थानों को डाक, यात्री, माल आदि ले जाते हैं, जबकि छोटे यान थोड़ी दूर के बीच वाले स्थानों पर यात्रियों को ढोते हैं। विशेष प्रकार के यान हवाई सर्वेक्षण करने, फोटोग्राफी लेने, जगलों में लगी आग पर नियत्रण पाने, फसलों पर कीटाणुनाशक पदार्थ छिड़कने और व्यापारिक विज्ञापन आदि करने के काम आते हैं।

वायुयान निर्माण के लिए न केवल कुशल कारीगरों की ही आवश्यकता पड़ती है वरन् स्वच्छ मौसम की भी बड़ी आवश्यकता होती है जिससे निर्माण के बाद यानों का परीक्षण किया जा सके। इसके लिए उत्तम प्रकार का स्पात, अल्यूमीनियम और जल-विद्युत भी आवश्यक हैं।

विश्व में सबसे अधिक वायुयान संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में बनाये जाते हैं। १९५३ में यहाँ १२,००० सैनिक-यान और ४,७०० सार्वजनिक यान बनाये गये। यहाँ अब तक ५ लाख यान बनाये जा चुके हैं। अमेरिका में यान निर्माण का कार्य मुख्यतः कैलीफोर्निया में सैंटा मोनीका, एल सैगूंडो, लाँग बीच, सैन डिआगो, बरबैंक, हार्थोन और लॉस एंजल्स हैं। यहाँ का मौसम बड़ा स्वच्छ और सूखा तथा गर्म रहता है। टैक्साज में यानों के पुर्जे जोड़ने का उद्योग पोर्टवर्थ, तथा डलैस में किया जाता है। वायुयान निर्माण के अन्य केन्द्र विचीता और कन्सास सिटी (कन्सास), फार्मिगडेल, बैथवेज (न्यूयार्क), सियेटल और बाल्टीमोर हैं।

संयुक्त राष्ट्र के अतिरिक्त अन्य देशों में भी यह उद्योग विकसित है। रूस में यह उद्योग सरकार के हाथ में है जबकि अन्य देशों में इस उद्योग को सरकारी सहायता दी जाती है। रूस में अमेरिका के बाद सबसे अधिक वायुयान बनाये जाते हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र यूक्रेन में मास्को-गोरकी तथा यूराल क्षेत्र में नोवोविरस्क, टोमस्क, स्वरलोस्क, और कोसोमोल्स्क है। पश्चिमी यूरोप में लन्दन, कॉवनट्री, वूलवरहैम्पटन, ब्रिस्टल, साऊथ हैम्पटन, पेरिस, मिलन आदि में वायुयान बनाये

जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध बाद जर्मनी में वायुयान बनाने पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है।

भारत में हवाई जहाज बनाने का उद्योग

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में हवाई जहाज बनाने वाला कोई कारखाना नहीं था। उस समय कुछ इंजीनियरिंग वर्कशॉप मरम्मत आदि का कार्य करते थे। टाटा लाइन्स, इण्डियन नेशनल ऐयरवेज, एयर सर्विसेज आफ इण्डिया आदि कम्पनी इस कार्य में संलग्न थीं, किंतु द्वितीय महायुद्ध में इस उद्योग की तीव्र आवश्यकता अनुभव हुई। अस्तु १९४०. में मैसूर सरकार और वालचद हीराचंद की फर्म की साझीदारी में हिंदुस्तान ऐयरक्राफ्ट कम्पनी की स्थापना बंगलौर में की गई। इसकी देखरेख करने को अमेरिकन विशेषज्ञ भी रखे गये और अधिकृत पूँजी ४ करोड़ रुपये रखी गई। १९४१ में भारत सरकार भी इस कम्पनी में हिस्सेदार बन गई। किंतु अप्रेल १९४२ में भारत सरकार ने सुरक्षा के निर्मित इस कम्पनी को वालचंद हीराचंद से खरीद लिया और अब व्यवस्था सम्बन्धी सारा काम भारत सरकार के ही हाथ में है। इस कम्पनी ने १९४१ में पहला हवाई जहाज बना कर तैयार किया और अब उसकी प्रगति अच्छी हो रही है।

बंगलौर में इस कारखाने की स्थापना के कई कारण थे—(१) हवाई जहाज के लिए एल्यूमिनियम की आवश्यकता होती है जो पास ही ट्रावनकोर के कारखाने से प्राप्त हो जाता है। (२) फौलाद मैसूर राज्य के भद्रावती लोहे के कारखाने से मिल जाता है। (३) दक्षिणी मैसूर में जल विद्युत् शक्ति की उन्नति होने के कारण कारखाने के लिए शक्ति भी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (४) भारतीय वैज्ञानिक संस्था भी बंगलौर में है जिससे टेकनीकल सहयोग भी प्राप्त होता है।

वायुयानों की माँग दिन प्रति दिन बढ़ रही है। शांति के समय इसके द्वारा व्यापार में खूब वृद्धि होती है और युद्ध के लिए इनका होना अनिवार्य है। सामरिक दृष्टि से भारत का बड़ा महत्त्व है। दक्षिण-पूर्वी एशिया और मध्य-पूर्व के बीच में होने के कारण हमारी शक्ति में वृद्धि करना आवश्यक है। व्यापारिक दृष्टि से भी भारत के यूरोप और आस्ट्रेलिया के मध्य में स्थित होने के कारण इसका महत्त्व अधिक है क्योंकि इन दोनों महाद्वीपों में आने-जाने वाले वायुयान भारत होकर ही गुजरते हैं। अस्तु, देश में वायुयान बनाने के और अधिक कारखाने खुलने की आवश्यकता है। इसके लिए आसनसोल और जमशेदपुर सम्भावित स्थान हैं क्योंकि यहाँ पर इस व्यवसाय में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे सभी उपलब्ध हैं।

मोटर गाड़ी उद्योग (Automobile Industry)

मोटर गाड़ियाँ विश्व में सबसे अधिक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बनाई जाती हैं। विश्व में पाई जाने वाली यात्री कारें और मोटर-ट्रकों का क्रमशः ७५% और ५०% संयुक्त राष्ट्र में है। संयुक्त राष्ट्र के बाहर मोटर गाड़ियों के कुल उत्पादन का ६०% ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी और रूस से प्राप्त होता है। मोटर

गाड़ियों के उत्पादन का आरंभ १८६५ से होता है जब कि सीगफ्रीड मारकस नामक आस्ट्रियन ने गैसोलीन से चलने वाली प्रथम मोटर का निर्माण किया। इसके बाद इस पर १८८० में जर्मनी के नाथन ओटो, कार्ल बेंज और ग्रोटफ्रीड डैमलर ने तथा फ्रांस के एमीले लैवेसर ने कई सुधार किये। तभी से इस उद्योग का क्रमिक विकास हुआ है। १८९२–९४ में अमेरिका में फोर्ड आदि ने भी इसी प्रकार की मोटरें बनाईं।

संयुक्त राष्ट्र में मोटरों के उत्पादन का उद्योग मुख्यत: तीन बड़ी-बड़ी कम्पनियों—जनरल मोटर्स (General Motors), फोर्ड (Ford) और क्राइस्लर (Chrysler) के आधीन है। ये ही तीन कंपनियाँ यात्रीकारों का ८५ से ९०% और मोटर ट्रकों का ८० से ८५% उत्पादन करती हैं यात्रीकारों का शेष उत्पादन स्टूडीबेकर (Studebaker), पैकर्ड (Packard) अमरीकन मोटर्स (American Motors) और कैसर-विलीज (Kaiser Willys) कंपनियों द्वारा तैयार किया जाता है। इसी प्रकार मोटर-ट्रकों का शेष उत्पादन अन्तर्राष्ट्रीय हारवेस्टर (International Harvester मैक (Mack), ब्रॉकवे (Brockway) ह्वाइट (White) और डायमन्ड-टी (Diamond T) कंपनियों द्वारा होता है। जनरल मोटर्स के कारखानों में उत्पादन से लगा कर पुर्जे जोड़ने और मोटरों के विक्री तक का कार्य होता है। फोर्ड के कारखानों में (डिट्रायट) कन्टैकी से कोयला और लोहा तथा चूना ऊपरी झील प्रदेश से प्राप्त किया जाता है। इस उद्योग में लगभग ८००,००० मजदूर काम करते हैं तथा इसमें ५ विलिअन डॉलर की पूंजी लगी है और प्रतिवर्ष इतने ही मूल्य की विभिन्न प्रकार की गाड़ियाँ तैयार की जाती हैं।

सं० राष्ट्र में यह उद्योग मुख्यत: पिट्सवर्ग के क्षेत्र में फैला हुआ है जहाँ तीन मुख्य सुविधाएँ मिलती हैं—(१) निचले झील प्रदेश में लकड़ियाँ अधिक मिलती हैं तथा सस्ते जल-यातायात की सुविधाएँ प्राप्त हैं। (२) इस क्षेत्र में रेल-मार्गों का विस्तृत जाल बिछा है जो न्यूयार्क, सेंट लुइस, फिलाडेलफिया, बोस्टन और मांट्रियल के औद्योगिक केन्द्रों को जोड़ता है। (३) उत्तरी अमेरिका की अधिकांश जनसंख्या इसी क्षेत्र में है। अत: मोटरों की मांग भी बहुत है। यहाँ मोटर उद्योग के निम्न केन्द्र हैं :—

मिशीगन—लैनसिंग, पोन्टैक, कैडीलैक, फ्लीन्ट, डिट्रायट।

ओहियो—टोलडो, क्लीवलैण्ड।

इंडियानापोलिस—द० बैण्ड, इण्डियानापोलिस।

विस्कोंसिन—कैनोशा।

इलिनीयास—शिकागो।

न्यूयार्क—बफैलो,

सं० राष्ट्र अमेरिका में विश्व में सबसे अधिक मोटरों का निर्यात किया जाता है क्योंकि (i) यहाँ की कारें उच्च श्रेणी की होती हैं, (ii) इनका मूल्य आपेक्षत: कम होता है, और (iii) यहाँ ऐसी गाड़ियाँ ही अधिक बनाई जाती

हैं जो न केवल अच्छी सड़कों पर वरन् ऊँची-नीची भूमि पर भी सुविधापूर्वक दौड़ सकती हैं। अतः आस्ट्रेलिया, ब्राजील, अर्जेनटाइना, तथा दक्षिणी अफ्रीका के देशों में यहीं की गाड़ियाँ अधिक खरीदी जाती हैं।

कनाडा में मोटर उद्योग मुख्यतः विन्डसर और ओसावा में स्थापित है। यद्यपि मोटर उद्योग का प्रारंभिक विकास पश्चिमी यूरोप के देशों में हुआ किंतु अब यहाँ संयुक्त राष्ट्र से भी कम गाड़ियाँ बनाई जाती हैं क्योंकि यहाँ इस उद्योग को कई असुविधाओं का सामना करना पड़ा है—यथा[1] (१) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की तुलना में यहाँ प्रति व्यक्ति पीछे वार्षिक आय कम है। अतः मोटरों की स्थानीय माँग नहीं है। (२) अन्य देशों में पश्चिमी यूरोप से आयात की गई मोटरों पर अधिक आयात-कर लगाया जाता है—विशेषतः संयुक्त राष्ट्र में। (३) यहाँ अधिकतर मूल्यवान गाड़ियाँ ही बनाई जाती हैं। (४) द्वितीय महायुद्ध काल में इस उद्योग को बड़ी क्षति पहुँची। (५) गैसोलीन के भाव ऊँचे हैं। किंतु अब इन देशों में कइयों में विशेषकर इङ्गलैण्ड, जर्मनी, इटली और फ्रांस में सं० राष्ट्र की कंपनियों की ब्रांचें खुल गई हैं तथा कई देशों में स्वयं के भी कारखाने स्थापित हो चुके हैं। अंतः द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् यहाँ मोटर गाड़ियों का उत्पादन पुनः बढ़ रहा है। यूरोप की मुख्य मोटर कंपनियाँ ये हैं :—

फ्रांस—साइट्रोन (Citroen), रेनोल्ट (Renault) और प्यूगोट (Puegeot)

इङ्गलैंड—मॉरिस (Morris)

इटली—फायट (Fiat)

मोटरों का सबसे अधिक उपयोग सं० राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैण्ड और आस्ट्रेलिया में होता है जहाँ प्रति मोटर पीछे क्रमशः ३, ४ और ५ व्यक्ति उपभोक्ता हैं। यूरोप में सबसे अधिक मोटरें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, स्वीडन, बेलज्यिम आदि देशों में पाई जाती हैं किंतु विश्व में सबसे कम मोटरें चीन, पाकिस्तान, भारत आदि देशों में—उनकी जन संख्या की दृष्टि से—मिलती है। अगली तालिका में प्रमुख देशों में मोटरों की कुल संख्या और प्रति मोटर पीछे मनुष्यों की संख्या बताई गई है :—

१. Jones and Drakenwald : *Ibid*, p. 482-483.

देश	यात्री मोटर	ट्रक	बसें	योग	प्रति मोटर पीछे मनुष्यों की संख्या
		(हजार में)			
सं० राष्ट्र अमेरिका	४६,४६०	६६०६	२४४	५६,३१३	३
कनाडा	२,५२५	८५०	१५	३३६०	४
अर्जेनटाइना	२५७	१४४	१५	४१६	४३
चिली	४६	३६	४	८६	६८
ब्राजील	३३८	२८६	२३	६५०	८४
ब्रिटेन (U. K.)	२,८०८	६६६	७०	३८७४	१३
स्वीडेन	४२८	१०६	८	५४२	१३
फ्राँस	१,८३२	११११०	२८	२६७०	१४
बेल्जियम	३३८	१५७	३	४६८	१६
स्विटजरलैंण्ड	२२२	४२	२	२६६	१८
डेनमार्क	१५८	८५	३	२४६	१८
जर्मनी (प०)	१०४३	४३०	२०	१४६३	३२
इटली	६१४	२६०	१६	६२०	५१
रूस	२२५	२३५०	२५	२६००	७४
जापान	११७	५२८	२८	६७३	१२७
भारत	१५८	८८	३६	२८२	१२६६
पाकिस्तान	२५	८	५	३८	१६८०
चीन	५	६६	६	८०	५८००
द० अफ्रीका संघ	५२१	१४२	४	६६७	१६
मिस्र	७०	१६	४	६०	२३०
आस्ट्रेलिया	११४१	५७८	८	१७२७	५
न्यूजीलैण्ड	३२१	१२०	३	४४४	५
विश्व-योग	६२,५०१	१६,८१८	७३६	८३,०५८	२६

इंग्लैंड में जग विख्यात 'राल्स-रायस (Rolls-Royce) गाड़ियाँ बनाई जाती हैं। यहाँ इस उद्योग के मुख्य केन्द्र कावन्ट्री, वृहत्-लंदन, बर्मिघम, आक्सफोर्ड, एबिंगटन और क्रू हैं। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग ८ लाख गाडियाँ बनाई जाती हैं। सबसे अधिक उत्पादन कावन्ट्री में होता है, जहाँ ११ बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हैं। अतः इसे 'ब्रिटेन का डिट्रायट' कहते हैं।

फ्रांस में 'रैनोल्ट', गाडियाँ पेरिस; इटली में 'फायट' ट्यूरिन; और जर्मनी में 'वॉक्सवैगेन' वूल्फ्सवर्ग में बनाई जाती हैं। रूस में गोर्की, मास्को, गारोस्लेव, मिश्रास ओमस्क, नोवोसीबिरस्क, रास्टॉव तथा नीप्रोपैट्रोवस्क आदि मुख्य केन्द्र हैं।

भारत में मोटर उद्योग

भारतवर्ष में मोटर गाडियाँ बनाने के उद्योग की उन्नति की सम्यक् संभावनाएँ हैं। भारत में औसत रूप से २० करोड़ रुपये से अधिक की मोटरें, मोटर-

साइकलें, बसें और उनके विभिन्न भाग आयात किये जाते हैं। देश में लगभग २½ लाख मोटरगाड़ियाँ हैं। देश के विस्तार और जनसंख्या को देखते हुए यह संख्या बहुत कम है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ३०० लाख, कनाडा में २५ लाख, ग्रेट ब्रिटेन में २५ लाख और फ्रांस में २५ लाख मोटर गाड़ियाँ हैं। इस दृष्टिकोण से भारत की दशा बहुत ही दीन है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा—

प्रति मोटर पीछे जनसंख्या का अनुपात

ग्रेट ब्रिटेन	१५	फ्रांस	१६
कनाडा	८	न्यूजीलैण्ड	४७
सं. रा. अमेरिका	३	ब्राजील	११०
भारत	१,३५०		

भारतीय जनता की आय कम होने तथा उसके रहन-सहन का दर्जा नीचा होने के कारण ही मोटर गाड़ियों की माँग अधिक नहीं है। इसके साथ-साथ दो अन्य असुविधाएँ भी हैं—उत्पादन का अधिक मूल्य तथा सड़कों की हीन और पिछड़ी दशा। भारत में मोटर गाड़ी बनाने के उद्योग की सबसे बड़ी समस्या घरेलू माँग की कमी होना है और इसी कारण देश में इस उद्योग ने वैसी उन्नति नहीं की जैसी अन्य विदेशी राष्ट्रों ने। भारत-सरकार की ओर से इस उद्योग को संरक्षण प्राप्त है किन्तु फिर भी इस उद्योग की आशातीत प्रगति नहीं हो पाई है क्योंकि विदेशों से आयात की गई पुरानी मोटर-गाड़ियाँ तथा डीजल एंजिन की ट्रकों से भी भारतीय उद्योग को प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।

उद्योग के केन्द्र :

कुछ समय पूर्व से ही कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विभिन्न भागों में एकत्रित करके मोटर-गाड़ी तैयार करने का उद्योग शुरू किया गया है। इस समय देश में ७ कारखाने हैं, यथा—३ बम्बई में, १ मद्रास में, २ कलकत्ता में और १ ओखा में। इन केन्द्रों में विदेशी मोटरों के भागों को मिलाकर गाड़ियाँ तैयार की जाती हैं।

कलकत्ता केन्द्र में १९४४ में हिन्दुस्तान मोटर कम्पनी ने काम शुरू किया। इस कम्पनी के पास पूरी मोटर व ट्रक तैयार करने की मशीनें हैं। केवल इन गाड़ियों का शरीर नहीं बन सकता है। ग्रेट ब्रिटेन की मोरिस मोटर कम्पनी तथा संयुक्त राष्ट्र की स्टूडीबेकर कम्पनी के साथ मिलकर 'हिन्दुस्तान' व 'स्टूडीबेकर' गाड़ियाँ भारत में तैयार की जाने की योजना है। कलकत्ता के उत्तर में पारा स्थान पर इस प्रकार के एकत्रीकरण का एक विस्तृत कारखाना बनाया गया है।

बम्बई केन्द्र में भी १९४४ में ही कार्य आरम्भ हुआ था। यहाँ की मुख्य कम्पनी प्रीमीयर ऑटोमोबाईल कम्पनी है। इसका सम्पर्क संयुक्त राष्ट्र की चेस्लर ग्रूप से है। यहाँ मोटर कारें व ट्रकें बनाई जाती हैं।

बर्नपुर और जमशेदपुर में इस उद्योग के लिए विशेष सुविधाएँ हैं। ये दोनों ही स्थान लोह-क्षेत्रों के मध्य में स्थित हैं। यहाँ आयात की हुई मशीनों व

मोटरों के भागों को आसानी से लाया जा सकता है। चूंकि इन केन्द्रों में इन्जीनियरिंग उद्योग पहले से ही स्थापित है इसलिए कुशल मजदूरों को भी प्राप्त किया जा सकता है।

वास्तव में मोटर उद्योग निर्माण व एकत्रीकरण दोनों रीतियों का सम्मिश्रण है। संसार के किसी एक मोटर कारखाने में सभी आवश्यक कल-पुर्जे नहीं बनाये जाते। अतः भारत को भी मोटर गाड़ियों के सभी कल-पुर्जे निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। अस्तु, भारत में भी कुछ भागों को बनाया जा सकता है और अन्य कल-पुर्जों की आवश्यकता आयात द्वारा पूरी की जा सकती हैं। ऐसा अनुमान है कि शीघ्र ही भारतीय उद्योग में मोटर सम्बन्धी ७५ प्रतिशत कल पुर्जे वन सकेंगे। इस समय केवल ८३ कल-पुर्जों में भारत आत्म निर्भर है।

सरकार ने देश में धीरे-धीरे सम्पूर्ण मोटर गाड़ियाँ तैयार करने की नीचे लिखी फर्मों को स्वीकृति दी है। नीचे की तालिका में बताया गया है कि वे किस प्रकार की गाड़ियाँ तैयार करेंगी :—[1]

फर्म का नाम	गाड़ियाँ	ट्रक और यात्री ढोने वाला
(१) हिन्दुस्तान मोटर्स, कलकत्ता	हिन्दुस्तान १४, स्टूडीबेकर; मोरिस माइनर	स्टूडीबेकर
(२) प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स लि० बम्बई	डॉज, डिसोटो, प्लाईमाऊथ, फायट ११००	डॉज, डिसोटो, फाँरगो
(३) स्टैन्डर्ड मोटर प्रोडक्शन्स इण्डिया लि० मद्रास,	स्टैन्डर्ड वानगॉर्ड स्टैन्डर्ड ८	
(४) अशोक लेलैंड लि० मद्रास,		लेलैण्ड (डीजल)
(५) टाटा मर्सीडीज वेंज लि० जमशेदपुर		मर्सीडीज, वेंज (डीजल)
(६) महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा, कं० लि० बम्बई	विलीज जीप	

अभी तक भारत में समूची मोटर गाड़ियों का निर्माण आरम्भ नहीं हुआ है। अभी यह देश में बने पुर्जों और विदेशों से आयात किये गये पुर्जों से बनाई जाती हैं। अगली तालिका में मोटर गाड़ियों का उत्पादन बताया गया है :—

---

१. Major Industries of India Annual : 1954-55 p. 231

वर्ष	कारें	ट्रकें	योग
१६४६	६,६७२	१५,१३२	२१,८०४
१६५०	६,५८८	८,०१६	१४,६०४
१६५१	१२,३८४	६,८८८	२२,२७२
१६५२	६,६४८	८,३४०	१५,२८८
१६५३	४,६३२	८,६८८	१३,६२०
१६५४	५,४३५	६,०७	१४,४६२
१६५५	६,५२८	१३,५६०	२३,०८८

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का भारत में मोटर गाड़ियों आदि के आयात सम्बन्धी आँकड़े दिये गये हैं :—

वर्ष	मोटर गाड़ियों आदि के नीचे के ढांचे	मोटर कारें (टैक्सी गाड़ियों सहित)
	(लाख रुपयों में)	
१६४८-४६	८६२	७६४
१६५०-५१	२६६	३२४
१६५२-५३	२८८	२६६
१६५३-५४	२१५	२८३
१६५४-५५	३२७	६६५
१६५५-५६	७३२	५८६

एञ्जिन बनाने का उद्योग (Locomotive Industry)

विश्व में सबसे अधिक रेल के इंजिन संयुक्त राष्ट्र में ही बनाये जाते हैं। यहाँ तीन प्रमुख कम्पनियाँ एंजिन बनाती हैं— शैनेकटैडी (न्यूयार्क) में; अमेरिकन लोकोमोटिव कं० एडीस्टोन (फिलाडेलफिया) में ; बाल्डविन लोकोमोटिव कं० तथा शिकागो के निकट ला ग्रैन्ज में जनरल मोटर्स कं०। पिट्सबर्ग, लीमा (ओहियो) और स्क्रैंटन में भी छोटे आकार के इंजिन बनाये जाते हैं।

अन्य मुख्य उत्पादक रूस, इंग्लैण्ड, जर्मनी और बेल्जियम तथा इटली है। रूस में इंजिन बनाने के मुख्य कारखाने यूक्रेन में वोरोशिलोवोग्राड, लेनिनग्राड, कोलोमना, गोर्की, ब्रायन्सक, मरीपूल, खारकोव, स्वर्डलोवस्क, नीप्रोजरजिन्सक, तीजा, ओमस्क, तासकंद, चीता, स्वोबोनी आदि हैं।

भारत में रेल के इंजिन बनाने का उद्योग :

भारतीय रेलों का पर्याप्त विकास हुआ है। समस्त देश में ये लगभग ३५,००० मील तक चलती हैं और लगभग ८,६०० इञ्जिन काम में लाती हैं किन्तु कई वर्षों तक भारतीय रेलों को विदेशों से एंजिन आयात करने पड़ते थे। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेलों का विकास आरंभ होने के बाद जी० आई० पी० रेलवे ने जमालपुर और बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे ने अजमेर में रेलवे वर्कशाप स्थापित कर रेल के इञ्जिन बनाने का कार्य आरंभ किया। बहुत शीघ्र ही इस कार्य में सफलता मिली। इसके फलस्वरूप १८८५

और १९२३ के वर्षों में जमालपुर के कारखाने में २१४ बड़ी लाइन के इंजिन और १०३ बॉयलर बनाये गये। इसी प्रकार १८९६ और १९४० के बीच अजमेर के कारखाने में ४४६ इञ्जिन और ३४६ बॉयलर तैयार किये गये, किंतु विदेशी सरकार के इस उद्योग को प्रोत्साहन न देने की नीति के फलस्वरूप यहाँ कार्य बन्द कर दिया गया।

जब प्रथम महायुद्ध के समय इंजिनों का आयात कठिन हो गया तो तत्कालीन सरकार ने भारत में ही इञ्जिनों का बनाना आवश्यक समझ कर एक घोषणा १९२१ में की। अतएव शीघ्र ही १९२१ में पेनिन्सुलर लोकोमोटिव कं० (Peninsular Locomotive Co.) की स्थापना सिंघभूम में इञ्जिन बनाने के लिए की गई। इसका लक्ष्य २०० इञ्जिन प्रति वर्ष बनाने का रखा गया किंतु पुनः सरकार से संरक्षण न मिलने के कारण यह कारखाना सरकार को बेच दिया गया। सरकार ने यह कारखाना ईस्ट इण्डियन रेलवे को दे दिया। यहाँ निचले ढांचों का उत्पादन आरम्भ किया गया, किंतु शीघ्र ही कारखाना आर्डर न मिलने से बन्द करना पड़ा। द्वितीय महायुद्ध में सुरक्षा विभाग ने सैनिक गाड़ियों के उत्पादन के लिये यह कारखाना ले लिया। युद्ध की समाप्ति पर यह कारखाना टाटा कंपनी को बेच दिया गया जिसने १९४५ में टाटा इञ्जिनियरिङ्ग और लोकोमोटिव कं० के नाम से नया कारखाना आरंभ किया। इस कंपनी का लक्ष्य प्रति वर्ष १०० इञ्जिन और १०० बॉयलर तैयार करने का रखा गया है।

युद्ध की समाप्ति पर सरकार ने एक और कारखाना खोलने का निश्चय किया। फलस्वरूप चांदमारी नामक स्थान इसके लिए चुना गया किंतु विभाजन हो जाने से यह आवश्यक समझा गया कि इस स्थान को न चुन कर मिहीजाम को चुना जाय क्योंकि यह पाकिस्तान की सीमा के वहुत समीप था। इसी स्थान पर १९४८ में कार्य आरम्भ किया गया और २६ जनवरी १९५० को कारखाना चालू कर दिया गया। आरम्भ में इस कारखाने का लक्ष्य प्रतिवर्ष १२० औसत आकार के इञ्जिन और ५० बॉयलर तैयार करने का रखा गया किंतु अब यह लक्ष्य क्रमशः ३०० इंज़िन और १०० बॉयलर बनाने का रखा गया है। इस कारखाने का नाम चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स रखा गया। यहाँ १९५० से ही W. G. इंजिन तैयार किये जा रहे हैं जो भारी किस्म के होते हैं और बड़ी लाइनों पर माल ले जाने वाली गाड़ी में प्रयुक्त किये जाते हैं। ये इञ्जिन ७८ फुट लम्बे होते हैं तथा खाली इंजिन का वजन १२४ टन और पानी तथा कोयले सहित १७४ टन होता है। इन इंजिनों में ५,३०० से अधिक हिस्से होते हैं. अब इनमें से ४४०० से अधिक हिस्से यहीं बनाये जाते हैं। शेष विदेशों से आयात किये जाते हैं। आरंभ में प्रति इंजिन ७·५ लाख रुपये की लागत का बना किंतु अब यह लागत ५ लाख तक ही आती है।

चितरंजन में इस कार्य के लिये निम्न सुविधाएँ उपलब्ध हैं :—

(१) यह पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्र से केवल १० मील पर स्थित है।

(२) दामोदर घाटी योजना से पानी और जल-विद्युत शक्ति भी सुगमतापूर्वक प्राप्त की जा सकेगी।

वर्ष	कारें	ट्रकें	योग
१९४९	६,६७२	१५,१३२	२१,८०४
१९५०	६,५८८	८,०१६	१४,६०४
१९५१	१२,३८४	९,८८८	२२,२७२
१९५२	६,९४८	८,३४०	१५,२८८
१९५३	४,९३२	८,९८८	१३,९२०
१९५४	५,४३५	९,०.७	१४,४६२
१९५५	९,५२८	१३,५६०	२३,०८८

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का भारत में मोटर गाड़ियों आदि के आयात सम्बन्धी आँकड़े दिये गये हैं :—

वर्ष	मोटर गाड़ियों आदि के नीचे के ढांचे	मोटर कारें (टैक्सी गाड़ियों सहित)
	(लाख रुपयों में)	
१९४८-४९	८९२	७६४
१९५०-५१	२६६	३२४
१९५२-५३	२८८	२९६
१९५३-५४	२१५	२८३
१९५४-५५	३२७	६६५
१९५५-५६	७३२	५८९

एञ्जिन बनाने का उद्योग (Locomotive Industry)

विश्व में सबसे अधिक रेल के इंजिन संयुक्त राष्ट्र में ही बनाये जाते हैं। यहाँ तीन प्रमुख कम्पनियाँ एंजिन बनाती हैं— शैनेकटैडी (न्यूयार्क) में; अमेरिकन लोकोमोटिव कं० एडीस्टोन (फिलाडेलफिया) में; बाल्डविन लोकोमोटिव कं० तथा शिकागो के निकट ला ग्रेन्ज में जनरल मोटर्स कं०। पिट्सबर्ग, लीमा (ओहियो) और स्क्रेंटन में भी छोटे आकार के इंजिन बनाये जाते हैं।

अन्य मुख्य उत्पादक रूस, इंग्लैण्ड, जर्मनी और बेल्जियम तथा इटली हैं। रूस में इंजिन बनाने के मुख्य कारखाने यूक्रेन में वोरोशिलोवोग्राड, लेनिनग्राड, कोलोमना, गोर्की, ब्रायन्सक, मरीपूल, खारकोव, स्वर्डलोवस्क, नीप्रोजरजिन्सक, तीजा, ओमस्क, तासकंद, चीता, स्वोवोनी आदि हैं।

भारत में रेल के इंजिन बनाने का उद्योग :

भारतीय रेलों का पर्याप्त विकास हुआ है। समस्त देश में ये लगभग ३५,००० मील तक चलती हैं और लगभग ८,६०० इञ्जिन काम में लाती हैं किंतु कई वर्षों तक भारतीय रेलों को विदेशों से एंजिन आयात करने पड़ते थे। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेलों का विकास आरंभ होने के बाद जी० आई० पी० रेलवे ने जमालपुर और बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे ने अजमेर में रेलवे वर्कशाप स्थापित कर रेल के इञ्जिन बनाने का कार्य आरंभ किया। बहुत शीघ्र ही इस कार्य में सफलता मिली। इसके फलस्वरूप १८८५

और १९२३ के वर्षों में जमालपुर के कारखाने में २१४ बड़ी लाइन के इंजिन और १०३ बॉयलर बनाये गये। इसी प्रकार १८९६ और १९४० के बीच अजमेर के कारखाने में ४४६ इञ्जिन और ३४६ बॉयलर तैयार किये गये, किंतु विदेशी सरकार के इस उद्योग को प्रोत्साहन न देने की नीति के फलस्वरूप यहाँ कार्य बन्द कर दिया गया।

जब प्रथम महायुद्ध के समय इंजिनों का आयात कठिन हो गया तो तत्कालीन सरकार ने भारत में ही इञ्जिनों का बनाना आवश्यक समझ कर एक घोषणा १९२१ में की। अतएव शीघ्र ही १९२१ में पेनिन्सुलर लोकोमोटिव कं० (Peninsular Locomotive Co.) की स्थापना सिंघभूम में इञ्जिन बनाने के लिए की गई। इसका लक्ष्य २०० इञ्जिन प्रति वर्ष बनाने का रखा गया किंतु पुनः सरकार से संरक्षण न मिलने के कारण यह कारखाना सरकार को बेच दिया गया। सरकार ने यह कारखाना ईस्ट इण्डियन रेलवे को दे दिया। यहाँ निचले ढांचों का उत्पादन आरम्भ किया गया, किंतु शीघ्र ही कारखाना आर्डर न मिलने से बन्द करना पड़ा। द्वितीय महायुद्ध में सुरक्षा विभाग ने सैनिक गाड़ियों के उत्पादन के लिये यह कारखाना ले लिया। युद्ध की समाप्ति पर यह कारखाना टाटा कंपनी को बेच दिया गया जिसने १९४५ में टाटा इञ्जिनियरिङ्ग और लोकोमोटिव कं० के नाम से नया कारखाना आरंभ किया। इस कंपनी का लक्ष्य प्रति वर्ष १०० इञ्जिन और १०० बॉयलर तैयार करने का रखा गया है।

युद्ध की समाप्ति पर सरकार ने एक और कारखाना खोलने का निश्चय किया। फलस्वरूप चांदमारी नामक स्थान इसके लिए चुना गया किंतु विभाजन हो जाने से यह आवश्यक समझा गया कि इस स्थान को न चुन कर मिहीजाम को चुना जाय क्योंकि यह पाकिस्तान की सीमा के बहुत समीप था। इसी स्थान पर १९४८ में कार्य आरम्भ किया गया और २६ जनवरी १९५० को कारखाना चालू कर दिया गया। आरम्भ में इस कारखाने का लक्ष्य प्रतिवर्ष १२० औसत आकार के इञ्जिन और ५० बॉयलर तैयार करने का रखा गया किंतु अब यह लक्ष्य क्रमशः ३०० इंजिन और १०० बॉयलर बनाने का रखा गया है। इस कारखाने का नाम चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स रखा गया। यहाँ १९५० से ही W. G. इंजिन तैयार किये जा रहे हैं जो भारी किस्म के होते हैं और बड़ी लाइनों पर माल ले जाने वाली गाड़ी में प्रयुक्त किये जाते हैं। ये इञ्जिन ७८ फुट लम्बे होते हैं तथा खाली इंजिन का वजन १२४ टन और पानी तथा कोयले सहित १७४ टन होता है। इन इंजिनों में ५,३०० से अधिक हिस्से होते हैं. अब इनमें से ४४०० से अधिक हिस्से यहीं बनाये जाते हैं। शेष विदेशों से आयात किये जाते हैं। आरंभ में प्रति इंजिन ७·५ लाख रुपये की लागत का बना किंतु अब यह लागत ५ लाख तक ही आती है।

चितरंजन में इस कार्य के लिये निम्न सुविधाएँ उपलब्ध हैं :—

(१) यह पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्र से केवल १० मील पर स्थित है।

(२) दामोदर घाटी योजना से पानी और जल-विद्युत शक्ति भी सुगमतापूर्वक प्राप्त की जा सकेगी।

(३) यह टाटा और भारतीय लोहे व स्पात के कारखानों के भी निकट है।

(४) यहाँ संथाल परगना क्षेत्र से सस्ते व मजबूत श्रमिक मिल सकते हैं।

(५) कलकत्ता से केवल १४५ मील दूर होने से इङ्गलैंड व अमेरिका से आवश्यक हिस्से सुगमता से प्राप्त किये जा सकते हैं :—

नीचे की तालिका में उपरोक्त दोनों कारखानों का लक्ष्य, वास्तविक उत्पादन और विदेशों से आयात किये गये इंजिनों का विवरण दिया गया है :—[1]

	चितरंजन		टैल्को		
वर्ष	लक्ष्य	उत्पादन	लक्ष्य	उत्पादन	आयात
१९५१–५२	२०	१७	७	१०	६३
१९५२–५३	३२	३३	३०	३०	१५०
१९५३–५४	५२	६४	३३	२२	६१
१९५४–५५	७२	९८	५०	४७	२४७
१९५५–५६	९२	१२९	५०	५०	४८१
योग	२६८	३४१	१७०	१५९	१,०९२
१९६०–६१ का लक्ष्य	३००	—	१००	—	—

डीजल इञ्जिन (Diesel Engines)

डीजल इञ्जिन का आविष्कार सन् १८९२ में डा० रूडाल्फ डीजल ने किया था। ये इञ्जिन विभिन्न प्रकार के पम्प चलाने, छोटे बड़े पैमाने पर बिजली तैयार करने, रेल के डिब्बे काटने तथा बड़ी लाइनों के इञ्जिन चलाने और सभी प्रकार के जलयानों को चलाने के काम आते हैं। व्यापारिक परिवहन, खेती के काम में आने वाले ट्रैक्टर तथा मिट्टी हटाने के यंत्रों और सड़क बनाने की मशीनें चलाने के लिए डीजल इंजिन से बढ़िया कोई भी चालक नहीं है। इसका सबसे बड़ा गुण है ईंधन पर कम खर्च होना।

भारत में डीजल इञ्जिन बनाने का कारखाना १९३२ में पूना के निकट सितारा में स्थापित हुआ था। द्वितीय महायुद्ध के बाद इसकी माँग बहुत अधिक बढ़ी। १९५१ में डीजल इञ्जिन के कारखानों की संख्या ५ थी जिनकी स्थापित अधिकतम उत्पादन क्षमता ६,३२५ इञ्जिन प्रतिवर्ष बनाने की थी। १९५५ में यह संख्या १७ और उत्पादन क्षमता २२,००० इञ्जिन प्रतिवर्ष की थी।

भारत में तीन प्रकार के डीजल इञ्जिन बनाये जाते हैं : (१) कम अश्वशक्ति वाले जो ३ अश्व शक्ति तक के होते हैं; (२) मध्यम अश्व शक्ति वाले जो ३ से ५.० अश्व शक्ति के होते हैं, और (३) ऊँची अश्व शक्ति वाले जो ५० से भी अधिक अश्व शक्ति के होते हैं। भारत में ३ से ५.० अश्व शक्ति बनाने वाले १७ कारखाने हैं जो बम्बई, पूना, सतारा, कोल्हापुर, दिल्ली, कोयम्बटूर, अम्बाला, कलकत्ता, अहमदाबाद, राजकोट, फरीदाबाद में हैं।

---

१. उद्योग व्यापार पत्रिका : दिसम्बर १९५६, पृ. ५८२-५८३.

शक्ति चालित पम्प (Power-Pumps) बनाने वाले भारत में २७ कारखाने हैं जिनकी स्थापित उत्पादन क्षमता लगभग ६५,००० पम्प वार्षिक है। इस प्रकार के पम्प किर्लोस्कखाड़ी, कोयम्बटूर, सतारा, बड़ौदा, ईडाथारा, अहमदाबाद, बम्बई, हावड़ा, कोल्हापुर, कलकत्ता, मेरठ, दिल्ली, गाजियाबाद, खंडवा और मद्रास में बनाये जाते हैं।

डीजल इञ्जिन और पम्पों का उत्पादन इस प्रकार है :—

	उत्पादन १९५६	आयात १९५५	द्वितीय योजना में लक्ष्य
डीजल इञ्जिन	१,५४,८८०	७'६ करोड़ रु०	२,०५,०००
शक्ति चालित पंप	५६,१८०	१'८ ,,	८६,०००

विद्युत मोटरें (Electric Motors) :

भारत में विद्युत मोटरें बनाने के १२ कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता १९५४ में २,६३,००० अश्व शक्ति थी। इस उद्योग का राज्यों के अनुसार वितरण इस प्रकार है :—

	संख्या	वार्षिक उत्पादन (अश्व शक्ति)
पश्चिमी बंगाल	५	७५,५००
बम्बई	४	१,२४,०००
मद्रास	२	१३,५००
मैसूर	१	५०,०००
योग	१२	२,६३,०००

प्रयोग की विविधता और उपलब्ध बिजली की किस्म के अनुसार विद्युत् मोटर प्रायः दो प्रकार की होती हैं : (१) डी० सी० बिजली के मोटर और (२) ए० सी० बिजली के मोटर। नीचे की तालिका में विद्युत मोटरों के उत्पादन और आयात के आंकड़े दिये गये हैं :—

वर्ष	उत्पादन (००० अश्व शक्ति में)	आयात (लाख रु० में)
१९५०–५१	९९'०	१४१'०
१९५२–५३	१६०'०	१२२'६
१९५४–५५	२०१'०	१३८'८
१९५५–५६	२७१'०	—

भारत में ए० सी० विद्युत मोटरों की माँग ३२०,००० और ३३०,००० अश्व शक्ति के बीच में अनुमानित की गई है। १९६०–६१ तक २०० अश्व शक्ति तक के विद्युत मोटरों की माँग ६ लाख अश्व शक्ति तक पहुँच जायगी। इतना उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने के लिए ७,५०० टन कच्चा लोहा और लोहे की ढली वस्तुएँ ; ७,५०० टन हल्के स्पात की विद्युत चादरें, १,१२० टन हल्के स्पात की छड़ें, सरिये और चादरें ; ९५० टन ताँबे के तार, पट्टियाँ, पिंड और अल्यूमीनियम के पिंड ; १,५०,००० बॉल बियरिंग ; ७५ टन विसंवाहक

पदार्थ और ३०,००० गैलन विसंवाहक रङ्गलेप और वारनिश की आवश्यकता होगी। इनमें से कच्चा लोहा, लोहे की ढली हुई वस्तुएँ, हल्की स्पात की छड़ें, सरियें और चादरें, बाल बियरिंग भारत में ही उपलब्ध हैं। अन्य पदार्थ विदेशों से आयात करने पड़ते हैं। स्पात उद्योग की विस्तार योजनाओं के अंतर्गत सिलीकन स्पात की चादरें भी भारत में ही उपलब्ध हो सकेंगी।

मशीन-उद्योग (Machine Industry)

मशीन टूल्स (Machine Tools) :

लोहे और स्पात के उद्योग से सम्बन्धित ही मशीन टूल्स बनाने का उद्योग भी है। बड़े-बड़े कारखानों में लोहे और स्पात के पिंड, छड़ें, रेलें, तथा चादरें बनाने से ही इस उद्योग की समाप्ति नहीं हो जाती। यद्यपि इनमें से कई तैयार माल के रूप में निकलती हैं किन्तु लोहे और स्पात के पिंड कई अन्य उद्योगों के लिए कच्चे माल का काम देते हैं। अतः इन से जो अन्य वस्तुएँ बनाई जाती हैं उन उपकरणों को ही मशीन-टूल्स कहते हैं। इनके द्वारा अनेक प्रकार की नई मशीनें बनाई जाती हैं। 'मशीन टूल एक प्रकार का शक्ति चालित यंत्र होता है जो धातु को काट कर एक विशिष्ट रूप देने के कार्य में प्रयुक्त होता है।'[1]

मशीन टूल दो प्रकार के होते : (१) विशेष प्रयोजन के लिए काम में आने वाले—जैसे मोटर गाड़ी के एक्सिल बनाने वाली मशीन जो एक घन्टे में १५० एक्सिल तैयार करती है। (२) साधारण प्रयोजन वाली मशीनें जो विभिन्न प्रकार की वस्तुऐं मिलींग और प्लानिंग मशीनें बनाने के काम आती हैं। विश्व में सबसे अधिक मशीन-टूल्स बनाने के क्षेत्र पश्चिमी यूरोप और उत्तर-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही हैं। इन दोनों क्षेत्रों के अतिरिक्त अब रूस और जापान में भी इस उद्योग की काफी उन्नति हुई है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही विश्व में सबसे ज्यादा मशीन-टूल बनाये जाते हैं क्योंकि (i) यहाँ लोहे और स्पात का उद्योग बड़ा विकसित है (ii) कच्चा लोहा और अन्य धातु पदार्थ तथा कोयला और जल-विद्युत शक्ति काफी बड़ी मात्रा में उपलब्ध है, (iii) यहाँ विज्ञान का विकास कई दिशाओं में हुआ है, (iv) यहाँ कुशल और दक्ष कारीगर बहुतायत से मिलते हैं। इन कारणों से न्यू-इंग्लैंड स्टेट्स में ही सबसे प्रथम यह उद्योग स्थापित हुआ। यहाँ के प्रसिद्ध केन्द्र वरसेस्टर, फालरिवर, ब्रिजपोर्ट, न्यू ब्रिटेन हार्टफोर्ड और प्रोविडेन्स हैं। संयुक्त राष्ट्र में मशीन टूल्स के कुल उत्पादन का लगभग ६०% सात बड़ी रियासतों से प्राप्त होता है। ये क्रमशः ओहियो, मिशीगन, मैसेचुसेट्स, कनैक्टीकट, इलिनियॉस, रोड द्वीप और न्यूयार्क। अब नये कारखाने डिट्रायट क्षेत्र में ही स्थापित किये जा रहे हैं क्योंकि मशीन टूल्स की यहाँ मोटर उद्योग में बड़ी माँग है। यहाँ

[1] "A machine tool is a power-driven complete metal-working machine not portable by hand that is used to cut or shape metal—"Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 433.

के प्रमुख केन्द्र क्लीवलैण्ड, सिडनी, डेटन, ओहियो, मिलवाकी, मैडीसन, शिकागो और इंडियानापोलिस हैं। यहाँ से कुल उत्पादन का लगभग ३०% ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, ब्राजील, मैक्सिको, अर्जेनटाइना आदि देशों को निर्यात किया जाता है।

पश्चिमी यूरोपीय देशों में भी उत्तम कारीगर अधिक मिलने से यह उद्योग पूर्ण विकसित है। सबसे प्रमुख देश जर्मनी है जहाँ विश्व में संयुक्त राष्ट्र के बाद सबसे अधिक मशीन टूलस बनाये जाते हैं। यहाँ के कारखाने-रूर-राईन क्षेत्र में स्थित हैं। चिमनीज, डसलडर्फ, कोलोन, फ्रैंकफर्ट, लिपजींग और ड्रेस्डन यहाँ के प्रमुख केन्द्र हैं।

इंग्लैण्ड, रूस, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड तथा बेल्जियम में भी उत्तम प्रकार के मशीन टूलस बनाये जाते हैं।

औद्योगिक मशीनें (Industrial Machinery)—मशीन-टूलस के अतिरिक्त विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों में औद्योगिक मशीनें भी बनाई जाती हैं। नीचे के चार्ट में मुख्य-मुख्य प्रकार की मशीनें और उनके उत्पादक देश बताये गये हैं:—

सूतीवस्त्र उद्योग की मशीनें (Cotton Textile Machinery) :

(१) इंग्लैंड—मानचेस्टर, बोल्टन, लंकाशायर क्षेत्र के नगर।

(२) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—वरमेस्टर, लॉवेल, हाइड पार्क, ह्विटीन्स-विले, फिलाडेलफिया।

ऊनी वस्त्र उद्योग की मशीनें :

इंग्लैण्ड में ब्रेडफोर्ड, लीड्स, यार्कशायर के नगर।

जूट उद्योग की मशीनें :

डंडी और बेलफास्ट में।

हॉजियरी मशीनें :

नाटिंघम और लीसेस्टर।

अन्य देश जहाँ वस्त्र उद्योगों के लिए मशीनें बनाई जाती हैं वे उत्तरी फ्रांस, बेल्जियम पश्चिमी जर्मनी, उत्तरी इटली, स्विटजरलैण्ड, रूस, जापान और भारत (कोयम्बटूर, बम्बई, सतारा कलकत्ता, जमशेदपुर आदि हैं)।

कृषि की मशीनें (Farm Machinery)—ज्यों-ज्यों कृषि की विधि में उन्नति होती गई त्यों-त्यों भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने और समय बचाने के लिए कई प्रकार की मशीनों का आविष्कार होता गया। इन मशीनों के फलस्वरूप अब उन्नत देशों में जुताई से लेकर फसल की कटाई तक का सारा काम मशीनों से किया जाने लगा है। मुख्य खेती की मशीनें ये हैं—

(१) कम्बाइन हारवेस्टर (Combine Harvester)—जिससे फसल कट कर इकट्ठी हो जाती है।

(२) लैंड पडलर (Land Puddler)—इसका उपयोग अधिकतर चावल की खेती में पानी के भीतर खेत करने के लिये किया जाता है।

पदार्थ और ३०,००० गैलन विसंवाहक रङ्गलेप और वारनिश की आवश्यकता होगी। इनमें से कच्चा लोहा, लोहे की ढली हुई वस्तुएँ, हल्की स्पात की छड़ें, सरियें और चादरें, वाल वियरिंग भारत में ही उपलब्ध हैं। अन्य पदार्थ विदेशों से आयात करने पड़ते हैं। स्पात उद्योग की विस्तार योजनाओं के अंतर्गत सिलीकन स्पात की चादरें भी भारत में ही उपलब्ध हो सकेंगी।

मशीन-उद्योग (Machine Industry)

मशीन टूल्स (Machine Tools) :

लोहे और स्पात के उद्योग से सम्बन्धित ही मशीन टूल्स बनाने का उद्योग भी है। बड़े-बड़े कारखानों में लोहे और स्पात के पिंड, छड़ें, रेलें, तथा चादरें बनाने से ही इस उद्योग की समाप्ति नहीं हो जाती। यद्यपि इनमें से कई तैयार माल के रूप में निकलती हैं किन्तु लोहे और स्पात के पिंड कई अन्य उद्योगों के लिए कच्चे माल का काम देते हैं। अतः इन से जो अन्य वस्तुएँ बनाई जाती हैं उन उपकरणों को ही मशीन-टूल्स कहते हैं। इनके द्वारा अनेक प्रकार की नई मशीनें बनाई जाती हैं। 'मशीन टूल एक प्रकार का शक्ति चालित यंत्र होता है जो धातु को काट कर एक विशिष्ट रूप देने के कार्य में प्रयुक्त होता है।'[1]

मशीन टूल दो प्रकार के होते : (१) विशेष प्रयोजन के लिए काम में आने वाले—जैसे मोटर गाड़ी के एक्सिल बनाने वाली मशीन जो एक घन्टे में १५० एक्सिल तैयार करती है। (२) साधारण प्रयोजन वाली मशीनें जो विभिन्न प्रकार की वस्तुऐं मिलींग और प्लानिंग मशीनें बनाने के काम आती हैं। विश्व में सबसे अधिक मशीन-टूल्स बनाने के क्षेत्र पश्चिमी यूरोप और उत्तर-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही हैं। इन दोनों क्षेत्रों के अतिरिक्त अब रूस और जापान में भी इस उद्योग की काफी उन्नति हुई है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही विश्व में सबसे ज्यादा मशीन-टूल बनाये जाते हैं क्योंकि (i) यहाँ लोहे और स्पात का उद्योग बड़ा विकसित है (ii) कच्चा लोहा और अन्य धातु पदार्थ तथा कोयला और जल-विद्युत शक्ति काफी बड़ी मात्रा में उपलब्ध है, (iii) यहाँ विज्ञान का विकास कई दिशाओं में हुआ है, (iv) यहाँ कुशल और दक्ष कारीगर बहुतायत से मिलते हैं। इन कारणों से न्यू-इंग्लैंड स्टेट्स में ही सबसे प्रथम यह उद्योग स्थापित हुआ। यहां के प्रसिद्ध केन्द्र वरसेस्टर, फालरिवर, ब्रिजपोर्ट, न्यू ब्रिटेन हार्टफोर्ड और प्रोविडैन्स हैं। संयुक्त राष्ट्र में मशीन टूल्स के कुल उत्पादन का लगभग ६०% सात बड़ी रियासतों से प्राप्त होता है। ये क्रमशः ओहियो, मिशीगन, मैसेचुसेट्स, कनैक्टीकट, इलिनियॉस, रोड द्वीप और न्यूयार्क। अब नये कारखाने डिट्रायट क्षेत्र में ही स्थापित किये जा रहे है क्योंकि मशीन टूल्स की यहाँ मोटर उद्योग में बड़ी माँग है। यहाँ

---

[1] "A machine tool is a power-driven complete metal-working machine not portable by hand that is used to cut or shape metal—"Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 433.

के प्रमुख केन्द्र क्लीवलैण्ड, सिडनी, डेटन, ओहियो, मिलवाकी, मैडीसन, शिकागो और इंडियानापोलिस हैं। यहाँ से कुल उत्पादन का लगभग ३०% ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, ब्राजील, मैक्सिको, अर्जेनटाइना आदि देशों को निर्यात किया जाता है।

पश्चिमी यूरोपीय देशों में भी उत्तम कारीगर अधिक मिलने से यह उद्योग पूर्ण विकसित है। सबसे प्रमुख देश जर्मनी है जहाँ विश्व में संयुक्त राष्ट्र के बाद सबसे अधिक मशीन टूल्स बनाये जाते हैं। यहाँ के कारखाने-रूर-राईन क्षेत्र में स्थित हैं। चिमनीज, डसलडर्फ, कोलोन, फ्रैंकफर्ट, लिपजींग और ड्रेस्डन यहाँ के प्रमुख केन्द्र हैं।

इंग्लैण्ड, रूस, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड तथा बेल्जियम में भी उत्तम प्रकार के मशीन टूल्स बनाये जाते हैं।

औद्योगिक मशीनें (Industrial Machinery)—मशीन-टूल्स के अतिरिक्त विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों में औद्योगिक मशीनें भी बनाई जाती हैं। नीचे के चार्ट में मुख्य-मुख्य प्रकार की मशीनें और उनके उत्पादक देश बताये गये हैं:—

सूतीवस्त्र उद्योग की मशीनें (Cotton Textile Machinery) :

(१) इंग्लैंड—मानचेस्टर, बोल्टन, लंकाशायर क्षेत्र के नगर।

(२) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—वरसेस्टर, लॉवेल, हाइड पार्क, ह्विटीन्स-विले, फिलाडेलफिया।

ऊनी वस्त्र उद्योग की मशीनें :

इंग्लैण्ड में ब्रेडफोर्ड, लीड्स, यार्कशायर के नगर।

जूट उद्योग की मशीनें :

डंडी और बेलफास्ट में।

हॉजियरी मशीनें :

नाटिंघम और लीसेस्टर।

अन्य देश जहाँ वस्त्र उद्योगों के लिए मशीनें बनाई जाती हैं वे उत्तरी फ्रांस, बेल्जियम पश्चिमी जर्मनी, उत्तरी इटली, स्विटजरलैण्ड, रूस, जापान और भारत (कोयम्बटूर, बम्बई, सतारा कलकत्ता, जमशेदपुर आदि हैं)।

कृषि की मशीनें (Farm Machinery)—ज्यों-ज्यों कृषि की विधि में उन्नति होती गई त्यों-त्यों भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने और समय बचाने के लिए कई प्रकार की मशीनों का आविष्कार होता गया। इन मशीनों के फलस्वरूप अब उन्नत देशों में जुताई से लेकर फसल की कटाई तक का सारा काम मशीनों से किया जाने लगा है। मुख्य खेती की मशीनें ये हैं—

(१) कम्बाइन हारवेस्टर (Combine Harvester)—जिससे फसल कट कर इकट्ठी हो जाती है।

(२) लैंड पडलर (Land Puddler)—इसका उपयोग अधिकतर चावल की खेती में पानी के भीतर खेत करने के लिये किया जाता है।

(३) विनोअर्स (Winnowers)—अनाज और भूसा अलग-अलग करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इस यंत्र के घूमते हुए पंखे इस काम के लिऐ हवा उत्पादन करते हैं।

(४) थ्रैशर (Thresher)—इसकी सहायता से भूसे से अन्न अलग किया जाता है।

(५) बीज बिखेरने वाला यंत्र—यह यंत्र पंक्तियों में नालियाँ खोदता है, उनमें बीज डालता है और उन्हें मिट्टी से ढकता है ताकि उन्हें पक्षी न चुगलें।

(६) डिस्क हैरोज और कल्टीवेटर (Disc Harrows और Cultivator)—इन दोनों यंत्रों द्वारा जुती हुई जमीन के ढेले तोड़े जाते हैं।

(७) खादवितरक यंत्र द्वारा उचित रीति से कम खर्च पर खेतों में खाद बिखेरा जाता है।

(८) कुट्टी काटने वाला यंत्र—भूसे की कुट्टी काटने में काम आता है।

(९) ट्रैक्टर (Tractor)—भूमि को समतल बनाने में काम आता है।

(१०) कपास चुनने वाली मशीनें (Cotton picking machines)—कपास के डोडों को चुनने के लिए व्यवहृत की जाती हैं।

इनके अतिरिक्त चाय की पत्ती तैयार करने वाली मशीनें, तेल पेरने, चावल कूटने, दाल और आटा तैयार करने आदि की मशीनें भी मुख्य हैं।

कृषि की मशीनों के मुख्य उत्पादक केन्द्र ये हैं :—

संयुक्त राष्ट्र—शिकागो, पिट्सबर्ग, स्प्रिंगफील्ड, मिलवाकी, रैसीन, साउथ बेंड, मोलीन. रॉक आइलैंड, डैवनपोर्ट, मिनियापालिस।

इंग्लैंड —लीड्स, न्यूवार्क, डनकॉस्टर, डैगनहम, ग्रैंथम, डिल मारनॉक।

रूस —टैक्टर के कारखाने—खारकोव, लैनिनग्रॉड, चैलिया, विन्सक।

हारवेस्टर कम्बाइन—जपोरोभ्फ, रास्टोव-आनडोव, सैरेटोव, ल्यूबरटसी।

रुई चुनने की मशीन—ताशकन्द।

जर्मनी —डसलडर्फ, मागडेलबर्ग, लिपजीग, आग्सबर्ग ।

भारत में मशीन उद्योग :

भारत में इस उद्योग का विकास लगभग १९३५ में हुआ, जब कुछ प्रमुख फर्मों ने मशीनी औजारों के निर्माण की ओर ध्यान दिया। युद्ध के समय १९३९ से १९४५ तक भारत में लगभग २०,००० मशीनी औजार बनाये गये जिनका मूल्य लगभग ६ करोड़ रुपये था। इस अवधि में २८,००० मशीनी औजार आयात किये गये जिनका मूल्य २३·६ करोड़ रुपये था। सुव्यवस्थित ढंग से इस उद्योग का विकास १९४६ में हुआ जब कलकत्ता की एक फर्म ने वस्त्र मिलों के लिये स्पिनिंग फ्रेम बनाने आरम्भ किये।

इस समय भारत में वस्त्र उद्योग की मशीनें ही अधिक बनाई जा रही हैं। इनके उत्पादक केन्द्र बम्बई, कलकत्ता, कोयम्बटूर, ग्वालियर, बंगलोर और सतारा हैं। कताई, धुनाई और कपड़ा बुनने की मशीनों का उत्पादन इस प्रकार है (१९५४) :—

कताई की मशीनें	३५८
धुनाई की मशीनें	४३६
बुनाई की मशीनें	१८७०

जूट उद्योग, चीनी उद्योग और चाय उद्योग की मशीनें कलकत्ता में बनाई जाती हैं। भारत में विभिन्न प्रकार की मशीनें बनाने की काफी गुंजाइश है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में वस्त्र, जूट, चीनी, सीमेंट और कागज बनाने के उद्योगों का बड़े पैमाने पर विस्तार तथा आधुनीकरण किया जायगा, अतः इनके लिए नई मशीनों की आवश्यकता होगी।

अध्याय ३०

वस्त्र उद्योग

(Textile Industry)

उद्योग का विकास :

आदि काल से ही अपना तन ढकने के लिए मनुष्य ने विभिन्न प्रकार के वृक्षों और पशुओं के रेशे और बालों से धागे बनाकर वस्त्र बुनना सीख लिया था। ज्यों-ज्यों मानव-सभ्यता का विकास होता गया त्यों-त्यों वस्त्र कातने और बुनने की कुशलता कला रूप में परिणत होती गई। लिनेन के बने कपड़े प्रागैतिहासिक युग में स्विटजरलैंड के गाँवों में पाये गये हैं तथा ५५०० वर्ष पूर्व मिस्र में शव भी इन्हीं वस्त्रों में लिपटे हुए पाये गये हैं। इसी प्रकार ५००० वर्ष पूर्व भारत में भी कपास से सूती वस्त्र बनाये जाते थे जिसका प्रमाण आज भी मोहनजोदड़ो और उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में की गई खुदाई से प्राप्त होता है। ऊनी वस्त्र बनाने का उद्योग रोम में और रेशम के वस्त्रों का उद्योग चीन में बहुत ही पुराने काल से होता आया है।[1]

(क) सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Industry)

आरम्भ में वस्त्र उद्योग घरेलू और कुटीर उद्योग के रूप में किया जाता था जिसमें कारीगर की कुशलता का महत्व बहुत अधिक था। भारत में सूती वस्त्र व्यवसाय बहुत प्राचीन है। यहां उत्तम प्रकार के बारीक और महीन कपड़े बनाये जाते थे जिनकी मांग विश्व के अधिकांश देशों में थी। चीन में भी यह उद्योग बहुत प्राचीन काल से चालू रहा है, किन्तु इसका महत्व यूरोप से बहुत दूर होने के कारण बहुत कम था। यूरोप में सूती वस्त्र उद्योग आरम्भ करने का श्रेय मूर लोगों को है। १७ वीं शताब्दी तक इंग्लैंड में भी इस उद्योग का विकास नहीं हुआ था क्योंकि तब तक उस देश में ऊनी कपड़ा उद्योग पर ही अधिक ध्यान दिया जाता था। इसका मुख्य कारण वहां ऊन का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना था। किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप इङ्गलैण्ड में वस्त्र उद्योग में बड़ा विकास हुआ जिसके फलस्वरूप अब कपड़ा मशीनों द्वारा बनाया जाने लगा। सन् १७३३ में Flying Shuttle के आविष्कार से कपड़ा चौड़ा और सरलता से बुना जाने लगा। इसके लिए अधिक मजबूत धागे की आवश्यकता पड़ने लगी। सन् १७६० में हारग्रीव्स ने कार्डिंग

---

1. W. S. and S. E. Woytinsky : Population and World Production—Trends and Outlook, 1953, p. 597.

मशीन (Carding Machine) तथा सन् १७६४ में 'Spinning Jenny' का और सन् १७.७ में आर्कराइट ने 'Spinning Jenny' और सन् १७६८ में 'Water Frame' नामक कताई की मशीनों का आविष्कार किया जिनके फलस्वरूप धागा उत्तम और सूत मजबूत काता जाने लगा। सन् १७७६ में क्रॉम्पटन ने 'Spinning Mill' का आविष्कार किया जिसमें एक श्रमिक १०० तकुओं को देख सकता था और प्रतिदिन ३०० पौंड सूत कात सकता था। इसके बाद 'Ring Spindles' से ४५० पौंड सूत काता जाने लगा। इससे इंगलैंड में सूत की अधिकता हो गई। इसका उपयोग करने के लिए १७८५ में कार्टराइट ने शक्ति चालित कर्घे (Power Looms) का आविष्कार किया। अतः अब कताई की मशीनों द्वारा उत्पन्न सूत सुविधाजनक रूप से इन कर्घों पर बुना जाने लगा। इसके फलस्वरूप १७८६ में कार्टराइट ने अपने कर्घे में और भी कई परिवर्तन किये। फलस्वरूप इंगलैंड में यह उद्योग कुटीर प्रणाली से कारखाने के रूप में स्थापित हो गया। इसी समय १७६३ में ह्विटने ने लुढ़ाई की चर्खी (Cotton Gin) का आविष्कार किया। इसके कारण रेशे, विशेषकर कपास, बहुत सस्ता हो गया। सन् १७८५ में बैल द्वारा 'Cylinder Printer' और जैकर्ड द्वारा 'Jackard Loom' का भी आविष्कार किया गया। इन नयी मशीनों के फलस्वरूप सूती कपड़े की छपाई और रेशमी तथा सूती धागों को मिलाकर बुनना सरल हो गया। इस प्रकार इङ्गलैंड में इस उद्योग के स्थापित और विकास होने का मुख्य कारण वहाँ होने वाली औद्योगिक और यांत्रिक क्रान्ति ही है। यंत्रों के उपयोग के कारण ही इङ्गलैंड इस उद्योग में निरन्तर उन्नति करता गया है और अब विश्व में इसने पहला स्थान ग्रहण कर लिया है। अमेरिका, जापान और यूरोप के अन्य देशों में यह उद्योग देर से फैला।

सूती वस्त्र उद्योग का महत्व :

सूती कपड़े का उद्योग अन्य उद्योगों में सबसे प्रमुख माना जाता है क्योंकि इसी के द्वारा संसार की अधिकांश जनसंख्या को तन ढकने हेतु वस्त्र मिलते हैं। आजकल इस उद्योग का विश्व के सभी देशों में प्रमुख स्थान है। ग्रेट ब्रिटेन में सूती वस्त्र व्यवसाय के बारे में कहा जाता है कि "वस्त्र व्यवसाय यहाँ की रोटी है—Cotton is bread in Great Britain"। इस कथन का कारण यह है कि यहाँ की अधिकांश जनसंख्या की रोटी का मुख्य आधार यही व्यवसाय है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस व्यवसाय को "अमेरिका का राजा ("Cotton is the King in America") कहते हैं क्योंकि यह इस देश के लिए अत्यन्त लाभदायक धन्धा है। जापान में भी कपास शक्ति है (Cotton is Power in Japan) क्योंकि विश्व के व्यापार में जापान का यह व्यवसाय ब्रिटेन जैसे शक्तिशाली देश से पूर्ण प्रतिस्पर्धा कर रहा है। भारत में भी यह व्यवसाय महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये चरखे पर आश्रित राजनैतिक आन्दोलन का प्रमुख आधार रहा है। इस व्यवसाय के सम्बन्ध में डा० बुकानन ने उचित ही कहा है: "For India Cotton manufacture is ancient glory, past and present tribulation, but always hope."

अन्य वस्त्र उद्योगों की अपेक्षा यह उद्योग विश्व के औद्योगिक देशों में सबसे अधिक विकसित हुआ है। इसका विकास न केवल उन देशों में ही हुआ है जो औद्योगिक उन्नति में सबसे बढ़े-चढ़े हैं बल्कि उन देशों में भी हुआ है जो औद्योगिक दौड़ में अभी नये ही हैं। न केवल कपास उत्पादन क्षेत्रों में ही वरना उससे हजारों मील दूर, बन्दरगाहों अथवा देश के आन्तरिक भागों में, विश्व के धनी और निर्धन दोनों ही देशों में, इस उद्योग का विकास हुआ है।[1] इस विशेषता के निम्न कारण हैं:—

(१) जहाँ कहीं भी मनुष्य पाये जाते हैं वहीं सूती कपड़ों की माँग रहती है। विश्व के प्रमुख खेतिहर और उष्णकटिबन्धीय देशों में करोड़ों व्यक्तियों द्वारा सूती वस्त्र उपभोग में लाये जाते हैं।

(२) इस उद्योग में कपड़ा बनाने की विधि अधिक जटिल नहीं है, अतः कारखानों में अकुशल मजदूरों द्वारा भी मोटा कपड़ा तैयार किया जा सकता है जिसकी ही सबसे अधिक मांग रहती है।

(३) कपड़ा तैयार करने में मजदूरों का व्यय ही उत्पादन व्यय को बढ़ा देता है। अतः जहाँ तक सम्भव होता है यह उद्योग अधिकतर ऐसे क्षेत्रों में स्थापित किया जाता है जहाँ घनी जनसंख्या होने से सस्ते मजदूर मिल जाते हैं।

(४) रासायनिक, धातुशोधन अथवा अन्य धातु के उद्योगों की अपेक्षा इसमें कम पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। साधारण सूत का कपड़ा बनाने वाले कारखाने शीघ्र स्थापित किये जा सकते हैं और उनसे लागत पूंजी पर लाभ भी शीघ्र ही होने लगता है।

(५) कपास जैसी वस्तु को सरलता से गांठों में बांध कर बहुत दूर तक भेजा जा सकता है, अतः यह आवश्यक नहीं कि यह उद्योग कच्चे माल के उत्पादन क्षेत्र के निकट हो। यह उद्योग कच्चे माल की दृष्टि से नहीं वरन् बाजार की दृष्टि से स्थापित किया जा सकता है।

(It is market-localised rather than raw-material localised).

उद्योग का स्थापन :

किसी देश में सूती कपड़े का उद्योग स्थापित करने में निम्नलिखित कारण सहायक होते हैं :—

(i) जलवायु—सूती वस्त्र व्यवसाय उन्हीं देशों में स्थापित किया जाता है, जहाँ धागा बनाने के लिए नम जलवायु अथवा आर्द्र वायुमण्डल मिलता है। क्योंकि शुष्क जलवायु में धागा बार-बार टूटता रहता है। इसी नम जलवायु के कारण ही दक्षिणी लंकाशायर, तथा भारत में बम्बई, सूती कपड़े के व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध हो गये हैं। इङ्गलैंड में फ्रेवेन दर्रे के दक्षिण में विगान और रासनडेल की स्थिति अधिक उपयुक्त है, क्योंकि यह पूर्व की सूखी वायु,

1. Smith, Phillips and Smith : *Ibid*, p. 532.

को रोककर पश्चिम में ४०" से भी अधिक वर्षा कर देती है। इससे धागा आसानी के साथ काता जा सकता है। किंतु अब सूखे भागों में भी कृत्रिम आर्द्रता (humidifiers) उत्पन्न कर सूती कपड़े के कारखाने खोले जा रहे हैं। भारत में इस प्रकार के कारखाने कानपुर, ग्वालियर, बिरलानगर और अमृतसर आदि नगरों में खोले गये हैं।

(ii) सूती कपड़ा बनाने के लिए कच्चे माल की आवश्यकता होती है—किंतु कपास गाँठ में बाँधकर कम खर्च और आसानी के साथ दूर के क्षेत्रों को भेजा जा सकता है। अतएव वर्त्तमान समय में जिन देशों में कपास पैदा नहीं होती वे ही सूती कपड़े बनाने वाले प्रमुख देश हैं। इंगलैंड अपने मिलों के लिए सं० राष्ट्र अमेरिका, मिस्र, यूगेन्डा और अफ्रीका के अन्य देशों से कपास मँगाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और जापान, भारत और चीन से अपनी माँग पूरी करते हैं। १९५१–५२ में विश्व में सब मिला कर ६३६० हजार मैट्रिक टन कपास की खपत हुई जिसमें से २०१९ हजार टन संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ७८६ हजार टन भारत और पाकिस्तान, ३९३ हज़ार टन जापान, ३८१ हजार टन इंगलैंड, २६२ हजार टन फ्रांस, २०५ हजार टन जर्मनी, १९४ हजार टन इटली और १७४ हजार टन ब्राजील में खपी।

(iii) उत्तम जल की आवश्यकता सूती कपड़े के लिए बहुत महत्त्व रखती है। सूत की धुलाई, रंगाई और अन्य कई प्रकार के कार्यों के लिए उत्तम जल की आवश्यकता होती है। इसी कारण नदियों, नहरों, या झीलों के किनारे सूती-व्यवसाय के केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इंगलैंड में ब्लैकबर्न या बर्नले से लीड्स या लिवरपूल तक नहर के किनारे २ सूती कपड़े के कारखाने पाये जाते हैं। सं० राष्ट्र में भी न्यू इंगलैण्ड स्टेट्स में नदियों के किनारे २ ही अधिक कारखाने स्थापित किये गये हैं।

(iv) सूती वस्त्र-व्यवसाय कुशल कारीगरों की उपलब्धता पर भी बहुत निर्भर करता है। लङ्काशायर और मैनचेस्टर में इस धंधे के केन्द्रित होने का प्रधान कारण यही है कि वहाँ पहले ऊनी कपड़ा बनाने वाले कुशल कारीगर पाये जाते थे। इसी प्रकार जापान में भी सूती वस्त्र-व्यवसाय को रेशमी कपड़ा बुनने वालों से काफी सहायता मिली है। फ्रांस के उत्तरी-पूर्वी भाग में सूती कपड़े की मिलें इसीलिये चालू हुई कि वहाँ ऊनी कपड़ा बनाने वाले चतुर मजदूर काफी मात्रा में मिलते हैं। भारत में बम्बई और अहमदाबाद केन्द्रों में अधिकांश जुलाहे और कोली, जो पहले हाथ करघों पर काम करते थे, काम करते हैं।

(v) शक्ति के साधनों की उपलब्धता—सूती कपड़े का उद्योग साधारणतया उन्हीं स्थानों पर स्थापित किया जाता है जहाँ कोयला अथवा बिजली सस्ती प्राप्त हो जाती है। पश्चिमी यूरोप में जर्मनी, फ्रांस और इंगलैंड में यह उद्योग कोयले की खानों के निकट ही स्थापित है क्योंकि इन क्षेत्रों पर कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों के बच्चों और स्त्रियों से सस्ती मजदूरी पर काम लिया जा सकता है, इसके अतिरिक्त कोयला क्षेत्रों में

साधारणतया एंजीनियरिंग कारखाने भी होते हैं, जिनमें मशीनों की टूट-फूट आसानी के साथ दुरुस्त कराई जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रपात रेखा पर स्थित सभी केन्द्रों के लिए बिजली सस्ती मिल जाती है। इटली, नार्वे और स्विटजरलैंड में तथा बम्बई में भी बिजली के सहारे ही कारखाने चलाये जाते हैं; जबकि कानपुर, ग्वालियर, दिल्ली अथवा अन्य केन्द्रों में कोयले का ही अधिक प्रयोग किया जाता है।

(vi) तैयार माल को खपत के केन्द्रों तक पहुँचाने के लिये सस्ते और उत्तम यातायात के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। प्राय: सभी प्रमुख केन्द्र उन प्रदेशों से हजारों मील दूर हैं जहाँ कपड़े की माँग होती है। उदाहरण के लिये लङ्काशायर के कपड़े पूर्वी देशों के लिये, जापान के कपड़े चीन और भारत के लिए तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कपड़े पश्चिमी द्वीप समूह और दक्षिणी अमेरिका के लिए तैयार किये जाते हैं। भारत में भी मद्रास, बम्बई और अहमदाबाद की मिलें देश के भीतरी भागों के लिए कपड़ा तैयार करती हैं जो रेलों द्वारा आसानी के साथ वहाँ पहुँचा दिया जाता है।

(vii) वस्त्र-उद्योग की प्रगति के लिए बाजार की निकटता भी अत्यधिक आवश्यक है। ग्रेट ब्रिटेन में सूती कपड़े के धन्धे की इतनी उन्नति होने का कारण यही है कि इसका बाजार अत्यन्त विशाल और विस्तृत है। विश्व के सभी मुख्य उपभोक्ता देशों पर इसका राजनैतिक प्रभुत्व है। भारत में बम्बई और अहमदाबाद की मिलों के लिये भी विस्तृत-बाजार मौजूद है। इसीलिये यहाँ कपड़े का उद्योग अधिक उन्नति कर गया है।

उद्योग के प्रमुख क्षेत्र :

यद्यपि कपास ३५° उत्तरी और दक्षिणी अक्षांशों के बीच पैदा होता है किंतु सूती वस्त्र-उद्योग मुख्यत: ३०° अक्षांशों के उत्तरी क्षेत्रों में स्थापित है। विश्व में सूती कपड़े के मुख्य उत्पादक ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जापान और भारतवर्ष हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सूती कपड़ा बनाने के मुख्य क्षेत्र अटलांटिक के दोनों तटों पर और उत्तरी पैसिफिक के पश्चिमी तट और हिंद महासागर के तट पर स्थित हैं।

इंगलैंड में विश्व के कुल तकुओं का २३·७% पाया जाता है, जबकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १९·६%, फ्रांस में ६·९%, जापान में ५·५%, पश्चिमी जर्मनी में ५·३% और इटली में ४·९% है। अगली तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में तकुओं में संख्या बताई गई है :—

देश	१९५२ Mule Spindles (हजार में)	Ring Spindles
बेलजियम	६२	१७९५
फ्रांस	१२१३	६८९७
पश्चिमी जर्मनी	२०४	६०४०
भारत	२६१	१०९८०
इटली	६१	५६७५
जापान	६	६४८३
नीदरलड	१५८	१०१२
इङ्गलैंड	१७४०९	१०५२४
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	—	२३११८
विश्व	२०४४६	९७५०४

ब्रिटेन में सूती कपड़े का उद्योग

सूती कपड़े के उद्योग में ब्रिटेन का प्रधान स्थान है। यहाँ से संसार का लगभग ४० प्रतिशत सूती कपड़ा प्राप्त होता है। यहाँ यह उद्योग इतना बढ़ा-चढ़ा है कि यह इस देश का द्वितीय महान् उद्योग है।

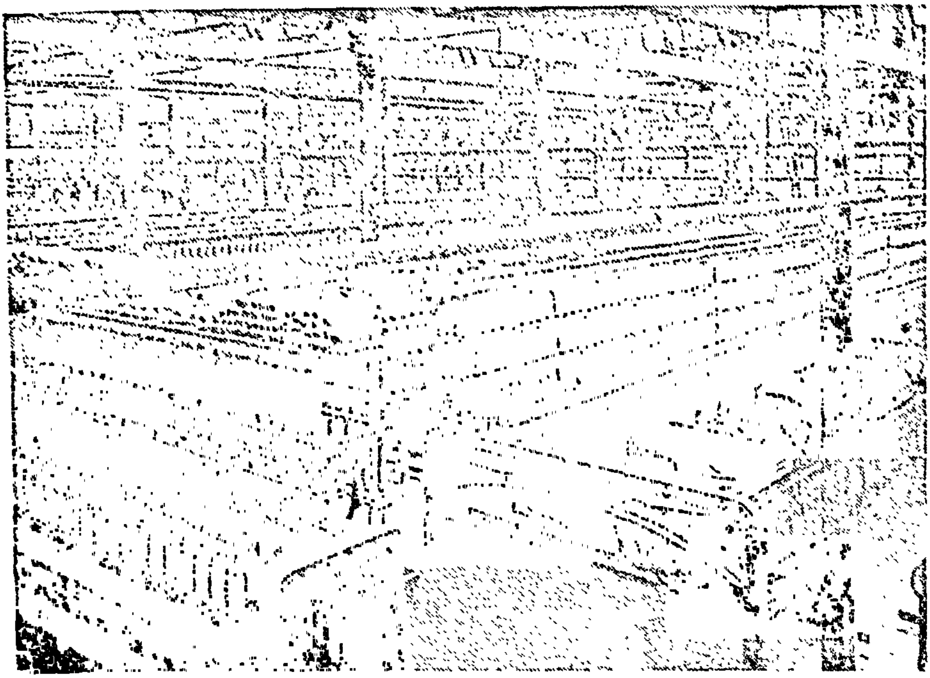

चित्र २०९—इंग्लैंड के मिलों में यंत्रों द्वारा कताई

१८वीं शताब्दी के अन्त में इन कारणों से ब्रिटेन के सूती वस्त्र व्यवसाय में असाधारण उन्नति हुई :—(१) ब्रिटेन की बढ़ी-चढ़ी सामुद्रिक शक्ति

तथा विस्तृत साम्राज्य के कारण कच्चा माल (कपास) मिलने तथा बने हुए माल के बिकने की सुविधा थी। (२) कपास उत्पादक देशों में औद्योगिक उन्नति नहीं थी। (३) यहाँ की आर्द्र जलवायु, जलशक्ति तथा कोयला वस्त्र उद्योग स्थापना के लिए स्वाभाविक सुविधायें थीं। (४) सूत कातने की मशीनों और यंत्रों की सुविधायें थीं। (५) भारत तथा कपास के उत्पादक अन्य देशों में अफ्रीका, लङ्का, आस्ट्रेलिया, बर्मा में राजनैतिक स्वतन्त्रता नहीं थी; तथा (६) यूरोप के अन्य देशों मे राजनैतिक अशान्ति तथा युद्ध का बोलबाला था।

सन् १९१२ तक इस क्षेत्र में ब्रिटेन का मुकाबला करने वाला कोई देश न था। किंतु जापान से मुकाबला करना पड़ा तो ब्रिटेन ने बढ़िया किस्म का अधिकाधिक कपड़ा बनाना शुरू किया क्योंकि घटिया कपड़े में यह जापान का मुकाबला नहीं कर सकता था जहाँ श्रम बहुत सस्ता था और जिसे कपास भी निकट ही चीन से प्राप्त हो जाती थी। ब्रिटेन में कपास मुख्यत: संयुक्त राष्ट्र से मँगाई जाती थी और श्रम अपेक्षाकृत महँगा था। सन् १९३० के बाद ब्रिटेन के सूती उद्योग को भारतीय स्वदेशी आंदोलन से भी बहुत क्षति हुई क्योंकि भारत में विदेशी कपड़े का बहिष्कार होने से वहाँ ब्रिटेन के माल की खपत कम हो गई, तब लङ्काशायर क्षेत्र की अनेक सूती मिलें रेशमी मिलों में परिवर्तित करनी पड़ीं। बीसवीं शताब्दी में प्रथम विश्व युद्ध के बाद तो मुकाबला और भी कठिन हो गया क्योंकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी मैदान में आ गया। फिर भी ब्रिटेन का सूती कपड़े का उद्योग अभी प्रथम स्थान पर ही है क्योंकि ब्रिटेन के सूती उद्योग के केन्द्र लङ्काशायरी प्रदेश को निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हैं :—

(१) जलवायु न केवल कताई के लिए समुचित आर्द्र तथा अनुकूल है बल्कि श्रमिकों के लिए स्वास्थ्यप्रद और स्फूर्तिदायक है।

(२) इस प्रदेश में ब्रिटेन के बढ़िया कोयले के क्षेत्र हैं जिनसे यंत्र चलाने की शक्ति प्राप्त होती है।

(३) अटलांटिक की दक्षिणी पश्चिमी वायु से इतनी वर्षा होती है कि मध्य पिनाइन श्रेणी से अनेक छोटी-छोटी जलपूर्ण नदियाँ निकलकर इस प्रदेश में बहती हैं। इनका जल प्राकृतिक रूप से दलदलों से कड़ी चट्टानों में छन कर आता है जो इसकी रासायनिक अशुद्धियों को साफ कर देता है। ऐसा जल कपड़ा धोने और रंगने में अच्छा रहता है। यह जल कारखानों को स्वच्छ जल तो प्रदान करता ही है तथा जल-विद्युत का भी साधन है। यह जल-विद्युत शक्ति बहुत सस्ती और सुलभ है।

(४) साधारण एवं दक्ष श्रमिक पर्याप्त संख्या में प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि वर्षों से कार्य करते रहने के कारण मजदूरों में सूत कातने और बुनने के लिये पैतृक कला उत्पन्न हो गई है।

(५) कच्चा माल केवल संयुक्त राष्ट्र से मँगाया जाता था, अब वहाँ के अतिरिक्त मिस्र, भारत, पीरू, युगंडा, ब्राजील और पाकिस्तान से भी प्राप्त किया जाता है। लम्बे रेशे वाली कपास मिस्र, सूडान, तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

से प्राप्त की जाती है। मँगाने का व्यय अधिक नहीं होता क्योंकि भाड़ा बहुत कम है और बन्दरगाह से मान्चेस्टर तक ले जाने के लिये मांचेस्टर शिप केनाल बनाकर यातायात का खर्च बहुत कम कर लिया गया है।

चित्र २१०—इङ्गलेंड के मिलों में यंत्रों द्वारा बुनाई

(६) ब्रिटेन का जल-यातायात इतना उन्नत है कि कोई देश इसकी बराबरी नहीं कर सकता। इसी के बल पर कच्चा माल प्राप्त करने और तैयार माल संसार भर में भेजने की सस्ती-सस्ती सुविधा ब्रिटेन के सूती उद्योग को प्राप्त है। स्वेज मार्ग खुल जाने पर तो और भी आसानी हो गई।

(७) लंकाशायर क्षेत्र का बन्दरगाह 'लिवरपूल' इतना उन्नत और सुविधापूर्ण है कि इस प्रदेश को कच्चा माल पहुँचाने और तैयार माल बाहर भेजने की सम्पूर्ण सुविधायें प्रदान करता है।

(८) चेशायर प्रदेश की नमक की खानों से वे रसायन बना लिए जाते हैं जो कपड़े की रंगाई और धुलाई-सफाई और माड़ी देने में काम आते हैं।

(९) ब्रिटेन के कपड़े की खपत उसके उपनिवेशों में बहुत काफी है। वहाँ की व्यापारिक नीति के अनुसार अंग्रेजी माल को प्रोत्साहन दिया जाता है।

(१०) लंकाशायर क्षेत्र अनुपजाऊ होने से खेती अथवा अन्य महान् उद्योगों के लिए अनुकूल नहीं है। अतः लोगों का ध्यान सूती उद्योग की ओर ही है।

(११) इसी क्षेत्र में ओल्डहम तथा विगान नगरों में सूती उद्योग के यंत्र बनाने के कारखाने हैं। अतः यंत्र सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं, मरम्मत सस्ती

और शीघ्र हो जाती है और नई मिल लगाने में बहुत कम खर्चा पड़ता है। यंत्र निर्माण की यह सुविधा बहुत कम देशों में है।

(१२) ब्रिटेन का सूती उद्योग इतना उन्नत और विशिष्टता प्राप्त है कि अन्य नये उत्पादक इसका आसानी से मुकाबला नहीं कर पाते। मुकाबले के कारण ही अब यहाँ बहुत बढ़िया किस्म का कपड़ा तैयार करने की ओर प्रवृत्ति हो गई है।

लंकाशायर में ब्रिटेन के लगभग ६०% सूत के तकुए और करघे केन्द्रित हैं। किन्तु आश्चर्यजनक बात तो यह है कि यहाँ भिन्न भागों में इस उद्योग की प्रत्येक शाखा ने विशेषता प्राप्त करली है। अतः दक्षिणी लंकाशायर और उसके निकटवर्ती चेशायर तथा डर्बीशायर में कताई और दुहराने का कार्य तथा उत्तर के क्षेत्रों में बुनाई का कार्य किया जाता है। अतः लंकाशायर के नगरों को सूती वस्त्र उद्योग के विचार से दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं। प्रेस्टन, नैलसन, एकरिंगटन, डार्विन, शोर्ले. ब्लेकबर्न, तथा बर्नले आदि उत्तर के केन्द्रों में बुनाई का काम होता है जो सब लंकाशायर के उत्तर में हैं जहाँ की जलवायु शुष्क है। रोशडेल. ओल्डहम, बोल्टन मिडिलटन, पेसले, रैडक्लिफ, तथा बरी, मैनचेस्टर, स्टाकपोर्टले, आदि दक्षिणी केन्द्रों में सूत कातने का धन्धा केन्द्रित है। ये सब केन्द्र लंकाशायर के दक्षिण में घाटियों में स्थित हैं। लंकाशायर से ८० प्रतिशत वस्त्र बाहर भेजे जाते है। स्कॉटलैण्ड में ग्लासगो तथा पेसले भी वस्त्र उद्योग के प्रधान केन्द्र हैं। पेसले में डोरा बहुत बुना जाता है। ग्लासगो में वे सभी सुविधायें हैं जो लंकाशायर को हैं। परन्तु स्पात उद्योग की वृद्धि के कारण सूती वस्त्र उद्योग पीछे रह गया है।

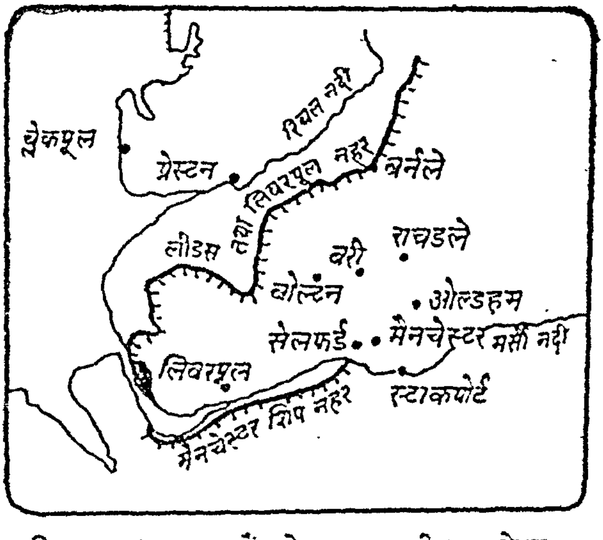

चित्र २११—इङ्गलैंड के प्रमुख सूती-वस्त्र केन्द्र

ब्रिटेन के सूती मालके प्रमुख ग्राहक भारतवर्ष. चीन, मिस्र, जर्मनी, हालैंड, तुर्की, वैस्ट इंडीज, दक्षिणी तथा मध्य अमेरिका, मध्य अफ्रीका. जापान, आस्ट्रेलिया, कनाडा. संयुक्त राष्ट्र. स्पेन, इटली, फ्रांस और स्विटजरलैंड है। ब्रिटेन भी जापान, फ्रांस, जर्मनी और स्विटजरलैण्ड से काफी सूती वस्तुएँ मंगाता है। इङ्गलैंड में सूती वस्त्रों का उत्पादन १९५५ में १७८'१ करोड़ गज था।

संयुक्त राष्ट्र में सूती कपड़े का उद्योग

उत्तरी अमेरिका में सूती कपड़े का उद्योग संयुक्त राष्ट्र में विस्तृत रूप में होता

है। यहाँ लगभग एक हजार मिल हैं जिनमें ५ लाख व्यक्ति काम करते हैं। संयुक्त राष्ट्र का स्थान सूती कपड़ों के उत्पादन में संसार में द्वितीय है। यहाँ से संसार की जनसंख्या के एक बड़े भाग को कपड़ा दिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र का स्थान सूती कपड़ों के निर्यात में तृतीय है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (१८१२-१५) जब संयुक्त राष्ट्र तथा इङ्गलैंड में तनातनी बढ़ गई तो संयुक्त राष्ट्र में कपड़ों के मिलने में कठिनता पड़ने लगी। उस समय वहाँ के लोगों ने सोचा कि इङ्गलैंड के निवासी कपास उन्हीं के यहाँ से लेते हैं और फिर उससे कपड़े बना कर उन्हीं को बेचते हैं और काफी लाभ उठाते हैं। न्यू इङ्गलैंड के कुछ निवासियों ने इतना द्रव्य संचय कर लिया था कि उन्हें सूती मिल खोलने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने यहाँ सूती मिलों का खोलना निश्चय किया। बड़ी कठिनता से उन्होंने सैमुअल स्लेटर नामक अँग्रेज की सहायता से एक मिल सन् १७९० में रोड आइलैण्ड में पोटकेट में खोला। यहाँ पूँजी तथा विक्रय स्थल की अधिकता और शक्ति तथा स्वच्छ जल की सुविधायें थीं। इसलिये बराबर मिलें न्यू-इङ्गलैण्ड के झरनों के सहारे-सहारे मेन में ऐंड्रोस्कार्गीन से लगा कर थेम्स और हूजिक तक खुलती गईं और यह उद्योग शीघ्र उन्नति कर गया।

इस समय संयुक्त राष्ट्र में सूती कपड़ों का उद्योग तीन बड़े क्षेत्रों में होता है—(i) न्यू इंग्लैंड क्षेत्र, (ii) मध्य अटलांटिक राज्य, (iii) दक्षिणी राज्य जो मेन प्रान्त से अलबामा तक फैले हैं।

(i) न्यू इंग्लैंड क्षेत्र—कुछ वर्ष पहले संयुक्त राष्ट्र में यह क्षेत्र सूती उद्योग में सर्व प्रथम था परन्तु अब दक्षिणी राज्यों में अधिक उन्नति हो गई है। इस क्षेत्र में सूती व्यवसाय के विकास का कारण यह है कि यहाँ की जलवायु में परिवर्तन नाम मात्र को होता है और वायुमंडल में आर्द्रता बनी रहती है। यह एक पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ पर झरने, झीलें आदि बहुत हैं। झरनों से जल शक्ति मिलती है और झीलों का पानी कपड़ों के धोने तथा रँगने में काम आता है।

इस क्षेत्र में उत्तम तथा बढ़िया कपड़े तैयार किये जाते हैं (Elastics, Mixed Fabrics आदि)। धुलाई, रंगाई तथा छपाई का काम खूब होता है। दक्षिणी क्षेत्रों से भी कपड़े धुलाई तथा रंगाई के लिये आते हैं। फालखिर नगर इस क्षेत्र का सबसे बड़ा नगर है। मानचेस्टर, प्राविडेन्स, लावेल, लारेंस, न्यू बेडफोर्ड आदि अन्य नगर हैं। दक्षिणी क्षेत्र में इस उद्योग के अधिक विकास के कारण यहाँ की कुछ मिलें बन्द कर दी गई हैं और अच्छी-अच्छी मिलों को उन्नत करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

(ii) मध्य अटलांटिक राज्य क्षेत्र—मध्य अटलांटिक के सूती व्यवसाय का क्षेत्र पेन्सलवेनिया, न्यूयार्क तथा मैरीलैंड में केन्द्रित है। परन्तु इस क्षेत्र में फिलाडेल्फिया ही सबसे बड़ा केन्द्र बन गया है क्योंकि (१) यहाँ पर कारीगर अधिक संख्या में मिलते हैं, (२) मशीनों के मरम्मत की सुविधा है, और (३) विक्रयस्थल विस्तृत तथा निकट है। संयुक्त राष्ट्र में फिलाडेल्फिया होजरी के सामान के लिए सर्वप्रथम है। यहाँ टैपस्ट्री और चिनेलीज (Chinellies) अधिक बनाया जाता है।

(iii) दक्षिणी राज्य क्षेत्र—इस क्षेत्र में सूती कपड़ों का उद्योग सन् १८८० से ही बहुत उन्नति कर गया है। यहाँ की मिलें उत्तरी कैरोलिना, दक्षिणी कैरोलिना तथा जार्जिया के प्रान्तों में स्थित हैं। अलबामा तथा पीडमांट में यहाँ की ¾ सूती मिलें हैं जो केवल मोटा कपड़ा (ड्रिल, डक चादरे) बनाती हैं और काफी कपास प्रयोग करती हैं। कोलंबिया, अटलांटा, कोलम्बस, चारलोट, ग्रीनविले, स्पार्टनबर्ग, रैले, ऑगस्टा और बर्मिंघम मुख्य केन्द्र हैं। दक्षिणी राज्य क्षेत्र के मिलों की उन्नति करने के कारण निम्नांकित हैं :—

(क) यह क्षेत्र कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्र के सबसे निकट हैं। कुछ मिलें यहाँ तो ऐसी हैं जो सीधे खेतों से ही कपास ले लेती हैं। इसलिए गाँठ आदि बनाने तथा ढुलाई का व्यय बिलकुल बच जाता है। मिलों के लिए अधिकतर कपास पश्चिमी कपास-क्षेत्र से भी प्राप्त होता है।

(ख) यहाँ पर कोयला बर्मिंघम की कोयले की खान से मिल जाता है। न्यू इंगलैंड की अपेक्षा ये क्षेत्र कोयले की खानों से ४०० मील अधिक निकट है, अतः कोयले ढोने का खर्चा अधिक नहीं होता और जो नदियाँ अपलेशियन पर्वत से निकल कर पीडमांट पठार पर बह कर मैदान में आती हैं वे बहुत झरने बनाती हैं जिनसे जल विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है और इस शक्ति से मिलें चलाई जाती हैं। टैनेसी की घाटी वाले प्रदेश में बिजली उत्पादन में वृद्धि हो जाने के कारण दक्षिणी प्रदेश को बिजली मिलने की सुविधा और बढ़ गई है।

(ग) यहाँ पर जलवायु अच्छी है और सस्ते कारीगर (हब्शी और गोरे) मिल जाते हैं क्योंकि यहाँ के निवासियों का रहन-सहन अन्य क्षेत्रों से नीचा है। यहाँ पर मोटे कपड़े बनाये जाते हैं, अतः अधिक चतुर कारीगरों की भी आवश्यकता कम है।

इस क्षेत्र को एक बड़ी हानि यह है कि यहाँ का पानी कपड़ा धोने के लिए अच्छा नहीं है। परन्तु अब बड़े-बड़े गहरे कुएँ खोदे गये हैं जिनका पानी स्वच्छ करके कपड़ों के धोने में प्रयोग किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र में अधिकतर मोटा कपड़ा होता है जो २० काउन्ट से नीचे का सूत अधिक प्रयोग करते हैं, इसलिए कपास की खपत अधिक है। ४० काउन्ट के कपड़े कम बनाये जाते हैं। इससे अधिक काउन्ट का कपड़ा तो नाम मात्र को बनता है। ग्रेट ब्रिटेन में अधिकतर ऊँचे काउन्ट का कपड़ा बनता है जिससे वे कम कपास प्रयोग करते हैं और अधिक लाभ उठाते हैं, परन्तु वहाँ कुशल कारीगर ही काम कर सकते हैं।

जापान में सूती कपड़े का उद्योग

जापान में सूती कपड़े का उद्योग बीसवीं सदी में ही उन्नत हुआ। सन् १९१२ के बाद यह व्यवसाय शीघ्रता से उन्नत होता गया। सन् १९३४ तक यहाँ २३० मिलें थीं जिनमें सूती माल का उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में होता है। ब्रिटेन तथा अमेरिका की तुलना में यहाँ मिलों तथा मशीनों की संख्या तो बहुत कम है किन्तु मिलों में कई पारी में काम होता है। यहाँ की मिलों की

प्रायः समस्त कच्चा माल अमेरिका, पाकिस्तान, चीन, भारत इत्यादि से मँगाना पड़ता है। स्वयं जापान में भी क्वान्टो मैदान तथा ओवारी सुरूगा खाड़ियों के बीच में कपास पैदा किया जाता है। पहले यहाँ काफी रुई उत्पन्न की जाती थी, किन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से धीरे-धीरे रुई का स्थान शहतूत के बागात और खाद्यान्न की फसलों ने ले लिया।

जापान में इस धंधे के लिए निम्नलिखित सुविधाएँ हैं :—

(१) जापान के पूर्वी समुद्री तटीय भागों में, जहाँ यह उद्योग स्थित है, वर्ष भर वर्षा होने के कारण पर्याप्त नमी रहती है। जापान के मध्य में स्थित पर्वत श्रेणी के कारण सारी वर्षा पूर्व की ओर ही हो जाती है। यह पर्वत श्रेणी साइबेरिया की ओर से आनी वाली ठंडी हवाओं को भी रोक लेती है। इसके अतिरिक्त यहाँ की चक्रवातीय जलवायु परिश्रम करने के लिए अनुकूल है।

(२) यहाँ द्रुतगामी नदियों से सस्ती जल विद्युत शक्ति की सुविधा है तथा सस्ते जल यातायात के कारण कोयला भी चीन और मंचूरिया से प्राप्त किया जाता है।

(३) श्रमिक बड़े मेहनती और सस्ते हैं। यहाँ अधिकांश मजदूर स्त्रियाँ हैं जिनको कम मजदूरी दी जाती है। मजदूरी सस्ती होने के साथ २ जापानी

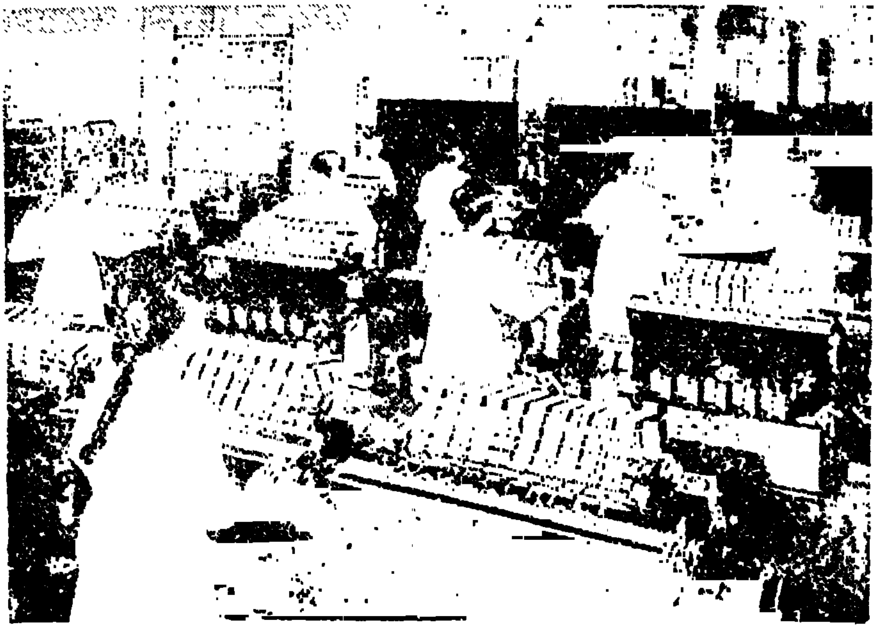

चित्र २१२—जापान के मिलों में स्त्रियों का कार्य

श्रमिक कार्यकुशल भी होते हैं। जापान में एक कारीगर सामान्यतः मोटे धागे वाले ४०० तकुओं और मध्यम धागों वाले ६०० तकुओं की देखभाल कर सकता है। एक मामूली जुलाहा ६ से ८ करघे चला लेता है और स्वयंचालित करघों के चलने से तो अब एक जुलाहा ३० से ५० करघे तक चला लेता है।

(४) उद्योग की व्यवस्था सहकारी ढङ्ग पर है और कुटीर उद्योग तथा मिल उद्योग में सम्पर्क से कार्य किया जाता है। यहाँ का यह उद्योग मुख्यतः दो उद्योग-पतियों—मितुसुई और मितुसुविसी—के ही आधीन है। अतः माल की प्रतिस्पर्धा नहीं होती।

(५) चीन, भारत जैसे वृहत् खपत के केन्द्र निकट हैं तथा जापानी जहाजों पर अन्य जहाजों की अपेक्षा कम भाड़ा लगता है।

(६) पुराने यंत्रों को शीघ्र ही बदल कर उनके स्थान पर अधिक नवीन और उत्तम ढङ्ग के यंत्र लगा दिए जाते हैं। टोयाडा स्वचालित प्रणाली द्वारा उत्पादन व्यय में काफी कमी हो गई है। इसके अतिरिक्त यहाँ की मिलों में दो पारी (Shifts) में काम होता है। अतः मशीन से अधिक काम लिया जा सकता है और उत्पादन भी अधिक होता है।

(७) इस देश में सूती कपड़े के मुख्य केन्द्र ओसाका, नागोया तथा टोकियो हैं। ओसाका नगर जापान का मान्चेस्टर कहलाता है। यहाँ से भारत, चीन, पूर्वी द्वीप समूह, दक्षिणी अफ्रीका इत्यादि देशों को सूती कपड़ा भेजा जाता है। गत बीस वर्ष से यह देश सूती कपड़े के व्यापार में ब्रिटेन का मुकाबला ले रहा है और बहुत सस्ता कपड़ा तैयार करता है। मंचूको और चीन में भी जापानियों की सूती कपड़े की कुछ मिलें हैं।

फ्रांस में सूती कपड़े का उद्योग

फ्रांस अत्यन्त सुन्दर और सर्वोत्तम सूती माल के लिए संसार में अद्वितीय और बेजोड़ है। यहाँ सूती उद्योग के तीन मुख्य क्षेत्र हैं।

(i) वासजेज क्षेत्र—वासजेज क्षेत्र का महत्त्व फ्रांस के सूती उद्योग में सबसे ज्यादा है। यहाँ के मुख्य सूती केन्द्र बेलफोर्ट कोलमार, नैंसी, एपीनाल इत्यादि हैं क्योंकि (१) इस क्षेत्र में औद्योगिक व्यवस्था उच्च कोटि की है जिससे कम व्यय पर ही अधिक उत्पादन होता है।

(२) यहाँ के श्रमिक बहुत मेहनती और निपुण हैं। पहाड़ी क्षेत्रों की जनसंख्या से सस्ते मजदूर मिल जाते हैं।

(३) वासजेज पर्वत की द्रुतगामी नदियों से पर्याप्त स्वच्छ जल प्राप्त हो जाता है।

(४) सस्ती जल विद्युत भी मिल जाती है। लारेन की कोयला खानों से कोयला भी प्राप्त हो जाता है।

(५) कच्चा माल अमेरिका से मँगाया जाता है।

(६) लारेन के घने आबाद औद्योगिक प्रदेश में कपड़े की खपत बहुत है। किन्तु इस क्षेत्र की सबसे बड़ी असुविधा सूखी जलवायु का होना है जो इस उद्योग के लिए अनुकूल नहीं है।

(ii) नार्मेंडी क्षेत्र—नार्मेंडी क्षेत्र फ्रांस के सूती उद्योग में अगुआ गिना जाता है क्योंकि सबसे पहले यहीं रोवां जिले में यह उद्योग शुरू हुआ था।

यहाँ पहले से ही ऊनी तथा लिनेन के वस्त्रों का व्यवसाय चालू था। अतः कुशल श्रमिक मिल गए। कोयला सस्ते जल यातायात के कारण इङ्गलैंड से सुगमता से मँगाया जा सकता था। ला हावरे बन्दरगाह द्वारा अमेरिका से कपास मँगवाई जाती है। यहाँ का जलवायु भी काफी नम है। रोएं नगर इस क्षेत्र का प्रधान सूती केन्द्र है। यहीं फ्रांस की पहली सूती मिल खुली। सीन नदी द्वारा सस्ता जल यातायात और स्वच्छ पानी की पर्याप्त पूर्ति हो जाती है।

(iii) उत्तरी पूर्वी क्षेत्र—इस क्षेत्र में सबसे बड़ी सुविधा कोयले की है क्योंकि यहाँ कोयले की खानें हैं। लीले और अमीन्स प्रसिद्ध केन्द्र हैं।

जर्मनी का सूती वस्त्र उद्योग

सूती कपड़े के उत्पादन में जर्मनी का विशिष्ट स्थान है। यहाँ घटिया रुई और ऊन मिला कर विशेष प्रणाली से खास किस्म का कपड़ा (Canders Yarn) तैयार किया जाता है। इस कपड़े से स्त्रियों के पहनने के वस्त्र और बनियान बनाये जाते हैं। इस उद्योग के प्रधान क्षेत्र निम्नलिखित हैं :—

(i) रूर कोयला क्षेत्र—इस क्षेत्र को वेस्टफेलिया प्रदेश भी कह सकते हैं। यह जर्मनी के उत्तरी पश्चिमी भाग में स्थित है। सूती कपड़े का यह सबसे प्रसिद्ध प्रदेश है। औद्योगिक क्षेत्र होने के कारण यहाँ सस्ते श्रमिक मिल जाते हैं और श्रमिक आबादी के लिए कपड़े की स्थानीय माँग भी बहुत है। राइन नदी और नहरों द्वारा सस्ता यातायात प्राप्त हो जाता है। ब्रेमेन बन्दरगाह द्वारा अमेरिकन रुई प्राप्त हो जाती है। इस क्षेत्र के मुख्य सूती केन्द्र ब्रेमेन, एल्बरफील्ड, मुंचेन, ग्लॉडबाक, मुन्टोन, रैने, क्रीफैल्ड ग्रोनाऊ इत्यादि हैं।

(ii) सेक्सोनी क्षेत्र—इस क्षेत्र में सूती कपड़े के उद्योग के विकसित होने के कारण यहाँ का प्राचीन ऊनी वस्त्र उद्योग है जिससे यहाँ कुशल कारीगरों की कमी नहीं। यहाँ कोयला जिकाऊ-डेस्डन प्रदेश से मिलता ही है। खनिज पदार्थों पर अवलम्बित उद्योगों के धीरे-धीरे नष्ट होते जाने से श्रमिकों की समस्या और सरल हो गई और शीघ्र ही सूती उद्योग इस क्षेत्र का मुख्य उद्योग हो गया। लीपजिग, ड्रेस्डन, राइसन वाक, चिमनिज, म्यूनिच व ज्विचान मुख्य केन्द्र हैं।

(iii) दक्षिणी पश्चिमी जर्मनी क्षेत्र के मुख्य सूती केन्द्र स्टटगार्ट तथा आग्स वर्ग और मुल हाउस हैं। यहाँ कोयला और कच्चा माल बाहर से मंगवाना पड़ता है। नेकार औद्योगिक क्षेत्र में यहाँ के कपड़े की खपत बहुत है। यहीं से सस्ते मजदूर भी मिलते हैं।

रूस में सूती कपड़े का उद्योग

रूस में यह उद्योग कुछ ही समय से आरम्भ हुआ है। पहले रूस को कपास अमेरिका से मँगवानी पड़ती थी। किन्तु जब वहीं कपड़े का उद्योग विकसित हो गया तो कपास का आना रुक गया, अतः अब रूस में ही सर और आमू नदियों के सूखे क्षेत्रों में—ताजखिस्तान व जार्जिया और मध्य दक्षिणी रूस—कपास पैदा किया जाने लगा है। किन्तु घरेलू मांग पूरी न होने से विदेशों से भी रुई आयात की जाती है।

यहीं कपड़े उद्योग का मुख्य क्षेत्र मास्को आइवानोवा है। यह टूला के कोयला क्षेत्र पर है। मास्को-वाल्गा नहर से सस्ता यातायात प्राप्त होता है। तथा मास्को औद्योगिक क्षेत्र है इसलिए चतुर श्रमिक पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। जनसंख्या अधिक होने से कपड़े की मांग भी बहुत है। मेरी नहर द्वारा यह क्षेत्र उत्तरी पश्चिमी औद्योगिक क्षेत्र और लेनिनग्राड से जुड़ा है। रूस के लगभग ½ कपड़े का उत्पादन इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है। कई छोटे नगरों में रंगाई, रसायन, सूती कपड़े की मशीनें आदि बनाने के कारखाने भी यहाँ हैं। अतः उद्योग को मरम्मत आदि की भी बड़ी सुविधा है। इस उद्योग के अन्य प्रमुख केन्द्र ये हैं :—

मास्को, आइवानोवा, लैनिनग्रॉड, कोस्ट्रोमो, रिबिनस्क, कालिमिन, बरनौल, अजरबेजान, लेनिनाकन, किरोव आबाद, तासकंद, फरगना। आइवानोवा तो 'रूस का मानचेस्टर' कहलाता है।

भारत में सूती कपड़े का उद्योग

उद्योग का विकास :

सूती कपड़े का उद्योग भारत में एक प्राचीन उद्योग रहा है। आज से ५००० वर्ष पूर्व भी भारत में उत्तम सूती कपड़ा बुना जाता था। सिंध की घाटी में ईसा के ३००० वर्ष पूर्व के हडप्पा और मोहनजोदड़ो स्थानों की खोज ने इस बात को प्रमाणित किया है। मिस्र में ईसा से २००० वर्ष पूर्व पिरामिडों में मृत-शरीर भारतीय मलमल में लिपटे हुए पाये जाते हैं। प्राचीन रोम में भारतीय मलमल और छींट के वस्त्र पहनने में रोमन महिलायें गौरव समझती थीं। ढाका की मलमल से यूनानी भी परिचित थे जिसे वे गंगा के देशवाली (Gangetica) कहते थे। वास्तव में ढाका की मलमल को इतना पसंद किया जाता था कि इसे विदेशियों ने अनेक नाम दे रखे थे। उदाहरणार्थ- 'प्रवाहित-जल' (Running Water), 'वायुवितान' (Woven Air) तथा 'सांध्य सीकर' (Evening Dew)।[1] भारतीय सूती वस्त्र के उद्योग के सम्बन्ध में मुगल यात्री ट्रेवनियर लिखता है कि "भारतीय वस्तुएं इतनी सुन्दर थीं कि वे तुम्हारे हाथ में हैं यह ज्ञान भी नहीं होता था। यह अति कोमलता से काते हुए तागों से बुना जाता था तथा एक पौंड रुई में २५० मील लम्बा धागा बुना जाता था।" यह मलमल ४०० नम्बर से भी ऊपर के सूत की बनाई जाती थी। इससे एक युवा स्त्री का शरीर ढक जाता था और यह मलमल का टुकड़ा अगूंठी में से निकाला जा सकता था।[2] आश्चर्य तो यह है कि यह सारा उद्योग उस समय हाथ करघों द्वारा ही होता था। यह उद्योग १८ वीं शताब्दी तक चलता रहा, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति से इसको बड़ा धक्का पहुँचा। मशीन युग के बड़े उत्पादन ने इस उद्योग को और भी जर्जर बना दिया। भारत में रेलों का विकास तथा पूर्व-पश्चिम के बीच स्वेज मार्ग का खुलना

---

१. Birdwood : Industrial Art of India, p. 259.

२. D. H. Buchenan : Capitalistic Enterprise in India, p. 195.

भारत के इस उद्योग के लिए अंतिम आघात था। इन कारणों से भारत का यह गौरवशाली उद्योग अतीत के गर्भ में लीन हो गया। इस सम्बन्ध में श्री बुकानन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं। "भारत के लिए सूती उद्योग अतीत का गौरव, भूत और वर्तमान का संकट और सदैव की आशा रहा है।"[१]

आधुनिक ढंग के कारखाने भारत में १९वीं शताब्दी के अर्द्ध भाग से ही आरंभ हुए हैं। यद्यपि पहिला कारखाना कलकत्ता में १८१८ में स्थापित किया गया था किंतु यह असफल रहा। सन् १८५१ में बम्बई में एक कारखाना खोला गया। इसके पश्चात् १८५४ में भारतीय पूँजी तथा साहस से पहला कारखाना बम्बई में कावसजी डावर द्वारा स्थापित किया गया। किंतु १८६१ तक इसकी प्रगति साधारण रही। इस कारखाने की सफलता देख कर अनेक नये कारखाने स्थापित किये गये। फलतः १८६१ तक भारत में १२ मिल हो गये। किंतु १८६१ से १८६५ तक अमेरिकन गृह युद्ध के कारण इंग्लैंड की मिलों को जब अमेरिका से कपास मिलना बंद हो गया तो भारत से इङ्गलैंड को कपास का निर्यात होने लगा। धीरे-धीरे भारत में इस प्रकार कमाये गए धन से नये कारखाने स्थापित होने लगे। १८८१ तक इनकी संख्या ५६ हो गई। बीसवीं शताब्दी में इस उद्योग की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। १९०० में १९३ कारखाने थे जिनमें १६१ हजार श्रमिक काम करते थे। १९०५ में स्वदेशी आंदोलन हुआ जिससे देशी उद्योगों को प्रोत्साहन मिला इसके फलस्वरूप कारखानों की संख्या बढ़ती गई। १९१४ तक यह २७२ हो गई जिसमें २६५ हजार मजदूर काम करते थे। १८८० में १९१४ तक सूती वस्त्र उद्योग के विकास की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं—तकुओं की अपेक्षा करघों की संख्या में द्रुत गति से वृद्धि होना और अच्छे वस्त्र के निर्माण की प्रवृत्ति।

प्रथम युद्ध के आरंभ होने पर इस उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला क्योंकि युद्ध के कारण विदेशों से आने वाले कपड़े की मात्रा कम हो गई। अतः भारत में ही कपड़े का उत्पादन बढ़ने लगा। युद्धोत्तर काल में इस उद्योग को जापानी कपड़े का मुकाबला करना पड़ा, विशेषतः बन्दरगाही शहरों में। इसके अतिरिक्त मूल्य स्तर में गिरावट, रुई की कीमतों में वृद्धि, एवं सूत के बाजारों में माँग की कमी और उत्पादन का संचय होने से कताई उद्योग को गहरा धक्का लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में ३७९ कारखाने थे जो भारतीय माँग का ६४% पूरा करते थे और शेष में से २७% की पूर्ति हाथकर्घा उद्योग तथा ९% आयात द्वारा पूरी होती थी। इस समय ५०% सूत का उत्पादन २० नम्बर सूत से अच्छा नहीं था। इस समय देश में १०० लाख तकुए तथा २०२ हजार कर्घे थे।

द्वितीय महायुद्ध काल में विदेशों से कपड़े का आयात कम हो जाने से इस उद्योग को पुनः प्रोत्साहन मिला। अतः १९४५ में कारखानों की संख्या ४१७ तथा तकुओं की संख्या १०,२३८ हजार और कर्घो की संख्या २०२ हजार हो गई। साथ ही कारखानों को बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए पूरी

१. D. H. Buchenan : *Ibid*, p. 195.

उत्पादनशीलता से कार्य करना पड़ा। फलतः इस समय सूत एवं कपड़े का उत्पादन क्रमशः १६,८०० लाख पौंड और ४८,७०६ लाख गज हो गया। इस काल में भारत से विदेशों को कपड़े का निर्यात बढ़ता गया तथा देश में माँग भी अधिक होती गई। इस समस्या को हल करने हेतु सरकार ने इस उद्योग पर नियंत्रण आदेश लागू किये।[1] इनका उद्देश्य कपड़े के उत्पादन, वितरण एवं मूल्यों पर नियत्रण रखना, कपड़े का स्थानीय उत्पादन बढ़ाना और कपड़े के यातायात पर नियंत्रण रखना तथा कपड़े के उत्पादन के लिये आवश्यक कच्चे माल एवं अन्य साधनों की कीमतों पर नियंत्रण रखना था। जनवरी १६४७ से वस्त्र उद्योग से मूल्य नियंत्रण हटा लिया गया।

अगस्त सन् १६४७ में देश के विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान को विभाजित भारत के १५ कारखाने तथा अच्छे किस्म की रुई उपजाने वाला ७३% प्रदेश मिला। फलतः भारत में ४०८ मिलें रह गईं। दूसरे, विभाजन के कारण पाकिस्तान से रुई का आयात दुर्लभ हो गया तथा भारतीय कारखानों का उत्पादन रुई न मिलने के कारण गिरने लगा। फलतः सूत एवं कपड़े का उत्पादन जो सन् १६४८–४६ में क्रमशः १४,७५० लाख पौंड तथा ४३,८१० लाख गज था वह सन् १६५१–५२ से १३,२५० लाख पौंड और ४२,६७० लाख गज ही रह गया। भारतीय कारखानों के लिये अच्छे किस्म की रुई प्राप्त करने के लिये पाकिस्तान के साथ १६४८ में व्यापारिक समझौता किया गया किंतु उसमें आशातीत सफलता न मिली। अतएव 'अधिक अन्न उपजाओ' आंदोलन (Grow More Food Campaign) के अंतर्गत रुई का उत्पादन बढ़ाया गया। साथ ही मिस्र, अफ्रीका व अन्य देशों से भी रुई का आयात होने लगा। १६५१–५२ से फिर उत्पादन बढ़ने लगा।

अगली तालिका में भारत के इस उद्योग के विकास सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं[2] :—

---

१. (i) Cotton Cloth and Yarn Control Order, 1943.
(ii) Do Amended, 1945 and 1947.
(iii) Cotton Textile Industry (Control of Production Order) 1945
(iv) Do (Control of Movement Order) 1946.
(v) Do (Raw materials and Stores) Order, 1946.

२. M. P. Gandhi : Indian Cotton Textile Industry, Annual, 1954-55.

वर्ष	मिलों की संख्या	तकुए (Spindles) (००० में)	कर्घे (Looms) (००० में)	औसत मजदूर	कपास का उपभोग (हजार गाँठों में)	मिल की उपलब्ध उत्पादन मात्रा (करोड़ गज में)
१८८०	५६	१,४६१	१३	४४,४००	—	—
१९००	१९३	४,९४५	४०	१६१,१८९	१,४५३	—
१९१५	२७२	६,८४८	१०८	२६५,३४६	२,१०२	—
१९३०	३४८	९,१२४	१७९	३८४,०८२	२,५७३	—
१९३९	३८९	१०,०५९	२०२	४४१,९४९	३,८१०	३७९
१९४७	४०८	१० २६६	१९७	४८३,६८३	४,२१०	३५७
१९५०	४४५	१०,८४९	२००	६७६,५२३	३,६३०	३१४
१९५२	४५३	११,४२७	२०४	७४०,६४०	४,४६०	३९७
१९५४	४६१	११,८८८	२०८	७४०,०००	—	—

भारत का यह उद्योग अन्य उद्योगों से अधिक महत्व रखता है, जैसा कि निम्न आँकड़ों से स्पष्ट होगा :—[1]

उद्योग	स्थायी पूँजी (लाख रुपयों में)	कार्यशील पूँजी (लाख रुपयों में)	मजदूर (००० में)	उत्पादित माल का मूल्य (लाख रु० में)
१. सूती वस्त्र उद्योग	७,०२८	१६,१९६	६६०	४४,४०१
२. विद्युत-इंजीनियरिंग	३,१४५	३,४३८	१५३	७,४०७
३. जूट उद्योग	२,८५७	४,९२३	२८७	२१,१५०
४. लोह और स्पात उद्योग	२,६६२	२,९७६	७९	६.११०
५. वनस्पति घी उद्योग	२,०८२	२,७४५	५६	१५,७१०
६. शक्कर	२,००४	५,०९५	१२०	१०,८८०
७. रसायन	१,४६९	१,५३४	३८	३,६९८
८. सीमेंट	१,३६८	७२४	३२	१,९६१
९. कागज	१,०३९	६६८	३२	१,७३८
१०. ऊनी वस्त्र	२१९	७४०	१४	१,४२७
कुल उद्योग	२७,५१८	४३,७८२	१,६८३	१३०,६८६

संसार में सूती कपड़ों का उत्पादन करने वाले देशों में भारत का स्थान प्रमुख है। रुई उत्पादन की दृष्टि से इसका स्थान दूसरा, इस उद्योग में लगे व्यक्तियों की संख्या की दृष्टि से तीसरा तथा तकुओं की संख्या की दृष्टि से चौथा है।

१. Ministry of Commerce and Industry: Report on the Sixth Census of Indian Manufactures, 1951 (1955)

उद्योग का स्थापन :

सूती वस्त्र उद्योग का स्थानीयकरण विशेषतः कच्चे माल, ईंधन, रसायन, यंत्र, मजदूर और कपड़े की मांग पर निर्भर है। इन कारणों में से किसी एक की प्रचुरता इस उद्योग के स्थापन के लिए पर्याप्त है। स्थापन की दृष्टि से रुई को शुद्ध रेशा माना जाता है क्योंकि निर्माण क्रिया में रुई वजन में अधिक नहीं घटती और इसीलिए रुई और सूती माल के यातायात के व्ययों में अधिक अन्तर नहीं पड़ता। अतः यह आवश्यक नहीं कि सूती कपड़े के मिल रुई पैदा करने वाले क्षेत्रों के पास ही स्थापित किये जावें। यह उद्योग बाजार की समीपता से अवश्य प्रभावित होता है। (It is market localised rather than raw-material localised)।

नीचे की तालिका में प्रमुख वर्षों में भारत में जिस प्रकार रुई की खपत हुई है तथा जितना सूत व कपड़ा बनाया गया है उससे सम्बन्धित आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

फसल	भारतीय रुई	पाकिस्तानी रुई	अन्य देशों की रुई	योग
		(४०० पौंड वाली लाख गाँठों में)		
१९४२-४३	३०·३	१३·६	४·७	४८·६
१९४४-४५	२९·९	१२·५	६·५	४८·९
१९४५-४६	२७·०	१२·६	६·०	४६·६
१९४७-४८	२८·६	७·२	६·३	४२·१
१९५०-५१	२५·२	०·२	१०·९	३६·३
१९५१-५२	२९·९	नगण्य	१०·८	४०·७
१९५२-५३	३६·१	९·५५	८·५	४४·६
१९५३-५४	३८·८	३·६८	७·५	४६·०७

अधिकतर यह उद्योग वहीं स्थापित किया गया है जहाँ मजदूरों अथवा विस्तृत बाजार की सुविधा है। अतः इस उद्योग का महत्वपूर्ण क्षेत्र बम्बई राज्य है जहाँ देश के लगभग ३५% कर्घे और ३०% तकुए पाये जाते हैं। बम्बई राज्य, बम्बई और अहमदाबाद की मिलों से समस्त देश के उत्पादन का प्रायः आधा सूत और दो-तिहाई वस्त्र मिलते हैं। इस उद्योग के प्रमुख क्षेत्र ये हैं :—

(i) गुजरात और सौराष्ट्र
(ii) मालवा का पठार
(iii) खानदेश और बरार (ताप्ती तथा पूर्णा नदियों की घाटी में)
(iv) बम्बई-दक्कन (भीमा और हगारी नदियों के मध्यवर्ती भाग में)
(v) दक्षिणी मद्रास
(vi) पंजाब में (सतलज नदी के निकटवर्ती भागों में)
(vii) गंगा की ऊपरी घाटी (दिल्ली से कानपुर तक का क्षेत्र)
(viii) पश्चिमी बंगाल (हुगली के निकटवर्ती क्षेत्र में)

नीचे की तालिका में इस उद्योग का प्रादेशिक वितरण बताया गया है:—

राज्य	कारखाने	राज्य	कारखाने
बम्बई	२१३	राजस्थान	१०
मद्रास	७३	केरल	७
पश्चिमी बंगाल	२६	दिल्ली	७
उत्तर प्रदेश	२६	पंजाब	४
मध्य प्रदेश	१५	बिहार	४

बम्बई :

बम्बई राज्य भारत के सूती कपड़े के उद्योग में अग्रणी है। इसके निम्नांकित कारण हैं :—

(१) सारा रुई पैदा करने वाला प्रदेश बम्बई बन्दरगाह का पृष्ठ देश है। इसलिए सारी रुई विदेशी निर्यात के लिए बम्बई को आती है और बम्बई की मिलों के लिए रुई की विशेष माँग करने की आवश्यकता नहीं होती। लम्बे रेशे वाली रुई मिस्र और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से मंगवाने की भी सुविधा है।

(२) बम्बई यूरोप का सबसे निकट का बन्दरगाह है, इसलिये मिलों के लिए आवश्यक मशीनें और अन्य सामान इंगलैंड, जर्मनी और अमेरिका आदि देशों से मंगवाने की सुविधा प्राप्त है।

(३) बम्बई समुद्र के किनारे स्थित है और नम मानसूनी हवाओं के प्रवाह क्षेत्र में है, इसलिए यहाँ की मिलों में सूत का धागा पतला और लम्बा आता है और बार-बार नहीं टूटता है।

(४) बम्बई की मिलों को पहले पश्चिमी बंगाल के कोयले की खानों पर निर्भर रहना पड़ता था—किन्तु अब पश्चिमी घाट पर स्थित टाटा जल-विद्युत योजना से सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त सामुद्रिक मार्ग द्वारा दक्षिणी अफ्रीका और इङ्गलैंड से भी कोयला मंगवाया जा सकता है।

(५) बम्बई देश का प्रधान व्यापारिक केन्द्र है। इसलिए अपने पृष्ठ देश द्वारा रेलों से जुड़ा है। अतः तैयार माल भीतरी भागों को सुविधापूर्वक भेजा जा सकता है।

(६) बम्बई में पूँजीपतियों का जमाव अधिक है। अतः नई मिलों के लिए पूँजी काफी मात्रा में मिल जाती है।

(७) बम्बई की मिलों में काम करने के लिए मजदूर कोंकन, सतारा और शोलापुर और रत्नागिरी जिलों तथा दक्कन राजस्थान और उत्तर प्रदेश से भी आते हैं।

(८) बम्बई के प्रमुख पारसी और भाटिया व्यापारियों ने विदेशी व्यापार में बहुत धन अर्जित किया था—विशेषतः चीन के साथ होने वाले कपास और अफीम के व्यापार में। अमेरिकन गृह युद्ध के कारण विदेशों को निर्यात किये जाने वाली कपास की मात्रा बढ़ गई, इसमें उन्हें काफी लाभ हुआ। इसी धन का उपयोग बम्बई में सूती कपड़े की मिलें खोलने में किया गया।

(९) बम्बई के अधिकाँश व्यापारियों को कपास के व्यापार का पूरा अनुभव था तथा उनका संबंध विदेशी कम्पनियों से होने के कारण उन्हें इस उद्योग का भी अनुभव होगया। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में तांत्रिक सहायता अंग्रेजी मशीन बनाने वाली फर्मों से मिल गई।

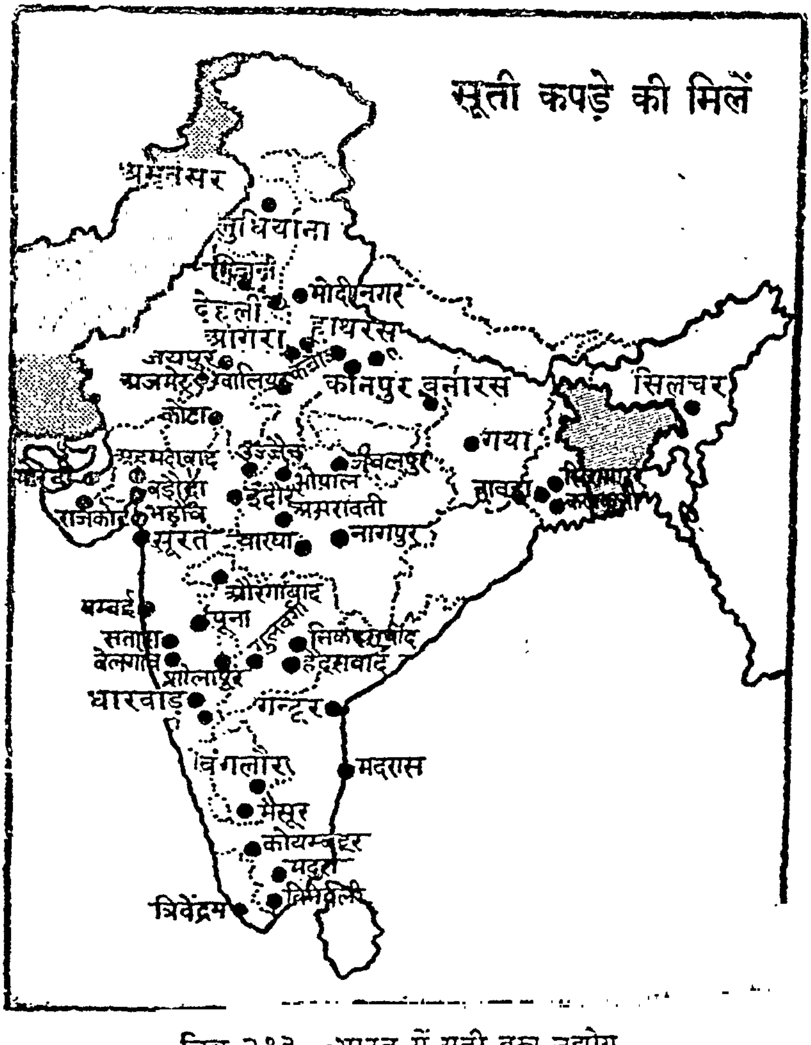

चित्र २१३—भारत में सूती वस्त्र उद्योग

इन कारणों से ही बम्बई में प्रथम सूती कपड़े के मिल स्थापित हुए और बम्बई भारत के सूती वस्त्रों के व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र हो गया है। यहाँ सूत बनाना और कपड़ा बुनना दोनों ही कार्य किये जाने लगे। फलस्वरूप १८९० तक बम्बई द्वीप में ७० मील खुल गए। १९वीं शताब्दी के अंत तक भारत में कुल उत्पादन क्षमता की आधे से भी अधिक क्षमता बम्बई में स्थित थी। इसी कारण बम्बई को भारत की कपास की राजधानी (Cotton-polis) कहा जाता है।

इन सब सुविधाओं के होते हुए भी १९२९ से बम्बई में इस उद्योग का भावी विकास कुछ रुक सा गया है क्योंकि अब बम्बई को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है :—[1]

(१) बम्बई में पहले से ही ७० से भी अधिक कारखाने हैं और अधिक विस्तार के लिए यहाँ स्थान का अभाव है क्योंकि यह नगर एक छोटे से टापू पर स्थित है।

(२) स्थान की कमी के कारण मजदूरों के रहने के लिए मकान की समस्या बड़ी विकट हो गई है तथा मकानों के किराये और भूमि का मूल्य बहुत बढ़ गया है।

(३) चूँकि बम्बई पश्चिमी घाटों द्वारा कुछ अलग सा हो गया है अतः दैनिक व्यवहार की वस्तुओं—दूध, घी, शाक-सब्जी आदि—की कमी रहती है। अतः बम्बई में रहन-सहन का खर्च काफी होता है।

(४) सरकारी टैक्स आदि भी अधिक हैं।

(५) देश के भीतरी भाग के कारखानों से, जो कपड़े की खपत के प्रदेश में हैं, बम्बई की स्पर्धा बढ़ गई है।

(६) पहले बम्बई अधिकतर विदेशों के लिए सूत तैयार करता था किंतु अब देश में सूत की अपेक्षा कपड़ा अधिक बनाया जाने लगा है। अतः इस दृष्टि से बम्बई का महत्त्व कुछ कम हो गया क्योंकि कपड़े की खपत के केन्द्रों से यह भीतरी केन्द्रों की अपेक्षा कुछ दूर पड़ता है। अतः कपड़े के यातायात में अधिक खर्च पड़ जाता है।

(७) रेलों ने देश के भीतरी भागों से बन्दरगाहों पर ले जाने वाले माल के लिए जो रियायतें दी थीं वे अब बन्द करदी हैं।

(८) बम्बई में मजदूरों की मजदूरी भी बढ़ गई इससे कपड़े के उत्पादन में अधिक व्यय होने लगा।

अतः इन असुविधाओं के कारण नये मिल बम्बई द्वीप के बाहर ही खोले जाने लगे। सबसे पहले अहमदाबाद में कपड़े की मिलें स्थापित की गईं जहाँ इस उद्योग के लिये ये सुविधायें प्राप्त हैं :—

(१) यहाँ साहसी व्यापारियों और सेठों की कमी नहीं है। जिनसे उद्योग के लिए पर्याप्त पूँजी मिल जाती है।

(२) यह सौराष्ट्र और गुजरात के कपास उत्पादन केन्द्रों के मध्य में स्थित है। अतः धौलेरा और भड़ौंच नामक उत्तम कपास बहुत मिल जाती है।

(३) सौराष्ट्र तथा गुजरात के बन्दरगाहों द्वारा विदेशों से मशीनें आदि सुगमतापूर्वक मँगवाई जा सकती हैं।

(४) यहाँ बहुत प्राचीन काल से ही घरेलू धंधे के रूप में कताई और बुनाई का उद्योग होता रहा है। अतः मिलों के लिए चतुर मजदूर मिलने की सुविधा है।

१. Dr. T. R. Sharma: Location of Industries in India, 1951, p 22.

(५) तैयार माल पंजाब, यू० पी०, राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में आसानी से भेजा जा सकता है। यहाँ के कपड़े की माँग दिल्ली, कानपुर और अमृतसर तक है।

इन कारणों से अहमदाबाद भारत में सूती कपड़े बनाने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे 'पूर्व का बोस्टन' कहते हैं।

धीरे-धीरे अहमदाबाद के अतिरिक्त नये मिल बम्बई राज्य में पेटलाद, धूलिया, नाड़ियाद, सूरत, भड़ौंच, बडौदा, शोलापुर, पूना, हुबली, बेलगांव, सतारा, कोल्हापुर, जलगांव, राजकोट, मोखी, कलोल, वीरमगांव, नवसारी, बिलीमोरिया, नागपुर, आमलनेल, भावनगर आदि नगरों में भी खुल गये हैं।

बम्बई की मिलों में भीतरी क्षेत्रों की मिलों से स्पर्धा होने के कारण अब बढ़िया कपड़ा ही अधिक बनने लगा है। इन मिलों में लट्ठा, मलमल, वायल, विभिन्न प्रकार की छींटें, चद्दरें, 'टी क्लाथ', कमीजों के टुकड़े धोतियाँ आदि तथा कई प्रकार के रंगीन कपड़े बनाये जाते हैं। अहमदाबाद में भी उत्तम और महीन कपड़ा अधिक बनाया जाता है—विशेषतः छोटे रूमाल, धोतीयाँ, शर्टिंग, कोटिंग, मलमल, वायल आदि। कपड़े की किस्म के अनुसार अहमदाबाद में लंकाशायर की मिलों की तरह 'मिस्री कपड़े' और बम्बई में 'अमरीकी कपड़े' अधिक बनाये जाते हैं।[१]

पश्चिमी बंगाल :

पश्चिमी बंगाल में कलकत्ता के आसपास ३० मील की परिधि में २४ परगना, हावड़ा और हुगली प्रदेश में हुगली नदी के किनारे पर सूती कपड़े के लगभग ४० मील हैं। इस स्थापन के कारण ये हैं :—

(१) कलकत्ता बन्दरगाह के समीप होने के कारण विदेशों से मशीनें और रुई आसानी से इन मिलों के लिए आ जाती हैं।

(२) रानीगंज और झरिया की खानों से कोयला प्राप्त हो जाता है। रेल मार्गों और जल मार्गों का जाल सा बिछा होने के कारण तैयार माल आसपास के स्थानों को भेजा जा सकता है—विशेषतः आसाम, बिहार और उड़ीसा को।

(३) कलकत्ता में पूँजी और अन्य व्यापारिक सुविधायें भी प्राप्त हो जाती हैं।

(४) मजदूर विशेषकर बिहार, उत्तर प्रदेश व आसाम से आ जाते हैं।

(५) घनी जनसंख्या वाले प्रदेश के केन्द्र में होने से यहाँ कपड़े की मांग अधिक है।

(६) यहाँ का जलवायु उद्योग के अनुकूल है तथा सालभर ही सूती कपड़ा पहनने का मौसम रहता है।

---

१. "From the point of view of progress in quality Ahmedabad resembles what they call in Lancashire the 'Egyptian Section of the Cotton Industry', while Bombay the 'American Section' of the British Cotton Industry"—Vide Dr. T. R. Sharma : *Ibid*, p. 52.

इन्हीं सब कारणों से यहाँ सूती वस्त्रों के व्यवसाय की उन्नति हो पायी है। इसके मुख्य केन्द्र सोदपुर, पनिहाट्टी, सीरामपुर, मौरीग्राम, शामपुर, पाल्टा, बेलगरी, सल्कीया और घूसेरी आदि हैं। इन मिलों में भूरा और ब्लीच किया हुआ कई प्रकार का कपड़ा बनता है। पश्चिमी बंगाल में इस व्यवसाय की और भी उन्नति होने की आशा है क्योंकि निकटवर्ती प्रदेशों में सूती कपड़े की मिलों का अभाव है तथा कलकत्ता विश्व का सबसे बड़ा सूती कपड़े का बाजार है।[१]

बंगाल के उद्योग को कुछ असुविधायें भी हैं—

(१) यहाँ कच्चे माल की बहुत कमी है, अतः कपास काफी दूर से मंगवानी पड़ती है।

(२) यहाँ के आरम्भिक पूँजीपतियों और व्यवसायियों ने जूट उद्योग के विकास की ओर ही अधिक ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त चाय, कोयला अ यातायात के उद्योग में ही अधिक धन लगाया।

उत्तर-प्रदेश :

सूती वस्त्र उद्योग में उत्तर प्रदेश का स्थान तीसरा है। यहाँ १६ वीं शताब्दी के अन्त में इस उद्योग का विकास हुआ। उत्तर प्रदेश में यद्यपि मुरादाबाद, बनारस, आगरा, बरेली, अलीगढ़, मोदीनगर, हाथरस, सहारनपुर, रामपुर, इटावा आदि स्थानों में सूती कपड़े की मिलें पाई जाती हैं किन्तु कानपुर इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। इसे उत्तरी भारत का 'मानचेस्टर' कहते हैं। इसके कारण ये हैं :—

(१) यह गंगा की घाटी के कपास के क्षेत्र की सीमा पर है जहाँ से यहाँ कपास आती है। यह कपास छोटे रेशे वाली होती है, अतः यहाँ मोटा कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है।

(२) यह नगर न केवल उत्तर प्रदेश के नगरों से ही मिला है वरन् अमृतसर, दिल्ली और कलकत्ता से भी उत्तम रेलों और सड़कों द्वारा जुड़ा है। अतः मिलों की मशीनें व रासायनिक पदार्थ सरलता से प्राप्त हो सकते हैं।

(३) यह रानीगंज, झेरिया और डाल्टनगंज की कोयले की खानों के निकट है।

(४) उत्तर प्रदेश की अधिक जनसंख्या और कृषकों की अधिकता के कारण कपड़े की मांग अधिक रहती है।

(५) घनी आबादी के कारण मजदूर सस्ते और अधिक परिमाण में मिल जाते हैं।

मद्रास :

दक्षिणी भारत में भी सूती कपड़े की मिलों का आधिक्य है। इसका मुख्य कारण सस्ती जल-विद्युत शक्ति और कपास का अधिक परिमाण में मिलना

१. P. S. Loknathan : Industrial Organisation in India, p. 63.

है। मजदूर भी बहुत मिल जाते हैं। दक्षिणी भारत के मिल समस्त देश का १६% सूत बनाते हैं। यहाँ सूती मिलें मद्रास में मदुरा, कोयम्बटूर, सलेम, टिन्नेवेली, बलारी में; मैसूर में मैसूर व बंगलौर में; आंध्र में गतूर, गोदावरी व हैदराबाद और आरंगाबाद तथा गुलबर्गा में तथा केरल में ट्रावनकोर और त्रिवेन्द्रम में पाई जाती हैं।

मध्य प्रदेश की वर्धा और पूर्णा नदियों की घाटी में कपास खूब उत्पन्न होता है तथा पिछड़ी जातियों की अधिकता से मजदूर भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। वरोरा की खानों से कोयला मिल जाता है। सूती कपड़े की मिलें रतलाम, इन्दौर, ग्वालियर, देवास, निमार, आकोला, राजनन्द गांव, हिंगनघाट, भोपाल, उज्जैन बुड़नेरा, बुरहानपुर, एलीचपुर और पूलागांम में हैं।

राजस्थान में यह उद्योग पाली, ब्यावर, विजयनगर, किशनगढ़, भीलवाड़ा और कोटा में केन्द्रित है। यहाँ कोयला बिहार की खानों से मंगवाया जाता है किन्तु कपास की प्राप्ति स्थानीय ही होती है। कपड़े की मांग भी यहाँ इतने बड़े क्षेत्र की है।

उत्पादन और व्यापार :

भारत में सूती कपड़े की मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा है। अधिकांश सूत ३० नम्बर से कम का होता है। ४० नम्बर से ऊपर का सूत तो बहुत ही कम उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में अच्छी और लम्बे रेशे वाली कपास का उपयोग कम किया जाता है। केवल बम्बई और अहमदाबाद की मिलों में जो ४० नम्बर से भी अधिक का बारीक सूत काता जाता है वह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मिस्र तथा पाकिस्तान से आयात की गई कपास से तैयार किया जाता है। अब ऊँचे नम्बर का सूत भी भारतीय मिलों में तैयार किया जाने लगा है। इससे महीन कपड़े का निर्माण किया जाता है। अधिकांशतः हमारी कपास मोटे रेशे वाली होने के कारण केवल मोटा और मध्यम श्रेणी का कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है। सन् १९४८ में कुल उत्पादन का १८% मोटा, ६०% मध्यम और १४% महीन और केवल ८% उत्तम कपड़ा बनाया गया था। १९५२ में यह प्रतिशत क्रमशः ११%, ५९%, २६% और ४% था।

भारत में ४५३ मिल हैं जिनमें सूत का १६,३४४ लाख पौंड और कपड़े का उत्पादन ५०,९२८ लाख गज है। इस उद्योग में ११० करोड़ रुपये की चुकता पूँजी लगी है तथा इसमें लगभग ७½ लाख व्यक्तियों को काम मिलता है। उद्योग के वार्षिक उत्पादन का मूल्य ३३५ करोड़ रुपये है तथा रुई की वार्षिक खपत ४६ लाख गांठ है, जिसमें से ७ लाख गांठें आयात की जाती हैं। इससे सरकार को ७० करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है। अगली तालिका में भारत में सूत और सूती कपड़े का उत्पादन तथा निर्यात बताया गया है :—[1]

1. उद्योग व्यापार पत्रिका, दिसम्बर, १९५६, पृ० ६२५, ६३८

वर्ष	उत्पादन		निर्यात (मिल का कपड़ा)	मूल्य (लाख रु० में)
	सूत (लाख पौंड)	सूती कपड़ा (लाख गज)	(लाख गज)	
१९४६-४७	१३,६६८	३९,०८४	×	×
१९४८-४९	१४,४७२	४३,१८८	×	×
१९५०-५१	११,७४८	३६,६६८	१२,२४०	११,२१७
१९५२-५३	१४,४९६	४५,९८४	५,६५०	५,३२८
१९५४-५५	१५,६१२	४९,९८०	७,६३०	५,५०९
१९५५-५६	१६,३४४	५०,९२८	६,८०३	४,८१७

यद्यपि भारत कपड़े के उत्पादन में आत्मनिर्भर देश है किन्तु प्रति व्यक्ति पीछे यहाँ कपड़े की खपत केवल १६ गज पड़ती है, जबकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह ६४ गज, पश्चिमी यूरोपीय देशों में ३० गज जापान में २० गज व इंग्लैंड में ४५ गज है।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना में इस उद्योग से यह अपेक्षा है कि १९६०-६१ में जो सूत और कपड़े की अनुमानित आवश्यकता क्रमशः १९,५०० लाख पौंड और ८५,००० लाख गज होगी उसे पूरा करेगी। ८५,००० लाख गज कपड़े में से ३५,००० लाख गज कपड़े का उत्पादन कर्घा उद्योग को करना होगा और शेष संगठित उद्योगों को। इसके अतिरिक्त उद्योग को अपने वर्तमान निर्यात को कायम रखते हुए २५०० लाख गज अतिरिक्त कपड़े का उत्पादन केवल निर्यात के लिए करना होगा। इस हेतु मिलों को १४,६०० स्वयंचालित कर्घे नये लगाने पड़ेंगे।

भारत से कपड़े का निर्यात विशेषतः हिन्द महासागर के किनारे वाले देशों को—पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका, अरब, इराक, ईरान, आस्ट्रेलिया न्यूजीलेंड, इंडोनेशिया, ब्रह्मा, लंका, मिस्र, टर्की, चीन और जापान—होता है।

उद्योग की समस्यायें :

इस उद्योग को मजबूत आधार पर स्थिर करने के लिए निम्न समस्याओं को हल करना आवश्यक है :—

(१) यद्यपि इस उद्योग ने काफी लाभ कमाया, किन्तु इन लाभों से न तो समुचित संचित-निधि का निर्माण ही किया गया और न पुरानी व घिसी हुई यंत्र सामग्री का नई एवं अद्यावधि यंत्र सामग्री से विस्थापन ही। इस कारण भारतीय वस्त्र उद्योग के उत्पादन की कीमतें अधिक रहती हैं जिससे भारतीय कपड़ा विदेशी प्रतियोगिता में नहीं ठहरता। अतः इन कारखानों का वैज्ञानिकन किया जाय।

(२) यह उद्योग भारत का सबसे प्राचीन उद्योग होते हुए भी गत १०० वर्षों से उद्योग की आवश्यक यंत्र सामग्री के लिए हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ा है। इस निर्भरता को त्यागने के लिए भारत में ही वस्त्र उद्योग की आवश्यक यंत्र सामग्री का निर्माण किया जाय। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कपड़ा

उद्योग के लिए आवश्यक यंत्रों का उत्पादन १७ करोड़ रुपये के मूल्य का करने का लक्ष्य रखा गया है।

(३) युद्ध के बाद सभी देशों ने अपना औद्योगिक पुनर्गठन एवं पुनर्निर्माण कर लिया है। जापान भारत की प्रतियोगिता में फिर से आ गया है जिससे हमारे हाथ से निर्यात बाजार निकलते जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में वस्त्र निर्माताओं के सम्मुख दो प्रमुख समस्यायें हैं—(१) वर्तमान निर्यात बाजार को कायम रखना, और (२) देशी बाजार में सफल प्रतियोगिता। इस हेतु उद्योग को अपनी उत्पादनशीलता बढ़ाकर उत्पादन की लागत कम करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त श्रमिकों की कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिए तांत्रिक शिक्षा का प्रवन्ध होना भी आवश्यक है।

(४) हाथ-कर्घा उद्योग और मिल उद्योग में पूर्ण सामंजस्य होना चाहिए।

(५) भारत को अब भी काफी मात्रा में लम्बे रेशे की रुई मिस्र, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आदि से महँगे दामों पर खरीदनी पड़ती है, अतः इस बात की आवश्यकता है कि देश में ही लम्बे रेशे वाली रुई का उत्पादन बढाया जाय। १९४७-४८ में लम्बे, मध्यम और छोटे रेशे वाली रुई का उत्पादन क्रमशः १५, ५१ और ३४ प्रतिशत था। यह १९५४-५५ में क्रमशः ३७,४४ और १९ हो गया। इस समय पंजाब में L. L. 54 ; दक्षिणी पूर्वी पंजाब में H. 14 ; बम्बई में 170-C 2 ; खानदेश में Virnar 197-3 ; अमरेली (बम्बई) में C. J. 73 ; भड़ौंच में 'दिग्विजय' ; धारवाड़ में 'लक्ष्मी' और 'जयधर' ; मद्रास में M. C. V. I तथा M. C. V. 2 ; मध्य प्रदेश में H. 420 ; 13 A ; 59 A और मैसूर में M. A. 5 तथा आंध्र में 'गारोनी' किस्म की लम्बे रेशे वाली रुई अधिक सफलता प्राप्त कर सकी है।

भारतीय हाथ कर्घा उद्योग (Indian Handloom Industry)

यह भारत का सबसे प्राचीन उद्योग है जो आज भी भारत की आवश्यकताओं को पूरी करता है। इसके द्वारा १·४ करोड़ व्यक्तियों को जीविका मिलती है तथा देश के सम्पूर्ण उत्पादन का $\frac{1}{3}$ से अधिक कपड़ा मिलता है। भारत में २३ लाख हाथ कर्घे हैं जिनका वार्षिक उत्पादन १८,००० लाख गज आँका गया है। इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र मदुरा, कोयम्बटूर, कर्नाटक (महाराष्ट्र), वाराणसी, भागलपुर, शांतिपुर, नागपुर और चंदेरी हैं।

जूट का उद्योग (Jute Industry)

जूट भारत के प्रमुख उद्योगों में से है। विश्व में भी जूट का पक्का माल तैयार करने में भारत का स्थान प्रथम है। यहाँ यह उद्योग बहुत समय से होता आया है। बंगाल में इसे कपाली लोग कुटीर प्रणाली पर करते आये हैं। इस उद्योग की कई विशेषतायें हैं जिनके कारण इसका इतना अधिक महत्व है :—

(१) इस उद्योग से हमारे देश को अमित आय होती है। यह भारत का सबसे अधिक डॉलर कमाने वाला उद्योग है जैसा कि अगली तालिका से ज्ञात होगा :—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	जूट का सामान		चाय		सूती वस्त्र		खालें और चमड़ा		भारत का
	पावना	%	पावना	%	पावना	%	पावना	%	कुल आयात
१९५२-५३	१२९	२३·३	८०	१४·४	७०	१२·६	२६	४·७	५५५
१९५३-५४	११४	२२·०	१०२	१९·७	७२	१३·६	३१	६·०	५१८
१९५४-५५	११४	२७·०	१४७	२५·७	६६	११·५	२६	४·५	५७२

(२) पाट से बनी हुई वस्तुएँ बहुत उपयोगी होती हैं। सामान बांधने के लिए संसार में अन्य कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिसमें पाट जैसी मजबूती और सस्तापन हो। पाट के बोरों का उपयोग उनके मजबूत होने के कारण सामान बांधने के लिए अनेक बार किया जा सकता है। अतः ये काफी सस्ते पड़ते हैं, इनकी मरम्मत आसानी से की जा सकती है तथा ये सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जा सकते हैं।

(३) विभाजन के पूर्व भारत से ही विश्व के उत्पादन का ६६% कच्चा जूट प्राप्त होता था, अतएव विश्व में जूट के उद्योग में भी भारत का एकाधिकार था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यह उद्योग विश्व में सबसे अधिक भारत में ही केन्द्रित और विकसित हुआ है। विश्व में कुल जूट के कर्घों का ५६% अब भी भारत में ही पाया जाता है, जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

विश्व में जूट के कर्घों का वितरण

देश	कर्घे	विश्व का प्रतिशत
भारत	६८,५५७	५६·०
ग्रेट ब्रिटेन	११,१५१	६·१
फ्रांस	७,६६८	६·३
जर्मनी	६,३४६	५·२
ब्राजील	४,६८७	४·१
बेल्जियम	४,८०७	३·६
इटली	४,६३१	३·८
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२,७५०	२·२
जैकोस्लोवाकिया	२,०००	१·६
पोलैंड	१,६००	१·३
रूस	१,३१५	१·१
पाकिस्तान	१,०००	०·८
द० अमेरिका	१,०००	०·८
स्पेन	८००	०·७
चीन	७५६	०·६
आस्ट्रिया	७३५	०·६
जापान	६१५	०·५
अन्य देश	१,७५६	१·४
योग	१,२२,५१०	१००·०

(४) सूती वस्त्र उद्योग के बाद यह सबसे प्रमुख उद्योग है। सुचारु संगठन में यह उद्योग सब उद्योगों में अद्वितीय है।

1. Major Industries Annual: 1952—53, p, 99.

(५) इस उद्योग में २२·६ करोड़ स्थायी पूंजी और ४३·१३ करोड़ की कार्यशील पूंजी लगी है। इसमें से विदेशी पूंजी केवल १५·०७ करोड़ रुपया है; अतः यह उद्योग मुख्यतः भारतीयों के ही अधिकार में है।

उद्योग का विकास :

१९वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में यह उद्योग कुटीर-प्रणाली पर किया जाता था। इस समय जूट और जूट के उत्पादन का निर्यात भी विदेशों को होता था। १८२८-२९ में भारत से १०,१३,२७७ बोरे तथा टाट के टुकड़ों का निर्यात किया गया। ईस्ट इण्डिया कंपनी के प्रयत्नों से विश्व जूट तथा उसके रेशे से परिचित हुआ। १८३२ में यंत्रों की सहायता से डंडी में जूट का माल बनना आरंभ हुआ, किंतु भारत में १८५५ तक यह उद्योग कुटीर रूप में ही होता रहा।[1] इस वर्ष जार्ज आकलैंड नामक एक स्कॉट निवासी ने जूट की कताई के लिए कलकत्ते से १० मील दूर हुगली नदी के किनारे रिश्रा नामक स्थान पर पहला कारखाना खोला। इसके ४ वर्ष बाद १८५९ में बुनाई के लिए शक्ति-संचालित कर्घे का उपयोग 'दी बोर्नियो कं०' में किया गया। इससे भारत में यंत्र निर्मित जूट की वस्तुएँ—थैले, बोरे, टाट, बैंडमिंटन-जाल आदि—बनाये जाने लगे। १८७३ तक चार कारखाने और स्थापित हुए। १८६४ से १८८२ तक मिलों की संख्या २२ हो गई जिनमें २७,४९४ व्यक्ति काम करते थे और ७७,८४० तकुए तथा ४,७४६ कर्घे थे। इनमें से १७ मिलें अकेले कलकत्ता के निकटवर्ती भाग में थीं जहाँ उन्हें कच्चे माल और निर्यात दोनों की सुविधा थीं। जूट के माल की विदेशी माँग होने से मिलों की संख्या बढ़ती गई। १८९५ में भारत में २९ मिल थे जिनमें २,०१,२१७ तकुए और १०,०४८ कर्घे थे तथा ७५ १५७ व्यक्ति काम करते थे। इस समय भी २६ मिलें कलकत्ता के आस-पास ही थीं और शेष बंगाल के अन्य भागों में। १९१४ तक मिलों की संख्या ६४, तकुओं की संख्या ७४४,२८९, कर्घों की संख्या ३६,०५० हो गई तथा मजदूरों की संख्या भी २,१६,२८८ हो गई। इस काल में कर्घों और तकुओं की संख्या बढ़ रही थी।

प्रथम महायुद्ध के समय इस उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला. अतएव मिलों का उत्पादन बढ़ गया। युद्धकाल में औसतन ५५ लाख रुई की गाँठें खपत में आती थीं। किंतु युद्ध समाप्ति पर जब युद्धजन्य आदेश आने बंद हो गये तो भारतीय बोरों और जूट के माल की माँग कम हो गई। कच्चे जूट की कीमतें और श्रम-व्यय बढ़ने लगा। युद्ध काल में कमाये गए धन से नये उद्योगों की स्थापना तथा पुराने उद्योगों ने अपना विस्तार आरंभ किया। कोयले की भी कमी हो रही थी तथा विश्वव्यापी व्यापारिक मंदी आरंभ हो रही थी। इन सब कारणों से उद्योग सङ्कट में आ गया, अतएव काम के घंटे कम

---

१. इसी समय विश्व के अन्य देशों में भी जूट की मिलें खोली गईं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १८४८, फ्रांस १८५७, जर्मनी १८६१, बेल्जियम १८६५, रूमानिया व इटली १८८५। रूस, पोलैंड, जैकोस्लोवाकिया, स्पेन, नार्वे और फिनलैंड में भी इस शताब्दी में मिलें खुलीं।

कर दिये गये तथा कम कर्घे काम में लाये जाने लगे। यह स्थिति १६२६ तक रही। इस समय भारत में ६५ मिल थे जिनमें ११,४०,४३५ तकुए और ३५,६०० कर्घे थे तथा ३,४३,२५७ व्यक्ति काम करते थे।

द्वितीय महायुद्ध के आरंभ होने पर एक बार पुनः उद्योग को प्रोत्साहन मिला, किंतु १६४० में जूट वस्तुओं की माँग कम हो गई तथा उत्पादन पर दो बातों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। कोयला तथा विद्युत शक्ति की कमी तथा यातायात की असुविधा हो गई और १६४३ में अकाल पड़ गया। १६४७ में देश का विभाजन हो जाने से इस उद्योग को भारी धक्का लगा क्योंकि उत्तम जूट पैदा करने वाले भाग पूर्वी पाकिस्तान को चले गये जो अविभाजित भारत का ७३% जूट पैदा करते थे। किंतु जूट के सभी कारखाने भारत में रहे। अतः इन मिलों के लिए कच्चे जूट की कमी पड़ गई। फलस्वरूप सरकार ने जूट की माँग पूरी करने के लिए पाकिस्तान से जूट आयात का समझौता किया, कच्ची जूट की खरीद के अधिकतम मूल्य नियत किये और देश में ही जूट की उपज बढ़ाने के प्रयत्न किये। फलतः देश में जूट की खेती बढ़ने लगी। इसका प्रमाण निम्न तालिका से मिलता है :—

वर्ष	क्षेत्र (००० एकड़ में)	उत्पादन (००० गाँठों में)
१६४७–४८	६५१	१,६६६
१६४६–५०	१,१६३	३,०८६
१६५१–५२	१,६५१	४,६७८
१६५३–५४	१,१६६	३,१२६
१६५४–५५	१,२७३	३,१५२

इस समय भारत में १०४ मिलें हैं, जिनमें लगभग ३ लाख व्यक्ति काम करते हैं और जिनमें १६५५–५६ में १०२७·२ टन माल तैयार किया गया। भारत का यह उद्योग विशेषतः निर्यात उद्योग है, क्योंकि देश में इसका उपयोग कम होता है।

उद्योग का स्थापन :

मिलों के प्रादेशिक वितरण को देखने से ज्ञात होता है कि यह उद्योग मुख्यतः पश्चिमी बंगाल में ही केन्द्रित है, जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

प्रदेश	मिल	टाट के कर्घे	बोरे के कर्घे	योग	प्रतिशत
पश्चिमी बंगाल	६४	४३,२०८	२२,२२०	६५,४२८	६५%
बिहार	१	८६	८३७	६२६	१%
उत्तर प्रदेश	३	३०२	५१६	८२१	१%
उड़ीसा	२	४२	१७८	२२०	—
मद्रास	४	२८७	७५५	१,०४२	१%
योग	१०४	४३,६२८	२४,५०६	६८,४३७	

पश्चिमी बंगाल में इस उद्योग के स्थापन के मुख्य कारण ये हैं :—

(१) जूट की खेती गङ्गा-ब्रह्मपुत्रा के डेल्टा में होती है जहाँ प्रतिवर्ष नदियों द्वारा उपजाऊ मिट्टी लाकर जमा कर दी जाती है। अतः कच्चा माल सुगमता से मिल जाता है।

(२) नदियों और उनकी सहायकों द्वारा सस्ते जल यातायात की सुविधा प्राप्त है। ये कच्चे जूट को मिलों तक पहुँचा देती हैं। जूट पहुँचाने के लिए श्रीरामपुर तक जहाज चलाये जाते हैं।

(३) कारखानों के लिए कोयला रानीगञ्ज और आसनसोल के क्षेत्रों से उपलब्ध हो जाता है जो यहाँ से केवल १२० मील दूर पड़ते हैं।

(४) इस क्षेत्र में मिल-उद्योग से पहले ही जूट का कुटीर-उद्योग चालू था क्योंकि इसमें स्काटिश और अङ्गरेजों द्वारा पूंजी लगाई गई थी।

(५) जूट अधिकतर विदेशी व्यापार के लिए ही था। हुगली नदी और कलकत्ता का बन्दरगाह निर्यात के लिए सुविधाजनक थे। मशीनों और अन्य आवश्यक रसायन विदेशों से आयात किए जा सकते हैं।

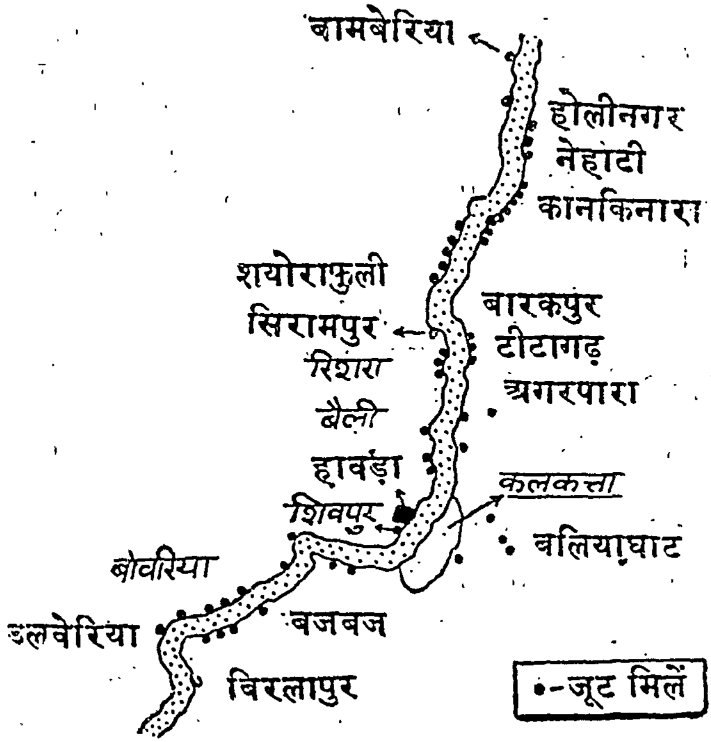

चित्र २१४—पश्चिमी बंगाल का जूट-मिल क्षेत्र

(६) कलकत्ता एक औद्योगिक केन्द्र है जहाँ विविध प्रकार के कारखाने पाये जाते हैं। अतः इनके लिए श्रमिक बिहार, उड़ीसा, आसाम, उत्तरप्रदेश तथा मद्रास से भी आते हैं। इस समय भी ९०% मजदूर इन्हीं राज्यों से यहाँ आते हैं।

(७) यहाँ नम और गरम जलवायु उद्योग के लिए उपयुक्त है।

(८) कलकत्ता नगर में अनेक बैंक, बीमा कंपनियाँ आदि होने से रुपये के लेन-देन में सुविधा रहती है तथा व्यापार का केन्द्र होने से क्रय-विक्रय की सुविधा रहती है।

इन्हीं कारणों से भारत में जूट का उद्योग हुगली नदी के किनारे कलकत्ता से ३५ मील ऊपर और २५ मील नीचे ६० मील लंबी और २ मील चौड़ी पट्टी में स्थापित हो गया है। इस क्षेत्र में भारत की ८०% जूट की उत्पादन क्षमता पाई जाती है। इसमें भी सबसे अधिक केन्द्रीयकरण १५ मील लंबी पट्टी में ही पाया जाता है जो उत्तर में रिश्रा से दक्षिण में नैहाटी तक फैली है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बैली अगरपारा, रिश्रा, टीटागढ़, श्रीरामपुर, बजबज, सिवपुर, सल्किया. हावड़ा, श्यामनगर, बंसबरिया, उलूबरिया, कांकिनारा, बिरलापुर, नैहाटी, होलीनगर और बारकपुर हैं।

गङ्गा-सिंधु के मैदान के ऊपरी भागों में जूट का उद्योग इसलिए उन्नति नहीं कर सका कि जलवायु की अनुकूलता और बन्दरगाहों के सामीप्य की दृष्टि से वे भाग अत्यन्त अनउपयुक्त हैं। किंतु अब बिहार व उत्तरप्रदेश में—दरभंगा, पूर्णिया और शाहजहाँनवा, कानपुर तथा गोरखपुर में कुछ मिलें स्थापित हो चुकी हैं क्योंकि खेती की उपज करने के लिए बोरों की यहाँ माँग अधिक है तथा यहाँ अन्य रेशे वाले पदार्थ भी पैदा किये जाते हैं। फिर भी जूट के उत्पादन के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में इन मिलों का कोई महत्त्व नहीं है। मद्रास में भी नालीमारला और विमलीपट्टम में जूट की मिलें हैं किंतु समृद्ध पृष्ठ भूमि के अभाव में ये उतनी उन्नत नहीं हो सकीं जितनी कि बङ्गाल की मिलें।

उद्योग का उत्पादन, व्यापार आदि :

भारत की जूट मिलों में जो वस्तुएँ बनाई जाती हैं उन्हें मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) जूट के बोरे (gunny bags) जो कृषि की पैदावार भरने के काम आते हैं।

(२) टाट (Hessians)।

(३) मोटे कालीन और फर्शपोश।

(४) रस्से, तिरपाल आदि।

नीचे की तालिका में विभिन्न प्रकार के उत्पादन को बताया गया है :—

वर्ष	टाट	बोरे	अन्य	योग
		(हजार टनों में)		
१९५२-५३	३४७·७	५१०·४	३३·४	८९१·५
१९५३-५४	३९०·४	४४४·८	३०·५	८६५·७
१९५४-५५	३९९·२	५५७·५	३८·१	९९४·८

नीचे की तालिका में जूट मिलों का विकास, उनका उत्पादन तथा निर्यात बताया गया है :—

वर्ष	मिलें	उत्पादन (००० टन)	जूट के सामान का निर्यात (००० टनों में) बोरियाँ	टाट	मजदूर (००० में)
१९४७-४८	१०४	१,०३५	८७२		३१५
१९४९-५०	१०४	८२५	७४७		२७८
१९५१-५२	१०४	९४५	४७३	२८७	२७६
१९५३-५४	१०४	८६५	३५४	३८९	२७४
१९५४-५५	१०४	९२७	४५१	३६०	२७५
१९५५-५६	१०४	१०२७	४५२	३६२	३००

भारत से जूट का निर्यात इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, इटली, मिस्र, दक्षिणी अफरीका, आस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, जापान, कनाडा, अर्जेनटाइना, क्यूबा, सं० रा० अमेरिका, नीदरलैंड आदि देशों को किया जाता है। सन् १९४९-५० में भारत से ११३.९ करोड़ रुपये, १९५१-५२ में १२९.० करोड़ रुपये और १९५५-५६ में ११३.२७ करोड़ रुपये का जूट का माल इन देशों को निर्यात किया गया।

जूट के बोरों के मुख्य खरीदार क्यूबा, आस्ट्रेलिया, थाईलैण्ड, इङ्गलैण्ड, चिली, अर्जेनटाइना और चीन तथा टाट के खरीदार अर्जेनटाइना, इङ्गलैण्ड, कनाडा और सं० रा० अमेरिका हैं।

उद्योग की समस्यायें :

कई देशों में बोरे आदि बनाने के लिए कई नई किस्म के रेशों का प्रयोग और प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है तथा कई देशों में आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है; इससे जूट उद्योग को काफी धक्का पहुँचा है। क्यूबा, इक्वोडोर और हॉलैंड में पाट की वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी गई। जर्मनी, रूमानिया और लिथूनिया में पाट के सामान का आयात सरकारी आज्ञानुसार ही किया जा सकता था। जर्मनी ने ऊन व कोयला भरने के लिए पाट के थैलों का प्रयोग बन्द कर दिया। इटली में पाट के साथ अन्य देशी रेशे काम में लेने का प्रयत्न होने लगा। इन सब कारणों से बहुत से विदेशी राष्ट्रों में पाट की मांग कम होने लगी। मांग की यह कमी तीन रूपों में प्रकट हुई : (१) आस्ट्रेलिया, कनाडा और अर्जेनटाइना में अनाज को भंडारों से वैसे ही जहाजों में लादने की प्रणाली से बोरों की मांग कम कर दी गई। (२) बहुत से देशों में—युद्ध के कारण जब भारतीय माल मंगवाने की असुविधा होगई तो पाट के बोरों के स्थान पर कागज, कपड़े, सन व पटुए के थैले काम में लाये जाने लगे; विशेष कर आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्वीडन, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका व दक्षिणी अफ्रीका संघ में। (३) न्यूजीलैंड में टिनैक्स (Tenax) नामक रेशों से बने थैले में ऊन भरा जाने लगा। रूस और अर्जेन्टाइना में अलसी के रेशों का प्रयोग बढ़ा।

पूर्वी अफ्रीका में सिसल (Sisal), मैक्सिको में हैनेक्वीन (Henequin), कोलंबिया में फिक (Fique), ब्राजील में कैरोग्रा (Caroa), स्पेन में एस्पार्टो घास (Esparto Grass), इटली में जूलीटल (Julital), और जावा में रॉसेला (Rosella) नामक पौधों के रेशे से बोरे बनाये गये हैं। किन्तु अभी तक भारत के जूट के बने बोरों से किसी भी अन्य प्रकार के बोरे लाभदायक सिद्ध नहीं हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जूट सस्ता होता है और इसके बने बोरों को बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है अथवा पुराने बोरों को बेचकर धन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी भी मौसम तथा किसी भी प्रकार इन्हें उठाया-रक्खा जा सकता है। अतएव इन्हीं गुणों के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में जूट के स्थान पर अन्य पदार्थों का स्थानापन्न किया जाना लाभदायक नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त पाट के रेशे के उपभोग की अनेक संभावनायें है। खोज से इसके नये उपयोग मालूम किये जा सकते हैं। भारतीय केन्द्रीय जूट समिति ने पाट के निम्न नये उपयोग ढूंढ निकाले हैं।

(i) घर निर्माण में—ताप निरोधक, प्लास्टिक की मेज-कुर्सियाँ, कालीन, पर्दे, सोफा आदि पर बिछाने के कपड़े, कम्बल, दीवालों पर टांगने की वस्तुएँ आदि।

(ii) यातायात—मोटर-गाडियों की गद्दी का कपड़ा, पानी निरोधक ढक्कन, जीन, रस्सी, डोरी, डांडियों का कपड़ा।

(iii) उद्योग—बिजली प्रवाह निरोधक, प्लास्टिक को मजबूत बनाने के लिए।

(iv) वस्त्र—चिकने व मुलायम घुले हुए रेशों को ऊन व सूत के साथ मिला कर।

विदेशों में भारतीय जूट के माल की माँग बराबर बनाये रखने को यह आवश्यक है कि जूट की कीमतें कम की जावें। इससे हमारा जूट-उत्पादन विदेशी बाजारों में सस्ता बिकेगा जिससे जूट के प्रतिस्थापन की वस्तु की ओर जितना ध्यान आज केन्द्रित है वह न रहेगा। इसलिए उद्योग को दो कार्य करने पड़ेंगे। (i) मांग कम होने की दशा में अपना उत्पादन परिवर्तन करने का तथा (ii) मांग बढ़ने पर उत्पादन को बढ़ाने पर उत्पादन को बढ़ाने का।

भारत सरकार ने इस उद्योग की उन्नति के लिए जूट जाँच आयोग की स्थापना की थी। इस आयोग ने मुख्य सुझाव दिये हैं:—

(१) भविष्य में पाट की खेती बढ़ाने के बजाय उसकी किस्म को सुधारने पर अधिक ध्यान दिया जाय।

(२) नई मिलों के खोलने की आज्ञा प्रदान न की जाय, क्योंकि इस समय जो मिलें हैं उनके पास ही पूरा काम नहीं है, अतः लक्ष्य यह होना चाहिए कि वर्तमान मिलें पूरा काम करें।

(३) पटसन की बिक्री के बारे में बम्बई की East Indian Cotton Association की तरह ही पटसन के लिए भी एक व्यापारिक संस्था स्थापित की जाय।

(४) कलकत्ते में जूट के गोदामों का उचित उपयोग, काम के घंटे बढ़ा कर सप्ताह में ४८ घंटे करने, विविध प्रकार का माल बनाने, तथा उद्योग के विकास और उन्नति के लिए अपने ही साधनों पर निर्भर रहना तथा लाभांश कम रखना आदि अन्य सुझाव दिए गये हैं।

(५) मशीनों को समय-समय पर बदला जाय तथा व्यय को घटाया जाय।

इस समय यह उद्योग दो लक्ष्यों की पूर्ति की ओर बढ़ रहा है :—

(१) उत्पादन के अभिनवीकरण तथा बढ़ी हुई कार्य-क्षमता द्वारा पुरानी मंडियों में अधिकतम प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति प्राप्त करना।

(२) बाजारों का विस्तार और जूट के सामान के लिए नये क्षेत्रों की खोज।

रेशम के कपड़े का उद्योग (Silk Textile Industry)

रेशम की कहानी इतिहास की सबसे पुरानी कहानी है। चीन के ५ हजार वर्ष पहले के धर्म ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि २६०० वर्ष पूर्व चीनियों के एक पूर्वज राजा ह्वांग टी और उसकी रानी हाह-लिंग शिह ने सबसे पहले रेशम के धागे के बारे में पता लगाया। इन्हीं दोनों ने सबसे पहले रेशम के धागों से कपड़े बनवाकर पहने। धीरे २ इनका इतना अधिक प्रचार हुआ कि साधारण नागरिक भी इन्हें पहनने लगे। यहीं से रेशमी कपड़ों को ऊँचे दामों पर दूसरे देशों को भी बेचा जाने लगा। यहीं से इनका प्रचार जापान, और यूरोप के देशों को हुआ। आज भी चीन और जापान में यह उद्योग घरेलू पद्धति पर अधिक किया जाता है। विश्व में जितना रेशमी कपड़े का उत्पादन होता है उसका लगभग ५०% आधुनिक तरीकों द्वारा कच्चा रेशम पैदा करने वाले देशों से ही प्राप्त होता है। शेष ५०% उन देशों से प्राप्त होता है जहाँ वैज्ञानिक सुविधाएँ और कुशल श्रमी अधिक पाये जाते हैं—उदाहरणार्थ फ्रांस, जर्मनी, इटली, सं० राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटेन में।

उद्योग का स्थापन :

कच्चा रेशम एक हल्की वस्तु है अतः वह सरलता से उन स्थानों को भेजा जा सकता है जहाँ इसके लिये कुशल मजदूर तथा अन्य औद्योगिक सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं। कच्चा रेशम मुख्यतः चीन और जापान से प्राप्त होता है, जो दोनों सम्पूर्ण विश्व के उत्पादन का ८५% देते हैं, किंतु यह साधारणतया मोटा और घटिया किस्म का होता है। बढ़िया और महीन रेशम फ्रांस और इटली से प्राप्त होता है। जापानी रेशम की कुकड़ियाँ (Cukoon) एक समान नहीं होतीं और ताने (Warp) में प्रयोग होने वाला महीन सूत उत्पन्न करने के अयोग्य होती हैं। अतः फ्रांस और इटली का रेशम उत्तम प्रकार के कपड़े बनाने के लिए ही अधिक व्यवहृत किया जाता है।

अतएव रेशमी वस्त्र बनाने में दो प्रकार के रेशम का उपयोग किया जाता है—(१) प्राकृतिक रेशम (Thrown Silk), जो वास्तविक रेशम का सूत होता है। कुकूनों को खोलने तथा रेशों को थोड़ा-थोड़ा बट लेने (Twist) से यह रेशम तैयार होता है। (२) कता हुआ रेशम (Spun Silk) वह जो

रेशम के टूटे हुए धागों तथा व्यर्थ पदार्थ से साधारण रीति से काता जाता है। इस प्रकार का रेशम मजबूत नहीं होता और न इसमें प्राकृतिक रेशम की चमक ही होती है। अतः यह सस्ता होता है।

उद्योग के मुख्य क्षेत्र :

रेशमी कपड़े के सबसे मुख्य उत्पादक सं० राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस, जापान, इटली, जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन हैं। इनमें सं० राष्ट्र अमेरिका का प्रथम स्थान है। यहाँ उद्योग का मुख्य केन्द्र पैटरसन (न्यूजर्सी) है, जो विश्व के विशालतम रेशम बाजार न्यूयार्क से १५ मील के भीतर है। यहाँ रेशम के सभी कारखाने न्यूयार्क से २५० मील की परिधि में ही हैं। यहीं सबसे पहला रेशम का मिल खोला गया क्योंकि यह केन्द्र न्यूयार्क के निकट होने से बाजार की सुविधा थी, जल विद्युत शक्ति तथा रेशम धोने और रँगने के लिए पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध था और निकटवर्ती क्षेत्र में अन्य भारी उद्योगों के होने से मजदूरों के स्त्री और बच्चों का सस्ता श्रम उपलब्ध हो जाता था।

पेन्सिलवेनिया, न्यूजर्सी तथा न्यूयार्क रियासतों में इस देश की ९० प्रतिशत रेशम की मिलें स्थित हैं, शेष मेसेचुसेट्स, वर्जीनिया, कनेक्टीकट इत्यादि रियासतों में हैं। न्यूजर्सी रियासत में स्थित पैटरसन, स्क्रैटन, विलकीज बार, आलेटन आदि नगर रेशमी वस्त्र के मुख्य केन्द्र हैं।

इस उद्योग के क्षेत्र मुख्यतः उन स्थानों में हैं जहाँ अधिकतर पुरुष श्रमजीवियों की माँग करने वाले उद्योग-धंधे हैं। अतः लोहे के उद्योग वाले पैटरसन नगर, स्क्रैटन और विल्कीज बार जैसे कोयले के उद्योग वाले नगर तथा सिमेंट बनाने वाला नगर—ईस्टन और एलेनटाऊन आदि—महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं जहाँ रेशमी कपड़ा बनाया जाता है।

कच्चा रेशम उत्पन्न करने वाले प्रायः सभी देशों से उनके उत्पादन का ३/४ भाग यहाँ रेशम मँगाया जाता है और विदेशी कच्चे माल के द्वारा रेशमी कपड़ा बुना जाता है। यहाँ रेशमी वस्त्र की माँग बहुत अधिक है। चीन और जापान से कच्चा माल जहाजों द्वारा पश्चिमी तट पर स्थित सेन फ्रेंसिसको बन्दरगाह पर लाया जाता है जहाँ से स्पेशल गाड़ियों द्वारा न्यूयार्क तथा अन्य केन्द्रों में भेजा जाता है। बढ़िया और महीन रेशम इटली तथा फ्रांस से मँगाया जाता है। रेशम चूँकि हल्का और कीमती पदार्थ है इसलिए दूर देशों से मँगाए जाने पर विशेष खर्चा नहीं पड़ता। संयुक्त राष्ट्र के पूर्वी औद्योगिक क्षेत्रों में जहाँ लोहा, कोयला, सीमेंट इत्यादि के कारखाने हैं कारीगरों की स्त्रियाँ तथा लड़कियाँ रेशमी कपड़े की मिलों में काम करने के लिए मिल जाती हैं। अन्य औद्योगिक सुविधाएँ तो इस देश में पर्याप्त रूप से वर्तमान हैं ही इसलिए यह देश रेशमी वस्त्रों के व्यवसाय में अग्रगण्य है।

समस्त देश में प्रायः ६०० रेशमी कपड़े के कारखाने हैं जिनमें से दो-तिहाई रेशमी वस्त्रों की बुनाई का काम करते हैं और शेष में रेशमी धागे अथवा 'उन मिश्रित वस्त्र' बनाये जाते हैं।

फ्रांस का रेशमी कपड़ा उद्योग :

संसार में रेशमी वस्त्र के उद्योग में फ्रांस का द्वितीय स्थान है। यहाँ यह व्यवसाय लियोंस नगर तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में केन्द्रित है क्योंकि :—

(१) निकट ही रोन घाटी से कच्चा रेशम प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त इटली, लैवैन्ट चीन तथा जापान से भी कच्चा माल मँगा लिया जाता है।

(२) फ्रांसीसी लोग सुन्दर रेशमी कपड़े के बड़े शौकीन होते हैं, इसलिए यहाँ रेशमी वस्त्रों की माँग काफी है।

(३) फ्रांसीसी श्रमिक इस व्यवसाय में बड़े दक्ष हैं

(४) जलविद्युत शक्ति सहज ही मिल जाती है। कोयले से भी बिजली की सुविधा है।

लियोंस का रेशम उद्योग दिन-दिन विकसित हो रहा है। जल विद्युत के विकास की सुविधा होजाने पर यह धंधा लियोंस के आसपास के क्षेत्र में छोटे २ गाँवों तक फैल गया है।

इटली :

यूरोप में कच्चा रेशम उत्पन्न करने के उद्योग में तो इटली अग्रगण्य है ही, रेशमी वस्त्र के उद्योग में भी यह यूरोप के प्रधान देशों में गिना जाता है। यह उद्योग पो नदी के बेसिन और उत्तरी घाटियों में केन्द्रित है। मिलान, ट्यूरिन, कोमों, बरगेमों तथा वेरोना मुख्य केन्द्र हैं। मिलान नगर तथा इसका निकटवर्ती क्षेत्र इटली में ही प्रसिद्ध नहीं वरन् संसार के प्रमुख रेशम उद्योग क्षेत्रों में गिना जाता है। इसके कई कारण हैं :—

(१) इस क्षेत्र में पर्याप्त कच्चा माल मिलता है। बाहर से मँगाने की भी सुविधा है।

(२) पो बेसिन इस देश का अत्यन्त सघन जनसंख्या वाला क्षेत्र है, अतः पर्याप्त श्रमिक मिल जाते हैं।

(३) सस्ती जल विद्युत शक्ति सुलभ है।

स्विटज़रलैंड में बेसिल, ज्यूरिच, वर्न तथा जेनोआ प्रसिद्ध केन्द्र है। यहाँ सेंट गोथार्ड मार्ग द्वारा इटली से कच्चा रेशम मँगा लिया जाता है।

यूरोप के अन्य देश :

ब्रिटेन में यार्कशायर प्रदेश के ब्रेडफोर्ड तथा हेलीफेक्स नगर, चेशायर प्रदेश के मेकलेस फील्ड तथा लीज नगर और डरबी शायर प्रदेश का डरबी नगर मुख्य केन्द्र हैं।

जर्मनी में रूर कोयला क्षेत्र के निकट क्रेफेल्ड नगर तथा उत्तरी राईन प्रदेश के वेस्ट फेलिया और वेडन नगर प्रमुख केन्द्र हैं।

जापान का रेशमी कपड़ा उद्योग :

जापान कच्चे रेशम के लिये तो अग्रगण्य है ही, रेशमी वस्त्रों का उद्योग भी यहाँ काफी विकसित है। यह व्यवसाय जापान का प्राचीन धंधा है। पहले

से यह कुटीर उद्योग के ढंग पर चालू था। अब भी यहाँ का रेशमी कुटीर उद्योग कम महत्वपूर्ण नहीं। अब तो रेशम के बड़े २ कारखाने भी काफी हैं। क्योटो नगर सबसे अधिक नामी है। इस नगर में रेशमी वस्त्रों के उद्योग के लिए अन्य सुविधाओं के अलावा एक यह सुविधा और है कि निकटस्थ बीव झील का स्वच्छ जल रेशम साफ करने में काम में आता है। इस देश में रेशम के उद्योग के लिये निम्न सुविधायें हैं :—

(१) कच्चा माल आवश्यकता से अधिक प्राप्त है।

(२) कारखानों के बड़े उद्योग को कुटीर उद्योगों से बड़ी सहायता मिलती है।

(३) जापानी लोग इस व्यवसाय में प्राचीन समय से निपुण हैं।

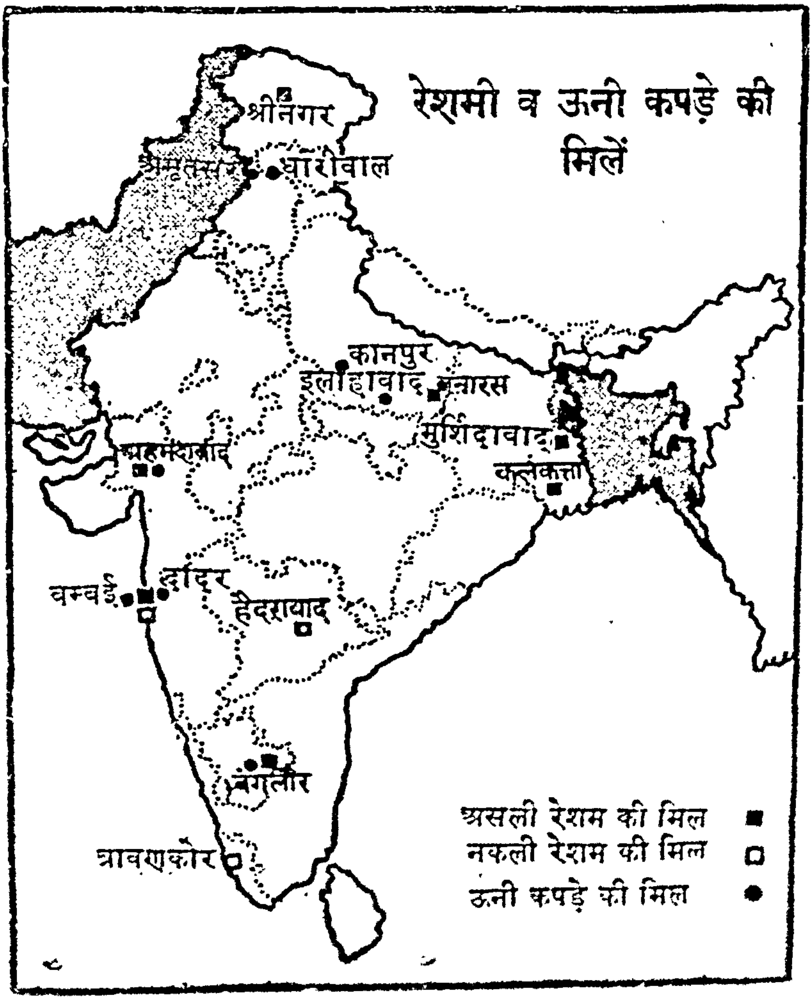

चित्र २१४

(४) ग्रामीण श्रमिक पर्याप्त संख्या में सुलभ हैं।

(५) जलविद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है।

जापान देश का रेशम के व्यापार में भी प्रमुख भाग है। इसके निर्यात में याकोहामा और कोबे बन्दरगाह मुख्य हैं।

चीन :

चीन में रेशम के कीड़े पालने का धंधा बहुत प्राचीन है और प्रायः समस्त कृषि क्षेत्र में रेशम के कीड़े पालने का काम होता है। रेशम का कपड़ा बनाने का धंधा इस देश में प्राचीन समय से कुटीर उद्योग के ढंग पर प्रचलित है और गांव २ से करघों पर काम होता है। अब शंघाई, केंटन तथा अन्य बड़े नगरों में रेशम के कपड़े के विशाल कारखाने स्थापित हो गये हैं। शंघाई रेशम के कपड़े के व्यापार का मुख्य केन्द्र है।

भारत में रेशम का उद्योग

भारत के आधुनिक उद्योगों में रेशम का उद्योग भी एक है। किन्तु भारत के आर्थिक जीवन में उद्योग का महत्व थोड़ा है। भारत में रेशम का धन्धा १७ वीं और १८ वीं शताब्दी से ही चला आ रहा है, किन्तु रेशम के मिल-उद्योग का भारत में इसी शताब्दी में आरम्भ हुआ। कई कारणों से इस उद्योग की प्रगति धीमी रही है—(१) इसके उत्पादन में कलात्मक दृष्टि का अधिक महत्व है जो आधुनिक ढंग के कारखानों में संभव नहीं हो सकती। (२) कुशल मजदूर और उपयुक्त मशीनरी का भारत में अभाव रहा है (३) अलग-अलग प्रान्तों में रेशमी वस्त्रों की मांग भी एक सी नहीं है क्योंकि जगह-जगह की पोशाक और रुचि में भी बहुत अन्तर है। रेशमी वस्त्र विशेषकर दक्षिणी भारत और उत्तर के धार्मिक केन्द्रों में ही अधिक व्यवहृत किये जाते हैं। पिछले वर्षों से इस उद्योग के मार्ग में कई कठिनाइयाँ आई हैं। संसारव्यापी आर्थिक मंदी; स्वर्णमान के परित्याग के बाद मुद्रा के मूल्यों में ह्रास; चीन, जापान, इटली तथा फ्रांस आदि देशों के माल की प्रतिस्पर्द्धा तथा विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा अपने-अपने देश के रेशम के उद्योग को मिलने वाली सहायता के कारण भारत के रेशम के उद्योग को पर्याप्त हानि हुई है।

रेशम के उद्योग में हाथ-करघे का विशेष महत्व है और मिल-उद्योग का कम। रेशम के उद्योग की अधिकांश उत्पादन क्षमता काश्मीर और मैसूर राज्य में ही सीमित है क्योंकि अधिकांश कच्चा रेशम (शहतूत के कीड़े का रेशम, टसर, एंडी और मूंगा) मैसूर, मद्रास, पश्चिमी बंगाल, काश्मीर और आसाम में ही पैदा होता है। समस्त भारत में २४ लाख पौंड कच्चा रेशम उत्पन्न होता है उससे देश की ६०% मांग पूरी होती है। बाकी का रेशम जापान, इटली आदि देशों से आयात किया जाता है। भारत में रेशम पर बहुत ऊँचा आयात कर होने पर भी बाहर का रेशम सस्ता पड़ता है और वह बढ़िया भी होता है।

अविभाजित भारत की २८० मिलों में से २७४ जिनमें सभी खास-खास (६८ मिलें) मिलें भी शामिल हैं भारत के हिस्से में हैं। इसका अर्थ यह है कि रेशम का

मिल उद्योग भारत में ही केन्द्रित है। विभाजन के पूर्व रेशम और नकली रेशम के यांत्रिक शक्ति द्वारा संचालित करघों की कुल संख्या १२,००० थी। इसमें पाकिस्तान का हिस्सा तो नगण्य था—१०० करघों से भी कम। इन मिलों में लगभग ५० हजार आदमी काम करते हैं और इनका वार्षिक उत्पादन १५ करोड़ गज रेशम और नकली रेशम का माना जाता है। सन् १९४९ में रेशम के मिल उद्योग में लगभग १८ हजार करघे लगे हुए थे। इसके अलावा ८ हजार हाथ के करघे भी इस उद्योग में लगे हुए हैं।

काश्मीर में श्रीनगर में रेशम का सबसे बड़ा कारखाना है जो बिजली की शक्ति द्वारा कार्य करता है। रेशम के कीड़े पालने और रेशम की कुकड़ी बनाने के काम में चतुर कुशल मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है और यहाँ इन कामों को करने वाले कुशल मजदूर मिल जाते हैं। यहाँ की सरकार भी इस उद्योग के विकास में बड़ी रुचि रखती है। रेशम बुनने के अन्य मुख्य केन्द्र पूर्वी पंजाब में अमृतसर और जलंधर तथा लुधियाना; उत्तर प्रदेश में मिरजापुर, शाहजहाँ-पुर; पश्चिमी बंगाल में बाकुण्डा, मुर्शिदाबाद तथा विश्नूपुर; मद्रास में बरहाम-पुर, सलेम, तंजौर और त्रिचनापली; बम्बई में नागपुर, पूना, अहमदाबाद, धारवाड़, हुबली, बेलगाँव और शोलापुर; बिहार में भागलपुर और मैसूर में बंगलोर हैं।

रेशम के उद्योग की कुछ समस्याएँ बड़ी पेचीदा हैं। रेशम के उद्योग का विकास पूर्ण रूप से हो सके इसके लिए रेशम-कमेटी (Silk Panel) ने कई बातों में सुधार करने के आदेश दिए हैं—यथा (१) शहतूत की खेती की उन्नति (क्योंकि रेशम का कीड़ा उसी पर पलता है)। (२) बढ़िया बीज की, जो रोग-मुक्त हो, पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता। (३) रेशम के कीड़ों की बीमारियों का नियन्त्रण। (४) रेशम के कीड़े पालने, बीज तैयार करने, संगठन और बिक्री का प्रबन्ध; (५) रेशम कातने के उद्योग का विकास और उप-प्राप्ति (by-products) का पूरा-पूरा उपयोग और उपर्युक्त सब मामलों में विभिन्न राज्यों में सहयोग।[1] इन सब दिशाओं में आवश्यक सुधार करने की दृष्टि से भारत-सरकार ने एक केन्द्रीय रेशम मण्डल (Central Silk Board) की स्थापना की है।

१, सन् १९४९ में टैरिफ-बोर्ड (Tariff Board) ने रेशम के उद्योग की उन्नति के बारे में ये सुझाव दिये :—

(१) रेशम सम्बन्धी खोज के लिए पर्याप्त सुविधा और साधन की व्यवस्था; (२) विदेशी रेशम के कीड़ों के लिये एक केन्द्रीय बीज के स्टेशन की स्थापना; (३) रेशम के कीड़ों के रोगों का कानून द्वारा नियंत्रण; (४) रोग मुक्त बीजों का धीरे-धीरे अनिवार्य उपयोग; (५) चर्खा द्वारा रेशम की रील तैयार करने के काम में सुधार, (६) विदेशों में विशेषज्ञों द्वारा शिक्षा की व्यवस्था; (७) रेशम के उद्योग के लिए आवश्यक मशीनरी तथा दूसरा सामान प्राप्त करने में सरकार द्वारा सहायता आदि।

रेयन उद्योग (Rayon manufacture)

६० वर्ष पहले रुई, ऊन, रेशम और पटसन ये चार वस्तुएँ ही कपड़ा बनाने के लिए प्रयुक्त होती थीं। किंतु अपनी अनवरत गवेषणा और विकास कार्य के फलस्वरूप मनुष्य ने आज २० प्रकार के निर्मित रेशे इस सूची में बढ़ाये हैं। अब रेयन (Rayon), ओरनल (Orlon), केपरन (Kapron), एक्रीलीन (Acriline), डिनल (dynel), सरन (Saron), डैकरेन (Dacron), टैरीलीन (Terriline), पौलीएथिलीन (Poliaethelin), और काँच के रेशे विकारा (Vicara) कपड़ा बनाने के लिए सुलभ हुए हैं। मनुष्य निर्मित इन सभी रेशों में रेयन या नकली रेशम ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इन रेशों में इसका उत्पादन सर्वाधिक है और कपड़े बनाने के काम में आने वाली सभी प्राकृतिक और मनुष्य निर्मित वस्तुओं में कपास के बाद इसी का स्थान आता है। संसार भर में रेयन उद्योग का विकास अद्भुत गति से हुआ है। १८९० में रेयन का उत्पादन केवल ३०,००० पौंड था, १९५५ में यह ४५० करोड़ पौंड हो गया।

रेयन तैयार करने की प्रणाली :

रेयन तैयार करने की कई प्रक्रियाएँ हैं—यथा नाइट्रो सिल्क (Nitro-silk), कुपर अमोनियम (Cuper-ammonium), विस्कोज (Viscose) या छलनी द्वारा तार निकाल कर सूत तैयार करने की प्रणाली और एसीटेट प्रणाली (Acetete)। किंतु इनमें सबसे मुख्य और अधिक प्रचलित विस्कोज प्रणाली है। भारत में एक कारखाने को छोड़ कर शेष सभी कारखाने इसी प्रणाली का प्रयोग करते हैं। केवल एक कारखाना नकली रुई से सूत कातने की प्रणाली प्रयोग कर रहा है।

छलनी प्रणाली से रेयन तैयार करने में सबसे पहले लुब्दी की तहों को एक यन्त्र के अन्दर कास्टिक सोडा के घोल में डाल कर तर किया जाता है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य होता है लुब्दी की तहों पर जो भी गंदगी है, वह कास्टिक सोडा में घुल कर उतर जाए और साथ ही लुब्दी में कास्टिक सोडा का कुछ अंश भी मिल जाए। इसके बाद एक यंत्र में रख कर उसमें अलकली सैलूलोज मिलाया जाता है जिससे उसके बहुत से टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों को नरम करने के लिए उन्हें विशेष बाल्टियों में रखा जाता है और उस समय तापमान तथा वातावरण की आर्द्रता को नियन्त्रित रखा जाता है। इसे नरम करने का उद्देश्य सैलूलोज और कास्टिक सोडा की मंद रासायनिक क्रिया का नियन्त्रण करना तथा उसे एक स्थिति विशेष तक ले जाना है। इसके बाद टुकड़ों को मथने के लिए ले जाया जाता है और उसमें कुछ मात्रा में कारबन-डाई सल्फाइड मिलाया जाता है। इस मिश्रण क्रिया के बाद अलकली, सैलूलोज तथा कारबनडाइ सल्फाइड के इस मिश्रित पदार्थ को नियंत्रित स्थितियों के अन्दर घुले हुए कास्टिक सोडे में मिलाया जाता है। इस प्रकार बने विस्कोज घोल को पकाने के कमरे में ले जाते हैं, जहाँ इसे उपयुक्त यंत्र के द्वारा छाना जाता है और छने हुए पदार्थ को उसी कमरे में तब तक रखा जाता है जब तक कि वह कातने योग्य नहीं हो जाता। रेयन की छलनी प्रणाली

(५) औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों की कमी नहीं है।

(६) इस देश की व्यावसायिक व्यवस्था बहुत उच्चकोटि की है। इस धन्धे के लिए यह बहुत जरूरी है।

(७) अनेक रसायन उद्योग बहुत उन्नत दशा में हैं। यहाँ कास्टिक सोडा और गंधक का तेजाब पूर्वी भागों से प्राप्त होता है।

ब्रिटेन में नकली वस्त्रों का धंन्धा काफी उन्नत है। कच्चा माल यहाँ प्राप्त होता है और नार्वे, स्वीडन व इटली से आसानी से मँगाया जा सकता है। रसायन उद्योग भी बहुत उन्नत हैं। इनके अलावा प्रायः सभी सुविधाएँ जो संयुक्त राष्ट्र में हैं यहाँ भी प्राप्त हैं। सन् १९३० के बाद जब सूती कपड़े के उद्योग में शिथिलता आने लगी तो नकली रेशम का उद्योग बढ़ा और लंकाशायर प्रदेश की बहुत सी मिलें सूती वस्त्र के स्थान पर नकली रेशम के वस्त्रों के कारखानों में बदल दी गईं। यहाँ के प्रमुख केन्द्र मानचेस्टर, राशडेल, हेलीफैक्स, स्टाकपोर्ट, बोल्टन और मैक्लसफील्ड तथा डर्बी हैं।

इटली में नकली रेशम का धन्धा सन् १९१६ में आरम्भ हुआ और सन् १९२२ के बाद विकास पाने लगा। यहाँ लकड़ी की लुब्दी नार्वे और स्वीडन देशों से मँगाई जाती है किन्तु आवश्यक रासायनिक पदार्थों की पूर्ति काफी है। इस देश के उत्तरी भाग में मिलान में नकली रेशम का धन्धा बहुत उन्नतिशील हो गया क्योंकि वहाँ सस्ती जल विद्युत शक्ति की पर्याप्त सुविधा है। बीला, कोमा और ट्यूरिन प्रमुख केंद्र हैं।

जापान में इस धन्धे का आरंभ सन् १९१९ में हुआ। इसकी शीघ्र उन्नति हुई और द्वितीय महायुद्ध से पहले जापान में सबसे अधिक नकली रेशम का धागा बनता था किन्तु युद्ध से इस देश के सभी व्यवसायों को बहुत ठेस पहुँची - युद्धोत्तर काल में इसका उत्पादन बहुत घट गया किन्तु अब भी यहाँ १५ लाख पौंड नकली रेशम तैयार होता है। इस देश में लुब्दी के योग्य लकड़ी की पूर्ति कम है। केवल कराफुटो तथा होकेडो में ही लकड़ी मिलती है। अतः लकड़ी की लुब्दी कनाडा से मँगानी पड़ती है। इस धंन्धे के लिये जापान में तीन क्षेत्र प्रसिद्ध हैं जो होंश्यू द्वीप के मध्य भाग में स्थित हैं—(१) कनाजवा क्षेत्र (२) क्योटो क्षेत्र (३) टोकियो क्षेत्र। प्रमुख केन्द्र फुकुई, कनाजवा, क्योटो और टोकियो हैं।

भारत :

हमारे देश में सन् १९३६ से पहले इस धन्धे को कोई जानता भी न था किन्तु जब इस वर्ष सूती कपड़े के उद्योग को संरक्षण देने के लिए सरकार ने रेयन के वस्त्र पर आयात कर बढ़ा दिया तभी से इस उद्योग का विकास हुआ है।

गत महायुद्ध के बाद भारत में यह उद्योग बहुत बढ़ गया है। छलनी में निकाला हुआ रेयन का सूत, काता हुआ रेयन का सूत और दोनों प्रकार का सूत प्रयोग करने वाले ३५,००० शक्ति-चालित कर्घे और ७५,००० हाथ कर्घे इस समय रेयन तैयार कर रहे हैं। इस उद्योग के लिए प्रति दिन ८ करोड़

पौंड सूत की आवश्यकता होती है—यह मांग १९६०-६१ तक १४ करोड़ हो जायेगी। छलनी प्रणाली से रेयन तैयार करने का पहला कारखाना ट्रावनकोर रेयन लि० रेयनपुरम (ट्रा०) १९५० में और दूसरा कारखाना नेशनल रेयन कारपोरेशन लि० कल्याण (बम्बई) में चालू हुआ। नकली रुई तैयार करने का कारखाना १९५३ में और कताई प्रणाली से रेयन बनाने का कारखाना १९५४ में चालू हुआ। यह कारखाना सिरसिल्क लि० सिरपुर (हैदराबाद) में है। चौथा कारखाना १९५४ में ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी के नाम से नागदा में खोला गया। इन वर्तमान कारखानों की कुल वार्षिक उत्पादन क्षमता २·४ करोड़ पौंड है और नकली रेशम के कारखाने की उत्पादन क्षमता १·२ करोड़ पौंड है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत तक छलनी से निकाले गये तथा काते हुए रेयन के सूत का उत्पादन ८ करोड़ पौंड और निकली हुई रुई का ६ करोड़ पौंड होगा। इस समय इस उद्योग में १५ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और ३ लाख मजदूर काम करते हैं। इसमें २५००० शक्ति-चालक करघे और ७५००० हस्त-चालित करघे हैं।

यह उद्योग बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, अमृतसर और सूरत में केन्द्रित है तथा रेयन के तार ट्रावनकोर, बम्बई व हैदराबाद में बनाये जाते हैं। भारत से १९५५ में ३४ लाख गज रेयन कुवेत, पाकिस्तान, लंका तथा सूडान को निर्यात किया गया। नीचे की तालिका में कुछ वर्षों का निर्यात व मूल्य बताया गया है :—

	उत्पादन	निर्यात	
	(लाख पौंड)	(००० गज)	लाख रुपये
१९५०-५१	७५	६,९९०	९७
१९५२-५३	८७	३,६७५	५२
१९५४-५५	१३०	३,५३४	५९
१९५५-५६	२२०	२,९७८	५३

ऊनी कपड़े का उद्योग (Woollen Manufactures) :

शीतोष्ण तथा शीत प्रधान देशों में ऊनी कपड़े का प्रयोग बहुत अधिक होता है और प्राय: प्रत्येक देश में जहाँ ऊन प्राप्त की जाती है ऊनी कपड़े का उद्योग छोटे-बड़े पैमाने पर केन्द्रित है। ऐसे देशों में जिनका औद्योगिक संगठन श्रेष्ठ था उन्होंने ऊन का आयात करके अपने उद्योग को उन्नति दी। ग्रेट ब्रिटेन में वेस्ट राइडिंग आफ यार्कशायर, फ्रांस में उत्तरी पूर्वी प्रदेश, स. रा. अमेरिका में न्यू. इगलैंड के क्षेत्र ऊन पैदा करने वाले क्षेत्रों हैं। अतएव ऊनी कपड़े का उद्योग यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में बहुत ही बढ़ा-चढ़ा है। यों तो एशिया में भी जापान का ऊनी कपड़े का उद्योग पर्याप्त विकसित है और भारत में भी इस धंधे के केन्द्र हैं। यूरोप में ब्रिटेन इस क्षेत्र में अग्रगण्य है और उत्तरी अमेरिका में संयुक्त-राष्ट्र।

जल की अधिकता, सस्ते जल यातायात की सुविधा, कोयले और लोहे की खानों की निकटता के कारण यह उद्योग विकसित हुआ है। जर्मनी के साइलेशिया, सेक्सोनी तथा वेस्टफेलिया कोयला क्षेत्र में डुसलडर्फ, बेसलों व एल्बरफील्ड ऊनी उद्योग के लिए प्रसिद्ध हैं। फ्रांस के रूआँ व लिली रूवैक्स, टूरकिंग, और आर्मनटायर्स नगर के ऊनी कपड़े उत्तम डिजाइनों के लिए नामी हैं। रूस में ऊनी कपड़े का उद्योग मास्को, लैनिनग्रॉड, फ्रायनोवो, क्लिन्सटी, पैवलोवस्की, खारकोव, क्रिमचुग, कुटैसी और कज्जाक में स्थित है।

(२) **संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में** अलघनी के पूर्व की ओर इस उद्योग का विस्तृत क्षेत्र है। यहाँ ८०% मिलें एटलांटिक तट वाले प्रान्तों के मेन प्रान्त से लेकर पेंसिलवेनिया तक फैली हुई हैं। न्यूइंगलेंड रियासतें इस देश के ऊनी कपड़े का आधे से अधिक भाग उत्पन्न करती हैं। इस क्षेत्र के प्राय: प्रत्येक नगर में ऊनी कपड़े के कारखाने मिलेंगे किन्तु फिलाडेलफिया सबसे प्रसिद्ध केन्द्र है। अकेली मैसेचुपट्स रियासत से इस देश का एक-तिहाई ऊनी कपड़ा प्राप्त होता है। दूसरा स्थान पेंसिलवेनिया रियासत का है। रोड द्वीप पर भी इस उद्योग का पर्याप्त विकास हुआ है। ओहियो रियासत का भी इस उद्योग में नाम है।

इस देश में ऊनी कपड़े के कारखानों के लिए फिलाडेलफिया, प्रावीडेंस, वर्सेस्टर, लावेल, लारेंस, होलयोक इत्यादि नगर विशेष प्रसिद्ध हैं। न्यूयार्क में ऊनी कालीन व बढ़िया कम्बल बनाये जाते हैं। न्यूयार्क, न्यूजर्सी व कैनक्टीक्ट में फैल्ट हैल्ट भी बहुत बनाये जाते हैं।

(३) **एशिया** महाद्वीप पर जापान ने हाल ही में ऊनी कपड़े के उत्पादन में उन्नति की है। यह देश आस्ट्रेलिया से ऊन मँगाता है और ऊनी कपड़े की अधिकतर स्थानीय माँग की पूर्ति के लिए ही कपड़ा बनाता है। किंतु अभी यह इस माँग की पूर्ति नहीं कर पाया है। यहाँ का ऊनी कपड़ा उत्तम प्रकार का नहीं होता है।

भारत में ऊनी कपड़े का उद्योग :

कपास और जूट के उद्योगों के मुकाबले में ऊनी उद्योग का देश के आर्थिक जीवन में बहुत कम महत्त्व है। यह उद्योग प्राय: उत्तरी भारत में ही केन्द्रित है। ऊनी उद्योग तीन प्रकार का है :—(१) ऊनी मिल उद्योग, (२) ऊनी गृह-उद्योग, और (३) गलीचे का उद्योग। गलीचे का उद्योग, गृह उद्योग और फैक्टरी उद्योग दोनों ही तरह का है। ऊनी मिलें भी तीन प्रकार की हैं। पहली प्रकार के वे मिल हैं जिनमें 'वूलन' (निम्न दर्जे का) और 'वर्स्टेड' (बढ़िया) दोनों ही प्रकार के कपड़े तैयार किये जाते हैं। दूसरी प्रकार की मिलों में केवल उपरोक्त में से एक ही प्रकार का कपड़ा तैयार किया जाता है। तीसरी श्रेणी में वे मिलें हैं—जो तैयार सूत खरीद कर उसकी बुनाई और रङ्गाई आदि करती हैं। पहली श्रेणी की मिलें कानपुर और धारीवाल तथा तीसरी श्रेणी की अमृतसर में हैं।

भारत में सबसे पहली ऊन की मिल १८७६ ई० में कानपुर में स्थापित की गई जहाँ कच्चे माल और विस्तृत बाजार दोनों ही की सुविधा थी। दूसरी मिल १८८२ ई० में धारीवाल में खोली गई और फिर बम्बई में १८८२ ई० में तथा बंगलौर में १८८६ में अन्य ऊनी मिलें स्थापित हुईं। प्रथम महायुद्ध के बाद से ही ऊनी मिलों की संख्या में वृद्धि हुई है। १९५५ में ऊन कातने के १६ और शक्ति-चालित कर्घों के ७९ कारखाने और कताई तथा बुनाई दोनों काम करने वाले २४ संयुक्त मिलें हैं। इसमें से ९ मिल बम्बई में, २६ पंजाब में, ४ यू० पी० में, १ पश्चिमी बंगाल, १ काश्मीर और ३ मैसूर में हैं। भारत में ऊनी मिल उद्योग में लगभग २५ हजार आदमी काम करते हैं। इन मिलों की उत्पादक शक्ति ३ करोड़ पौंड प्रतिवर्ष कूती जाती है। इन मिलों में लगभग ४–५ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है। निम्न तालिका में मिलों का उत्पादन बताया गया है :—

भारत में ऊनी वस्त्रों का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन ऊनी माल (००० पौंड में)	वर्ष	उत्पादन (००० पौंड में)
१९४६	२७,०००	१९५१	१७,७००
१९४७	२४,०००	१९५२	१६,५८४
१९४८	२०,००४	१९५३	१९,२४८
१९४९	२१,०००	१९५४	१८,७५६
१९५०	१८,०००	१९५५	२०,७००

कच्चे माल की पूर्ति और तैयार माल के बाजारों के दृष्टिकोण से पूर्वी पंजाब, काश्मीर तथा दक्षिणी भारत की स्थिति बहुत अनुकूल है। इन्हीं क्षेत्रों में ऊनी उद्योगों के सबसे अधिक महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित हो गये हैं। उत्तर प्रदेश में कानपुर **लाल इमली मिल्स** और पूर्वी पंजाब में **'न्यू इजरटन मिल्स'** हैं। यहाँ ऊनी मिलों के स्थापन होने का मुख्य कारण आस-पास के भागों में ऊन का बहुतायत से मिलना है। बम्बई में ऊनी मिलों का होना अपवादस्वरूप है। देश के भीतरी मिलों की आवश्यकता पूरी करने के लिए जो ऊन विदेशों—इटली, इङ्गलैंड, आस्ट्रेलिया आदि देशों—से आती है वह बम्बई के बन्दरगाह पर उतारी जाती है। बम्बई में यही ऊन काम में ली जाती है। बम्बई के दो बड़े मिलों में क्रमश: १०% और १५% मजदूर काम करते हैं। बंगलौर, बड़ौदा, श्रीनगर, अमृतसर और मिर्जापुर में भी ऊन के कारखाने हैं।

शक्ति के लिहाज से कानपुर और मिर्जापुर दो ही ऐसे मिल हैं जिन्हें बिहार से कोयला मिल सकता है, अन्यथा शेष बम्बई, पूर्वी पजाब, मैसूर तथा काश्मीर के मिलों को पूर्णत: बिजली पर ही निर्भर रहना पड़ता है। भारतीय ऊन की मिलों को एक कठिनाई का और सामना करना पड़ता है और वह यह है कि गर्म कपड़ों की माँग देश में केवल शीत-ऋतु में ही होती है। अत: वर्ष के शेष भाग में मजदूरों को मिलों में काम नहीं मिल सकता। कुछ मिल

तो सरकारी ठेकों पर निर्भर रहते हैं जिससे वे पूरी वर्ष कुछ न कुछ कार्य करते ही रहते हैं।

ऊन के उद्योग का एक बड़ा भाग फर्श और शाल बनाने में लगा हुआ है। फर्शों में घटिया किस्म की ऊन का प्रयोग किया जाता है। मध्य और दक्षिणी भारत में जो ऊन पैदा होती है वह सामान्यतः इसी श्रेणी की होती है। बढ़िया शाल बनाने के लिए मुलायम और बारीक बालों की ऊन (जिसे 'पश्म' कहते हैं) प्रयोग की जाती है। यह काम काश्मीर में ही अधिक होता है जहाँ कारीगर बहुत हैं।

भारत के मिलों में काम आने वाले ऊन को निम्न प्रकार से बाँटा जा सकता है :—

(१) **साधारण भारतीय ऊन**—

मोटी ऊन—जो कालीन और गलीचे बनाने के काम आती है।

उम्दा ऊन—ट्वीड, रग, सर्ज, सूत और ओवरकोट का कपड़ा आदि में।

(२) **पहाड़ी ऊन**—निम्न प्रकार के होजियरी के सामान तथा फौज के लिए कम्बल आदि बनाने में।

(३) **दोगली ऊन**—वरस्टेड, ट्वीड आदि बनाने में।

(४) **मैरीनो ऊन**—फ्लैनेल, गैबरडीन, बैडफोर्ड, उत्तम ऊनी कपड़े आदि बनाने में।

भारत से कच्ची ऊन और तैयार माल का अधिकतर निर्यात संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इङ्गलैंड, कनाडा और आस्ट्रेलिया को होता है। नीचे की तालिका में कच्ची ऊन तथा ऊनी कपड़े के थानों का आयात लाख रुपयों में बताया गया है :—

	ऊन	ऊनी कपड़े		ऊन	ऊनी कपड़े
१९५०–५१	५,६२	१३	१९५४–५५	१००	६६
१९५२–५३	६६	९२	१९५५–५६	१४२	८८

लिनेन उद्योग (Linen Industry)

रेशेदार पौधों में सबसे पहले लिनेन का ही प्रयोग किया गया। आरम्भ में यह जाल बनाने के काम में लाया गया और उसके बाद यह कपड़े बनाने में प्रयुक्त होने लगा। पाषाण युग के समय भी झील निवासी इसके कपड़े बनाते थे। ऐतिहासिक युग में संभवतः मिस्री ही इससे कपड़ा बनाने वाले पहले मनुष्य थे। जब रोमन लोगों का आधिपत्य इङ्गलैंड पर था उस समय इसका उद्योग भूमध्यसागरीय प्रदेशों से होता हुआ मध्य और पश्चिमी यूरोप में फैला। १३ वीं शताब्दी में यह उद्योग आयरलैंड में फैला। किन्तु १८वीं शताब्दी और १९ शताब्दी से ही यांत्रिक क्रांति के कारण लिनेन का स्थान कपास ने ले लिया अतः इस उद्योग को कुछ क्षति पहुँची। किन्तु अब भी ठंडे देशों में लिनेन का उपयोग अधिक किया जाता है क्योंकि इसमें कपास की अपेक्षा कई गुण हैं। यद्यपि लिनेन का मूल्य कपास के बराबर ही होता है और सूती कपड़े की अपेक्षा इसके

उद्योग में मजदूरी भी कम दी जाती है किन्तु फिर भी लिनेन के वस्त्र इसकी अपेक्षा महँगे होते हैं। लिनेन का रेशा अधिक मजबूत, टिकाऊ, लंबा और साफ होता है तथा लिनेन के वस्त्र बनाने में कई विभिन्न क्रियाओं को करना पड़ता है जिससे अधिक मजदूर, अधिक शक्ति का प्रयोग होता है। प्रति करघे पीछे उत्पादन लागत भी सूती उद्योग की अपेक्षा अधिक होती है।

लिनेन की कताई और बुनाई का उद्योग अधिकतर यूरोप के सन उत्पादक प्रदेश में किया जाता है जो उत्तरी आयरलैंड से पूर्वी यूरोपीय रूस तक फैला है। इस क्षेत्र में विश्व का ९५ % सन उत्पादन होता है तथा यहाँ यह उद्योग बहुत पुराना होने के कारण मजदूर कुशल और चतुर हैं। इस उद्योग के मुख्य क्षेत्र ये हैं : ब्रिटेन, रूस, संयुक्तराष्ट्र, जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस आदि।

ब्रिटेन का लिनेन उद्योग :

स्काटलैंड में यह उद्योग १६वीं शताब्दी से ही कुटीर उद्योग के रूप में चल रहा था। इंगलैंड के साथ एकता हो जाने से १८ वीं शताब्दी से इसकी निरंतर प्रगति होने लगी। इस उद्योग का श्रीगणेश १७२९ में फ्रांसीसी शरणार्थियों द्वारा एडनबरा में किया गया। यहाँ अधिकतर मध्यम श्रेणी के लिनेन के वस्त्र बनाये जाते हैं। यहाँ सन रूस और जूट भारत से आयात किया जाता है। ग्लासगो-पैसले क्षेत्र में भी यह उद्योग किया जाता है क्योंकि यहाँ स्वच्छ जल, जल विद्युत शक्ति, और कोयले की सुविधा है। सन बाल्टिक और बेल्जियम क्षेत्र से मँगवाया जाता है। अमेरिकन गृह युद्ध के कारण जब सूती कपड़ा उद्योग के लिए रुई का अभाव होने लगा तब इस उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला। जूट के उद्योग के निकट होने से दक्ष मजदूर भी मिल जाते हैं। यहाँ के मुख्य क्षेत्र एडिनबरा, एबरडीन, पर्थ, ग्लासगो, और डम्बार्टन हैं।

आयरलैंड में यह उद्योग अति प्राचीन काल से किया जा रहा है। आधुनिक युग में भी लिनेन उद्योग में विश्व में यही देश सबसे प्रमुख है। यहाँ लिनेन उद्योग का जन्म १८२८ में बेलफास्ट नगर में हुआ। इङ्गलैन्ड में विश्व के लिनेन उद्योग में लगे $\frac{1}{3}$ कर्घे और तकुए हैं। इनमें से $\frac{3}{4}$ तकुए और कर्घे अकेले उत्तरी आयरलैंड में पाये जाते हैं जहाँ बेलफास्ट इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ के $\frac{3}{4}$ से भी अधिक मिल बेलफास्ट से ३० मील की परिधि में ही स्थित हैं। लिनेन उद्योग में बेलफास्ट का महत्व इङ्गलैंड में सूती उद्योग में मानचेस्टर से भी अधिक है। इसके निम्नांकित कारण हैं :—

(१) यद्यपि उत्तरी आयरलैंड में सन अधिक पैदा होता है फिर भी यहाँ सन रूस, फ्रांस और नीदरलैंड्स से मँगवाने की विशेष सुविधा है।

(२) आरम्भिक काल में जब यह उद्योग कुटीर प्रणाली पर चला जाता था, तो सरकार द्वारा इसे आर्थिक सहायता दी जाती थी। अतः जब औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप नये यन्त्रों का आविष्कार बढ़ा तो यहाँ के उद्योगपतियों ने सहज ही में नये उपादानों का व्यवहार शुरू कर लिया।

(३) आयरलैंड में लिनेन उद्योग ही प्रमुख है जबकि स्काटलैंड और आयरलैंड में इस उद्योग को सूती कपड़े और जूट तथा अन्य उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा

करनी पड़ती है। अतः आयरलैंड के उद्योगपति अधिक वेतन देकर भी दक्ष मजदूरों को अपने यहाँ रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त आयरलैंड में जहाज बनाने तथा अन्य भारी उद्योगों के विकास होने के कारण उन उद्योगों में पुरुष श्रमिकों को कार्य मिल जाता है किन्तु स्त्री श्रमिकों को लिनेन उद्योग में अधिक कार्य मिलता है। अतः इस उद्योग में ¾ मजदूर स्त्रियाँ और बच्चे ही हैं।

(४) उत्तरी आयरलैंड का जलवायु नम होने के कारण सन के धागे लम्बे और मजबूत बनाने की सुविधा है।

(५) यहाँ के श्रमिक लिनेन के सूत को रंगने, ब्लीच करने और उनको फिनिश करने में बड़े निपुण हैं।

(६) यहाँ स्वच्छ जल बहुतायत से मिलता तथा कोयला और जल-विद्युत शक्ति की पूर्ण सुविधाएँ हैं।

(७) बन्दरगाहों की सुविधा होने के कारण तैयार माल निर्यात करने की पूर्ण सुविधा है।

(८) आरम्भ में ही यहाँ उद्योग स्थापित होने से यहाँ के माल की माँग उसकी उत्तम श्रेणी के कारण विश्व के देशों में बहुत अधिक है।

यहाँ महीन और बढ़िया किस्म का लिनेन ही अधिक बनाया जाता है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बेलफास्ट, लार्ने, कौलेरेन, लिसबर्न, बानब्रिज, ड्रोमोर व बाल्लीमिना हैं।

मानचेस्टर और लीड्स में भी कुछ लिनेन ये कारखाने हैं जो वहाँ के सूती उद्योग से ही संबंधित हैं।

संयुक्तराष्ट्र का लिनेन उद्योग :

यहाँ सन बिलकुल पैदा नहीं होता फिर भी आयात किए हुए सन के सूत और अर्द्ध-निर्मित माल के द्वारा ही यहाँ हडसन नदी के किनारे न्यू इङ्गलैंड, न्यूयार्क और न्यूजर्सी में यह उद्योग स्थापित हो गया है। न्यूयार्क से हडसन नदी द्वारा जुड़े होने के कारण घनी आबादी वाले औद्योगिक क्षेत्र की बड़ी मांग की महान सुविधा इसे प्राप्त है। यहाँ आयात किए गए सूत से रूमाल, मेजपोश, टाइयाँ, कॉलर, कफ, आदि उत्तम श्रेणी का माल तैयार किया जाता है।

बेल्जियम का लिनेन उद्योग :

यहाँ का लिनेन उद्योग घरेलू सन की पूर्ति पर ही निर्भर है। मुख्य क्षेत्र लिस नदी की घाटी के सहारे फैला है। इस नदी से इसे स्वच्छ जल मिल जाता है तथा यहाँ सस्ता किन्तु चतुर श्रम भी खूब प्राप्त होता है। यहाँ घरेलू मांग के लिए ही मध्यम श्रेणी का माल तैयार किया जाता है। यहाँ के मुख्य केन्द्र घेन्ट, कोर्टिक, और लोकर्न हैं जो सब फ्लैंडर्स क्षेत्र में है।

फ्रांस का लिनेन उद्योग :

फ्रांस में भी यह काफी पुराना उद्योग है। यहाँ यह उद्योग लिस नदी के किनारे किया जाता है। इस नदी का पानी रेशे को सड़ाने और उसको साफ

करने के लिए अनुकूल है। यहाँ के मुख्य क्षेत्र लिले, कैम्ब्रे और वैस्टफैलिया हैं। इस उद्योग के सबसे बड़े केन्द्र रूबेक्स, टोरकोइंग और आर्मेन्टायर्स हैं।

रूस का लिनेन उद्योग :

रूस में लिनेन उद्योग उस समस्त पेटी में फैला है जिसमें सन पैदा होता है। यह क्षेत्र मास्को के द० पश्चिम में ओरशा से लगाकर यूराल पर्वत के पश्चिम की ओर ग्लैंजोव तक फैला है। इस क्षेत्र को कोयला टूला कोल क्षेत्र से प्राप्त होता है। सन का उत्पादन निकटवर्ती पट्टियों में बहुत होता है। सस्ती जल यातायात सुविधा मास्को-वाल्गा नहर और मस्कोवा नदियों द्वारा प्राप्त हो जाती है। यहाँ मोटे किस्म का कपड़ा बनाया जाता है जिसकी घरेलू माँग बहुत है।

इस उद्योग के मुख्य केन्द्र ग्लैंजोव, कोस्ट्रोमा क्रैसेविनो, ओरशा, स्मोलैंस्क, वोलोडा, और व्याजिन्सकी, कालोनिन और मास्को हैं।

अध्याय ३१

अन्य उद्योग

(Miscellaneous Industries)

रासायनिक उद्योग (Chemical Industry)

"रासायनिक उद्योगों के अन्तर्गत वे उद्योग आते हैं जो अन्य उद्योगों के लिये आधारभूत रासायनिक पदार्थ बनाते हैं; इसके अतिरिक्त वे उद्योग भी आते हैं जिनमें रासायनिक क्रियाओं द्वारा पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं।"[1] इस दृष्टि से इन उद्योगों के अन्तर्गत कई प्रकार की वस्तुएं बनाना— जैसे रंग और रोगन, कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक, दवाइयाँ, कृत्रिम तेल आदि।

भारी रासायनिक पदार्थ वे रासायनिक तत्व होते हैं जिनका प्रयोग मुख्यत: औद्योगिक और उसी सम्बन्धित उद्योगों में किया जाता है। साधारणत: इन पदार्थों का औद्योगिक उपयोग ही अधिक होता है। ये वस्त्र, कागज, साबुन काँच, चमड़ा, रंग, वारनिश, प्लास्टिक, मोटर स्प्रिट इत्यादि उद्योगों में कच्चे माल की तरह काम में लाये जाते हैं। इम्पीरियल रासायनिक उद्योग के चेयरमेन के अनुसार, "यह उद्योग सभी उद्योगों में सबसे अधिक बहुपति वाला उद्योग है, क्योंकि यह उद्योग रसायन-वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों इन्जिनियरों आदि की सहकारिता पर निर्भर करता है।" इस उद्योग का शान्ति व युद्ध दोनों ही काल में बड़ा महत्व है। आधुनिक काल में जिस देश में इन उद्योगों का जितना अधिक विकास होता है वह देश उतना ही सभ्य और औद्योगिक माना जाता है।

रासायनिक उद्योग दो प्रकार के होते हैं :—

(१) भारी रासायनिक पदार्थ (Heavy Chemicals)— इनके अन्तर्गत गन्धक का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, शोरे का तेजाब, विभिन्न प्रकार के सलफेट, कॉस्टिक सोडा, सोडा एश, एमोनिया, ब्लीचिंग पाउडर क्लोरीन, पोटेशियम क्लोरेट, और रासायनिक खादें—अमोनियम सल्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट, सुपरफोसफेट, शोरा आदि का उत्पादन आता है।

(२) कीमती और हल्के रासायनिक पदार्थ—(Fine Chemicals)—इनके अन्तर्गत फोटोग्राफी में काम आने वाले रसायन, दवाइयाँ, रंग और रोगन आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

उद्योग का विकास :

इस उद्योग का विकास सबसे अधिक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, पश्चिमी

---

१. "The Chemical industry includes establishments producing basic chemicals and establishments manufacturing products by predominantly chemical processes—"U. S. A. Census of Manufacturing.

यूरोप व रूस में हुआ है। सबसे पहले औद्योगिक क्रान्ति के समय जब यन्त्रों द्वारा इङ्गलैण्ड में सूती कपड़े का उत्पादन आरम्भ हुआ तो उसके लिये गन्धक का तेजाब, सोडा ऐश, और रंग तथा ब्लीचिंग पाउडर की आवश्यकता हुई। फलस्वरूप इस उद्योग का श्रीगणेश सबसे पहले लकाशायर कोयले के क्षेत्र में हुआ। इस उद्योग को दो कारणों से बड़ा प्रोत्साहन मिला। १७४९ में जॉन रूपक ने गन्धक का तेजाब बनाने का एक कारखाना स्कॉटलैण्ड में खोला। १७९१ में निकोलस ब्लैक ने नमक, गन्धक के तेजाब व चूने आदि से फ्रांस में सोडा ऐश बनाने का कारखाना स्थापित किया। इन दोनों कारणों से इङ्गलैण्ड में यह उद्योग अच्छी तरह विकास पा गया। यहाँ तक कि १९ वीं शताब्दी के लगभग ७५ वर्षों तक विश्व में सबसे अधिक रसायन ब्रिटेन में ही तैयार किये जाते थे।

इसके बाद १८६५ में जर्मनी में पोटाश और रंग बनाने के उद्योग स्थापित किये गये, किन्तु इस उद्योग का वास्तविक विकास वहाँ १८७९ के बाद ही हुआ। पश्चिमी यूरोप के इन दोनों देशों में इस उद्योग के लिये तान्त्रिक शिक्षा (Technical education), कुशल मजदूर, पृष्ठ देश में चूना, नमक, कोयला, लोहा मिलने की सुविधा तथा विस्तृत बाजार के निकटता आदि की सुविधाओं का होना था।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस उद्योग का विकास १८८० के बाद से हुआ, किन्तु असली विकास प्रथम महायुद्ध के बाद हुआ जबकि यूरोप से युद्ध के कारण रसायन पदार्थ का आना बन्द हो गया। राज्य द्वारा सहायता मिलने, कच्चे माल की प्रचुरता, पूँजी का बड़ी मात्रा में मिलना और बड़ी संख्या में कुशल और शिक्षित मजदूरों का मिलना इन सुविधाओं के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र अमेरिका वर्त्तमान समय में संसार का सबसे बड़ा रासायनिक पदार्थ तैयार करने वाला देश है। इसका उत्पादन जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, रूस और जापान के सम्मिलित उत्पादन से भी अधिक है। अब यही देश सबसे अधिक निर्यात भी करता है।

उद्योग की विशेषतायें :

इस उद्योग की कुछ विशेषताएं हैं जो और उद्योगों में नहीं पाई जातीं :—

(१) अनुसंधान और नई खोजों के लिये उसे उद्योग में. अन्य उद्योगों की अपेक्षा अधिक खर्च की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये अमेरिका की ड्यु-पौण्ट (Du-Pont) नामक उद्योग में मिलन के १ मौजे जोड़ी बनाने में लगभग २७० लाख डालर खर्च किये।

(२) उस उद्योग में वस्तुएँ बनाने की क्रियाओं और उनके उत्पादन में अन्य उद्योगों की अपेक्षा शीघ्र परिवर्तन होते हैं। इसका मुख्य कारण नई खोजों का होना है। एक ही पदार्थ से कई वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं।

(३) इस उद्योग को आरम्भ करने के पूर्व वस्तुओं के उत्पादन की पूरी रूपरेखा गवेषणाशालाओं में तैयार की जाती है। उसके उपरान्त वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है।

(४) अन्य उद्योगों की अपेक्षा इस उद्योग की मशीनों और उपकरणों का ह्रास जल्दी होता है, अतएव उन्हें जल्दी-जल्दी बदलना पड़ता है।

(५) यह उद्योग विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाता है जैसे विस्फोटक पदार्थ, प्लास्टिक, कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशे, कृत्रिम रेशम और रोगन आदि। अतएव अपरोक्ष रूप में यह नये उद्योगों को जन्म देता है।

(६) इस उद्योग में वैज्ञानिक और तांत्रिक शिक्षा प्राप्त किये हुए मजदूर ही काम कर सकते हैं।

(७) इस उद्योग के अधिकतर कच्चे माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, जैसे—वायु, जल, कोयला, नमक और लकड़ी आदि।

उद्योग का स्थापन :

संयुक्त राष्ट्र, ब्रिटेन और जर्मनी इस उद्योग में मुख्य हैं। नार्वे, और स्वीडन में विद्युत रसायन का उत्पादन महत्वपूर्ण है।

संयुक्त राष्ट्र :

यह उद्योग इस देश में द्वितीय महायुद्ध से कुछ ही दिनों पहले आरम्भ किया गया था। अब इसका उत्पादन संसार में सबसे अधिक है। इस उद्योग में ६.५ लाख व्यक्ति काम करते हैं। इसके छोटे-बड़े १०,००० कारखाने हैं। इस उद्योग में लगी हुई तीन मुख्य कंपनियाँ हैं—ड्यू-पोंट (Du Pont), यूनियन कारवाईड (Union Carbide) और एलाइड कैमिकल (Allied Chemical)। इनमें सबसे बड़ी कंपनी पहली ही है जिसके १०० कारखाने हैं तथा जिनमें ८५,००० मजदूर काम करते हैं। इसकी पूँजी २ विलिअन डालर है। नियात व्यापार में इसका जर्मनी के बाद संसार में दूसरा स्थान है। इस उद्योग को यहाँ निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हैं:—

(१) अमेरिका में वैज्ञानिक अन्वेषणों के लिए प्रचुर अनुसंधान सामग्री मिलती है। यहाँ का धन अनुसंधानशालाओं में लगा हुआ है। इन्जीनियर भी सस्ते पारिश्रमिक पर मिल जाते हैं।

(२) विशेष प्रशिक्षण प्राप्त श्रमिक कुशल मात्रा में मिल जाते हैं।

(३) यहाँ संसार का एक तिहाई गंधक का तेजाब उत्पन्न किया जाता है जिसका व्यापक प्रयोग इस उद्योग में किया जाता है। गंधक के तेजाब के उत्पादन में इस देश का स्थान संसार में प्रथम है।

(४) अमेरिका के अत्यन्त धनी देश होने से पूँजी की पर्याप्त घरेलू पूर्ति हो जाती है।

(५) अप्लेशियन के क्षेत्र से पर्याप्त कोयला और सस्ती जल-विद्युत प्राप्त हो जाती है।

(६) औद्योगिक विकास के क्षेत्रों में काफी रासायनिक पदार्थों की माँग रहती है।

(७) जल, रेल, नहर और सड़कों की यातायात सुविधायें इस क्षेत्र को प्राप्त हैं।

रासायनिक पदार्थों का सबसे अधिक उत्पादन संयुक्त राष्ट्र के उत्तरी पूर्वी भाग, मिसीसिपी के पूर्व तथा ओहियो और पोटोमैक नदियों के उत्तरी भागों से प्राप्त होता है। यह उद्योग यहाँ न्यूजर्सी, न्यूयार्क, इलीनियॉस, टक्साज, पेन्सिलवेनिया, ओहियो और मिशीगन राज्यों में केंद्रित है। डिलावेयर नदी पर स्थित विलमिंगटन नगर में गोला बारूद और विस्फोटक पदार्थ बनाये जाते हैं। टेनेसी घाटी और होपवेल वेली में वायुमण्डल से नाइट्रोजन और अन्य कई प्रकार के नाइट्रोजन बनाये जाते हैं। गंधक का तेजाब डकटाऊन और ऐनाकोंडा में बनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र में १४१ लाख टन गंधक का तेजाब, ४०–५० लाख टन सोडा एश और ७ लाख टन विस्को पदार्थ बनाये जाते हैं। सोडा ऐश बनाने के कारखाने डिट्रायट, सोल्वे, बैंटन रोग, लेक चार्लेम, साल्टविले और बारबरटन में हैं।

जर्मनी :

जर्मनी में वैज्ञानिक अन्वेषणों की प्राचीन परम्परा है। यहाँ की अनुसंधान-शालायें सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। आधुनिक रंग उद्योग (Dye Industry) जर्मन वैज्ञानिकों का ही महान आविष्कार है। यह उद्योग यहाँ सन १८६५ में आरम्भ हुआ था और अब इसका स्थान संसार में प्रथम है। जर्मनी में इस उद्योग के अन्तर्गत रङ्ग, खाद, कृत्रिम तेल, रबड़, कपड़ा और प्लास्टिक बनाये जाते हैं। जर्मनी के इस उद्योग का केन्द्रीकरण साइलेशिया क्षेत्र में हुआ है। मुख्य केन्द्र स्टासफर्ट, एसेन, म्यूनिच, एल्बरफेल्ड, वरगोसन, सेहौनवेक, फ्रेंकफर्ट और ओपाऊ हैं। स्टासफर्ट मुख्य क्षेत्र है जहाँ निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हैं :—

(१) स्टासफर्ट और हाली के पास हार्ज होर्स्ट से प्रचुर मात्रा में पोटाश और अन्य रासायनिक लवण प्राप्त होते हैं।

(२) इन लवणों से कृत्रिम खाद, साबुन, काँच और अन्य रासायनिक पदार्थ भी बनाये जाते हैं जिनकी खपत स्थानीय रूप से भी काफी है। विदेशों में भी इन पदार्थों की बहुत माँग रहती है।

(३) ज्वीकाऊ कोयला क्षेत्र से काफी कोयला प्राप्त हो जाता है। साइलेशिया से भी कोयला प्राप्त होता है।

(४) केवल लिगनाइट कोयले से ही हजारों प्रकार के रासायनिक पदार्थ बनाये जाते हैं।

(५) नदियों से प्रचुर मात्रा में जल मिलता है।

लीपजिंग, हाली और बिटरफील्ड में कास्टिक सोडा और साबुन बनाया जाता है। ल्यूनावर्क में लिगनाइट से विस्फोटक पदार्थ और कृत्रिम खाद बनाये जाते हैं।

ब्रिटेन का रासायनिक उद्योग :

ब्रिटेन में यह उद्योग सबसे पहले चालू किया गया था। सन १७६७ में ग्लासगो नगर में इस उद्योग का जन्म हुआ। औद्योगिक क्रांति के बाद सूती कपड़ा उद्योग में तेजाब, क्षार, साबुन और रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता

बढ़ने पर इस उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला। सरकारी आदेशों द्वारा विस्फोट उद्योग को विकसित होने का सुअवसर मिला। नोबेल विस्फोट कारखाना इसी समय खुला। चैशायर की खानों से पर्याप्त और विविध प्रकार के लवणों की प्राप्ति हो जाती है। मानचेस्टर नहर द्वारा बना माल बाहर भेजा जाता है। लिवरपूल के उत्तम बन्दरगाह से आयात की सारी सुविधायें प्राप्त हैं। यहाँ चर्बी और मारगेराईन इकट्ठा किया जाता है। इस उद्योग में बर्मिघम के धातु-उद्योग से घनिष्ट सम्पर्क है। टाईन नदी की घाटी में सस्ती गैस शक्ति और ईंधन प्राप्त है। किनलोकलावेन, फोरस और फोर्ट विलियम में सस्ती बिजली प्राप्त हो जाती है जिसके द्वारा उच्च तापक्रम की विधि से रासायनिक पदार्थ बनाये जाते हैं। ब्रिटेन के मुख्य रसायन केन्द्र एंट हेलेन्स, न्यू कासिल, रनकार्न, मिडिलसबरो, ग्लासगो, लंदन और लीड्स हैं। इङ्गलैंड में अन्वेषण में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक पदार्थ बनाने का विशिष्टीकरण हुआ है।

नार्वे :

नार्वे का आधुनिक विद्युत रसायन उद्योग प्रचुर जल-विद्युत पर निर्भर करता है। नार्वे की आधी जल-विद्युत नार्वे की दक्षिणी पूर्वी घाटी में उत्पन्न की जाती है। वायु से नाइट्रोजन प्राप्त करके उससे कई रासायनिक पदार्थ बनाये जाते हैं। चूना और कार्बन का आयात करके कैल्शियम कार्बाइड बनाया जाता है। कृत्रिम खाद, प्लास्टिक, कैल्शियम नाइट्रेट, नाइट्रिक तेजाब, अमोनिया सल्फेट, कास्टिक सोडा आदि रासायनिक पदार्थ प्रचुरता से बनाये जाते हैं। इसके मुख्य केन्द्र नीटोड्डेन और रियूकान हैं।

भारत में रासायनिक उद्योग :

रसायन-उद्योगों के विस्तार को औद्योगिक विकास और समृद्धि का सब से महत्त्वपूर्ण प्रमाण कहा जा सकता है। मशीनी उत्पादन की व्यवस्था में उपभोग्य वस्तुओं के तैयार होते-होते कच्चे माल और अन्य सामानों को कई बार बड़ा रूप-परिवर्तन करना पड़ता है। इस काम को सुविधा और उत्कृष्टता से करने के लिए तरह-तरह के रसायनों (अम्लों, क्षारों और अन्य वस्तुओं) की आवश्यकता पड़ती है। कागज, काँच, साबुन, कपड़ा, चीनी, चमड़ा, दवाइयाँ और लोहे और स्पात के उद्योगों में हर जगह और पग-पग पर रसायनों की आवश्यकता पड़ती है और इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि रसायनों की उपलब्धि पर्याप्त मात्रा मे न हो तो कोई भी देश आजकल अपनी औद्योगिक संभावनाओं से पूरा लाभ नहीं उठा सकता। रसायन-उद्योगों का विकास औद्योगिक समृद्धि की एक बड़ी आवश्यक शर्त है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व हमारे भारी रासायनिक उद्योगों की स्थापना हुए अधिक दिन नहीं हुए थे। गंधक के तेजाब और उससे बनने वाली वस्तुएँ—फिटकरी, नीलाथोथा, फैरस-सल्फेट इत्यादि इनी-गिनी वस्तुएँ ही—तैयार की जाती थी। किंतु युद्धकाल में विदेशों से रासायनिक पदार्थों के न मिलने के कारण यहाँ सोडा एश विद्युत प्रणाली से तैयार किया गया। कॉस्टिक सोडा, क्लोरीन, बाइ क्रोमेट, कैलशियम क्लोराइड, सोडियम सल्फाइड और ग्लिसरीन

आदि पहली बार बनाये जाने आरम्भ हुए। इसके पश्चात् तो रासायनिक पदार्थों के उत्पादन की वृद्धि होती गई। सुनियोजित प्रयत्नों और संरक्षण के लिए किए गए उपायों के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों से देश में ब्रोमीन, कैलशियम कारबाइड, कारबन डाइसलफाइड, डी० डी० टी०, बेनजीन हैक्साक्लोराइड, टाइटेनियम डाइआक्साइड, अमोनियम क्लोराइड, विशेष लवण, रङ्ग प्लास्टिक आदि बनाये जा रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में जो वृद्धि हुई वह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

भारी रासायनिक पदार्थों का उत्पादन (टनों में)

	१९४६	१९५५	
	उत्पादन	कारखाने	उत्पादन
गधक का तेजाब	६०,०००	३८	१,६५,०७२
अमोनियम सलफेट	२२,४५८	८	३,९३,०९६
सुपर फसफेट	४,५००	१४	७१,५६८
कॉस्टिक सोडा	२,६००	१२	३४,१५२
सोडा एश	१२,०००	२	७७,२६८
तरल क्लोरीन	२,६००	७	११,१५६

पिछले वर्षों की वृद्धि देखकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इसे तीन-चार गुना कर देने का आयोजन किया गया है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा:—

उत्पादन और लक्ष्य (टन)

	१९५१	१९५५	१९६१ के लक्ष्य.
अमोनियम सलफेट	५२,६६४	३,९३,०९५	१,६०,०००
सुपर फासफेट	६१,०२०	७४,१६५	७,२०,०००
गंधक का तेजाब	१०६,९३२	१६४,८४२	४,७०,०००
सोडा एश	४७,५३२	७७,२७२	२,३०,०००
कॉस्टिक सोडा	१४,७२४	३४,२५३	१,३५,४००
तरल क्लोरीन	५,२६८	११,५७७	१७,०००
ब्लीचिंग पाउडर	३,५८८	२,६९८	१५,०००
बाइक्रोमेट	३,२७१	२,९२९	६,०००
सोडियम कारबोनेट	१,६३०	४,१२५	८,०००
पोटेशियम क्लोरेट	१,५९३	२,१३५	३,८००
कैलशियम कारबाइड	—	३,११०	२४,०००
फिटकरी	२,४६०	४,३७०	५०,०००
ऐलम सलफेट	१३,३५०	२७,६९०	
कापर सलफ़ेट	५०५	१,०४५	३,०००
अमोनियम क्लोराइड	—	१,६८३	५,०००
एसेटिक एसिड	—	२,३७५	—
बैनजीन हैक्साक्लोराइड	—	१,६०३	३,०००
डी. डी. टी.	—	१७२	३,०००
हाइड्रोजन पैरोक्साइड	—	—	१,५००
सोडियम हाइड्रोसल्फाइड	—	—	४,०००

भारी रासायनिक पदार्थों के काम में आने वाले महत्वपूर्ण उद्योगों में १९६०–६१ तक जो उत्पादन लक्ष्य रखे गये हैं वे यह हैं—अलूमीनियम, कागज, रेयन, औषधियों और भेषजों, साबुन और वनस्पति। किंतु भारत में रासायनिक पदार्थों का इतना उत्पादन होते हुए भी प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग बहुत कम है जैसाकि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—[१]

उपभोग प्रति व्यक्ति पीछे (पौंड में)

	भारत	सं० राष्ट्र अमेरिका	इंगलैंड	प० जर्मनी	रूस	जापान
सोडा एश	०·७	६२	३६	४२	१३	६२
कॉस्टिक सोडा	०·५	४१	२०	२२	६	५२
गंधक का तेजाब	१·२	१७०	८५	९३	४१	२१०
खाद	०·७	३४	१६	२१	९६	१४

भारत में इस उद्योग की निम्न विशेषतायें हैं :—

(१) इन वस्तुओं को तैयार करने के लिए साधारणतः छोटे-छोटे कारखाने हैं। इनमें गंधक और गन्धक तेजाब तैयार करने में लागत भी अधिक पड़ती है।

(२) आधारभूत रासायनिक पदार्थों—सोडा एश, गंधक का तेजाब, कास्टिक सोडा—का मूल्य बहुत अधिक पड़ता है। इन पदार्थों का लागत कम रखने के के उद्देश्य से भविष्य में स्थापित होने वाले नये कारखानों का न्यूनतम आकार निर्धारित कर दिया गया है।

(३) हमारे देश में रसायन-उद्योग अभी बड़ी पिछड़ी हुई अवस्था में है। अन्य रसायनों की तो बात ही नहीं, गंध-आम्ल (Sulphuric acid) और सोडा एश जैसी बड़ी जरूरी चीजों का उत्पादन भी हमारे देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। पहले महायुद्ध के बाद गन्धआम्ल बनाने वाले उद्योग का विकास अवश्य हुआ है, किन्तु चूँकि इसके लिए हमें अधिकांश मात्रा में गंधक विदेशों से मंगाना पड़ता है, इसलिए इस स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। सोडा एश—जिसके बिना कांच-उद्योग का अस्तित्व ही कठिन है —बनाने के लिए देश भर के केवल दो मिलें हैं। अन्य विविध रसायनों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है।

(४) रासायनिक पदार्थों की पूर्ति के लिये हम विदेशी आयातों पर निर्भर हैं। इन आयातों के लिए हमें पहले महायुद्ध के बाद ही से अधिकाधिक द्रव्य विदेशियों को देना पड़ता है। १९१३-१४ में रासायनों और रासायनिक पदार्थों के कुल आयात का मूल्य १९५ लाख रुपया था। संरक्षण मिलने से उद्योगों की कुछ प्रगति होने के परिणामस्वरूप १९२८-२९ में इन वस्तुओं के लिये १,४८७ लाख रुपया देना पड़ा। १९३९ में आयातों का यह मूल्य १,०७२ लाख रुपया था।

(५) रसायन उद्योगों के निर्माण के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी है। इस हेतु सोनामाखी (Pyrites) और जिप्सम (Gypsum) से गन्धक आदि बनाने के लिये गवेषणा की जा रही है।

---

१. Capital, Supplement : Dec. 20, 1956, p. 147.

(६) इस समय सोडा एश, कास्टिक सोडा और कैलशियम कार्बाइड तैयार करने वाले उद्योग तट-कर संरक्षण पाकर अपना विकास कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि उनकी उत्पादन लागत आयातित माल के मूल्य की अपेक्षा अधिक पड़ती है। उत्पादन मूल्यों को घटाने से ही दूसरे उद्योगों में इन पदार्थों की खपत बढ़ाई जा सकती है। इनके घटाने का मुख्य उपाय यही है कि इन्हें तैयार करने वाले कारखानों के आकार बढ़ाये जायें और इन्हें ऐसे स्थानों पर रखा जाय जहाँ कच्चे माल, बिजली और ईंधन आदि की सुविधाएँ हों। उपोत्पादनों और रद्दी माल का उपयोग करने के उद्देश्य से कई प्रकार के रासायनिक पदार्थों को ही कारखानों में तैयार करने का प्रयत्न होना चाहिए।

गंधक का तेजाब (Sulphuric Acid):

गंधक के तेजाब का स्थान तेजाबों में सबसे महत्वपूर्ण है। अन्य तेजाबों—शोरे का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड—के उत्पादन के लिये भी गंधक के तेजाब की आवश्यकता होती है। गंधक का तेजाब बनाने का पहला प्रयत्न १९वीं शताब्दी के अन्त में किया गया और १९१४ के पहले की मिलों में बंगाल की 'डी० वाल्डी कम्पनी' और बंगाल कैमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स, तथा मद्रास की पैरी कम्पनी और बम्बई की ईस्टर्न कैमिकल कंपनी प्रमुख थीं। ज्वलनशीलता के कारण गंधक के तेजाब का आयात अधिक मात्रा में संभव नहीं है और इसलिए गंधक का तेजाब बनाने की नई मिलें खोली गईं। दि टाटा कम्पनी ने जमशेदपुर में लोहे और स्पात के उद्योग के लिए एक मिल खोली। विदेशी स्पर्धा के कारण उद्योग को दूसरे महायुद्ध के पहले बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। १९३९ में उस उद्योग की उत्पादन क्षमता ५७ ००० टन थी, किन्तु उत्पादन इस क्षमता का केवल ५०% ही था। दूसरे महायुद्ध के फलस्वरूप इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला। तभी से इसका उत्पादन वृद्धि पर है। १९४६-४७ में ६०,००० टन; १९५० में १,०२,४८० टन; १९५२-५३ में ९६,०८४ टन और १९५५-५६ में १,६५,०७२ टन हो गया। इस समय इसकी उत्पादन क्षमता २,४५,००० टन है। इस समय देश में ३८ मिलें हैं जिनमें १३ पश्चिमी बंगाल व बिहार में; १२ बम्बई में; ९ पंजाब तथा ४ उत्तर प्रदेश में हैं। इस उद्योग में २ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है।

गंधक के तेजाब के लिए गंधक अभी विदेशों से ही आयात किया जाता है। १९५१ में आयात की मात्रा लगभग ३७,००० टन थी। १९५५-५६ में गंधक की मांग लगभग २ लाख टन थी। अतः द्वितीय योजना में गंधक के तेजाब का उत्पादन का ४,७०,००० टन लक्ष्य रखा गया है।

सोडा ऐश या सज्जी (Soda Ash):

सज्जी की सबसे अधिक आवश्यकता कांच, वस्त्र उद्योग और कपड़ा धोने में होती है। सज्जी के उत्पादन के लिये देश में दो कारखाने हैं—टाटा कैमिकल वर्क्स मिथापुर' और 'धारंगध्रा कैमिकल कं०', बम्बई जिनकी उत्पादन क्षमता १९५५-५६ में ९०,००० टन थी। वास्तविक उत्पादन इससे कम ही होता है। १९४७ में १३,६२४ टन; १९५० में ४३,७८८ टन; १९५२-५३ में ४४,३२८ टन और १९५५-५६ में ७७,२६८ टन था। प्रतिवर्ष लगभग ७०,०००

टन का आयात किया जाता है। कोयले और चूने की खानों से बहुत दूर होने के कारण सज्जी उद्योग में यातायात व्यय की समस्या बड़ी गम्भीर रही है, अतः योजना आयोग ने इन दोनों कारखानों के विकास के अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल और बिहार में नये कारखाने खोलने की सिफारिश की है। किन्तु ३ नये कारखाने क्रमशः पोरबंदर, नैवैली और बनारस में खोले जा रहे हैं जिनके फलस्वरूप १९६०-६१ तक हमारी उत्पादन क्षमता ३,२५,००० टन हो जायगी।

कास्टिक सोडा (Caustic Soda) :

अम्लों के अतिरिक्त उद्योग में क्षारों (Alkalies) का भी बहुत काम पड़ता है। इन क्षारों में कास्टिक (दाहक) सोडा और सोडा ऐश (सज्जी) प्रमुख हैं। साबुन, कागज, कपड़ा, घी और वनस्पति घी, रेलों आदि में कास्टिक सोडा की बहुत आवश्यकता पड़ती है। अनुमान है कि इन सब उद्योगों में मिलाकर लगभग ५५ हजार टन कास्टिक सोडा की जरूरत है। १९५५ में 'टाटा कैमिकल कम्पनी' और ११ अन्य कारखानों की कुल उत्पादन-सामर्थ्य ४४,३०० टन प्रति वर्ष थी। १९५२ में मैटूर कैमिकल एण्ड इंडस्ट्रियल कारपोरेशन' और 'दिल्ली क्लाथ मिल्स' ने भी कास्टिक सोडा बनाने के कारखाने खोले हैं। कागज की कुछ मिलों ने भी अपने लिए कास्टिक सोडा बनाने की मशीनें लगाई हैं। फिर भी हमारा उत्पादन अभी आवश्यकता से बहुत कम है।

सन् १९४७ में ४,९१२ टन उत्पादन हुआ। १९५० में यह मात्रा १०,८४८ टन; १९५२ में १७,०६४ टन और १९५५ में ३४,१५२ टन हो गई। किन्तु देश में इसकी माँग बहुत है। अतः १९६०–६१ तक यह उत्पादन क्षमता १,४३,००० टन हो जायेगी जिसमें से २७,००० टन सज्जी से और १,१६,००० टन इलैक्ट्रोनिक प्रणाली से उत्पादन होगा।

क्लोरीन (Chlorine) :

इसका उत्पादन भी कास्टिक सोडा के साथ २ ही होता है। इसका मुख्य उपयोग ब्लीचिंग पाउडर, डी. डी. टी., अमोनियम क्लोराइड, मैथिल क्लोराइड, हाइड्रोक्लोराइड तेजाब, कई प्रकार के रङ्ग, तथा कीटाणुनाशक पदार्थों के तैयार करने में होता है। अभी देश में इसका उपभोग बहुत कम होता है।

इन रासायनिक पदार्थों के मुख्य उत्पादन केन्द्र कलकत्ता, बम्बई, धारङ्गध्रा, मैसूर, जमशेदपूर, बङ्गलोर, अहमदाबाद, बड़ोदा, कानपुर, दिल्ली, ओखा और मद्रास है।

रासायनिक खादें (Chemical Fertilizers) :

भारत में रासायनिक खाद के उद्योग का विकास द्वितीय महायुद्ध के बाद ही हुआ है। १९३९ में मैसूर के बेलेगुला स्थान पर मैसूर कैमिकल फर्टीलाइजर्स के नाम से एक खाद का कारखाना खोला गया जिसमें प्रतिदिन २० टन अमोनियम सलफेट बनाया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में रासायनिक खाद बनाने का कोई अलग कारखाना नहीं था, केवल 'कोक ओवन' (Coke Oven) के प्लांट से सहकारी उत्पादन के रूप में प्रति वर्ष लगभग २५,००० टन अमोनियम सलफेट बनता था। उस समय रासायनिक खाद का

आयात भी सीमित था। सन् १९२२–२३ में अमोनियम सलफेट का आयात ३०६ टन था, यह १९३८–३९ में बढ़ कर ७६,७४८ टन हो गया। इसी वर्ष भारत में ६,७८८ टन सुपर फास्फेट; २,१३७ टन नाइट्रेट ऑफ सोडा; १,८२९ टन नाइट्रेट ऑफ पोटाश तथा ७,०३७ टन अन्य किस्म की रासायनिक खादों का आयात हुआ। सब मिलाकर १९३९ में ९९,४५२ टन रासायनिक खाद का आयात हुआ जिसका मूल्य १ करोड़ रुपये से भी अधिक था।

१९४७ में भारत में रासायनिक खाद का एक और कारखाना 'फर्टीलाइजर्स ऐंड कैमिकल्स लि०' के नाम से ट्रावनकोर में अलवाये नामक स्थान पर खोला गया जहाँ प्रतिदिन १५० टन अमोनियम सलफेट तथा १०० टन सुपरफास्फेट बनाया जाने लगा। इस क्षेत्र में कोयला नहीं मिलता। अतः अमोनियम गैस बनाने के लिए यहाँ गैस-जैनरेटर की बैटरिमेंयों लकड़ी का इंधन प्रयोग में आता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद रासायनिक खाद के उद्योग ने बड़ी उन्नति की है। इस उन्नति की पृष्ठ भूमि में १९४३ का अकाल तथा भारत के कृषि उत्पादन का निरंतर ह्रास और उसकी जाँच के हेतु बनाई गई 'अनाज नीति समिति' (Food Grains Policy Committee) की सिफारिशें हैं। इस कमेटी ने एक और कारखाना खोलने की सिफारिश की जो ३,५०,००० टन अमोनियम सलफेट प्रति वर्ष बनाया करे।

नीचे की तालिका में विभिन्न प्रकार के रासायनिक खादों का उत्पादन बताया गया है :—

	१९५०	१९५२	१९५५
सुपर-फास्फेट (टन)	५२,४२८	४६,६५६	७१,५६८
अमोनियम सलफेट (टन)	४७,३०४	२.२०,३०८	३,९३,०९६

भारत में पिछले कुछ वर्षों से रासायनिक खादों का उपयोग बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। इनकी खपत १९५१–५२ में ५०,००० टन थी। यह बढ़ कर १९५५ में १,२०,००० हजार हो गई। इसी अवधि में फासफेट खादों की खपत ६,००० टन से बढ़ कर १५ ००० टन और पोटेशियम खादों की खपत ७,००० टन से बढ कर १०,००० टन हो गई। इस प्रकार नाइट्रोजन, फासफेट, और पोटेशियम खादों की खपत में इस अवधि में क्रमशः १००, १७५ और ४६% की वृद्धि हुई है। यद्यपि इन खादों की खपत देश में बढ़ती जा रही है किंतु अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोप और जापान की तुलना में यह अब भी बहुत कम है, जैसा कि अगली तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

१. उद्योग व्यापार पत्रिका : फरवरी, १९५७, पृ० ७७२.

देश	प्रति एकड़ पीछे रासायनिक खादों का प्रयोग (१९५४–५५)
नीदरलैंड	३८३·४३
बेल्जियम	२८४·९३
जापान	१९५·६४
प० जर्मनी	१८०·७०
ब्रिटेन	१०१·८८
अमेरिका	२४·९६
भारत	०·८४

सिन्दरी का कारखाना :

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने धनबाद से १५ मील की दूरी पर स्थित सिन्दरी गाँव में २३ करोड़ की लागत से रासायनिक खाद का एक कारखाना खोला। इस कारखाने को बनाने में ५–६ वर्ष की अवधि लगी और नवम्बर १९५१ से यहाँ अमोनियम सलफेट की खाद का उत्पादन आरम्भ होगया। यह एशिया का सबसे बड़ा खाद बनाने वाला कारखाना है और इसे विश्व में नवीनतम प्लान्टों से युक्त एक आधुनिक कारखाना माना जाता है। १६ जनवरी १९५२ को इसे फर्टिलाइजर्स एन्ड केमिकल्स लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

यह कारखाना मुख्यतः ५ विभागों में विभक्त है—(१) पावर प्लान्ट, (२) गैस प्लान्ट, (३) अमोनिया प्लान्ट, (४) सलफेट प्लान्ट, और (५) नया बना हुआ कोक ओवन प्लान्ट।

सिन्दरी में "अर्द्ध जल गैस जिप्सम पद्धति" अमोनियम सल्फेट बनाने के लिये प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रणाली में पहले अमोनिया नाइट्रोजन की और हाइड्रोजन की सिन्थेसिस से बनाई जाती है। इस अमोनिया को फिर अमोनियम कारबोनेट में कारबन डाई आक्साइड के रिएक्शन से परिवर्तित किया जाता है। इसके बाद पीसे हुए जिप्सम को अमोनियम कारबोनेट से मिलाकर अमोनियम सलफेट बनाते हैं और चाक स्लज नामक अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त करते हैं जो सीमेन्ट बनाने के लिये उपयोगी होता है। निम्न पंक्तियों में सिन्दरी के विभिन्न प्लान्टों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

पावर प्लान्ट जो ८०,००० किलोवाट शक्ति का है, फैक्ट्री को बिजली तथा प्रोसेस स्टीम देता है।

गैस प्लान्ट गैस मिक्सचर बनाता है, जो कि सफाई के बाद अमोनिया सिन्थेसिस बनाने के काम आता है। प्रतिदिन यहाँ ४४ मिलिअन क्यूबिक फुट गैस बनती है।

अमोनिया सिंथेसिस प्लाण्ट में गैस प्लाण्ट की परिवर्तित गैस कारबन डाई आक्साईड से मुक्त की जाती है और नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के बचे हुए मिक्सचर को केटेलिस्ट के साथ सिन्थेसाइस्ड किया जाता है। यह प्लाण्ट प्रतिदिन (२४ घन्टों में) २७० टन अमोनिया बनाता है।

सलफेट प्लाण्ट में जिप्सम और अमोनियम कारबोनेट के घोल को मिलाया जाता है और कुछ केमिकल प्रोसेसों के बाद अमोनियम सलफेट बनता है, जिसे क्रिस्टल (दाना) का रूप दिया जाता है और केलशियम कारबोनेट स्लज को अलग कर दिया जाता है, जिसका प्रयोग सीमेण्ट बनाने के लिये किया जाता है।

कोक की आवश्यकता पूर्ति के लिये बनाया गया नया कोक ओवन प्लाण्ट प्रतिदिन ६०० टन कोक का उत्पादन करता है और इससे बहुत से अतिरिक्त उत्पादन भी प्राप्त होते हैं

सन् १९५५–५६ में सिन्दरी का उत्पादन निर्धारित मात्रा से ६,०६२ टन अधिक था। सन् १९५५–५६ में सिन्दरी का कुल उत्पादन ३,२६,०६२ टन अमोनियम सलफेट था। अब तक रासायनिक खाद का सिन्दरी का उत्पादन १२ लाख टन लगभग रहा है, जिससे ४० करोड़ से अधिक मूल्य की विदेशी मुद्रा की बचत रही है। दूसरे शब्दों में सिन्दरी के खादों के प्रयोगस्वरूप २३ लाख टन अतिरिक्त अन्न की पैदावार हुई है जिससे ६५ करोड़ रु० से अधिक मूल्य के खाद्यान्नों की पैदावार में वृद्धि हुई है।

सिन्दरी ने भारत की खादों का उत्पादन सात गुने से अधिक बढ़ाया है। भारत में बनाई जाने वाली खादों का उत्पादन सन् १९५०–५१ में केवल ४८,००० टन था, जिसमें सिन्दरी ने ३,२१,३५३ टन खाद के उत्पादन को जोड़ा है। सन् १९५५–५६ में कुल मिलाकर खादों का उत्पादन ३,८०,००० टन हो गया।

जहाँ एक ओर सिन्दरी के उत्पादन में वृद्धि हुई है, वहाँ दूसरी ओर खाद के मूल्यों में भारी कमी आई है। अमोनियम सलफेट का मूल्य जो सन् १९५४–५५ में २७५ रु० प्रति टन था वह सन् १९५५–५६ में २७० रु० प्रति टन हो गया। सन् १९५१ में सलफेट का मूल्य ३१५ रु० प्रति टन था। मूल्य की कमी और रासायनिक खादों की उपयोगिता की वृद्धि के साथ ही साथ रासायनिक खाद की माँग में भी बढ़ोतरी हुई है। निम्नतालिका से यह स्पष्ट हो जायगा।

१९५२	२,७६,००० टन
१९५३	४,२२,००० ,,
१९५४	५,५०,००० ,,
१९५५–५६	६,००,००० ,,

६ लाख टन मांग के विपरीत भारत में सब मिलाकर ३,८०,००० टन रासायनिक खादों का उत्पादन सन् १९५५–५६ में हुआ था। इससे स्पष्ट है कि हमारी मांग और वर्तमान उत्पादन में प्रतिवर्ष २,२०,००० टन का अन्तर है, जिसकी पूर्ति रासायनिक खादों के आयात द्वारा की जाती है।

सिन्दरी में प्रतिदिन औसतन ३०० टन अमोनिया का उत्पादन होता है। दरी का नया कोक ओवन प्लाण्ट प्रतिदिन ६०० टन कोक बनाता है जो दरी की अपनी आवश्यकता से अधिक होता है। कोक के अतिरिक्त अन्य

अतिरिक्त उत्पादन भी कोक ओवन प्लाण्ट से होते हैं, जैसे कोलतार, मोटर बेनजाल, वेनजीन, टोलूइन तथा जेलीन आदि। निम्न तालिका से कोक ओवन बाई प्रोडक्टस के होने वाले प्रतिवर्ष के उत्पादन का अनुमान लग जायगा :—

	१९५४	१९५५	१९५६ (केवल तीन माह)
कोक (टन)	६८ ६१९	२,१२,१९४	२३,७८५
कोलतार (टन)	२,९२५	११,५८२	३,१६०
मोटर बेनजाल (गैलन)	—	१,०८,०९९	२८,१२८
बेनजीन	—	८५,५३८	४७,३४९
जेलीन	—	१,७३०	—
नैपथा	—	७,३०९	३,०४०

प्रतिदिन अमोनियम सलफेट के बनाने में लगभग ९०० टन चाक स्लज बाई प्रोडक्ट बन जाता है। यह अतिरिक्त उत्पादन सीमेन्ट बनाने के काम आता है। सिन्दरी के रासायनिक खाद के कारखाने के निकट ही एसोशिएटेड सीमेन्ट कम्पनी ने एक सीमेन्ट बनाने का कारखाना स्थापित किया है जो प्रतिदिन ६०० टन चाक स्लज सम्प्रति लेता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में रासायनिक खाद उद्योग के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है और सिन्दरी जैसे तीन नए कारखाने खोले जा रहे हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १०० करोड़ रु० की रकम नये रासायनिक खाद के कारखानों को खोलने के लिये रखी गई है। सन् १९६१ तक नाइट्रोजन की आवश्यकता ३७३ मिलिअन टन अथवा १८,६५,००० टन अमोनियम सलफेट होगी। फासफेटिक खादों की आवश्यकता द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक '०२ मिलिअन टन अनुमानित है।

रासायनिक खादों के उपयोग का विकासक्रम द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में इस प्रकार है :—

१९५६-५७	१,५०,००० टन
१९५७-५८	१,९०,००० ,,
१९५८-५९	२,४०,००० ,,
१९५९-६०	३,००,००० ,,
१९६०-६१	३,७०,००० ,,

फर्टिलाइजर्स मिशन सन् १९५३ के आरम्भ में भारत में रासायनिक खादों के प्रचार, प्रसार एवं सिन्दरी के विकास के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा संसार के दौरे पर भेजा गया था। मिशन का मत था कि सिन्दरी में ७० टन प्रतिदिन यूरिया बनाने वाला प्लाण्ट तथा ११० टन अमोनियम नाइट्रेट बनाने वाला प्लान्ट लगाया जाय अथवा ३५ टन यूरिया और १५० टन अमोनियम नाइट्रेट उत्पादन करने वाले प्लाण्ट लगाये जायँ।

इसके अतिरिक्त इस मिशन ने नये फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्टों के स्थापित करने के पहले निम्न तथ्यों पर भी ध्यान देने के लिये कहा—

(१) कोक ओवन गैस मिलने की नई सम्भावनाएँ (स्टील प्रोजेक्टस के पास)।

(२) आयल रिफाइनरी के बम्बई तथा विशाखापतनम में खोले जाने की सम्भावनायें।

(३) जल विद्युत केन्द्रों के निकट सस्ती जल विद्युत मिलने की सम्भावनायें।

सिन्दरी के कोक ओवन प्लाण्ट से १० मिलिअन क्यूबिक फुट गैस पैदा होती है जिसका उपयोग यूरिया और अमोनियम नाइट्रेट नामक खाद बनाने में किया जायगा। फर्टिलाइजर्स मिशन की सिफारिशों के आधार पर सिन्दरी में प्रतिदिन ७० टन यूरिया तथा ४०० टन अमोनियम नाइट्रेट बनाई जायगी।

सिन्दरी की इस विकास योजना को पूरा करने में सिन्दरी फर्टिलाइजर्स फैक्टरी को भी लगभग ४–५ करोड़ रु० का व्यय करना होगा। सर्वप्रथम पूर्वोक्त ऊर्वरक बनाने के लिये प्रतिदिन २५० टन सलफेट लीकर बनाना होगा।

सिन्दरी के विकास की दूसरी योजना को "वैलेन्सिग एक्सपैन्सन स्कीम" के नाम से जाना जाता है, जिसके अनुसार प्रयत्न किया जा रहा है कि पूरी कार्यक्षमता के अनुसार होने वाले उत्पादन और वर्तमान उत्पादन का अन्तर कम से कम हो सके।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में एक ओर वर्तमान रासायनिक खादों के उत्पादन को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है और दूसरी ओर तीन नये कारखाने खोले जा रहे हैं। आगामी सन् १९६१ तक प्रति-वर्ष २,५०,००० टन कुल मिलाकर रासायनिक खाद की आवश्यकता होगी। अतः लगभग १,७०,००० टन की कुल उत्पादन शक्ति वाले रासायनिक खाद के कारखानों को बनाने की आगामी पंचवर्षीय योजना में व्यवस्था की गई है। निम्नांकित तीन फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्ट आगामी पंचवर्षीय योजना काल में बनाये जायँगे :—

(i) नंगल प्रोजेक्ट (Nangal Project) :

फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्ट कमेटी की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने नंगल प्रोजक्ट बनाया है, जिसकी उत्पादन क्षमता ७०,००० टन (अमोनियम नाइट्रेट) प्रतिवर्ष होगी तथा साथ ही साथ यहाँ हेवी वाटर भी बनाया जायगा। इस प्रोजेक्ट का सारा कार्य लगभग समाप्त होगया है और नंगल फर्टिलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स प्राइवेट लिमिटेड नामक कम्पनी का निर्माण किया जा रहा है जो इस प्रोजेक्ट का कार्यभार लेलेगी। यह प्रोजेक्ट सन् १९५९–६० तक पूरा हो जायगा और इसको बनाने में लगभग २२ करोड रु० लगेगा।

(ii) रूरकेला फर्टिलाइजर प्रोजेक्ट (Rourkela Fertilizer Project) :

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में एक प्रोजेक्ट रूरकेला में बनाया जारहा है जो ८०,००० टन नाइट्रो लाइम स्टोन प्रतिवर्ष बनाएगा।

(iii) नेवेली प्रोजेक्ट (Navelli Project) :

नेवेली प्रोजेक्ट दक्षिण भारत में बनाया जा रहा है। नेवेली प्रोजेक्ट

लिगनाइट प्रोजेक्ट का एक हिस्सा है जो प्रतिवर्ष ७०,००० टन सलफेट नाइट्रेट और यूरिया की खाद बनायगा।

भारत में रासायनिक खादों के उद्योग का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। आगामी कुछ वर्षों में हमें रासायनिक खादों के सम्बन्ध में विदेशों पर निर्भर न रहना पड़ेगा।

भारत में रङ्ग-लेप उद्योग
(Indian Paints Industry)

रङ्ग-लेप उद्योग भारत का एक प्रतिष्ठित उद्योग है। इस समय देश में कम से कम २०० कारखाने रङ्ग-लेप, इनेमल और वार्निश तैयार कर रहे हैं। इन कारखानों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :—(१) विदेशी उत्पादकों के सहयोगी (कारखानों की संख्या ६), (२) व्यवस्थित भारतीय क्षेत्र (मुख्य कारखानों की संख्या ३६), और (३) अव्यवस्थित पैमाने के उत्पादक। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व इस उद्योग के व्यवस्थित क्षेत्र की अधिकतम उत्पादन क्षमता ४,००० टन प्रति मास थी। उस समय यह उद्योग मुख्यतः कलकत्ता बम्बई और लाहौर में केन्द्रित था। उस समय से अब तक निम्नलिखित ७ नये कारखाने खोले गये हैं :—

वर्ष	कारखानों की संख्या	स्थान
१९४७	१	कलकत्ता
१९४८	२	मद्रास, मोदीनगर
१९४९	१	बम्बई
१९५०	१	कानपुर
१९५१	२	कलकत्ता, नागपुर

रङ्ग-लेप उद्योग की वास्तविक उत्पादन क्षमता ३००० टन प्रति मास है।

रङ्ग-लेप उत्पादन के लिए जिन मूल-भूत वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनमें से अनेक भारत में प्रचुर परिमाण में पाई जाती हैं। इनमें खड़िया मिट्टी, चीनी मिट्टी, पेवड़ी, चपड़ा, राल, अलसी का तेल, अरण्डी का तेल, ग्लीसरीन, सफेद स्पिरिट, तारपीन आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त रङ्ग भी देश में ही आसानी से मिल जाते हैं। रङ्ग-लेपों में होने वाले अनेक सुधार तो वस्तुतः अच्छे कच्चे माल के ही स्वाभाविक फल होते हैं। इस उद्योग के आधुनिक ढङ्ग पर विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक नये कच्चे माल विदेशों से मँगाये जायँ। पिछले कुछ वर्षों में ऐसे कच्चे माल का आयात बहुत बढ़ा है। इस समय प्रति वर्ष लगभग १·८ करोड़ रु० का माल मंगवाया जा रहा है।

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त सरकार ने रङ्ग-लेप उद्योग के विकास के लिये निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये थे :—(१) संश्लिष्ट वस्तुओं, नाइट्रो सेलूलोज लेकर्स (Nitro cellulose lacquers) और विशेष औद्योगिक स्थानों पर प्रयुक्त होने वाले रङ्ग-लेपों का अधिकाधिक उत्पादन, (२) स्थानीय रूप से

मशीनें तैयार करना, (३) उस समय जो कच्चा माल आयात किया जाता था उसका देश में ही उत्पादन, (४) स्थानीय कच्चे माल का अधिकतम उपयोग, (५) अच्छी किस्म का माल तैयार करना तथा बाजार से घटिया माल को बाहर निकाल देना, और (६) निर्यात के लिए बाजार ढूँढ़ कर बेकार क्षमता को काम में लगाना।

प्रयोग की दृष्टि से तैयार रङ्ग-लेपों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है : (१) घरों, सार्वजनिक इमारतों, कारखानों, क्रेनों, पुलों, बाँधों आदि के लिए काम आने वाले, (२) परिवहन के साधनों (रेल के डिब्बों, ट्रामों, मोटरकारों, बसों, तथा व्यावसायिक गाड़ियों आदि) के लिए काम आने वाले, और (३) सामान्य औद्योगिक कामों में प्रयुक्त होने वाले (मशीनों, पंखों, फर्नीचर आदि के लिए रोगन और वस्त्र तथा बिजली उद्योगों के लिए वार्निशें)।

अगली सारिणियों में इस उद्योग को कच्चे माल संबंधी आवश्यकता की अभिवृद्धि और अच्छी किस्म की (विशेषतः परिवहन के साधनों और सामान्य औद्योगिक क्षेत्रों में काम आने वाली) सामग्री के उत्पादन में होने वाली प्रगति दिखलाई गई है :—

आयात १९५४–५५

वस्तु	परिमाण (टन)	मूल्य (रुपये)
कच्चा माल	१६,६७१	१,८०,८७,३३०
अधूरे अथवा पूरी तरह तैयार रंग-लेप का उत्पादन	३०२	८,४७,६९६

वस्तु	उत्पादन १९४९	१९५५
१. इमारतों आदि के लिये		
(क) सूखे डिस्टेम्पर	३७४ टन	१,२०० टन
(ख) चिकने	२१८ ,,	५०० ,,
(ग) कड़े रंग-लेप	७,४३९ ,,	६,३०० ,,
(घ) मिले-मिलाये रंग-लेप	१२,९३० ,,	९,५०० ,,
(ङ) प्राकृतिक राल युक्त हवा में सूख जाने वाली वार्निशें	६,०९,४६५ गैलन	७,००,००० गैलन
(च) प्राकृतिक राल-युक्त हवा में सूख जाने वाली इनेमल	२,७०,९०० ,,	५,०४,००० ,,
(छ) बने-बनाये रेड लेड पेन्ट	९३,०४० ,,	१,१२,००० ,,
(ज) एल्यूमिनियम पेन्ट	८२,००० ,,	१,५०,००० ,,
(झ) बने-बनाये ग्रेफाइट पेन्ट	६,०२० ,,	९,८०० ,,
(ञ) बिटूमिनस ब्लेक	१,१३,४८९ ,,	१,८०,००० ,,
२. परिवहन के साधनों के लिए		
(क) **संश्लिष्ट / अर्द्ध संश्लिष्ट इनेमल	७७,४०० गैलन	६,६०,००० गैलन
(ख) ***संश्लिष्ट / अर्द्ध संश्लिष्ट वार्निश	३६,२३६ ,,	२,६०,००० ,,
(ग) जहाजों की तह पर किये जाने वाले रंग-लेप	३४,८८० ,,	७२,००० ,,
(घ) ***नाइट्रो सेलूलोज लेकर्स (सहायकों सहित)	१६,२८० ,,	३,१७,००० ,,
३. सामान्य औद्योगिक क्षेत्रों के लिए		
(क) वार्निश पेन्ट	१,१४० टन	१,६०० टन
(ख) हील्ड वार्निश	२३,४३२ गैलन	२८,५०० गैलन
(ग) इन्स्यूलेशन वार्निशें	२०,३१८ ,,	२९,००० ,,
(घ) स्टोविंग वार्निशें	२१,१९४ ,,	५८,००० ,,
(ङ) स्टोविंग रोगन	१९,००० ,,	१,८०,००० ,,

नोट :—**इमारतों के लिए भी काम आने वाले।
***सामान्य औद्योगिक क्षेत्रों में भी प्रयुक्त होने वाले।

भारत में १६५० में २७,६४८ टन रंग-लेप का उत्पादन किया गया; १६५३ में यह ३२,०५२ टन और १६५५ में ३७,७५२ टन हो गया। इस उद्योग में होने वाला विकास मुख्य रूप से इन वस्तुओं में देखा जा सकता है :— इमारतों के लिए प्लास्टिक इमल्शन पेन्ट, हवाई जहाजों के लिए रोगन, रेफ्रीजरेटरों के लिए रंग, उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले लहरियेदार रंग-लेप, पोलीक्रोमेटिक रंग-लेप, बहुत अधिक ताप सह सकने वाले रंग-लेप, तलवार की म्यानों पर कीजाने वाली सुनहरी वार्निश, चमड़े पर कीजाने वाली सुनहरी वार्निश, बिजली के तारों के लिए अति संश्लिष्ट इनेमल, खाने के वर्तनों पर कीजाने वाली सुनहरी वार्निश तथा चमकने वाले रंग-लेपों की दिशा में भी तत्काल उत्पादन कार्य आरम्भ किया जा सकता है।

प्लास्टिक उद्योग (Plastic Industry)

वर्तमान समय में पश्चिमी देशों के आर्थिक जीवन में प्लास्टिक का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इससे जो वस्तुएँ बनाई जाती हैं वे बहुत ही सस्ती, हल्की, टिकाऊ और जंग न लगने वाली होती हैं। प्लास्टिक से बनाई जाने वाली चीजें विशेषतः ऐसी होती हैं जो घरेलू प्रयोग, बिजली के उद्योगों तथा अन्य प्रकार के उद्योगों में काम आती हैं। ये वस्तुएँ रेडियो की खोलियां, मशीनी खिलौने, ब्रुश, ग्रामोफोन के रेकार्ड, प्लास्टिक की चद्दरें, बटुए, थैले, किताबों की जिल्दें तथा सादा और खुरदरा चमड़ा जैसा दिखायी देने वाला प्लास्टिक, मोटरों, हवाई जहाजों, नकली दांतों, सिगरेट की रकाबियां, वार्निश, मीनाकारी स्वच्छता के उपकरण आदि हैं।

प्लास्टिक मुख्यतः दो प्रकार से बनाया जाता है :—(१) सांचों में दबाकर, अथवा (२) उसमें तरल पदार्थ डाल कर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने में होता है। पहली रीति के अनुसार इस्पात के गरम साँचों में प्लास्टिक बनने वाले कच्चे माल को रक्खा जाता है। इन साँचों को ऊंचे तापक्रम पर गर्म किया जाता है, और इन पर प्रति वर्ग इंच पर १ से ८ हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है। दूसरे तरीके से साँचों में तरल प्लास्टिक डालकर उसको खूब गरम किया जाता है और प्रति वर्ग इञ्च पर १० से ३० हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है।

इस उद्योग के लिये सेलुलोज तीन प्रकार से प्राप्त किया जाता है, : (१) लकड़ी, कपास, गन्ने, अथवा मक्की के डन्ठलों से इस प्रकार प्राप्त किये गये सेलूलोज को शोरे के तेजाब से मिलाकर नाइट्रो सेलूलोज प्राप्त किया जाता है, (२) सेलूलोज सोयाफली, दूध, सूखा हुआ रक्त आदि से भी प्राप्त किया जाता है, और (३) आजकल कारबोलिक एसिड, फिनौल और फोरमेल-डी-हाइड नामक वस्तुओं से भी प्लास्टिक बनाया जाता है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त प्लास्टिक बनाने में कई प्रकार के रंग और चिकने तेल आदि की भी आवश्यकता होती है।

१६५३ में विश्व में २१ लाख टन प्लास्टिक तैयार किया गया; इसमें से ६३% केवल अमेरिका में बनाया गया, ११% जर्मनी में, ६% ब्रिटेन में, शेष दुनिया के और देशों में बनाया गया। भारत में भी इसका उत्पादन द्वितीय

महायुद्ध के बाद आरम्भ हुआ है। यहाँ इस समय सांचों में दबाकर अथवा उनमें तरल प्लास्टिक डालकर उपयोग की कई वस्तुऐं बनाई जाती हैं। इसका विवरण नीचे की तालिका में दिया गया है।

प्रणाली	१९५५ में कारखानों की संख्या	वर्तमान क्षमता	उत्पादन १९५५
१. दबाकर डालना २. सांचे में तरल पदार्थ डालकर ढालना ३. छेद निकाल कर ढालना	४०	मशीनी क्षमता ११,२०० टन सबसे बड़े आकार का प्रेस १,००० टन मशीनी क्षमता ५५० औंस, सबसे अधिक आकार १२ औंस	२३ लाख ग्रोस वस्तुएँ
पी. वी. सी. केबिल, तार और अन्य लचीली वस्तुएँ	३	८६ लाख गज	६२ लाख गज
पी. वी. सी. चादरें सादी	१	१२ लाख पौंड	४ लाख पौंड
पौलीथीन फिल्म और चपटी नालियाँ	३	१४ ,, ,,	९ ,, ,,
४. कागज, कपड़ा आदि के अस्तर पर चढ़ाना	१	१० ,, ,,	२·६ ,, ,, १७·७ लाख गज
५. परत लगाना चमड़े जैसा कपड़ा पी. वी. सी. चमड़े जैसा कपड़ा नाइट्रो सैलूलोज	६	५० लाख गज	८·१ ,, ,,

प्लास्टिक उद्योग के मुख्य कच्चे माल के रूप में जिन कृत्रिम रालों और ढलाई के चूरे का प्रयोग होता है—यूरीया, फारमेल्डी-हाइड, पोलिस्टाइरीन, पौलीथीन, सेलूलोस एसीटेट, एसीटेट बुटाइरेट, सैलूलाइट, एक्राइलिक, नाइलन, मोनोफिल और स्टारीन बुटाडीन—वे लगभग ५,००० टन के विदेशों से मंगाये जाते हैं। १९५४-५५ में भारत में १८५ लाख रुपये के मूल्य का कच्चा माल विदेशों से आयात किया गया।

सीमेंट उद्योग (Cement Industry)

पोर्टलैंड सीमेन्ट (Portland Cement) इमारतें बनाने का ऐसा मसाला है जिसका चलन हुए अभी अधिक दिन नहीं हुए। १८२४ में इङ्गलैंड के लीड्स नामक स्थान के एक राज ने जिसका नाम जोसेफ एस्पडिन था, वर्तमान सीमेन्ट से मिलते-जुलते एक मसाले का आविष्कार किया। कंकड़-पत्थर आदि को पीसकर बनाये जाने वाले साधारण ढंग के चूने और सीमेन्ट का प्रयोग तो सदियों से होता आया है।

पोर्टलैण्ड सीमेन्ट बनाने की विधि संक्षेप में इस प्रकार है:—चूने के पत्थर (अथवा केल्शियम युक्त किसी अन्य पदार्थ जैसे खड़िया, मिट्टी, संगमरमर अथवा समुद्री सीपियों) की मिट्टी को उचित परिमाण में मिलाकर चूरा कर लेते हैं। फिर उसे ऊँचे तापमान (प्राय: १४०० अंश सेन्टी० से १५०० अंश सेन्टी, तक) पर घूमने वाली अथवा स्थिर मिट्टी में भूनते हैं। इस प्रकार तैयार होने वाली वस्तु को क्लिकर (Clinker) कहते हैं। इसे ठन्डा करके बारीक पीस डालते हैं। इसमें थोड़ा सा जिप्सम (Gypsum) मिला देते हैं। इस प्रकार पोर्टलैण्ड सीमेन्ट बन कर तैयार हो जाता है जो आज मजबूती और आकर्षण, दोनों ही दृष्टियों से इमारतों के बनाने में जादू का काम करता है। इसे प्लास्टिक के समान किसी भी रूप में ढाला जा सकता है। इसकी सहायता से ठोस अथवा पोले किसी भी प्रकार की वस्तुएं तैयार की जा सकती हैं। एक ओर इससे सुन्दर बेल-बूटों वाली सुन्दर जालियाँ बनाई जाती हैं तो दूसरी ओर भारी-भारी बांध और लम्बे-चौड़े हवाई अड्डे अथवा सड़कें बनाई जाती हैं।

सीमेन्ट बनाने की दो प्रमुख विधियाँ है :— (१) गीली विधि, और (२) सूखी विधि।

भारत में अधिकतर गीली विधि से ही सीमेन्ट बनाया जाता है। इस विधि से कच्चे माल को उपयुक्त परिमाण में मिलाकर बारीक पीस डालते हैं। फिर उसे पानी में गाढ़ा घोल लेते हैं।

गीली विधि में सूखी की अपेक्षा ईंधन अधिक खर्च होता है, परन्तु विभिन्न कच्चे माल भली प्रकार और सरलता से मिलकर एक हो जाते हैं। इधर सूखी विधि से भी विभिन्न प्रकार के कच्चे माल को मिलाकर एक कर देने की अच्छी प्रणालियाँ निकल आई हैं।

सीमेन्ट बनाने में कई कच्चे पदार्थों की आवश्यकता होती है। उनमें मुख्य चूने का पत्थर, चिकनी मिट्टी, कोयला और जिप्सम हैं। अनुमान लगाया गया है कि १ टन सीमेन्ट तैयार करने में १.६ टन चूने का पत्थर, ४% जिप्सम और ३८% कोयले की आवश्यकता होती है। इस अनुपात के कारण सीमेन्ट का उद्योग अधिकतर चूने के पत्थर वाले स्थानों के निकट स्थापित किया जाता है।

सीमेन्ट बनाने के लिये भट्टियों में जलाने को उच्चकोटि का कोयला ही उपयुक्त समझा जाता है जिसमें कम से कम राख के अंश हों। अत: संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में सीमेन्ट उद्योग सबसे अधिक पूर्वी पेन्सिलवेनिया में लेहाई नदी की घाटी में केन्द्रित है।

सीमेन्ट बनाने के लिए जिप्सम की भी आवश्यकता पड़ती है।

उत्पादन क्षेत्र :

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में सीमेन्ट बनाने का उद्योग बड़ा विकसित है। यहाँ सीमेंट के कारखाने लेहाई नदी की घाटी में पूर्वी पेन्सिलवेनिया में हैं, जहाँ से देश के उत्पादन का लगभग ७०% सीमेंट मिलता है। यहाँ उत्तम किस्म के चूने के पत्थर, शेल तथा कोयला मिल जाता है और न्यूयार्क तथा फिलाडेलफिया की मांग के क्षेत्र भी निकट हैं। अब यहाँ सिमेंट केलिफोर्निया, न्यूयार्क, मिशीगन,

ओहियो आदि राज्यों में भी बनाया जाता है। यहाँ १६०० में १७० लाख बैरल से बढ़ कर १६५४ में सीमेंट का उत्पादन २८०० लाख बैरल हो गया।

सीमेंट के अन्य उत्पादक इंगलैंड, जर्मनी, बेल्जियम, रूस, फ्रांस, इटली आदि हैं। इंगलैंड और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका मिलकर विश्व के उत्पादन का लगभग ७०% सीमेंट देते हैं।

भारत में सीमेंट का उद्योग :

भारत में संगठित ढंग से पहली बार सीमेन्ट तैयार करने का श्रेय मदरास को है। वहाँ १६०४ में मुख्यत: समुद्री सीपियों से सीमेन्ट बनाने का कारखाना खोला गया। परन्तु यह कारखाना चला नहीं। इसके बाद दूसरा प्रयत्न १६१६ में पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में किया गया। यहाँ इण्डियन सीमेन्ट क० लि० ने अपना कारखाना स्थापित किया। इसमें स्थिर खड़ी भट्टियां लगाई, गईं परन्तु शीघ्र ही इनके स्थान पर घूमने वाली भट्टियां लगा दी गईं। यहां ४०,००० टन सीमेन्ट प्रतिवर्ष बनता था। इसी समय राजस्थान में बूंदी, और मध्यप्रदेश में कटनी में भी सिमेंट के कारखाने स्थापित किये गये जिनमें उत्पादन १६१४-१६ में आरभ हुआ। इसकी सम्मिलित उत्पादन क्षमता १ लाख टन से कुछ ही कम थी।

प्रथम महायुद्ध से भारत में सीमेन्ट उद्योग को बडा प्रोत्साहन मिला और १६२३ तक देश में सीमेन्ट उत्पादन की क्षमता ८५,००० टन वार्षिक से बढ़कर ५·८ लाख टन वार्षिक तक जा पहुँची। और इस बीच सीमेंट के ७ नये कारखाने खुले। परन्तु यह तेज और प्रतिवन्धहीन विस्तार योजनापूर्वक नहीं हुआ और इसका उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ा। फिर प्रथम महायुद्ध के बाद विदेशों से सीमेन्ट का पुनः आयात होने लगने के कारण १६२४ के आसपास भारतीय सीमेन्ट उद्योग के आगे संकट आ उपस्थित हुआ। विभिन्न कम्पनियों द्वारा तैयार किये जाने वाले सीमेन्ट के मूल्य गिराये गये और एक समय तो विक्रय मूल्य लागत से भी कम हो गये। परन्तु भारतीय सीमेन्ट उद्योग के सौभाग्य से उस समय देश में एक ऐसा व्यक्ति उपस्थित था जिसने आगे आकर इसे मरने से बचा लिया। वह व्यक्ति था स्वर्गीय श्री० एफ० ई० दीनशा। उन्हीं के प्रयत्न से इन्डिया सीमेन्ट मेन्युफेक्चरर्स एसोसियेशन, कंक्रीट एसोसियेशन आफ इण्डिया, सीमेन्ट मारकेटिंग कं० आफ इन्डिया लि० की स्थापनायें क्रमशः १६२६, १६२७ और १६३० में हुईं और यह उद्योग संकट से पार होगया। औद्योगिकों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बहुत सीमा तक समाप्त होगई और कंक्रीट एसोसियेशन आफ इण्डिया ने निःशुल्क सहायता सलाह देकर जनता को सीमेन्ट के लाभ समझाने आरम्भ किये। परन्तु फिर भी कहीं १६३६ में जाकर उद्योग की दशा कुछ स्थिर हुई, जबकि तत्कालीन ११ कारखानों में से १० के हिस्सेदारों ने मिलकर दी एसोसियेटेड सीमेन्ट कं० लि० नामक एक नया संगठन बनाना मंजूर कर लिया।[1]

---

१. ये कारखाने क्रमशः ये थे—मध्यप्रदेश में कटनी, कैमूर और यूनाइटेड कम्पनियाँ; मद्रास में मधुकरी सीमेंट फैक्टरी और बेजवाड़ा का कारखाना; बिहार में खालारी; सौराष्ट्र में पोरबन्दर और ओखा के कारखाने; राजस्थान में बूंदी; पंजाब में सूरज और ग्वालियर की फैक्ट्री।

इस कम्पनी के निर्माण से इस उद्योग का विकास संगठित ढंग पर होने लगा। आरम्भ में इनकी सम्मिलित उत्पादन शक्ति ६,६०,००० टन वार्षिक थी किन्तु दो ही वर्षों में यह ११,००,००० टन होगई। १६३७ के वाद देश में सीमेन्ट उद्योग का निरन्तर विस्तार होता गया।

१६३८ में डालमिया समूह के ५ कारखानों ने—सिंध में शांतिनगर और दालमियादाद्री; मद्रास में दालमियापुरम; बिहार में दालमिया नगर और पंजाब में दंदोत जिनकी उत्पादन क्षमता ५,००,००० टन थी—ए०सी०सी० कम्पनियों से तीव्र प्रतियोगिता करना आरम्भ कर दिया। १६४० में इन दोनों समूहों में समझौता हो गया और इन दोनों के उत्पादन की केन्द्रीय बिक्री के लिए सीमेंट मारकेटिंग कम्पनी फिर कार्य करने लगी।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो जाने पर कच्चे माल की कीमत बढ़ने से सीमेंट की कीमत बढ़ गई। निर्यात और देश की मांग में भी क्रमशः वृद्धि हुई और युद्धकाल में मध्य और सुदूर पूर्व के लिये भारत से सीमेंट का निर्यात किया जाने लगा। युद्ध की समाप्ति पर सरकारी मांग में कमी हुई, किंतु देश में वैयक्तिक रूप से सीमेंट की माँग बढ़ती गई। फलतः १६४७ तक सीमेंट के कारखानों की संख्या २३ और उनकी स्थापित उत्पादन क्षमता २६ लाख टन हो गई।

अगस्त १६४७ में देश का विभाजन होने पर १८ कारखाने जिनकी कुल स्थापित उत्पादन क्षमता २१·१५ लाख टन थी भारत में रहे और ५ कारखाने पाकिस्तान को चले गये। १६४८ में डालमिया सीमेंट समूह और ए०सी०सी० समूह में कीमतों के विषय में मतभेद होने से दोनों समूह फिर से अलग-अलग हो गये हैं।

देश में सीमेंट की मांग अब इतनी अधिक बढ़ गई कि कारखानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाई गई और १६५०–५१ के अंत तक भारतीय कारखानों की उत्पादन क्षमता में १० लाख टन की और वृद्धि की गई। इस वर्ष ३१·६ लाख टन सीमेंट तैयार किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सीमेंट उत्पादन का लक्ष्य ४८ लाख टन रखा गया था। यह उत्पादन १६५५ में ४५ लाख टन का हुआ। १६५५–५६ में स्वीकार की गई ११ नये कारखानों तथा वर्तमान १२ कारखाने के विस्तार एवं आधुनीकरण की योजनाओं के पूर्ण होने पर भारत में सीमेंट की वार्षिक उत्पादन क्षमता ७० लाख टन हो जायगी। द्वितीय योजना में यह लक्ष्य १०० लाख टन का रखा गया है; इसके लिए १२ नये कारखाने और खोले जायेंगे।

उद्योग का स्थापन :

भारतीय सीमेंट के उद्योग को प्रकृति की ओर से बड़ा लाभ प्राप्त है। उत्तम प्रकार के चूने का पत्थर भारत के कई भागों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है, किन्तु अधिकतर विंध्याचल का चूने का पत्थर ही काम आता है क्योंकि यहाँ के पत्थर में चिकनी मिट्टी की मात्रा पर्याप्त होती है। अन्य स्थानों के

पत्थरों में चूनेदार पत्थर अथवा स्थानीय धरातल की सिल्ट होती है। सामान्यतः चूने का पत्थर रेलवे लाइनों के निकट ही होता है और इसीलिए सीमेंट के कारखाने चूने के पत्थर की खानों के पास ही स्थापित हो गये हैं। शायद ही कोई फैक्ट्री चूने के पत्थरों की खानों से २० या ३० मील की दूरी से अधिक होगी। ग्वालियर (बानमोर) की सीमेंट फैक्ट्री चूने का पत्थर रेल द्वारा केवल १३ मील की दूरी से मंगाती है। सौराष्ट्र में पोरबन्दर की फैक्ट्री ३२ मील की दूरी से चूने का पत्थर मंगाती है। मध्य प्रदेश के कटनी के सीमेंट के कारखाने की पूर्ति उसके पास के ही चूने के पत्थरों से होती है; वैसे बढ़िया पत्थर २० मील की दूरी से मंगाया जाता है। बिहार में जालपा और दालमियानगर की फैक्ट्रियाँ चूने का पत्थर रोहतास की पहाड़ियों से प्राप्त करती हैं। दूसरे अधिकांश कारखाने चूने के पत्थर अपेक्षाकृत बहुत ही कम दूरी से मंगाते हैं।

सीमेंट बनाने के लिए दूसरा मुख्य पदार्थ कोयला है। कोयले की दृष्टि से अधिकतर कारखाने असुविधा में रहते हैं। मुख्यतः कोयला बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। सीमेंट की भट्टियों में उच्च कोटि का कोयला ही काम में आता है जिनमें कम से कम राख का अंश हो। अतः वे कारखाने जो बिहार अथवा मध्य प्रदेश में कोयले की खानों के निकट वर्तमान हैं शक्ति उत्पन्न करने के लिए निम्न श्रेणी का कोयला प्रयोग कर सकते हैं, किंतु फिर भी कम से कम आधा कोयला उन्हें बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से मंगाना पड़ता है। मद्रास के कारखानों को छोड़ कर सभी जगहों पर यही कोयला काम में लाया जाता है।

जिप्सम भी सीमेंट बनाने में काम आती है। यह जोधपुर, बीकानेर डिविजनों से प्राप्त की जाती है किन्तु कारखानों तक लाने में काफी व्यय हो जाता है। सौराष्ट्र के कारखाने जिप्सम की पूर्ति जामनगर से करते हैं। बूंदी के कारखाने में तो जोधपुर से ही जिप्सम मंगाकर काम में लिया जाता है।

जहाँ तक बाजारों का प्रश्न है देश के भीतरी भागों में छोटे-शहरों को यह लाभ है कि उन्हें सीमेंट के कारखानों को कम भाड़ा देकर ही सीमेंट मिल जाता है और उन्हें बाहर से आयात हुए सीमेंट पर अधिक व्यय नहीं करना पड़ता; किंतु सीमेंट के मुख्य बाजार बन्दरगाहों पर ही स्थित हैं। इस विचार से भारत की अधिकांश सीमेंट की फैक्टरियाँ असुविधा में रहती हैं। कटनी के कारखाने बम्बई और कलकत्ता से क्रमशः ६८० और ६७० मील दूर हैं। सोन घाटी के सीमेंट के कारखाने कलकत्ता से ३७० मील दूर हैं। बूंदी बम्बई से ६१० मील है। सौराष्ट्र की फैक्ट्रियाँ बम्बई से २६० मील दूर हैं।

सभी परिस्थितियों को लेते हुए मध्य प्रदेश और बिहार सीमेंट उद्योग के लिये अनुकूल क्षेत्र हैं। यहाँ चूने का पत्थर और कोयला उचित दूरी पर ही मिल जाते हैं और बंगाल बिहार के औद्योगिक क्षेत्रों के बाजार भी यहाँ से अधिक दूर नहीं पड़ते। कोशी, महानदी और दामोदर नदियों की घाटियों में विकसित होने वाली तीनों बहुमुखी योजनाएँ भी निकट हैं।

सीमेंट उद्योग के केन्द्र

क्षेत्र	संख्या	केन्द्र
बिहार	६	दालमियानगर, जापला, चैबासा, कल्यानपुर, खलारी, सिन्द्री।
मध्य प्रदेश	३	कैमोर, कटनी, ग्वालियर।
मद्रास और आंध्र	६	मधुकराई (कोयम्बटूर), बेजवाड़ा, मङ्गलागिरी, डालमियापुरम्, तिरुनलवैली, शहाबाद।
पंजाब	३	सूरजपुर, दालमियादाद्री, अमृतसर।
राजस्थान	२	सवाई माधोपुर, बूंदी।
बम्बई	४	ओखामंडल, जामनगर, द्वारका, सिवालिया।
मैसूर	१	बंगलौर।
केरल	१	कोट्टयाम।
उड़ीसा	१	राजगंगपुर।
पश्चिमी बंगाल	१	चौवीस परगना।
उत्तर प्रदेश	१	मिर्जापुर।

इस समय देश में २९ कारखाने हैं जिनमें लगभग ३३,००० मजदूर काम करते हैं। इस उद्योग में २९ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है। देश में सीमेंट का उत्पादन निम्न तालिका में बताया गया है:—

सीमेंट का उत्पादन

वर्ष	सीमेंट (००० टन)	सीमेंट की चादरें (००० टन)
१९४६	१५४२·०	२५·२
१९४७	१४४७·१	—
१९५०	२६१२·४	८६·४
१९५२	३५३७·६	८७·६
१९५४	४३६९·०	७९·२
१९५५	४४१६·०	१०३·२

देश में अब उत्पादन बढ़ने से सीमेंट का आयात कम होता जा रहा है। १९४८–४९ में विदेशों से १,४७,७०४ टन सीमेंट आयात किया गया, १९५०–५१ में यह मात्रा १८,६६४ टन; और १९५२–५३ में केवल १२,६०० टन।

हमारे यहाँ से थोड़ा निर्यात ईराक, लङ्का और इंडोनेशिया को होता है।

सीमेंट उद्योग के आकार को ही देख कर देश की औद्योगिक और सामाजिक प्रगति का पता लगाया जा सकता है। नीचे की तालिका से पता लगता है कि भारत तथा अन्य देशों में प्रति व्यक्ति पीछे कितना सीमेंट खर्च होता है:—

	पौंड
अमेरिका	५१६
ब्रिटेन	४११
स्वीडन	७४०
बेलजियम	७१७
डेनमार्क	४६०
जापान	९०
भारत	२७

चीनी मिट्टी के बर्तनों का उद्योग (Potteries)

चिकनी मिट्टी से बरतन बनाने का उद्योग बहुत प्राचीन है। सबसे पहले इसका जन्म लगभग १००० वर्ष से भी पूर्व चीन में हुआ। वहाँ इसके बनाने में कैओलीन (Kaolin) नामक मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। यह उद्योग प्राचीन काल में बैबीलोनिया, मिस्र और भारत में भी किया जाता था। विश्वास किया जाता है कि चीनी मिट्टी के बरतन तथा छोटी मूर्तियाँ पहले-पहल जापान में ईसवी की प्रथम सदी में बनीं। ईसवी की १३वीं सदी तक जापान में चीनी वर्तनों की निर्माण की प्रगति अत्यन्त मंद रही। इसी समय कातीसीरो नामक जापानी कुंभकार चीनी मिट्टी बनाने की गुप्त विधि सीखने चीन गया। इसके बाद से ही वहाँ चीनी मिट्टी का सामान बनाने की अधिक प्रगति हुई है। १७वीं शताब्दी में ब्रिटेन में चीनी मिट्टी का सामान बनाने का उद्योग इतनी पूर्णता पर पहुँच गया जितना यूरोप में और कहीं नहीं पहुँचा। ब्रिटेन में स्टैफर्डशायर के कुम्हार सबसे अच्छे चिकनी मिट्टी के वर्तन बनाते थे।

वर्तमान युग में इस उद्योग ने काफी उन्नति की है। यह उन्नति केवल निर्माण-प्रणाली में ही नहीं वरन् नई डिजायनों का माल तैयार करने में भी हुई है। चीनी मिट्टी के उद्योग में यंत्रों का प्रयोग अन्य उद्योगों की अपेक्षा कम होता है क्योंकि :—

(१) चीनी मिट्टी के वर्तनों आदि के उद्योग में प्रयोग होने वाले पदार्थों में सरलता से मशीनों का प्रयोग नहीं हो पाता।

(२) चीनी मिट्टी के कारखानों में प्राय: विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ (ईंटें, टाइल, तीव्र गर्मी सह सकने वाली ईंटें, इन्सूलेटर आदि) बनाई जाती हैं जो अन्य उद्योगों में नहीं होता।

(३) चीनी मिट्टी के उद्योग में इंजिनीयर बहुत थोड़े होते हैं।

उत्पादित वस्तुएँ :

इस उद्योग में ऐसी मिट्टियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें लोहा नहीं होता। इस उद्योग की बनी चीजों का बहुत व्यापक प्रयोग होता है। एक ओर वे मकानों के निर्माण तथा भवन-सज्जा में काम आती हैं, दूसरी ओर धातुओं के निर्माण अथवा विद्युत उपयोग के इन्सूलेटरों के लिये, रासायनिक पदार्थ, स्वच्छता उपकरण (Sanitary wares), पानी और गंदगी निकालने की

नालियों के निर्माण में काय आती हैं। चीनी मिट्टी से ही खपरैलें (tiles) कप-तश्तरियाँ (Crockery) तीव्र गर्मी सहने वाली ईंटें और चमकदार टाइलें भी बनाई जाती हैं।

कच्चा माल :

चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए चिकनी मिट्टी (China clay) या कैओलीन मिट्टी की ही अधिक आवश्यकता होती है। इस मिट्टी को सरलता से ३०००° फा० तक गरम किया जा सकता है। यह उद्योग अधिकतर मिट्टी के क्षेत्र के पास ही केंद्रित होता है।

भट्टियों में जलाने के लिए काफी मात्रा में कोयले की भी आवश्यकता पड़ती है। रासायनिक पदार्थ—फैल्सपार, क्वार्ट्ज, आदि की भी आवश्यकता बर्तनों पर चमक और मजबूती लाने के लिये होती है।

इस उद्योग के बने माल काफी भारी होते हैं अतः उन्हें परिवहन के लिए सस्ते और सुरक्षित साधनों की आवश्यकता होती हैं। इसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार काफी बढ़ा-चढ़ा होता है क्योंकि कांच के बर्तनों से यह अधिक सस्ते और मजबूत होते हैं।

उद्योग के क्षेत्र :

यह उद्योग मुख्यतः ब्रिटेन, सं० राष्ट्र अमेरिका, चीन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, जकोस्लोवाकिया, बेल्जियम और भारत में किया जाता है

ब्रिटेन :

ब्रिटेन में इस उद्योग का सबसे बड़ा क्षेत्र उत्तरी स्टेफर्डशायर है जहाँ सारे देश के चीनी मिट्टी वर्तन उद्योग के ७२ प्रतिशत मजदूर काम करते हैं। इसके अतिरिक्त डरबी और लन्दन भी मुख्य क्षेत्र हैं।

उत्तरी स्टेफर्डशायर कोयला क्षेत्र में यह उद्योग इतने व्यापक रूप से फैला है कि इस क्षेत्र को ही 'Potteries' कहने लगे हैं। इस क्षेत्र में खेती की सुविधायें प्राप्त न होने से लोगों का ध्यान इस उद्योग की ओर आकर्षित हुआ था। स्थानीय मिट्टी इस उद्योग के लिये उपयुक्त है। डरबीशायर क्षेत्र से मिट्टी के वर्तनों पर पालिश करने के लिये काफी सीसा प्राप्त हो जाता है। पूर्वारम्भ की सभी सुविधायें इस उद्योग को इस क्षेत्र में प्राप्त हैं। इस क्षेत्र में वेजवुड परिवार (Wedgewood Family) सारे संसार में इस उद्योग के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ कुशल श्रमिकों की अधिकता है। डारसेट और डेवोन से विशेष प्रकार की मिट्टी लाई जाती है। कार्नवल से चीनी मिट्टी (China Clay) मंगाई जाती है। ट्रेन्ट और मरसी नहर के द्वारा सामान का सस्ता यातायात होता है। इस नहर द्वारा कार्नवल से इसका सीधा सम्बन्ध है। इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र स्टाक, वर्सलेम, हैनली, टन्सटाल, लोङ्गटन और फेन्टन हैं। चेशायर से रासायनिक पदार्थ मंगाये जाते हैं। इन सब केन्द्रों में कुल मिलकर ३०० कारखाने हैं। १०५ कारखाने स्टोक में हैं। सेनीटरी के सामान किलमारनोक और वारहेड में वनाये जाते हैं।

जर्मनी :

संसार में चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने में इस देश का दूसरा स्थान है। जिकाऊ क्षेत्र में स्थित हार्ज पठार पर कई प्रकार के रासायन और लवण पाये जाते हैं। मिट्टी भी पर्याप्त मिलती है। यहाँ ड्रेस्डन, मैसन, बर्लिन, सैक्सोनी इत्यादि केन्द्र बर्तन बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ यह उद्योग १८ वीं शताब्दी से ही किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र :

इस देश का उत्पादन थोड़ा है लेकिन माँग बहुत अधिक है। यहाँ केवल अच्छे प्रकार के बर्तन ही बनाये जाते हैं। ट्रेन्टन, ओहियो और ईस्ट लिवरपूल में इस उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं। कुशल श्रमिकों के सहारे ही यहाँ यह उद्योग चलाया जा रहा है। जैनेसविले और अन्य केन्द्रों में इस उद्योग के लिए एपैले-शियन पर्वतों से कोयला और स्थानीय भागों से चिकनी मिट्टी प्राप्त हो जाती है। ७०% चिकनी मिट्टी जार्जिया और २०% द० कैरोलिना तथा शेष पेन्सिल-वेनिया से प्राप्त की जाती है। यहाँ लैनोक्स जाति के बर्तन बहुत बनाये जाते हैं।

इस उद्योग के अन्य क्षेत्र फ्रांस में लिमोजेज और पेरिस; हॉलैंड में डेलफट; इटली में मेजोरिका; चीन में हांकाऊ और जापान में टोकियो हैं।

भारत में चीनी मिट्टी के बर्तनों का उद्योग :

भारत में चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए उपयुक्त मिट्टी राजमहल की पहाड़ियों में तथा जबलपुर, रानीगंज और कुमारधूबी में मिलती है। बर्तनों पर चमक लाने के लिए हड्डी की राख, चकमक पत्थर और फैल्सपार निकटवर्ती क्षेत्रों में ही मिल जाते हैं।

भारत में आधुनिक ढंग का पहला कारखाना १८६० में रानीगंज में बर्न एन्ड कम्पनी ने स्थापित किया तथा दूसरा कारखाना भी इसी वर्ष बिहार में भागलपुर जिले में पत्थरघट्टा नामक स्थान पर खोला गया. किंतु यह शीघ्र ही बंद हो गया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बंगाल पॉटरीज लि० की स्थापना कलकत्ते में हुई। चीनी के बर्तनों की माँग बढ़ जाने से शीघ्र ही अन्य कारखाने भी स्थापित किये गए। पत्थर का सामान बनाने का पहला कारखाना तेलगाँव के पैसा फंड संस्था ने सौराष्ट्र में थान नामक स्थान पर थान पॉटरीज के नाम से स्थापित किया। यहाँ बने चीनी मिट्टी के अमृतबान बड़े लोकप्रिय हुए। अत: बाजार की बढ़ती हुई माँग पूरी करने के लिए ग्वालियर पॉटरीज, ग्वालियर तथा दिल्ली और बंगाल पॉटरीज कलकत्ता ने चीनी के अमृतबान बनाने आरंभ कर दिये। द्वितीय महायुद्ध में आयात कम हो जाने से इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला और कई छोटे २ कारखाने स्थापित हो गये। बड़े कारखानों ने भी अपना उत्पादन बढ़ा दिया और कइयों ने क्रॉकरी तथा बिजली के इंस्युलेटर बनाने आरंभ किये।

इस समय भारत में बर्तन बनाने वाले कुल ६० कारखाने हैं, इनमें मुख्य ये हैं :—

कारखाने	केन्द्र	उत्पादन
१. बंगाल पॉटरीज लि०	कलकत्ता	क्रॉकरी और इंस्युलेटर।
२. बर्न एंड कम्पनी.	रानीगंज ; जबलपुर	नालियों के पाइप, स्वच्छता उपकरण।
३. मैसूर स्टोनवेअर पाइप्स एं. पॉटरीज लि०	बंगलोर	नालियों के पाइप।
४. परशुराम पॉटरीज वर्क्स	बीकानेर, थानागढ़, नजरबाद	क्रॉकरी, टाइलें, स्वच्छता उपकरण, पत्थर का सामान
५. ईस्ट इण्डिया डिस्टीलरी एन्ड सुगर फैक्ट्री लि०	रानीपेठ	तेजाब के अमृतबान।
६. कुंडारा फैक्ट्री	तिरवांकुर	क्रॉकरी
७. हिंदुस्तान पॉटरीज लि०	रूपनारायनपुर	चीनी के मोटे पाइप।
८. रिलाइन्स फाइर ब्रिक्स एंड पॉटरीज लि०	बम्बई	मिट्टी के बर्तन, स्वच्छता उपकरण, तेजाब के बर्तन।
९. स्टोनवेअर पाइप्स लि०	त्रिवेल्लोर (मद्रास)	चीनी के मोटे पाइप।

कलात्मक बर्तन :

भारत में कुटीर उद्योग कलात्मक बर्तन भी तैयार करते हैं। ये बर्तन चाक पर गीली मिट्टी दबा कर या मोड़कर बनाये जाते हैं। दीनापुर के लाल पालिश वाले बर्तन, कोटा व अमरोहा के काली तथा सुनहरी पोलिश वाले बर्तन, मद्रास के बिना पालिश वाले तथा पंजाब के पालिश वाले बर्तन मुख्य हैं। चुनार के बर्तन तथा खिलौने ; खुरजा के गुलदस्ते, फूल पत्ती कढ़े बर्तन, पानी के जग, पाऊडर के बर्तन, तश्तरियाँ, क्रॉकरी आदि तथा निजामाबाद के और लखनऊ के बर्तन सुन्दर डिजाइनों, हल्केपन और चमकीले होने के कारण बड़ी मांग में रहते हैं।

टाइलें अधिकतर समस्त मलाबार तट और हुगली तट पर नदियों द्वारा लाई गई पुरानी रेत से बनाये जाते हैं। पहले मिट्टी को पीसा जाता है और फिर हैंडप्रैसों या साँचों में ईंटों के रूप में बना लिया जाता है।

इन ईंटों को निरन्तर जलने वाले भूमिगत भट्टों में पकाया जाता है। इन स्थानों के कारखानों के अतिरिक्त टाइलें मध्य प्रदेश के बोगरा; उड़ीसा के जैपुर; और मद्रास के राजमहेन्द्री नामक स्थानों में भी बनाई जाती हैं।

अगली तालिका में भारत में तैयार होने वाले विभिन्न प्रकार के चीनी मिट्टी के बर्तनों का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	चीनी के बर्तन	स्वच्छता के उपकरण	पत्थर का सामान	चीनी की पालिश वाली टाइलें	तापसह ईंटें	इंस्युलेटर
१९४८	४४८ टन	१२२ टन	१३०० टन	—	—	२,१६,१००
१९५०	६,०६० ,,	१,७८८ ,,	२६,४०० ,,	९२,४००	२,३६,४००	१४,५३,०००
१९५३	१०,४४० ,,	१,३३२ ,,	३३,६०० ,,	३,७४,४००	२,२८,०००	२९,५३,०००
१९५५	१०,२२४ ,,	२,४८४ ,,	३९,६०० ,,	३,७६,८००	३,७२,०००	४५,१६,०००

काँच का उद्योग (Glass Industry)

कांच मुख्यतः बालू मिट्टी से बनाया जाता है किन्तु इसके निर्माण में सोडा एश, चूना, टूटे हुए काँच के टुकड़े, सोडियम सल्फेट, पोटेशियम कारबोनेट, शोरा, सुहागा, बोरिक एसिड, सीसा, सुरमा, संखिया और बेरियम मिलाये जाते हैं। इनके मिश्रण से उत्पादित काँच मजबूत, टिकाऊ अच्छी प्रकार पिघलने वाला होता है। इन सब पदार्थों को बालू मिट्टी के साथ मिलाकर बहुत ऊंचे तापक्रम (२५०० से ३००० फा०) पर गर्म किया जाता है। यह पदार्थ पिघल कर चिपचिपा और बेरवेदार हो जाता है। ठडा होने पर इसे किसी भी शक्ल में बनाया जा सकता है। काँच बनाने के लिये ऐसे बालू की आवश्यकता होती है जिसमें सिलिका के कण अधिक किन्तु लोहे के कण कम हों।

इस उद्योग के स्थानीयकरण पर कच्चे माल का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि कच्चे माल का मूल्य उत्पादन व्यय में १० से १५% तक ही होता है, अतएव यह उद्योग बाजारों के निकट ही अधिक पनपता है क्योंकि इसके कच्चे माल भारी होते हैं तथा तैयार माल हल्के होने के साथ-साथ दूर भेजने में टूटने का खतरा रहता है और किराया भी अधिक लगता है। अतएव यथा सम्भव काँच के कारखाने माँग के निकट वाले क्षेत्रों में ही अधिक स्थापित किये जाते हैं। प्राकृतिक गैस या कोयले की शक्ति इसके लिये आवश्यक है। यही कारण है कि संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में काँच के उद्योग का स्थानीयकरण पश्चिमी पेंसलवेनिया, उ. प. वर्जीनिया, पूर्वी ओहियो, पश्चिमी न्यूयार्क और मध्य इण्डियाना राज्यों में हुआ है।

आधुनिक समय में कई प्रकार का काँच बनाया जाता है जैसे—पारदर्शी, अपारदर्शी, शीघ्र टूटने वाला, न टूटने वाला और लोहे की तरह मजबूत काँच के रेशों से सूती कपड़े भी बनाये जाते हैं। कांच की ईंटें विविध प्रयोगों में ली जाती हैं—काँच की चादरें, काँच के बोतल, बर्तन आदि भी बनाये जाते हैं।

उत्पादन क्षेत्र :

विश्व में सबसे अधिक काँच संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया, रूस और जापान में बनाया जाता है।

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में इस उद्योग का विकास १७७६ में हुआ जबकि न्यूजर्सी में सबसे पहला मिल ग्लास बोरो में खोला गया; क्योंकि यहाँ बालू मिट्टी की अधिकता थी और जलाने के लिये लकड़ियाँ उपलब्ध थीं। किन्तु अब कोयले का उपयोग अधिक होने से यह उद्योग अपेलेशियन श्रेणी के सहारे अधिक फैला हुआ है। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका सबसे उत्तम प्रकार का काँच तैयार करता है। यहाँ विज्ञान के कार्यों के लिये विभिन्न प्रकार की काँच की वस्तुएँ—चश्मे का काँच, चादर कांच आदि बहुत बनाई जाती हैं। उद्योग के मुख्य केन्द्र शिकागो, कोर्नीन, रोचेस्टर, पिट्सबर्ग, मीलविले, न्यूजर्सी, हंटिंगटन, सलेम, ग्लास बोरो, और विजटन हैं।

यूरोप में काँच का उद्योग पश्चिमी जर्मनी में एडेनहीन के निकट, ओनर कोचन, स्टेगर्ट, लिपजिग, जीना, डसलडर्फ और बीटर पिल्ड है। यहाँ ३ क्षेत्रों में काँच बनाया जाता है— (१) रूर कोयला क्षेत्र में कोयले की प्रचुरता, सस्ते जल यातायात, कुशल श्रमिक और वैज्ञानिक अनुभव के कारण संसार में सबसे अधिक शीशियाँ तैयार की जाती हैं। इसका मुख्य केन्द्र डसलडर्फ है। (२) सैक्सोनी क्षेत्र में कोयला अधिक मिलने के कारण जीना और ड्रेसडेन इस उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं। पहले नगर में चश्मों के काँच और दूसरे में वैज्ञानिक यंत्र अधिक बनाये जाते हैं। (३) साइलेशिया क्षेत्र में ब्रेसलो में काँच बनाया जाता है।

जर्मनी के काँच उद्योग का महत्व वैज्ञानिक यंत्रों में प्रयुक्त होने वाले काँच के लिए है। यहाँ अधिकतर दुर्बीनें, केमेरा, खुर्दबीनें तथा चश्मों के काँच बनाये जाते हैं।

ग्रेटब्रिटेन में यह उद्योग कोयला क्षेत्रों में न्यूकेसिल, बर्मिंघम व ब्रिस्टल के निकट केन्द्रित है, क्योंकि इस क्षेत्र में बाजार की निकटता, सस्ते कुशल मजदूरों की उपलब्धता और ईंधन के लिए गैस मिलने की सुविधाएँ हैं यहाँ के मुख्य केन्द्र लंदन, न्यूकेसिल, ग्लासगो, सेंट हैलेण्स्, बमिंघम डड्ले, राथरहैम और साउथ शील्डरस हैं। यहाँ अधिकतर बोतलें और कच्चे किस्म का काँच बनाया जाता है।

फ्रांस में कोयले के क्षेत्रों के निकट चादर ग्लास और खिड़कियों के काम के काँच अधिक बनाये जाते हैं। पैरिस में चश्मों के काँच व बकार्ट में रवेदार काँच के बर्तन बनाये जाते हैं।

बेल्जियम में यह उद्योग लीच और चार्लेराय के कोल क्षेत्रों तथा सोडे की फैक्ट्रियों के निकट है। यहाँ बालू मिट्टी कम्पाइन क्षेत्रों से मिल जाती है तथा रासायनिक पदार्थ भी निकट ही प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ अधिकतर शीशे की चादरें और दर्पण बनाये जाते हैं।

रूस में काँच का उद्योग यूक्रेन, मास्कोगोर्की, लेनिनग्राड और यूराल के औद्योगिक क्षेत्रों में स्थित है। सोवियत रूस में टोमस्क, इरकूटस्क और उलनडडे में भी काँच बनाया जाता है।

जैकोस्लोवाकिया में यह उद्योग बोहीमिया क्षेत्र में स्थित है जहाँ निकट ही बालू, पोटास और कोयला मिल जाता है। यहाँ के मुख्य केन्द्र प्राग, जाबलोंज, स्टीनशोनाओ और एगर हैं। यहाँ अधिकतर रङ्गीन काँच बनाया जाता है।

भारत में काँच का उद्योग :

भारत में काँच का उद्योग बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। भारत में बेलगांव, मैसूर और उत्तर प्रदेश में तो १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में भी काँच का उद्योग का होना पाया जाता है। आधुनिक ढंग के उद्योग को गत शताब्दी के अन्तिम दस वर्षों में आरंभ करने के कई प्रयत्न किये गये, किंतु सफलता नहीं मिली। स्वदेशी आंदोलन के समय भी कई काँच के कारखाने स्थापित हुए, किंतु उनमें से कुछ ही पनप सके। वास्तविक प्रोत्साहन तो इस

उद्योग को प्रथम महायुद्ध के समय ही मिला । सन् १९३९ में इसे संरक्षण भी दिया गया । तभी से इस उद्योग ने काफी प्रगति की है ।

भारत में काँच का सामान बनाने का उद्योग दो भागों में विभक्त है—(१) प्रथम प्रकार के कारखाने वे हैं जो कुटीर उद्योग के रूप में काम करते हैं, और (२) दूसरे प्रकार के वे कारखाने हैं जो आधुनिक फैक्टरियों के रूप में काम करते हैं ।

(१) प्रथम प्रकार के कुटीर धंधे के रूप में काँच के सामान बनाने के उद्योग का मुख्य केन्द्र **फिरोजाबाद** और दक्षिण में **बेलगाँव** है । फिरोजाबाद में १०० से भी ऊपर छोटी २ फैक्ट्रियाँ हैं जो काँच की रेशमी तथा साधारण चूड़ियाँ बनाती हैं । उत्तर प्रदेश में कांच का कुटीर उद्योग **एटा, फतहपुर, शिकोहाबाद**, आदि स्थानों में भी चलाया जाता है । इनसे भारत की चूड़ियों की माँग की ३/४ पूर्ति हो जाती है किंतु जैकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, जापान, बेलजियम, इटली और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आयात की गई चूडियों से इन्हें प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है । फिरोजाबाद में चूड़ियाँ बनाने के धंधे से ५०,००० लोगों को व्यवसाय मिलता है तथा यहाँ वार्षिक उत्पादन १६,००० टन है जिसका मूल्य ४ करोड रुपये है ।

(२) भारत में काँच बनाने की आधुनिक फैक्ट्रियाँ विशेषकर उत्तर प्रदेश, बम्बई, बंगाल, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार, मद्रास और उड़ीसा में केन्द्रित हैं । इनका प्रादेशिक वितरण इस प्रकार है :—

उत्तर प्रदेश	२१	मध्य प्रदेश	५
बंगाल	३०	मद्रास	८
बम्बई	२२	दिल्ली	२
बिहार	८	उड़ीसा	१
पंजाब	४	अन्य	८

इन कारखानों में मुख्यतः चार प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं :—

(१) चूड़ियों के लिए शीशे की बट्टी ।
(२) मोती, बोतलें, चिमनियाँ, शीशियाँ, बरतन ।
(३) काँच की चद्दरें और दरवाजे, खिड़कियों में लगाने के काँच ।
(४) चीर-फाड़ करने व प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ ।

यह उद्योग अधिकतर गंगा की ऊपरी घाटी में ही केन्द्रित है । इसके निम्न कारण हैं :—

(१) कांच निर्माण के योग्य सबसे अच्छा बालू उत्तर प्रदेश में विंध्याचल पर्वत के लोघरा (Loghra) और बोरगढ़ (Borghar) नामक स्थानों पर बालू के परिवर्तित जलज पत्थर को पीस कर प्राप्त किया जाता है । इन स्थानों के अतिरिक्त बरार, पूना, जबलपुर, इलाहाबाद इत्यादि जिलों में तथा जयपुर, बीकानेर, बूंदी, बड़ोदा आदि स्थानों में भी उत्तम श्रेणी की बालू अथवा बालू के पत्थर पाये जाते हैं जिनका प्रयोग इन कारखानों में किया जाता है ।

(२) इन कारखानों के लिए कोयला बिहार की खानों से प्राप्त किया जाता है। यह वात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ के कारखाने वालू की पूर्ति के लिहाज से उचित दूरी पर हैं, किंतु कोयला इन्हें कुछ दूर से मँगाना पड़ता है।

(३) उत्तर प्रदेश के कारखानों को सबसे बड़ा लाभ कुशल मजदूरों का पर्याप्त मात्रा में मिल जाना है। आगरा के निकट कुछ जातियाँ—शीशगर—मिलती हैं जो पीढ़ियों से काँच का सामान तैयार करती आ रही हैं। ये कुशल मजदूर आधुनिक ढंग के काँच बनाने के काम में भी बहुत जल्दी सिद्धहस्त हो जाते हैं।

(४) इस भाग में रेलों का जाल-सा बिछा है जिससे सब सामान इकट्ठा करने में सुविधा रहती है और तैयार माल के लिए जनसंख्या की अधिकता के कारण बाजार भी विस्तृत है।

(५) काँच बनाने में प्रयोगित दूसरे मुख्य पदार्थ सोडा-मिट्टी, सोडा सल्फेट और शोरा है। भारत के अनेक तेजाब के कारखानों में सोडा-सल्फेट उप-प्राप्ति के रूप में रह जाता है। राजस्थान की नमकीन झीलों से भी सोडा के कार्बोनेट और सल्फेट दोनों मिलते हैं। मध्य प्रदेश के बुल्ढाना जिले की कोलनार झील से सोडा कार्बोनेट प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त भारत के कई शुष्क भागों में कहीं-कहीं भूमि पर रेह नामक पदार्थ एकत्रित हो जाता है। यह भी काँच बनाने के प्रयोग में लिया जाता है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बंगाल और बिहार के अनेक स्थानों की मिट्टी में शोरा भी मिलता है जिससे काँच के लिए क्षार प्राप्त होता है। यही वस्तुएँ उत्तर प्रदेश के कारखानों में प्रयुक्त की जाती हैं।

इसी कारण उत्तर प्रदेश में २१ काँच का सामान बनाने की फैक्ट्रियाँ हैं जिनमें काँच की चादरें, चूड़ियाँ, काँच के बरतन आदि बनाये जाते हैं। शिकोहाबाद, हाथरस, नैनी और बहजोई में मोटर के लैंप, रोशनी फंकने वाले शीशे, बल्ब, चिमनियाँ आदि बनाई जाती हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार के बर्तन, फूलदान आदि भी बनाये जाते हैं।

पश्चिमी बङ्गाल में हावड़ा में काँच के कारखाने हैं। इनके लिए राजमहल पहाड़ में मङ्गलघाट (Mangalghat) और पाथरघाट (Patharghat) नामक स्थानों पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद वालू का पत्थर पीस कर काँच के लिए उपयुक्त वालू प्राप्त किया जाता है। कोयले की दृष्टि से बंगाल के काँच के कारखानों की स्थिति बहुत ही अनुकूल है, परन्तु अधिकांश वालू उन्हें उत्तर प्रदेश से मंगवानी पड़ती है। बंगाल के काँच के कारखानों को एक लाभ यह है कि वे बंगाल के उन औद्योगिक केन्द्रों के पास ही स्थित हैं जहाँ रासायनिक पदार्थ तैयार किये जाते हैं। यहाँ अधिकतर लैंप, लालटेनों के हिस्से, बोतलें, शीशे के ट्यूब, फ्लास्क, ट्यूब ग्लास, शीशे की प्लेटें आदि बनाई जाती हैं।

काँच के अन्य कारखाने बम्बई, (भड़ौंच, पंचमहल, कोल्हापुर,) बिहार, पंजाब, मध्य प्रदेश, मद्रास, हैदराबाद और बंगलौर में हैं।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में काँच बनाने के पदार्थ पर्याप्त मात्रा में वर्तमान हैं और यहाँ काँच की खपत भी काफी है, किंतु दुर्भाग्यवश भारत के अधिकांश कारखाने ऐसे स्थानों पर बने हैं जहाँ काँच के लिए कच्चे पदार्थ, बालू और खार तथा कोयला बहुत दूर से मँगाने पड़ते हैं; इस कारण ये पदार्थ बहुत मँहगे पड़ते हैं। काँच का उद्योग कच्चे माल की निकटता में स्थापित होने वाला उद्योग है। काँच-उद्योग की सलाहकारिणी-परिषद् ने सुझाया है कि काँच के कारखानों की स्थापना पर कच्चे माल की निकटता से बाजारों की निकटता का अधिक प्रभाव होना चाहिए क्योंकि काँच शीघ्र ही टूट जाने वाला पदार्थ है। काँच का कारखाना स्थापित करने का सबसे उत्तम स्थान बंगाल या बिहार के कोयले के क्षेत्रों के पास है।

उत्पादन, व्यापार आदि :

इस समय भारत में काँच के सामान बनाने के लगभग १४४ कारखाने हैं जिनमें ३०,००० व्यक्ति लगे हैं। इस उद्योग में लगभग १० करोड़ रुपये की पूँजी लगी है। इन कारखानों का वार्षिक उत्पादन निम्न तालिका में बताया गया है :—

वस्तुएँ	१९४७	१ ५१	१९५५
काँच की चादरें (००० वर्ग फुट)	५ ७१९.२	११,०८९.२	३८,९८४ ४
प्रयोगशालाओं का सामान (टन)	१,९२०	१,९८०	२,१०६
बिजली की बत्तियों के खोल (लाखों में)	—	१२९.६	२५४.४
काँच का अन्य सामान (बोतलें, शीशियाँ मेज के सामान, अन्य (टन)	—	७२,२१६	८८,८१२

भारत में काँच और काँच के सामान का जो आयात होता है वह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

वस्तुएँ	१९५१–५२	१९५४–५५
	(लाख रुपयों में)	
काँच की चादरें और प्लेटें	१४३.७४	६६.५३
बोतलें, शीशियें	११.२८	१३.८०
मनके और झूँठे मोती	१४.६५	७.००
वैज्ञानिक वस्तुएँ	५.००	४.०८
शीशे के लैम्प और चिमनियाँ	२.७२	२.७०
काँच के बरतन	०.२७	५.३१
थर्मस बोतलें	(आँकड़े अप्राप्य)	१०.८५
अन्य वस्तुएँ	३७.३८	२०.५६
योग	२१५.०४	१३०.८३

पिछले वर्षों से भारत से काँच के सामान का निर्यात मुख्यत: अपने पड़ोसी देशों को होता है। ये देश क्रमश: अदन, बहरीन टापू, लङ्का, बर्मा, मलाया, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, इंडोनेशिया और हिंदचीन हैं। इन देशों को १९५१–५२ में २१·४ लाख रुपये और १९५४–५५ में २०·४ लाख रुपये का काँच का सामान निर्यात किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में काँच के सामान की उत्पादन की वर्तमान किस्मों का विकास और नयी किस्मों का निर्माण किया जायगा।

कागज उद्योग (Paper Industry)

विकास :

यदि यह कहा जाय कि आधुनिक सभ्यता का मूलाधार कागज ही है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी क्योंकि जिस देश में जितने अधिक कागज का उपभोग होता है वह उतना ही सभ्य और उन्नतिशील समझा जाता है। सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ कागज की माँग भी निरंतर बढ़ रही है और इस बढ़ती हुई माँग के साथ-साथ कागज का उत्पादन भी बढ़ता जा रहा है। संसार के औद्योगिक व्यापार में इसका स्थान ऊँचा है। कागज का आविष्कार होने के पूर्व बैबीलोन, निनैवा और मैसेपोटैमिया के निवासी अपने विचारों को मिट्टी की टिकियों पर लिखकर उन्हें पकाकर रख देते थे। मिस्री लोग पैपीरस (Papyrus) नामक पतला पदार्थ लिखने के प्रयोग में लाते थे। कागज बनाने का आविष्कार सबसे पहले सन् १०५ ई० में एक चीनी साईलून (Tsai Lun) द्वारा किया गया। उसने चिथडों द्वारा कागज बनाने की क्रिया ज्ञात की। उसी समय से इस कला का विस्तार मध्य एशिया होता हुआ अरब और वहाँ से सन् ९०० ई० में यूरोप में हुआ। स्पेन और इटली में कागज के कारखानों का स्थापन ११५० में, फ्रांस में ११८९ में जर्मनी में, १२९१ में और इंग्लैंड में १३३० में हुआ। १९ वीं शताब्दी तक कागज बनाने के लिए चिथड़ों का ही प्रयोग किया जाता रहा। आज भी लिनेन और सूती कपड़े के चिथड़ों द्वारा मजबूत, और टिकाऊ ऊंचे किस्म का लिखने और पुस्तक छापने का कागज बनाया जाता है।

कागज बनाने के लिए लकड़ी की लुब्दी का प्रयोग सबसे पहले जर्मनी में १८४० में किया गया, इसके बाद १८८० में संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में। अब तो सभी देशों में कागज बनाने में लकड़ी की लुब्दी ही काम में लाई जाती है। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इग्लैंड में एस्पार्टो घास से कागज बनाया जाने लगा। मजबूत कागज के बोरे अब जूट तथा मनीला हैम्प के रेशों से ही बनाये जाते हैं। बैंक के नोट-पेपर बनाने में 'बाओबाब' (Baobab) वृक्ष की छाल काम में ली जाती है तथा सस्ते पैकिंग कागज बनाने में घास।

अस्तु, आधुनिक काल में कागज उद्योग में काम आने वाला कच्चा माल लकड़ी की लुब्दी (pulp) ही है। यह लुब्दी मुख्यत: स्प्रूस, पीली चीड़, हैमलॉक, फर आदि वृक्षों की लकड़ी से बनाई जाती है। इनकी लकड़ी को

पीस कर चूरा बनाकर लुब्दी बनाई जाती है। इसे 'यांत्रिक लुब्दी' (Mechanical pulp) कहते हैं। इससे घटिया कागज बनाया जाता है।

पोयलर, एस्पेन तथा अन्य चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों की लकड़ी से रासायनिक विधि द्वारा लुब्दी बनाई जाती है। इसे 'रासायनिक लुब्दी' (Chemical pulp) कहते हैं। इसका उपयोग मुख्यतः उत्तम किस्म के कागज बनाने में किया जाता है।

उद्योग का स्थानीयकरण :

इस उद्योग के स्थानीयकरण के लिए निम्न बातों की आवश्यकता होती है :—

(१) कागज का कच्चा माल लुब्दी एक भारी पदार्थ है और दूर तक भेजने में नष्ट हो जाता है। अतः कागज उद्योग के केन्द्र के समीप ही लुब्दी की प्रचुर स्थानीय पूर्ति होनी चाहिये।

(२) नरम लकड़ी वाले वनों के पास यह उद्योग भलीभाँति चालू किया जा सकता है ताकि अच्छी लुब्दी पास ही प्राप्त हो सके। इसलिये अधिकतर कागज के कारखाने शीत और शीतोष्ण कटिवन्धीय वनों के समीप स्थित हैं। स्प्रस, हेमलाक पाईन और फर की लकड़ी से अच्छी लुब्दी बनाई जाती है। वन काफी विस्तृत होने चाहिए ताकि वर्षों तक लकड़ी प्राप्त हो सके। इसी दशा में कारखाना स्थायी आधार पर चालू रह सकता है।

(३) मिलों को प्रचुर मात्रा में स्वच्छ पानी मिलना चाहिये ताकि लकड़ी के रेशे और लुब्दी भली भाँति साफ की जा सके। पानी द्वारा लुब्दी मशीनों में पहुँचाई जाती है। इसलिये पानी की प्राप्ति एक आवश्यक तत्व है।

(४) नदियों के पास स्थित होने से सस्ती जल-विद्युत भी प्राप्त हो जाती है। जल-विद्युत के प्रयोग से कागज गन्दगी से बच जाता है। इस उद्योग में काफी मात्रा में औद्योगिक शक्ति काम आती है। इसलिये शक्ति प्रचुर और सस्ती होनी चाहिये।

(५) अनेक रसायनिक पदार्थों की भी इस उद्योग में आवश्यकता होती है, इसलिये इनका भी समीप ही होना हितकर है। ये रासायनिक पदार्थ कास्टिक सोडा, सोडा ऐश, क्लोरीन, हड्डी का चूरा, चीनी मिट्टी आदि हैं।

(६) वैसे तो कागज हल्का पदार्थ होने से दूर तक भेजा जा सकता है। फिर भी खपत के क्षेत्र की निकटता एक उत्साहवर्धक तत्व है।

(७) इस उद्योग के लिये कुशल मजदूरों की प्राप्ति होनी चाहिये।

विश्व वितरण :

संसार में कागज कुछ ही देशों में बड़े पैमाने पर बनाया जाता है। कनाडा, संयुक्त-राष्ट्र, नार्वे, स्वीडन, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और रूस इसके मुख्य उत्पादक देश हैं। विश्व के उत्पादन का ८५% कागज इन्हीं देशों से प्राप्त होता है।

कनाडा का कागज उद्योग :

कनाडा यान्त्रिक लुग्दी से कागज बनाने में संसार भर में प्रथम है। कनाडा में शीतोष्ण कटिबन्धीय नरम लकड़ी वाले वनों का महान विस्तार है जिससे लुग्दी की प्राप्ति असीम है। उत्तरी यूरोप से कागज मिलना बन्द होने पर इस उद्योग को यहाँ भारी प्रोत्साहन मिला है। फौजी खेमों में प्रयोग होने के लिये, दीवार के बोर्ड बनाने के ठेके से उद्योग को बहुत लाभ पहुँचा है। क्यूबेक और ओन्टारियो इस उद्योग में भौगोलिक और आर्थिक सुविधाओं के कारण सर्व प्रथम हो गये हैं। इस क्षेत्र में कोणधारी वन पाये जाते हैं। यहाँ असंख्य झीलों से स्वच्छ जल तो मिलता ही है, उनसे निकलने वाली नदियों से जल-विद्युत भी काफी बनाई जाती है। सस्ती जल-विद्युत द्वारा यान्त्रिक लुग्दी बनाई जाती है। ब्रिटिश कोलम्बिया और न्यूफाउण्डलैंड में भी काफी कागज बनाया जाता है। खपत से बहुत अधिक उत्पादन होने के कारण कनाडा से कागज बहुत बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है। यहाँ से संयुक्त-राष्ट्र को निर्यात किये गये कागज का ८०% भेजा जाता है। शेष कागज भारत, पाकिस्तान और ब्रिटेन को निर्यात किया जाता है। कागज के अतिरिक्त यहाँ से लकड़ी की लुग्दी भी विदेशों को भेजी जाती है।

संयुक्त राष्ट्र का कागज उद्योग :

यह देश संसार में सबसे अधिक कागज का उत्पादन करता है। इस देश में कागज का उत्पादन २ करोड़ ४३ लाख टन वार्षिक है और कागज की मिलों की संख्या ३००० है। इस उद्योग की सभी अनुकूल दशायें इस देश में पाई जाती हैं। संयुक्त-राष्ट्र का ८० प्रतिशत कागज रासायनिक लुग्दी से बनाया जाता है। इस प्रकार इस देश में अच्छे किस्म के कागज के उत्पादन पर विशेष बल दिया जाता है। अधिकतर कागज के केन्द्र न्यू इंग्लैण्ड रियासत में स्थित हैं क्योंकि (i) यहाँ की द्रुतगामी नदियों से सस्ती जल शक्ति और स्वच्छ जल मिल जाता है (ii) यहाँ नरम लकड़ी के सघन विस्तृत वन पाये जाते हैं। यह वन सुगमता से मनुष्य की पहुँच के भीतर होने के कारण व्यापक रूप से शोषित किये जाते हैं। (iii) इस क्षेत्र में यान्त्रिक लुग्दी भी बनाई जाती है। (iv) संयुक्त-राष्ट्र में रासायनिक उद्योग विकसित दशा में हैं, इसलिये कागज उद्योग को काफी रासायनिक पदार्थ मिल जाते हैं। न्यू इङ्गलैंड रियासत में इस उद्योग के मुख्य क्षेत्र मेसाचुसेट्स और मेन हैं। मेसाचुसेट्स में लिखने का अच्छा कागज बनाया जाता है। होलीयोक इस प्रकार के कागज का सबसे बड़ा केन्द्र है। न्यूयार्क, विसकांसिन, मिशीगन, ओहियो, पेंसिलवेनिया अन्य प्रमुख रियासतें हैं। अखबारी कागज (Newsprint) के लिये मेन, न्यूयार्क, वाशिङ्गटन, विसकांसिन, चिल्डर्सबर्ग, कालहाऊन, लूफकिन प्रसिद्ध केन्द्र हैं। अखबारी कागज की खपत अधिक है इसलिये कनाडा में ८०%से भी अधिक अखबारी कागज मंगाया जाता है। पुस्तकों के लिये कागज (Book Paper) पेंसिलवेनिया, मैसेच्यूसेट्स, और ओहियो में और लिखने का कागज (Writing Paper) विस्कांसिन, मैसेच्यूसेट्स, और पेंसिलवेनिया में; गत्ते ओहियो, मिशीगन, लूसियाना में तथा कार्डबोर्ड दक्षिणी रियासतों में बनाया जाता है।

ब्रिटेन का कागज उद्योग :

इस देश में बढ़िया कागज का अधिक उत्पादन होता है। अपनी श्रेष्ठता के लिये यहाँ का कागज प्रसिद्ध है। इस देश में लुब्दी नहीं मिलती है। इसलिये नार्वे, स्वीडन, कनाडा और बाल्टिक देशों से लुब्दी मँगाई जाती है। निर्यात करने के लिये इस देश को बन्दरगाहों की अन्यतम सुविधायें प्राप्त हैं। बन्दरगाहों के निकट ही अधिकतर कागज के केन्द्र स्थित हैं। प्रचुर स्वच्छ पानी, ज्वार जल क्षेत्र की निकटता और पश्चिमी यूरोप के विस्तृत बाजारों की समीपता मुख्य सहायक तत्व हैं। उत्तरी सामरसेट बढ़िया कागजों के लिये प्रसिद्ध है। रासेनडेल, केन्ट और हैम्पशायर कागज उत्पादन के प्रसिद्ध क्षेत्र हैं।

यूरोप के अन्य देशों में कागज का उद्योग :

यूरोप के अन्य कागज उत्पादन करने वाले देशों में नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया और जेकोस्लोवाकिया मुख्य हैं। इन सभी देशों में पर्याप्त जल विद्युत पाई जाती है और लुब्दी की उत्पत्ति असीम है। अधिकतर देश लुब्दी का निर्यात भी करते हैं। नार्वे संसार में सबसे अधिक अखबारी कागज का उत्पादन करता है। नार्वे में कागज उद्योग के मुख्य क्षेत्र ओसलो, फियोर्ड और स्कागेराक तट प्रदेश हैं। स्टावेन्जर और हागेसुण्ड इस उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र हैं। रूस में यूराल और साइबेरियन क्षेत्रों में काफी कागज बनाया जाता है।

लेटिन अमेरिका में कागज उद्योग :

यहाँ यह उद्योग मुख्यत ब्राजील, अर्जेनटाइना, मैक्सिको और चिली में किया जाता है। ये चारों देश मिल कर इस प्रदेश का ८६% कागज बनाते हैं। ब्राजील कागज की माँग का ८० %; चिली और मैक्सिको ७०%; तथा अर्जेनटाइना ५०% अपने ही उत्पादन से पूरा करते हैं। इन सभी देशों में अखबारी कागज का आयात किया जाता है। ब्राजील तथा चिली में शीतोष्ण वन अधिक पाये जाने से यहाँ काफी लुब्दी बनाई जाती है; फिर भी ब्राजील और चिली में ८०% रासायनिक लुब्दी आयात की जाती है। यहाँ गन्ने के छूतों से भी कागज बनाया जाता है।

चीन व जापान में कागज उद्योग :

चीन में यह उद्योग बहुत पुराना है। यहाँ हल्का कागज चावल के भूसे से और उत्तम कागज (Rice-paper) फार्मोसा में पैदा होने वाले एक पौधे से बनाया जाता है।

जापान में कागज का उद्योग बड़ा विकसित है। यहाँ कागज के मजबूत बोरे 'सी-वीड' (Sea Weed) और उडो (Udo) नामक झाड़ी से बनाये जाते हैं। इनका उपयोग धान भरने, जल प्रतिरोधक तिरपाल बनाने, घरों की दिवालें आदि बनाने में किया जाता है। जापानी लोग कागज की सुन्दर छतरियाँ, तौलिये और रूमाल भी बनाते हैं। जापान में मुख्यतः दो प्रकार का कागज बनाया जाता है (१) सख्त (Tough) तथा देशी कागज जिसका उपयोग लिखने के लिये किया जाता है; (२) नरम या विदेशी-तुल्य

कागज। पहले प्रकार के कागज का वार्षिक उत्पादन लगभग १ लाख टन होता है। यह घरेलू उद्योग के रूप में बनाया जाता है। द्वितीय प्रकार के कागज का उत्पादन १० लाख टन होता है। यह मुख्यतः आधुनिक ढंग के कारखानों में यंत्रों द्वारा बनाया जाता है। यहाँ कागज के लिये लुग्दी होकेडो द्वीप के कोणधारी वनों से प्राप्त की जाती है। कुछ लुग्दी विदेशों से भी आयात की जाती है।

नीचे की तालिका में विश्व में कागज का उत्पादन, आयात, निर्यात तथा प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग बताया गया है:—

देश	उत्पादन	निर्यात (+) आयात (−) (००० टनों में)	उपभोग प्रतिव्यक्ति पीछे (पौंड में) (१९५०)
सं० रा० अमेरिका	२४,३००	४,६३५−	३८२
कनाडा	६,८१२	५,००६+	२६०
ग्रेट ब्रिटेन	२,६२८	४४७−	१३३
डेनमार्क	११५	१६५−	१३१
नीदरलैंड्स	६९६	१५३+	१०८
नार्वे	५३०	५−	१०७
स्वीडेन	१,३०१	६५६+	१०१
फ़िनलैंड	८६४	६६४+	९९
प० जर्मनी	१,७२५	४०−	७३
आस्ट्रेलिया	१९३	६७−	६४
फ़्रांस	१,४५१	१२८−	६३
अर्जेनटाइना	२७१	२१५−	४५
जापान	९६६	२१+	२३
रूस	१,३१३	अप्राप्य	१४
चीन	२०९	अप्राप्य	२
भारत	१२२	१०४−	१

भारत में कागज उद्योग:

भारत में कागज प्राचीन काल से ही बनाया जाता है। आज भी आधुनिक ढंग के कारखानों के साथ २ घरेलू प्रणाली पर भी कागज बनाया जाता है। ऐसे प्रमुख स्थान मथुरा, कालपी, आरवाल, सांगानेर आदि हैं। किंतु आधुनिक ढंग पर कागज बनाने का पहला प्रयास १७१६ में डा० विलियम कारे द्वारा मद्रास के तंजौर जिले में स्थित ट्रंकुआर नामक स्थान पर हुआ, किंतु यह प्रयास सफल नहीं हुआ। सन् १८६७ में हुगली नदी के किनारे बाली स्थान पर 'बाली कागज मिल' की स्थापना हुई, किंतु यह भी सफल न हो सकी। इसको टीटागढ़ पेपर मिल ने खरीद लिया जो १८८४ में चालू हुई। १८९४ में कानकिनारा स्थान पर 'इम्पीरियल पेपर मिल' खोली गई। बाद को यह मिल

भी 'टीटागढ़ पेपर मिल' में विलीन हो गई। धीरे २ अन्य कारखाने भी स्थापित होते गये। १९०० में कागज बनाने के ७ कारखाने थे जिनमें प्रतिवर्ष १९,००० टन कागज बनता था।

१९१३ में जब प्रथम महायुद्ध आरंभ हुआ तो उद्योग को आयात की कमी के कारण अप्रत्यक्ष रूप से विकास करने का प्रोत्साहन मिला। फलस्वरूप १९१८ में 'नेहाटी पेपर मिल' की स्थापना हुई। किंतु युद्ध की समाप्ति पर उद्योग को प्रतियोगिता और युद्धोत्तर मंदी का सामना करना पड़ा। किंतु फिर भी १९२४ तक कागज का उत्पादन ३३,००० टन हो गया और कागज की मिलों की संख्या ९ हो गई। १९२५ में इस उद्योग को ७ वर्षों के लिए तटकर संरक्षण प्राप्त हो गया और आयात किये जाने वाले कई प्रकार के कागज पर २५% शुल्क लगा दिया गया। १९२५ से १९३३ तक की अवधि में कागज का उत्पादन निरन्तर बढ़ता गया। १९३३ में कागज का उत्पादन ४४,००० टन हो गया। सन् १९२३ में आयात की हुई लकड़ी की लुब्दी ३१·३% प्रयोग की जाती थी, वहाँ १९३१ में ५५% होने लगी। १९३२ में दूसरे तटकर बोर्ड ने छापने और लिखने के कागज पर लगने वाला शुल्क बढ़ा कर १८·७% कर दिया और अखबारी कागज तथा पुराने अखबारों पर आयात शुल्क २५% कर दिया। आयातित लकड़ी की लुब्दी पर भी आयात कर बढ़ा दिया गया। अतः १९३७ में मिलों की संख्या १० और कागज का उत्पादन ४८५०० टन हो गया। इसी बीच १९३० में स्ट्राबोर्ड (Straw Board) बनाने का पहला कारखाना सहारनपुर में खोला गया जिसका उत्पादन १९३७ में ८,००० टन था।

१९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने से यह उद्योग बहुत ही बढा। १९३० से १९५५ के बीच कागज का उत्पादन ४५०% बढ़ गया। १९३१ में उत्पादन केवल ४०,००० टन था; यह १९५५ में १,८५,००० टन हो गया।

इस समय भारत में कागज बनाने की २० मिलें हैं। २४ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है जिसमें से ६५% भारतीय पूँजी है तथा श्रमिकों की संख्या २७,५०० है। अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान विकास योजनाओं की पूर्ति के लिए २० करोड़ रुपये की पूँजी का और विनियोग होगा तथा लगभग ६,००० अधिक श्रमिकों को कार्य मिलेगा। नीचे की तालिका में इस उद्योग का क्रमिक विकास बताया गया है :—

वर्ष	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन क्षमता	वार्षिक उत्पादन (टनों में)
१९००	७	—	१९,०००
१९२४	९	—	३३,०००
१९३३	७	—	४४,०००
१९४३	१५	१,०३,८००	१,००,०००
१९५३	१९	१,५८,५००	१,३९,७०३
१९५४	२०	—	१,५५,३३७
१९५५	२०	—	१,८५,०००

उद्योग का स्थापन :

कागज का उद्योग कच्चे माल की प्राप्ति के स्थानों के निकट स्थापित होने वाला धंधा है क्योंकि कागज बनाने के लिए भारी पदार्थों—बाँस, लकड़ी, घास, चिथड़े, कोयला आदि की आवश्यकता होती है। कई कारखानों में तो कागज बाँस, लकड़ी और घास की लुब्दी से ही बनाया जाता है। अतः जिन भागों में ये पदार्थ निकट ही प्राप्त हो जाते हैं वहीं कागज के उद्योग का केन्द्रीयकरण हो गया है। जिन कारखानों में चिथड़े, रद्दी कागज इत्यादि से कागज बनाया जाता है वे उपरोक्त वस्तुओं की प्राप्ति स्थान के निकट नहीं होते, बल्कि ये कारखाने बाजारों के निकट ही स्थापित होते हैं।

लकड़ी की लुब्दी और कागज बनाने वाले कनाडा, स्वीडेन, नार्वे आदि प्रमुख देश अपने कच्चे माल के लिए शीतोष्ण वनों की नर्म लकड़ी पर ही निर्भर रहते हैं, किंतु भारत में इन लकड़ियों के वन अधिकांशतः हिमालय पर्वतों पर पाये जाते हैं जिनमें लकड़ी काटने और यातायात की कठिनाइयों के कारण इस लकड़ी में रासायनिक लुब्दी बनाने के काम में कठिनाई पड़ती है। साधारणतया भारत के मिलों के लिए लकड़ी की लुब्दी तथा रासायनिक पदार्थ विदेशों से ही आयात करने पड़ते हैं। किंतु काश्मीर में उगने वाले चीड़ के वृक्षों का उपयोग लुब्दी बनाने के लिए किया जा सकता है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बाँस और घासों की उत्पत्ति की दृष्टि से भारत काफी सम्पन्न देश है। कई मिलों में सवाई, भावर, मूंज, हाथी घास आदि का प्रयोग कागज बनाने में किया जाता है। अब तो बाँस से भी लुब्दी बनाई जाने लगी है। भारत में बाँस का उत्पादन आसाम, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और बिहार में होता है। कागज और गत्ते का हमारा वर्तमान उत्पादन १,८०,००० टन है। इसके उत्पादन में हम ३,२५,००० टन बाँस का प्रयोग करते हैं। द्वितीय योजना में ६ लाख टन कागज और गत्ता बनाने के लिए १६ लाख टन बाँस की आवश्यकता होगी। बाँस से लुब्दी बनाने में सबसे बड़ा लाभ यह है कि बाँस के एक पेड़ को दुबारा काटना चार वर्ष के बाद ही संभव हो जाता है जबकि कई लकड़ियाँ तो ऐसी हैं कि जो ६० वर्ष बाद ही दुबारा काटी जा सकती हैं। औसत रूप में एक टन कागज बनाने के लिए लगभग २·३८ टन बाँस की आवश्यकता होती है। सवाई घास की अपेक्षा बाँस से तैयार हुई लुब्दी मात्रा में अधिक और दाम में सस्ती पड़ती है किंतु बाँस का कागज सवाई घास के कागज की अपेक्षा मामूली और खुरदरा होता है।

अखबारी कागज के उत्पादन में सलाई की लकड़ी का प्रयोग किया जा रहा है। यूकिलप्टस, वैटल और शहतूत आदि की लकड़ी की जांच-पड़ताल की गई है और उसे कागज बनाने के उपयुक्त पाया गया है। यूकिलप्टस की एक किस्म ब्लूगम (*Blue Gum*) के पेड़ २,००० एकड़ में और वैटल के पेड़ मद्रास में २,४०० एकड़ में हैं। ब्लू गम का पेड़ १५ वर्षों में तैयार होजाता है, उससे प्रति एकड़ ५० टन लकड़ी प्राप्ति होती है और वैटल का पेड़ १० वर्ष में ही पूरा हो जाता है किंतु इससे २० टन प्रति एकड़ ही लकड़ी प्राप्त होती है। शहतूत का पेड़ ७ से १० वर्षों में ही तैयार हो जाता है।

कागज और लुब्दी बनाने के लिए गन्ने की छोई (Bagasse) का प्रयोग किया जा सकता है। मामूली कागज तैयार करने के लिए कपड़े का गूदड़, सन व पटुआ, पटसन का शेषांश, रद्दी कागज, चिथड़े आदि का भी प्रयोग किया जाता है। इन सभी वस्तुओं को पीस कर और उबाल कर रासायनिक पदार्थों द्वारा कागज की लुब्दी के योग्य मुलायम बना लिया जाता है। इस लुब्दी को पानी में मिला कर बहुत पतले बुने हुए तारों के परदों के बीच से बहाया जाता है। पानी वह जाता है और कागज की एक पतली तह रह जाती है। यह गीला 'कागज एक मशीन में डाल कर सुखाया जाता है। तब यह तैयार हो जाता है और आवश्यकतानुसार इसे काट लिया जाता है।

कच्चे माल के अतिरिक्त इस उद्योग के लिए कई रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है जिनमें मुख्य ये हैं :—कॉस्टिक सोडा, राल, चूना, क्लोरीन, लाहौरी नमक, गंधक, फिटकरी, विशेष प्रकार की मिट्टी, ब्लीचिंग पाउडर, अमोनियम सल्फेट, सोडा एश। इनमें से केवल गंधक और कॉस्टिक सोडा विदेशों से आयात किए जाते हैं, शेष यहाँ प्राप्त होते हैं।

इस समय देश में कागज बनाने की २० मिलें हैं, जिनकी स्थापित वार्षिक उत्पादन क्षमता २,११,६०० टन की है। इनमें से ४ मिलें बंगाल में, २-२ मिलें उत्तर प्रदेश और मैसूर में, तथा उड़ीसा, बिहार, पंजाब, मध्य प्रदेश, आंध्र, मद्रास, और केरल में एक-एक मिल है। बम्बई में ४ मिलें हैं। इनका वितरण इस प्रकार है :—

राज्य	मिलों की संख्या	केन्द्र
प० बंगाल	४	(i) टीटागढ़ पेपर मिलस टीटागढ़।
		(ii) बंगाल पेपर मिल्स, रानीगंज।
		(iii) इण्डियन पेपर मिल, नैहाटी।
		(iv) इम्पीरियल पेपर मिल कानकिनारा।
बम्बई	४	(i) दक्कन पेपर मिल्स, पूना।
		(ii) गुजरात पेपर मिल्स, अहमदाबाद।
		(iii) पदमजी पेपर मिल्स, बंबई।
उत्तर प्रदेश	२	(i) अपर इण्डिया पेपर मिल, लखनऊ।
		(ii) स्टार पेपर मिल, सहारनपुर।
मैसूर	२	(i) मैसूर पेपर मिल, भद्रावती।
		(ii) कावेरी वैली पेपर मिल, ननजनगॉड।
उड़ीसा	१	ओरिएँट पेपर मिल, बृजराजनगर।
बिहार	१	रोहतास, इण्डस्ट्रीज, दालमियानगर।
पंजाब	१	श्रीगोपाल पेपर मिल्स, जगाधरी।
केरल	१	पून्नलूर पेपर मिल्स, पून्नलूर।
मद्रास	१	आंध्र पेपर मिल, राजमहेन्द्री।
आंध्र	१	सिरपूर पेपर मिल्स, सिरपूर।
मध्य प्रदेश	१	नीपा पेपर मिल्स, नीपानगर।

बंगाल—कागज बनाने का उद्योग मुख्यतः बङ्गाल में ही केन्द्रित है जहाँ कुल उत्पादन का लगभग ५०% प्राप्त होता है। (१) पश्चिमी बङ्गाल की मिलों में कागज बनाने के लिए बाँस की लुब्दी ही काम में ली जाती है। बाँस आसाम के जङ्गलों से प्राप्त किया जाता है। सबाई घास मध्य प्रदेश और बिहार से मंगाई जाती है। (२) कोयला बिहार के कोल क्षेत्रों से। किंतु सामूहिक रूप में बङ्गाल के कागज के मिल, कच्चे माल के दृष्टिकोण से बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है। (३) कोयला और रासायनिक पदार्थों के निकट होने तथा कलकत्ता जैसे औद्योगिक नगर के निकट होने के कारण (जहाँ छापेखाने तथा दफ्तर आदि खूब होने से कागज की खपत ज्यादा होती है) इन मिलों का महत्त्व अधिक है। (४) घनी जनसंख्या के कारण मजदूर भी आसानी से मिल जाते हैं। इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों के कारण कागज के उद्योग के मुख्य केन्द्र पश्चिमी बंगाल में ही हैं।

उत्तर प्रदेश—कागज के उद्योग में दूसरा स्थान उत्तर प्रदेश के मिलों को प्राप्त है। लखनऊ के कागज के मिल सबाई घास पूर्वी क्षेत्रों से तथा सहारनपुर के मिल पश्चिमी क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं। कोयला बिहार उड़ीसा की खानों से प्राप्त किया जाता है तथा घनी जनसंख्या के कारण मजदूर भी खूब मिल जाते हैं।

उड़ीसा के संबलपुर जिले में बृजराजनगर बाँस उत्पन्न करने वाले क्षेत्र में स्थित है और ये रायपुर की कोयले की खानों के भी पास है। बिहार के मिल की स्थिति भी कच्चे माल और कोयले की दृष्टि से बड़ी अच्छी है।

मैसूर और केरल राज्यों के कागज के मिल बाँस के जंगलों के निकट हैं। जल-विद्युत शक्ति और बाजार के दृष्टिकोण से भी इनकी स्थिति अच्छी है।

बम्बई प्रान्त के मिलों की स्थिति कोयला और कच्चे माल दोनों की ही दृष्टि से विशेष लाभदायक नहीं है। यहाँ लकड़ी की लुब्दी विदेशों से मंगवाई जाती है।

इन कारखानों के अलावा अब २२ नये कारखाने और स्थापित किये जा रहे हैं—वर्तमान कारखानों में से ८ का विस्तार किया जा रहा है जिससे इनकी उत्पादन क्षमता में १,०६,५०० टन की वार्षिक वृद्धि होगी। इन योजनाओं की पूर्ति पर देश की वार्षिक उत्पादन क्षमता ३,५०,८०० टन हो जायगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उद्योग का विकास कार्यक्रम इस प्रकार होगा :—

	१९५५–५६		१९६०–६१	
कागज के प्रकार	उत्पादन क्षमता	वास्तविक उत्पादन	उत्पादन क्षमता	उत्पादन
अखबारी कागज	३०,०००	४,२००	६०,०००	६०,०००
कागज और गत्ता	२,१०,०००	२,००,०००	४,५०,०००	३,५०,०००

अभी भारत में अखबारी कागज का उत्पादक एक ही कारखाना मध्य प्रदेश में नीपानगर में है, जिसकी उत्पादन क्षमता ३०,००० टन की है। जबकि इसकी वार्षिक माँग १ लाख टन से भी अधिक की है। अतः द्वितीय योजना के अन्तर्गत इसकी उत्पादन क्षमता १·४ लाख टन की करने का लक्ष्य रखा गया है। इस हेतु दो नये कारखाने खोले जायेंगे जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ६०,००० टन होगी। अखबारी कागज बनाने का एक कारखाना हैदराबाद के निकट शकरनगर में खोला जायगा जिसमें ३० हजार टन अखबारी कागज बनेगा तथा दूसरी योजना के अन्त तक देश की सारी जरूरत पूरी हो सकेगी। कागज बनाने के लिए आसाम में रासायनिक लुग्दी तैयार करने का कारखाना स्थापित किया जा रहा है जिसमें प्रतिदिन १०० टन और वर्ष में ३० हजार टन लुग्दी बनाई जावेगी।

उत्पादन और व्यापार :

इस समय भारत में कई प्रकार का कागज बनाया जाता है जैसे—मोटे गत्ते, आर्ट और क्रोमो कागज, सिगरेटों में प्रयोग होने वाला पतला और चिकना कागज, चैक का भारी कागज और सैलूलोज फिल्म। कागज के उत्पादन को मुख्यतः चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है :—

(१) लिखने और छापने का कागज।

(२) विशेष प्रकार का कागज।

(३) औद्योगिक प्रयोग का कागज और लपेटने के काम में आने वाला कागज—सामान्य तथा चिकना कागज, बादामी कागज, दियासलाई में लगने वाला नीला कागज, परतदार गत्ता, और जमाया हुआ कागज।

(४) अखबारी कागज।

नीचे की तालिका में विभिन्न प्रकार के कागजों का उत्पादन बताया गया है :—

कागज की किस्में	१९५०	१९५५
	(टनों में)	
छपाई और लिखाई	७०,१५२	१,१९,४९६
पैक करने का कागज	१४,६१६	२८,३२०
विशेष किस्म का	५,१९६	५,६०४
गत्ते	१८,९४८	३१,४६४
योग	१,०८,९१२	१,८४,८८४

इस समय हमारा कागज उद्योग छापने और लिखने के कागज की ८०%; विशेष कागज की ५०%; पैक करने और वस्तुएँ लपेटने के कागज की ३०% तथा कागज और लुग्दी के गत्तों की ९५% आवश्यकताएँ पूरी करता है। शेष कमी कागज का आयात करके पूरी की जाती है।

औद्योगिक रूप से उन्नत देशों में कागज की जो खपत होती है उससे अनुमान लगाया जाता है कि कागज की सामान्य खपत भारत में इस अनुपात में होनी चाहिए—

लिखने पढ़ने का कागज	कुल का	४०%
विशेष कागज	,,	४%
औद्योगिक प्रयोग का कागज व गत्ते	,,	४०%
अखबारी कागज	,,	१६%

भारत में अभी विदेशों की तुलना में प्रति व्यक्ति पीछे कागज का उपयोग बहुत ही कम है केवल १ पौंड, जबकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह मात्रा ४०० पौंड ; कनाडा में २६० पौंड ; इंगलैंड में १३३ पौंड ; न्यूजीलैंड में १२४ पौंड; जर्मनी में ७३ पौंड ; जापान में ५० पौंड ; रूस में १४ पौण्ड पौंड है। इस निम्नउपभोग का मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना है। देश में साक्षरता की वृद्धि से कागज की खपत भी काफी बढ़ेगी। १९५०–५१ में देश में २,०९,००० टन कागज और कागज की चीजें काम आई थीं। १९५१–५६ में इनकी खपत ३.१७,००० टन हो गई तथा देश का उत्पादन इस अवधि में १,१४,००० टन से बढ़ कर २,०२,००० टन हो गया। फिर भी हमें ४९,००० टन कागज, ८०,००० टन अखबारी कागज और १२,००० टन रेयन की लुब्दी बाहर से मँगानी पड़ती है।

उद्योग की समस्याएँ :

(१) कागज के कारखानों में अधिकांशत: पुराने यंत्रों का ही उपयोग हो रहा है। आजकल कुछ कारखानों में आधुनिकरण के लिए पर्याप्त पूँजी लगाई गई है, क्योंकि उत्पादकों ने यह अनुभव किया कि आधुनिक यंत्रों से पूरा लाभ उठाने के लिये कारखानों की उत्पादन क्षमता में अधिकतम सीमा तक वृद्धि करनी होगी।

(२) अभी भी कारखानों के अधिकांश यंत्र तथा कागज निर्माण में प्रयोगित वस्तुओं का आयात करना पड़ता है, इसलिए हमारे इञ्जीनियरिंग उद्योग को जल्दी से जल्दी इन कारखानों के उपयोग में आने वाले यंत्रों का निर्माण करना चाहिए।

(३) कच्चे माल की भी कमी है।

अध्याय ३२

भारत के अन्य उद्योग

भारत में शक्कर का उद्योग

(Indian Sugar Industry)

उद्योग का महत्व :

(१) सूती कपड़े के उद्योग के बाद भारत का दूसरा बड़ा उद्योग शक्कर का है जिसकी व्यवस्था, नियंत्रण और पूंजी आदि सभी भारतीयों की है। इस उद्योग में कुल मिलाकर १६० मिलें हैं जिनके द्वारा लगभग १६ लाख से १८ लाख टन तक शक्कर का उत्पादन किया जाता है जिसका मूल्य १२० करोड़ रुपये से भी अधिक का होता है। इस उद्योग में ७२ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है तथा यह व्यवसाय १'४ लाख कुशल एवं अकुशल श्रमिकों तथा ३,५०० विश्वविद्यालय के स्नातकों को जीविका प्रदान करता है।

(२) इस व्यवसाय के लिये गन्ने की खेती में भारत में लगभग २ करोड़ किसान लगे हैं जो ४४ लाख एकड़ भूमि पर ५७७ लाख टन गन्ना पैदा करते हैं।

(३) इस उद्योग ने विदेशी शक्कर की आयात में खर्च होने वाले वार्षिक विदेशी विनिमय में १६ करोड़ रुपये की बचत कर भारत को इस वस्तु के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर बनाया है। गुड़ एवं शक्कर दोनों का उत्पादन लगभग २६० करोड़ रुपये का आँका गया है।

(४) आरंभ से ही उद्योग एवं उत्पादन तथा उसकी कीमतें गन्ने के उत्पादन, उसकी अच्छाई तथा उसकी कीमत पर निर्भर हैं। इसके विपरीत अन्य उद्योगों में कच्चे माल का उत्पादन, उसकी अच्छाई एवं कीमत उद्योग की माँग पर निर्भर रहती है।

(५) इस उद्योग ने १९३२-३३ से १९५४-५५ तक १,१७५ करोड़ की शक्कर का उत्पादन किया जिसमें ६२२ करोड़ रुपये कृषकों को और १११ करोड़ रुपये श्रमिकों को वेतन आदि के रूप में दिए।

(६) इस उद्योग से आबकारी कर (Excise duty) के रूप में सरकार को १९३४-३५ से लगाकर १९५४-५५ तक १२,२७३ लाख रुपये मिले।

उद्योग का विकास :

भारत को गन्ने की जन्म-भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है, किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि सन् १९३१ तक भारत को अपनी शक्कर की मांग के लिए विदेशों (विशेष कर जावा) पर निर्भर रहना पड़ता था। देश में गृह-उद्योग

के रूप में हाथ से शक्कर बनाने का धंधा प्रचलित था और कुछ कारखाने भी थे किन्तु वे देश की मांग को पूरा करने में असमर्थ थे। टैरिफ बोर्ड की शिफारिश पर भारत सरकार ने शक्कर के धन्धे को सन् १९३१ में १५ वर्ष के लिए (अर्थात् ३१ मार्च १९४६ तक) संरक्षण प्रदान किया। तभी से देश में शक्कर के उद्योग में आश्चर्यजनक रूप से प्रगति हुई है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि १९३१-३२ में ३१ शक्कर की मिलें थी जिनमें १,५८,००० टन शक्कर का उत्पादन होता था। संरक्षण के बाद चार वर्ष के अन्दर ही मिलों की संख्या १३५ और शक्कर का उत्पादन ९,१९,००० टन हो गया। आरम्भ में जैसे-जैसे शक्कर का उत्पादन बढ़ता गया वैसे २ विदेशी शक्कर का आयात कम होता गया। पर १९३५-३६ में यद्यपि शक्कर का उत्पादन लगभग ३½ लाख टन से बढ़ गया किन्तु आयात में उसी अनुपात से कमी नहीं हुई। १९३६-३७ में गन्ना बहुत पैदा होने से उत्तर प्रदेश और बिहार की सरकार ने मिलों को उत्पादन कम नहीं करने दिया इसके परिणामस्वरूप शक्कर का उत्पादन आवश्यकता से अधिक बढ़ गया; इससे माल का मूल्य गिरने लगा। इसी समय शक्कर-सिंडीकेट (Sugar Syndicate) की स्थापना की गई ताकि शक्कर की बिक्री का सिंडीकेट द्वारा ऐसा नियंत्रण किया जावे कि शक्कर का मूल्य गिरने से रोका जाय। सिंडीकेट इस प्रयत्न में सफल हुआ। शक्कर का उत्पादन कम किया गया और १९३८-३९ में केवल ६,५१,००० टन शक्कर ही बनाई गई। द्वितीय महायुद्ध के समय शक्कर के उद्योग की स्थिति संतोषजनक नहीं रही। उत्पादन में घटा-बढ़ी होती रही। जहाँ १९३८-३९ में मिलों से ६॥ लाख टन शक्कर बनी वहाँ १९३९-४० में उत्पादन बढ़कर १३.९ लाख टन हो गया। आयात शक्कर की मात्रा में भी कमी हो गई। १९३९-४० से १९४१-४२ तक ३४ हजार टन से कम होकर २४ हजार टन के लगभग रह गई। उसके बाद से ही शक्कर के उत्पादन में वृद्धि होती रही है। १९४२ में शक्कर के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए निर्यात प्रतिबन्धों को हटा दिया गया, किन्तु उत्पादन का कोटा (Quota) केवल उत्तर प्रदेश व बिहार राज्यों में ही था, जिससे शक्कर उत्पादन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। एक ओर युद्ध के कारण माँग बढ़ रही थी, दूसरी ओर उत्पादन कम हो रहा था, अतः शक्कर की कीमतें बढ़ने लगीं। अतएव, आयात कर बढ़ा कर ७) से ११॥=) प्रति हंडरवेट कर दिया गया। सन् १९४७ में शक्कर का विनियंत्रण कर दिया गया जिससे शक्कर की कीमतें बढ़ने लगीं तथा शक्कर का अभाव प्रतीत होने लगा। अतः गन्ने के कर (Cess) में ५०% की कमी की गई। कारखानों में उत्पादन ४% अधिक होने पर सरकार ने ऐसे कारखानों आबकारी कर में छूट करदी (जो प्रति हंडरवेट पीछे ३ रु० था)। कारखानों के विस्तार के लिये सीमेंट, लोहा आदि आवश्यक सामग्री पर्याप्त मात्रा में दी गई। गन्ने का मूल्य भी कम किया गया। अतः १९४७-४८ और १९४८-४९ में शक्कर का उत्पादन बढ़ा, किन्तु गन्ने के कृषि क्षेत्र में कमी और गन्ने से प्राप्त होने वाले रस में कमी होने से १९४९-५० में शक्कर का उत्पादन कम हुआ। १९५० में शक्कर के उद्योग पर

से संरक्षण उठा लिया गया। १९५२-५३ से शक्कर की वार्षिक खपत १६ लाख टन हो गई जो पहले १२ लाख टन थी। इससे शक्कर का आयात पुनः करना पड़ा। यह आयात १९५३-५४ में २'५ लाख टन और १९५४-५५ में ७'६ लाख टन था। अब शक्कर की वार्षिक खपत १८ लाख टन है। १९५५-५६ में कुल उत्पादन १८ लाख ६२ हजार टन का हुआ। इतना उत्पादन पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भागों में पेराई का मौसम कुछ बढ़ा देने से ही सम्भव हो सका है।

अगले पृष्ठ की तालिका में इस उद्योग के विकास सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं।[1]

उद्योग का स्थापन :

समस्त देश के लगभग ६५% कारखाने उत्तर प्रदेश और बिहार में स्थित हैं जिनमें कुल देश के उत्पादन का ८५% प्राप्त होता है, शेष ८% बम्बई, ४% आंध्र और ३% अन्य राज्यों से। इस उद्योग के उत्तरी भारत—उत्तर प्रदेश और बिहार—में केन्द्रित होने के निम्न कारण हैं—

(१) गंगा नदी की घाटी की उर्वराशक्ति अधिक है जिसमें लाई हुई मिट्टी में गन्ने के उत्पादन में बहुत कम व्यय होता है। भूमि अधिक उपजाऊ होने के कारण मुख्य गन्ने की पट्टी में गन्ना बिना ही सिंचाई के पैदा किया जाता है। पश्चिमी भागों में नल कूपों द्वारा सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं। चूँकि गन्ना तोल में घट जाने वाला पदार्थ है (गन्ने में ९ से १२% तक शक्कर मिलती है, अतः खेत काटने के १४ घंटे के अन्दर ही यदि गन्ने को पेरा जाय तो अधिक शक्कर निकलती है) अतः इस प्रदेश के अधिकांश कारखाने ऐसे ही स्थानों में स्थित हैं जहाँ गन्ना शीघ्र प्राप्त हो सकता है।

(२) शक्कर बनाने के लिए गन्ना पेरने के बाद जो पाते (Bagasse) बच रहते हैं उन्हीं को भट्टों में जला कर शक्ति उत्पादन करते हैं। उत्तर भारत में इस पाते के अतिरिक्त बहुत से कारखानों में (जो तराई प्रदेश के निकट हैं) लकड़ी भी जलाने के लिए आसानी से मिल जाती है अतः कोयले के क्षेत्रों से दूर पर भी इनको शक्ति सम्बन्धी समस्यायें अधिक परेशानी नहीं देती।

(३) शक्कर के कारखानों में जल की आवश्यकता को नहरों अथवा नल-कूपों द्वारा पूरा किया जा सकता है।

(४) शक्कर के धंधे में कुशल मजदूरों की आवश्यकता बहुत कम होती है। अकुशल मजदूर गाँवों में सस्ती मजदूरी पर सब कहीं यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं।

(५) उपभोग के लिए विस्तृत बाजार भी पास ही है, अतः कारखानों से उपभोग के केन्द्रों तक शक्कर पहुँचाने में अधिक व्यय नहीं होता।

---

१. Major Industries of India Annual: 1954-55, p. 175.

शक्कर उद्योग की प्रगति

वर्ष	मिलों की संख्या	कुल उत्पादन (००० टनों में)	गन्ने के रस में उन्नति (% में)	प्रति एकड़ पीछे शक्कर का उत्पादन (टनों में)	गन्ने का क्षेत्रफल (००० एकड़ में)
१९३८-३९	१३९	६५१	९·२९	१३·५	२,६६३
१९४४-४५	१३६	९४२	१०·८८	१३·७	३,५४७
१९४९-५०	१३९	९७९	९·८८	१३·६	३,६२४
१९५०-५१	१३८	१,१००	९ ९९	१३·३	४,२१४
१९५३-५४	१३४	१,००८	९·९६	१२·८	३,४९८
१९५४-५५	१३६	१,६००	१०·००	१३·१	३,९९४

(६) उत्तरी भारत में बड़े-बड़े चौरस मैदान हैं जिनमें गन्ने की फसलों के चक के चक बना दिये जाते हैं। यह बात आधुनिक बड़े-बड़े शक्कर के मिलों की माँग पूरी करने के लिये बहुत आवश्यक है। जबकि दक्षिणी भारत में जहाँ कि टूटे हुए पठार हैं (बम्बई दकन के कुछ मिलों की जागीरों को छोड़ कर) गन्ने की फसलों के घने चक कहीं नहीं पाये जाते हैं। बम्बई और मद्रास में लगभग ६५ और ६७% तथा मैसूर और हैदराबाद में १००% गन्ना सिंचाई द्वारा पैदा किया जाता है। इन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन भी अत्यन्त सीमित हैं, इसलिए यहाँ गन्ने के बड़े-बड़े चक नहीं बनाये जा सकते।

उत्तर प्रदेश में शक्कर के कारखाने अधिकांशत: मेरठ और रुहेलखंड जिलों में ही पाये जाते हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र कानपुर, गोरखपुर, मेरठ, पीलीभीत, लखनऊ, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर और फैजाबाद हैं।

चीनी के उत्पादन में दूसरा स्थान बिहार का है। यहाँ उत्तरी बिहार में सारन, चंपारन, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा जिलों में कारखाने स्थित हैं। दक्षिणी बिहार के मुख्य केन्द्र बिहटा, बक्सर, जामी और डेरी-आन-सोन हैं।

दक्षिणी भारत में इस उद्योग के केन्द्र बम्बई और आंध्र राज्यों में है। बम्बई के मुख्य केन्द्र मनमाड़, अहमदनगर, मिराज, पूना, बेलापुर, बीजापुर, धारवाड़ और शोलापुर में हैं।

आंध्र में शक्कर के प्रमुख केन्द्र होजपेट, बेजवाड़ा और पीथापुरम में हैं। पंजाब में शक्कर का उत्पादन हमीरा और फागवाड़ा में तथा राजस्थान में भूपालसागर और गंगानगर में होता है।

नीचे की तालिका में शक्कर के उद्योग का क्षेत्रीय वितरण बताया गया है :—

राज्य	मिलों की संख्या (१९४९–५०)	उत्पादन टनों में (१९४९–५०)	मिलों की संख्या (१९५२–५४)	उत्पादन टनों में (१९५२–५४)
उत्तर प्रदेश	६६	५,०८,२३०	७२	६,६६,८००
बिहार	३०	२,२२,५२४	३०	२,७२,८००
पंजाब	१	६,२४२	१	१६,१००
मद्रास	११	६०,६१०	१६	८०,६००
बम्बई	१४	१,११,२५३	१५	१,३८,८००
पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा	३	५,३५०	४	७,२००
अन्य राज्य (राजस्थान, केरल, मैसूर, मध्य प्रदेश, आदि	१४	५४,३८४	२०	१,४१,१००
योग	१३९	१०,००,०००	१५८	१३,५६,४००

१६५३–५४ में १६० मिलों में से केवल १३४ मिल ही वास्तव में शक्कर उत्पादन कर रहे थे। इनमें से ६६ उत्तर प्रदेश में; २७ बिहार में; १२ मद्रास में; १३ बम्बई में; १ पश्चिमी बंगाल; १ उड़ीसा; १ पंजाब; तथा १३ अन्य राज्यों में थे।

उत्पादन, उपभोग तथा व्यापार :

भारत की शक्कर के उत्पादन को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है :—(१) आधुनिक शक्कर बनाने वाली मिलें जो मशीनों से गन्ने पेर कर दानेदार शक्कर बनाती हैं; (२) आधुनिक फैक्टरियाँ जो गुड़ से शक्कर बनाती हैं और (३) शक्कर बनाने का पुराना तरीका जिसको खांडसारी (Khandsari) शक्कर कहा जाता है। इन सबमें प्रथम प्रकार का शक्कर बनाने का तरीका उत्तम और सस्ता है। हमारे देश में अधिकांश शक्कर इसी तरीके द्वारा बनाई जाती है। पिछले कुछ वर्षो से भारतीय शक्कर के कारखानों और खाँडसारी से इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होने लगी है कि वह भारत की माँग से अधिक होती है अतः भारत अब शक्कर के मामले में आत्म-निर्भर हो गया है।

देश में शक्कर की माँग चाय पीने की आदत के साथ-साथ बढ़ती जा रही है। इस समय हमारे देश में प्रति व्यक्ति पीछे प्रतिवर्ष शक्कर की खपत २७ पौंड होती है और इसमें गुड़ की खपत भी शामिल है। भारत के विभिन्न भागों में यह खपत इस प्रकार है—पंजाब में ३६ पौंड, उत्तर प्रदेश में ४० पौंड, बम्बई में १८ पौंड, बंगाल में १५ पौंड और बिहार में केवल १० पौंड। जबकि विदेशों में प्रति व्यक्ति पीछे शक्कर की खपत काफी अधिक है—यथा संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में १०० पौंड; इङ्गलैंड में १०३ पौंड; डेनमार्क में १०० पौंड; आस्ट्रेलिया में १३० पौंड; न्यूजीलैंड में १०८ पौंड; जर्मनी में ७१ पौंड; फ्रांस में ६० पौंड और आयरलैंड में ११६ पौंड है। अत. यह आवश्यक है कि देश में शक्कर के उत्पादन के साथ-साथ शक्कर के उपभोग में भी वृद्धि करने के उपाय किए जायँ।

सन् १६३७ के शक्कर सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार भारत बर्मा को छोड़ कर अन्य किसी देश को शक्कर नहीं भेज सकता था, किन्तु १६४७ में युद्ध छिड़ जाने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय समझौता नहीं चल सका। उसी समय भारत में शक्कर का उद्योग इस तेजी से बढ़ा कि देश की आन्तरिक आवश्यकता से भी अधिक उत्पादन होने लगा। अतएव भारत को ब्रिटेन को शक्कर भेजने की अनुमति मिल गई। जब जापान से युद्ध छिड़ गया और जावा तथा फिलीपाइन से शक्कर मिलना बन्द हो गया तो बृटिश राज्य में केवल भारत ही शक्कर उत्पादन करने वाला देश रह गया। अतः भारत को बृटिश साम्राज्य, ईरान, ईराक आदि देशों को भी शक्कर भेजनी पड़ी। भारत में शक्कर का बाजार बड़ा परिवर्तनशील है क्योंकि शक्कर के मूल्य में वृद्धि हो जाने से मांग में कमी आ जाती है। देश को विदेशी मुद्रा की आवश्यकता के कारण चीनी के निर्यात का प्रश्न फिर अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। फिलहाल ५० हजार टन चीनी के निर्यात की अनुमति सरकार द्वारा दी गई है।

शक्कर उद्योग की समस्याएँ :

इस उद्योग के मार्ग में कई प्रकार की कठिनाइयाँ हैं जिनमें से मुख्य यह हैं :—

(१) भारतीय मिलों को पर्याप्त मात्रा में गन्ना नहीं मिलता और जो गन्ना मिलता है वह बढ़िया प्रकार का नहीं होता तथा उसमें जो रस की मात्रा होती है वह भी कम होती है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत के मोटे गन्ने में मिठास का अंश अधिक होता है। यहाँ १० मन से भी कम गन्नों में १ मन शक्कर निकल आती है। बम्बई राज्य में प्रति एकड़ औसत उपज क्रमशः ४० टन और ३ टन शक्कर है। दक्षिण में कई जगह एक एकड़ भूमि से १०० टन गन्ना और ११ टन शक्कर प्राप्त की गई है। किंतु उत्तरी भारत में ११ से १६ मन गन्नों में १ मन शक्कर बैठती है। यहाँ की प्रति एकड़ औसत पैदावार ११ से १८ टन तक गन्नों की है और १ एकड़ से ·७ और १·५ टन के बीच में शक्कर प्राप्त होती है। शक्कर की मिलों को पर्याप्त मात्रा में गन्ना नहीं मिलने का मुख्य कारण यह है कि बहुत-सा गन्ना गुड़ पैदा करने में उपयोग में आ जाता है। लगभग ६०% गन्ना गुड़ और खांडसारी तथा २५% दानेदार शक्कर बनाने में काम आता है।

(२) गन्ने की प्रति एकड़ उपज बहुत ही कम है। भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज क्यूबा की $\frac{1}{3}$, जावा की $\frac{1}{4}$ और हवाई की $\frac{1}{5}$ है। गन्ने की खेती के तरीकों में उन्नति करने के साथ-साथ यह आवश्यक है कि गन्ने की खेती का दक्षिण में अधिक प्रचार हो जहाँ प्रति एकड़ पीछे अधिक पैदावार होती है। भारत में अभी तक एक एकड़ गन्ने के खेत से १·३ टन शक्कर मिलती है जबकि क्यूबा और हवाई में २·० टन और ६·४ टन शक्कर प्राप्त होती है। अर्जेनटाइना में ५ टन; रियूनियम में ६·४ टन; जावा में २·२ टन होती है।

(३) हमारे गन्ने पैदा करने वाले प्रदेश अधिकतर मिलों के पास नहीं हैं जिससे गन्ना खेतों से मिलों तक पहुँचता है तब तक बहुतसा रस सूख जाया करता है। इसके अतिरिक्त खेतों से मिलों तक गन्ना लेजाने के लिये यातायात के साधनों की भी कठिनाई रहती है। पश्चिमी देशों की तरह हमारे यहाँ बहुत थोड़ी मिलें स्वयं गन्ना पैदा करती हैं।

जावा में गन्ने के खेत शक्कर की मिलों के समीप हैं और वहाँ शक्कर बनाने की रीतियों में गन्ने के मिठास की क्षति नहीं होती। जावा में शक्कर बनाने में कई गौण वस्तुएँ भी प्राप्त होती हैं जिनमें शराब (Rum) और स्प्रिट (Mythelated Spirit) विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भारत में ऐसी कोई सुविधा नहीं है। यहाँ गन्ने की खेती किसानों के हाथ में है जिन पर शक्कर के मिल मालिकों का कोई प्रभाव नहीं होता। इन किसानों के पास छोटे-छोटे खेत होते हैं और बहुधा फसल के तैयार होने पर गन्ना नहीं कट पाते। गन्ने के ये खेत शक्कर की मिलों से बहुत दूर होते हैं। अतः शक्कर की मिलों तक गन्ने को लाने में बड़ा खर्च पड़ता है। इससे शक्कर का उत्पादन व्यय भी बढ़ जाता है।

मद्यसार को पैट्रोल में मिला कर ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। मद्यसार के अन्य औद्योगिक उपयोग ये हैं :—

प्लास्टिक की वस्तुएं, पौलीएथीलीन, पौलीएसीटीन, पोलीविनील, क्लोराइड तथा पौलीविनील एक्टेट के निर्माण में तथा घुलने वाले पदार्थ यथा—रोस्टोन, एसिटिक एसिड, और मिश्रित रवड़ में प्रयोग।

शीरे का उपयोग कागज बनाने, एसफाल्ट मिलाकर सड़कें बनाने, पशुओं को खिलाने, खेतों में खाद देने तथा जलाने के लिए किया जाता है।

द्वितीय योजना में मद्यसार की उत्पादन क्षमता ३६ लाख गैलन और वास्तविक उत्पादन १८ लाख गैलन पावर मद्यसार और १२ लाख टन औद्योगिक मद्यसार का रखा गया है।

भारत में एलूमीनियम उद्योग (Aluminium Industry)

भारत में एलूमीनियम पहले पहल १९४३ में विदेशों से मंगाये गये एलूमीना (Bauxite) धातु से बनाया गया। इस समय भारत में एलूमीनियम बनाने वाले दो बड़े कारखाने हैं जो एलूमीनियम के पिण्ड बनाते हैं।

(१) पहला कारखाना दी इण्डियन एलूमीनियम कम्पनी है जिसमें लगभग २ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और लगभग १½ हजार मजदूर काम करते हैं। बाक्साइट के क्षेत्र, शक्ति के साधन और आर्थिक व्यवस्थाओं के कारण इस कम्पनी का कार्य भिन्न-भिन्न स्थानों में किया जाता है—(अ) बाक्साइट की खानें विहार में लोहार डागा जिले में हैं जहाँ से प्रति महीने १ हजार टन धातु निकाला जाता है। (ब) एलूमीनियम साफ करने का कारखाना बिहार में भूरी नामक स्थान पर है, यहाँ कच्ची धातु से एलूमीना बनाया जाता है। वार्षिक उत्पति लगभग ५,००० टन है। (स) एलूमीना से एलूमीनियम बनाने का कारखाना केरल राज्य में अलवाड के निकट अलपुरम् में है क्योंकि यहाँ पापानासम् जल-विद्युत शक्ति गृह से सस्ती बिजली प्राप्त हो जाती है। (द) बंगाल में हावड़ा के निकट एलूमीनिग्रम के पिण्ड बनाने का कारखाना कलकत्ता के निकट बैलूर में है।

(२) एलूमीनियम कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड नामक दूसरी कम्पनी का कारखाना विहार में आसनसोल के निकट जे०के० नगर में स्थित है। इसमें ९० लाख की पूंजी लगी है तथा लगभग १५०० मजदूर काम करते हैं। यह पूरी तौर पर स्वावलम्बी कारखाना है क्योंकि एलूमीना को ठीक करने, वैज्ञानिक विश्लेषण करने और उसको गलाकर पिण्ड बनाने का सभी काम एक ही स्थान पर होता है।

इन दोनों कारखानों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता ७२०० से ७५०० टन एलूमीनियम पिण्ड तैयार करने की है। किन्तु सभी रूपों में एलूमीनियम की वर्तमान माँग २०,००० टन वार्षिक है, अतएव शेष कमी आयात करके पूरी की जाती है। अगली तालिका में भारत में एलूमीनियम का उत्पादन और आयात के आँकड़े दिये गये हैं :—

(टनों में)

वर्ष	उत्पादन	आयात
१९४८	३,३६२	—
१९५०	३,५९६	—
१९५३	३,७५८	४,७८६
१९५५	७,२२५	

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में एलूमीनियम की माँग बढ़कर ३० हजार टन तक पहुँचने का अनुमान लगाया गया है, अतएव इस माँग की पूर्ति के लिये यह निश्चित किया गया है कि वर्तमान कारखाने को विस्तार करके २.५००० टन, हीरा कुण्ड क्षेत्र में नये कारखाने से १०,००० टन और एक और नये कारखाने से जो कोल्हापुर, रीहान्ड बाँध अथवा सलेम जिले में स्थापित किया जायगा १०,००० टन एलूमीनियम प्राप्त किया जाय।

१०० टन एलूमीनियम बनाने में लगभग ५०० टन बाक्साइट, ६०० टन कोयला, ५० टन चूना, ५०० टन पेट्रोलियम कोक, २५ टन कोलतार, ३० टन कास्टिक सोडा, ५० टन हार्ड कोक और लगभग २० लाख से २४ लाख किलोवाट विद्युत की आवश्यकता पड़ती है। इस दृष्टि से बिहार इस उद्योग के लिये बहुत ही उपयुक्त है क्योंकि दामोदर घाटी से कोयला, रांची से बाक्साइट, (९० मील दूर), आसाम के डिगबोई तेल क्षेत्र से पेट्रोलियम कोक और मध्य प्रदेश और बिहार की चूने की खानों से सम्बन्धित पदार्थ आसानी से इकट्ठे किये जा सकते हैं। कलकत्ता के बन्दरगाह द्वारा क्रायोलाइट, एलूमीनियम, फ्लूराइड, सोडा, ऐश, और कास्टिक सोडा विदेशों से आयात किया जाता है।

भारत में रबड़ उद्योग (Rubber Industry)

भारत में रबड़ की बनी वस्तुएं तैयार करने का उद्योग अपेक्षाकृत नया है। कदाचित भारत ही एक मात्र देश है जहाँ कच्चे रबड़ का उत्पादन और आधुनिक ढंग पर रबड़ की वस्तुएँ तैयार करने के उद्योग एक साथ ही प्रतिष्ठित हैं। भारत में रबड़ चढ़ा कपड़ा तैयार करने वाले सर्व प्रथम कारखाने ने १९२० में काम करना आरम्भ किया। इसके उपरान्त केबिल बनाने का एक कारखाना स्थापित किया गया। १९२८ में तिरुवांकुर की सरकार ने त्रिवेन्द्रम में विभिन्न प्रकार की रबड़ की वस्तुओं का एक कारखाना खोला। इस पथ पर प्रथम महत्वपूर्ण कदम १९३३ में उठाया गया। इस वर्ष मैसर्स बाटा शू कम्पनी की स्थापना हुई। अगले ही वर्ष १९३४ में जार्ज स्पेन्सर मोल्टन एण्ड कम्पनी की इण्डियन सब्सीडियरी कं० का जन्म हुआ। जार्ज स्पेन्सर मोल्टन एण्ड कम्पनी ब्रिटेन में मशीन द्वारा रबड़ की वस्तुएं तैयार करने वाली प्रमुख कम्पनी थी। भारत में टायर उद्योग १९३५-३६ में आरम्भ हुआ। उस वर्ष पश्चिमी बंगाल में मैसर्स डनलप का एक कारखाना खुला। यहाँ प्रसंगवश यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि टायर उद्योग एक बहुत ही विशिष्ट ढंग का उद्योग है और वह अनवरत तथा स्थायी प्रगति तभी कर सकता है

जब इस दिशा में निरन्तर अनुसंधान कार्य होता रहे। टायर उद्योग के इतिहास में १९३५-३६ के बाद १९३८-४० का विशेष महत्व है जब मैसर्स फायरस्टोन ने बम्बई में टायर बनाने का एक कारखाना स्थापित किया। द्वितीय महायुद्ध ने इस उद्योग को विशेष बल दिया है।

भारत में ५७ कारखाने रबड़ की वस्तुएं तैयार कर रहे हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की रबड़ की वस्तुएं उदाहरणार्थ मोटर गाड़ियों, टैक्सियों, हवाई-जहाजों तथा ट्रैक्टरों के टायर-ट्यूब, रबड़ के जूते, कचकड़ा, औद्योगिक पट्टे, पंखों के पट्टे, रबड़ की नलियां, मुलायम स्पंज और रबड़ चढ़े कपड़े आदि तैयार होती हैं।

अनुमान है कि रबड़ उद्योग में लगभग १३ करोड़ रु० की पूंजी लगी हुई है और यह उद्योग लगभग १८,००० व्यक्तियों को जीविका प्रदान कर रहा है।

पिछले तीन वर्षों में हमने प्रतिवर्ष औसतन १ करोड़ ९८ लाख रुपये के मूल्य का रबड़ का सामान् विदेशों में भेजा और इसी अवधि में औसतन ५१·७ लाख रुपये का माल प्रतिवर्ष बाहर से मंगाया।

यदि देश को रबड़ की बनी वस्तुओं के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर होना है तो यह आवश्यक है कि देश के रबड़ उद्योग का विकास इन दिशाओं की ओर भी किया जाय :—

(१) हवाई जहाज में ईंधन डालने वाली नलियों, तैरने वाली टैंकर, डिस्चार्ज नलियाँ और हाइड्रोलक ब्रेक नालियाँ।

(२) आग बुझाने वाली नलियाँ जो प्रतिवर्ग इंच २०० पौंड का भार सह सकें।

(३) बैटरी सेपेरेटर और सर्जरी या चीर-फाड़ में काम आने वाला रबड़ का सामान।

(४) भारतीय जल सेना के लिए रबड़ की प्राण-रक्षक जैकिटें।

इस उद्योग में काम आने वाले कच्चे माल में गंधक और काले कार्बन का प्रमुख स्थान है। इनके अतिरिक्त जिक आक्साइड, विशेप प्रकार की मिट्टियों तथा बेराइट्स, टायर कॉर्ड (Tyre Cord), बीडवायर (Bead Wire), एक्सलैरेटर (Accelerators), एन्टी आक्सीडेन्ट्स (Anti-Oxidents) तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से कुछ विदेशों से मँगाये जारहे हैं।

भारतीय रबड़-उद्योग प्रतिवर्प लगभग २७,००० टन कच्चा रबड़ काम में ला रहा है (इसके विपरीत देश में प्रतिवर्प लगभग २२,००० टन कच्चे रबड़ का उत्पादन होता है।) रबड़ उद्योग में लगभग ६,००० टन काला कार्बन प्रयुक्त हो रहा है।

प्रमुख वस्तुओं का अभीष्ट विस्तार अगली सारिणी में दिया गया है:—

क्रमांक (१)	वस्तु का नाम (२)	१९५४ (३)	उत्पादन क्षमता (४)	१९६०–६१ तक अभीष्ट क्षमता (५)	वृद्धि मोटे तौर पर (६)
१.	बहुत भारी टायर	३,०५,४९५	५,८३,४००	७,५०,०००	१,६०,०००
२.	बहुत भारी ट्यूबें	२,४८,७९२	५,६२,४००	६,५०,०००	९०,०००
३.	यात्रा के लिए टायर	१,४०,७५३	३,३७,०००	४,००,०००	६०,०००
४.	यात्रा के लिए ट्यूबें	१,५०,०३०	३,६१,०००	४,००,०००	४०,०००
५.	साइकिलों के लिए टायर	३०.१३,४८१	५७,७०,३००	१,२०,००,०००	६०,००,०००
६.	साइकिलों के लिये ट्यूबें	२९,२५,७२०	८१,२७,९००	१,२०,००,०००	४०,००,०००
७.	ट्रैक्टरों के टायर	११,११६	२६,१३६	३२,०००	६,०००
८.	ट्रैक्टरों की ट्यूबें	११,७८४	२९,९७६	३०,०००	६,०००
९.	हवाई जहाज के टायर	२,३६५	६,६००	७,०००	४००
१०.	हवाई जहाज की ट्यूबें	१,००८	५,७००	६,०००	३००
११.	रबड़ के जूते	१,६५,९४,५७२ जोड़े	४,११,३१,२०० जोड़े	५,००,००,००० जोड़े	९०,००,००० जोड़े

भारत में चमड़ा व जूता उद्योग
(Indian Leather and Shoe Industry)

हमारी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में चमड़ा और चमड़े की वस्तुओं के उद्योगों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में जितने पशु हैं, उतने पशु संसार के किसी देश में नहीं हैं। हमारे यहाँ प्रतिवर्ष ५०० लाख चाम और खालें होती हैं।

चमड़ा उद्योग का वर्गीकरण निम्न चार मुख्य विभागों में किया जा सकता है :—

(१) चाम और खालों का कमाना।

(२) जूते बनाना।

(३) यात्रा का सामान आदि बनाना।

(४) मशीनों के पट्टे और उद्योगों में काम आने वाली अन्य चीजों यथा पिकर, पिकिंग बैण्ड और रोलरों के खोल आदि का निर्माण।

चमड़ा कमाने के उद्योग में निम्न चार वर्ग हैं :—

(i) गाँवों से पुराने ढङ्ग से चमड़ा कमाने का उद्योग (Village tanners) इस धंधे में व्यवस्थित रूप से लगे हुए लोगों की संख्या का निश्चित अनुमान नहीं है। पर भारत के प्रत्येक गाँव में चर्मकारों के घर होते जो इस धंधे को कुटीर उद्योग के आधार पर करते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि लगभग ८० लाख टुकड़े गाय-भैंस के चमड़े के और २० से ४० लाख टुकड़े भेड़-बकरी के चमड़े के गावों में फैले हुए चर्मकारों द्वारा प्रति वर्ष कमाये जाते हैं।

(ii) चीनी क्रोम चमड़ा पैदा करने वाले (Chinese Chrome tanners)—भारत में लगभग २५० क्रोम चमड़ा तैयार करने वाले कारखाने (tanneries) हैं जो सभी चीनी लोगों के नियंत्रण और व्यवस्था में हैं। ये अधिकतर कलकत्ता के तांगरा क्षेत्र में स्थित हैं। जूतों के ऊपरी भाग में लगने वाला क्रोम-चमड़ा इन टेनरीज में तैयार किया जाता है। इनमें लगभग २५ लाख चमड़े के टुकड़े (४ करोड़ रुपये के मूल्य के) कमाये जाते हैं। इनमें लगभग ३,००० व्यक्ति काम करते हैं।

(iii) ईस्ट इण्डिया कमाया चमड़ा तैयार करने वाली टैनरीज—यह चमड़ा मद्रास और वम्बई स्थित अर्द्ध-कुटीर उद्योग के आधार पर चलने वाली टैनरीज में तैयार किया जाता है। ईस्ट इण्डिया टेन्ड लेदर के नाम से यह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रसिद्ध है। इन कुटीर उद्योगों की संख्या ४०० के लगभग है जिनमें १ करोड़ ६० लाख स्किन और १ करोड़ हाइड तैयार होते हैं। इसमें लगभग ३४,५०० व्यक्ति लगे हैं।

(iv) यंत्रचालित टैनरीज—इनकी संख्या लगभग ३४ के है जिनमें २६ बड़ी-बड़ी टैनरीज हैं। इनमें वनस्पतियों द्वारा चमड़ा कमाया जाता है। इनकी उत्पादन शक्ति लगभग ३२ लाख वेजीटेबल टैंड चमड़े और २० लाख टैंड क्रोम की है। लगभग ८,००० व्यक्ति इनमें काम करते हैं। कानपुर, कलकत्ता और मद्रास इनके प्रधान केन्द्र हैं।

चमड़ा कमाने के बड़े-बड़े कारखाने शहरी क्षेत्रों में मुख्यतः मद्रास, कानपुर, कलकत्ता और बम्बई के आस-पास हैं। देश में जितना चमड़ा कमाया जाता है, उसका २५% माल इन बड़े कारखानों में तैयार होता है।

देश में चमड़ा कमाने के ७२४ कारखाने हैं जिनमें से ४०९ कारखाने तो ऐसे हैं जिनमें १० से कम कर्मचारी काम करते हैं; ९८ कारखाने ऐसे हैं जिनमें १० से लेकर १९ तक कर्मचारी काम करते हैं; १४३ कारखानों में २० से लेकर ४९ तक कर्मचारी हैं और ७४ कारखाने ऐसे है जिनमें ५० से अधिक कर्मचारी लगे हुए हैं।

इस उद्योग में कुल ९॥ करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई है। चमड़ा कमाने के उद्योग का मुख्य कच्चा माल है चाम और खालें। विभाजन हो जाने और पाकिस्तान बन जाने के कारण गाय-भैंसे की कच्ची खालों की पर्याप्त उपलब्धि में कुछ कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं। इन कच्ची खालों की उपलब्धि के कुछ महत्वपूर्ण केन्द्र पाकिस्तान में रह गये और खालें कमाने के अधिकांश कारखाने भारत में आये। चमड़ा कमाने के देशी उद्योग पर इस स्थिति का काफी हानिप्रद प्रभाव पड़ा। मद्रास, बङ्गाल, उत्तर प्रदेश और बिहार गाय की खाल उत्पन्न करने में सर्व प्रथम हैं। भैंस की खाल के उत्पादन में मद्रास सबसे बड़ा उत्पादक है जो देश की २७% भैंस की खालें उत्पन्न करता है। शेष उत्तरी बङ्गाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब से प्राप्त होती हैं।

भेड़ और बकरियों की खालों की उपलब्धि की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। बकरी की खाल का उत्पादन हमारे देश की आवश्यकताओं से पर्याप्त अधिक है और हम भेड़-बकरियों की खालों का बड़ी मात्रा में निर्यात करते हैं। भेड़-बकरियों की खालों में मद्रास, मैसूर और आंध्र अग्रणी हैं। अतः यह स्पष्ट है कि गाय, बैल, भेड़ और बकरी की खालों के उत्पादन की दृष्टि से मद्रास और मैसूर सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र पंजाब से बङ्गाल तक फैले हुए उत्तरी भारत के मैदान का है।

कमाने के काम आने वाली वनस्पतियों के बारे में भारत पूर्णतः आत्मनिर्भर नहीं है। इन वनस्पतियों में बबूल की छाल और उसका सत बहुत अधिक महत्वपूर्ण है और इसका आयात पूर्वी अफ्रीका से करना होता है। गत तीन वर्षों में इस मात्रा में बबूल की छाल तथा बबूल की छाल का सत आयात किया गया :—

वर्ष	बबूल की छाल (टनों में) केनिया	टांगानीका	बबूल की छाल का सत (टनों में) केनिया
१९५२	१,४७२	४८५	४,७०७
१९५३	७८५	२८३	७,२०३
१९५४	४,१९४	८०	४,०३५

भारत में बबूल का उत्पादन पश्चिमी राजस्थान से उत्तरी पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक होता है। चमड़ा कमाने के काम आने वाला अन्य महत्वपूर्ण वनस्पति पदार्थ आँवला और आँवले का सत, हर्र, बहेड़ा, अवाराम की छाल है। चमड़ा कमाने में कुछ अन्य वस्तुओं का भी प्रयोग किया जाता है यथा; चूना, सोडियम सल्फाइड, बोरिक एसिड, बाइ-क्रोमेट आफ सोडा, गधक का तेजाब आदि। इनमें से अधिकांश वस्तुओं के बारे में देश आत्म-निर्भर ही सा है। इसके अतिरिक्त कॉड, हैरिङ्ग और सील मछलियों का तेल भी काम में लाया जाता है। वनस्पतियों की छालों के अलावा अल्यूमीनियम, अन्डों की जर्दी, जैतून का तेल और आटे के साथ भी चमड़ा कमाया जाता है।

भारत में जो चमड़ा कमाया जाता है वह मुख्यत: निम्न वस्तुओं के बनाने में प्रयोग किया जाता है,— जूते, सफर में काम आने वाला सामान तथा औद्योगिक वस्तुएँ यथा पट्टे, पिकर, पिकिंग बैण्ड और रोलरों के खोल। अभी तक चमड़े का सर्वाधिक प्रयोग जूते बनाने में ही होता है। देश में पशु-वध से जो २५ लाख खालें प्रतिवर्ष प्राप्त होती हैं, उनमें से एक-तिहाई खालें तो असावधानी से खाल उतारने के कारण खराब हो जाती हैं और वे जगह जगह कट जाती हैं। अनुमान है कि दोषपूर्ण ढङ्ग से खाल उतारने के कारण प्रतिवर्ष १६ लाख रुपये की हानि होती है। जो जानवर अपने आप मरते हैं उनकी खाल उतारने में खाल में बीच-बीच में निशान तो नहीं आते लेकिन उनके साथ माँस अधिक कट आता है जिससे उनको कुछ समय तक रखने में बड़ी कठिनाई आती है। इस प्रकार जो हानि होती है वह ६० लाख रुपये तक होने का अनुमान है। यह हानि कभी-कभी ७०—८० लाख रुपये तक पहुँच जाती है।

जूता उद्योग (Shoe Industry) :

भारत में जितना चमड़ा बनता है उसका दो-तिहाई भाग जूता बनाने के उद्योग में खपत है। अनुमान है कि भारत में १९५४ में सभी प्रकार के ८॥—९ करोड़ जोड़े जूते बने। इनमें से १॥ करोड़ जोड़े विदेशी प्रकार के और शेष देशी ढंग के थे।

भारत में जूते बनाने के १२ बड़े कारखाने हैं जिनमें ५० से अधिक व्यक्ति काम करते हैं और उन्हें चलाने में विद्युत शक्ति प्रयोग की जाती है। इन १२ कारखानों में से ७ कारखाने उत्तर-प्रदेश में हैं और मद्रास, प० बंगाल, पंजाब, बिहार तथा मैसूर में एक-एक कारखाना है। ये कारखाने साल में पश्चिमी ढंग के ५९·७५ लाख जोड़े जूते तैयार कर सकते हैं किन्तु पूर्ण उत्पादन क्षमता से इनमें काम नहीं होता है। गत ३ वर्षों में उत्पादन के आँकड़े इस प्रकार हैं:—

	उत्पादन (लाख जोड़ों में)			
स्थापित उत्पादन-क्षमता	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५
पश्चिमी ढंग के जूते ५९·७५	३३·६६	३३·४७	३२·६८	३२·४२
देशी जूते (ये हाथ से बनते हैं इसलिये इनकी उत्पादन क्षमता मांग के अनुसार घटती बढ़ती रहती है)	१८·०६	२२·०४	२०·६२	२३·०२

देश में जूते की जितनी आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति अधिकांशतः छोटे कारखाने तथा कुटीर उद्योग करते हैं जो देश भर में फैले हुए हैं। इस उद्योग के मुख्य केन्द्र आगरा, कानपुर, जयपुर, बम्बई तथा कलकत्ता हैं।

जूते की देश में जितनी माँग होती है, उसकी पूर्ति देश में बने माल ही से होती है। जूतों का आयात तो नगण्य है। हाल के कुछ वर्षों से खासा निर्यात बाजार भी बन गया है। भारत से औसतन १० लाख जोड़े जूते जिनका मूल्य ११०-१२० लाख रु० होता है, प्रतिवर्ष निर्यात किये जाते हैं। इन निर्यात बाजार के विस्तार की पर्याप्त गुंजाइश है, किन्तु भारत को ब्रिटेन तथा चैकोस्लोवाकिया से कड़ी प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना होता है।

चमड़े के जूते के अलावा देश में कपड़े और रबड़ के जूते भी बनते हैं। देश में इस तरह के जूते बनाने के १९ कारखाने हैं जो कपड़े और रबड़ के ३ करोड़ जोड़े प्रतिवर्ष बनाते हैं। इनमें से लगभग २·८ करोड़ जोड़े जूते भारत में खपते हैं और २० लाख जोडे जूते विदेशों को निर्यात किये जाते हैं।

इस समय हमारे देश में ८·४ से लेकर ८·९ करोड़ जोड़े जूतों की आवश्यकता है। आशा है कि अगले ५ वर्षों में यह माँग बढ़कर १० करोड़ जोड़ों तक की हो जायगी। जूतों की आवश्यकता के सम्बन्ध में इस समय हमारा देश पूर्णतः आत्मनिर्भर है और बढ़ी हुई माँग पूरी करने के लिये भी देश में सुविधायें प्राप्त है।

भारत में वनस्पति घी उद्योग (Vegetable Ghee Industry)

भारत में वनस्पति तैयार करने का पहला कारखाना १९३० में खोला गया। परन्तु उस समय केवल २९८ टन ही उत्पादन हुआ। इससे पहले वनस्पति का यूरोप के कुछ देशों से आयात किया जाता था। १९२८ में प्रायः २३००० टन का आयात हुआ था। देश में वनस्पति का कारखाना खुल जाने पर उसके आयात पर शुल्क लगा दिया गया जिसके कारण देश में इस उद्योग की स्थापना को प्रोत्साहन मिला। दूसरे महायुद्ध में साधारण जनता और फौज के लिये वनस्पति की माँग बहुत हुई। घी के भाव तेजी से बढ़ जाने के कारण यह माँग बढ़ी थी। माँग बढ़ने के कारण देश में वनस्पति का उत्पादन भी तेजी से बढ़ा। १९३९ में जहाँ केवल ५२००० टन उत्पादन हुआ था वहाँ १९४६ में १·३५ लाख टन हुआ।

१९४४ में भारत सरकार ने इस उद्योग का नियन्त्रण करने के लिये कानून बनाने की कार्रवाई की। इसी सम्बन्ध में वनस्पति तेल उत्पादन कंट्रोलर

है। इस प्रकार लगभग २० हजार टन माल निर्यात के लिये मिल सकेगा। विदेशों में वनस्पति की काफी माँग है। बहुत से देशों में खाना पकाने के लिये यह अत्यन्त लोकप्रिय हो चुका है। कुछ देशों में प्रति व्यक्ति पीछे वनस्पति की खपत इस प्रकार है :—

	पौण्ड
नारवे	५१·६
नीदरलैण्ड	४०·८
डेनमार्क	४०·१
प० जर्मनी	२८·१
स्वीडन	२७·८
ब्रिटेन	२६·६
अमेरिका	१८·४
कनाडा	१६·८
आस्ट्रेलिया	७·१
भारत	१·६

भारत में साइकिल उद्योग (Cycle Industry)

सर्वसुलभ, सस्ती तथा कुछ तेज चलने वाली सवारी होने के कारण साइकिल भारत में सबसे अधिक लोकप्रिय है। कर्मचारी वर्ग के लिये उपयोगी सवारी तथा उच्च मध्य वर्ग के लिये आराम की सवारी होने के कारण इसकी माँग बराबर बढ़ती जा रही है। कुछ वर्षों पहले देश की साइकिल सम्बन्धी आवश्यकतायें आयात करके ही पूरी की जाती थीं। यह उद्योग जहाँ १९४७ में कुल ४९,००० साइकिलें ही बनाता था, वहाँ १९४५ में ५ लाख साइकिलें बना सकता है।

भारत में साइकिल उद्योग १९३८ में आरम्भ हुआ जब मैसर्स इण्डिया मैन्यूफेक्चरिंग कं० लि० कलकत्ता की स्थापना साइकिल के पुर्जे बनाने के लिये हुई। उसके अगले ही साल दो कम्पनियाँ मैसर्स हिन्दुस्तान बाइसिकिल मैन्यूफेक्चरिंग एण्ड इण्डस्ट्रियल कारपोरेशन लि० पटना और मैसर्स हिन्द साइकिल लि० बम्बई सम्पूर्ण साइकिलें बनाने के लिये स्थापित हुई। द्वितीय महायुद्ध काल में साइकिल उद्योग अधिक प्रगति नहीं कर सका। स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद यह उद्योग तेजी से बढ़ा है। चार नये कारखाने भी स्थापित हुए हैं। ये कारखाने हैं— (१) टी० आई० साइकिल आफ इण्डिया लि० (२) सैन-रैले इण्डस्ट्रीज आफ इण्डिया लि० (३) इण्डिया साइकिल मैन्यूफेक्चरिंग कं० लि०। पहली दो कम्पनियों का सम्बन्ध विख्यात ब्रिटिश निर्माताओं से भी है।

साइकिलों की माँग अधिकाधिक बढ़ने से पुर्जों से साइकिलें बनाने के अधिकाधिक कारखाने स्थापित करने की भी आवश्यकता अनुभव हुई। नवम्बर १९५३ से अब तक इसके लिये १२ योजनाओं की स्वीकृति की जा चुकी है। इन सभी योजनाओं के कार्यान्वित हो जाने से सब कारखानों की एक पाली की

निर्धारित उत्पादन-क्षमता बढ़कर ८,५०,००० साइकिलें प्रतिवर्ष बनाने की हो जायगी। कुछ कारखानों में दो पालियाँ भी चलेंगी इसलिये सम्भावित उत्पादन-क्षमता १० लाख साइकिलें बनाने तक की हो जायगी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में साइकिल उत्पादन में कितनी प्रगति हुई है, यह नीचे की सारणी में विदित हो सकेगा—

वर्ष	कितने कारखानों में उत्पादन हुआ	स्थापित वार्षिक उत्पादन-क्षमता	वास्तविक उत्पादन
१९५१	२	१,२०,०००	१,१४,२७५
१९५२	२	१,२०,५००	१,९६,९५६
१९५३	६	४,१७,५००	२,६४,१९९
१९५४	६	४,३७,५००	३,५०,०००
१९५५	१०	४,९२,०००	२,२१,८६४

साइकिल उत्पादन में वृद्धि होने के अतिरिक्त इस उद्योग की एक विशेष बात यह भी है कि जिन पुर्जों तथा हिस्सों से साइकिल बनती है, उनमें से अधिकांश देश में ही बनाये जा रहे हैं। साइकिल के पुर्जों का निर्माण बड़े-बड़े कारखानों तक ही सीमित नहीं है, वरन बहुत से मध्यम दर्जे के उद्योग और लघु उद्योग भी साइकिल के पुर्जे बनाने में लगे हुए हैं। चेन, फ्रीह्वील, हब और रिम आदि प्रायः सभी पुर्जे देश में तैयार किये जा रहे हैं। विकाश शाखा की सूची में सिर्फ साइकिल के पुर्जे बनाने वाले २३ निर्माताओं के नाम दर्ज हैं जो साल भर में १ करोड़ रु० से अधिक का माल तैयार करते हैं।

१९६०-६१ तक साइकिल बनाने का लक्ष्य यह रखा गया है कि सब बड़े कारखाने १० लाख साइकिलें प्रतिवर्ष बनाने लगें और छोटे पैमाने पर चलने वाले कारखाने २,५०,००० साइकिले बनाने लगे। उद्योग के बड़े-बड़े कारखानों में ३·४ करोड़ रु० की पूँजी मार्च १९५६ तक लग चुकने की सम्भावना थी। इस समय ५,००० कर्मचारी काम करते हैं।

भारत में दियासलाई का उद्योग (Match Industry)—

भारत में दियासलाई का धन्धा कुटीर उद्योग और कारखाना उद्योग दोनों ही प्रकार का है। इस उद्योग का विकास भारत में १९२२ के बाद से ही हुआ है जब कि दियासलाई पर लगने वाले आयात कर को दुगुना कर दिया गया था। इसके पूर्व अपनी आवश्यकतानुसार दियासलाइयाँ विदेशों से मुख्यतः स्वीडेन व नार्वे से आयात की जाती थीं। १९२२ में आयात कर लग जाने से देश में ही विदेशी पूँजी से (मुख्यतः स्वीडिश) इस उद्योग की प्रगति होने लगी। स्वीडेन निवासियों ने वैस्टर्न इंडिया मैच कंपनी (Western India Match Co) के नाम से भारत में कई कारखाने खोले। ये कारखाने क्रमशः बरेली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, धुबरी आदि स्थानों में स्थापित किये गये। स्वीडेन के इन कारखानों से देश की ८०% माँग की पूर्ति होती है।

सन् १९२८ में जब इस उद्योग को संरक्षण दिया गया तभी से इस की विशेष प्रगति हुई है। इस समय भारत में दियासलाई बनाने वाले १३० कारखाने हैं जिनमें २०,००० मजदूर काम करते हैं तथा ३ करोड़ रुपयों से अधिक की पूँजी लगी है।

उद्योग का स्थापन :

दियासलाई के मुख्य कारखाने पश्चिमी बंगाल और मद्रास में ही केन्द्रित है। क्योंकि इस उद्योग के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ इन राज्यों में पाई जाती हैं। इस उद्योग के लिए निम्न बातों की आवश्यकता पड़ती है :—

(१) दियासलाई बनाने में लकड़ी ही प्रधान कच्चा माल है। इसी से दियासलाई की सींकें और डिब्बियाँ बनाई जाती हैं। सीकों के लिए मुलायम लकड़ी जो शीघ्र आग पकड़ सके अच्छी रहती है, तथा डिब्बयों के लिये ऐसी लकड़ी जिसके पतले पर्त बनाये जा सकें, आवश्यक है। अतः इन कार्यों के लिए सेमल, धूप, मुरकत, सुन्दरी, सलाई आदि लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। सुन्दरी बङ्गाल में, सेमल तराई व भाभर में, आम के वृक्ष बम्बई व उत्तर प्रदेश में मिलते हैं लेकिन इनकी पूर्ति किसी भी भाग में काफी नहीं है। अतः अंडमान से पपीता, धूप, दीदू व बकोता की लकड़ियाँ मँगायी जाती है। अतः मंहगी पड़ती हैं।

(२) दियासलाई बनाने में पोटेशियम क्लोरेट, पोटाश, पैराफीन आदि रसायनों की भी आवश्यकता लकड़ी पर बिंदु बनाने और फासफोरस मिश्रण, घर्षण पृष्ठ आदि के लिए पड़ती है। ये सब प्रायः बाहर से मँगवाये जाते हैं।

(३) देश की घनी जनसंख्या होने से न केवल उद्योग के लिए सस्ते और पर्याप्त मजदूर मिल जाते हैं बल्कि दिलासलाई की माँग भी अधिक रहती है। दियासलाई के कारखाने मुख्यतः बम्बई, मद्रास व प० बङ्गाल में स्थित हैं। प० बंगाल इनमें सबसे मुख्य है क्योंकि :—

(१) यहाँ सुन्दरवन से जैनेवा नामक ताजी लकड़ियाँ वर्ष के अधिकांश समय में मिलती रहती हैं अतः अधिक समय तक लकड़ी इकट्ठा करके रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उत्तम जल-मार्गों के कारण लकड़ी के यातायात में कम व्यय पड़ता है। स्वीडन से 'एस्पेन' तथा नीकोबार और अंडमान से धूप, पपीता आदि की लकड़ियाँ भी कलकत्ता बन्दरगाह द्वारा सुविधापूर्वक मँगवाई जा सकती हैं।

(२) पोटेशियम क्लोरेट, फोस्फोरस आदि रासायनिक पदार्थ कलकत्ता से प्राप्त हो जाते हैं।

(३) कोयला झेरिया की खानों से मिल जाता है।

(४) बिहार-उड़ीसा राज्यों से सस्ते मजदूर मिल जाते हैं।

यहाँ के मुख्य केन्द्र २४ परगना में हैं। कलकत्ता में अधिक दियासलाइयाँ बनाई जाती हैं।

बम्बई में कारखानों के लिए लकड़ियाँ पंचमहल के निकटवर्ती जंगली-क्षेत्रों से मिल जाती हैं। यहाँ सेमल, सलाई व आम की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। स्वीडेन से 'एस्पेन' लकड़ी भी आयात की जाती है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बम्बई, अहमदाबाद, थाना, पूना, अम्बरनाथ, पेटलाद (बड़ौदा) आदि हैं।

मद्रास में अधिकांश कारखाने रामनद जिले में हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र चिंगलपुर, रामनद, तिनेवैली, मद्रास आदि हैं।

दियासलाई के अन्य कारखाने उत्तर प्रदेश में मेरठ और बरेली ; मैसूर में शिमोगा ; केरल प्रदेश त्रिवेन्द्रम ; आंध्र प्रदेश में हैदराबाद, वारंगल ; आसाम में धुबरी ; राजस्थान में कोटा ; मध्य प्रदेश में चाँदा और विलासपुर में हैं।

उत्पादन :

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का दियासलाई का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	पेटियाँ (प्रति पेटी में ६० तीलियों वाली ५० ग्रॉस दियासलाई आती है) (००० में)
१९५०	५२३·२
१९५१	६०८·४
१९५४	५४०·०
१९५५	६१४·८

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस उद्योग का विकास इस प्रकार होगा :—

	१९५५–५६	१९६०–६१
उत्पादन-क्षमता	३५·३ करोड़ ग्रॉस	३५·३ करोड़ ग्रॉस
उत्पादन	३२·३ ,,	३५·० ,,
आवश्यकता	—	३५·० करोड़ ग्रॉस

प्रश्न

१. भूमण्डल के सूती वस्त्र व्यवसाय के केन्द्र बतलाइए तथा उनके स्थानीयकरण के कारणों का वर्णन कीजिए। (यू. पी. बोर्ड १९३७-५०)

२. इङ्गलैंड तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से लोहे तथा स्पात उद्योग का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए। उद्योग के स्थानीयकरण के प्रधान कारण भी लिखिये। (रा० बोर्ड १९४७) (आ० बी० कॉम १९४५)

३. जापान के सूती वस्त्र व्यवसाय का विस्तृत वर्णन कीजिए। क्या भारत जापान के माल पर निर्भर है? (रा० बोर्ड १९५०)

४. इङ्गलैंड के सूती वस्त्र-व्यवसाय का विस्तृत वर्णन कीजिए। जापान से उसकी तुलना भी कीजिए। (म० भारत बोर्ड १९५३)

५, ग्रेट ब्रिटेन में किन भौगोलिक और आर्थिक कारणों से सूती वस्त्र-व्यवसाय किया जाता है। इस धंधे की वर्तमान अवस्था और भविष्य की संभावनाओं पर अपने विचार प्रकट करिये। (आ० बी० कॉम १९४३)

६ नीचे लिखे देशों में किन कारणों से लोहे और स्पात का धंधा किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी और इङ्गलैंड। (आ० बी० कॉम १९४४)

७ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में लोहे और स्पात का धंधा किन क्षेत्रों में और क्यों किया जाता है? (आ० बी० कॉम, १९४४)

८. किन कारणों से इङ्गलैंड में सूती वस्त्र-व्यवसाय और लोहे और स्पात का धंधा किया जाता है? (आ० बी० कॉम १९४८–१९४९)

९. नीचे लिखे के कारण बताओ :–. (आ० बी० कॉम. १९४९)

(i) फ्रांस में रेशमी वस्त्र और शराब बनाने का धंधा किया जाता है।

(ii) नार्वे और स्वीडन में लकड़ी चीरने का धंधा किया जाता है।

(iii) डंडी में जूट से वस्त्र बनाये जाते हैं।

(vi) इटली में रेशम का धंधा।

१०. काले देश में लोहे और स्पात के उद्योग के विकास के कारणों पर प्रकाश डालिए। (एम० ए० १९४९)

११. भारत में भारी रासायनिक पदार्थों का भौगोलिक विवरण दीजिए और भविष्य की उन्नति के सुझाव दीजिए। (एम० ए० १९४९)

१२. इङ्गलैंड के औद्योगिक विकास के लिए कौन कौन से भौगोलिक और आर्थिक कारण सहायक हुए हैं? (एम० ए० १९४९)

१३. "औद्योगिक विकास प्रायः कोयले की प्राप्ति स्थानो से ही संबंधित हैं।" इस कथन की पुष्टि इंगलैंड के उदाहरण द्वारा करिये। (एम० ए० १९५०)

१४ दूसरे देशों की तुलना में भारत में जहाज बनाने के उद्योग का कहाँ तक विकास हुआ है? इसके लिए कौनसे कारण सहायक हुए हैं, तथा इस उद्योग की भविष्य की संभावनाओ को भी बताइये। (एम० ए० १९५०)

१५. उपयुक्त मानचित्रों द्वारा बताइए कि संयुक्त राष्ट्र में किन कारणों से निम्न उद्योगों की स्थापना हुई है :—

(१) लोहे और स्पात का उद्योग।

(२) सूती वस्त्र उद्योग। (एम० ए० १९५१)

१६. भारत में निम्न उद्योगों के स्थानीयकरण पर प्रकाश डालिए :—

(क) जूट; (ख) काँच; (ग) कागज; (घ) शक्कर। (एम० ए० १९५१, १९५३)

१७. "बड़े उद्योग धंधों के स्थापन में मिट्टी के तेल की अपेक्षा कोयले का अधिक प्रभाव पड़ा है, किंतु जल विद्युत् शक्ति ने उद्योगों के विकेन्द्रीकरण में सहायता दी है।" इस कथन की पुष्टि इंगलैंड, रूस और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उदाहरणों से करिये। (एम० ए० १६५१)

१८. कनाडा और भारत के कागज उद्योग की तुलना करिये। यह भी बताइए कि भारत में इस उद्योग का भविष्य कैसा है? नये कारखाने किन स्थानों में खोले जा सकते हैं? कारण सहित बताइये। (एम० ए० १६५१)

१६ इंगलैंड और न्यू इंगलैंड स्टेट्स में सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण पर प्रकाश डालिये तथा आधुनिक समय में इस उद्योग के क्षेत्रों का जो स्थानान्तरण हुआ है उसके कारण बताइए। (एम० ए० १६५४)

२०. विश्व में धातु उद्योगों के स्थापन और विकास के महत्व को बताइए। (एम० ए० १६५४)

२१. भारत में सीमेंट और प्लास्टिक उद्योग के स्थापन, विकास और भविष्य पर अपने विचार प्रकट करिये। (एम० ए० १६५५)

२२. विश्व के ऊनी वस्त्र उद्योग का विस्तारपूर्वक विवेचन करिये तथा यह भी बताइए कि क्या पिछली शताब्दी से इस उद्योग के केन्द्रो का स्थानान्तरण हुआ है? (एम० ए० १६५५)

२३. विश्व के प्रमुख औद्योगिक राष्ट्रों में रासायनिक उद्योगों का महत्व बताइये। इसके विकास और स्थापन के कारण बताइये। (एम० ए० १६५५)

२४. भारतीय जूट उद्योग को किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है? (एम० ए० १६५६)

२५. किन कारणों से कृत्रिम रेशे वाले पदार्थ प्राकृतिक वस्त्र उत्पादक रेशों से स्पर्धा करते हैं? इन कृत्रिम रेशों के विकास का विश्व के पुराने रेशेदार पौधों पर क्या प्रभाव पड़ा है? (एम० ए० १६५६)

अध्याय ३३

यातायात के साधन

(MEANS OF TRANSPORT)

भारत में यातायात के साधनों का महत्व :

यातायात, परिवहन या आवागमन "सब यांत्रिक साधनों एवं संगठनों का योग है जो व्यक्ति, वस्तुओं अथवा समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।"[१] यदि कृषि और उद्योग धन्धे किसी देश के आर्थिक जीवन का शरीर और हड्डियाँ मानी जाएँ तो यातायात को उस आर्थिक ढाँचे की स्नायु-प्रणाली मानना चाहिये।[२] आजकल का समाज यातायात के साधनों पर बहुत निर्भर है। हमारा आर्थिक जीवन ऐसा बन गया है कि यातायात के साधनों के अभाव में हमेशा आर्थिक सङ्कट पड़ने की संभावना रहती है। व्यापार, कृषि और औद्योगिक उन्नति इसी की सहायता से हो सकी हैं। बड़े-बड़े दूर के स्थान, अब थोड़े समय में ही पार किये जा सकते हैं। वस्तुओं का बाजार विस्तृत हो जाने से उत्पत्ति का पैमाना बहुत बड़ा हो गया है। शासन-व्यवस्था, देश-रक्षा और समाज-लाभ की दृष्टि से भी यातायात का एक बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक लगभग प्रत्येक देश में यातायात के अच्छे साधन नहीं थे। इसीलिए मानव समाज बहुत पिछड़ा हुआ था। मानवीय सभ्यता इन्हीं साधनों की उन्नति पर निर्भर है। इन साधनों की उन्नति के परिणामस्वरूप सारा संसार एक बाजार के रूप में परिणत हो गया है। अब एक छोटे-से-छोटे स्थान की बनी वस्तुएँ संसार के किसी भी भाग में ले जाकर बेची जा सकती हैं। यातायात के साधनों का प्रभाव (१) भारत की औद्योगिक उन्नति तथा (२) कृषि पर बहुत पड़ा है।

(१) देश की औद्योगिक उन्नति (Industrial Development of the Country)—यातायात के साधनों का देश के उद्योग-धन्धों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कुछ मनुष्यों का यह मत है कि प्राचीन भारत में यातायात के साधनों की काफी उन्नति हो चुकी थी और राजा लोग इस ओर

---

१. "Transportation is the sum of all technical instruments and organisations designed to enable persons, commodities and news to master space"—Kurt Widenfield.

२. "If agriculture and industry are the body and bones of a national organism, communications are its nerves"—India in 1925–26.

काफी ध्यान दिया करते थे। इन साधनों की उन्नति में व्यय करना वे अपना धर्म और पुण्य का काम समझते थे। समय की प्रगति के साथ ही साथ इन साधनों में अधिक वृद्धि नहीं हुई। इसलिए इन साधनों के पिछड़े होने पर देश को आर्थिक सङ्कट का सामना करना पड़ा। भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। जब यहाँ कृषि में उन्नति नहीं हो सकी, तब उद्योग-धन्धों में उन्नति होने की क्या संभावना थी? ब्रिटिश शासन-सत्ता ने इस ओर काफी ध्यान दिया। सरकार ने सड़कें ही नहीं बनवाईं बल्कि रेलों का जाल बिछाने का श्रेय भी उसी को प्राप्त है। राष्ट्रीय सरकार ने भी इन साधनों में आवश्यकतानुसार वृद्धि करने की योजनाएँ बनाई हैं।

(अ) **उद्योग-धन्धे**— यातायात के साधनों से देश के उद्योग-धन्धों को काफी सहायता मिली है। कच्चा माल उत्पन्न होने के स्थान मे कल-कारखानों के दरवाजों तक तथा इनमें बना हुआ पक्का माल देश के कोने-कोने में और विदेशों के बाजारों को भेजने में इन्हीं ने सहायता दी है। सस्ते, जल्द और क्षमतावान यातायात के साधनों की सहायता से ही देश में इतने उद्योग-धंधे खुल सकते हैं। जिस स्थान पर यातायात के अच्छे साधन नहीं होते, वहाँ उद्योग-धन्धों का केन्द्रीयकरण हो जाता है और इस स्थानीयकरण से देश, समाज तथा उद्योग-धन्धों को हानि पहुँचती है। यह सच है कि वस्तुओं की बड़ी पैमाने पर उत्पत्ति होने से (यह यातायात के साधनों में उन्नति होने से ही सम्भव है) छोटे पैमाने की उत्पत्ति को तथा घरेलू उद्योग-धन्धों को बड़ी हानि हुई है। इनमें से कुछ धन्धे तो देश में सदा के लिए ही समाप्त हो गये हैं। इस गला-काट प्रतिस्पर्धा के युग में घरेलू उद्योग-धन्धों का कोई स्थान नहीं है।

(आ) **व्यापार**— किसी देश का व्यापार वहां के यातायात के साधनों पर निर्भर है। भारतवर्ष में भी यातायात के साधनों में उन्नति होने के कारण व्यापार में बड़ी वृद्धि हुई है। व्यापार और यातायात के साधनों का बड़ा घनिष्ट संबंध है। यह कहना अधिक नहीं होगा कि दोनों की ही उन्नति एक दूसरे पर निर्भर है।

(२) **कृषि पर प्रभाव (Effect on Agriculture)**—भारत में कृषि मुख्य व्यवसाय है। कृषि और यातायात के साधनों का भी बहुत घनिष्ट संबंध है। इन साधनों का प्रभाव कृषक की आर्थिक स्थिति, रहन-सहन के स्तर, सांसारिक अनुभव तथा शिक्षा आदि पर पड़ा है:—

(अ) **कृषकों की शिक्षा**—यातायात के साधनों में उन्नति होने से किसान व तमाम ग्रामीण जनता एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से आने जाने लगी है। उन्हें कृषि-संबंधी नुमायश, मेले आदि देखने का अवसर मिलने लगा है। यद्यपि भारतीय कृषक अशिक्षित है पर कृषि करने के तरीकों में समय-समय पर जो परिवर्तन हुए हैं उन्हें वह समझने लगा है। प्रांतीयता, रूढ़िवाद, जाति-पाँति के भेद तथा अन्य सामाजिक कुरीतियाँ उनमें से अब धीरे-धीरे दूर होती जा रही हैं। (आ) **ग्रामीण श्रमिक गतिशील होता**

जा रहा है—सांसारिक अनुभव होने के कारण ग्रामीण पुरुष शहरों तथा अन्य अन्य स्थानों को जाने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाते हैं। धीरे-धीरे उस पर शहरी जीवन का असर पड़ने से उसका रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो गया है और अब वह अपनी आर्थिक स्थिति पहले की अपेक्षा अच्छी करने के विचार से नये-नये उद्योग-धन्धों में अच्छे वेतन पर नौकरी करने लगा है। जीवन की लगभग सब ही आवश्यक वस्तुएँ उसे गाँव में ही प्राप्त होने के कारण, उसके रहने के तरीके में पहले से बहुत परिवर्तन हो गया है। **(इ) कृषि व्यापारिक होती जा रही है**—यातायात के साधनों का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव कृषि पर पड़ा है। इन साधनों से पहले कृषक अपने परिवार अथवा अपने गाँव तथा देश की माँग की पूर्ति करने के लिए ही भोज्य-सामग्री का उत्पादन करता था, पर इन साधनों की सहायता से अब वह अपनी उत्पत्ति संसार के किसी बाजार में भेज कर बेच सकता है और अधिक लाभ उठा सकता है। इन साधनों ने उसे व्यापारिक-कृषि करने के लिए प्रोत्साहन दिया है। **(ई) कृषि वस्तुओं का बाजार विस्तृत हो गया है**—व्यापारिक-कृषि (Commercial Agriculture) होने में खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति बहुत बड़े पैमाने पर होने लगी है। यदि किसी स्थान पर बाढ़, अधिक या कम वर्षा या भूकम्प या युद्ध के कारण दुर्भिक्ष पड़ने की संभावना हो गई है, तब अधिक उत्पत्ति वाले देश या स्थान से खाद्य-पदार्थ कुछ ही दिनों में इन स्थानों को भेज कर मानवीय कष्ट दूर किया जा सकता है। वस्तु के मूल्य का संतुलन (Balancing) भी होता रहता है। परंतु प्राचीन काल में यातायात के साधनों की कमी होने से जगह-जगह पर दुर्भिक्ष पड़ना एक साधारण बात थी। उस समय यदि किसी स्थान पर खाद्य-पदार्थों की अधिक उत्पत्ति हो जाती थी, तो कृषक को वस्तुओं का कम मूल्य प्राप्त होता था। बाजार में वस्तुओं के मूल्य में मंदी आ जाने के कारण कृषक को हानि हो जाती थी और यदि किसी स्थान पर कम उत्पत्ति होती थी. तब मनुष्य भूखे मरने लगते थे। परन्तु ऐसी बातें आजकल देखने में कम आती हैं। यातायात के साधनों से बाजार में खाद्य-पदार्थों की पूर्ति बहुत-कुछ निश्चित हो गई है। **(उ) भूमि पर शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं (Perishable) की उत्पत्ति होने लगी है**—शहरों में शाक, अंडे, दूध तथा घी का अधिक उपभोग होता है। शहर में इन वस्तुओं की उत्पत्ति करने में बहुत व्यय होता है। गाँव के कृषक इन वस्तुओं को बहुत कम मूल्य पर पैदा कर लेते हैं और शहरों में ऊँचे मूल्य पर बेच कर अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छी कर लेते हैं। शहर निवासियों को भी यह लाभ हो गया है कि वे इन वस्तुओं को शुद्ध, ताजी तथा कम कीमत पर प्राप्त कर लेते हैं। अतः एक ग्रामीण के जीवन पर शहर की प्रवृत्तियों का बहुत प्रभाव पड़ता है। साथ ही साथ वह भी दूसरे देशों की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहता है। परन्तु यह सब कुछ यातायात के साधनों में उन्नति करने से ही सम्भव हुआ है।

अस्तु, यातायात का इतिहास सभ्यता का इतिहास है। सड़कें बनाने वाले रोशनी की मशाल लेकर बढ़ते हैं। वह नेतृत्व करते हैं और सभ्यता उनका

अनुकरण करती है। झोंपड़ियाँ, मकान, गाँव और नगर एक दूसरे के बाद जागरूक होते हैं। कच्चा मार्ग सड़क बन जाती है, जो पहले कच्ची और बाद में पक्की हो जाती है। दुनिया को एक करने के लिए व्यापार और वाणिज्य की उन्नति हुई। वस्तुतः आदमी की प्रगति यातायात के परिवर्तन के साथ आनुक्रमिक होती है। यही नहीं इसके द्वारा केवल सामान एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जाता है, प्रत्युत देश की सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक वृद्धि भी प्रत्यक्षतः उसी पर निर्भर करती है। यातायात से ज्ञान बढ़ता है, पक्षपात का नाश होता है और अज्ञान का अंधकार दूर हो जाता है। बैलगाड़ियाँ थोड़ी दूर के लिए सस्ती हैं, लारी मध्य दर्जे की दूरी के लिए और रेलें लंबी दूरी के लिए तथा वायुयान और भी अधिक दूरी के लिए। इसलिए इनका एक में सामूहीकरण होना आवश्यक है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वस्तुओं की माँग और प्राप्ति को स्थिर रखने के लिए यातायात बहुत आवश्यक है और यह वास्तव में व्यापार की आधारशिला है। जिस प्रकार कारखाने उद्योग से कच्चे माल की आकार-उपयोगिता (form utility) बढ़ती है उसी प्रकार यातायात के द्वारा किसी वस्तु की स्थान-उपयोगिता (Place Utility) बढ़ती है। अतः यह सर्वमान्य है कि इस युग की आर्थिक व्यवस्था सस्ते यातायात के साधनों पर ही निर्भर है। यातायात के साधनों का महत्व इतना अधिक है कि प्रो० बेलोक के अनुसार 'सड़क इतिहास को चलाती और निर्धारित करती है (The Road moves and Controls all history)। किसी देश की अवनति या उन्नति वहाँ के यातायात के साधनों की अवस्था से ज्ञात होती है।

यातायात के साधन :

यातायात के साधनों की प्रत्येक समय और प्रत्येक देश में आवश्यकता पड़ती है। बिना यातायात के साधनों के व्यापार हो ही नहीं सकता। यदि यातायात के साधन सुलभ न हों तो प्रत्येक छोटा-छोटा प्रदेश एक पृथक क्षेत्र बन जावे और उसका अन्य प्रदेशों से कोई संबंध ही न रहे। मानव सभ्यता के विकास में यातायात के साधनों का सदैव से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आज भी चाहे अफ्रीका के पिछड़े महाद्वीप के निवासियों के व्यापार को लें या उन्नतिशील यूरोप को लें, यातायात के साधनों की आवश्यकता सभी जगह प्रतीत होती है। माल लाने और ले जाने का व्यापार साधनों के बिना हो ही नहीं सकता और यातायात के लिए व्यापारिक मार्ग होना चाहिए।

अत्यन्त प्राचीन काल में एक से दूसरे स्थान तक माल ले जाने के लिये मनुष्य का उपयोग होता था। उस समय केवल पगडंडियाँ ही व्यापार का मार्ग थीं। बड़े और चौड़े मार्गों की आवश्यकता ही न थी। क्योंकि वह जिधर चाहता उधर ही सुविधानुसार जा सकता था। शनैः शनैः कार्य के अधिक होने पर मनुष्य ने पशुओं को वस्तु-वाहन के लिए प्रयोग किया तो पगडंडियों के स्थान पर चौड़े मार्गों की आवश्यकता हुई, क्योंकि पगडंडियों पर माल लादे हुये पशु नहीं चल सकते थे। किंतु उस समय भी कोई विधिवत मार्ग नहीं बनाया जाता था। व्यापारी माल से लदे हुये पशुओं का कारवाँ ऐसे

रास्ते से ले जाते थे जो सुविधाजनक थे। ये मार्ग पशुओं के लगातार चलने से चौड़े बन जाते थे। तदुपरांत पहियों वाली गाड़ियों का चलन आरम्भ हुआ जिनमें पशुओं को जोतकर कई गुना अधिक माल लेजाया जाने लगा। पहियेदार गाड़ी के उपयोग से अच्छे और मजबूत मार्गों की आवश्यकता पड़ी और इसके लिए सड़कों का निर्माण किया गया। तदुपरांत आर्थिक सङ्गठन की पेचीदगियों के साथ और तीव्र तथा सस्ते यातायात की आवश्यकता का अनुभव किया गया। फलस्वरूप यांत्रिक यातायात का श्रीगणेश हुआ। मोटर बसों के लिए बढ़िया और मजबूत सड़कों की आवश्यकता हुई। रेलों के लिए तो और भी अधिक मजबूत रेल-मार्गों की आवश्यकता पड़ती है। चाल तथा सामर्थ्य की दृष्टि से यांत्रिक यायायात मानव तथा पशु यातायात से कहीं श्रेष्ट हैं, किन्तु इसके लिए निर्दिष्ट तथा व्यवस्थित मार्गों की आवश्यकता पड़ती है। समुद्री जहाजों तथा वायुयान के लिये यद्यपि सड़कों अथवा पटरियों की तो आवश्यकता नहीं होती किन्तु जलयानों और वायुयान के लिए मार्ग निर्दिष्ट करने होते हैं। यह मार्ग वायुयान की अनकूलता तथा ईंधन की सुविधा इत्यादि के आधार पर नियत किए जाते हैं। यांत्रिक यातायात का प्रचार आजकल बहुत बढ़ गया है। इनकी व्यवस्था में बहुत धन व्यय करना पड़ता है किन्तु इनकी उपयोगिता भी बहुत अधिक है। यही आजकल के व्यवसाय का मेरुदंड है।

यातायात के प्रकार :

यातायात के मार्गों को तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :—

१. स्थल यातायात
२. जल यातायात
३. वायु यातयात

यातायात की किस्में

(क) स्थल यातायात
१. मनुष्य
२. पशु
३. सड़कें
४. रेलें

(ख) जल यातायात
१. नदियाँ
२. नहरें
३. झीलें
४. समुद्र

(ग) वायु यातायात
वायुयान

(क) स्थल यातायात (Land Transport) :

स्थल यातायात के अन्तर्गत बैलगाड़ी, भैंसा या घोड़ा गाड़ी, ऊँट गाड़ी, साइकिल, ट्रामगाड़ी, मोटर या रेलगाड़ी शामिल हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कच्ची सड़कों पर बैलगाड़ी आदि का ही उपयोग होता है। कच्ची सड़कों पर इनके प्रयोग में बड़ी असुविधायें रहती हैं। वर्षा ऋतु में कीचड़ और शुष्क ऋतु में धूल के कारण बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है किन्तु विवश होकर मनुष्य जैसे तैसे अपना काम चलाता ही है।

स्थल-मार्गों का निर्माण करते समय प्राकृतिक दशा पर विशेष ध्यान देना पड़ता है क्योंकि मैदानी भागों में ही सड़कें या रेलें सुगमता से बनाई जा सकती हैं। पहाड़ी प्रदेशों में जो सड़कें बनाई जाती हैं वे घाटियों में ही बनाई जाती हैं। पहाड़ी प्रदेश में सड़कें बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बहुत अधिक चढ़ाई और दर्रों को बचाया जाय, अन्यथा खर्च बहुत होता है। मैदानों में भी सड़कों को केवल इसलिए घुमाकर बनाया जाता है कि उससे नदी के ऊपर पुल बनाने के लिए उचित स्थान मिलने की सुविधा हो। सड़क बनाने के लिए कंकड़, पत्थर आदि का उपयोग होता है, वह भी वहाँ आसानी से मिल जाते हैं। रेलें भी अधिकतर मैदानों में ही बनाई जाती हैं। पहाड़ों में रेलें बनाने में बहुत कठिनाई और व्यय पड़ता है। अधिकांश पहाड़ी रेलें नदियों की घाटियों में ही बनाई जाती हैं। मार्ग में पड़ने वाली ऊँची पहाड़ियों को सुरंग बनाकर पार किया जाता है और नदियों पर पुल बनाकर मार्ग निकाला जाता है।

जलवायु का भी व्यापारिक मार्गों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिन देशों में वर्षा अधिक होती है वहां नदियों में बाढ़ आते रहने के कारण स्थल-मार्ग बनाने और उनकी रक्षा करने में बहुत व्यय होता है, क्योंकि प्रायः प्रत्येक वर्षा में मार्ग नष्ट हो जाते हैं। पुलों के निर्माण में भी अधिक व्यय होता है। इसी प्रकार ठंडे प्रदेशों में जहाँ शीतकाल में बर्फ जम जाती है, स्थल मार्गों का बनाना और उनको कार्यशील रखना कठिन और व्यय-साध्य होता है। जिन दिनों किसी देश में कुहरा अधिक पड़ता है उन दिनों स्थल-मार्गों की कार्यशीलता नष्ट हो जाती है क्योंकि मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता।

जिन क्षेत्रों में अधिक मुसाफिर तथा सामान मिलता है उन्हीं में होकर स्थल-मार्ग बनाये जाते हैं जिससे अधिक-से-अधिक आय हो सके। अस्तु सघन जनसंख्या वाले और औद्योगिक क्षेत्रों में स्थल-मार्गों का जाल-सा बिछ जाता है।

स्थल-मार्गों पर निम्न साधन माल लाने ले जाने में काम में लाये जाते हैं:—

(१) मनुष्य (Human Porter)

विश्व की जनसंख्या अपने स्थानीय यातायात के लिये मुख्य साधन के रूप में मानव का उपयोग करती रही है। पदार्थों को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने का काम मनुष्य स्वयं करते हैं। इसके राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक प्रगति, आर्थिक दशा, जनसंख्या का घनत्व, भूमि की प्राकृतिक बनावट और जलवायु आदि कई कारण हैं। स्त्री जाति सर्व प्रथम भार-वाहिनी के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुई। उसका प्रगाढ़ वात्सल्य उसे शिशु को सदैव अपने अंक में रखने के हेतु प्रेरित करता है। आधुनिक समय में भी प्राचीनतम यातायात पिछड़ी जातियों में से दृष्टिगोचर होता है। टंड्रा के एस्कीमो, अमेरिका के लाल हिन्दुस्तानी, चीन निवासियों, न्यूगिनी एवं एंडमान द्वीपों की असभ्य जातियों ने बच्चों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिये विभिन्न साधन ढूंढ़ निकाले हैं। इनमें भार ढोने का कार्य स्त्रियाँ ही करती हैं।

के रूप में होता था वरन् आधुनिक युग में भी मैसेपोटैमिया, मिस्र, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका, चीन, भारत आदि देशों में बोझा ढोने तथा खेती के कार्य में होता है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होगा कि वर्तमान काल के उत्तमोत्तम यांत्रिक साधनों के होते हुए भी विश्व के कई भागों में पशुओं का महत्व अब भी अधिक है । पशु द्वारा होने वाले यातायात के मुख्य लाभ यह हैं :—

(१) जिन भूमार्गों पर (पर्वतीय प्रदेशों अथवा विस्तीर्ण उजाड़ मरुस्थलों) यातायात के अन्य साधन नहीं पहुँच सकते वहाँ भी पशुओं द्वारा सुगमतापूर्वक यात्री और माल ढोना होता है । यही कारण है कि घने जंगलों में हाथी, मरुस्थलों में ऊंट और पहाड़ी देशों में विकूना, याक, लामा आदि पशुओं का ही महत्व अधिक है ।

(२) पशुओं के चलने के लिए किसी विशेष प्रकार के मार्गों के निर्माण की आवश्यकता नहीं होती । वे अपने सधे हुए पाँवों और फुर्ती के कारण किसी भी तरफ जा सकते हैं और जहाँ भी हो वहाँ से माल और यात्री ला और ले जा सकते हैं । ये प्रायः पगडंडियों का अनुसरण करते हैं जिनके बनाने में मानव का धन खर्च नहीं होता क्योंकि यह प्रकृति द्वारा स्वतः ही बनाया जाता है ।

(३) पशुओं द्वारा यातायात न केवल सुगम ही प्रत्युत सस्ता भी बहुत होता है क्योंकि मार्ग में उगने वाले वृक्षों की पत्तियां अथवा टहनियां खाकर ही ये अपना निर्वाह कर सकते हैं । पशुओं की टूट-फूट और घिसावट का भी प्रश्न उपस्थित नहीं होता । उन्हें दिन भर में थोड़े विश्राम की आवश्यकता होती है, जिसे पा जाने पर वे पुनः यात्रा आरम्भ कर देते हैं । कुछ पशु दो तरफा लाभदायक होते हैं । वे न केवल बोझा ही ढोते हैं बल्कि कृषि कार्य में भी सहायक होते हैं ।

(४) पशुओं द्वारा राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है । भारत के राष्ट्रीय योजना आयोग के अनुसार प्रति वर्ष सामान आदि ढोने में पशुओं द्वारा १००० करोड़ रुपये की प्राप्ति होती है । इसमें से यदि उनके रखने आदि का खर्च निकाल दिया जाय तो भी देश को प्रतिवर्ष १०० करोड़ रुपये का लाभ होता है ।

अस्तु यह कहा जा सकता है कि जहाँ थोड़ी दूरी तय करनी हो, जहाँ शहरों में गलियाँ या रास्ते तंग हों अथवा जहाँ मार्ग में भीड़-भाड़ अधिक होती हो, जहाँ माल के गाड़ी में चढ़ाने और उतारने में अधिक समय लगता हो, जहाँ अन्य प्रकार के आधुनिक यांत्रिक वाहनों के लिए यातायात अपर्याप्त हो अथवा जहाँ सड़कें खराब हों या भूमि ऊबड़-खाबड़ हो वहाँ पशु यातायात के प्रमुख साधन होते हैं ।

पशुओं द्वारा होने वाले यातायात में कुछ दोष भी हैं :—

(१) पशु प्राणी है अतः उसके अस्वस्थ होने की शंका बराबर बनी रहती है । बीमारी के पश्चात् वह अशक्त हो जाने से मालिक के लिए एक प्रकार से पूंजीगत हानि हो जाता है । शहरों में पशु आदि का रखना भी दूषित वातावरण के कारण प्रायः कठिन ही रहता है ।

(२) पशुओं के माल ले जाने की क्षमता भी यातायात के अन्य साधनों की अपेक्षा कम ही होती है। उदाहरणतः, बैलगाड़ी एक बार में २५-३० मन माल ढो सकती है जबकि मोटर ठेले में २५०-३०० मन ले जाया जा सकता है। इसी प्रकार तांगा केवल ३ या ४ सवारियाँ बिठा सकता है जबकि मोटर-बसों में ४० से ६० तक सवारियाँ एक ही बार में ले जाई जा सकती हैं।

(३) पशुओं की चाल भी अन्य साधनों की अपेक्षा कम होती है। बैल अथवा घोड़ा ज्यादा-से-ज्यादा २०-२५ मील चल सकता है किन्तु मोटर-लारी दिन भर में १००-१५० मील की यात्रा आसानी से कर सकती है, अतएव पशुओं द्वारा माल ले जाने में अपेक्षतया अधिक समय लगता है। अधिक दूरी वाले स्थानों के लिए पशुओं का यातायात अधिक व्ययसाध्य हो जाता है। आज कल जहाँ-जहाँ रेलों और मोटरों का प्रसार बढ़ता जा रहा है वहाँ तो अब यह साधन बहुत कम प्रयोग में लाये जाते हैं। किन्तु जिन भागों में अभी इन साधनों का प्रचार नहीं हुआ है वहाँ अब तक भी पशुओं द्वारा व्यापार किया जाता है। पृथ्वी पर पालतू पशुओं की संख्या इस प्रकार आँकी गई है :

भेड़	७० करोड़	खच्चर	६० लाख
बकरी	११ ,,	ऊँट	६० ,,
घोड़े	६ ,, ६० लाख	रेंडियर	२० ,,
भैंसे	७ ,, ३० ,,	लामा और अल्पाका	२० ,,
गधे	३ ,, ३० ,,		

भारत में माल ढोने के लिये पशु ही अधिक काम में लाये जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि सम्पूर्ण भारत में १५.१ लाख घोड़े और खच्चर, १५ लाख गधे और ६ लाख ऊँट तथा १० लाख बैल यातायात के साधनों के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं[1] हाथियों की संख्या अधिक नहीं है। बैल तो भारतीय कृषि के एक मात्र साधन हैं। वे न केवल कृषि कर्म में ही सहायता देते हैं बल्कि खेती की पैदावार को मंडी तक लाने में भी बड़ी सहायता देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में गधे, खच्चर, तथा घोड़ों का भी उपयोग होता है। ये खेती की पैदावारों को शहर में लाते हैं और उनके बदले में अन्य सामान गाँवों को ले जाते हैं। पूर्वी बंगाल अथवा दक्षिणी भारत के सघन वनों में हाथियों का महत्व अधिक है क्योंकि ये न केवल यातायात का साधन ही प्रस्तुत करते हैं बल्कि इनकी मृत्यु के पश्चात् इनसे हाथी दाँत, चमड़ा तथा हड्डियाँ आदि भी प्राप्त होती हैं जो व्यापार में काम आती हैं। हाथियों की रक्षा और बचाव के लिये राष्ट्रीय योजना आयोग ने कहा है, "यदि अविवेकपूर्ण शिकार अथवा मनोरंजन के साधन में प्रयुक्त कर हाथी जैसे यातायात के प्रमुख साधन को नष्ट होने से न रोका गया तो देश की काफी राष्ट्रीय क्षति होगी।" इसी सुझाव को स्वीकार कर आसाम और मैसूर की सरकारों ने कड़े कानून बना दिए हैं।

यह वास्तव में बड़ी ही हास्यास्पद बात है कि जहाँ रेलों, सड़कों तथा वायु मार्गों के विकास में राष्ट्रीय सरकार ने पर्याप्त व्यय किया है वहाँ पशु यातायात

---

१. India Reference Annual, 1956, P. 175.

के सम्बन्ध में कोई निश्चित कदम नहीं उठाया गया है। जो कुछ भी पशुओं की नस्लों में सुधार किया गया है वह केवल उनसे प्राप्त होने वाले दूध आदि वस्तुओं की दृष्टि से ही। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि देश में पशु यातायात के विकास का समुचित प्रबन्ध किया जाय।

निम्न तालिका में यातायात के विभिन्न पशुओं और उनकी सापेक्षिक भार-वाहन शक्ति तथा उपयोग के क्षेत्र बताये गये हैं :—[1]

पशु	वितरण-क्षेत्र	गुण तथा उपयोग
१. घोड़ा व खच्चर (Horse and Poney)	शीतोष्ण कटिबन्धीय यूरोप, एशिया में ४५% उत्तरी अमेरिका २६% द० अमेरिका ९% आस्ट्रेलिया २% विश्व का योग=११ करोड़	अधिक सर्दी गर्मी नहीं सह सकता। (१) घोड़ा गाड़ी ५टन तक। (२) हल्का गाड़ी ½ से १ टन। (३) घोड़ा ३०० पौंड संभवत: सभी पशुओं से अधिक काम करता है।
२. गदहा व टट्टू (Mule, Donkey and Ass)	(i) अर्द्ध-उष्ण कटिबंधों में जहाँ मौसम सूखा रहता है तथा (ii) शीतोष्ण प्रदेशों में जहाँ निर्धन व्यक्ति रहते हैं और धरातल पहाड़ी है यथा— भूमध्य सागरवर्ती देश ३६% संयुक्त राष्ट्र अमेरिका २४% भारत ८% द० अफ्रीका ४% अर्जेनटाइना ४% आयरलैंड १% विश्व का योग=२ करोड़	बड़ा मजबूत, अधिक जीवित रहने वाला, मजबूत पाँव वाला तथा हल्की घासों पर निर्वाह करने वाला। गदहा तथा खच्चर १५० से २५० पौंड तक बोझा ढो सकता है—४ से ६ मील प्रति घंटा की गति से चल कर यह १ टन तक बोझ ले जा सकता है।

१. L. Brittle : Social and Economic Geography, 1938; p. 362-364.

पशु	वितरण-क्षेत्र	गुण तथा उपयोग
३. बैल, भैंसा, कैरिबो (Ox, Buffaloes, Carabao)	शीतोष्ण कटिबन्ध वाले दरिद्र देशों में तथा अर्द्ध उष्ण और उष्ण प्रदेशों के तर भागों में भारत और द० पूर्वी एशिया ५०% रूस और द० पूर्वी यूरोप २१% मध्य और दक्षिणी अमेरिका २०% द० अफ्रीका २% विश्व का योग=२५ करोड़	धीमी गति वाला किंतु घोड़े से अधिक भार-वाहक ; गर्मी, आर्द्रता तथा बीमारी सह सकता है। १५० पौंड बोझ ढो सकता है किंतु खींच कर २,००० पौंड तक ले जा सकता है।
४. कुत्ते (Dogs)	सभी प्रदेशों में जहाँ अन्य पशु सामान ढोने के लिए उपलब्ध नहीं है। टुंड्रा प्रदेश तथा उ० प० यूरोप	(i) एस्कीमो कुत्ता १०० पौंड तक खींच सकता है ; (ii) बेल्जियन कुत्ता २४० पौंड और (iii) सेंट वर्नाड कुत्ता ३० से ६० पौंड तक ढो सकता है।
५. ऊंट (Camel)	अर्द्ध-शुष्क और मरुस्थलीय प्रदेशों में—उत्तरी अफ्रीका और यूरेशिया में लगभग २० लाख और आस्ट्रेलिया में ६,०००।	बिना खाये पीये ३ से १० दिन तक रह सकता है। मरुस्थलीय वनस्पति निर्वाह का मुख्य साधन। प्रतिदिन १५ से २० मील की गति से ऊंट ४५० पौंड बोझ ढो सकता है। किंतु दो कूबड़ वाला ऊंट ७०० पौंड तक ढो सकता है।
६. रेन्डिनर (Reindeer)	टुंड्रा, यूरेशिया के उत्तरी वन प्रदेश, उ० अमेरिका।	कड़ी-से-कड़ी सर्दी भी सहन कर सकता है। अल्प और अपौष्टिक खूराक पर निर्वाह करता है। बैल से थोड़ा बोझा ढो सकता है।

पशु	वितरण-क्षेत्र	गुण तथा उपयोग
७. हाथी (Elephant)	भारत तथा द० पूर्वी एशिया के वन-प्रदेश और मध्य अफ्रीका।	अधिक भोजन की आवश्यकता; पहाड़ी तथा वन-प्रदेशों के उपयुक्त। यह ६०० पौंड तक बोझा ढो सकता है किंतु खींचकर २ से ३ टन तक ले जा सकता है।
८. लामा (Llama)	बोलिविया और पीरू के पठार पर।	बड़े तेज पाँव वाला। यह हिम रेखा तक १२ से १४ मील प्रति घंटे के हिसाब से १०० पौंड तक बोझ ढो सकता है।
९. याक (Yak)	केवल मध्य एशिया के ऊँचे भागों में।	यह ९० से १२० पौंड तक बोझ ढो सकता है।
१०. भेड़ बकरी	केवल मध्य एशिया के पर्वतीय भागों में।	२५ से ३५ पौंड तक बोझा ढो सकते हैं।

(३) थलयान या पहियेदार गाड़ियाँ (Spoked Carts)

बोझे को शरीर पर या सिर पर लाद कर ले जाने की अपेक्षा यह कहीं अधिक आसान है कि बोझे को ढकेल कर, घसीट कर या खींच कर ले जाया जाय। इसी विचार ने कदाचित गाड़ी के प्राचीनतम रूप ने जन्म दिया। आरम्भ में गाड़ियाँ बिना पहिये की होती थीं। जहाँ कहीं धरातल पर कर्षण के लिये न्यूनतम बाधाएँ थीं वहीं गाड़ियों का उपयोग होता था। ध्रुवीय प्रदेशों में प्रयोगित स्लेज (Sledge) गाड़ियाँ इसी का मुख्य उदाहरण है। वे आज भी हिम प्रदेशों में बैलगाड़ी या अन्य साधनों के स्थान पर प्रयुक्त की जाती हैं। इनका प्रयोग अधिकतर शीतकाल में होता है। बिना पहिये की ये स्लेज गाड़ियाँ कई प्रकार की होती हैं। इनके निर्माण में लकड़ी, खाल, ह्वेल मछली की चमड़ी, और हड्डियाँ तथा वालरस के दाँतों का प्रयोग होता है। पश्चिमी स्लेज ३½ से ४ फुट लंबी होती है किंतु पूर्वी क्षेत्रों की स्लेज १२ से १४ फुट लंबी होती है। ये साधारणतः २ मील प्रति घंटे की चाल से चलती हैं तथा १,००० पौंड तक का बोझा ढो सकती हैं।

पहियेदार गाड़ियों का प्रयोग इनके बहुत देर बाद हुआ किंतु निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनका जन्म कब और कहाँ हुआ। प्राचीन काल में पहियेदार रथों (Chariots) का उपयोग मिस्र, असीरिया, यूनान और भारत में होता था। अमेरिका के खोज के पूर्व वहाँ पहियेदार गाड़ियों का चलन न था। पहियेदार गाड़ियों के चलन ने यातायात के विकास में बड़ी हलचल मचा दी है। पहियेदार गाड़ियाँ तीन शक्तियों द्वारा चलाई

जाती हैं : –(१) मानव शक्ति (Human Traction) जैसे चीन, जापान और द० पूर्वी एशिया के देशों में रिक्शा, ठेला या छोटी गाड़ियाँ खींचने में मनुष्य के श्रम का उपयोग किया जाता है। (२) पशु शक्ति (Animal Traction) का प्रयोग विश्व के सभी देशों में किया जाता है। (३) निर्जीव शक्ति (Inanimate Power Traction) जिसके अन्तर्गत कोयला, पेट्रोलियम, जल विद्युत शक्ति का प्रयोग किया जाता है।

सड़कों पर न केवल बलगाड़ियों और मोटर द्वारा ही आना जाना होता है बल्कि भारत जैसे विशाल देश में बैलगाड़ियों का महत्व बहुत अधिक है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत के आन्तरिक व्यापार का लगभग ७०% सामान बैलगाड़ियों द्वारा ही ढोया जाता है। सम्पूर्ण देश में ९८ लाख से भी अधिक बैलगाड़ियाँ हैं जिनमें २६१ करोड़ रुपयों की पूँजी लगी है और इसमें लगभग एक करोड़ व्यक्ति और २ करोड़ पशु अपना भरण-पोषण करते हैं।[1] डा० पन्त के मतानुसार प्रति ४१ व्यक्तियों के पीछे देश में एक बैलगाड़ी और प्रति १४००० व्यक्तियों के पीछे एक मोटर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले कुछ वर्षों से देश में यातायात के साधनों का समुचित विकास हो रहा है जिसके फलस्वरूप यांत्रिक साधन में हम उतरोत्तर वृद्धि करते रहे हैं किन्तु ग्रामीण भारत में आज भी बैलगाड़ियों का ही साम्राज्य है। देश के दूरस्थ स्थानों में उत्पादित कृषि उपज बड़े नगरों को इन्हीं बैलगाड़ियों द्वारा लाई जाती है। बैलगाड़ियों का महत्व गाँवों में अधिक है इसका एक कारण यह भी है कि नगरों और गाँव के बीच उक्त सड़कों का अभाव है अस्तु मोटरें आदि इन पर नहीं चलाई जा सकती।

भारतीय ग्रामीण यातायात में बैलगाड़ियों का आर्थिक महत्व अधिक होने के कई कारण हैं :—

(१) बैलगाड़ियाँ गाँवों में ही जंगल द्वारा प्राप्त हुई लकड़ियों से गाँव के कारीगरों द्वारा अपने फुरसत के समय बना ली जाती हैं। इनके बनाने में विशेष खर्च भी नहीं होता क्योंकि यदि गाड़ी का कोई भाग भी टूट जाता है तो वह आसानी से ही पुनः तैयार किया जा सकता है। गाड़ी बनाने में आरम्भ में अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि किसान अपने व्यर्थ के समय में देशी सामान से घरेलू धन्धे के बतौर इन्हें बनाया करते हैं और इस कार्य में इन्हें अपने परिवार के सदस्यों का भी सहयोग मिल जाता है।

(२) गाड़ी रखने में किसान या मालिकों को अधिक खर्चा नहीं करना पड़ता क्योंकि वह स्वयं ही गाड़ी चलाता है तथा उसके बैलों के लिये चारा आदि भी उसे अपने खेतों से मिल जाता है।

(३) गाड़ियों द्वारा प्रतिवर्ष १००० लाख टन से अधिक का सामान ढोया जाता है। गाड़ियों द्वारा यात्री भी असंख्य संख्या में लाये ले जाये जाते हैं। गाड़ियों आदि में लगभग ३०० करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई मानी गई है जिसमें से २०० करोड़ रुपयों की प्राप्ति तो प्रति वर्ष

१. India Reference Annual, 1956, P. 311.

माल ढोकर ले जाने से ही हो जाती है। लगभग एक करोड़ व्यक्तियों और २ करोड़ पशुओं को काम मिलता है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि गाड़ियों द्वारा देश को उतना ही आर्थिक लाभ होता है जितना रेलों द्वारा। राष्ट्रीय योजना आयोग का अनुमान है कि यदि प्रति वर्ष एक गाड़ी पीछे एक टन सामान ले जाया जाय और एक गाड़ी वर्ष में १०० चक्कर लगावे तो भी कम से कम प्रति वर्ष में ५० करोड़ टन से भी अधिक की पैदावार इन पुराने ढंग की गाड़ियों द्वारा ढोई जाती होगी।[1] यद्यपि वर्षा के दिनों में जब गाँव की सड़कों पर कीचड़ आदि हो जाता है तो भी गाड़ियों द्वारा थोड़ा बहुत आवागमन तो होता रहता है और इस प्रकार प्रति वर्ष २००० मील चल चुकती है तथा उससे ५०० करोड़ रुपये की आय होती है। यह बात हास्यास्पद प्रतीत होगी, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि बैलगाड़ियों द्वारा देश को उतना ही लाभ पहुँचता है जितना रेलों द्वारा। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिये कि बैलगाड़ियाँ रेलों से प्रतिस्पर्धा करती हैं। दोनों के साधनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं। बैलगाड़ियाँ बहुधा गाँवों में १० मील तक की दूरी के लिये लाभदायक होती हैं जब कि अधिक भारी बोझा ढोने और लम्बी यात्रा करने के लिये रेलों का ही आश्रय लेना पड़ता है। वास्तव में बैलगाड़ियाँ रेलों के पूरक साधन का काम करती हैं क्योंकि गाँव की उपज लाकर ये ही रेलों की आय को बढ़ाती हैं।

(४) बैलगाड़ियों की बनावट इतनी सरल और सीधी सादी होती है कि उसकी तुलना किसी भी यांत्रिक साधन से नहीं की जा सकती। टूटी सड़कों पर गाड़ियाँ ही जा सकती हैं अस्तु भविष्य में भी गाड़ियों का चलन देश में जारी रहेगा इसमें कोई संशय नहीं किया जा सकता।

इन गुणों के साथ-साथ गाड़ियों के कुछ अपने दोष भी हैं। जिन सड़कों पर गाड़ियाँ चलती है उन पर खड्डे तथा गडार सी पड़ जाती हैं इससे सड़कों की हालत बिगड़ जाती है। क्योंकि ये फिर मोटरें आदि चलाने के योग्य नहीं रहती अस्तु यह आवश्यक प्रतीत होता है कि गाड़ियों का महत्व अक्षुण्ण बना रहे तथा सड़कों की हालत भी न बिगड़े, इसके लिये गाड़ियों के पहियों में सुधार किया जाय। लोहे के पहियों की जगह गाड़ियों पर रबर के टायर प्रयुक्त किए जायें जिससे सड़कों पर गडार पड़ना रुक जायगा। किन्तु किसान की वर्तमान आर्थिक अवस्था का ध्यान रखते हुए ये रबर टायर काम में नहीं लाए जा सकते क्योंकि वे बहुत मंहगे होते हैं और फिर इनकी दुरुस्ती भी गाँवों में संभव नहीं। इसके अतिरिक्त जब तक शहरों और गाँवों में कच्ची सड़कों की प्रधानता रहती है तब तक इनका उपयोग वांछनीय नहीं कहा जा सकता। रबर टायर वाली गाड़ियाँ तभी सफलतापूर्वक चलाई जा सकती हैं जब देश की सड़कें पक्की बनाई जायें। बैलगाड़ियों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों से ऊंट गाड़ियों का भी प्रयोग किया जाता है विशेषतः पंजाब, पश्चिमी तथा पूर्वी राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किन्तु इनके द्वारा ५०-७० मील की

---

१. National Planning Committee's Report on Transport (1948).

दूरी तक ही सामान सस्ता भेजा जा सकता है। प्राय: ये गाड़ियाँ एक स्थान से रात को ही रवाना होती हैं, प्रात:काल अपने गंतव्य स्थान को पहुँच जाती हैं। कुछ समय से इनमें और मोटरों में भी प्रतिस्पर्धा होने लगी है।

शहरों में घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले इक्कों और तांगों का प्रयोग दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इसका सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि ये गाड़ियाँ जहाँ चाहें वहाँ ठहर कर सामान और यात्री चढ़ा सकते हैं तथा जहाँ-जहाँ सड़कें बनी हैं वहाँ जा सकते हैं। यही कारण है कि शहरों की तंग गलियों में भी जहाँ मोटरें नहीं पहुँच सकती—ये सुगमतापूर्व जा सकते हैं। इनकी बनावट भी सीधी-सादी और कम खर्चीली होती है तथा देशी सामान से बनाये जाते हैं। घोड़े आदि को भी रखना इतना व्ययसाध्य नहीं होता, अस्तु तांगे, बग्घियाँ कम किराये में ही सामान और यात्रियों को स्टेशनों से शहरों तथा निकटवर्ती स्थानों में ले जा सकती हैं। शहरों में तो एक स्थान तक के किराये निश्चित ही होते हैं बाहर के स्थानों के लिए प्रति घन्टा या प्रति मील के हिसाब से किराया वसूल किया जाता है। घोड़ा-गाड़ियों का मुख्य दोष यही है कि उनमें सामान ले जाने की शक्ति सीमित होती है तथा ये धीमी गति से चलती हैं। किन्तु अधिक भीड़ वाले स्थानों में धीमी चाल भी एक बड़ा लाभ है इससे राहगीर खतरों से बच जाते हैं। अब बस और मोटर सर्विसों के अधिक प्रचार के कारण इनका महत्व घटता जा रहा है। राष्ट्रीय योजना आयोग ने घोड़ा गाड़ियों के यातायात सम्बन्धी प्रश्न पर पूर्ण विचार करने के उपरान्त ये विचार व्यक्त किए हैं, "औसत रूप में एक घोड़ा-गाड़ी यदि वर्ष में ५० टन माल ढोती है तो सम्पूर्ण देश में वे प्रति वर्ष १००० लाख टन सामान ढोने के लिये लगभग ४००० मील की यात्रा करती हैं। यदि एक सामान को एक मील ले जाने में हम ६ आने का अनुमान लगावें तो प्रति वर्ष इनसे होने वाली आय—खर्चे इत्यादि निकाल कर १००० करोड़ रुपया अवश्य होगी।" इस वर्णन से देश में घोड़ा-गाड़ियों का अधिक महत्व सरलता से ही जाना जा सकता है।

तांगों आदि के अतिरिक्त अब तो प्रत्येक शहर और नगर में साइकिलों की भी भरमार हो गई है। सस्तेपन के कारण साइकिल खरीदते हैं। इसका मुख्य उपयोग तो गाँवों से दूध आदि लाने के लिये किया जाता है। मोटर और साइकिल रिक्शों का भी प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इनसे जल्दी ही एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचा जा सकता है।

(४) सड़कें (Roads) :

सभी थल मार्गों में सड़कें सबसे प्राचीन हैं और विश्व के सभी भागों में (ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़ कर) पाई जाती हैं। वास्तव में सड़कों के जन्म का मुख्य कारण पहियेदार गाड़ियों का प्रचलन ही है। जहाँ-जहाँ ये गईं वहीं सड़कें भी बनाई जाने लगी। सड़क निर्माण का कार्य बड़ा प्राचीन है रोम निवासी ही संसार के प्रथम महान सड़क निर्माता कहे जाते हैं। उनका विशाल साम्राज्य वास्तव में सड़कों पर ही टिका था। रोम में सड़कों का न केवल सामाजिक बल्कि व्यावसायिक महत्व भी ज्ञात था। और इसीलिये यह

उक्ति प्रचलित है कि 'सभी सड़कें रोम को जाती हैं !' (All roads lead to Rome) । रोम साम्राज्य के अंतर्गत इटली, आल्प्स के पर्वतीय भाग, स्पेन, जर्मनी और इंग्लैंड में सड़कों का निर्माण हुआ । चीन, पीरु और भारत आदि देशों में भी सड़कों का निर्माण बड़े प्राचीन काल से होता आया है ।

सड़कोंका सबसे अधिक विकास संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ है । यहाँ सड़कों का एक समूह है जिसमें मुख्य सड़कों (main roads) में शाखा सड़कें (Feeder Roads) आकर मिलती हैं । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, यूरोप, भारत तथा जापान में सड़कें रेलों के जाल को पूरा करती हैं । अर्थात् रेल से दूर स्थित स्थानों का रेल मार्गों से सम्बन्ध स्थापित करती हैं ।[१]

व्यापार के दृष्टिकोण से सड़कें पक्की और चौड़ी होनी आवश्यक हैं ताकि ट्रैफिक अधिक होने पर भी भीड़ इकट्ठी न हो सके और वे आसानी से टूटे भी नहीं । आधुनिक काल में मोटर बसों के चलने से सड़कों का महत्त्व बहुत बढ़ गया है । रेल और हवाई जहाज जैसे यातायात के साधनों के होते हुए भी सड़कों से कुछ ऐसे लाभ हैं जो सदा रहेंगे यथा—

(१) सड़कों के यातायात में एक बड़ी सुविधा यह है कि बस या ट्रक प्रत्येक स्थान से सवारी अथवा माल भर सकती है और जहाँ भी चाहे जा सकती है । रेलों का पथ निश्चित होता है, अतएव वे इस प्रकार के कार्य को नहीं कर सकतीं ।

(२) थोड़ी दूर वाले स्थानों के लिए सड़कों द्वारा सामान जल्दी और आसानी के साथ पहुँच सकता है क्योंकि सामान के उतारने और चढ़ाने का सवाल ही नहीं उठता ।

(३) सड़कों के द्वारा सामान ढोने के लिए समय की कोई पाबन्दी नहीं होती, आवश्यकतानुसार सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता है ।

(४) सड़कों के द्वारा यात्रा करने में आराम भी अधिक मिलता है और सामान के टूट-फूट जाने का भी डर नहीं रहता क्योंकि मार्ग में सामान के उठाने धरने की आवश्यकता नहीं होती ।

(५) प्रत्येक गाँव में रेलों का विस्तार नहीं हो सकता है क्योंकि वहाँ दूरी बहुत कम होती है तथा इतना ट्रैफिक नहीं होता कि रेलवे लाइनें बनाई जा सकें । अस्तु गाँवों के लिए सड़कें ही उपयुक्त साधन हैं । अतएव यदि रेलों को गाँवों से सड़कों द्वारा जोड़ दिया जाय तो गाँवों का माल शहर आ सकता है और वहाँ से दूसरे स्थानों को जा सकता है ।

दुनिया में सड़कों की कुल लम्बाई ६,२२५,००० मील है । जिनमें से लगभग एक तिहाई संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हैं । इसके बाद रूस, जापान, कनाडा,

---

१. "To a large degree the highway fills with a finer weave the coarse meshes of the railway net."

आस्ट्रेलिया, फ्रांस, और जर्मनी का स्थान है। नीचे की तालिका में प्रमुख देशों की सड़कों की लम्बाई और मोटरों की संख्या दी गई है :—[1]

देश	सड़कें (०००मील)	सवारी मोटरें	व्यापारिक मोटरें (०००)
सं. राष्ट्र अमेरिका	३,०४५.४	४०,१६७	८,३८२
जापान	५६७.५	२०	८६
कनाडा	५५३.४	१,६०७	६१६
आस्ट्रेलिया	५००.५	७६८	४६६
फ्रांस	४०६ ५	१,५२०	७७०
प० जर्मनी	१७२.२	५६८	५२२
पाकिस्तान	—	१६.६	११.१
इटली	१७०.५	—	३७६
इङ्गलैंड	१८३.६	२३१७	६६७
भारत	२४६.०	१६२.८	११३.२
ब्रह्मा	१०.५	१२.६	२२

भारत में सड़क यातायात :

अति प्राचीन काल से ही भारतीय शासक राष्ट्र की उन्नति में सड़कों का महत्व समझते रहे हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में जो खुदाई की गई, उससे इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिले हैं कि भारतीय ५००० वर्ष पूर्व भी सड़कें बनाने की कला में निपुण थे। २५०० और ३५०० वर्ष पूर्व जो नगर विद्यमान थे, उनमें सड़कें काफी चौड़ी थीं तथा पानी के लिए भी उचित प्रवन्ध था। आर्य काल में भी उत्तम सड़कों का अभाव नहीं रहा। राजा बिम्बसार द्वारा ६ठी शताब्दी में बनाया गया एक महापथ (Mahapath) अब भी पटना जिले के दक्षिणी पूर्वी भाग में स्थित है। मौर्य काल में भी सड़कों की व्यवस्था बड़ी उत्तम थी। इसका प्रमाण कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मिलता है। कौटिल्य के अनुसार राजकीय मार्ग (जिन पर रथ चलते थे) तथा चरागाहों को जाने वाली सड़कें २४ फीट चौड़ी होती थी। युद्धस्थलों, श्मशानों और गाँवों को जाने वाली सड़कें ४८ फीट तथा बागों, बगीचों, और जंगलों को जाने वाली सड़कें २४ फीट और मनुष्यों तथा चौपाये के उपयोगार्थ ३. फीट चौड़ी सड़कें बनाई जाती थीं। चन्द्रगुप्त के राज्य-काल में सड़कों की व्यवस्था की देख-रेख करने के लिये एक यातायात-विभाग होता था तथा निश्चित दूरी पर जगह-जगह ऊंचे खम्भे गड़े हुए थे जिन पर दूरी अंकित रहती थी। एक मुख्य सड़क पटना से उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त को जोड़ती थी। स्ट्रैबो (Strabo) का मत है कि इस मार्ग के सहारे-सहारे ईरस्टथनीज और मेगस्थनीज दो यूनानी विद्वानों ने भारत का भ्रमण किया। इन सड़कों का बीच का भाग कुछ उन्नतोदर होता था जिससे पानी सुगमतापूर्वक बहकर चला जा सकता था।

---

१. भारत सरकार द्वारा प्रकाशित—'India in World Economy' (1951) पृ० ८ और
Eastern Economist Annual (1952) पृ० १०८४

सम्राट अशोक ने भी अपने राज्य-काल में सड़कें बनाने में बड़ा ध्यान दिया। उसके समय के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसके राज्य में सड़कों के दोनों किनारे बड़ आदि के छायादार वृक्ष लगाये जाते थे, जिसके नीचे यात्री और पशु थकान दूर करने के लिये विश्राम करते थे। प्रत्येक आधे कोस की दूरी पर आम, जामुन आदि फलों के वृक्ष लगे हुए थे। सड़कों के किनारे यात्रियों की सुविधा के लिये मीठे पानी के कुएं और पक्की धर्मशालाएं भी निर्माण की गई थीं। ५ वीं शताब्दी में आने वाले चीनी यात्री फाह्यान ने उस समय की सड़कों की स्थिति की बड़ी प्रशंसा की है। इस प्रकार हिन्दू राज्य काल में ऐसी सड़कें अधिक थीं जो देश के विभिन्न भागों को राजधानी से जोड़ती थीं। ईसा के ७०० वर्ष पश्चात् ताओसुन नामक चीनी यात्री ने भारत की यात्रा की, और उसने यहाँ के मार्गों की बड़ी प्रशसा की। इसके अनुसार भारत से चीन जाने के लिये तीन सड़कें थी। एक नैपाल से तिब्बत होते हुए लाप झील तक, दूसरी शानशेन से कोतान तक और तीसरी पटना के दक्षिण में थी।

मुस्लिम काल में भी रोड निर्माण में काफी प्रगति होती रही। मुम्मद तुगलक ने एक ट्रंक रोड दिल्ली से दौलताबाद तक बनवाई जिसके बारे में मुस्लिम यात्री इब्नबतूता का कहना है कि यह यात्रा ४० दिन में समाप्त होती थी। १८ वीं शताब्दी में लिखी गई चहार गुलशन (Chahar Gulshan) नामक पुस्तक में २४ सड़कों का वर्णन मिलता है जिनमें से १३ मुख्य सड़कें इस प्रकार थी :—(१) आगरा-दिल्ली, (२) दिल्ली-लाहौर, (३) लाहौर-गुजरात-अटक, (४) अटक-काबुल, (५) काबुल-गजनी कन्धार, (६) गुजरात-श्रीनगर, (७) लाहौर-मुलतान, (८) दिल्ली-अजमेर, (९) दिल्ली-बरेली-बनारस-पटना, (१०) दिल्ली-कोल, (११) आगरा-इलाहाबाद, (१२) बीजापुर-उज्जैन और (१३) सिरौंजा-नरवाड़ा।

हिन्दू और मुगल कालीन सड़कें अधिकतर देश की सुरक्षा के लिए युद्ध की दृष्टि से ही बनाई गई थी, अतः व्यापारिक और नागरिक (Civilian) कार्य के लिए सड़कों का अभाव सा ही था मुख्य सड़कों से दूर के स्थानों में तो यातायात के साधनों का नितान्त अभाव था। अँग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद भारतीय सड़कों का व्यवस्थित रूप से विकास किया जाने लगा। किन्तु इस समय भी पहले उन्हीं सड़कों को बनाया गया जिनका सैनिक अथवा शासन सम्बन्धी महत्व ही अधिक था, अस्तु देश के व्यापार अथवा आर्थिक विकास के लिए सड़कों का बनाया जाना पूरी तरह नहीं किया गया। सबसे बड़ी योजना जो पुनः कार्यान्वित की गई, वह थी ग्राण्ड ट्रंक रोड (Grand Trunk Road) जिसकी १८५८ में ५.० लाख रुपये की लागत से लाहौर से पेशावर तक के २६४ मील लम्बे टुकड़े की मरम्मत की गई। इस पर १०३ पुल भी निर्माण किये गए। किन्तु सड़कें बनाने की नीति में लार्ड बैंटिक और लार्ड डलहौजी नागपुर योजना के अनुसार भारत की सड़कों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है :—

(१) राष्ट्रीय राजमार्ग (National Highways)—इस प्रकार की सड़कें समस्त देश को न केवल आर्थिक दृष्टि से ही बल्कि सैनिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बाँध देती हैं। इन सड़कों द्वारा राज्य की राजधानियाँ,

बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक नगरों, मुख्य-मुख्य बन्दरगाह आपस में एक दूसरे से मिला दिये गये हैं। भारत को ब्रह्मा, नैपाल और तिब्बत से भी ये सड़कें मिलाती हैं। विभाजन के पश्चात् इन सड़कों की कुल लम्बाई १३,४०० मील है जिसमें से लगभग ११,८०० मील लम्बी तो सड़कें बनी हुई हैं और लगभग १६०० मील लम्बे बीच-बीच के टुकड़े छूटे हुए हैं। ये सड़कें अधिकतर पक्की (Surfaced) हैं।

(२) प्रान्तीय राजमार्ग (Provincial Highways)—ये प्रान्तों और राज्यों की प्रमुख सड़कें हैं जिनका महत्व व्यापार और उद्योग की दृष्टि से बहुत अधिक है। ये सड़कें राष्ट्रीय सड़कों द्वारा अथवा निकटवर्ती राज्यों की सड़कों से मिली हुई हैं। प्रान्तीय सरकारों पर इन सड़कों के निर्माण और उनको ठीक दशा में रखने की जिम्मेदारी है।

(३) जिले की सड़कें (District Roads)—ये जिले के विभिन्न भागों को आपस में जोड़ती हैं अर्थात् इनका कार्य उत्पत्ति क्षेत्रों को बाजारों या मंडियों से जोड़ना है। बड़ी सड़कों तथा रेलों से भी उनका सम्बन्ध है। इनको बनाने का जिम्मा जिला बोर्डों के अधीन है। इनमें से अधिकांश सड़कें कच्ची हैं जो वर्षा के दिनों में सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती हैं।

(४) गाँव की सड़कें (Village Roads)—ये सड़कें गाँवों को आपस में एक दूसरे से मिलाती हैं। इनका सम्बन्ध निकटवर्ती जिले और प्रान्तों की सड़कों से भी होता है। प्रायः ये पगडंडियाँ मात्र हैं। ये अधिकतर गाँव वालों के सहयोग से ही निर्माण की जाती हैं।

नागपुर सम्मेलन के सुझावों के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने निश्चय किया कि १९४७ के पश्चात् राष्ट्रीय राजमार्ग बनाने का उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर ले लेगी। इसी निर्णय के अनुसार १ अप्रैल १९४७ से इन सड़कों को बनाने और उनको ठीक दिशा में रखने का जिम्मा भारत सरकार ने ले लिया है, किन्तु इसकी मुख्य शर्तें ये हैं :—

(१) केन्द्रीय सरकार जिस सड़क को उचित समझेगी उसे ही राष्ट्रीय राजमार्ग घोषित कर सकेगी तथा इस प्रकार की सड़कों को बनाने में प्राथमिकता देने का पूर्ण अधिकार भी केन्द्रीय सरकार को होगा।

(२) सड़कों पर कितना व्यय किया जाय यह निश्चय केन्द्रीय सरकार की सहमति से ही किया जायगा ?

(३) यद्यपि सड़कों आदि के निर्माण कार्य के लिए प्रान्तीय सार्वजनिक कार्य-विभाग ही होगा किन्तु यदि केन्द्रीय सरकार चाहे तो सड़कों के निर्माण और देख-रेख के लिए अन्य विभाग भी स्थापित किया जा सकता है।

(४) मोटर आदि सवारियों पर जो अभी टैक्स दे रही हैं—अन्य कोई नया कर नहीं लागू किया जायगा और केन्द्रीय सरकार की समस्त अव्यापारिक मोटरें आदि प्रान्तीय अथवा स्थानीय करों से मुक्त होंगी।

(५) प्रान्तीय सरकारों का मुख्य कार्य जिले और गाँवों की सड़कों का विकास करना होगा।

सड़कों की वर्तमान स्थिति (Present Position of Roads)—

हमारे देश में सड़कों की वर्तमान स्थिति असंतोषजनक है। अविभाजित भारत में २९६,००० मील लम्बी सड़कें थीं किन्तु विभाजन के फलस्वरूप अब देश में केवल २,४८,९०४ मील लम्बी सड़कें ही रह गई हैं इसका अर्थ यह है कि हमारे यहाँ प्रतिवर्ग मील क्षेत्रफल पीछे केवल ०·२२ मील लम्बी सड़कें हैं जबकि इतने ही क्षेत्रफल पीछे अमेरिका में १·०३ और ब्रिटेन में २·०२ मील, फ्रांस में १·८४ मील और जर्मनी में ०·९५ मील है। नीचे की तालिका में अन्य देशों के मुकाबले में भारत की सड़कों सम्बन्धी स्थिति बताई गई है[1] :—

देश	क्षेत्रफल (वर्गमील लाख)	जन संख्या (लाख में)	मोटर योग्य सड़कें	मोटर अयोग्य सड़कें	कुल लम्बाई (मीलों में)
सं.रा. अमेरिका	३०·२७	१३२०·००	१,०००,०००	२,००९,०००	३,००९,०००
यूनाइटेड किंगडम	०·८९	४६०·००	१६०,१२०	१९,१७०	१७९,२९०
फ्रांस	२·१३	४१८·००	—	—	
भारत	१२·१७	३१८७·००	१८१,४०६	५७,५६५	२३९,०८१
पाकिस्तान	३·६५	७१·००	५,५५९	४८,१११	५५,९१३

हमारे देश में १९५०-५१ में कुल २४४,००० मील लम्बी सड़कें थी जिनमें ९७,००० मील लम्बी पक्की सड़कें और १४७,००० मील कच्ची सड़कें—थीं।

मुख्य प्रान्तों में पक्की और कच्ची सड़कों का विस्तार इस प्रकार है[2] :—

प्रान्त	पक्की सड़कें (मीलों में लम्बाई)	कच्ची सड़कें
मद्रास	२३,९७५	१४,३८९
बम्बई	१०,८२६	९,९२३
प० बंगाल	३,७७६	७,९९१
उड़ीसा	२,७६५	३,८४४
उत्तर प्रदेश	८,५७६	२३,६६४
पंजाब	२,७२७	८,३६४
बिहार	४,७००	२७,९४२
मध्य प्रदेश	६,४१८	३,५९६
आसाम	१,१७९	१२,९४७
सम्पूर्ण भारत का योग	६५,२१८	११,७६५

1. केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित "Our Road" पृ० ५७.
2. 'India' 1955 P. 310.

नीचे की तालिका में कुछ प्रमुख देशों में प्रति वर्ग मील और प्रति १,००,००० व्यक्तियों के पीछे सड़कों का विस्तार दर्शाया गया है, जिससे ज्ञात होगा कि सड़कों के विस्तार की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत ही कमजोर है[1] :—

देश	प्रति वर्गमील पीछे	प्रति एक हजार वर्गमील पीछे	प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे	विशेष
		(सड़कों की लम्बाई मीलों में)		
कनाडा	—	१६०	४,३९८	—
इटली	०·८९	१,४६७	३७६	मोटर योग्य
जापान	३·००	३,९८८	७२८	,,
इङ्गलेंड	२·०२	२,०७०	३८१	,,
फ्रांस	१·८४	—	९३४	,,
जर्मनी	०·९५	—	२६०	,,
सं रा. अमेरिका	१·०३	१·००६	२,४११	,,
भारत	०·२२	२०१	७३	केवल ३५% मोटर योग्य
पाकिस्तान	०·१५	—	?	?
आस्ट्रेलिया	—	१६८	६,६०२	—

इस तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे २,४११ मील और कनाडा में ४,३९८ मील लम्बी सड़कें हैं वहाँ भारत में उतने ही व्यक्तियों पीछे ७३ मील।

भारत में मुख्य सड़कें ये हैं :

(१) ग्रांडट्रंक रोड :

यह भारत की सबसे मुख्य सड़क है। यह कलकत्ता से आसनसोल, बनारस, इलाहबाद, अलीगढ़, देहली, करनाल, अम्बाला, लुधियाना होती हुई अमृतसर तक जाती है। आगे यह लाहौर, वजीराबाद इत्यादि नगरों में होती हुई पेशावर तक पाकिस्तान देश में जाती है।

(२) कलकत्ता मद्रास रोड :

यह सड़क कलकत्ता से सम्बलपुर, रायपुर, विजयानगरम, बेजवारा, गन्तूर होती हुई मद्रास तक गई है।

(३) बम्बई आगरा रोड :

यह सड़क बम्बई से नासिक, इन्दौर, ग्वालियर होती हुई आगरा तक जाती है। इसको ग्रांड ट्रंक रोड में मिलाने के लिये आगरा से अलीगढ़ तक सड़क बनी है।

(४) ग्रेट डेकन रोड :

यह सड़क मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) से जब्बलपुर, नागपुर होती हुई हैदराबाद (दकन) तक और उससे आगे बंगलौर तक गई है। नागपुर से

---

१. Eastern Economist Annnual, (1952), P. 1064.

बीच बीच में टुकड़े छूटे हुए हैं। सड़कों के बीच में इन छूटे हुए टुकड़ों को बनाना है। पंच वर्षीय योजना के अनुसार १,६०० मील में से ६०० मील टुकड़े पाँच वर्षों में बनाये जायेंगे।

(२) सड़कों के ऊपर की सतह में सुधार करना ताकि वे अधिक बोझा सह सकें। वर्तमान समय में ११,८०० मील में से केवल ४,३०० मील सड़कें ही अच्छी सतह वाली हैं शेष ७,५०० मील लम्बी सड़कों में से केवल ३,००० मील ही लम्बी सड़कों की सतह में आगामी ५ वर्षों में सुधार किया जायगा।

(३) पुराने पुलों में सुधार करना ताकि उन पर होकर अधिक भारी बोझा ढोया जा सके। अभी राष्ट्रीय सड़कों के बीच में ११२ पुलों की जगह छुटी हुई है, अस्तु आगामी ५ वर्षों में ६० पुलों को तैयार किया जायगा। इनके अतिरिक्त लगभग १७०० मील लम्बी सड़कों की मरम्मत की जायगी।

(५) रेल-मार्ग (Railways) :

रेलों का विकास सड़कों के बहुत बाद हुआ है। प्रथम रेल मार्ग का निर्माण १८३५ ई० में इङ्गलैंड में हुआ था जब पहली रेलगाड़ी मानचेस्टर से लिवरपूल के लिए रवाना हुई और जिसके चालक उसके निर्माता स्वयं जार्ज स्टीफेंसन थे। किंतु तब-से रेल मार्गों ने विश्व के सभी देशों में बड़ी प्रगति की है।

रेल मार्गों को प्रभावित करने वाली दशायें—रेल मार्गों को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) भौगोलिक (ख) आर्थिक और (ग) राजनैतिक।

(क) भौगोलिक दशायें—वैसे साधारणतया सड़कों और रेल मार्गों को प्रायः *बिल्कुल सीधी होना चाहिए क्योंकि ज्यामितीय नियमानुसार किन्हीं भी* दो बिंदुओं के बीच की कम-से-कम दूरी एक सीधी रेखा द्वारा ही हो सकती है। इस सीधी रेखा नियम का उल्लङ्घन भौगोलिक परिस्थितियों के कारण करना पड़ता है। भौगोलिक दशाओं में दो मुख्य हैं—

(१) धरातली बनावट(Topography)—धरातली बनावट का थल मार्गों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। मैदानी भागों में तो मार्ग सीधे चलते हैं लेकिन रुकावट पड़ते ही उनको मुड़ना पड़ता है जिससे मार्ग की लम्बाई और दो स्थानों के बीच की दूरी बढ़ जाती है। इस विषय में इस सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिए कि 'यातायात के साधन विशेषकर रेलें तथा सड़कें न्यूनतम अवरोध का मार्ग ग्रहण करते हैं (Means of communication follow the path of least resistance)। पहाड़ी भागों में सड़कों का निर्माण कठिन और अत्यधिक खर्चीला होता है। केवल यही नहीं पहाड़ी भागों में यातायात के साधन मोटर, रेल इत्यादि टूटते रहते हैं और मरम्मत में भी काफी खर्च पड़ जाता है। सामने पड़ने वाली ऊँची पहाड़ियों को सुरंगें बनाकर पार करना पड़ता है, नदियों पर पुल बनाने पड़ते हैं और ढाल के सहारे गोलाकार (Contour roads) मार्ग बनाये जाते हैं, जिससे चढ़ाई या

ढलाव हल्का हो। इस प्रकार सड़कों की लम्बाई बढ़ जाती है और निर्माण व्यय भी अधिक होता है। रेल मार्गों का निर्माण अत्यन्त मंद ढालों पर ही संभव है। एक प्रतिशत ढाल पर (१०० पर १ फुट की चढ़ान) रेल का इञ्जिन समतल भूमि पर जितना बोझ खींच सकता है उसका ½ भाग खींच सकता है। उत्तरी अमेरिका में रॉकी पर्वतों को पार करने वाली गाड़ी को २·२% से अधिक ढाल पर नहीं चढ़ना पड़ता। पीरू देश की एक रेल लाइन जो १५,८०६ फुट की ऊँचाई तक जाती है, ४% से अधिक ढाल कहीं भी नहीं है। रेल के इञ्जिन की कर्षण-शक्ति सबसे अधिक भूमि के ढाल पर भी निर्भर है। अतः सबसे कम ढाल पर ही रेल मार्ग बनाये जाते हैं। जिन स्थानों पर पर्वतों को पार करना आवश्यक हो जाता है वहाँ सुरंगें बनाई जाती हैं। विश्व की २६ सुरङ्गों में से १६ सुरंगे अकेले आल्प्स पवत में पाई जाती हैं। भारत में इस प्रकार की सुरङ्ग पश्चिमी घाट में मिलती हैं।

(२) जलवायु (Climate) :—प्रारम्भिक काल में यातायात बहुत कुछ जलवायु से प्रभावित होता था। किंतु अब यांत्रिक यातायात जलवायु के प्रभाव से प्रायः मुक्त हो गया है। अधिक वर्षा वाले भागों की जमीन दलदली होती है इसलिये वहाँ रेलों और सड़कों के निर्माण में बड़ी कठिनाई होती है। केवल यही नहीं इनकी रक्षा और मरम्मत करने में भी काफी खर्चा करना पड़ता है। बाद में सड़कें और रेलें उखड़ जाती हैं, पुल टूट जाते हैं और स्टेशन तक डूब जाते हैं। भारत में आसाम और बिहार राज्यों में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की मिसीसिपी की घाटी में प्रायः इन बाढ़ों से यातायात मार्गों को बहुत हानि पहुँचती रहती है। गर्म लू वाले देशों में सड़कें और रेलें रेत से ढक जाती हैं और अति शीत वाले देशों में इन पर बर्फ जमने से यातायात रुक जाता है। इनको साफ करने में व्यय भी बढ़ जाता है। इसी कारण रेगिस्तानों में पक्की सड़कों या रेल मार्गों का अभाव रहता है। जापान के उत्तरी द्वीपों और इङ्गलैंड में सड़कों पर से बर्फ साफ करने के लिये भारी व्यय करना पड़ता है।

(ख) आर्थिक दशायें—अधिक उन्नत देशों में भौगोलिक तत्वों का प्रभाव आर्थिक तत्वों के प्रभाव से अपेक्षाकृत कम होता है। प्रारम्भिक व्यय पर भौगोलिक तत्वों का प्रभाव अधिक होता है। लेकिन उस मार्ग से प्राप्त होने वाले लाभ पर आर्थिक तत्वों का प्रभाव अधिक पड़ता है। आर्थिक दशाओं में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं :—

(१) जनसंख्या—जिन क्षेत्रों की आबादी घनी होती है वहाँ काफी यात्री व सामान उपलब्ध हो सकते हैं और उन क्षेत्रों में मार्गों का घनत्व भी अधिक होता है तथा उसी क्षेत्र से होकर अधिकतर मार्ग गुजरते हैं। अतएव जनसंख्या का खिचाव (Pull of the population) एक महत्वपूर्ण तत्व है।

(२) व्यापार—जिन क्षेत्रों में व्यापार का आयतन (Volume of trade) अधिक होगा वहाँ यातायात मार्गों की अधिक आवश्यकता पड़ेगी। ऐसे क्षेत्रों में अधिक-से-अधिक आय हो सकती है और यातायात का विकास भी निरन्तर होता रहता है। ऐसे क्षेत्रों में मार्गों की प्रचुरता तो रहेगी ही, साथ ही उनकी कार्य कुशलता को प्रोत्साहन मिलता रहेगा।

(३) औद्योगिक उन्नति—औद्योगिक विकास के लिए सामान का गमनागमन अत्यावश्यक है। इसलिये अधिक उन्नत औद्योगिक क्षेत्रों में मार्गों का विकास भी अधिक होता है। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पूर्वी और यूरोप के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्रों में रेल मार्गों का घनत्व संसार भर में सबसे अधिक है।

(ग) राजनैतिक दशायें—राजनैतिक तत्वों का प्रभाव भी मार्गों पर गहरा पड़ता है। प्राचीन समय में भी शासन सम्बन्धी कार्यों की सफलता और राष्ट्रीय एकता को प्राप्त करने में यातायात के महत्व को प्रत्येक राज्य समझता था। रोम को साम्राज्य के पृथक भागों से मिलाने के लिए एक विस्तृत मार्ग का निर्माण किया गया था और कहावत भी है 'सारे मार्ग रोम को जाते हैं (All roads lead to Rome)।' प्रो० मूडी के कथनानुसार रोमन साम्राज्य के पतन के कई कारणों में मार्गों की बुरी दशा भी एक प्रमुख कारण था। राजनैतिक दशाओं में दो दशायें मुख्य हैं—

(१) शासन कार्य—रेल या सड़कों द्वारा किसी राज्य के भिन्न-भिन्न भाग राजधानी से मिले रहते हैं जिससे शासन कार्य ठीक होता रहता है। पहाड़ी राज्यों जैसे नेपाल और काश्मीर में सड़कों के अभाव में दैनिक शासन कार्य भी ठीक नहीं हो पाता है।

(२) राष्ट्रीय एकता—छोटे-से-छोटे राष्ट्र से लेकर बड़े-से-बड़े राष्ट्र तक के लिए यह आवश्यक है कि सारे भाग एक दूसरे से मिले रहें। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता की भावना जाग्रत रहेगी। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सोवियत रूस के पूर्वी और पश्चिमी तटीय भागों को मिलाने में ट्रांस महाद्वीपीय रेलें बहुत सहायक हुई हैं। ऐसे ही मार्गों द्वारा सारे देश में विचार और सामान का निरन्तर आदान-प्रदान होता रहता है और एकता का विचार पनपता रहता है।

रेलों की विशेषतायें :

रेलें यातायात का सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं। औद्योगिक विकास में बढ़े हुए देशों की तो रेलें जीवन ही हैं क्योंकि (१) पहाड़ी प्रदेशों से लेकर मैदानी भागों तक लगभग सभी जगह रेलवे लाइनें बनाई जा सकती हैं। (२) मोटर में बराबर टूट-फूट होते रहने के कारण रेलवे मोटर यातायात से सस्ती पड़ती हैं। (३) गति तेज होने से कम भाड़े में माल तथा मुसाफिर लम्बे सफर के लिए, रेलवे मोटर अथवा नदी के साधनों से अधिक लाभप्रद रहती है। (४) देश के विभिन्न भागों में रेलों का विस्तार हो जाने से ट्रैफिक बढ़ जाता है इससे रेलवे को आर्थिक लाभ ही होता है। (५) रेलों का सबसे बड़ा लाभ इसकी रफ्तार, माल ढोने की अटूट शक्ति और समय की पाबन्दी काफी विश्वसनीय है। (६) युद्धकाल में फौजों और अकाल के दिनों में भोजन सामग्री को उचित समय और काफी मात्रा में पहुँचाने का काम रेलों द्वारा ही संभव है। (७) रेलों के खुल जाने से बहुत से वीरान देश आबाद हो गये। कनाडा और साइबेरिया में रेलों के खुल जाने से आशातीत उन्नति हुई। यदि आस्ट्रेलिया में सब रियासतों को रेलों द्वारा न जोड़ दिया जाता तो केन्द्रीय सरकार का सङ्गठन होना बहुत ही कठिन था। भारत तथा चीन जैसे राष्ट्रों को एक सूत्र में बाँधने का कार्य

रेलों ने ही किया है। (८) जो देश मनुष्यों के निवास योग्य नहीं हैं किंतु जहाँ बहुमूल्य खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं वहाँ रेलों का बनना बहुत बड़ी देन है। (९) देश में उत्पादित कच्चा माल रेलों द्वारा ही कारखानों या बन्दरगाहों को भेजा जा सकता है।

किन्तु रेलों का उपयोग अभी तक देश के भीतरी व्यापार के लिए ही हो सका है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उनका महत्व कम है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए वह केवल सहायक मार्गों का काम देती हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं— प्रथम, रेलों द्वारा माल ले जाने में जहाजों की अपेक्षा अधिक व्यय होता है। दूसरे, भिन्न भिन्न देशों में रेलों की पटरियों के बीच की दूरी में भी भिन्नता होती है जिससे माल को उतारने चढ़ाने में कठिनाई पड़ती है। इस प्रकार यूरोप में ही रूस की पटरियों की चौड़ाई ५ फुट है, स्पेन और पुर्तगाल की ५ फुट ५$\frac{3}{4}$ इञ्च तथा अन्य यूरोपीय देशों में ४ फुट ८$\frac{1}{2}$ इञ्च की चौड़ाई है। यद्यपि कई फ्रेंच लाइनों की चौड़ाई ४ फुट ९ इञ्च है। कुछ समय पूर्व से ही यूरोपीय लाइनों की चौड़ाई ४ फुट ९ इंच है। कुछ समय पूर्व से ही यूरोपीय लाइनों की चौड़ाई एक सी कर दी गई है जिससे अब पेरिस से मास्को तथा अन्य बड़े बड़े नगरों तक रेल बिना बदले ही यात्रा संभव हो गई है। भारत में भी सभी जगह रेल की पटरियों की बीच की दूरी समान नहीं है। आँधी आदि के डर से बचने के लिए यहाँ की रेलें अङ्गरेजी रेलों से अधिक चौड़ी बनाई गई हैं। इनमें बीच की पटरियों की दूरी ५ फुट ६ इंच है इसे बड़ी लाईन कहते हैं। (Broad Gauge) कहते हैं। इसके अतिरिक्त मीटर गेज (Meter Gauge) में पटरियों की दूरी ३ फुट ३$\frac{3}{8}$ इंच है। अधिक चढ़ाई के स्थानों और बहुत ही कम व्यापार वाले स्थानों में तङ्ग गेज वाली (Narrow Gauge) रेलवे लाइन खोली गई हैं जिनमें पटरियों के बीच की दूरी २ या २$\frac{1}{2}$ फुट ही रखी गई हैं।

नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में रेलों के गॉज बताये गये हैं[1]:—

गॉज	दो पटरियों के बीच की दूरी	देश जहाँ इस गॉज की रेलें पाई जाती हैं
(१) बड़ी लाइन (Broad Gauge)	(१) ५ फुट ६ इंच	भारत, पाकिस्तान, लङ्का ब्राजील, चिली अर्जेन्टाइना,
	(२) ५ ,, ५$\frac{3}{4}$,,	स्पेन, पुर्तगाल
	(३) ५ ,, ३ ,,	आस्ट्रेलिया, आयर
	(४) ५ ,, ० ,,	रूस
(२) स्टेन्डर्ड गॉज (Standard Gauge)	(१) ४ फुट ८ $\frac{1}{2}$ इंच	ब्रिटेन, सं० रा० अमेरिका कनाडा, आस्ट्रेलिया, चीन, मिस्र,
	(२) ४ ,, ९$\frac{1}{2}$,,	जर्मनी, इटली, फ्राँस, बेलजियम, नीदरलैंड, पोलैंड, नार्वे, स्वीडेन, यूनान, हंगरी, जैकोस्लोवाकिया

१. प्रमुख देशों में रेलों की तुलनात्मक लम्बाई।

गाँज	दो पटरियों के बीच की दूरी	देश जहाँ इस गाँज की रेलें पाई जाती हैं
(३) छोटी लाइन (Metre Gauge)	(१) ३ फुट ६ इंच	द० अमेरिका, आस्ट्रेलिया,
	(२) ३ „ ३$\frac{3}{8}$ „	भारत, पाकिस्तान, बर्मा, मलाया, थाइलैंड, फ्रांस
(४) तंग गाँज (Narrow Gauge)	(१) २ फुट ६ इञ्च	भारत, पाकिस्तान, चिली
	(२) २ „ ० „	भारत, द० अफ्रीका संघ

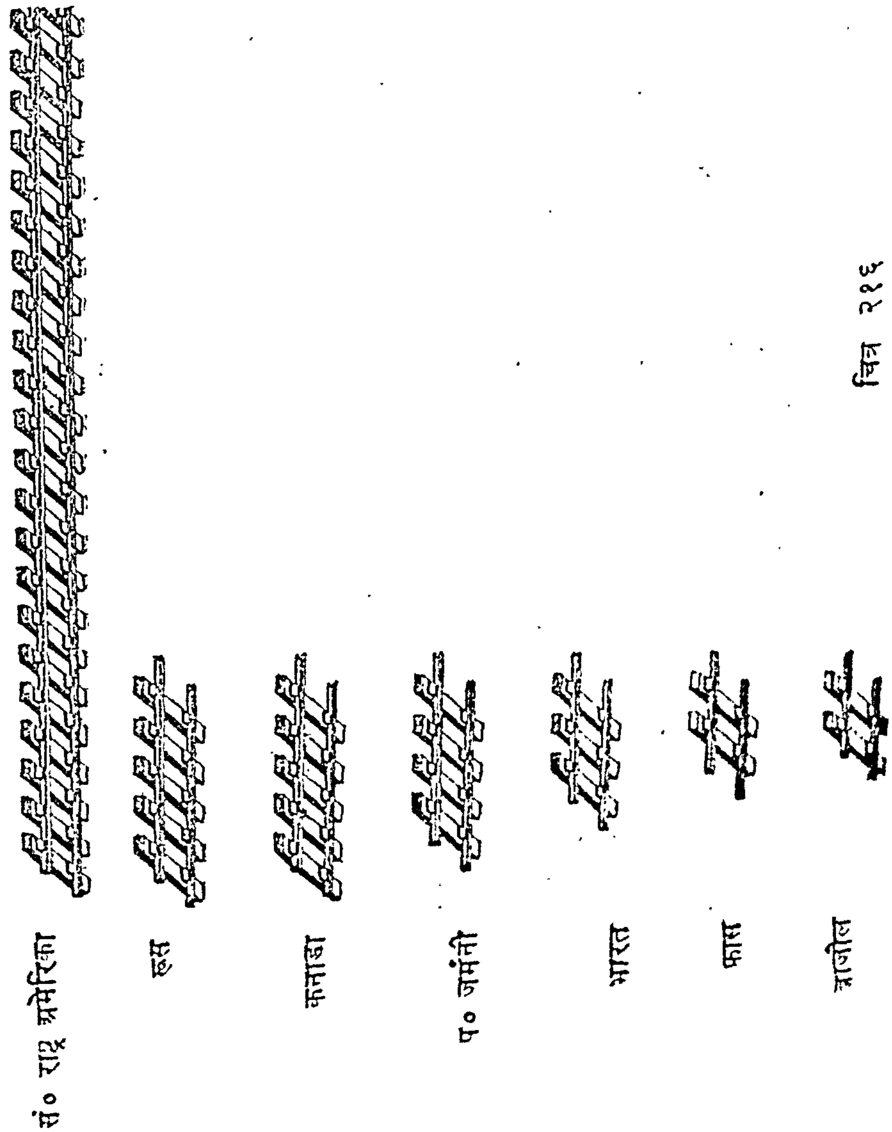

चित्र २९३

रेलें प्रथमतः कुछ भागों में युद्ध सम्बन्धी कारणों से ही बनाई गई थीं। व्यापार का विकास तो उनके द्वारा बाद को हुआ। यूरोप की रेल इसी प्रकार की हैं। ऐसी रेलों की मुख्य विशेषता यह है कि वे केन्द्रीय (radial) होती हैं अर्थात् देश की राजधानी से चारों ओर सीमा तक जाती हैं। इस प्रबंध से सरकार को देश की रक्षा के लिये सैनिक सामान की पूर्ति करने तथा सेनाएँ भेजने में सहायता मिलती है। परन्तु इसी व्यवस्था के कारण राजधानी में व्यापार का प्रभाव भी होने लगता है और अन्त में व्यापार मार्गों की एक बहुत बड़ी संख्या बन जाती है। इस प्रकार व्यापार बढ़ने से इन रेलों की युद्ध-उपयोगी विशेषता छिप जाती है और वे अन्य व्यापारिक रेलों की भाँति देश की सेवा करने लगती हैं।

उत्तरी अमेरिका में रेलें आवश्यकीय रूप से व्यापारिक (Commercial) हैं। अतएव वे आयताकार हैं। यह आयताकार नमूना बड़ी झीलों के प्रतिनिवेश में एक केन्द्रीय हो जाता है। झीलों पर बहुत अधिक मात्रा में सामान लाया ले जाया जाता है। इस सामान को लेने के लिये रेलें झील के बन्दरगाह को जाती हैं।

उत्तरी अमेरिका में अटलांटिक तट से प्रशांत महासागर के तट तक या यूरोप में मास्को से प्रशांत महासागर के तट पर ब्लाडीवास्टक तक जाने वाली रेल महाद्वीपी-रेल (Trans-Continental) कहलाती है। प्रायः सभी महाद्वीपों में महाद्वीपी रेलें पाई जाती हैं– यथा उत्तरी अमेरिका में (१) कैनोडियन पैसिफिक रेलवे, (२) कैनेडियन नेशनल रेलवे, (३) उत्तरी पैसिफिक रेलवे, (४) संयुक्त पैसिफिक रेलवे, (५) दक्षिणी पैसिफिक रेलवे। एशिया में (१) ट्रांस साईबेरिन रेलवे, (२) ट्रांस कैस्पीयन रेलवे और (३) ट्रांस काकेशियन रेलवे, अफ्रीका में 'कैप कैरोल रेलवे. तथा दक्षिणी अमेरिका में 'चिली-अर्जेनटाइना रेलवे, और आस्ट्रेलिया में ट्रांस आस्ट्रेलिया रेलवे प्रमुख है। १९५२ में दुनियां में कुल रेलों की लम्बाई लगभग ७५०,००० मील है जिसका विवरण इस प्रकार है:—

विश्व में रेल मार्गों की लम्बाई (१९५२)

देश	रेलमार्गों की कुल लम्बाई (मीलों में)	प्रति १००० वर्ग मील पीछे रेल मार्ग (मीलों में)
संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका	२२५,१४६	७·५
रूस	५७,४८७	.७
कनाडा	३९,०००	
भारत	४२,६१४	१·१
आस्ट्रेलिया	२८,०१९	०·९
फ्रांस	२५,१०५	११·८
ब्राजील	२१,२५७	·७
इङ्गलैंड	२०,६१७	२१·९
चीन	२०,७८१	·६

देश	रेलमार्गों की कुल लम्बाई (मीलों में)	प्रति १००० वर्ग मील पीछे रेल मार्ग (मीलों में)
पश्चिमी जर्मनी	१८,९३५	२०·०
इटली	१३,४४१	११·६
दक्षिणी अफ्रीका संघ	१३,२८०	२·८
पोलेंड	१३,१२८	१०·९
मैक्सिको	१२,५१७	१·७
स्पेन	१०,५६३	५·५
स्वीडेन	१०,५१८	६·१
जापान	१०,४७१	७·१
स्विटजरलैंड	३,३४५	२१·०
इंडोनेशिया	४,५३६	०·६
टर्की	४,६७२	१·६
चिली	४,६१८	१·६
मिस्र	४,०२३	१·०
न्यूजीलैंड	३,५३२	३·४
फ्रेंच पश्चिमी अफ्रीका	२,७०५	०·२
एंग्लो—मिस्री सूडान	२,०१३	०·२

विश्व के प्रमुख रेल-मार्ग

विश्व के प्रसिद्ध रेल-मार्ग ये हैं :—

(१) रूस में :

(क) ट्रांस-साईबेरियन रेल-मार्ग
(ख) ट्रांस-कैस्पियन रेल-मार्ग

(२) यूरोप में :

(१) सूद एक्सप्रेस रेल-मार्ग
(२) पेरिस-लियोस भूमध्यसागरीय मार्ग
(३) पेरिस-इटली रेल-मार्ग
(४) ओरियंट एक्सप्रेस रेल-मार्ग

(३) उत्तरी अमेरिका में :

(१) कैनेडियन पैसिफिक रेल-मार्ग
(२) यूनियन पैसिफिक रेल-मार्ग

(४) अफ्रीका में :

(१) केप-काहिरा रेल-मार्ग

(५) दक्षिणी अमेरिका में :

(१) ट्रांस-एंडियन रेल-मार्ग
(२) एशिया में भारत के रेल-मार्ग

रूस में :

(क) ट्रांस साईबेरियन रेल-मार्ग (Trans Siberian Railway):

यह रेल मार्ग संसार का सबसे लम्बा ट्रांस महाद्वीपीय रेल मार्ग है। इस रेल मार्ग के द्वारा न केवल लेनिनग्राड और मास्को व्लाडिवास्टक से जुड़े हैं बल्कि पेरिस भी व्लाडिवास्टक के साथ मास्को होते हुये जुड़ गया है। इस प्रकार यूरोप का सीधा सम्पर्क प्रशान्त महासागरीय देशों के साथ इस रेल मार्ग द्वारा हो गया है। स्वेज मार्ग के साथ इस मार्ग की कोई तुलना नहीं हो सकती। एशिया के पूर्वी देशों और यूरोपीय देशों के बीच सामुद्रिक मार्ग द्वारा ही सीधा सम्पर्क स्थापित रहता है। जहाँ तक समय का प्रश्न है ट्रांस साईबेरियन रेल मार्ग सामुद्रिक मार्ग से अच्छा है क्योंकि लन्दन से जापान तक जाने में जल यातायात में छः सप्ताह लेकिन रेल यातायात में केवल दो सप्ताह लगते हैं। परन्तु व्यापारिक वस्तुओं के आयतन के विचार से रेल मार्ग सामुद्रिक मार्ग का मुकाबला नहीं कर सकता है।

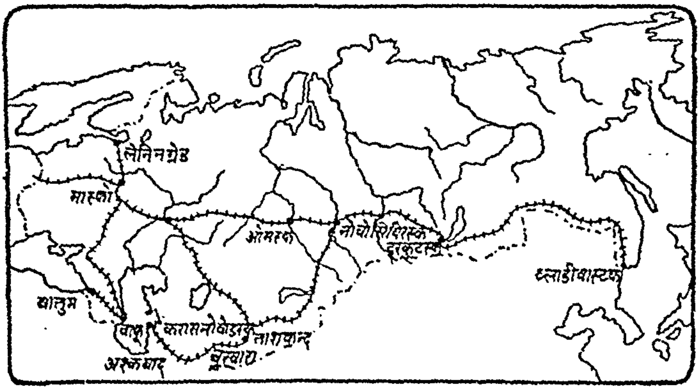

चित्र २१७ ट्रांस साईबेरिसन रेल मार्ग

यह रेल मार्ग रूस के पूर्व में प्रशान्त महासागरीय बन्दरगाह व्लाडीवास्टक से रूस की राजधानी मास्को और बाल्टिक सागर के तट पर स्थित बन्दरगाह लेनिनग्राड तक जाता है। इस रेल मार्ग का निर्माण सन् १८९१ में आरम्भ होकर सन् १९०४ में समाप्त हुआ था। इसमें दो जोड़ी पटरियाँ (Double track) हैं जिससे व्यापार का आयतन अधिक रहता है। इसकी सीधी लम्बाई व्लाडिवास्टक से मास्को तक ५४०० मील है। इस लम्बाई का दो तिहाई भाग एशिया में और शेष यूरोप में है।

यह रेल मार्ग पश्चिमी अन्तिम स्टेशन लेनिनग्राड से शुरू होता है। यह शहर फिनलैंड खाड़ी के तट पर स्थित है। यह रूस का अकेला ऐसा बन्दरगाह है जिसके द्वारा रूस का पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिका के देशों के साथ सम्पर्क रहता है। साईबेरिया या जापान जाने वाले थोड़े बहुत यात्री हमें यहाँ दिखाई पड़ते हैं। यहाँ से रेल दक्षिण पूर्व की ओर लेनिनग्राड औद्योगिक क्षेत्र को पार करती हुई चलती है। बीच में कालिनिन नामक प्रसिद्ध व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र पड़ता है। उसके बाद रेल रूस की राजधानी और उसके

सबसे बड़े नगर मास्को पहुँचती है। मास्को-आईवानोवा औद्योगिक क्षेत्र का बना माल यहाँ साईबेरिया पहुँचाया जाने के लिये लादा जाता है। मास्को के बाद दूसरा प्रसिद्ध केन्द्र वोलगा पर स्थित कुबीसिव (समारा) आता है यहाँ से रेल मार्ग की प्रधान शाखा यूराल पर्वत को पार करके चिलियाविन्स्क पहुँचती है। इसी रेलमार्ग द्वारा यूराल प्रदेश के दक्षिण में स्थित मैगनिटगोरस्क की लोहे की खानों से प्राप्त कच्ची लोहे की धातु रूस के पश्चिमी और उत्तरी औद्योगिक केन्द्रों को भेजी जाती है। इस काम के लिये इस रेल मार्ग की शाखाओं का भी प्रयोग किया जाता है। साईबेरिया से पश्चिमी रूस को भेजे जाने वाले पदार्थ जैसे समूर, लुग्दी, लकड़ी, चमड़ा. मक्खन, सुखाया हुआ दूध, धातुएँ और गेहूँ इसी स्टेशन पर गाड़ी में लदे दिखाई पड़ते हैं। इसके बाद रेल स्टेप के घनी, विस्तृत और समतल मैदान पर चलती हुई स्टेप के मुख्य केन्द्र ओमस्क पहुँचती है। इस प्रदेश में रेल मार्ग के उत्तर की ओर गेहूँ के खेत और कोणधारी वनों के समूह और दक्षिणी भाग में गेहूं के खेत दिखाई पड़ते हैं। स्टेप के सूखे भागों में विस्तृत चरागाह भी दिखाई पड़ते हैं। ओमस्क के आस पास कोयले की खानें और कपास के विस्तृत खेत दिखाई पड़ते हैं जिनके आधार पर यहाँ का सूती कपड़ा उद्योग चालू है। ओमस्क के बाद नोवोसिबिरस्क तक प्राकृतिक और मानवीय दृश्यों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। नोवोसिबिरस्क से दक्षिण की ओर इसी रेल की एक मुख्य शाखा बालकश झील के चारों ओर मुड़कर इसके दक्षिण पश्चिम की ओर ताशकन्द शहर तक गई है। नोवोसिबिरस्क नगर से साईबेरिया की गेहूँ और नरम कटी लकड़ी तुर्किस्तान भेजी जाती है और तुर्किस्तान की कपास उतारी और लादी जाती है ताकि यह कपास रूस के पश्चिमी औद्योगिक क्षेत्रों को पहुँचाई जा सके। नोवोसिबिरस्क ओबी नदी पर स्थित है जिसके आगे येनेसी नदी पर क्रासनोयार्स्क है। इसके बाद रेल पठारी भाग पर चढ़ जाती है और अङ्गारा घाटी होती हुई बेकाल झील के दक्षिण स्थित इरकुटस्क स्टेशन पहुँचती है। इस स्टेशन से झील प्रदेश का अच्छा कोयला और उत्तम लोहा रूस के औद्योगिक क्षेत्रों को भेजा जाता है। कोयला शक्ति द्वारा चालित एक बड़ा विद्युत स्टेशन भी इस नगर के पास है। बेकाल झील को पहले नावों द्वारा पार करना पड़ता था लेकिन अब झील के दक्षिण की ओर से रेल मार्ग बनाया गया है। यह मार्ग टावलोनाय पर्वत की ३१४० फुट की ऊंचाई पार करता हुआ शिल्का नदी के तट पर स्थित चीता नगर पहुँचता है। इस भाग में यात्री को दोनों ओर सुनसान प्रदेश दिखाई देता है और बीच-बीच में धातुओं की खानें भी मिलती हैं। यह जन विहीन इलाका है। चीता से इस रेल की एक शाखा आमूर नदी के सहारे-सहारे उत्तर की ओर चलकर खाबारोस्क पहुँचती है जहाँ से एक दम दक्षिण की ओर मुड़कर व्लाडिवास्टक पहुँचती है। दूसरी शाखा चीता से सुङ्गारी नदी के मैदान में स्थित हारबिन होती हुई व्लाडिवास्टक पहुँचती है। हारबिन से में रेल प्रचुर मात्रा में सोयाबीन भेजी जाती है। कोयला, समूर और धातुएँ भी लदती हैं। हारबिन और चीता के बीच खिंगन की ऊँची पहाड़ी श्रेणियाँ हैं जो खनिज पदार्थों के भण्डार हैं। दक्षिणी शाखा का निर्माण सन् १८९६ के चीन रूस समझौते के अनुसार हुआ था जिसने चीता से व्लाडिवास्टक

तक का मार्ग काफी छोटा हो गया है। यह शाखा, जैसा कि मानचित्रों से स्पष्ट है अत्यन्त धनी खेतीहर प्रदेशों से होकर गुजरती है जहाँ से भारी व्यापार होता है।

इस रेल मार्ग के निर्माण के पूर्व साईबेरिया केवल कुछ फर एकत्रित करने वाले खानाबदोश पशु चराने वाले और राजनैतिक कारणों से निर्वासित लोगों का घर था। लेकिन इस रेल मार्ग द्वारा हजारों व्यक्ति बेकाल झील तक फैले काली मिट्टी के प्रदेश में बस गए। इसी रेल मार्ग द्वारा साईबेरिया का गेहूँ, मक्खन, पनीर, चर्बी. मांस, चमड़ा, ऊन, फल, चीनी, चाय और रेशम पश्चिमी रूस को भेजे जाते हैं। १९३० के बाद धातु सम्पत्ति का व्यापक शोषण होने से नोवोसिवरस्क, कुजनेटस्क, खाबारोवस्क और कोमोसोमलस्क आदि प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्रों का जन्म हुआ है। इसी रेल मार्ग के द्वारा पूर्वी और मध्य साईबेरिया के बीच कृषि और कारखाना उद्योगों में एक प्रकार का संतुलन कायम हो सका है जिससे साईबेरिया के कच्चे माल को कई हजार मील दूर यूरोपीय रूस के औद्योगिक क्षेत्रों को पहुँचने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। राष्ट्रीय सुरक्षा में भी इस रेल मार्ग का एक बड़ा हाथ है। प्रारम्भ में इसे फौजी आवश्यकता के लिये बनाया गया था जिससे फौज राजधानी से साईबेरिया के दूर देशों को आसानी से भेजी जा सके। युद्ध के समय सुरक्षा के महत्व का एक और पहलू सामने आया। सन् १९४५ में इसी रेल मार्ग के द्वारा लाखों रूसी सैनिक अपनी विशाल रसद के साथ मास्को क्षेत्र से मंचूरिया की ओर गये। साईबेरिया के मध्यवर्ती देशों का आर्थिक विकास और राजनैतिक एकता की भावना का उदय पूर्ण रूप से इसी रेल मार्ग पर निर्भर है। अत: रूसी सरकार द्वारा इस रेल मार्ग निर्माण पर खर्च किया गया २० करोड़ पौंड का व्यय एक सर्वथा उपयुक्त व्यय है।

(ब) ट्रांस कास्पियन रेल मार्ग (Trans-Caspian Railway)

यह रेलवे मध्य-एशिया को रूस से मिलाती है। आशा है कि भविष्य में यह लाइन दोनों ओर बढ़ा दी जायगी और इस प्रकार यूरोप व भारत में रेल-सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। कास्पियन सागर पर स्थित क्रैस्नोवोड्स्क नगर से चलकर यह लाइन तुर्किस्तान के कपास उगाने वाले प्रदेश के मध्य तक पहुँचाती है। क्रैस्नोवोड्स्क ताशकन्द होकर मास्को से मिला हुआ है। इस प्रकार यह रेलवे लाइन तुर्किस्तान की कपास को मास्को की मिलों तक पहुँचाने में सहायता करती है।

यूरोप के रेल मार्ग

यूरोप महाद्वीप की सभी बड़ी बड़ी रेलें पेरिस नगर से प्रारम्भ होती हैं। यहाँ के मुख्य रेल मार्ग निम्नांकित हैं :—

(१) सूद एक्सप्रेस रेल मार्ग :—यह रेलवे लाइन फ्रांस के पश्चिमी निम्न प्रदेश से होकर बोर्डो नगर जाती है जो शराब बनाने का बड़ा केन्द्र है। इसके बाद यह रेलवे पिरेनीज के पश्चिमी भाग से होकर स्पेन की राजधानी मेड्रिड जाती है। यहाँ से एक लाइन लिजबन और दूसरी लाइन जिब्राल्टर जाती

है। जिब्राल्टर जल डमरू-मध्य रूम सागर तथा अटलांटिक महासागर को मिलाता है।

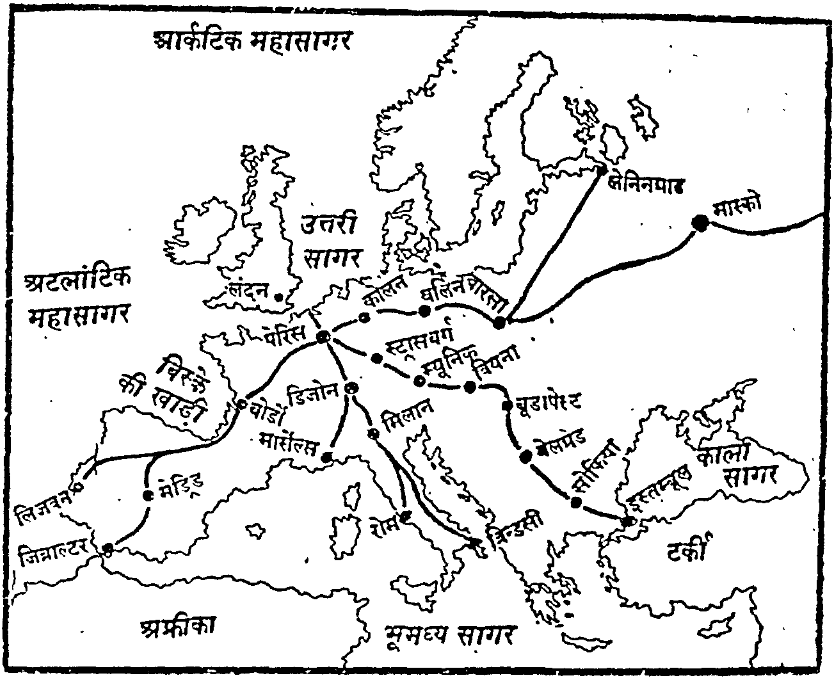

चित्र २१८

(२) पेरिस-लियांस-भूमध्यसागरीय मार्ग :— यह रेलवे लाइन पेरिस से आरम्भ हो कर सीन की सहायक नदी योनी के साथ-साथ जाती है और एक दर्रे से निकल कर डिजान पहुँचती है। यहाँ से दक्षिण को मुड़ कर रोन नदी के साथ-साथ मार्सेल्स को जाती है जो भूमध्य सागर के किनारे बसा हुआ है। यह एक पाकेट स्टेशन है। पूर्वी देशों को जाने वाले यात्री इसी रेल द्वारा मार्सेल्स आते हैं और फिर जहाजों पर सवार होकर पूर्वी देशों को जाते हैं: यहीं से पूर्वी देशों से जहाजों द्वारा स्वेज नहर से आया हुआ माल देशों के भीतरी भागों को रेलों द्वारा भेजा जाता है।

(३) पेरिस इटली रेल मार्ग :—ऊपर वर्णन किये हुए डिजान नगर से एक लाइन जूरा पर्वत को पार करके आलपस पर्वत को लाचबर्ग (Lotschbrg) तथा सिघलन सुरङ्गों द्वारा पार करके मिलान पहुँचती है। यहाँ से एक लाइन इटली के पश्चिमी समुद्र तट से होते हुए रोम तथा नेपिल्स जाती है। यही रेल इटली के दक्षिणी सिरे तक चली जाती है। एक दूसरी रेलवे लाइन मिलान से इटली के उत्तरी मैदानी भाग से होती हुई पूर्वी समुद्र तट से ब्रिंडसी तक जाती है। फ्रांस के लियांस नगर से एक और रेलवे लाइन स्योन नदी (Saone River) की घाटी से होकर आलपस पर्वत को माउण्ट सेनिस के सुरङ्ग से पार करके ट्यूरिन जाती है। फिर यहाँ से यह रेल भूमध्य सागर पर स्थित इटली के जेनेवा नगर जाती है।

(४) पेरिस से एक रेल कैले नगर को जाती है जो डोवर नगर के सामने स्थित है। डोवर से इङ्गलैंड के नगरों को रेलें जाती हैं।

(५) ओरियंट एक्सप्रेस रेल मार्ग :—यह यूरोप महाद्वीप की बहुत महत्वपूर्ण रेलवे लाइन है। यह रेल पेरिस से आरम्भ होकर पूर्व की ओर इस्तम्बूल तक जाती है। इसके द्वारा यूरोप के कई देशों की राजधानियां मिली हुई हैं। इस रेल से यात्रा करने में कई देशों से होकर जाना पड़ता है। पेरिस से यह रेलवे लाइन मार्न नदी के साथ-साथ जाती है और फिर सेवर्न दर्रे से होकर जो बोसजेज पहाड़ियों के उत्तर में है, स्ट्रासवर्ग पहुँचती है। यह नगर राइन नदी की घाटी में एक सुरक्षित स्थान पर स्थित है। इसके आस-पास गेहूँ तथा अंगूर की खेती अच्छी होती है। इसके उपरान्त यह रेलवे लाइन राईन नदी को पार करके ब्लैक फोरेस्ट के उत्तर में होकर जाती है। यहां से यह रेल जर्मनी के दक्षिण में बवेरिया के पठार पर आती है। वहाँ प्रायः डेन्यूब नदी की घाटी में होकर जाती है। वहाँ म्यूनिच नगर डेन्यूब की सहायक इन नदी पर स्थित है।

बवेरिया के पठार को पार करने के बाद यह रेलवे लाइन आस्ट्रिया में प्रवेश करती है और वीयना जाती है। यह रेलों का एक बड़ा जङ्कशन तथा आस्ट्रिया की राजधानी है। यहाँ से यह रेलवे लाइन डेन्यूब नदी के साथ-साथ हङ्गरी के मैदान में जाती है और बुडापेस्ट नगर जाती है। हङ्गरी के मैदान में डेन्यूब नदी की बाढ़ के कारण यह नगर ऊंचाई पर बसाया गया है। बुडापेस्ट से डेन्यूब नदी दक्षिण पूर्व को मुड़ती है। रेलवे लाइन भी उस नदी के साथ-साथ मुड़ जाती है और बेलग्रेड नगर जाती है जो यूगोस्लाविला की राजधानी है तथा डेन्यूब और सेव नदी के सङ्गम पर स्थित है। यहाँ से यह रेल मोरावा नदी की घाटी में हो कर जाती है जो दक्षिण से आकर डेन्यूब में मिलती है। इस घाटी में निस रेलवे स्टेशन है। यहाँ से यह रेल बलगेरिया में जाकर सोफिया पहुँचती है। इसके बाद यह रेल बालकन तथा रोडीय पर्वतों के बीच स्थित रोमेलिया के मैदान में जाती है। यहाँ मरीतजा नदी बहती है। इस नदी के साथ साथ रेल एड्रिया नोपेल जाती है फिर इसके बाद यूरोपीय टर्की में होकर इस्तंबूल पहुँचती है। जहाँ बासफोरस जल डमरूमध्य मारमोरा तथा काला सागर को मिलाता है।

उत्तरी अमेरिका के प्रमुख रेल मार्ग :

(१) कैनाडियन पैसिफिक रेल मार्ग
(Canadian Pacific Railway)

इस रेल मार्ग का निर्माण सन् १८८५ में पूरा हुआ। यह कनाडा का महत्वपूर्ण रेल मार्ग है। इसकी कुल लंबाई १७००० मील है लेकिन केवल मुख्य शाखा की लंबाई ३५०० मील है। यह रेल मार्ग कनाडा के पूर्वी अटलांटिक सागरीय वन्दरगाहों को पश्चिमी प्रशान्त महासागरीय वन्दरगाहों से मिलाता है। इसकी मुख्य शाखा न्यू ब्रुजविक प्रान्त स्थित सेन्टजोन वन्दरगाह से प्रारम्भ होती है। पश्चिम की ओर संयुक्त राष्ट्र की मेन रियासत को पार करती हुई

रेल मॉंट्रियल पहुँचती है। इस नगर में रेल और नदी यातायात का मिलन होता है। कनाडा के प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र होने के कारण इसका महत्व काफी बढ़ गया है। इस नगर के पास ही रेल मार्ग सेन्ट लारेन्स नदी को पार करता है और कनाडा की राजधानी ओटावा को पहुँचता है। ओटावा नदी की खाड़ी में फलों के बगीचे दिखाई पड़ते हैं और ओटावा में कागज, लुग्दी, लकड़ी चीरने आदि के हल्के उद्योग हैं। ओटावा के बाद गाड़ी ओटावा नदी की घाटी में नदी के सहारे-सहारे पश्चिम की ओर घाटी के सिरे पर स्थित सडवरी नगर में पहुँचती है, जो खनिज पदार्थों का एक बड़ा केन्द्र है।

यहाँ से रेल मार्ग ओंटारियो के ऊँचे पठार पर चलना शुरू करता है। यह पठार जन विहीन है और इस भाग में स्टेशनों की संख्या कम है और स्टेशन छोटे-छोटे हैं। पठारी भाग को पार करने के बाद रेल मार्ग सुपीरियर झील के पश्चिमी तट स्थित बन्दरगाहों फोर्ट विलियम और फोर्ट आर्थर को पहुँचता है। इन दो बन्दरगाहों को इसी रेल मार्ग द्वारा प्रेरी का गेहूं और मेसाबी श्रेणी की लोहा धातु प्राप्त होती है, जिन्हें झील मार्ग के द्वारा ये बन्दरगाह पूर्वी औद्योगिक क्षेत्रों को भेज देते हैं। फिर समतल प्रेरी के उच्च मैदानों पर चलता हुआ विनिपेग झील के दक्षिणी सिरे पर स्थित विनिपेग नगर को पहुँचता है। विनिपेग प्रेरी का सबसे बड़ा गेहूँ केन्द्र है। यहाँ एलीवेटरों से गेहूँ रेल के डिब्बों में भरा जाता है और पूर्व को भेजा जाता है। विनिपेग शहर रेड और असीनी बोयन नदियों के सङ्गम पर स्थित है और रेलों का बड़ा जङ्क्शन है जहाँ केनाडियन नेशनल रेलवे आकर मिलती है। यहाँ से सस्केचवान की राजधानी रेगीना तक रेल समतल प्रेरी के लहराते हुये गेहूँ के खेतों से होकर चलती है। रेगीना के बाद दूसरा प्रमुख स्टेशन राकी पर्वत के पूर्वी किनारे पर स्थित कलाकारी आता है. जिसके बीच मेडिसिन हैट पड़ता है। मेडिसिन हैट से रेल की दो शाखायें हो जाती हैं। एक शाखा लेपब्रिज से होती हुई क्रोज नेस्ट दर्रे के द्वारा राकी पर्वत को पार करके वेंकूवर पहुँचती है। किकिंग हार्स दर्रे की ऊँचाई ५,३०० फुट है। राकी पर्वत के पश्चिम की ओर रेल फ्रेजर और थामसन नदियों की घाटियों में नदियों के सहारे-सहारे वेंकूवर तक चलती है। इस भाग में डालगस पर घने वन पाये जाते हैं। लकड़ी चीरने के कारखाने और फलों के बगीचे बहुतायत से दिखाई पड़ते हैं। कोलम्बिया की घाटी सोने, चाँदी, कीमती धातुओं के लिए प्रसिद्ध है। इस घाटी के फल रेल द्वारा वेंकूवर भेजे जाते हैं जहाँ से टिन में भर कर विदेशों को फल उद्योगों के पदार्थ भेजे जाते हैं। नई योजना के अनुसार रेल को किकिंग हार्स दर्रे की ऊँचाई से बचाने के लिये एक सोलह मील लम्बी सुरंग खोदी जावेगी।

कनाडा की राजनैतिक, आर्थिक और व्यापारिक उन्नति का बहुत-कुछ श्रेय इसी मार्ग को है। इसके द्वारा लिवरपूल से चीन और जापान तट का मार्ग लगभग १२०० मील छोटा हो जाता है। प्रेरी का आर्थिक आनन्द यूरोपीय गेहूँ बाजार के ऊपर निर्भर था और गेहूं का पूर्वी तटों तक भेजने में रेल मार्ग ही एक मात्र साधन था। इसलिये इस रेल मार्ग का इतना ज्यादा महत्व हो गया है। आबादी का बसना भी रेल मार्ग के निर्माण के बाद ही

सम्भव हो सका। आज भी आबादी अधिकतर रेल मार्ग की मुख्य लाइनों और उसकी शाखाओं के पास ही बसी है। पूर्वी कनाडा के औद्योगिक क्षेत्रों में संतुलन कायम करने का काम इसी रेल मार्ग के द्वारा होता है। राजनैतिक दृष्टि से कनाडा के पूर्वी और मध्य तथा पश्चिमी भागों में एकता की सृष्टि करने का काम भी इसी रेल मार्ग के द्वारा होता है।

यूनियन पेसिफिक रेल मार्ग (Union Pacific Railway)

यह संयुक्त राज्य का सबसे बड़ा और अधिक महत्वपूर्ण महाद्वीपीय रेल मार्ग है। इसका निर्माण अन्य महाद्वीपीय रेलमार्गों के पहले हुआ था। यह रेलमार्ग

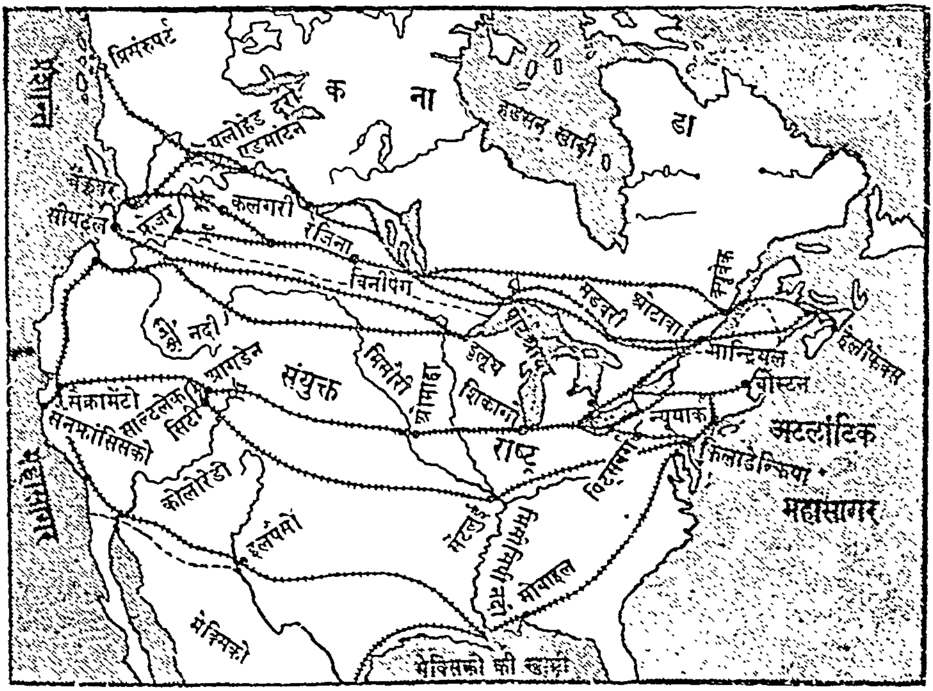

चित्र २१९

सन् १८६९ में बन कर तैयार हुआ। यह रेलमार्ग संयुक्त राज्य के ठीक मध्य से ही होकर गुजरता है। यह रेलमार्ग शिकागो से शुरू होता है। यहाँ से शुरू होकर यह एक अत्यन्त धनी प्रेरी के क्षेत्र में होकर मिसिसिपी नदी को पार करते हुये मिसूरी नदी स्थित ओमाहा नगर पहुँचता है। यहाँ तक रेल मार्ग के दोनों ओर लहलहाते हुये गेहूँ के खेत दिखाई पड़ते हैं। ओमाहा के बाद रेल मार्ग प्लाट नदी की घाटी में नदी के सहारे-सहारे नेब्रास्का के कटे फटे पठार (Bad lands) को पार करता हुआ लाराबी पर्वत के दक्षिणी सिरे पर स्थित चैंने नगर को पहुँचता है। इस नगर के पहले बड़े-बड़े पशुचारण के फार्म (Ranch) दिखाई पड़ते हैं जहाँ अधिकतर भारी पशु मांस और चमड़े के लिये चराये जाते हैं। यह भाग हल्का आबाद दिखाई पड़ता है। चैंने (Cheney)

के वाद रेलमार्ग राकी पर्वत के उच्च पर्वतीय भाग में चलता है। यही इवान्स दर्रे के द्वारा रेल राकी पर्वत को पार करती है और साल्टलेक झील के पूर्वी तट पर स्थित साल्ट लेक सिटी को पहुँचती है। इसके वाद रेलमार्ग साल्ट लेक रेगिस्तान को पार करके सिराने वादा श्रेणी पर चढ़ती है। इसको पार करने के वाद टासो झील के अन्तर स्थित कारसन नगर को पार करके रेल घनी और हरीभरी सेक्रेमेन्टो घाटी में उतरती हैं। यहीं केलीफोर्निया की प्रसिद्ध घाटी है। इस घाटी का प्रमुख केन्द्र सेक्रेमेन्टो है। इस घाटी में भूमध्य सागरीय फलों के विस्तृत वगीचे पाये जाते हैं।

यहाँ से रेल सेन फ्राँसिसको पहुँचती है जो प्रशान्त महासागरीय तट पर इस रेल मार्ग का अन्तिम स्टेशन (Terminal) है। इस रेल मार्ग की अन्य कई शाखायें हैं। इनमें से दो शाखायें मुख्य हैं (अ) शिकागों से मिसिसिपी मिसूरी संगम स्थित सेन्ट लुई तक और (व) वफेली नगर होती हुई अप्लेशियन पर्वत माला को पार करती हुई न्यूयार्क तक। दूसरी शाखा द्वारा न्यूयार्क और सेन-फ्रॉसिस्कों का सीधा सम्पर्क रहता है।

इस रेल मार्ग के द्वारा संयुक्त राज्य के पूर्वी और पश्चिमी तटीय भाग जुड़े हैं। इसी रेलमार्ग के द्वारा शिकागो क्षेत्र में घनी आबादी वसी और मध्यवर्ती क्षेत्रों का आर्थिक विकास हुआ। शिकागो को संसार के दूर स्थित वड़े वाजारों से मिलाने का कार्य इसी रेलमार्ग ने किया है। यह रेल मार्ग विशेष प्रकार से हल्के सामान और यात्रियों के लिये प्रयोग किया जाता है जवकि पनामा म र्ग द्वारा भारी सामान का गमनागमन होता है। इस प्रकार पनामा मार्ग के पूरक का काम यह रेलमार्ग करता है। सुरक्षा व एकता की दृष्टि से भी इस मार्ग का महत्व वहुत ज्यादा है। इस रेल मार्ग के द्वारा पूर्वी क्षेत्रों से अधिक कीमती वने माल पश्चिम की ओर फल तथा फिल्में पश्चिमी क्षेत्रों से पूर्वी क्षेत्रों को भेजे जाते हैं। चाय और रेशम भी पूर्व से सेनफ्रांसिस्को के रेशम स्पेशल गाड़ियों द्वारा न्यूयार्क क्षेत्र को इसी रेल मार्ग द्वाग पहुँचाया जाता है।

अफ्रीका के रेल मार्ग :

केप काहिरा रेल मार्ग (Cape To Cairo Railway)

यह रेल मार्ग अभी पूरी लम्बाई में वन नहीं पाया है। इसके निर्माण की योजना सवसे पहले सेसिल रोडस (Cacil Rhodes) नामक अंग्रेज साम्राज्य निर्माता ने वनाई थी। उसकी योजना के अनुसार केपटाउन से काहिरा तक का रेल मार्ग वनाना था जिसका प्रायः ½ भाग अव तक वन चुका है। इस मार्ग के तीन खण्ड हैं (अ) केपटाउन से एलिवो (व) काहिरा से अस्वान (स) वादीहाफा से मकवर।

(अ) केप प्रान्त के दक्षिणी सिरे पर स्थित केपटाउन से यह रेल मार्ग प्रथम खण्ड के लिये चलता है। जहाँ पर भूमध्य सागरीय फलों के विस्तृत

बगीचे पाये जाते हैं। इसके बाद अचानक चढ़ाई पार करके लघुकारू और बृहत कारू को पार करते हुये रेल-मार्ग वेल्ड पठार पर चलता है। इसी पठार पर सबसे पहला प्रसिद्ध केन्द्र किम्बरले पड़ता है जो हीरे, जवाहरातों का बड़ा केन्द्र है। वेल्ड के पठार पर भेड़ पालने के बड़े-बड़े चरागाह पाये जाते हैं। किम्बरले से रेलमार्ग ठीक उत्तर की ओर मेफकिंग होता हुआ बुलावियो तक जाता है, जिसके मार्ग में कई आदिम जातियों के क्षेत्र (Reserves) पड़ते हैं। बुलावियों दक्षिणी रोडेशिया की राजधानी और रेलों का बड़ा जंकशन है। यहां रेल जेम्बेजी नदी पर स्थित लिविंगस्टोन नगर को पहुँचती है जिसके पास ही संसार प्रसिद्ध विक्टोरिया जल-प्रपात है। इस भाग में रेल मार्ग उष्ण प्रदेशीय घने वनों से होकर गुजरता है। शहरों की संख्या भी वहुत कम है। इस नगर के बाद उत्तर पूर्व की ओर सवाना के भाग से होकर रेल गुजरती है। सवाना प्रदेशीय जानवर जेबरा, जिराफ, शेर चीता और शुतुर्मुग इत्यादि भी दिखाई पड़ते हैं। थोड़ी दूर आगे चल कर तांबा, सीसा आदि खनिज धातुओं का केन्द्र ब्रोकेन हिल पड़ता है। यहां से कटिंगा प्रदेश होती हुई रेल टेंकी नगर को पहुँचती है। जहाँ कटिंगाँ प्रदेश के खनिज पदार्थ एकत्रित किये जाते हैं। टेंकी से उत्तर की ओर वुकाया पड़ता है जहाँ से रेल मार्ग एलिवोया पोर्ट फ्रेन्की तक जाता है जो केपटाउन से लगभग ३२०० मील दूर है। इस भाग में कच्चे माल रेल के द्वारा वाहर की ओर जाते दिखाई पड़ते हैं।

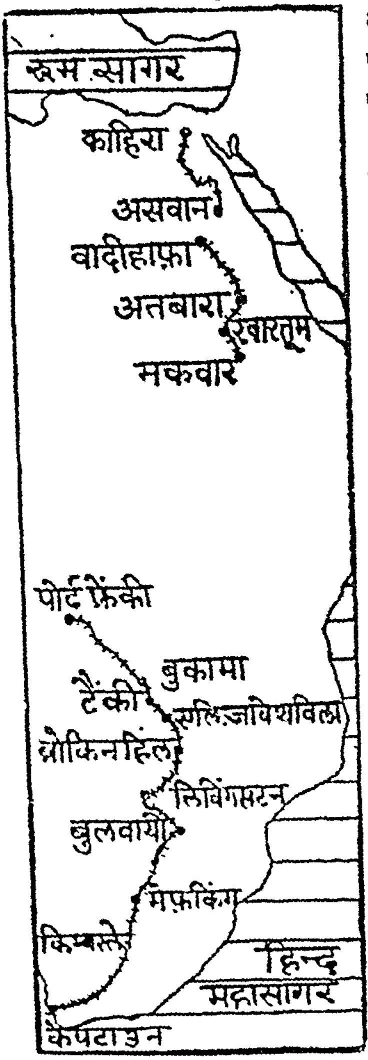

चित्र २२०

(ब) यह भाग मिस्र की राजधानी काहिरा से शुरू होता है। यह भाग सारे मिस्र को एकता प्राप्त करने में सहायक है। निचली नील और ऊपरी नील को घाटियों में भी यह रेल मार्ग सहायक होता है। नील नदी के सहारे-सहारे यह रेल-मार्ग काहिरा से अस्वान तक जाता है। इस प्रदेश में विस्तृत कपास के खेत दिखाई पड़ते हैं। अस्वान से आगे वादी हाल्फा तक कोई रेल मार्ग नहीं है। इस रेल मार्ग के द्वारा मिस्र की कपास उत्तर को भेजी जाती है।

(स) यह भाग वादी हाल्फा से चलकर अलवारा और खारतूम होते हुये मकवार नगर तक जाता है। मकवार से एलिवो तक कोई यातायात सुविधा नहीं है क्योंकि नदियों में झरने होने से उनमें नावें नहीं चलाई जा सकतीं इस भाग का महत्व राजनैतिक है इसके द्वारा सूडान और मिस्र जुड़े रहते हैं।

(५) दक्षिणी अमेरिका के रेल मार्ग :

(१) ट्रांस एंडियन रेल मार्ग (Trans-Andean Railway)

यह संसार के रेल मार्गों में बहुत प्रसिद्ध है। इसका निर्माण सन् १९१० में हुआ था। यह रेल मार्ग वैलपरेजो जो चिली का मुख्य बन्दरगाह और प्रशान्त महासागरीय तट पर है। उसको अर्जेन्टाइना की राजधानी और अटलांटिक तटीय बन्दरगाह ब्यूनसआयर्स से मिलाता है। इस पूर्व-पश्चिम यातायात में प्रायः ३३ घन्टे लगते हैं। अर्जेन्टाइना की ओर ढाल बहुत हल्का और चिली की ओर ढाल बहुत तेज है। यहाँ रेलगाड़ी रेक और पिनियन विधि (Reck and pinion) से चलती है। इसमें पहिये दाँतों पर चलते हैं। इस मार्ग की सबसे अधिक ऊँचाई १०४५२ फुट पर दो मील लम्बी सुरंग है। चट्टान और वर्फ गिरने से इनको बड़ा नुकसान पहुँचता है। चिली के भाग में इस रेल मार्ग के निर्माण में १२ लाख रुपये लगे। वैलपरेजो से ब्यूनसएयर्स की दूरी ९०० मील है। इस रेल मार्ग के तीन भाग हैं (अ) चिली की चौड़ी पटरी (Broad guage) का मार्ग (ब) पर्वतीय भाग की तंग पटरी (Narrow guage) का मार्ग (स) अर्जेन्टाइना मेण्डोजा से ब्यूनसएयर्स तक की चौड़ी पटरी का मार्ग। यह रेल मार्ग वैलपरैजो से चल कर चिली की राजधानी सेण्टियागो तक जाता है। सेण्टियागो के आस पास रूम सागरीय जलवायु पाई जाती है। जमीन समतल है और पहाड़ी नालों से सिंचाई होती है। गेहूँ, सब्जियाँ, फल, सेव, नाशपाती आदि फल उगते हैं। ज्यों-ज्यों हम पूर्व की ओर चलते हैं रेल के दोनों ओर के भाग पहाड़ी हो जाते हैं। जब गाड़ी एन्डीज पर्वत पर पहुँचती है तो वहाँ गहरी घाटियों में इसे दानेदार पटरी पर होकर जाना पड़ता है। जितना हम ऊँचा उठते हैं वर्फ से ढके बज्जर पहाड़ दिखाई पड़ते हैं। इसके बाद हम उस्पलाटा दर्रे के नीचे सुरंग द्वारा एन्डीज पर्वत को पार करते हैं और लगभग ११ हजार फुट की ऊँचाई से गुजरते हैं। अब हम अर्जेन्टाइना पहुंचते हैं। अर्जेन्टाइना और चिली की सीमा पर उस्पलाटा दर्रे के पास ही ईसा की प्रसिद्ध मूर्ति एन्डीज का ईसा (Christ of the Andes) स्थापित है। इस पर निम्नलिखित लेख खुदा है, "यह सम्भव है एन्डीज पर्वत टूट कर चूर-चूर हो जाये लेकिन यह सम्भव नहीं कि चिली और अर्जेन्टाइना के निवासी उस प्रतिज्ञा को तोड़ दें जो उन्होने आपस में शान्ति रखने के लिये मुक्ति दाता ईसा के सामने की है।" यह आपस की सौगन्ध सन् १९०२ में ली गई थी। उस समय से दोनों देश के लोग सुखी रहते हैं। अर्जेन्टाइना में पहले रेल शुष्क और बज्जर पहाड़ी प्रान्तों से चक्कर खाती हुई गुजरती है और हम मेण्डोजा पहुँचते हैं। यहाँ पर अंगूर और खुबानी आदि फलों के बाग और गेहूँ और सब्जियों के खेत दिखाई पड़ते हैं क्योंकि यहाँ पर पहाड़ी नालों से सिंचाई होती है। इसके पूर्व हम एक लम्बे-चौड़े मैदान में पहुँचते हैं जहाँ विस्तृत चरागाह (Estancias) पाये जाते हैं। इस मैदान को पैम्पास का मैदान कहते हैं। यहाँ पर मवेशी घोड़ों और भेड़ों का पालन होता है। यहाँ के निवासियों को ग्वाचो (Guacho) नाम से पुकारते हैं जो पक्के घुड़ सवार होते हैं। यहाँ पर मवेशी जंगली जानवरों की तरह नहीं फिरते बल्कि बड़े-बड़े खेतों में

रख कर पाले जाते हैं। इनकी खुराक के लिये खास प्रकार की घास लूर्नस उगाई जाती है, जिसके खेत रेल मार्ग के दोनों ओर दिखाई पड़ते हैं। पैम्पास के पूर्वी भागों में जहाँ वर्षा काफी होती है गेहूँ, मकई और अलसी की खेती होती है। अन्त में हम ब्यूनसएयर्स पहुँचते हैं। यह दक्षिणी अमेरिका का सबसे बड़ा शहर है। यहाँ से पैम्पास के मैदान की उपज भेजी जाती है। यहाँ पर कई कारखाने हैं, जिनमें पशु बिना कष्ट दिये मारे जाते हैं। उनकी खाल उतारली जाती है और बाहर भेजने के लिये जमा हुआ मांस तैयार किया जाता है। यह सब जहाजों में लाद कर शीत भण्डारों द्वारा यूरोप को भेजा जाता है। कुछ मांस पका कर डिब्बों में भर दिया जाता है। कुछ का अर्क निकालते हैं विशेष माँस आक्सो बुआइल और लिम्बज भी तैयार किया जाता है। फ्रेब्रेन्ड्रोज जो यूरूग्वे देशीय भाग में है इन पदार्थों के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

भारत में रेल-मार्ग (Railways in India)

भारत में रेल मार्गों की कुल लम्बाई ३४,४०५ मील है जिसमें से १५, ८३१ मील बड़ी लाईन, १५,२५६ मील छोटी लाईन और शेष ३३१४ मील तंग लाईन है। इन रेलों में ६११ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा इनसे प्रतिदिन ६,४५,३१६ व्यक्तियों को जीविकोपार्जन का साधन मिलता है। इनके द्वारा लगभग १२२ करोड़ यात्री और ११ करोड़ टन सामान ढोया जाता है।

रेलों का पुनर्वर्गीकरण (Regrouping of Railways)

१९४६ तक भारतीय रेलवे ६ सरकारी रेलवे प्रणालियों और १२ भारतीय रेलवे प्रणालियों में विभक्त थीं।

सरकारी रेलें ये थीं :—

(१) ईस्ट इंडिया रेलवे (East India Railway)
(२) बंगाल नागपुर रेलवे (Bengal Nagpur Railway)
(३) अवध तिरहुत रेलवे (Oudh Tirhoot Railway)
(४) आसाम रेलवे (Assam Railway)
(५) साउथ इंडियन रेलवे (South Indian Railway)
(६) मद्रास, साउथ मराठा रेलवे (M. S. M. Railway)
(७) बम्बई बड़ौदा सेंट्रल इंडिया रेलवे (B B. & C. I. Railway)
(८) ग्रेट इंडिया पेनिनसुलर रेलवे (G. I. P. Railway)
(९) पूर्वी पंजाब रेलवे (East Punjab Railway)

भारतीय रेलें निम्नांकित थीं :—

(१) बीकानेर रेलवे (२) कच्छ स्टेट रेलवे (३) धोलपुर स्टेट रेलवे (४) जयपुर स्टेट रेलवे (५) जोधपुर स्टेट रेलवे (६) मैसूर स्टेट रेलवे (७) निजाम स्टेट रेलवे (८) सौराष्ट्र रेलवे (९) सिंधिया स्टेट रेलवे (१०) राजस्थान रेलवे (११) बेजवाडा रेलवे (१२) दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे।

सरकार रेलवे प्रणाली में एक ओर तो ईस्ट इंडिया रेलवे थी और दूसरी ओर आसाम रेलवे। इनकी लम्बाई क्रमश: ४,३८० और १,२३६ मील तथा

का प्रदेश खेती के दृष्टिकोण से विशेष उन्नत है और गन्ना, चाय और चावल का व्यापार इसी के द्वारा होता है। इस रेल मार्ग का विविध मोटर योग्य सड़कों तथा गंगा व ब्रह्मपुत्र नदियों से भी संचालन सम्पर्क रहता है। इसकी प्रमुख शाखायें निम्नलिखित है :—

(अ) गोरखपुर से अमीन गांव (आसाम) तक। यह छपरा व कटिहार होती हुई जाती है और सिलगुरी में नई रेलवे लाइन से मिल जाती है। पूर्वी पाकिस्तान के बन जाने से आसाम और पश्चिमी बंगाल के बीच का सीधा रेलमार्ग हाथ से निकल गया। सन् १६५० में कटिहार और सिलगुरी को रेल द्वारा मिला दिया गया। यह माग दलदली व रोग ग्रस्त भूमि से होकर जाता है। सिलगुरी से मदारी हाट तक रेल मार्ग पहले ही से था। मदारी हाट से फकीरा ग्राम तक नई रेल बना दी गई।

(आ) गोरखपुर से लखनऊ होती हुई कानपुर तक। इसकी कुल लम्बाई ५३० मील है। लखनऊ से एक शाखा ब्ररेली तक जाती है।

(इ) गोरखपुर से सारन होती हुई बनारस तक।

(ई) मनीपुर रोड होती हुई पन्डू से गोहाटी व तिनसुखिया तक। इसकी लम्बाई ३२५ मील है। यह मार्ग ब्रह्मपुत्र की घाटी के साथ-साथ आगे बढ़ता है और इसलिये सम्पूर्ण मार्ग में कहीं भी पुल द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी को पार नहीं करना पड़ता।

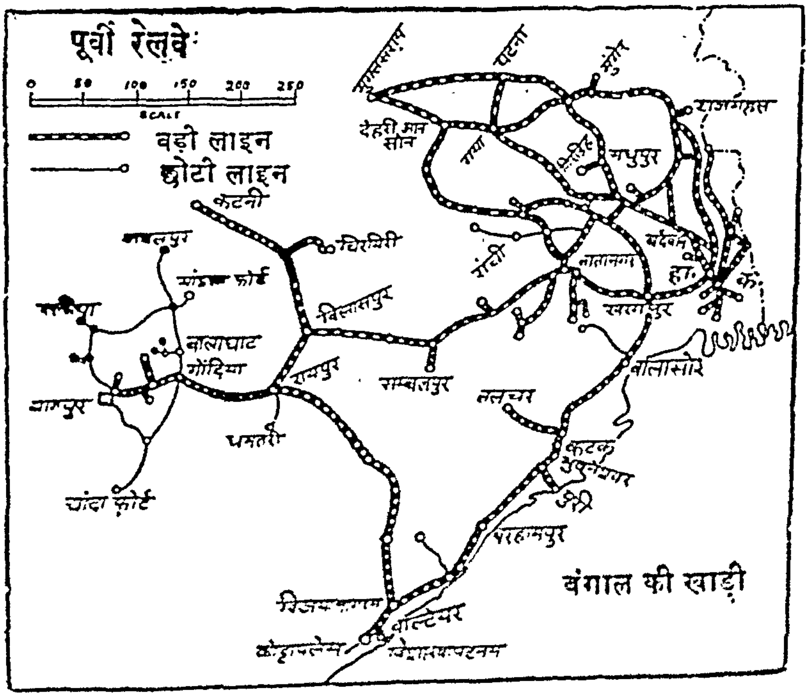

चित्र २२२

यह सम्पूर्ण रेलमार्ग कानपुर; लखनऊ और बनारस में उत्तरी रेल मार्ग से मिल जाता है। इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश से आसाम तक यात्रा की जा सकती है। बिहार की सीमा पर स्थित नैपाल इसी रेलवे के साथ जोड़ा गया है। इस क्षेत्र में बनारस प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थ स्थान हैं। इस क्षेत्र में आसाम के तेलकूप बहुत काम के हैं। कानपुर में चमड़े का काम होता है। यह चमड़ा इसी रेल द्वारा बाहर से कानपुर पहुँचाया जाता है।

(३) पूर्वी रेल मार्ग (Eastern Railway)—इसकी लम्बाई २३२१ मील से भी अधिक है और मुगलसराय और हुगली के बीच गंगा के पूर्वी मैदान में चलता है[१]। पश्चिमी बंगाल, छोटा नागपुर, मध्य-प्रदेश का पूर्वी भाग और मद्रास का आंध्र प्रदेश इसी की शाखाओ द्वारा सम्बद्ध है। ईस्ट इंडियन रेलवे के पूर्वी भाग को मिलाकर इसको बनाया गया है। इस पर सबसे अधिक यात्री (लगभग ५३ लाख) सफर करते हैं और सबसे अधिक माल (१ ५ लाख टन) ढोया जाता है। इस मार्ग से ले जाये जाने वाले माल में कोयला, लोहा, मैंगनीज, पटसन, अभ्रक और इसी प्रकार की अन्य खनिज वस्तुओं का महत्व बहुत अधिक है। पूर्वी रेलवे प० बंगाल और बिहार के जूट उत्पादन क्षेत्रों में, उड़ीसा और मध्य-प्रदेश के घने जंगलों, पश्चिमी बगाल और बिहार की कोयले की खानों. मध्य-प्रदेश बिहार और उड़ीसा की मैंगनीज, कच्चा लोहा और मोड़ल की खानों, टाटा नगर के इस्पात के कारखानों, सिंघरी की खाद रसायन शाला तथा चितरंजन स्थित एन्जिन के कारखानों और विजगापट्टम के जहाजी उद्योग आदि में सहायता प्रदान करती है। इस रेलवे में कई तीर्थस्थान तथा यात्रियों के लिये दर्शनीय स्थान पड़ते हैं। वास्तव में पूर्वी गंगा के मैदान में इस रेल मार्ग के द्वारा विविध आर्थिक लाभ होते हैं। इस आर्थिक क्रियाशीलता का कारण यह है कि कलकत्ता बन्दरगाह है और इस प्रदेश में उद्योग धन्धों का केन्द्रीकरण भी विशेष है। इसका कार्यालय कलकत्ते में है। इसकी मुख्य शाखायँ निम्नलिखित हैं :—

(अ) हावड़ा से गया व डेहरी ओन सोन होती हुई मुगलसराय तक यह शाखा जाती है—

(आ) हावड़ा से पटना होती हुई यह शाखा मुगलसराय तक जाती है। इसकी लम्बाई ४११ मील है।

ये दोनों ही लाइनें मुगलसराय में उत्तरी रेलों से मिल जाती हैं और फिर उनके द्वारा दिल्ली सहारनपुर व उसके आगे तक भी चली जाती है।

(इ) हावड़ा से बरहखा साहिबगंज, भागलपुर व जमालपुर होकर किउल तक जाती है। यह शाखा २५४ मील लम्बी है।

इन सभी शाखाओं को कई उपशाखाओं द्वारा एक दूसरे से मिला दिया गया है।

---

१. इसमें से बंगाल नागपुर रेलवे को अलग निकाल कर दक्षिणी पूर्वी रेल मार्ग नया बनाया गया है। यह ३,३९९ मील लम्बा है। इसका कार्यालय भी कलकत्ता रक्खा गया है।

(ई) हावड़ा से नागपुर तक। यह मार्ग ७०३ मील लम्बा है और टाटा नगर, बिलासपुर और रायपुर इस मार्ग पर केन्द्रित हैं। इस शाखा के मार्ग में पड़ने वाले क्षेत्र खनिज पदार्थों में धनी हैं तथा औद्योगिक विकास में आगे बढ़े हुए हैं। इसके द्वारा कोयला, मैंगनीज, लोहा आदि का आवागमन होता है टाटानगर जैसा प्रमुख इस्पात केन्द्र भी इसी मार्ग पर स्थित है टाटानगर को बोनाई, कयोनझर, और सिंघभूम की लोहे व मैंगनीज की खानों से सम्बन्धित करने के लिये कई छोटी-छोटी उप शाखाओं का निर्माण हो गया है।

(उ) हावड़ा से बालासोर, कटक, बरहामपुर, और विजयानगरम होकर वाल्टेयर तक जाती है। यह शाखा कुल ५४७ मील लम्बी है यह शाखा मद्रास तक भी चली जाती है।

इसकी एक उपशाखा जो रायपुर और वाल्टेयर को मिलाती है बड़ी ही महत्वपूर्ण है। इस लाइन के बन जाने से पूर्वी रेलवे का महत्व बहुत बढ़ गया है। निर्यात की जो वस्तुएं पहले कलकत्ता तक ले जाई जाती थीं अब वे वाल्टेयर से ही बाहर भेज दी जाती हैं। इस शाखा पर करीब २०० लाख यात्री और १८० लाख टन माल को लाया ले जाया जाता है।

(४) पश्चिमी रेल मार्ग (Western Railway)—यह ५४६१ मील से भी अधिक लम्बी है और बम्बई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, तथा मध्य भारत से होकर गुजरती है। इस मार्ग को बम्बई, बड़ौदा, सैन्ट्रल इंडिया रेलवे, सौराष्ट्र व राजस्थान रेलवे और जयपुर रेलवे को मिलाकर बनाया गया है। इस मार्ग के द्वारा कपास व सूती कपड़े का व्यापार बहुत अधिक होता है। बम्बई अहमदाबाद और बड़ौदा के औद्योगिक केन्द्र इस मार्ग पर पड़ते हैं। देश विभाजन के बाद कराँची के हाथ से निकल जाने से इस मार्ग पर यात्रियों की भीड़ व माल का भार बहुत अधिक हो गया है। इस मार्ग के द्वारा लगभग १ करोड़ टन माल और ८० लाख मनुष्य आते जाते हैं। इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है। इसकी मुख्य बड़ी लाइनें निम्नलिखित हैं :—

पश्चिमी रेलवे अहमदाबाद, इन्दौर, राजकोट, भावनगर आदि की सूती कपड़े की मिलों, लाखेरी, सेवालिया, द्वारका और पोरबन्दर के सीमेंट के कारखानों तथा मीठापुर की केमिकल फैक्टरियों वगैरह की सेवा करती है। इस रेलवे को भारत के साभर, सरगोवा, कुडा, लवनपुर आदि नमक के प्राचीनतम क्षेत्रों के यातायात एजेन्सी के रूप में काम करने का सौभाग्य तो विरासत में मिला ही है, पश्चिमी तट के दूसरे बड़े बन्दरगाह कांडला की उन्नति में और उदयपुर की उदीयमान जस्त की फैक्टरी को जो स्वेज के पूर्व में अपनी किस्म की अकेली फैक्टरी है, माल वगैरह पहुँचाने में भी यह रेल सहायक होगी।

इस रेलवे पर दर्शकों के लिये आम्बर, मांडू, फतहपुर सीकरी, आगरा और उदयपुर जैसी जगहें हैं। पवित्र तीर्थ स्थानों के यात्रियों की आवश्यकताओं का अपना महत्व है। पश्चिम रेलवे पर स्थित बम्बई के उपनगर बांदरा में सितम्बर में होने वाले 'लेडी आफ दी माउन्ट' के फीवट फेयर, मार्च अप्रैल में अजमेर में होने वाले 'ख्वाजा साहब के उर्स' तथा अक्टूबर महीने में अजमेर के निकट

पुष्कर में होने वाले मेले को लीजिये। दूर दूर से हजारों यात्री इनमें आते हैं। द्वारका, सोमनाथ, पालीताना, अम्बाजी, नाथद्वारा, मथुरा क्षिप्रा, ओंकारेश्वर आदि भी वे पवित्र स्थान हैं जो देश भर के हजारों यात्रियों को आकर्षित करते हैं।

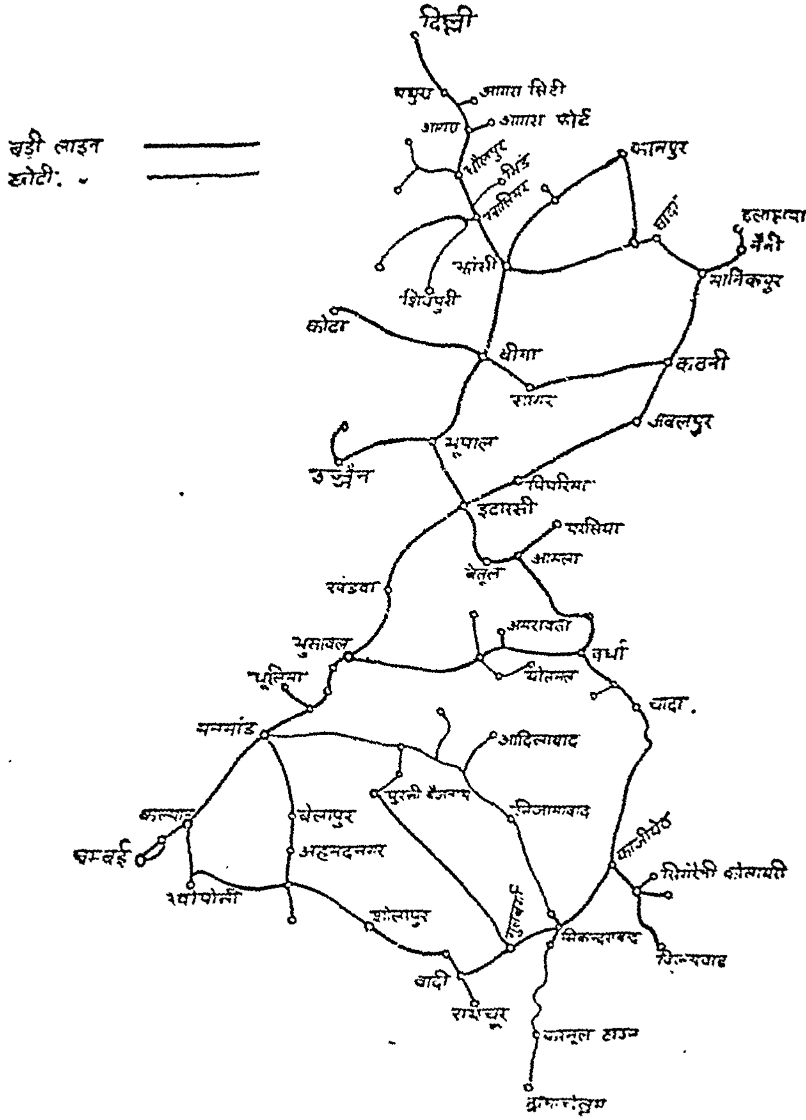

चित्र २२३

इसकी मुख्य शाखायें ये हैं :—

(अ) एक शाखा बम्बई से सूरत, बड़ोदा, रतलाम, नागदा, बयाना होकर दिल्ली तक जाती है। बयाना से एक लाइन आगरा को जाती है। और आगरा व कानपुर के बीच छोटी लाइन द्वारा सम्बन्ध है।

(आ) बम्बई से सूरत व बड़ौदा होकर अहमदाबाद तक जाती है। यह शाखा ३०६ मील लम्बी है और भुसावल से एक उपशाखा द्वारा मिला हुआ है और भुसावल नागपुर से सम्बन्धित है।

प्रमुख छोटी लाइनें इस प्रकार हैं :—(१) अहमदाबाद से दिल्ली तक। इस शाखा की लम्बाई ५३९ मील है और आबू रोड, ब्यावर, अजमेर, जयपुर और अलवर रास्ते में पड़ते हैं। अजमेर से एक उपशाखा खंडवा तक जाती है। (२) पोरबन्दर से डोहाला, राजकोट से डेरावल कांडला से भुज और सुरेन्द्रनगर से ओखा तक अन्य शाखायें हैं।

(५) मध्यवर्ती रेल मार्ग (Central Railway)—इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ५,४२७ मील से भी अधिक है और यह मध्यभारत, मध्य प्रदेश तथा मद्रास के उत्तरी पश्चिमी भाग से होकर जाती है। जी० आई० पी० रेलवे, सिंधिया रेलवे, धौलपुर रेलवे और निजाम राज्य रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बना है। इसकी प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(अ) बम्बई से भुसावल, खंडवा, इटारसी, भोपाल, झाँसी, ग्वालियर, आगरा, मथुरा होकर दिल्ली तक जाती है। यह शाखा ९५८ मील लम्बी है। इटारसी एक उपशाखा द्वारा इलाहाबाद व नागपुर से भी सम्बन्धित हैं।

(आ) बम्बई से रायपुर तक। रास्ते में पूना व वादी पड़ते हैं। इसकी कुल लम्बाई ४४३ मील है। यह शाखा आगे बढ़कर बंगलौर तक भी चली जाती है।

(इ) दिल्ली से बैजवाड़ा तक इटारसी, नागपुर, वर्धा और काजीपत होती हुई यह लाइन मद्रास तक चली जाती है। एक उपशाखा द्वारा काजीपत हैदराबाद से सम्बन्धित है।

इस मार्ग से बम्बई, मध्य प्रदेश और भोपाल को विशेष लाभ पहुँचता है। मध्य प्रदेश की कपास व मैंगनीज तथा भोपाल की लकड़ी इसी मार्ग द्वारा व्यापार में आती हैं। साधारणतया इस पर ५०० लाख यात्री सफर करते हैं और ११० लाख टन माल लाया ले जाया जाता है। इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है।

(६) दक्षिणी रेल मार्ग (The Southern Railway)—मैसूर रेलवे मद्रास और साउथ मरहट्टा रेलवे तथा साउथ इण्डिया रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बनाया गया है। इसकी कुल लंबाई ६,०१७ मील है। इसमें छोटी व बड़ी दोनों ही प्रकार की लाइनें मिली हुई हैं। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में है। मद्रास, मैसूर, ट्रावनकोर कोचीन तथा दक्षिणी बम्बई और हैदराबाद के कुछ भाग इसके मार्ग में पड़ते हैं। इसकी बड़ी लाइन वाली शाखाएँ निम्नलिखित हैं :—

(अ) मद्रास से वाल्टेयर तक—नेलोर और बैजवाड़ा होती हुई यह शाखा २६८ मील लम्बी है. इसके द्वारा मद्रास और कलकत्ते के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है।

(आ) कड़ापा द्वारा मद्रास से रायपुर तक इसकी लम्बाई ३५१ मील है और यह लाइन मद्रास व बम्बई को मिलाती है।

(इ) मद्रास से बंगलौर तक—इसकी कुल लंबाई २२२ मील है।

(ई) जलारपत से मङ्गलौर तक यह शाखा ४२३ मील लंबी है और सलेम, ईरोड़, कोयम्बटूर व टेलीचरी से होकर जाती है। जलारपत, बंगलौर और उटकमंड से मिला हुआ है।

छोटी लाइन की प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(अ) पूना से हरिहर तक—यह पूरा मार्ग ४१५ मील है। मद्रास बम्बई तक आने का यह वैकल्पिक मार्ग है। हरिहर से एक लाइन बंगलौर तक जाती है।

(आ) गुन्तकल से मसलीपट्टम तक—यह लाइन ३२० मील लंबी है और बेजबाड़ा होकर जाती है।

(इ) मद्रास से धनुषकोटि तक तन्जोर और त्रिचनापली होता हुआ यह मार्ग ४२२ मील लबा है।

(ई) मद्रास से ट्रिवैन्द्रम तक—यह शाखा त्रिचनापली विरुधनगर, मदुरा और क्विलन होती हुई ५१२ मील का फासला पार करती है। विरुधनगर से एक उपशाखा तूतीकोरन तक जाती है।

कई शाखायें व उपशाखायें मद्रास, कोचीन, तूतीकोरन, अलप्पी क्विलन, और कालीकट को मिलाती हैं। खाद्यान्न कपास, तिलहन, नमक, चीनी, तंबाकू लकड़ी और खाल व चमडे इस मार्ग पर चलने वाली विभिन्न वस्तुयें हैं। इस रेल द्वारा २७० लाख यात्री यात्रा करते हैं और १० करोड़ टन माल ढोया जाता है।

आय के अनुसार भारतीय रेलों को तीन भागों में बाँटा गया है :—

(१) प्रथम श्रेणी (First Class)—की रेलें वे हैं जिनकी वार्षिक आय ५० लाख या इससे ऊपर रुपयों की होती है। ऐसी रेलों की लम्बाई ३३,५८१ मील मानी गई है। १९४८ में प्रथम श्रेणी की १३ रेलें थीं।

(२) द्वितीय श्रेणी (Class Second)—के अन्तर्गत वे रेल मार्ग आते हैं जिनकी वार्षिक आय १० लाख से ५० लाख रुपये तक होती है। इनकी लम्बाई २९६ मील कूती गई है। १९४८ में द्वितीय श्रेणी की १० रेलें थीं।

(३) तृतीय श्रेणी (Third Class)—की रेलें वे हैं जिनकी आय १० लाख रुपये सालाना से भी कम है। इनकी लम्बाई केवल ४६१ मील है। १९४८ में तृतीय श्रेणी की १९ रेलें थीं।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में केवल ३४,३३९ मील लम्बा रेल पथ है जिसमें ७५७ मील लम्बा मार्ग सरकार के अधीन है। समस्त देश के विस्तार, क्षेत्रफल और जनसंख्या को देखते हुए यह बिल्कुल ही अपर्याप्त है। अन्य देशों की तुलना में तो यह विस्तार नगण्य सा ही है जैसा पहले दी गई तालिका से ज्ञात होगा :—

इस प्रकार अब सम्पूर्ण रेलवे प्रणाली का विस्तार निम्न प्रकार है [१]:—

क्षेत्र	कौन कौन सी रेलें मिलाई गईं	केन्द्रीय कार्यालय	उद्घाटन तिथि	बड़ी लाइन	सम्पूर्ण छोटी लाइन	लंबाई तंग लाइन	कुल लम्बाई
१. दक्षिणी रेलवे (Southern)	(१) मद्रास और दक्षिणी मरहठा (२) दक्षिणी भारत रेलवे और (३) मैसूर रेलवे	मद्रास	१४ अप्रैल १९५१	१७८३	४१७९	९५	६०५८·६
२. केन्द्रीय रेलवे (Central)	(१) ग्रेट इंडियन पेनिनशुला; (२) निजाम स्टेट (३) धौलपुर और (४) सिंधिया रेलवे	वंबई	५ नवंबर १९५१	४०९३	७७२	७६६	५६३२
३. पश्चिमी रेलवे (Western)	(१) वंबई, बड़ौदा और मध्य भारत रेलवे; (२) सौराष्ट्र; (३) राजस्थान और (४) जयपुर रेलवे	बम्बई (चर्च गेट)	५ नवंबर १९५१	१३८९	३५५७	७७४	५६२१
४. उत्तरी रेलवे (Northern)	(१) पूर्वी पंजाब रेलवे; (२) जोधपुर बीकानेर रेलवे (३) ईस्ट इंडिया के ३ भाग; (४) बी. बी. एंड सी. आई के कुछ भाग	दिल्ली	१४ अप्रैल १९५२	३९१७	२००६	१२८	६०५१
५. पूर्वी रेलवे (Eastern)	(१) ईस्ट इंडिया रेलवे का अधिकाँश भाग	कलकत्ता	१ अगस्त १९५५	२३०४	—	१७	२३२१
६. द. पूर्वी रेलवे (S. E. Rly.)	(१) बंगाल नागपुर रेलवे	कलकत्ता	१ अगस्त १९५५	२४७४	—	९२५	३३९९
७. उत्तरी पूर्वी रेलवे (North-Easetrn)	(१) अवध तिरहुत रेलवे (२) आसाम रेलवे तथा (३) ई. आई. आर के कुछ भाग	गोरखपुर	१४ अप्रैल १९५२	२	४७४३	५४	४७९९·९

१. 'India—A Reference Annual (1956) P.242.

भारत में रेलों से लाभ :

(१) रेलवे लाइनों से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि देश में पड़ने वाले दुर्भिक्षों की भयंकरता बहुत कम हो गई। भारत में जो दुर्भिक्षकाल में असंख्य मनुष्यों तथा पशुओं की मृत्यु हो जाती थी वह बन्द हो गई। अब रेलवे लाइनों के बन जाने से खाद्यान्न का अकाल नहीं रहता वरन् द्रव्य का अकाल भर होता है। रेलों द्वारा खाद्य पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता पूर्वक भेजे जा सकते हैं। १९४३ में जो बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा था यह एक अपवाद था।

(२) रेलों के खुल जाने से भारत के किसान का सम्बन्ध संसार के बाजार से हो गया है।[1] भारत में रेलों का विस्तार हो जाने से खेती का स्वरूप ही बदल गया है। आज भारत के गाँवों में खेती का धन्धा गाँव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नहीं किया जाता। जिन प्रदेशों में रेलों का विस्तार नहीं हुआ है वहाँ खेती स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अब भी की जाती है, वरन् व्यापारिक खेती (Commercial Agriculture) बहुत बढ़ गई है। इसका मतलब यह है कि किसान अब स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नहीं वरन् सुदूर बाजारों के लिये खेती की पैदावार करता है। अब वह जूट, गन्ना, कपास तिलहन इत्यादि की खूब पैदावार करता है और उसके बदले में उन्नत बीज, नवीन औजार, रासायनिक खाद, और मशीनें तक निर्मित वस्तुयें प्राप्त करता है।

(३) भारत जैसे विशाल देश को एक बनाने में रेलों का बहुत हाथ रहा है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के रहने वालों के एक दूसरे से मिलने के कारण देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ है, साथ ही शासन की दृष्टि से भी रेलों द्वारा देश में शान्ति बनाये रखने में सहायता मिली है। रेलों द्वारा आने जाने की सुविधा होने के कारण छूआ-छूत तथा सामाजिक रूढ़ियाँ भी कम हुई हैं। रेलों में यात्रा करने पर आदमियों का कट्टरपन नहीं चल सकता और क्रमशः वे उन रूढ़ियों को छोड़ते जाते हैं।

(४) यातायात के साधनों का विकास होने से मजदूरी की गतिशीलता बढ़ी है। जिन प्रदेशों में जनसंख्या बहुत कम थी वहाँ घने आबाद प्रदेशों से आकर लोग बस गये हैं और उनकी सहायता से वहाँ की पैदावार बढ़ गई है। आसाम तथा पूर्वी पंजाब की नहर—उपनिवेश उसके मुख्य उदाहरण हैं। मुख्य औद्योगिक केन्द्रों में कई प्रदेशों से आये हुए मजदूर काम करते पाये जाते हैं, यह भी रेलवे के कारण ही सम्भव हो सका है।

(५) रेलों के कारण देश में बहुत से धन्धे आरम्भ हुए और आज भी उनके कारण ही वे पनप रहे हैं। बड़े-बड़े कारखाने तब तक स्थापित नहीं हो सकते थे जब तक अत्यधिक राशि में कच्चा माल, मशीनें इत्यादि लाने और तैयार माल को दूर-दूर के बाजारों में भेजने की सुविधा रेलों द्वारा प्राप्त न हो जावे। कोयले, लोहे, स्टील तथा अन्य खनिज धन्धे और लकड़ी का

---

१. Royal Commission of Agriculture, Report पृष्ठ ३६२.

धन्धा बहुत कुछ रेलों की मांग पर निर्भर है। यही नहीं रेलवे एक बहुत बड़ा धन्धा है जिसमें १६५२ में प्रतिदिन ६,४५,३१६ व्यक्ति काम करते थे। रेलवे वर्कशॉपों में बहुत बड़ी संख्या में मजदूर काम करते हैं। भारत में रेलवे के कारण ईंटें बनाने इंजिनियरिंग तथा मिस्त्रीगिरी का उद्योग आरम्भ हुआ।

(६) सूती, ऊनी, वस्त्र व्यवसाय, लोहा और स्पात का उद्योग, जूट उद्योग, तथा चीनी, सीमेंट, दियासलाई, आदि उद्योगों के विकास का श्रेय रेलों को ही है। तेजी से रेलों द्वारा वस्तुयें एक स्थान से दूसरे स्थान भेजी जा सकने के कारण देश के व्यापार में बहुत वृद्धि हुई। आज देश विदेशों की वस्तुयें कोने कोने में पहुँचती हैं। दूध, घी, फल, सब्जी, अंडे, मछली जैसे नष्ट होने वाले पदार्थ भी आज बड़े-बड़े नगरों में दूर-दूर से पहुँचते हैं जो पहले सम्भव नहीं था। बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में दूध मक्खन, सब्जी, मछलियाँ आदि की पूर्ति २५–३० मील के क्षेत्रों से होती है।

रेलों द्वारा होने वाली हानियाँ :

(१) रेलों से केवल लाभ ही नहीं हानियाँ भी हुई हैं। रेलों की सुविधा होने के कारण व्यापारी ऐसे पदार्थ को भी देश से बाहर भेज देते हैं जिनकी देश को बहुत आवश्यकता होती है। रेलों ने विदेशी माल को देश के कोने-कोने में पहुँचाकर देश के कुटीर अथवा गृह उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया। इसका फल यह हुआ कि जो असंख्य कारीगर (जुलाहे लुहार, तेली इत्यादि) गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुये थे, बेकार हो गये और उन्हें खेती में लगना पड़ा। इसका एक बुरा परिणाम यह हुआ कि खेती पर आवश्यकता से अधिक लोग निर्भर हो गए।

(२) रेलों ने पुराने नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों को महत्वहीन कर दिया और नए केन्द्रों को उत्पन्न कर दिया। उससे एक हानि यह हुई कि देश का पुराना आर्थिक संगठन नष्ट हो गया, किन्तु नया सन्तुलित आर्थिक संगठन अच्छे प्रकार से स्थापित नहीं हुआ। रेलों ने जिन व्यापारिक केन्द्रों का निर्माण किया वे विदेशी माल को बेचने की मण्डियाँ मात्र थीं।

(३) जिस समय रेलवे लाइनों को बनाया गया उस समय देश के प्राकृतिक बहाव की ओर ध्यान नहीं दिया गया, इसका परिणाम यह हुआ कि रेलवे लाइनों ने बहुत से स्थानों पर प्राकृतिक बहाव को रोक दिया जिससे देश में मलेरिया का प्रकोप बढ़ गया।

(४) रेलवे लाइन आरम्भ में विदेशी कम्पनियों के हाथ में थीं, इस कारण उनकी सदैव यह नीति रहती थी कि देश में विदेशों से पक्का माल आ सके और कच्चा माल विदेशों को भेजा जा सके। देश के उद्योग धन्धों को उन्होंने कभी भी प्रोत्साहन नहीं दिया। अधिकतर उनकी नीति देश के उद्योग धन्धों के हितों के विरुद्ध रही।

(५) रेलों से एक हानि यह हुई कि विदेशों से आने वाली बीमारियाँ भी देश के कोने-कोने में पहुँच गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेलों से देश को हानियाँ भी बहुत हुई किन्तु लाभों की ओर दृष्टि डालने से उनकी उपयोगिता स्पष्ट जान पड़ती है। इसमें कोई संदेह नहीं। रेलें देश की अत्यन्त अमूल्य सम्पत्ति हैं।

रेलगाड़ी को बिजली से चलाने की समस्या
(Electrification of the Railways)

भारत की मुख्य रेलवे लाइनों और उपनगरीय लाइनों पर बिजली से रेलें चलाने की आवश्यकता भी वैसी ही है जैसी दूसरे देशों में। बिजली से रेलें चलाने से बचत होती है, यद्यपि वह कोयले के मूल्य, यातायात के खर्च, किस्म और प्राप्ति अथवा सस्ती जल-विद्युत की प्राप्ति के अनुसार कम या अधिक हो सकती है। स्वीट्जरलैंड, उत्तरी इटली और बम्बई राज्य के पश्चिम घाट जैसे पहाड़ी स्थानों में बिजली की गाडियाँ कोयले से चलने वाली गाड़ियों से अधिक आसानी से सीधी चढ़ाइयाँ चढ़ जाती है। लेकिन जनता और अधिकारियों के सामने बिजली से रेलें चलाने की मुख्य उपयोगिता है – सफाई, सुविधा, अधिक गति, में घनी आवादी को विकेंद्रित करने की सुविधा, जिससे घनी आवादी की बस्तियों (विशेषकर औद्योगिक नगरों) में लोग खुले देहातों में बसाये जा सकते हैं। लेकिन इन सब कारणों के रहते भी इस बारे में निर्णय इस आधार पर किया जाता है कि इनसे खर्च बढ़ेगा या घटेगा। भारत की इस नीति के कारण बिजली से रेलें चलाने का प्रस्ताव अब तक कार्य रूप में परिणत नहीं हो पाया है।

लेकिन भारत में रेलों के विद्यत्परिचलन की आवश्यकता के ऊपर दिये गये कारणों के अलावा और कई कारण हैं जिनको प्राथमिकता दी जानी चाहिये। रेलों के विद्युत्परिचलन के लिए मुख्य आवश्यकता बिजली के प्रबन्ध की है। बिजली को सस्ता बनाने के लिए उसकी अधिक और सदा एक सी खपत होनी चाहिये, ताकि बिजली घर अपनी शक्ति भर बिजली का उत्पादन अनवरत रूप से करते रहें। अगर बिजली की माँग दिन-रात के २४ घंटों के किसी खास समय में अधिक हो, और फिर बाद में वह अनिश्चित हो जाय तो सस्ती बिजली पैदा नहीं की जा सकती। सस्ती बिजली के लिये काफी और लगातार खपत की आवश्यकता है और यह तभी हो सकता है जब कि रेलवे की मुख्य लाइनों पर बिजली से रेलें चलाई जांय क्योंकि उन पर बिजली की खपत दिन-रात रहेगी। उपनगरों की रेले भी केवल १७-१७ घंटे बिजली का उपयोग करेंगी। इस तरह बिजली की माँग अनवरत रूप से होती रहेगी। खपत की कमी तो हमारी कई रेलवे लाइनों के विद्युतीकरण के कार्य में बाधक रही है।

यह स्पष्ट है कि जितनी खपत होगी और जितनी पैदा करने की शक्ति बिजली-घरों में होगी उतना ही कम खर्च पड़ेगा। कोयला यानी ताप से उत्पन्न बिजली का जल-विद्युत सामान्यत: सस्तेपन में मुकाबला नहीं कर सकतीं। अगर बिजली-घर के निर्माण और बाँध बनाने का खर्च जल-विद्युत पर न डाला जाय तो जल-विद्युत सस्ती पड़ेगी, अन्यथा नहीं। लेकिन भारत में सम्भावना इससे उल्टी है; क्योंकि कृषि उत्पादन को शीघ्रता से बढ़ाने

के लिए बाँध व इस कारखाने का खर्च का बाँध से निकाली गई नहरों का उपयोग करने वाले किसानों पर नहीं डाला जायेगा। इसलिए रेलवे के लिए विजली उत्पादन के खर्च का हिस्सा कोयले से उत्पन्न बिजली के हिसाब से ही लगाया जाना चाहिए। रेलवे के लिये कोयला क्षेत्र और विशेषकर कोयले की खानों के निकट ही बिजली-घर होने चाहिये, चाहे वहाँ कैसा ही घटिया कोयला मिले।

बिजली का वितरण बहुत आसान हो सकता है यदि मुख्य रेलवे लाइनों की गाड़ियाँ बिजली से चलाने की व्यवस्था की जाय। युद्ध से पूर्व जब इङ्गलैंड जैसे देशों में बिजली उत्पादन के कुल खर्चे का २½ गुना खर्च बिजली के प्रसार और वितरण के साधनों पर पड़ता था तो हमारे देश में उसके प्रसार और वितरण का खर्च तो अधिक पड़ेगा ही—दूरी के कारण। इस खर्च में कमी इस प्रकार की जा सकती है कि बिजली-प्रसार की लाइनों और बिजली-घरों का उपयोग रेलवे के अतिरिक्त रेलवे के निकट स्थित उद्योगों के लिए तथा शहरों और गाँवों में भी बिजली-प्रसार और वितरण के लिये किया जाना चाहिए। रेलवे के इतिहास से यह स्पष्ट है कि आबादी का बहुत सा हिस्सा गाँवों से रेलवे के निकट जाकर बसता जा रहा है और रेलवे केन्द्रों के पास छोटे-बड़े शहर बस गये हैं।

औद्योगिक दृष्टि से भारत में अन्य देशों के बजाय रेलों को बिजली से चलाना अधिक उपयोगी होगा। बिजली के साधन देश में ही बड़े पैमाने पर किये जाने लगेंगे, जिनके लिए हमें अभी विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। दूसरे छोटे-बड़े उद्योग जैसे धातु के उद्योग और रासायनिक उद्योग भी जिन्हें सस्ती बिजली और सस्ते यातायात की सुविधा चाहिए, रेलवे के निकट आने लगेंगे। सस्ती बिजली गाँवों में गृह-कार्य के लिये प्राप्त की जा सकती है। करघा हाथ से चलाने के बजाय बिजली से चलाया जा सकता है जिससे उत्पादन बढ़ेगा और कार्य-समय भी कम लगेगा। इसका उपयोग रुई और पटसन दोनों ही के करघों के लिए किया जा सकता है, जहाँ एक छोटा परिवार हाथ के करघे से एक दो कपड़ा दिन में तैयार कर सकता है।

इसलिये यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि वैद्युतिक रेलवे के निकट छोटे गृह-उद्योगों में जहाँ कपड़े के अतिरिक्त दूसरी वस्तुयें भी तैयार की जाती हैं, बिजली के उपयोग को मौका देना चाहिये और शारीरिक शक्ति के बजाय विद्युत-शक्ति के उपयोग को प्रोत्साहन देना चाहिये।

विद्युत चालित रेलों के लाभ :

साधारण यात्री के लिये बिजली के इंजन के प्रत्यक्ष लाभ ये हैं कि उससे गाड़ी तेज चलती है, धुआं नहीं होता और गाड़ी चलने पर आवाज कम होती है। किन्तु इंजीनियर की दृष्टि में कुछ और ही लाभ है, जैसे कोयले की कम खपत, संचालन और रख रखाव का कम खर्च, अधिक वैगन खींचने की शक्ति, तीव्र गति और भाप के इंजन की तुलना में चलाने में आसानी।

(१) रेलों को बिजली से चलाने में कोयले की बड़ी बचत होती है। भारत में उत्तम प्रकार के कोयले की कमी है, अतः इसलिये कि इसका प्रयोग उद्योगों में अधिक किया जा सके यह आवश्यक है कि रेलों में कोयले की बजाय बिजली का ही प्रयोग किया जाय। अतः जिन स्थानों में जल-विद्युत है वहाँ इसके द्वारा रेलें चलाई जाकर कोयले की शत प्रतिशत बचत की जा सकती है। और जहाँ जल-विद्युत उपलब्ध नहीं है वहाँ भी ६० प्रतिशत तक कोयले की बचत हो सकती है क्योंकि भाप शक्ति के लिए जितने कोयले की आवश्यकता होती है उसके ४० प्रतिशत कोयले से उतनी ही बिजली उत्पन्न की जा सकती है। इसके अतिरिक्त बिजली के इंजनों की कार्यक्षमता ८५ प्रतिशत और कोयले से बनाई गई बिजली का उपयोग करने वाली रेलों की कार्य क्षमता केवल १४ से १७ प्रतिशत होती है। अतः बिजली की रेलों द्वारा कोयले का सदुपयोग ही होता है।

(२) बिजली के इजिन का प्रारंभिक मूल्य भी भाप के इंजिन की अपेक्षा कम होता है तथा उसका जीवनकाल भी दीर्घ होता है। कुंजरू समिति के अनुसार बिजली का इंजिन भाप के इंजिन की अपेक्षा वर्ष भर में दूने मील चलने की क्षमता रखता है[1]। बिजली के इंजिन का संचालन तथा रख-रखाव का खर्च भी कम होता है। भाप के इंजिन में जलती हुई आग से उसका रखाव का खर्च बढ़ जाता है और उसकी कार्य अवधि भी कम हो जाती है। डा० मलहोत्रा ने निम्न आँकड़ों से यह सिद्ध किया है बिजली के इंजिन का संचालन व्यय भाप के इंजिन की अपेक्षा लगभग आधा होता है।

प्रति इंजिन मील व्यय (रुपयों में)

	भाप का इंजिन	बिजली का इंजिन
भरण-पोषण	०·७०	०·४०
तेल आदि लगाने में	०·०६	०·०१
पानी	०·०८	—
	०·८४	०·४१

(३) बिजली की गाड़ियों की चाल साधारणतः भाप की गाड़ियों से अधिक होती है। भाप का इञ्जिन एक बार रुकने पर पुनः चलने और चाल पकड़ने में समय लेता है जबकि बिजली का इञ्जिन रुकने के बाद शीघ्र ही चाल पकड़ लेता है। इसके अतिरिक्त इन इञ्जिनों को स्थान-स्थान पर पानी लेने अथवा राख निकालने के लिए मार्ग में रुकना भी नहीं पड़ता। भारत में तेज गाड़ियों की चाल ५४ से ६० मील प्रति घंटा की है जबकि इटली में विद्युत-चालित रेलें १०० मील प्रति घण्टा की चाल से दौड़ती हैं।

(४) एक ही पटरी पर भाप की गाड़ियों की अपेक्षा बिजली की अधिक गाड़ियाँ चल सकती हैं, इससे रेलों से पर्याप्त सेवाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

१. इंग्लैंड में मैंमरस रेलवे के बिजली के इंजिन ५० वर्षों के बाद भी अच्छी तरह कार्य कर रहे हैं जबकि भाप के इंजिन ४० वर्षों में ही कमजोर हो जाते हैं।

मध्य रेल के उपनगरीय क्षेत्र में ५५० से भी अधिक विजली की गाड़ियाँ प्रति दिन चलती हैं। एक पटरी पर भाप की अधिक से अधिक ६० गाड़ियाँ किन्तु विद्युत चालित रेल इससे भी अधिक चल सकती हैं। इङ्गलैंड में मरसी रेलवे पर भीड़ के अवसरों पर २४ गाड़ियाँ प्रति घण्टे चलती हैं जो प्रति घण्टे में ९-१० हजार व्यक्तियों को केवल एक दिशा में ले जाती हैं।

(५) विजली के इञ्जिनों की अपेक्षा कम कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए फ्रांस में पेरिस-लियन्स रेल पर विजली का प्रयोग होने से उसमें लगे कर्मचारियों की संख्या में कमी हो गई। १९४७ में उसके विभिन्न विभागों में ७,७८७ कर्मचारी व्यस्त थे जबकि अब १९५३ में इनमें ४० प्रतिशत (केवल ४,६००) कमी हो गई।

(६) विजली की गाड़ियों में धुआँ विल्कुल नहीं होता। गाड़ियों की भार-क्षमता बढ़ जाती है और चलते समय उनसे आवाज भी कम होती है।

विद्युत चालित रेलों का विकास :

यद्यपि सबसे पहले विजली से इञ्जिन चलाने का प्रयोग ब्रिटेन में १८३९ में किया गया था, किन्तु वह सफल नहीं हुआ। पहला सफल प्रदर्शन १८७९ में बर्लिन प्रदर्शिनी में किया गया था, किन्तु १९ वीं सदी के अन्तिम दस वर्षों में जाकर ही विद्युत-चालित परिवहन-व्यवस्था में वास्तविक प्रगति हुई।

परिवहन की दिशा में सबसे पहले ट्रामकारें चलाने में विजली का उपयोग किया गया। धीरे-धीरे विजली का चलन बढ़ता गया और रेलें भी विजली के इञ्जनों से चलाई जाने लगीं।

विभिन्न देशों में प्रगति :

विजली से रेलें चलाने के क्षेत्र में भारत और अन्य देशों में जो प्रगति हुई है, वह इन आँकड़ों से स्पष्ट है :—

देश	रेल मार्ग (Route Mileage) मीलों में	रेल पटरी (Track)
ग्रेट ब्रिटेन	९०५	२,३०३
जापान	३,५९१	६,००८
जर्मनी	१,८४३	४,३००
अमेरिका	२,७०८	४,५२५
फ्रांस	२,५२०	४,६७४
इटली	३,२०५	६,४५८
स्वीडन	३,९१५	५,८९३
स्विट्जरलैंड	३,००८	२,५६५
भारत	२३९	५९३
रूस	१,०४०	१,५६५

इन आँकड़ों में डीजल विजली इञ्जनों द्वारा तय किये जाने वाले मार्ग-मील

अथवा पटरी मील नहीं दिये गए हैं। इनसे स्पष्ट है कि विद्युतचालित इंजनों के उपयोग में भारत में अपेक्षाकृत कम प्रगति हुई है।

भारत में बम्बई और मद्रास में सवर्बन रेलों के विद्युतीकरण पर सबसे पहले १९१४ में विचार किया गया, किन्तु पहले विश्वयुद्ध के कारण विचार को कार्यरूप में परिणत करने में देरी हुई। काम १९२५ में शुरू हुआ। बिजली की रेल का सबसे पहला सेक्शन विक्टोरिया टर्मिनस (कुरला) था। १९२८ तक जी. आई. पी. रेलवे ने इस सेवा का विस्तार बम्बई से लगभग ३४ मील दूर कल्याण तक कर दिया। १९२८ में बी. बी. एण्ड सी. आई. रेलवे ने भी चर्चगेट-बोरीवली सेक्शन में और बाद में विरार तक की लगभग ३६ मील की दूरी में बिजली की रेल चला दी। १९३१ से मद्रास और तम्बरम के बीच की लगभग १८ मील की दूरी भी बिजली की रेल द्वारा तय की जाने लगी। १९३६ के बाद भारत में बिजली की कोई वृद्धि नहीं हुई।

बम्बई में विद्युत-चलित सवर्बन गाड़ियाँ बहुत लोकप्रिय हुई हैं और उससे बम्बई की बस्तियों का बहुत विस्तार हुआ है। वहाँ की जनसंख्या १९३० में लगभग १५ लाख थी जो १९५०-५१ में ३५ लाख हो चुकी थी। १९२६-२७ में बम्बई की इन गाड़ियों में ४८० लाख लोगों ने यात्रा की थी और १९५१-५२ में यह संख्या बढ़कर ३००० लाख हो गई थी। बम्बई में आजकल मध्य और पश्चिमी रेलों की प्रतिदिन लगभग ७०० सवर्बन गाड़ियाँ चलती हैं, किन्तु यात्रियों की संख्या और भीड़ को देखते हुए वे भी अपर्याप्त हैं। १९५१-५२ में दक्षिणी रेलवे की बिजली से चलाने वाली उपनगरीय गाड़ियों में २८० लाख व्यक्तियों ने यात्रा की। बम्बई के पूर्व में पश्चिमी घाट की चढ़ाई-उतराई में भाप के इंजनों से गाड़ियाँ ले जाने में बहुत कठिनाई और खर्च बैठता था, इसलिए बम्बई से पूना और बम्बई से इगतपुरी के सेक्शनों में भी १९२८ से बिजली की रेल चलाई जाने लगीं। इनकी कुल दूरी १८० मील है। इसके कारण मालगाड़ियों और सवारी गाड़ियों के चलने में बहुत आसानी होगई।

३१ मार्च १९५३ को केवल २४० मील लम्बे रेल मार्गों का संचालन बिजली इंजिनों द्वारा हुआ—मध्यवर्ती रेल—१८४'८५ मील; पश्चिमी रेलवे ३७'२५ मील और दक्षिणी रेलवे १८'१४ मील।

भारत में रेलें चलाने के लिए १,५०० वोल्ट डी० सी० बिजली काम में लाई जाती है। बम्बई में सबसे अधिक बिजली रेलें खर्च करती हैं, जिनमें प्रतिवर्ष २८८० लाख यूनिट बिजली खर्च होती है। अधिकांश बिजली रेलों के अपने बिजली घर से सप्लाई होती है।

अध्याय ३४

यातायात के साधन (क्रमशः)

जल यातायात
(WATER TRANSPORT)

जल यातायात का विकास :

जल यातायात का उपयोग मानव ने बहुत प्राचीनकाल से ही सामान ले जाने अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए कर लिया था। आरम्भ की नावें घास, लकड़ी के लठ्ठों, रीड़ अथवा अन्य हल्के पदार्थों से बनाई जाती थीं; इन्हें रैफ्ट (Raft) कहते हैं। आजकल भी टसमानिया और मिस्र के निवासी तथा टीटीकाका झील में इंका (Incas) लोग इन रैफ्टों का प्रयोग करते हैं। दक्षिणी अंडमान द्वीप में जाखा नामक लकड़ी की बनी नावें या डोंगियाँ (Canoes) के स्थान पर बांस की बनी रैफ्ट नावों को खाड़ियाँ पार करने में व्यवहृत करते हैं। मलाया प्रायद्वीप के सेमांग (Semang) और अफ्रीका, पीरू और मैक्सिको तथा भारत में राजस्थान की जयसमुद्र झील में भील लोग ऐसी ही 'रैफ्टों' का प्रयोग आज भी आने-जाने के लिए करते हैं।

ईराक आदि देशों में पशुओं की खालों की बनी नावें जिन्हें 'किलेक' (Kelek) कहते हैं यातायात का मुख्य साधन हैं। ऐसी नावें अधिकतर दजला नदी में दिखाई पड़ती हैं। मिस्र और भारत की अनेक नदियों में वर्षाकाल में मिट्टी के घड़ों को उलट कर एक दूसरे के साथ बाँस से बाँधकर नदी पार करने के लिए उपयोग किया जाता है। दजला और फरात नदियों में टोकरियों की बनी गोल 'गूफा' (Gufa) नामक नावें काम में लाई जाती हैं। एस्कीमो लोग मछली के चमड़े से बनी 'उमियाक' (Umiak) और 'कयाक' (Kayak) नावें शिकार करने के लिए काम में लाते हैं। ब्रिटिश कोलम्बिया और आस्ट्रेलिया में पेड़ के छाल तथा तनों से खोखली नावें बनाई जाती हैं।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ नावों के रूप और आकार में भी परिवर्तन होने लगा। यूनानी, रोमन और फोनिशीयन लोगों ने सर्व प्रथम नावों में पाल बांध कर वायु शक्ति का प्रयोग उन्हें चलाने के लिए किया। ऐसी नावें पालदार नावें कहलाती थीं। इनके उपयोग से सामुद्रिक यातायात का श्रीगणेश हुआ। वायु से चलने वाली छोटी नावों ने ही १५ वीं से १६ वीं शताब्दी तक नये

प्रदेशों की खोज की और उनके बस जाने में योग दिया। कोलंबस १४९२ ई० में सैन्टामाना (Senta Mana), १०० टन ; पिंटा (Pinta), ५० टन और निना (Nina) ४० टन के जहाजों को लेकर ही अमरीका की खोज को निकला था। १८वीं शताब्दी तक ये पालदार नावें काम में लाई जाती रहीं किन्तु फिर इनका आकार बदलता गया यहाँ तक कि १९वीं शताब्दी में लकड़ी निर्मित जहाजों और वायु-संचालित जहाजों के स्थान पर लोहे और स्पात के वाष्प-चालित विशाल जहाजों का प्रयोग होने लगा। भीतरी जल मार्गों में भी १९वीं शताब्दी के आरम्भ से ही वाष्प-चालित नावों का प्रयोग होने लगा। और अब तो लाइनर तथा ट्रैम्प जहाजों का ही सबसे अधिक उपयोग हो रहा है।

जल यातायात के क्षेत्र :

जल यातायात के क्षेत्र को दो भागों में बांटा जा सकता है :

(i) भीतरी जलमार्ग, तथा

(ii) सामुद्रिक जलमार्ग

(i) भीतरी जलमार्ग (Inland Waterways)

आन्तरिक जल यातायात के अंतर्गत (क) नदियाँ ; (ख) झीलें; तथा (ग) नहरें सम्मिलित की जाती हैं। इन पर आधुनिक काल की नावें व जहाज दोनों ही व्यवहृत किये जाते है।

(क) नदियाँ (Rivers as Waterways)

यद्यपि रेलों और मोटरों के कारण आजकल नदियों का महत्व यातायात की दृष्टि से कम हो गया है, किन्तु फिर भी विश्व के प्रमुख देशों में उनका उपयोग हो रहा है।

यूरोप के जल मार्ग (Waterways of Europe)

यूरोप भीतरी जलमार्गों की दृष्टि में बहुत उन्नतिशील है। इस महाद्वीप की अधिकतर नदियाँ नाव्य हैं। किन्तु इस महाद्वीप के मुख्य देशों में जर्मनी विशेष भाग्यशाली है। अधिक नाव्य नदियाँ इसी देश में पाई जाती हैं। जर्मनी में सबसे बड़ी कमी समुद्री किनारे की है जिसे बहुत हद तक नदियाँ पूरा करती हैं। संभवत: औद्योगिक देशों में ऐसा कोई देश नहीं जहाँ पर अधिकतर औद्योगिक शहर नदियों के किनारे बसे हों। जर्मनी इसका सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। यूरोप की महत्वपूर्ण और जर्मनी में सबसे बड़ी नदी राईन में यातायात का सदा बड़ा भारी जमघट रहता है। राइन नदी में समुद्री जहाज आ जा सकते हैं। इसलिए इससे इतना अधिक माल आता-जाता है जितना संसार में किसी नदी से नहीं गुजरता। राईन नदी वास्तव में संसार की सबसे व्यस्त व्यापारिक नदी है। इस नदी के दोनों किनारों पर भारी उद्योग चालू हैं जिनके तैयार माल का व्यापार इसी मार्ग द्वारा होता है। इस नदी में यातायात केवल छोटे २ जहाजों द्वारा ही हो सकता है। राइन क्षेत्र एक अत्यधिक विकसित औद्योगिक क्षेत्र हैं। अतः

इसके व्यापार का आयतन भी अधिक रहता है। इस नदी में जहाज ४००० टन तक के वजन का माल ढो सकते हैं किन्तु अधिकतर व्यापार २०००—२५०० टन-भार वाले जहाजों द्वारा ही होता है। १६३८ में रूर और राईन नदी के संगम पर स्थित ड्यूसबर्ग रूहर्ट बन्दरगाहों द्वारा ४ करोड़ टन का व्यापार हुआ जिसमें १ करोड़ टन तो केवल कोयला ही था। इस नदी द्वारा खाद,

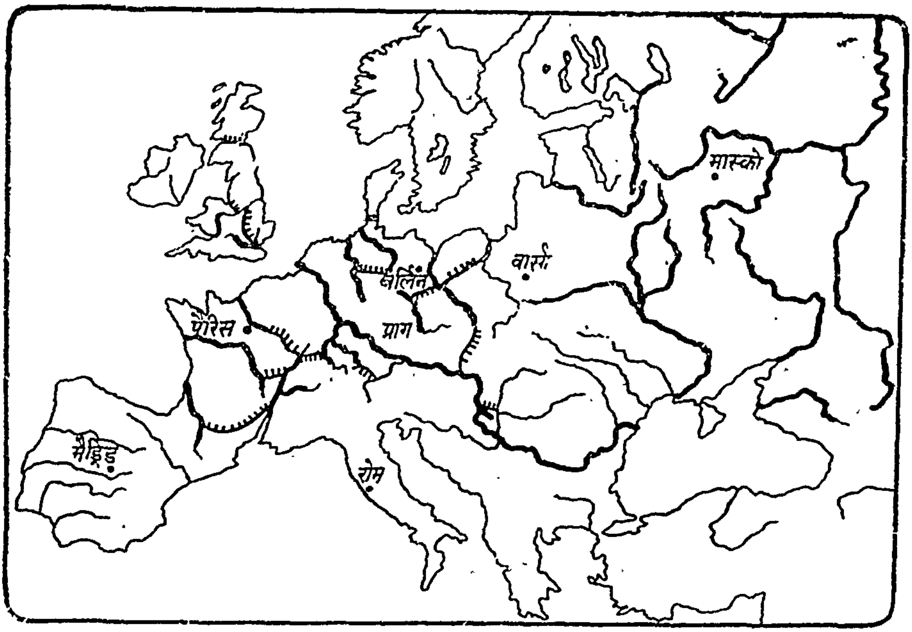

चित्र २२४—यूरोप के जल-मार्ग

कोयला, रासायनिक पदार्थ, स्पात, कच्चा लोहा, पैट्रोलियम और अनाज आदि अधिक ढोया जाता है। अतः राटरडम विश्व में सबसे अधिक व्यापार करता है। राइन नदी के व्यापार में कोयले का महत्व अधिक होने से इसे 'कोयला नदी' (Coal River) कहते हैं।

एल्सेस से हालैंड तक नदी के किनारे २ अधिक घनी जनसंख्या पाई जाती है। प्रायः हर ३० मील की दूरी पर १ लाख की जनसंख्या वाले शहर मिलते हैं। इतनी बड़ी आबादी के लिये आवश्यक माल और खाद्यान्न इसी नदी द्वारा ढोये जाते हैं। इस नदी में कई भौगोलिक सुविधायें हैं जिनसे यातायात को प्रोत्साहन मिलता है। यातायात के विचार से राइन नदी को चार खंडों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) बासेल से स्ट्रासबर्ग, (२) स्ट्रासबर्ग से बिन्जेन, (३) बिन्जेन से बोन, और (४) बिन्जेन से राटरडम तक। बासेल से स्ट्रासबर्ग तक के भाग में द्रुत जल वेग के कारण व्यापार में कठिनाई पड़ती है। इस मार्ग में औसत ढाल प्रति किलोमीटर पीछे ८६ सेंटीमीटर है। किन्तु निचले भाग में यह ढाल केवल ३५

सैंटीमीटर रह जाता है। स्ट्रासबर्ग से ऊपर यात्रा कम होती है तथा जल भी कम है।[1]

स्ट्रासबर्ग से नीचे जल की धारा धीमी बहती है और कोई कठिनाई नहीं पड़ती। जल का आयतन भी ग्रीष्मकाल में सम रहता है किन्तु शीतकाल में जल की मात्रा कम हो जाने से राइन में जहाजों का चलना बन्द हो जाता है।

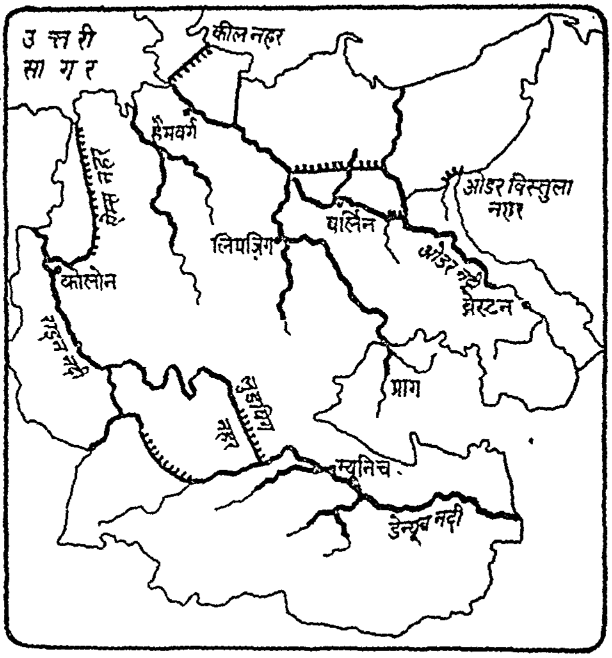

चित्र २२५—जर्मनी के जल-मार्ग

बिन्जेन से बोन तक नदी एक तंग घाटी (Gorge) में होकर बहती है। राइन नदी का अधिकतम लाभ उठाने के हेतु इसको कई नदियों से नहरों द्वारा मिला दिया गया है जिनमें मुख्य ये हैं।

(१) दक्षिण की ओर बासेल के द्वारा स्विटजरलैंड व इटली से।

(२) दक्षिण की ओर वॉस्जेस और जूरा पर्वत के बीच बरगंडी द्वार के द्वारा रोन घाटी और मार्सेलीज से।

(३) पश्चिम की ओर वॉस्जेस के उत्तर-स्थित सेवर्न द्वार के द्वारा पेरिस से।

---

१. राइन के विभिन्न भागों में धारा की गहराई

	ग्रीष्म में	शीतकाल में
स्ट्रासबर्ग से मानहीम तक	२·८ मीटर	१·७ से २ मीटर
मानहीम से बिन्जेन तक	२·८ ,,	२·३ ,,
सैंट गोर से कोलोन तक	२·६ ,,	—
कोलोन से समुद्र तक	३ से ३·६ ,,	सब मौसम में

(४) उत्तर की ओर राइन घाटी द्वारा वेस्टफेलिया और उत्तरी सागर से।
(५) उत्तर की ओर फ्रैंकफर्ट द्वारा उत्तरी जर्मनी और बर्लिन से।
(६) पूर्व की ओर स्टैटगार्ट होकर वियना और डैन्यूब के मैदान से।

वेजर, एल्ब और ओडर जर्मनी की अन्य नदियाँ हैं। राइन के बाद यही सबसे अधिक व्यापारिक महत्व की नदी है। यद्यपि यह राइन की तरह अधिक गहरी नहीं है और इसमें जल-प्रवाह भी समान नहीं रहता किन्तु यह ड्रेस्डन और माग्डेबर्ग होकर हम्बर्ग से सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है। इसके द्वारा नदी के निचले भागों को शक्कर, पोटाश और कोयला तथा ऊपरी भागों को अनाज ढोया जाता है। पूर्व की ओर ओडर ऊपरी साइलेशिया के खनिज व औद्योगिक क्षेत्रों को उत्तरी सागर से जोड़ती है। इसके मुख्य बन्दरगाह येस्को और फ्रैंकफर्ट हैं। पश्चिम की ओर वेजर नदी ब्रिमेन की सेवा करती है। जर्मनी की सभी नदियाँ एक दूसरे से नहर द्वारा जुड़ी हैं। (१) हंसा नहर (Hansa Canal) कोयले की खानों को हैम्बर्ग से जोड़ती है। (२) लुडविग नहर (Ludwig Canal) डैन्यूब को राइन की सहायक मेन नदी से जोड़ती है। (३) इसी तरह डार्टमंडएम्स नहर रूर को उत्तरी सागर से जोड़ती है। (४) मिडलैंड नहर (Midland Canal) जर्मनी के पूर्व-पश्चिम राइन और ओडर को जोड़ती है जिसके कारण बर्लिन प्रमुख बन्दरगाह बन गया है। (५) पूर्वी भाग की अन्य प्रमुख नहरें जो एल्ब और ओडर नदियों को जोड़ती हैं क्रमश: ओडर-स्प्री नहर (Oder-Spree Canal), होहेन-जोलर्न नहर (Hohen Zolern Canal) और ट्रावे नहरें हैं। जर्मनी की नहरों की गहराई कम होने से उनमें चपटी पेंदे वाली नावें (Barges) चलाई जाती हैं। यहाँ लगभग ७ हजार मील लम्बी नहरें हैं।

फ्रांस भी भीतरी जल-मार्गों में जर्मनी से किसी प्रकार कम नहीं है। यहाँ पर भीतरी जल-मार्गों के यातायात द्वारा अधिकतम लाभ उठाने की दृष्टि से बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण नदियाँ एक दूसरे मे जोड़ दी गई हैं। फ्रांस की समस्त नदियाँ अपने ऊपरी भागों के सिवाय सब जगह नाव्य हैं।

रोन नदी जो कि ५०० मील लम्बी है जल मार्ग की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। मेअोन यहाँ की मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण जल-मार्ग है। सीन नदी बरगंडी की पहाड़ियों से निकल कर प्रेरिज प्रदेश में होती हुई इंगलिश चेनेल में गिरती है। लॉयर नदी एक व्यापारिक मार्ग है जो बिस्के की खाड़ी में गिरती है। ड्रॉन और गेरोन यहाँ की अन्य मुख्य नदियाँ हैं।

फ्रांस में नहरें भी जल-मार्गों का काम देती हैं। फ्रांस में मुख्य नहर (१) मारवी राइन नहर (Marve Rhine Canal) है जो राइन और सीन के जल-मार्गों को जोड़ती है। (२) बरगन्डी की नहर (Burgandy Canal) सीन और रोन नदियों को तथा (३) मार्सेलीज रोन नहर (Marseillies Rhone Canal) मार्सेलीज बन्दरगाह को रोन की घाटी से जोड़ती है। पेरिस जल-मार्गों का प्रधान केन्द्र है। प्रत्येक भाग से आकर जल-मार्ग मिलते हैं। फ्रांस के मुख्य बन्दरगाह मार्सेलीज, ला हैवरे, रूआँ, डैनकर्क, बीर्ज और

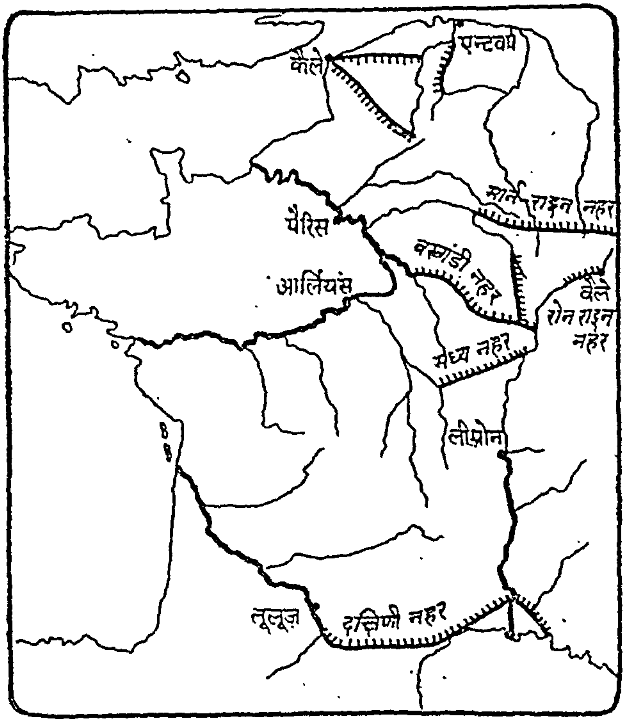

चित्र २२६—फ्रांस के जल-मार्ग

नान्टे हैं। फ्रांस में नाव खेने योग्य नदियों और नहरों की लम्बाई लगभग ८ हजार मील है।

रूस में बड़ी-बड़ी नाव्य नदियाँ हैं किन्तु वे साल के चार महीनों तक जमी रहती हैं। इसके अलावा यहाँ की नदियाँ या तो उत्तरी महासागर, कालासागर, बाल्टिक समुद्र अथवा कैस्पियन सागर में गिरती हैं जो व्यापार तथा यातायात की दृष्टि से अच्छे जल-मार्ग नहीं हैं। यह दोष होते हुए भी यहाँ की नदियाँ घरेलू तथा विदेशी व्यापार के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। डोनेज-वेसिन के लोहे और कोयले के उद्योग, पर्म जिले का खनिज उत्पादन और मास्को तथा टूला के प्रदेशों की औद्योगिक उन्नति में डोनेज, कामा और मोस्कना के नदियों के सहयोग को कभी नहीं भुलाया जा सकता।

वोलगा रूस की प्रमुख नदी है जो २३०० मील लम्बी है। यह वास्तव में रूस की राइन नदी है क्योंकि इसके द्वारा जल-मार्गों द्वारा होने वाला आधा व्यापार होता है हालांकि न तो यह किसी कोयले और स्पात क्षेत्र को ही जोड़ती है और यह कैस्पीयन सागर में गिरती है। नदी के ऊपरी भागों की ओर पैट्रोलियम, मछली, अनाज आदि और नीचे की ओर लकड़ियाँ आदि ढोई जाती हैं। नहरें वोलगा को मास्को, रिविन्स जलाशय, लेनिनग्रांड तथा बाल्टिक-उत्तरी सागर मार्ग को जोड़ती हैं। इस नहर में ११ झीलें, १२

बड़े-बड़े बाँध, बिजलीघर और २ सुरंगें हैं। किन्तु रूस की भयङ्कर सर्दी नहर को ६ महीनों के लिए निष्काम और निर्जीव कर देती है।

उत्तरी अमेरिका के जल-मार्ग (Waterways of N. America)

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के भीतरी जल-मार्ग कमीशन ने गणना कर यह बताया है कि देश में लगभग २९५ नाव्य नदियाँ हैं जो २६,००० मील लम्बा जल-मार्ग बनाती हैं। अगर बनावटी नहरों की लम्बाई इनके साथ जोड़ दें तो यह लम्बाई ३२,६२३ मील होती है। मिसीसिपी और मिसूरी यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं जो १६,००० मील लम्बा जल-मार्ग बनाती हैं। मिसीसिपी

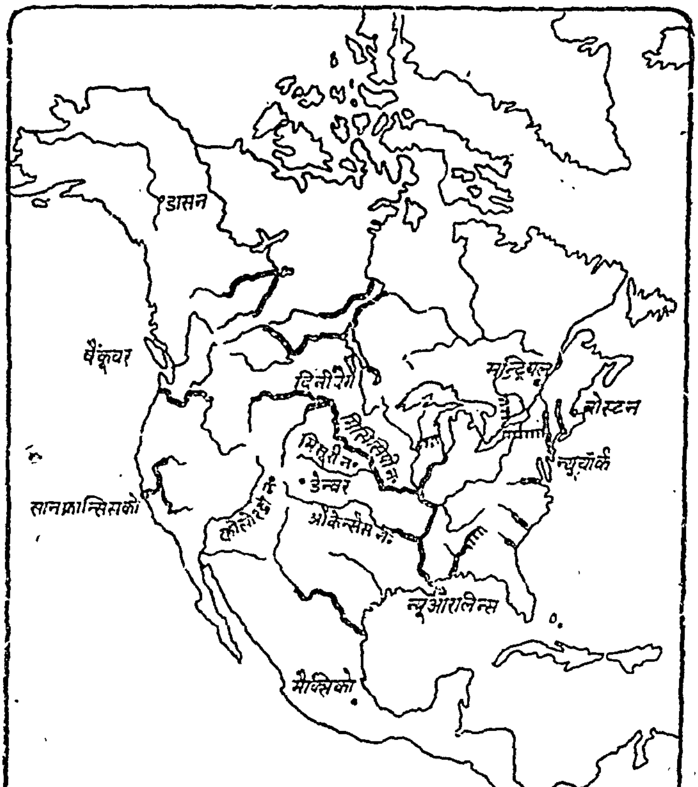

चित्र २२७— उत्तरी अमेरिका के जल-मार्ग

नदी में २,००० मील ऊपर सेंटपाल तक आसानी से स्टीमर चलाये जा सकते हैं। मिसीसिपी नदी का जितना उपयोग ऊपरी भाग में होता है, उतना निचले भाग में नहीं होता। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि बहुधा इसमें बाढ़ें आती रहती हैं। इस नदी में व्यापार की मात्रा १९२९ में २०० लाख टन से बढ़ कर १९३२ में ६५० लाख टन तथा १९५२ में १५८० हो गया। १८२३ से अब तक इस नदी को गहरा करने में २½ बिलिअन डालर तक खर्च

किया जा चुका है। अतः अब मिसीसिपी नदी व्यवस्था अन्तर्गत जल-मार्गों की लम्बाई ६,००० मील हो गई है तथा इसकी गहराई ६ फुट है, अतः चपटे पेंदे वाली नावें ही अधिक चलाई जाती हैं।

मिसौरी नदी मुख्यतः अपने मैदानों में ही खेई जा सकती है। लेकिन मिसीसिपी की सहायक ओहियो नदी पैन्सलवेनिया तक खेई जा सकती है। चूँकि मिसीसिपी और ओहियो सेन्ट लॉरेन्स समीप से ही निकलती है इस कारण दोनों नदियाँ एक नहर द्वारा जोड़ दी गई हैं।

बड़ी झीलें और सेन्ट लॉरेन्स नदी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और कनाडा दोनों की आर्थिक उन्नति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यही नहीं व्यापार की दृष्टि से भी यह जल-मार्ग अद्वितीय है। इस जल-मार्ग द्वारा जहाज २३०० मील दूर पोर्ट आर्थर तक जा सकते हैं। इस जल-मार्ग का मुख्य दोष यह है कि मुहाने के पास प्रायः कोहरा फैला हुआ रहता है। सर्दी में बर्फ जम जाता है और इसके अलावा मार्ग में कई और प्रपात और झरने हैं। जहाजों को कोहरे में दुर्घटनाओं से बचाने के लिए सर्चलाइट और हार्न का प्रयोग किया जाता है। सर्दी में बर्फ तोड़ने वाले जहाज नदी को जहाजरानी के उपयुक्त बनाये रखते हैं। मार्ग के अन्दर प्रपातों और झरनों की कठिनाइयों को नहरें बना कर दूर कर दिया गया है। सेन्ट लारेन्स नदी और बड़ी झीलें जगह-जगह नहरें बनाकर मिलादी गई हैं। सुपीरियर झील और ह्यूरिन के बीच सूनहर, ईरी झील और ओन्टेरियों के बीच वेलेन्ड नहर और वार्ल नहर (जो सेन्ट लारेन्स और हडसन मोहाक को जोड़ती है) यहाँ की मुख्य नहरें हैं। कनाडा के अन्दर इसके अतिरिक्त रैंड, अल्बेनी, सस केचुआन, मकेंजी और यूकन, फ्रेजर, स्कीना और कोलम्बिया मुख्य नदियाँ हैं जो कि यहाँ के स्थानीय व्यापार में महत्वपूर्ण सहयोग देती हैं।

दक्षिणी अमेरिका के जलमार्ग (Waterways in South America)

दक्षिणी अमेरिका में जलमार्गों के रूप में नदियों का सबसे अधिक उपयोग कोलंबिया में किया जाता है, जहाँ की मुख्य नदी मैग्डेलेना (Magdalena) है। यह नदी ९०० मील तक नाव्य है किन्तु इसके मार्ग में बालू के स्तूप आजाने से नदी की गहराई कम हो जाती है तथा जल की न्यूनता भी हो जाती है; इसमे माल ढोना अधिक व्ययसाध्य हो जाता है। डेल्टा से केवल ७० मील की दूरी तक ही नदी में सालभर नावें चलाई जा सकती हैं। बैरेनक्वीला और बोगोटा के बीच दो सप्ताह से भी कम में माल भेजा जा सकता है। किन्तु जब नदी में जल की कमी हो जाती है तो यातायात में ४-५ सप्ताह लग जाते हैं। इस नदी पर स्थित कोलंबिया का सबसे प्रमुख द्वार बैरेनक्वीला है। इस बन्दरगाह द्वारा कोलंबिया का कहवा, अनाज तथा आलू आदि निम्न भागों को और शक्कर, कपास तथा पशु और विदेशों से आयातित माल मैदानों से ऊँचे भागों की ओर भेजा जाता है।

ओरीनिको नदी में १५० मील तक समुद्री जहाज आ जा सकते हैं किन्तु छोटे स्टीमर लगभग ७०० मील तक पहुँच सकते हैं। इस नदी पर स्यूडाड

बॉलीवर प्रमुख बन्दरगाह है जिसके द्वारा चमड़ा और खालें, सोना, रबड़ और टोंकाफलियाँ पोर्ट-ऑफ स्पेन तथा ट्रिनीडाड को विदेशों के निर्यात के लिए भेजी जाती हैं।

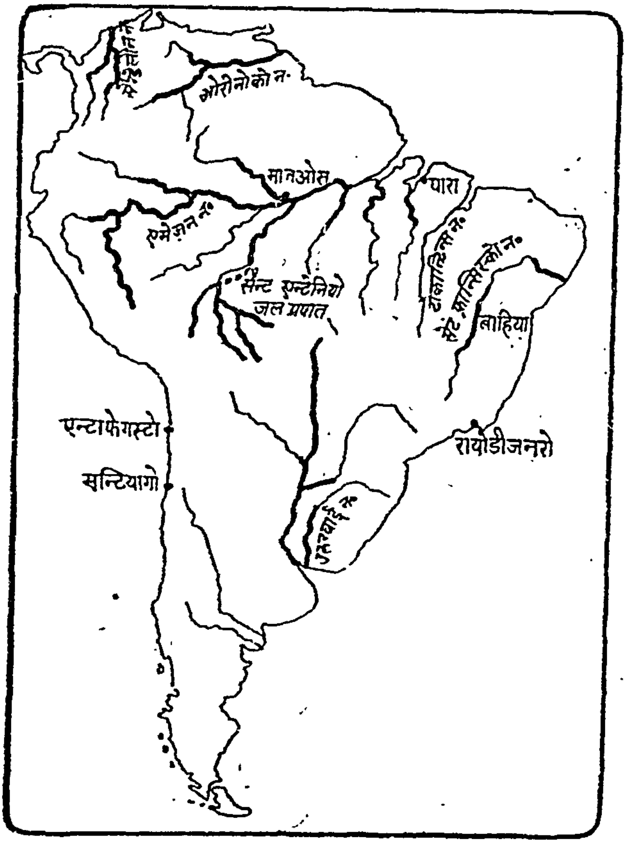

चित्र २२८—दक्षिणी अमेरिका के जल मार्ग

अमेजन नदी अपनी सहायक नदियों सहित लगभग ५०,००० मील लम्बा जल मार्ग बनाती है। यह अपने निचले भाग में १००० मील तक १०० फुट से भी अधिक गहरी है और आगे २००० मील तक यह नदी केवल ३५ फुट गहरी है। इसका ढाल प्रति मील पीछे $\frac{२}{१०}$" गिरता जाता है। अधिक वर्षा के समय इसमें बाढ़ें आती हैं। इस समय अधिक पानी होने से सामुद्रिक जहाज १००० मील तक मैनोस तक जा सकते हैं, किन्तु बड़ी नावें २३०० मील तक पहुँच जाती हैं। सूखे मौसम में इस नदी का मार्ग छोटा हो जाता है। यद्यपि जल मार्ग की दृष्टि से यह नदी अच्छा मार्ग उपस्थित करती है किन्तु जिस प्रदेश में होकर यह बहती है वह बहुत ही कम आबाद, पिछड़ा हुआ और विषुवतीय वनों से आच्छादित है अतः इसका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता। मोटे तौर पर ब्राजील, बोलीविया, पीरू और कोलंबिया राज्यों की लगभग २० लाख वर्ग मील भूमि यातायात के लिए इसी नदी पर निर्भर है। इसके मुख्य बन्दरगाह मैनोस और इक्वीटॉस हैं जिनके द्वारा अमजेन घाटी की पैदावार—

रबड़, ब्राजील-नट, बसाबी-नट, टैगुआ-नट, बलाटा और कठोर लकड़ियाँ— निर्यात की जाती हैं।

दक्षिणी अमेरिका का सबसे उत्तम जल मार्ग प्लाटा पराना-पैरेग्वे नदियाँ प्रस्तुत करती हैं। यह नदियाँ अर्जेनटाइना, यूरैग्वे और पैरैग्वे तथा दक्षिणी ब्राजील में फैली हैं। प्लाटा-पैराना-पैरेग्वे जल-मार्ग ब्यूनेसआयर्स से कोरुम्बा तक १७०० मील लंबा है। सामुद्रिक जहाज साधारणतः पैराना में अनाज तथा मांस लाने के लिए रोसारियो और सैन्टा फे तक चले जाते हैं। प्रतिवर्ष एसनशन में लगभग ४,००० जहाज आते है। पैराना और पैरग्वे नदियों में बड़े जहाज १८० मील ऊपर कन्सैपशन तक और छोटे जहाज कोरुम्बा तक जा सकते हैं। इस जल मार्ग द्वारा चमड़ा, लकड़ियाँ, मांस, कपास, नारियल का तेल, मैंगनीज तथा कच्चा लोहा यूरोप के देशों को निर्यात किया जाता है।

दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी भाग में रियो नीग्रो नदी पैटेगोनिया प्रदेश का मुख्य जल मार्ग है।

अफ्रीका के जलमार्ग (Waterways in Africa)

अफ्रीका की नदियाँ जब पहाड़ों और पठारों को छोड़कर मैदानी भागों में उतरती हैं तो मार्ग में असंख्य झरने और रपटें बनाती हैं। अतः ये जल मार्गों के अनुकूल नहीं होतीं। इसके अतिरिक्त नदियों के जल-तल में

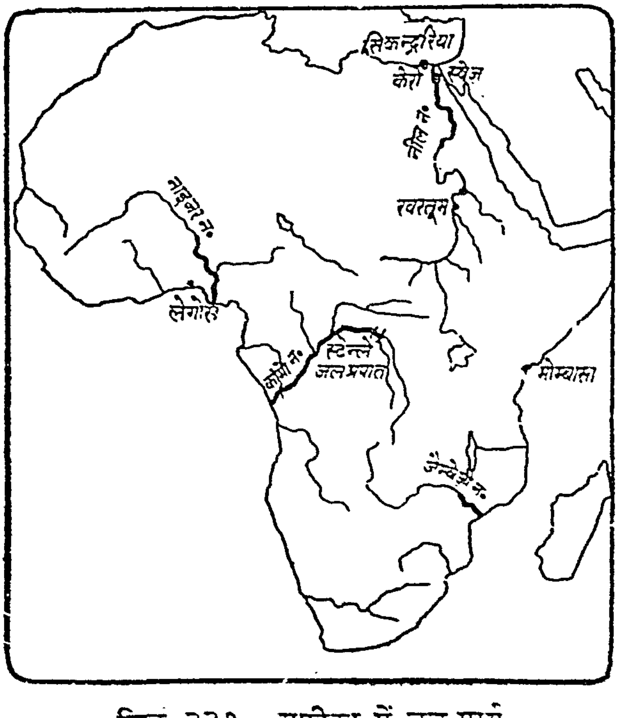

चित्र २२९—अफ्रीका में जल-मार्ग

सामयिक परिवर्तन होता रहता है तथा मिट्टी जमती रहती है अस्तु; ये बातें इनके अच्छे जलमार्ग बनने में बाधास्वरूप हैं। किन्तु फिर भी मध्य अफ्रीका का

१७° उत्तरी अक्षांश से १०° दक्षिणी अक्षांश तक का संपूर्ण भाग यातायात के लिए पूर्णत: नदियों पर ही निर्भर रहता है। नदियों के अतिरिक्त इस भाग में न्यासा, टँगेनिका, विक्टोरिया, चाड और रूडोल्फ झीलों में भी जहाज चलते हैं।

काङ्गो अफ्रीका की सबसे लम्बी नदी है जो लगभग ६८०० मीलों तक नाव चलाने योग्य है। समुद्र से २३०० मील तक इसमें जहाज आ सकते हैं। इस नदी का सम्बन्ध माटाडी से लियोपोल्डविले तक रेल-मार्ग द्वारा भी है। कोबालो में लूलाबा-काङ्गो रेल-मार्ग से टँगेनिका झील तक जोड़ दी गई है। इस नदी द्वारा अधिकतर बेल्जियन काङ्गो का व्यापार होता है। इस नदी को मुख्य व्यापारिक वस्तुयें ताड़ का तेल, ताड़ की गिरी, मजबूत लकड़ियाँ, कपास, कोपल गोंद तथा कहवा आदि हैं।

नाईजर तथा उसकी सहायक बेनू नदी में समुद्र से ६०० मील भीतर तक जहाज जा सकते हैं किन्तु अधिकतर जहाज ५०० मील तक चलते हैं। इस नदी का महत्व रेल-मार्गों के बन जाने से कम हो गया है क्योंकि अब अधिकतर व्यापार रेलों द्वारा ही होता है जो इस प्रदेश का टिन, कपास, गिरी, ताड़ का तेल, मटर, चमड़ा आदि ले जाती हैं। नाईजर नदी का १४,००० वर्ग मील डेल्टा-क्षेत्र दलदली है किन्तु फिर भी इस जल-मार्ग द्वारा इतना अधिक ताड़ का तेल और ताड़ की गिरी ढोई जाती है कि इस नदी का नाम ही 'तेल की नदी' (Oil River) पड़ गया है। अपने ऊपरी और मध्य भाग में यह नदी फ्रांसीसी सूडान में होकर बहती है अत: इसके द्वारा चमड़ा और मटर अधिक ले जाया जाता है।

यद्यपि नील मिस्र की सबसे प्रसिद्ध नदी है किन्तु यह केवल डेल्टे में ही खेई जा सकती है। शेष भाग जल-प्रपातों और ऊबड़-खाबड़ भूमि प्रदेश के होने से निकम्मा ही रहता है। यह नदी भूमध्यसागरीय प्रदेश और विषुवत् रेखीय अफ्रीका के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। चूँकि अधिकांश दूरी तक रेल-मार्ग इसके समानान्तर जाता है अत: इस नदी का महत्व व्यापार के लिए पहले जितना नहीं रहा। किन्तु पहले और दूसरे प्रपात (Cataract) के बच रेल-मार्ग न होने से इस नदी के द्वारा ही व्यापार होता है। वैसे तो आजकल मिस्र और सूडान का व्यापार सड़कों द्वारा ही होने लगा है किन्तु फिर भी मिस्र के विश्व-विख्यात पिरेमिड देखने बहुत यात्री आते हैं जो इस नदी में चलने वाले स्टीमरों से ही देश के भीतरी प्रदेशों में पहुँचते हैं। नील नदी से होने वाले समस्त यातायात का ८०% यात्री होते हैं।

आस्ट्रेलिया के जल-मार्ग (Waterways of Australia)

आस्ट्रेलिया में भीतरी जल-मार्गों की बहुत कमी है। छोटे-छोटे नदी-नाले जो कि उक्त प्रदेशों से किनारों तक बहते हैं यहाँ के मुख्य जल-मार्ग बनाते हैं। पूर्वी नदियाँ वर्षा के अन्दर कुछ दूरी तक ही मार्ग बनाती हैं। यहाँ की दो मुख्य नदियाँ मरे और डार्लिङ्ग बोर्की तक १२०० मील लंबा जल-मार्ग बनाती हैं। मरे नदी आस्ट्रेलियन आल्पस के बर्फीले पहाड़ों से निकल कर अच्छे वर्षा वाले प्रदेश से बहती है—इसलिये यह जल-मार्ग और सिंचाई दोनों दृष्टियों से उत्तम है।

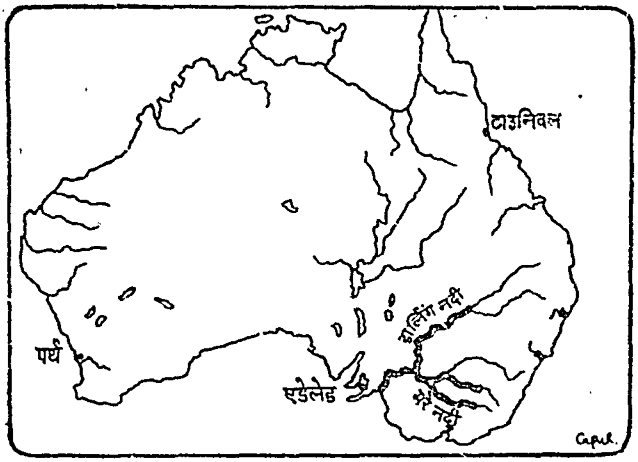

चित्र २३०—आस्ट्रेलिया में जल-मार्ग

एशिया के जल मार्ग (Waterways of Asia)

एशिया महाद्वीप के मुख्य जल-मार्ग भारत और चीन में स्थित हैं। चीन में कुल मिला कर लगभग १,००,००० मील लम्बी नदियाँ और नहरें हैं, जिनमें से अधिकांश यातायात के लिए काम में आती हैं। इन सबमें मुख्य याँग्टसीक्यांग नदी है जो ३,१०० मील लम्बी है। यह नदी शंघाई के निकट पूर्वी चीन सागर में गिरती है। इस नदी में नावों द्वारा इसके मुहाने से १५०० मील भीतर चुगंकिंग तक यातायात होता है। बड़े-बड़े जहाज नदी में शङ्घाई और नानकिंग के बीच वर्ष भर ही चलते हैं। ग्रीष्म में ये जहाज हैंकाऊ तक जाते हैं। इस नदी में सबसे अधिक यातायात होने के तीन मुख्य कारण हैं :—(१) इस नदी में नाव चलाने योग्य शाखायें उत्तर और दक्षिण से आकर मिलती हैं तथा इसका संबंध नहरों से है जिनके द्वारा अधिक व्यापार करने में सहायता मिलती है। (२) इस जल-मार्ग के किनारे सघन जनसंख्या पाई जाती है जो इसका अधिक उपयोग करती है। (३) इस प्रदेश में रेल-मार्गों से स्पर्धा नहीं है। जब अधिक बाढ़ें आती हैं तो निकटवर्ती झीलों—पोयाँग, टङ्गटिंग और टाई—में जल चला जाता है, अत: नदी बाढ़ से बच जाती है। गर्मी की ऋतु में भी इस नदी में जल की कमी नहीं पड़ती। जलयानों के लिए जल भी नदी में काफी गहराई तक रहता है। राइन के बाद याँग्टसीक्यांग नदी ही संसार की सबसे व्यस्त नदी कही जाती है। अधिकतर व्यापार छोटे स्टीमरों द्वारा ही होता है। बड़े जहाज ऐसे केन्द्रों पर जहाँ से वे नदी की गहराई कम हो जाने से आगे नहीं बढ़ पाते हैं अपना व्यापारिक माल स्टीमरों में लाद देते हैं। इस नदी द्वारा नीचे की ओर चाय, तुङ्ग का तेल, रेशम, कोयला, अनाज आदि ढोया जाता है तथा ऊपर की ओर कैरोसीन, सूती वस्त्र आदि।

दक्षिणी चीन में सिक्यांग नदी का महत्व उत्तर की याँग्टसीक्यांग का जितना ही है। इसके मुख्य बन्दरगाह कैंटन और हाँगकाँग हैं।

उत्तरी चीन में ह्वाँगो नदी व्यापारिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है क्योंकि यह

के लिए यह आवश्यक है कि नदियों में मोड़ (meanders) अधिक न हों। मोड वाली नदियों को यातायात के उपयुक्त बनाने के लिए खोदकर सीधा करना पड़ता है जिसमें काफी खर्च होता है। राईन नदी व्यापार के लिए इसी प्रकार उपयुक्त बनाई गई है। (९) नदी के पेटे में रेतादि नहीं जमनी चाहिए इससे पानी की गहराई घट जाती है और झामों (dredgers) द्वारा पेटा गहरा करना पड़ता है।

नीचे की तालिका में विश्व के भीतरी जल यातायात संबन्धी कुछ आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—[1]

देश	प्रति १००० वर्गमील पीछे लम्बाई	प्रति १०,००० व्यक्तियों पीछे लम्बाई	लम्बाई (मीलों में)
नीदरलैंड्स	३४०.७	४.५	४,३४०
बेलजियम	९१.०	१.२५	१,०५४
जैकोस्लोवाकिया	३४.४	१.५	१,८६०
फ्रांस	२८.०	१.४३	५,९५०
इङ्गलैंड	२५.५	०.४८	७,४००
जर्मनी	२१.५	०.६	३,९००
पौलैंड	१८.२	१.१४	२,७३०
सं. रा. अमेरिका	९.८	१.९५	२८,०००
मिश्र	५.४	१.०९	२,०८१
भारत	३.८	०.१५	४,७०९

नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में आन्तरिक जल यातायात द्वारा हुए व्यापार का विवरण बताया गया है :—

(००० मैट्रिक टनों में—१९५२)

देश	माल की लदाई	माल की उतराई	देश	माल की लदाई	माल की ढुलाई
सं. रा. अमेरिका	१,२०,१४१	—	जर्मनी	६६,७४४	७१,२१७
कोलंबिया	१,६०२	—	फिनलैंड	२,५३६	—
फ्रांस	४१,२०२	४१,२६४	नीदरलैंड	६२,९७८	५१,९८७
बैलजियम	२६,६२६	२९,१३४	ब्रिटेन	१२,६४२	—

(ख) झीलें (Lakes) :

दुनियाँ भर में उत्तरी अमेरिका की झीलों को छोड़कर अधिकतर झीलें व्यापार के काम की नहीं हैं। उत्तरी अमेरिका में पाँच बड़ी झीलें हैं—

१. भारत सरकार के C. W. I. N. C. द्वारा प्रकाशित Water Transport in India : पृ० २००

सुपीरियर, मिशीगन, ह्यूरन, ईरी और ओन्टेरियो। ये झीलें और इनकी नहरें सब मिलाकर ६५,००० वर्गमील क्षेत्रफल में विस्तृत हैं। इनके द्वारा दक्षिणी कनाडा और उत्तरी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का व्यापार होता है। इन झीलों में जहाँ भी झरने पहले बाधा पहुँचाते थे नहरें बना दी गई हैं। जैसे सू नहर (Soo Canal) सुपीरियर और ह्यूरन के बीच में (जो सोल्ट सेंट मेरी के झरनों को दूर करती है), वेलैण्ड नहर (Walland Canal) ईरी और ओन्टेरियो के बीच में (न्यागरा को दूर करती हैं) ; सेंट लौरेंस नहर (St. Lawrence Canal) जो ओन्टेरियों और सेंट लौरेंस नदी के बीच के झरनों को दूर करती है। इन नहरों के बन जाने से सेंट लॉरेंस नदी के मुहाने से लेकर २००० मील दूर तक काफी बड़े स्टीमर आ जा सकते हैं। यह स्टीमर विशेष रूप से इन्हीं नहरों के लिए बनाये गये हैं।

इन झीलों का वार्षिक व्यापार विश्व की दो बड़ी नहरों—स्वेज और पनामा—के कुल ट्रैफिक से अधिक है। इन झीलों के इस व्यापारिक महत्व के ये कारण हैं : (१) ये झीलें काफी गहरी हैं जिसमे बड़े-बड़े स्टीमर—जिनमें काफी सामान ढोया जाता है—आसानी से आ-जा सकते हैं। (२) इनका विस्तार पूर्व-पश्चिम है जिधर संयुक्त राष्ट्र के सामान के आने-जाने का प्रधान मुख हैं, (३) अमेरिका में गेहूँ, लोहा, कोयला, लकड़ी आदि पर्याप्त होने के कारण इन झीलों की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त सुन्दर है। (४) आवश्यकता के अनुसार गहरी होने के कारण इन झीलों के द्वारा सामान ढोने में दाम रेल से कम लगते हैं। (५) झीलों के किनारे सभी बन्दरगाहों पर सारे रेल-मार्ग केन्द्रित होते हैं। दुर्भाग्य से ये झीलें जाड़े के दिनों में जम जाने के कारण व्यापार के लिए बेकार हो जाती हैं, फिर भी विश्व का यह प्रसिद्ध और उपयोगी भीतरी जल-मार्ग अमेरिका की रेलों, उद्योगों, व्यापारिक केन्द्रों और घनी आबादी को आकर्षित किये बिना नहीं रहता।

इन झीलों द्वारा होने वाले व्यापार का ६५% कच्चा लोहा, चूना, कोयला, पैट्रोलियम और अनाज होता है। १६५३ में इन झीलों द्वारा १,०७,३४५ हजार टन कच्चा लोहा; ५०,७५३ हजार टन बिट्यूमीनस कोयला; २६,६६६ हजार टन चूना; १६,८१६ हजार टन पैट्रोलियम; १४,३१७ हजार टन अनाज आदि ढोया गया। लोहा अधिकतर ईरी झील के बन्दरगाहों के लिये भेजा जाता है जहाँ से वह रेल द्वारा पिट्सबर्ग और यंग्सटाऊन को जाता है। ईरी झील द्वारा अपलेशियन प्रदेश का कोयला पश्चिम को भेजा जाता है। यह कोयला ईरी झीलों के बन्दरगाह से डिट्रायट जिलों को भेजा जाता है। मिशीगन झील का दक्षिणी सिरा मक्का की पेटी (Maize belt) के भीतर तक जाता है जिससे मध्यवर्ती कृषि प्रदेश के सारे पदार्थ इसी भाग द्वारा पूर्व को भेजे जाते हैं। इस मार्ग द्वारा पश्चिम की ओर से लोहा, कृषि पदार्थ एवं डेरी-पदार्थ पूर्व को और पूर्व से कारखानों में बना माल पश्चिम को भेजा जाता है। झीलों के मुख्य बन्दरगाह ये हैं—सुपीरियर झील के प्रमुख बन्दरगाह डुलुथ, पोर्ट आर्थर और फोर्ट विलियम हैं। मिशीगन झील के मुख्य बन्दरगाह शिकागो, मिलवाकी, गैरी और इडियाना हारबर हैं। ईरी झील के मुख्य बन्दरगाह टोलडो, ह्यूरन, क्लीवलैंड, एस्टाबूला, ईरी और कनीअट हैं।

इन झीलों में माल ढोने के लिये विशेष प्रकार के जहाज ही काम में लाये जाते हैं। बड़े जहाज साधारणतः ६०० फुट लम्बे तथा ६०-७० फुट चौड़े होते है। ये १५,००० टन कोयला या लोहा या ५,००,००० बुशल अनाज एक बार में ढो सकते हैं। इनसे माल आकर्षण-शक्ति द्वारा उतारा जाता है।

इन बड़ी झीलों का सम्बन्ध तीन प्रमुख जल-मार्गों से है—ऊपरी सेंट लारेंस नदी की नहरें, न्यूयार्क स्टेट बार्ज नहर व्यवस्था और इलीनियाॅस जल-मार्ग। इन तीनों में ३५० लाख टन का वार्षिक व्यापार होता है। सेंट लाॅरेंस नहर १४ फुट गहरी है इसमें बड़े जहाज नहीं जा सकते। इस नहर द्वारा वर्ष में लगभग १०० लाख टन अनाज, बालू मिट्टी, लुब्दी, कोयला आदि ढोया जाता है। १९५४ में संयुक्त राष्ट्र और कनाडा की सरकार के बीच एक संधि हुई जिसमें ऑग्डेन्सबर्ग और मान्ट्रियल के बीच में २७ फुट गहरी नहर बनाना तय किया गया। यह जल-मार्ग १९६० तक तैयार हो जायगा। ईरी और ह्यूरन झीलों तथा सेंट मेरी नदी और सू नहर के बीच के जल-मार्ग को भी गहरा किया जायेगा जिससे ह्यूरन, मिशीगन और सुपीरियर झील के बन्दरगाहों का सीधा सम्पर्क महासागरीय मार्गों से हो सकेगा।

न्यूयार्क स्टेट में एक १२ फुट गहरी नहर हडसन नदी को ईरी, ओंटेरियो, फिंगर और चैम्पीयन झीलों से जोड़ती है। इसके द्वारा लगभग ४०-५० लाख टन का व्यापार होता है—विशेषतः मिट्टी का तेल, अनाज, मोटरें और लुब्दी में।

इलीनियास जल-मार्ग मिसीसिपी नदी को मिशीगन झील से जोड़ता है। इस जल-मार्ग के अन्तर्गत शिकागो नदी, शिकागो नहर तथा इलीनियाॅस नदियाँ हैं। इस जल-मार्ग द्वारा लगभग १८० लाख टन का व्यापार होता है।

अफ्रीका की विक्टोरिया, टैंगेनिका, न्यासा और यूरेशिया में केस्पियन सागर तथा बेकाल बड़ी-बड़ी झीलें हैं किन्तु यह सब व्यापार की केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। विश्व व्यापार के दृष्टिकोण से उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। अन्यत्र झीलें बहुत छोटी हैं और व्यापार के लिए उपयोगी नहीं हैं।

(ग) नहरें (Canals)

नहरें पानी के वे जल मार्ग हैं जो जहाज चलाने के हेतु बनाये जाते हैं। नहरों का व्यापार में अपना अलग महत्व होता है। नहरें व्यापार के लिये किसी न किसी उद्देश्य को लेकर बनाई जाती हैं। उनका उद्देश्य या तो (१) दो नदियों, खाड़ियों अथवा समुद्रों की दूरी और समय को कम करने के लिए; या (२) किसी नहर या झील के व्यापार में बाधा डालने वाले झरनों और प्रपातों को दूर करने के लिये, अथवा (३) उन प्रदेशों के व्यापार को उन्नत करने के लिये होता है जहाँ अन्य साधन सरलतापूर्वक प्राप्त नहीं हो सकते। जहाजी नहरों की लम्बाई-चौड़ाई काफी होती है जिनसे होकर बड़े-बड़े जहाज निकल सकते हैं। चूँकि यह भूमि को काट कर बनाई जाती है इसलिये कई देशों के बीच की समुद्री दूरी बहुत कम हो जाती हैं। सड़कों, रेलों और नदियों

के साथ-साथ यह भी देशों के भीतरी व्यापार में अपना हाथ बंटाती हैं। कई नहरों का महत्व तो केवल स्थानीय ही होता है किन्तु कइयों का महत्व अन्तर्राष्ट्रीय भी होता है। विश्व में सबसे अधिक नहरें यूरोप में हैं। फ्रांस एवं जर्मनी में तो नहरों का जाल बिछा है। यहाँ सरकारी नीति के कारण नहरों का प्रयोग अधिक होता है। ये राज्य नहरों को निरन्तर जीवित रखते हैं। इन देशों की बहुसंख्यक नहरें औद्योगिक प्रदेशों में हैं जहाँ कोयला ही सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है जिसे नहरें ढोती हैं। जहाजी नहरों के बन जाने से कुछ जल-मार्गों का महत्व बढ़ गया है क्योंकि इन में या तो दूरियाँ कम हो गई हैं (जैसे पनामा और स्वेज द्वारा) या कुछ भागों पर व्यापार केन्द्रीभूत हो गया है (जैसे सैंट सू नहर पर)। संसार की कुछ महत्वपूर्ण नहरें ये हैं :—(१) स्वेज नहर, (२) पनामा नहर, (३) कील नहर, (४) सू सैंट मेरी नहर, (५) मैनचेस्टर जहाजी नहर, (६) उत्तरी सागर की नहर, (७) न्यू वाटर वे (राटर्डम तथा उत्तरी सागर के मध्य में), और (८) स्टैलिन नहर।

(१) स्वेज नहर (Suez Canal)

स्वेज नहर संसार की सबसे बड़ी जहाजी नहर है जो स्वेज के स्थल डमरुमध्य को काट कर बनाई गई है। यह भूमध्यसागर को लाल सागर से जोड़ती है। पुराने समय से ही यूरोप और एशिया के बीच में होने वाला व्यापार इसी स्थलडमरुमध्य के द्वारा होता था अतः इस स्थलडमरुमध्य का महत्व बहुत अधिक रहा है। पिछली शताब्दी के मध्य में इसी को काट कर फर्डीनेन्ड डी लॅसेप्स (Ferdinend De Lesseps) नामक एक फ्रान्सिसी इंजीनीयर की देख-रेख में यह नहर सन् १८६६ में बनाई गई। इसके बनाने में १,८०,००,००० पौण्ड खर्च हुआ और निर्माण कार्य १८५६ में आरम्भ होकर १७ नवम्बर १८६६ में समाप्त हुआ।

इस नहर की खुदाई स्वेज कम्पनी ने की थी जिसकी पूँजी ८० लाख पौंड थी जिसके आधे हिस्से फ्रांसीसी सरकार ने और आधे मिस्र के तत्कालीन बादशाह सदीव सय्यैद पाशा ने खरीदे थे। बाद को अंग्रेज सरकार ने १८७५ में मिस्र के बादशाह से हिस्से खरीद लिये। आरम्भ में जो राजीनामा हुआ था उसके अनुसार १८६६ से लगा कर १०० वर्षों का ठेका कंपनी को दिया गया। यह ठेका १७ नवम्बर १६६६ को स्वतः ही समाप्त होने वाला था जिसके बाद नहर पर मिस्र का अधिकार होने वाला था, किन्तु इसके पूर्व ही सन् १६५६ में कर्नल नासेर ने स्वेज के राष्ट्रीयकरण की घोषणा करदी।

यह नहर लाल सागर स्थित पोर्ट स्वेज को भूमध्यसागर स्थित पोर्ट सैयद से मिलाती है। यह नहर १०३ मील लम्बी है। इसकी कम से कम गहराई ४० फुट, और चौड़ाई १५६ फुट से २४६ फुट तक है। मोड़ों पर चौड़ाई अधिक है, जहाँ वह २६२ फुट से ३६० फुट हो जाती है।

इस नहर के बनाने में नमकीन झीलों (Great Bitter Lakes) का ही उपयोग किया गया है। यह पोर्ट सैयद से क्वांतरा तक रेल की लाइन के साथ

साथ दक्षिण की ओर जाती है । इस्मायलिया के पास स्थलडमरुमध्य समुद्र की सतह से ५२ फीट ऊँचा है । यहाँ यह नहर टिमशा झील (घड़ियालों की झील) में मिल जाती है । टिमशा झील और बड़ी नमकीन झीलों (Great Bitter Lakes) के बीच में यह नहर किनारे के पुराने सभ्यता के खंडहरों बीच में होकर जाती है । यहाँ से नहर छोटी नमकीन झील (Little Bitter Lake) में होती हुई स्वेज के बन्दरगाह तक चली जाती है । पोर्ट स्वेज से पोर्ट सैयद तक नहर के पश्चिम की ओर और उसके साथ २ एक रेल-मार्ग है जिसका मुख्य उपयोग सेना की गति और नहर की सुरक्षा करना है ।

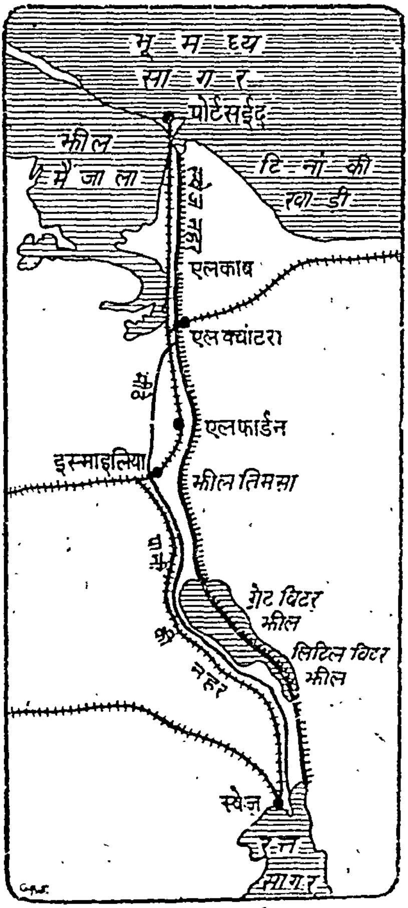

चित्र २३२—स्वेज नहर

यह नहर पूरी लम्बाई तक समुद्र की सतह पर ही बनी है अतः इसमें पनामा नहर की तरह झालें (Locks) नहीं हैं । यह पुरानी दुनिया के घने आबाद देशों के बीच में से गुजरती है और इसके द्वारा दूसरे मार्गों की अपेक्षा अधिक देशों को पहुँचा जा सकता है । इस मार्ग का महत्व इस बात पर है कि इस मार्ग में दो स्थानों पर ईंधन मिलता है—ब्रह्मा और पूर्वी द्वीप समूह में मिट्टी का तेल व पश्चिमी यूरोपीय देशों में कोयला । इस से यह नहर पनामा नहर से अधिक लाभदायक है क्योंकि उसमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के तेल के स्थानों के अलावा अन्य स्थानों में ईंधन नहीं मिलता । स्वेज मार्ग पर जिब्राल्टर, माल्टा, स्वेज, अदन, बम्बई, कोलम्बो, कलकत्ता और सिंगापुर नाम के बन्दर बहुत प्रसिद्ध हैं जिनमें सभी स्थानों पर जहाज़ों के कोयला लेने में सुविधायें है । इस मार्ग से कई छोटी २ मार्ग मिले हैं यहाँ तक कि प्रत्येक खाड़ी और समुद्र में से होता हुआ एक सामुद्रिक मार्ग स्वेज मार्ग से कहीं न कहीं अवश्य मिलता है ।

इसमें जहाज ६ मील प्रति घंटा के हिसाब से चलते हैं क्योंकि तेज चलने से नहर के किनारों के टूट कर गिर जाने का डर रहता है । अतः साधारणतया इस नहर को पार करने में १५ घंटे लग जाते हैं । नहर की चौड़ाई अधिक न होने के कारण इसमें एक साथ दो जहाज नहीं निकल सकते अतः जब एक जहाज निकलता है तो दूसरे को बांध दिया जाता है ।

यातायात इस प्रकार एक-तरफा रह जाता है। आरम्भ में जब यह नहर बन कर तैयार हुई तो इसकी चौड़ाई केवल ७२ फुट थी और गहराई २६ फुट। आमने-सामने में आने वाले जहाजों को लंघाने के लिए केवल ८ स्थान थे जहाँ चौड़ाई ८६ फुट थी। यद्यपि नहर में अब कई परिवर्तन किये गये हैं किन्तु फिर भी पूरे भरे हुए ४५ हजार टन के टैंकर नहर में से न गुजर कर 'केप के मार्ग' से घूम कर यूरोप पहुँचते हैं और इससे उन्हें २५ से ३० % की बचत हो जाती है। अब नई योजना के अनुसार १२ करोड़ पौंड खर्च कर यातायात की सुविधायें बढ़ाई जा रही हैं जिससे ४५ से ५० तक बड़े २ जहाज प्रति दिन नहर में होकर गुजर सकें। नहर को ठीक हालत में रखने के लिये निरन्तर खुदाई और गाद निकालने का काम जारी रखना पड़ता है।

नहर का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व—स्वेज का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व बहुत अधिक है। आरम्भ से ही संसार के देशों ने यह आश्वासन चाहा कि स्वेज का मार्ग प्रत्येक देश के लिए शांति और युद्ध दोनों कालों में समान रूप से खुला रहेगा।[1] यदि ऐसा बहुमूल्य और महत्वपूर्ण जलमार्ग किसी एक देश के अधिपत्य में आ जाये तो सारे एशिया और यूरोप का भाग्य उस देश की इच्छा पर निर्भर रहेगा, बल्कि युद्ध के समय कोई भी राष्ट्र नहर को हानि पहुँचा कर सारे संसार के लिए विपत्ति खड़ी कर सकता है। अतएव २९ अक्टूबर १८८८ को ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, स्पेन, फ्रांस, इटली, नीदरलेंड, रूस और टर्की इन देशों ने एकत्रित होकर कुस्तुनतुनिया में एक संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि के अनुसार यह तय हुआ कि—

(१) स्वेज नहर का जलमार्ग युद्ध और शांति दोनों ही कालों में प्रत्येक देश के व्यापारिक अथवा लड़ाकू जहाजों के लिये खुला रखा जायगा। इस मार्ग को कभी बन्द नहीं किया जायगा। न केवल स्वेज बल्कि उसमें गिरने वाली साफ पानी की नहरों को भी सुरक्षित रखा जायगा।

(२) युद्ध के समय जहाँ लड़ने वाले राष्ट्रों के जंगी जहाज युद्ध के सामान और फौजें आदि इस मार्ग से स्वतन्त्र रीति से आ जा सकेंगे वहाँ प्रत्येक राष्ट्र इस बात का ध्यान रखेगा कि नहर के भीतर और उसके मुहाने के बन्दरगाहों से ३—३ मील के घेरे के भीतर कोई आक्रमण अथवा लड़ाई का अभ्यास नहीं किया जायगा।

(३) नहर की सुरक्षा और देखभाल की जिम्मेदारी मिस्र सरकार पर होगी, जो यह भी देखेगी कि कोई राष्ट्र संधि की धाराओं का उल्लंघन तो नहीं करता।

(४) स्वेज नहर पर खतरा होने पर मिस्र और टर्की नहर को आवश्यकता पड़ने पर बन्द भी कर सकते हैं और उसकी नाकाबंदी भी कर सकते हैं। उस समय इस कार्य को संधि के विरुद्ध न समझा जायगा।

सन् १८८२ से ही ब्रिटिश सेनायें स्वेज क्षेत्र में स्थित रही हैं और व्यावहारिक रूप में इंगलैंड का इस नहर पर पूर्ण अधिकार रहा है। इस नहर के

१. According to International Convention (1888), "The Suez is free and open, in time of war as in time of peace to every vessel of Commerce or of war, without distinction flag".

साथ दक्षिण की ओर जाती है । इस्मायलिया
समुद्र की सतह से ५२ फीट ऊँचा है । व

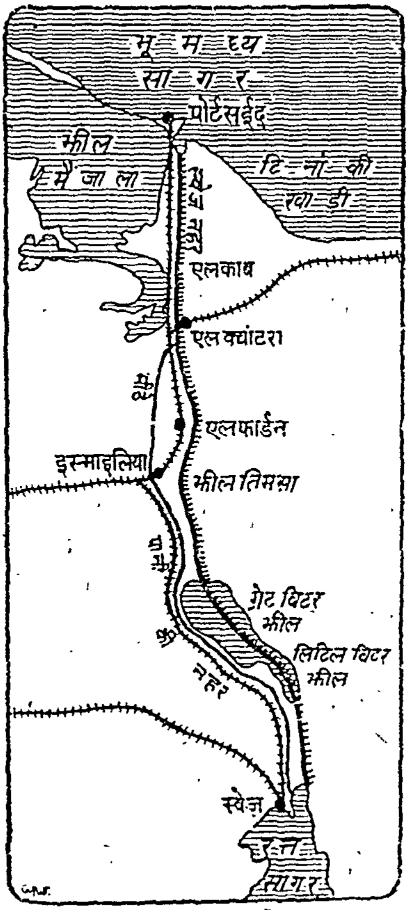

चित्र २३२—स्वेज नहर

झील (घड़िया
जाती है ।
नमकीन झीलों
के बीच में यह
सभ्यता के खंड
है । यहाँ से नह
(Little Bitte
स्वेज के बन्दरग
पोर्ट स्वेज से प
पश्चिम की ओर
रेल-मार्ग है जिस
की गति और नह

यह नहर पूरी
की सतह पर ही
पनामा नहर की
नहीं हैं । यह पुर
आवाद देशों के बी
और इसके द्वारा दूर
अधिक देशों को पहुं
इस मार्ग का महत्व
इस मार्ग में दो स्थान
है— ब्रह्मा और पू
मिट्टी का तेल व पश्चि
में कोयला । इस से
नहर से अधिक लाभदायक है क्योंकि उसमें संयुक्त राष्ट्र अ
स्थानों के अलावा अन्य स्थानों में ईंधन नहीं मिलता । स्वेज
ल्टर, माल्टा, स्वेज, अदन, बम्बई, कोलम्बो, कलकत्ता और
बन्दर बहुत प्रसिद्ध हैं जिनमें सभी स्थानों पर जहाज़ों के
सुविधायें है । इस मार्ग से कई छोटी २ मार्ग मिले हैं यहाँ
खाड़ी और समुद्र में से होता हुआ एक सामुद्रिक मार्ग स्वेज म
कहीं अवश्य मिलता है ।

इसमें जहाज ६ मील प्रति घंटा के हिसाब से चलते हैं क
से नहर के किनारों के टूट कर गिर जाने का डर रहता है ।
तया इस नहर को पार करने में १५ घंटे लग जाते हैं । नहर की
न होने के कारण इसमें एक साथ दो जहाज नहीं निकल सक
एक जहाज निकलता है तो दूसरे को बांध दिया जाता है ।

यातायात इस प्रकार एक-तरफा रह जाता है। आरम्भ में जब यह नहर बन कर तैयार हुई तो इसकी चौड़ाई केवल ७२ फुट थी और गहराई २६ फुट। आमने-सामने में आने वाले जहाजों को लंघाने के लिए केवल ८ स्थान थे जहाँ चौड़ाई ८९ फुट थी। यद्यपि नहर में अब कई परिवर्तन किये गये हैं किन्तु फिर भी पूरे भरे हुए ४५ हजार टन के टैंकर नहर में से न गुजर कर 'केप के मार्ग' से घूम कर यूरोप पहुँचते हैं और इससे उन्हें २५ से ३० % की बचत हो जाती है। अब नई योजना के अनुसार १२ करोड़ पौंड खर्च कर यातायात की सुविधायें बढ़ाई जा रही हैं जिससे ४५ से ५० तक बड़े २ जहाज प्रति दिन नहर में होकर गुजर सकें। नहर को ठीक हालत में रखने के लिये निरन्तर खुदाई और गाद निकालने का काम जारी रखना पड़ता है।

नहर का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व—स्वेज का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व बहुत अधिक है। आरम्भ से ही संसार के देशों ने यह आश्वासन चाहा कि स्वेज का मार्ग प्रत्येक देश के लिए शांति और युद्ध दोनों कालों में समान रूप से खुला रहेगा।[1] यदि ऐसा बहुमूल्य और महत्वपूर्ण जलमार्ग किसी एक देश के अधिपत्य में आ जाये तो सारे एशिया और यूरोप का भाग्य उस देश की इच्छा पर निर्भर रहेगा, बल्कि युद्ध के समय कोई भी राष्ट्र नहर को हानि पहुँचा कर सारे संसार के लिए विपत्ति खड़ी कर सकता है। अतएव २९ अक्टूबर १८८८ को ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, स्पेन, फ्रांस, इटली, नीदरलेंड, रूस और टर्की इन देशों ने एकत्रित होकर कुस्तुनतुनिया में एक संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि के अनुसार यह तय हुआ कि—

(१) स्वेज नहर का जलमार्ग युद्ध और शांति दोनों ही कालों में प्रत्येक देश के व्यापारिक अथवा लड़ाकू जहाजों के लिये खुला रखा जायगा। इस मार्ग को कभी बन्द नहीं किया जायगा। न केवल स्वेज बल्कि उसमें गिरने वाली साफ पानी की नहरों को भी सुरक्षित रखा जायगा।

(२) युद्ध के समय जहाँ लड़ने वाले राष्ट्रों के जंगी जहाज युद्ध के सामान और फौजें आदि इस मार्ग से स्वतन्त्र रीति से आ जा सकेंगे वहाँ प्रत्येक राष्ट्र इस बात का ध्यान रखेगा कि नहर के भीतर और उसके मुहाने के बन्दरगाहों से ३—३ मील के घेरे के भीतर कोई आक्रमण अथवा लड़ाई का अभ्यास नहीं किया जायगा।

(३) नहर की सुरक्षा और देखभाल की जिम्मेदारी मिस्र सरकार पर होगी, जो यह भी देखेगी कि कोई राष्ट्र संधि की धाराओं का उल्लंघन तो नहीं करता।

(४) स्वेज नहर पर खतरा होने पर मिस्र और टर्की नहर को आवश्यकता पड़ने पर बन्द भी कर सकते हैं और उसकी नाकाबंदी भी कर सकते हैं। उस समय इस कार्य को संधि के विरुद्ध न समझा जायगा।

सन् १८८२ से ही ब्रिटिश सेनायें स्वेज क्षेत्र में स्थित रही हैं और व्यावहारिक रूप में इंगलेंड का इस नहर पर पूर्ण अधिकार रहा है। इस नहर के

१. According to International Convention (1888), "The Suez is free and open, in time of war as in time of peace to every vessel of Commerce or of war, without distinction flag".

खुलने से यूरोपीय राष्ट्रों और विशेषता या ब्रिटेन को अपने सुदूर पूर्व उपनिवेशों से कच्चा माल प्राप्त करने और बने माल को बेचने में बड़ा प्रोत्साहन मिला है। उपनिवेशों पर शासन सम्बन्धी नियन्त्रण रखने में भी इस नहर का महत्व बहुत अधिक है। व्यापार और साम्राज्य की रक्षा का विचार करते हुए ही कहा जा सकता है कि "स्वेज नहर ब्रिटिश साम्राज्य की जीवन-रेखा है"[1]। प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेजों के आधे से अधिक जहाज पनडुब्बियों (Submarines) द्वारा इस नहर में नष्ट किये गये। इससे अन्य देशों के जहाज 'केप-मार्ग' से जाने लगे। द्वितीय महायुद्ध काल में भी जर्मनी के बम-वर्षक जहाजों ने ६४ बार इस नहर पर आक्रमण किये जिसके फलस्वरूप ७६ दिनों तक यातायात प्रायः बन्द रहा। इस हानि से बचने के लिए यातायात मार्ग में भी परिवर्तन हुआ। जहाँ १६३८ में इस नहर द्वारा ३४५ लाख टन भार के जहाज निकलते थे वहाँ १९४२ में केवल ७० लाख टन भार के जहाज ही इस नहर में होकर गुजरे। किन्तु १९५३ में यह मात्रा बढ़ कर ९३० लाख टन की हो गई।

नहर का प्रभाव—इस नहर के बन जाने से यूरोप और एशिया के पूर्वी देशों के बीच की दूरी लगभग ५,००० मील कम हो गई है। नहर के बनने के पूर्व यूरोप और पूर्वी देशों के बीच का व्यापार उत्तमाशा अंतरीप (Cape of Good Hope) द्वारा होता था किन्तु अब यह व्यापार इसी मार्ग द्वारा होता है। अतएव यह नहर सुदूरपूर्व और यूरोप के देशों के व्यापार के लिए बड़ी महत्व की है। इसी प्रकार उत्तरी अमरीका के पूर्वी भागों और पूर्वी देशों के बीच का व्यापार भी इसी के द्वारा होता है। नीचे की तालिका में इस नहर द्वारा विभिन्न स्थानों के बीच कितनी दूरी कम हुई है, उसे बताया गया है :—

स्वेज नहर से सुदूर पूर्व की दूरी में बचत

लिवरपूल से	बम्बई	बटाविया	हांगकांग	सिडनी
(१) केप मार्ग द्वारा	१०,७३०	११,२५०	१३,१९५	१२,६२६
(२) स्वेज मार्ग द्वारा	६,१८९	८,५१६	९,७८५	१२,२३५
दूरी की बचत	४,५४१	२,६८८	३,४१०	३९१

स्वेजनहर से पूर्वी उत्तरी अमरीका और पूर्वी देशों के बीच की दूरी में बचत

न्यूयार्क से	बम्बई	बटाविया	हांगकांग
(१) केप मार्ग द्वारा	११,५११	११,९८६	१३,६६६
(२) स्वेज मार्ग द्वारा	८,१०२	१०,४२९	११,३७३
दूरी की बचत	३,४०९	१,५५७	२,२९३

आरंभ में इस नहर का उपयोग सबसे अधिक इङ्गलैंड ही करता था किन्तु अब धीरे-धीरे दूसरे देश भी इसका अधिक प्रयोग करने लगे हैं। सन् १९३९

१ "Suez route has long been called the life line of British Empire"—vide Smith, Phillips and Smith, p. 642.

में स्वेज में होकर निकलने वाले ५८% जहाज इङ्गलैंड के ही थे। सन् १९५२ में इङ्गलैंड का भाग ३७% ही रह गया। अब लाइबेरिया, फ्रांस, इटली, नीदरलैंड, स्वीडेन, अमेरिका डेनमार्क, जर्मनी और पनामा के जहाज भी बहुत संख्या में इस नहर द्वारा जाने लगे हैं। यातायात किस गति से बढ़ता जा रहा है इसका अनुमान इससे हो सकता है कि जहाँ १९५२ में सब मिलाकर ८ करोड़ ६१ लाख टन के जहाज नहर में से गुजरे थे वहाँ सन् १९५५ में ११ करोड़ ५७ लाख टन के जहाज नहर में होकर गुजरे।

इस नहर में होकर प्रतिवर्ष लगभग १२,००० जहाज निकलते हैं जिनमें से एक-तिहाई ब्रिटेन के होते हैं। १९३९ में भिन्न-भिन्न देशों के निकलने वाले जहाजों का प्रतिशत इस प्रकार था—

ब्रिटेन	५८%	इटली	५%
हालैंड	१२%	जापान	४%
जर्मनी	८%	अमेरिका	३%
फ्रांस	७%		

सन् १९५२ में स्वेज नहर द्वारा निकलने वाले जहाजों का भाग इस प्रकार था :—[1]

ब्रिटिश	२८·६	मिलिअन टन	डच	३·९	मिलिअन टन
नार्वे	१३·५	,,	लाइबेरिया	३·१	,,
फ्रांस	७·७	,,	स्वीडेन	२·६	,,
पनामा	६·८	,,	डेनमार्क	२·५	,,
सं० रा० अमेरिका	६·३	,,			
इटली	४·७	,,			

नीचे की तालिका में स्वेज नहर से होकर निकलने वाले जहाजों और उनके टन भार को बताया गया है इससे स्वेज की महत्ता प्रकट होती है :—[2]

वर्ष	जहाजों की संख्या	टन भार (००० टनों में)
१८६९	१०	६·६
१८७९	१४७७	२२६३
१८८९	३४२५	६७८३
१८९९	३६०७	९८९६
१९१०	४५३८	१६५७५
१९१८	२५२२	९२५२
१९३०	५७६१	३१६६९
१९४०	२८८९	१३५३६
१९५२	१२१६८	८६१३७
१९५५	१२०००	११,५७००

१. Chamber of Shipping of U. K.: Annual Reporter 1953-54, (1954) p. 666.

२. Stamp and Glimour: *Ibid*, p. 641.

इस नहर के बन जाने से कई लाभ हुए हैं :—

(१) इसके बनने के पूर्व नहर-क्षेत्र में चलने वाली हवायें कमजोर थीं जिससे उस समय के जहाज इसमें होकर नहीं जा सकते थे। किन्तु वे सब यांत्रिक सहायता से इसे पार कर सकते हैं।

(२) इस मार्ग द्वारा आस्ट्रेलिया से सीधा व्यापार होता है क्योंकि यूरोप और आस्ट्रेलिया के बीच की दूरी कम हो गई है। स्वेज से निकलने वाले जहाज भिन्न-भिन्न बन्दरगाहों का सामान लादते हैं। यह पूरे भरे नहीं रहते क्योंकि प्रत्येक बन्दरगाह पर सामान उतार दिया जाता है। इससे सारे रास्ते बराबर सामान नहीं ले जाना पड़ता।

(३) सुदूर पूर्व के देशों और पश्चिमी देशों के बीच दूरी कम हो जाने से कई वस्तुओं के मूल्य में कमी हो गई हैं तथा व्यापार में वृद्धि हुई है।

(४) इसके द्वारा लाइनर जहाजों का अधिक लाभ हुआ है। अधिकतर लाइनर जहाज यूरोप और एशिया के बन्दरगाहों के बीच इसी मार्ग से होकर निकलते हैं। इसी प्रकार जब अधिक भाड़ा मिल जाता है तो ट्रैम्प जहाज भी इसी मार्ग का अनुकरण करते हैं, किन्तु जब कम भाड़ा मिलता है तो वे 'केप मार्ग' द्वारा ही जाते हैं।

नहर द्वारा होने वाला व्यापार— सुदूर पूर्व और दक्षिणी अफ्रीका से पश्चिमी देशों को जाने वाला सामान अधिक वजनी किन्तु कम कीमत का होता है। इसका कारण यह है कि इन देशों से अधिकतर अनाज, लकड़ी, कच्चा सामान ही विदेशों को जाता है। पूर्वी और पश्चिमी देशों का व्यापार बहुत ही पुराना है, परन्तु यह बहुधा भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा होता रहा है। बहुत ही प्राचीन काल से भारत और चीन से स्थल-मार्ग द्वारा कीमती कच्चा सामान जैसे रेशम, मसाले, पत्थर आदि निर्यात किये जाते थे। किन्तु समुद्री मार्गों का अनुसंधान हो जाने से यह मार्ग प्रायः कम काम में आने लगा। और अब इन देशों के बीच सभी व्यापार समुद्री मार्गों द्वारा होता है, अतः अब भारी वस्तुयें भी अधिक भेजी जाने लगी हैं।

स्वेज नहर के उत्तर के देशों से अधिकतर सभी प्रकार की मशीनें, लोहे का सामान, कोयला, पक्का माल, कपड़ा और यूरोप का बना हुआ अन्य सामान होता है। हिन्द महासागर को छोड़ कर दक्षिण से उत्तर की ओर मुख्यतः खाद्य पदार्थ और कच्चा सामान भेजा जाता है। गेहूँ, ऊन, ताँबा और सोना आस्ट्रेलिया से; ऊन और मक्खन न्यूजीलैंड से; चाय, भारत चीन, और लङ्का से; शक्कर जावा से; जूट बङ्गाल से; गेहूँ पंजाब से; शक्कर और तम्बाकू फिलिपाइन से; रबड़ लङ्का और मलाया से; छुहारे फारस से; कॉफी अरब से; सोयाफली मंचूरिया से; पेट्रोल फारस की खाड़ी और ब्रह्मा और आस्ट्रेलिया से; नारियल प्रशांत महासागर के द्वीपों से; रबड़, हाथी-

दाँत और कच्चा चमड़ा पूर्वी अफ्रीका से स्वेज नहर द्वारा पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के देशों को भेजा जाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि यह नहर खाद्य और कच्चा सामान आयात करने वाले जर्मनी, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, इटली आदि देशों से मिली है। और कच्चा सामान निर्यात करने वाले चीन, थाईलैंड, मलाया स्टेट, ब्रह्मा, पूर्वी द्वीप समूह आदि देशों से सम्बन्धित है।

स्वेज नहर होकर माल का जो यातायात होता है उसमें किस पूर्वी देश का कितना भाग रहा है, उसका अनुमान नीचे की तालिका से होगा :—

इरान की खाड़ी के तटवर्ती देश	६६६ लाख टन
भारत, पाकिस्तान, लङ्का, वर्मा	११५ ,,
द० पूर्वी एशिया	७६ ,,
चीन, जापान, फिलीपाइन	७६ ,,
आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड	५३ ,,
लाल सागर के तटवर्ती देश और अदन	३७ ,,

नीचे की तालिका में यह बताया गया है कि कौन-कौन सामान कितना नहर में से होकर यूरोप से पूर्वी और दक्षिणी देशों को जाता है :—

धातु का बना हुआ सामान	३,७३१ हजार टन
सीमेंट	२,६८३ ,,
खादें	२,४५४ ,,
पैट्रोल और पैट्रोल से उत्पन्न पदार्थ	१,६०५ ,,
मशीनें	१,०२८ ,,
खाँड़	६६६ ,,
कागज और कागज की लुब्दी	६११ ,,
रासायनिक द्रव्य	५५६ ,,
नमक	४६७ ,,
अनाज	४८६ ,,
रेल का सामान	४६७ ,,

इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि इन देशों में औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नति के लिये आवश्यक पदार्थों का आयात एशिया व अफ्रीका के देशों से अधिक बढ़ रहा है।

जो माल पूर्वी और दक्षिणी देशों से यूरोप को जा रहा है वह इस प्रकार है :—

पैट्रोल और पैट्रोल से निर्मित पदा	६,८६३ हजार टन
कच्ची धातुएं	५,३०० ,,
अनाज	२,४८८ ,,

उपरोक्त तालिकाओं से स्पष्ट होगा कि यूरोप और एशिया दोनों के लिए यह नहर कितना महत्व रखती है और दोनों के लिये वह जीवन-वाहिनी प्रणालिका है।

नहर के दोष—स्वेज नहर के कुछ दोष भी हैं :—

(१) यह नहर कम गहरी व कम चौड़ी है। अतः इसमें से आधुनिक बड़े-बड़े जहाज नहीं गुजरते। किन्तु अब नहर का यह दोष उसे चौड़ा करके दूर किया जा रहा है। इस मार्ग से अब ४५ हजार टन के जहाज भी आ-जा सकेंगे।

(२) दूसरा दोष यात्रा सम्बन्धी है। पहले जहाज को नहर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचने में ३० घन्टे लगते थे किन्तु अब १२ घन्टों में ही यात्रा पूरी हो जाती है। पहले कम चौड़ाई के कारण एक तरफा ही यातायात होता था किन्तु अब नहर को चौड़ा करके कुछ सुधार किया गया है। मार्ग पर बहुत से प्रकाश-स्तूप (Light-houses) और सर्चलाइट (Search-Light) भी बनाये गये हैं जिनमे यात्रा करना सुगम हो गया है।

(३) इस नहर में से गुजरने वाले जहाजों से कर वसूल किया जाता है। जो जहाज माल से लदे होते है उन पर प्रति टन पीछे १·६० डालर; खाली जहाजों पर इसका आधा और यात्री जहाजों पर १२ वर्ष से ऊपर आयु वाले यात्रियों पर १·६० डालर कर लिया जाता है। तेल ले जाने वाले टैंकर जहाज प्रति यात्रा पीछे लगभग २०,००० डॉलर कर का देते हैं। अत: जब जहाजों को जल्दी पहुँचने की आवश्यकता नहीं होती तो बोझा ढोने वाले बहुत से जहाज 'केप-मार्ग' से जाते हैं ताकि उन्हें भार कर न देना पड़े।

(२) पनामा नहर (Panama Canal)

यद्यपि पनामा नहर स्वेज के बहुत देर बाद बनाई गई किन्तु इसका महत्व उससे किसी प्रकार कम नहीं है। इसके निर्माण के लिए दो बार प्रयत्न किये गये। पहला प्रयत्न सन् १८८२ में फ्रांसीसी इंजीनियर डी लैस्पेस का था किन्तु यह कार्य फ्रांसीसी कंपनी द्वारा थोड़े दिनों के लिये ही हो सका। मलेरिया और पीले बुखार से हजारों श्रमिकों की मृत्यु हो गई इसलिये काम अधूरा ही रह गया। सन् १९०४ में दूसरा प्रयत्न संयुक्त राष्ट्र की सरकार द्वारा किया गया। ठीक उसी समय पीरू की चांदी और कैलिफोर्निया की सोने की सम्पत्ति की खोज हुई जिसके फलस्वरूप पूर्वी अमरीका से पश्चिमी अमरीका को बड़ी मात्रा में प्रवास आरम्भ हुआ। संयुक्त राष्ट्र ने पनामा क्षेत्र से नहर के लिये जमीन खरीदी। नहर की खुदाई आरम्भ की गई। पानी के निकास का प्रबन्ध किया गया तथा मलेरिया और पीले बुखार की रोक-थाम की गई। अन्ततः १५ अगस्त १९१४ में ७ करोड़ ५० लाख पौंड की लागत से यह नहर बन कर तैयार हुई।

यह नहर पनामा के मुहाने को काट कर बनाई गई है जो प्रशान्त और एटलांटिक महासागर को जोड़ती है। एटलांटिक के तट पर कोलन और प्रशान्त के तट पर पनामा बन्दरगाह हैं। यह नहर ५० मील लम्बी है इसकी औसत गहराई ४० फुट है, किन्तु यह गहराई सर्वत्र एक सी नहीं है, अटलांटिक की ओर यह ४२ फुट गहरी है और प्रशान्त महासागर की ओर ४५ फुट और गाटून झील में कहीं-कहीं ८५ फुट है। नहर की चौड़ाई १०० से ३०० फुट

तक है। इसमें होकर जहाजों को निकालने में ७ से ८ घन्टे तक लगते हैं। यह नहर दो खाड़ियों, एक कृत्रिम झील, एक प्राकृतिक झील और तीन द्वार प्रणाली

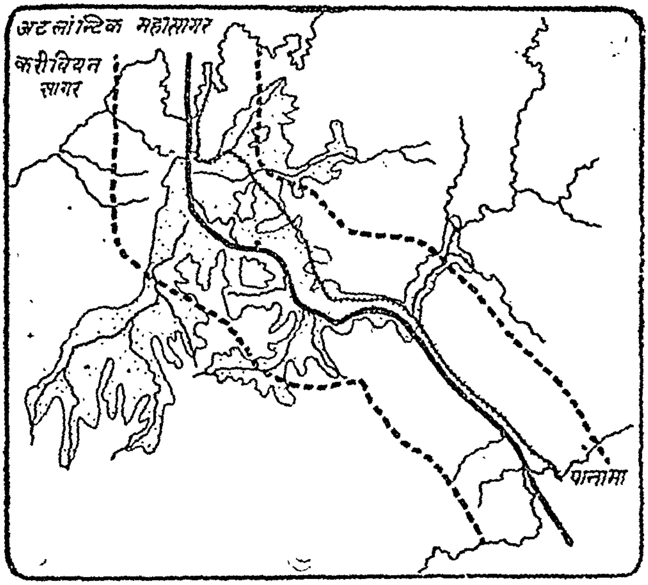

चित्र २३३—पनामा नहर

या झाल (Lock-System) द्वारा खोदी गई है। प्रशान्त महासागर की ओर लिमोन की खाड़ी और अटलांटिक की ओर पनामा की खाड़ी है। पूर्व की ओर मीराफ्लोरस प्राकृतिक झील और पश्चिम की ओर कृत्रिम झील गाटून है। तीन द्वार-प्रणालियों में पूर्व से पश्चिम की ओर गाटून, पेड्रो मिगुएल और मीराफ्लोरस हैं। सारी नहर ऊबड़-खाबड़ भूमि पर होकर बनाई गई है। इस नहर के खोदने के लिये बीच की कुलोबरा पहाड़ी को काट कर ४ मील लम्बी कुलोबरा या गेलार्ड सुरंग बनाई गई है। यह कटान एक जगह ४०० फुट गहरी है। द्वार-प्रणाली दुहरी है जिससे एक ही समय में जहाजों का आना-जाना होता रहता है। सारा भाग पहाड़ी होने के कारण गाटून नामक स्थान पर चार्जेज नदी के पानी को रोक कर बांध बना कर कृत्रिम झील तैयार की गई है। इस झील के अनावश्यक जल को १ सैकिन्ड में १,३७,००० घन फुट के हिसाब से बाहर निकाला जा सकता है। इस झील में जहाजों के लाने के लिए अटलांटिक तट पर स्थित कोलन नगर के पास तीन झीलों की सहायता से जहाजों को ८५ फुट ऊंचा उठा कर नहर में लाने की व्यवस्था की गई है। आगे चल कर गैम्बोज स्थान पर झील द्वारा फिर जहाजों के नीचे झील में उतारा जाता है। पनामा में से प्रतिदिन ४८ जहाज गुजरते हैं। पनामा नहर संस्था द्वारा चार्जेज नदी के जल से विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है जिससे इस क्षेत्र को रोशनी दी जाती है और बिजली द्वारा चालित इंजिनों का उपयोग जहाजों को बांध में खींचने के लिए किया जाता है।

पनामा नहर का प्रभाव—इस नहर के खुलने से निम्नलिखित लाभ हुए :—

(१) इंगलैंड से न्यूजीलैंड को जाने वाले मार्ग की दूरी में इस नहर द्वारा काफी अन्तर पड़ गया है। उदाहरण के लिये पनामा नहर द्वारा सिडनी से लिवरपूल की दूरी १२,२०० मील किन्तु स्वेज द्वारा यह दूरी १२,४०० मील पड़ती है। इसी प्रकार लिवरपूल से विलिंगटन पनामा नहर द्वारा ११,००० मील किन्तु स्वेज द्वारा १२,५०० मील है।

(२) यद्यपि पनामा नहर द्वारा योरोप से आस्ट्रेलिया को जाने वाले मार्ग में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा किन्तु अमेरिका और आस्ट्रेलिया के मार्ग में काफी अन्तर हुआ है, इस प्रकार न्यूयार्क से पनामा द्वारा सिडनी ९,७०० मील है किन्तु स्वेज द्वारा यह १३,५०० मील है। इसी प्रकार न्यूयार्क से विलिंगटन पनामा नहर द्वारा केवल ८,५०० मील है किन्तु मैगलन द्वारा ११,३०० मील है।

(३) पूर्वी एशिया के बन्दरगाह पनामा नहर की अपेक्षा योरोप के बन्दरगाहों से समीप है। किन्तु हांगकांग, शंघाई याकोहामा आदि बन्दरगाह पनामा द्वारा ही यूरोप से नजदीक पड़ते हैं। न्यूयार्क से याकोहमा पनामा द्वारा केवल ९,६०० मील किन्तु स्वेज द्वारा १३,१०० मील पड़ता है। भारत और एशिया के दूसरे बन्दरगाह अपना व्यापार अमेरिका से स्वेज द्वारा करते हैं क्योंकि इससे दूरी कम हो जाती है और अन्य व्यापारिक सुविधायें भी मिलती हैं।

(४) इस नहर से सबसे अधिक लाभ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को हुआ है। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी किनारे पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के पूर्वी भागों के नजदीक हो जाते हैं। इससे उत्तरी अमेरिका के पूर्वी और पश्चिमी किनारे के बीच ७,००० मील का फर्क पड़ गया है। यह सबसे अधिक लाभप्रद बात है कि इसने दक्षिणी अमेरिका की स्टेटों के व्यापार को काफी उन्नत बना दिया है। ब्रिटिश कोलम्बिया उत्तरी अमेरिका के पूर्वी भागों को नाज, टिम्बर और दूसरी वस्तुएं सब इसी जलमार्ग द्वारा ही भेजता है। जहाँ तक संयुक्त राष्ट्र का प्रश्न है इस नहर ने पूर्वी और पश्चिमी भाग की दूरी को कम कर व्यापार में ही लाभ नहीं पहुँचाया बल्कि खतरे के समय भी फौजें भेज कर तटों की रक्षा की जा सकती है।

(५) इस नहर के द्वारा दक्षिणी अमरीका के प्रशान्त तट और उत्तरी अमरीका के अटलांटिक तटों के बीच भी दूरी काफी कम होगई है। न्यूयार्क से मैगलन द्वारा वालपैरेजो ८,४०० मील पड़ता है किन्तु पनामा द्वारा वह केवल ४,६०० मील ही है।

(६) पनामा मार्ग से पश्चिमी द्वीप समूहों को भी बहुत लाभ पहुँचा है।

नीचे की तालिका में पनामा नहर द्वारा दूरी में होने वाली बचत को बताया गया है :—

लिवरपूल से सैंफ्रांसिसको	५,६६६ नॉटीकल मील
,, होनोलूलू	४,४०३ ,,
,, वालपैरेजो	१,५४० ,,

लिवरपूल से	याकोहामा	६६४	नॉटीकल मील
,,	शंघाई	२,७७४	,,
,,	सिडनी	१५०	,,
,,	एडीलेड	२,३२६	,,
,,	वैलिंगटन	१,५६४	,,
न्यूयार्क से	सैंफ्रांसिसको	७,८७३	,,
,,	वालपैरेजो	६,६१०	,,
,,	होनोलूलू	३,७४७	,,
,,	याकोहामा	३,७६८	,,
,,	शंघाई	१,८७६	,,
,,	सिडनी	३,६३२	,,
,,	एडीलेड	१,७४६	,,
,,	वैलिंगटन	२,४६३	,,
न्यूआर्लियन्स से	सैंफ्रांसिसको	८,८६८	,,
,,	याकोहामा	५,७०५	,,
,,	वालपैरेजो	४,७४२	,,

इस नहर से संयुक्त राष्ट्र को काफी लाभ पहुँचता है। इस नहर द्वारा अधिकतर माल संयुक्त राष्ट्र का ही निकलता है और अमेरिकन जहाज जो इस नहर का उपयोग करते हैं वे अमेरिका के तटीय व्यापार में लगे रहते हैं। १९५२ में इस नहर में होकर ६५२४ जहाज निकले जिसमें से २०८४ संयुक्त-राष्ट्र के ही थे। इस नहर द्वारा १६५२ में २४·२ मिलिअन टन सामान का व्यापार हुआ इसमें से ६·२ मि० टन संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ५·७ मि० टन इंगलैन्ड, २·५ मि० टन नार्वे, १·२ मि० ट० पनामा; १ मि० टन होंडूरास, ०·७ मि० टन स्वीडन, ०·६ मि० टन डेनमार्क, जापान, फ्रांस और हालेंड का था।

नहर द्वारा होने वाला व्यापार—इस नहर के बन जाने से अमरीका के पूर्वी तथा पश्चिम बन्दरगाहों की दूरी कम हो गई है। न्यूजीलैन्ड से इस नहर द्वारा पनीर, मक्खन, ऊन, अंडे और भेड़ का मांस; जापान से रेशम और रबड़ का सामान; चीन से संयुक्तराष्ट्र के पूर्वी तथा पश्चिम भागों को चाय और चावल, फिलीपाइन्स से तम्बाकू, सन आदि; सैन फ्रान्सिसको से संयुक्तराष्ट्र के पूर्वी भाग और ग्रेट ब्रिटेन को खनिज पदार्थ भेजे जाते हैं।

अन्य वस्तुएँ जो यूरोप के पश्चिमी देशों से और अमेरिका के पूर्वी भाग से भेजी जाती है वे ये हैं :—चाँदी बोलविया से; नाइट्रेट पेरू से, सिनकोना इक्वेडोर से, टिम्बर कोलम्बिया से। एटलांटिक से प्रशान्त सागर को जो व्यापार होता है उसमें गन्ना, तम्बाकू और केला पश्चिमी द्वीप समूह से, लोहे और फौलाद का सामान उत्तरी अमेरीका के पूर्वी किनारों और यूरोप के देशों से तथा तेल संयुक्त राष्ट्र से भेजा जाता है। ये सब वस्तुएं अमेरिका के पश्चिमी भागों, आस्ट्रेलिया, चीन और जापान को भेजी जाती हैं।

पनामा नहर द्वारा हुए व्यापार का ब्यौरा

वर्ष	उत्तर की ओर (प्रशान्त से अटलांटिक महासागर को)		दक्षिण की ओर (अटलांटिक से प्रशान्त महासागर को)	
	जहाजों की संख्या	माल (००० टन)	जहाजों की संख्या	माल (००० टन)
१९२९	३,०६५	२०,७८०	३,३४८	९,८८३
१९५३	३,७३९	१८,७६६	६७४	१७,३२९

नीचे की तालिका में पनामा नहर द्वारा जाने वाले जहाजों और उनके टनभार को बताया गया है :—[1]

वर्ष	जहाज	शुद्ध टन भार (००० में)	माल टन भार (०००)
१९१५	१०५८	३५०७	४८८८
१९२३	३९०८	१७२०६	१९५६६
१९३२	४३६२	२१८४२	१९७९८
१९३९	५९०३	२७१७०	२७८६६
१९५०	५४४८	२८०१३	२८८७२

पनामा नहर के खुलने के पहले अनुमान किया जाता था कि दूसरे मार्गों को इसके बन जाने पर हानि होगी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ है; व्यापार में उन्नति अवश्य हुई है किन्तु कम। जो जहाज पहले केप मार्ग द्वारा न्यूयार्क से आस्ट्रेलिया, चीन, जापान, ब्रह्मा, मलाया को जाते थे वे अब लौटते समय अपने जहाजों में पूरा सामान लाने के लिए स्वेज में होकर आते हैं। यह ऊपर बताया जा चुका है कि इन मार्गों में पनामा से कुछ भी दूरी कम नहीं हुई है। किन्तु यूरोपीय देशों और अमेरिका के पूर्वी भागों और पश्चिमी भागों में जो व्यापार होता है, इससे स्वेज मार्ग के व्यापार में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती। इसके विपरीत चीन और जापान का व्यापार इस नहर के खुलने से अधिक बढ़ा है।

प्रथम महायुद्ध काल में पनामा नहर का मुख्य महत्व चिली के शोरे को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तक ले जाने में ही अधिक था, किन्तु भूमि के खिसक कर गिर जाने से १८ सितम्बर १९१५ से १५ अप्रैल १९१६ तक यातायात बंद रहा। द्वितीय महायुद्ध काल में संयुक्त राष्ट्र के लिए नहर का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। १९४१ से १९४५ तक इसमें होकर २३,००८ जहाज निकले और इस काल से लगभग ४५० लाख टन सामान ले जाया गया।

१. Stamp & Carter : वही पुस्तक पृ० ८०१ (१९५३)

पनामा नहर के दोष—पनामा नहर का मार्ग में भी स्वेज की तरह कई दोष हैं यथा—

(१) पनामा नहर का मार्ग पर्वतीय, मलेरिया से पीड़ित और निर्धन देशों से होकर जाता है अतः इसके द्वारा अधिक व्यापार नहीं होता।

(२) पनामा नहर जनविहीन पहाड़ी प्रदेश में खोदी गई है अतः इसके निर्माण में भी अधिक खर्च हुआ है।

(३) झील के द्वारों को खोलने और बन्द करने में अधिक समय लगता है। और बड़ी असुविधा होती है।

(४) प्रशान्त महासागर बहुत विस्तृत है और उसमें बन्दरगाह कम हैं, अतः इस मार्ग पर कोयले का भी उचित प्रबन्ध नहीं है।

फिर भी इस नहर का महत्व संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के लिए बहुत अधिक है। *मध्य पूर्व सुरक्षा संगठन (Middle East Defence Organisation)* के लिए तो यह नहर मेरुदंड ही है।

पनामा और स्वेज की तुलना :

(१) पनामा प्रशान्त की नहर है क्योंकि यह प्रशान्त के देशों को अटलांटिक से जोड़ती है।

(२) स्वेज मार्ग में पर्याप्त मात्रा में कोयला लेने के स्थान हैं क्योंकि इसमें कितने ही द्वीपों और बन्दरगाहों की बहुतायत है, जिनके समीपवर्ती स्थानों में कोयला उत्पन्न होता है। इसलिए इसमें कोयला मिलने में कठिनाई नहीं होती। यह मार्ग अपने पूर्ववर्ती देशों के लिए लाभदायक है। किन्तु पनामा मार्ग में कोयला लेने के स्थानों का नितान्त अभाव है, इसमें मार्ग के बीच में द्वीप नहीं हैं और न कोयला ही निकटवर्ती स्थानों में मिलता है, किन्तु तेल अवश्य कई जगह मिलता है। पनामा से जापान और चीन के बीच में सैनफ्रांसिसको के अतिरिक्त दूसरा कोलिंग स्टेशन नहीं है। पनामा से एशिया और आस्ट्रेलिया को जाने वाले जहाज को लम्बे-चौड़े समुद्र पार करने पड़ते हैं जिनके किनारे के देश प्रायः अनुपजाऊ ही हैं।

(३) स्वेज मार्ग अधिक घने देशों के पास होकर जाता है, इससे सामान और यात्री पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं, किन्तु पनामा मार्ग पंहाड़ी और रेगिस्तानी प्रदेशों में होकर जाता है। जैसे उत्तरी अमेरिका का और दक्षिणी अमेरिका का पश्चिमी किनारा, अतः यात्री कम मिलते हैं।

(४) स्वेज नहर बहुत दूर तक मैदान में होकर जाती है, इसमें झालें बनाने की जरूरत नहीं पड़ी किन्तु पनामा में झाल बने हुए हैं अतः इसके बनाने में खर्च भी अधिक हुआ है।

(५) स्वेज पनामा से कम गहरी है। इससे जहाज धीरे-धीरे जाते हैं यह इतनी चौड़ी भी नहीं है कि दो जहाज एक साथ इसमें से निकल सकें। पनामा

नहर काफी चौड़ी है अतः उसमें स्वेज की तरह जहाजों को खड़े रहकर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

(६) पनामा नहर की अपेक्षा स्वेज की नहर के कर (Taxes) ऊँचे हैं। उदाहरण के लिए स्वेज में से निकलने वाले जहाजों को प्रतिटन ५ शिलिंग ९ पेंस कर देना पड़ता है, किन्तु खाली जहाजों को सिर्फ २ शिलिंग १० पेंस प्रति टन ही देना पड़ता है जबकि पनामा नहर से निकलने वाले जहाजों को क्रमशः एक डालर प्रति टन ही देना पड़ता है।

(७) स्वेज नहर का अधिकतर उपयोग ब्रिटिश जहाजों द्वारा ही होता है। किन्तु पनामा नहर अधिकतर संयुक्त-राष्ट्र की ही नहर है जिससे उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच ही तटीय व्यापार खूब होता है।

(३) कील नहर (Kiel Canal)

जटलैण्ड का प्रायद्वीप बाल्टिक समुद्र में बाहर को निकला हुआ है। एल्ब नदी से बाल्टिक समुद्र का रास्ता जटलैण्ड का चक्कर लगाकर जाता है। यह ६०० मील लम्बा पड़ता है। फिर इस राह में चट्टानें आदि होने से यात्रा अत्यन्त खतरनाक होती है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये कील नहर खोदी गई है जो कि केवल ६१ मील लम्बी है। यह नहर बाल्टिक समुद्र को उत्तरी सागर से एल्ब नदी के मुहाने के पास जोड़ती है। इस नहर की गहराई ३८ फीट और चौड़ाई १४४ फीट है। अतः बड़े-बड़े जहाज भी इसमें आसानी से गुजर सकते हैं। यह नहर व्यापारिक और सामरिक दृष्टि से जर्मनी के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। यह सन् १८९५ में बनकर तैयार हुई। सन् १९५२ में इसमें होकर ५६,३०० जहाज, जिनका टन भार १२७ लाख टन था, निकले।

(४) सू नहर (Soo Canal)

यह नहर अमेरिका में सुपीरियर झील तथा ह्यूरन झील के मध्य में बनी हुई है। यह संसार में सबसे बड़ी जहाजी नहर है। इन झीलों के बीच में सेंट मैरी नदी एक मील में २० फुट ढाल के ऊपर गिरती है। इस द्रुत जलवेग से जहाजों को बचाने के लिए सू नहर खोदी गई थी। इस नहर की दो शाखायें हैं और ५ बड़े द्वार हैं। कनाडा की ओर यह २२ फुट और संयुक्त राष्ट्र की तरफ २४ फुट गहरी है। प्रतिदिन लगभग ७०० जहाज इसमें होकर निकलते हैं। प्रायः ८६% व्यापार पूर्व की ओर होता है। अमेरिका और कनाडा के व्यापार के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण है। इस नहर से स्वेज और पनामा से गुजरने वाले माल का चौगुना माल गुजरता है। कच्ची लोहे की धातु, गेहूँ और आटा पूर्व को तथा कोयला पश्चिम को जाता है।

(५) मैनचेस्टर शिप केनाल (Manchester-ship Canal)

ब्रिटिश द्वीप समूह में यह सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण नहर है। यह नहर मरसी नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित ईस्थम को मैन्चेस्टर से मिलाती है। इसकी कुल लम्बाई ३५॥ मील है, चौड़ाई १२० फीट और गहराई २८

फीट है। इसके बनने से पहिले से मैन्चेस्टर को कपास लिवरपूल से रेल द्वारा आता था, परन्तु अब जहाज सीधे यहाँ तक पहुँच जाते हैं। व्यापारिक दृष्टि से यह नहर बहुत महत्व रखती है। यह नहर सन् १८९४ में बनकर तैयार हुई थी।

इसके अलावा **ऐमस्टर्डम केनाल** (हालैंड) उत्तरी सागर से एमस्टरडम को सीधे मिलाती है। यह १८७६ में बनाई गई थी।

स्टैलिन केनाल बाल्टिक सागर को आर्कटिक सागर से मिलाती है और श्वेत सागर से लेनिनग्राड का सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है।

नहर और रेल की तुलना :

आधुनिक समय में सामान को ले जाने के लिये नहरों का प्रयोग उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा है जितना पहले था। इसका विशेष कारण रेलों का संघर्ष है। रेलों की नहरों को अपेक्षा कतिपय लाभ प्राप्त हैं। सबसे महत्वपूर्ण लाभ गति का है। इसके अतिरिक्त रेलें किसी स्थान तक बिना सामान को तोड़े या कम किये हुए ले जा सकती हैं, परन्तु नहरें ऐसा नहीं कर सकतीं। रेलवे स्टेशनों पर सामान को संग्रहीत रखने के लिये सुविधाएं रहती हैं। जब तक आवश्यकता पड़े तब तक सामान वहाँ रखा जा सकता है। उन्हें तत्काल हटाने की आवश्यकता नहीं होती। रेल की लाइन पर डिब्बों में माल भरा जा सकता है। इस लाभ ने इङ्गलैण्ड की रेलों को इस योग्य बना दिया है कि अब नहरों से ढोया जाने वाला कोयला रेलों से जाने लगा है। कोयला पहले मोटर ठेलों में भर दिया जाता है। ये ठेले रेल पर छोड़ दिये जाते हैं और फिर एंजिन से जोड़ दिये जाते हैं। ज्योंही कहीं माँग हुई एंजिन इन ठेलों को खींचकर वहाँ ले जाता है।

(२) सामुद्रिक जलमार्ग (Ocean Transport)

आज से ५०० वर्ष पूर्व पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भू-भागों के बीच में समुद्र एक बड़ी रुकावट के रूप में था। जब तक कि समुद्र में चलने योग्य जहाज नहीं बन गए तथा जहाज खेने की कला में इतनी उन्नति नहीं हो गई कि नाविक अपने निर्धारित मार्ग पर जहाजों को ले जा सके तब तक समुद्र का व्यापार के लिए उपयोग न हो सका। किन्तु आज तो समुद्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य साधन बन गया है और एक देश दूसरे देश के बहुत समीप आ गया है। एक देश तक बराबर जहाज चलते रहने से बिना खर्चे के निश्चित समुद्री मार्ग स्थापित हो गये हैं जिनके कारण अब थोड़े दामों में मनुष्य और सामान इच्छा के अनुसार आ-जा सकते हैं।

अतः आधुनिक युग में जिन देशों के पास समुद्र तट नहीं है अथवा जो समुद्र तट से बहुत दूर पड़ते हैं वे बड़े अभागे हैं। हंग्री, अफगानिस्तान, स्विटजरलैंड, चैकोस्लोवाकिया, तिब्बत आदि देशों की अवस्था दयनीय है क्योंकि ये देश समुद्र पर नहीं हैं। वास्तव में जिन देशों की स्थिति समुद्र पर नहीं है वे उस घर के समान हैं जो सड़क से दूर हैं।[1]

१. "The nation that does not touch the ocean is like a house that is not upon the street."

महासागर के अपने कुछ गुण हैं। चूँकि वे प्रकृति की देन हैं अतः विश्व के सभी राष्ट्र उनका उपयोग कर सकते हैं। आरम्भ से ही समुद्र में कहीं भी स्वतंत्रतापूर्वक जहाज चलाये जा सकते हैं। आजकल भी देश तट से तीन मील की दूरी तक समुद्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर सकता है। बाहरी देशों के जहाजों को उस क्षेत्र के अन्दर आने जाने से रोक सकता है। अतः यह कहा जाता है कि जो समुद्र पर अधिकार रखता है वह विश्व के व्यापार पर भी अधिकार रखता है।[1]

जिस प्रकार भूमि के साधनों में थोड़ी दूर वाले स्थानों तक समान ले जाने में सड़कों की सुविधा होती है और दूर के लिये रेलों का प्रयोग उपयोगी होता है, उसी प्रकार समुद्री साधनों में विशेष प्रकार के जहाजों की विशेष प्रकार के सामान ले जाने में ही सुविधा रहती है। इस विशेषता को ध्यान में रखकर ही अब जहाजों का निर्माण होता है। इसलिये यात्रियों को ले जाने वाला जहाज केवल यात्रियों को, डाक और कीमती हल्की वस्तुओं वाला जहाज इन चीजों को ही ले जाता है। भारी और सस्ते सामान को ढोने के लिए अलग जहाज होते हैं।

१९ वीं शताब्दी के आरम्भ (१८२४) तक पालों से चलने वाले जहाजों का प्रधान्य था किन्तु पिछले १०० वर्षों में भाप की शक्ति से चलने वाले आधुनिक जहाजों का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि हवा से चलने वाले जहाज (Sailing Ships) महत्वहीन हो गए हैं। आज भी अधिकांश हवा से चलने वाले जहाज तटीय व्यापार और कम दूरी की यात्रा करते हैं तथा भारी सामान को, जो जल्दी नष्ट होने वाला नहीं होता, ले जाते हैं। परन्तु थोड़े से हवा द्वारा चलने वाले जहाज दूर की यात्रा भी करते हैं। वाष्प की शक्ति से यन्त्रों द्वारा चलने वाले जहाज हवा से चलने वाले जहाजों की अपेक्षा अधिक सामान ढो सकते हैं; उनकी चाल तेज होती है तथा वायु का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अस्तु, हवा से चलने वाले जहाजों का उपयोग अब क्रमशः कम होता जा रहा है। किन्तु भाप से चलने वाले जहाजों के लिए कोयला अथवा तेल की आवश्यकता होती है। इस कारण तेल तथा कोयला मिलने वाले केन्द्रों की आवश्यकता पड़ी।

जैसे-जैसे जहाजों का आकार बढ़ाया जाने लगा और उनकी चाल को तेज किया गया त्यों-त्यों अधिकाधिक कोयले की आवश्यकता पड़ने लगी। कोयला जहाज में बहुत सा स्थान घेरने लगा। इसका परिणाम हुआ कि जहाजों में माल भरने के लिए कम स्थान रहने लगा। अस्तु, इस कठिनाई को दूर करने के लिए कई प्रयत्न किये गए। इंजिनों में सुधार किया गया जिससे जहजों में कोयला कम खर्च हो। १९२० के उपरान्त तो ऐसे जहाज भी बनाये जाने लगे जिनमें कोयले के स्थान पर तेल का ही अधिक उपयोग किया जाने लगा। आजकल तो समुद्री यातायात में डीजल एंजिन के

---

१. "He who rules the sea, rules the Commerce of the World."

प्रयोग से महान परिवर्तन हो गया है क्योंकि तेल कोयले की अपेक्षा कम स्थान घेरता है तथा ईंधन के रूप में भी कम खर्च होता है। १९१४ में जहाजों में कुल ईंधन का केवल ३% तेल होता था, किन्तु १९५३ में यह प्रतिशत ८५ हो गया।

पिछले १०० सालों से तो ट्रैम्प और लाइनर जहाजों का ही अधिक प्रयोग बढ़ गया है। जहाज दो प्रकार के होते हैं—ट्रैम्प (Tamp) और लाइनर।

लाइनर (Liner) जहाज एक निर्धारित मार्ग से होकर जाते हैं।[1] जिन बन्दरगाहों पर उसका जाना निश्चित है उन पर वे अवश्य ही जायेंगे। लाइनर तैयार माल, जल्दी खराब हो जाने वाले माल तथा कीमती सामान और मुसाफिरों को ही ले जाते हैं। किसी निर्धारित मार्ग पर लाइनर चलेंगे यह उस मार्ग पर उपलब्ध व्यापार पर निर्भर करता है। लाइनर वस्तुतः बड़े तेज चलने वाले और अधिक मँहगे होते हैं। एक प्रकार के लाइनर केवल यात्रियों तथा अधिक मूल्यवान सामान तथा डाक को ही ले जाते हैं। इनको विशेष लाइनर (Express Liners) कहते हैं। इनमें अन्य सामान ले जाने के लिए कम स्थान होता है। दूसरे प्रकार के लाइनर निर्धारित स्थानों के बीच निश्चित समय पर ही सामान आदि ले जाते हैं। इनको माल लाइनर (Cargo Liners) कहते हैं। तीसरे प्रकार के लाइनर यात्री और सामान दोनों ही ले जाते हैं। ये मिश्रित लाइनर (Combination Liners) कहलाते हैं। ये काफी तेज चाल और नियमित रूप से चलते हैं।

ट्रैम्प (Tramp) जहाजों का न तो कोई निश्चित मार्ग ही होता है और न उनका समय ही निश्चित होता है।[2] ये काफी बड़े जहाज होते हैं जो बन्दरगाहों को माल लेने के लिए जाते हैं। जहाँ इनको माल मिल जाता है वहीं ट्रैंप चले जाते हैं। ट्रैम्प जहाजों के द्वारा खाद्य पदार्थ तथा कच्चा माल—अनाज, कोयला, गन्ना, लकड़ी, कपास, खनिज पदार्थ आदि बहुत अधिक राशि में एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। संसार का आधे से अधिक व्यापार इन ट्रैम्प जहाजों के द्वारा ही होता है। किन्तु ट्रैम्प जहाज उन्हीं व्यापारियों से माल लेते हैं जिनके पास पूरे जहाज के लायक माल होता है। जिनके पास पूरे जहाज के लायक माल भेजने को नहीं होता वे लाइनर से ही अपना माल भेजते हैं। जब ट्रैम्प एक स्थान पर से अपना माल उतार देते हैं तब बेतार के तार से उन्हें सूचित कर दिया जाता है कि कहाँ-कहाँ जाकर माल लादना चाहिए। इस प्रकार ट्रैम्प जहाजों को माल मिलने में कठिनाई नहीं पड़ती। ट्रैम्प जहाज एक बड़ी आवश्यकता को पूरा करते हैं; कारण यह है कि किन्हीं स्थानों पर जब फसल का समय होता है तब तो माल लादने को रहता है अन्यथा वर्ष के शेष समय में वहाँ

---

१. "A Liner is any vessel that operates over a fixed route on a regular schedule of sailing."

२. "A tramp is any vessel that has no fixed route and no regular time of sailing and which is ever-seeking those ports where profitable cargo is to be obtained."

(i) उत्तरी अटलांटिक मार्ग
(ii) भूमध्यसागरीय जल मार्ग
(iii) दक्षिणी अफ्रीका का केप-मार्ग
(iv) दक्षिणी अमरीका का मार्ग
(v) प्रशान्त महासागर मार्ग

(i) उत्तरी अटलांटिक मार्ग (North Atalantic Route) :

यह समुद्री मार्ग संसार का सबसे अधिक व्यस्त और महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग है जो एक शताब्दी से भी अधिक समय से काम में आ रहा है। समस्त विश्व के व्यापारिक जलयानों का $\frac{1}{8}$ माल इसी मार्ग से आता-जाता है। इस मार्ग से इतने यात्री और माल ले जाया जाता है जितना कि सभी मार्गों द्वारा सम्मिलित रूप में। इसी मार्ग द्वारा विश्व के बड़े-बड़े जहाज आते-जाते हैं। १९५४ में ऐसे ११ जहाज, जो ३०,००० ग्रौस टन से अधिक के थे, इस मार्ग द्वारा गुजरे। यह मार्ग संसार के दो सबसे अधिक उन्नत औद्योगिक क्षेत्रों—पश्चिमी यूरोप और पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—को मिलाता है, अत: इन देशों के उन्नत व्यापार का सम्पूर्ण भार इसी मार्ग पर पड़ता है।

औद्योगिक दृष्टि से यूरोप और कृषि तथा अन्य पदार्थों के लिए कनाडा व संयुक्त राष्ट्र अमेरिका बहुत उन्नत और विकसित हैं। अतः कनाडा से यूरोपीय देशों को अनाज, लकड़ियाँ, कागज, लुब्दी तथा मक्खन; कैरेबियन प्रदेश से

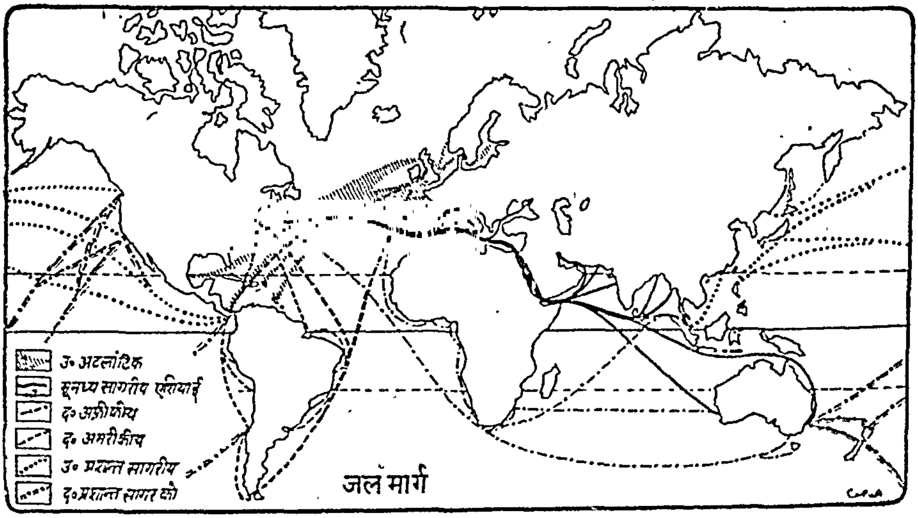

चित्र २३४

मिट्टी का तेल, फल, शक्कर, कठोर लड़कियाँ और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से मिट्टी का तेल, पुराना लोहा, फॉस्फेट, गंधक, कपास, खाद्यान्न, मांस, सेव, कच्चा लोहा और कारखानों में तैयार माल भेजे जाते हैं। यूरोपीय देशों से अधिकतर कारखानों के बने माल भेजे जाते हैं—विशेष कर स्पेन से पायराईट, फ्रांस से खड़िया जर्मनी से पोटाश, स्कडेनेविया से कागज व लुब्दी तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थ जिनका आयतन बहुत कम होता है किन्तु मूल्य अधिक।

इस मार्ग पर पूर्व को जाने वाले माल का आयतन पश्चिमी ओर जाने वाले माल के आयतन का ४ या ५ गुना अधिक रहता है। इस प्रकार के असंतुलन का प्रभाव जलयानों के भाड़े पर पड़ता है। पश्चिम की ओर जाते समय जहाजों को अधिकतर खाली लौटना पड़ता है इसलिये ये जहाज भाड़ा बढ़ा देते हैं। फिर भी यह मार्ग विश्व का सबसे श्रेष्ठ यात्री और माल मार्ग है। कुछ ट्रैम्प जहाज त्रिभुजाकर यात्रा करते हैं जिसके अनुसार जहाज ब्रिटेन से कोयला लेकर अर्जेन्टाइना पहुँचते हैं, वहाँ से सन या मैंगनीज लाद कर संयुक्त राष्ट्र को जाते हैं और वहाँ से कच्चा माल आदि लाद कर यूरोप ले जाते हैं। इस यात्रा में बड़े वृत्त के मार्ग के अनुसार लिवरपूल जाने वाले जहाज नोवास्कोशिया और न्यू इंग्लैन्ड की ओर उत्तरी मोड़ लेते हुए जाते हैं। उत्तर की ओर इनके मार्ग सीमा और पूर्व के मोड़ का स्थान ऋतुओं पर निर्भर रहता है क्योंकि उत्तर की ओर से ग्लेशियर बहते हुए आते हैं। ऐसे ही हिमपिंडों द्वारा १९१२ में टाइटैनिक (Titanic) नामक जलयान टकरा कर टूट गया जिसके फलस्वरूप १५१७ मनुष्य मृत्यु के मुँह में पहुँच गये इसलिये तभी से शीतऋतु, में यह मार्ग २° ३०′ अधिक दक्षिण की ओर होकर जाता है।

न्यूयार्क और न्यूआर्लियन्स, मैक्सिको की खाड़ी, मध्य अमेरिका के तटीय प्रदेशों और पश्चिमी द्वीप समूहों के पदार्थ इसी मार्ग द्वारा यूरोप भेजे जाते हैं। इस मार्ग में डूबी हुई चट्टानें या द्वीप नहीं पाये जाते, अतः जहाजों के टकरा कर डूब जाने का कोई भय नहीं रहता। किन्तु इस मार्ग में जहाजों को ग्रांड बैंक्स के घने कुहरे का डर रहता है। उस समय जहाजों को वृहत् वृत्त मार्ग को छोड़ना पड़ता है जिससे उनकी यात्रा लम्बी हो जाती है।

इस मार्ग में दोनों ओर जहाजों के लिये ईंधन की सुविधा है। संयुक्त राष्ट्र में मध्यवर्ती क्षेत्र और कैरेबियन क्षेत्र मिट्टी के तेल में धनी हैं और यूरोप की ओर इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, पोलैंड आदि देशों में कोयला अधिक मिलता है।

इस मार्ग की मुख्य पेटी ४०° और ५०° उत्तरी अक्षांसों के बीच उत्तर की ओर गोलाकार फैली है। यह मार्ग पश्चिमी यूरोप के मुख्य बन्दरगाह ग्लासगो, लिवरपूल, मैनचेस्टर, साऊथहेम्पटन, लन्दन, ग्राईमाऊथ, हैम्बर्ग, राटरडैम, एन्टवर्प, ला हावरे, लिस्बन, बोर्डो, और ब्रीमेन को उत्तरी अमरीका के पूर्वी किनारे के बन्दरगाहों—क्यूबिक, मान्ट्रियल, हेलीफैक्स, सैंट जान्स, न्यूयार्क, बोस्टन, न्यूआर्लियन्स, पोर्टलैन्ड, फिलाडेलफिया, न्यूपोर्ट, नॉरफोक, चार्ल्सटन, और बाल्टीमोर—से जोड़ता है।

इस मार्ग पर अधिकतर 'क्यूनार्ड स्टीमशिप कं' (Cunard Steamship Co.,) और 'व्हाइट स्टॉर लाइन' (White Star-line) के जहाज चलते हैं।

(ii) प्रशांत महासागर मार्ग (Pacific Ocean Route) :

वर्तमान काल में इस मार्ग का महत्व काफी बढ़ गया है। इसकी उन्नति के मुख्य कारण (१) पनामा नहर का बनना, (२) जापानी बन्दरगाहों का विदेशी व्यापार के लिए खुलना (३) संयुक्त राष्ट्र द्वारा अलास्का, हवाई और फिलीपाइन द्वीपों को अपने अधिकार में लेना, और (४) अलास्का में सोने की

खानों का पता लगना है। उत्तरी अटलांटिक मार्ग की तरह प्रशान्त महासागर का केवल उत्तरी मार्ग (North Pacific route) ही अधिक महत्वपूर्ण है। यह मार्ग सं० राष्ट्र अमेरिका और कनाडा के पश्चिमी किनारों को पूर्वी एशिया के चीन, जापान, फिलीपाइन आदि देशों से जोड़ता है। यह मार्ग न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया को भी जोड़ता है।

इस मार्ग में वृहत् वृत्त का सिद्धान्त बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि इस मार्ग के दोनों सिरों के मुख्य क्षेत्र एक ही आक्षांश पर स्थित हैं। इसलिए उत्तरी मोड़ की लम्बाई बहुत रखनी पड़ती है। इसकी मुख्य पेटी कैलीफोर्निया के दक्षिणी सिरे से आरम्भ होकर कनाडा की दक्षिण सीमा-अक्षांस रेखा के साथ गोलाकार रूप में याकोहामा तक फैली है। सैन फ्रांसिसको से चलने वाले जहाज वृहत् वृत्त का अनुसरण करते हुए एल्यूशियन द्वीप होते हुये याकोहामा और मनीला पहुँचते हैं। इस मार्ग में हिमपिंडों का खतरा नहीं रहता किन्तु शीत ऋतु में तूफानी आँधियों के कारण यह मार्ग कुछ दक्षिण में हटकर जाने लगता है। इस मार्ग पर उत्तरी अटलांटिक मार्ग की तरह कोयले की प्रचुरता नहीं है। कोयला वैंकूवर और जापान में मिलता है और मिट्टी का तेल कैलीफोर्निया में। पूर्वी एशिया के देश जहाजों के लिए मिट्टी का तेल सं० राष्ट्र अमेरिका, ईरान और इण्डोनेशिया से आयात करते हैं।

इस मार्ग पर पूर्व से पश्चिम अर्थात् एशिया को जाने वाले व्यापार का आयतन पश्चिम से पूर्व अर्थात् अमेरिका जाने वाले व्यापार के आयतन से कहीं अधिक होता है। वाशिंगटन, ब्रिटिश कोलंबिया और ऑरगन से पूर्वी एशिया को लुब्दी, कागज, लकड़ी, अनाज आदि भेजा जाता है। कैलीफोर्निया से मिट्टी का तेल, कपास, खाद, डिब्बों में बंद किए हुए फल तथा नमक भेजा जाता है। खाड़ी के बन्दरगाहों से पूर्वी एशिया को स्पात और लोहे का सामान तथा अन्य तैयार माल निर्यात होता है। एशिया से अमेरिका को गिरी, चीनी, हैम्प, वनस्पति तेल, सोयाफली, रेशम, सूती वस्त्र, चाय, खिलौने और शौकीनी कला के सामान (Lacquerwares) भेजे जाते हैं। एशिया से अमेरिका जाने वाले जहाजों को काफी खाली जगह लेकर लौटना पड़ता है इसलिए ये अधिक भाड़ा वसूल करते हैं।

इस मार्ग पर एशिया में मुख्य वन्दरगाह याकोहामा, शङ्घाई, हांगकांग, मनीला और कोबे हैं। अमेरिका में पोर्टलैंड, वैंकूवर, प्रिंस रूपर्ट, सैनफ्रांसिसको, ऑकलैंड, लॉस, एँजिल्स और कालाओ हैं। इस मार्ग पर चलने वाली मुख्य जहाजी लाइनें 'ओरियन्टल लाईन' (Oriental Line) और जापान मेल-स्टीमशिप कं० (Japan Mail-Steamship Co.) हैं।

इस मार्ग की तीन मुख्य शाखाएँ हैं:—

(क) प्यूजेट साउंड से न्यूज़ीलैंड तक—यह मार्ग वैंकूवर से आरंभ होकर हवाई द्वीप के होनोलूलू वन्दरगाह होता हुआ फीजी द्वीप जाता है। वहाँ से यह आकलैंड और सिडनी को जाता है। इस मार्ग द्वारा दक्षिण की ओर

कारखानों का तैयार माल, कागज, तथा उत्तर की ओर ऊन, मक्खन, चमड़ा और खालें भेजी जाती हैं।

(ख) हवाई द्वीप से अलास्का मार्ग—यह मार्ग होनोलूलू से आरम्भ होकर सैनफ्रांसिसको और सियेटल होता हुआ अलास्का के जूनो और स्कैग्वे बन्दरगाहों तक जाता है। तथा दूसरा मार्ग प्यूजेट साऊंड से पोर्टलैंड, सैनफ्रांसिसको, होनोलूलू, मनीला होता हुआ याकोहामा को जाता है। इस मार्ग द्वारा मछलियाँ, फर, खनिज पदार्थ, शक्कर, केले, अनन्नास आदि भेजे जाते हैं।

(ग) न्यूजीलैंड-पनामा मार्ग—यह मार्ग पनामा नहर से आरम्भ होकर गैला पैगोस द्वीप होता हुआ न्यूजीलैंड को जाता है। इसकी शाखायें सिडनी, मेलबोर्न और आस्ट्रेलिया को जाती हैं। इस मार्ग द्वारा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का व्यापार उत्तरी अमेरिका के पूर्वी देशों और पश्चिमी यूरोपीय देशों से होना हैं। व्यापार की मुख्य वस्तुएँ—मक्खन, ऊन, माँस, चमड़ा, खालें आदि हैं।

(iii) भूमध्यसागरीय जलमार्ग (Mediterranean Route):

यह मार्ग उत्तरी अटलांटिक मार्ग को छोड़कर, व्यापारिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मार्ग दुनिया के मध्य में से होकर निकलता है और विश्व के अधिकांश भागों और मनुष्यों की सेवा करता है। इस मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें महाद्वीपों के निकट स्थित विभिन्न खाड़ियों और कटानों से आकर अनेक सहायक मार्ग मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इसके निकटवर्ती देशों का धरातल पहाड़ी होने से स्थल यातायात के अनुकूल नहीं है, अतः तटीय भागों के व्यापार में इस मार्ग का महत्व अधिक बढ़ जाता है। इस मार्ग द्वारा विश्व के लगभग $\frac{3}{4}$ मनुष्यों तक पहुँचा जाता है। यह मार्ग विश्व की दो विभिन्न सभ्यता वाले देशों को जोड़ता है। पश्चिम की ओर औद्योगिक सभ्यता वाले पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका तथा पूर्व की ओर कृषि-सभ्यता वाले एशिया के देश हैं। इस मार्ग के किनारे प्राचीन ढंग के उद्योग-धन्धों से लगाकर आधुनिकतम उद्योग पाये जाते हैं।

यह मार्ग सबसे अधिक शाखाओं वाला मार्ग कहा जाता है।[१] पश्चिम की ओर इसकी शाखायें योरोप और उत्तरी अमेरिका को तथा पूर्व की ओर एशिया का चक्कर लगाने के के बाद एक चीन, जापान और दूसरी आस्ट्रेलिया को चली जाती है। पश्चिमी यूरोपीय और एशिया की सीमाओं को छोड़ कर इस मार्ग पर मिट्टी के तेल की सुविधा है। इस मार्ग के पश्चिमी भागों में संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, कैरेबियन प्रदेश, रूमानिया, रूस, तथा पूर्व में ईराक, सौदी अरब, बहरीन द्वीप, ईरान, कुवेत, बर्मा, इंडोनेशिया, और बृटिश बोर्नियो में मिट्टी का तेल मिलता है किन्तु दूरस्थ पूर्वी स्थानों को कोयला आयात करना पड़ता है। यह मार्ग कोयले की प्राप्ति में धनी है। अटलांटिक सागर के किनारे पूर्वी संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका,

१. "The Mediterranean-Asiatic is the trunk-line par excellence."

नोवास्कोशिया, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी में तथा प्रशान्त महासागर के किनारे जापान और पूर्वी आस्ट्रेलिया में कोयला मिल जाता है।

इस मार्ग द्वारा पूर्वी देशों से पश्चिमी देशों को खाद्यान्न—चीन जापान और थाइलैण्ड तथा ब्रह्मा से चावल; जापान से कच्चा रेशम और रबड़ का सामान; चीन से चाय, सोयाफली, कच्चा रेशम; भारत से चाय, मसाले, रुई, लकड़ियाँ, हेम्प, चमड़ा और खालें, तिलहन; आस्ट्रेलिया से माँस, लकड़ी, गेहूँ, ऊन, आटा, फल और मक्खन तथा शराब और मलाया से रबड़ और टिन—भेजा जाता है और इनके बदले में कारखानों का तैयार माल—सिमेंट, रासायनिक पदार्थ, कागज, लुब्दी, लोहे और स्पात का सामान, शक्कर आदि—मंगवाया जाता है। चूँकि स्वेज नहर कम्पनी बहुत भारी कर वसूल करती है, अतः प्रत्येक जहाज इस मार्ग से लाभ नहीं उठा पाता। जो जहाज सस्ते सामान आस्ट्रेलिया को लेकर जाते हैं वे केप मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। कभी-कभी यूरोप से आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड जाने वाले यात्री कम खर्च होने से केप मार्ग से ही जाते हैं।

इस मार्ग पर पश्चिम की ओर लन्दन, लिवरपूल, साऊथ हैम्पटन, हैम्बर्ग, रॉटरडैम, लिस्बन, मार्सेलीज, रोम, जिनेवा, नेपल्स, और पूर्व की ओर सिकन्दरिया, हैफा, अदन, बम्बई, कोचिन, कलकत्ता, कोलंबो, रंगून, पिनांग, सिंगापुर, मनीला, हांगकांग, पर्थ, एडीलेड, मेलबोर्न, सिडनी, मोम्बासा, जन्जीबार और डरबन हैं।

इस मार्ग पर 'पेनिनसुलर ओरियन्टल स्टीमशिप कं (Peninsular Oriental Steamship Co.) 'ब्रिटिश इण्डिया लाइन' (British India Line); आस्ट्रेलिया कॉमनवैल्थ लाइन (Australia Commonwealth Line) और 'जापान मेल स्टीमशिप कं' (Japan Mail Steamship Co,) के जहाज चलते हैं।

भूमध्यसागरीय मार्ग की निम्न शाखायें प्रमुख हैं :—

(क) भूमध्यसागर और काले सागर के बीच के मार्ग—यह मार्ग एक ओर खाद्यान्न उत्पादक क्षेत्रों को दूसरी ओर औद्योगिक क्षेत्रों से मिलाता है। अतः पूर्व से पश्चिमी भागों को न केवल खाद्यान्न ही वरन् कच्चा माल भी भेजा जाता है। मध्य पूर्व का तेल, रूस से अनाज और मैंगनीज; यूगोस्लाविया से मक्का; तुर्किस्तान से कपास, तम्बाकू और क्रोमाइट तथा भूमध्यसागरीय देशों से फल, ऊन और चमड़ा तथा खालें इटली और फ्रांस को भेजी जाती हैं तथा इन देशों से कारखाने का तैयार माल भेजा जाता है।

(ख) पश्चिमी यूरोप और भूमध्यसागर के बीच का मार्ग—इस मार्ग द्वारा पश्चिमी यूरोप के ब्रिटेन और उत्तरी सागर के तटीय देशों तथा भूमध्यसागरीय देशों के बीच व्यापार होता है। भूमध्यसागरीय देशों से—स्पेन से मध्यपूर्व के देशों तक नारंगी, जैतून, अंजीर, मुनक्का, नीबू, शराब तथा विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ भेजी जाती हैं। उत्तरी अफ्रीका से फास्फेट,

सिसिली से गंधक, मिस्र से कपास तथा अन्य खनिज पदार्थ पश्चिमी यूरोपीय देशों को भेजे जाते हैं और उनके बदले में मुख्यत: ब्रिटेन से कोयला, स्कैन्डेनेविया से मुलायम लकडियाँ, दियासलाई, कागज, लुब्दी; जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलैण्ड और बेल्जियम से मशीनें तथा लोहे और स्पात का सामान निर्यात किया जाता है।

(ग) दक्षिणी और पूर्वी एशिया का मार्ग—यह मार्ग सुदूर पूर्व (Far East) का मार्ग कहलाता है जो अदन से भारत का चक्कर लगाता हुआ पूर्वी देशों को जाता है। इस मार्ग द्वारा जापान को वर्मा, थाईलैण्ड और इण्डोचीन से चावल; भारत से कच्चा लोहा, जूट का माल; फारमूसा और जावा से शक्कर तथा मलाया और फिलीपाइन्स से कच्चा लोहा भेजा जाता है और जापान इन देशों को सूती वस्त्र, कोयला, रासायनिक पदार्थ आदि भेजता है।

(घ) उत्तरी अमेरिका और भूमध्यसागर के बीच का मार्ग—यह मार्ग भूमध्यसागर के जिब्राल्टर से अटलांटिक महासागर को पार करता हुआ पश्चिम की ओर संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका को जाता है। इस मार्ग द्वारा भूमध्यसागरीय देशों से संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका को जैतून, जैतून का तेल, शराब, मुनक्का, सारडीन मछलियाँ, कार्क, पाइराइट, फ्लूरोस्पर, कच्चा लोहा, कपास, तम्बाकू, मैंगनीज आदि जाते हैं और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका से इन देशों को मुख्यत: कपास, तैयार माल और मशीनें आती हैं।

(ङ) उत्तरी अमेरिका और सुदूर पूर्व का मार्ग—यह मार्ग अटलांटिक महासागर से भूमध्यसागर, स्वेज नहर होता हुआ दक्षिणी पूर्वी एशिया को जाता है। इस मार्ग से पूर्व की ओर मोटरें, साइकिलें, मशीनें, पैट्रोल तथा निर्मित वस्तुएं भेजी जाती हैं। पश्चिमी भागों को एशिया से रबड़, चावल, टिन, चाय, जूट, कपास, तम्बाकू, मसाले, मैंगनीज, लाख आदि भेजे जाते हैं।

(च) यूरोप और पूर्वी देशों का मार्ग—यह मार्ग सबसे प्रसिद्ध है। इस मार्ग द्वारा फारस से यूरोप को मिट्टी का तेल, ऊन, खजूरें, खालें और चमड़ा, पाकिस्तान से गेहूँ; भारत से कपास, चमड़ा-खालें, तिलहन, जूट का सामान, नारियल के रस्से; थाइलैंड, ब्रह्मा और इण्डोचीन से चावल; मलाया से रबड़, टिन, मसाले; इण्डोचीन से शक्कर, मसाले, टिन, तम्बाकू, कहवा और खोपरा तथा फिलीपाइन्स से हैम्प, खोपरा, नारियल का तेल और जापान से चाय तथा कच्चा रेशम भेजा जाता है। इनके बदले में यूरोप इन देशों को स्पात, स्पात का सामान, सूती वस्त्र, रासायनिक पादार्थ, एंजिन आदि भेजता है।

(iii) दक्षिणी अफ्रीका का केप मार्ग (Cape Route):

स्वेज नहर के बनने के पहिले उत्तरी अटलान्टिक और पूर्व के बीच आने-जाने का केप आफ गुड होप का ही मार्ग था। किन्तु स्वेज नहर के बन जाने के पश्चात् यह मार्ग पश्चिमी यूरोप को अफ्रीका के दक्षिणी और पश्चिमी भागों से जोड़ता है। अफ्रीका का पश्चिमी किनारा आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है, इस कारण इस भाग में न तो कोई विशेष वस्तु जाती है और न यहाँ आती ही है। इसके अलावा यहाँ का समुद्री किनारा छिछला है। अत:

बड़े-बड़े जहाजों के ठहरने के लिये यहाँ उत्तम बन्दरगाह नहीं हैं। किन्तु संयुक्त राष्ट्र और यूरोप से आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड को माल ले जाने वाले जहाज इसी मार्ग से होकर जाते हैं क्योंकि एक तो यह मार्ग सस्ता पड़ता है और दूसरे स्वेज नहर की तरह जहाजों का जाना मुशकिल नहीं है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को यूरोप से जाने वाले यात्री भी कम खर्च की वजह से इसी मार्ग से जाते हैं। इसकी एक शाखा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को जाती है। दूसरी केपटाऊन से उत्तर की ओर अफ्रीका के पूर्वी तट के सहारे चलती है। तीसरी शाखा पूर्वी की ओर पूर्वी द्वीप समूह को जाती है।

यूरोपियन किनारों पर मुख्य बन्दरगाह लन्दन, लिवरपूल, कार्डिफ, साऊथहैम्पटन, और लिसबन आदि हैं। जिन बन्दरगाहों पर जहाज ठहरते हैं वह पोर्ट एलिजवैथ, ईस्टलंदन, केपटाऊन, ऐडिलेड, मेलबोर्न सिडनी और ब्रिसबेन हैं। अफ्रीका से मुख्य वस्तुएं हाथी दांत, गोंद, रबड़, इमारती लकड़ी, चमड़ा खालें, मक्का, मांस, चीनी और शुतुर्मुर्ग के पंख आदि बाहर भेजे जाते हैं और बदले में मुख्यतः बनी हुई वस्तुऐं आती हैं।

इस मार्ग पर यूनियन कैसिल लाइन (Union Cassel Line)आस्ट्रेलियन कामनवैल्थ लाइन और पी एंड ओ० कं० (P. & O. Co.) के जहाज चलते हैं।

(iv) दक्षिणी अमेरिका का मार्ग (S. American Route):

दक्षिणी अटलांटिक महासागर का यह मार्ग पश्चिमी द्वीप समूह, ब्राजील और अर्जेन्टाइना को ले जाता है। यहाँ मुख्य बन्दरगाह किंग्सटन, हवाना, बेराक्रूज़, टेम्पिको, बाहिया, रिओडिजेनारो, सेन्टास, मोन्टविड़ियो, ब्यूनेस आइरस और रोसारीयो हैं। यहाँ से मुख्य वस्तुएं शक्कर, केले, रुई, मेहगोनी, ताम्बाकू, चाँदी, रबर, काफी, हीरे, अनाज, ऊन, और गोश्त निर्यात की जाती हैं। यह मार्ग यूरोप और पश्चिमी द्वीप समूह, ब्राजील, यूरोप और अर्जेन्टाइना में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करता है। इस मार्ग पर रॉयल मेल, स्टीम पैकेट कं०, (Royal Mail Steam Co.) 'पैसिफिक स्टीम नैवीगेशन कम्पनी,' (Pacific Steam Navigation Co.) 'लैम्पोर्ट एण्ड होल्ड लाइन', 'एलर्स एण्ड फाइफ्स लाइन' तथा 'इम्पीरियल डाइरेक्ट वेस्ट इण्डियन मेल सर्विस कं०' के जहाज चलते हैं।

भारत के जल मार्ग (Waterways in India)

बहुत प्राचीन काल से ही नदियों का महत्व न केवल भीतरी भागों में यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने और माल ढोने के लिये बहुत अधिक रहा है बल्कि नदियां सिंचाई के भी काम में आती रही हैं। लिखित इतिहास के पहले से ही नदी यातायात का विकास इस देश में हो चुका था। 'युक्ति कल्पतरु' नामक प्राचीन संस्कृत की पुस्तक में समुद्र और नदी में चलने योग्य नावों की निर्माणकला का उल्लेख मिलता है। रैनेल (Rennell) ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान का मानचित्र' (Map of Hindustan) में इस बात का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि "सिंध और उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंध की राजधानी टाटा (Tatta) और मुल्तान तथा लाहौर के बीच

२०० टन वाले जहाज आसानी से आते-जाते थे और इन स्थानों के बीच औरंगजेब के राज्यकाल में भी बहुत व्यापार होता था। किन्तु अब सिन्ध की सरकार के ढीलेपन और सिक्खों की लड़ाकू प्रकृति के कारण इस व्यापार में कमी हो गई है।"

गंगा और ब्रह्मपुत्रा के बारे में उनका लिखना है कि "इन दोनों नदियों ने अपनी शाखाओं सहित सम्पूर्ण बंगाल में इस प्रकार का जाल फैला रखा है कि जिसके द्वारा सभी भागों को जल मार्गों द्वारा पहुँचा जा सकता है। इन नदियों द्वारा निकाली गई नहरें भी इस प्रकार पूर्णता को पहुँच गई हैं कि बर्दवान तथा वीर भूमि की ऊँची भूमि को छोड़ कर हम यह कह सकते हैं कि राज्य के सभी भागों में—ग्रीष्म काल में भी—कुछ मार्ग २५ मील की दूरी तक भी नाव्य है।"

भारत में जल यातायात को तीन भागों में बाँटा जा सकता है: (i) भीतरी जलमार्ग (क) नहरें, (ख) नदियाँ; (ii) सामुद्रिक मार्ग

(i) भीतरी जलमार्ग :

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय नदियों का उपयोग यातायात के लिये होता रहा है। किन्तु नदी-यातायात का ह्रास रेलों के विकास के साथ-साथ १८५५ से आरम्भ हुआ। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार के प्रधान इंजीनियर **सर आर्थर काटन** (Sir Arthur Cotton) ने पार्लियामेंट की एक कमेटी के सम्मुख कहा था, 'मेरा कहना है कि भारत के लिये जलमार्ग अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। रेलों पर जितना व्यय हुआ है, उससे आठवें भाग में नहरें बनाई जा सकती हैं जो माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुत कम खर्च में ले जा सकती हैं। इन नहरों से सिंचाई भी होगी और वे व्यापारिक जलमार्ग का काम भी देंगी।' सर काटन ने नहरें बनाने की पूरी योजना बनाई थी जिसमें ३ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान लगाया गया था। यह योजना इस प्रकार थी :—

(क) कलकत्ता से करांची—नहर द्वारा गंगा से सिंध को मिला कर।

(ख) कोकोनाडा से सूरत—गोदावरी और ताप्ती को नहर द्वारा मिलाकर।

(ग) तुंगभद्रा से एक नहर निकालकर, अरब सागर के किनारे कारवार तक जाने का मार्ग।

(घ) पोनंग नदी द्वारा पाल घाट और कोयंबटूर से होते हुये एक मार्ग।

इस योजना द्वारा समस्त भारत में नहरों का एक जाल बिछा देने का विचार था किन्तु ब्रिटिश पूंजीपतियों ने इसका विरोध किया क्योंकि उनकी अधिकांशतः पूंजी रेलों में लगी थी। अस्तु भारत सरकार ने भीतरी मार्गों को उन्नत करने का कोई प्रयास नहीं किया। बीसवीं शताब्दी में भारत में सिंचाई के लिये नहरों को बनाने का कार्य बड़े उत्साह से किया गया। इसका प्रभाव भी नदी-यातायात पर बुरा पड़ा क्योंकि नदियों में मुख्यतः ऊपरी भागों में नहरों में पानी चले जाने से पानी की कमी होने लगी। इन नहरों में भी देश की बहुत

पूंजी लगी हुई है किन्तु भारत सरकार ने नहरों को जलमार्ग बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप देश में जल मार्गों की उन्नति नहीं हो सकी।

(क) नहरें (Canals)—भारत की कुछ नहरें भी जलमार्गों का काम देती हैं। उनमें से मुख्य ये है[1]।

(१) पूर्वी पंजाब की सरहिन्द नहर में हिमालय पर्वत की लकड़ियाँ बहाकर लाई जाती हैं।

(२) गंगा और यमुना की नहरों में भी थोड़ी बहुत खेती की पैदावार एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाई जाती है।

(३) बंगाल का पश्चिमी भाग तो नहरों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। भारत के विभिन्न भागों से निर्यात के लिये जो माल कलकत्ता को आता है उसका लगभग २५% जल मार्गों द्वारा ही लाया जाता है। इसका भी ६३% तो अकेले आसाम से ही नदियों और नहरों द्वारा आता है। कलकत्ता के जल-मार्गों द्वारा किये जाने वाला व्यापार प्रतिवर्ष लगभग ४५ लाख टन होता है जिसमें ३४% स्टीमरों द्वारा और ६६% देशी नावों द्वारा ढोया जाता है। यात्री भी नावों द्वारा अधिक आते-जाते हैं। हिंजली, सरकूलर, पूर्वी नहर, मिदनापुर और उड़ीसा द्वारा पश्चिमी जिलों की पैदावारें कलकत्ता तथा अन्य व्यापारिक मंडियों को पहुँचाई जाती हैं।

(४) दक्षिणी भारत में बकिंघम नहर कारोमंडल तट पर दक्षिण की ओर २७६ मील तक चली जाती है और मद्रास को कृष्णा के डेल्टा से जोड़ती है।

(५) गोदावरी में दोलेश्वरम तक तथा कृष्णा नहर में ४०० मील तक नावें चलती हैं।

(६) कनूल कडप्पा नहर भी १९० मील तक नावें चलाने योग्य है। दक्षिणी भारत में नदियों के डेल्टा की कपास, चावल आदि इन्हीं नहरों द्वारा ढोया जाता है।

अगले पृष्ठ की तालिका में नदी और नहरों द्वारा होने वाले यातायात की प्रगति बतलाई गई है।

---

१. भारत में नावें चलाने योग्य नहरों की लम्बाई इस प्रकार है :—

(अ) बंगाल— मिदनापुर नहर ५५ मील, हिजरी नहर ५० मील, उड़ीसा तटीय नहर ५४ मील, कलकत्ता और पूर्वी नहर ८३४ मील।

(ब) मद्रास—गोदावरी नहर ५०० मील; कृष्णा नहर ४०० मील; बकिंघम नहर २६८ मील; [illegible] नहर ३५ मील; [illegible] तटीय नहर ४०० मील [illegible]

(स) गंगा की नहरें ३३६ [illegible]

(द) बिहार उड़ीसा की न[illegible]

K.T. Shah: 'Tra[illegible]

वर्ष	लम्बाई (मीलों में)	नावों की संख्या	माल ढुलाई (लाख टन)	यात्री (लाखों में)
१९००	३,९००	२,०८,०००	२२	६
१९२९–३०	४,००८	२,१५,१८५	१३७	३१
१९३८–३९	४,२०५	२,०९,०००	१०७	१६
१९४९–५०	५,७२४	—	१९२	३८

(ख) नदी यातायात—सम्पूर्ण भारत में जल-मार्गों की लम्बाई ४१,००० मील है जिनमें से २६,००० मील लम्बी नाव्य नदियाँ और १५,००० मील लम्बी नहरें हैं। भारत में साल भर जारी रह सकने वाले जल-मार्गों पर स्टीमर्स और बड़ी-बड़ी देशी नावें चलती हैं। उत्तरी भारत में नदियों में २,००० मील तक जहाज चलते हैं। जल-मार्गों की दृष्टि से बङ्गाल, आसाम, मद्रास तथा विहार महत्वपूर्ण हैं। भारत में जल-मार्गों की लम्बाई उत्तर

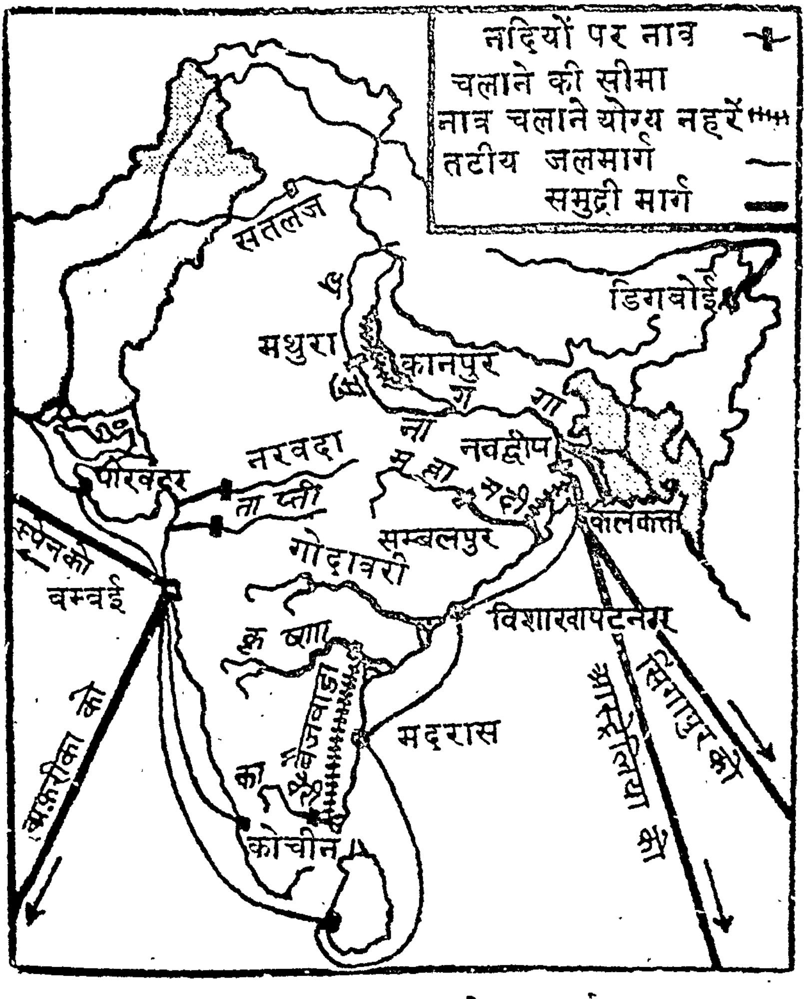

चित्र २३५—भारत के जल-मार्ग

प्रदेश में ७४५ मील, विहार में ७१५ मील, पश्चिमी बङ्गाल में ७७७ मील, आसाम में ६२० मील, उड़ीसा में २८७ मील और मद्रास में १७०० मील है। भारत के परिवहन मन्त्रालय के अनुसार नाव चलाने योग्य जल-मार्गों की लम्बाई ५,५०० मील है[१]।

इन आँकड़ों में बड़े-बड़े जहाजों और बड़ी-बड़ी नावों द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले मुख्य-मुख्य जल-मार्ग ही शामिल हैं। इसमें से १,७६२ मील में बड़े-बड़े जहाज चल सकते हैं, जैसा कि निम्न तालिका में प्रतिभाषित होगा :—[२]

ब्रह्मपुत्रा नदी :	
डिब्रूगढ़ से सदिया तक (केवल वर्षा ऋतु में)	६० मील
भागीरथी नदी :	
कलकत्ता से गङ्गा नदी तक (केवल वर्षा ऋतु में)	१८० ,,
ब्रह्मपुत्रा नदी :	
डिब्रू गढ़ से धूबरी	४०० ,,
सहायक नदियों में सेवाएँ	३७५ ,,
सुरमा घाटी में सहायक सेवायें	८५ ,,
हुगली नदी :	
कलकत्ता से सुन्दर वन	१५० ,,
घाघरा नदी :	
गङ्गा के संगम से बरहज	९७ ,,
गंगा नदी :	
पटना से बक्सर	१०० ,,
पटना से लालगोला	३१५ ,,
जोड़	१,७६२ ,,

दक्षिणी भारत में गोदावरी, कृष्णा, नर्वदा तथा ताप्ती नदियों के निचले भागों में ही नावें चल सकती हैं। इनका शेष भाग पठारी हैं। गंगा नदी में मुहाने से ५०० मील ऊपर तक (जहाँ लगातार रूप से नदी ३० फुट गहरी है) कानपुर तक स्टीमर चला करते हैं। छोटी-छोटी नावें तो हरिद्वार तक जा सकती हैं। किन्तु रेलों के बन जाने से गंगा का महत्व कम हो गया है। सन् १८५४ तक इलाहाबाद से ४०० मील और ऊपर गढ़मुक्तेश्वर तक स्टीमर चले जाते थे, किन्तु अब केवल बक्सर तक ही नदी पर नावें चलाई जा सकती हैं। यमुना नदी में प्रयाग से राजापुर तक साल भर नावें चलती हैं। ब्रह्मपुत्र नदी में मुहाने से डिब्रू गढ़ तक ८६० मील तक नावें चलती हैं किन्तु इस नदी में नावें चलाने में कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। नदी के मार्ग में प्रायः नये-नये द्वीप बने रहते हैं जिसमें नावों को खेने में बड़ी अड़चन पड़ती है, तथा वर्षा-ऋतु में पानी की तेजी के कारण नावों के उलट जाने का

१. India: 1955, p. 312.

२. Indian Year Book : 1952-53, p. 283.

डर रहता है। हुगली नदी में भी नाडियाड तक जहाज पहुँच सकते हैं। छोटी-छोटी नहरें बड़ी-बड़ी नदियों को जोड़ती हैं, इसलिए कलकत्ते से आसाम तक स्टीमर चलते हैं। अधिकांश जूट, चाय और चावल नावों से ही बड़े-बड़े शहरों में पहुँचाया जाता है।

यद्यपि भारत में नदियाँ बहुत हैं किन्तु फिर भी आन्तरिक आवागमन के लिए उनका पूर्ण उपयोग नहीं होता। इसका मुख्य कारण भूमि की रचना तथा अब तक विदेशी सरकार का ध्यान केवल रेल-मार्गों की उन्नति करना ही रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित मुख्य कारण हैं :—[1]

(१) भारत की अधिकांश नदियों में वर्षा के दिनों में बाढ़ आ जाती है। इस समय नदी की धारा तेज होती है, अतः उसमें नाव खेना बड़ा कठिन होता है।

(२) गर्मी के दिनों में अधिकांश नदियाँ सूखी रहती हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत पानी नदियों में मिलता है वह जाड़ों और गर्मियों के आरम्भ में यहाँ की विशाल नहर-व्यवस्था को पानी देने के लिए उपयोग में आ जाता है। सिंचाई के लिए पानी को इस तरह अलग कर देने से नदियों में सूखी ऋतु में पानी नहीं रहता।

(३) दक्षिण की नदियाँ तो पठारी भूमि पर बहने के कारण नावें चलाने के योग्य हैं ही नहीं, क्योंकि इनके मार्गों में जगह-जगह प्रपात पड़ते हैं।

(४) कभी-कभी नदियाँ अपने मार्ग भी बदला करती हैं इस कारण भी उनका उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर पतली धारा के रूप में बहने लगती हैं। अधिकतर नदियों के किनारे बहुत दूर तक रेती रहती है इस कारण नदी के किनारे तक लदी हुई गाड़ियों का आना कठिन हो जाता है।

(५) प्रायः सभी नदियाँ छिछले तथा बालूमय डेल्टाओं में गिरती हैं अतः समुद्री किनारे से देश के भीतरी भागों में जहाज नहीं जा सकते।

भारत में नदी यातायात को विकसित करने की बड़ी आवश्यकता है। पिछले महायुद्ध के समय इसका महत्व विशेष रूप से सामने आया। अभी तक जल यातायात प्रान्तीय सरकारों का विषय रहा है इस कारण से भी इसके देशव्यापी विकास की कोई योजना नहीं बन सकी। देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जो विधान बना है उसमें अन्तर्राज्यीय की नदियों और जल मार्गों का यातायात, भारत सरकार का विषय कर दिया गया है और केन्द्रीय जल शक्ति, सिंचाई और नौका संचालन आयोग (Central Waterways, Irrigation and Navigation Commission) के जिम्मे देश के नदी यातायात को एक योजना के आधार पर विकसित करने का काम सौंपा गया है। पूना में एक नदी यातायात अनुसंधानशाला (River Research Institute) की स्थापना भी की गई है।

१, सी० बी० मामोरिया : "भारत का आर्थिक भूगोल" (१९५२) पृष्ठ ३२९-३३०।

इस प्रश्न पर यह आयोग दो दृष्टियों से विचार कर रहा है। एक तो वर्तमान जलमार्गों का सुधार और नये जल मार्गों की स्थापना करना और उनको नावें चल सकने योग्य बनाना। दूसरे संगठन और व्यवस्था में सुधार करना जिससे व्यापारियों का अधिक से अधिक सहयोग मिल सके। नदी यातायात के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई यह है कि सिंचाई की नहरों के कारण पानी की कमी आ जाती है। इसका उपाय यह है कि जल संचय (Water Conservation) की उचित व्यवस्था की जावे। यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली होती है और केवल जल-यातायात के लिये इतना खर्च करना संभव नहीं हो सकता। इसलिये नदी के उपयोग की बहुमुखी योजनाओं (सिंचाई, बिजली, बाढ़-नियन्त्रण, यातायात, आदि) के बनने पर ही यह व्यवस्था संभव है। इसलिए भारत सरकार ने नदियों की बहुमुखी योजना की नीति को स्वीकार किया है। इससे जल यातायात की कठिनाई दूर हो जायगी।

केन्द्रीय जलशक्ति, सिंचाई तथा नौका संचालन आयोग ने भारत के विभिन्न भागों में जल मार्गों की उन्नति करने की जो योजना बनाई है वह यह है :—

(१) बंगाल में दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project) के फलस्वरूप रानीगंज की निचली कोयले की खानों को हुगली नदी से एक जल यातायात की नहर के द्वारा मिलाया जायगा तथा गंगा बैरेज प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भी एक नहर बनाने की योजना है जो भागीरथी से झांसीपुर के पास मिलेगी। गंगा नदी और भागीरथी के बीच के जल मार्ग, तीस्ता-नदी योजना अन्तर्गत उत्तरी बंगाल के जल मार्ग तथा पूर्वी बंगाल और कलकत्ते के बीच के जलमार्गों का पुनर्निमाण किया जायगा। इस योजना के अनुसार गंगा नदी पर बिहार में स्थित साहिबगंज से २४ मील नीचे राजमहल स्थान पर एक बाँध बनाया जायगा। इसकी सहायता से गंगा नदी के पानी को एक नहर द्वारा भागीरथी नदी की तलहटी में डाल दिया जावेगा। यह योजना कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाई जा रही है—(i) बंगाल-बिहार की सीमा पर गंगा नदी के आर-पार बाँध बनाया जावेगा। (ii) इस प्रकार भागीरथी तथा पश्चिमी बंगाल की अन्य नदियों में अधिक जल की व्यवस्था हो सकेगी। (iii) कलकत्ता और गंगा के बीच का जल-मार्ग नाव्य हो जायगा। (iv) हुगली नदी में अधिक पानी आ जायेगा और उसके फलस्वरूप यह नदी नाव चलाने के योग्य बनी रह सकेगी। इस योजना के पूरे होने पर दो लाभ होंगे—(अ) भागीरथी में साल भर पानी भरा रहेगा (ब) हुगली नदी के पानी का खारापन भी जाता रहेगा।

(२) आसामी की दीहींग, डिबू, धनसीरी, कलांग नदियों का पुनरुत्थान करना।

(३) बिहार में गंडक और कोसी नदियों तथा उनकी सहायक नदियों का पुनर्निमाण करना तथा सोन घाटी योजना के अन्तर्गत सोन नदी को १५० मील तक यातायात के योग्य बनाना।

(४) बेतवा और चम्बल नदियों की बाढ़ के पानी को रोककर ऐसी व्यवस्था

करना जिसके फलस्वरूप शीत ऋतु में भी यातायात के लिए पर्याप्त पानी की मात्रा उपलब्ध हो सके।

(५) महानदी योजना के अन्तर्गत हीराकुण्ड बाँध के पूरा हो जाने पर महानदी का ३०० मील का टुकड़ा जल यातायात के योग्य हो सकेगा।

(६) उड़ीसा की तटीय नहरों को बढ़ाकर मद्रास की नहरों से जोड़ दिया जाय जिसस आसाम से मद्रास तक जल यातायात का सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

(७) मध्य प्रदेश में नर्वदा और ताप्ती नदियों को भी यातायात के योग्य बनाने का प्रश्न विचाराधीन है।

नीचे की तालिका में भारत और अन्य देशों में जल-मार्गों का विस्तार बताया गया है:—

जलमार्गों की लम्बाई

देश	प्रति १०,००० वर्ग मील पीछे लम्बाई (मीलों में)	प्रति १,००० व्यक्तियों पीछे लम्बाई (मीलों में)	सम्पूर्ण लम्बाई (मीलों में)
नीदरलैण्ड	३४०.७	४.५	४,३४०
बेलजियम	९१.०	१.२५	१,०५४
जेकोस्लोवेकिया	३४.४	१.५	१,८६०
फ्रांस	२८.०	१.४३	५,६५०
इङ्गलैण्ड	२५.५	०.४८	२,४००
जर्मनी	२१.५	०.६	३६००
पोलैण्ड	१८.२	१.१४	२,७३०
सं० रा० अमेरिका	९.८	१.९५	२८,०००
मिश्र	५.४	१.०९	२,०८१
भारत	३.८	०.१५	४,७०६

(ii) सामुद्रिक यातायात :

भारत के प्रधान सामुद्रिक मार्ग इन पांच प्रधान बन्दरगाहों से आरम्भ होते हैं—बम्बई, कोचीन, मद्रास, विजागापट्टम तथा कलकत्ता। भारत हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित है जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम को व्यापारिक मार्ग निकलते हैं। यहाँ से पूर्व और दक्षिण पूर्व को सामुद्रिक मार्ग चीन, जापान, पूर्वी द्वीप समूह और आस्ट्रेलिया को; दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रीका और दक्षिण में लंका को जाते हैं। इस प्रकार भारत पश्चिमी कला कौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिए एक कड़ी का काम करता है।

भारत के बन्दरगाहों पर मिलने वाले प्रधान जल मार्ग ये हैं:—

(क) स्वेज जलमार्ग (Suez Route)—इस मार्ग के खुल जाने से भारत और यूरोप के बीच का व्यापार बहुत बढ़ गया है। यह जल मार्ग पी०

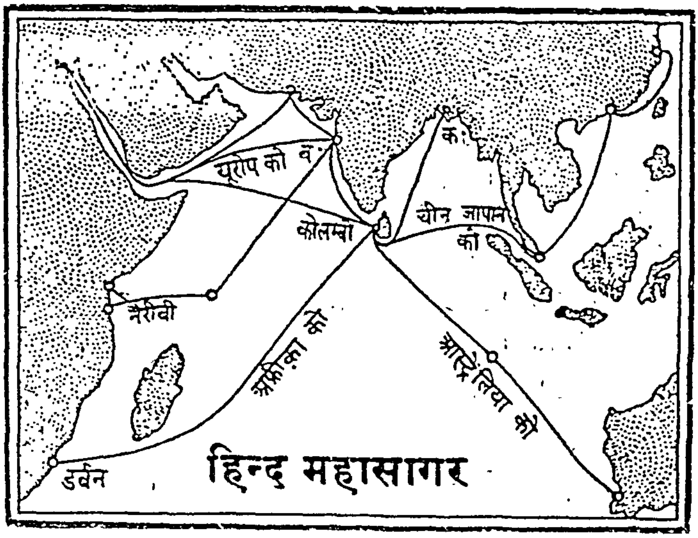

चित्र २३६

एण्ड ओ० (P & O) तथा बी० आई० एस० एन० (B. I. S. N.) कम्पनियों के नियन्त्रण में है। जहाँ तक भारत का यूरोप के व्यापार से सम्बन्ध है, भारत यूरोप को कच्चा माल और खाद्य पदार्थ भेजता है तथा बदले में तैयार माल और मशीनें मँगवाता है।

(ख) आशा अन्तरीप जलमार्ग (Cape Route)—भारत को दक्षिणी अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका से जोड़ता है। कभी-कभी दक्षिणी अमेरिका जाने वाले जहाज भी इसी मार्ग से जाते हैं। भारत इस मार्ग से अपने यहाँ रुई, कोयला, शक्कर आदि मंगवाता है।

(ग) सिंगापुर जलमार्ग (Singapore Route) का आवागमन की दृष्टि से स्वेज जलमार्ग के बाद दूसरा स्थान है। यह मार्ग भारत को चीन और जापान से जोड़ता है। इस मार्ग द्वारा भारत, कनाडा और न्यूजीलैंड के बीच का व्यापारिक सन्तुलन भी होता है। भारत में इस मार्ग से सूती-रेशमी कपड़ा, लोहे व स्पात का सामान, मशीनें, चीनी के बर्तन, खिलौने, रासायनिक पदार्थ, कागज, आदि आते हैं और बदले में रुई, लोहा, मैंगनीज, जूट, लाख, अभ्रक आदि निर्यात होते हैं।

(घ) सुदूर पूर्व का जल मार्ग (Australian Route) भी क्रमशः महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। यह मार्ग भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ता है। इस मार्ग से भारत में गेहूँ, कच्ची ऊन, घोड़े और फल आदि वस्तुओं का आयात होता है और बदले में जूट, चाय, अलसी आदि निर्यात होते हैं।

यद्यपि भारत का सामुद्रिक किनारा स्वाभाविक बन्दरगाहों से पूर्ण नहीं है, फिर भी इसकी स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय जल-मार्ग के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। अपनी स्थिति, विशालता तथा आर्थिक उन्नति के विचार से इस देश का समुद्री व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान होना आवश्यक है। बहुत प्राचीन काल से ही

भारतीय अच्छे नाविक रहे हैं। श्री हाजी के अनुसार, "पुरानी दुनिया के महाद्वीपों के बीच में एक (Pedant) की तरह स्थित ४,००० मील से भी अधिक समुद्र-तटीय रेखा तथा अपनी भूमि की उर्वरा शक्ति के लिए प्रख्यात देश भारत, प्रकृति की कृपा से ही समुद्री व्यापार करने के उपयुक्त है।"[1] डा० राधाकमल मुखर्जी का तो यहाँ तक कहना है कि भारतीय जहाजी शक्ति के विकास के फलस्वरूप ही भारतीय सभ्यता अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी जिसका प्रभाव विदेशी सभ्यताओं पर बहुत अधिक पड़ा।[2] पूरी तीस शताब्दियों तक भारत की स्थिति पुरानी दुनिया के मध्य में उसी प्रकार महत्वपूर्ण रही जैसे मानव शरीर में हृदय की और भारत विश्व के सामुद्रिक राष्ट्रों में एक अग्रणी राष्ट्र और महान सामुद्रिक शक्ति बना रहा। पीगू, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो व जापान तक के सुदूर पूर्वी देशों में उस समय भारतीय उपनिवेश थे। दक्षिणी चीन, मलाया प्रायद्वीप, अरब, ईरान के सभी मुख्य नगरों व अफ्रीका के सारे पूर्वी तट पर भारत की व्यापारिक वस्तियां थीं भारत का व्यापारिक सम्पर्क एशिया के ही नहीं यूरोप के साथ भी था। उस समय भारत का प्रभाव इतना अधिक था कि देश को इतिहासकारों ने पूर्वी सागरों की मलिका (Mistress of the Eastern Seas) की उपाधि दी है।[3]

वास्तव में पूरी तीस शताब्दियों तक भारत पुरानी दुनिया के मध्य में स्थित विश्व की सबसे प्रमुख सामुद्रिक शक्ति रहा है जिसका व्यापारिक सम्बन्ध न केवल एशिया के सीमान्त प्रदेशों से ही प्रत्युत उस वक्त की ज्ञातव्य दुनिया के सभी देशों से था; इस बात के प्रमाण अब भी विद्यमान हैं। अस्तु, यह बात निर्विवाद सत्य है कि बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय जहाजों द्वारा समुद्री व्यापार होता था। सिकन्दर की फौजें जब लौटने लगीं तो २००० जहाजों के बेड़े का उन्होंने अपनी समुद्री यात्रा के लिये उपयोग किया था।

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात् :

सितम्बर १९३९ में जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो भारत सरकार को यह अनुभव हुआ कि भारतीय जहाजी बेड़े की कितनी आवश्यकता है। इस काल में बहुत से भारतीय जहाज सरकार ने युद्ध कार्य के लिये अपने अधिकार में ले लिये जिससे देश की रक्षा की जा सके। कई जहाज शत्रुओं द्वारा नष्ट भी कर दिये गये। युद्ध के पश्चात् भारतीय जहाजों की संख्या केवल ६३ थी जिनका वजन १,३१,७४८ टन था। इनमें से ६ जहाज तो अकेले सिंधिया कम्पनी के ही थे। सम्पूर्ण जहाजों के वजन का यह ९१% था।

१९४५ में एक युद्धान्तर पुनर्विकास नीति उपसमिति (Postwar Reconstruction Policy Sub-Committee) नियुक्त की गई। इस कमेटी ने भारतीय जहाजी बेड़े के विकास के इतिहास का पूर्ण रूप से अध्ययन किया

---

१. S. N. Haji: Economics of Shipping, p. 365

२. R. K. Mukerjee : History of Indian Shipping, p. 4

३. *Ibid*, p. 5

और अँग्रेज सरकार की अब तक इस सम्बन्ध में बरती गई उपेक्षापूर्ण नीति का कड़ा विरोध किया और कहा कि "भारतीय जहाजी बेड़े के विकास का इतिहास वचन भंग की दर्दनाक कहानी है।" इस कमेटी ने अनुमान लगाया कि युद्ध के पूर्व भारत में केवल ३० जहाज थे जिनकी सम्पूर्ण टन शक्ति १,५०,००० थी। इस रिपोर्ट के अनुसार १९३८-३९ में ३,२१० विदेशी जहाज—जिनकी कुल जहाजरानी १,१०,१०,७६९ टन थी भारतीय बन्दरगाहों में आये और यहाँ से १, ६०, ६७,००० टन सामान ले गये। भारत के तटीय व्यापार में जहाँ विदेशियों का भाग ५१. १८, ६५२ टन रहा वहाँ भारत के हिस्से में केवल १७, ६०, ६४७ टन ही रहा अर्थात् तटीय व्यापार पर विदेशियों का ७४·४० प्रतिशत और भारतीय का २५·६० प्रतिशत भाग रहा।

इस समिति की मुख्य सिफारिशें ये थीं—

(१) भारतीय जहाजी बेड़े से मतलब उस जहाजी बेड़े से होगा जिस पर विशुद्ध भारतीयों का स्वामित्व तथा अधिकार और व्यवस्था होगी। किसी भी जहाज को भारतीय जहाज मानने के पूर्व इन शर्तों का पूरा होना आवश्यक होगा:—

(क) भारत के किसी भी बन्दरगाह या बन्दरगाहों पर ऐसे जहाजों की रजिस्ट्री होनी चाहिये।

(ख) जहाजी कम्पनियों के हिस्सों और ऋणपत्रों में कम से कम ७०% भाग भारतवासियों का होना चाहिये।

(ग) सभी संचालक भारतीय ही हों।

(घ) मैनेजिंग एजेंट भी, यदि कोई हों, भारतीय ही हों।

(२) भारतीय तट का शत प्रतिशत व्यापार, बर्मा तथा लंका के साथ भारतीय व्यापार का ७५%, समीपवर्ती देशों—अफ्रीका, मध्यपूर्व के देश, थाईलैंड, हिन्दचीन, मलाया तथा पूर्वी द्वीप समूह—के व्यापार का ७५% और दूरवर्ती देशों के साथ व्यापार का ५०% तथा उस पूर्वी व्यापार (Oriental Trade) का ३० प्रतिशत जिसे जर्मनी, इटली आदि धुरी-शक्तियों (Axis Powers) ने द्वितीय महायुद्ध में खो दिया है, आगामी ५–७ वर्षों में भारत के हाथ में आ जाना चाहिये।

(३) यद्यपि हमारी वर्तमान शक्ति को देखते हुए इतना व्यापार हमारे बूते के बाहर दिखाई पड़ता है तो भी कोई कारण नहीं कि अपनी टन शक्ति बढ़ा लेने पर हम इतने व्यापार को—१०० लाख टन माल और ३० लाख यात्रियों को—संचालित न कर सकें, अस्तु इस व्यापार को ले जाने के लिये हमें २० लाख टन जहाजी बेड़े की आवश्यकता है (देशी नावों को छोड़कर)।

(४) चूँकि भारतीय जहाजी उद्योग अभी अपनी बाल्यावस्था में ही है अतः इस समिति ने उसकी टन शक्ति का निर्धारण करना उचित नहीं समझा और न ही उनके द्वारा होने वाले पूँजीगत खर्चों पर ही कोई रोक लगाई, किन्तु इसकी ओर अधिक जोर दिया कि एकाधिकार की व्यवस्था को यथाशक्ति रोका जाय।

(५) भारतीय जहाजों को मिलने वाले विभिन्न नये देशों के व्यापार को सभी कम्पनियों में समान से रूप वितरित किया जाय।

(६) जहाजी बेड़े की टन शक्ति और व्यापार आदि के आँकड़ों के संचयन तथा प्रकाशन में आमूल परिवर्तन किया जाय।

(७) भारत सरकार का वाणिज्य विभाग पोर्टट्रस्ट आदि की शासन व्यवस्था यातायात विभाग से अपने हाथों में ले ले।

इन सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने के लिये इस समिति ने ये उपाय भारत सरकार के सन्मुख रखे—

(१) एक जहाजी परिषद् (Shipping Board) की अविलम्ब नियुक्ति की जाय जिसमें जहाजी कम्पनियों के स्वामी, अन्य व्यापार तथा उद्योगकर्त्ता, सभी सदस्य हों तथा उसका सभापतित्व एक ऐसे निष्पक्ष व्यक्ति के हाथ में हो जो चतुर, अनुभवी और न्याय में दक्षता रखता हो। इस परिषद का काम यह होगा:—

(क) भारतीय तटीय और विदेशी व्यापार में लगे भारतीय जहाजों की आर्थिक सहायता के लिये दिए गए प्रार्थना पत्रों पर विचार करना और उसको अपनी उचित सिफारिशों सहित भारत सरकार के सम्मुख रखना। इसके अतिरिक्त यह परिषद् इस बात पर भी अपनी राय प्रकट करेगी कि जिन कम्पनियों को भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है उनके नियन्त्रण में भारत सरकार का हाथ कहाँ तक होगा।

(ख) भाड़ा प्रतिस्पर्धा और आस्थागित फिरौती प्रथा (Deferred Reabtes) तथा एकाधिकार के दोषों को दूर करने के लिये भारत सरकार को उचित राय देना।

(ग) भारतीय जहाजी कम्पनियों को आज्ञापत्र (Licenses) देकर तटीय व्यापार को पूर्ण रूप से व्यवस्थित और नियन्त्रित करना।

(२) २० लाख टन जहाजी बेड़े को बनाने के लिए अंग्रेजी जहाजी कम्पनियों से उचित व्यापारिक समझौते करना। इसके अतिरिक्त भारत में ही देशी कम्पनियों द्वारा जहाजी उद्योग को प्रोत्साहन देना और संयुक्त राष्ट्र से भी कुछ जहाज भारत के लिए खरीद लेना आदि।

इस नीति को व्यावहारिक रूप देने के लिए ब्रिटेन की सरकार और ब्रिटेन की जहाजी कम्पनियों से समझौता करना आवश्यक समझा गया। अतः जुलाई १९४७ में भारत सरकार ने श्री बालचन्द हीराचन्द के नेतृत्व में भारतीय जहाज मालिकों का एक शिष्ट मण्डल लन्दन भेजा। किन्तु कई कारणों से यह प्रयत्न असफल रहा। अतः सरकार ने स्वयं ही भारतीय जहाजी व्यवसाय को सहायता देने का संकल्प किया और इसी को मूर्तरूप देने के निमित्त ३ नवम्बर १९४७ को बम्बई में एक जहाजी सम्मेलन बुलाया गया जिसके सभापति श्री एच० सी० भाभा थे। इस सम्मेलन में भारतीय जहाजी व्यवस्था की मूल समस्याओं पर विचार किया गया और यह निर्णय हुआ कि भारत सरकार यथाशक्ति जहाज के स्वामियों को इस व्यवसाय में सहयोग देगी। इस सम्मेलन के समक्ष दो समस्यायें प्रमुख थीं—(१) जहाजों की कमी किस प्रकार दूर की जाय, तथा (२) योग्य कर्मचारियों के अभाव को किस भाँति दूर किया जाय। इस हेतु निम्न कार्यक्रम अपनाया गया है :—

(i) भारत में ही जहाजों का निर्माण करना—भारत में बड़े जहाज बनाने का सर्वप्रथम कारखाना १९४७ में विशखापट्टनम में बनकर तैयार हुआ। १९४८ से इस कारखाने में प्रति वर्ष दो जहाज बनने लगे। किन्तु १९४९ से जब सिंधिया कम्पनी ने इस कारखाने को चलाने में असमर्थता प्रकट की तो १ मार्च १९५२ में भारत सरकार के अधीन ही 'हिन्दुस्तान शिपयॉर्ड लिमिटेड' नामक कम्पनी की स्थापना की गई। इस कारखाने में १९५३ के अन्त तक १२ जहाज बन चुके थे और ७ जहाजों के निर्माण-आदेश प्राप्त हो चुके थे।

(ii) तटीय व्यापार में लगे बड़े जहाजों को सामुद्रिक व्यापार में संलग्न करना—१९५० में भारत के तटीय व्यापार में लगे १५ ऐसे जहाज थे जो लगभग ७,००० टन और अधिक के थे तथा २० जहाज ऐसे थे जिनका वजन ६,००० टन और अधिक था। इन जहाजों को विदेशी व्यापार के लिए उपयोग में लाने और उनके स्थान पर छोटे २ जहाज बनाने की नीति का अनुसरण किया गया है।

(iii) पाल से चलने वाले जलयानों का उपयोग—भारत के समुद्र तटीय व्यापार में अनेक पाल से चलने वाले जलयान भी भाग लेते हैं। १९४८ में बिठाई गई एक समिति (Sailing Vessels Committee) की जाँच के अनुसार भारत में लगभग ८०,००० पाल से चलने वाले जलयान हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग १५ लाख टन माल समुद्र तट पर लाया और ले जाया जाता है। इनकी माल ले जाने की क्षमता लगभग २,५०,००० टन है। इसके द्वारा समुद्रतटीय व्यापार का १/४ व्यापार होता है। किन्तु इन जलयानों की दशा बड़ी दयनीय है। अतः इस समिति ने सुझाव दिया कि उनकी सेवा का उचित उपयोग करने के लिये उन्हें सुसंगठित किया जाय। इसी हेतु १९५५ में जहाजों के सामान्य विभाग के अन्तर्गत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई है।

(iv) समुद्र तटीय व्यापार का रक्षण: १९४५ से बिठाई गई 'व्यापारिक नीति समिति' की सिफारिशों के अनुसार १९५० में भारत सरकार ने भारतीय तटीय व्यापार को भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित रखना आरम्भ कर दिया है। १९३९ में अपने तटीय व्यापार का केवल ३३% भारतीय जहाज ले जाते थे। १९४८ में उनका भाग ५३%; १९४९ में ६२% और १९५० में यह ७५% से अधिक हो गया। नीचे की तालिका में भारतीय जहाजों का तटीय व्यापार में क्या स्थान है यह बताया गया है:—

वर्ष	तटीय व्यापार में चलने वाले जहाजों की क्षमता (टनों में)	भारतीय तटीय व्यापार का % जो भारतीय जहाजों द्वारा ले जाया गया
१९५०—५१	२,०५,०००	८०
१९५१—५२	२,१०,०००	९४
१९५२—५३	२,५४,०००	९६
१९५३—५४	२,५९,०००	१००

व्यापारिक नीति समिति की विस्तृत रिपोर्ट में दी गई विभिन्न सिफारिशों पर विचार कर भारत सरकार ने एक बड़ी व्यापारिक योजना बनाई जिसमें तीन राष्ट्रीय जहाजी निगमों (Shipping Corporations) की स्थापना की व्यवस्था है। प्रत्येक निगम के जिम्मे विभिन्न क्षेत्रों में जहाज संचालन का कार्य करेगा। प्रथम निगम भारत और फारस की खाड़ी, भारत और लाल सागर के बीच तथा मिस्र के बन्दरगाहों और भारत-चीन-जापान और भारत आस्ट्रेलिया के बीच व्यापार संचालन करेगा। द्वितीय निगम भारत-अमेरिका और भारत-मलाया और पूर्वी द्वीप समूह के बीच व्यापार करेगा। तीसरा निगम भारत और पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका और इंगलैंड के बीच व्यापार संचालन का कार्य करेगा।

नीचे की तालिका में भारतीय समुद्री यातायात में प्रगति बताई गई है :[१]–

वर्ष	जहाज	कम्पनियाँ	वजन (टनों में)
१९३९	५३	९	१,२६,७०९
१९४६	४२	११	९८,२८६
१९४७	६०	१४	१,५९,२२६
१९४८	७२	१५	२,४९,२६१
१९४९	८४	२०	३,३२,४९०
१९५०	९०	२३	३,६४,६३२
१९५१	९२	२३	३.६६,६४६
१९५२	१००	२६	३,८३,९११
१९५३	१११	२५	४,२२,७३४
१९५४	११८	—	४,३५,७८९
१९५५	११८	—	४,८०,५५५

जुलाई, १९५२ में भारत में २४ जहाजी कम्पनियाँ थीं जिनके स्वामी भारतीय ही थे। इनके पास सब मिलाकर १०८ जहाज थे जिनका वजन १८४ ग्रास रजिस्टर्ड टन से ८,४८९ टन तक था। ये जहाज भारत, पाकिस्तान, बर्मा लंका आदि देशों के बीच व्यापार करते थे। भारतीय कम्पनियाँ सामान ढोने के लिये किराये पर भी जहाज ले लेती हैं। भारतीय जहाजों का वजन इस प्रकार है (१९५२) :[२]—

भारतीयों के स्वामित्व वाले जहाज	४,११,२५० टन
किराये के जहाज	२२,९८७ टन
योग	४,३४,२३७ टन

१. Eastern Economist's: Records & Statistics, Vol. 4, No 4. (1953) p. 21

२. R. Owens: Economic & Commercial Conditions in India (1952), p. 369-70.

जहाजों का उपयोग—

(१) तटीय तथा समीपस्थ सागरों में

भारतीय जहाज	२,३७,७४५ टन
किराये के जहाज	१७,७७५ टन
योग	२,५५,५२० टन

(२) विदेशी व्यापार में लगे—

भारतीय जहाज	१,७३,५०५ टन
किराये के जहाज	५,२१२ टन
योग	१,७८,७१७ टन

यहाँ हम नीचे की तालिका में उन मुख्य जहाजी—कम्पनियों की जहाजी शक्ति का वर्णन देते हैं, जिनके जहाजों की टन शक्ति १०,००० से भी अधिक है :—[1]

जहाजी कम्पनियों का नाम	उद्घाटन की तिथि	ग्रास टन	मूल्य (करोड़ रुपयों में)
१. सिंधिया स्टीम नैवीगेशन कं०	१९१९	२,००,२४०	१२·२
२. बम्बई स्टीम नैवीगेशन कं०	१९०६	२२,१७१	३·१०
३. भारत लाइन लि०	१९४५	५४,६८६	२·२७
४. इण्डियन नेशनल स्टीमशिप कं०	१९५०	११,५३६	०·१८
५. न्यू धौलेरा स्टीमशिप लि०	१९३७	१२,५०५	०·८०
६. ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग कं० लि०	१९४८	१५,२८२	१·१
७. इण्डियन स्टीमशिप्स लि०	१९२८	५८,३३२	३·७
८. ईस्टर्न शिपिंग कारपोरेशन लि०	१९५०	१४,४३३	०·४४

नीचे की तालिका में भारत की जाहाजी शक्ति का विवरण और द्वितीय योजना के वाद उसका क्या विस्तार होगा वताया गया है :—

	प्रथम योजना के पूर्व	प्रथम योजना के वाद	द्वितीय योजना के अंत में
	(ग्रास रजिस्टर्ड टन)		
तटीय व्यापार	२,१७,२०२	३,१२,२०२	४,१२,२००
सामुद्रिक व्यापार	१,७३,५०५	२,८३,५०५	४,०५,५०५
ट्रैम्प	—	—	६०,०००
टैंक्स	—	५,०००	२३,०००
योग	३,९०,७०७	६,००,७०७	९,००,७०५

द्वितीय योजना काल के अंत में हमारी जहाजी शक्ति में ३,००,००० टन की वृद्धि होगी। इसके फलस्वरूप विदेशी व्यापार में १२ से १५% ; तटीय व्यापार में ५०% तक हमारा भाग हो सकेगा। अभी यह भाग क्रमशः ५ और ४० प्रतिशत ही है।

१. R. Owens: *Ibid*, p. 370.

अध्याय ३५

यातायात के साधन (क्रमशः)

हवाई यातायात

(Air Transport)

यदि यह कहा जाय कि वर्तमान युग 'वायु का युग' (Air Age) है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि अब सारा विश्व सिकुड़ कर एक छोटी सी जगह में समा गया है। अनुमान लगाया गया है कि विश्व में कोई भी स्थान एक दूसरे से ३५ घण्टे से अधिक दूर नहीं है। इस कथन का मुख्य कारण मानव द्वारा वायु पर विजय प्राप्त करने के लिए ऐसे वायुयानों का निर्माण कर लेना है जिनके द्वारा विश्व के सभी देश एक दूसरे के निकट आगए हैं।[1] अब विश्व की दूरी हजारों या सैकड़ों मीलों में नहीं वरन् घण्टों और मिनिटों में नापी जाती है। चाहे शुष्क मरुस्थल हों, या घने जंगल या पहाड़ी क्षेत्र सभी के ऊपर होकर वायुयान जा सकते हैं। पान-अमेरिकन-वर्ल्ड एयर वेज के 'फ्लाइंग क्लिपर्स' अटलांटिक की यात्रा प्रति १२ घण्टे के बाद करते रहते हैं। यह साधारणतः ३४० मील प्रति घण्टे की चाल से उड़ते हैं और १५,००० से २५,००० फुट की ऊंचाई पार कर सकते है। इनमें से कुछ वायुयानों ने न्यूयार्क और लन्दन के बीच की दूरी केवल ६ घण्टों में ही तय की है।

वायु यातायात का विकास हुए अधिक समय नहीं हुआ। सबसे पहला प्रयास १६०३ में अमरीका के राइट-भ्राताओं ने किया। उसी के बाद से ही इसमें प्रगति हुई है। १६३० और १६३८ के बीच उड़ान में १७% प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई। १६३८ में वायुयानों ने २३,३७,५६,००० मील की दूरी तय की अर्थात् १६३० की तिगुनी और १६२६ की १२ गुनी दूरी।[2] १६३६ में विभिन्न भागों के बीच हवाई सेवायें आरम्भ हुईं जिनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) लन्दन से सिडनी, सिंगापुर और केपटाऊन।
(२) पेरिस से सेगाँव और टैननरीव।
(३) बर्लिन से रायोडी-जानेरो और काबुल।
(४) अमस्टरडॉम से बटैविया और पैरामैरिबो।
(५) न्यूयार्क से ब्यूनेसआयर्स, लिस्बन और लन्दन।
(६) सैनफ्रांसिसको और लॉस एंजिल्स से होनोलूलू, आकलड, मनीला और हांगकांग।

---

१. "For good or for evil, we live in a rapidly shrinking world" W. Willkie in One World; 1943

२. J. B. Hubbard : World Transport, Aviation, Harvard Business Review, 1944, p. 510-11.

इस समय संपूर्ण विश्व में २५० से भी अधिक मार्गों पर नियमित रूप से व्यापारिक हवाई सेवायें चलती हैं। १९३० से १९५० के बीच के काल में वायुयानों के एंजिनों की शक्ति में भी पर्याप्त प्रगति हुई है। यह ५०० अश्वशक्ति से बढ़ कर १२,००० अश्व-शक्ति हो गई है। इसी प्रकार चाल की औसत गति १२५ मील प्रति घण्टा से बढ़कर ३७५ मील और उड़ान की दूरी ५०० मील से बढ़ कर ८,००० मील हो गई है।

वायुयान मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—(१) हवा में तैरने वाले (Aeroplones), और (२) हवा में उड़ने वाले (Airships)। हवा में तैरने वाले वायुयान हवा से हल्के और हवा में उड़ने वाले वायुयान हवा से भारी होते हैं। आधुनिक काल में साधारण तौर पर कई प्रकार के वायुयान बनाये जाने लगे हैं।

वायुमार्गों का महत्व :

हवाई जहाजों से धरातलीय यातायात की अपेक्षा एक बड़ा लाभ यह है कि इनका उपयोग स्थल और जल दोनों के ऊपर से होकर सम्भव है। जल पर स्थल का वितरण हवाई यातायात के लिए प्रथम महत्व रखता है क्योंकि प्रायद्वीप और द्वीप समूह जन्मदाता महाद्वीपों की केवल बाहर की सीमा पर ही नहीं होते बल्कि ठहरने के लिए सुविधाजनक स्थान भी होते हैं। इनके होने से हवाई जहाज को जल पर बिना रुके हुए बहुत दूर तक नहीं उड़ना पड़ता, वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर ठहरता चलता रहता है।

महासागरीय यातायात की भाँति वायुयानों के लिए कोई 'मार्ग' बनाने अथवा स्थिर रखने के लिए किसी धन की आवश्यकता नहीं होती। केवल वायुयानों के रुकने के स्थान बनाने के लिए धन चाहिए। अतः हवाई यातायात के अन्तर्गत यातायात का व्यय रेल के यातायात की अपेक्षा कम ही होता है परन्तु रेलों द्वारा बहुत अधिक व्यापार होता है जिससे सामान का भाड़ा हवाई जहाज की अपेक्षा रेल से कम पड़ता है। इसलिए अन्ततः हवाई यातायात रेलवे यातायात से अधिक व्ययसाध्य बैठता है। इसके अतिरिक्त हवाई जहाजों मरम्मत व कल-पुर्जों के लिए भी खर्च अधिक ही बैठता है। इनमें प्रयोग करने के लिए तेल आदि भी काफी महंगा पड़ता है। हवाई जहाज के ठहरने का शुल्क भी कुछ अधिक होता है। इसके अतिरिक्त रेलों की अपेक्षा हवाई जहाज के चालकों, कप्तानों तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन भी अधिक होता है। हवाई जहाजों के मार्गों का—जो साधारणतः ५० मील चौड़े होते हैं—निर्धारण सरकारी विभाग द्वारा किया जाता है। हवाई जहाज के ठहरने आदि के स्टेशन बनाने तथा अन्य धरातलीय व्यवस्था उपलब्ध करने के लिए हवाई अड्डे, वायुयान उतरने के स्थान, हवाई जहाज रुकने के भवन, दुरुस्ती के कार्यालय, अतिरिक्त विभाग द्वारा व्यवस्थित बेतार के स्टेशनों, प्रकाश घरों, वायु रुख सूचक यंत्रों तथा प्रकाश आदि में भी धन की आवश्यकता पड़ती है। यह व्यवस्था यद्यपि बड़ी व्ययसाध्य होती है किन्तु हवाई यातायात की सुरक्षा, नियमितता तथा विश्वसनीयता और यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए नितांत

आवश्यक समझी जाती हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अलावा अन्य सभी देशों में यह व्यय सरकार ही सहन करती है। इन व्यवस्थाओं का उपयोग कोई भी निजी वायुयान निश्चित शुल्क देकर कर सकते हैं।

हवाई जहाज खरीदने और नियमित रूप से हवाई सर्विस चलाने में भी काफी खर्च पड़ता है। परन्तु युद्ध की दृष्टि से हवाई उड़ान की शिक्षा और वायुयानों की संख्या बनाये रखने तथा व्यापारिक कार्यो में लाभ पहुँचाने के लिए सभी राष्ट्र वायु मार्ग संचालन में अपने देश की कम्पनियों को आर्थिक सहायता देते हैं। यह सहायता या तो हवाई अड्डों तथा धरातलीय व्यवस्था की उपलब्धता प्रस्तुत कर अप्रत्यक्ष रूप से दी जाती है अथवा प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न वायुयान कम्पनियों को धन देकर की जाती है। देश की डाक आदि ले जाने के बदले में भी सरकार द्वारा निश्चित रकम आर्थिक सहायता के रूप में दी जा सकती है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वायुयान आदि चलाने का पूरा खर्च यात्रियों पर ही नहीं पड़ता। पहले थोड़ा किराया लिया जाता है फिर ज्यों-ज्यों व्यापार बढ़ता जाता है त्यों-त्यों खर्चा भी बढ़ता जाता है।

यद्यपि यह सही है कि यातायात के साधनों में वायुयान सबसे गतिशील है किन्तु यह व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं। सस्ता तथा भारी बोझा ढोने में यह रेलों अथवा जहाजों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त ये छोटी यात्राओं के लिए भी अनुपयुक्त हैं। इनका अच्छा उपयोग अर्न्तदेशीय उड़ानों के लिए ही लाभप्रद हो सकता है। किन्तु यह मानना पड़ता है कि जहाँ तक जरूरी डाक और कीमती सामान तथा यात्रियों के शीघ्र भेजे जाने का प्रश्न है. वायुयान ही अधिक लाभप्रद हो सकते हैं। आजकल सभी देश लम्बी सफर, डाक व बहुमूल्य वस्तुएँ भेजने में समय बचाने की दृष्टि से वायुयानों का ही उपयोग करते हैं। संसार के प्रमुख औद्योगिक तथा व्यापारिक भागों में इनका अधिकतर उपयोग डाक तथा यात्रियों और शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तुओं को ले जाने के लिए ही होता है। हवाई यातायात का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें यात्रा की गति अत्यधिक रहती है और ऐसे मनुष्य के लिए समय ही धन होता है। किन्तु यह बात सर्वमान्य है कि भारी सामान ले जाने में किसी दूसरे यातायात के साधनों से हवाई यातायात होड़ नहीं कर सकता क्योंकि यह साधन बड़ा खर्चीला पड़ता है। १९५३ में संयुक्तराष्ट्र के हवाई जहाजों की आय का ८८½% यात्रियों से प्राप्त हुआ, ४% डाक ले जाने से, २½% अन्य सेवाओं से और केवल ५% माल ढोने से।

वायुमार्गों को प्रभावित करने वाली दशायें :

यद्यपि वायुमार्ग रेल तथा जलमार्गों की तरह निश्चित और बँधे हुए नहीं होते किन्तु अपने हित की दृष्टि से सदा ही वह भूमि की बनावट और प्रकाश स्तंभ तथा महावृत्तीय मार्ग का अनुसरण करते हैं। इन मार्गो को प्रभावित करने वाली ये दशायें हैं—

(i) जलवायु का हवाई यातायात पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अर्द्ध-

उष्ण मार्गों में उच्च मार्ग की पेटियाँ इसके लिए सबसे अधिक अनुकूल पड़ती हैं और कुछ स्थानों में तो हवाई उड़ान के लिए ये आदर्श हैं। उष्ण कटिबन्ध में जलवायु सम्बन्धी दशाओं में प्रादेशिक तथा मौसमी अन्तर होता रहता है किन्तु साधारण रूप से हवाई उड़ान के लिए वे अच्छी समझी जाती हैं। शीतोष्ण भागों में वायु की दशा में बहुत अधिक परिवर्तन होता रहता है अतः हवाई उड़ान के लिए वायु की दशा बहुत ही प्रतिकूल होती है। तेज हवा, घनी वर्षा और वर्फीले तूफानों का हवाई मार्गों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे वायुयान का उड़ना कठिन ही नहीं असंभव भी हो जाता है। दुर्घटनायें होने का अधिक अंदेशा रहता है। स्वच्छ नीला आकाश और सूखी हवा ही इसके अनुकूल होते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सूखी हवा की उपस्थिति के उपरांत भी रेगिस्तान में तापक्रम में परिवर्तन शीघ्रता से होता है। अतः यह वायुमार्गों के लिए उपयुक्त नहीं होता। रेगिस्तानों की भाँति घने जंगलों को भी वायुमार्गों से बचाया जाता है। वैज्ञानिक उन्नति ने प्रत्येक ऋतु सम्बन्धी तत्वों पर विजय प्राप्ति सरल कर दी है। रेडियो द्वारा संचालन होने से वायुयानों को धुंध, कोहरा अथवा अंधेरे का डर भी नहीं रहता। प्रत्येक हवाई अड्डे पर उन क्षेत्रों की वायु धाराओं और कुहरे आदि का नक्शा होता है जिन पर से वायुयान उड़ कर जाने वाले होते हैं। अस्तु समय से समय पर रेडियो द्वारा वायुयानों को उनके मार्ग में पड़ने वाली वायु सम्बन्धी बाधाओं से सूचित किया जाता रहता है और इस प्रकार किसी भी बाधा से वचाव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हवाई अड्डों पर विभिन्न रोशनियाँ जलाकर प्रकाश रखने में वायुयान कोहरे और अंधकार में भी उतर सकते हैं। मार्ग में जहां-तहां रेडियो मीनारों के बन जाने से तथा स्वयं-चलित नाविक यन्त्र की सहायता से अब हवाई जहाज बिना भूमि देखे ही अपने मार्ग पर चले जाने मे समर्थ होते हैं।

(ii) भूमि की बनावट—यद्यपि वायुयान रचना में स्वतन्त्र होते हैं फिर भी भूमि की बनावट का हवाई यातायात पर प्रभाव पड़ता है। हवाई स्टेशन पर हवाई जहाज के उड़ने के लिए एक ऐसा अच्छा मैदान होना चाहिए जिसका धरातल सुदृढ़ तथा समतल हो तथा जो प्रत्येक दिशा में कम से कम आधामील फैला हुआ हो। वायुयान एक निश्चित ऊँचाई के ऊपर नहीं उड़ सकते हैं। अब तो ऊँचे से ऊँचे पर्वत को भी वायु मार्ग द्वारा प्रत्येक मौसम में पार किया जा सकता है। समुद्र तल पर के स्थान सीधी उड़ान द्वारा सहस्रों फीट ऊँचाई पर स्थित अन्य स्थानों से मिला दिए गये हैं।

(iii) आर्थिक तत्व—व्यापारिक उड़ान के आर्थिक आधार अन्य प्रकार के यातायातों के समान ही हैं। सामान व यात्रियों की चढ़ाई व उतराई वहीं पर होगी जहाँ वायुयान की सेवा की पर्याप्त माँग हो तथा जहाँ यात्रियों, डाक और सामान की पूर्ति हो।

प्रत्येक देश अपनी राष्ट्रीय भूमि के ऊपर के वायुमंडल पर अधिकार रखता है। इसलिए मुद्रा, पार पत्र, (Pass Port), प्रवास तथा सफाई आदि के नियम

जैसी कतिपय समस्यायें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक हवाई यातायात में बहुतसी असुविधाएँ उपस्थित करती हैं।

विश्व में हवाई यातायात की प्रगति :

हवाई यातायात का सबसे अधिक विकास संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ है। यह एक लम्बा-चौड़ा देश है जहाँ वायुयानों को एक ओर से दूसरी ओर जाने में कोई राजनैतिक सीमा नहीं पार करनी पड़ती, यद्यपि कर देने की रीति का

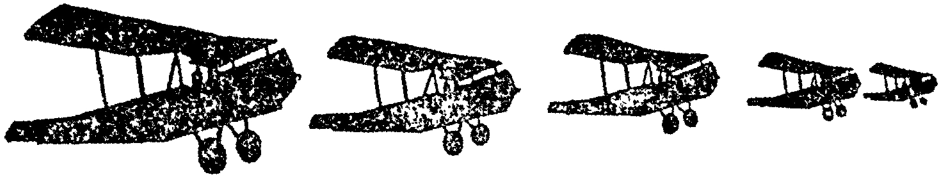

चित्र २३७

पालन अवश्य करना पड़ता है। संयुक्त राज्य के महत्वपूर्ण वायुमार्ग डाक तथा यात्रियों को ले जाते हैं। संयुक्तराज्य के अटलांटिक और पैसिफिक तट इस देश के सबसे अधिक उन्नत भागों में से हैं और इन क्षेत्रों को परस्पर मिलाने का सबसे शीघ्रता का मार्ग हवाई मार्गों द्वारा ही है। इस देश के दूरस्थ स्थानों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाले इस शीघ्रगामी मार्ग का प्रयोग करने की इच्छा रखने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है। अतः हवाई यातायात का व्यय बहुत अधिक नहीं है। इसलिए संयुक्तराज्य अमेरिका में हवाई यातायात यूरोप अथवा संसार के किसी भी अन्य भाग की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है।

नीचे की तालिका में प्रमुख देशों के हवाई यातायात और उनके मार्गों को बताया गया है :—

देश		मुख्य हवाई सर्विसें
संयुक्त-राज्य अमेरिका	—	यूनाइटेन्ड एअर लाइन्स ट्रान्स-वर्ल्ड एअर लाइन्स अमेरिकन एअर लाइन्स पान-अमेरिकन एअर वेज।
कनाडा	—	ट्रांस-कनाडा एअर लाइन्स (ब्रटेन, पश्चिमी द्वीप समूह, फ्रांस, जर्मनी. और संयुक्त राज्य अमेरिका)
ब्रिटेन	—	ब्रिटिश ओवरसीज एअर कोरपोरेशन (यूरोप, दक्षिणी-अमेरिका, पश्चिमी- द्वीप समूह और ब्रिटिश- कॉमनवेल्थ के सब देश)
फ्रान्स	—	एअर फ्रांस (यूरोप, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, मध्य और सुदूर-पूर्व तथा आस्ट्रेलिया)
नीदरलैंड	—	रोयल डच एअर लाइन्स (सभी महाद्वीपों के साथ)

नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों के वायुमार्गों की लम्बाई व यातायात में प्रगति बताई गई है :—

देश	उड़ान मीलों में (किलो मीटर)		यात्री किलोमीटर		माल सामान टन किलोमीटर		डाक (टन किलोमीटर)	
	१९३९	१९५२	१९३९	१९५२	१९३९	१९५२	१९३९	१९५२
आस्ट्रेलिया	१३,९७२	८०,३५०	७०,७७१	१,४८१,७१५	—	५४,०४९	—	८,१४०
कनाडा	१५,४८२	५७,३३२	३३,४८४	१,२२०,२४७	१,४११	१३,०९४	६२३	६,६२९
फ्रांस	११,१८०	५४,२१२	७४,२२१	१,४६०,२४३	८२३	४९,१८२	१,४३५	१४,२६३
भारत	२,७१४	३१,४७६	२,१३९	३८९,४६८	२८	२०,९०९	३२९	४,२५५
नीदरलैण्ड	१५७	४०,७४८	४३	१,०११,२२१	१·३	३४,७५६	११·७	४८·९
इङ्गलैण्ड	१८,४५०	९२,७५०	९०,७१४	१,९७८,५२६	१,३८०	४४,३५१	११,५७९	१९,८०४
संयुक्त-राज्य अमेरिका	१४६,१९५	९३४,२२९	१,२१४,६५२	२५,०२५,१७४	४,८३४	५०८,९०२	१२,५७१	१०६,८६८

डेनमार्क स्वीडन नार्वे	—	स्केंडिनेविअन एअर लाइन्स प्रणाली (एस० ए० एस०)
इटली	—	एरोफ्लोट (Aeroflot) टेस्को (Tesco) एल ए आई (L.A.I.) (उत्तरी अफ्रीका, समीप पूर्व, दक्षिणी अमेरिका तथा लन्दन)
भारत	—	एअर इण्डिया इन्टरनेशनल (काहिरा, रोम, जिनेवा, पेरिस, लन्दन, अदन, नैरोबी, बेंकोक, सिंगापुर, काबुल, जकार्ता, लंका, बर्मा तथा पाकिस्तान)
रूस	—	एरोफ्लोट (पूर्वी-यूरोप के देश)

भू-मण्डल के मुख्य वायु-मार्ग

(१) **यूरोप और अमेरिका के बीच क वायु मार्ग**—यह मार्ग अफ्रीका के अटलांटिक तट के साथ-साथ डाकट या बाथरस्ट तक जाता है। यहाँ से यह मार्ग आंध्र महासागर को पार करके ब्राजील के पार ताम्बुको नगर पहुँचता है। यहाँ से एक मार्ग चिली में सेश्यांगो तक जाता है। अटलांटिक महासागर के किनारे संयुक्त-राज्य अमेरिका के वायु मार्ग भी परनाम्बुको में जाकर मिलते हैं।

यूरोप से एक दूसरा मार्ग लन्दन से शैनन, गेंडर, ओटावा होता हुआ न्यूयार्क जाता है। दूसरा मार्ग पेरिस से लिस्बन, एजोर्स, बरमूडा होता हुआ न्यूयार्क पहुँचता है। एक अन्य मार्ग स्टॉकहॉम से ओसलो, रेकजिविथ-गेंडर और ओटावा होता हुआ न्यूयार्क जाता है।

(२) **यूरोप आस्ट्रेलिया के बीच के वायु-मार्ग**—इन मर्गों पर फ्रांसीसी, डच, तथा ब्रिटिश वायुयान चलते हैं। ब्रिटिश वायु-मार्ग लन्दन से शुरू होकर मार्सेल्स, अथेन्स, सिकन्दरिया, काहिरा, गाजा, बगदाद, बहरीन, शरहाज, करांची, जोधपुर, दिल्ली, इलाहाबाद, कलकत्ता रंगून, बेंगकाक, पीनांग, सिंगापुर, बटाविया, डारविन, ब्रिसबेन तथा सिडनी होता हुआ मैलबोर्न तक जाता है। डच तथा फ्रांसीसी हवाई जहाज भी लगभग इसी मार्ग पर चलते हैं। कुछ दिनों से रूस में मास्को से ब्लाडीवोस्टक तक एक नया मार्ग खोला है।

(३) **यूरोप तथा अफ्रीका के बीच के वायु मार्ग**—इस मार्ग पर इटालियन, फ्रान्सीसी और ब्रिटिश वायुयानों का नियंत्रण है। अफ्रीका के महत्वपूर्ण मार्ग ब्रिटेन के अधिकार में है। ब्रिटिश वायुयान साऊथेम्पटन से आरम्भ होकर भूमध्यसागर के पास सिकन्दरिया तक जाता है। सिकन्दरिया से

यह मार्ग सीधे खारतूम को जाता है और फिर वहाँ से यह दो दिशाओं या शाखाओं में बट जाता है—एक शाखा तो पश्चिम में लागोस तक जाती है और दूसरी दक्षिण में केपटाऊन तक।

फ्रांसीसियों ने अफ्रीका में दो वायु-मार्ग स्थापित किये हैं। एक अफ्रीका के पश्चिमी तट के सहारे-सहारे वाथर्स्ट होता हुआ फ्रांसीसी भूमध्यरेखीय तक पहुँचता है। दूसरा मार्ग सहारा तथा काङ्गो को पार करके मेडागास्कर में समाप्त होता है। इटली के वायु-मार्ग ट्रिपोली, तथा काहिरा होते हुये अबीसिनिया से अदीस अबाबा तक जाते हैं।

(४) **अमेरिका और एशिया के बीच के वायु-मार्ग**—प्रशांत महासागर के लिये संयुक्त राज्य के वायुयानों द्वारा यात्रा की जाती है। यह मार्ग सैनफ्रांसिसको से आरम्भ होता है और प्रशान्त महासागर के मध्य होनोलूलू, मिडवे द्वीप, वैंक द्वीप और मेनीला होता हुआ केन्टन तक जाता है। एक दूसरा मार्ग सिडनी से आकलैंड, फिजी, होनोलूलू, सैनफ्रांसिसको होता हुआ वैंकूवर तक जाता है। एक तीसरा मार्ग सैनफ्रांसिसको से अलास्का होकर टोकियो तक जाता है।

जर्मनी से वायु-मार्ग विभिन्न दिशाओं में जाते हैं। यहां से उत्तर से नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड को, दक्षिण पूर्व में चेकोस्लोवाकिया यूगोस्लाविया, और यूनान को, पूर्व में पौलैण्ड को और दक्षिण में इटली को, दक्षिण पश्चिम में पुर्तगाल तथा स्पेन को और पश्चिम में फ्रांस तथा संयुक्त राज्य को वायुयान चलते हैं। दूसरे महायुद्ध से पहले पश्चिमी और दक्षिणी यूरोप में डच तथा फ्राँसीसी वायुयानों की जर्मन वायुयानों से स्पर्धा थी।

पश्चिमी यूरोप के मार्ग रूस के मार्गों से जुड़े हैं लेकिन रूस से होकर उनका संबंध पूर्वी देशों से नहीं है। रूस का वायु-मार्ग मास्को से काबुल; मास्को से मंचूरिया; मास्को और काकेशस तथा मास्को और खावारोवस्क होते हुए व्लाडीवोस्टक तक हैं।

वायु मार्ग तथा हवाई यातायात के विकास में संयुक्त राज्य अमेरिका का स्थान प्रमुख है। इस देश में एक किनारे से दूसरे किनारे तक आने-जाने वाले कई वायु-मार्ग हैं। पूर्वी तट पर बोस्टन, न्यूयार्क तथा वाशिङ्गटन और पश्चिमी तट पर सियाटिल, सैनफ्रांसिसको और लोस एंजीलीस प्रसिद्ध हवाई अड्डे हैं।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि स्थल गोलार्द्ध में विश्व के चार प्रमुख व्यापारिक क्षेत्र स्थित हैं: (१) वृहद् यूरोप (जिसमें उत्तरी अफ्रीका और एशिया माइनर भी सम्मिलित हैं); (२) रायोग्रॉन्डे से उत्तर से लगा कर उत्तरी अमेरिका; (३) सोवियत रूस और (४) सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप। ये चारों क्षेत्र मिलकर विश्व के क्षेत्रफल का ५६% और जनसंख्या का ८८% बनाते हैं। इन क्षेत्रों में विश्व के रेल-मार्गों का ८१%; कृषि योग्य भूमि का ८५%; सम्पूर्ण आय का ६१%; १००,००० से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या का ९२% मोटरों का ९४% तथा कारखानों

के उत्पादन का ६५% पाया जाता है। अस्तु यह कहा जा सकता है कि भविष्य में भी इन देशों के बीच हवाई यातायात की प्रगति अधिक होगी।

भारत में वायु यातायात का विकास :

भारत में सर्व प्रथम हवाई उड़ान १६११ में आरम्भ हुई। इस समय कुछ स्थानों में केवल प्रदर्शन की दृष्टि से हवाई उड़ान की व्यवस्था की गई थी। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से हवाई यातायात का हमारे देश में वास्तविक विकास आरम्भ हुआ। इस समय भारत सरकार ने कुछ जहाज उतरने के स्थानों (Landing Ground) की व्यवस्था की। प्रथम युद्ध काल में भारत को यह बात पूरी तरह अनुभव हो गई कि पूर्वी देशों और यूरोप को मिलाने के लिये भारत एक कड़ी का काम करता है अस्तु भारत में हवाई यातायात के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। सन् १६१६ में महायुद्ध की समाप्ति पर विश्व के ३० प्रमुख देशों और भारत ने मिलकर पेरिस नगर में हवाई यातायात को व्यवस्थित रखने के लिये बनाये गए अन्तर्राष्ट्रीय समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते को स्वीकार करने का अर्थ यह था कि सभी समझौता करने वाले देश आपस में एक दूसरे के हवाई जहाजों को अपने देश में से गुजरने में सहयोग देंगे और जहां तक सम्भव होगा हवाई यातायात, वायुयान संचालकों तथा वायुमार्गों को नियन्त्रित करने वाले नियम सभी देशों में लगभग एक से ही होगे किन्तु इस समझौते पर हस्ताक्षर कर लेने के बाद भी भारत सरकार ने हवाई यातायात के विकास में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया। केवल कुछ उड्डयन क्लब (Flying Clubs) अवश्य खोल दिए जहां विदेशी वायुयान आकर ठहर सकें।

सन् १६२६ में एक हवाई यातायात परिषद् (Air Board) स्थापित की गई। उसने इस बात पर जोर दिया कि हवाई यातायात की दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। वायुमण्डल सम्बन्धी अवस्थायें भी यहाँ अनुकूल ही हैं और वर्ष के अधिकांश भागों में (केवल वर्षा ऋतु को छोड़कर) वायुमण्डल स्वच्छ रहता है। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रान्तों में स्थित व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र एक दूसरे से बहुत दूर पड जाते हैं अस्तु उनको जोड़ने के लिए हवाई यातायात का विकास करना नितान्त आवश्यक है।

अस्तु १६२७ में एक नागरिक उड्डयन विभाग की स्थापना की गई। शीघ्र ही देश में एयरोड्रोम्स और उड्डयन क्लबों की स्थापना भी की गई, जिनमें हवाई जहाज चलाना सिखाया जाने लगा। दिल्ली, करांची, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ, लाहौर और पटना में उड्डयन क्लब खोले गए। सन् १६२६ में भारत और लन्दन के बीच नियमित रूप से साप्ताहिक हवाई यातायात आरम्भ हुआ। इस मार्ग का संचालन एक अंग्रेजी कम्पनी इम्पीरियल एयरवेज (Imperial Airways) के हाथ में था। इस मार्ग को सन् १६३० तक दिल्ली तक बढ़ा दिया गया। इसके द्वारा भारत सरकार ने दिल्ली और करांची के बीच डाक भेजने का समझौता भी किया, किन्तु १६३१ में यह समझौता भी भंग कर दिया गया। सन् १६३२ में भारत में टाटा एयर लाइन्स (Tata Air Lines) के वायुयान, इलाहाबाद, कलकत्ता और कोलम्बो के

बीच चलने लगे। इसी समय भारतीय रियासतों और सरकार के बीच एक समझौता यह भी हुआ कि वे अपने राज्यों में होकर भारतीय वायुयानों को निकलने देंगे। सन १९३३ में भारत सरकार और ब्रिटिश एयरवेज लि० (British Airways Ltd.) नामक अंग्रेजी कम्पनी के साथ समझौता करके करांची, सिंगापुर तक डाक तार लें जाये जाने का कार्य एक अर्द्ध भारतीय कम्पनी इंडियन ट्रांसकान्टीनैन्टल एयरवेज (Indian Trans-Continental Airways) को सौंपा। यह कम्पनी अपने वायुयान करांची से सिंगापूर, साप्ताहिक रूप में और कलकत्ता से ढाका, करांची से लाहौर सप्ताह में दो बार चलाने लगी। इसी समय टाटा-बन्धुओं ने टाटा एयर सर्विस नामक विशुद्ध भारतीय कम्पनी स्थापित करके करांची से अहमदाबाद, बम्बई और बिलारी होते हुए मद्रास तक आकाश-मार्ग से डाक और यात्री ले जाने का काम आरम्भ किया। इस कम्पनी ने धीरे-धीरे बड़ी प्रगति की और उनके द्वारा देश के प्रसिद्ध नगरों का सम्बन्ध स्थापित हो गया। टाटा कम्पनी के स्थापित हो जाने के साथ ही साथ एक अन्य भारतीय कम्पनी इंडियन नेशनल एयरवेज भी सन् १९३३ में दिल्ली में स्थापित की गई। सन् १९३५ में एयर सर्विस आफ इन्डिया (Air Service of India)—जो बम्बई और काठियावाड़ के बीच में चलने लगी—की स्थापना की गई। इस कम्पनी की प्रगति बड़ी जल्दी हुई यहाँ तक कि सम्पूर्ण हवाई व्यापार का ७०% इसी कम्पनी द्वारा किया जा रहा था किन्तु आर्थिक हानि होने से १९४० में इसे बन्द हो जाना पड़ा। सन् १९३८ में समस्त ब्रिटिश साम्राज्य को जोड़ने और डाक ले जाने वाली हवाई योजना (All-up Empire Mail Service) की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत विभिन्न देशों की डाक विदेशों को ले जाई जाने लगी। भारत में भी इस योजना को सहयोग देने के लिए टाटा एयर लाइन्स (जो करांची से बम्बई तक डाक ले जाती थी) और इन्डियन नेशनल एयरवेज (जो कराची से बम्बई तक डाक ले जाती थी) का सम्बन्ध उपर्युक्त कम्पनी से किया गया। इस प्रकार महायुद्ध के पूर्व भारत में इंडियन ट्रांस-कान्टीनैन्टल एयरवेज लि०; टाटा एयर लाइन्स; इंडियन नेशनल एयरवेज लि०; और एयर सर्विसेज ऑफ इंडिया के वायुयान चलते थे। किन्तु १९४० में आर्थिक कठिनाइयों के कारण चौथी कम्पनी बन्द कर दी गई। इस समय चार विदेशी हवाई सर्विसें भी चल रही थीं यथा BOAC; Dutch Air Line; Air France और German Air Service.

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने के साथ ही विदेशी आकाश मार्ग एक दम कम कर दिये गये। जहां पहले इंग्लैंड—भारत—आस्ट्रेलिया सर्विस सप्ताह में ५ बार चलती थी वह घटाकर केवल २ ही बार कर दी गई। सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य की हवाई योजना भी समाप्त कर दी गई और डाक आदि ले जाने के किराये में भी वृद्धि कर दी गई। देशी सर्विसों द्वारा नागरिकों के लिए उपयोग भी कम किया गया। इण्डिया नेशनल ऐयरवेज की सर्विस जो करांची से लाहौर तक चलती थी, सप्ताह में दो बार और टाटा लाइन्स जो बम्बई कलकत्ता तक चालू थी, सप्ताह में चार बार ही कर दी गई। युद्धोत्तर काल में वायुयान का

अधिकाधिक उपयोग देश के बचाव में किया जाने लगा। जब बर्मा और मलाया भी युद्ध क्षेत्र घोषित कर दिये गये तो करांची से लाहौर जाने वाली हवाई सर्विस बन्द कर दी गई और एक नया मार्ग दिल्ली से कलकत्ता होता हुआ रंगून को खोला गया। जब बर्मा जापानियों के अधिकार में आ गया तो इसी मार्ग को रंगून से जोरहठ के मार्ग में बदल दिया गया। १९४३ के अन्त में देश में १७ नये मार्ग चालू किये गये जिनमें ७ ब्रिटिश ओवरसीज ऐयर कं०, टाटा कम्पनी, और इंडियन नेशनल कम्पनियों के अन्तर्गत, नौशाही वायु सेना (Royal Air Force) और एक चाइनीज नेशनल ऐयरवेज कम्पनी के अन्तर्गत थे। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध ने हवाई यातायात की बड़ी वृद्धि की।

१९४४ में नागरिक उड्डयन के विकास के लिए एक समिति बनाई गई जिसने ११५ हवाई अड्डे बनवाने तथा ११,२०० मील हवाई मार्गों की लम्बाई बढ़ाने का सुझाव दिया। १९४६ में भारत में वायु-यातायात इंडियन नेशनल एयरवेज, टाटा एयर लाइन्स, एयर सर्विसेज ऑफ इण्डिया लि० और डैकन एयरवेज कम्पनियों के हाथ में था। इस समय करांची, बम्बई, मद्रास, बिहार, बंगाल, तथा दिल्ली आदि में ७ उड्डयन क्लब भी थे। देशी कम्पनियों के अतिरिक्त B. O. A. C. के भी जहाज इंग्लैंड और भारत के बीच चल रहे थे। १९४७ में विभाजन के समय वायुयानों ने पाकिस्तान से शरणार्थियों तथा माल ढोने में बड़ा सहयोग दिया। १९४८ से भारत में ७ कम्पनियाँ ३३ मार्गों पर-१३६७५ मील वायुयान चला रही थीं। १९४७ में भारत और नीदरलैण्ड के बीच, १९४८ में भारत और फ्रांस; भारत और ईरान; भारत और स्वीडेन; भारत और पाकिस्तान के बीच हवाई यातायात सम्बन्धी समझौते हुए। १९५३ में हवाई यातायात का राष्ट्रीयकरण हो गया और सभी कम्पनियों को दो नवनिर्मित निगमों के अन्तर्गत कर दिया गया।

भारतीय नागरिक उड्डयन विभाग (Indian Civil Aviation Deptt.) ७८ हवाई अड्डों का पोषण करता है। इस विभाग के अन्तर्गत ८२ हवाई अड्डे हैं। विभागों द्वारा उड़ान लेने अथवा उतरने की सुविधाओं को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय हवाई अड्डों को निम्न चार श्रेणियों में बांटा गया है :—

(१) **अन्तराष्ट्रीय महत्व के हवाई अड्डे**— ये क्रमशः शान्ताक्रूज (बम्बई), डमडम (कलकत्ता) और पालम (दिल्ली) में है। यहाँ विदेश जाने वाले विदेशी वायुयान भी ठहर सकते हैं।

(२) **प्रथम श्रेणी के हवाई अड्डे**—यहाँ छोटे-बड़े सभी वायुयान उतर-चढ़ सकते हैं। अगरतला, अहमदाबाद, बेगमपत (हैदराबाद), जूहू (बम्बई), सफदरगंज (दिल्ली); गोहाट; मद्रास (सैंट थामस माऊंट) और नागपुर ऐसे ही अड्डे हैं।

(३) **मध्यम श्रेणी वाले हवाई अड्डे**—ये २९ हैं। ये अड्डे क्रमशः इलाहाबाद, अमृतसर, औरंगाबाद (हैदराबाद), बाघडोगरा (पं० बंगाल, बनारस, बड़ोदा, बैरकपुर (पं. बंगाल), भावनगर, भूपाल, भुज, कोयम्बटूर, भुवनेश्वर (कटक) गया, इन्दौर, जयपुर, जोरहट (आसाम), हसोंद (जूनागढ़), अमावसी

(लखनऊ), मदुरा, बाजपी (बंगलौर), मोहनबट (आसाम), पटना, पोरबन्दर, राजकोट, तेजपुर (आसाम), त्रिचिरापल्ली, त्रिवेन्द्रम, विजयवाड़ा और विशाखापट्टनम में हैं।

(४) निम्न श्रेणी के हवाई अड्डे—इस प्रकार के हवाई अड्डों की संख्या ३७ है। ये अड्डे क्रमशः आकोला, आसनसोल, बरेली, बेलीनिया (आसाम), बिलासपुर, चकुलिया (बिहार), कड्डपा (आंध्र), डानाकोंदा, (मद्रास) कसमी (गोरखपुर), झांसी, झरसुगुदा (उड़ीसा), जबलपुर, कैलाशपुर, (आसाम), कमालपुर, (आसाम), कानपुर, खंडवा, खोवेट (आसाम), कोल्हापुर, कोटा, ललितपुर, मनीपुर रोड (आसाम), मैसूर, उत्तरी लखीमपुर (आसाम) पालनपुर (दीसा), पसीघाट, (आसाम), रायपुर, राजमहेन्द्रा, रामनद, रांची, सादिया (आसाम), सहारनपुर, शैला (आसाम), शीलापुर, तंजौर, उदयपुर, वैलोर और वारंगल में है। इनके अतिरिक्त तीन नये हवाई अड्डे प्रथम श्रेणी के डवोक (उदयपुर), चंडीगढ़ (पूर्वी पंजाब) और गांधीधाम (कच्छ) में और बनाये जा रहे हैं।

नागरिकों को हवाई उड़ान में शिक्षा देने के लिये कुल मिलाकर १२ उड्डयन क्लब हैं जिनको भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। यह क्रमशः ये हैं—दिल्ली, बम्बई, मद्रास, बैरकपुर, पटना, भुवनेश्वर, लखनऊ, जलंधर, नागपुर, आसाम, हैदराबाद, बंगलोर। इनके अतिरिक्त तीन क्लब ऐसे भी हैं जैसे हैदराबाद (Hyderabad State Aero Clud), जोधपुर (State Aviation Club) और बंगलोर (Mysore Government Elying Club) जिनको सरकार द्वारा कोई आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होती है।

भारत में इस समय निम्नलिखित वायु-मार्ग हैं :—

मार्ग नं० १—(भूतपूर्व की एयरवेज लिमिटेड)—

कलकत्ता—विशाखापट्टनम—मद्रास-बंगलोर-१०३६ मील	सप्ताह में ४ बार
कलकत्ता—गोहाटी	दिन में २ बार
कलकत्ता—बंगलोर (दार्जिलिंग के लिये)	,, २ ,,
कलकत्ता—नागपुर-बम्बई	दिन में २ बार
कलकत्ता—ढाका	दिन में ३ बार
कलकत्ता—भुवनेश्वर-मद्रास-बंगलोर	सप्ताह में ३ बार

मार्ग नं० २—(भूतपूर्व की भारत ऐयरवेज लि०)

कलकत्ता—चटगाँव	दैनिक
कलकत्ता—बंकोक सिंगापुर-जकार्ता	सप्ताह में १ बार
कलकत्ता—पटना—बनारस-लखनऊ-दिल्ली	दैनिक
कलकत्ता—अमरतला-सिलचर-इम्फाल	दैनिक
अगरतला—गोहाटी	सप्ताह में २ बार
गोहाटी—सिलचर-इम्फाल	सप्ताह में २ बार

मार्ग नं० ३—(भूतपूर्व की हिमालयन एविएशन ल०

बम्बई—करांची—जहदिन—काबुल	सप्ताह में ३ बार

मार्ग नं० ४—(भूतपूर्व की इण्डिया नेशनल ऐयरवेज लिमिटेड, नई दिल्ली) :—

दिल्ली से लाहौर होकर पेशावर तक	२६४	दैनिक
दिल्ली से अमृतसर होकर श्रीनगर तक	२४५	दैनिक
दिल्ली से कानपुर व प्रयाग होकर कलकत्ता	८१२	दैनिक
दिल्ली से जोधपुर होकर करांची तक	६८३	सप्ताह में ५ बार
कलकत्ता —काठमांडू—पटना	—	

मार्ग नं० ५—(भूतपूर्व की दक्खन एयरवेज इंडिया लि०, बेगमपेट):—

दिल्ली, भोपाल, नागपुर, हैदराबाद, मद्रास	११५५	दैनिक
हैदराबाद—बंगलौर	३१६	सप्ताह में ४ बार
हैरराबाद—बम्बई	३८७	दैनिक
बम्बई—नागपुर—कलकत्ता—	३८७	दैनिक

मार्ग नं० ६—(भूतपूर्व की एयर इण्डिया लिमिटेड, बम्बई) :—

	मील	चलन
करांची—अहमदाबाद, बम्बई	७५०	दैनिक
बम्बई—मद्रास, कोलम्बो	१७८०	दैनिक
बम्बई— कलकत्ता	१०३८	दैनिक
मद्रास—बंगलौर—कोयम्बटूर—कोचीन त्रिवेद्रम ।	५०६	दैनिक
बम्बई— दिल्ली—	—	,,

मार्ग नं० ७—(भूतपूर्व की एयर सर्विस आफ इण्डिया लि०, बम्बई):—

बम्बई से पोरबन्दर, जामनगर से भुज तक	६२०	सप्ताह में ५ बार
बम्बई—भावनगर-राजकोट	२००	साप्ताहिक
बम्बई— ग्वालियर—दिल्ली—लखनऊ	७४४	सप्ताह में २ बार
बम्बई—बेलगाँव-कोचीन		सप्ताह में ३ बार

मार्ग नं० ८—(भूतपूर्व की एयर इण्डिया इन्टरनेशल लि०)

कलकत्ता— दिल्ली-बम्बई-काहिरा—रोम डेसलडर्फ—जिनेवा-पेरिस-लन्दन	सप्ताह में ३ बार
बम्बई— करांची—अदन-नैरोबी	,, २ ,,

उपर्युक्त सर्विसों के अतिरिक्त भारत की कम्पनियाँ संयुक्त राज्य, वर्मा, चीन और जापान के साथ समुद्र पार सर्विसों का भी नियन्त्रण करती हैं। भारत में होकर जाने वाले मुख्य विदेशी हवाई मार्ग ये हैं : —

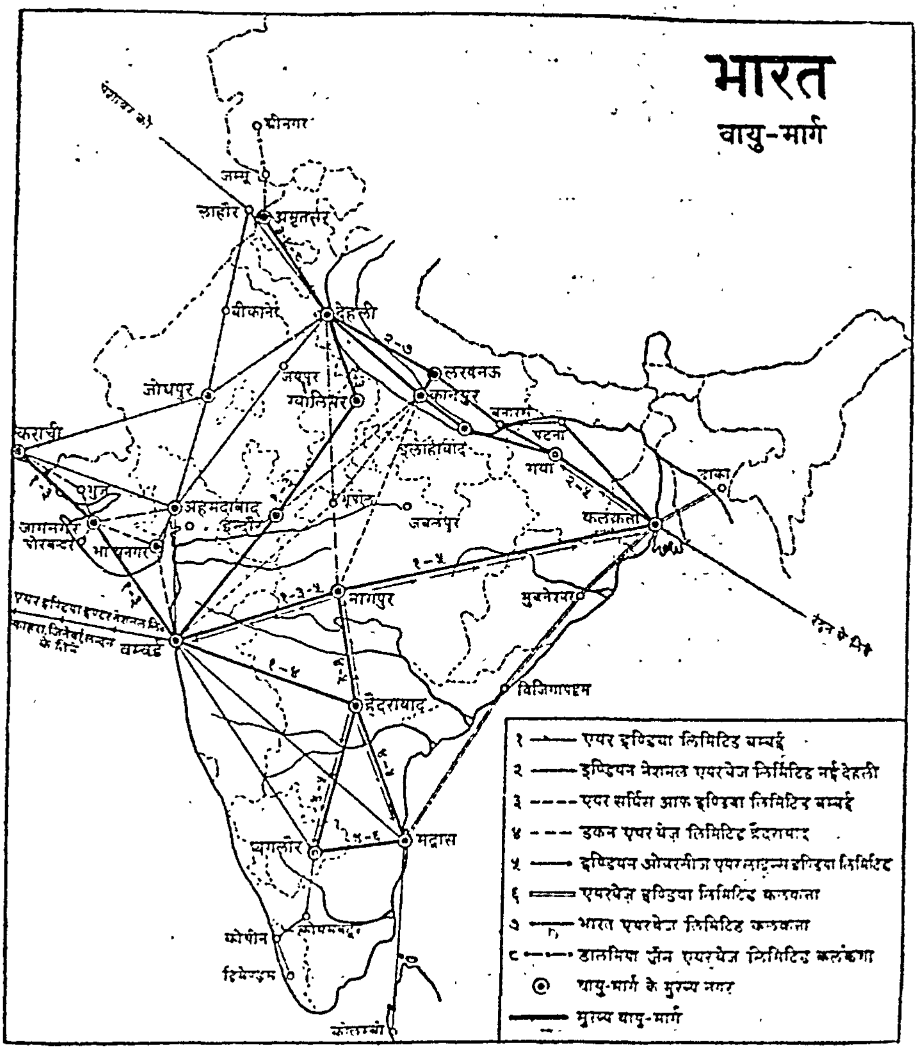

चित्र नं० २३८

(१) ब्रिटिश ओवरसीज ऐयरवेज कारपोरेशन (BOAC)

१. लंदन—माल्टा—काहिरो—बसरा—करांची दिल्ली—कलकत्ता	सप्ताह में ३ वार
२. साउथहैम्पटन—काहिरा—बेहरीन—करांची—कलकत्ता होकर रंगून—बैंकाक हांगकांग को	„ १ वार
३. लन्दन—रोम—काहिरा—करांची—कलकत्ता होकर सिंगापुर—डार्विन—सिडनी को	पखवाड़े में २ बार
४. लंदन—त्रिपोली—काहिरा—बसरा—करांची—दिल्ली	सप्ताह में ४ बार
५. लन्दन—काहिरो—बसरा—करांची—बम्बई—कोलम्बो	„ १ „

(२) चाइना नेशनल ऐयरवेज कारपोरेशन (Chinese National Airways Corporation)

१. शंघाई—हांगकांग—कूमिंग—रंगून—कलकत्ता सप्ताह में १ बार

(३) ऐयर सीलोन (Air Ceylon)

१. कोलम्बो—कांकेनसंतुराई—मद्रास " ५ "
२. कोलम्बो—कांकेनसंतुराई-त्रिचनापल्ली " २ "

(४) ऐयर फ्रांस (Air France)

१. पेरिस—त्रिपोली—काहिरा—दमिश्क—बसरा—
करांची—कलकत्ता होता हुआ सैगाँव को " २ "

(५) रायल डच ऐयर लाइन्स (K. L.M.)

१. न्यूयार्क—ग्लासगो—लन्दन—अकस्टरडैम—
काहिरो—बसरा—करांची—कलकत्ता होता हुआ
बैंगकोक—बटाविया से शंघाई को दैनिक

२. एमस्टरडैम—रोम—काहिरो—बसरा—करांची—
कलकत्ता होता हुआ बैंगकाक—सिंगापुर और
बटाविया को सप्ताह में ६ बार

(६) ओरियन्ट ऐयरवेज लि० (Orient Airways Ltd.)

१. कलकत्ता—चिटगाँव—अक्याव—रंगून
२. करांची—दिल्ली—ढाका—कलकत्ता

(७) पैन अमेरिकन वर्ल्ड ऐयरवेज (Pan American World Airways)

न्यूयार्क—ब्रुसेल्स—इस्तंबुल—दमिश्क—करांची—
दिल्ली—कलकत्ता होता हुआ बैंककाँक—शंघाई—मनीला—
टोकियो—होनोलूलू और सैनफ्रांसिसको को

(८) ट्रान्स वर्ल्ड ऐयरलाइन्स (TWA)

न्यूयार्क—शैनन—पैरिस—जिनोवा—रोम—एथेंस—बम्बई तक
काहिरा—बसरा—बम्बई को।

(९) पाक ऐयरवेज (Pak Airways Ltd)

१. करांची—दिल्ली २. ढाका—कलकत्ता
३. करांची—बम्बई ४. कलकत्ता—चिटगांव
५. ढाका—दिल्ली ६. दिल्ली—लाहौर

(१०) क्वेन्टास ऐम्पायर ऐयरवेज (Quantas Empire Airways)

१. सिडनी—डार्विन—सुराबिया—सिंगापुर—रंगून
कलकत्ता—करांची होता हुआ बेहरीन—बसरा
काहिरा—मारसलीज और साउथ हैम्पटन को

२. सिडनी-डार्विन—सिंगापुर—रंगून—कलकत्ता
काहिरा—रोम—लंदन को

(१०) स्कैन्डेनेवियन ऐयरवेज (Scandanavian Airways)

इस समय हमारे यहाँ से हवाई-सर्विसें न केवल पाश्ववर्ती देशों—लंका, ब्रह्मा, पाकिस्तान, ईरान, थाईलैण्ड और नैपाल को ही जाती हैं बल्कि पूर्वी भागों में सिंगापुर और पश्चिम की ओर काहिरा, रोम, जिनोवा, पेरिस, लंदन, अदन तथा नैरोबी को भी जाती हैं।

नीचे की तालिका में भारत में वायु-यातायात की प्रगति बताई गई है :—[1]

वर्ष	कुल उड़ान (मीलों में)	यात्रियों की संख्या ले जाई गई	डाक लेजाई गई	माल ढोया गया (हजार पौंड में)
१९३३	१५३	१५५	२२,४००	—
१९३८	१,४१२	२,१०४	५४६,५६०	—
१९४७	६,३६२,०००	२५५,०००	१,४०५,०००	५,६४८
१९५०	१८,८९६,०००	४५३,०००	८,३५६,०००	८००,००७
१९५५	२६,००५,०००	५६८,५००	११,११२,०००	२१३,७३४

प्रश्न

१. विश्व के व्यापार पर पनामा नहर का क्या प्रभाव पड़ा है? किन देशों को इसके बन जाने से विशेष लाभ हुआ है? (यू. पी. १९४०, अ. बोर्ड १९५२)

२. पनामा और स्वेज नहरों द्वारा विश्व के व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ा है? भारत के व्यापार को इन्होंने किस प्रकार प्रभावित किया है?
(अ. बोर्ड. १९४६, १९५०, १९५२, रा. वि. १९५२).

३. पनामा व स्वेज नहर की तुलना कीजिए (अ) बनावट और (ब) व्यापारिक महत्व के अनुसार (अ. बोर्ड १९४२, १९४४)

४. स्वेज नहर के मार्ग द्वारा उष्ण कटिबंध और शीतोष्ण कटिबंध के बीच में जो व्यापार होता है, उसका वर्णन करिए। और इस मार्ग की आर्थिक और व्यापारिक महत्ता पर प्रकाश डालिए।
(आ. बी. कॉम १९४३) (आ० बी० कॉम १९४७, १९५०)

५. "जो समुद्र पर राज्य करता है, वह विश्व के व्यापार पर राज्य करता है।" संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा इङ्गलैंड के उदाहरणों द्वारा इस कथन की सत्यता प्रकट करिए। (अ. बोर्ड १९४५, १९५०) (रा. वि १९४६)

६. "पनामा नहर का महत्त्व दक्षिणी अमेरिका उत्तरी अमेरिका के लिए अधिक है।" इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिए।" (अ. बोर्ड १९४५)
(आ० बी० कॉम, १९४६)

1. India, 1956, p, 254,

७. "सामुद्रिक-मार्गों पर किन भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।" विश्व के प्रमुख व्यापारिक मार्गों का वर्णन करते हुए बताइए कि उनके द्वारा किन वस्तुओं का व्यापार होता है। और उनके प्रमुख बन्दरगाह कौन-कौन से हैं? (यू पी. १९४६)

८. स्वेज नहर का विस्तृत वर्णन करते हुए उसके द्वारा होने वाले व्यापार को बताइए। (यू पी. १९४१) (आ० बी० कॉम, १९४३)

९. उत्तरी अटलांटिक महासागर का मानचित्र खींच कर सामुद्रिक मार्ग बताइए। इनमें कौनसा मार्ग प्रमुख है। (आ० बी० कॉम १९४४, १९५३)

१० केप-मार्ग का विस्तृत वर्णन करते हुए उसके द्वारा होने वाले व्यापार पर प्रकाश डालिए और बताइए कि आधुनिक काल में इसका महत्त्व अधिक क्यों हो गया है। (यू. पी. १९४२)

११, हिन्द महासागर के मार्गों को बताओ इन मार्गों द्वारा किन-किन बन्दरगाहों से तथा किन-किन वस्तुओं का व्यापार होता है? (यू. पी. १९४३)

१२. स्वेज और पनामा नहरों के तुलनात्मक लाभ बताइए।

(आ० बी० कॉम १९५१) (रा. वि. १९५१)

१३ नील नदी के प्रवाह क्षेत्र का वर्णन करते हुए बताइए कि इसका निकटवर्ती प्रदेश के व्यापार व कृषि पर क्या प्रभाव पड़ा है? (एम० ए० १९४७, १९४९)

१४. वायु यातायात के विकास को कौन-कौनसी बातें प्रभावित करती हैं? अपने उत्तर की पुष्टि उत्तरी अमेरिका या मध्य यूरोप के वायु मार्गों द्वारा करिए।

(एम० ए० १९४९)

१५. दक्षिणी महाद्वीपों के तटीय भागों के विकास में रेल मार्गों और सड़क यातायात का सापेक्षिक महत्त्व बताइए। (एम० ए० १९४९)

१६. आपकी राय में रूस के व्यापार के विकास में भीतरी जल-मार्गों का कहाँ तक हाथ है? (एम० ए० १९५०)

१७. केप-मार्ग से न्यूज़ीलैंड तक का चित्र खींच कर इस मार्ग के प्रमुख बन्दरगाहों पर टिप्पणियाँ लिखिए। (एम० ए. १९५०)

१८. राइन तथा डैन्यूब नदियों के जल-मार्ग के रूप में गुण और दोष बताइए।

(एम० ए० १९५०)

१९. "सड़कें मानव की सबसे आधारभूत संस्था है।" इस कथन की पुष्टि करिये और वर्तमान विश्व में सड़कों का वर्णन दीजिए। (एम० ए० १९५१)

२०. दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका के व्यापार में अमेजन तथा काङ्गो नदियाँ कहाँ तक जल-मार्ग के रूप में सहायक हुई हैं? (एम० ए० १९५१)

२१. "यद्यपि पनामा नहर के खुल जाने से सामुद्रिक मार्गों में बड़ा परिवर्तन हो गया है किन्तु यह संभव नहीं कि इसका विश्व के व्यापार पर इतना ही प्रभाव है जितना स्वेज नहर के खुलने से पड़ा है।" इस कथन को समझाइये।

(एम० ए० १९५१)

२२. "रेल और समुद्री मार्गों पर भौगोलिक अवस्थाओं का क्या प्रभाव पड़ता है ?" भारत के उदाहरण द्वारा समझाइए । (आ० बी० कॉम, १९५०)

२३. जल, थल और वायु मार्गों के तुलनात्मक लाभ बताइए ।

२४. विश्व के विभिन्न भागों में विशेषकर भारत में भिन्न-भिन्न प्रकार के यातायात के साधनों पर भौगोलिक परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ता है ?

२५. रूस अथवा कनाडा के आर्थिक विकास में रेलों के महत्व को समझाइए ।

२६. "मोटर यातायात का स्थान और उसका महत्व रेल-मार्गों और घोड़े द्वारा होने वाले यातायात के मध्य का है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

२७. किसी भी एक महाद्वीपीय रेल-मार्ग का वर्णन करते हुए यह बताइए कि भूमि की बनावट, जलवायु और अन्तर्राष्ट्रीय सीमा-रेखाओं का उस पर किस प्रकार प्रभाव पड़ा है ?

२८. ट्रांस साइबेरियन रेलवे या केनेडियन पैसेफिक रेलवे का आर्थिक महत्व बताइए । (आ० बी० कॉम, १९४४, १९४५)

२९. विश्व की रेलों का वर्णन करिए । (आ० बी० कॉम, १९४७, १९५१, १९५२)

३०. विश्व के अभी तक अर्द्ध विकसित और अमहत्वपूर्ण क्षेत्रों का विकास करने में आधुनिक युग में वायु-यातायात का क्या महत्व रहा है ? (एम० ए० १९५१)

३१. निम्नलिखित की आर्थिक महत्ता बताइए :—

(१) कोई भी दो ट्रांस-कांटिनेंटल रेलें ।

(२) पनामा और स्वेज को छोड़ कर कोई भी दो जहाजी नहरें ।

(३) दो अन्तर्राष्ट्रीय वायु-मार्ग ।

३२. वातावरण की विभिन्न स्थितियों में यातायात के लिए 'मनुष्य' का क्या महत्व और स्थान है ?

३३. उत्तरी अमेरिका के व्यापार और यातायात में बड़ी झीलों का क्या महत्व है ? चित्र की सहायता से समझाइए । (आगरा, एम० ए० १९५३)

३४. सैंट लारैन्स नदी का महत्व व्यापार के लिए कहाँ तक है ? इसको बढ़ाने के लिए क्या किया गया है ? (एम० ए० १९५३)

३५. अटलांटिक महासागर को प्रायः 'मध्यवर्ती सागर' कहा जाता है ? यह कहाँ तक सत्य है ? इसकी व्यापारिक और आर्थिक तुलना हिंद महासागर से करिए । (एम० ए० १९५४)

३६. विश्व में वायु-यातायात के विकास का संक्षिप्त इतिहास बताइए । इसका आर्थिक महत्व क्या है, कुछ अन्तर्राष्ट्रीय वायु-मार्गों के दृष्टांत द्वारा समझाओ । (एम० ए० १९५४)

३७. भारत में वायु-यातायात का विस्तृत वर्णन करिये तथा वायु-मार्गों को बताने वाला मानचित्र भी खींचिए । (एम० ए० १९५५)

३८. नीचे लिखों पर विस्तृत टिप्पणियाँ लिखिए :—
(क) स्वेज नहर तथा उसका भौगोलिक और सामरिक महत्व
(ख) राइन नदी का मार्ग (एम० ए० १९५६)

३९. विशिष्ट उदाहरणों द्वारा बताइए कि किसी देश के आर्थिक विकास में रेलों का क्या महत्व है ? (एम० ए०)

४०. "जो राष्ट्र समुद्र को नहीं छूता वह उस घर की तरह है जो सड़क-मार्ग पर नहीं है।" इस कथन की पुष्टि करिये।

४१. यांगटसीक्यांग और नील नदी की जल मार्गों की दृष्टि से तुलना करिये।

४२. विश्व के प्रमुख हवाई-मार्गों का वर्णन करिये। इस संबंध में भारत के हवाई-मार्गों पर भी प्रकाश डालिए। (यू० पी० १९४५, १९४६) (अ० बोर्ड १९४१) (रा० वि० १९४८)

४३. कौन-कौन सी परिस्थितियाँ नागरिक उड्डयन और हवाई-मार्गों को प्रभावित करती हैं? गत महायुद्ध ने भारत और इङ्गलैंड के बीच के वायु मार्गों को प्रभावित किया ? भारत के प्रमुख वायु-मार्गों का वर्णन करिये। (यू० पी० १९४९)

४४. स्थल- जल और वायु मार्गों के गुण विशेषों की तुलनात्मक विवेचना कीजिये, और यह बताइये कि ये विभिन्न साधन किन-किन वस्तुओं के व्यापार के लिये उपयुक्त हैं। (यू० पी० १९५०)

४५. भविष्य में हवाई-यातायात किस प्रकार विश्व के व्यापार को प्रभावित कर सकता है ? इस संबंध में विश्व के प्रमुख हवाई-मार्गों तथा उनके हवाई अड्डों का वर्णन करिये। (आ० बी० कॉम, १९४७)

लंदन, लिवरपूल, लाहावें, एन्टवर्प, हैम्बर्ग, न्यूयार्क, बोस्टन, सैन-फ्राँसिसको, रायोडीजोनेरो और सिडनी बन्दरगाह संसार के मुख्य गहरे बन्दरगाहों में से हैं।

(२) धनी और आबाद पृष्ठभूमि (Rich and populous Hinterland) :—किसी भी बन्दरगाह की प्रसिद्धि उसकी पृष्ठ-भूमि की उपज पर निर्भर रहती है—क्योंकि जितनी ही पृष्ठ-भूमि घनी होगी उतना ही बन्दरगाह भी समृद्धिशाली होगा। पृष्ठ-भूमि वह स्थान है जो किसी बन्दरगाह या समुद्र-तट के पास हो और जहाँ से सामान निर्यात किया जाता है अथवा जिसके अन्दर देश का आयात वितरित किया जाता हो।[1] किसी बन्दरगाह की उन्नति के लिए पृष्ठदेश का महत्व अधिक होता है। जिस प्रकार अक्याव (ब्रह्मा) बन्दरगाह की पृष्ठ-भूमि पथरीली है और जैसे बिलोचिस्तान में ग्वाड़र का बन्दरगाह रेतीला है ऐसे बन्दरगाहों की उन्नति में बाधा पवश्य पड़ती है। बन्दरगाहों के निकट सम-चौरस मैदान वाला पृष्ठ-देश जहाँ खेती सरलता से की जा सके या उद्योग-धंधों का स्थानीयकरण हो सके अथवा जहाँ घनी आबादी हो, हमेशा उन्नति करता जायेगा, यद्यपि जैसे कलकत्ता का पोताश्रय उत्तम नहीं है किन्तु पृष्ठ-भूमि (गङ्गा-सिंधु का मैदान) के उपजाऊ होने के कारण इस बन्दरगाह का महत्व भारत के लिये अधिक है।

पृष्ठ-भूमि उपजाऊ होना चाहिये जिससे वह दूसरे देशों की वस्तुयें लेकर उसके बदले में अपनी वस्तुयें दे सके। साथ ही पृष्ठ-भूमि में घनी आबादी होना भी जरूरी है, जिससे बाहर की वस्तुओं की माँग हो और जहाज सामान से भरे हुये बन्दरगाह तक आया-जाया करें। संक्षेप में घनी आबादी, अच्छी पैदावार और आवागमन के उन्नत साधन पृष्ठ-भूमि को उपजाऊ बना देते हैं।

पृष्ठ-भूमि दो भागों में विभाजित की जा सकती है :—

(१) संग्राहक (Contributory) (२) वितरक (Distributory) संग्राहक पृष्ठ-भूमि से मतलब उस पृष्ठ-भूमि से है जो खाद्य पदार्थ और कच्चा माल बाहर भेजती है। वितरक पृष्ठ-भूमि अपने निवासियों के लिए कच्चा सामान और कल-कारखानों के लिए पक्का माल और कच्चा माल बाहर से मंगाती है। किन्तु प्रायः सभी बन्दरगाह दोनों प्रकार के ही काम करते हैं।

कुछ पृष्ठ-भूमियाँ बहुत से बन्दरगाहों की पूर्ति करती हैं जैसे करांची द्वारा होने वाला अरब सागर के देशों के व्यापार के लिए पंजाब देश उसकी पृष्ठ-भूमि का काम करता है—उसी प्रकार पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी से होने वाले व्यापार के लिए यह कलकत्ता की पृष्ठ-भूमि का काम देता है। बहुधा जिस बन्दरगाह में व्यापार की सुविधाएँ होती हैं वहाँ ट्राफिक अधिक रहता है।

---

१. "A hinterland is a land which lies behind a sea-port or a sea-board and supplies the bulk of the exports, and in which are distributed in bulk of the imports of that sea-board or sea-port, either generally or in relation to certain uses"

—Chisholms Handbook, p. 107

उदाहरणार्थ बम्बई और सूरत को ले लीजिये सूरत बन्दरगाह की अपेक्षा बम्बई बन्दरगाह पर ट्राफिक अधिक रहता है क्योंकि वहाँ सूरत से अधिक व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हैं।

३. आवागमन के साधन (Developed Means of Transport : सभी बन्दरगाह अपनी पृष्ठ-भूमि से आवागमन के उन्नत साधनों द्वारा जुड़े होने चाहिए जिससे बन्दरगाह से सामान आसानी से शीघ्र पृष्ठ-भूमि में भेजा जा सके तथा वहाँ का सामान भी शीघ्र बन्दरगाह तक बाहर भेजने के लिए लाया जा सके—किसी बन्दरगाह को जिसे अधिक आवागमन के साधन उपलब्ध होंगे उतनी ही विस्तृत पृष्ठ-भूमि भी उस बन्दरगाह की होगी—भारत में रेलवे (दक्षिण में) बनाने से पहले बम्बई इतना बड़ा बन्दरगाह नहीं था। यह कलकत्ते से भी छोटा था। परन्तु अब पश्चिमी घाट के कट जाने से यह पठारी और और कड़ी मिट्टी की विस्तृत पृष्ठ-भूमि से जुड़ गया हैं, जो बहुत उपजाऊ है। इसी प्रकार देश से सभी भागों से रेल-मार्गों द्वारा जुड़े होने के कारण उन्नतिशील हो गया है। न्यूयार्क का बन्दरगाह यद्यपि वह इंगलैंड से वोस्टन बन्दरगाह की अपेक्षा दूर है पर संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का अधिकतर व्यापार इसी बन्दरगाह द्वारा है, इससे यह सिद्ध हो जाता है कि यद्यपि कोई पृष्ठ-भूमि उपजाऊ है परन्तु बन्दरगाह तक आवागमन के साधन नहीं हैं तो वह अधिक बढ़ नहीं सकता। यद्यपि सैंट लारेंस नदी पर समुद्र से १०० मील दूर मांट्रियल का बन्दरगाह स्थित है किन्तु फिर भी नोबास्कोशिया के टैलीफैन्स बन्दरगाह की अपेक्षा इसका महत्व व्यापार के लिए अधिक हैं।

विश्व के अधिकांश बन्दरगाह नदियों के मुहानें पर ही पाये जाते है। फिलाडेलफिया- वोस्टन, बाल्टीमोर (अमेरिका में) लन्दन, लिवरपूल टेम्स, और मर्सीनदी पर; हैम्बर्ग एल्ब नदी पर; सिकन्दरिया नील पर; कलकत्ता गंगा पर; शंघाई यांग्टसी पर; तथा कैंटन और हांगकांग क्रमशः सी और तुंग नदियों के मुहाने के बन्दरगाह ही हैं।

(४) जलवायु (Climate) बन्दरगाह की स्थिति पर उस स्थान की जलवायु का भी काफी प्रभाव पड़ता है। यदि जलवायु ठीक होगा तो साल भर तक बन्दरगाह खुले रहेंगे जिससे व्यापार में किसी भी प्रकार की हानि नहीं होगी, परन्तु यदि बन्दरगाह के समीप साल के अधिकांश भागों में बर्फ जमती है तो वह उन्नत नहीं हो सकता। जैसे रूस के उत्तरी बन्दरगाहों की यही दशा है, पर आजकल अब जहाजों के आगे ऐसे यन्त्र लगा दिये जाते हैं जिससे समुद्र का बर्फ हटता जाता है और जहाज़ आसानी से बन्दरगाह तक पहुँच सकते हैं। बाल्टिक सागर के बन्दरगाहों की भी यही दशा है किन्तु योरोप के उत्तर-पश्चिमी बन्दरगाह साल भर खुले रहते हैं क्योकि वहां गल्फ स्ट्रीम बहती है किन्तु कनाडा के उत्तरी और पूर्वी बन्दरगाह लेब्रोडर की ठंडी धारा के कारण व' में सिर्फ नौ महीने ही खुले रहते है यदि जहाजों में बर्फ तोड़ने वाले यन्त्र (Ice Breakers) काम में नहीं लाये जाते तो जर्मनी के उत्तरी बन्दरगाह भी सर्दी में किसी काम के नहीं रहते। सर्दी में कनाडा का व्यापार हैलीफैक्स और पोर्टवैंड द्वारा होता है क्योंकि सैंटलारेंस नदी सर्दी के कई महीनों

लंदन, लिवरपूल, लाहावें, एन्टवर्प, हैम्बर्ग, न्यूयार्क, बोस्टन, सैनफ्राँसिसको, रायोडीजोनेरो और सिडनी बन्दरगाह संसार के मुख्य गहरे बन्दरगाहों में से हैं।

(२) धनी और आबाद पृष्ठभूमि (Rich and populous Hinterland) :—किसी भी बन्दरगाह की प्रसिद्धि उसकी पृष्ठ-भूमि की उपज पर निर्भर रहती है—क्योंकि जितनी ही पृष्ठ-भूमि घनी होगी उतना ही बन्दरगाह भी समृद्धिशाली होगा। पृष्ठ-भूमि वह स्थान है जो किसी बन्दरगाह या समुद्र-तट के पास हो और जहाँ से सामान निर्यात किया जाता है अथवा जिसके अन्दर देश का आयात वितरित किया जाता हो।[1] किसी बन्दरगाह की उन्नति के लिए पृष्ठदेश का महत्व अधिक होता है। जिस प्रकार अक्याव (ब्रह्मा) बन्दरगाह की पृष्ठ-भूमि पथरीली है और जैसे बिलोचिस्तान में ग्वाड़र का बन्दरगाह रेतीला है ऐसे बन्दरगाहों की उन्नति में बाधा पवश्य पड़ती है। बन्दरगाहों के निकट सम-चौरस मैदान वाला पृष्ठ-देश जहाँ खेती सरलता से की जा सके या उद्योग-धंधों का स्थानीयकरण हो सकें अथवा जहाँ घनी आबादी हो, हमेशा उन्नति करता जायेगा, यद्यपि जैसे कलकत्ता का पोताश्रय उत्तम नहीं है किन्तु पृष्ठ-भूमि (गङ्गा-सिंधु का मैदान) के उपजाऊ होने के कारण इस बन्दरगाह का महत्व भारत के लिये अधिक है।

पृष्ठ-भूमि उपजाऊ होना चाहिये जिससे वह दूसरे देशों की वस्तुयें लेकर उसके बदले में अपनी वस्तुयें दे सके। साथ ही पृष्ठ-भूमि में घनी आबादी होना भी जरूरी है, जिससे बाहर की वस्तुओं की माँग हो और जहाज सामान से भरे हुये बन्दरगाह तक आया-जाया करें। संक्षेप में घनी आबादी, अच्छी पैदावार और आवागमन के उन्नत साधन पृष्ठ-भूमि को उपजाऊ बना देते हैं।

पृष्ठ-भूमि दो भागों में विभाजित की जा सकती है :—

(१) संग्राहक (Contributory) (२) वितरक (Distributory) संग्राहक पृष्ठ-भूमि से मतलब उस पृष्ठ-भूमि से है जो खाद्य पदार्थ और कच्चा माल बाहर भेजती है। वितरक पृष्ठ-भूमि अपने निवासियों के लिए कच्चा सामान और कल-कारखानों के लिए पक्का माल और कच्चा माल बाहर से मंगाती है। किन्तु प्रायः सभी बन्दरगाह दोनों प्रकार के ही काम करते हैं।

कुछ पृष्ठ-भूमियाँ बहुत से बन्दरगाहों की पूर्ति करती हैं जैसे करांची द्वारा होने वाला अरब सागर के देशों के व्यापार के लिए पंजाब देश उसकी पृष्ठ-भूमि का काम करता है—उसी प्रकार पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी से होने वाले व्यापार के लिए यह कलकत्ता की पृष्ठ-भूमि का काम देता है। बहुधा जिस बन्दरगाह में व्यापार की सुविधाएँ होती हैं वहाँ ट्राफिक अधिक रहता है।

---

१. "A hinterland is a land which lies behind a sea-port or a sea-board and supplies the bulk of the exports, and in which are distributed in bulk of the imports of that sea-board or sea-port, either generally or in relation to certain uses"

—Chisholms Handbook, p. 107

मार्सेलीज—फ्राँस का प्रमुख बन्दरगाह दक्षिणी फ्रांस में रोन के मुहाने से ३० मील दूर स्थित है, जो एक नहर द्वारा रोन नदी से जोड़ दिया गया है। स्वेज नहर के खुल जाने से इसका व्यापारिक महत्व अधिक बढ़ गया है। अपने पृष्ठ देश से नदियों और रेलों से जुड़ा है। यहाँ के मुख्य उद्योग जहाज, एंजिन, साबुन, शक्कर, रेशम बनाना है। मुख्य आयात गेहूँ, तिलहन, गोले का तेल, रेशम, शराब और कच्चा लोहा है।

कुस्तुनतुनिया—बन्दरगाह बासफोरस जल डमरू-मध्य पर स्थित है। यह यूरोप और एशिया के मध्य का प्रवेश-द्वार है। दक्षिणी रूस और काला सागर के निकटवर्ती देशों का व्यापार इसी बन्दरगाह से होता है। इसका पुर्ननिर्यात व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा है। पूर्व के देशों से शाल-दुशाले, कालीन, इत्र, तम्बाखू, चमड़ा इत्यादि मंगाकर यूरोपीय देशों को भेजी जाती है।

लन्दन—ब्रिटेन की राजधानी और विश्व का सबसे बड़ा नगर है जो टेम्स नदी के मुहाने पर समुद्र से ६५ मील दूर ऐसे स्थान पर स्थित है जहाँ तक स्टीमर जा सकते हैं। यह विश्व का सबसे बड़ा पुनः वितरक केन्द्र है। चाय, कहवा, रबड़, ऊन, अनाज, माँस, लकड़ी, शराब, फल, मक्खन आदि वस्तुयें

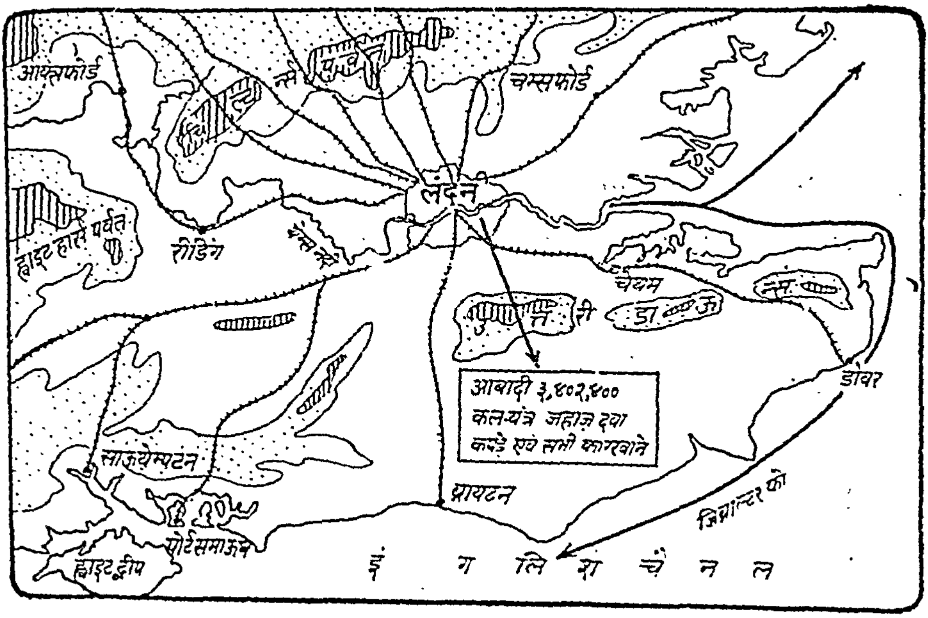

चित्र २३९— लंदन

विदेशों से आयात करके यूरोप के दूसरे देशों को निर्यात की जाती हैं। यह एक बड़ा व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्र भी है, जहाँ कागज, रासायनिक पदार्थ, रेशम, लोहे, जूते, शराब, बिजली का सामान तथा अन्य सामान बनाने के बड़े-बड़े कारखाने हैं। यह रेलों द्वारा ब्रिटेन के सभी भागों से मिला है।

लिवरपूल—मरसी नदी के मुहाने पर स्थित ब्रिटेन का दूसरा बड़ा बन्दरगाह है। इसके द्वारा ब्रिटेन का $\frac{1}{3}$ व्यापार होता है। इसका पृष्ठ देश बड़ा

आदि हैं। ब्रिटेन का व्यापारी अपने किसी भी छोटे वन्दरगाह से सामान इकट्ठा कर बड़े वन्दरगाहों को भेज देता है और फिर इसी प्रकार बड़े वन्दरगाह से छोटे छोटे वन्दरगाहों को सामान लाया जा सकता है। लंदन इसी तरह ब्रिटेन के बन्दरगाहों के साथ एक दलाल का काम कर रहा है।

देशी वन्दरगाह (Domestic Port) :—अपने देशी व्यापार के लिये होते हैं। इन बन्दरगाहों की उत्पत्ति इनकी पृष्ठ-भूमि अथवा सामुद्रिक मार्गों की उन्नति पर निर्भर है।

व्यापार (Traffic) की दृष्टि से भी वन्दरगाहों का वर्गीकरण किया जा सकता है। (१) यात्री वन्दरगाह (Passenger port) और (२) माल के वन्दरगाह (freight ports)। विश्व के कुछ ही वन्दरगाहों पर यात्रियों का जमाव अधिक होता है। इङ्गलैण्ड में साउथ हैम्पटन तथा प्लाईमाऊथ, फ्राँस में चैरबोर्ग तथा लाहावें, अर्जेनटाइना में ला प्लाटा और भारत में बंबई इस प्रकार के वन्दरगाहों के मुख्य उदाहरण हैं।

(२) माल उतारने और लादने वाले वन्दरगाह प्राय: सभी देशों में पाये जाते हैं। इनमें भी कुछ वन्दरगाह केवल कच्चा माल ही लादते हैं। जैसे—टैम्पा से फॉस्फेट, ऐन्टाफोगस्टाया इक्वीक से शोरा, वैन्कूवर से लकड़ियाँ, लूलिया या विलवैओ से कच्चा लोहा, जैम्बोगना से खोपरा, विशाखापट्टनम से मैंगनीज; कार्दिफ, न्यूकैसिल और नार्फोक से कोयला ही अधिक लादा जाता है।

अन्य बन्दरगाहों से कारखानों के निमित तैयार माल लादा जाता है। इनके मुख्य उदाहरण हैम्बर्ग, कलकत्ता, न्यूयार्क, लंदन, कोबे, योकोहामा और रॉटनडैम हैं।

विश्व के प्रमुख वन्दरगाह

(क) यूरोप के महत्वपूर्ण वन्दरगाह उत्तर-पश्चिमी तट पर स्थित है। यहाँ के मुख्य वन्दरगाह ये हैं :—

हैम्बर्ग—जर्मनी का सबसे महत्वपूर्ण और महाद्वीपीय यूरोप का सबसे प्रधान वन्दरगाह एल्ब नदी के मुहाने पर स्थित है। यह अपनी पृष्ठ-भूमि से (जिसमें कृषि और औद्योगिक चीजें पैदा होती हैं), नदियों, नहरों, सड़कों तथा रेल-मार्गों द्वारा जुड़ा है। यहाँ के मुख्य धंधे जहाज बनाना, दवाइयाँ, शराब, सिगरेट, रासायनिक पदार्थ तथा रबड़ का सामान तथा जूट और साबुन बनाना है। यह मुख्यत: पुन: वितरक केन्द्र (Centre port) है। यहाँ से कहवा, शक्कर, तम्बाकू, चावल, रेशम, जूट, लोहा, कोयला और तेल यूरोप के देशों को वितरित की जाती है।

रॉटडॉम—राइन की सहायक नदी न्यूमास नदी पर स्थित है जो समुद्र से गहरी नहर (न्यू वाटर वे) द्वारा जुड़ा है। इसका पृष्ठ देश (जर्मनी का औद्योगिक प्रदेश वेस्ट फेलिया हालैण्ड तथा बेलजियम है) बड़ा कारबारी और धनी है। यहाँ से मक्खन, सुखाया हुआ दूध, कोयला, शराब, लिनेन इत्यादि निर्यात किये जाते हैं। यहाँ साबुन, शराब तथा जहाज बनाने के कारखाने हैं।

ग्लासगो—का उत्तम बन्दरगाह क्लाइड नदी के मुहाने पर स्थित है। इसके पृष्ठ देश में लोहा और कोयला अधिक मिलने के कारण इसका निकटवर्ती प्रदेश विश्व में सबसे अधिक जहाज बनाने वाला भाग है। यहाँ कोयले और फौलाद, लकड़ी, चमड़े, जूते, ऊनी कपड़ा बनाने के कारखाने भी हैं। यहाँ के मुख्य आयात अनाज, कच्चा लोहा, फल, सेल और लकड़ी तथा निर्यात लोहे और स्पात का सामान, जहाज, ऊनी-सूती कपड़ा, कोयला, शराब और रासायनिक पदार्थ हैं।

बोर्डो : फ्रांस में गारोन नदी के मुहाने से ६० मील भीतर की ओर स्थित दक्षिणी-पश्चिमी तट का मुख्य बन्दरगाह है। यहाँ से शराब, लकड़ी तथा जहाजी सामान बाहर भेजे जाते हैं। इसका पृष्ठ-देश अंगूरों की पैदावार के लिए बड़ा प्रसिद्ध है। यहाँ चाकलेट, शराब, लोहे और चमड़े का सामान बनाना तथा चीनी और पेट्रोल साफ करने के कारखाने हैं।

एम्सटरडम : ज्वीडरजी नदी के बायें किनारे पर एम्सबल और नहरों द्वारा बनाये गये छोटे-छोटे अनेकों टापुओं पर बसा है। इन नगर द्वारा पूर्वी देशों का बहुत व्यापार होता है। यहाँ शराब, रसायन, और चीनी बनाने के कारखाने हैं। यह नगर हीरा तराशने तथा पालिश करने के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ इंडोनेशिया से कहवा, रबड़, चाय, टिन, चावल, मसाले तथा तम्बाकू आदि वस्तुएँ आती हैं।

ओसलो नार्वे देश की राजधानी है जो दक्षिणी पूर्वी भाग में ओसलो नामक कटान पर स्थित है। ग्लोमेन घाटी द्वारा यह भीतरी भागों से जुड़ा है। इसका पृष्ट देश मूल्यवान लकड़ी और खनिज पदार्थों तथा जल-विद्युत में बहुत धनी है। इसका बन्दरगाह शीतकाल में ३ महीने तक बर्फ से जम जाता है अतः मशीनों द्वारा बर्फ को तोड़ना पड़ता है। यहाँ लकड़ी-चिराई, लकड़ी की लुग्दी, कागज, दियासलाई, शराब, तथा ऊनी सूती कपड़ा बनाने के कई कारखाने हैं। यहाँ के मुख्य निर्यात लकड़ी, लुग्दी, कागज दियासलाई, मछली का तेल, मक्खन सील मछली की खालें हैं तथा प्रमुख आयात कोयला, लोहा, मशीनें और सूत हैं।

वेनिस : पो नदी के डेल्टा के उत्तर में एड्रियाटिक सागर का प्रसिद्ध बन्दरगाह है, जो अनूप के किनारे १२० द्वीपों पर बसा है। इसको एड्रियाटिक सागर की रानी भी कहते हैं। यहाँ बैंगकाक और श्रीनगर की भाँति लोग नावों पर मकान बना कर रहते हैं। एक दूसरे स्थान को भी गोंडोला नामक नावों द्वारा ही आना जाना होता है। पूर्वी देशों की बहुमूल्य वस्तुएँ यहाँ वितरणार्थ लाइ जाती थीं और यहाँ से यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों को उनका पुर्ननिर्यात कर दिया जाता था किन्तु केप मार्ग के खुल जाने से इसका महत्व अब जाता रहा है। यहाँ शीशे का सामान तथा फीते और लेसें भी बनाई जाती हैं।

जेनेवा : पश्चिम की ओर जिनाओ की खाड़ी पर स्थित इटली का प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह रेल मार्गों द्वारा ट्यूरिन, और मिलन से मिला है। स्वीटजरलैंड और जर्मनी का व्यापार भी इसी बन्दरगाह द्वारा होता है।

औद्योगिक क्षेत्र है जो लङ्काशायर, यार्कशायर, स्टॅफर्डशायर और चेशायर के प्रदेश तक फैला है। यहाँ आटा पीसने शक्कर बनाने, सूती कपड़े बनाने, स्पात,

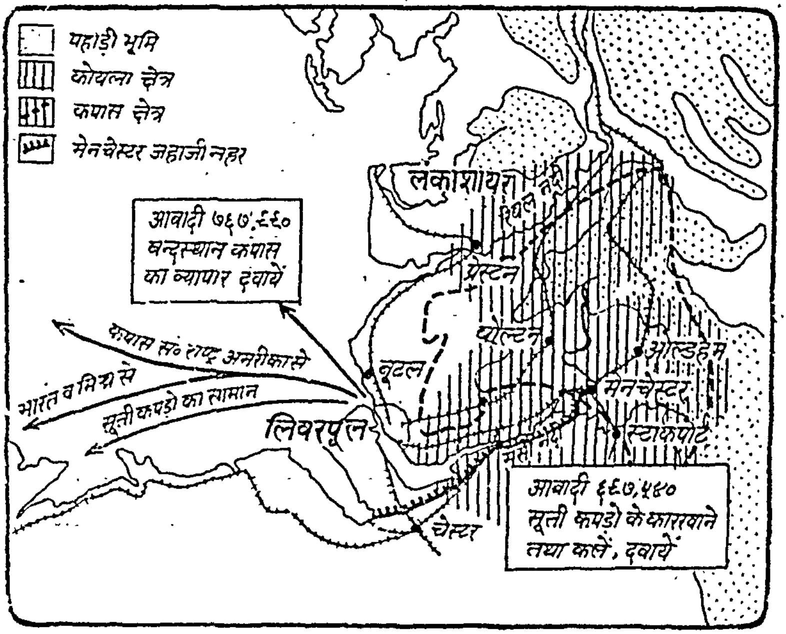

चित्र २४०—लिवरपूल

रासायनिक पदार्थ और साबुन बनाने के भी कारखाने हैं। यहाँ कपास, अनाज, चमड़ा, रबड़, तम्बाकू, गिरी का तेल, मक्खन आदि विदेशों से मँगाया

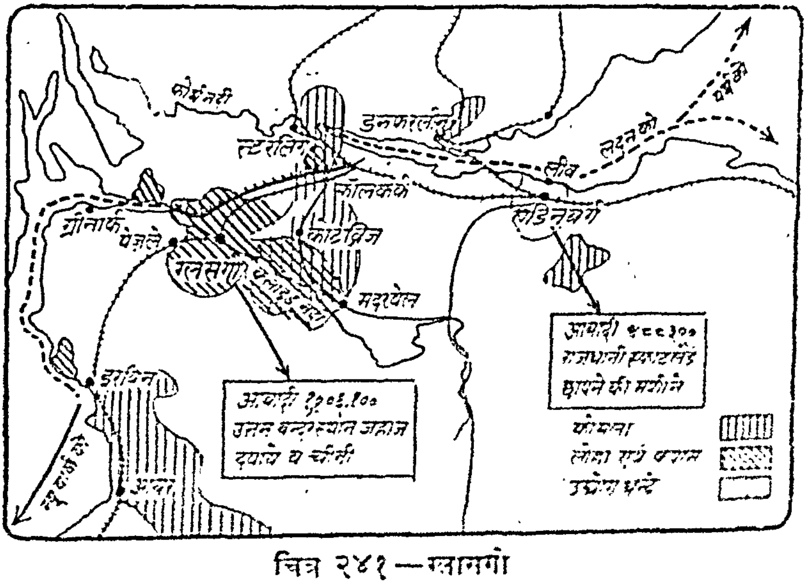

चित्र २४१—ग्लासगो

जाता है। यहाँ के मुख्य निर्यात सूती-ऊनी वस्त्र, लोहे-स्पात का सामान, रासायनिक पदार्थ और चीनी मिट्टी के बर्तन हैं।

स्केण्डीनेविया जाने वाला मार्ग समुद्र पार करता है। इस प्रकार कोपेनहेगन जल और स्थल मार्गों के जङ्क्शन पर बसा है। बाल्टिक का अधिकतर व्यापार

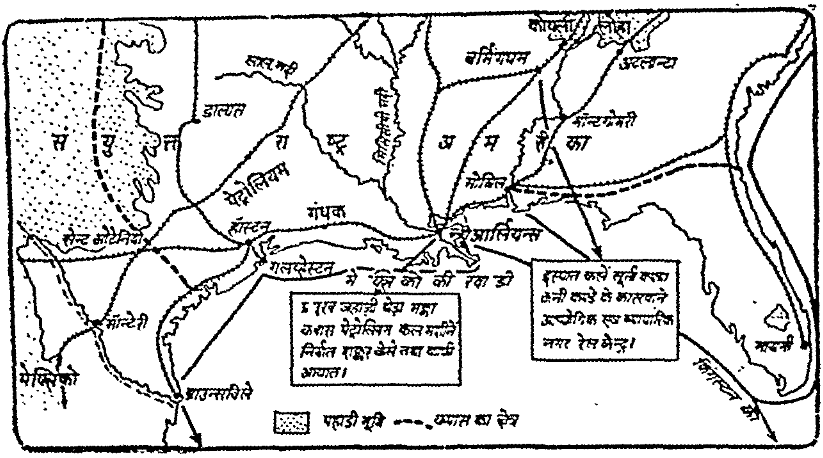

चित्र २४३

और बाल्टिक तटवर्ती देशों का अधिकतर व्यापार यही शहर करता है, क्योंकि इसे मार्के की स्थिति और व्यापारिक मार्गों की सुविधायें प्राप्त है। डेनमार्क के

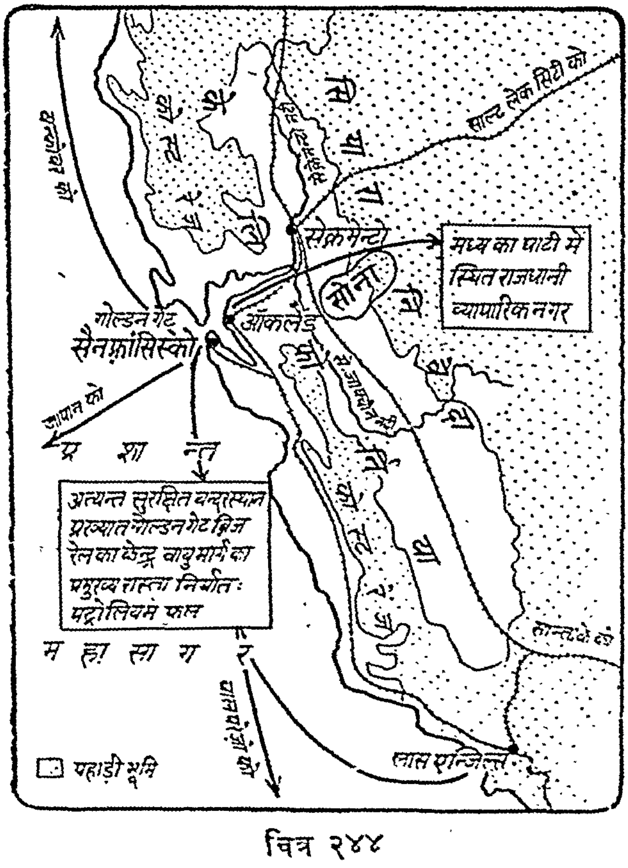

चित्र २४४

कोपेनहेगन

यह डेनमार्क देश की राजधानी है। इसकी स्थिति जीलैंड के उपजाऊ और मध्यवर्ती द्वीप पर है। इसकी आबादी ७ लाख ७५ हजार है जो कि सारे डेनमार्क का पाँचवा भाग है। इस प्रकार यह शहर सारे डेनमार्क पर प्रभाव

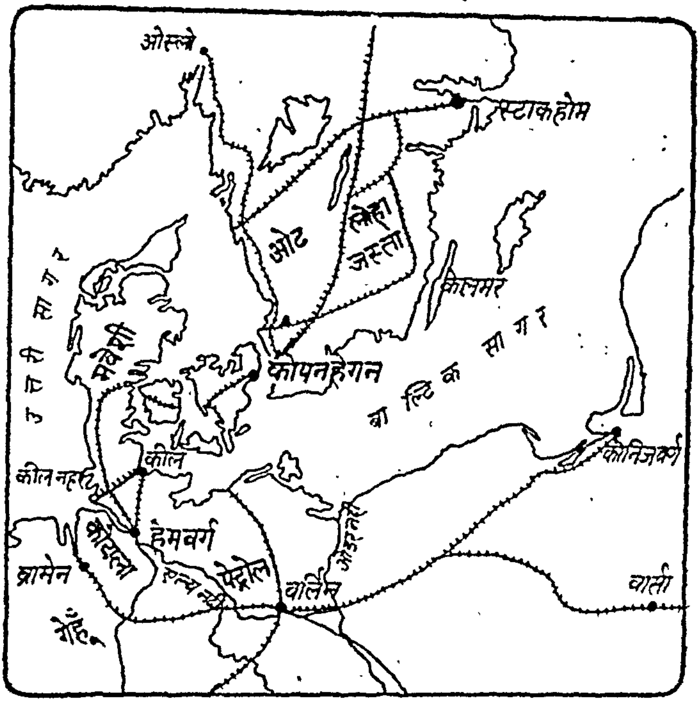

चित्र २४२

डालता है। इसलिये यह डेनमार्क का प्रमुख नगर (Primate City') कहलाया जा सकता है। यह इस देश का सबसे बड़ा बन्दरगाह है। इसके पास कई छोटे-छोटे टापू हैं जिनके बीच में संकरे जलडमरू मध्य के तट पर स्थित होने के कारण बाल्टिक और उत्तरी सागर के बीच यह व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार पूर्व-पश्चिम व्यापार मार्ग पर बसे होने से इसका व्यापार काफी बढ़ गया है। और यह एक महान व्यापारिक नगर बन गया है। कोपेनहेगन और अमागर द्वीप के बीच एक नदी की तरह सकरे जल भाग में इसको एक सुरक्षित पोताश्रय भी प्राप्त है। इसी कारण कोपिनहेगन का नाम इस शहर को दिया गया जिसका अर्थ है सौदागरों की शरण-स्थल (Merchants Haven)। किसी समय अपने मध्यवर्ती स्थिति के कारण यह स्वीडन के दक्षिणी भाग पर भी शासन करता था, और तब यह एक और महान राजधानी नगर था। कील नगर के खुल जाने से बाल्टिक और उत्तरी सागर के बीच की दूरी में २४० मील की बचत होगई है जिससे कोपिनहेगन के व्यापार को नुकसान पहुँचा है। नहर के द्वारा यातायात में अधिक महसूल लगने के कारण अब भी कोपिन हेगन से होकर काफी व्यापार होता है। कोपिनहेगन के पास उत्तरी योरोप में

स्कैण्डीनेविया जाने वाला मार्ग समुद्र पार करता है। इस प्रकार कोपेनहेगन जल और स्थल मार्गों के जङ्क्शन पर बसा है। बाल्टिक का अधिकतर व्यापार

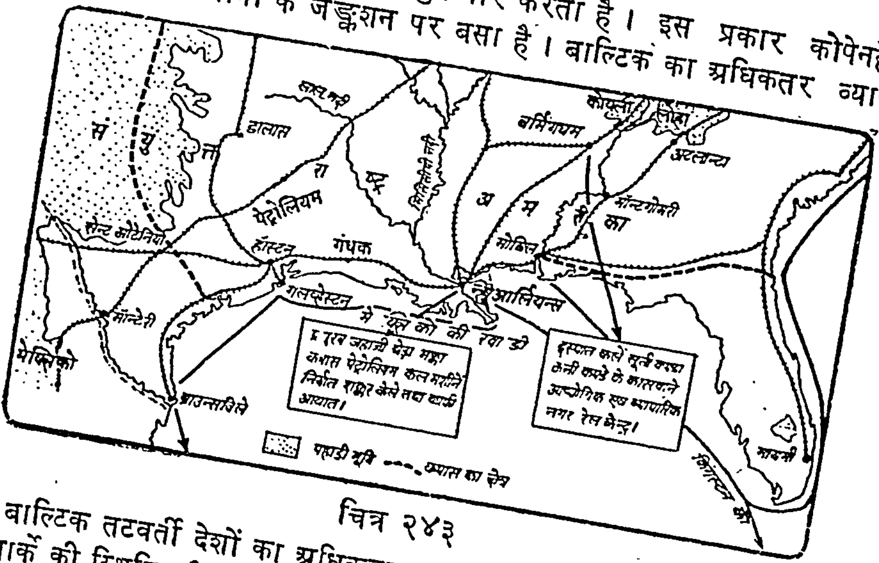

चित्र २४३

और बाल्टिक तटवर्ती देशों का अधिकतर व्यापार यही शहर करता है, क्योंकि इसे मार्क की स्थिति और व्यापारिक मार्गों की सुविधायें प्राप्त है। डेनमार्क के

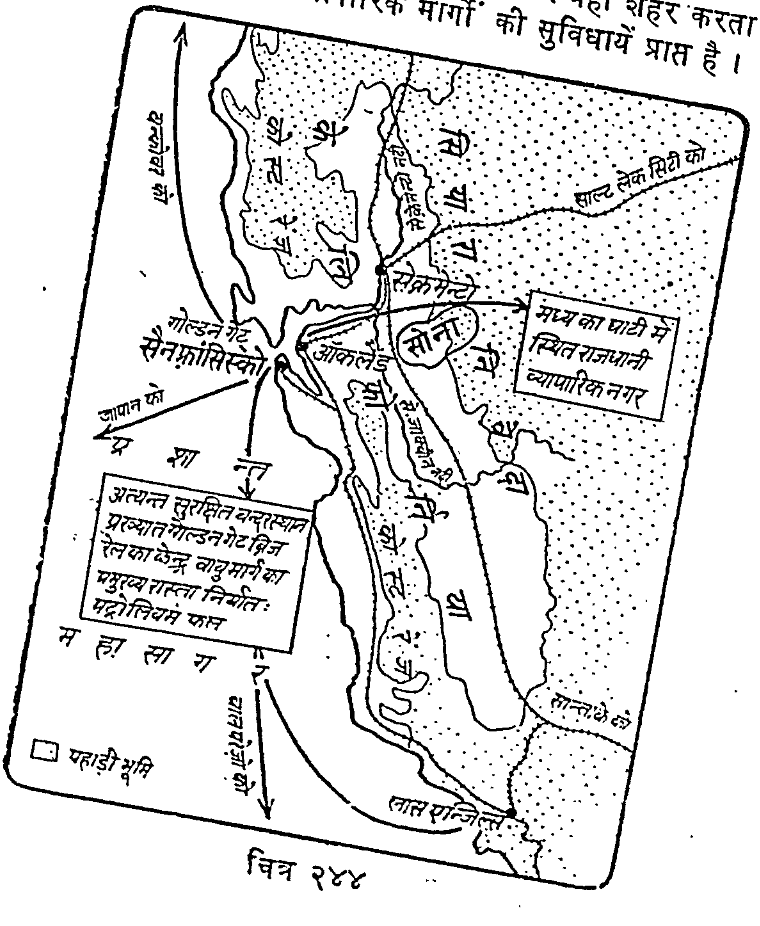

चित्र २४४

सारे सांस्कृतिक, व्यापारिक और कारखाने के कार्य इसी नगर में केन्द्रित हैं। इस नगर में चीनी के बर्तन, पियानो, दूध, पनीर, मक्खन, पशुउपज, घड़ियां रसायन, शराब, जूते और सूती कपड़े के कारखाने हैं। यहां से डेनमार्क के संसार प्रसिद्ध दूध उद्योग की उपज, सुखाया हुआ दूध, मक्खन और पनीर आदि भेजे जाते हैं। बाल्टिक तटीय देशों के लिये यह शहर पुन:निर्यात का व्यापार भी करता है।

(ख) उत्तरी अमेरिका के मुख्य बन्दरगाह ये हैं।

न्यूयार्क : संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उत्तरी-पूर्वी तट पर हडसन नदी के मुहाने पर स्थित है। इसी झील द्वारा यह झीलों के मार्गों से सम्बन्धित है। यह एक गहरा तथा सुरक्षित बन्दरगाह है जो यूरोप के औद्योगिक देशों के निकट

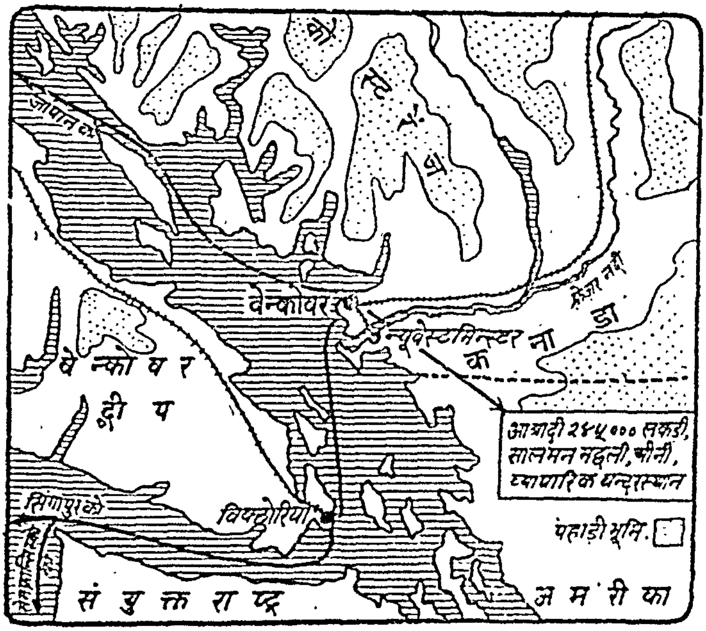

चित्र २४५

है। इसका पृष्ठ देश धनी और घना बसा है। यह रेल, नदियों तथा सड़कों और नहरों द्वारा सभी ओर जुड़ा है। यह एक प्रमुख व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्र भी है। यहाँ सूती, ऊनी कपड़ा, लोहा और फौलाद के सामान और नकली रेशम बनाने के बड़े-बड़े कारखाने हैं। यहाँ के मुख्य आयात रेशम, चाय, जूट, कहवा, शक्कर, चावल, तिलहन, लकड़ी, तथा कागज की लुग्दी है और प्रमुख निर्यात कपड़ा, लोहे और फौलाद का सामान तथा बिजली का सामान है।

मांट्रियल कनाडा का सबसे बड़ा नगर, व्यापारिक केन्द्र तथा प्रमुख बन्दरगाह है। यह सेंट लॉरेंस और ओटावा नदियों के संगम पर मांट्रियल नामके टापू पर स्थित है। यह स्थल और जल-मार्गों का केन्द्र है। किन्तु सर्दी में यह जम जाता है। यहां चमड़ा, रबड़, कपड़े, तम्बाकू तथा शराब बनाने के कारखाने हैं। यह नगर आयात की हुई वस्तुओं के वितरण का प्रमुख केन्द्र है।

न्यूआर्लियन्स : मिसिसिपी नदी के मुहाने पर स्थित है। इसका पृष्ठ देश कृषि की पैदावार में बड़ा धनी है जहाँ से कपड़ा, मिट्टी का तेल, गेहूँ, पशु, लकड़ी तथा मक्का बाहर भेजी जाती है।

सेनफ्रांसिसको : संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पश्चिमी तट का मुख्य प्राकृतिक बन्दरगाह है। पनामा नहर खुल जाने से इसका महत्व बढ़ गया है। इसके पृष्ठ देश में फलों की पैदावार बहुत होती है। यहाँ जहाज बनाने, गोश्त भेजने के लिये तैयार करने, फलों को डिब्बों में बन्द करने, लकड़ी काटने तथा ऊनी-यन्त्र बनाने के उद्योग स्थापित हैं। यहाँ से सोना, गेहूँ, मांस, शराब, फल, लकड़ी, धातु और तेल निर्यात किया जाता है। तथा विदेशों से रेशम, चाय, चावल, शक्कर और जूट मंगवाया जाता है।

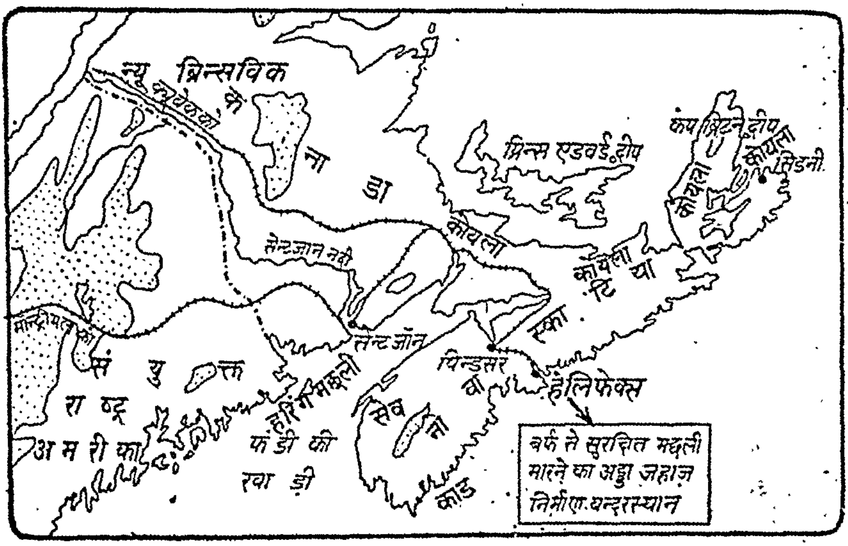

चित्र० २४६

बैंकूवर : फ्रेजर नदी के मुहाने पर एक सुन्दर तथा सुरक्षित बन्दरगाह है। प्रशान्त महासागर-तट पर होने के कारण इसका महत्व अधिक है। यह प्रेरी प्रदेश के अनाज लकड़ी भेजने के लिए प्रमुख बन्दरगाह है। यह रेलों द्वारा भीतरी भागों से जुड़ा है।

हैलीफैक्स

यह नोवास्कोशिया की राजधानी और कनाडियन नेशनल रेलवे मार्ग का पूर्वी अन्तिम स्टेशन है। यह एक श्रेष्ठ बन्दरगाह पर बसा है। लीवर पूल से इसकी दूरी न्यूयार्क की तुलना में ६१६ मील कम है। यह उत्तर-पश्चिमी यूरोप के बन्दरगाहों से चलने वाले जहाज जो न्यूयार्क को जाते हैं उनके मार्ग पर पड़ता है इसलिये शिकागो और मांट्रीयल पहुँचने में यहाँ से उतर जाने पर कम समय लगता है। यह नोवास्कोशिया का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र और बन्दरगाह है। यहाँ का बन्दरगाह जाड़े की ऋतु में भी गल्फ स्ट्रीम की गर्म धारा के

[illegible] है। इस ऋतु का प्रायः सारा व्यापार इसी बन्दरगाह से होता है और कनाडा को इस पर निर्भर रहना पड़ता है। यह हवाई मार्गों के द्वारा कनाडा के भीतरी नगरों से मिला हुआ है। यहाँ कागज चीनी साफ करने और लकड़ी चीरने के कारखाने हैं।

बोस्टन—अटलांटिक महासागर के व्यापारिक मार्गों की दृष्टि से इसकी स्थिति बड़ी अच्छी है। इसका पोताश्रय सुरक्षित खाड़ी पर बसा है। न्यू इंग्लैंड के विशाल औद्योगिक क्षेत्र के व्यापार का यही प्रमुख द्वार है। यद्यपि न्यूयार्क के बाद बोस्टन दूसरा महत्वपूर्ण बन्दरगाह है और यूरोप के देशों के लिए निकटतम बन्दरगाह है फिर भी इसका महत्व इसके उद्योग धन्धों के कारण है न कि

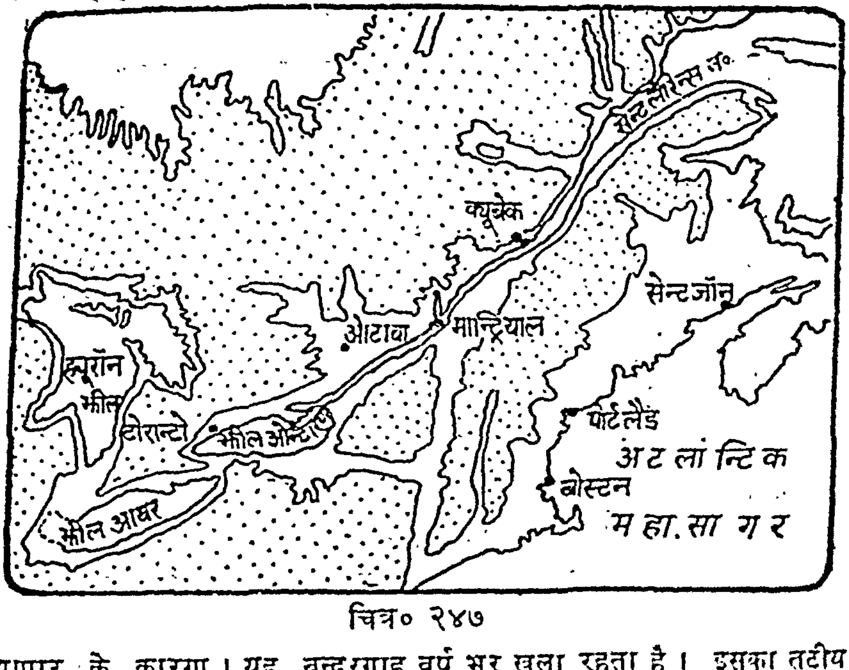

चित्र० २४७

व्यापार के कारण। यह बन्दरगाह वर्ष भर खुला रहता है। इसका तटीय व्यापार भी बहुत अधिक है। यह रेल द्वारा पोर्टलैण्ड, न्यू ब्रिस्विक, मांट्रियल और न्यूयार्क से मिला हुआ है। यहाँ निकटवर्ती प्रदेशों के लिए चमड़ा, खालें, रुई व ऊन आयात किया जाता है तथा यहाँ से [illegible], कागज, लोहा व इस्पात और चीनी निर्यात किए जाते हैं।

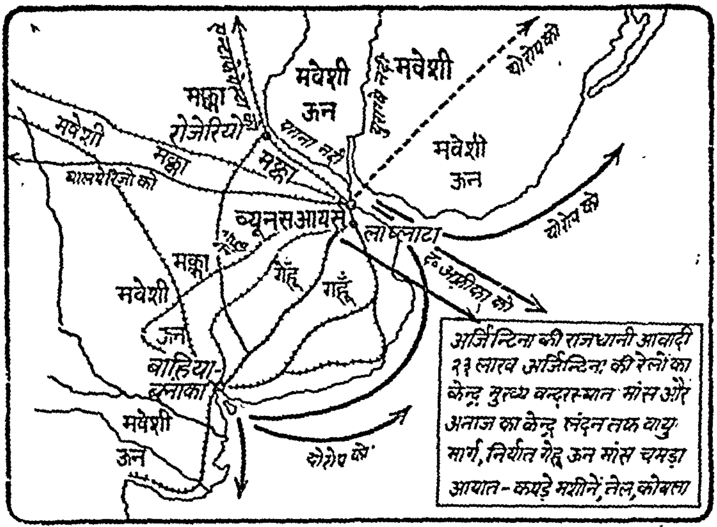

चित्र० २४८—ब्यूनैस आयर्स

सिडनी—आस्ट्रेलिया का प्रमुख बन्दरगाह और न्यू साऊथ वेल्स की राजधानी है। यह दक्षिणी-पूर्वी तट पर स्थित है। इसका बन्दरगाह गहरा और सुरक्षित है। इसका पृष्ठ देश बड़ा धनी है। यहाँ रेल के एंजिन और पुर्जे, जूते, साबुन, चीनी तथा आटा माँस अधिक बनाये जाते हैं। यहाँ की मुख्य निर्यात ऊन, कोयला, खानिज पदार्थ, गेहूँ, माँस और फल हैं। विदेशों से मशीनें, कपड़े और रासायनिक पदार्थ मँगाये जाते हैं।

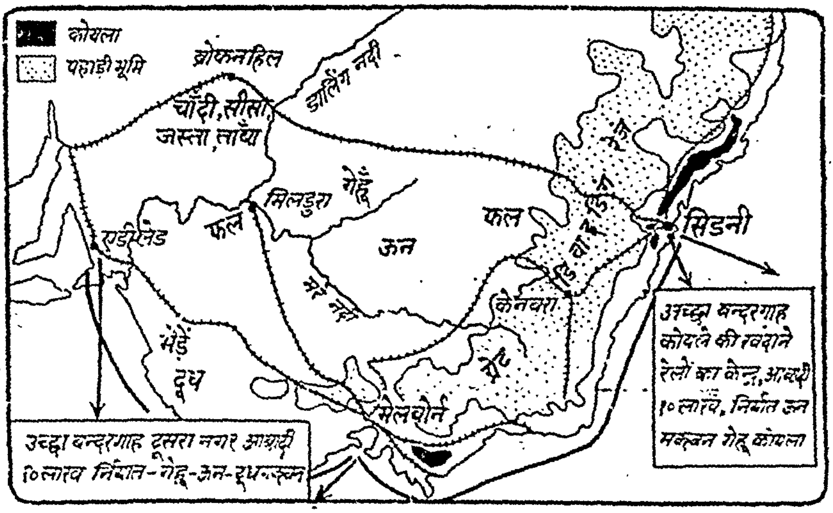

चित्र० २४६—सिडनी

रियोडीजनिरौ—दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी समुद्र तट पर बसा हुआ है। तथा दक्षिणी गोलार्द्ध का दूसरा सबसे बड़ा शहर है। ब्राजील की राजधानी है। यह बन्दरगाह अपनी उत्तम, पृष्ठ-भूमि तथा पोताश्रय के कारण आज

एक विशाल नगर है। लोहे और इस्तपात तथा जहाज बनाने के कारखाने भी यहाँ स्थित है। सूती वस्त्र उद्योग का सबसे बड़ा केन्द्र है। यहाँ ऊनी और रेशमी वस्त्रों के कारखाने भी स्थित हैं। विश्व का प्रमुख काफी निर्यात होने के के साथ-साथ चमड़ा, मांस, रबर संतरे हैं। यहाँ लोहा व इस्पात और उसकी बनी वस्तुएँ, गेहूँ, कोयला, बिजली के सामान आदि प्रमुख-प्रमुख वस्तुओं का आयात होता है।

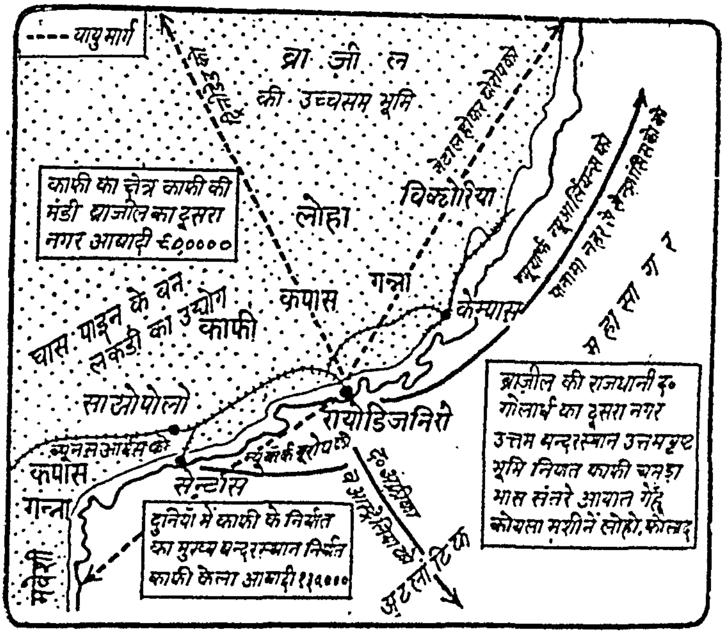

चित्र० २५०

वालपेरिजो—दक्षिणी अमेरिका के प्रमुख बन्दरगाहों में है। मध्य चिली में बसा हुआ है एवं चिली की राजधानी सांटियागो से बिजली की रेलों द्वारा जुडा हुआ है। इसी बन्दरगाह से दक्षिणी अमेरिका की एक मात्र महाद्वीपीय रेल प्रारम्भ होती है, जो कि सांटियागों से होकर अस्पलाटा के दर्रे से ब्यूनिस आयर्स एवं एकसा स्वावाहिया ब्लांका को जाती है। इस बन्दरगाह के प्रमुख निर्यात फल शराब, शोरा गेहूँ, तांबा, ऊन आदि है। यहाँ के प्रमुख आयात शक्कर, मशीनें, रेलों का सामान, दवाइयाँ, कपड़े आदि पक्का माल हैं। चिली का यह एकमात्र उत्तम बन्दरगाह है।

(घ) एशिया के मुख्य बन्दरगाह ये हैं :—

सिंगापुर—स्ट्रेट सेटलमेंट की राजधानी है। जो सिंगापुर द्वीप के दक्षिण भाग पर स्थित है। यह दक्षिणी-पूर्वी एशिया का सबसे बड़ा व्यापारिक बन्दरगाह है जहाँ जहाज सुरक्षित खड़े रह सकते हैं। सभी ओर को यहाँ से जहाज जाते हैं। इसके मुख्य निर्यात रबड़, टीन चाय, तम्बाकू, मसाले, चावल, तांबा और अनन्नास तथा मुख्य आयात मशीनें, लोहे का सामान, तेल, तम्बाकू और शक्कर है। इसका पुनर्निर्यात व्यापार बड़ा चढ़ा है।

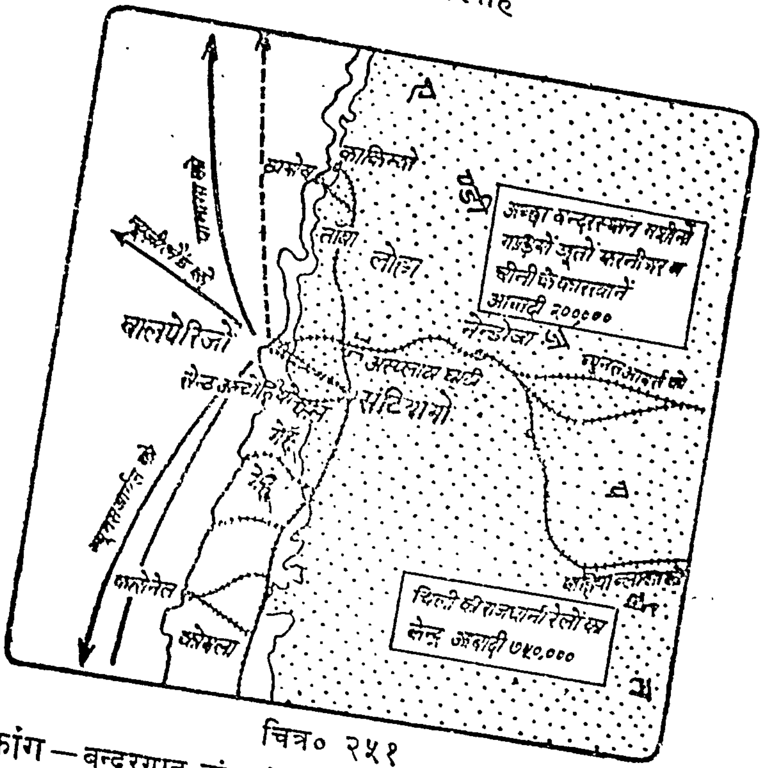

चित्र० २५१

हांगकांग—बन्दरगाह हांगकांग द्वीप के उत्तर-पश्चिम भाग में स्थित है। यह बड़ा स्वाभाविक और सुन्दर तथा बहुत ही सुरक्षित बन्दरगाह है। यह भी

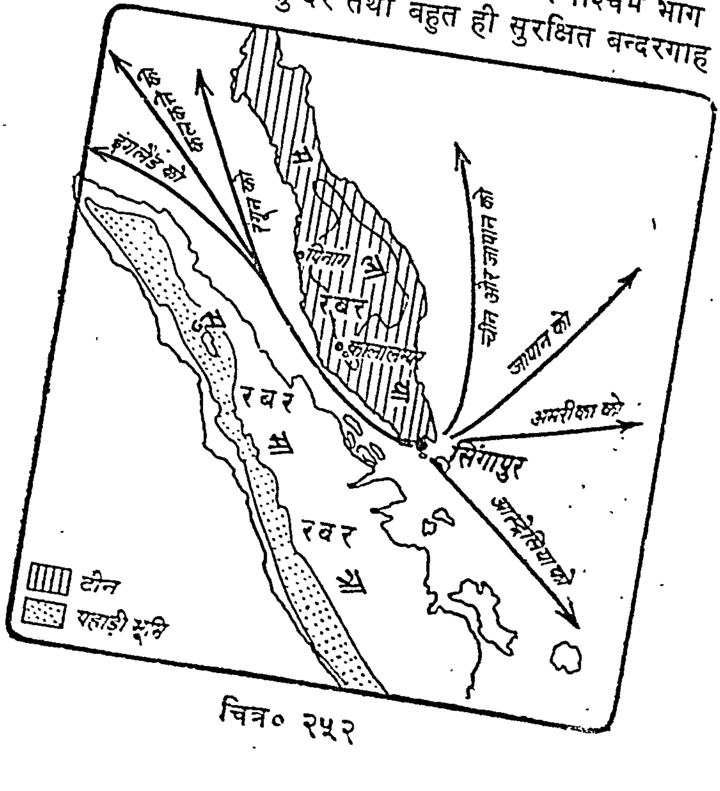

चित्र० २५२

पुनः वितरक केन्द्र है। यहाँ के प्रमुख आयात मशीनें, लोहे का सामान, मोटा कपड़ा और चावल हैं। मुख्य निर्यात चावल, शक्कर, कपास, चाय, रेशम, अफीम और तेल है।

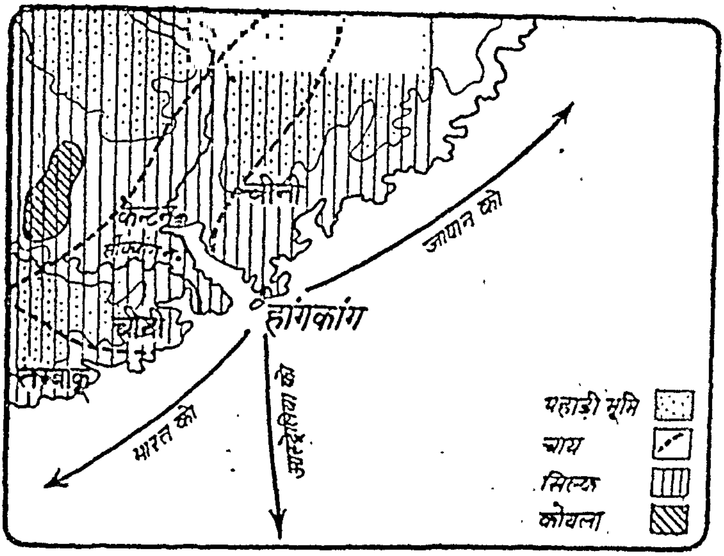

चित्र० २५३

कैंटन - दक्षिणी चीन का प्रमुख बन्दरगाह है जो कैंटन नदी के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह भूमि के उत्तरी भाग टींटसीन, पीपींग और हांगकांग द्वारा मिला हुआ है। इसका पृष्ठ देश चावल, शक्कर, रेशम और चाय में बड़ा धनी है तथा अधिक घना बसा है। यहाँ के मुख्य आयात कपड़ा, मशीनें, लोहे और फौलाद का सामान, तेल, चावल और शक्कर है। मुख्य निर्यात चाँवल, कपास, तिलहन, चाय, रेशम और कोयला हैं।

शंघाई—ह्वांगो नदी पर समुद्र से ५४ मील दूर स्थित है। यह भी एक प्रसिद्ध पुनः वितरक केन्द्र है जहाँ से सामान चीन, जापान, कोरिया आदि को बांटा जाता है। इसका पृष्ठ-देश बड़ा धनी और आबाद है। इसके मुख्य निर्यात कपास, रेशम और चाय तथा मुख्य आयात कपड़ा, शक्कर, मिट्टी का तेल, तम्बाकू और लोहे तथा फौलाद का सामान है। इसके पृष्ठ-देश में ३०० से अधिक कारखानें हैं, जिनमें रेशमी कपड़ा, रबड़ का सामान, साबुन, रसायन, कागज, सिगरेट सीमेंट, ग्रामाफोन, मशीनें आदि बनाई जाती हैं।

टोकियो—विश्व का तीसरा बड़ा नगर है जो छोटी-छोटी नदियों द्वारा बने हुए डेल्टा की एक शाखा पर स्थित है। इसका बन्दरगाह उथला है अतः जहाज याकोहामो तक ही आ सकते हैं। यह अपने पृष्ठ-देश द्वारा रेलों से मिला है। इसके मुख्य निर्यात सूती और रेशमी कपड़ा, रबड़, बिजली और कांच का सामान तथा कागज और तांबा है। मुख्य आयात कच्चा कोयला और लोहा, कपास, चावल, शक्कर और अनाज है। यहां बिजली के यन्त्र नौकों के

बर्तन, इंजिन, रेल के डिब्बे, सूती कपड़े; रसायन, टिन, गट्टापारचा और रबड़, बनाने के कारखानें हैं ।

रंगून—ब्रह्मा का सबसे बड़ा नगर, राजधानी और प्रमुख बन्दरगाह है। यह नगर इरावदी की बड़ी शाखा से नहर द्वारा सम्बन्धित है। यहीं से देश के भीतरी मार्गों को रेल मार्ग गये हैं, इस प्रकार यह नगर अपने पृष्ठ देश से पूर्णतया सम्बन्धित है। अपनी उत्तम स्थिति के कारण यह नगर पूर्व के प्रमुख

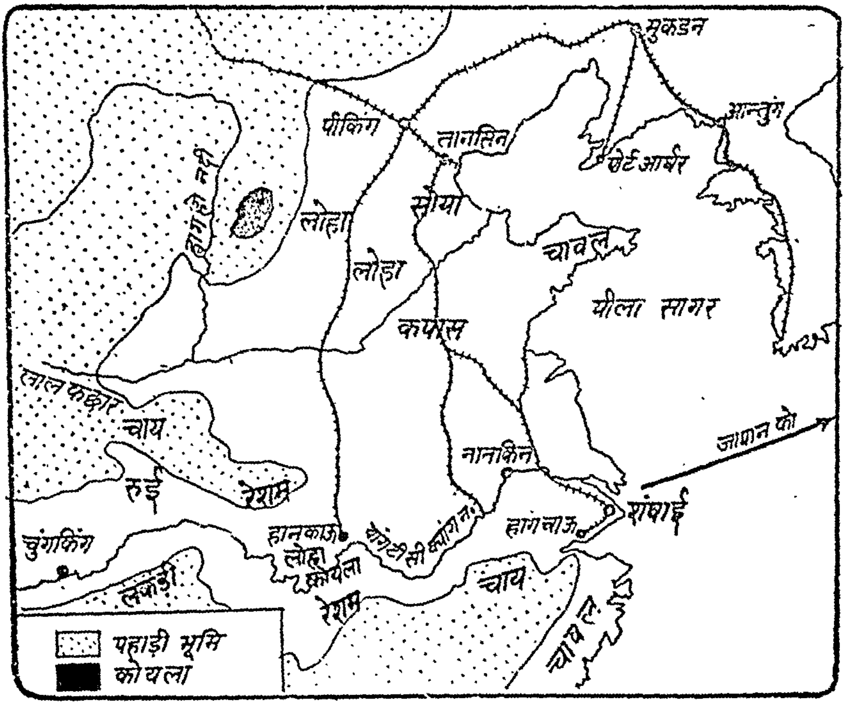

चित्र० २५४

बन्दरगाहों में से है ब्रह्मा का ९०% व्यापार यहीं से होता है। यहाँ पर चावल कूटने तथा साफ करने की मिलें, एवं आटा पीसने की चक्कियाँ तथा लकड़ी चीरने के कारखाने हैं। इस बन्दरगाह के प्रमुख आयात धातुएँ, सूती और रेशमी वस्त्र, मशीनें, चमड़े का सामान, कागज और शक्कर हैं। यहाँ के मुख्य-मुख्य निर्यात चावल, लकड़ी, मिट्टी का तेल, मोमबत्ती, चमड़ा, शीशा जस्ता तम्बाकू और रबर हैं।

अदन—दक्षिणी पश्चिमी एशिया का महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। यह बन्दरगाह ब्रिटेन के संकुचित साम्राज्य का अंग है। इसकी स्थिति लाल सागर से प्रवेश के १०० मील पूर्व है। यहाँ पर नौसेना वायुसेना के केन्द्र भी स्थित हैं। पश्चिमी एशिया का महत्वपूर्ण सिगरेट बनाने का कारखाना यहीं पर स्थित है। नमक भी यहां से बहुत बड़ी मात्रा में बाहर भेजा जाता है। यह जहाजों के ठहरने का प्रमुख केन्द्र एवं कोयला लेने का स्थान है। यहाँ से कपास व कपास के सामान, काफी, शक्कर और तम्बाकू विदेशों से मंगाकर स्वयं अदन से विदेशों को भेजी जाती है।

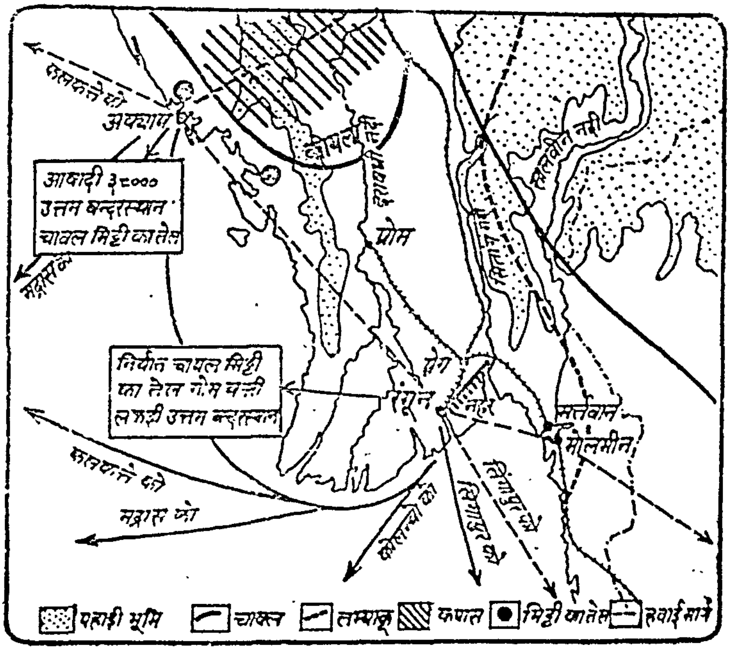

चित्र० २५५

करांची—सिन्ध प्रान्त और सम्पूर्ण पाकिस्तान की राजधानी है। यह जलमार्गों और रेल का केन्द्र है। यहाँ का बन्दरगाह प्राकृतिक है। सिन्ध के डेल्टा और पंजाब की खेती की मुख्य पैदावारें इसी बन्दरगाह से निर्यात की जाती हैं। यहाँ प्रमुख हवाई अड्डा भी है। विदेशों से आनेवाले जहाज यहाँ होकर ही भारत में आते हैं। यहाँ आटा पीसने की कई चक्कियाँ हैं। यहाँ के

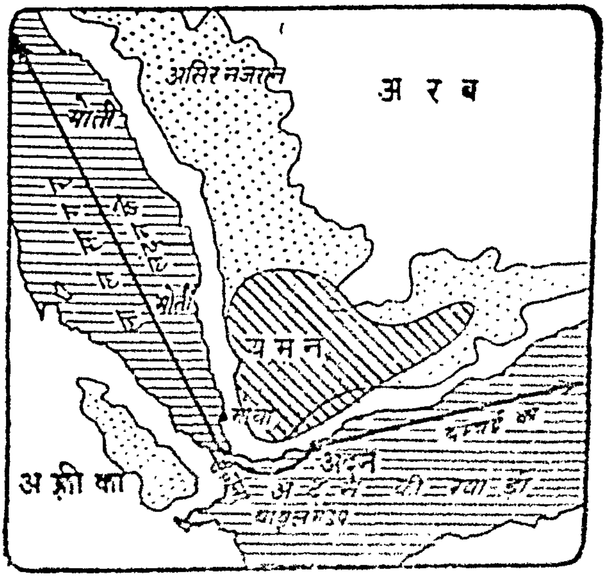

चित्र० २५६

मुख्य आयात मशीनें, लोहे का सामान, कपड़ा, शक्कर, शराब तथा रासायनिक पदार्थ हैं और मुख्य निर्यात गेहूँ व कपास हैं।

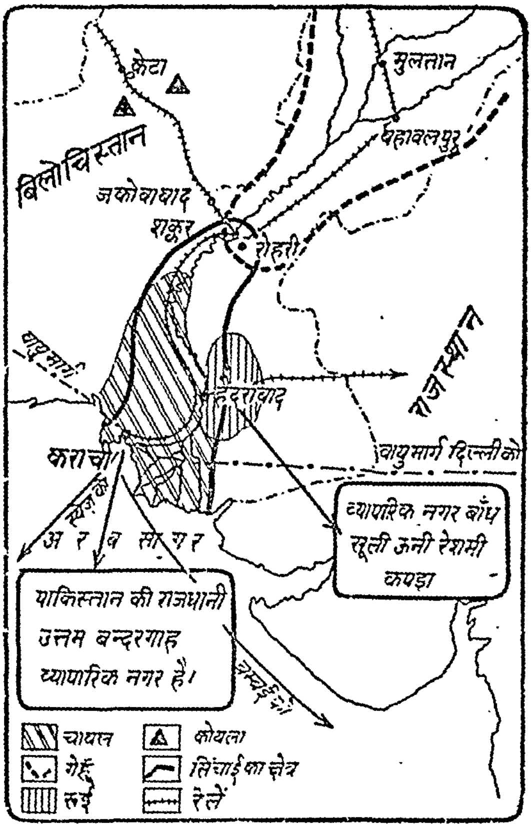

चित्र० २५७

भारत के बन्दरगाह

भारत की तट रेखा लगभग ३,५०० मील लम्बी है, किन्तु यह कम कटी-फटी है तथा सपाट है। इसके अतिरिक्त किनारे के निकट पानी बहुत छिछला है और किनारे अधिकतर चपटे और बालूमय हैं। नदियों के मुहाने पर ज्यादातर बालू इकट्ठी होती रहती है इसलिये बन्दरगाह तक जहाज नहीं पहुँच सकते। पश्चिमी समुद्र तट पर तो बम्बई और गोआ बन्दरगाहों को छोड़कर कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं है। प्रायः सभी बन्दरगाह (इन दोनों को छोड़ कर) मानसून के दिनों में व्यापार के लिए बन्द रहते हैं इसके कई कारण हैं :—(१) नदियों द्वारा लाई गई बालू और मिट्टी के कारण ताप्ती और नर्वदा का मुहाना बहुत ही कम गहरा है। (२) इसके अतिरिक्त मई से अगस्त तक पश्चिमी तट पर मानसून हवाओं का प्रकोप अधिक रहता है, जहाजों की सुरक्षा के लिये कोई सुरक्षित स्थान नहीं है। (३) समस्त पश्चिमी भाग थोड़ी-बहुत कटानों के अतिरिक्त प्रायः सपाट और पथरीला है।

भारत के पूर्वी तट पर यद्यपि नदियों के डेल्टा अधिक हैं, किन्तु इन नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से समुद्री तट अधिक पटता रहता है। कलकत्ता के बन्दरगाह पर भी यह कठिनाई रहती है। कभी-कभी तो घन्टों तक जहाजों को ज्वार भाटे की बाट जोहनी पड़ती है। इस भाग में कलकत्ता का वन्दरगाह ही प्राकृतिक है। मद्रास और विजागापट्टनम तो कृत्रिम हैं। कलकत्ता के वन्दरगाह की मिट्टी झामों द्वारा निकाली जाती है।

भारत का चौथाई व्यापार इन वन्दरगाहों द्वारा ही होता है क्योंकि उत्तर की ओर के सीमान्त प्रदेश पहाड़ी और अनउपजाऊ हैं या बहुत ही कम बसे हुए भाग हैं। भारत के मुख्य-मुख्य वन्दरगाह कलकत्ता, विशाखापट्टनम, काँडला, मद्रास, ओखा, तूतीकोरन, कोचीन, कालीकट, मंगलौर, मारमुगोआ, बम्बई सूरत, तथा काठियावाड़ के अन्य वन्दरगाह हैं।

भारत का समुद्री-व्यापार का औसत २०० लाख टन प्रति वर्ष है। यहाँ के वन्दरगाहों में इससे अधिक काम हो भी नहीं सकता। यदि व्यापार को कुछ थोड़ा-बहुत बढ़ाया भी जावे तो वन्दरगाहों में भीड़-भाड़ बढ़ जाती है। सन् १९५२–५३ और १९५५–५६ में विभिन्न वन्दरगाहों पर हुए व्यापार के आंकड़े इस प्रकार हैं :—

वन्दरगाह	१९५१–५२ (लाख टनों में)			१९५५–५६		
	आयात	निर्यात	योग	आयात	निर्यात	योग
बम्बई	४६·७५	१९·४३	६६·१८	६६·४७	३५·२८	१०१·७६
कलकत्ता	३३·१९	६३·५४	९६·७३	३४·०९	४६·२१	८०·३०
मद्रास	१८·०७	३·१५	२१·२२	१७·१६	४·८	२२·०१
कोचीन	१२·२५	३·२६	१५·५१	१२·२०	४·५	१६·७४
विशाखापट्टनम	२·९	९·३	१२·२	२·३९	७·९	१०·३५

इन वन्दरगाहों में सामुद्रिक व्यापार के केन्द्रित होने के कई कारण हैं—भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्राचीनता ने भी इनके व्यापारिक विकास में सहायता दी है। बम्बई, मद्रास और कलकत्ता काफी समय से शासन के केन्द्र रहे हैं। फलतः वहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ा और साथ-साथ व्यापारिक और औद्योगिक काम-धन्धों का भी विकास हो चला। इसके अतिरिक्त १९ वीं शताब्दी के अन्त में रेलों का निर्माण इन्हीं वन्दरगाहों से आरम्भ किया गया। इस प्रकार राजनैतिक व यातायात के केन्द्रों से बढ़ कर ये प्रमुख वन्दरगाह बन गये।

वर्तमान काल में कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कोचीन तथा विशाखापट्टनम बन्दरगाहों की सम्मिलित भार वहन की शक्ति २०० लाख टन की है। किन्तु

1. India, 1955 p. 302 and A. I. C. C: Economic Review, Vol. VIII. No. 7, Jan. 1957. p. 182.

यह देश के व्यापार को देखते हुये बहुत ही थोड़ी है। अस्तु, पंचवर्षीय योजना में इन पाँच बन्दरगाहों को सुधारने, आधुनिकीकरण करने तथा उनका विस्तार करने का प्रयास किया जा रहा है। काँडला के बन्दरगाह के बन जाने से वहाँ ८५०,००० टन प्रति वर्ष के हिसाब से व्यापार में वृद्धि हो सकेगी। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कलकत्ता के बन्दरगाह पर गार्डन रीच जेटी का पुनरुद्धार, डिब्बे तथा इंजनों की उपलब्धि, भारी मशीनों को उठाने के लिए क्रेन की स्थापना तथा कोयला आदि जमा करने को दो बर्थों का बनाया जाना सम्मिलित है। बम्बई के बन्दरगाह पर प्रिन्स और विक्टोरिया डाक्स का आधुनिकीकरण करने, वहां माल रखने के गोदामों का निर्माण करने तथा एलेक्जेन्ड्रिया डाक्स में विद्युतचालित-क्रेनों को लगाये जाने का आयोजन किया गया है। मद्रास में एकतर-डॉक तथा पैट्रोलियम जमा करने के लिए एक बर्थ बन रहा है।

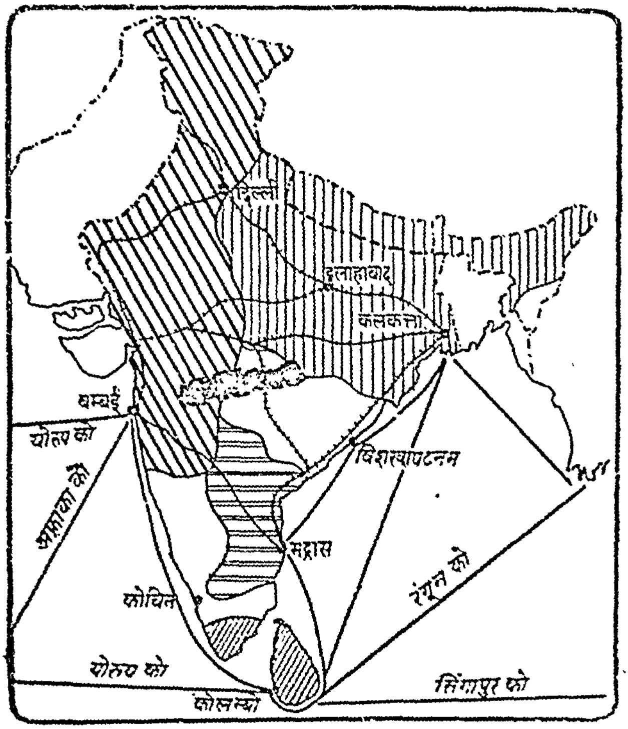

चित्र २५८—भारतीय बन्दरगाहों की पृष्ठभूमि

भारत के प्रमुख बन्दरगाह ये हैं :—

(१) कलकत्ता का बन्दरगाह हुगली नदी के बायें किनारे पर है। नदी के किनारे से यह ८० मील उत्तर की ओर है। अतः यहां तक जहाज ज्वार भाटे के साथ ही आ सकते हैं। ज्वार के साथ ही जहाजों को आना और भाटे के साथ पुनः लौटना पड़ता है। हुगली नदी में मिट्टी का जमाव अधिक होने के कारण जहाजों को बड़ी कठिनाई पड़ती है अतः लगातार ड्रेजरों

द्वारा मिट्टी को निकाला जाता है। कलकत्ता भारत का ही नहीं सम्पूर्ण एशिया का प्रमुख वन्दरगाह है। यह सिंधु-गङ्गा की घाटी का मुख्य सामुद्रिक द्वार है। इसका पृष्ठ-देश वहुत घनी है। इसके पृष्ठ-देश में आसाम, बिहार, पश्चिमी बङ्गाल, उत्तर प्रदेश, पूर्वी मध्य भारत, उड़ीसा, पूर्वी पंजाब और मध्य प्रदेश सम्मिलित हैं। यह वन्दरगाह अपने घने आबाद और उपजाऊ पुष्ठ-प्रदेश से रेल-मार्गों (पूर्वी और उत्तर-पूर्वी तथा मध्य), नदियों और नहरों द्वारा जुड़ा है। अतः गङ्गा की घाटी की पैदावार गेहूँ चावल, गन्ना, कोयला, चाय आदि सहज ही में कलकत्ता लाई जा सकती है और विदेशों से प्राप्त माल को भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाया जा सकता है।

कलकत्ता के वन्दरगाह में जहाजों के खड़े होने के लिए पांच सूखे हुए डाक्स (Dry Docs) है। आरम्भ में यह वन्दरगाह कोशीपुर से गार्डन रीश तक ९ मील की लम्बाई में फैला हुआ था किन्तु अब इसे वढ़ा कर १६ मील कलकत्ता से नीचे की ओर वजवज तक और उत्तर में ९ मील की दूरी पर कोनगढ़ तक कर दिया गया है।

कलकत्ता भारत का व्यावसायिक केन्द्र भी है। जहां जूट, कागज, दियासलाई, रेशम, चीनी और लोहे के कारखाने हैं। यहाँ कारखानों की अधिकता होने का मुख्य कारण पृष्ठ-देश में घनी आवादी, सस्ते मजदूर, पर्याप्त पानी और कच्चा माल तथा रानीगंज और झेरिया के कोयले की खानों का निकट होना है। कलकत्ते से विदेशों को जाने वाली मुख्य वस्तुएं जूट और जूट का तैयार माल, रस्से, चाय, शक्कर, लोहे का सामान, तिलहन, चमड़ा, अभ्रक, मैंगनीज और कोयला हैं। वाहर से आने वाले मुख्य आयात रुई का तैयार माल, ऊनी, सूती, रेशमी, वस्त्र, मशीनें, शक्कर, मोटरें, कांच का सामान, कागज, पैट्रोल, रासायनिक पदार्थ हैं। कलकत्ता में अधिकतर भारी पदार्थों का व्यापार होता है जो इतने मूल्यवान नहीं होते जितने कि वम्बई वन्दरगाह के होते हैं। यहाँ मुसाफिरी जहाज बहुत कम आते हैं।

(२) वम्बई :—यह भारत का ही नहीं दुनिया के प्रमुख वन्दरगाहों में से है। इसका वन्दरगाह वड़ा सुरक्षित है अतः यहां मानसून के तूफानी दिनों में भी जहाज बड़ी आसानी से ठहर सकते है। समुद्र के निकट जहाजों के ठहरने के लिए एक १४ मील लम्बी और ६ मील चौड़ी तथा २३ फुट गहरी एक खाड़ी-सी वन गई है इसी में जहाज आकर ठहरते है। यह वन्दरगाह यूरोप तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अधिक निकट पड़ता है अतः कलकत्ता या मद्रास की अपेक्षा यहां व्यापार अधिक होता है।

यद्यपि पश्चिमी तट को पश्चिमी [illegible] भीतरी भागों से पृथक करता है, किन्तु वम्बई के ठीक पीछे थाल घ[illegible] ... दर्रे हैं जो [illegible] भारत और गुजरात या दक्षिणी [illegible] रेलवे, [illegible] दक्षिणी रेलवे द्वारा जोड़ते हैं। [illegible] दक्षिण में [illegible] पश्चिमी भाग से लेकर उत्तर में [illegible] उत्तर [illegible] [illegible] भारत और गुजरात तक [illegible]

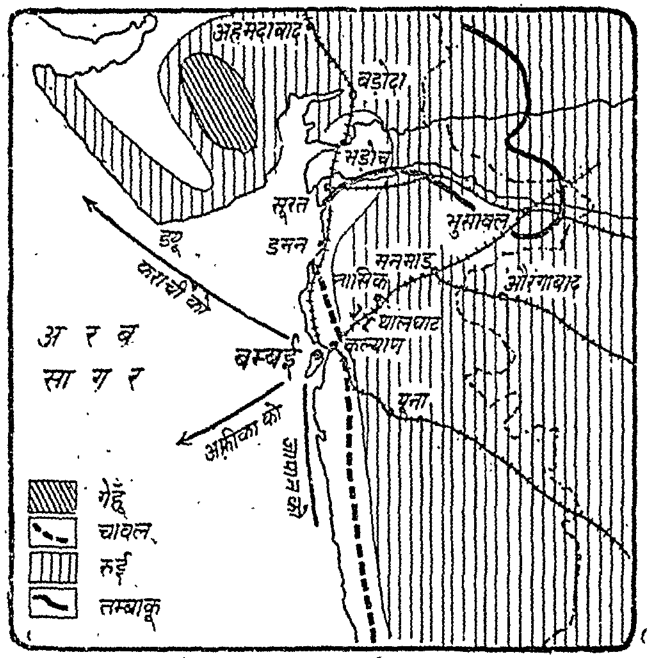

चित्र २५९—बम्बई

बड़ा उपजाऊ है। यद्यपि बम्बई के इर्द-गिर्द २०० मील तक न तो कोयला है और न नाव्य-जल-मार्गों की ही सुविधा है फिर भी प्राकृतिक पोताश्रय होने के कारण यहाँ व्यापार बहुत अधिक होता है।

इस बन्दरगाह से रुई, अलसी, मूंगफली, चमड़ा, तिलहन, लकड़ी, ऊन, सूती कपड़े, खालें, मैंगनीज, अभ्रक आदि वस्तुयें बाहर भेजी जाती हैं और बाहर से सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र, मशीनें, नमक, कोयला, कागज, फल, रसायनिक पदार्थ, मिट्टी का तेल और लोहे का सामान मँगवाया जाता है। यहाँ मक्का, मदीना तथा यूरोप को जाने वाले मुसाफ़िर-जहाज़ अधिक आते हैं। पिछले कुछ वर्षों से काठियावाड़ के बन्दरगाहों ने बम्बई से प्रतिद्विन्द्विता करनी आरम्भ कर दी है।

(३) **मद्रास**—भारत का तीसरा बन्दरगाह है, यह कृत्रिम बन्दरगाह है। यहाँ तट से लगभग २ मील दूर समुद्र में दो कंक्रीट की दीवारें बना कर २०० एकड़ समुद्र को घेरा गया है जहाँ वर्षा और तूफानों के समय जहाज आकर आसानी से ठहर सकते हैं। इस समय बन्दरगाह व पोताश्रय को अधिक सुविधा-जनक बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। डायमंड पोताश्रय और किदरपुर के बीच एक ३० मील लम्बी नहर बनाने की योजना पर विचार किया जा रहा है। इस समय मद्रास का कोई गहरा पोताश्रय नहीं है अतः ६००० टन से अधिक भार वाले जहाजों का किदरपुर से ४० मील दूर डायमंड हारबर पर रुक जाना होता है। इसका पृष्ठ-देश ट्रावनकोर, मैसूर और हैदराबाद तथा मद्रास प्रान्त हैं किन्तु यह न तो अधिक आबाद ही है और न अधिक

उपजाऊ ही। यहाँ के मुख्य निर्यात मूंगफली, चमड़ा, तिलहन, खालें, तम्बाकू, रुई, मैंगनीज, नारियल, रबड़, मछलियाँ, मसाले, लकड़ी तथा सूती वस्त्र हैं। मुख्य आयात मशीनें, लोहे का सामान, कागज, मिट्टी का तेल, शक्कर, चावल तथा रासायसिक पदार्थ हैं।

प्रश्न

१. निम्नलिखित बन्दरगाहों की उत्पत्ति और विकास के कारण बताइये :
न्यूयार्क, सिंगापुर, लिवरपूल, विनीपेग (यू० पी० बो० १९३९)

२. बम्बई बन्दरगाह के इतने अधिक उन्नतिशील हो जाने के क्या कारण हैं?
(यू० पी० बो० १९३३, रा० वि० १९५३)

३. किसी बन्दरगाह के पृष्ठ-देश से आप क्या समझते हैं? बन्दरगाह के विकास में इसका क्या महत्व है? अपने उत्तर की पुष्टि में भारत के बन्दरगाहों और उनके पृष्ठ देशों के उदाहरण दीजिये। (यू० पी० बो० १९४०, अ० बोर्ड १९४८)

४. एक अच्छा पोताश्रय एक अच्छे बन्दरगाह को और न ही एक प्रमुख बन्दरगाह एक अच्छे पोताश्रय को आवश्यक रूप से विकास प्रदान कर सकता है। इस कथन की पुष्टि कोलम्बो, शङ्घाई, विजगापट्टनम और सेनफ्रांसिसको के उदाहरण द्वारा करिये। (अ. बोर्ड १९५०, १९५१)

५. नीचे लिखे बन्दरगाहों और उनकी पृष्ठ भूमियों के विकास के कारण बताइये।
बम्बई, पोरबन्दर, रंगून और न्यू ओर्लियन्स (अ० बोर्ड १९४८)

६ निम्नलिखित किन्हीं तीन बन्दरगाहों के विकास में कौन से भौगोलिक कारण प्रमुख रहे हैं? उन पर प्रकाश डालिये। लंदन, साऊथ हेम्पटन, न्यूयार्क, बम्बई, मारसेलीज (यू. पी. १९४३)

७. नीचे लिखे बन्दरगाहों के विकास और उन्नति के क्या कारण हैं?
सेनफ्रांसिसको, रंगून, पेरिस, शङ्घाई, योकोहामा, कोलंबो, सिंगापुर, विजगापट्टनम और करांची। (आ० बी० कॉम, १९४४)

८ नीचे लिखे बन्दरगाहों की वास्तविक स्थिति बताते, हुये उनके आर्थिक और व्यापारिक महत्त्व पर प्रकाश डालिये।
मेलबोर्न, वेलिंगटन, ब्यूनस आयरस, केपटाउन, कोलम्बो, और डर्बन
(आ० बी० कॉम, १९४५,४६)

९ नीचे लिखों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये।
(i) ग्लासगो, (ii) हेम्बर्ग, (iii) रोटरडम, (iv) वेनिस, (v) पेरिस
(आ० बी० कॉम १९४६)

१० नीचे लिखे बन्दरगाहों की स्थिति और महत्व बताइये।
लन्दन, लिवरपूल, हेम्बर्ग, मॉन्ट्रियल, वैंकोवर, कार्डिफ, स्वांसी, सिंगापुर, वेलिंगटन (आ० बी० कॉम १९४८, १९५०, ५१)

११. नीचे लिखे बन्दरगाहों की उन्नति के कारण बताइये।
एडिलेड, रायोडीन जानेरो, बैकांक, केन्टन, हाँकांग, रंगून, अदन, ब्लाडीवोस्टक
(आ. बी. कॉम १६४६, ५०)

१२. सिंगापुर बन्दरगाह के उन्नति का मुख्य कारण क्या है ? इसके द्वारा किन-किन चीजों का व्यापार होता है ? (आ० बी० कॉम १६५२)

१३. नीचे लिखे बन्दरगाहों की उन्नति के कारण बताओ।
ओसाका, शङ्घाई, लिवरपूल, सेनफ्रांसिसको (आ० बी० कॉम १६५३)

१४. "किसी बन्दरगाह के विकास में उसका पृष्ठ-देश बड़ा सहायक होता है।" इस कथन की पुष्टि करते हुये लंदन, सिंगापुर और रायडो जानेरो का वर्णन करिए।
(आ० बी० कॉम १६५३)

१५. चित्रों की सहायता से हैम्बर्ग, रॉटरडैम तथा एंटवर्प की स्थिति बताइये और इनके व्यापारिक महत्त्व पर प्रकाश डालिये। (एम० ए० १६४६)

१६. "किसी बन्दरगाह का महत्व उसके पृष्ठ-देश के विस्तार और धनाढ्यता पर निर्भर है।" इस कथन की पुष्टि करते हुये कोलम्बो, पर्थ, मार्सेलीज और ब्यूनेस आयर्स का वर्णन करिये। उनकी स्थिति के चित्र भी बनाइये।
(एम० ए० १६५४)

१७. निम्नलिखित बन्दरगाहों के विकास और उन्नति के कारण बताइये।
सिडनी, रायोडी जानेरो (एम० ए. १६५४)

१८. न्यूआर्लिन्स के बन्दरगाह पर विस्तृत टिप्पणी लिखिये। (एम० ए० १६५४)

१९. विश्व व्यापार की दृष्टि से न्यूयार्क, लंदन और एन्टवर्प के सापेक्षिक लाभ बताइए। (एम० ए० १६५५)

अध्याय ३७

जनसंख्या

(Population)

प्रोफेसर वान लून (Van Loon) के अनुसार यदि विश्व की सारी जनसंख्या को एक जगह रखना चाहें तो उसे ½% मील लम्बे, चौड़े और ऊँचे एक सन्दूक में रख सकते हैं। इससे ज्ञात होता है कि पृथ्वी के क्षेत्रफल की तुलना में जनसंख्या कितनी कम है। दूसरी ओर प्रो० ब्रन्स (Brunhes) ने लिखा है कि मानव भूगोल को समझने के लिये सबसे अधिक आवश्यक मानचित्र (१) जनसंख्या के वितरण और (२) वर्षा के वितरण का है। मानव व आर्थिक भूगोल में जनसंख्या के वितरण का है। मानव व आर्थिक भूगोल में जनसंख्या के वितरण का विशेष महत्व इसलिये है कि जहाँ सबसे अधिक जनसंख्या होगी वहीं सबसे अधिक भौतिक संस्कृति के तत्व भी मिलेंगे।

जनसंख्या का अध्ययन निम्न शीर्षकों पर किया जा सकता है :—

(१) जनसंख्या का विकास एवं भविष्य।
(१) जनसंख्या का विश्व-वितरण।
(३) जनसंख्या का घनत्व।
(४) जनसंख्या का स्थानान्तरण।

जनसंख्या का विकास

(Growth of Population)

विश्व की जनसंख्या के बारे में भिन्न-भिन्न अनुमान लगाये जाते रहे हैं। रोमन साम्राज्य के समय विश्व में श्री मुल्हाल (Mulhall) के अनुसार ५४,०००,००० मनुष्य थे। १८०४ में माल्टे ब्रून (Malte Brun) के मतानुसार यह संख्या ६४०,०००,००० थी। १८४३ में बाल्बी (Balbi) के अनुसार यह ७,३६,००० ००० थी।[1] १९१४ में स्टोडार्ड (Stoddard) ने अनुमान लगाया कि सम्पूर्ण विश्व में १,७००,०००,००० व्यक्ति रहते थे।[2] १९१६ में ईस्ट के अनुसार विश्व में १,७५०,०००,००० जनसंख्या थी।[3] राष्ट्र संघ (League of Nation) के

---

१. Quoted by H G. Duncan : Race and Population Problems, p. 241,

२. Stoddard : Rising Tide of Colour, 1920, p. 6-7.

३. East : Mankind at the Cross Roads, 1923, p, 111-12,

विश्व की जनसंख्या का वितरण (१० लाख में)

महाद्वीप	१६५०	१७५०	१८००	१८५०	१९००	१९५१	१९५३
यूरोप (रूस को छोड़कर)	१००	१४०	१८७	२६६	४०१	५९१	६१०
उत्तरी अमेरिका	·१	१·३	५·७	२६	८१	१६८	१७७
मध्य तथा द० अमेरिका	१२	११·१	१८·९	३३	६३	१६२	१७४
अफ्रीका	१००	९५	९०	९५	१२०	१९८	२०८
एशिया	३३०	४७९	६०२	७४९	९३७	१,३२०	१३६४
ओशीनिया	२	२	२	२	६	१३	१४
भारत	१०० (१६००)	—	१२०	१५३	२३५	३५६	३७७
विश्व का योग	५४५	७२८	९०६	१,१७१	१,६०८	२,४९९	२,५४७

जनसंख्या में वृद्धि[1]

(प्रति वर्ष १० लाख)

महाद्वीप	१७००–१७५०	१७५०–१८००	१८००–१८५०	१८५०–१९००	१९००–१९५०	१९५०–५४
एशिया	२·४१	३·१	२·९	३·८	६·४	२१
यूरोप	०·४३	०·९४	१·६	२·७	३·८	३
अफ्रीका	—०·१	—०·१	०·१	०·५	१·५	३
उत्तरी अमेरिका	—	०·२४	०·७	१·७	३·६	३
दक्षिणी अमेरिका	—					४
ओशीनिया	—	—	—	०·०८	०·१	०·३
विश्व का योग	२·७४	४·१४	५·३	८·७८	१५·४	३४·३

१. Demographic Yearbook, 1955,

जनसंख्या की वृद्धि (% में)

महाद्वीप	१७०० १७५०	१७५० १८००	१८०० १८५०	१८५० १९५१	१९०० १९००
एशिया	३६·४	३३·८	२४·४	२५·१	४३.६
यूरोप	७७·८	३३·६	४२ २	५०·८	४७ ३
अफ्रीका	—५·०	—५·३	५·५	२६·३	७२·३
अमेरिका (उत्तरी + दक्षिणी)	—४·६	१००·०	१,४३·०	१४४·१	१०७·४
(उ० अमेरिका)					१७४·६
(द० अमेरिका)					११६·६
ओसीनिया	—	—	—	२००·०	
विश्व	६·६	२९·३	२९·३	३७·३	५५·४

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि समस्त विश्व की जनसंख्या में पिछले २०० वर्षों में अपूर्व वृद्धि हुई है। किन्तु यह वृद्धि सभी देशों में अथवा क्षेत्रों में एक समान नहीं हुई है। सन् १६५० में यूरोपीय लोग ससस्त संसार की जनसंख्या का १८% थे, सन् १८०० में ये २०·७% और १९०० में २५% तथा १९५१ में % हो गये जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

जनसंख्या का प्रतिशत वितरण

महाद्वीप	१६५०	१७५०	१८००	१८५०	१९००	१९५१	१६५० से १९५१ तक वृद्धि % में
यूरोप	१८·३	१९·२	२०·७	२२·७	२४·९	२३·६	४९१
उत्तरी अमेरिका	·२	·१	·७	२·३	५·१	६·७	१६,७००
द० तथा मध्य अमेरिका	२·२	१·५	२·१	२·८	३·९	६·८	१,३४१
अफ्रीका	१८·३	१३·१	९·९	८·१	७·४	८·३	१०८
एशिया	६० ६	६५·८	६६·४	६३·९	५८·३	५३·८	३०८
ओशीनिया	·४	·३	·२	·२	·४	·५	५५०
विश्व	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	३५८

अनुसार १६३१ में २०,२५,०००,००० मनुष्य विश्व में निवास करते थे। इन आँकड़ों से ज्ञात होगा कि जनसंख्या के अनुमान लगाने में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न आँकड़े प्रस्तुत किये हैं। ऊपर की प्रथम तालिका में १६५० से १६५१ तक के जनसंख्या के आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं[४] :—

इन तालिकाओं से स्पष्ट होगा कि १७५० में विश्व में ७२८० लाख मनुष्य थे जिनमें से लगभग १५० लाख नई दुनिया में; ७१३० लाख पुरानी दुनिया में ४७६० लाख एशिया, १४०० लाख यूरोप और ६५० लाख अफ्रीका में फैले हुए थे।

सन् १८०० के लगभग विश्व की जनसंख्या बढ़कर ६०६० लाख हो गई। अर्थात् इन ५० वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि ४.४% प्रति दशाब्दी अथवा ०.४४% प्रति वर्ष के हिसाब से हुई। यह वृद्धि नई दुनिया में बड़ी तेजी से हुई (अर्थात् १२.४%) क्योंकि यूरोप के देशों से इस अवधि में प्रवास आरम्भ हो चुका था। एशिया की जनसंख्या में ४.५% और यूरोप में ५.७% की वृद्धि हुई। अफ्रीका की जनसंख्या में वृद्धि नहीं हुई बल्कि इसमें कुछ ह्रास ही हुआ।

आगामी ५० वर्षों में यह संख्या ११७१० लाख हो गई। यह वृद्धि प्रति दशाब्दी में ५.१% की गति से और प्रतिवर्ष ०.५१% की गति से हुई। नई दुनिया की जनसंख्या बड़ी तीव्र गति से बढ़ी (अर्थात् १५.५% प्रति दशाब्दी)। यूरोप में ७%; एशिया में ४.४%; अफ्रीका १८% की गति से इसकी वृद्धि हुई।

सन् १६०० में विश्व की जनसंख्या १६०८० लाख थी। विश्व की वृद्धि प्रति दशाब्दी में ६.३% और प्रति वर्ष ०.६३% की गति से हुई। नई दुनिया की वृद्धि १६.८% और यूरोप की वृद्धि ८.१% से हुई। एशिया की वृद्धि कुछ धीमी रही—४.५% किन्तु अफ्रीका भी अब दौड़ में भाग लेने लगा।

सन् १६०० और १६५० के बीच विश्व के सभी देशों में जनसंख्या की वृद्धि कम ही हुई क्योंकि इस अवधि में संतति–नियमन के उपायों का अवलंबन करने से पश्चिमी यूरोप के अधिकांश देशों में जन्म दर में ह्रास हुआ। मृत्यु दर पहले ही स्वास्थ्य साधनों की प्रगति के कारण गिर चुकी थी। अतः यूरोपीय देश में एशिया के देशों की अपेक्षा कम वृद्धि हुई। यूरोप की दशाब्दी वृद्धि ६०% की गति से हुई। एशिया में यह गति ६.८%, अफ्रीका में ६.३% और नई दुनिया में १५.१% से हुई।

इस विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि १६५० से १६५० तक विश्व की जनसंख्या में अच्छी वृद्धि हुई है। १६५० से १७५० तक यह ३३.५%; १७५० से १८५० तक ६०.८% की गति से बढ़ी किन्तु आगामी ५०

४. Carr Saunder's : World Population, 1936 (for figures upto 1900); U. N. O. World Population Trends, 1920–47 (1949) and U. N. O. World Facts & Figures (1953); U. N. O : Demographic Yearbook, 1954.

वर्षों में ही यह ५५'४% की गति से बढ़ गई—अर्थात् प्रतिवर्ष १'१% के हिसाब से।

१६५०–५४ की अवधि में विश्व के विभिन्न महाद्वीपों में जनसंख्या में प्रति वर्ष की वृद्धि भिन्न-भिन्न रही है। एशिया में २१०० लाख; दक्षिणी अमरीका में ४० लाख; उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, यूरोप और रूस में प्रत्येक में ३० लाख तथा ओसीनिया में ३२५.००० । अर्थात् जनसंख्या की प्रतिवर्ष वृद्धि ओसीनिया में २'६%; दक्षिणी अमेरिका २'४%; उत्तरी अमेरिका १'६%; रूस १'५% तथा सबसे कम यूरोप में हुई।

कुछ प्रमुख देशों में जनसंख्या की वृद्धि (००० में)

वर्ष	ब्राजील	इङ्गलैंड	फ्रांस	सं० रा० अमेरिका	जापान	भारत
१८००	३,६२०	८,८४०	२७,१३०	५,३००	अप्राप्य	अप्राप्य
१८५०	७,३३४	१७,७७३	३५,६३०	२३,२६०	,,	१२०,०००
१८६०	१४,१६६	२८,७६४	३८,३८०	६३,०५६	,,	२३५,६००
१६००	१७,६८४	३१,२४६	३८,६००	७६,१२६	४४,२४५	२३५,५००
१६१०	२२,२१६	३५,७६२	३६,५४०	६२,२६७	५०,७४३	२४६,०००
१६२०	२७,४०४	४२,७६०	३६,०००	१०६,५४३	५५,६६३	२४८,१००
१६३०	३३,५६८	४४,७६५	४१,६१०	१२३,०६१	६४,४५०	२७५,५००
१६४०	४१,१४४	४६,६०५	४१,०००	१३१,६७०	७१,४१०	३१२,८००
१६५०	५१,६७६	४८,८४१	४१,६४४	१५१,६७७	८८,६००	३५६,०००

इस तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जहाँ भारत की जनसंख्या में १८५० और १६५० के बीच १२० लाख की वृद्धि हुई, हुई अर्थात् १६७'३% की वहाँ इसी अवधि में ब्राजील की जनसंख्या में ६२२%, फ्रांस में केवल १८%, इटली की में (१८४ लाख से ४६६ लाख) १५१'६%, स्पेन में (१५३ लाख से २७६ लाख) ८२'३%; मैक्सिको में (७५ लाख से २५७ लाख) २४२'६%; अर्जेन्टाइना में (११ लाख से १७२ लाख) १४६३'६%; सं० रा० अमेरिका में (२३२ लाख से १५१६ लाख) ५५३'४% तथा इङ्गलैंड और वेल्स में (१७७ लाख से ४३८ लाख) १४७'४% की वृद्धि हुई।

इन सौ वर्षों में प्रति दशाब्दी में भारत की वृद्धि १६'७% की गति से हुई; ब्राजील की ६२'२%; मैक्सिको २४'२%; अर्जेन्टाइना १४३'६%; सं०रा० में ५५'३% की गति से बढ़ी किन्तु फ्रांस की वृद्धि १'८%; इटली १५'१%; स्पेन ८'२ और जापान १८'२% की गति से हुई। अतः भारत की % वृद्धि अन्य देशों की अपेक्षा अधिक नहीं हुई है किन्तु यदि हम संख्या की दृष्टि से विचारें तो वास्तव में भारत की वृद्धि अधिक लगती है। इन १०० वर्षों में हमारी औसत वृद्धि प्रति दशाब्दी में २३० लाख हुई जबकि ब्राजील में यह ४४ लाख, इङ्गलैंड-वेल्स में ३१ लाख; फ्रांस में ६ लाख; सं० रा० अमेरिका १२८ लाख तथा अर्जेन्टाइना में १६ लाख थी।

१६५०–५४ के बीच जनसंख्या में सबसे अधिक वृद्धि वेनेजुएला में ३%

प्रतिवर्ष; पनामा में २'६%; लंका में २'८%; मेक्सिको में २'७% हुई। सबसे कम वृद्धि आयरलैंड में ०'०४%; स्पेन में ०'८%; पोलैंड और पाकिस्तान में ०'६% हुई।

विश्व के इन देशों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कई कारण हैं। जनसंख्या की वृद्धि पर मुख्यत: प्रजनन शक्ति (Fertility), मृत्यु दर (Mortality) और प्रवास (Mirgration) प्रभाव डालते हैं। किसी देश की लिंग-भेद, परिवार की सीमा, सामाजिक रीति-रिवाज तथा मनुष्यों का रहन-सहन तथा उनकी आर्थिक स्थिति भी कुछ सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि के जिम्मेदार तत्व हैं।

चूंकि जनसंख्या की वृद्धि प्रजनन संख्या तथा मृत्यु संख्या के अंतर द्वारा निर्धारित की जाती है अत: औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ उत्तरोत्तर बढ़ती जनसंख्या की अपूर्व वृद्धि मृत्यु संख्या में विशेष ह्रास हो जाने के कारण हुई है क्योंकि विज्ञान की सहायता से न केवल रोगों पर कुछ सीमा तक विजय प्राप्त करली है बल्कि नये व्यवसायों के विकास के कारण उदरपूर्ति के नये साधन भी ढूंढ निकाले है। औद्योगीकरण का प्रसार हुआ, खेती में वृद्धि हुई, स्थानीय व्यापार के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने लगा अतएव पिछली शताब्दी में होने वाले अकालों और खाद्यान्नों की कमी दूर हो गई। फलत: जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई।

नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में जनसंख्या में प्रति १००० पीछे प्राकृतिक वृद्धि बताई गई है[1] :—

देश	१६०१—५	१६३६-३८	१६५३
डेनमार्क	१४'२	७'३	८'८
इङ्गलैंड-वेल्स	१२'१	२'६	४'५
फ्रांस	१'७	०'५	५'८
इटली	१०'७	६'०	७'४
पुर्तगाल	१२ ०	११'३	१२'१
स्विटजर लैण्ड	१०'३	३ ८	६'८
लंका	१२ १	१४'४	२८'५
कनाडा	—	१०'३	१६'३
जापान	११'४	११'८	१२'६
सं० रा० अमेरिका	—	६'०	१५'१
आस्ट्रेलिया	१४'६	७'८	१३'८
भारतवर्ष	—	११'३	१३'०

अन्य देशों में यह वृद्धि (Natural Increase) इस प्रकार थी: प० जर्मनी ४'५; आस्ट्रिया २'६; बेल्जियम ४.१; नार्वे १०'५; नीदरलैंड १४'१; न्यूजीलैन्ड १५'३; लंका २८.५ तथा ब्राजील २४।[2]

१. Quoted in 'Manchaster Guardian', 20th. Jan., 1955.
२. Demographic Yearbook, 1954.

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि विश्व की जनसंख्या में प्रति मिनिट ४१; प्रति घंटा २,५००; प्रतिदिन ६०,००० और प्रतिवर्ष लगभग २५० लाख नये व्यक्तियों की वृद्धि होती है। इनमें से अकेले भारत और चीन देशों में ४०–५० लाख प्रति देश में बढ़ जाते हैं।[1]

विश्व में जनसंख्या की वृद्धि का भविष्य :

'विश्व की इस बढ़ती हुई जनसंख्या की गति को दृष्टिगत रखते हुए डा० चार्ल्स का कहना है कि 'इसी गति से विश्व की जनसंख्या आगामी ५२ वर्षों में दुगुनी हो जायगी।" इसी संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ का कहना है कि 'वृद्धि की वर्तमान गति (प्रति वर्ष १% से अधिक) से विश्व की जनसंख्या दूर भविष्य में नहीं वरन् हमारे बच्चों के जीवन काल में ही ४००० बिलीयन तक बढ़ जायगी।"[2]

नीचे की तालिका में अनुमान लगाया गया है कि १९८० में विश्व की जनसंख्या—वर्तमान वृद्धि की दर में क्या होगी :—[2A]

(दस लाख में)

	१९५०	१९८०		
		उच्चतम	मध्यम	निम्नतम
अफ्रीका	१९८	३३७	२८९	२५५
उत्तरी और द० अमेरिका	३३०	५७७	५३५	४८७
एशिया (रूस को छोड़ कर)	१,३२०	२,२२७	२,०११	१,८१६
यूरोप („)	५९३	८४०	७७६	७२१
ओसीनिया	१३	१९.२	१७.५	१६.१
सम्पूर्ण विश्व	२,४५४	३,९९०	३,६२८	३,२९५

इसी प्रकार विश्व के अनेक देशों की जनसंख्या की भविष्य की वृद्धि के बारे में भी कई विद्वानों द्वारा अनुमान लगाये गये हैं।

डा० नोटेस्टीन (Notesteen) का मत है कि, "रूस की जनसंख्या १९२६ में १४७० लाख से बढ़ कर १९४५ में १७०० लाख हो गई। इस संख्या में भविष्य से भी वृद्धि होने की संभावना है। १९५० में यह २०३० लाख और १९७० में २५१० लाख हो जायगी, यदि वृद्धि की वर्तमान गति ही रही।"[3] इसी प्रकार यूरोप की जनसंख्या का १९४० में ३९९० लाख से

१. News of Populatian and Birth Control. No 1. P. 1.
२. U. N. O.: The Determinants and Consequences of Population Trends, p. 160-61
२. A. P. E. P; London: World Population and Resources.
३. F. W. Notestein: Future Population of Europe and the Soviet Union, 1944, p. 42.

बढ़ कर १६६० में ४२१० लाख हो जाने का अनुमान लगाया गया है। किन्तु यह भी कहा गया है कि अनिश्चित काल तक यह वृद्धि नहीं हो सकती।[१] डा० कुजेन्स्की (Kuczynski) का मत है कि यदि प्रजनन दर तथा मृत्यु दर यही रही तो आगामी कुछ वर्षों में ही यूरोप के बहुत से देशों की जनसंख्या कम हो जायगी। नीचे की तालिका में यूरोप तथा रूस में प्रति दस वर्ष पीछे होने वाली वृद्धि का अनुमान लगाया जा रहा है :—[२]

(००० में)

	१६४०	१६५०	१६६०	१६७०
यूरोप और रूस	५७२,०००	६१८,०००	६५०,०००	६६८,०००
यूरोप (रूस को छोड़ कर)	३६६,०००	४१५,१००	४२१,०००	४१७,०००
उत्तरी, पश्चिमी व मध्य यूरोप	२३४,०००	२३७,०००	२३४,०००	२२५,०००
पश्चिमी-मध्य यूरोप	१६३,०००	१६६,०००	१६५,०००	१५६,०००
उत्तरी यूरोप	२०,०००	२०,५००	२०,३००	१६,५००
द० पूर्वी यूरोप	१६५,०००	१७७,०००	१८७,०००	१६२,०००
रूस	१७४,०००	२०३,०००	२२८,०००	२५१,०००

एक अन्य अनुमान के अनुसार दक्षिणी-पूर्वी एशिया की जनसंख्या १६४० में ६३८० लाख से बढ़ कर १६६० में १७००० लाख हो जायगी। श्री मोरटारा (Moratara) के अनुमान से यदि वृद्धि की दर वही रही जो १६४० और १६५० के बीच थी, तो ब्राजील की जनसंख्या १६५० में ५१० लाख से बढ़ कर २००० में १६८० लाख हो जायगी।[3]

१६३५ की प्रजनन गति तथा मृत्यु दर के हिसाब से बेल्जियम की जनसंख्या १६८० में ७४.१ लाख पहुँच जायगी किन्तु इसके बाद उसमें ह्रास होने लगेगा और १६६५ में यह ६३·८ लाख तथा २००० में ६४·५ लाख हो जायगी।[४] मिस्र की जनसंख्या १८ वीं शताब्दी में २५ से ३० लाख तक थी, १६ वीं शताब्दी के मध्य में यह ४७ लाख हो गई और १८६७ में १०० लाख से बढ़ कर १६५५ में २२० लाख हो गई। यदि वृद्धि इसी गति से होती रही तो यह संख्या १६६५ में २८० लाख टन हो जायगी। किन्तु यदि जन्म दर वर्तमान स्तर पर ही रही और कुछ समय के लिए मृत्यु दर में कमी हो

१ P. E. P. Reports on "Population Policy in Great Britain, 8048.

२. F. W. Notestein : Op. Cit., p. 42.

३ G. Mortara : Population Trends in Brazil, in Population Studies. 1954, p. 122—23.

४. D. V. Glass : Population Policies and Movements in Europe,-1240, p. I56.

गई तो जनसंख्या की वृद्धि और भी तेजी से होगी।[1] वैनेजुएला जैसे छोटे देश की जनसंख्या १९२० में २४ लाख थी यह बढ़ कर १९५० में ५० लाख से कुछ ही कम हो गई। वृद्धि की इस गति से यह १९८० तक १०० से १३० लाख तक हो जायगी।[2] इङ्गलैंड तथा वेल्स में, जिस गति से प्रजनन दर तथा मृत्यु दर में ह्रास हो रहा है, यदि यही अवस्था रही तो सन् २०३५ तक यहाँ की जनसंख्या ४४ लाख रह जायगी।[3] किन्तु शाही जनसंख्या आयोग (Royal Commision on Population) के अनुसार आगामी कुछ पीढ़ियों तक ब्रिटेन की जनसंख्या में बराबर वृद्धि होती जायगी। कार्यशील आयु वाली जनसंख्या आगामी ३० वर्षों तक वर्तमान संख्या तक ही रहेगी किन्तु उसके पीछे इसमें कुछ ह्रास होगा। युवक पुरुषों की संख्या में आगामी १५ वर्षों में लगभग १४ लाख की कमी होगी किन्तु वृद्धों की संख्या में आगामी ३० वर्षों में लगभग २३ लाख या इससे अधिक की वृद्धि होगी।[4]

जापान के वैल्फेयर मंत्रालय की गणना के अनुसार १९७० में जापान की जनसंख्या १००० लाख हो जायगी। यह १९९० में १०८० लाख तक पहुँच कर एक शताब्दी में ही कम होने लगेगी।[5] डा० सीमन (Simon) के अनुसार लङ्का की जनसंख्या, जो २·८% की गति से प्रति वर्ष बढ़ रही है, आगामी ३० वर्षों में ही दुगुनी हो जायगी।[6] श्री विलियम वोग्ट (William Vogt) ने अनुमान लगाया है कि विश्व में ४० देश ऐसे हैं जिनमें वर्तमान गति से वृद्धि होने पर जनसंख्या १९८४ तक दुगुनी हो जायगी, इनमें से कुछ देशों की जनसंख्या की पूरा होने में निम्न समय लगेगा :—[7]

कास्टारीका	—२० वर्ष	सं० राष्ट्र अमेरिका	—३४ वर्ष
मैक्सीको	२४ ,,	मिस्र	३१ ,,
पोर्टो रीको	२४ ,,	क्यूबा	३३ ,,
डोमीनीकल रिपब्लिक	२५ ,,	हवाई	३१ ,,

भारत की जनसंख्या में जो प्रति १००० व्यक्ति पीछे १३ की वृद्धि हो रही है उस हिसाब से भारत की जनसंख्या १९५१ में ३५६० लाख से बढ़ कर

१. Eugenics Review. Vol 47, No 4 (1956) p. 208.
२. U. N. O: Population of South America 1950-80 (1955).
३. E. Charles: Twilight of Parenthood, 1944,
४. H M. S. O, Report: Royal Commision on Population, 1949,
५. 'Mainichi Daily', Quoted in Press Journal, 16th Nov, 1955.
६. Lord Simon: Some Aspects of World Population and Food Resources, in Eugenics Review Vol, 4, No, 2 (1954) p. 98.
७. W. Vogt: 'How Sane Are We ?', in the Third Report of the International Conference in Planned Parenthood, 1952, p. 247.

१९६१ में ४१०० लाख, १९७१ में ४६०० लाख और १९८१ में ५२०० लाख हो जायगी।[१] डा० स्वरूप की गणना के अनुसार भारत की जनसंख्या सन २३०० में ७००० लाख होगी किन्तु डा. राजा और श्री लाल का अनुमान है कि सन २२०० तक में ही यह संख्या होजायगी। तथा डा. डेविस के अनुसार सन् २५०० तक यह संख्या होगी।[२] इस संबंध में डा. साइमन का विचार है कि यदि मृत्यु दर और प्रजनन दर भारत में यही रही तो इसमें कोई संशय नहीं कि २०० वर्षों में भारत की जनसंख्या १·५ बिलीयन हो जायगी।"[३]श्री विलीयम वोग्ट की सम्मति में यह देश विश्व के लिए खतरे का निशान (Danger Spot) होगा।[४]

बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या—

विश्व की जनसंख्या समस्या के सम्बन्ध में तीन विचार धारायें प्रचलित हैं।

(१) पहली विचारधारा के अनुसार, ज्यों-ज्यों संसार की जनसंख्या बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों प्रत्येक मनुष्य के लिए उपलब्ध खाद्य सामग्री और अन्य सुविधाओं में कमी होती जायगी क्योंकि प्रकृतिदत्त साधन एक सीमा तक सीमित होते हैं। विज्ञान में चाहे कितनी ही उन्नति हो जाये किन्तु जब तक जनसंख्या की वृद्धि में किसी प्रकार का नियंत्रण न किया जायगा तब तक पृथ्वी पर बढ़ती हुई जन-संख्या भूख से पीड़ित होकर नष्ट हो जायगी। इस विचार धारा के पोषक डा० चार्ल्स, डा० साईमन; श्री बर्च और पेंडल; विलियम वोग्ट और ओसबर्न आदि विद्वान हैं। डा० चार्ल्स का कथन है कि "विश्व के भूमि, खनिज तथा इंधन सम्बन्धी साधन सभी सीमित हैं और जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ इन साधनों में कमी होती जायगी। अतः सभी प्रकार के प्रयत्न इस वृद्धि को रोकने के लिए किए जाने चाहिए और यथा संभव विश्व की जनसंख्या को एक निश्चित सीमा तक स्थिरीकरण कर देना चाहिए।"[५] डा० चार्ल्स का मत है कि जिस स्वर्णिमयुग (Golden Age) में हम रह रहे हैं वह अधिक समय तक नहीं रह सकता। अतः न केवल जनसंख्या की वृद्धि को ही रोकना आवश्यक है वरन् प्राकृतिक साधनों का संरक्षण भी करना चाहिए।

श्री बर्च (Borch) और श्री पडेल (Pendell) के अनुसार यदि समस्त विश्व के नागरिकों को न्यूनतम स्तर पर रखने के लिए भी भोज्य सामग्री में इस अनुपात में वृद्धि करनी होगी: अनाज में ५०%; दूध में ६०%; अन्य दूध की वस्तुओं में १२५%; वनस्पतिक तैलों में १२५% तथा फल और हरी सब्जियों में ३००%। जब तक उत्पादन में यह वृद्धि न होगी तब तक जनसंख्या

---

१. Census : of India. 1951.Vol. I. pt. I. A. p. 19.
२. K. Davis : Population of India and Pakistan. p, 247
३. Lord Simon : Op, Cit., p. 98
4. W, Vogt : Roads to Survival, 1948, p. 228
५ C. Darwin : Next Millian Years, 1952.

भूख से ही पीड़ित रहेगी ।[१] श्री वोग्ट काले का तो इस सम्बन्ध में यहाँ तक कहना है "कि विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या शाँति के लिए 'एटम बम' से भी अधिक खतरनाक है ।"[२] श्री ओस्बर्न (Osborn) कहते हैं, जब तक मानव अपनी प्रजनन शक्ति में नियंत्रण न करेगा और प्रकृति के अनुकूल न रहेगा तब तक उसे प्रकृति के कसाईखाने को ही भरते रहना पड़ेगा क्योंकि प्रत्येक वृद्धि के साथ-साथ प्रकृति ने एक उत्तम माता की तरह पालन पोषण करना छोड़ दिया है ।[3] एटम बम के बाद सबसे अधिक विनाशकारी वस्तु अनियंत्रित प्रजनन है ।[४] अतः यह अतिरिक्त संख्या भविष्य के लिए उतनी ही विनाशकारी होगी जितना कि हाईड्रोजन बम का खतरा ।[५] इन महानुभावों के विचार से जनसंख्या की वृद्धि में कमी होना आवश्यक है ।

(२) दूसरी विचारधारा के मतावलंबियों के अनुसार आज पृथ्वी पर जनसंख्या वृद्धि अथवा प्रकृतिदत्त साधनों में कमी की नहीं है किंतु यह प्रकृति-दत्त साधनों के अपूर्ण विदोहन और वितरण की दूषित प्रणाली है । इस विचारधारा वालों का कथन है कि विज्ञान की सहायता से भोज्य पदार्थों का उत्पादन दुगुना, तिगुना बढ़ाकर बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन, कपड़ा व रहने का स्थान दिया जा सकता है अतः जनसंख्या को भोजन की कमी के कारण कम होने का कोई अंदेशा नहीं ।

यह विचारधारा उन मनुष्यों की है जो मनुष्य और विज्ञान की गुप्त शक्ति में विश्वास रखते हैं और यह कहते हैं कि अभी तक पृथ्वी के विभिन्न भागों के प्रकृतिदत्त साधनों का पूरा-पूरा ज्ञान ही नहीं हो पाया हैं और यदि विज्ञान की सहायता ली जाय तो मनुष्य का जीवन ही बदल सकता है । इस प्रकार के विचारकों का विश्वास है कि भविष्य में गोबी, सहारा, थार अथवा आर्कटिक प्रदेश वैज्ञानिक चमत्कारों द्वारा उपजाऊ बन सकते हैं हिमालय और आल्पस मानव के हित के लिए लाभदायक बनाये जा सकते हैं । कई क्षेत्रों की दलदली अथवा वन-भूमि सुखाई जाकर मानव-निवास के लिए उपलब्ध की जा सकती है । अतएव जनसंख्या की कोई गंभीर समस्या उपस्थित नहीं हो सकती । श्री हैन्सवर्थ का कथन है कि यदि प्रकृति-दत्त साधनों और विज्ञान का सम्मिलित रूप से लाभ उठाया जाय तो पृथ्वी पर अब से तीन गुनी अधिक जनसंख्या को रखा जा सकता है ।

---

२. G. I. Burch and E. Pendel : Population Roads to Peace or War, 1945, p. 30.

३. W. Vogot in News of Population and Birth Control, No. 1, p. 1. "World Population represents more of a threat to peace than the Atom Bomb"—

४. F. Osborn : Onr Plundered Planet.

५. H. Fourchild : The People—"Next to atom bomb the most ominous force in the world today is uncontrolled fertility"—

६. News of Population and Birth Control, No. 27. p 2.

इसी प्रकार श्री बर्नाल, जॉन रसेल, डा० ब्राऊन, प्रो० डी कैस्ट्रो, किटले और डा० कुजैन्स की भी विज्ञान की सफलता में विश्वास करते हुए यह मानते हैं कि वर्तमान काल में जनसंख्या की कोई गभीर समस्या नहीं है क्योंकि मानव ने अपनी बुद्धि के बल पर आवश्यकतानुसार नये-नये आविष्कारों को जन्म दिया है अतः बढ़ती हुई जनसंख्या से डरने की कोई आवश्यकता नहीं। श्री बर्नाल (Bernal) के अनुसार यदि समस्त विश्व की कृषि योग्य भूमि का आधुनिक साधनों द्वारा पूरा-पूरा उपयोग किया जाय तो इसके द्वारा इतना भोजन प्राप्त किया जा सकता है जो अधिकतम उपयोग के अनुसार वर्तमान जनसंख्या के लिए २ से २० गुना अधिक होगा।[1] श्री जॉन रसेल (John Russel) भी इस सम्बन्ध में बड़े आशावादी हैं। इनका विचार है कि यदि मनुष्य आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रस्तुत की गई सुविधाओं का पूरा उपयोग करे तो उसके लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन सामग्री उपलब्ध हो सकती है।[2] अमरीकन वैज्ञानिक डा० ब्राऊन तो श्री रसेल से भी आगे बढ़ गये हैं। उनका विचार हैं कि यदि वर्तमान गति से ही वैज्ञानिक साधनों में वृद्धि होती गई तो पृथ्वी पर वर्तमान खाद्य उत्पादन से २५ गुना अधिक प्राप्त किया जा सकेगा जिसमें से एक बिलियन एकड़ सामुद्रिक क्षेत्रों का उत्पादन भी सम्मिलित होगा। उनका विश्वास है कि जनसंख्या का एक बड़ा भाग वायु, स्थल और सामुद्रिक जल तथा ग्रैनाइट आदि से प्राप्त होने वाली वस्तुओं पर निर्भर रह सकेगा।[3]

इसी प्रकार डा० डी० कैस्ट्रो (de Castro) के अनुसार पृथ्वी पर १६० लाख एकड़ भूमि ऐसी है (अर्थात् प्रति व्यक्ति पीछे ८ एकड़) जो खेती के योग्य है। इसमें से प्रति व्यक्ति पीछे २ एकड़ भूमि ही इतना खाद्यान्न उत्पन्न कर सकती है जो साधारण खुराक के लिए काफी होगा। अभी तक कृषि के अंतर्गत २ बिलीयन एकड़ से भी कम लाया गया है अतः शेष भूमि भी खाद्यान्न उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। डा० कैस्ट्रो का तो यहाँ तक कहना है कि "विश्व में २० लाख प्रकार के पशु आदि पाये जाते हैं जिनमें से केवल ५० का भोजन के लिये उपयोग किया गया है इसी तरह वनस्पति जगत में ३५०,००० प्रकार की वस्तुओं में से केवल ६०० ही मानव द्वारा बोई जाती है अतः इन सबमें विज्ञान की सहायता से वृद्धि की जा सकती है।[4]' विश्व के भूगर्भ-शास्त्रियों का मत है कि अब तक पृथ्वी की ५०% भूमि से केवल १०% का ही कृषि के लिए उपयोग किया गया है किन्तु प्रति एकड़ से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक रीतियों का अवलंबन किया जा सकता है।

प्रो० कोलिन क्लार्क (Colin Clark) तो यहाँ तक कहते हैं कि "विश्व

---

१. Bernal : The Social function of Science, p. 346—79.
२. J. Russel : The World Population and World Food Supplies, 1956
३. H. Brown : Challenge of Man's Future, 1954,
४. J. De Castro : Geography of Hunger, p. 21--22.

का अधिकांश भाग अपनी क्षमता से भी कम बसा है। विश्व की कृषि योग्य भूमि का कुल क्षेत्रफल २४० लाख वर्ग मील है, यदि डेनमार्क की कृषि प्रणाली का उपयोग किया जाये तो पृथ्वी पर २३००० लाख व्यक्तियों की अपेक्षा १२०, ००० लाख व्यक्तियों का भरण-पोषण हो सकता है।"[१] प्रो० क्लार्क के अनुसार विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या को तीन प्रकार से हल किया जा सकता है :—

(१) विश्व के घने बसे भागों से विश्व के निर्जन, उजाड़ तथा कृषि योग्य भागों को अंतर्राष्ट्रीय संधि के अनुसार जनसंख्या का प्रवास किया जाय।

(२) बड़े और घने बसे देशों में जहाँ औद्योगीकरण हो रहा है, उन देशों की उत्पादित वस्तुओं के लिए विश्व के अन्य औद्योगिक देश बाजार की सुविधा दें तथा उनके व्यापार पर किसी प्रकार का नियंत्रण अथवा शुल्क न लगायें।

(३) निर्धन तथा छोटे देशों के औद्योगिक विकास के लिए बड़े देशों द्वारा आर्थिक सहायता दी जाय।

जनसंख्या का चक्र (Population Cycle) :

जनसंख्या के विकास के अनुसार विश्व के देशों को निम्न क्षेत्रों में बांटा जा सकता है :—[२]

(१) इस श्रेणी के अन्तर्गत वे देश आते हैं जिनकी मृत्यु दर और जन्म दोनों ही ऊँची हैं। जन्म दर प्रति १००० पीछे ४० से ५० और मृत्यु दर भी लगभग इतनी ही है। अत: दोनों दरों के समान होने के कारण जनसंख्या की वृद्धि नहीं के बराबर है। इन देशों की अर्थ व्यवस्था मुख्यत: कृषि आदि पर ही निर्भर है। यदि जनसंख्या में वृद्धि होती है तो अकाल, महामारियों, बाढ़ आदि से बहुत नुकसान होकर जनसंख्या में कमी भी हो जाती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में अफगानिस्तान, अरब, चीन, इथोपिया, इण्डोनेशिया, फारस, और दक्षिणी अमेरिका के कुछ देश और तिब्बत, आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(२) इस श्रेणी के अन्तर्गत वे देश सम्मिलित किये जाते हैं जिनकी जन्म दर तो अधिक होती है किन्तु स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं के बढ़ जाने के कारण मृत्यु-दर में कमी होगई है। इनकी जन्म व मृत्यु दर क्रमश: ४० और २५ प्रति १००० होती है। अत: जनसंख्या में वृद्धि अधिक होती है। श्रेणी के देशों में कृषि के साधन उत्तम होते हैं, उत्तम प्रकार की खाद, बीज और सिंचाई के सहारे अकाल तथा सूखे पर विजय प्राप्त कर अधिक भोज्य पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। खनिज पदार्थों वाले क्षेत्रों में औद्योगीकरण भी होता है। इस प्रकार के क्षेत्रों के मुख्य देश—भारत, ब्रह्मा, लंका, मलाया, थाईलैंड,

---

१, Colin Clark : Population Growth and Rising Standards.

२. Dr. C. P. Blacker : "Stages in Population Growth," in Eugenics Review, 1948, p. 88-102,

इण्डोचीन, फारमोसा, कोरिया, मिस्र, टर्की, इसराईल, मैडेगास्कर, मध्य अमेरिका, लेटिन अमेरिका के राज्य (चिली, यूरेग्वे और अर्जेनटाईना को छोड़ कर)—हैं। भारत की गिनती इसी श्रेणी में की जाती हैं। १९४१-५० में हमारी मृत्यु दर प्रति १००० पीछे ४० और जन्म दर २७ थी अतः प्रति १००० पीछे १३ मनुष्यों की वृद्धि हो जाती है। अन्य सभी बातें भारत पर लागू होती हैं।

(३) इस प्रकार के क्षेत्रों की मुख्य विशेषता जन्म और मृत्यु-दर में कमी होना है। जन्म दर ३० से ३५ और मृत्यु दर २० प्रति १००० है। क्षेत्रों की अर्थ व्यवस्था में उन्नत और आधुनिक प्रकार की कृषि और उद्योगों का मुख्य स्थान होता है। उद्योग धन्धों की वृद्धि के कारण जनसंख्या शहरों में अधिक रहने लगती हैं। रूस, जापान, अर्जेनटाईना, पोलेंड, बलगेरिया, रुमानिया, यूगोस्लाविया, इटली, स्पेन, चिली और यूरेग्वे इस श्रेणी के प्रमुख देश हैं।

(४) चतुर्थ श्रेणी के क्षेत्रों में जन्म और मृत्यु दर दोनों ही कम होती हैं अतः जनसंख्या प्रायः स्थिर रहती है। इस प्रकार के देशों को भविष्य में जनसंख्या के घटने का डर हो जाता है अतएव वे अपनी जनसंख्या को बढ़ाने के निमित्त कई उपाय काम में लाते हैं, यथा क्वांरे स्त्री पुरुषों को अधिक कर देना पड़ता है, विवाहित स्त्री पुरुषों को प्रति संतान पीछे उसके भरण-पोषण के लिए राज्य से भत्ता मिलता है, परिवार को यात्रा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा मनोरंजन के साधनों का भी व्यय दिया जाता है। अधिक सन्तान वाली माता को स्वर्ण-पदक दिए जाते हैं। इस श्रेणी के मुख्य देश यूरोप के पश्चिमी, उत्तरी और मध्यवर्ती कुछ देश (फ्रांस, बेल्जियम, डेनमार्क, जर्मनी, स्वीडन, स्विटजरलैंड और चेकोस्लोवाकिया) संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड आदि है। एशिया का कोई भी देश इस श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आता।

(५) अंतिम श्रेणी में वे क्षेत्र आते हैं जिनमें मृत्यु दर जन्म दर से अधिक होने के कारण जनसंख्या घटती जाती है। और इसलिए इन देशों की जनसंख्या समस्या 'जाति-आत्महत्या' (Race-Suicide) की है। इस प्रकार के मुख्य-देश टसमानिया, उष्ण-ओसिनिया, अथवा फ्रांस है।

जनसंख्या का वितरण (Distribution of Population):

संयुक्त-राष्ट्र संघ के अनुसार सम्पूर्ण विश्व का क्षेत्रफल ५५, ५५, ०००, ००० वर्ग मील है। इसमें से लगभग १०,०००,००० वर्ग मील भूमि पर या तो बर्फ जमा है अथवा वह बहुत ही गर्म और नम है अतः रहने के अयोग्य है। लगभग आधी (४५,०००,०००) वर्ग मील भूमि पर बहुत ही विरली जनसंख्या पाई जाती है। मानव निवास के योग्य भूमि का क्षेत्रफल केवल २२,५००,००० वर्ग मील बचता है। १९५४ में सारे विश्व की जनसंख्या २,६५२,०००,००० थी जिसमें से १४,५१० लाख रूस को छोड़कर एशिया

चित्र० २६०—विश्व की तुलनात्मक जनसंख्या का प्रदर्शन

में ; ४०,४० लाख यूरोप में ; ३५,७० लाख उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में ; २,१४० लाख रूस में ; २१०० लाख अफ्रीका में और १४४ लाख ओसीनिया में रहते हैं। पृथक-पृथक देशों में चीन विश्व का सबसे घना बसा देश है जहाँ ५८३० लाख व्यक्ति रहते हैं। इसके बाद भारत का स्थान है जहाँ ३७७० लाख व्यक्ति निवास करते हैं। इन दोनों देशों के बाद सोवियत रूस में २१४० लाख ; संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १६२० लाख, जापान में ८८० लाख है। इन देशों के बाद जर्मनी, इङ्गलैंड, इटली और फ्रांस का नम्बर आता है।

निम्न तालिका में विश्व की जनसंख्या का वितरण बताया गया है :—[1]

विश्व की जनसंख्या (१६५१)

महाद्वीप/देश	क्षेत्रफल (००० वर्ग मील में)	जनसंख्या (००० में)	
एशिया (रूस को छोड़ कर)	२७,०३०	१,२४३,००० से	१,३४६,०००
यूरोप (,,)	४,८६०	३६४,००० से	३६८,०००
अफ्रीका	३०,२६२	१६१,००० से	२०८,०००
उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका	४२,०४३	३२१,००० से	३४१,०००
ओसीनिया	८,५५७	१३,१०० से	१३.५००
सम्पूर्ण विश्व	१३५,११२	२,३७६,०००	२,४६६,०००
प्रमुख देश :			
रूस (१६५४)	२२,२७१	२१४,०००	
भारत	३,२८८	३५६,८२०	
चीन	६,७३६	४६३,५००	
जापान	३६८	२४,३००	
इण्डोनेशिया	१,४६२	७६,५००	

१. U. N. O., Demographic Yearbook, 1953.

पाकिस्तान	९४८	७५,८४२
इङ्गलैंड	२४४	५०,५५६
नीदरलैंडस	३२	१०,२५४
फ्रांस	५५१	४२,२३९
इटली	३०१	४६,५९८
जर्मनी	३५३	६९,०००
आस्ट्रेलिया	७,७०४	८,४३१
न्यूजीलैंड	२९८	१,९४७
स० रा० अमेरिका	७,८२८	१५४,३५३
कनाडा	९.९६०	१४,०००
ब्राजील	८,५१६	५३,३७७
मैक्सिको	१,९६०	२६,३३२
मिस्र	१,०००	२०,७२९
द० अफ्रीका संघ	१,२२४	१२,६८३

इस तालिका से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :—

(१) विश्व की लगभग जनसंख्या विश्व की १/२० भूमि पर रहते हैं। इनमें सबसे अधिक जनसंख्या एशिया महाद्वीप में पाई जाती है। यूरोप, उत्तरी अमेरिका और अफ्रीका इसके बाद आते हैं।

(२) भारत का क्षेत्रफल विश्व का २·३% किन्तु यहाँ विश्व की १४·३% जनसंख्या निवास करती है, जबकि एशिया का क्षेत्रफल विश्व का लगभग १/५ है किन्तु विश्व की जनसंख्या का लगभग ५०% यहाँ रहता है। अफ्रीका क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का लगभग १/५ है और विश्व की १/१२ जनसंख्या को स्थान देता है। उत्तरी अमेरिका भी लगभग अफ्रीका के ही बराबर है। यूरोप का क्षेत्रफल विश्व का १/२७ है किन्तु वहाँ सम्पूर्ण जनसंख्या का १/६ निवास करता है जब कि ओसीनिया का क्षेत्रफल विश्व का लगभग १/२७ ही है किन्तु जनसंख्या केवल ०·५% ही पाई जाती है।

(३) दुनिया के अधिक बसे देश चीन, भारत, जापान, इण्डोनेशिया, जर्मनी, इङ्गलैंड, फ्रांस, बेल्जियम इटली और नीदरलैंड्स हैं, जबकि विरले बसे देश मुख्यतः साइबेरीया, मध्य अफ्रीका के भाग, उत्तरी अमेरिका के भाग, उत्तरी अमेरिका के उत्तरी और मध्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया के पश्चिम भाग, कनाडा, रूस, ब्राजील, अर्जेनटाइना, पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका हैं।

प्रो० फॉसेट (C. B. Fawcett) के अनुसार विश्व की ३/४ जनसंख्या विश्व के १/८ भाग में केन्द्रित पाई जाती है, जो निम्न चार बड़े क्षेत्रों में स्थित है :—[१]

क्षेत्र	(१० लाख क्षेत्रफल वर्ग मील में)	जनसंख्या (दस लाख में)	मध्यवर्ती देशान्तर
यूरोप और यूरोपीय रूस	२.८	५२०	५०° उत्तर
पूर्वी उत्तरी अमेरिका	१.६	१३०	४०° ,,
सुदूरपूर्व	१.७	५००	३५° ,,
भारतवर्ष	१.०	४००	२५° ,,

विश्व में तीन ही प्रमुख क्षेत्र हैं जहाँ जनसंख्या का जमाव अधिक है :—

(१) द० पू० एशिया के मानसूनी प्रदेशों में यथा चीन, जापान, जावा भारत आदि।

(२) पश्चिमी और मध्य यूरोप के देशों में।

(३) पूर्वी और मध्य सं० रा० अमेरिका में।

प्रथम देशों की जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि पर ही अवलंबित है। भूमि की उर्वराशक्ति, पर्याप्त मात्रा में गर्मी और वर्षा की उपलब्धता तथा परिश्रमी मनुष्यों के कारण ही यहाँ जनसंख्या अधिक है।

द्वितीय व तृतीय श्रेणी के देशों में खनिज पदार्थों की अधिकता तथा कला कौशल में उन्नति हो जाने के फलस्वरूप जनसंख्या का जमाव विशेषत: खनिज अथवा औद्योगिक केन्द्रों में ही है। इसी कारण एशिया के मानसूनी देशों की अपेक्षा यहाँ व्यापार और उद्योग भी अधिक होता है। इसीलिये यहाँ बड़े-बड़े नगरों की संख्या भी अधिक है। इन भागों में ग्रामीण जनता प्रतिशत बहुत कम है, जबकि एशियायी देशों में शहरों में रहने वाली जनसंख्या ही बहुत कम है।

जनसंख्या के इन तीन केन्द्रों में बहुत अन्तर पाया जाता है। उत्तरी पश्चिमी यूरोप और उत्तरी पूर्वी अमेरिका के देशों में वाणिज्य, व्यापार, वैज्ञानिक कृषि और औद्योगिक उन्नति खूब हुई है। यहाँ व्यक्ति पूंजी अधिक है, रहन-सहन का स्तर ऊंचा है तथा क्षेत्रीय विशिष्टीकरण भी बहुत हुआ है। इसके विपरीत दक्षिणी पूर्वी एशिया के देश में अधिकांशत: जनसंख्या अर्द्ध–भूखी व अर्द्ध–नंगी है। जनसंख्या खाद्य सामग्री की उपलब्धता की दृष्टि से अधिक है। निर्धनता, दैहिक, दैविक और भौतिक व्याधियों का आधिक्य होने से रहन-सहन का स्तर काफी नीचा है। इन देशों का औद्योगीकरण अब हो रहा है।

उपर्युक्त अधिक जनसंख्या वाले देशों के विपरीत भूमंडल के बहुत से क्षेत्र बिल्कुल ही निर्जन है। ये क्षेत्र अनुमानत: पृथ्वी के लगभग आधे भाग पर फैले हुए हैं। इन क्षेत्रों में भौतिक वातावरण एवं जलवायु मनुष्य के निवास के लिए प्रतिकूल है। ऐसे क्षेत्र ये हैं :—

(१) ध्रुवी प्रदेश जहाँ तीव्र शीतकाल रहने से फसलें पैदा नहीं की जा सकती और ग्रीष्म ऋतु में भी पाला पड़ने का डर रहता है। ऐसे क्षेत्र उत्तरी साइबेरिया, उत्तरी नार्वे, ग्रीनलैंड, आइसलैंड, उत्तरी कनाडा और एंटार्कटिका महासागर के निकटवर्ती भाग हैं।

(२) दूसरा जनविहीन भाग भूमध्य रेखा के गर्म-तट भागों में स्थित हैं जहाँ तीव्र गर्मी, अधिक नमी और वर्षा वनस्पति को तो जन्म देती हैं किन्तु

---

१. C. B. Fawcett in 'Advancement of Science, 1947, Vol 4 p. 140-147—Quoted by J. Russel in "World Population and World Food Supplies," 1956. p. 14.

स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं हैं तथा असंख्य कीड़ों मकोड़ों के कारण कई प्रकार की बीमारियों को जन्म देती है। केवल जावा ही इसका अपवाद है।

(३) मरुस्थलीय भागों में जल का अभाव तथा तीव्र शुष्कता पाई जाती है। ऐसे क्षेत्र अफ्रीका में सहारा, कालाहारी; एशिया में अरब, तुर्किस्तान, मंगोलिया, पश्चिमी राजस्थान; आस्ट्रेलिया का मरुस्थल; उत्तरी अमेरिका का ग्रेट बेसिन, तथा दक्षिणी अमेरिका के अटकामा और पैटेगोनिया मरुस्थल।

अतः यह कहा जा सकता है कि विश्व में जनसंख्या का वितरण बड़ा असमान हैं। कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या मधु-मक्खी के छत्ते की तरह घनीभूत है किन्तु कुछ क्षेत्र बिल्कुल ही निर्जन हैं।

महाद्वीपों में जनसंख्या का वितरण :[१]

(१) एशिया में जनसंख्या का वितरण :

यद्यपि एशिया की जनसंख्या १४,५१० लाख है किन्तु यहाँ थोड़े से ही ऐसे भाग हैं जहाँ जनसंख्या का जमाव अधिक है। अधिकांश भागों में बहुत ही कम जनसंख्या केन्द्रित है। दक्षिणी-पूर्वी एशिया में, जहाँ विश्व की लगभग आधी जनसंख्या निवास करती है, जनसंख्या का वितरण बड़ा असमान है। यहाँ जनसंख्या घनी और बिखरी दोनों ही प्रकार की पाई जाती है। घनी जनसंख्या और बिखरी जनसंख्या के पड़ौसी क्षेत्रों के बीच गहरी खाइयाँ हैं। इन विभिन्नताओं का मुख्य कारण भूपटल का रूप और मिट्टी हैं। साधारणतः दक्षिणी-पूर्वी एशिया एक पहाड़ी प्रदेश हैं जहाँ नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी के बिछ जाने से निचले उपजाऊ मैदान सीमित मात्रा में पाये जाते हैं। इस प्रदेश की अधिक वर्षा ऊंचे भागों की उपजाऊ मिट्टी को बहा कर ले आती है और उन्हें सर्वथा खेती के अनुपयुक्त बना देती है। नदियों की घाटियों में जहाँ मिट्टी उपजाऊ है तथा जल का बाहुल्य है, अधिकतर खेतीहर जनसंख्या पाई जाती है क्योंकि उपजाऊ मिट्टी और पर्याप्त जल दोनों ही चावल की खेती के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। अतः इस विस्तृत प्रदेश में चावल ही मुख्य उपज है। थाइलैंड, हिंद चीन और बर्मा में चावल की उपज तथा जनसंख्या के वितरण के बीच गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। इन देशों की सभ्यता चावल की सभ्यता (Rice Culture) कही जाती है क्योंकि यहाँ के आर्थिक और सामाजिक जीवन में चावल का बड़ा महत्व है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एशिया में जनसंख्या नदियों की उपजाऊ घाटियों तक ही सीमित है।

इसके विपरीत एशिया में कितने ही बड़े प्रदेश ऐसे हैं जहाँ जनसंख्या की अत्यन्त कमी है। साईबेरिया, मङ्गोलिया, पूर्वी तुर्किस्तान, और तिब्बत के अधिकतर भागों में आबादी का घनत्व २ मनुष्य प्रति मील से भी कम है। एशिया के भीतरी भागों में वर्षा की मात्रा अत्यन्त कम है, यातायात के साधनों का अभाव है, गर्मियों में अत्यन्त गर्मी और जाड़े में अत्यन्त जाड़ा पड़ता है।

---

१. Based on Author's Unpublished Thesis: "Population Problems of India (1956)", Chapter III. p—78–82.

यद्यपि एशिया के कुछ भाग अत्यन्त कम आबाद हैं किन्तु इन प्रदेशों में भी आबादी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। पश्चिम से रूसी साइबेरिया के जंगलों, रूसी तुर्किस्तान तथा आपस के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों की ओर जनसंख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। अब मनुष्य चीनी मगोलिया और मंचूरिया को बराबर आबाद करते जा रहे हैं और यह आशा की जा सकती है कि किसी समय गिने-चुने प्रतिकूल भागों को छोड़ कर सभी प्रदेश आबाद हो जावेंगे।

चीन :

जीन में जनसंख्या के मुख्य जमाव ६ प्रमुख क्षेत्रों में पाये जाते हैं :—

(१) ह्वांगो नदी का मैदान जिसमें ह्वांगो और ह्वी हो नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ कांप मिट्टी में शताब्दियों से कृषि होती आ रही है। यहाँ प्रति वर्ग मील पीछे १००० से भी अधिक व्यक्ति पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में पेंकिंग में २७·६ लाख व्यक्ति रहते हैं।

(२) यांग्टीसिक्यांग नदी का डेल्टा जिसमें प्रति वर्ग मील पीछे २००० से भी अधिक व्यक्ति रहते है। अकेले शङ्घाई में ६२ लाख व्यक्ति निवास करते हैं।

(३) दक्षिण में सिक्यांग नदी के डेल्टा में कैन्टन के चारों ओर का क्षेत्र।

(४) सैचुआन नदी के बेसीन में जहाँ प्रति वर्ग मील ४००-५०० व्यक्ति पाये जाते हैं। किन्तु पश्चिमी भाग में चेंगटू मैदान में तो प्रति वर्ग मील पीछे १७०० से भी अधिक व्यक्ति रहते हैं। सैचुआन प्रांत में ६२० लाख व्यक्ति रहते हैं।

(५) कैंटन और शङ्घाई के बीच समुद्र तटीय मैदानों में।

(६) यांग्टसीक्यांग नदी के मध्यवर्ती भाग में जहाँ आने-जाने के मार्ग बहुत उत्तम है—हैंकाऊ के निकट।

यदि मंचूरिया से यूनान तक उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम में एक काल्पनिक रेखा खींचे तो चीन की जनसंख्या दो भागों में बँट जाती है। इस रेखा के पश्चिम के शुष्क भाग का क्षेत्रफल लगभग २२ लाख वर्ग मील है किन्तु शुष्कता के कारण यह १५० से २०० लाख मनुष्यों को ही जीवन-निर्वाह के साधन दे पाता है। रेखा के पूर्व के भाग का क्षेत्रफल १८ लाख वर्ग मील ही है किन्तु यह अधिक आर्द्र होने से खेती के उपयुक्त है अतः यहाँ ४० से ५० करोड़ तक व्यक्ति रहते हैं। इस भाग में चीन का उत्तरी मैदान, यांग्टसीक्यांग की खाड़ी तथा लाल बेसीन अत्यन्त घने बसे हैं। श्री किंग (King) के अनुसार लाल बेसीन के अनेक भागों में ३,००० मनुष्य और १,००० पशु केवल १ वर्ग मील क्षेत्र पर जीवन-निर्वाह करते हैं किन्तु पहाड़ी भागों में जनसंख्या कम पाई जाती है।

चीन में विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या पाई जाती है। १९५३ की जनगणना के अनुसार ६०१,९३८,०३५ व्यक्ति चीन में रहते हैं जिनका प्रांतीय वितरण इस प्रकार है—

होपी प्रान्त	३५,९८४,६४४	कांनसू प्रान्त	१२,९२८,१०८
शांसी ,,	१४,३१४,४८५	चिप्पाइ ,,	१,६७६,५३४
मंगोलिया ,,	६,१००,१०४	सिंकियांग ,,	४,८७३,६०८
लायोनिंग ,,	१८,५४५,१४७	शांटुंग ,,	४८,८७६,५४८
किरीन ,,	११,२९०,०७३	कियांग्सू ,,	४१,२५२,१९२
हेलंगकियांग,,	११,८९७,३०९	एनह्वी ,,	३०,३४३,६३७
जहौल ,,	५,१६०,८२२	चेंकियांग ,,	२२,८६५,७४७
शेंमी ,,	१५,८८१,२८१	फूकेन ,,	४४,२१४,५९७
हूफे ,,	१७,७८९,६९३	तैवाँ ,,	२७,७८९,६९३
हूनन ,,	३३,२२६,९५४	होनान ,,	३३,२२६,९५४
क्यांग्सी ,,	१६,७७२,८६५	सैचुआन ,,	६२,३०३,९९९
क्वानटुंग ,,	३४,७७०,०५९	क्वीचाऊ ,,	१५,०३७,३१०
क्वांग्सी ,,	१९,५६०,८२२	यूनन ,,	१७,४७२,७३७
तिब्बत प्रान्त और चांग्टू क्षेत्र	१,२७३,९६९	सिक्याँग ,,	३,३८१,०६४
		चीनी (अन्यत्र देशों में)	११,७४३,३२०

चीन की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में ही निवास करती है किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से शहरी जनसंख्या बढ़ रही है। यहाँ की जन्म दर ३७ और मृत्यु दर १७ है। अतः वृद्धि दर २० है अर्थात् प्रति वर्ष १२० लाख व्यक्ति बढ़ जाते हैं। यदि इस गति से चीन की जनसंख्या बढ़ती जाये तो अनुमान लगाया गया है कि १९८० तक यह संख्या ८००० लाख हो जायगी। प्रो. गोरो (Gourou) का अनुमान है कि यदि चीन की १% भूमि (३५००० वर्ग मील) पर अधिक वृक्षारोपण कर दिया जाय तो लगभग ३५०,०० व्यक्तियों को काम मिल सकता है। १०% भूमि पर बाग लगाये जायें तो सम्पूर्ण जनसंख्या के ३५० लाख व्यक्तियों को भोजन मिल सकता है। और यदि १% भूमि पर चरागाह लगाये जायें तो लगभग १० लाख व्यक्तियों को रोजी मिल सकती है। अतः यदि देश की १०% भूमि पर जङ्गल लगाये जायें, १०% भूमि साग सब्जी और फल पैदा करने में लाई जाय और २०% पर घास पैदा की जाय तो लगभग ६०० लाख व्यक्तियों को नई भूमि पर सरलता से बसाया जा सकता है।

चीन में जनसंख्या का वितरण दो बातों पर निर्भर है (१) प्राकृतिक बनावट और (२) धार्मिक प्रवृत्ति। खेती योग्य भूमि चीन में ह्वांगो और यांगटिसी नदियों की घाटी में मिलती है अतः अधिकांश जनसंख्या इन्हीं क्षेत्रों में पाई जाती हैं। चीनी लोग अपने मुर्दों को गाड़ते हैं अतः उनकी देखभाल करने के लिये वे उन्हीं स्थानों में रहते हैं।

ज़ापान :

जापान में जनसंख्या का वितरण एक समान नहीं है। जापान में दक्षिणी तट के मैदान में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है। यहाँ जापान का अधिकांश चावल पैदा किया जाता है तथा उद्योग-धन्धों की भी खूब

यद्यपि एशिया के कुछ भाग अत्यन्त कम आबाद हैं किन्तु इन प्रदेशों में भी आबादी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। पश्चिम से रूसी साइबेरिया के जंगलों, रूसी तुर्किस्तान तथा आपस के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों की ओर जनसंख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। अब मनुष्य चीनी मंगोलिया और मंचूरिया को बराबर आबाद करते जा रहे हैं और यह आशा की जा सकती है कि किसी समय गिने-चुने प्रतिकूल भागों को छोड़ कर सभी प्रदेश आबाद हो जावेंगे।

चीन :

जीन में जनसंख्या के मुख्य जमाव ६ प्रमुख क्षेत्रों में पाये जाते हैं :—

(१) ह्वांगो नदी का मैदान जिसमें ह्वांगो और ह्वी हो नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ कांप मिट्टी में शताब्दियों से कृषि होती आ रही है। यहाँ प्रति वर्ग मील पीछे १००० से भी अधिक व्यक्ति पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में पेंकिंग में २७.६ लाख व्यक्ति रहते हैं।

(२) यांग्टीसिक्यांग नदी का डेल्टा जिसमें प्रति वर्ग मील पीछे २००० से भी अधिक व्यक्ति रहते है। अकेले शङ्घाई में ६२ लाख व्यक्ति निवास करते हैं।

(३) दक्षिण में सिक्यांग नदी के डेल्टा में कैन्टन के चारों ओर का क्षेत्र।

(४) सैंचुआन नदी के बेसीन में जहाँ प्रति वर्ग मील ४००-५०० व्यक्ति पाये जाते हैं। किन्तु पश्चिमी भाग में चेंगटू मैदान में तो प्रति वर्ग मील पीछे १७०० से भी अधिक व्यक्ति रहते हैं। सैंचुआन प्रांत में ६२० लाख व्यक्ति रहते हैं।

(५) कैंटन और शङ्घाई के बीच समुद्र तटीय मैदानों में।

(६) यांग्टसीक्यांग नदी के मध्यवर्ती भाग में जहाँ आने-जाने के मार्ग बहुत उत्तम है—हैंकाऊ के निकट।

यदि मंचूरिया से यूनान तक उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम में एक काल्पनिक रेखा खींचे तो चीन की जनसंख्या दो भागों में बँट जाती है। इस रेखा के पश्चिम के शुष्क भाग का क्षेत्रफल लगभग २२ लाख वर्ग मील है किन्तु शुष्कता के कारण यह १५० से २०० लाख मनुष्यों को ही जीवन-निर्वाह के साधन दे पाता है। रेखा के पूर्व के भाग का क्षेत्रफल १८ लाख वर्ग मील ही है किन्तु यह अधिक आर्द्र होने से खेती के उपयुक्त है अतः यहाँ ४० से ५० करोड़ तक व्यक्ति रहते हैं। इस भाग में चीन का उत्तरी मैदान, यांग्टसीक्यांग की खाड़ी तथा लाल बेसीन अत्यन्त घने बसे हैं। श्री किंग (King) के अनुसार लाल बेसीन के अनेक भागों में ३,००० मनुष्य और १,००० पशु केवल १ वर्ग मील क्षेत्र पर जीवन-निर्वाह करते हैं किन्तु पहाड़ी भागों में जनसंख्या कम पाई जाती है।

चीन में विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या पाई जाती है। १९५३ की जनगणना के अनुसार ६०१,९३८,०३५ व्यक्ति चीन में रहते हैं जिनका प्रांतीय वितरण इस प्रकार है—

क्षेत्रों में केवल दिल्ली और हिमाचल प्रदेश को छोड़ कर—जिनकी जनसंख्या १७·४ और ११·० लाख हैं—अन्य राज्यों में किसी में भी ६ लाख से अधिक लोग नहीं पाये जाते।

नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों में जनसंख्या का वितरण बताया गया है :—

प्रदेश	जनसंख्या १९४१	प्रतिशत	जनसंख्या १९५१	प्रतिशत
हिमालय प्रदेश	१४,८२७,६०६		१७,०४२,६९७	४·८
उत्तरी मैदान	१२५,०७२,८७८		१३९,४४७,९५२	३९·१
दक्षिणी पठार और पहाड़ियाँ	९६,२२०,०९४		१०८,५९८,६४५	३०·४
पश्चिमी घाट और तटीय क्षेत्र	३५,५१८,९१३		३९,९२७,७९३	११·२
पूर्वी घाट और तटीय क्षेत्र	४६,०९३,१२१		५१,८३२,३२६	१४·५
अंडमान-नीकोबार द्वीप	३३,७६८	—	३०,९७१	—
भारत का योग	३१४,७६६,३८०	१००·०	३५६,८७९,३९४	१००·०

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत की सबसे अधिक जनसंख्या उत्तरी मैदान में (३९%) निवास करती है और सबसे कम हिमालय प्रदेश (४·८%) में।

क्षेत्रीय (Zonal) वितरण के अनुसार १९५१ में भारत की जनसंख्या का विस्तार निम्न प्रकार था :—

उत्तरी भारत १८%
(उत्तर प्रदेश)

पूर्वी भारत २५%
(बिहार, उड़ीसा, प० बंगाल आसाम, मनीपुर, त्रिपुरा, सिकिम)

दक्षिणी भारत २१%
(मद्रास, मैसूर, ट्रावनकोर कोचीन, कुर्ग)

पश्चिमी भारत १०%
(बम्बई, सौराष्ट्र, कच्छ)

मध्य भारत १५%
(मध्य प्रदेश, मध्य भारत, हैदराबाद, भूपाल, विंध्य प्रदेश)

उत्तर-पश्चिमी भारत १०%
(राजस्थान, पंजाब, पेप्सू, जम्मू काश्मीर, अजमेर, दिल्ली, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश)

उन्नति हुई है। इसके अतिरिक्त यह भाग जापान का सबसे प्राचीन भाग भी है जहाँ आरम्भ से ही मनुष्य निवास करते हैं। किन्तु ३७° उत्तरी अक्षांस के उत्तर में जनसंख्या का घनत्व कम पाया जाता है। उत्तरी होंश्यू में तो यह घनत्व जापान के घनत्व का ½ ही है क्योंकि शीत जलवायु और अनुपजाऊ भूमि के कारण पैदावार अधिक नहीं होती। पश्चिमी तट पर भी होकेडो में जनसंख्या का घनत्व सम्पूर्ण देश का केवल ⅕ है। जापान की जनसंख्या टोकियो से नागासाकी तक फैली हुई ६०० मील लम्बी औद्योगिक पेटी में ही केन्द्रित है।

जापान की जनसंख्या बड़ी तीव्र गति से बढ़ रही है। १८७० में जापान की जनसंख्या केवल ३५० लाख थी. १९४९ में यह ८२० लाख होगई। इस तीव्र वृद्धि का मुख्य कारण जापान की जन्म दर (३३%) और मृत्यु दर (१२%) में बड़ा अन्तर होता है। प्रति वर्ष १.५% के हिसाब से वृद्धि होती है। यदि इसी गति से बढ़ती रही तो आगामी ४० वर्षों में जापान की जनसंख्या चौगुनी हो जायगी। इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए जापान प्रयत्नशील है। (१) वैज्ञानिक ढंग की कृषि के द्वारा प्रति एकड़ अधिक अनाज पैदा किया जाता है। (२) उद्योग-धन्धों का अधिकाधिक विकास हुआ है। (३) जापानी भोजन में अनाज की कमी को मछलियों की अधिकता से पूरा किया जाता है। (४) बहुत से जापानी मंचूको, फिलीपाइन्स, ब्राजील में जाकर रहने लगे हैं।

इन्डोनेशिया में भी जनसंख्या अधिकतर नदियों की घाटियों तक ही सीमित है। पहाड़ी प्रदेशों में जनसख्या का अभाव है। हिंदेशिया में जावा ही एक अपवाद हैं जहाँ ज़नसंख्या का घनत्व १,००० से भी अधिक है जब कि अन्य द्वीपों का घनत्व केवल २० से १०० तक ही है। नीचे की तालिका में प्रमुख द्वीपों की जनसंख्या बताई गई है (१९५१):—

द्वीप	क्षेत्रफल	जनसंख्या
जावा और मदुरा	५१,०३५	४,१७,१८,३६४
सुमात्रा	१,८२,८६७	८२,५४,८४३
बोर्नियो	२,०८,२९५	२१,६८,८६१
अन्य द्वीप	२,९०,८०४	१,८३,४३,४९४
हिंदेशिया	७,३३,००१	७,३४,८५,३६२

इस तालिका से ज्ञात होता है कि केवल जावा और मदुरा क्षेत्रफल में समस्त हिंदेशिया का ७% है किन्तु सम्पूर्ण जनसंख्या के ७०% का पालन करते हैं। इसका मुख्य कारण इन द्वीपों में पाई जाने वाली उपजाऊ लावा मिट्टी है।

भारत में जनसंख्या का वितरण

भारत में जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य है जहाँ कुल ६.३२ करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं और बम्बई में ४.८ करोड़; बिहार में ३.८ करोड़; आंध्र में ३.१ करोड़; मद्रास में २.९ करोड़; पश्चिमी बंगाल में २.६ करोड़ व्यक्ति पाये जाते हैं। किन्तु संघ के

क्षेत्रों में केवल दिल्ली और हिमाचल प्रदेश को छोड़ कर—जिनकी जनसंख्या १७'४ और ११'० लाख हैं—अन्य राज्यों में किसी में भी ६ लाख से अधिक लोग नहीं पाये जाते।

नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों में जनसंख्या का वितरण बताया गया है :—

प्रदेश	जनसंख्या १९४१	प्रतिशत	जनसंख्या १९५१	प्रतिशत
हिमालय प्रदेश	१४,८२७,६०६		१७,०४२,६९७	४'८
उत्तरी मैदान	१२५ ०७२,८७८		१३९,४४७,९५२	३९'१
दक्षिणी पठार और पहाड़ियाँ	९६,२२०,०९४		१०८,५९८,६४५	३०'४
पश्चिमी घाट और तटीय क्षेत्र	३५,५१८,९१३		३९,९२७,७९३	११'२
पूर्वी घाट और तटीय क्षेत्र	४६,०९३,१२१		५१,८३२,३२६	१४'५
अंडमान-नीकोबार द्वीप	३३,७६८	—	३०,९७१	—
भारत का योग	३१४ ७६६,३८०	१००'०	३५६,८७९,३९४	१००'०

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत की सबसे अधिक जनसंख्या उत्तरी मैदान में (३९%) निवास करती हैं और सबसे कम हिमालय प्रदेश (४'८%) में।

क्षेत्रीय (Zonal) वितरण के अनुसार १९५१ में भारत की जनसंख्या का विस्तार निम्न प्रकार था :—

उत्तरी भारत १८%
(उत्तर प्रदेश)

पूर्वी भारत २५%
(बिहार, उड़ीसा, प० बंगाल आसाम, मनीपुर, त्रिपुरा, सिकिम)

दक्षिणी भारत २१%
(मद्रास, मैसूर, ट्रावनकोर कोचीन, कुर्ग)

पश्चिमी भारत १०%
(बम्बई, सौराष्ट्र, कच्छ)

मध्य भारत १५%
(मध्य प्रदेश, मध्य भारत, हैदराबाद, भूपाल, विंध्य प्रदेश)

उत्तर-पश्चिमी भारत १०%
(राजस्थान, पंजाब, पेप्सू, जम्मू काश्मीर, अजमेर, दिल्ली, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश)

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों की जनसंख्या इस प्रकार थी :—[१]

राज्य	क्षेत्रफल (००० में)	जनसङ्ख्या (००० में)	घनत्व प्रति वर्ग मील १९५१
'ए' भाग के राज्य (Part A States)	७६२.७	२५८,०५८·७	३६५
आंध्र	६३·६	२०,५०७	३२२
आसाम	८५·०	९,०४३	१०६
बिहार	७०·३	४०,२२५	५७२
बम्बई	१११·४	३५,९५६	३२३
मध्य प्रदेश	१३०·२	२१,२४७	१६३
मद्रास	६०·३	३५,७३४	५९२
उड़ीसा	६०·१	१४,६४५	२४४
पंजाब	३७·३	१२,६४१	३३८
उत्तर प्रदेश	११३·४	६३,२१५	५५७
पश्चिमी बंगाल	३०·७	२४,८६०	८०८
'बी' भाग के राज्य (Part 'B' States)	३३२·८	६८,६६०.२	२०६
हैदराबाद	८२·१	१८,६५५	२२७
मध्य भारत	४६·४	७,९५४	१७१
मैसूर	३३·३	९,८४८	२९६
पेप्सू	१०·०	३,४९३	३४७
राजस्थान	१३०·२	१५,२९०	११७
सौराष्ट्र	२१·४	४,१३७	१९३
ट्रावनकोर-कोचीन	९·१	९,२८०	१,०१५
'सी' भाग के राज्य (Part C States)	७५·३	१,९७१·७	१३२
अजमेर	२·४	६९३	२८७
भोपाल	६.८	८२६	१२२
कुर्ग	१·५	२२९	१४५
दिल्ली	·५	१,७४४	३,०१७
हिमाचल प्रदेश विलासपुर	१०·०	१,१०९	१०२
कच्छ	१६·७	५६७	३४
मनीपुर	८·६	५७७	६७
त्रिपुरा	४·०	६३९	१५८
विंध्य प्रदेश	२३·६	३,५७४	१५१

१, India, 1956, p-18

'डी' भाग के राज्य (Part D Territories)	५'६	१,६८'६	२८
अंडमान-नीकोबार	३'२	३०'६	१०
सिकिम	२'७	१३७'७	५०
सम्पूर्ण भारत	१,१७६'८	३५६८७९'३	३१२

भारत सरकार द्वारा १ नवम्बर १९५६ को पुनर्गठित राज्यों की जनसंख्या इस प्रकार है :—[1]

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या (००० में) १९५१	प्रति वर्ग के पीछे घनत्व १९५१
राज्य			
१. आंध्र प्रदेश	१०५,६७७	३१,२५३	२९६
२. आसाम	८५,०१२	९,०४४	१०६
३. बिहार	६६,१६१	३८,३५५	५८०
४. बम्बई	१९१,३६७	४८,२७२	२५२
५. केरल	१४,६०१	१३,५४४	९२८
६. मध्य प्रदेश	१७०,९०९	२६,१०२	१५३
७. मद्रास	५०,१७१	२९,९८०	५९८
८. मैसूर	७४,०९३	१९,४०१	२६२
९. उड़ीसा	६०,१३६	१४,६४६	२४४
१०. पंजाब	४७,४२७	१६,१३५	३४०
११. राजस्थान	१३२,४३९	१५,९४०	१२०
१२. उत्तरप्रदेश	११३,४३३	६३,२१६	५५७
१३. पश्चिमी बंगाल	३४,९४४	२६,६८१	७६४
१४. जम्मू और काश्मीर	९२,७८०	४,४१०	४८
राज्यों का योग	१,२३९,१५०	३५६,९७९	२८८
केन्द्र शासित राज्य			
१५. दिल्ली	५७८	१,७४४	३,०१७
१६. हिमाचल प्रदेश	१०,९०९	१,१०९	१०२
१७. मनीपुर	८,६२२	५७८	६७
१८. त्रिपुरा	४,०३२	६३९	१५८
१९. अंडमान नीकोबार द्वीप	३,२१५	३१	१०
२०. लखद्वीप, मिनिकॉय और एमीनडीवी द्वीप	३८४	२१	५५
केन्द्र शासित राज्यों का जोड़	२७,७४०	४,१२२	१४९
सम्पूर्ण भारत का योग्य	१,२६६,८९०	३६१,१०१	२८५

१, Agricultural Statistics of Reorganised States, 1956, p. 1,

भारत में जनसंख्या का घनत्व :

भारत एक विशाल देश है जहाँ कई प्रकार की जलवायु तथा विभिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। खनिज पदार्थों का वितरण भी एक सा नहीं है। परिणामस्वरूप यहाँ जनसंख्या का घनत्व भी सभी जगह एकसा नहीं है। जनसंख्या का घनत्व भूमि के स्वरूप, वर्षा, जलवायु आदि कारणों पर निर्भर रहता है। अतः घनत्व की समस्या के उचित अध्ययन के लिए देश के राजनीतिक विभाग उतने उपयुक्त नहीं जितने कि प्राकृतिक विभाग। इस बात को ध्यान में रखकर सन् १९५१ की जनगणना में जनसंख्या के घनत्व के दृष्टिकोण से देश को १५ उप-विभागों में बाँटा गया जिन्हें पुनः तीन क्षेत्रों में—ऊँचे, मध्यम तथा कम घनत्व वाले क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया। नीचे इन्हीं क्षेत्रों और उप-विभागों का घनत्व दिया गया है :—[1]

(क) अधिक घनत्व वाले विभाग :

१. गंगा का निचला मैदान	प्रति वर्ग मील पीछे	८३२ व्यक्ति
२. गंगा का ऊपरी मैदान	,,	६८१ ,,
३. मलाबार—कोंकन	,,	६३८ ,,
४. दक्षिणी मद्रास	,,	५५४ ,,
५. उ० मद्रास व तटीय उड़ीसा	,,	४६१ ,,
सम्पूर्ण क्षेत्र का घनत्व	,,	६६० ,,

(ख) मध्यम घनत्व वाले उप-विभाग :

६. गंगा का मध्यवर्ती भाग	प्रति वर्ग मील पीछे	३३२ व्यक्ति
७. दक्षिणी दकन	,,	२४७ ,,
८. उत्तरी दकन	,,	२४६ ,,
९. गुजरात-सौराष्ट्र	,,	२२६ ,,
सम्पूर्ण क्षेत्र का घनत्व	,,	२६६ ,,

(ग) निम्न घनत्व वाले विभाग :

१०. मरुस्थल	प्रति वर्ग मील पीछे	६१ व्यक्ति
११. प० हिमालय	,,	६८ ,,
१२. उ० प० पहाड़ियाँ	,,	१६३ ,,
१३. पूर्वी हिमालय	,,	११८ ,,
१४. उ० मध्यवर्ती पठार और पहाड़ियाँ	,,	१६४ ,,
१५. उ० पू० पठार	,,	१९२ ,,
सम्पूर्ण क्षेत्र का घनत्व	,,	१२९ ,,

(१) घनी जनसंख्या के क्षेत्र—यहाँ प्रति वर्ग मील में ५०० व्यक्तियों से अधिक मनुष्य रहते हैं ऐसे भागों में पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब, दक्षिणी प्रायद्वीप का दक्षिणी पश्चिमी समुद्र तट ट्रावनकोर, कोचीन, उड़ीसा, आंध्र तथा मद्रास का तट सम्मिलित है। यह भाग संसार के सबसे अधिक घने बसे

[1] जनसंख्या के घनत्व के अनुसार भारत के निम्न भाग किये जा सकते हैं :—

भागों में से है। यहाँ समतल भूमि, घनी वर्षा, उपयुक्त गर्मी और यातायात के साधनों की सुगमता के कारण ही जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

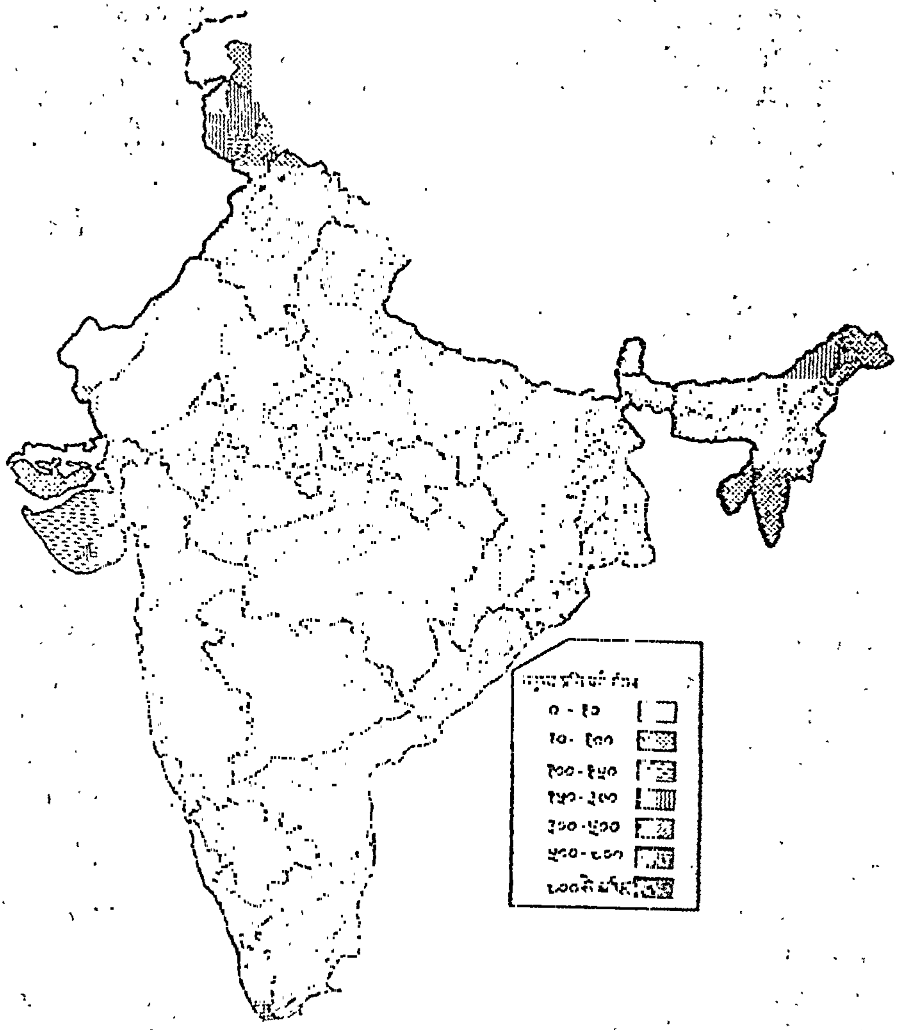

चित्र २६१

(२) अच्छी जनसंख्या वाले भाग—यहाँ प्रति वर्ग मील में ३०० से ५०० व्यक्ति तक रहते हैं। ऐसा भाग दक्षिणी नदियों के डेल्टा पूर्वी बिहार, बम्बई प्रान्त, दक्षिणी पंजाब, पेप्सू कोंकन तट और पश्चिमी उत्तर प्रदेश है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है और वर्षा की कमी सिंचाई द्वारा पूरी की जाती है।

(३) मध्यम जनसंख्या वाले भाग—जहाँ १५० से ३००० व्यक्ति प्रति वर्ग मील में रहते हैं। इसमें सम्पूर्ण दक्षिणी प्राय द्वीप (तट की घनी बस्ती) तथा उत्तर और पूर्वी पहाड़ी जंगलों में कम बस्ती के जंगलों को छोड़ कर आसाम और हिमालय प्रदेश शामिल है। मध्य प्रदेश, बिहार के खनिज

क्षेत्र, मध्य, भारत, हैदराबाद, मैसूर, मद्रास, सौराष्ट्र, ब्रह्मपुत्र की घाटी (गोहाटी जिला, छोड़कर), ग्वालियर तथा जयपुर जिले इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

(४) कम जनसंख्या वाले भाग—यहाँ प्रति वर्ग मील में १०० से १५० मनुष्य से भी कम रहते हैं। इसमें राजस्थान का पूर्वी भाग, मध्य भारत, पश्चिमी मध्य प्रदेश, हैदराबाद का दक्षिणी भाग, विंध्य प्रदेश शामिल हैं। यहाँ की भूमि अनुपजाऊ, कम वर्षा यातायात के साधनों की कमी, जलवायु भी विषम है।

(५) बहुत ही कम जनसंख्या वाले भाग—जहाँ प्रति वर्ग मील में १०० मनुष्य से भी कम रहते हैं—उ० प० राजस्थान, तराई, आसाम की पहाड़ियाँ, हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, कच्छ राज्य, काश्मीर जम्मू, सुन्दरवन, छोटा नागपुर का पठार तथा उड़ीसा के सूखे भाग शामिल है।

जनसंख्या सम्बन्धी उपर्युक्त आंकड़ों के अध्ययन से हम निम्न परिणामों पर पहुँचते हैं :—

भारत में जनसंख्या का घनत्व वर्षा के परिणाम के साथ घटता जाता है अर्थात् अधिक वर्षा वाले भागों की अपेक्षा ज्यादा घनी आबादी है। उदाहरण के लिये, बंगाल में जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक है जैसे-जैसे पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते जाते हैं, वर्षा की मात्रा के साथ-साथ जनसंख्या भी घटती जाती है। इस स्वर्ण नियम के कुछ अपवाद भी हैं। यद्यपि पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के भागों में वर्षा की मात्रा बहुत कम है। किन्तु उपजाऊ भूमि तथा सिंचाई की सुविधा के कारण वहाँ भी अधिक जनसंख्या है। छोटा नागपुर के पठारी क्षेत्र में भी खनिज पदार्थों के आकर्षण से अधिक घनी आबादी है। आसाम राज्य का पर्वतीय भाग बहुत कम आबाद है यद्यपि वहाँ अधिक वर्षा होती है। इसके निम्न कारण हैं (१) यहाँ वनों की अधिकता है (२) यहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है (३) सीमा के लिये हानिकारक है (३) सीमा प्रान्तीय क्षेत्र में होने के कारण यह सुरक्षित भी नहीं है।

चावल उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में (जैसे बंगाल तथा बिहार) अधिक आबादी है क्योंकि (१) अन्य अनाजों की अपेक्षा, चावल की उतनी ही मात्रा से अधिक आदमियों की उदर पूर्ति हो जाती है। (२) चावल में भोजन के अधिक पोषक तत्व होते हैं। चावल की प्रति एकड़ पैदावार भी बहुत अधिक होती है। चावल की फसल तैयार भी बहुत शीघ्र हो जाती है। (४) अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में चावल का उत्पादन अधिक सुगम होता है।

उत्तरी मैदानी क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा के कारण जनसंख्या का घनत्व अधिक है। यातायात तथा सन्देश वाहन के साधनों की भी यहाँ विशेष सुविधा है जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुयें यहाँ उपलब्ध हैं। दिल्ली राज्य में सबसे अधिक आबादी है क्योंकि ; (१) यह भारत सरकार की राजधानी है (२) व्यापार, उद्योग तथा यातायात सभी दृष्टियों से यह बढ़ा-चढ़ा है और (३) देशके बँटवारे के कारण यहाँ शरणार्थी भी अधिक आ बसे हैं।

केरल राज्य की जनसंख्या का घनत्व सब राज्यों से अधिक है क्योंकि—(१) यह च वल उत्पादन करने वाला क्षेत्र है। यहाँ मृत्यु संख्या बहुत कम है। यहाँ ४५% व्यक्ति साक्षर हैं। (२) उद्योग धन्धों की भी अच्छी उन्नति हुई है।

दक्षिणी पठारी क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है, क्योंकि यह एक ऊँचा-नीचा पठार है जहाँ कृषि की सुविधायें बहुत कम हैं। यातायात के साधनों की भी यहाँ कमी है। यह बौछार का प्रदेश है। किन्तु पूर्वी तथा पश्चिमी तटीय भागों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है, क्योंकि वहाँ चावल की खेती की सुविधा है तथा जलवायु भी स्वास्थ्यवर्धक है। कला-कौशल के केन्द्रों में भी जनसंख्या अधिक है जैसे इन्दौर, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, जमशेदपुर आदि।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में, औद्योगिक नगरों में, बन्दरगाहों के आसपास, नदियों की घाटियों में, समतल मैदानों में और खनिज पदार्थों के पाये जाने वाले स्थानों में जहाँ जीवन-यापन और आवागमन के मार्गों की समुचित सुविधायें प्राप्त हैं, अधिक घनत्व पाया जाता है। इसके विपरीत पहाड़ी, पठारी, रेगिस्तानी क्षेत्रों में जहाँ जलवायु प्रतिकूल और जल का अभाव होता है, घनत्व कम है। इसके अतिरिक्त भारत की कृषि-पट्टी (Agricultural-belt) में जनसंख्या का घनत्व बहुत ही अधिक है। यह कृषि-पट्टी पंजाब के सिंचाई वाले क्षेत्र से आरम्भ होकर उत्तर-प्रदेश, बिहार, बंगाल होती हुई पूर्वी घाट के मद्रास, आंध्र, मैसूर, केरल होती हुई पश्चिमी घाट के बम्बई राज्य तक जाती।

यूरोप में जनसंख्या का वितरण :—

यूरोप की जनसंख्या के मानचित्र को देखने से यह स्पष्ट होता है कि दक्षिणी भाग तथा हालैंड को छोड़कर घनी जनसंख्या के प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र ही हैं। इन क्षेत्रों में स्थित, आवागमन के मार्गों की सुविधा, औद्योगिक ईंधन की प्रचुरता, खनिज पदार्थों का वाहुल्य तथा अनुकूल जलवायु सम्बन्धी दशाओं के कारण जनसंख्या का अधिक जमाव हुआ है।

उत्तरी पश्चिमी यूरोप में जनसंख्या के अनेक केन्द्र पाये जाते हैं। यद्यपि दक्षिणी पूर्वी एशिया की भाँति यहाँ घनी जनसंख्या तथा बिखरी जनसंख्या वाले क्षेत्रों के बीच में गहरी खाइयाँ नहीं हैं किन्तु ब्रिटेन में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। जहाँ केवल ६% व्यक्ति खेती करते हैं और ८०% नगरों में रहते हैं। इस देश में ६ औद्योगिक क्षेत्र हैं जो जनसंख्या के केन्द्र हैं। ये क्षेत्र क्रमशः लंकाशायर, यार्कशायर, मिडलैंड्स, नार्थम्बरलैंड, डरहम, न्यूकैसिल और स्कॉटलैंड हैं। इन केन्द्रों में सबसे बड़ा केन्द्र लन्दन है जहाँ सम्पूर्ण ब्रिटेन के $\frac{1}{5}$ वाँ भाग जनसंख्या का निवास है। इस केन्द्र की आबादी अधिकतर व्यापारिक है किन्तु व्यापार के साथ-साथ यहाँ कुछ विशेष धंधे भी किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त लंदन देश की राजनैतिक और आर्थिक राजधानी भी है।

योरूप के महाद्वीपीय भाग में अत्यन्त घनी आबादी की एक पेटी हैं जो उत्तरी सागर और इङ्गलिश चैनल से तथा सोवियत रूस से नीपर नदी के दक्षिणी भाग तक बराबर चली गई है। इसमें यूरोप की ⅘ से अधिक जनसंख्या रहती है। इस जनसंख्या की घनी पेटी के मध्य में होकर ५०° उत्तरी अक्षांस रेखा जाती हे। अतः यह अक्षांस यूरोप की जनसंख्या की धुरी (axis of European Population) कहलाती है। यह पेटी पूर्व से पश्चिम की ओर चौड़ी होती गई है और आबादी भी इस दिशा की ओर बढ़ती गई है। आबादी का सबसे अधिक घनत्व राइन नदी के निचले भाग के आस-पास है जहाँ कि कोयले और लोहे और पोटाश की बड़ी महत्वपूर्ण खानें हैं और यह संसार के बड़े प्राकृतिक जलमार्ग के मुहाने के पास स्थित है। सबसे घनी आबादी का केन्द्रीयकरण उत्तरी-पूर्वी जर्मनी, हालैंड, बेल्जियम और उत्तरी फ्रांस में है और पूर्व की ओर आबादी का घनत्व कुछ कम हो गया है जिनमें दक्षिणी-पूर्वी जर्मनी, चेकोस्लोवेकिया, उत्तरी वोहिमिया, और मोरिविया, दक्षिणी पोलैंड में गैलिशिया और दक्षिणी सोवियत रूस में यूरेकन शामिल है। योरूप की इस पेटी में जिसमें कि महाद्वीप के एक चौथाई मनुष्य आबाद हैं, योरूप के सबसे महत्वपूर्ण कोयले की खानें हैं जिसकी शक्ति के साधनों ने अनेक उद्योगधन्धों को और औद्योगिक शहरों को जन्म दिया है।

यूरोप के भूमध्यसागरीय प्रदेश में घनी जनसंख्या के केन्द्र छोटे-छोटे डेल्टाओं के मैदान और नदियों की घाटी में पाये जाते हैं। किन्तु घनी आबादी के इन केन्द्रों में खेती ही लोगों का मुख्य धन्धा है। आबादी के इन केन्द्रों में सबसे महत्वपूर्ण इटली में पो नदी की उपजाऊ और विस्तृत घाटी है। यहाँ देहाती और शहरी दोनों प्रकार की आबादियों का मिश्रण मिलता है क्योंकि यह इटली का सबसे अधिक औद्योगिक भाग है। वैलेंशिया, मरशिया और उत्तरी पुर्तगाल के तटीय प्रदेशों में (जहाँ गेहूँ अधिक पैदा होता है) जनसंख्या घनी है। इसके विपरीत पहाड़ी, दलदली तथा मरुभूमियों में जैसे आल्पस पर्वत प्रिपेट दलदल और शुष्क स्पेन के मैसेटा और कैस्पीयन के तट में—जनसंख्या कम है। अतएव यह स्पष्ट है कि पूर्वी एशिया की घनी आबादी के केन्द्र नदियों के द्वारा बने हुए विस्तृत मैदानों में स्थित हैं जहाँ के प्रदेश कृषि प्रधान हैं किन्तु पश्चिमी और मध्यवर्ती यूरोप की अधिकतर आबादी व्यापारिक और औद्योगिक शहरों पर केन्द्रित है, जिसका सम्बन्ध वहाँ के खनिज पदार्थों, व्यापार के महत्वपूर्ण मार्गों और भोज्य पदार्थों तथा अन्य कच्चे पदार्थों के पैदा करने वाले उपजाऊ मैदानों से हैं। जनसंख्या का क्षेत्रीय वितरण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि ४०° अक्षांस रेखा जो एशिया में घनी आबादी की उत्तरी सीमा बनाती है, वही यूरोप में उसकी दक्षिणी सीमा निर्धारित करती है।

उत्तरी अमेरिका में जनसंख्या का वितरण—

संयुक्त राज्य में आबादी की संख्या के विचार से दो स्पष्ट भाग हैं। एक संयुक्त राज्य का पूर्वी तटीय भाग, और दूसरा संयुक्त राज्य का पश्चिमी भाग। पहले में औद्योगिक दृष्टि से चरम विकास हो जाने के कारण आबादी इतनी

अधिक है, लेकिन दूसरे भाग में आवादी काफी कम है। भीतरी भाग में धरातल काफी ऊबड़-खाबड़ है और वर्षा भी कम होती है। संयुक्त राज्य की ८५ प्रतिशत जनसंख्या १००° देशान्तर के पूर्व में रहती है। पूर्वी भाग में आबादी का समान वितरण है और केन्द्रीय क्रम कहीं भी नहीं पाया जाता है। केवल ओहियों के उत्तर और मिसीसिपी के पूर्व में कुछ औसत से अधिक जनसंख्या वाले केन्द्र पाये जाते हैं। दक्षिणी मेन मेरीलैन्ड तक की अत्यन्त विकसित औद्योगिक पेटी पर अधिकतम घनत्व की पेटी भी फैली है। अप्लेशियन के पश्चिम की ओर घनी आबादी के चार केन्द्र पाये जाते हैं। (१) मिशीगन झील के दक्षिणी सिरे का क्षेत्र जिसमें शिकागो और मिलवाकी शामिल हैं। (२) इरी झील का दक्षिणी और पश्चिमी सिरे का क्षेत्र जिसमें डेट्रायट क्लीवलैंड, टेलडो, वफैलो और आक्रोन शामिल हैं। (३) ओण्टारियो झील का दक्षिणी सिरा और मोहाक घाटी के क्षेत्र जिसमें राचेस्टर, साईराक्यूज यूरिका और रोनेक टाडी शामिल हैं। (४) ओहियो की ऊपरी घाटी में जिसमें पिट्सवर्ग मुख्य केन्द्र है। उत्तर पूर्वी औद्योगिक पेटी की आवादी का घनत्व २०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। संयुक्त राज्य के पूर्वी भागों में आवादी इतनी अधिक होने के कई कारण हैं।

(i) यह भाग सबसे पहले आबाद हुआ और अप्लेशियन की वाधा के कारण पश्चिम की ओर आबादी का प्रव्रजन नहीं हो पाया। फलस्वरूप आवादी भी अधिक हो गई और जनसंख्या का घनत्व भी वढ़ता गया।

(ii) यूरोप के पास होने और कटे-फटे तट के असंख्य बन्दरगाहों से एक वृहत मात्रा में व्यापार यूरोप से होता है।

(iii) कोयला, लोहा और जल विद्युत की प्रचुर प्राप्ति पर अवलम्बित औद्योगिक विकास भी बड़ा व्यापक हुआ है जिससे आवादी अन्य क्षेत्रों से इस ओर को आकर्षित हुई है। पश्चिमी भाग में आवादी बहुत कम है। वितरण का क्रम केन्द्रीय है। नदी की घाटियों, सिंचाई के क्षेत्रों, पीडमौण्ट कांप के मैदानों, पर्वतीय बेसिनो और खनिज पदार्थों के शोषण क्षेत्रों में केन्द्रीय क्रम पाये जाते हैं। पश्चिम की ओर कैलीफोर्निया की घाटी आवादी का मुख्य क्षेत्र है। प्रशान्त महासागर के तटीय राज्यों में जहाँ जलवायु आर्द्र है, उद्योग तथा व्यापार काफी वढ़ा-चढ़ा है वहाँ जनसंख्या भी अधिक है। इस तट पर जनसंख्या के तीन मुख्य केन्द्र हैं :—

(१) प्यूजेट साइड, विलामेट की घाटी (जिसमें सियेटल, पोर्टलैंड और टकोमा बन्दरगाह स्थित है)

(२) कैलीफोर्निया की घाटी और सैनफ्रांसिसको के केन्द्र।

(३) दक्षिणी केन्द्र जिसमें लास एंजलिस और सैनडीगो स्थित हैं।

कनाडा—यहाँ की आवादी १४,०००,००० है जो कि देश के दक्षिणी किनारों पर विशेष रूप से केन्द्रित है, जहाँ कृषि प्रधान भाग स्थित है। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के साथ-साथ जाने वाली आवादी की पेटी लगातार नहीं कही जा सकती। देश का अधिकतर भाग बंजर और व्यर्थ होने के कारण

आबादी कुछ भागों में ही केन्द्रित है। मुख्य केन्द्र ये हैं : सेन्ट लारेन्स नदी की घाटी, ओन्टोरिया में और इरी झील के उत्तर में ओन्टोरियो प्रायद्वीप में कनाडा की समस्त जनसंख्या १५० मील चौड़ी पेटी में सीमित है जो दक्षिण में अन्तर्राष्ट्रीय सीमा से लगी हुई है।

दक्षिणी अमेरिका में जनसंख्या का वितरण—

आस्ट्रेलिया को छोड़कर दक्षिणी अमेरिका में आबादी का वितरण और घनत्व सभी प्रायद्वीपों से कम है। यद्यपि दक्षिणी अमेरिका में संसार के कुल भूभाग का $\frac{1}{8}$ भाग शामिल है, महाद्वीप में संसार की कुल आबादी $\frac{1}{30}$ प्रतिशत ही है। महाद्वीप की आबादी ८०,०००,०००—९०,०००,००० मानी जाती है। इनमें से आधे लोग अकेले ब्राजील में रहते हैं, $\frac{1}{6}$ अर्जेन्टाइना में और $\frac{1}{3}$ एन्डीज के पर्वतीय देशों में इन सब देशों में। आबादी अधिकतर महाद्वीप के किनारों पर ही केन्द्रित है। महाद्वीप के विस्तृत भीतरी भाग अभी तक बिना आबादी के ही हैं। यह तटीय वितरण वैनेजुएला, कोलंबिया, इक्वोडोर, और पूर्वी ब्राजील में स्पष्टतः देखा जाता है। उष्ण कटिबन्धीय घने जंगलों, शुष्क रेगिस्तान और ठण्डे पहाड़ी प्रदेशों की भी यही दशा है। इस प्रकार महाद्वीप के लगभग आधे भाग में आबादी का घनत्व १ मनुष्य प्रति वर्ग मील से भी कम है।

अधिकतर आबादी स्वभाव में देहाती हैं। शहरी केन्द्र निम्नलिखित भागों में बांटे जा सकते हैं—(१) तीन बड़े शहर जिनकी आबादी १,०००,००० से अधिक है—ब्योनस आयर्स, साओपोलो और रियोडी जैनीरो, (२) चार शहर जिनकी आबादी ५००,००० से १,०००,००० है—सेन्टीयागों, मौन्टी विड्यों, रेसिफ और रोजेरियों और (३) छः व्यापारिक शहर जिनकी आबादी २५०,००० से ऊपर है बाहिया, पोट, एलिग्रे, बोगोटा, कार्डोवा, पारा और लिमा।

अफ्रीका में जनसंख्या का वितरण :

नील नदी के डेल्टा को छोड़कर, जहाँ की आबादी का घनत्व ९५० मनुष्य प्रति वर्ग मील के लगभग है, अफ्रीका के अधिकतर कृषि प्रधान देशों में आबादी का घनत्व आम तौर पर अत्यन्त कम है। महाद्वीप की कुल आबादी २१०० लाख के लगभग है। अफ्रीका की अत्यन्त कम आबादी के मुख्य कारण यह हैं कि यहाँ अधिकतर भूमि या तो रेगिस्तानी है या बिल्कुल उपयोग में नहीं आती—अकेला सहारा रेगिस्तान ही अफ्रीका के क्षेत्रफल का $\frac{1}{4}$ भाग घेरे हुए हैं और दक्षिणी अफ्रीका में रेगिस्तान तथा वहाँ के अर्ध शुष्क भाग कुल क्षेत्रफल का $\frac{1}{3}$ भाग घेरे हुए हैं।

दो भागों को छोड़कर—पहले तो मिस्र जहाँ कि सामाजिक और आर्थिक जीवन तथा प्राकृतिक वातावरण में आश्चर्यजनक पारस्परिक सम्बन्ध है और दूसरे दक्षिणी और मध्य दक्षिणी अफ्रीका के खनिज पदार्थ पाये जाने वाले भागों को जो कि हाल ही में आबाद हुए हैं—यह कहा जा सकता है कि आबादी के वितरण में और यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा के वितरण में घनिष्ट सम्बन्ध है। जहाँ तहाँ जंगलों और दलदलों के कारण आबादी अत्यन्त सीमित है।

अस्तु, अफ्रीका में जनसंख्या का जमाव निम्न भागों में ही अधिक पाया जाता है :—

(१) भूमध्यसागरीय प्रदेश ।
(२) पश्चिमी सूडान और गिनी तट ।
(३) पूर्वी अफ्रीका के ऊँचे पठार ।
(४) दक्षिणी तथा दक्षिणी-पूर्वी तट ।
(५) नील नदी की घाटी ।

अन्य दक्षिणी महाद्वीपों की भाँति अफ्रीका में भी जनसंख्या का जमाव तटीय भागों में ही अधिक है ।

अफ्रीका में शहरी विकास बहुत कम है । कुछ आधुनिक शहर उत्तर के भूमध्य सागरीय संकरी पट्टी में मिस्र के निचले भाग में और दक्षिण में जहाँ कि कीमती खनिज पदार्थों का हाल ही में विकास हुआ है, पाये जाते हैं । अफ्रीका के बड़े शहर ये हैं ; कैरो, ऐलैग्जैन्ड्रिया, जोहन्स वर्ग । इनके अतिरिक्त बन्दरगाहों की आबादी १००,००० से अधिक है । दक्षिणी नाइजीरिया में बहुत से बड़े-बड़े गाँव या कस्बे हैं । इनमें इबादान सबसे बड़ा तथा इसकी आबादी १५०,००० है ।

आस्ट्रेलिया में जनसंख्या का वितरण :

आस्ट्रेलिया में आबादी का घनत्व अत्यन्त कम है । केवल लगभग ३ मनुष्य प्रति वर्ग मील, और यहाँ कुल १४४ लाख मनुष्य रहते हैं । संसार की आबादी के घनत्व के चित्र के अध्ययन से मालूम होता है कि आस्ट्रेलिया में विशेषरूप से पाँच भाग हैं जहाँ की आबादी घनी है : (१) सिडनी के पीछे पश्चिमी ढाल, (२) विक्टोरिया का अधिकतर भाग (३) क्वीन्स लैन्ड का दक्षिणी पूर्वी कोना (४) दक्षिणी आस्ट्रेलिया का दक्षिणी भाग, और (५) स्वानलैण्ड का दक्षिणी पश्चिमी कोना । इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया में आबादी बिखरी हुई है । यहाँ जनसंख्या का जमाव दक्षिणी-पूर्वी तट पर ही अधिक है । पश्चिमी तथा भीतरी आस्ट्रेलिया में शुष्कता के कारण जनसंख्या बहुत ही कम है ।

इस महाद्वीप की आबादी की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आबादी का जमाव शहरों में ही है । इसकी लगभग ४७ प्रतिशत आबादी छः बड़े शहरों में ही केन्द्रित है जो कि यहाँ के प्रान्तों की राजधानियाँ हैं ।

३. जनसंख्या का घनत्व (Density of Population) :

जनसंख्या का घनत्व एक ऐसा बैरोमीटर (Barometer) है जिसके द्वारा मनुष्य और वातावरण के निरन्तर परिवर्तनशील सम्बन्ध की सूचना मिलती है । उदाहरणार्थ, पश्चिमी बंगाल की जनसंख्या का घनत्व ८०६ है किन्तु आसाम में केवल १०२% दोनों राज्यों में घनत्व में अन्तर होने का मुख्य कारण इन दोनों की पोषण शक्ति का विभिन्न होना है ।

जनसंख्या का घनत्व निम्न प्रकार का हो सकता है :—

(क) जनसंख्या का गणित या वास्तविक घनत्व।

(ख) कृषि भूमि का घनत्व।

(ग) कृषि घनत्व।

(घ) आर्थिक घनत्व।

(ङ) पौष्टिक घनत्व।

(क) जनसंख्या का गणित या वास्तविक घनत्व
(Arithmetic or Real Density)

इस घनत्व से यह ज्ञात हो सकता है कि प्रति वर्ग मील भूमि पर कितने मनुष्य रहते हैं। इस घनत्व को ज्ञात करने के लिए किसी देश के सम्पूर्ण क्षेत्रफल और समस्त आबादी का विचार किया जाता है। उदाहरणार्थ सम्पूर्ण भारत का क्षेत्रफल १९५१ की जनगणना के अनुसार १२·६ लाख है और जनसंख्या ३६, करोड़, तो इसकी जनसंख्या का घनत्व २८१ होगा। इसी प्रकार १९५१ में सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या २४९९ लाख थी। प्रति वर्ग मील पीछे यह घनत्व ४५ या प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे १८ था। परन्तु इस अनुपात से कोई महत्वपूर्ण तथ्य नहीं निकलता क्योंकि पृथ्वी का ७०% से अधिक भाग जल से पूर्ण है, जिस पर कोई रहने का स्थान नहीं। यदि इस जल प्रदेश को निकाल दिया जाय तो औसतन प्रति वर्ग मील भूमि पर ४१ मनुष्य वसते हैं। यह गणित घनत्व या साधारण मनुष्य और भूमि का अनुपात (man-land ratio) कुछ सीमा तक उन प्रदेशों के लिए महत्वपूर्ण है जो कम बसे हुए हैं।

निम्न तालिका में विश्व के प्रमुख देशों का वास्तविक घनत्व बताया गया है :—[1]

प्रमुख देशों की जनसंख्या का गणित घनत्व (१९५१)

देश	प्रति वर्ग मील पीछे मनुष्य
रूस	२३
संयुक्त-राज्य अमेरिका	५०
जावा और मदुरा	८१८
चीन	१२३
पाकिस्तान	२०८
इटली	३९०
इङ्गलैंड और वेल्स	७२४
जापान	५८३
वेल्जियम	७९४
नीदरलैंड्स	८२६
आस्ट्रेलिया	३

१. 'International Year Book and Statesman's Who's who,' London 1953. p. 11, 54, 220, 286, 366, 378 etc,

कनाडा	४
जर्मनी	५०५
फ्रांस	१९७
भारत	२८१

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत की जनसंख्या का घनत्व २८१ है है जो कई देशों से अधिक है किन्तु इङ्गलैंड वेल्स, बेल्जियम, जर्मनी, जापान, जावा और मदुरा, इटली, नीदरलैंड्स से कम ही है।

(ख) कृषि भूमि का घनत्व (Physiological Density) :

यह घनत्व उपर्युक्त घनत्व से अधिक सही और महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे जनसंख्या तथा कृषि के योग्य भूमि का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ, भारत का सम्पूर्ण क्षेत्रफल १२.६ लाख वर्ग मील है जिसमें इसमें से केवल ६.५ लाख वर्ग मील भूमि ही खेती के योग्य है अतः इसकी कृषि भूमि का घनत्व ५५५ मनुष्य प्रति वर्ग मील है। विश्व के अन्य देशों की कृषि भूमि का घनत्व इस प्रकार है :—[1]

प्रमुख देशों की कृषि भूमिका घनत्व (१९५१)

देश	प्रति वर्ग मील खेतीहर भूमि पर	देश	प्रति वर्ग मील खेतीहर भूमि पर
जापान	४,०००	द० अमेरिका	२४
हौलैंड	२,५००	अफ्रीका	३५
इङ्गलैंड और वेल्स	२,१००	ओसीनिया	३
न्यूजीलैंड	६००	यूरोप (रूस को छोड़कर)	३२१
भारतवर्ष	५५५	मध्यपूर्व	४५५
चीन	३००—३५००	दक्षिणी पूर्वी एशिया	३८०
सं. रा. अमेरिका	७७	अर्जेनटाइना	१५४
कनाडा	७७		
डेनमार्क	५००		

कृषि भूमि पर जनसंख्या के घनत्व सम्बन्धी उपर्युक्त आंकड़े प्रस्तुत करते हुए श्री कॉलिन क्लार्क (Colin Clark) कहते हैं कि, "यदि किसी देश में डेनमार्क की आधुनिक कृषि पद्धति का सहारा लिया जाय तो उस देश में प्रति कृषि भूमि के किलोमीटर पीछे २०० व्यक्ति अथवा प्रति वर्ग मील पीछे ५०० मनुष्यों का निर्वाह हो सकता है।" इस स्तर के अनुसार विश्व के अधिकांश देशों में कृषि योग्य भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक नहीं कहा जा सकता किन्तु जापान बेल्जियम, हालैंड और इङ्गलैण्ड वेल्स में निस्संदेह खेतीहर भूमि पर अधिक भार है।

इस सम्बन्ध में श्री क्लार्क कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों पर पहुँचे हैं। यूरोप (रूस को छोड़कर) की कृषि भूमि का क्षेत्रफल १४० लाख वर्ग मील है जिस

१. Colin Clark, Population Growth And Living Standards, 1953. P. 10

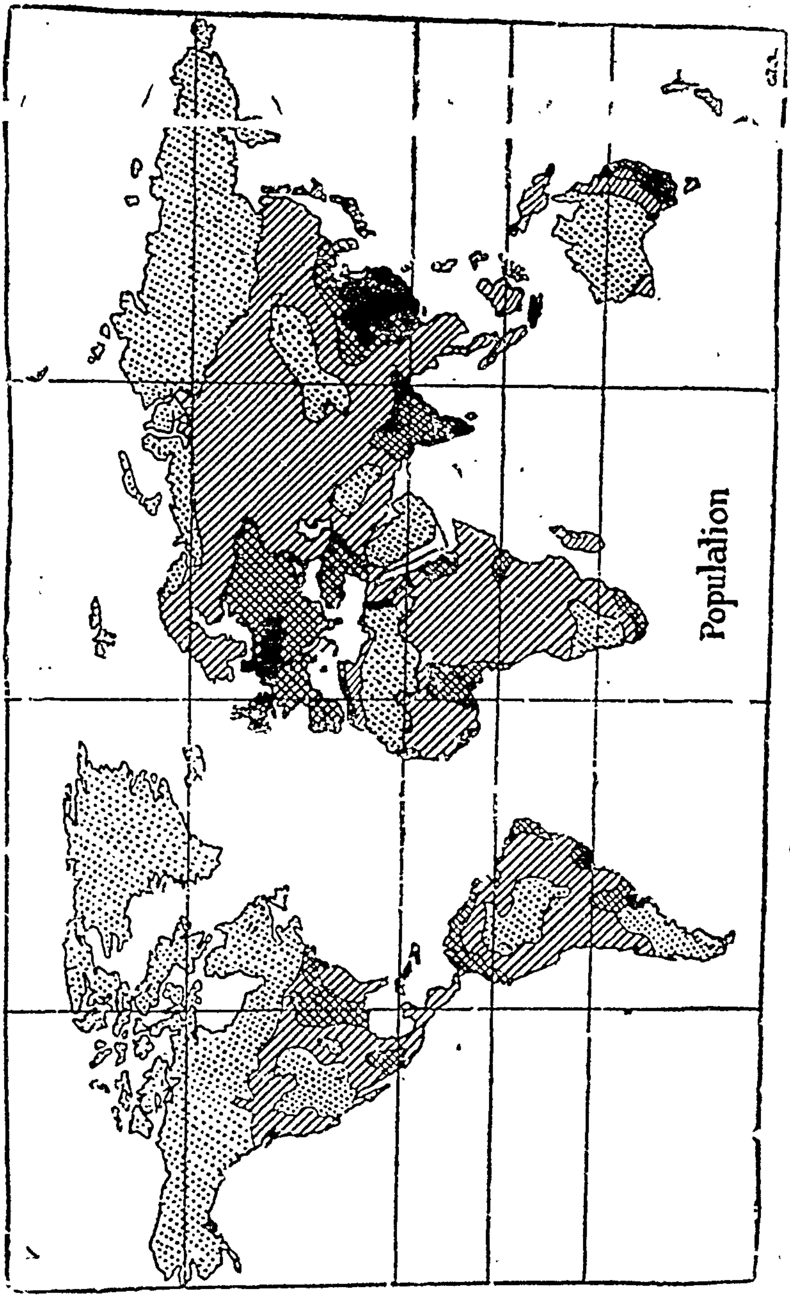

चित्र २६२—जनसंख्या का विन्यास

पर ४५०० लाख जनसंख्या का निर्वाह होता है—जिनमें से ६५% कृषि उत्पादन पर आश्रित है। यदि समस्त यूरोप डेनमार्क की तरह ही अधिक घना बसा होता तो यूरोप की इस सम्पूर्ण कृषि भूमि पर ७००० लाख व्यक्ति को भोजन मिल सकता है। किन्तु यूरोपीय कृषि के स्तर से संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा बहुत ही थोड़े मनुष्यों का निर्वाह करते हैं। दक्षिणी पूर्वी एशिया-बर्मा, थाइलैंड और मलाया को छोड़कर अधिक घना बसा है। अस्तु विश्व के अधिकांश देश अपनी क्षमता से कम ही बसे हैं। इसमें भारत की भी गणना की जा सकती है। श्री क्लार्क के अनुसार समस्त विश्व की कृषि भूमि का क्षेत्रफल २४० लाख वर्ग मील है यदि इस पर डेनिश प्रणाली के अनुसार खेती की जाय तो इससे वर्तमान २३,००० लाख की अपेक्षा १२०,००० लाख मनुष्यों का जीवन निर्वाह हो सकेगा। इसी प्रकार यदि गहरी खेती के तरीकों का प्रयोग किया जाय तो भारत में भी अधिक जनसंख्या का निर्वाह हो सकता है।

(ग) जनसंख्या का कृषि घनत्व (Agricultural Density)

यह घनत्व खेतीहर जनसंख्या तथा खेतीहर भूमि के पारस्परिक सम्बन्ध को सूचित करता है। इसमें कृषि योग्य भूमि के प्रति वर्ग मील में कृषकों की संख्या निकालते है। उदाहरणार्थ १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या में से २४ करोड़ खेतीहर हैं तथा खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल ६·५ लाख है अतः भारत की जनसंख्या का कृषि घनत्व ३७० मनुष्य प्रति वर्ग मील होगी। इसी प्रकार जापान में कृषि भूमि का घनत्व तो ४,००० मनुष्य प्रतिवर्ग मील है किन्तु कृषि घनत्व १,८०० मनुष्य प्रतिवर्ग मील ही है क्योंकि जापान की आधी जनसंख्या खेतीहर है। इंग्लैन्ड और वेल्स में, जहाँ खेतीहर जनसंख्या केवल ८% है, कृषि भूमि का घनत्व २,१०० है किन्तु कृषि घनत्व १६८ मनुष्य प्रति वर्ग मील है।

नीचे की तालिका में श्री रिथीनजर के अनुसार विश्व के प्रमुख देशों का कृषि घनत्व बताया गया है :[१]

देश	प्रतिवर्ग मील कृषि भूमि पर खेतीहर जनसंख्या का भार
बल्गेरिया	२५
पोलैंड	२३६
इटली	२३४
बेल्जियम	१८७
हालैंड	१८५
स्वीटजरलैंड	१७२
हंगरी	१६१
जर्मनी	१२५
फ्रांस	११७
डेन्मार्क	९९
ब्रिटेन	४९

१. Quoted by Finch and Trewarth : Elements of Geography, 1942. p 624.

(घ) जनसंख्या का आर्थिक घनत्व (Economic Density)

यह घनत्व किसी देश की पोषणशक्ति और उस देश की जनसंख्या के बीच के सम्बन्ध को सूचित करता है। इसके अनुसार किसी देश में पोषण के लिए खेती तक ही सीमित रह कर देश के अन्य स्रोतों—खनिज पदार्थ, वन-सम्पत्ति, मिट्टी, मछलियाँ और अन्य प्राकृतिक साधनों को भी दृष्टिगत रखा जाता है किन्तु यह बड़ी जटिल समस्या है और आज तक विश्व के किसी भी देश की जनसंख्या का आर्थिक घनत्व निकालने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

(ङ) पौष्टिक घनत्व (Nutrition Density)

जिन देशों की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण हैं तथा जहाँ आय और भोजन का मुख्य आधार कोई एक प्रमुख अनाज ही होता है, वहाँ इसी प्रकार के घनत्व का महत्व अधिक होता है। उदाहरणार्थ, थाइलैंड, दक्षिणी चीन और बर्मा तथा हिंद चीन में कृषि के अंतर्गत चावल ही अधिक बोया जाता है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका मे गेहूँ की पेटी, मक्का की पेटी आदि में जिनमें एक ही फसल का विशिष्टीकरण होता हैं, ऐसे देशों में पौष्टिक घनत्व ही देश की जनसंख्या के उपयोग का मानदंड बताता हैं। डॉबी (Dobby) के अनुसार हिंदचीन के विभिन्न राज्यों में पौष्टिक घनत्व इस प्रकार था (१९५१) :—

अनाम (मध्य हिंद चीन)	२·५	मनुष्य पीछे प्रति एकड़ की खेती होती है
कोचीन–चीन (द० हिंदचीन)	१.०	,,
टानकिन (उ० वियतनाम-)	२·६	,,
कम्बोडिया	१·२	,,
लॉओस	०·९	,,

जनसंख्या के घनत्व का वितरण :

जिन क्षेत्रों में जनसंख्या का जमाव अधिक हैं उन्हीं में जनसंख्या का घनत्व भी अधिक पाया जाता है। विश्व के अनेक देशों में जो बहुत ही शुष्क, ठंडे एवं अत्यन्त आर्द्र है वहाँ जनसंख्या का घनत्व भी बहुत ही काम पाया जाता है। ऐसे भागों मे वहीं जनसंख्या का जमाव हो जाता है जहाँ जल के अभाव को सिचाई द्वारा दूर किया जा सकता है अथवा जहाँ प्राकृतिक वनस्पति को काट कर बागात खेती आरम्भ करदी गई है अथवा जहाँ बहुमूल्य खनिज पदार्थो के मिलने की संभावनायें रही हैं। मोटे तौर कहा जा सकता है कि विश्व में तीन प्रदेश जनसंख्या के घनत्व के अनुसार अधिक बसे हैं। ये क्षेत्र क्रमश: (१) पूर्वी और दक्षिणी पूर्वी एशिया ; (२) उत्तरी पश्चिमी तथा मध्य यूरोप; (३) उत्तरी पूर्वी संयुक्तराज्य अमेरिका हैं। जनसंख्या के अधिक घनत्व वाले प्रदेश दक्षिणी पूर्वी एशिया में चीन, गंगा का मैदान, दक्षिणी भारत के तटीय मैदान, मीनाम और मीकांग नदियों के मैदान, जापान, जावा, तथा दक्षिणी पश्चिमी कोरिया हैं। यूरोप में पूर्व से पश्चिम जाने वाली 'जनसंख्या की धुरी' जिसमें पो नदी की घाटी, दक्षिणी फ्रास, जर्मनी आदि सम्मिलित हैं—अधिक घनत्व वाली है। संयुक्तराज्य में अटलांटिक महासागर की तटीय रियासतों में दक्षिणी न्यूइंग्लैंड से

लेकर मैरीलैंड तक तथा बड़ी झीलों के निचले भागों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों को जनसंख्या के घनत्व के अनुसार बताया गया है :—[1]

(१) ऐसे देश जिनका घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे ५ मनुष्यों से भी कम हैं। इनके मुख्य उदाहरण आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि देश हैं।

(२) जिन देशों में प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे ६ से २० व्यक्ति रहते हैं वे क्रमशः ब्राजील मैक्सिको, द० अफ्रीका संघ, न्यूजीलैंड आदि हैं।

(३) वे देश जिनका घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे २१ से १५५ तक है। ऐसे देश मिस्र, चीन, फ्रास, भारत और इटली हैं।

(४) प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे १५६ से २३० मनुष्य तक के देश जापान, इंगलैंड, नीदरलैंड्स आदि हैं।

महाद्वीपों के आधार पर एशिया में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे ४५ से ५० है। यूरोप में यह घनत्व ८०-८१ मनुष्य का है। उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में यह ८; अफ्रीका में ६७; और ओसीनिया में केवल २ मनुष्य प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे रहते हैं। सम्पूर्ण विश्व का घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे १८ है।

जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने वाली दशायें
(Factors Affecting Density of Population)[2]

भूतल पर जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने वाली कई दशायें हैं जिन्हें मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) भौगोलिक तत्व (Gegraphic Factors)—

(१) जलवायु (Climate)—

पृथ्वी के धरातल पर जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले तत्वों में जलवायु का मुख्य स्थान है। एक तानाशाह (Dictator) की तरह जलवायु यह निर्धारित करती है कि विश्व के किन भागों में मनुष्य निवास करें। मानव भूगोल की यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि "मानवता का पूर्णतम और सबसे सुन्दर विकास उन प्रदेशों तक ही सीमित रहा है जो वर्षा की विषमताओं के बीच हैं।[3] इन्हीं प्रदेशों में जनसंख्या का जमाव अधिक है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मानव भूगोल शास्त्री प्रो. ब्लाचे (Blache) का कथन है कि "सबसे अधिक जनसंख्या के केन्द्र कर्क रेखा और ४०° उत्तरी अक्षांशों

१. Author's Thesis, "India's Population Problem," p. 76-77,

२. *Ibid*, P, 94-110,

३. Brunhes : Human Geography, p. 67.

४. P. Vidal de la Blache : Principles of Human Geography. p 75.

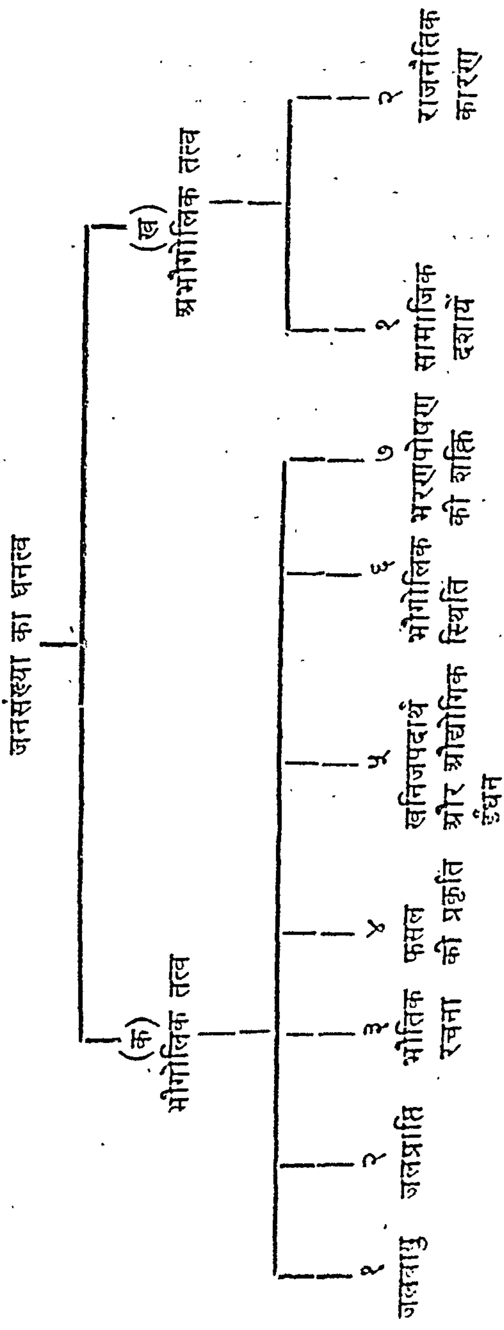
जनसंख्या का घनत्व
(क) भौगोलिक तत्व
(ख) अभौगोलिक तत्व
१ जलवायु
२ जलप्राप्ति
३ भौतिक रचना
४ फसल की प्रकृति
५ खनिजपदार्थ और औद्योगिक ईंधन
६ भौगोलिक स्थिति
७ भरणपोषण की शक्ति
१ सामाजिक दशायें
२ राजनैतिक कारण

के बीच ही सीमित हैं।"[४] क्योंकि यहाँ जलवायु न तो अधिक गर्म ही है और न अधिक ठंडा ही। यहाँ की गर्मी में पेड़-पौधे भली-भाँति पनप सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन प्रदेशों में जलवायु साधारणतः गर्म और वर्षा ऋतु ४-५ महीने वाली होती है जिसके सहारे वर्ष में दो फसलें और कहीं-कहीं तीन फसलें सुगमतापूर्वक पैदा की जा सकती हैं। अतः जनसंख्या का जमाव मुख्यतः इन प्रदेशों में नदियों की घाटी में बढ़ता गया जहाँ न अधिक सूखा ही पड़ता है और न अधिक आर्द्रता ही रहती है और जो न अधिक गर्म तथा न अधिक ठंडे ही हैं। इन प्रदेशों में स्थित असंख्य स्रोतों, झीलों, भूमिगत जल प्रवाह और नदियों से खेती के लिये पर्याप्त जल मिल जाता है और यहाँ मध्यवर्ती एशिया (Asian Massif) से निकलने वाली नदियां उत्तम कांप मिट्टी लाकर भूमि को उर्वरा बनाती रहती हैं।[२] इसी कारण गंगा की घाटी मानवता से भरी पड़ी है।[२]

किन्तु इन प्रदेशों के विपरीत उष्ण-कटिबन्धीय वनों में—आमेजन तथा कांगो नदी की घाटियों, पूर्वी द्वीप समूह आदि—तीव्र असहनीय गर्मी और निरन्तर होने वाली वर्षा के कारण वनस्पति तो शीघ्र बढ़ जाती है किन्तु यह जलवायु मानव के स्वास्थ्य के लिये अहितकर है तथा असंख्य जीव-जंतुओं को उत्पन्न कर मानव का रहना असंभव बना देती है। इसके अतिरिक्त अस्वास्थ्यकर जलवायु उसको आलसी, निर्बल और अनिपुण बनाती है। वस्तुतः इन प्रदेशों में प्रति वर्ग मील पीछे १० से भी कम मनुष्य निर्वाह करते है। ठंडे मरुस्थलों और उत्तरी यूरोप व कनाडा, ग्रीनलैंड आदि क्षेत्रों की तीव्र सर्दी के कारण कोई फसल पैदा नहीं होती तथा मनुष्य का रहना भी कठिन होता है अतः जनसंख्या का घनत्व भी इन भागों में शून्य सा ही है।

इसी प्रकार विश्व के गर्म और शुष्क मरुस्थल—विशेषतः सहारा, अरब, थार, कालाहारी, मध्यवर्ती पश्चिमी आस्ट्रेलिया, अटकामा, एरीजोना आदि—अधिक गर्मी और जल के अभाव में मानवता से शून्य हैं। यह सच ही कहा गया है कि "विश्व की सभ्यता में मरुस्थल बड़ी खाइयाँ हैं।[3] इन मरुस्थलों में जहाँ-कहीं भूमिगत जल पाताल-तोड़ कुओं के रूप में मिल जाता है वहीं जनसंख्या पाई जाती है अन्यत्र क्षेत्र बिलकुल निर्जन होते हैं। जलवायु के कारण ही ऊंचे पर्वत, तथा पठार और बर्फीले स्थान मानव निवास के सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं। भारत में गंगासागर, बीकानेर,, चूरू, जोधपुर, बाड़मेर, जालोर, पाली, नागोर और जैसलमेर आदि क्षेत्र तथा पूर्वी और पश्चिमी हिमालय के काँगड़ा और शिमला जिले, हिमाचल प्रदेश, विलासपुर, गढ़वाल,

---

१, P. Vidal de la Blache : Principles of Human Geography. p. 75-76

२, "Gangetic plains have been over-saturated with humanity since the earliest times in history" —Mamoria.

३. "The deserts are the gaps in World's Civilization"—Freeman and Raup in Essetials of Geography, p, 408,

नैनीताल, अल्मोड़ा, देहरादून आदि जिलों में प्रति वर्ग मील पीछे ६ से १२ व्यक्ति तक निवास करते हैं।

किन्तु इन प्रदेशों के विपरीत शीतोष्ण सामुद्रिक जलवायु वाले प्रदेश—उत्तरी पश्चिमी यूरोप, (इंगलैंड, फ्राँस, हालैंड, आयरलैंड आदि) तथा उत्तर पूर्वी और पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका—अपनी उत्तम जलवायु के कारण ही विश्व के सबसे घने बसे भाग हैं।[1] यहाँ की जलवायु मानव की कार्य-क्षमता को बढ़ाने वाली, उसे फुर्तीला, चुस्त और उत्साही बनाने वाली है तथा गर्मी का मौसम पैदावार और व्यापार के लिये अत्यन्त सुविधाजनक होता है किन्तु जाड़ा सुस्ती एवं व्यापार की मंदी का समय होता है। अस्तु, बेल्जियम में प्रति वग मील पीछे ७६४ व्यक्ति; इँगलैंड में ७२४; जमंनी में ५०५ और नीदरलैंड्स में ८२६ व्यक्ति रहते हैं।

प्रो. हटिंग्टन (Huntington) का यह निष्कर्ष कि "विश्व की ऊँची भौतिक संस्कृति (materialistic culture) और सभ्यता वाले देश आश्चर्य-जनक रूप से सर्वोच्च जलवायु शक्ति वाले देशों से सम-केन्द्रित है, तथा इस सभ्यता का जन्म उस देश विशेष की जलवायु और मानसिक शक्ति में निहित होता है, "अब प्राय: सर्वमान्य हो गया है। वास्तव में जिन देशों में भौतिक संस्कृति का अधिक विकास हुआ है वे अन्य देशों से अपने यहाँ जनसंख्या को आकर्षित कर धीरे-धीरे विश्व में सबसे घने क्षेत्र (Congested Space) बन जाते हैं।

प्रो० हटिंग्टन के मतानुसार घनी आबादी के लिए ठंडे महीने का तापक्रम ४०° फा० और गर्म महीने का तापकम ७०° फा० तक रहना चाहिए ; तथा सापेक्षिक आर्द्रता भी साधारणत: अधिक नहीं होनी चाहिए (केवल वर्षा ऋतु को छोड़कर) तथा निरन्तर चक्रवातों द्वारा मौसम में परिवर्तन होना भी अपेक्षित है।[2] इनके अनुसार अधिक मर्मी व अधिक शीत वाले क्षेत्रों में कृषि का होना तो असम्भव है वरन् किसी अन्य प्रकार की आर्थिक क्रिया भी नहीं हो सकती और आर्थिक क्रियाओं की अनुपस्थिति में जनसंख्या का काम होना स्वाभाविक ही है।

(२) जलप्राप्ति (Availability of Water Supply)—न केवल भारत में ही वरन् विश्व के सभी देशों में जनसख्या का घनत्व जल प्राप्ति की अवस्था से सम्बन्धित है। जिन प्रदेशों में मिट्टी तथा प्राकृतिक रूप से सिंचाई के लाभ उपलब्ध हैं अथवा जहाँ कृत्रिम रूप से सिंचाई की सुविधा उपस्थित हैं वहां खेती गहरी और विस्तृत दोनों ही प्रणालियों द्वारा की जाती है अस्तु. जनसंख्या भी घनी होती है। यद्यपि जनसंख्या के वितरण पर वर्षा की मात्रा का काफी प्रभाव पड़ता है किन्तु इसके भी कुछ अपवाद हैं। उदाहरण

१. "Temperate marine climates with their stimulating and invigorating effects on the physiological and mental frame-work of man are among the climates *par excellence* the best area for maximum concentration of human settlements,"

2. E. Huntington : Civilization and Climate, 1924, p.387-411.

के लिए आसाम की जलवृष्टि गुजरात या दक्षिणी भारत की अपेक्षा तीन गुनी अधिक है किन्तु यहाँ जनसंख्या कम पाई जाती है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश, विहार व पश्चिमी बंगाल उन क्षेत्रों की अपेक्षा जहाँ ७५" वर्षा होती है अधिक घने बसे हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी क्षेत्र की जनसंख्या और वहाँ प्राप्त होने वाली वर्षा की मात्रा में गहरा सम्बन्ध है किन्तु ऐसा करने से पूर्व कुछ तथ्यों का विचार करना आवश्यक है। खेती की सफलता के लिए साधारणतः ४०" की वर्षा पर्याप्त मानी जाती है, इससे अधिक मात्रा कृषि के लिए हानिकर हो सकती है और यदि जल की मात्रा इस निश्चित मात्रा से कम है अथवा सामयिक वृष्टि के कारण अकाल पड़ जाते हैं तो निश्चय ही इसके द्वारा खेती संभावित होगी और इसका प्रभाव अपरोक्षरूप से जनसंख्या के घनत्व पर भी पड़ेगा। किन्तु इस अभाव को दूर करने के लिए कृत्रिम सिंचाई के साधनों का सहारा किया जा सकता है। इसी कारण, पूर्वी दक्षिणी मद्रास में (वर्षा ३२") पश्चिमी तट की भांति ही (जहाँ ११०" वर्षा होती है) अधिक जनसंख्या पाई जाती है। बिहार तथा पंजाब के अधिकांश भाग नहरों द्वारा सुन्दर उत्पादक उद्यानों में परिवर्तित कर दिये गये हैं। सिंध और मिस्र भी इसके अनुपम उदाहरण है। यही बात पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिये भी लागू है। भारत में डा० गांगुली (Gangulee) भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि ज्यों-ज्यों वर्षा की मात्रा में कमी होती जाती है त्यों-त्यों जनसंख्या के घनत्व में भी कमी होती जाती है। इस तरह, पूर्वी गंगा के मैदान में—जहाँ वर्षा ४२" होती है गगा के पश्चिमी मैदान की अपेक्षा—जहाँ केवल ३०" वर्षा होती है—अधिक घनत्व पाया जाता है।[1]

इसमें कोई संशय नहीं कि अपर्याप्त जल की मात्रा से फसलें पैदा नहीं की जा सकतीं किन्तु फसलों का उत्पादन भूमि की रचना पर भी अवलंबित है। जहाँ भूमि का तल सपाट हैं वहाँ प्रति इंच पर खेती की जाती है तथा जल निमित्त नदी नालों का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में भूमि का कटाव भी नहीं होता किन्तु जहाँ भूमि ऊबड़ खाबड़ है वहाँ केवल ढालों के निचले भागों में ही उपजाऊ मिट्टी मिलती है। जितना अधिक भूमि का ढ़ाल होता है उतना ही अधिक जल तेजी से बहकर चला जाता है और खेती के लिए अधिक तथा समान रूप से अधिक जल की आवश्यकता अनुभव होती है। ऊँचे भागों में जरा सा भी सूखा पड़ने से फसलें नष्ट हो जाती है, यदि ढालों को कृषि योग्य बनाया भी जाय तो वे मिट्टी के कटाव के शिकार होते हैं। अतः इन ढालों पर सूखा चाहने वाली मजबूत फसलें ही अधिक बोई जा सकती हैं। विश्व में ही नहीं भारत में भी जनसंख्या का जमाव नदियों की घाटियों अथवा समुद्र तटीय किनारों पर पाया जाता है। पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सिंचाई के सहारे अधिक जनसंख्या का निर्वाह होता है यद्यपि आसाम और हिमालय की तराई में वर्षा अवश्य अधिक होती है किन्तु ऊबड़ खाबड़ धरातल, घने वनों और यातायात के साधनों के अभाव में खेती

१, B, N, Gangulee : Trends of Agriculture and Population in the Ganges Valley, 1938, p. 63-64,

करना असम्भव सा ही है तथा स्वास्थ्य के लिए जलवायु भी हानिकर है अस्तु, जनसंख्या का घनत्व कम है। उत्तरी चिली के मरुस्थल, दक्षिणी पीरू और कालाहारी तथा कालोराडो आदि में जल के अभाव से घनत्व साधारण है किन्तु ग्रेट बेसीन, कैस्पीयन बेसीन, गोवी और तकला मकान के मरुस्थलों में सिंचाई की सुविधा न होने से जनसंख्या का घनत्व बहुत ही कम है।[1]

(३) भूमि की रचना (Physiographic Relief)—भूमि की बनावट का भी जनसंख्या के वितरण पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस तथ्य की सत्यता इसी बात से प्रतीत होती है कि सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का ९/१० भूमि के उन प्रदेशों में निवास करता है जो साधारणतः समुद्र के धरातल से १५,०० ऊँचे हैं। विश्व के धरातल का १२% पर्वत, १४% पहाड़ियाँ, ३३% पठार और ४१% मैदान हैं। इसके विपरीत भारत में भूमि का ११% पहाड़, १२% पहाड़ियाँ, २८% पठार और ४३% मैदान के अन्तर्गत है। मैदानों में भारत की ३/४ जनसंख्या निवास करती है। मैदानों में जीवन निर्वाह की सुविधायें सबसे अधिक पाई जाती हैं—यथा कृषि उद्योग तथा औद्योगिक क्रियाएँ। विस्तृत भूतल के सपाट होने से आवागमन के मार्गों की सुविधायें भी होती हैं जिससे मनुष्यों का विचरण सरलता से हो सकता है, अस्तु, मैदानों में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है। वास्तव में प्राचीन सभ्यता के केन्द्र—जहाँ जनसंख्या पूरी प्रकार जमी थी—इन्हीं मैदानों में स्थित थे। यहीं यह सभ्यता फूली और विश्व के अन्य भागों को फैली। ये भाग क्रमशः दजला और फरात, सिंधु, गंगा, यांग्टीसीक्यांग, और नील नदियों तथा क्वान्टो के मैदान हैं। वर्तमान काल में भी प्रायः सभी बड़े औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र—जो घनी आबादी के केन्द्र हैं—मैदानों में ही पाये जाते हैं जबकि उच्च पर्वतीय प्रदेश निर्जन हैं। विश्व के बहुत ही थोड़े नगर पहाड़ी भागों में बसे हैं। यही कारण है कि उच्च हिमालय, आल्पस, रॉकी या एण्डीज पर्वत अथवा मध्य एशिया के पहाड़ी भाग मानव से शून्य हैं जब कि गंगा, राइन अथवा सैंट लारेंस के मैदान मानव-निवास से परिपूर्ण हैं। दक्षिणी नार्वे का धरातल पहाड़ी होने के कारण समुद्री जलवायु होते हुए भी बहुत ही कम आबाद है यहाँ प्रति वर्ग मील २१ से भी कम व्यक्ति निवास करते हैं। अतः प्रत्यक्ष रूप से धरातल की बनावट किसी देश की आर्थिक उन्नति की सीमा को निर्धारित करती है—ऊँचे पहाड़ों से भरे हुए प्रदेशों की आर्थिक उन्नति अधिक नहीं हो सकती क्योंकि वहाँ न तो खेती-बारी ही अधिक हो सकती है, न उद्योग-धन्धों की उन्नति हो सकती है और न मार्गों की ही सुविधा है। यही कारण है कि ऐसे प्रदेशों में आबादी घनी नहीं होती है। पहाड़ी प्रदेशों के निवासियों के मुख्य धन्धे पशु-पालन, खान खोदना, लकड़ी चीरना आदि है जिन पर अधिक आबादी निर्भर नहीं रह सकती। पहाड़ी प्रदेशों के विपरीत जहाँ मैदान होते हैं वहाँ यदि भूमि उपजाऊ हो तो आबादी घनी होती है क्योंकि वहाँ खेती-बारी तथा धन्धे पनप सकते हैं और मार्गों की सुविधा होने से व्यापार की उन्नति भी हो सकती है। दक्षिणी पूर्वी राजस्थान,

1. Freeman and Raup : Essentials of Geography, p, 408,

आसाम तथा दक्षिण के पठार पर जहाँ असमान धरातल के कारण न तो खेती योग्य भूमि की अधिकता है और न रहने की अन्य सुविधायें ही हैं बड़े नगरों का नितान्त अभाव है।

(४) भूमि की उर्वरा शक्ति (Natural Fertility of Land)—

भूमि की उर्वरा-शक्ति भी किसी स्थान विशेष पर जन-संख्या को आकर्षित करती है। जिन भागों में भूमि उपजाऊ होती है वहाँ मनुष्य खेती करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। किसी स्थान में खेती के आरंभ होते ही वहाँ की जनसंख्या बढ़ने लग जाती है क्योंकि यह उद्यम बहुत ही सरल और उपादेय होता है। इसके द्वारा थोड़ी सी मेहनत से जीवन-निर्वाह हो सकता है। जितनी भूमि एक गाय के निर्वाह के लिए काफी है उतनी भूमि पर खेती करने से ८ मनुष्यों का पालन हो सकता है। अतएव प्रति वर्ग मील भूमि पर खेती करके अधिक मनुष्य निर्वाह कर सकते हैं। किसान का अपनी भूमि से इतना निकट का सम्बन्ध होता है कि वह अपनी भूमि को छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकता। खेती-बारी के लिए उपजाऊ भूमि, यथेष्ठ जल और गर्मी की आवश्यकता होती है। अस्तु, जिन प्रदेशों में ये तीनों ही बातें पाई जातीं है, वहाँ खेती-बारी खूब हो सकती है और परिणामतः वहाँ जनसंख्या का जमाव भी अधिक होता है। यही कारण है कि उपजाऊ भूमि वाले नदियों के विस्तृत मैदानों— यथा भारत का सिंधु-गंगा का मैदान, समुद्र-तटीय मैदानों, चीन में यांग्टीसी का बेसिन; मिस्र में नील की घाटी आदि भागों—में मध्य एशियाई पर्वतों अथवा मध्य अफ्रीका के पहाड़ों से लाई गई मिट्टी के जम जाने से तथा मानसूनी जलवायु के कारण पर्याप्त गर्मी और पानी की प्राप्ति हो जाने से जनसंख्या का विस्तार बहुत ही अधिक पाया जाता है।[१] भूमि की अत्यधिक उपजाऊ शक्ति के कारण ही गंगा के मैदान में ११ करोड़ मानव निवास करते हैं। इसका क्षेत्रफल यद्यपि सम्पूर्ण भारत के क्षेत्रफल का ६.६% किन्तु यहाँ सम्पूर्ण देश की १९.४% जनसंख्या पाई जाती है—औसत घनत्व ८३२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। ऊपरी गंगा के मैदान का क्षेत्रफल देश के क्षेत्रफल का ४.८% है, किन्तु यहाँ १०.९% जनसंख्या निवास करती है। इस क्षेत्र का घनत्व ६८१ मनुष्य प्रति वर्ग मील है। मलाबार-कोंकन तट का क्षेत्रफल केवल ३% है किन्तु यहाँ ७% जनसंख्या पाई जाती है। इसी प्रकार उत्तरी मद्रास और उड़ीसा के तटीय भागों का क्षेत्रफल ३.६% है किन्तु ५.८% जनसंख्या निवास करती है। इन सभी भागों में मिट्टी की असीम उर्वरा शक्ति तथा पर्याप्त जल-वृष्टि के कारण अधिक जनसंख्या पाई जाती है। प्राचीन काल में वे ही भाग घने बसे होते थे जहाँ न केवल भूमि उपजाऊ होती थी वरन् जो कृषि योग्य भी होती थी।[२] एक बार ऐसे क्षेत्रों में जब जनसंख्या का जमाव हो जाता था तो उसका

१. Enormous layers of alluvium not only responded to the call of the plough but was also one of the best geographical conditions for the age-long sedimentation of human alluvium in these lands."

२. B. N. Gangulee: Op. Cit., p. 1.

घनत्व बढ़ता जाता था।" "मानव अपनी संस्थाएँ बनाता है और अपनी क्रियाओं को क्षेत्र विशेष में केन्द्रित करता हैं, किन्तु उसका पड़ौसी क्षेत्र निर्जन और उजाड़ होता जाता है।"[1]

(५) फसल की प्रकृति (Nature of Crop Cultivated)—बोई गई फसलों की किस्मों का भी जनसंख्या के घनत्व पर प्रभाव पड़ता है। अन्य फसलों की अपेक्षा चावल की फसल पर प्रति एकड़ पीछे बहुत अधिक मनुष्य निर्भर रह सकते हैं। इसीलिए चावल उत्पादक क्षेत्र—थाईलैंड, इण्डोनेशिया, चीन जापान, हिंदचीन, तथा भारत में गंगा की निचली घाटी, उड़ीसा के तटीय क्षेत्र, मलाबार और कोंकन तट—गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक घने बसे हैं। इसके कई कारण हैं :

(i) गेहूँ का उत्पादन विभिन्न प्रकार की जलवायु और मिट्टियों में होता है तथा फसल के बोने के बाद इसकी विशेष देख भाल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है अतः इसका उत्पादन उन क्षेत्रों के अनुकूल होता है जहाँ भूमि का विस्तार अधिक होता है तथा यह कृषि की विस्तृत प्रणाली द्वारा उत्पन्न किया जाता है। कृषि की यह प्रणाली जनसंख्या के निम्न घनत्व को प्रदर्शित करती हैं। और अधिक घनत्व गहरी खेती वाले प्रदेशों से सम्बन्धित रहता है। प्रो० कारवर (Carver) का कहना है कि "यद्यपि विश्व के व्यापार में गेहूँ का महत्व अधिक है किन्तु गहरी खेती की दृष्टि से यह एक 'दरिद्र फसल है।"[2] जबकि चावल उत्पादन के लिए अधिक देखभाल और निरन्तर श्रम की आवश्कता पडती है। अस्तु दक्षिणी पूर्वी देशों की नदियों की घाटियों में चावल के खेत तैयार करने, फसल रोपने, उनको अन्यत्र लगाने और तैयार होने तक अधिक श्रम की और देखभाल की आवश्यकता होने से ही अधिक जनसंख्या का जमाव पाया जाता है। इसी प्रकार उन क्षेत्रों में जहाँ चावल हाथ से रोप कर (transplantation) लगाया जाता है उन क्षेत्रों की अपेक्षा जहाँ वह बिखेरकर बोया जाता है (broad-casting) अधिक घनत्व पाया जाता है।[2]

(ii) अन्य फसलों की अपेक्षा चावल का प्रति एकड़ उत्पादन अधिक होता है अच्छी अवस्था में ५० पौंड बीज एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त होता है और इसके द्वारा इसकी ७० गुनी अथवा ३५०० पौंड उपज प्राप्त की जाती है। यदि चावल के साथ फलियाँ या मांस आदि का भी उपभोग किया जाय तो एक एकड़ भूमि का उत्पादन वर्ष भर तक ५ वयस्कों को उचित योजना प्रदान कर सकता है और एक वर्ग मील भूमि पर २००० से भी अधिक जनसंख्या का निर्वाह हो सकता है। इस आधार पर समस्त संयुक्त-राज्य अमेरिका की जनसंख्या न्यूयार्क स्टेट के क्षेत्रफल पर निर्वाह कर सकती है।[3] गंगा, ब्रह्मपुत्र, इरावदी, मीनाम, मीकांग, यांग्टसीक्यांग, ह्वांगो और सी नदियों की घाटी में चावल की प्रति एकड़ पैदावार अधिक होने से ही अधिक घनत्व पाया जाता है।

---

१. La Blache : Op. Cit., p. 66.

२. T. N. Carver : Principles of Rural Economics, p. 157.

३. E. Huntington and S. W. Cushing : Principles of Human Geography, p. 284.

(iii) चावल की फसल साधारणतः २-३ महीने में पक जाती है और वर्ष भर में उसकी ३-४ फसलें तक उगाई जा सकती है अतः गेहूँ की अपेक्षा चावल अधिक व्यक्तियों को भोजन दे सकता है।

(६) खनिज पदार्थों की प्राप्ति (Availability of Minerals & Power Resources)—खनिज पदार्थों या शक्ति के स्रोतों की जहाँ उपलब्धता होती है वहाँ खनिज उद्योगों की आर्थिक क्रिया के फलस्वरूप आबादी बढ़ जाती है। उक्त क्षेत्रों में खनिज पदार्थ पर आधारित कई भारी उद्योग चालू हो जाते हैं जिनमें अधिक आबादी की आवश्यकता पड़ती है। किसी क्षेत्र में खनिज पदार्थों की प्राप्ति घनत्व को दो प्रकार से प्रभावित करती है। जिन स्थानों में नये खनिज मिलते हैं वहाँ पड़ौसी क्षेत्रों से जनसंख्या आकर्षित होने लगती है और धीरे-धीरे आबादी के नये केन्द्र स्थापित हो जाते हैं। इंगलैंड में बर्मीघम और न्यूकैसिल इसी कारण घनी आबादी के केन्द्र बन गये किन्तु पूर्वी एंगलिया और पॉन्टिक पहाड़ियाँ जनविहीन हो गईं। भारत में भी छोटा नागपुर डिवीजन में खनिज पदार्थों की प्राप्ति के कारण जनसंख्या बढ़ गई है। इसी प्रकार हीराकुण्ड और दामोदर घाटी योजनाओं के पूर्ण हो जाने पर आशा की जाती है कि यह प्रदेश 'भारत का रूर' बन जायेगा। अब भी अनेक खनिजों के कारण जमशेदपुर, आसनसोल, रानीगंज, भेरिया, चितरंजन आदि स्थानों की जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। यूरोप में भी जनसंख्या का घनिष्ट संबंध खनिज केन्द्रों से ज्ञात होता है। रूर, डोनेज, साईलेशिया, सार और लोरेन की कोयले की खानों के कारण ये प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र होने से बड़े घने बसे हैं। पश्चिमी आस्ट्रेलिया, पश्चिमी कैलीफोर्निया और दक्षिणी अफ्रीका संघ में सोने की खोज के कारण ही आबादी शीघ्रतापूर्वक बढ़ गई थी।

(७) भौगोलिक स्थिति या यातायात के साधनों की सुगमता (Geographical Location or Means of Transportation)

किसी देश की भौगोलिक स्थिति अथवा उसका यातायात के साधनों से सम्बन्ध होना भी जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करता है। मनुष्य स्वभाव से ही प्रगतिशील और सामाजिक प्राणी है। वह एक स्थान पर सीमित नहीं रह सकता। इस प्रसार और समागम के लिए आवागमन के मार्गों की सुविधा होनी चाहिये। विश्व के अधिकांश भागों में—मुख्यतः साइबेरिया का दक्षिणी भाग, आस्ट्रेलिया का मध्यवर्ती मैदान आदि—पैदावार भी खूब होती है, खनिज पदार्थों का भी बाहुल्य है, जलवायु भी मानव-जीवन के लिये अधिक प्रतिकूल नहीं किन्तु फिर भी गमनागमन के साधनों से वंचित होने से जनसंख्या का घनत्व यहाँ बहुत ही कम है। विश्व के बड़े-बड़े नगर—पेरिस, लंदन, हैम्बर्ग, शिकागो, न्यूयार्क, टोकियो, बम्बई, कलकत्ता, मास्को आदि—सभी मार्गों के केन्द्रों पर स्थित हैं जहाँ थोड़ी-सी भूमि पर ही करोड़ों व्यक्ति रहते हैं क्योंकि इन नगरों की स्थिति विश्व व्यापार के लिये बहुत ही उत्तम

है।[1] प्रो. मार्क जैफरसन (M. Jafferson) के अध्ययन के अनुसार विश्व की १/१० जनसंख्या से भी अधिक का निवास केवल १०० बड़े-बड़े नगरों तक ही सीमित है। इसका मुख्य कारण उनकी भौगोलिक स्थिति है।[2]

(८) भरण-पोषण की शक्ति (Supporting Capacity)—

किसी क्षेत्र की भरण-पोषण की शक्ति का प्रभाव जनसंख्या को जमाने या बिखेरने में पड़ता है। भरण-पोषण की शक्ति का सम्बन्ध मानव की आर्थिक क्रियाओं से होता है।

(क) शिकारी व्यवसाय (Hunting Stage)—खेती के अतिरिक्त मनुष्य अपने भरण-पोषण के लिये अन्य उद्योग-धन्धों में भी लगे हैं। लकड़ी चीरने, पशु चराने अथवा शिकार करने में जो लोग लगे रहते हैं उनकी जनसंख्या का घनत्व कम होता है क्योंकि एक स्थान के जंगल अथवा घास समाप्त हो जाने पर उन्हें विवशतः दूसरी जगहों को प्रस्थान करना पड़ता है। जंगलों में प्रति वर्गमील आबादी बहुत कम होती है। इसका कारण यह है कि शिकारी जातियां अपने आस-पास की प्रकृतिदत्त भोजन-सामग्री को बिना किसी प्रकार से उसकी वृद्धि किये हुये भी हमेशा समाप्त करने में लगी रहती हैं इसलिये एक स्थान से कंद-मूल-फल समाप्त हो जाने पर उन्हें इधर-उधर घूमना पड़ता है। इसलिये उनके जीवन-निर्वाह के लिये लंबे-चौड़े प्रदेशों की आवश्यकता होती है यदि ऐसा न हो तो वे भूखों मर जायँ। इन भागों में उनका मुख्य कार्य पशु-पक्षियों को मारना, मछलियाँ पकड़ना तथा जंगली फल-मूल इकट्ठा करना ही है। यही कारण है कि जंगली और शिकारी जातियों की आबादी बहुत ही कम हुआ करती है। टन्ड्रा, साइबेरिया के उत्तरी मैदान, उत्तरी मैदान, उत्तरी अमेरिका के वन-प्रदेश अथवा मध्य अफ्रीका-मलाया और आमेजन के घने जङ्गलों में अथवा दकन के पठार के भीतरी भागों में (अरावली, सतपुड़ा आदि) में ५०-१०० वर्ग मील क्षेत्र में एक मनुष्य तक ही पाया जाता है। इसी प्रकार मरुस्थलों में भी—केवल मरुद्यानों को छोड़ कर सैकड़ों वर्ग मीलों में एक भी आदमी नहीं पाया जाता।

(ख) पशु-पालन (Pastoral Stage):—शिकारियों की भाँति चरवाहों को भी अपने पशुओं के लिये बहुत लंबे-चौड़े प्रदेशों की आवश्यकता पड़ा करती है क्योंकि यदि चरागाह अच्छे होते हैं तो पशु चराने वाली जातियाँ वहाँ स्थायी रूप से रहती हैं अन्यथा चारे की खोज में इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ता है। अस्तु, चरवाहे बहुत समय तक एक ही स्थान पर टिक कर नहीं रह सकते। पहाड़ी ढालों अथवा घास के मैदानों में यही हाल होता है। नार्वे, स्वीडेन, स्वीट्जरलैंड, स्पेन, अर्जेनटाइना, पम्पास, प्रेरीज,

---

१ "These Cities are the notable nucler of human agglomerations teeming with millions of lives."

२. M. Jafferson: "Distribution of World's City Folks—A Study in Comparative Civilization," Geographical Review, Vol 21 (July 1931) p, 446-65.

तिब्बत तथा मध्य एशिया के भागों में जनसंख्या का घनत्व इसी कारण बहुत कम है—प्रति वर्ग मील पीछे २–५ व्यक्ति।

(ग) कृषि-व्यवसाय (Agriculture Stage)—में प्रति वर्गमील पीछे जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है क्योंकि कृषि की देख भाल करने के लिए मनुष्य को एक ही स्थान पर टिक कर रहना पड़ता है। भारत, चीन, तथा जापान के प्रदेशों में साधारणतया २४६, ५०० और ३०० मनुष्य प्रति वर्गमील में पाये जाते हैं। भूमि की इस उर्वरा-शक्ति के कारण ही सिन्धु-गङ्गा के मैदानों में ३० करोड़, दक्षिणी चीन में ७·५ करोड़, जावा में १·५ करोड़ और श्याम इण्डोचीन में १ से १·५ करोड़ मनुष्य तक रहते हैं। यहाँ कई भागों में तो प्रति वर्गमील पीछे १,०००—२,००० तक व्यक्ति रहते हैं। पूर्वी बंगाल में जनसंख्या का घनत्व ६०० से १,००० और ग्रामीण चीन में ६००० से ८००० व्यक्ति प्रति वर्गमील का है। उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के विस्तृत मैदानों का भी यही हाल है। वास्तव में दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मानसूनी प्रदेश और यूरोप के शीतोष्ण खण्डों में विश्व की $\frac{1}{6}$ भूमि पर सम्पूर्ण जनसंख्या का $\frac{2}{3}$ भाग पाया जाता है। साथ ही साथ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कृषक जातियों को शिकारी तथा पशु चराने वाली जातियों की भाँति भोजन के लिए प्रति दिन की दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती। इस कारण ये जातियाँ कृषि-प्रधान देशों में अवकाश का समय शिक्षा, साहित्य, कला तथा अन्य विद्याओं में व्यतीत करती हैं।

मछली पकड़ने का व्यवसाय भी जनसंख्या को एक स्थान पर स्थिर रहने को मजबूर करता है। दक्षिणी चीन, जापान के तटीय प्रदेश, ब्रिटिश कोलंबिया, अथवा इङ्गलैंड और भारत के पश्चिमी तट के निकट असंख्य मछुओं की बस्तियाँ प्रतीत होती है।

(घ) औद्योगिक व्यवसाय (Industrial Staff)—किसी स्थान पर पाये जाने वाले खनिज-पदार्थों अथवा शक्ति के साधनों के कारण भी वहाँ जनसंख्या का जमाव हो सकता है। जिन भागों में खनिज-पदर्थ विशेषकर कोयला और लोहा मिलता है वहाँ क्रमशः जनसंख्या की वृद्धि होती जाती है क्योंकि खानों में काम करने के लिए निकटवर्ती भागों से मनुष्य वहाँ आकर बस जाते हैं। इन दोनों महत्वपूर्ण खनिजों की प्राप्ति के फलस्वरूप किसी स्थान पर कला-कौशल की उन्नति हो सकती है, क्योंकि उद्योग-धन्धों के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता नहीं होती। एक कारखाने में जितने मूल्य का माल तैयार होता है उतने मूल्य की पैदावार हजारों एकड़ जमीन पर भी उत्पन्न नहीं की जा सकती। औद्योगिक देश अपनी जनसंख्या के लिए विदेशों से कच्चा माल और भोज्य-पदार्थ मँगाते हैं। इस कारण इन देशों में थोड़ी-सी भूमि पर ही अधिक मनुष्य निर्वाह कर सकते हैं। यूरोप की जनसंख्या के मान-चित्र को देखने से ज्ञात होता है कि डोनेज, साइलेशिया, रूर, सार, लारेन, कालाप्रदेश अथवा एपेलेशियन पर्वतों के निकटवर्ती भाग या पैंसिलवेनिया के औद्योगिक प्रदेश ही विश्व के घसे बसे हुए भागों में से हैं। यहाँ जनसंख्या घनी बसी है। कई भागों में तो जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्गमील पीछे १००० मनुष्य तक है।

व्यापार आदि के निमित भी अनेक क्षेत्रों में जनसंख्या का जमाव हो जाता है। आधुनिक युग में इसी कारण कई देशों में दानव-नगर (Giant dinossaur cities) उत्पन्न हो गये हैं जिनमें से प्रत्येक में ८० लाख से १०० लाख तक व्यक्ति निवास करते हैं। लंदन, हैम्बर्ग और न्यूयार्क में क्रमश: ८८, ५० और १०० लाख व्यक्ति रहते हैं। इनकी तुलना में भारत में वम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास में क्रमश: २८·३ लाख और २५·४ लाख; १७·४ लाख और १४ १ लाख मनुष्य रहते हैं।[1]

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि जिन क्षेत्रों में शिकार करना, पशु पालना, लकड़ी काटना आदि व्यवसाय किये जाते हैं वहाँ जनसंख्या का घनत्व कम होता है किन्तु कृषि या उद्योग प्रधान देशों में यह अधिक होता है।

(ख) अभौगोलिक तत्व (Non-Geopraphic Factors)

(१) राजनैतिक कारण (Politial Factors)—उपर्युक्त भौगोलिक कारणों के अतिरिक्त जनसंख्या के वितरण पर कई अभौगोलिक कारणों का भी असर पड़ता है। मनुष्य की आर्थिक जीवन की उन्नति के लिए जातीय गुण, धर्म, सामाजिक परम्परायें तथा शासन-प्रवन्ध भी वड़ा सहयोग देते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसे स्थान में रहना पसन्द नहीं करेगा जहाँ उसके जान व माल की रक्षा का उचित प्रवन्ध न हो। शक्तिशाली और न्यायपूर्ण शासन जो प्रजा की रक्षा करते हुये उसे उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करा सके जनसंख्या की वृद्धि के लिए वहुत ही उपादेय हुआ करते हैं। मंगोलिया और मंचूरिया तथा पश्चिमी सीमा-प्रान्तों में जनसंख्या की कमी का यह मुख्य कारण है क्योंकि यहाँ पर कोई सुसंगठित एवं शक्तिशाली शासन न होने के कारण डाकुओं और चोरों की भरमार रहती है जिसके कारण वहुत ही कम वाहरी लोग वहाँ जाने और रहने का साहस किया करते हैं। मध्य अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी देशों में कोई शक्तिशाली सरकार नहीं है जिससे वहाँ किसी प्रकार के उद्योग या व्यापार की सुसंगठित व्यवस्था नहीं है और इसीलिये आवादी भी वहुत कम है।

(२) धार्मिक और सामाजिक कारण (Socio-religious factor)—मनुष्य का सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण भी किसी स्थान पर जनसंख्या केन्द्रित करने अथवा विखेरने में वड़ा सहयोगी होता है। पूर्वी देशों में संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली की परम्परा होने से प्राय: एक ही स्थान पर वड़े-वड़े कुटुम्ब मिल कर रहते हैं तथा कृषि-सम्वन्धी उद्योग भी मनुष्य का सम्वन्ध भूमि से अटूट वना रह कर उसे एक ही स्थान पर जम कर रहने के लिये वाध्य करता है। वाल विवाह तथा अधिक जम कर रहने वाले देशों में जनसंख्या अधिक घनी होती है जैसे चीन, जापान तथा भारत के कुछ भागों में।

सामाजिक तत्वों में मुख्य तत्व धार्मिक भी है। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के अनुयायियों को पीड़ित करते हैं। इस उत्पीड़न से वचने के लिए विधर्मी मनुष्य उस देश को छोड़ कर दूसरे अनुकूल देशों में चले जाते हैं।

---

१. Census of India, Paper No, 1 (1952), p. 24-25.

जर्मनी से सहस्रों यहूदी हिटलर के अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिये इगलैंड और अमेरिका में जा बसे थे। बाईबिल के अनुसार यहूदी मिस्र से मुसलमानों के अत्याचारों से त्राण पाने को फिलस्तीन में जा बसे और यहीं आज इनका 'राष्ट्रीय घर' है। फ्रांस से इसी कारण १७ वीं शताब्दी में प्रोटेस्टैन्ट लोग इंगलैंड और दक्षिणी अमेरिका को चले गये।

सरकार की आवास (Immigration) और प्रवास (migration) नीति भी जनसंख्या के घनत्व को नियंत्रित करती है। आस्ट्रेलिया की 'श्वेत नीति' (White Policy) के कारण ही आस्ट्रेलिया में दक्षिणी-पूर्वी एशिया के निवासियों का प्रवास बन्द है अतः वहाँ प्रति वर्गमील पीछे २-३ मनुष्य ही रहते हैं। यदि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने भी ऐसी ही नीति का अवलंबन किया होता तो आज उसकी जनसंख्या का घनत्व भी इतना ही होता। इटली और जर्मनी में सरकारी प्रोत्साहन के कारण ही जनसंख्या का घनत्व बढ़ा है।

अध्याय ३८

जनसंख्या (क्रमशः)

(४) जनसंख्या का आवास-प्रवास

(Population Movements)

आदि-काल से ही मानव एक स्थान से दूसरे स्थान को आता जाता रहा है। सच तो यह है कि जनसंख्या के विकास का आधार ही मनुष्य का स्थानान्तरण है। जनसंख्या का स्थानान्तरण जब कभी बड़े पैमाने पर होता है तो कई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। प्रो. रास (E. Ross) के अनुसार अनुपयुक्त तथा अवांछनीय तत्वों का विनाश हो जाता है क्योंकि जो सबल हैं वे ही इस स्थानान्तर यात्रा में सफल होते है। श्री रास के अनुसार निरंतर आवास-प्रवास ही किसी राष्ट्र के शरीर और मस्तिष्क को सबल बनाते हैं जो जाति अपने निवासस्थान से जितनी ही दूर पहुंच जाती है वह उतनी ही अधिक उन्नतिशील बन जाती है। इसका अच्छा उदाहरण हमें, अरब (Arabs) तथा मूर (Moors) लोगों के स्पेन में स्थानान्तरण होने से मिलता है, जहाँ जाकर उन्होंने सारेसन (Sarasen) साम्राज्य को जन्म दिया। इसी भाँति उत्तरी अमेरिका में यूरोपीय आवास ने वहाँ के आदि निवासियों (Red Indians) की सभ्यता को नष्ट कर अपनी संस्कृति फैलाई। किन्तु दक्षिणी अमेरिका में यूरोपीय और लाल-हिन्दुस्तानी संस्कृति का ही अधिक सम्मिश्रण हुआ। औपनिवेशिक विकास (Colonization) के साथ-साथ यूरोप की संस्कृति विश्व के कोने-कोने में फैल गई। ऐसा ही एक प्रवास भारत के पूर्वजो को मध्य एशिया के स्टेपी प्रदेश से भारत लाया था, जिन्होंने भारत के आदिवासियों को खदेड़ कर शस्य श्यामला भूमि पर अधिकार कर लिया था।

स्थानान्तरण के कारण :

वड़े पैमाने पर स्थानान्तरण के कई कारण होते हैं, जिन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है—यथा (१) भौतिक और (२) आर्थिक

प्लीस्टोसीन युग (Pleistosene Age) के अंतिम चरण में जब बर्फ उत्तरी बाल्टिक खंड तक पहुँच गया तो धीरे-धीरे दक्षिणी यूरोप से उत्तर की ओर जनसंख्या का विकास हुआ। जलवायु सम्बन्धी परिवर्तन के अतिरिक्त प्रत्येक देश में बाढ़ और दुर्भिक्ष के समय बड़ी मात्रा में स्थानान्तरण होना स्वाभाविक ही है।

आर्थिक कारणों में मुख्य तत्व जनसंख्या का भार, भोजन-सामग्री का अभाव, निकटवर्ती क्षेत्र पर आक्रमण करने की भावना, धार्मिक संकट अथवा राजनैतिक परिस्थितियाँ मुख्य हैं। डा० हैडन (A. C. Haddon) के अनुसार जनसंख्या के स्थानान्तरण के मुख्य कारण, 'किसी देश की भूमि पर उसकी जनसंख्या का अधिक भार होने से उस देश में खाद्य सामग्री का अभाव होना है, जिसके वशीभूत होकर पड़ौसी देशों की धन-धान्यता से लाभान्वित होने के लिए आक्रमण कर देने की भावना है।" इस प्रकार का स्थानान्तरण दो कारणों से होता है :—

(१) प्रथम आर्थिक अथवा राजनैतिक कारणों से प्रभावित होकर मानव समूह भोजन के अभाव अथवा भविष्य में उन्नति के साधनों से आकर्षित होता है और अन्य देशों में जाकर विस्तृत साम्राज्य स्थापित करता है, नये देशों को निवास योग्य बनाता है, विश्व के अन्य भागों से उनका सम्पर्क स्थापित करता है और अन्ततः ऊंची सभ्यता को जन्म देता है।

(२) **आर्थिक कारण** : द्वितीय, अन्य देशों के प्राकृतिक स्रोतों से आकर्षित होकर—चाहे वे भूमि सम्बन्धी हों अथवा जलवायु सम्बन्धी—मानव समूह पड़ौसी देशों की ओर अग्रसर होते हैं। पहाड़ी अथवा शुष्क अनुपजाऊ प्रदेशों के निवासियों ने—मुख्यतः मंगोलिया और मध्य एशिया के—अधिकतर अपने प्रतिकूल वातावरण से त्राण पाने के लिए ही गंगा-जमुना, दजला-फरात अथवा यांग्टसी की घाटियों में आक्रमण किये हैं। वहाँ जाकर या तो उन्हें लूटमार कर सम्पत्ति बटोरी और पुनः लौट गये अथवा स्वच्छ जल भरी नदियों के सहारे ही जम गये। इसी प्रकार उत्तम जलवायु ने बाल्टिक प्रदेशों से भूमध्यसागर के निकटवर्ती क्षेत्रों में जनसंख्या को आकर्षित किया है। १६वीं शताब्दी में अलास्का और आस्ट्रेलिया में सोने की प्राप्ति ने स्पेन निवासियों को आकर्षित किया है। १९वीं शताब्दी में भी अनेक यूरोपीय देशों से मानव-सरिता न केवल नई दुनिया की ओर ही वही वरन् वह दूरस्थ स्थित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका प्रभृति देशों तक भी पहुँची। अंग्रेजों ने तो विश्व के अनेक भागों में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये। इस साम्राज्य का इतना अधिक विस्तार हुआ कि शताब्दियों के लिए यह लोकोक्ति बन गई कि "बृटिश साम्राज्य में सूर्य कभी नहीं डूबता।"[1] आज भी स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, हौलेंड, तथा इङ्गलैण्ड आदि देशों में साम्राज्य विस्तार की होड़ लगी है।

धार्मिक संकटों के कारण भी बड़ी मात्रा में स्थानान्तरण होता है। ह्यूगनॉट (Hunghnot) लोगों ने फ्रांस से भागकर इङ्गलैण्ड तथा यहूदियों ने जर्मनी और मिस्र से भागकर फिलिस्तीन में शरण ली। इस प्रकार १९४७ के देश

---

१. "The Sun never sets in the British Empire."

विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान से लगभग ७३ लाख व्यक्ति भारत को आए और लगभग ६७५ लाख मुस्लिम भारत से पाकिस्तान को गये।

संयुक्त राज्य में आवास :

जनसंख्या का स्थानन्तरण मुख्यतः यूरोप महाद्वीप से ही अधिक हुआ है। यूरोपीय प्रवास की धारा १७ वीं और १६ वीं शताब्दी तक चलती रही है, किन्तु १६ वीं शताब्दी में यूरोपीय प्रवास धीमा पड़ गया, क्योंकि राष्ट्रीय सरकारों ने प्रवास को नियंत्रित किया और औपनिवेशिक स्थापन को भी नियोजित किया। सन् १८५० तक ब्रिटेन से प्रवासित लोगों की संख्या लगभग ३ लाख प्रति वर्ष होगई थी, किन्तु १८५४ में यह २'४ लाख ही रह गई। जर्मन भी विदेश गये जिनमें से २'१५ संयुक्त-राज्य अमेरिका पहुँचे। सन् १८४०-८० के बीच में ६५ लाख नये लोग संयुक्त-राज्य अमेरिका पहुँचे जिनमें से ६०% यूरोपीय थे। किन्तु अमेरिकन गृह युद्ध के बाद यूरोपीय प्रवास में कमी आगई और औसतन ३'५३ से ३'७५ लाख ही मनुष्य प्रति वर्ष आये इस प्रकार १८२० से १९५३ तक कुल ३६६,६७,१५३ विदेशी संयुक्त-राज्य अमेरिका में आये। इस आवास में विभिन्न यूरोपीय और अन्य देशों का भाग इस प्रकार रहा :—[1]

देश	१८२०—१९५३ तक लाख	(१३४ वर्षों में) प्रतिशत
समस्त महाद्वीप :		
यूरोप	३३६'७	८४'२
एशिया	६'७	२'४
अफ्रीका	०'३६	०'१
आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड	०'७०	०'२
प्रशान्त महासागरीय द्वीप	० १६	—
अमेरिका (मध्य और दक्षिणी)	४६'४	१२'४
अन्य	२'५	०'६
देश :		
इङ्गलैंड और आयरलैण्ड	६०'७	२२'६
जर्मनी	६४'६	१६'२
इटली	४८'०	१२'०
आस्ट्रिया-हंगरी	४२'०	११'०
कनाडा-न्यूफाउंडलैंड	३२'७	८'२

१. U. S. A. Department of labour: Economic forces in the U. S. A—Facts and figures, 1955, p. 14-15.

नीचे की तालिका में संयुक्त-राज्य में विदेशों से होने वाले आवास को बताया गया है :—[१]

देश जिनसे आवास हुआ	१८२०–१८४०	१८८१–१६००	१६४१–१६५३
ब्रिटिश द्वीप समूह	१०३,२६६	१,०७८,८६५	१८७,१६५
स्वीडेन डेनमार्क, नार्वे	१,५४७	१,०२८,००६	४२,२२७
जर्मनी	१६०,१८३	१,६५८,१२२	४४४,८६८
फ्रांस	५४,४४३	८१,२३४	५२,३६७
इटली	२,६६२	६५६,२०२	८६,३६३
चीन	११	७६,५१०	१७,८३५
कनाडा न्यूफाउंडलैंड	१६,११०	३६६,६१५	२६७,२३५
मैक्सिको	११,४१७	२,८८४	६३ ००४
नीदरलैंड्स	२,५३६	८०,४५६	२३,६५५

यूरोप से स्थानान्तरण :

१६वीं शताब्दी के आरम्भ से लगभग १६५० तक इङ्गलैंड से प्रवास होता रहा है। इस १५० वर्षों की अवधि में बृटिश द्वीप समूह से लगभग २५० लाख मनुष्य बाहर जाकर कॉमन वैल्थ तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका में बस गये। दूसरी ओर पिछले ८० वर्षों में रूसी, पोल, जर्मन निवासी भी इङ्गलैंड में आकर भारी मात्रा में बसे। इस प्रवास में इङ्गलैण्ड को १८७१ से १६५० तक लगभग ३५ लाख मनुष्यों का घाटा रहा। १६३१-३५ के बीच प्रवास अधिकतर संयुक्त-राज्य के विभिन्न भागों के बीच ही हुआ। इस प्रवास से संयुक्त-राज्य को लगभग ५ लाख व्यक्तियों का लाभ हुआ। इस अवधि में यूरोप के विभिन्न देशों से शरणार्थी आकर इङ्गलैण्ड में बस गये। द्वितीय महायुद्ध के बाद इङ्गलैण्ड से प्रतिवर्ष लगभग ८५,००० व्यक्ति कॉमन वैल्थ के देशों में जाकर बसने लगे हैं।[२] प्रो० कारसॉन्डर्स (Carr Saunders) के अनुसार लगभग ८५० लाख व्यक्ति ब्रिटिश जनता होते हुए भी ब्रिटिश द्वीप समूह के बाहर रहते है। इसी प्रकार यूरोपीय संतति के लोग जो अन्यत्र रहते हैं उनकी संख्या २००० लाख से भी अधिक मानी गई है।[3]

इतिहास में जनसंख्या का आवास-प्रवास निरंतर होता रहा है। प्रथम महायुद्ध के बाद यूनान, टर्की और बल्गेरिया के बीच में जनसंख्या की अदला-बदली हुई। १६२२ से यूनान ने एशिया माइनर और बलगेरिया से अपने यहाँ १४ लाख यूनानी शरणार्थियों को शरण दी। इसी प्रकार इटली और जर्मनी की सरकारों के बीच हुई १६३६ की संधि के अनुसार दक्षिणी टैरोल से समस्त जर्मन निवासियों का और उन सभी इटेलियों का जो जर्मनी के निवासी थे अनिवार्य स्थानान्तरण हुआ। जर्मनी ने इसी वर्ष एक सन्धि एस्टोनिया और लैटेविया

---

१. *Ibid*, p. 14-15.
२. Britain—An official Handbook, 1955, p. 8.
३. A. M. Carr Saunders: World Population, 1936, p. 165-169.

की सरकारों से की। युद्ध काल में जर्मनी ने अन्य देशों के निवासियों के अपने देश में घुसने पर प्रतिबन्ध लगा दिया किन्तु जर्मनों की पराजय के पश्चात् नये निवासियों का निष्कासन किया गया। इसी प्रकार नाजियों ने अपने यहाँ से यहूदियों को भी खदेड़ दिया। फिलिस्तीन का विभाजन होने से वहाँ से अरब और यहूदियों को निकाल दिया गया। श्री सिम्पसन (Simpson) के अनुसार द्वितीय महायुद्ध के पूर्व विश्व में शरणार्थियों की संख्या इस प्रकार की ;—[1]

१६२२ में रूस में ७१८,००० से ७७२,००० तक शरणार्थी थे, इनकी संख्या १६३० में ५०३ ००० सें ५३६,००० ही रह गई और १६३६ में यह घटकर ३५५,००० से ३८६,००० हो गई। इसके अतिरिक्त सुदूर पूर्व में ६५,००० के लगभग शरणार्थी थे। इस प्रकार सब मिलाकर रूसी शरणार्थियों की संख्या ४५०,००० थी।

१६२४ में आरमेनियन शरणार्थियों की संख्या २०५.००० थी यह बढ़कर १६३० में २१०,००० और १६३६ में २२५ ००० हो गई। १६३६ में स्पेनिश शरणार्थियों की संख्या ४००,०००; इटैलियन्स की १८०,००० थी तथा १६३८ में जर्मनों की संख्या ३५०,००० थी।

द्वितीय महायुद्ध ने शरणार्थी समस्या को और भी अधिक गंभीर बना दिया। शरणार्थियों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी युद्ध काल में ८,०००,००० व्यक्ति बेघरबार बना दिए गये। १६४५ में संयुक्तराष्ट्र संघ ने इस समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय ढङ्ग पर सुलझाने के लिए U. N. O. Relief and Rehabilitation Association की स्थापना की। इस संघ ने इस समस्या को पूर्ण रूप से हल करने में ३,६८३.५८२,२३६ डालर व्यय किये और ३१ जून १६४७ तक यह क्रियाशील रहा। इस बीच इसने ५५८,८५१ जर्मन; २८,०५६ आस्ट्रियन ; १७,८६५ इटैलीयन्स; २७,०७५ मध्य पूर्व के देशों; १०,१४६ चीनी शरणार्थियों को बस जाने में सहयोग दिया। संघ की रिपोर्ट के अनुसार १६४७ में जर्मनी में ६७१,००० ; आस्ट्रिया में १३८,००० ; बेल्जियम में ५,००० ; चीन में १३,५०० ; फ्रांस में ४३१,००० ; यूनान में २,००० ; इटली में १४६,००० ; मध्य पूर्व में ३३,००० ; नीदरलैंड्स में ५,००० ; इङ्गलैंड में ६०,००० शरणार्थी थे।

एशिया से स्थानान्तरण :

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व एशिया में अन्तर्राष्ट्रीय आवास-प्रवास के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उत्तरी चीन से प्रति वर्ष १० लाख से अधिक मनुष्य अन्य देशों को प्रवास करते थे। दक्षिणी चीन से जनसंख्या की धारा मलाया, हिंदचीन, थाईलैंड इत्यादि कम घनत्व वाले देशों में चीनी जाकर वसते रहे। सन् १८२० और १६५० के बीच १३० वर्षों में ३·६ लाख चीनी संयुक्त राज्य अमेरिका में पहुँचे।

जापानी सरकार ने भी प्रवास को काफी प्रोत्साहन दिया इसके फलस्वरूप जापानी कोरिया, मंचूको तथा चीन में जाकर वस गये। सन् १६१८-३८ के

१. J. Simon : The refugee Problem,

बीच ८ से २८,००० जापानी प्रतिवर्ष विदेशों को गये, किन्तु इन २० वर्षों में कम-से-कम ६ वर्षों में यह स्थिति रही कि जब बाहर जाने वालों से लौटने वालों की संख्या अधिक थी।

भारत से स्थानान्तरण :

भारत से भी बहुत प्राचीन काल से मानव-प्रवास पड़ौसी देशों को होता रहा है। भारतवासी व्यापार हेतु और धर्म प्रचार के लिए अपने देश को छोड़कर मलाया, थाईलैंड, कम्बोडिया, पूर्वी द्वीप समूह, ब्राजील, मोजम्बीक, मैडेगास्कर आदि देशों में जाकर बसे। किन्तु इन देशों से व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध उस समय टूट गये जब विजयनगर साम्राज्य का पतन हुआ और बंगाल में पालवों का ह्रास हुआ जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण हिंदमहासागर समुद्री लुटेरों का घर बन गया जो मैडेगास्कर से मक्कासर तक फैले थे। इसी समय पूर्वी देशों में विदेशियों के उपनिवेश स्थापित हुए इससे स्थिति में कुछ अन्तर हुआ। हिंद चीन फ्रांसीसियों; आस्ट्रेलिया और बोर्नियो और भारत ब्रिटिश; पूर्वी द्वीप समूह डचों, अफ्रीका फ्रांसीसी, बेल्जियन, डच और अँग्रेजों के अधिकार में आ गये। किन्तु भारत से व्यवस्थित रूप से कुलियों और श्रमिकों का स्थानान्तरण १९ वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश से आरम्भ हुआ। १८३४ में पहला जत्था मौरीशस; १८३८ में ब्रिटिश गायना; १८४४ में ट्रीनीडाड, १८४५ में जमेका; १८५१ में आस्ट्रेलिया; १८५० में सैन्टलूसिया; १८५८-६५ में ग्रैनाडा, १८६० में नैटाल; १८७९ में फीजी; १८८७ में न्यूजीलैण्ड; १८९१ में फ्रांस और १९१० में ब्राजील को गया।[1] प्रो० डैविस के अनुसार १८२४-३५ से लगाकर १९३६-३७ के बीच भारत से ३०,१९१ लोग बाहर गए और बाहर से २३,९४१ आये। इस प्रकार कुल लाभ ६,२५० लोगों का हुआ।[2] १९२९ से १९५१ के बीच भारत में विदेशों में गये २८ लाख व्यक्ति लौटे जब कि इस अवधि में भारत से ४१ लाख व्यक्ति बाहर गए।[3]

पिछले कुछ वर्षों का भारतीय प्रवास निम्न तालिका में बताया गया है :—[4]

वर्ष	भारत से प्रवास	भारत में आवास
१९४८	१९,३२४	५,०८१
१९४९	१२ ९२४	६,१००
१९५०	६,४१०	५,५६८
१९५१	७,९९०	१,५२४

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि विश्व के विभिन्न भागों में ५० लाख से भी कम भारतवासी रहते हैं—जो सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या का लगभग १% हैं। बर्मा, लंका, मलाया-सिंगापुर, द० अफ्रीका, ट्रिनीडाड, टोवैगो, मारीशस, ब्रिटिश गायना और फीजी द्वीप में प्रत्येक में १ लाख से अधिक भारतवासी निवास करते हैं। डचगायना, केनिया, यूगैण्डा, टैंगेनिका, जमेका

१. Mamoria's : India's Population Problem.
२. K. Davis : Population of India and Pakistan, p. 99.
३. Indian Labour Year Book for 1951-52, 1955, p. 44.
४. India, 1956. p. 16.

और इंडोनेशिया में प्रत्येक में २५,००० से अधिक भारतवासी पाये जाते हैं। भारतवासी का स्थानान्तरण देशान्तरों में अधिक है और अक्षांसों में कम। भारतीयों का विदेशी जमाव अधिकांशत: २०° उत्तर और दक्षिण के अक्षांसों तक ही (नैटाल को छोड़कर) सीमित है। कुछ उत्तरी अमेरिका और ब्रिटिश कोलम्बिया में जाकर बस गये हैं किन्तु अधिकांश उष्णकटिबन्धीय गन्ने की खेती के क्षेत्रों तक ही सीमित हैं।[1]

नीचे की तालिका में विश्व के विभिन्न देशों में भारतीयों की संख्या बताई गई है :—[2]

देश	भारतीयों की संख्या	देश	भारतीयों की संख्या
		कॉमनवैल्थ के देश	
अदन	६,४५६	न्यूजीलैंड	१,२००
आस्ट्रेलिया	२,५००	न्यासालैण्ड	६,०००
ब्रिटिश गायना	२,१०,०००	रोडेशिया (उत्तरी)	३,५००
ब्रिटिश होंडूरास	२,०००	,, (दक्षिणी)	४,७००
ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो	२,०००	सरावाक	२,२०१
कनाडा	३,०००	सिंगापुर	९१,०२६
लंका	९,६६,७२६	द० अफ्रीका	३,६५,५२४
फीजी द्वीप	१,६०,३०३	सैन्ट लूसिया	३,०००
ग्रैनेडा	४,०००	सैन्ट विन्सेंट	२,०००
हांगकांग	२,०००	टैंगैनिका	६५,५००
जमेका	२६,०००	ट्रिनीडाड और टैबैगो	२,५०,८००
केनिया	१,२७,०००	यूगंडा	५०,०००
मलाया	६,९१,४३१	संयुक्त राज्य	अप्राप्य
मौरीशस	३,५२,४०५	जन्जीबार और पेम्बा	१५,८१२
		अन्य देश	
बहरीन	३,०००	मस्कत	१,१४५
बेलजियन कांगो	१,२२७	नैपाल	१०,४४१
बर्मा	६-७ लाख	फिलीपाइन्स	१,२९५
डच गायना	७०,०००	पुर्तगीज पूर्वी अफ्रीका	५,०००
इथोपिया	१,६४५	रियूनियन	२,२००
हिन्द चीन	२,३००	रूआंडा ऊरुन्डी	१,९६३
हिंद एशिया	४०,०००	सौदी अरब	२,४००
इटाली सुमालीलैंड	१,०००	थाईलैंड	११,२३५
कूवेत	२,५००	सं० रा० अमेरिका	१,४२८
मैडेगास्कर	९,९५५		

१. R. K. Mukerjee : Migrant Asia, 1936, p. 70-72.
२. India, 1956, p. 17.

अन्तरदेशीय प्रवास (Internal Migration)

अन्तरदेशीय स्थानान्तरण अथवा प्रवास साधारणतः अधिक आर्थिक घनत्व तथा कम आर्थिक घनत्व वाले क्षेत्रों के बीच होता है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी बंगाल से बहुत से लोग ब्रह्मपुत्र की घाटी में अथवा उत्तर प्रदेश के लोग पंजाब के कृषि-प्रधान क्षेत्रों में जाकर बस गये हैं इससे इन राज्यों की जनसंख्या का घनत्व पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है। संयुक्त राज्य का पश्चिमी भाग पूर्व की ओर के आवास-प्रवाह के कारण ही घना बसा है। अमेरिकन गृह-युद्ध के समय संयुक्त राज्य की अधिकांश जनसंख्या अटलांटिक तटीय रियासतों में ही केन्द्रित थी, किन्तु १८६० तक प्रवास-प्रवाह इतना तीव्र हो गया कि ओहियो, कैंटकी, और टैनेसी की रियासतों से प्रवासियों की संख्या बढ़ गई। यह प्रवास सन् १९२० तक जारी रहा, इसके बाद कैलीफोर्निया ही आवास का मुख्य आकर्षण रहा।

नगरीकरण (Urbanization) के कारण भी किसी देश में जनसंख्या का आवास होने लगता है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरों का विकास और संख्या बढ़ती जाती है, अस्तु ग्रामीण क्षेत्रों से जनसंख्या इन नगरों की तरफ आकर्षित होने लगती है जहाँ जीविकोपार्जन के साधनों की सुलभता और आमोद-प्रमोद के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। १९२० के पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका का पश्चिमी भाग जनसंख्या में वृद्धि करने लगा किन्तु इसके बाद जब कृषि में यंत्रों का प्रयोग आरंभ हुआ तथा पूर्वी भाग का औद्योगीकरण हुआ तो खेतीहर क्षेत्रों से प्रवास-प्रवाह औद्योगिक क्षेत्रों की ओर होने लगा। फलतः न्यूजर्सी, रीड़ आइलैंड, मैसेचूस्टेस. और इलीनियास तथा इंडियाना राज्यों की जनसंख्या निरन्तर बढ़ने लगी और १९२०-३० के बीच नगरों में ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि ६ गुनी अधिक हुई। इसी प्रकार औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप १९२० से १९४० के बीच जापान में नगरों की जनसंख्या ३२ से ५०% हो गई जबकि ग्रामीण जनसंख्या उसी अनुपात से घट गई। भारत के अधिकांश औद्योगिक नगरों का विकास अपने निकटस्थ ग्रामीणों से प्रवास होने के कारण ही हुआ है।

अन्तरदेशीय प्रवास निम्न प्रकार का हो सकता है :—

(१) अल्प प्रवास (Casual or minor movements)—

पड़ौस के गाँवों के मध्य की गतिशीलता का मुख्य कारण रीति-रिवाज होता है। लगभग सभी हिंदुओं में माता-पिता, पुत्र-वधू किसी दूसरे गाँव में खोजते हैं तथा सामान्यतः गर्भावस्था में वधू मायके चली जाती है, विशेषकर पहली बार।

(२) अस्थायी प्रवास (Temporary)—यह नई नहरों, रेल-मार्गों, तीर्थ-यात्रा, विवाह-संस्कारादि अवसरों पर श्रम की माँग की पूर्ति के लिए कुलियों के प्रवास के कारण होता है।

(३) सामयिक प्रवास (Periodical)—यह श्रम की मौसमी माँग के कारण होता है। फसल काटने के समय अर्जेनटाइना में स्पेन अथवा

इटली से मजदूर जाते थे। इसी प्रकार अमेरिकी खेतों में मशीनों के उपयोग के पूर्व फसल काटने के लिए दक्षिणी रियासतों से मजदूर बड़ी संख्या में पहुँचते थे। भारत में भी फसल काटने के समय सुन्दरवन, उत्तरी भारत के गेहूँ के जिलों के लिए वार्षिक प्रवास तथा बिहार और उत्तर प्रदेश में जाड़े के मौसम में सड़कों पर काम करने का उदाहरण भी मुख्य है।

(४) अर्द्ध अस्थायी प्रवास (Semi-permanent)—जब एक स्थान के निवासी दूसरे स्थान पर जीविकोपार्जन के लिये जाते हैं, परन्तु अपना सम्बन्ध अपने जन्म-स्थान से बनाये रखते हैं जहाँ वे समय-समय पर लौट आते हैं। बड़े नगरों में मिल और कारखानों में काम करने वाले श्रमिक, सरकारी दफ्तरों के क्लर्क, घरेलू नौकर तथा हर जगह पाये जाने वाले मारवाड़ी व्यापारी और साहूकार इसका उदाहरण हैं।

(५) स्थायी प्रवास (Permanent)—इस प्रकार प्रवास उपनिवेश की तरह का होता है। यह उस समय होता है जब सिंचाई या संदेशवाहन में सुधार होने के कारण या राजनैतिक परिस्थितियों के बदल जाने के कारण नई भूमि बसने के लिए प्राप्त हो जाती है। इसका उदाहरण दक्षिणी बर्मा तथा पंजाब के नहरी क्षेत्र का उपनिवेशीकरण है।

(६) दैनिक प्रवास (Daily)—इस प्रकार का प्रवास तब होता है जब औद्योगिक केन्द्रों में निवास करने के लिए घरों का अभाव होता है, तब जनसंख्या का अधिकांश भाग ५–१० मील की दूरी से रेलों या बसों द्वारा प्रतिदिन आते हैं और कार्य-समाप्ति पर पुनः लौट आते हैं।

भारत में देशीय स्थानान्तरण (Internal Migration)

श्री एडम स्मिथ (Adam Smith) नामक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री के अनुसार "सभी प्रकार के सामानों में मनुष्य का परिवहन अत्यन्त कठिन हैं।"[1] यह कथन चाहे और किसी देश के लिए सत्य न हो किन्तु यह भारत के लिए विशेष रूप से लागू होता है। भारत की अनेक जनगणना रिपोर्टों से प्रतीत होता है कि बहुत ही कम व्यक्ति अपने जन्मस्थान से अन्यत्र रहते हैं। मोटे तौर पर ९०% व्यक्ति अपने जन्मस्थान में ही निवास करते हैं। १९०१ में ९·२७% व्यक्तियों की गणना उनके जन्मस्थान से दूर हुई थी। १९११ में यह प्रतिशत गिर कर ८·७ हो गया और १९२१ में पुनः बढ़ कर ९·८% हो गया। १९३१ में भी सम्पूर्ण जनसंख्या का केवल ८·७% ही अपने जन्मस्थान से दूर रहता था। इस जनगणना के अनुसार लगभग ३५ करोड़ की जनसंख्या में से १० लाख से भी कम व्यक्तियों का जन्म अन्यत्र हुआ था। भारतीयों का 'गृह-प्रेम' (Home loving) सामाजिक एवं आर्थिक कारणों का परिणाम है। भूमि से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित कृषक जनसंख्या की गतिहीनता भी इसका कारण है जिसे जाति, भाषा, सामाजिक रीति-रिवाज तथा किसी भी प्रकार के परिवर्तन से भयभीत होने की प्रकृति ने और भी दृढ़ कर दिया है। हिंदुओं को प्रभावित करने वाला

१. "of all sorts of luggage, man is the most difficult to be transported" —Adan Smith.

प्रमुख सामाजिक कारण जाति-व्यवस्था है जिसके कारण सामाजिक परिधि के बाहर एक मनुष्य का जीवन कठिन हो जाता है।

प्रवास की सबसे बड़ी आर्थिक बाधा तो यह है कि भारतीय मुख्यतः कृषि पर निर्भर हैं। भूमि के छोटे टुकड़े का स्वामित्व या उसमें रुचि होने पर अन्यत्र जीविकोपार्जन की जोखिम के भय से लोग इस साधन को छोड़ना नहीं चाहते। मलेरिया, हुकवार्म आदि बीमारियों का प्रभाव भी हानिप्रद होता है। इसके अतिरिक्त अधिकांश ग्रामीण साहूकार के पंजों में फंसे रहते हैं। जो उनके गाँव छोड़ने में हर समय रोड़े अटकाते हैं।

मान्यता है कि जनसंख्या कम होने पर अन्यत्र पैदा होने वाले व्यक्तियों का अनुपात अधिक होता है। यदि यह सच है तो भारत में, जहाँ विश्व की लगभग $\frac{1}{6}$ जनसंख्या निवास करती है, प्रवास का कम होना अवश्यभावी है।

जनसंख्या की सामान्य गतिहीनता होने के उपरांत भी देश में गतिशीलता के कुछ निश्चित प्रवाह है। यहाँ कृषि प्रधान क्षेत्रों से औद्योगिक, खनिज और बागाती खेती के क्षेत्रों को जनसंख्या का अधिक प्रवास हुआ है। आसाम, पश्चिमी बंगाल, बम्बई और मध्य प्रदेश में अथवा पंजाब में भारत के अन्य स्थानों से मनुष्य आकर बस गये हैं। निम्न तालिका में १९२१ और १९३१ में विभिन्न राज्यों के प्रवास और आवास सम्बन्धित आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :

राज्य	वास्तविक लाभ(+) या हानि(–)	आवासी	प्रवासी	वास्तविक लाभ (+) या हानि(–)	आवासी	प्रवासी
		(१९२१–लाखों में)			(१९३१–लाखों में)	
(१) राज्य जिनको लाभ हुआ :						
आसाम	+१२४	१३·१	०·७	+११·४	१२·१	·७
बंगाल	+ ७·७	१७·२	९·५	+ १·३	८·१	६·८
बम्बई	+ ५·९	११·८	५·९	+ ४·७	१०·३	५·६
मध्य प्रदेश	+ २·२	६·४	४·२	+ १·९	६·०	४·०
मैसूर	+ २·१	३·०	१·२	+ २·१	३ ०	·९
(२) राज्य जिनको हानि हुई :						
राजस्थान	— ५·१	३·२	८·६	— ६·२	२·४	८·६
मद्रास	— ८·८	२·४	११·३	— ७·१	१·४	६·६
उत्तर प्रदेश	—१०·६	४·९	१५·५	— ९·७	४·२	१३·९
बिहार-उड़ीसा	—१२·९	४६	१७·५	—१५·६	३·८	१९·५

(१) आसाम—

आसाम राज्य की आबादी दूर दूर बसी है तथा खेती के लिए प्राप्य भूमि प्रचुर मात्रा में है। अतः वहाँ के निवासी मजदूरी पर काम करना अनावश्यक समझते हैं, अतः चाय के बागानों के लिए मजदूर अन्यत्र स्थानों से प्राप्त किये

जाते हैं। ब्रह्मपुत्र की घाटी में खेती योग्य बेकार पड़ी हुई भूमि अन्य राज्यों के भूमिहीन आवासियों को आकर्षित करती है। इन चाय के बागानों के लिए मजदूर बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और बंगाल से आते हैं। कुछ लोग नेपाल से भी आते हैं। राज्य की लगभग एक चौथाई जनसंख्या बाहर की है। आसाम में अब भी खेती योग्य भूमि बहुत है, किन्तु काला अजर एवं अन्य बीमारियों के प्रसार के कारण आवासी लोगों की वृद्धि नहीं होने पाती।

(२) बंगाल —

बंगाल के आवासियों में लगभग ६०% बिहार, उड़ीसा के हैं और शेष उत्तर प्रदेश, आसाम और मध्य प्रदेश के। आवास के मुख्य प्रवाह ये हैं :—

(१) कलकत्ता और उसके पड़ोसी औद्योगिक क्षेत्र में बिहार, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों से;

(२) बीरभूम, माल्दा, दिनाजपुर और उत्तरी बंगाल के जिलों में संथाल परगना से।

(३) दार्जिलिंग और जलपाईगुरी के चाय के बागानों में छोटा नागपुर, नैपाल से और

(४) त्रिपुरा में आसाम से।

बंगाल की भूमि की अपेक्षाकृत अधिक उर्वरता, उद्योगों का विकास और बंगालियों की शारीरिक श्रम से विमुखता आदि कारण इस आवास के लिए उत्तरदायी हैं। राज्य के आन्तरिक प्रवासन की विशेषता यह है कि बीच के कटिबन्ध से एक ओर जनसंख्या कलकत्ता के आस-पास के औद्योगिक क्षेत्रों में जाती है तथा दूसरी ओर उत्तरी बंगाल और आसाम की घाटी में।

(३) बंबई—

बम्बई में आवास की विशेषता यह है कि बड़े-बड़े औद्योगिक एवं व्यापारिक नगरों में—बम्बई, शोलापुर, नागपुर, बड़ौदा, सूरत, अहमदाबाद, आदि—में पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और मद्रास से आने वाले लोग बस गये हैं। यहाँ आवासियों के दो प्रवाह पहुँचते हैं:—

(१) एक तो उत्तरी पश्चिमी भारत से आता है जिसका प्रतिनिधित्व पंजाब, राजस्थान, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र करते हैं।

(२) दूसरा दक्षिण पूर्व अर्थात् मद्रास व आंध्र से आता है। उत्तर का प्रवाह बम्बई के निर्धनों की संख्या में वृद्धि करता है तथा दक्षिण का प्रवाह शोलापुर की मिलों में जाता है। बंगाल की अपेक्षा बम्बई औद्योगिक दृष्टिकोण से आगे बढ़ा हुआ है। उसकी भूमि की उर्वराशक्ति कहीं कम होने से जनसंख्या का घनत्व कम है और स्थानीय श्रम कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध है अतः श्रम की माँग का अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा अंश राज्य के बाहर से पूरा करना पड़ता है।

राज्य के अन्य भागों से—सतारा, रत्नागिरी, कोनकॉन आदि जिलों से औद्योगिक क्षेत्रों की जनसंख्या का प्रवाह आन्तरिक प्रवासन की विशेषता है।

भारत की जनसंख्या

भारतीय जनसंख्या का विकास—

सभ्यता के आरम्भ और १८७२ ई० के बीच के भारतीय इतिहास की अनेक शताब्दियों तक की जन गणना के बारे में बहुत कम ज्ञान है। १७ वीं शताब्दी के आरंभ में १० करोड़ की जनसंख्या का अनुमान लगाया गया था[1] किन्तु यह अनुमान डा० कॉर सॉन्डर्स के अनुसार केवल अनुमान मात्र है। किंतु श्री शिराज (F. Shirras) और प्रो० डेविस (Davis) का मत है कि इस समय भारत की जनसंख्या लगभग १३ करोड़ थी।[2] १९ वीं शताब्दी के मध्य में डा० मुकर्जी (Mukerjee) ने जनगणना अंक १५ करोड़ निश्चित किया है।[3] अतः इस सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जा सकता है वह केवल यह है कि यूरोप की भाँति भारत में अतीत काल में जनसंख्या आज की अपेक्षा कम ही थी किन्तु शनैः शनैः इसमें वृद्धि हुई है। १८७२ में पहली व्यवस्थित जनगणना की गई। तब से प्रत्येक दसवें वर्ष जनगणना होती चली आई है। नीचे की तालिका में डा० डेविस के अनुसार ऐतिहासिक युग में भारत की जनसंख्या के अंक इस प्रकार थे[4] :—

भारत की जनसंख्या का अनुमान ईसा के ३०० वर्ष पूर्व से १८७१ तक

वर्ष	(दस लाख में)	वार्षिक वृद्धि प्रतिशत में
ईसा के २०० पूर्व	१००—१४०	—
१५०० वर्ष	१००	—
१८००	१२०	०.०६
१८३४	१३०	०.२४
१८४५	१३०	—
१८५५	१७५	२.९७
१८६७	१९५	०.८६
१८७१	२५५	६.८४

विभिन्न जनगणनाओं के आधार पर भारत की जनसंख्या निम्नलिखित रही है :—

१. W. H. Moreland : India at the Death of Akbar, 1920, p. 71.
२. F. Shirras : Poverty and Kindred Economic Problems of India, 1931. p. 26 and K. Davis : The Population of India and Pakistan, 1950, p. 24-25.
३. R. K. Mukerjee : Food Planning for 400 Millions, 1938, p. 3.
४. K. Davis : *Ibid* ; p. 25.

भारत में जनसंख्या की वृद्धि १८९१ से १९५१ तक[1]

वर्ष	जनसंख्या (दस लाख में)	दशाब्दी में वृद्धि (दस लाख में)	वृद्धि का प्रतिशत
१८९१	२३५·५	—	—
१९०१	२३५·९	०·४	– ०·२
१९११	२४९·०	१३·५	+ ५·६
१९२१	२४८·१	०·९	– ०·६
१९३१	२७५·५	२७·४	+ १०·४
१९४१	३१२·८	३७·३	+ १२·७
१९५१	३५६·९	४४·१	+ १३·२

उपर्युक्त तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दो जनगणनाओं के बीच की जनसंख्या वृद्धि में समानता नहीं है। कुछ दशाब्दियों में वृद्धि बहुत ही कम रही है जबकि दूसरी दशाब्दियों में यह अत्यधिक रही है। १८७२ से १९२१ तक भारत की जनसंख्या यदि दशाब्दी में शीघ्र गति से बढ़ी है तो उसकी तत्कालीन दूसरी दशाब्दी में धीमी गति से बढ़ी है। यह भारतीय जनसंख्या की महत्वपूर्ण धारा है जो १८७२ से लेकर १९२१ तक रही और जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत की जनसंख्या की वृद्धि तीव्र न हो सकी। १७९१ और १९२१ के बीच में भारत की जनसंख्या में १·२ करोड़ की वृद्धि हुई अर्थात प्रति दशाब्दी पीछे १·७% की किन्तु अगले तीस वर्षों में (१९२१ से १९५१ तक) यह वृद्धि ११ करोड़ की हुई अर्थात् प्रति दशाब्दी में १२% की गति से।

१—अविभाजित भारत की जनसंख्या की वृद्धि इस प्रकार रही है :—

वर्ष	जनसंख्या (१० लाख में)	दशाब्दी में वृद्धि (१० लाख में)	% वृद्धि
१८९१	२७९	२९	—
१९०१	२८४	५	१·०
१९११	३०३	१९	६·१
१९२१	३०५	२	०·९
१९३१	३३८	३३	१०·६
१९४१	३८८	५०	१५·०
१९५१	—	—	—

जिस अवधि में भारत की वृद्धि दर अत्यन्त कम है उसमें अकाल, प्लेग, महामारी आदि घटनायें हुई हैं, जिन्होंने स्वाभाविक वृद्धि को कम कर दिया

१. Census of India, 1951, Vol. I. pt. 1. A. p. 112 and 126.

२. (Census of India, 1931, Vol I. Pt. I, p. 5 and census of India 1941, Vol. I. Pt. 1,)

है। उदाहरण के लिए सन् १८७६–७८ में दक्षिणी भारत में भयानक अकाल पड़ा था तथा १८९० और १९०० में प्लेग और अकाल ने वृद्धि रोकने में एक दूसरे का साथ दिया। अकाल आयोग (Famine Commission, 1901) के अनुसार १९०० और १८९६-९७ के अकाल के कारण कुल मिलाकर ५० लाख व्यक्ति मृत्यु के मुँह में पहुँचे। और १८७५ से लगाकर १९०० तक कुल मिला कर २६० लाख मौतें अकेले अकालों के कारण हुईं। अत. १८९१ और १९०१ के बीच जनसंख्या की वृद्धि बहुत ही कम हुई।

सन् १९०१ से १९११ तक के समय को कृषि की मध्यम सम्पन्नता का कहा जाता है। यदि प्लेग और मलेरिया महामारी के रूप में उत्तर प्रदेश और पंजाब में अत्यधिक मृत्यु के कारण न बनते तो जनसंख्या में काफी वृद्धि होती। इस अवधि में भारत की जनसंख्या ५·६% की दर से बढ़ी। १९११–२१ की अवधि में १९१८ में होने वाले भीषण अकाल और इनफ्लुएंजा की महामारी के महानाश के कारण ही १२० से १३० लाख तक व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए।[1] इन महामारियों ने प्रजनन-आयु की जनसंख्या को विशेष रूप से प्रभावित किया था अत: इस अवधि में जनसंख्या की वृद्धि बहुत ही कम रही।

सन् १९२१ से ३१ तक की अवधि जनसंख्या की वृद्धि के लिए विशेष रूप से अनुकूल थी। जनसंख्या की वृद्धि २७४ लाख अथवा १०·६% की गति से हुई। इस दशक में कोई बड़ा अकाल नहीं पड़ा, तथा हैजा, प्लेग, और काला अजर जैसी महामारियों को रोकने की विधियों में भी सुधार हुआ। बंजरभूमि को सिंचाई के द्वारा उत्पादक बनाकर अकालों को रोकने का प्रयत्न भी हुआ तथा जन-गणना करने के तरीकों में भी सुधार हुए। १८९१ से १९३१ तक भारत की जनसंख्या औसतन ११·१% की गति से बढ़ी और वास्तविक वृद्धि ३९६ लाख की हुई—जो तत्कालीन फ्रांस, इटली, पोलैंड और स्पेन की सम्मिलित जनसंख्या के बराबर थी।[2] इसी गति को तीव्र मान कर डा० हटन ने कहा था, "कई दृष्टियों से यह वृद्धि हर्ष का विषय न हो कर खतरे की सूचना है।"[3] किन्तु यदि विश्व के अन्य देशों में हुई वृद्धि से तुलना की जाये तो समस्या गंभीर नहीं दिखाई देती। १८८१ से १९३१ तक संयुक्त राज्य में जनसंख्या ८६%; जापान में ७४·१%; इंगलैंड में ५४·१%; इटली में ४६·८%; स्विटजरलैंड में ४३·५%; जर्मनी में ४२·९% और स्पेन में ३६·८% की दर से बढ़ी।

सन् १९३१ की तुलना में १९४१ में ३७३ लाख की वृद्धि हुई। इस दशक में यह वृद्धि १२·७% की दर से हुई। इस तीव्र वृद्धि का मुख्य कारण स्वास्थ्य

---

१. R. K. Mukerjee: Op. Cit., p. 27. किन्तु डा० डेविस के अनुसार इंफ्लुएंजा के कारण भारत में २०० लाख मौतें हुईं—p. 237.

२. Census of India, Vol. I, pt. I. p. 29.

३. "This increase is from most point of view a cause for alarm rather than satisfaction"—Census of India, 1931

सम्बन्धी अवस्थाओं में सुधार, अकालों में कमी तथा यातायात के साधनों में वृद्धि होना माना जाता है। इस गति से प्रो० बौरी (W. D. Borrie) के अनुसार भारत की जनसंख्या एक शताब्दी से भी कम में दुगनी हो जायेगी।[1] इतना सब होते हुए भी यदि विदेशों में जनसंख्या वृद्धि की जो गति रही है उसका भारत की जनसंख्या की वृद्धि-गति से तुलना करें तो इस परिणाम पर पहुँचते है कि भारत में जनसंख्या तीव्रता से नहीं बढ़ी है। १८७१ से १९४१ तक यह वृद्धि औसतन ०·६% वार्षिक रही है जब कि इसी समय संसार की औसतन वार्षिक प्रतिशत वृद्धि ०·६९ है।

१९५१ में भारत की जनसंख्या ३५६८ लाख थी। तः सन् १९४१ की तुलना में ४४१ लाख की वृद्धि हुई। जनगणना के अनुसार यह वृद्धि प्रतिवर्ष १.३% या दशाब्दी में १३.२% की है।[2] आधुनिक समय में भारतीय जनसंख्या की वृद्धि का मुख्य कारण आर्थिक विकास न होकर राजनैतिक सुरक्षा है।

भारत में मुख्य समस्या जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि में नहीं है किन्तु उसकी वास्तविक वृद्धि है जो प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। पिछले २० वर्षों में हमारी जनसंख्या में ८१० लाख की वृद्धि हो गई है। यह वृद्धि इङ्गलैण्ड की जनसंख्या की १½ गुनी; कनाडा की ५¾ गुनी और ब्राजील की १½ गुनी है। इससे ज्ञात होता है कि हमारी जनसंख्या देश के आर्थिक साधनों के लिए पर्याप्त से अधिक है।

नीचे की तालिका में प्रमुख राज्यों में जनसंख्या की वृद्धि बताई गई है :—

भारत के कुछ राज्यों में जनसंख्या की वृद्धि (दस लाख में)

राज्य	१९०१–१९१४ (दस लाख)	१९११–१९२१ (दस लाख)	१९२१–१९३१ (दस लाख)	१९३१–१९४१ (दस लाख)	१९४१–१९५१ (दस लाख)
उत्तर प्रदेश	४८·१	४६·६	४९·७	५६·५	६३·२
पश्चिमी बङ्गाल	१६·७	१६·४	१७·६	२१·८	२६·८
पूर्वी पंजाब	९·४	९·७	१०·७	१२·६	१३·६
विहार	२९·५	२९·१	३२·५	३६·५	४२·२
उड़ीसा	११·३	११·१	१२·४	१३·३	१४·६
आसाम	४·४	५·३२	६.३	७·५	९·०
वम्बई	२२·३	२२·३	२५·२	२९·३	३५·९
राजस्थान	१०·५	९·८	११·२	१३·३	१५·२
सम्पूर्ण भारत	२४९·०	२४८·१	२७५·५	३१२·८	३५६·९

१. W. D. Borrie : Population Trends and policies, p. 21.

२. १९५२ में वृद्धि की दर अन्य देशों में इस प्रकार थी: आस्ट्रेलिया २.५%; मिस्र १.९०%; मैक्सिको २.४८%; सं०रा० अमेरिका १.३६%; लंका १.५५%; चीन २.४१%; जापान ३.३६%; टर्की २.१२%;

(Demographic Year Book, 1953.)

१९४१–५१ के बीच भारत के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या में जो वृद्धि हुई उसको निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है :—[1]

(१) निम्न दर से बढ़ने वाले क्षेत्र (वृद्धि की दर १०% से कम)—

पेप्सू ३%

हिमाचल प्रदेश ४% उड़ीसा ६% मध्य प्रदेश ८%

विन्ध्य प्रदेश ६%

(२) ऊँची दर से बढ़ने वाले क्षेत्र (वृद्धि की दर ११ से २०% तक)

उत्तर प्रदेश २०%

पश्चिमी बंगाल १४% मनीपुर १३%

आसाम १९% राजस्थान १५%

अजमेर १९%

(३) अति तीव्र दर से बढ़ने वाले क्षेत्र (वृद्धि की दर २१ या उससे अधिक %)—

त्रिपुरा ५०%

बम्बई २३% मैसूर २४%

कुर्ग ३०% ट्रावनकोर-कोचीन २४%

दिल्ली ९०%

१९५१ में भारत को जनगणना की सुविधा के लिए छः भागों में बांटा गया था। उनमें निम्न प्रकार से जनसंख्या की वृद्धि हुई है।—[2]

भारत के विभिन्न भागों में जनसंख्या की वृद्धि

क्षेत्र (Zone)	जनसंख्या (लाख में)			लाख में वृद्धि (+) या ह्रास (−)		प्रति दशक में वृद्धि % में	
	१८९१	१९२१	१९५१	१८९१–१९२०	१९२१–१९५१	१८९१ १९२०	१९२१–१९५१
उत्तरी क्षेत्र	४७९	४६७	६३२	−१२	+१६५	−०.८	+१०.०
पूर्वी क्षेत्र	५६३	६२८	९०१	+६५	+२७३	+३.७	+११.९
दक्षिणी क्षेत्र	४२६	५१७	७५६	+९१	+२३९	+६.५	+१२.५
पश्चिमी क्षेत्र	२६३	२५४	४०३	− ९	+१५३	−१.४	+१५.४
मध्य क्षेत्र	३५९	३७३	५२३	+१४	+१५०	+१.२	+११.२
उ. प. क्षेत्र	२६६	२४२	३५०	−२७	+१०८	−३.६	+१२.२
संपूर्ण भारत	२,३५९	२,४८१	३,५६९	+१२२	+१,०८८	+१.७	+१२.०

(२) जनसंख्या की वृद्धि के कारण :

जनसंख्या की वृद्धि दो मुख्य बातों पर निर्भर करती है :—

(१) जन्म दर तथा मृत्यु दर का अंतर

(२) आवास तथा प्रवास की संख्या का अंतर

चूंकि भारत में आवास तथा प्रवास का महत्व बहुत ही नगण्य है अस्तु, मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत की जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि

१. Mamoria : India's Population Problem, p. 26-27.

२. Census of India, 1951, Vol 1, Pt. 1. p. 124, 126.

जन्म और मृत्यु दर द्वारा ही निश्चित होती है। दुर्भाग्यवश भारत विश्व में सबसे अधिक वार्षिक जन्म और मृत्यु दर वाले देशों में से है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा[१] :—

देश	जन्म दर प्रति १,००० पीछे १८८१–९१	जन्म दर प्रति १,००० पीछे १९४६–५०	मृत्यु दर प्रति १,००० पीछे १८८१–९१	मृत्यु दर प्रति १,००० पीछे १९४६–५०
इंगलैंड	३२·५	१७·९	१९·२	११·६
स्वीडेन	३९·१	१७·७	१६·९	१०·१
फ्रांस	२३·९	२०·९	२२·२	१२·९
सं. राज्य अमेरिका	१७·२ (१९३१–३५)	२४·३	१०·९ (१९३१–३५)	९·८
जापान	२७·२	३२·२	१९·९	१२·२
भारत	३५·९	२६·०	२७·४	१७·२

१९५१ की जनगणना के अनुसार जन्म और मृत्युदर की वार्षिक दरें ४० और २७ प्रति १,००० थीं। प्रगतिशील देशों में जन्म और मृत्यु दर की घटने की प्रकृति बराबर बनी रही है जैसा कि उपर्युक्त अंकों से ज्ञात होगा किन्तु भारत में ये दरें अब भी बहुत ऊँची हैं। इनमें अन्य देशों की तरह कमी नहीं हुई है। इसके विपरीत कभी-कभी दोनों में ही वास्तविक वृद्धि हुई है जैसा कि निम्न तालिका से ज्ञात होता है :—[२]

वर्ष	जन्मदर प्रतिहजार	मृत्युदर प्रति हजार
१९३१	३५	२५
१९३९	३४	२४
१९४७	२६·६	१९·७
१९५१	२४·९	१४·४
१९५४	२७·६	१३·३

भारत में जन्मदर अधिक होने के निम्न कारण हैं :—

(१) भारत में धार्मिक तथा सामाजिक रीतियाँ विवाह करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती हैं। "भारत में प्रत्येक हिन्दू को विवाह और सन्तानोत्पत्ति करना चाहिए ताकि पुत्र उसकी अन्त्येष्टिक्रिया कर सके और उसकी आत्मा पृथ्वी के शून्य भागों में अशान्त होकर न भटके।"[३] सामाजिक निन्दा से बचने के लिए लड़कियों का विवाह रजस्वला होने से पहले ही कर दिया जाता है, क्योंकि यदि हिन्दू कुमारी रजस्वला होने पर भी अविवाहित रहती है तो

१. League of Nations Statistical Year Book, 1941-42 and Demographic Year Book, 1952.

२. S. Chandrasekhar : Population and Plannet Parenthood in India, 1955, p. 92-93.

३. P. K. Wattal : Populatiou Problem in India, p. 23.

उसकी यह दशा परिवार को सामाजिक निन्दा का पात्र बना देती है।[१] संयुक्त परिवार की प्रथा भी इसे और अधिक प्रोत्साहित करती है। नव विवाहित दम्पति के लिए परिवार के साधन अनिश्चित समय तक उपलब्ध होने के कारण भारत में उन विचारों का कोई प्रभाव नहीं है जिनके कारण यूरोप में विवाह स्थगित करने पड़ते हैं। सन् १९३१ में कुल जनसंख्या में से ४७% पुरुष और ४९% स्त्रियाँ विवाहित थीं और शेष अविवाहित तथा विधुर थे किन्तु १९५१ में ५१% पुरुष और ४९% स्त्रियाँ विवाहित थे। अविवाहित स्त्री और पुरुषों की संख्या मिला देने पर कुल जनसंख्या का ४४·१% भाग अविवाहित है।[२] अन्य देशों की तुलना में अविवाहित स्त्री-पुरुषों का अनुपात भारत में सबसे कम है।

बाल विवाह की प्रथा भी भारत में अभी तक प्रचलित है। ५०% लड़कियों का विवाह उनके १५ वर्ष की होने के पूर्व ही हो जाता है इससे संतानोत्पत्ति भी शीघ्र होने लगती है। १५ वर्ष से कम आयुवाली विवाहित लड़कियों का अनुपात सन् १९४१ में ९·६ प्रतिशत था जब कि १९५१ में यह ७·६% था किन्तु संख्यात्मक दृष्टि से ९० लाख युवक-युवतियाँ ऐसे थे जिनकी शादी १४ वर्ष की उम्र से पहले ही हो चुकी थी। १९५१ की जनगणना के अनुसार केवल २०% पुरुष और ६% स्त्रियाँ अविवाहित थीं जिनकी उम्र १५ या उससे अधिक थी। जब कि अन्य देशों के लिए ये आंकड़े क्रमशः इस प्रकार थे :[३]

इङ्गलैंड	२७% और २६%	पश्चिमी जर्मनी	२९% और २९%
सं. रा. अमेरिका	३३% और २६%		
फ्रांस	३१% और २५%		

किन्तु अब बाल विवाह में कमी हो रही है। जब विवाह छोटी उम्र में कर दिया जाता है तो उसका अवश्यम्भावी परिणाम अधिक सन्तानोत्पत्ति होता है। १९४१ की जनगणना के अनुसार यदि विवाह के समय पत्नी की उम्र १५-२० वर्ष हो तो उस परिवार की सन्तान संख्या ७ होगी और २०-२५ की उम्र में ५·४ तथा २५-३० की उम्र में ४·१। यह स्थिति इस बात की द्योतक है कि ज्यों-ज्यों स्त्री की उम्र अधिक होती जाती है उसकी सन्तानोत्पत्ति की शक्ति में ह्रास होता जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यदि सन्तानोत्पत्ति का काल ३० वर्ष का माना जाय तो यह निष्कर्ष निकलता है कि इस अवधि के पूर्वार्द्ध में सन्तानोत्पत्ति शक्ति तीव्र होती है और उत्तरार्द्ध में कम। वस्तुतः जहाँ भारतीय स्त्री इस अवधि में औसतन ६ से ७ बच्चों को जन्म देती हैं, वहाँ इङ्गलैंड में ३·४; जर्मनी में ४·३; इटली में ४·९ और पौलैंड में ६ बच्चे पैदा होते हैं।

(३) देश की आर्थिक अवनत दशा तथा दरिद्रता ने भी जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन दिया है। श्री एडम स्मिथ के अनुसार, "दीनता व निर्धनता

१. H. Risely : Peoples of India, 1901, p. 154.
२. Census of India, 1951, Vol I. Pt. 1. A.
३. Census of India, 1951 Paper No. 3, p. 73.

सन्तानोत्पत्ति के वायुमंडल के अनुकूल होती हैं।" यह कथन भारत के लिए पूर्ण रूप से लागू होता है। यह एक निश्चित तथ्य है कि जीवन का अन्य कोई अवलम्बन न होने पर यह प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से वृद्धि पर होती है। जहाँ उज्ज्वल भविष्य और वर्तमान दशा में सुधार की संभावना नहीं होती, वहाँ उत्पन्न होने वाले बच्चों की अवस्था भी उतनी ही दयनीय होती है जितनी माता-पिता की। निर्धनता इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है और यह वृद्धि निर्धनता को प्रोत्साहित करती है। अस्तु, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत में निम्नवर्ग के लोगों में अधिक सन्तानें पाई जाती हैं और ज्यों-ज्यों सामाजिक स्तर में परिवर्तन होता जाता है सन्तानों की संख्या में भी कमी होती जाती है। उदाहरण के लिए, १९३१ की जनगणना के अनुसार भारत में कायस्थ परिवारों पर सन्तान की संख्या ६ थी, ब्राह्मणों में ५; अनुसूचित जातियों में ५; ईसाइयों में ५; जैनियों में ४·२ पारसियों में ४·२; हिन्दुओं में ४·१ और मुसलमानों में ४·३ थी।[1] डा० पर्ल (Pearl) के अनुसार, "जो उच्च वर्ग व श्रेणियाँ हैं वे शारीरिक, मानसिक और नैतिकता की दृष्टि से ही ऊँची नहीं वरन् वे सन्तानोत्पत्ति की शक्ति (genetic power) की दृष्टि से भी उच्च होती हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश भारत में अधिकांश जनसंख्या मध्यम वर्ग की है जो अपनी सन्तानोत्पत्ति शक्ति के लिए दोषी हैं। अस्तु भारत में अवांछनीय सन्तानों की संख्या इसलिए अधिक नहीं है कि हमें उनकी आवश्यकता है वरन् इसलिए कि हमें उनके जन्म का कोई विचार नहीं।"

(४) देश में शिक्षा का स्तर भी बहुत नीचा है केवल १७% व्यक्ति पढ़े-लिखे हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में शिक्षा का घोर अभाव है। २५% पुरुष और केवल ८% स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हैं। शिक्षा के अभाव में न तो वे ऊँचे जीवन-स्तर के महत्व को ही समझते हैं और न परिवार के अत्यधिक विस्तार को। अनपढ़ लोगों का विश्वास है कि बच्चे भगवान की देन हैं, इन पर किसी का बस नहीं। अतः एक संतान के जन्म के अर्थ उनके लिए एक मुख को भरण-पोषण देना किन्तु दो हाथों को काम में लगाने के लिए पाना है।

(५) देश में अभी भी निम्न वर्ग की बात छोड़ भी दें तो मध्यम वर्ग के लोगों में भी जनसंख्या नियोजन के उपायों तथा तरीकों का पूर्ण ज्ञान नहीं है। सामाजिक और धार्मिक कारणों से अथवा व्यक्तिगत कारणों से चिकित्सकों से इस सम्बन्ध में राय लेना भी उचित नहीं समझा जाता।

(६) भारत में जन्म दर अधिक होने के साथ-साथ मृत्यु दर भी बहुत अधिक है इससे प्राकृतिक वृद्धि भी अन्य देशों की अपेक्षा अधिक होती है। भारत में प्राकृतिक वृद्धि की यह दर १८८१-९१ में ८ प्रति हजार थी किन्तु १९२१-३१ में यह दर बढ़कर १०·१ होगई; १९३१-४१ में १४·० और १९४१-५१ में १२.५ प्रति हजार। अस्तु, ज्ञात होता है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि बढ़ती जा रही है। जनसंख्या के सिद्धान्त के अनुसार जब कभी न केवल वनस्पतिक वरन पशु-जीवन में प्रतिकूल वातावरण के कारण पौधों या

---

१. Census of India, 1931, p 207-8

पशुओं की संख्या नष्ट होती जाती हैं तो प्रकृति उनकी जाति का संरक्षण और उनकी निरन्तर वंश-वृद्धि के हेतु उनमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति को बढ़ा देती है।" इस सिद्धान्त के अनुसार जब मानव-जाति में भी अधिक बच्चों की मृत्यु होने लगती है तो माता-पिता भविष्य की सुरक्षा के लिए अधिक सन्तानोत्पत्ति करते जाते हैं, फलतः जनसंख्या में वृद्धि होने लगती है।

इसी कारण दूसरी विचारधारा के अनुसार वर्तमान अवस्था को देखते हुए जनसंख्या का आधिक्य है। इस विचारधारा के समर्थक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा० मुकर्जी, डाक्टर बलजीतसिंह, डा० चन्द्रशेखर, डा० ज्ञानचन्द, डा० डेविस, डा० एन्सटी, डा० कॉर सॉन्डर्स, श्री माल्थस, श्री दत्ता, श्री वाटल, श्री नॉल्स, श्री फेअरफील्ड आदि हैं। डा० राधाकमल मुकर्जी ने १९३८ में अनुमान लगाया था कि सामान्य फसलों वाले वर्ष में लगभग १२% जनसंख्या के लिए खाद्य का अभाव रहता है।[१] सन् १९३८ में श्री वाट्टल ने कहा कि सन् १९१३ से १९३५-३६ के बीच जनसंख्या १% की दर से बढ़ी जब कि खाद्य सामग्री की वृद्धि प्रति वर्ष ०·६५ प्रतिशत थी। अस्तु, कृषि उत्पादन में जनसंख्या के अनुकूल वृद्धि नहीं हुई। डा० ज्ञानचन्द ने भी यही मत प्रस्तुत किया है, "१९०० और १९३४ के बीच जबकि कृषि-क्षेत्र में ११ प्रतिशत की वृद्धि हुई तो जनसंख्या २१ % बढ़ी।[३] योजना आयोग का अनुमान है कि १९४७-५२ तक प्रतिवर्ष देश में ३२·७ लाख खाद्यान्न आयात होता था। सन् १९५१ के आस पास देश में खाद्यान्न उत्पादन ५५६ लाख टन तथा खपत ५९० लाख टन। इस प्रकार १९५१ में भी देश में ३४ लाख टन अनाज की कमी थी जो देश के २१ दिन के खाद्यान्न की आवश्यकता के बराबर है।[४] इसी आयोग के अनुसार यदि प्रत्येक वयस्क को १३·७१ औंस की दर से खाद्यान्न दिया जाये तो १९५६ में ५ करोड़ १० लाख ८२ हजार टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी (अर्थात् १९५१ से ९९ लाख टन अधिक) और इस बीच जनसंख्या ३५·३ करोड़ से बढ़कर ३७·८ लाख हो जाने का अनुमान लगाया गया था।

मेरी स्वयं की शोध के अनुसार भी यह तथ्य निकला है कि भारत में (१९४७-४८ के आधार पर) १९४७-४८ से १९५४-५५ तक की अवधि में जहाँ खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में २१·४% की वृद्धि हुई है और खाद्यान्नों के उत्पादन में २६·५% की वहाँ इसी अवधि में जनसंख्या २०·९% की गति से बढ़ी अस्तु, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भारत में जनसंख्या का आधिक्य है।"[५]

---

१. R. K. Mukerjee : Food Planning for 400 Millions, p. 25-26.
२. P. K Wattal : Population Problem of India, Chapter VIII.
३. Gyan Chand ; India's Teeming Millions.
४. Census of India, 1951, Pt. I A. p. 167-172.
५. C. B. Mamoria : India's Population Problem, p. 297.

नीचे की तालिका से यह बात स्पष्ट होगी :—

खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल और जनसंख्या का सूचांक

(आधार १९४७-४८ = १००

वर्ष	क्षेत्रफल	खद्यान्न	जनसंख्या
१९४७-४८	१००	१००	१००
१९४८-४९	१०८·५	९९·०४	११०·९
१९४९-५०	११३·५	१०५·२	११५·३
१९५०-५१	११२·२	९५·४	१२१·९
१९५१-५२	११२·१	९८·०	१२३·६
१९५२-५३	११८·०	११३·३	१२७·७
१९५३-५४	१२२·२	१२८·३	१२९·४
१९५४-५५	१२१·४	१२६·५	१३०·४

(२) प्रति व्यक्ति पीछे बोई गई भूमि का निम्न क्षेत्रफल—

दूसरा प्रमाण जनसंख्या के आधिक्य का यह है कि ज्यों-ज्यों देश में जनसंख्या बढ़ती जा रही है त्यों-त्यों प्रति व्यक्ति जोती जाने वाली भूमि का औसत आकार भी कम होता जा रहा है, जैसाकि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

अवधि	कुल बोया गया क्षेत्रफल (१० लाख एकड़ में)	प्रति व्यक्ति बोया जाने वाला क्षेत्रफल (एकड़ में)
१९११	२०२·०	०·८८
१९२१	२०७·२	०·८९
१९३१	२११·४	०·८२
१९४१	२१४·०	०·७२
१९५१	२६६·४	०·७५

इस सम्बन्ध में अकाल जाँच समिति (Famine Enquiry Commission) का कथन है कि १९०८–९ से लेकर १९१७–१८ तक प्रति व्यक्ति के लिए औसतन ०·८९ एकड़ में खाद्यान्न बोया जाता था, जबकि १९२१–२२ में यह औसत घट कर ०·८६ एकड़; १९२८–२९ से १९३१–३२ के बीच ०·७९ एकड़ और १९४१ में ०·६७ एकड़ हो गया[2] यद्यपि १९५१ में इसमें कुछ वृद्धि हुई अर्थात् कुल औसत ०·६९ एकड़।[3]

१. S. Thirumalai: Post-War Agricultural Problems and Policies in India, 1954, p. 85. and Draft Outline of the first five Year Plan, 1951, p. 14.

२. Famine Enquiry Committee final Report, 1945, p. 78.

३. Agriculture Statistics of Reorganised States, 1956, p. 1.

डा० रसल (J. Russel) ने भी अपने अध्ययन के आधार पर यही मत दिया है कि यद्यपि जनसंख्या की वृद्धि के अनुरूप ही कपास, जूट तथा गन्ने के क्षेत्रों में वृद्धि हुई है किन्तु खाद्यान्नों में यह वृद्धि जनसख्या की वृद्धि से कम ही है। १९०३–४ से १९०७–८ के बीच प्रति व्यक्ति पीछे खाद्यान्न का क्षेत्रफल ०·८२९ एकड़ से घट कर १९२८–२९ से १९३२–३३ में केवल ०·७८५ एकड़ ही रह गया।[१]

अस्तु खाद्यान्न की कमी होने से निरन्तर आयात करना पड़ा है जैसा कि निम्नतालिका से ज्ञात होगा:—[२]

खाद्यान्न का आयात

वर्ष	मात्रा (लाख टनों में)	मूल्य (करोड़ रुपयों में)
१९४४–४५	६·४९	१३·०
१९४६–४७	२२·५०	७६·११
१९४८–४९	२८·४०	१२९·७२
१९५०–५१	२१·३०	७९·८
१९५१–५२	४७·९	२३०·३
१९५२–५३	३९·५	१५६·७३
१९५३–५४	१४·३	७२·४
१९५४–५५	१२·२	६८·३७
१९५५–५६	८·०	१७·६८

(३) मनुष्य-भूमि का अनुपात (Man-land Ratio) :—

भारत में मनुष्य-भूमि का अनुमान देखने से भी यह बात स्पष्टतः ज्ञात होती है कि यहां प्रति १०० एकड़ कृषि भूमि पर अधिक जनसंख्या को भरण-पोषण देना पड़ता है। भारत में यह अनुपात प्रति १०० एकड़ कृषि भूमि पीछे १४८ मनुष्यों का है, जबकि पौलैण्ड में केवल ३१; चैकोस्लोवाकिया में २४; रूमानिया में २०; यूगोस्लावाकिया में ४२; बलगेरिया में ३३; यूनान में ४८ और इंगलैंड में ६ हैं।[3] अस्तु भारत में भूमि पर जनसंख्या का भार असहनीय है। नीचे की तालिका में विश्व के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति पीछे भूमि का अनुपात बताया गया है :—[४]

---

१. J. Russel: Report on the Work of Imperial Council of Agricultural Research, p. 7.

२. सी. पी. श्रीवास्तव और सी. बी. मामोरिया: भारत में व्यापार, १९५७, पृ. १४०.

३. J. E. Russel: Agrarian Problems from Baltic to Aegean.

४. B. R. Sen: Agricultural Situation in India, Sept, 1954 p. 523.

देश	कुल क्षेत्रफल	कृषि योग्य भूमि (बागात और पड़त भूमि सहित)	चरागाह	वन-प्रदेश	अन्य भूमि
		(प्रति व्यक्ति पीछे भूमि सेंट में)			
भारत	२२५	६७	—	२६	१०२
चीन	५०३	४८	१०३	४५	३०७
हिंद चीन	६४०	३७	—	४०६	१६७
जापान	१०६	१८	२	७४	१५
फ्रांस	३२२	१२३	७२	६५	६२
इटली	१५६	८२	२७	३२	१५
इंगलैंड	११६	३७	६०	७	१५
रूस	३,०४६	२८७	१६१	१,१७१	१,४२७

(१ सेंट=·०१ एकड़)

डा० राममूर्ति के पर्यवेक्षण के अनुसार १९२१-५१ के बीच ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ़ती गई है त्यों-त्यों प्रति व्यक्ति पीछे न केवल कुल भूमि का वरन् बोई गई भूमि का भाग भी कम होता गया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने निम्न तालिका प्रस्तुत की है :—[1]

क्षेत्र	जनसंख्या की वृद्धि % में १९२१-५१	प्रति व्यक्ति पीछे भूमि का भाग (एकड़ में)	प्रति व्यक्ति पीछे खेती योग्य भूमि (एकड़ में)	प्रति व्यक्ति पीछे बोई गई भूमि (एकड़ में)	खेतीहर जनसंख्या का प्रतिशत
उत्तरी भारत	३५·३	१·१	०·९	०·६	७४·२
पूर्वी भारत	४५·३	१·९	१·२	०·६	७५·६
दक्षिणी भारत	४६·२	१·४	१·०	०·५	६४·३
पश्चिमी भारत	६०·१	२·३	१·६	१·२	५९·७
मध्य भारत	४०·२	३·५	२·५	१·३	७३·२
उ० प० भारत	४४·६	३·५	१·८	०·९	६६·०
सम्पूर्ण भारत	४३·८	२·१	१·४	०·७	७०·०

डा० ईस्ट (East) ने अनुमान लगाया है कि एक व्यक्ति के लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त करने के लिए लगभग २½ एकड़ भूमि की आवश्यकता पड़ती है।[2] यदि हम भारत की निर्धनता, गर्म जलवायु का विचार करें तो यह

१. B. Ramamurthi : Agricultural Labour, 1954, p. 2·3.
२. East : Food and Population, in the Proceeding of World Population Conference, 1927, p. 89.

कह सकते हैं कि यहाँ कम-से-कम फी व्यक्ति एक एकड़ भूमि की आवश्यकता पड़ेगी, किन्तु यहाँ प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात इस प्रकार है :—[1]

राज्य	प्रति व्यक्ति पीछे भूमि का औसत (एकड़ में)	कृषि जनसंख्या के प्रति कृषक पीछे बोया गया क्षेत्रफल
आंध्र	२'१६	१'२०
आसाम	६'०२	०'७७
बिहार	१'१०	०'६२
बम्बई	२'५४	१'६५
केरल	०'६६	० ५६
मध्य प्रदेश	४'१६	१'७४
मद्रास	१'०७	०'७१
उड़ीसा	२'६३	१'२१
पंजाब	१'८८	१'५०
राजस्थान	५'३२	२'०७
उत्तर प्रदेश	१'१५	०'८३
पश्चिमी बंगाल	०.८४	०'८०
सम्पूर्ण भारत	२'२५	१'१८

इस तालिका से यही निष्कर्ष निकलता है कि अधिकाँश राज्यों में प्रति व्यक्ति पीछे एक एकड़ से भी कम भूमि ही आती है। अतएव, यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि भारत में जनसंख्या का आधिक्य है।

(४) बेकारी की वृद्धि— भारत में बेकारी की वृद्धि होती जा रही है जो इस बात की सूचक है कि देश में जनसंख्या की तुलना में कार्य का अभाव है। १९०१ में भारत की कुल जनसंख्या का (जो स्वास्थ्य एवं शरीर से पुष्ट थी तथा जिनकी उम्र १० से ६० साल तक थी) ७'१% बेकार था, १९११ में यह प्रतिशत ७'६%; १९२१ में १०'३% और १९३१ में १४'२% हो गया। १९५१ में यह प्रतिशत ११ था अर्थात् लगभग ३९० लाख व्यक्ति बेकार थे। जबकि १९५४ में अन्य देशों की यह दशा इस प्रकार थी : संयुक्तराज्य अमरीका ५%; डेनमार्क ८%; आयरलैंड ८'५%; इटली १०%; कनाडा ७%। एक अन्य अनुमान के अनुसार भारत में बेकारों की वर्तमान संख्या ५०० से ६०० लाख तक कूती गई है। इसका प्रभाव भारत की सम्पत्ति उत्पादन शक्ति पर पड़ा है, जिसके फलस्वरूप देश में दरिद्रता का साम्राज्य फैला है।

(५) निम्न रहन-सहन का स्तर (Low Standard of Living)— लोगों का रहन-सहन का स्तर निरंतर कम होता जा रहा है। राष्ट्रीय आय या औसतन प्रति व्यक्ति की आय से देश की दशा का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि चलनाधिक्य (Inflation) के कारण आय में वृद्धि

१. Agricultural Statistics of Reorganised States, p. 1.

हुई है। देश की औसत आय १९५२–५३ के मूल्यों के आधार पर १९५५–५६ में २८१ रु० कूंती गई है। किन्तु अमरीका, इंगलैंड, कनाडा, जर्मनी, आस्ट्रेलिया और जापान की औसत व्यक्ति आय जो क्रमश ९,४१० ; ४,३५१ ; ६,५१६ ; २,३९० , ४,६९४ ; और ९७८ है, की तुलना में भारत की आय बहुत ही कम है।[1] अस्तु, जीवन-स्तर ही यह बता सकता है कि लोगों की आर्थिक स्थिति सुधर रही है या नहीं। लोगों के भोजन उपभोग, वस्त्र उपभोग आदि के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ का जीवन-स्तर बहुत ही नीचा है। साधारणत: २०% जनसंख्या को मामूली अच्छा भोजन मिलता है, ४०% किसी भाँति पेट भर लेते हैं और बाकी ४०% भुखमरी की सीमा रेखा पर रहते हैं। प्रति व्यक्ति पीछे कपड़े का उपभोग भी १३–१५ गज है जब कि विदेशों में इंगलैंड में ६० गज जापान में ४० गज है।

(६) रोगों की भीषणता और चिकित्सा सुविधाओं का अभाव–भारत में अनेक रोगों के कारण प्रतिवर्ष न केवल बच्चों, और प्रसूतिगृह में युवतियों की ही अकाल मृत्यु हो जाती है वरन् वयस्कों की भी एक बड़ी संख्या बीमारियों के कारण रोगग्रस्त रहती है। अनुमान लगाया गया है कि प्रसूति काल में प्रति १,००० बाल माताओं में से २५ की मृत्यु हो जाती है। "अनेक बाल वधुएँ सुहाग-सेज से ही मृत्यु शय्या की ओर प्रस्थान कर देती हैं। स्नायविक अशक्तता, क्षय तथा गर्भाशय की बीमारियाँ उनका सत्यानाश कर देती हैं।" इसके अतिरिक्त शीघ्र गृहस्थ भार के साथ ही उन्हें बार-बार बच्चों को जन्म देने का भी कष्ट उठाना पड़ता है अस्तु उनकी मृत्यु दर अधिक होती है।[2] माताओं का अपुष्टिकर भोजन, स्त्रियों के स्वास्थ्य के प्रति जानबूझकर लापरवाही तथा प्रजनन के समय उचित सुविधाओं का अभाव होना इस ऊँची मृत्यु दर के मुख्य कारण हैं।

यही नहीं भारत में शिशु मृत्यु दर भी अधिक ऊँची है। अनुमानित भारत की कुल मृत्यु की लगभग ½ मृत्यु शिशुओं में ही होती है। देश में जितने बच्चे पैदा होते हैं उनमें से २०–२५ प्रतिशत एक वर्ष के होते-होते मर जाते हैं और पाँच वर्ष होते-होते लगभग ४५% मर जाते हैं और २० वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते केवल ५०% ही जीवित रह पाते हैं।

बाल-माताओं तथा शिशु मृत्यु के अतिरिक्त प्रति वर्ष भारत में प्लेग, हैजा चेचक, मलेरिया, पेचिश आदि अनेक बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं इनके कारण अधिक मृत्युएँ होती हैं। १९५१ में ५०% मृत्यु बुखार से; १·१% हैजे से; ४·०% चेचक; ४·४% पेचिश ; ८·२% श्वांस सम्बन्धी रोगों और ३१·६% अन्य रोगों से हुई। वास्तव में भारत बीमारियों का एक विस्तृत स्वर्ग है जहाँ उपर्युक्त बीमारियों का साम्राज्य छाया रहता है।" इसका मुख्य कारण देश में चिकित्सा सुविधाओं का पूर्ण अभाव है :—हमारे यहां इतने बड़े देश के होते हुए भी केवल ७०,००० डाक्टर, २२,००० नर्सें, २६,००० दाइयाँ; ८०० स्वास्थ्य

---

१. Commerce Annual, 1956, p. A. 108 B.

२. Age of Consent Committee Report, p. 152.

निरीक्षक; ६,००० नर्स-दाइयाँ; ४,०००, स्वच्छता-निरीक्षक; १०,००० चिकित्सा-संस्थायें और ११३,००० बिस्तर हैं जो संपूर्ण देश के लिए अपर्याप्त हैं।

विश्व जनसंख्या की समस्या का हल

(Solution of Population Problem)

अनुकूलतम या आदर्श जनसंख्या के सिद्धान्त का जन्म श्री कैनन द्वारा किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी देश में किसी समय पर एक ऐसी जनसंख्या होती है जो उस देश के प्राकृतिक प्रसाधनों के पर्याप्त शोषण के लिए अनुकूल या संगत होती है। इतनी जनसंख्या को ही आदर्श या अनुकूलतम जनसंख्या (Optimum Population) कहते हैं। आदर्श जनसंख्या का सिद्धान्त स्थिर नहीं वरन् गतिशील है अर्थात् किसी देश में सम्पन्नता के घटने अथवा बढ़ने के साथ-साथ जनसंख्या भी उसी अनुपात में घटती अथवा बढ़ती है जिससे आदर्श स्तर संतुलित रहे। अतएव किसी देश के लिए सदैव के लिए आदर्श जनसंख्या की मात्रा निश्चित नहीं की जा सकती। यदि किसी देश की जनसंख्या इस अनुकूलतम विंदु से कम होती है तो वहाँ के प्राकृतिक प्रसाधनों का अपर्याप्त शोषण होने से प्रति व्यक्ति आय कम हो जायगी। ऐसी दशा अधिकतर नये देशों की होती है। जनसंख्या की इस दशा को न्यूंन जनसंख्या (Under Population) कहते हैं। इसके विपरीत यदि किसी देश की जनसंख्या इस आदर्श विंदु से अधिक है तो भी प्राकृतिक प्रसाधनों का पर्याप्त शोषण न हो सकेगा फलतः प्रति व्यक्ति की आय भी कम हो जायगी। देश में जनसंख्या की इस दशा को जनाधिक्य (Over-Population) कहते हैं। जब ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती है तो उस देश के निवासियों का जीवन-स्तर गिर जाता है, बेकारी, भुखमरी बढ़ जाती है और युद्ध, अकाल तथा रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है।

डा० डाल्टन ने आदर्श जनसंख्या के सिद्धान्त को निम्न रूप में व्यक्त किया है[1] :—

---

१. Dr. Dalton has formulated an equation to measure the optimum population—"

"$M = A - O$

A is the actual number, O is the optimum number, and M is the degree of maladjustment.

If M is positive, there is over population.
If M is negative, there is under-population.
If M is equal to Zero, then the Population is optimum".

—H. Dalton : 'Optimum Theory of Population in Economics (March 1928), Vol III. p. 32.

$$म = \frac{अ — ओ}{ओ}$$

इसमें अ = वास्तविक जनसंख्या
ओ = आदर्श जनसंख्या
म = मात्रा की कुव्यवस्था
यदि 'म' धनात्मक (+) है तो यह अधिक जनसंख्या होगी;
यदि 'म' ऋणात्मक (—) है तो यह न्यून जनसंख्या होगी; और
यदि 'म' शून्य (०) है तो यह आदर्श जनसंख्या होगी।

जनसंख्या की समस्या का हल दो प्रकार से किया जा सकता है :—
(१) जनसंख्या निरोध (Population Control) की नीति अपनाकर।
(२) जनसंख्या की मानसिक और शारीरिक उन्नति कर।

जनसंख्या निरोध से हमारा तात्पर्य यह है कि जनसंख्या को केवल अनुकूलतम सीमा तक ही बढ़ने दिया जाय जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम वास्तविक आय प्राप्त हो सके। ऐसा करने के तीन उपाय हैं :—

(क) सन्तति निग्रह (Birth Control)—वर्तमान युग में न केवल भारत में ही वरन् विश्व के अधिकांश पुराने देशों में प्रजनन दर अधिक होने से जनसंख्या में बड़ी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है; इसका आवश्यक परिणाम यह हुआ है कि लाखों अतिरिक्त व्यक्ति थकी हुई पृथ्वी पर बोझ बन जाते हैं जो उनका पालन नहीं कर सकती।"[1] अस्तु, यदि इस राष्ट्रीय अपव्यय को बचाना है तो आवश्यक है कि विज्ञान द्वारा प्रस्तुत आधुनिक गर्भ-निरोधक (Contraceptives), दवाइयों का अथवा यांत्रिक उपकरणों का सहारा लिया जाय। यद्यपि वैवाहिक जीवन में नैतिक संयम (Moral Restraint) का अधिक महत्व है किन्तु दीर्घकाल तक आत्मनिरोध का प्रचार अति जनसंख्या के दोष निवारण के लिए वैसा ही है जैसा कि भूख को मिटाने के लिए पेट को काटकर अलग कर देना। इन दोनों को ग्रहण करने के लगभग बराबर अवसर हैं।"[2] इसके अतिरिक्त दीर्घकाल तक लगातार आत्म-निरोध साधारणतया रोग से भी बुरी औषधि है, क्योंकि विवाहित लोगों के मस्तिष्क और शरीर पर इसकी हानिप्रद क्रियायें होती हैं।"[3] अस्तु, यह स्पष्ट है कि राष्ट्र और परिवार के जीवन में सन्तति-निग्रह की वर्तमान विधियों द्वारा ही जनसंख्या का नियंत्रण करना उचित होगा।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने साधनों के अनुसार परिवार को सीमित करना चाहिए जिससे उसकी सन्तान को जीवन में कम-से-कम अपने बराबर तो

---

१. "The World and Specially India is paying the penalty of unchecked procreation ;" so that the superfluous millions go down to fatten the tired earth which could not fatten them."
२. जथार और बैरी : भारतीय अर्थशास्त्र, भाग १, १९५६ पृ० ७९।
३. L. Darwin : What is Eugenics, p. 36.

अवसर मिल सके। जिस प्रकार पौधों के विकास के लिए बहुत घने बीज नहीं होने चाहिएँ; उसी प्रकार उचित विकास के लिए परिवार में बहुत अधिक सन्तान भी नहीं होनी चाहिए। अधिक सन्तान होने से जीवन-शक्ति क्षीण हो जाती है और शिशु-मृत्यु दर बढ़ जाती है। अस्तु यह आवश्यक है कि बच्चे उस समय तक पैदा न किये जायें जब तक कि उनके उचित पालन-पोषण के लिए वह व्यक्ति स्वयं समर्थ न हो। व्यक्ति का हित समूचे समाज का हित भी है। यदि अधिकांश व्यक्ति बिना सोचे समझे बच्चे पैदा करते रहेंगे तो रहन-सहन का सामान्य स्तर अवश्य ही नीचा हो जायगा[१] जो न केवल परिवार के लिए वरन देश के लिए भी दुखदायी होगा।

आर्थिक विकास से जनसंख्या की वृद्धि के अल्प भाग का ही काम चल सकता है। यदि मानव की प्रजनन क्षमता को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी जाय तो अवश्य ही युद्ध, महामारी, अकाल जैसी दुष्ट शक्तियाँ अपना कार्य आरम्भ कर देंगी।[२] आर्थिक विकास को जनसंख्या का एक अस्थायी उपचार ही मानना चाहिए तथा हर स्थित में उसे ऐच्छिक और विवेकपूर्ण नियंत्रण से पुष्ट करना चाहिए। इसी नियन्त्रण में विवेकशील-प्राणी और खरगोशों का अन्तर परिलक्षित होता है। भारतीय जनगणना-आयुक्त श्री गोपालस्वामी का कथन बिलकुल ही उपयुक्त है जब वे यह कहते हैं कि, "जब किसी व्यक्ति की मृत्यु को स्थगित करने के लिए डाक्टर की सहायता लेने में हम हिचकते नहीं तो जन्म के स्थगन के लिए हम समान रुख क्यों नहीं अपनाते"[3] अस्तु, यदि हम प्रकृति को मृत्यु थोपने में छूट नहीं देते हैं तो जन्म को भी उसी तरह नहीं होने देना चाहिए। अतः जनसंख्या को विवेकपूर्ण नियन्त्रित करने के लिए एक संगठित प्रयत्न आवश्यक प्रतीत होता है। "उत्पादन और प्रजनन का अर्थशास्त्र घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। उत्पादन का युक्तिकरण तभी और उतना ही हो सकता है जब कि और जितना प्रजनन का युक्तिकरण किया जायगा।"[४]

(२) लड़के और लड़कियों के विवाह की न्यूयतम उम्र बढ़ायी जाय। यह कम-से-कम लड़कियों के लिए २० और लड़कों के लिए ३० होनी चाहिए। गर्म देशों में यह आयु क्रमशः १८ और २५ हो सकती है। जितनी देर में विवाह किया जाता है उतने ही कम बच्चे वैवाहिक जीवन में उत्पन्न होते हैं।"

---

१. H. Cox : The Problem of Population, p. 118.

२. "मानव की जनन क्षमता इतनी अधिक है कि स्त्री पुरुष का एक जोड़ा १७५० वर्षों में दुनिया की वर्तमान जनसंख्या के बराबर सन्तति उत्पन्न कर सकता है अर्थात् २० लाख बिलियन ($१०^{१०}$)या पृथ्वी और समुद्र के प्रतिवर्ग पीछे १००० व्यक्ति से भी अधिक"—Swinburne : Population and Social Problems, 1924, p. 16.

३. Census of India, 1951, Vol. 1. pt. 1. A.

४. Prof. Goldchield, Quoted by N. V. Sovani : Regional Approach to Population Problem, p. 208..

श्री डनलप के अनुसार जब लड़की २० से २५ साल की होती है तो १ वर्ष देर से विवाह करने में ०'४५ बच्चे कम होते हैं; २५ से ३० वर्ष की उम्र में ०.३७; ३० से ३५ तक ०.३२; ३५ से ४० तक ०'२९ और ४० से ४५ वर्ष तक ०'१९।"[1]

(३) उत्पादन में वृद्धि—करने से मनुष्य की भौतिक रुचि बढ़ जाती है और उसका रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है और वह भविष्य के लिए योजनायें बनाने लगता है। उसके सम्मुख "बच्चे की अपेक्षा आस्टिन कार रखना ही" उद्देश्य हो जाता है। अस्तु, कृषि और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक है। कृषि की पुनर्व्यवस्था निम्न प्रकार से की जा सकती है:

(क) काम में आने वाली भूमि की गहरी जुताई करना। यह कार्य उन्नत खाद, उन्नत बीज, और कृषि के आधुनिकतम साधनों का प्रयोग करके किया जा सकता है।

(२) कृषि-क्षेत्र का विस्तार बढ़ाने के लिए नई और पड़त भूमि का उपयोग किया जाय तथा सिंचाई के साधनों का विस्तार किया जाय।

(३) भू-स्वत्वों, कृषि ऋण तथा निरक्षरता के कारण उत्पन्न होने वाली आपत्तियों को तात्कालिक सुधारों द्वारा दूर किया जाय। इसके अतिरिक्त जिन देशों में अभी तक औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है उनका औद्योगीकरण किया जाय। इस हेतु अधिकतर छोटे और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए। क्योंकि छोटे उद्योग जब व्यवस्थित किये जाते हैं तो वे कृषि और बड़े पैमाने के उद्योग धन्धों के बीच एक आवश्यक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, इसके साथ ही साथ वे ग्रामीण और नागरिक आय के बीच की खाई को कम करके जीवन-यापन की अवस्था में भी अन्य साधनों के कारण विकास करते हैं।

औद्योगिक विकास देश में जनसंख्या की वृद्धि को रोकता है क्योंकि "औद्योगिक क्षेत्रों में कई विषम परिस्थितियों के पैदा हो जाने से मानव की जनन-क्षमता पर अहितकर प्रभाव पड़ता है। भोजन प्राप्ति के लिए दिन भर व्यस्त रहने अथवा सामाजिक कार्यों में लिप्त रहने से प्रजनन शक्ति का उपयोग पूरे प्रकार नहीं हो पाता, फलतः सन्तानोत्पत्ति भी कम होने लगती है, क्योंकि मनुष्य को अनेक प्रकार की मानसिक और शारीरिक चिन्तायें घेरे रहती हैं तथा यौन-सम्बन्ध के अतिरिक्त भी मानसिक संतुष्टि के कई अन्य साधन उपलब्ध हो जाते हैं अतः यौन-मिलन की अवधि कम होती जाती है। यही कारण है कि विश्व के सभी देशों में प्रजनन-दर औद्योगिक क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा कम होती है। अस्तु, पिछड़े हुए द० पूर्वी एशिया के देशों में औद्योगीकरण करना इस दृष्टि से लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को भी आर्थिक स्वतंत्रता होनी चाहिए। विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों का अनुभव यह बताता है कि आर्थिक आयोजन की सफलता

---

१. H. G. Duncan: Population and Race Problem, p. 302-3.

तथा उसके फलस्वरूप धन की वृद्धि में तुरन्त ही जनसंख्या के बढ़ने की संभावना रहती है. किन्तु बाद में आर्थिक उन्नति के साथ-साथ यह वृद्धि कम होती जाती है। आर्थिक उन्नति और शिक्षा के एक सीमा तक पहुँचने पर शहरी औद्योगिक सभ्यता के प्रसार के साथ-साथ सह-सम्बन्ध में प्रारम्भ में मृत्युदर में तीव्र कमी होती है और उसके बाद जन्मदर तेजी से घट जाती है।

(४) सन्तति सुधार शास्त्र (Eugenics)—अक्सर यह कहा जाता है कि मनुष्य पौधों और घरेलू जानवरों के लिये जो कुछ कर सका है वह अपने लिए नहीं कर सका। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि जाति-सुधार के लिए मनुष्यों पर प्रयोग करना या संभोग के नियमन के लिए उन्हें पौधों और जानवरों की तरह बरतना असम्भव है। किन्तु अब यह बात सर्वमान्य होगई है कि जनसंख्या में गुणात्मक सुधार करना भी आवश्यक है। "सामाजिक अर्थ व्यवस्था, पारिवारिक सुख और राष्ट्रीय नियोजन के हित में परिवार-नियोजन और सन्तान की सीमा तो आवश्यक है ही किन्तु इसके साथ ही साथ संतति-सुधार कार्य-क्रम में भयंकर प्रकृति के छूत या संक्रामक रोगों—मृगी, उन्माद, शरीर से अयोग्य, मस्तिष्क के खोखले एवं नैतिक पतन तथा परम्परागत बीमारियों के बीज समाहित करने वाले व्यक्तियों—से ग्रस्त व्यक्तियों के विवाह और सन्तानोत्पत्ति पर पूर्ण प्रतिबन्ध भी होना चाहिए।" संतति-सुधार शास्त्र की किसी भी व्यावहारिक योजना के सकारात्मक (Positive) और नकारात्मक (negative) दोनों ही पहलू हो सकते हैं अर्थात् वह उपयुक्त व्यक्तियों के प्रजनन को प्रोत्साहित करेगी और अनुपयुक्त व्यक्तियों के प्रजनन को हतोत्साहित करेगी। अपराधियों एवम् अवांछित व्यक्तियों के सम्वन्ध में यही रास्ता अपनाना चाहिए कि कानून द्वारा उनको वन्ध्या बना दिया जाय जिससे उनकी यौन क्रियायें तो ज्यों की त्यों बनी रहें किन्तु प्रजनन की शक्ति नष्ट हो जाये। संयुक्त-राज्य की कैन्टकी रियासत में मृगी रोग से पीड़ित या दुर्बल मस्तिष्क वाले व्यक्ति कानून द्वारा विवाह करने से रोके जाते हैं। इसी प्रकार मोंटाना में निर्बुद्धि एवं मृगी रोग से पीड़ित व्यक्तियों की आपरेशन द्वारा प्रजनन-शक्ति समाप्त कर दी जाती है। इंगलैंड में भी ऐसे कानून प्रचलित हैं। भारत जैसे देश में भी—जहाँ १९३१ की जनगणना के अनुसार प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे ३४ पागल, ६६ बहरे और गूंगे, १७२ अन्धे तथा ४२ कोढ़ी हैं—इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश की अवांछनीय जनता में जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिए कानून की शरण ली जाय।

(५) देशवासियों की आर्थिक क्षमता को बनाये रखने के लिये सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई पर ध्यान देना आवश्यक है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान ने कई रोगों का—लाल जूड़ी, कुष्ठ, हैजा, प्लेग आदि का अस्तित्व ही मिटा दिया है किन्तु फिर भी उष्ण कटिबन्धीय देशों में अधिकतर हुकवर्म, गिनीवर्म, मलेरिया, क्षय, पेचिश आदि बीमारियों के कारण असंख्य जानें जाती है। ये बीमारियाँ "स्थानीय प्रचलित बीमारियों के उस दुखान्त नाटक की दुष्ट अभिनेत्रियाँ हैं जिस पर कभी पर्दा नहीं गिरता।" ये बीमारियाँ जितने व्यक्तियों को मारती नहीं उससे दुगुने-तिगुने व्यक्तियों को अपना शिकार बनाकर शक्तिहीन कर देती

हैं। अतः इन्हें दूर करना आवश्यक होगा। यद्यपि इस कार्य में प्रारम्भिक व्यय बहुत अधिक होगा किन्तु यह वांछनीय होगा क्योंकि इससे आर्थिक क्षमता की अत्यधिक वृद्धि अवश्य होगी।" राष्ट्र के स्वास्थ्य पर किया हुआ सार्वजनिक व्यय डूबने से बचाने वाली नौका या आग बुझाने वाले इंजिन पर किये हुए व्यय के समान है; इतना ही नहीं, वह दीर्घकालीन विनियोग है। उस पर निश्चयात्मक रूप से सौगुना व्याज प्राप्त होता है, परन्तु कुछ वर्षों बाद और कभी-कभी कुछ पीढ़ियों बाद।"

(६) परिवार के आकार को रोकने में शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा से मनुष्य अधिक उत्तरदायी और विवेकपूर्ण होकर जीवन के प्रति बुद्धि-संगत दृष्टि-कोण रखता है। उसकी दृष्टि विस्तृत हो जाती है और प्रबुद्ध लोगों में जनसंख्या का आकार नियंत्रित करने की आवश्यकता और गर्भ-निरोधक प्रयोग से सम्बन्धित ज्ञान का प्रसार संभव है।

डा० हटन के शब्दों में, "जन्म दर पर ऐच्छिक नियंत्रण के अतिरिक्त अन्य कारण जिनसे मृत्यु-दर कम हो जाती है, अज्ञात रूप से जन्म दर को भी कम कर देते हैं। धन और मानसिक कार्यों की वृद्धि के साथ प्रजनन-क्षमता भी कम हो जाती है। सार्वजनिक स्वास्थ्य-सुधार, जीवन-स्तर में सुधार, शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों का घरेलू काम-काज के अतिरिक्त अन्य उपयोगी कार्यक्षेत्रों में पदार्पण आदि सुधार जनसंख्या की अनियमित और तीव्र गति को रोकने के लिए वांछनीय हैं।"[1] पश्चिमी देशों में ऐसा ही हुआ है और यदि हम यह विश्वास करें तो अनुचित न होगा कि इस प्रकार के कारणों का प्रभाव भारत में भी वैसा ही होगा। अतः जनाधिक्य का सबसे आशाजनक हल यह है कि हर दिशा में आर्थिक विकास का प्रयत्न किया जाय।

(७) प्रवास या विदेशगमन (Emmigration)—जनसंख्या का विश्व वितरण बड़ा ही असमान है। आज भी संसार में ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पृथ्वी पर मानव-भार, असह्य हो रहा है—मुख्यतः चीन, जापान, हिंदेशिया, भारत, आदि दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में—जहाँ मानवता अर्द्ध नग्न, अर्द्ध वस्त्र-विहीन और अर्द्ध भूखी रहती है। इन देशों में त्राहि-त्राहि मच रही है और शांति एक भीषण क्रांति में परिणत हो रही है। इसके विपरीत ऐसे भी विस्तृत क्षेत्र हैं—मुख्य आस्ट्रेलिया, अर्जेनटाइना, उत्तरी-पश्चिमी अमरीका, अफ्रीका, कनाडा, तथा लेटिन अमरीकी देशों में – जहाँ जनशक्ति के अभाव के कारण भूभागों पर स्वच्छन्दता से पशु, भेड़ आदि पाले जाते हैं और जहाँ मानव द्वारा निर्मित कृत्रिम ऊँचे जीवन स्तर को सुरक्षित रखने के लिए सरकार आवास नीतियों (Immigration Policies), कोटा पद्धति तथा अन्य प्रकार के प्रतिबंध लगा कर विदेशियों को इन भूभागों पर आकर बसने में रोक लगाती हैं। इस प्रकार आर्थिक और सामाजिक विषमतायें विश्व शांति के लिए वास्तव में घोर बाधा है।[2] इन कृत्रिम बाधाओं के स्वरूप नये देशों की आर्थिक उन्नति ठप्प पड़ गई है तथा मानव उनके यथोचित प्रतिदान से सर्वथा

१. Census of India, 1931, Vol. I. p. 43.
२. R. K. Mukerjee: Races, Lands and Food, 1946, p. 7.

वंचित हैं। परन्तु जनसंख्या की समस्या उस कड़ाही के समान है जिसमें तेल लबालब भरा है और जोरों से उफान ले रहा है, खतरा है कि यह उफान कहीं आग न लगा दे; न कि यह समस्या उस कड़ाही के समान है जिसमें तेल केवल पेंदी में ही पड़ा है।

एशिया के अधिकांश घने बसे देशों से—जहाँ जनसंख्या का भार असहनीय है—प्रवास अधिक नहीं हुआ है क्योंकि सामाजिक और धार्मिक भावनायें इसके प्रतिकूल रही हैं। अस्तु, चीन, जापान, भारत आदि देशों से बहुत ही कम जनसंख्या बाहर जा सकी है। इसके अतिरिक्त कई देशों की रंग-भेदी नीतियों—आस्ट्रेलिया की श्वेत नीति (White Policy) दक्षिणी अफ्रीका की 'गौरांग नीति' आदि—ने एशियायी आवास पर कठोर प्रतिबन्ध लगाए हैं जिनसे एशिया निवासियों को वहाँ जाकर बसना असम्भव हो गया है और जो वहाँ किसी प्रकार बस भी गये हैं उन्हें सभी प्रकार की नागरिक सुविधाओं और अधिकारों से वंचित किया जाता है और उनका शोषण किया जाता है।

नीचे की तालिका में यह बताया गया है कि कौन से देश जनसंख्या से 'पूर्ण' (full) और कौन से 'खाली' (Empty) हैं[1] :—

जनसंख्या से पूर्ण देश	(वर्ष)	घनत्व प्रति वर्ग मील	जनसंख्या से विहीन देश	वर्ष	घनत्व प्रति वर्ग मील
बेल्जियम	१९४७	७२६	आस्ट्रेलिया	१९४९	२
हॉलैंड	१९४५	७१७	कनाडा	१९४१	३
इंग्लैंड	१९४७	५३४	साईबेरिया	१९४१	५
इटली	१९४५	३९७	अर्जेनटाइना	१९४५	५·८
जर्मनी	१९४७	४०८	अफ्रीका	१९४९	०·५
जापान	१९४०	४९६	ब्राजील	१९४०	१३
चीन	१९४९	१२३	लैटिन अमरीका	१९४७	·२८
भारत	१९५१	३१२	न्यूजीलैंड	१९४७	४·५
इंडोनेशिया	१९४७	८१८	सं० रा० अमरीका	१९४१	४·१
			उष्णकटिवन्धीय अफ्रीका	१९४१	११·५

इस तालिका से ज्ञात होता है कि ब्राजील में प्रतिवर्ग मील पर केवल १३ ही व्यक्ति; लैटिन अमेरिका में ·२८; उष्णकटिवन्धीय अफ्रीका में ११·५; अर्जेनटाइना में ५·८ और कनाडा तथा आस्ट्रेलिया में केवल ३ और २ व्यक्ति ही निवास करते हैं, जब कि एशिया के देशों में प्रति वर्ग मील पीछे १०५ से लेकर ८१८ व्यक्ति तक रहते हैं। अस्तु, यदि यह मान भी लिया जाय कि कनाडा या साइबेरिया में शीत जलवायु के कारण एशियायी निवासियों का रहना असंभव है तो भी आस्ट्रेलिया, अर्जेनटाइना, लैटिन अमेरिका, गिनीतट, जंजीबार प्रदेश की जलवायु आदि भारत-वासियों के सर्वथा अनुकूल हैं।

१. S. Chandrasekhar: Hungry People and Empty Lands, 1955, p. 56 and 59.

आस्ट्रेलिया के बारे में श्री फॉरसिथ (Forsyth) का कथन है कि, "पिछले १५० वर्षों में अंग्रेजों द्वारा केवल १०% भूमि का उपयोग रहने के लिए किया गया है और आज भी १% से अधिक पर खेती नहीं की जाती। महाद्वीप के $\frac{2}{3}$ भाग पर १० लाख से भी कम व्यक्ति निवास करते हैं और शेष $\frac{1}{3}$ में (जिनमें क्वीन्सलैंड, उत्तरी साऊथ वेल्स, विक्टोरिया, टसमानिया आदि सम्मिलित हैं) लगभग ६० लाख व्यक्ति निवास करते हैं। और इस $\frac{1}{3}$ भाग में अनुपयुक्त (unoccupied) भूमि का भाग लगभग १०% है। इस कथन से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि आस्ट्रेलिया में भूमि के अभाव की कथा' (myth of open Spaces) काल्पनिक नहीं वरन् वास्तविक है।"[१] किन्तु इस कथन का खण्डन करते हुए डा० थाम्पसन (Thompson) का विचार है कि "इसमें कोई संदेह नहीं कि उष्णकटिवन्धीय आस्ट्रेलिया में गहरी खेती के लिए भूमि का उपयोग कम ही किया जा रहा है कि यदि परिवारिक-खेतों में इसका उपयोग किया जाय तो इस पर अधिक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।"[२] डा० टेलर (G. Taylor) ने जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों दोनों को दृष्टि में रखते हुए अनुमान लगाया है कि पश्चिमी देशों के जीवन-स्तर पर यह महाद्वीप १५० से ५०० लाख व्यक्तियों को निवास स्थान दे सकता है।"[3] अर्थात् वर्तमान संख्या से तीन गुनी जनसंख्या को आस्ट्रेलिया में रहने को भूमि मिल सकती है। किन्तु अनुपयुक्त जलवायु के कारण यहाँ अँग्रेज नहीं रह सकते परन्तु भूमि का वांछनीय उपयोग करने के लिए डा० टेलर की राय में सीमित मात्रा में चीनी, भारतीय और जापानियों को आवास के लिए निमंत्रित किया जा सकता है। कनाडा के भूगोल शास्त्री श्री किम्बल (Kimble) का अनुमान है कि आस्ट्रेलिया में ३०० लाख व्यक्ति रह सकते हैं।[४] इसी प्रकार लैटिन अमेरिका में विस्तृत अमेजन की घाटी, अर्जेनटाइना में पम्पास क्षेत्र, दक्षिणी चिली के वन प्रदेश, वैनेज़ुएला के गायना पठार—आदि भागों में भी निस्संदेह अधिक जनसंख्या को निवास-स्थान दिया जा सकता है। अर्जेनटाइना में, प्रो० किम्वल के मतानुसार, यदि 'एस्टैनशिया' प्रकार के खेतों को बन्द कर सामान्य कृषि प्रणाली का अवलंबन किया जा सके तो वर्तमान से भी अधिक जनसंख्या को स्थान दिया जा सकता है। इसी प्रकार पश्चिमी संयुक्त-राज्य अमेरिका तथा कनाडा में भी लाखों नवागन्तुकों को आश्रय मिल सकता है।

अस्तु, यदि इन देशों में एशिया निवासियों को बसने दिया जाय तो इन देशों का आर्थिक विकास पूर्णरूप से हो सकता है। प्रवास कानून (International Immigration Act) को स्वीकार्य कर यदि देशान्तर गमन के निर्वि-

---

१. W. D. Forsyth : The Myth of open Spaces, 1942, p. 68.

२. W. S. Thomson : Population and Peace in the Pacific, 1946, p. 18-20.

३. G. Taylor : Australia, 1940. p. 118.

४. G.H.T. Kimble: The world's open Spaces, 1946, p. 58.

रोध अवसर एशियायी निवासियों को दिए जायँ तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वे अपनी वंशानुगत बुद्धि और चावल की गहरी खेती के ढंग से सूडान, नाइजीरिया, मोजेम्बिक, मैडेगास्कर, ब्रिटिश गायना, दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया ; दक्षिणी अफ्रीका-संघ जैसे कम बसे देशों में समृद्धि का नया युग आरम्भ कर सकते हैं।

किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि जनसंख्या के बड़े मात्रा में देशान्तर गमन की समस्या का तब तक हल नहीं हो सकता, जब तक कि विश्व-बन्धुत्व की भावना को हम न समझें और अन्तर्राष्ट्रीय देशान्तर गमन की आज्ञा किसी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा न दी जाय। अस्तु यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या के पुनर्वितरण के लिए एक विश्व-व्यापी आन्दोलन किया जाय। यह आन्दोलन इस दृष्टि से किया जाय कि समस्त मानव-प्राणी को पृथ्वी के प्रत्येक कोने में भौतिक साधनों को दृष्टिगत रखते हुए बसाया जाय।'

प्रश्न

१. "विश्व की लगभग आधी से अधिक जनसंख्या महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में २०° से ४०° अंक्षासों के बीच में ही पाई जाती है।" इसका क्या कारण है ?

२. "जनसंख्या के वितरण में जलवायु और भरण-पोषण के साधनों का बड़ा हाथ होता है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

३. उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और दक्षिणी पूर्वी एशिया में जनसंख्या का वितरण बताते हुए, उसके घनत्व में विभिन्नता के कारण बताइये ?

४. चीन, जापान और भारत आदि मानसूनी देशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है—इसके भौगोलिक कारण क्या हैं ? (आ० बी० कॉम, १६४४)

५. जनसंख्या के वितरण पर प्रभाव डालने वाले भौगोलिक कारणों पर प्रकाश डालिए, इस सम्बन्ध में भारत के उदाहरण द्वारा अपने विचार प्रकट करिये। (आ० बी० कॉम, १६४८)

६. सभ्य मनुष्य शीतोष्ण कटिबन्ध के निचले भागों में ही अधिक क्यों पाये जाते हैं ? (आ० बी० कॉम, १६४६)

७. आस्ट्रेलिया में जनसंख्या के वितरण पर अपने विचार प्रकट करिए। इस सम्बन्ध में यह भी बताइये कि कौन से भाग घने बसे और कौन से कम बसे हैं। (आ० बी० कॉम, १६५०, १६५३)

८. भारत में जनसंख्या के वितरण में भौगोलिक दशाओं का क्या प्रभाव पड़ता है ? समझाइये। पश्चिमी बंगाल में अधिक आबादी क्यों है ? (रा० वि०, १६५३)

९. आधुनिक जगत में किन कारणों से आवास-प्रवास में नियंत्रण पाया जाता है, इन नियंत्रणों के कारण जो समस्याएँ उठी हैं, उन्हें बताइये। (एम० ए० १६४७)

१०. भारत में जनसंख्या के घनत्व पर जलवायु सम्बन्धी तत्वों का क्या प्रभाव पड़ा है ? मानव ने इनमें किस प्रकार परिवर्तन किया है ? (एम० ए० १६४६)

११. भारत में जनसंख्या के घनत्व को निर्धारित करने वाली कौन-कौन सी भौगोलिक दशायें हैं? क्या भारत में जनाधिक्य है? भारत की 'जनसंख्या समस्या' को हल करने के तरीकों पर प्रकाश डालिये। (एम० ए० १९५४)

१२. ऊपरी गंगा के मैदान में जनसंख्या के वितरण पर पूर्ण प्रकाश डालिये। यह भी बताइये कि वहाँ जनसंख्या की पुनर्व्यवस्था की क्या दशा है? (एम० ए० १९५६)

१३. किसी प्रदेश में जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने वाले तत्वों को समझाइये।

१४. क्या आप इस मत से सहमत हैं कि "देशान्तरगमन से जनसंख्या की समस्या का हल नहीं हो सकता?" इस समस्या को हल करने के साधन बताइये।

१५. "पृथ्वी के १।७ भाग पर ही विश्व की जनसंख्या का २।३ भाग निवास करता है।" इस असमान वितरण से उत्पन्न हुई समस्याओं पर प्रकाश डालिये। भविष्य में किस प्रकार जनसंख्या का समान वितरण किया जा सकता है?

(एम० ए० १९५४)

१६. आधुनिक जगत में—भारत के विशेष संदर्भ सहित जनसंख्या के वितरण का वर्णन करिये। (एम० ए० १९५१)

१७. जनसंख्या के घनत्व का प्रभाव आर्थिक क्रियाओं और मानव के निवास स्थान पर किस प्रकार पड़ता है? भारत के उदाहरण द्वारा समझाइये।

(एम० ए० १९५२)

१८. भारत में जनसंख्या के विकास पर एक निबन्ध लिखिये। (एम० ए० १९५०)

१९. यूरोप में जनसंख्या के वितरण पर अपने विचार प्रकट करिये।

२०. भारत में जनसंख्या के वितरण को समझाते हुए बताइये कि भौगोलिक वातावरण का इस वितरण पर किस प्रकार प्रभाव पड़ा है? (एम० ए० १९४८)

अध्याय ३९

नगरों की उत्पत्ति और विकास

(Growth and Development of Towns)

नगर तत्कालीन मानव सभ्यता की चरम सीमा का प्रतीक है, जहाँ साधारणतया अधिक जन समूह एकत्रित रहता है। किसी क्षेत्र के नगर इसके भौतिक विकास तथा सांस्कृतिक प्रगति के सूचक होते हैं। नगरों के अभ्युत्थान के साथ ही साथ श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण का विकास होता है और इनके फलस्वरूप धन-धान्य, कलाकौशल तथा विज्ञान आदि प्रोत्साहन पाते हैं। प्रो० थॉमस का कथन है कि, "नगरों की उत्पत्ति और उनका विकास मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है।" प्रो० ब्लाशे (Blache) के अनुसार, "एक नगर एक सामाजिक संगठन होता है जिसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह सभ्यता की उस सीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है, जिन तक कुछ क्षेत्र नहीं पहुँच पाये हैं और जो शायद कभी पहुँच भी न सकें।"[1]

नगरों की स्थापना इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। आरम्भ से ही मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते समूहों में रहता आया है। किन्तु नगरों की उत्पत्ति उस समय हुई जब मनुष्य और उसकी प्राकृतिक परिस्थितियों में एक स्थायी सम्पर्क स्थापित हुआ। शिकारी जीवन या लकड़ियाँ काटने की अवस्था में मनुष्य का एक स्थान पर स्थायी रूप से रहना असंभव था फलतः नगरों की उत्पत्ति का प्रश्न नहीं उठा। आज भी विश्व के उन भागों में जहाँ के निवासी खानाबदोश हैं—जैसे टंड्रा और स्टेप्स प्रदेश में—वहाँ नगरों का अभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यदि यह कहा जाय कि नगरों के विकास और सभ्यता के स्तरों में घनिष्ट सम्बन्ध है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। प्रो० टेलर (Taylor) के अनुसार नगरों का जीवन भी एक चक्र में चलता है। अस्तु, प्रत्येक नगर किसी विशिष्ट युग की सांस्कृतिक अवस्था और सभ्यता की दशा को व्यक्त करता है। नगरों और व्यापारिक विकास का भी गहरा सम्बन्ध है। आधुनिक सभ्यता व्यापारिक और औद्योगिक वृद्धि पर निर्भर करती है अतः इस युग के बड़े-बड़े नगर व्यापारिक और औद्योगिक ही हैं। ठीक ही कहा गया है कि आवागमन के साधन, और साख सुविधा ने ही बड़े नगर के अस्तित्व को संभव बनाया है। नगरों और व्यापार में एक की वृद्धि से दूसरे की वृद्धि होती है। औद्योगिक क्रांति के पूर्व स्थानीय

---

१. V. Blache : Principles of Human Greography, p. 471

उपज के क्रय-विक्रय के लिए छोटे नगरों की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् तो ज्यों-ज्यों बड़े उद्योग-धन्धों का विकास होता गया त्यों-त्यों नगरों का भी विकास होने लगा। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि नगरों की दो विशेषतायें होती हैं :—

(१) नगरों में जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग कृषि के अतिरिक्त दूसरे उद्योग-धन्धों पर अवलम्बित रहता है।

(२) नगरों में छोटे-छोटे गाँवों या कस्बों की अपेक्षा अधिक जनसंख्या निवास करती है।

नगरों का जन्म (Origin of Cities)—

जैसा कि ऊपर कहा गया है नगर आधुनिक सभ्यता के ही प्रतीक नहीं वरन् वे प्राचीन सभ्यता के आधार स्तंभ थे। संसार का सबसे प्राचीन नगर-जो ४५०० वर्ष से भी पहले का है—मिस्र में मेम्फिस—है। यह नगर मिस्र की दिवाल-बद्ध राजधानी थी। इसके बाद दजला और फरात नदियों की घाटियों में बेबीलोन और निनेवाह नगरों की उत्पत्ति हुई। इसके कुछ ही समय बाद फोनिशिया के टायर और सिंदान ; यूनान के एथेंस, कोरिंथ और सिरा-क्यूज नगर बसाये गये। रोम और कारथेज भी इसी काल में बने। फिन्च और ट्रिवार्था के मतानुसार, "१० शताब्दियों और ५०० वर्ष पूर्व तक नागरिक जीवन का विकास भूमध्यसागर के तटवर्ती क्षेत्रों में ही हुआ।" किन्तु यदि कहा जाय कि प्राचीन मानव की सभ्यता का विकास भारत की सिंध की घाटी में ५००० वर्ष पूर्व हो चुका था—जिसके ध्वंसावशेष आज भी मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के रूप में मिलते हैं—और अन्य सभ्यताओं—मिस्री, यूनानी, रोमन आदि—का जन्म इसके बाद ही हुआ तो कोई असंगत बात न होगी। आर्य युग (Aryan Age) में भी हस्तिनापुर, कन्नौज, मथुरा, अयोध्या और जनकपुर प्रभृति नगरों के अस्तित्व के उदाहरण मिलते हैं। बौद्ध काल में तक्षशिला, सांची, पाटलीपुत्र, और कौशाम्बी आदि नगरों का विकास हो चुका था।

अनुमान किया जाता है कि लगभग ५ वीं शताब्दी तक एशिया और यूरोप के प्रत्येक प्रगतिशील देश में राजनीतिक केन्द्र का जन्म हो चुका था किन्तु नगरों के विकास और उत्पत्ति का क्रमबद्ध इतिहास ११ वीं शताब्दी के बाद से ही आरम्भ होना माना जाता है। डा० टेलर के अनुसार, "११ वीं शताब्दी के अन्त में दिवाल-बद्ध नगरों में व्यापारिक संस्थाओं (Guilds) का अभ्युदय हो गया था जिन्हें वर्तमान युग के ट्रेड-यूनियन का अगुआ कहा जा सकता है।" फ़लेंन्डर्स और लम्बार्डी में इन व्यापारिक संस्थाओं ने रजवाड़ों को चुनौती दी जिसके फलस्वरूप राजनैतिक शक्ति के पतन के साथ नगरों का नये रूप में विकास होना आरम्भ हुआ। प्रो० फ्ल्योर (Fleure) के कथनानुसार, "चूंकि नगरों का आधार व्यापार है अतः ज्यों-ज्यों पश्चिमी फ्रांस से पूर्वी रूस की ओर बढ़ा जाता है त्यों-त्यों नगरों के विकास और रूप में विभिन्नता पाई जाती है। इसका मूल कारण यह है कि व्यापार के लिए शान्त वातावरण का होना नितान्त आवश्यक है। यह शांति तथा स्थायित्व पूर्वी यूरोप में पश्चिमी

यूरोप की अपेक्षा कई शताब्दियों बाद आया। अस्तु, उत्तरी फ्रांस में नगरों का जन्म रोमन साम्राज्य के काल में हो चुका था जबकि इसके बहुत बाद में प्रेग और मास्को का जन्म सुरक्षा केन्द्रों के रूप में हुआ।"

चूंकि मध्यकाल में व्यापार की अधिकाधिक उन्नति हुई अतः नगरों का भी विकास संगठित रूप से होने लगा। श्री ममफोर्ड (L. Mumford) के अनुसार, "१८ वीं शताब्दी में नगर बसाने की रीति में परिवर्तन हुआ जिसके फलस्वरूप बारोक-रीति (Baroque Style) अपनाई गई। इसके अनुसार अब पुराने, अव्यवस्थित ढंग से बसे हुए और अधिक टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों के स्थान पर नई ज्यामितिक डिजाइनों के अनुसार बने अधिक चौड़े रास्ते. चौराहे आदि बनाये जाने लगे जिससे पहियेदार गाड़ियों के चलन में अधिक सुविधा हो सके।"[1] कुछ ही समय बाद जब यूरोप में औद्योगिक क्रांति का जन्म हुआ तो औद्योगिक प्रगति ने नगरों के संगठन को और भी अधिक प्रभावित किया फलस्वरूप नगर-निर्माण में एक नई पद्धति (Palaeo-technique Type) का अनुसरण किया गया। अस्तु, इस काल में बिना किसी पूर्व निश्चित योजना के नगरों का विकास आरम्भ हुआ जिनमें अधिकांशतः कारखानों के श्रमिक रहने लगे। इस युग में नगरों का विकास बड़ा उल्टा-सीधा हुआ किन्तु १९ वीं शताब्दी में नगर योजना (Town Planning) का विकास हुआ तो अधिक व्यवस्थित रूप से नगरों का विकास विकास होने लगा। १८३० में गुडरिच (Goodrich) और गाल्फ (Golf) का विकास इस नवीन प्रवृत्ति का द्योतक माना जाता है। इस आधुनिक प्रणाली के मुख्य उदाहरण संयुक्त राज्य में प्रिंस-रुपर्ट ; इङ्गलैंड में लैचवर्थ, आस्ट्रेलिया में कैनबरा और भारत में चंडीगढ़ हैं।

इन नगरों का वितरण इस प्रकार है :—[2]

	नगरों की संख्या	कुल जनसंख्या के अनुपात में नगरों की जनसंख्या (%)	प्रति शहर पीछे जनसंख्या (लाख में)	वर्ष
ब्राजील—				
बड़े नगर	१३	१४·५	४०·४	१९५०
वृहद नगर	६	१२·२	८७·६	
मैट्रोपोलिस	२	८·८	—	
जर्मनी—				
बड़े नगर	५८	३१·८	१२·०	१९३९
वृहद नगर	२२	२३·०	३१·६	
मैट्रोपोलिस	२	८·६	—	

१. L. Mumford : Culture of Cities.
२. G. S. Ghurye : *Ibid.* p. 59-66.

इटली—				
बड़े नगर	२५	२०·३	१८·८	१९५१
वृहद नगर	१०	१५·४	४७·१	
मैट्रोपोलिस	३	८·५	—	
जापान—				
बड़े नगर	३३	२३·३	२२·७	१९३५
वृहद नगर	७	१९·५	१०७·०	
मैट्रोपोलिस	४	१४·८	—	
संयुक्त राज्य अमेरिका—				
बड़े नगर	१०६	२९·९	१४·२	१९५०
वृहद नगर	३६	२२·८	४८·८	
मैट्रोपोलिस	५	११·५	—	
रूस—				
बड़े नगर	८१	१४·३	२४·०	१९३९
वृहद नगर	१८	८·२	१०८·०	
मैट्रोपोलिस	२	३·८	—	
इङ्गलैंड—				
बड़े नगर	७०	३८·३	६·९	१९५१
वृहद नगर	१०	१९·०	४८·८	
मैट्रोपोलिस	३	११·४	—	

नगरों की स्थिति को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(factors affecting the growth of cities)

प्राचीन काल से ही नगरों के बसाने में तीन मुख्य बातों पर अधिक जोर दिया गया है :—

(क) केन्द्रीयता (Nodality)
(ख) सुरक्षा (Defence)
(ग) पीने के पानी की प्रचुरता (Availability of Drinking Water)

केन्द्रीयता प्राप्त करने के लिये अधिकतर नगर ऐसे स्थानों पर बसाये गये हैं जहाँ चारों ओर से मार्ग आकर मिलते हैं अथवा जहाँ पहले नगरों को बसाया गया और फिर मार्गों को वहाँ केन्द्रित किया गया। इस प्रकार के नगरों के उदाहरण मुख्यतः अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और दक्षिण में पाये जाते हैं। केपटाउन, मेलबॉर्न, ब्यूनर्स आयर्स और रायो-डी जानेरो इनके आदर्श उदाहरण हैं। नगरों की स्थिति केन्द्रीय हो अस्तु उन्हें बहुधा नदियों के संगम पर ही बसाया गया था।

प्राचीन समय से ही नगर पृष्ठ-देशों (Hinterland and Upland) के संरक्षण और बैंक का काम करते आ रहे हैं। धन की अधिकता और पृष्ठ-देश की सुरक्षा का भार उन पर ही रहा है, अतः नगर ऐसे स्थानों पर ही बसाये गये कि जो सभी प्रकार से सुरक्षित हों। देशों और राज्यों की राजधानियाँ नगरों के राजनैतिक पक्ष की द्योतक होती हैं। ऐसे नगरों का विकास प्राचीन काल में ही राजनैतिक मनोवृत्ति के साथ हुआ था। यद्यपि आज के अणु और वायुयान युग में सुरक्षा जैसी कोई चीज नहीं है, किन्तु फिर भी ऐसे नगरों का अस्तित्व पाया जाता है। पेरिस, मास्को, वाशिंगटन, कैन्वरा, दिल्ली, पेकिंग ऐसे नगरों के मुख्य उदाहरण है। प्राचीन काल में पानी के पास की स्थिति से नगरों को सुरक्षा प्राप्त होती थी। ऐसे नगरों को नैसर्गिक दुर्ग (Natural Fortification) कहा जाता है।

आरम्भ से ही मानव का निवास-स्थान उन्हीं क्षेत्रों में रहा है जहाँ पीने और खेती के लिए पर्याप्त मात्रा में मीठा जल मिलता था। यही कारण है कि अधिकांश नगर नदियों के किनारे ही स्थापित किए गए थे, किन्तु आज के युग में इस तत्व का महत्व अधिक नहीं रह गया है क्योंकि अब जल की कमी दूर के स्थानों से नलों द्वारा जल लाकर पूरी की जा सकती है। आस्ट्रेलिया स्थित कालगूर्ली की सोने की खानों और मैसूर की कोलार की खानों के लिए जल लगभग ३०० मील दूर से लाया जाता है। प्राचीन काल में नदियों के किनारे मथुरा, वाराणसी, पाटलीपुत्र आदि नगरों को बसाया गया था।

इन तत्वों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है जो नगर बनाये जायें वे ऐसे स्थानों पर स्थित हों जहाँ उनके भविष्य के विस्तार के लिए पर्याप्त भूमि मिल सके और जहाँ से आस-पास के प्रदेश के साथ सुगम सम्बन्ध हो। अतः किसी नगर अथवा व्यापारिक केन्द्र की उत्पत्ति और विकास के लिए सस्ते और सरल यातायात के साधनों का होना आवश्यक है। आज का मुख्य नगर औद्योगिक और व्यापारिक दोनों ही होता है जिसके पूर्ण विकास के लिए यातायात-मार्गों का महत्व अधिक है। यातायात-मार्गों पर स्थिति के अनुसार नगरों की स्थिति तीन प्रकार की होती है :—

(क) स्थल-मार्गों पर।
(ख) जल-मार्गों पर।
(ग) वायु-मार्गों पर।

(क) स्थल-मार्गों पर नगरों की स्थिति :—नगरों की स्थिति पर धरातलीय बनावट का बड़ा प्रभाव पड़ता है। मैदानों, पर्वतों और मरुस्थलों में नगरों को बसाने के लिए विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियाँ होती हैं। आवागमन के केन्द्रों की उत्पत्ति और विकास मुख्यतः दो कारणों से होता है (क) जहाँ बहुत-से मार्ग एक स्थान पर आकर मिलते हैं। तथा (२) जहाँ कोई प्राकृतिक बाधा रही हो जिसने मार्ग को अवरुद्ध कर दिया हो।

(१) जहाँ आवागमन के साधनों में परिवर्तन होता है अथवा जहाँ दो विभिन्न प्रकार के क्षेत्र मिलते हैं वहाँ नगरों की उत्पत्ति अनिवार्य सी हो जाती

है। क्योंकि ऐसे स्थानों पर माल इकट्ठा करने (storage) और पैकिंग करने आदि की सुविधायें अत्यन्त आवश्यक हो जाती है। अत: आवागमन के केन्द्र का मुख्य उदाहरण बन्दरगाह है जहाँ सामुद्रिक तथा स्थलीय मार्ग एक दूसरे से मिलते हैं और आवागमन के साधनों में परिवर्तन हो जाता है। बम्बई, न्यूयार्क, रायोडीजानेरो, लन्दन आदि इसके मुख्य उदाहरण हैं। सिंगापुर तथा लन्दन मध्यस्थों (Entnepot) का कार्य करते हैं। इसी प्रकार डुलूथ और फोर्ट विलियम में गेहूँ और लोहा रेल द्वारा लाया जाता है और इसे झीलों से नाव द्वारा वाहर ले जाया जाता है।

(२) कुछ यातायात के केन्द्र पड़ौसी क्षेत्रों के बीच द्वार का काम करते हैं। भारत में उत्तरी मैदान और दक्षिणी पठारी भाग के मिलन स्थल पर ग्वालियर, आगरा, रेवाड़ी, भरतपुर, झाँसी, बरेली, गोरखपुर आदि ऐसे ही नगर हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मिनियापोलिस, कन्सास, सेंट पाल, सेंट लुइस, कन्सास सिटी शुष्क पश्चिमी और आर्द्र पूर्वी भागों के बीच व्यापारिक द्वार का काम करते हैं।

(३) जिस स्थान पर पहाड़ और मैदान मिलते हैं वहाँ मैदान की सारी उपज एकत्रित की जाती है और फिर उस बड़े बोझे को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट कर पहाड़ी भागों को भेज दिया जाता है। इन नगरों को 'सामान तोड़ नगर (Break of Bulk Town) कहते हैं। यूरोप में आल्पस पर्वत के दोनों ओर उत्तर और दक्षिण में ऐसे ही नगरों की स्थितियाँ पाई जाती हैं। भारत में हरिद्वार, कालका, देहरादून, काठगोदाम इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(४) मरुस्थल आवागमन के मार्गों में वाधा डालते हैं अत: इनकी बाहरी सीमा पर सागरों के तटों की भांति सारे मार्ग आकर मिल जाते हैं और 'स्थल बन्दरगाहों' की उत्पत्ति हो जाती है। अफ्रीका में टिम्बकटू, रूसी तुर्किस्तान में मर्व और बुखारा इसी प्रकार के नगरों के उदाहरण हैं। मरुस्थलों में जहाँ कई काफिले या कारवाँ मार्ग आकर मिलते हैं वहाँ भी प्राय: नगर वस जाते हैं। अरब में रियाध ऐसा ही नगर है।

(५) पहाड़ी भागों में पर्वतीय दुर्गम श्रेणियों को पार करने के एक-मात्र द्वार उनमें स्थिति दर्रे (Passes or Cols) हैं। इसलिये उन पर नियंत्रण रखना वहाँ की सरकारों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। नियंत्रण के लिये मुहाने वाले स्थानों पर सैनिक अड्डे (Military Centres) स्थापित किये जाते हैं। इनकी छावनियाँ (Cantonment) बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। देहरादून, मेरठ, सिकन्दरावाद, जवलपुर, पूना, आदि भारत के प्रसिद्ध सैनिक केन्द्र हैं। इसी प्रकार जिब्राल्टर, रावलपिंडी, पेशावर, माल्टा, सिकन्द्रिया, डार्विन, सिडनी, क्वेटा, अदन, फोर्टसम हाऊसटन आदि भी उत्तम प्रकार के सैनिक केन्द्र हैं।

(६) जहाँ कई दिशाओं से आकर रेल-मार्ग या सड़कें एक स्थान पर मिलती हैं ऐसे स्थानों पर कई क्षेत्रों की उपज इकट्ठी होती है और वहाँ वस्तु एकत्रित (Collecting) और वितरित करने के केन्द्र (Distributing

मर जाते हैं।" आज भी औद्योगिक बस्तियों की दशा अच्छी नहीं है। घरों में प्रकाश और स्वच्छता का अभाव है, नल और टट्टियाँ तो कहीं-कहीं ही हैं। घर इतने अंधकारमय, सीले और अस्वास्थ्यकर होते हैं कि उनको देख कर यह विश्वास नहीं होता कि इनमें भी मनुष्य रह-सकते हैं। घरों की इस दशा के कारण ही बड़े नगरों में अनेक प्रकार की बीमारियाँ—बच्चों में सूखे का रोग, पांडुरोग, पेचिश, तथा वयस्कों में श्वांस सम्बन्धी रोग—निमोनिया, जीर्ण ज्वर, सर्दी-जुकाम, पेचिश आदि—फैलती रहती हैं अतः न केवल मृत्यु-संख्या ही वरन् बाल-मृत्यु की संख्या भी शहरों में गाँवों की अपेक्षा अधिक होती है।

अतएव, इस बात की आवश्यकता है कि नगरों में भवन-निर्माण का कार्य सुनिश्चित योजनाओं के अंतर्गत ही होना चाहिये जिनमें आधुनिक काल की सभी सुविधायें मिल सकें—अर्थात् पक्की और चौड़ी सड़कें, पानी के नल, पार्क, तालाब, आमोद-प्रमोद के लिए खुले स्थान, निवास के लिये उत्तम घर आदि। आवश्यकता इस बात की है कि "ग्रामीण क्षेत्रों का नगरीकरण और शहरी क्षेत्रों का ग्रामीणीकरण किया जाय।"

अध्याय ४०

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

(INTERNATIONAL TRADE)

व्यापार और यातायात दोनों का चोली-दामन का साथ है क्योंकि बिना एक के दूसरे का विकास होना असंभव है। जब दोनों का साथ हो जाता है तो ये किसी देश के आर्थिक जीवन को सुधार देते हैं। बिना इनके विकास हुए आधुनिक सभ्यता का जन्म भी नहीं हुआ होता और मानव केवल प्राचीन धन्धों तक ही सीमित रहता है। आज भी अधिकांश देशों में आदिम निवासी अपनी स्वयं की उत्पादित वस्तुओं पर ही निर्भर रहते हैं। वे अपने खाद्य पदार्थ स्वयं उत्पन्न करते हैं तथा अपने उद्योग के अनुरूप स्वयं ही यंत्रादि तैयार करते हैं। यद्यपि ये वस्तु अन्यत्र स्थानों से सस्ती प्राप्त की जा सकती हैं किन्तु यातायात के साधनों के अभाव में इनका आयात करना संभव नहीं हो सका है। ज्यों-ज्यों मानव की बुद्धि बढ़ती गई, उससे विश्व के लोगों के बारे में ज्ञान होता गया, उनके उत्पादनों में रुचि होने लगी और ज्यों-ज्यों यातायात की सुविधा बढ़ती गई, उसके व्यापार-क्षेत्र में वृद्धि होती गई। उसके व्यापार का न केवल मूल्य ही बढ़ा वरन् व्यापार की वस्तुओं में भी परिवर्तन हो गया और आज विश्व के सभी भागों के बीच—केवल कुछ अपवादों को छोड़ कर—व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये हैं।

व्यापार की वृद्धि पर कई बातों का प्रभाव पड़ा है—मुख्यतः इस बात पर कि कौन-से क्षेत्र में किस वस्तु का उत्पादन निम्नतम मूल्य पर उत्पन्न करने की सुविधायें प्राप्त हैं। यातायात की सुविधाओं, मनुष्य की रुचि और उसके रहन-सहन के स्तर में परिवर्तन ; अनेक नये आविष्कारों का विकास और सरकार द्वारा निर्धारित व्यापारिक नीतियाँ आदि ने भी व्यापार के विकास में पूर्ण योग दिया है। व्यापार का सबसे अधिक प्रभाव तो आधुनिक काल के वृहत औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्रों को जन्म देने में पड़ा है क्योंकि बिना व्यापार के नगरों के लिये पर्याप्त मात्रा में न भोजन प्राप्त हो सकता है, न वस्त्र और न उद्योग-धन्धों के लिए कच्चा माल। यही नहीं व्यापार के अभाव में प्रत्येक किसान को अपने लिये भोज्य-पदार्थ, उत्पन्न करने और वस्त्रादि के लिए कुटीर उद्योग चलाने पड़ें।

व्यापार का विकास होना इसलिए भी आवश्यक है कि किसी भी एक देश में वस्तुओं की माँग एक निश्चित मात्रा तक ही सीमित रहती है किन्तु यदि कई देश मिल कर व्यापार करें तो निश्चय ही वस्तुओं की मांग में अत्यधिक

वृद्धि होगी इससे देशों के आर्थिक और औद्योगिक विकास को भी प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि सभी देशों में ऊँचे जीवन-स्तर को कायम रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में न तो खाद्य पदार्थ ही मिलते हैं और न अन्य नैसर्गिक सम्पत्ति। यदि आज संयुक्त राज्य अमेरिका विदेशों से मैंगनीज, टिन, रबड़, कहवा, चाय, जूट आदि वस्तुओं का आयात करे तो कुछ ही सप्ताह में इसकी औद्योगिक प्रगति ठप्प हो जायगी। इसी प्रकार यदि इंगलैंड को लोहे या कपास का निर्यात बन्द कर दिया जाय तो शीघ्र ही उसके सूती वस्त्र और लोह उद्योग को गहरा धक्का लगेगा। ज्यों-ज्यों किसी देश का रहन-सहन का स्तर ऊँचा होता जाता है त्यों-त्यों वह देश-विदेशों पर अधिकाधिक निर्भर होता जाता है।

किसी देश की सच्ची आर्थिक स्थिति का ज्ञान उसके व्यापार से ही हो सकता है। यह ठीक ही कहा गया है कि "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक आर्थिक बैरोमीटर है जिसके द्वारा उस देश के जीवन-स्तर का पता लग सकता है।" किन्तु यह स्मरणीय है कि अधिक व्यापार होने से ही किसी देश का रहन-सहन का स्तर ऊचा नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए भारत का व्यापार स्वीडेन के व्यापार से ५०% से भी अधिक होता है किन्तु एक औसत भारत-वासी का जीवन-स्तर स्वीडेन-निवासी की अपेक्षा बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण भारत के क्षेत्रफल का अधिक होना है। भारत का क्षेत्रफल लगभग १२ लाख वर्ग मील है और जनसंख्या ३७ करोड़ जबकि स्वीडेन का क्षेत्रफल केवल १·६ लाख है और जनसंख्या ७० लाख। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अपना महत्व होता है। प्रति व्यक्ति पीछे होने वाले व्यापार से ही उस देश की सम्पन्नता का उचित ज्ञान हो सकता है। उदाहरण के लिये, भारत में प्रति व्यक्ति पीछे व्यापार का मूल्य केवल ६ डॉलर होता है, जबकि स्वीडेन में ३०० डॉलर, नार्वे में ३५६ डॉलर और संयुक्त राज्य अमेरिका में १२७ डॉलर का प्रति व्यक्ति पीछे व्यापार होता है। इसके विपरीत अधिकांश देशों में प्रति व्यक्ति व्यापार का मूल्य ५० डॉलर से भी कम है। इस प्रकार के देशों के अन्तर्गत अधिकांश एशिया (इसरायल, हाँगकाँग और लङ्का को छोड़ कर); अफ्रीका (दक्षिणी रोडेशिया, दक्षिणी अफ्रीका सङ्घ, एल्जीरिया, मोरक्को और मिस्र को छोड़ कर); दक्षिणी और पूर्वी यूरोप के देश और दक्षिणी अमेरिका के अधिकांश देश हैं। इन देशों का प्रति व्यक्ति व्यापार कम होने के दो मुख्य कारण हैं:—

(१) इन देशों की जनसंख्या न केवल घनी है वरन् अधिक भी है। इस कारण यहाँ उपभोग के बाद बहुत ही कम आधिक्य रह पाता है, अस्तु, विदेशों से माल खरीदने के लिये धन उपलब्ध नहीं हो पाता।

(२) इन देशों की प्राकृतिक सम्पत्ति या तो कम है अथवा अधिक होते हुए भी उसका पूर्ण विदोहन न होने से आर्थिक विकास अवरुद्ध हो रहा है।

उपर्युक्त देशों के विपरीत ऐसे देश भी विश्व में हैं जिनका प्रति व्यक्ति व्यापार ४०० से ५५६ डालर तक होता है। इनमें मुख्य न्यूजीलेंड, कनाडा और बेल्जियम-लक्समबर्ग हैं। २०० से ४०० डालर तक के मूल्य का व्यापार वैनेजुएला, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैंड, नार्वे, डेनमार्क, नीदरलैंड्स, स्वीडेन,

इसराईल, इंग्लैंड, मलाया और सिंगापुर हैं। इनमें से अधिकांश देश या तो औद्योगिक हैं जिन्होंने वस्तु विशेष के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करली है, या वे कच्चे माल के निर्यात को बहुत प्रोत्साहन देते हैं। फलतः देश को व्यापार से अधिक मुद्रा प्राप्त होती है और इन देशों के निवासियों का जीवन-स्तर भी काफी ऊँचा रहता है।

कभी-कभी प्रति व्यक्ति पीछे होने वाले व्यापार और उस देश के क्षेत्र-फल में भी गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। विश्व के ९ प्रमुख देशों रूस, कनाडा, चीन, ब्राजील, स० रा० अमरीका, आस्ट्रेलिया, फ्रेंच पश्चिमी अफ्रीका, भारत और अर्जेनटाइना—में जिनका क्षेत्रफल १० लाख वर्ग मील से भी अधिक है केवल कनाडा और आस्ट्रेलिया का ही व्यापार प्रति व्यक्ति पीछे अधिक होता है, अन्य देशों में बहुत कम। इसका मुख्य कारण यह है कि इन बड़े देशों में इतनी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं कि जितनी छोटे देशों में नहीं होतीं। फलतः इन्हें विदेशों से अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए अधिक माल मँगवाने की जरूरत नहीं पड़ती। दो उदाहरण इस कथन की पुष्टि करेंगे। संयुक्त राज्य अमरीका मे कोयला पेन्सिलवेनिया में, लकड़ियाँ वाशिंगटन में, कपास दक्षिणी और अनाज मध्य पश्चिमी तथा पशुपालन भीतरी क्षेत्रों में, मछलियाँ तटवर्तीय भागों में प्राप्त होती हैं, अतः देश के एक किनारे से दूसरे किनारे तक इनका अन्तर्देशीय यातायात होता है, अस्तु व्यापार का रूप देशीय है न कि अन्तर्राष्ट्रीय। इसी भाँति भारत भी अनेक प्रकार के उत्पादनों में आत्मनिर्भर है अस्तु, कुछ आवश्यक वस्तुओं को छोड़कर उसे विदेशों से अधिक वस्तुएँ आयात करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करने वाले मूलभूत कारण निम्नांकित हैं।

(१) वातावरण-संबंधी दशाएँ।
(२) आर्थिक विकास की गति।
(३) जनसंख्या का वितरण।
(४) यातायात की सुविधायें।

इनके अतिरिक्त गौण कारण ये हैं :—

(५) राष्ट्रों की आय।
(६) विदेशी पूँजी का विनियोग।
(७) प्रशुल्क दरें।
(८) राष्ट्रीय भावनायें तथा निवासियों की रुचि, आदतें आदि।

वातावरण संबंधी दशायें (Environmental Differences)—आधुनिक युग में प्रत्येक देश केवल उन वस्तुओं को उत्पन्न करने में अपनी शक्ति और साधन लगाता है जिनके लिए उसको सर्वाधिक लाभ प्राप्त हैं और अनुकूल परिस्थितियाँ हैं।

अनुकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत जलवायु का महत्व सबसे अधिक माना जाता है क्योंकि इसका प्रभाव मिट्टी और वनस्पति दोनों पर ही पड़ता है। उदाहरण के लिए मिसीसिपी नदी के किनारे और मकई की पेटी के क्षेत्रों में

ऐसी मिट्टी पाई जाती है जो हिमानियों द्वारा निर्मित होने के कारण केवल खरबूजे और शकरकंद उत्पन्न करने के लिए ही उपयुक्त है अत: यहाँ इन्ही दोनों वस्तुओं का उत्पादन कर किसान इन्हें निकटवर्ती क्षेत्रों को बेचकर आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदते हैं। क्यूबा में मिट्टी के विशेष गुणों के कारण ही वहाँ की तम्बाकू उत्तम स्वाद वाली होती है। भारत में भी नदियों के डेल्टों और समुद्रतटीय भागों में उपजाऊ कांप मिट्टी के कारण चावल, गन्ना और जूट अधिक बोया जाता है जबकि मध्य प्रदेश की काली मिट्टी कपास और गेहूँ के लिए ही विशेष रूप से अनुकूल पड़ती है। अत: इन दोनों क्षेत्रों में अन्तर्देशीय व्यापार होता है। इसके अतिरिक्त बड़ी मात्रा में कपास और जूट का निर्यात विश्व के अधिकांश देशों को होता है।

जलवायु ही यह निर्धारित करती हैं कि किस प्रदेश में क्या वस्तु पैदा हो सकती है। उदाहरणत: ठंडे देशों में अधिकतर गेहूँ, राई, चुकन्दर, आलू, सेव, जौ आदि अधिक पैदा किये जाते हैं। इन देशों से इनका निर्यात उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों को किया जाता है, जहाँ से इन्हें उस जलवायु के मुख्य उत्पादन—रवड़, चाय, कहवा, कोको, शक्कर, खोपरा, ताड़ का तेल, तिलहन अनन्नास, केले, मसाले, तथा विभिन्न प्रकार की कठोर लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार मरुस्थलीय भागों में छुहारे, अथवा सिंचित क्षेत्रों से कपास, अल्फाफा घास और चुकंदर मिलते हैं। इनका निर्यात ठण्डे देशों को किया जाता है। द० अमरीका और आस्ट्रेलिया के शीतोष्ण कटिवन्धीय घास के मैदानों में असंख्य संख्या में चौपाये और भेड़ें पाली जाती हैं जिनसे प्राप्त मांस, चमड़ा और खालें तथा ऊन, जमा हुआ दूध, मक्खन आदि उत्तरी गोलार्द्ध के ठंडे देशों को भेजी जाती हैं, और इनके बदले में कारखानों का तैयार माल मँगवाया जाता है।

जलवायु के अनुसार ही पशुओं का वितरण पाया जाता है। भेड़ें मुख्यत: कम बसे और अर्द्ध शुष्क तथा नम भागों में शीतोष्ण कटिवन्धीय क्षेत्रों में, बकरियाँ पहाड़ी भागों में; तथा ऊँट गर्म मरुस्थलों में और रेन्डियर बर्फीले रेगिस्तानों में ही उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार जलवायु की विभिन्नता दो देशों के बीच व्यापार को जन्म देती है। यातायात के साधन इसमें वृद्धि कर देते हैं।

भूमि की रचना में अन्तर होने से भी दो क्षेत्रों के बीच व्यापार उत्पन्न हो जाता है। साधारणत: पहाड़ी क्षेत्र ऊबड़-खाबड़ और ढालू होने के कारण खेती के अयोग्य होते हैं किंतु वे वन-सम्पत्ति, लकड़ियों, कागज के कच्चे माल और फल तथा जलशक्ति में धने होते हैं। अत: ऐसे क्षेत्रों से विश्व के मैदानी प्रदेशों को ये वस्तुएँ भेजी जाती हैं और मैदानी क्षेत्रों से अनाज, मांस, ऊन, सूती वस्त्र तथा कई अन्य वस्तुएँ मँगवाई जाती हैं।

इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका, इंग्लैंड, जर्मनी आदि देशों में कोयला और स्विटजरलैंड, फ्रांस, कनाडा, जापान, नार्वे-स्वीडेन इत्यादि देशों में जल-विद्युत शक्ति का अधिक भंडार होने से विश्व के अन्य देशों से उद्योग के लिए

कच्चा माल मँगाया जाता है। इससे इन देशों के कारखानों में माल तैयार होकर पुनः अन्य देशों को भेज दिया जाता है।

खनिज पदार्थों की प्राप्ति भी व्यापार को जन्म देनी है। शुष्क मरुस्थलों में शोरा, नमक, सोना एवं ठंडे देशों में लोहा, सोना, यूरेनियम आदि की प्राप्ति होने से ये प्रदेश धनी हो जाते हैं क्योंकि इन बहुमूल्य धातुओं को विश्व के उन देशों को निर्यात किया जाता है जहाँ ये बिल्कुल या कम मात्रा में मिलती हैं। खनिज पदार्थों के कारण ही दो देशों के बीच युद्ध की जड़ जम जाती है।

(२) आर्थिक विकास में अन्तर (Differences in Economic Development)—विभिन्न देशों में आर्थिक विकास की गति भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को जन्म देती है। इंग्लैंड जैसे पुराने औद्योगिक देश की उन्नति का मुख्य कारण उसके श्रमिकों की कार्य-कुशलता थी। इसी के आधार पर बहुत लम्बे समय से इंग्लैंड दक्षिणी-पूर्वी एशिया, आस्ट्रेलिया, अर्जेनटाइना, सं० रा० अमरीका और दक्षिणी अफ्रीका से अपने कारखानों के लिए कच्चा माल मंगवाता रहा और इन देशों को अपने यहाँ निर्मित माल का निर्यात करता रहा किन्तु अब पिछली तीन दशाब्दियों से इस स्थिति में अन्तर आ गया है क्योंकि इनमें से कई देशों ने—विशेषतः सं० रा० अमरीका, भारत, चीन, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा आदि—अब स्वयं ही उद्योग-धंधों का विकास कर लिया है। फलतः इस निर्मित माल को निर्यात करने की दृष्टि से इंग्लैंड का महत्व पहले की अपेक्षा काफी कम हो गया है।

जो देश औद्योगिक विकास में जितने पिछड़े होते हैं वे अपने यहाँ से उतने ही अधिक मात्रा में कच्चे माल का निर्यात करते हैं और उसके बदले में अन्य देशों से तैयार माल मँगवाते हैं।

(३) जनसंख्या का असमान वितरण (Unequal Distribution of Population)—विश्व में जनसंख्या का वितरण भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बहुत सीमा तक प्रभावित करता है। किन्हीं देशों में—जिनका विस्तार अधिक है और कृषि का उत्पादन अधिक होता है—जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया ब्रह्मा, थाईलैंड, आदि—किन्तु जनसंख्या कम होती है वहाँ खाद्य उत्पादन माँग से अधिक होता है, अस्तु अतिरिक्त मात्रा उन देशों को जैसे चीन, भारत, इंग्लैंड, बेल्जियम, फ्रांस, आदि—जहाँ उत्पादन कम होता है किन्तु जनसंख्या अधिक है—निर्यात कर दी जाती है और इसके बदले में पक्का माल मंगवा लिया जाता है क्योंकि प्रकृति द्वारा ही ये देश कृषि-उत्पादन के लिए सर्वाधिक अनुकूल होते हैं। कनाडा और आस्ट्रेलिया में जनसंख्या का घनत्व प्रतिवर्ग मील पीछे ३ से ५ व्यक्ति तक का है किन्तु इन दोनों देशों में गेहूँ का उत्पादन अत्यधिक मात्रा में होता है, अस्तु स्थानीय उपयोग के बाद भी काफी गेहूं निर्यात के लिए बच रहता है।

जबकि इंग्लैंड या बेल्जियम में जनसंख्या का घनत्व ७०० मनुष्य प्रति वर्ग मील तक है, जहाँ केवल कोयला, लोहा आदि पदार्थों के अतिरिक्त अन्य साधन

सीमित ही हैं अतः ये देश अपने मानव-श्रम का अधिक-से-अधिक उपयोग कर विदेशों से खाद्यान्न और अन्य प्रकार का कच्चा माल आयात करते हैं। किन्तु इसके विपरीत चीन भारत आदि देशों में जनसंख्या अधिक होने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए अनाज अथवा अन्य वस्तुओं की अतिरिक्त मात्रा पर्याप्त नहीं है इसीलिए इन देशों का प्रति व्यक्ति व्यापार भी बहुत कम है। इन देशों का व्यापार भी अधिक बढ़ सकता है यदि ये अपने श्रम का अधिक उपयोग कर सकें। जैसा कि नीदरलैंड, बेल्जियम, इंग्लैंड अथवा जापान में किया गया है। इसी प्रकार कम जनसंख्या वाले देशों का व्यापार भी कम होता है क्योंकि मानव श्रम के कम होने के कारण उनकी प्राकृतिक सम्पत्ति का पूरी तरह विदोहन नहीं होता। यातायात की अपूर्ण सुविधाएँ भी इसमें बाधा डालती हैं। मैकेन्जा की घाटी में मिट्टी के तेल के स्रोत पाये जाते हैं किन्तु अभी तक यातायात की सुविधा न मिलने से उनका कोई उपयोग नहीं किया जा सकता है इसके अतिरिक्त यहाँ की जनसंख्या भी इतनी कम है कि उत्पादन व्यय भी अधिक पड़ता है।

(४) यातायात के साधनों की सुविधा (Transportation facilities)—अतिरिक्त उत्पादित वस्तुओं की उपयोगिता तभी हो सकती है जब उन्हें दूर भेजने के लिए यातायात के विभिन्न साधनों—सड़कों, रेलमार्गों, नदियों, नहरों अथवा झीलों और सामुद्रिक या वायु मार्गों—की पूर्ण सुविधा हो। कृषि और उद्योग क्रिया में परिवर्तन होने के साथ-साथ यातायात के साधनों में भी परिवर्तन होता रहा है। इससे व्यापार के माल का रूप ही बदल गया है। शीत भंडारों की सुविधा अथवा तेलवाहन जहाजों के विकास होने से अब हजारों मील दूर से जमा हुआ माँस, अंडे, दूध और मछलियाँ तथा अन्य शीघ्र नष्ट हो जाने वाले पदार्थ और मिट्टी का तेल विश्व के बाजारों को भेजा जाने लगा है। प्राचीन काल में जब यातायात के साधनों का पूरी तरह विकास नहीं हो पाया था तब व्यापार मुख्यतः पड़ौसी देशों के बीच ही होता था तथा व्यापार की वस्तुयें मुख्यतः भारी और कम मूल्यवाली होती थी किन्तु अब व्यापार के रूप में भारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा है। अधिक दूरी के स्थानों को माल ले जाने के लिए सामुद्रिक मार्गों और बड़े-बड़े जलयानों का होना आवश्यक है तभी व्यापार में वृद्धि हो सकती है।

(५) राष्ट्रों की आय (Wealth of Nations)—जिस राष्ट्र में प्रति व्यक्ति आय तथा उद्योग-धन्धों में व्यवहृत करने के लिए पूंजी की मात्रा जितनी अधिक होती है, वहाँ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति आय अधिक होने के कारण ही व्यापार भी अधिक बढ़ा-चढ़ा है। यहाँ विदेशों से चाय, कहवा, कागज, पैट्रोलियम, रबड़, ऊन, तांबा, टिन, शक्कर, तम्बाकू और वनस्पति तेल बहुत आयात किये जाते हैं। यदि अमेरिकी इन चीजों का उपभोग कम करदें तो उनका जीवन-स्तर भी नीचा हो जायगा। भारत या रूस के पास अधिक धन हो तो वे भी अपने व्यापार को और अधिक बढ़ा सकते हैं। प्रति व्यक्ति पीछे निम्न आय होने के कारण ही चीन और भारत जैसे देशों का व्यापार विश्व के उन्नत राष्ट्रों की तुलनामें बहुत कम है।

(६) विदेशी पूंजी का विनियोग (Foreign Investment)—यदि किसी देश में विदेशी पूंजी अधिक लगी रहती है तो उसका उस देश के आयात-निर्यात पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं अथवा निर्धन हैं उन्हें विदेशी पूंजी की अपने उद्योग-धन्धों और यातायात के साधनों को उन्नत बनाने के लिए अधिक आवश्यकता होती है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका की अरबों डॉलर पूंजी न केवल कनाडा और लेटिन अमेरिकी देशों में ही लगी है वरन् यूरोप और एशिया के कई देशों में भी इसका उपयोग होता है। लेटिन अमेरिका के कैरेबियन प्रदेश में ५ बिलियन डॉलर से भी अधिक विदेशी पूंजी लगी है जिसमें से ¾ से अधिक, अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका की है। संयुक्त राज्य के कुल ३० बिलियन डॉलर विदेशों में लगे हैं जिनमें से ६०% निजी पूंजी है। यह पूंजी अधिकतर शक्कर, मिट्टी के तेल, कहवा और केले आदि उद्योग में लगी है। इसका अधिकांश भाग मैक्सिको, वैनेजुएला, क्यूबा, हैटी, डोमीनीकन रिपब्लिक आदि देशों में लगा है। इन देशों से अमेरिका खाद्यान्न, शक्कर तथा मिट्टी का तेल प्राप्त करता है। इसी तरह ब्रिटेन की करोड़ों पौंड पूंजी भारत में सूती वस्त्र, जूट, साइकल, मशीन, चाय आदि के बागों में लगी है। अस्तु, ब्रिटेन का भारत के विदेशी व्यापार में बड़ा हाथ रहता है।

(७) प्रशुल्क दरें (High Tariffs)—मुक्त व्यापार (Free Trade) की अपेक्षा अधिक प्रशुल्क दरें व्यापार को सीमित कर देती हैं। प्रशुल्क या आयात कर उन वस्तुओं पर लगाया जाता है जो किसी देश में ही सरलतापूर्वक निर्मित की जा सकती हैं। इससे विदेशों से ऐसी वस्तुओं का आयात अधिक कर होने से प्राय: बंद-सा हो जाता है और देश में ही उनका विकास होने लगता है। इसके अतिरिक्त जब किसी देश की स्थिति व्यापारिक मंदी अथवा व्यापार-संतुलन के प्रतिकूल होने पर डांवाडोल होने लगती है तो भी आयातों पर रोक लगा कर देश में गिरने वाली कीमतों को रोक दिया जाता है। कभी-सरकार कुछ उद्योगों को इस विचार से आर्थिक सहायता (Subsidy) देती है कि वे अल्प काल में ही अपनी अवस्था सुधार लें और विदेशी निर्माताओं से प्रतिस्पर्द्धा कर सकें। इसके अतिरिक्त कई बार एक देश अपने यहाँ आयात किए जाने वाली वस्तुओं की मात्रा भी निश्चित कर लेता है और यह भी तय कर लेता है कि उसे किस देश से कितना माल आयात करना है। संरक्षण के इन विभिन्न रूपों का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सीमित करने में पड़ता है। यदि विभिन्न देशों में इन उपायों का अवलंबन न किया जाय तो निस्संदेह व्यापार अधिक मात्रा में होता है।

(८) राष्ट्रीय भावनायें और निवासियों की रुचि (National Character and Habits)—प्राय: सभी औद्योगिक राष्ट्र अपनी उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के लिए पहले अन्य देशों में जाकर वहाँ के निवासियों की रुचि, रीतिरिवाज तथा अन्य आवश्यकीय बातों का पूरी प्रकार अध्ययन करते हैं और फिर उन्हीं के अनुसार वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। आज भी विश्व के अनेक देशों में 'जर्मनी का बना हुआ' माल आदर की

दृष्टि से देखा जाता है तथा उसे अच्छी किस्म का और टिकाऊ समझा जाता है। 'जापान का बना हुआ माल' सस्ता तथा अस्थायी माना जाता है। यदि किसी देश को दूसरे देश के प्रति दुर्भावना हो जाती है तो वह उस देश के माल का ही बहिष्कार कर देता है जैसे १६३० में, असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप ब्रिटेन के माल का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया गया। इसी प्रकार जब द्वितीय महायुद्ध के पूर्व जापान ने चीन पर आक्रमण किया तो अमेरिका में उसके माल पर रोक लगा दी गई। अस्तु, किसी देश की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रभाव भी व्यापार को घटाने या वढ़ाने पर होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ हैं :—

(१) प्रत्येक देश केवल उन वस्तुओं को उत्पन्न करने में अपनी शक्ति और साधन लगाता है जिनके लिये उसको सर्वाधिक लाभ प्राप्त हैं और अनुकूलतम परिस्थितियां हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा प्रादेशिक श्रम-विभाजन (Territorial Division of Labour) का पूर्ण विकास होता है। इसके द्वारा वस्तुओं का उत्पादन अनुकूलतम परिस्थितियों में होता है और संसार की कुल सम्पत्ति या धन और हित की वृद्धि होती है।

(२) जहां तक उपभोक्ताओं का प्रश्न है उन्हें केवल इतना ही लाभ नहीं होता कि उन्हें विदेशों की उत्पन्न की हुई वह वस्तुएं उपभोग करने के लिये मिलती हैं जो कि उनका देश कभी भी उत्पन्न नहीं कर सकता था, वरन् उन्हें अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को संसार के सस्ते-से-सस्ते वाजार से प्राप्त करने की सुविधा भी मिलती है। कोई देश तभी विदेशों से माल मंगवाता है जबकि वह वस्तुएं उसे वाहर से सस्ती प्राप्त हों।

(३) जब किसी देश में दुर्भिक्ष पड़ता है अथवा किसी वस्तु का वहुत अभाव प्रतीत होता है तो वह देश अपनी जनसंख्या के जीवन तथा स्वास्थ्य की रक्षा के लिये विदेशों से खाद्यान्न तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं मंगवा सकता है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार न हो तो ऐसी दशा में करोड़ों व्यक्तियों का जीवन नष्ट हो सकता है। द्वितीय महायुद्ध में, वंगाल में वाहर से चावल न आ सकने के कारण लाखों व्यक्ति मर गए।

(४) विदेशी व्यापार से एक वड़ा लाभ यह भी होता है कि देश के व्यवसायियों को यह भय वना रहता है कि यदि वे अपने उत्पादन के तरीकों को अन्य देशों के व्यवसायियों के समान ही नहीं सुधारेंगे तो वे उनकी प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकेंगे। यही नहीं, विदेशी एकाधिकार (Monopoly) स्थापित होने का भय नहीं रहता तथा स्पर्धा उत्पन्न हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ताओं को वस्तु कम कीमत पर मिल जाती है।

(५) विदेशी व्यापार से एक वड़ा लाभ यह भी होता है कि जिन देशों में आवश्यक कच्चे माल का अभाव होता है वे उनका आयात करके उन्हें प्राप्त कर लेते हैं। इससे औद्योगिक उन्नति होती है और वे देश जिन्हें अन्य सुविधाएं प्राप्त हैं किन्तु कच्चा माल जिनके पास नहीं भी हैं औद्योगिक उन्नति करते हैं। यही नहीं, विदेशी व्यापार के फलस्वरूप कच्चे माल का सर्वोत्तम उपयोग होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दोष

जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ऊपर लिखे लाभ हैं वहाँ उसके दोष भी हैं।

(१) पहला दोष तो यह है कि विदेशी व्यापार के फलस्वरूप किसी देश का आवश्यक कच्चा माल और खनिज पदार्थ समाप्त हो सकता है, जिसे पुनः प्राप्त कर सकना कठिन होता है। उदाहरण के लिये, भारत मैंगनीज, अभ्रक, इत्यादि को धातु के रूप में ही बाहर भेज देता है। भारत को उससे बहुत कम लाभ मिलता है।

(२) विदेशी व्यापार का दूसरा बुरा परिणाम यह होता है कि देश के धन्धों को विदेशों की प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है और कभी-कभी राशिपातन (dumping) का भी सामना करना पड़ता है। भारत के उद्योग-धन्धे विदेशी माल की प्रतिस्पर्द्धा के कारण ही नष्ट हो गए; जिसके परिणाम स्वरूप भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ गया और देश का आर्थिक संतुलन बिगड़ गया। यही नहीं, विदेशी माल की प्रतिस्पर्धा के कारण ही भारत के नवीन उद्योग-धन्धों के विकास में भी बाधा उपस्थित हुई और भारत आर्थिक दृष्टि से एक पिछड़ा राष्ट्र बन गया। यद्यपि अब इस परिस्थिति में काफी सुधार हो गया है।

(३) विदेशी व्यापार से देश के निवासियों की आदतें बिगड़ जाती हैं, वे हानिकर वस्तुओं का उपभोग करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, चीन को अफीका के व्यापार के कारण उन्नीसवीं शताब्दी में बहुत हानि उठानी पड़ी। शराब इत्यादि हानिकर पदार्थों को पीने की आदत पड़ जाती है, क्योंकि विदेशी व्यापार की सुविधा के कारण फ्रांस इत्यादि देशों की शराब आसानी से आ सकती है 'कोकोकोला' जैसा हानिकर पेय भारत में प्रचलित हो रहा है। यह विदेशी व्यापार का ही प्रभाव है।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्रत्येक देश केवल कुछ थोड़ी-सी वस्तुओं को उत्पन्न करने में ही अपनी सारी शक्ति और साधन लगाता है इसका परिणाम यह होता है कि देश में पेशे या धन्धे कम हो जाते हैं और यह अत्यधिक एक पक्षीय औद्योगिक विकास देश के आर्थिक जीवन की स्थिरता के लिए हानिकर है।

(५) विदेशी व्यापार का अन्तिम दोष यह है कि इसके कारण किसी देश की आर्थिक व्यवस्था बहुत कुछ विदेशों पर अवलम्बित हो जाती है जो कि कभी-कभी खतरनाक सिद्ध होती है। यदि युद्ध अथवा अन्य किसी कारण-वश विदेशों से कुछ समय के लिए वस्तुओं का आना रुक जावे तो उस देश की आर्थिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। विदेशी व्यापार का केवल इतना ही दोष नहीं है, वरन् एक दोष यह भी है कि किसी भी देश में यदि आर्थिक अथवा औद्योगिक अव्यवस्था या असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तो वह उन देशों में भी फैल जाता है जिनसे उस देश का सम्बन्ध है। यही कारण है कि आज आर्थिक मन्दी (Economic depression) किसी देश में सीमित नहीं रहता।

फिर भी यह तो कहना ही होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ उसके दोषों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ तभी पूर्ण रूप से प्रकट होते हैं जबकि प्रत्येक देश मुक्तद्वार व्यापार (Free Trade) नीति को स्वीकार करे और विदेशी व्यापार पर कोई प्रतिबन्ध या रुकावट न हो।

Bibliography

I. Economic and Commercial Geography

Thatcher, W. S. : Economic Geography: The English University, Press, London, 1949.

Klimm, L. F., Starkey and Pand Hall N. F. Introductory Economic Geography, Harcourt Brace & Co., 1940.

London, C. E. Industrial Geography, 1939.

Case, E. C. and D. R. Bergsmark : College Geography : John Wiley and Sons, 1954.

Finch, V. C. and Trewartha, G. T.: Elements of Geography:Mcgraw Hill Book Co. 1942.

Huntington, E. and F. E. Williams; S. V. Valkenberg and S. S Visher: Principles of Economic Geography: John Wiley, N. Y. 1947.

Huntington, E ; Williams F. E. and Valhenburg S. V. Economic and Social Geography: John Wiley and Sons 1933.

Whitebeck, R. H. and Finch V. C. Economic Geography: Mcgraw Hill Book Co., 1942.

Stamp, L.D. and S, C, Gilmour Chishollm's Handbook of Commercial Geography; 14 Edition, Longmans Green and Co., 1954.

Stamp, L. D. Intermediate Commercial Geography, Longmans and Co.

Stamp, L D. Commercial Geography : Longmans Green and Co.

Jones, C. F. and Drakenwald G, G, Economic Geography, 1954.

Smith, J. R. and M. O. Phillips and T.R. Smith Industrial and Commercial Geography, Henry Holt and Co., New York, 1955.

Das Gupta, A Economic Geography : A Mukerjee and Co, Cal., 1955.

Freeman, O. T. and Roup, H. F. Essentials of Geography : Mcgraw Hill Book Co., 1949.

Pounds Economic Geography.

Rudmos Brown Principles of Economic Geography : Pitman and Sons, London.

Mcferlance — Economic Geography: Pitman & Sons.

Brittle — Economic and Social Geography, Pitman & Sons, 1938.

Jones, W. D. and Whittlesey, D. S. — An Introduction to Economic Geography: University of Chicago Press, Chicago, 1925.

James, P. E. — An Outline of Geography, Ginn & Co.

White, C. L. and G. T. Renner — Geography—An Introduction to Human Ecology, Appleton Century Crofts, New York, 1936.

Dicken, S. N. — A Regional Economic Geography, D. C. Heath Boston, 1949.

London, C. E. — Industrial Geography, Printice Hall, N. Y., 1939.

Huntington, C. C. and Carlson, F. A. — Environmental Basis of Social Geography, Printice Hall, New York, 1930.

Peattie, R. — College Geography, Ginn and Co, Boston, 1932.

Bengston, N. A. and Williams, V. R. — Fundamentals of Economic Geography, Printice Hall, New York, 1950.

Fisher, C. A. — Economic Geography in the Changing World, Institute of British Geographers, Publication No. 4, 1949.

Dubey, R. N.: — Economic and Commercial Geography.

Chakravarti — Economic Geography, 1955.

II. Human Geography—Environment

Semple, E. C. — Influence of Geographic Environment, Henry Holt and Co., 1941.

Bews, J. W. — Human Ecology, O. U. P. New York, 1935.

Brunhes, Jean — Human Geography, Rand McNally and Co., Chicago, 1920.

Bryan, P. W. — Man's Adaptation to Nature, Henry Holt and Co., New York, 1933.

Huntington, E. and Cushing, S. W. — Principles of Human Geography, John Wiley and Sons, New York, 1940.

Peattie, Rodenck — Geography in Human Destiny, George W. Stewart, N. Y. 1940.

—Mountain Geography, Harvard University Press 1936.

Taylor, G. — Environment and Nations, University of Chicago Press, Chicago, 1936.

Van Cleef, E. — Geography for the Businessman, Harper and Bros., N. Y. 1943.

Whitebeck, R. H. and O. J. Thomas — The Geographic Factor, Century Co. N. Y. 1943.

Whitebeck, C. L. and *G. T. Renner* — Geography—An Introduction to Human Ecology 1936.

Mukerjee, R. K. — Man and his Habitation, Longmans Green and Co.

Human Ecology, Longmans Green and Co.

Fairgrieve, J. — Geography and World Power—University of London Press, 1915.

Blache, Vi de la: — Principles of Human Geography, Constable and Co., London,

III. Climate

Trewartha, G.T. — An Introduction to Weather and Climate, Mcgraw Hill Bill Co. 1943.

Kendrew, W. G. — Climates of the Continent, O. U. P. 1942.

—Climatology, O. U. P.

Brooks, C. E. P. — Climate, Charles Seribners and Sons N. York, 1931.

Miller, A. — Climatology, Mathuen and Co., London 1948.

P. Lake and Steers J. A. — Physical Geography, Macmillan and Co. 1953.

Blair, T. A. — Weather Elements, Printice Hall, 1937

IV. Soil Geography

Glinka, K. D. — The Great Soil Groups of the World and Their Development. Translated by C.F. Marbut, Edward Bros, 1927.

Benett, H. H. — (i) Soil Conservation Mcgraw Hill and Co.

(ii) Elements of Soil Conservation—McGraw Hill Book Co. New York 1947.

Hilgard, E. W. — Soils—1921.

Hall, Sir A. L. — The Soil, Murray Publishing Co., 1920.

Lyde, L. W. — The Continent of Europe. Mac- Co., New-York 1920.
The Continent of Asia—Ditto 1933.

Stamp L. D. — Asia, Mathuen and Co., 1948.

Trewartha, G. T. — Japan—A Physical, Cultural and Regional Geography, University of Wisconcin Press, 1945.

Taylor, G. — Australia, Mathnen and Co. 1948.

Balzak, Vasyutin and Feigin — Economic Geography of U. S. S. R. Macmillan and Co., New-York, 1950.

Jones C. F. — South America, Henery Halt and Co., Newyork, 1930.

Jones L. R. and Bryan P. W. — North America. Lincon Macveagh, the Dial Press New York 1924.

Peck, A. S. — Industrial and Commercial S. America, Thomosy Crowell, New-York, 1927.

Orchard, J. E. — Japan's Economic Position, Mcgraw Hill Book Co., 195(.

Smith J. R. and Phillips O. — North America.

Spate, O. H. K, and East W, G, — Changing Map of Asia—Methmen and Co., 1950.

Miller J. and Parkins A. E. — Geography of North America. John Wiley and Sons Newyork, 1948.

Fisher, W. B. — The Middle East, Mathueen and Co., 1950.

Shabad T. — Geography of U. S. S. R, Columbia Press Newyork, 1951.

IX. Transport and Trade

T. Bingham — Transporation Principles and Problems, 1946.

L. Brayn — Principles of Water Transporation, 1939.

Locklin — Economics of Transportation, 1947.

Year Book of World Affairs — "The Danube", 1950.
—Merchant Fleet of the World, 1953.

Hawks, E. — The Romance of Transportation, 1931.

W. A. Verwiebe	North America and Middle East Oil Fields, 1950.
U.S.A, Geological Survey	World Atlas of Commercial Geology Pt. 1,1 921.
U.S.A. Deptt. of State	Energy Resources of the World, Publication No. 3428, 1949. Statistical Year Book of the World, Power Conference No. 6, 1952.
U. N. O.	World Energy Supplies in Selected Years 1929-50, 1952.
U. N. O.	World Iron Ore Resources and Their Utilisation 1950.
The Presidents' Materials Policy Committee	Resources for Freedom, Vol II 1952.
Govt. of India	Hydro-Electric Power in India. Achiements and New Targets 1957.
Kuriyan, G.	Development of Hydro-Electric Power in India, 1948.
Lovering, J. S.	Minerials in World Affairs, Printice Hall 1944.
De-Mille, J. B.	Strategic Minerals, Mcgraw Book Co., 1947.
Reed T. T.	Our Minerial Civilization, The Williams and Wilkins Co., Baltimore, 1932.

VIII. Regional Geography

Blanchard, W. O. and Visher, S. S.	Economic Geography of Europe, Mcgraw Hill Book Co., 1931.
Van Valkenberg, S. and Hunington E.	Europe: John Wiley and Sons New-York, 1935.
Cressy, G. B.	Asia's Land and People, Mcgraw Hill Book Co.. 1951. —China's Geographic Foundation, Mcgraw Hill Book Co.,
Bergsmark, D. R.	Economic Geography of Asia, Printice Hall, Newyork 1950.
Shanon, E. W.	South America. Mathuen and Co., London.
Fitzerald, W.	Africa, Mathnen and Co., 1954.
Whitebeck, R. H.	Economic Geography of South America, Mcgraw Hill Book Co., 1954.

Lyde, L. W. — The Continent of Europe. Mac Co., New-York 1920.
The Continent of Asia—Ditto 1933.

Stamp L. D. — Asia, Mathuen and Co., 1948.

Trewartha, G. T. — Japan—A Physical, Cultural and Regional Geography, University of Wisconcin Press, 1945.

Taylor, G. — Australia, Mathnen and Co. 1948.

Balzak, Vasyutin and Feigin — Economic Geography of U. S. S. R. Macmillan and Co., New-York, 1950.

Jones C. F. — South America, Henery Halt and Co., Newyork, 1930.

Jones L. R. and Bryan P. W. — North America. Lincon Macveagh, the Dial Press New York 1924.

Peck, A. S. — Industrial and Commercial S. America, Thomosy Crowell, New-York, 1927.

Orchard, J. E. — Japan's Economic Position, Mcgraw Hill Book Co., 195(.

Smith J. R. and Phillips O. — North America.

Spate, O. H. K, and East W, G, — Changing Map of Asia—Methmen and Co., 1950.

Miller J. and Parkins A. E. — Geography of North America. John Wiley and Sons Newyork, 1948.

Fisher, W. B. — The Middle East, Mathueen and Co., 1950.

Shabad T. — Geography of U. S. S. R, Columbia Press Newyork, 1951.

IX. Transport and Trade

T. Bingham — Transporation Principles and Problems, 1946.

L. Brayn — Principles of Water Transporation, 1939.

Locklin — Economics of Transportation, 1947.

Year Book of World Affairs — "The Danube", 1950.
—Merchant Fleet of the World, 1953.

Hawks, E. — The Ranance of Transporation, 1931.

Johnson E. R. and Huebuer, G. G and Wilson G. L.	Transporation, 1940,
Van Zandt, J. P.	The Geography of World Air Transport, Brookings Institute, Washing-1944.
Van Cleef, E.	Trade Centres and Trade Routes. Appleton Century Crafts N. Y. 1937.
Sargent, A. J.	Sea Ports and Hinterland, A and C. Black Ltd. London, 1938.
Mumford, Lewis	Culture of Cities. Harcourt Brace and Co., 1938.
Saarmen, E.	The City : Its growth, Its Decay and Its Future, Reinhold Publishing Corporation, N. Y. 1943.
Taylor G.	Urban Geography, Mathuen and Co., London, 1951.
Arthur, Paul and others	World Trade, 1946.
Brown, H.	International Trade, The Macmillan Co., 1915.
Fraser, H. F.	Foreign Trade and World Politics, The Crofts Co., 1926.
Killough, H. B.	International Trade, Mcgraw Hill Book Co. 1938.
Lippincot, I.	Development of Modern World Trade, Appleton Century Co., 1936.
Litman, S.	Essentials of International Trade, John Wiley & Sons, 1923.
Taussig, F. W.	International Trade, Macmillan Co., 1928.
Wolfe, A. J.	Theory and Practice of International Trade, International Publishing Co., 1919.
Heilperin, M. A.	The Trade of Nations: Knopf, 1947.
Horn, Paul, V.	International Trade Principles and Practices, Printices-Hall, 1951.

X. Population

Carrsaunders, A. M.	World Population—Past Grow thand Present Trends, O. U. P. 193[illegible].
Blache, P Vidal de la	Principles of Human Geography, Henry Halt and Co., 1926.

Brunhes J. — Human Geography. Rand Mc Nally and Co., N. Y. 1920.

Huntington, E. — Human Habitat. D Von Nostand and Co., N. Y. 1927.

" — Civilization and Climate—The Yale University Press, 1915.

Davis, K. — Population of India and Pakistan, Princeton University, 1951.

Whitebeck, R. H. and Thomas, O. J. — The Geographic Factor, 1932.

Huntington E. and S. W. Cushing and E. B. Shaw — Principles of Human Geography. John Wiley ahd Sons-N. Y. 1949.

Russel, John — World Population and World Food Supplies. George Allen and Unwin' 1956.

Davis D. H. — Earth and Man—Mcmillan and Co., New-York, 1949.

Freeman O. T. and H. F Ramp — Essentials of Geography. Mcgraw Hill Book Co., 1949.

James P. E. — Geogaphy of Man, 1951.

P. E. P. — World Population and Resources, 1955.

XI. Statistical Literature, Annuals & Periodicals.

U. N. O.: F A O Year Book of Agriculture, 1954.

Demographic Year Book, 1954, 1952

Statesmen's Yeark Book and Who's Who? 1953.

Times of India Directory and Who's Who, 1954-55; 1955-56.

Commerce Annual, 1955, 1956.

Eastern Economist, Annual, 1955, 1956.

Capital—Supplement, 20th Dec., 1956.

Indian Geographical Journal, 1956.

Modern Review,

Economic Geography, Worcestor,

Agricultural Situation in India, 1955, 1956.

XII. India.

D. N. Wadia — Geology of India, 1949.

M. S. Krishnan — Geology of India and Burma, 1948.

H. L. Chibber — Geology of India and Burma. Physical Basis of Geography of India, Part I. India, Pt. III.

Heoron, A. M.	Mineral Resources of India, 1945.
Brown, J. C and Dey	India's Mineral Wealth, 1955.
Sharma, T. R.	Location of Industries in India, 1948.
Sharma, T. R. and Singh, V.	Economic Geography of India, 1950.
Mamoria, C. B.	Agricultural Problems of India, 1957.
	India's Population Problem (Unpublished Thesis), 1956.
	भारत का आर्थिक भूगोल, १६५२.
	विश्व भूगोल, १६५२.
Mamoria and others	भारत का आर्थिक विकास, भाग १, २, १६५६.
श्रीवास्तव, सी. पी और मामोरिया, सी. बी.	भारत में यातायात, १६५६.
,,	भारत में व्यापार, १६५७,
Thirumalai, S.	Post-War Agricultural Problems and Policies in India, 1954.
Owen, R.	India-Economic and Commercial Conditions, 1952.
Cotton, C. W. E.	Handbook of Commercial.
	Information for India, 1937.
Gandhi, M. P.	Major Industries Annual, 1953-54 and 1954-55.
Das Gupta, A.	Economic Geography of India and Pakistan, 1955.
Dubey, R. N.	Economic Geography of India, 1954.
Jain, P. C.	Industrial Problems in India, 1951.
Wadia, P. A and Merchant, K. T.	Our Economic Problem, 1954.
Govt. of India	Census of India, 1931 Vol. I.
	,, 1951, Vol I. Pt. 1. A.
	Second Five Year Plan, 1956.
	Industrial Development of Programme, 1956.
	India, 1955, 1956. 1957.
	Our Forests, 1949.
	Our Roads, 1949.
	—उद्योग व्यापार पत्रिका

Giological Survey of India Indian Minerals.